अक्टूबर, १९३८ मूल्य ।)

भाग ४८. प्रयाग की विज्ञान-परिषद् का मुख-पत्र जिसमें आयुर्वेद विज्ञान भी सम्मिलित है संख्या

स्वास्थ्य और रोग

लेखक—डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा,

बी० एस-सी०, एम० बी० बी० एस०, डी० टी० एम० (लिवरपूल), ए० एम० (डबलिन),
एफ० आर० एफ० पी० एस० (ग्लासगो), सिविल सरजन

भोजन—हैज़ा—टायफ़ोइड क्षय रोग—चेचक—डिफ्थीरिया—मलेरिया—डेंगू—प्लेग—इफ़्लुएंज़ा—खुजली—कुष्ठ—पैदाइशी रोग—कैंसर—मूढ़ता—मोटापन—दिनचर्या—जलोदर—व्यायाम—मस्तिष्क और उसके रोग—पागल कुत्ता—बिच्छू—साँप—स्त्रियों और पुरुषोंके विशेष रोग—सन्तानोत्पत्ति-निग्रह, इत्यादि-इत्यादिपर विशद व्याख्या तथा रोगोंकी घरेलू चिकित्सा।

९२४ पृष्ठ; ४०७ चित्र, जिनमें १० रंगीन हैं ; सुन्दर जिल्द। **मूल्य ६)**

उसी लेखककी दूसरी पुस्तक

हमारे शरीरकी रचना

१००० पृष्ठ, ४६० चित्र, सुन्दर जिल्द | **मूल्य ७)**

इस पुस्तकको जनताने इतना पसन्द किया है कि इसके प्रथम भागकी पाँचवीं आवृत्ति और द्वितीयकी चौथी आवृत्ति छापना पड़ी। आप भी एक अपने घरमें अवश्य रक्खें। दोनों भाग अलग भी मिलते हैं, प्रथम भाग ३॥), द्वितीय भाग ४)

क्षय-रोग

लेखक—डा० शङ्करलाल गुप्त, एम० बी० बी० एस०

"इस पुस्तकमें क्षय-रोग सम्बन्धी आधुनिक खोजों तथा नई-से-नई बातोंका समावेश है।"—डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा "इस पुस्तकको प्रत्येक पढ़े-लिखे देश-हित-चिन्तक स्त्री-पुरुषको पढ़ना चाहिये।"—कविराज श्री प्रतापसिंह

बड़ा (रॉयल) आकार, ४३२ पृष्ठ, ११५ चित्र, सुन्दर जिल्द, मूल्य ६)

प्रसूति-शास्त्र

लेखक—डा० प्रसादीलाल झा, एल० एम० एस०

बड़ा (डिमाई) आकार; चिकना मोटा कागज; १५८ पृष्ठ, सुन्दर जिल्द

केवल ११ प्रतियाँ अब बच गई हैं (अक्टूबर १९३७)। कागज कुछ पीला पड़ जानेके कारण

मूल्य ३) से घटाकर केवल २) कर दिया गया है

विज्ञान-परिषद, इलाहाबाद

महत्वपूर्ण वैज्ञानिक साहित्य

मिलनेका पता विज्ञान-परिषद, इलाहाबाद

विज्ञान हस्तामलक—विस्तृत विवरण अन्यत्र देखें—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम० ए०, ६)

सुन्दरी मनोरमाकी करुण कथा—वैज्ञानिक कहानी—ले० श्री नवनिद्धिराय, एम० ए०, ≈)।

वैज्ञानिक परिमाण—नापकी एकाइयाँ, ग्रहोंकी दूरी आदि, देशोंके अक्षांश, तत्वोंका परिमाण, घनत्व आदि, पदार्थोंके घनत्व, तनकी तनाव शक्तियाँ, स्निग्धता तथा द्रवांक, शब्द सम्बन्धी अनेक परिमाण, दर्पण बनानेकी रीति, वस्तुओंकी वैद्युत बाधायें, बैटरियोंकी विद्युत-सञ्चालक शक्तियाँ, इत्यादि-इत्यादि अनेक बातें तथा चार दशमलव अंकों तक संपूर्ण लघुरिक्थ सारिणी—ले० डा० निहालकरण सेठी, डी० एस-सी०, तथा डा० सत्यप्रकाश, डी० एस-सी० ।।।)

वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्द ४८२१ अँग्रेजी शब्दोंके हिन्दी पारिभाषिक शब्द—शरीर-विज्ञान ११८४, वनस्पति-विज्ञान २८८, तत्व ८६, अकार्बनिक रसायन ३२०, भौतिक रसायन ४८१, कार्बनिक रसायन १४४६, भौतिक विज्ञान १०१६—ले० डा० सत्यप्रकाश डी० एस्-सी० ॥)

विज्ञान प्रवेशिका—विज्ञानकी प्रारंभिक बातें सीखनेका सबसे उत्तम साधन, मिडिल स्कूलोंमें पढ़ाने योग्य पाठ्य-पुस्तक ।)

मिफ़्ताह-उलफ़नून—विज्ञान प्रवेशिकाका उर्दू अनुवाद ले० प्रो० सैयद मोहम्मद अली नामी, एम० ए० ।)

आविष्कार-विज्ञान—उन शक्तियोंका वर्णन जिनकी सहायतासे मनुष्य अपना ज्ञान-भंडार स्वतंत्र रूपसे बढ़ा सके—ले० श्री उदयभानु शर्मा। पूर्वार्ध ॥≈)
उत्तरार्ध ।।।)

विज्ञान और आविष्कार—एक्स-रेज, रेडियम, भूपृष्ठशास्त्र, सृष्टि, वायुयान, विकाशवाद, ज्योतिष आदि विषयोंका रोचक वर्णन और इतिहास—ले० श्री सुखसम्पतिराय भंडारी १≈)

मनोरंजक रसायन—इसमें रसायन-विज्ञान उपन्यासकी तरह रोचक बना दिया गया है—ले० प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव, एम० एस-सी० १॥)

रसायन इतिहास—रसायन इतिहासके संबंधमें १२ लेख—ले० श्री आत्माराम, एम० एस-सी० ।।।)

प्रकाश-रसायन—प्रकाशके रासायनिक क्रियाओं पर क्या प्रभाव पड़ता है—ले० श्री बि० बि० भागवत १॥)

दियासलाई और फ़ॉस्फ़ोरस—सबके पढ़ने योग्य अत्यंत रोचक पुस्तक—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम० ए० ≈)

ताप—हाई स्कूलमें पढ़ाने योग्य पाठ्य-पुस्तक—ले० प्रो० प्रेमवल्लभ जोशी, एम० ए० तथा श्री विश्वम्भरनाथ श्रीवास्तव, एम० एस्-सी, चतुर्थ संस्करण ॥≈)

हरारत—तापका उर्दू अनुवाद—ले० प्रो० मेंहदीहुसेन नासिरी, एम० ए०, ।)

चुम्बक—हाई स्कूलमें पढ़ाने योग्य पाठ्य-पुस्तक—ले० प्रो० सालिग्राम भार्गव, एम० एस्-सी० ।≈)

पशुपक्षियोंका शृङ्गार-रहस्य—ले० श्री सालिग्राम वर्मा, एम० ए०, बी० एस-सी० ≈)

जीनत बहश व तयर-पशुपक्षियोंका शृङ्गार-रहस्यका उर्दू अनुवाद—अनु० प्रो० मेंहदी हुसैन नासिरी, एम० ए० ≈)

चींटी और दीमक—सर्व-साधारणके पढ़ने योग्य अत्यंत रोचक पुस्तक—ले० श्री लक्ष्मी नारायण दीनदयाल अवस्थी ।।।)

सूर्य-सिद्धान्त—विस्तृत ब्योरा अन्यत्र देखें—ले० श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव, बी० एस्-सी०, एल० टी०, विशारद ५)

सृष्टिकी कथा—सृष्टिके विकासका पूरा वर्णन—ले० डा० सत्यप्रकाश, डी० एस्-सी० १)

सौर-परिवार—विस्तृत विवरण अन्यत्र देखें—ले० डा० गोरखप्रसाद, डी० एस-सी० १२)

समीकरण-मीमांसा—एम० ए० गणितके विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य पुस्तक—ले० पं० सुधाकर द्विवेदी, प्रथम भाग १।।)
दूसरा भाग ।।≈)

निर्णायक (डिटर्मिनैंट्स)—एम० ए० के विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य पुस्तक—ले० प्रो० गोपालकेशव गर्दे, एम० ए० और श्री गोमतीप्रसाद अग्निहोत्री, बी० एस-सी० ।।)

बीजज्यामिति या भुजयुग्म रेखा-गणित—एफ० ए० गणितके विद्यार्थियोंके लिये-ले० डा० सत्यप्रकाश, डी० एस-सी० १।)

क्षय-रोग—क्षय-रोगसे बचनेके उपाय—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी० एस-सी०, एम० बी० बी० एस० ≈)

क्षय-रोग—विस्तृत विवरण अन्यत्र देखिये ले० डा० शंकरलाल गुप्त, एम० बी० बी० एस० ६)

शिक्षितोंका स्वास्थ्य व्यतिक्रम—पढ़े-लिखे लोगोंको जो बीमारियाँ अक्सर होती हैं उनसे बचने और अच्छे होनेके उपाय—ले० श्री गोपालनारायण सेनसिंह, बी० ए०, एल० टी० १)

ज्वर, निदान और शुश्रूषा—सर्व-साधारणके पढ़ने योग्य पुस्तक—ले० डा० बी० के० मित्र, एल० एम० एस० ≈)

स्वास्थ्य और रोग—विस्तृत विवरण अन्यत्र देखें—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा ६)

हमारे शरीरकी रचना—विस्तृत विवरण अन्य देखें ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा,
प्रथम भाग २।।।≈)
द्वितीय भाग ४≈)

स्वास्थ्य-विज्ञान—गृहनिर्माण, वायु, जल, भोजन, स्वच्छता, कीटाणु, छूतवाले रोग, स्वास्थ्य आदि पर सरल भाषामें विशद तथा उपयोगी विवेचन—ले० कैप्टेन, डा० रामप्रसाद तिवारी, हेल्थ ऑफिसर, रीवाँ राज्य। ३)

स्वस्थ शरीर—प्रथम खंड मनुष्यके अस्थि-पंजर, नस, नाड़ियाँ, रक्ताणु, फुफ्फुस, वृक्क, पेट, शुक्राशय आदिका सरल वृत्तांत और स्वास्थ्य-रक्षाके नियम। दूसरा खंड—व्यक्तिगत स्वास्थ्य-रक्षाके उपाय—ले० डा० सरजूप्रसाद तिवारी, और पं० रामेश्वर-प्रसाद पाण्डेय, प्रथम खंड २)
द्वितीय खंड २।)

आसव विज्ञान—वैद्योंके बड़े कामकी पुस्तक-ले० स्वामी हरिशरणानन्द १)

मन्थर ज्वरकी अनुभूत चिकित्सा—वैद्योंके बड़े कामकी पुस्तक—ले० स्वामी हरिशरणानन्द)

त्रिदोष मीमांसा—यह पुस्तक मुख्यतया वैद्योंके कामकी है, किन्तु साधारण जन भी विषय ज्ञानके नाते इसमें बहुत लाभ उठा सकते हैं—ले० स्वामी हरिशरणानन्द १)

क्षार-निर्माण-विज्ञान—क्षार-सम्बन्धी सभी विषयोंका खुलासा वर्णन—ले० स्वामी हरिशरणानन्द ।)

प्रसूति-शास्त्र—विस्तृत विवरण अन्यत्र देखिये—ले० डा० प्रसादीलाल झा, एल० एम० एस० २)

भारतीय वनस्पतियों पर विलायती डाक्टरोंका अनुभव—विस्तृत विवरण अन्यत्र देखिये २)

कृत्रिम काष्ठ—एक रोचक लेख—ले० श्री गंगाशंकर पचौली =)

वर्षा और वनस्पति—भारतका भूगोल और आबहवा—भारतकी स्वाभाविक आवश्यकताएँ—शीतलता प्राप्त करनेके साधन—वर्षा और वनस्पति—जल संचय-वनस्पतिसे अन्य लाभ—ये इस पुस्तकके अध्याय हैं—ले० श्री शङ्करराव जोशी ।)

वनस्पति-शास्त्र—पेड़ोंके भिन्न-भिन्न अंगोंका वर्णन, उनकी विभिन्न जातियाँ, उनके रूप, रंग, भेद इत्यादिका सरल भाषामें वर्णन, सर्व-साधारणके पढ़ने योग्य पुस्तक—ले० श्री केशव अनन्त पटवर्धन, एम० एस-सी०, ।।=)

तरकारीकी खेती—६३ तरकारियों आदिकी खेती करनेका विशद वर्णन ...=)

उद्भिजका आहार—एक ...ियोंका वर्णन ... श्री एम० के० चटर्जी ...ुरुय अपना ज्ञान-

फ़ोटोग्राफ़ी—विस्तृत विवरण अन्यत्र देखिये—ले० डा० गोरखप्रसाद, डी० एस-सी० ५)

सुवर्णकारी—सुनारोंके लिये अत्यंत उपयोगी पुस्तक, इसमें सुनारी संबंधी अनेक नुसखे भी दिये गये हैं—ले० श्री गंगाशंकर पचौली ।)

यांत्रिक चित्रकारी—विस्तृत विवरण अन्यत्र देखिये—ले० श्री ओंकारनाथ शर्मा, ए० एम० आई० एल० ई०,
अजिल्द सस्ता संस्करण २।)
राज संस्करण सजिल्द ३।।)

वैक्युम-ब्रेक—विस्तृत विवरण अन्यत्र देखें—ले० श्री ओंकारनाथ शर्मा, ए० एम० आई० एल० ई० २)

सर चन्द्रशेखर वेंकट रमन—भारतके प्रसिद्ध विज्ञानाचार्यका जीवन चरित्र—ले० श्री युधिष्ठिर भार्गव, एम० एस-सी० =)

डा० गणेशप्रसादका स्मारक-विशेषांक—८० पृष्ठ—सम्पादक डा० गोरखप्रसाद, डी० एस-सी० और प्रो० रामदास गौड़ ४)

वैज्ञानिक जीवनी—श्री पञ्चानन नियोगी, एम० ए०, एफ० सी० एस०, की 'वैज्ञानिक जीवन' नामक बङ्गला पुस्तकका हिन्दी अनुवाद—अनु० रीवा-निवासी श्री रामेश्वरप्रसाद पाण्डेय १)

गुरुदेवके साथ यात्रा—ले० श्री महावीर-प्रसाद, बी० एस-सी०, विशारद ।=)

केदार—बद्री यात्रा—बद्रीनाथ केदारनाथकी यात्रा करनेवालोंको इसे अवश्य एक बार पढ़ना चाहिये—ले० श्री शिवदास मुकर्जी, बी० ए० ।)

उद्योग—...स्कूलमें पढ़ाने योग्य पाठ्य...क—ले० प्रो० सालिग्राम भार्गव, एम० एस-सी० ।=)

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ४८	प्रयाग, तुलार्क, संवत् १९९५ विक्रमी अक्टूबर, सन् १९३८	संख्या १

रेशम, ऊन और रुईकी पहचान

[ले०—डा० सत्यप्रकाश डा० एस-सी०]

जितने भी वस्त्रोंका हम प्रतिदिन उपयोग करते हैं उनमें रेशम, ऊन और रुई इन तीनोंका ही अधिक प्रयोग किया जाता है। कुछ वस्त्र तो शुद्ध रेशम या शुद्ध ऊनके होते हैं पर बहुतोंमें मिलावट भी बहुत होती है। वस्त्रका मूल्य भी इस मिलावटपर बहुत निर्भर रहता है। यदि आप ठीक-ठीक नहीं पहचान सकते कि आपके ऊनी या रेशमी कपड़ेमें रुईका सूत भी मिला दिया गया है, तो आप सस्ती चीज़को अधिक दामोंमें खरीद लेंगे। इसलिये बड़ा आवश्यक यह है कि आपमें ऐसी योग्यता हो कि आप पता लगा सकें कि किस कपड़ेमें कितनी मिलावट की गई है। यह तो आप जानते होंगे कि सूती कपड़ोंकी धुलाई और तरह की जाती है और ऊनी एवं रेशमी कपड़ोंकी और तरहसे। इस दृष्टिसे भी यह आवश्यक है कि आपको ज्ञात हो कि आपके कपड़ोंमें किसी चीज़की कितनी मिलावट हो। कपड़ेकी मज़बूती भी इस मिलावटपर निर्भर रहती है, इसलिये यदि आप मिलावटकी परीक्षा कर सकें तो आप उचित मूल्यमें उचित वस्त्र भी अपनी आवश्यकताके अनुसार खरीदेंगे।

नामोंमें धोखा धड़ी

इस बातका सदा ध्यान रखिये कि कपड़ोंपर दिये गये या सूचीपत्रों एवं विज्ञापनोंमें घोषित किये गये नाम बहुधा धोखा देनेके लिये ही होते हैं। नामोंके ऊपर बिना विचार विश्वास मत कर लीजिये। हमारे देशमें वस्त्रोंको अंग्रेज़ी नाम दिये जाते हैं जिनको हमारे यहांकी जनता हमेशा समझ नहीं सकती। उदाहरणके लिये 'फ्लैनेलेट' को कभी 'फ्लैनल' (फलालैन) मत समझिये। न यह वस्त्र फलालैनका कोई रूपान्तर ही है, यह तो सीधा सादा सूती वस्त्र है जिसके ऊपर फलालैनकी-सी आभा आगई है। इस प्रकारके बहुरूपिये कपड़े आपको बहुत मिलेंगे।

नकली रेशम या आर्टीफिशल सिल्ककी तो बाज़ारमें बहुत भरमार है, यह रेशम देखने मात्रमें तो रेशम है, पर इसमें रेशम बिल्कुल नहीं होता, और यह शुद्ध रेशमकी अपेक्षा बिकता भी बहुत सस्ता है, यह लकड़ी या रुईके सेल्युलोज़से बनाया जाता है। जापानी मालमें तो इसकी भरमार है, और सस्ते विलायती कपड़े भी नकली रेशमके बहुत बनकर

आते हैं। बाज़ारमें जितनी लिनेन आती है वह भी सदा शुद्ध लिनेन नहीं होती। रुईके सूतको ही कुछ मसालोंसे उपकृत करके लिनेनका रूप देदेते हैं। बहुधा तो ऐसा होता है कि कपड़ेमें कुछ सूत तो सच्ची लिनेनके हुए, और उनके साथ बहुतसे सूत नकली लिनेनके मिला दिये। अतः बाज़ारू नामोंपर और बाज़ारू दामोंपर सदा विश्वास मत कर लो।

मिलावट क्यों करते हैं ?

नकली सूत तैयार ही क्यों किये जाते हैं और फिर उन्हें असली सूतोंके साथ क्यों मिला दिया जाता है? क्या केवल दाम कम करनेके लिये या धोका देकर ग्राहक से दाम अधिक गढ़नेके लिये ही? नहीं, यह बात सदा ऐसी नहीं है। कभी-कभी तो अच्छे उद्देश्यसे यह मिलावट की जाती है। यदि रुईमें ऊन मिला दी जाय तो धोनेमें वस्त्र कम सिकुड़ेगा। अतः ऊनी और सूती दोनोंके मेलसे कपड़े बहुत बनाये जाते हैं। पर यह आवश्यक है कि दोनोंकी मिलावट-से बने हुये कपड़े उतने नहीं गरम होंगे जितना शुद्ध ऊन के। पर शुद्ध सूती कपड़ोंकी अपेक्षा तो अधिक गरम रहेंगे। शुद्ध ऊनके कपड़ोंसे सस्ते भी पड़ेंगे, और इसलिये वे निर्धन लोग जो शुद्ध ऊनी वस्त्र नहीं खरीद सकते हैं, इस मिश्रित वस्त्रसे अपना काम चला सकेंगे। पुरानी ऊन सस्ती भी मिल जाती है, फटे पुराने ऊनी कपड़ोंको लेकर फिरसे काता जा सकता है इसमें सूती भाग मिलाकर और कुछ नई ऊन भी मिलाकर सस्ता और उपयोगी कपड़ा तैयार किया जा सकता है। यह तो देखिये कि यदि सब ऊन जितनी संसारमें पैदा होती है बराबर-बराबर सर्द मुल्कोंमें प्रत्येक व्यक्तिको बाँट दी जाय तो प्रतिव्यक्ति केवल ७ छटांक या १४ औंसके लगभग पावेगा। इतनी ऊनमें किसका काम चल सकता है। सर्द देशोंके योग्य एक कोट भी तो नहीं बनेगा। यदि उपज और खपत-की दृष्टिसे दाम निश्चित किया जाय तो ऊन रेशम से भी कहीं तेज़ पड़ेगा। इसी तरह यदि शुद्ध रेशमका ही व्यवहार किया जाय तो यह भी बड़ा तेज़ पड़ेगा, और फिर जो कपड़ा एक बार बन गया, लोग उसमें ही वर्षोंका काम चलावेंगे, और नित्य नई बदलती हुई फैशनोंमें इसका व्यवहार न कर सकेंगे। नकली रेशमने असलीका मूल्य भी सस्ता कर रक्खा है। और इसलिये आज भी रेशमका व्यवहार काफ़ी किया जाता है। बाज़ारमें जब नकली चीज़ें असलीके रूपमें बिकने लगती हैं तो असलीका दाम भी अधिक तेज़ नहीं होने पाता। इसलिये नकली चीज़ोंके कारण असलीका दाम भी बहुत कुछ सस्ता हो जाता है।

अतः मिलावटकी चीज़ोंका बाज़ारमें आना कोई बुरी बात नहीं है। गरीबोंका काम इससे ही निकलता है। और अमीरोंकी फ़ैशनें भी इसके कारण ही शीघ्र बदलती रहती हैं। केवल उचित यह है कि मिलावट-वाली चीज़ मिलावट सूचक दामोंपर और मिलावटके दामोंपर बेची जाय, और शुद्ध वस्त्रके धोखेमें पड़कर भोले-भाले लोग ठगे न जा सकें। जैसी चीज़ हो उसके दाम वैसे रक्खे जायँ। यदि वस्त्रोंपर उसी प्रकारका नियंत्रण हो जैसा किसी-किसी देशमें भोजन सामग्रीपर है तो गाहकको स्वयं सूतकी परीक्षा करनी आवश्यक न होगी और आँख मूँदकर विश्वसनीय वस्त्र खरीद सकेगा।

कितने प्रकारके सूत काममें आते हैं ?

वस्त्रको बनानेके लिये जितने प्रकारके सूतोंका व्यव-हार आजकल किया जाता है उन्हें दो भागोंमें विभक्त कर सकते हैं—

(१) वे सूत जो पशु जगतसे प्राप्त होते हैं जैसे ऊन और रेशम।

(२) वे सूत जो वनस्पतिक जगतमें प्राप्त होते हैं जैसे रुई, सन, लिनेन (फ्लैक्सका सूत) नकली रेशम, केलासिल्क आदि।

खनिज जगतसे प्राप्त पदार्थोंके सूतोंका जैसे एसबे-स्टस आदि भी कभी-कभी व्यवहारमें आते हैं पर कम। इसलिये हम यहाँ उनका विचार न करेंगे। ऊपर जिन सूतोंका उल्लेख किया गया है, उनको लेकर अच्छी तरह देखो। स्वयं ही तुम जान सकोगे

कि उनमें आपसमें क्या भेद है। ये भेद शब्दों द्वारा तुम्हें समझाना इतना आसान नहीं है, जितना स्वयं सूतोंको देखकर तुम्हें पता चल जायगा। सूतोंमें इन बातोंको देखो—रूप रंग कैसा है, छूनेमें ये कैसे लगते हैं, कौन भारी और कौन हलका है, कौन अधिक साफ़ सुथरा है, और उनके मूल्यमें कितना अंतर है। प्रत्येकके असली सूतको लेकर इन सब बातोंका अध्ययन करो, और फिर जिस अज्ञात सूतको तुम्हें पहचानना है उससे तुलना करो। कपड़ेके ताने और बानेमेंसे दोनोंमेंसे एक-एक सूत निकालो। इसकी ऐंठन या मरोड़को छुड़ा लो। तुम्हें मालूम होगा कि बहुधा एक-एक सूतमें कई-कई जोड़ हैं, जो आवश्यकतानुसार भिन्न-भिन्न लम्बाइयोंके लगाये गये हैं। रुईके सूतमें तीन चौथाई इंचसे लेकर २ इंच तकके लम्बे जोड़ होते हैं। यदि इतनेसे और अधिक छोटे धागे लेकर जोड़े जायं तो कपड़ेकी मज़बूती कम हो जायगी, और धोनेपर या प्रयोगमें लानेपर कपड़ा शीघ्र फट जायगा। अच्छा कपड़ा लम्बे धागोंसे बनता है। छोटे धागे कंघियोंसे अलग कर दिये जाते हैं। लिनेनके सूतके धागे और लम्बे होते हैं और इसलिये उनको बटकर जो सूत बनाया जाता है वह रुईके सूतसे अधिक मज़बूत होता है. लिनेनके सूतमें चमक या आभा भी अधिक होती है। ऊनके धागे २ से २० इंचतकके लम्बे होते हैं। छोटे मन्द आभावाले धागे मुलायम ऊनी वस्त्रोंके लिये जिनमें अधिक ऐंठन देनेकी आवश्यकता न हो, काममें आते हैं और आभायुक्त बड़े धागोंसे मज़बूत ऊनी वस्त्र बनाये जाते हैं। रेशमके धागे बहुत ही लम्बे होते हैं, इनमें चमक और लचक भी बहुत होती है। कीड़ेसे काटे गये रेशमी धागेकी लम्बाई १५०० गज़ तक भी होती है। न केवल इन लम्बे धागोंको बटकर ही सूत बनाया जाता है, इनके साथ कोकूनके बाहर और भीतरके टुकड़े और विकृत कोकूनके छोटे टुकड़े भी मिलाकर बट दिये जाते हैं। शुद्ध रेशम होनेपर भी इस प्रकार मिलाकर बटे गये सूतमें वह मज़बूती नहीं होती है जो लम्बे धागोंके बटकर बनाये गये सूतमें होगी। जंगली बे-पालतू कीड़ेके रेशममें भी मज़बूती कम होती है, और इसमें आभा और सफेदी भी अधिक नहीं होती। नकली रेशमके धागे भी बहुत लम्बे होते हैं पर उनमें असली रेशमके समान लचक या मज़बूती नहीं होती, पर उनमें धातुकी भी चमक बहुत होती है।

बहुधा कई प्रकारके धागे लेकर कताई-बुनाई की जाती है। कपड़ेके ताने और बानेमेंसे सूत निकालकर देखो तो तुम्हें इस बातका पता लग जायगा कि कताईमें भिन्न-भिन्न प्रकारके धागे बटे गये हैं या केवल बुनाईमें ही अलग-अलग प्रकारके सूतोंका व्यवहार किया गया है।

जलाकर पहचानना

सूतोंकी पहचान न केवल छूकर या देखकर ही की जाती है, जलाकर भी इस सूतका पता चल सकता है। हर प्रकारका सूत कुछ विशेषताके साथ जलता है। पशु-जगतसे प्राप्त सूत धीरे-धीरे जलते हैं। रेशमकी अपेक्षा ऊन और भी अधिक धीरे जलता है, और जलते समय बुरी जलाँयद आती है। ऊन जलानेपर ऐंठनदार काली चीज़ बच रहेगी पर रेशममें बहुत थोड़ीसी काली राख मिलेगी। यदि रेशममें धात्विक पदार्थ भरत कर दिये गये हों तो राख खाकी या सफेद होगी, और इसमें रेशमके सूतकी ऐंठन भी जलनेपर पूर्ववत बनी हुई मिलेगी।

वनस्पतिक सूत बहुत शीघ्र जलते हैं। नकली रेशम तो और भी अधिक जल्दी जल जाता है। वनस्पतिक सूतोंके जलते समय जलांयद नहींके बराबर ही आती है—नकली रेशम जलाते समय थोड़ीसी दुर्गन्ध अवश्य उठती है और अन्तमें सफेद राख रह जाती है। यदि सूतके साथ ऊन या रेशम मिलाया गया होगा तो जलाँयद अवश्य आयेगी। जलाँयदका होना यह नहीं बताता कि रेशम या ऊनमें रुईका सूत नहीं मिलाया गया है। हाँ, यदि जलायन्द न हो तो यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि रुईके सूतमें ऊन या रेशम नहीं मिलाया गया है।

कास्टिक सोडा से पहचान

यदि यह सन्देह हो कि कपड़ेमें भिन्न भिन्न वस्तुओंके सूतोंकी मिलावट की गई है तो कास्टिक सोडाके घोलमें उबालकर पता लगाया जा सकता है। एक बड़ी चम्मच कास्टिक सोडा लेकर पावभर पानीमें घोलो और इसमें कपड़ेको उबालो. रुई और लिनेनके कपड़े खराब न होंगे, यद्यपि कुछ मुलायम पड़ जायेंगे। यदि लिनेनका पूर्णतः रंग-रहित नहीं कर दिया गया है, तो यह ऐसा करनेपर कुछ पीला पड़ जायगा। ऊन बहुत शीघ्र सोडामें घुलने लगेगा और रेशम कुछ धीरे-धीरे घुलेगा। नकली रेशम घुलेगा तो नहीं पर कुछ सेकंडमें ही लुआबदार हो जायगा। घुलनेकी गति को सावधानीसे देखकर यह भी पता लगाया जासकता है कि रेशम जंगली कीड़ेका है या पालतू कीड़ेका। जंगली कीड़ेका रेशम घुलनेमें उबलते सोडामें आधे घंटेसे लेकर एक घंटेतकका समय लेगा। पालतू कीड़ेका रेशम ५-१० मिनटमें ही घुल जायगा।

पिकरिक ऐसिड से पहचान

पिकरिक ऐसिडके घोलके साथ उबालकर भी सूतकी पहचान की जा सकती है। इस ऐसिडका संपृक्त घोल दवाखानोंसे मिल सकता है। यह पीला और कड़ुआ होता है। ऊन और रेशमपर तो स्थायी रंग आ जाता है, पर रुई, लिनेन या नकली रेशमपर अस्थायी रंग चढ़ेगा जो धो देनेसे दूर हो जायगा। नमकके तेजाबसे भी सच्चे और झूठे रेशमकी पहचान की जासकती है। शुद्ध रेशम इस तेजाबमें एक मिनटमें घुल जावेगा। (पर यदि रेशममें टिन धातुके यौगिक भरत किये हों तो नहीं) । ऐसी अवस्थामें धीरे-धीरे घुलेगा और गरम करनेपर शीघ्रतासे)। नकली रेशम ऐसा करनेपर शीघ्र अदृश्य हो जायगा।

अन्य उपाय

अणुवीक्षण यंत्र (माइक्रोस्कोप) से देखकर धागोंको पहचानना सबसे अधिक विश्वसनीय है। इस यंत्रसे देखनेपर प्रत्येक पदार्थके धागे अपने विशेष रूपमें व्यक्त हो जायेंगे, और पहिचाने जा सकेंगे। लिनेन और रुईके सूतोंमें पहचान करनेका तो एकमात्र यही साधन है, क्योंकि यदि लिनेन बिल्कुल स्वच्छ श्वेत हो तो सोडा या पिकरिक ऐसिडसे यह नहीं पहचाना जा सकेगा। इसके गुण रुईके समान ही प्रतीत होंगे। पर एक उपाय यह है। शुद्ध लिनेन और रुई-के वस्त्रपर एक-एक बूँद पानी या स्याही डालो। अब बूँदको देखो। रुईके कपड़ेपर तो बूँद कुछ सेकंड ठहरी हुई प्रतीत होगी और फिर चारों ओर फैलेगी। पर लिनेनमें यह बूँद तत्क्षण अन्दर बैठ जायगी और अधिक दूरतक नहीं फैलेगी। थोड़ीसी जगहमें ही जम जायगी। यदि कपड़ेमें लिनेन और रुई दोनों मिले हों तो यह प्रयोग सफल न हो सकेगा। शुद्ध लिनेनपर तेल पड़नेपर अर्धपारदर्शकता आ जाती है पर रुईके कपड़ेपर पड़नेसे बिल्कुल पारदर्शकता नहीं आती।

मौसिम-रिपोर्ट

[ले०—श्री रमाशंकर सिंह बी० एस-सी० विशारद]

समाचार-पत्रोंमें प्रायः मौसिमकी रिपोर्ट निकला करती है। अधिकतर पाठक उसे बिना किसी प्रयोजन-की वस्तु समझ उसपर ध्यान नहीं देते ; किन्तु सच पूछिये तो यह बड़ी आवश्यक वस्तु है। कौन नहीं चाहता कि आजका दिन बड़ा अच्छा हो, वर्षा केवल उतनी ही जितनी आवश्यक है, तूफान आदि न आवे। यदि ऐसी बात सभी चाहते हैं तो आश्चर्य है कि लोग इन बातोंकी रिपोर्टसे इस प्रकार उदासीन रहें। विदेशोंमें ऐसी बात नहीं है, वहाँके लोग मौसिम रिपोर्टको समाचारका एक प्रधान अंग समझते हैं और इसका कारण है कि वहाँके लोगोंका साधारण वैज्ञानिक ज्ञान हमसे कहीं अच्छा है, अस्तु रिपोर्ट संबंधी आवे

हुये शब्द वे आसानीसे समझ सकते हैं। भारतवर्षमें यह बात नहीं। बैरोमीटर और थर्मामीटर क्या चीज़ें हैं और उनका दैनिक मौसमसे क्या संबंध है, इसका ज्ञान साधारण जनतामें बहुत थोड़ा है। इस लेखमें इन्हीं सब साधारण और महत्वपूर्ण बातोंके समझानेकी चेष्टा की जायगी। उनके एक बार समझ जानेसे मौसिम-रिपोर्टके प्रति हमारी यह उदासीनता न रह जावेगी, और हम बड़े शौकसे अखबारोंमें उसे पढ़ा करेंगे।

हमारे सामने एक दैनिक पत्र है जिसमें प्रयागकी रिपोर्ट २६ अगस्त सन्, १९३८ के लिये यों दी हुई है।

बैरोमीटर	२९·२९०"
तापक्रम (टेंपरेचर)	८१·७" फ़०
क्लेदता (ह्यूमिडिटी)	८७
वायु—दिशा	पू०
अधिकतम तापक्रम (मैक्सिमम टेम्प०)	८३·०" फ़०
न्यूनतम तापक्रम (मिनिमम टेम्प०)	७७-०" फ़०
औसत टें० (मीन टेम्प)	८०-०" फ़०
साधारण ता० (नार्मल टेम्प)	८३-९ फ़०
वर्षा ...	'११"
टोटल वर्षा १ ली जन० से	३०-०४"
टोटल साधारण वर्षा ...	२९-०८

उपरोक्त सारिणीसे आपको तुरंत ही यहांके उस दिनके मौसमका ज्ञान हो जाय यदि यहां आये हुये भिन्न शब्दोंको आप समझ जायं। हम उन्हें एक २ करके समझेंगे।

बैरोमीटर

यह एक साधारण यंत्र है जिसके द्वारा वायुकी चापका सहज ज्ञान हो सकता है। आप इसे स्वयं तैयार कर सकते हैं। एक शीशेकी मोटी नली लीजिये और उसमें पारा भर कर अपने अंगूठे से बन्द कीजिये और फिर अंगूठेको एक दूसरे पारेके बर्तनमें लेजाकर अंगूठा हटा लीजिये। यदि नलीकी लम्बाई ३० इंचसे अधिक है तो आप पायेंगे कि पारा नलीमें ऊपरी भागतक न रहकर कुछ नीचे उतर आया है। पाराके नीचेवाली सतहसे ऊपरी सतहकी ऊंचाई नाप लीजिये। यही ऊंचाई उपरोक्त सारिणीमें बैरोमीटरके सामने दी हुई है। प्रायः ३० इंचके लगभग यह ऊंचाई होती है, किन्तु ऊंचे स्थानोंपर कम होती जाती है। किसी एक स्थानपर यदि आप नित्य इसकी ऊंचाई नापें तो आप देखेंगे कि इसमें सर्वदा कुछ परिवर्तन हुआ करता है। हवामें नमीके अधिक होनेसे ऊंचाई कम हो जाती है और खुश्की होनेसे अधिक। यदि कभी अचानक इसकी ऊंचाईमें असाधारण परिवर्तन हो जाय तो वहां तूफान आनेका अन्देशा रहता है।

आप चाहें तो बाज़ारसे भी ऐनोरायड बैरोमीटरकी डिबिया खरीद सकते हैं। इसमें आप हर समय एक सुई द्वारा बैरोमीटरकी ऊंचाईका पता लगा सकते हैं।

तापक्रम

इससे हम जान सकते हैं कि वायु-मण्डल कितना गर्म है। तापक्रम-मापक यंत्र (थर्मामिटर) कई प्रकारके होते हैं, जिनमें फर्नहाइट थर्मामीटरका प्रयोग यहांपर किया गया है। इसमें पारा होता है और बर्फमें जब इसे रखते हैं तो पारा नीचे उतरता है तथा खौलते पानीमें रखनेसे ऊपर चढ़ता है। नलीमें रखनेसे ऊपर चढ़ता है। नलीमें इस दूरीको १८० बराबर भागोंमें बांटते हैं और ३२ से लेकर २१२" तक इसे इस प्रकार पढ़ सकते हैं, अर्थात् बर्फमें रखनेपर कहेंगे कि तापक्रम ३२° फ़० है और खौलते पानीका २१२ फ़०। इस यंत्रको यों ही खुले मैदानमें छोड़ रखें तो हवाका तापक्रम हम जान सकेंगे। जाड़ेके दिनोंमें तापक्रम बहुत कम हो जाता है, यहांतक कि कभी-कभी किसी स्थानका तापक्रम ३२° फ़०से भी कम हो जाता है, तब वहां पानी जम जाया करता है और कड़ाकेकी सर्दी पड़ती है। इसके विपरीत गर्मीके दिनोंमें तापक्रम चढ़ जाता है और बड़ा कष्ट होता है। सारिणी द्वारा आप देखेंगे कि, तापक्रम ८७·७° फ़० है जो न तो बहुत अधिक है और न कम, इसलिये साधारण गर्मी होगी।

क्लेदता

गर्मीके दिनोंमें हम जब गीले कपड़े फैला देते हैं तो वे बहुत जल्द सूख जाते हैं, किन्तु बरसातमें कपड़ोंके सूखनेमें बड़ा समय लगता है। क्या आपने कभी विचार किया है ऐसा क्यों होता है ? बात यह है कि हवा भी पानी पीती है, किन्तु इतनी स्वतंत्र नहीं कि जितना पानी चाहे पी ले। इस संबंधमें हमें तापक्रमसे बड़ी सहायता मिलती है। तापक्रमके बढ़नेसे इसकी प्यास बढ़ जाती है और कम हो जानेसे कम। मान लीजिये कि तापक्रम ८७'१ फ० है तो हवामें पानीकी मात्रा भापके रूपमें एक खास परिमाणतक ही हो सकती है। उससे अधिक पानी किसी भी दशामें हवामें नहीं रह सकता। यदि हवामें उतना वाष्प मौजूद है जितना अधिक-से-अधिक इस तापक्रमपर रह सकता है तो हम कहते हैं कि हवा पानीसे संपृक्त है और क्लेदता १०० है। इसके विपरीत यदि भापकी मात्रा केवल उपरोक्त परिमाणकी आधी है तो कहेंगे कि क्लेदता ५० है। सारिणीमें क्लेदता ८७ है, इसका अर्थ यह हुआ कि इस तापक्रमपर यदि १०० इकाई पानीकी आवश्यकता है जो हवाको संपृक्त करदे तो केवल ८७ इकाई वाष्प हवामें मौजूद है। इसका मतलब यह हुआ कि हवामें नमी काफी है और यदि आप अपने गीले कपड़े फैलावें तो हवा उसके पानीको बहुत शीघ्र नहीं पी सकती। जब आदमी कम भूखा रहता है तो भोजन उतना रुचिकर प्रतीत नहीं होता। इसके विपरीत यदि हवामें क्लेदता केवल २० होती जैसा गर्मीके दिनोंमें प्रायः हुआ करती है तो इसकी प्यास बहुत अधिक बढ़ जाती और वह चट कपड़ोंका पानी पी जाती।

वायु-दिशा

इसका ज्ञान तो साधारणतया सभी रखते हैं कि हवाका रुख क्या है किन्तु दैनिक मौसिमपर इसका भी विशेष प्रभाव पड़ता है। उत्तरी भारतमें पछुवा हवा प्रायः सूखक हुआ करती है क्योंकि उसे राजपूतानेकी ओरसे आना पड़ता है किन्तु पुरबसे चलनेवाली हवा नम रहती है और शीतल भी ज्ञात पड़ती है। यदि ऐसी हवा कई दिनोंतक लगातार बहे तो आप वर्षा की आशा करते हैं, क्योंकि यह मानसूनी हवा है और समुद्र का भाप इसमें अधिक मात्रामें मौजूद रहता है। आपने अभी देखा है कि क्लेदता ८७ है और आप सोच सकते हैं कि शायद पछुआ हवा चलती होती तो इतनी आर्द्रता न होती।

सर्वाधिक और न्यूनतम तापक्रम

तापक्रमके बारेमें अभी ऊपर बताया जा चुका है कि इससे हवाके गर्म या सर्द होनेका ज्ञान होता है। कई स्थान तो ऐसे हैं जहाँ दिनको बड़ी गर्मी पड़ती है और रातको बहुत ठंढक रहती है। इससे आप सोच सकेंगे कि तापक्रम वहाँपर बदला करता है। दिनमें क़रीब १२ या १ बजेके तो अधिक-से-अधिक हो जाता है और रातमें फिर कम-से-कम। इसलिये मौसिम जाननेके लिये केवल यही जानना पर्याप्त न होगा कि साधारणतया वहाँका तापक्रम क्या रहा है बल्कि यह भी जानना आवश्यक है कि अधिकसे अधिक और कम-से-कम तापक्रम क्या रहा है। सारिणीमें यह भी दिया हुआ है जिसमें सर्वाधिक तापक्रम ९३'० फ० और न्यूनतम ७७'०" फ० है। इस प्रकार दोनोंका अन्तर १६ फ० का है। इससे पता चलता है कि दिनमें तो गर्मी अधिक हो जाती है किन्तु रातमें काफी पड़ती है। इससे आजके मौसिम-पर क्या प्रभाव पड़ेगा यह सहज में ही अनुमान किया जा सकता है। हवामें क्लेदता पर्याप्त है और यह क्लेदता ८७'१" फ० पर दी गई है। रात्रिमें जब तापक्रम कम हो जाता है तो हवाकी प्यास भी कम हो जाती है और संभव है कि जितना वाष्प हवामें दिनको मौजूद था और हवाके पिपासाकी पूर्ण शान्ति नहीं कर सकता था, अब रातमें उसकी प्यासको बुझानेके पश्चात भी अधिक साबित हो। परिणाम यह होगा कि वाष्प पानी बनकर घासों और पेड़ पौदोंपर ओसकी बूँदों-की शक्लमें देख पड़ेगा। ओस पड़नेके लिये अस्तु यह आवश्यक ठहरा कि न्यूनतम और सर्वाधिक तापक्रम-

में विशेष अन्तर हो और हवामें क्लेदता पर्याप्त परिमाणमें विद्यमान हो।

औसत तापक्रम

यह सर्वाधिक और न्यूनतम तापक्रमका औसत होता है। सर्वाधिक ता० क्र० ९३° फ० और न्यूनतम ८७° फ० है अस्तु औसत (९३ + ८७)/२ = ८५° फ० हुआ। इससे यह पता चलता है कि यदि २४ घंटे तापक्रम बराबर रहे तो वहां तापमापक यन्त्रमें पारा ८५° फ० तक चढ़ा होता। आपको आश्चर्य होगा कि फिर ऊपर जो तापक्रम ८१·७° दिया है उसका अर्थ क्या! ८१·७० फ० वह तापक्रम है जो सायेमें १० बजे दिनके लगभग लिया गया है। इसके विपरीत न्यूनतम और सर्वाधिक तापक्रम खुले मैदानमें लिये गये हैं।

साधारण तापक्रम

सारिणीसे प्रतीत होगा कि साधारण तापक्रम ८३·९° फ० जो औसत तापक्रमसे कहीं अधिक है। साधारण तापक्रम कई वर्षों को उसी दिन लिये गये तापक्रमोंका औसत है। औसत तापक्रमसे पता चलता है कि इस समय जितनी गर्मी यहाँ पड़नी चाहिये उससे बहुत कम है इससे आप सोच सकते हैं कि वर्षा उस स्थानपर या आस-पास अवश्य हुई होगी जिसकी वजहसे इन दोनों तापक्रमोंमें इतना अन्तर देख पड़ता है।

वर्षा

वर्षाका प्रमाण इंचोंमें दिया जाता है। हम प्रायः सुना करते हैं कि चेरापूँजी आदि स्थानोंमें इतने इंच पानी पड़ता है। इसके मापके लिये भी एक यंत्र होता है जिसे रेन-गेज अर्थात् वर्षा-मापक कहते हैं। यह एक बेलनाकार बर्तन होता है जिसे खुले मैदानमें सीधा रख देते हैं। २४ घंटेमें जितनी वर्षा होती है उसकी ऊँचाई नाप लेते हैं। प्रायः इसमें इंचोंके निशान बने रहते हैं और जितनी दूरतक पानी चढ़ा होता है उसकी ऊँचाई पढ़ लेते है। पहली जनवरीसे ३०·१४″ वर्षा हुई है और साधारणतया २९·०८ तक अन्य वर्षोंका औसत है। इसका अर्थ हुआ कि इस वर्ष पानी अधिक पड़ा है।

अब आप सारिणीमें दिये गये सभी पारिभाषिक शब्दोंको जान गये। अखबारोंमें कई शहरोंकी रिपोर्ट साथ २ देते हैं जिससे आप उनके मौसिमकी तुलना सहजमें कर सकते हैं। इन्हीं रोज़-रोज़की मौसिमों-से मिलकर ऋतु बनती है। प्रायः दूसरे दिनके मौसिम संबंधी बातोंको भी पहले ही से लोग भांपते हैं और यह इन्हीं अंकोंपर निर्भर है। हवाकी दिशा, क्लेदता और तापक्रम तथा वायु-चाप इन्हीं तीन-चार बातोंसे हम अगले दिनके मौसमके बारेमें अपनी कुछ धारणा बना सकते हैं। यह चारों वस्तुयें एक दूसरेसे संबंधित हैं, अर्थात् यदि एकमें परिवर्तन हो तो अन्य बातोंमें भी परिवर्तन हुआ करता है। मान लीजिये कि वायु-चाप बहुत कम है तो इस स्थानसे जहां वायु-चाप अधिक है हवा चलेगी। हवा यदि समुद्रकी ओरसे आ रही है तो अधिक नम होगी और तापक्रम कम रहेगा। परिणाम स्वरूप क्लेदता बढ़ेगी।

अस्तु, इन सब बातोंका ज्ञान हमारे लिये बहुत आवश्यक है।

ऊपरी वायुमंडल

[ले० श्री कल्याण बख्श माथुर एम० एस-सी०]

जिस विज्ञान-शास्त्रमें वायुमंडल और इसकी गति आदिके विषयका वर्णन होता है उसे अंतरिक्ष-विज्ञान कहते हैं। अभी यह शास्त्र बच्चा ही कहा जा सकता है। आजकल वे वैज्ञानिक जो इस विषयपर खोज कर रहे हैं अधिकतर भिन्न-भिन्न स्थानोंपर, दिनके भिन्न-भिन्न समयपर, तथा तमाम वर्षके लिये तापक्रम, दबाव

और आर्द्रताके परिणमनका निर्दिष्ट संग्रह करते हैं परन्तु पृथ्वीकी सतहके सब जगह समान न होनेके कारण ये निर्दिष्ट इतने जटिल होगये हैं कि इनसे यह एक साधारण नियम निकालना कि इन सबका स्थान तथा समयके साथ किस तरहसे परिणमन होता है, बहुत कठिन है इसी लिये कुछ लोगोंने सोचा कि यदि हम पृथ्वीसे ४, ५ मील ऊपर वायुमंडलके लिये ऐसा निर्दिष्ट संग्रह करें तो काफी सुविधा हो। और इस तरहसे ऊपरी वायुमंडलकी खोज करनेका विचार वैज्ञानिकोंको आया।

ऊपरी वायुमंडलकी खोज प्रायः चालीस वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुई। शुरू-शुरूमें अधिकतर गुब्बारे ही इस काममें लाये जाते थे। इनमें हाईड्रोजन गैस भरा रहता था और इनके साथ तापक्रम, दाब, आर्द्रता इत्यादिके लेख करनेके लिये एक आत्मचालित अनुलेखक-यंत्र रहता था। इन्हींकी सहायतासे बोर्टके टीज़रयो और असमनने यह मालूम किया कि जैसे जैसे हम पृथ्वीकी सतहसे ऊपर जाते हैं तापक्रम ५० सेन्टीग्रेड प्रतिकिलोमीटरके हिसाबसे कम होता जाता है, परन्तु लगभग १२ कि० मी०की ऊँचाईपर पहुँचनेके बाद तापक्रम स्थिर हो जाता है।

अधोमंडल

वायुमंडलके इस भागको जो पृथ्वीकी सतहसे १२ कि० मी० तक है अधोमंडल कहते हैं। यही भाग हवा, तूफान, गर्जन, बिजली आदिका स्थान है। इसी भागमें वायवीय आदि पैदा होते हैं जो ग्राहक के तारोच्चारकमें भड़भड़ाहटकी आवाज़ पैदा करके, दूरके प्रदेशसे आनेवाले सुरीले गानोंके सुननेमें विघ्न डालते हैं। इस भाग में जो बिजलीके मेघ होते हैं उनके तीव्र विद्युत क्षेत्रके कारण वायुमंडलके आयनी करणमें काफी परिवर्तनहो जाता है।

ऊर्ध्वमंडल

ट्रापास्फीयरके ऊपरके भागको ऊर्ध्वमंडल कहते हैं। जहां पर अधोमंडल और ऊर्ध्वमंडल मिलते हैं उसे मध्यस्तर कहते हैं। ऊर्ध्वमंडल लगभग ३० कि० मी० की ऊँचाईतक माना जाता है यहांपर तापक्रम स्थिर रहता है तथा इसमें ऊपर नीचे बहन धारायें नहीं चलती हैं इस भागका रेडियो–तरंगोंपर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता और इसकी खोजके लिये मामूली गुब्बारोंके अलावा ऐसे गुब्बारे भी भेजे गये हैं जिनमें आदमी गये हैं और इस कामके अग्रणी बेल्जियमके सुप्रसिद्ध प्रोफेसर पिकार्ड थे।

ओषोणमंडल

हाल ही में स्टेटासफीयरके ऊपर एक नये भागकी खोज हुई है जिसे ओषोणमंडल कहते हैं। इसके अन्दर ओज़ोन है जिसके कारण २५०० अं० से लेकर तमाम नीललोहितोत्तर किरणें पृथ्वीतक नहीं पहुँचने पाती और इन्हीं किरणोंके शोषणके कारण शायद ओषोणकी उत्पत्ति होती है। यह ५० कि० मी० की ऊँचाईतक फैला हुआ है। यद्यपि अभीतक यह ठीक-ठीक नहीं मालूम होने पाया है कि यह कैसे बनता है परन्तु इसमें कोई संदेह नहीं है कि इसके कारण पृथ्वीका जलवायुपर काफी प्रभाव पड़ता है क्योंकि ये सूर्यकी नीललोहितोत्तर किरणोंको शोषण कर लेता है जिसमें बहुत गरमी होती है।

यवनमंडल

गुब्बारोंकी सहायतासे वायुमंडलकी खोज ३० ४० कि० मी० की ऊँचाईसे ज़्यादा दूरतक न की जासकी। ज़्यादा ऊँचाईकी खोजके लिये वैज्ञानिकोंको रेडियो तरंगोंकी शरण लेना पड़ता है जब मारकोनी सन् १९०१में कार्नवालसे न्यूफाउन्डलैन्डको रेडियोके संकेत भेजनेमें सफल हो गया तो इसने तमाम वैज्ञानिकोंको बड़े चक्करमें डाल दिया था। वे सोचने लगे कि पृथ्वीकी सतहके टेढ़ी होनेपर भी ये रेडियो तरंगें इतनी दूर कैसे पहुँच सकीं। सन १९०२ में केनेली और हैवीसाइडने करीब-करीब साथ-साथ ही इस प्रश्नको हल किया। उन्होंने सोचा कि ऊपरी वायुमंडलमें करीब १०० कि० मी० की ऊँचाईपर एक ऐसी चालक-सतह है कि जिसमें बहुतसे ऋणाणु हैं और जिससे यह रेडियो तरंगें ऐसे ही परावर्तित हो जाती

है जैसे कि दर्पणसे मामूली रोशनी हो जाती है। इस केनेली-हेवीसाइड सतहकी सचाई सन् १९२२ में प्रयोग द्वारा सिद्ध कर दी गई। परन्तु रेडियो तरंगोंकी सहायतासे अब यह भी सिद्ध कर दिया गया है कि ऊपरी वायुमंडलमें एलक्ट्रानोंकी ऐसी एक ही सतह नहीं है बल्कि और भी बहुतसी हैं जिनमें मुख्य दो हैं एक तो ई—सतह जोकि १०० कि० मी० की ऊँचाईपर है और दूसरी फ-सतह जोकि २५० कि० मी० की ऊँचाई पर है। इनके अलावा दिनके किसी विशेष समयमें और भी सतहें पैदा हो जाती हैं जिनमें से ई₂—सतह, ई-सतहके ऊपर तथा फ₂—सतहसे ज़रा ऊपर होती है। इन कुल सतहोंको अणुमंडल कहते हैं। इस अणुमंडलके अतिरिक्त वायुमंडलमें कई और जगह भी ऐसी अणुयुक्त सतहें पैदा हो जाती हैं जिनमें अणुमंडलके नीचे ड-सतह तथा स-सतह हैं और अणुमंडलके उपर ज-सतह है। ड-सतहकी ऊँचाई लगभग ५०-६० कि० मी० है और इसकी खोज कलकत्तेके प्रोफेसर मित्रने की। स-सतहकी ऊँचाई लगभग २५-३० कि० मी० के है और इसकी खोज वाटसनवाटने की तथा ज-सतहकी ऊँचाई लगभग ६०० कि० मी० है और इसकी खोज मिमनोने की। आजकल योरप तथा अमेरीकामें इन सतहोंपर बहुत-सी विद्वत्तापूर्ण गवेषणायें हो रही हैं। हिन्दुस्थानमें भी इनपर कलकत्ते और इलाहाबादमें काम हो रहा है। इन सतहोंका ज्ञान रेडियो तरंगोंके गमनके लिये बहुत कामका है और आशा की जाती है कि अन्तमें यह अंतरिक्ष-विज्ञानके कामका भी सिद्ध होगा।

शब्दोद्गम निर्धारण

शब्द तरंगें भी ऊपरी वायुमंडलकी खोजके काममें लाई गई हैं। महायुद्धके समय ऐसा देखा गया कि जो तोपें बेलजियममें छोड़ी जाती थीं उनकी आवाज़ इंगलिशचैनेल और डोवरमें तो सुनाई नहीं देती थी परन्तु वह इंगलैन्डके भीतरी भागोंमें साफ-साफ सुनाई देती थी इससे। वैज्ञानिक इस नतीजेपर पहुँचे कि यह आवाज जो बहुत दूरपर सुनाई देती है पृथ्वीकी सतहके बराबर-बराबर चलकर नहीं आती बल्कि यह वायुमंडलकी ऊपरी सतहोंसे परावर्त्तित होकर आती है। विहपुलके मतानुसार ऊपरी सतहोंसे शब्द तरंगोंका परावर्तन तभी संभव है जब ऊपर जाकर उनके वेगमें वृद्धि हो जाये और यह तभी हो सकता है जबकि या तो ऊपरी सतहोंमें तापक्रमकी वृद्धि हो या कण परमाणुओंमें विभाजित हो जावे। अभी इन सिद्धान्तोंकी ओर खोज करनेकी आवश्यकता है।

उल्कायें

हम प्रायः आकाशमें तारोंको टूटते हुये देखते हैं। ये पत्थरके बड़े-बड़े टुकड़े हैं जो आकाशमें चक्कर लगाते रहते हैं और पृथ्वीके वायुमंडलमें पृथ्वीके गुरुत्वाकर्षणसे अधिक वेगवान हो जाते हैं उस समय इनका वेग लगभग २० या ३० कि० मी० प्रति सेकेंड होता है। इनके इतने अधिक वेगके कारण वायुके घर्षण से यह इतने अधिक गरम हो जाते हैं कि यह चमकने लगते हैं अतः हम इन्हें देख सकते हैं। इन्हें हम उल्का कहते हैं। इन उल्काओंके पथ तथा वर्णपट से हम यह निकाल सकते हैं कि वायुमंडलकी ऊपरी सतहोंका क्या घनत्व है। लिंडेमन और डाबसनने उल्काओंके पथोंकी जांचसे यह मालूम किया है कि ऊपरी वायुमंडलका घनत्व इतना अधिक है कि हमें ऊपरी सतहोंका तापक्रम २५० सेन्टीग्रेडके लगभग मानना पड़ेगा। अभी इस विषयमें और ज्यादा खोज की आवश्यकता है।

ज्योतियां

यह बात सबको विदित है कि ध्रुवोंके निकट छः मास लगातार रात तथा छः मास लगातार दिन होता है। वहांपर रातमें बिल्कुल अंधकार नहीं रहता बल्कि कभी-कभी पीली या नारंगी-रंगकी दीप्यमान ज्योतियां दृष्टिगोचर होती हैं। उत्तरी ध्रुवकी ज्योतियोंको सुमेरु ज्योति तथा दक्षिणी ध्रुवकी ज्योतियोंको कुमेरु ज्योति कहते हैं। अब यह पूरी तरहसे प्रमाणित कर दिया गया है कि उनकी उत्पत्ति इलक्ट्रानोंके ऊपरी वायु-मंडलसे टकरानेसे होती है। और यह ज्योतियां

अधिकतर ध्रुवोंके निकट दिखाई देती हैं। इसका कारण यह है कि पृथ्वीके चुम्बकत्वके कारण इलेक्ट्रान धारायें ध्रुवोंकी तरफ ही संग्रह हो जाती हैं। इन ज्योतियोंके वर्णपटकी जांचसे यह मालूम हुआ है कि वायुमंडलकी इन सतहोंमें नोषजन अणु, एकधा आयनित नोषजन अणु तथा ओषजनके परमाणु हैं परन्तु यहांपर अणु नहीं हैं।

रातमें आकाशका वर्णपट

उन भागोंमें भी जोकि ध्रुवोंसे बहुत दूर हैं ऐसा देखा गया है कि बिलकुल अँधेरी रातमें भी आकाशमें पूर्ण अन्धकार नहीं होता बल्कि उसमें कुछ चमक होती है। ऐसी रातमें आकाशका वर्णपट लेनेपर उसमें ओषजनकी प्रसिद्ध हरी रेखा और नोषजन परमाणुओंकी रेखायें मिलती हैं परन्तु आयनित नोषजनकी रेखायें नहीं मिलतीं। इससे प्रगट है कि लगभग किo मीo की ऊँचाई पर वायुमंडलकी ऊपरी सतह किसी कारणसे जिसका अभी तक ठीक २ पता नहीं चला है, दीप्त हो जाती है।

विश्व रश्मियाँ

हमारा यह ऊपरी वायुमंडल का संक्षेप वर्णन अधूरा ही रह जायगा यदि हम विश्व-रश्मियोंके विषयमें कुछ नहीं लिखेंगे। इस शताब्दीके प्रारंभमें कई वैज्ञानिकोंने मालूम किया कि बहुत होशियारीके साथ रखे हुए पृथक्कारक विद्युन्मापकमें भी कुछ समय बाद आवेश नहीं ठहरता। हेसने सन् १९१२ में बताया कि यह एक नई किरणोंके कारण होता है जोकि आकाशकी तरफसे आती हैं। इसकी पुष्टि रेगनर तथा अन्य वैज्ञानिकोंने गुब्बारोंके प्रयोगों द्वारा की और उन्होंने यह भी बतलाया कि २० किo मीo ऊँचाईपर इन विश्व रश्मियों की तीक्ष्णता पृथ्वीकी सतहपरसे १५० गुनी ज्यादा है। अभी तक यह नहीं मालूम हो पाया है कि इनकी उत्पत्ति कहाँसे होती है। कुछ वैज्ञानिक इनको गाढ़ गामा किरण बताते हैं तथा कुछ इन्हें बहुतसे चलते हुये, अल्फा कण, इलेक्ट्रन, प्रोटोन तथा पाज़िट्रन बताते हैं।

इस छोटेसे लेखसे यह साफ विदित है कि वायुमंडलमें बहुत सी अनोखी बातें भरी हुई हैं और इनकी गहरी खोजकी आवश्यकता है जिससे अन्तरिक्षविज्ञानकी बल्कि भौतिक विज्ञानकी भी काफी वृद्धि होगी।

"विश्व निर्माण तथा सापेक्ष्यवाद"

[लेo श्री ब्रजशंकर दुबे, एमo एo]

इस अनन्त विश्वको समग्र रूपसे समझनेकी चेष्टा मनुष्य अनन्तकालसे करता आरहा है। किन्तु उसको कितना समझ सका है, यह भी इसी बातसे स्पष्ट है कि इस विश्वका क्या वास्तविक रूप है उसका भी कोई ठीक निर्धारण नहीं है। अधिकतर लोग ऐसी कल्पना करते हैं कि यह विश्व सीमित है तथा गोलाकार है। आइन्सटाइनके अर्वाचीन प्रयोगों द्वारा यह जाना गया है कि यह विश्व प्रतिक्षण एक भीषण गतिसे अपनेको विस्तारित कर रहा है। किन्तु इस विस्तारका कहाँ अन्त होगा यह सब ऐसे प्रश्न हैं कि जिनका उत्तर अब तक नहीं मिला और न मिलनेकी कोई अभी विशेष आशा दिखाई दे रही है।

इस आधुनिक युगका सबसे उत्कृष्ट दार्शनिक वैज्ञानिक आइन्सटाइन है। उसने उपर्युक्त प्रश्नोंका उत्तर देने का प्रयास किया है। उसने अपने सापेक्ष्यवादके सिद्धान्तोंसे संसारके सामने एक नवीन समस्या उपस्थित कर दी है। इस विश्वकी अनेक रहस्यमयी गुत्थियोंके सुलझानेमें आइन्सटाइनका सापेक्ष्यवाद एक रूपसे कुछ अंशोंमें कारगर होता है।

न्यूटन ने इस बातका अनुभव किया था कि बिना एक सर्वव्यापी, निश्चल, सर्वगत, अक्षुण्ण ईथरकी कल्पनाके यह असम्भव है कि आकाशमें किसी भी पिण्डकी गतिका पता लग सके। प्रायः २०० वर्षसे इस ईथरकी जानकारीके लिये इसके गुणोंका पूर्ण रूपसे

विकास करनेके लिये अनेक प्रयत्न किये गये। और लोगों ने अपनी कल्पनानुसार इस ईथरको उन सभी गुणोंसे विभूषित किया जिनसे कि उपनिषद्कार ईश्वर-को विभूषित करते हैं। किन्तु अब एकाएक आइन्स्टाइनने अपने सापेक्ष्यवादके सिद्धान्तके एक ही धक्केसे ईथरका जो सर्व श्रेष्ठ गुण निश्चलता माना जाता था उसका खण्डन कर दिया।

ज्योतिशास्त्रके विशेषज्ञोंको आजतक कोई ऐसा ग्रह पिण्ड नहीं मिला जो कि सर्वथा निश्चल हो। यह देखा गया है कि यदि एक पिण्ड एक दूसरे पिण्डके लिये स्थिर है तो वही किसी और पिण्डकी अपेक्षा गति मान है। इस कारणसे निश्चलता तथा चंचलता एक दूसरेके लिये सापेक्ष्य हैं। इस ईथरको ही निश्चल मानकर आजतक सभी ग्रहपिण्डोंकी गति वेध की जाती थी। अनेक प्रयोग किये गये और यह देखा गया कि चाहे हम ईथरको एक भीषण गतिसे प्रवाहित मानकर कोई प्रयोग करें अथवा सर्वथा निश्चल मान कर प्रयोग करें। उस प्रयोगका सारांश तथा असर सदा एक ही होता है। अतः यह सिद्ध हो जाता है कि प्रकृतिका कुछ ऐसा विचित्र निर्माण है कि किसी भी पिण्डका सर्वथा निरपेक्ष गति-वेध करना नितान्त असम्भव है, इस बातकी घोषणा आइन्स्टाइनने १९०५ ई०में की। यह सापेक्ष्यवादका पहला सिद्धान्त था कि जिसके कारण आधुनिक वैज्ञानिक जगतमें हलचल मच गयी। इस मतके अनुसार यदि हम चाहें तो विश्वास कर सकते हैं कि यह हमारा कमरा सर्वथा निश्चल है। प्रकृति आपको ऐसा माननेसे रोकती नहीं है। यदि हमारी पृथ्वी १००० मील फी से०की गतिसे ईथरके समुद्रमें प्रवाहित हो रही है तो हम विश्वास कर सकते हैं कि ईथर इस कमरेमेंसे १००० मील फी० से०की गतिसे प्रवाहित हो रहा है जिस प्रकारसे कि हवा एक पेड़के झुरमुटमेंसे प्रवाहित होती है। सापेक्ष्यवादके सिद्धान्तके अनुसार इस कमरेमेंकी सभी वस्तुओंपर ईथरकी इस १००० मील प्रति सैकण्डकी गतिका कुछ भी असर न होगा और यहां-तक कि यदि ईथरकी १००,००० मील प्रतिसैकन्ड-की भी गति हो जाय तो भी हमारे कमरेकी वस्तुओं-पर कोई असर नहीं पड़ेगा क्योंकि यह प्रयोग द्वारा देखा गया है कि यदि हम ईथरको प्रवाहित मानकर प्रयोग करते हैं तो भी उत्तर वही है जो कि हम उसे अप्रवाहित मानकर पाते हैं।

आश्चर्यकी बात तो यह है कि विद्युत तरंगे जो कि ईथरके ही कारणसे प्रवाहित होती है, वायु जोकि ईथरके ही स्पंदनसे प्रवाहित होती है, ईथरकी निजी गति अथवा निजी स्थिरतासे सर्वथा निरपेक्ष हैं। यदि ईथर हजारों मील फी से०की गतिसे प्रवाहित हो रहा है तो भी तरंगोंकी गति वही है और यदि निश्चल है तो भी वही है।

अतः हमारे सम्मुख स्वाभाविकतया यह प्रश्न उपस्थित होता है कि ईथरकी यथार्थमें कोई सत्ता है अथवा यह केवल हमारी कल्पना है। आज दिन यह देखा जाता है कि वैज्ञानिक लोग इसी ईथरकी सत्ताको मानकर अनेक प्रकारके आविष्कारोंकी आयोजना की है। उनके ईथर सम्बन्धी काल्पनिक विचार सदैव ठीक उतरे हैं। ईथरके ही माध्यम द्वारा स्पंदन होता है। ईथर द्वारा ही शब्दकी तरंगे एक देशसे दूसरे देशमें भेजी जा रही हैं। इतना सब होते हुए भी यह एक अत्यन्त आश्चर्यकी बात है कि इस ईथरके ही बारेमें प्रामाणिक रूपसे कुछ नहीं मालूम है। हम इसके बारेमें केवल कल्पना कर सकते हैं। केवल इतना कह सकते हैं कि यह 'है' और कुछ नहीं। ईश्वरके विषयमें भी तो उपनिषद्कार केवल इतना ही कहते हैं "अस्ति इति मात्र" है और जान पड़ता है और कुछ नहीं।

माइकलसन मोर्लेके प्रयोग

माइकलसन मोर्लेने ईथरके समुद्रमें पृथ्वीकी गतिका पता लगानेके लिये प्रयोग किये किन्तु उन प्रयोगोंका कोई सुन्दर परिणाम नहीं निकला। इनके प्रयोगका सिद्धान्त यह था कि यदि कोई आदमी नदी-के उतारपर चले तो उसे कम समय लगेगा, बनिस्बत चढ़ावपर चलनेके। फर्ज़ किया जाय कि कोई आदमी १०० मील उतारपर आता है और १०० मील चढ़ाव-

पर जाता है तो यह देखा गया है कि यदि कोई आदमी उसी नदीके आरपार २०० मील जाय तो उसके पहलेवाले आदमीकी अपेक्षा कम समय लगेगा। असलमें बात यह होती है कि उतार परसे आनेमें जो सहायता नदीके वेगसे होती है वह चढ़ाव-पर चलनेके समयकी रुकावटसे जो हानि होती है उसे पूरा नहीं कर सकती। और जो इन दोनों आदमियोंके २०० मीलकी दूरीको पूरा करनेके समयका अन्तर होता है वह नदीके प्रवाहकी गतिको देता है।

इस सिद्धान्तपर माइकलसन ने पृथ्वीको जहाज माना जो कि ईथरके समुद्रमें तैर रहा है और क्लीव-लैण्डके विश्वविद्यालयको इन्होंने मध्य बिन्दु माना। यह एक साधारण बात है कि यदि जहाज़ समुद्रमें चल रहा है तो उसकी गतिका हमें पता लगाना हो तो हम अगर एक बड़ा-सा गोला समुद्रके जलमें फेंकें। हम यह जानते हैं कि जिस बिन्दुपर गोला गिरेगा वह तो स्थिर रहेगा किन्तु उस जगहकी तरंगें जहाज़-की गतिके कारण हमारी ओर आगे बढ़ेंगी। यदि हम उन लहरोंकी गतिका निरीक्षण करें तो हमें जहाज़की गतिका पता लग जायगा।

अब तक गोला गिरानेकी जगहपर माइकलसन मोर्ले ने एक प्रकाशकी किरणको फेंका और यह माना गया कि यह प्रकाशकी किरण ईथरमें तरंगें उत्पन्न करेगी। इन तरंगोंके प्रवाहका अध्ययन करनेके लिये दर्पण लगाये गये जोकि प्रकाशकी किरणोंको पुनः उनके उद्गम स्थानकी ओर फेंक देते थे। इस प्रकार-से माइकलसन मोर्ले प्रकाशकी एक किरणके एक निर्धारित दूरी आने और जानेमें कितना समय लगता है उसे देख सकते थे। यदि पृथ्वी ईथरमें स्थिर रूपसे खड़ी है तो प्रकाश किरणोंके जाने और आनेका समय सदैव एक रहेगा चाहे हम किरणको किसी भी दिशामें क्यों न फेंके। लेकिन अगर हमारी पृथ्वी एक ईथरके समुद्रमें पूर्वकी दिशाकी ओर चल रही है तो यह नदी-वाली ही जैसी बात है। पूर्वसे पश्चिम और पश्चिमसे पूर्व आने और जानेका समय विशेष होगा बनिस्बत उस समयके जो कि उतनी ही दूर उत्तरसे दक्षिण तथा दक्षिणसे उत्तर आने और जानेमें लगेगा। माइकलसन मोर्लेने यही सोचा था कि प्रकाशकी दोनों किरणें पूर्वसे पश्चिम और पश्चिमसे पूर्व लौटनेवाली तथा उत्तरसे दक्षिण और दक्षिणसे उत्तर आनेवाली किरणोंके समयका अन्तर पृथ्वीकी ईथरके समुद्रमें चलनेकी गतिको बतावेगा। यह प्रयोग कई बार किया किन्तु किसी प्रकारका अन्तर दोनों दिशाओंमें आने जानेवाली किरणोंके समयमें न पड़ा। सदा ही समय एक ही आया। इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि पृथ्वी-की गति ईथरके समुद्रमें शून्य है। किन्तु यह एक ऐसी बात है जिसे मान लेना असम्भव है। हम जानते हैं कि पृथ्वी एक भीषण गतिसे सूर्यके चारों ओर परिभ्रमण कर रही है। यदि हम मान लें कि पृथ्वी स्थिर है तो कोपार्निकससे बहुत दिन पहले यह बात कही थी कि पृथ्वी स्थिर है और अनेक ग्रह पिण्ड इसके चारों ओर चक्कर काट रहे हैं। इस मतका खण्डन अनेक प्रकारसे वैज्ञानिक लोग कर चुके हैं। इन सब बातोंसे यही ज्ञात पड़ता है कि प्रकृतिकी शक्तियाँ आपसमें इस प्रकार एक दूसरेसे सम्बन्धित हैं कि उनको विच्छिन्न कर ईथरके गुणोंका उद्घाटन करना सर्वथा असम्भव है। स्वयम् प्रकृति ईथरके गुणों-को इस प्रकार छिपाये है कि आजतक वैज्ञानिक लोग उसका पर्दा फाश न कर पाये।

(क्रमशः)

पुराने दस्तावेजी कागज़ और जालसाज़ी

[ले०—डा० उमाशंकर प्रसाद, एम० बी०, बी० एस०]

ठगी और जालसाज़ी तो प्रायः सभी व्यवसायोंमें होती है। जालसाज़ी छिपानेके लिये लोगोंको बहुत बुद्धिमानी और हिकमत करना पड़ती है। सभी जानते हैं कि दस्तावेज़ और पुराने ज़रूरी कागजात जिनपर

वसीयत लिखी रहती है या शर्तें रहती हैं या कचहरीकी दूसरी आवश्यक बातें लिखी रहती हैं, बहुत ही कीमती चीजें हैं। इन कीमती कागजोंमें बहुत जालसाजी होती है। इस काममें इस बातकी बड़ी आवश्यकता पड़ती है कि नये कागजको ऐसा रूप दिया जाय कि देखनेसे यह मालूम होने लगे कि १०० वर्ष, ५०० वर्ष या आवश्यकतानुसार इतने वर्ष पुराना है। यह बहुत मुश्किल काम है परन्तु जालसाजोंके पास इस कामके लिये उपाय हैं। लोग पहलेसे ही बहुत पुराने कागज नहीं रख सकते हैं। क्योंकि विशेष कागजके मेलके लिये किस मोटाई, चिकनापन या खुरदरापन आदिके कागजकी आवश्यकता होगी, यह कोई १०० या २०० वर्ष पहलेसे अनुमान नहीं कर सकता है। नये कागजको कृत्रिम रूपसे पुराने कागजकी भाँति बनानेके लिये कई उपाय हैं लेकिन विशेषज्ञोंकी निगाहोंसे भी बचकर निकल जाने योग्य पुराना बनाना बहुत मुश्किल होता है।

पुराना कागज

नये कागजको बनावटी पुराना बनानेके उपायको जाननेके पहले यह समझना आवश्यक है कि जब कागज स्वाभाविक रूपसे पुराना होता है तो प्रकृतिका क्या असर पड़ता है और कागजमें क्या अंतर पड़ जाता है। सभी जानते हैं कि कागज रखे-रखे पीला होने लगता है और उसका असली रंग उड़ने लगता है। हवा और रोशनीके असरसे कागज जितना ही पुराना होता जायगा उतना ही रंग उड़नेकी बात कागजकी तहमें अधिक गहराईतक घुसता जायगा। किसी पुरानी किताबके खोलनेसे यही स्पष्ट हो जायगा कि पन्नेमें किनारेपरका रंग सबसे अधिक उड़ गया रहता है क्योंकि रोशनी और हवा यहीं सबसे अधिक असर करती हैं और जितनाही किताबके भीतर देखते हैं, धीरे-धीरे यह बात कम होती जाती है। यदि किताब बहुत पुरानी हो तो यदि पन्नोंके बीचका भाग खोला न गया हो कि हवा और रोशनी उस भागपर लगे तब भी वहाँका रंग उड़ गया रहेगा और वह बिल्कुल सफेद न रहेगी इस बातको ध्यान रखना आवश्यक है कि रंगका उड़ना सर्वदा बाहरकी ओरसे आरम्भ होता है।

ऊपरके अनुसार असली पुराने कागज जो किताबकी भाँति नहीं रहते बल्कि खुले और बिखरे रहते हैं, समयके अनुसार मटमैले होने लगते हैं। परन्तु साधारणतः एक पन्ना कागज या कई एक पन्ने एक साथ नत्थी किये हुये फैलाकर बहुत सालतक नहीं रक्खे जाते हैं। ऐसे कागजात प्रायः मोड़कर या गोल लपेटकर ही रक्खे जाते हैं। ऐसे कागजोंमें जहाँ हवा बहुत अधिक लगेगी वह भाग सबसे अधिक मटमैला होगा। यही बात बिना लिपटे कागजके लिये भी लागू होगी।

नकली पुराना कागज कैसे बने ?

बनावटी पुराने कागज तैयार करनेके कई उपाय हैं। कुछ लोग चायके पानीका प्रयोग करते हैं और इस हालतमें विशेषकर जब नया कागज इसमें डुबाया जाता है तो रंग या स्याहीके साथही कागजमें ऐंठन भी आ जाती है। कहींपर कहवा, तम्बाकू या पोटैसियम परमैंगनेटका हल्का घोल काममें लाया जाता है। कहीं-कहीं गोबर और उपला जलाकर उसके धुएँसे कागजका रंग बदला जाता है। कोई भी उपाय किया जाय परंतु असली पुराने कागजके समान नये कागजको रंग देना असंभवके समान है।

चाहे किसी घोलको काममें लाओ, कागजपर जो रंग चढ़ेगा वह बराबर एक तरहका न होगा बल्कि चितकबरा होगा। यह भी न हो सकेगा कि बाहर किनारेपर सबसे अधिक मटमैलापन हो और धीरे-धीरे बीचकी तरफ कम होता जाय; कोई भाग अधिक गाढ़ा हो जायगा और कोई हल्का; कोई भाग बिल्कुल सफेद ही रह जायगा क्योंकि वहाँ रंग न चढ़ पायेगा। यदि मटमैला बनानेके लिये धूल काममें लायी जाय तो धूलके कण खुर्दबीनमें तुरन्त ज्ञात हो जायेंगे और लकड़ीका बुरादा, या उपलेका ये भी अच्छी तरह पकड़में आजायेंगे।

कभी-कभी कागजको पुराने बनानेके लिये भाँथीको गरम लोहेकी दुर्गीका प्रयोग किया जाता है जिससे कागजका ऊपरी भाग जलकर मटमैले रंगका हो जाता है। लेकिन इस प्रयोगमें असुविधा यह है कि कागजकी दोनों पीठ बराबर नहीं रंगी जा सकती हैं या यदि कागज पतला हुआ और एक ही सतहपर लोहा लगाया गया तो बदरंग बढ़कर दूसरी ओर भी पहुँच जायगा। यदि लोहा हर भागमें बराबर न लगा तो कहीं रंग अधिक गहरा होगा और कहीं हलका।

कागज तथा रोशनाईकी लिखावटको बहुत पुराना बनानेके लिये अल्ट्रा-वायलेट रश्मिमें उस कागजको कुछ समयतक रक्खा जाता है। यदि ४८ घंटेतक इस रोशनीमें कागज रख दिया जाय तो नया सफेद कागज बिल्कुल मटमैला होगा और कमज़ोर हो जायगा और बहुत पुराने कागजकी भाँति ऐंठनेसे टूट जायगा। साथ ही उसपर लिखे अंशकी रोशनाई इस प्रकार उड़ जायगी कि पढ़ा न जा सकेगा जैसा पुराने कागजोंमें हो जाता है। परन्तु सौभाग्यसे अल्ट्रावायलेट रश्मिका साधन विरले ही जालसाजके पास होगा।

कभी-कभी जालसाज लोग सचमुचका पुराना कागज ढूँढ़ लेते हैं लेकिन इस पुराने कागजको अपने मतलबके कामके योग्य बनानेकी आवश्यकता तब भी पड़ती है।

एक बात यहाँ और बतलाने योग्य है। किसी कागजपर लिख लेनेके बाद उस कागजको मोड़कर यदि तह कर दिया जाय और यदि पहलेसे ही मुड़े हुये कागजपर लिखा जाय तो तुरन्त मालूम हो जायगा कि लिखावट मुड़े कागजपर लिखी गयी थी या लिखनेके बाद कागज मोड़ा गया था। इन दोनों बातोंमें जो अंतर पड़ता है उससे बहुत जालसाजोंकी करतूतें खुल जाती हैं। जब कागजपर लिखा जाता है और स्याही सूख जाती है तो स्याहीकी तह बराबरसे कागज-पर बनी रहती है जिसे सूक्ष्मदर्शीसे आसानीसे देखा जा सकता है। ऐसे कागजको मोड़नेपर मोड़नेके स्थानों-पर कागजके रेशोंके साथ सतहकी स्याहीकी सतह भी टूट जाती है। पर यदि पहले ही से मुड़े हुये कागजपर लिखा जाता है तो मुड़े भागपर स्याहीकी तह नहीं टूटती।

कभी-कभी जालसाज अपनी चालाकीकी प्रखरतासे स्वयं शिकार बन जाता है। उदाहरणार्थ कुछ कागजोंकी गड्डी बहुत पुरानी थी क्योंकि कुछ भागोंको दीमकोंने चाटकर छेद कर दिये थे। बारीकीसे जाँच करनेपर साफ पता लग गया कि कागजको रंगकर बहुत खूबीके साथ पुराना बनाया गया था लेकिन सुंभी (पंच) से छेद करके दीमक चाटनेकी क्रियाकी नकल ने सब भेद खोल दिया था। दीमक द्वारा किये छेद ऊपर बड़े आकारके होते हैं और जितना ही गहरे जाये वह छेद छोटे होते जाते हैं। छेदका किनारा चिकना और सीधा नहीं बल्कि बहुत बारीक दाँतेदार होता है और साथ ही टेढ़ा मेढ़ा होता है। इस कागजमें दीमकके छेद सुंभीसे किये गये थे जो न तो दाँतेदार ही थे; न ऊपर चौड़े और भीतर सकरे तथा सीधी रेखामें थे।

कागज़ कई पदार्थोंसे बनाये जाते हैं जैसे पुराना कपड़ा, बाँस, तरह-तरहके घास इत्यादि। यदि कागज-के टुकड़ोंको सूक्ष्मदर्शीसे देखा जाय तो कागज़के रेशोंसे उनकी जातिका पता तुरन्त लग जायगा। अल्ट्रावायलेट किरणों द्वारा भी कागजकी जाँच पहचानमें बड़ी मदद मिलती है। भिन्न-भिन्न पदार्थोंसे बनाये गये कागज़को अल्ट्रावायलेट किरणोंमें रखनेसे पृथक् रंग उत्पन्न होंगे। शुद्ध कपासके बने कागजसे ऐसी रोशनी सफेद ज्योति निकलेगी और यदि लिननसे बनी होगी तो नीली ज्योति। यदि लकड़ीका रासायनिक बुरादा मिला होगा तो ज्योतिमें भूरापन होगा और जितना ही अधिक लकड़ीके बुरादेका अंश होगा उतना ही गाढ़ा भूरापन मिलेगा जो लकड़ीका बुरादा बारीक पीसा रहता है उससे बना कागज ऐसी रोशनीमें काला दिखलाई देगा।

कभी-कभी अल्ट्रावायलेट किरणोंसे कुछ पता नहीं चलेगा और तब फोटो उतारनेके प्लेटों द्वारा बड़ी सहायता मिलेगी क्योंकि जिन किरणोंको हमारी आँखें नहीं पहचान या देख सकती हैं वही अदृश्य किरणें प्लेटके ऊपर भिन्न-भिन्न असर दिखाती हैं।

बहुत कागज़ोंपर 'वाटर-मार्क' भी कागज बनाते समय दबाकर लगाया जाता है। झूठे वाटर-मार्क बनानेके लिये रंगका भी प्रयोग होता है। सफ़ेदा अल्ट्रावायलेट किरणमें पीला हो जाता है अथवा लेड-कार्बनेट भूरा या मोम सफ़ेद रंग देता है।

कभी-कभी कागज़की फाइलसे एक पेज बदलकर उसके स्थानपर दूसरा जाली पेज रक्खा जाता है। इसमें बड़ी भूल हो जाती है। कागज़की मोटाई, खुरदरा या चिकनापन तथा वाटर-मार्कमें भी भूल हो सकती है।

कागज़की मोटाई नापनेके लिये माइक्रोमीटरका प्रयोग किया जाता है जिससे इंचका १/१०,००० भागतक ठीक-ठीक नापा जा सकता है। ०·०००९" से लेकर ०·००७ इंचतक मोटे कागज होते हैं। साधारण टिशूपेपरकी मोटाई ०·००१४ होती है। हल्के कागजकी मोटाई ०·००२१" होती है और विज़िटिंग कार्ड ०·०१८२" मोटे होते हैं। साधारण कागज़ोंकी ही करीब ३० जातियाँ होती हैं।

कुछ लोगोंने ऐसे कागज और स्याही बनानेके भी प्रयत्न किये हैं जिनपर एक बार एक समय लिखनेके बाद पुनः यदि बादमें उसी कागज़पर लिखा जाय तो तुरंत ज्ञात हो जाय। इनका नाम सेफटी पेपर और सेफटी इंक रक्खा है। परन्तु अभीतक कुछ लाभ न हो सका है। यदि लिखते समय आदमी इस बातका ध्यान रक्खे कि प्रत्येक शब्द आदिमें ऐसा अंतर ही न रहे कि बीचमें, या बादमें, अन्य शब्द या अक्षर लगाये जा सकें तो जालसाजोंको सरलतासे सफलता न मिलेगी।

यदि वाटर-मार्क कागज़पर उभड़े हुये बनाये जायें जो आप ही दिखलाई दें तो भी जालसाजी कम हो जाय। बही आदि तथा रोकड़की कापियोंमें पेंसिल-से लिखकर मिटाकर उसी स्थानपर बादमें स्याहीसे लिखनेकी प्रथा भी बहुत बुरी है। गलतियोंको रोशनाईसे काटकर उसके बगलमें जो शुद्धि हो लिखनी चाहिये। इस प्रकार हिसाबमें बेईमानी नहीं होगी।

फ़सल गन्नाके तनोंमें छेद करनेवाला कीड़ा

चूंकि गन्नोंकी जड़ों और ऊपरकी पत्तियोंके तनोंमें छेद करनेवाले कीड़ोंसे फ़स्लको इतनी अधिक हानि हो रही है। इसलिये इस बातको रखते हुये एन्टो-मालोजिस्ट साहब बहादुर मुज़फ्फ़रनगरके जो कि कीड़ों और बीमारियोंकी मालूमात करनेके लिये यहां पर नियत है उन्होंने निम्नलिखित सूचना सर्व साधारणकी विदित करनेके लिये जारी की है। उसमें संक्षिप्त रूपमें यह प्रकट किया है कि यह बीमारी किस क़दर अधिक फैलती है और सालके किस मौसममें इससे अधिक हानि होती है उसको काबूमें रखनेके लिये कौन कौनसे साधन लाभदायक हो सकते हैं।

इस बीमारीमें जानकारीका अनुभव अभी जारी है और बहुत सम्भव है कि अगले वर्षमें कुछ विशेष मालूमात जारी की जायें। इस कीड़ेके जीवनमें कुछ ऐसी कमज़ोर बातें हैं जिनमेंसे पहली बात यह है कि यह कीड़ा जाड़ेकी ऋतुमें गन्नेकी फ़स्लमें सुस्त पड़ा रहता है इस कारण-से उस समय इसको नष्ट करनेका सबसे अच्छा अव-सर होता है।

(अ) कुछ ऐसे कारण जिनसे कि इस कीड़ेसे हानिका सिलसिला जारी रहता है।

(१) गन्नेकी फ़स्लकी कटाईमें देरी—इस प्रान्तमें अप्रैल मासके अन्ततक गन्नेकी कटाई जारी रहती है जिसका परिणाम यह होता है कि जाड़ा ख़तम होनेपर ये कीड़े जो गन्नोंकी फ़स्लमें अचेत सोये रहते हैं वे घोंघीसे तितलीकी शक्लमें बदलकर

गन्नेमें छेदकर बाहर निकल आते हैं और इसके पश्चात यह अपने अंडे दे देते हैं।

(२) कटाईके समय गन्नेकी फ़स्लको पूर्ण रूपसे खेतसे अलग न करना—खेतोंमें गन्नेके बहुतसे खराब टुकड़े और पत्तियां यों ही छोड़ दी जाती हैं जिसके कारण इनमें गन्ने तनोंमें छेद करनेवाले कीड़ोंको जगह मिल जाती है और पीछेसे बढ़ जाते हैं।

(३) फसलके कटाईके पश्चातकी हालत—फ़स्ल गन्नाकी कटाईके पश्चात साधारण रीतिसे खेतोंकी जुताई नहीं की जाती है इसलिये ठूंठ यानी जड़ें हरी हो जाती हैं और आगे कीड़ोंके लिये खुराक पैदा करती हैं। कुछ स्थानोंपर खेतोंकी जुताई की जाती है परन्तु ठूंठ अलग नहीं किये जाते और रबीकी फ़स्लकी बुवाई तक खेत ही में पड़े रहते हैं इन ठूंठोंमें विशेषकर जड़को छेद करनेवाले कीड़े मौजूद रहते हैं।

(४) गन्नोंकी फ़स्लकी पेड़ी रखनेका रिवाज -पेड़ी रखना भी इन कीड़ोंको एक सालसे दूसरे साल जारी रखनेमें काफ़ी सहायता पहुँचाता है।

(ब) गन्नेकी फ़स्लमें छेद करनेवाले
कीड़ोंसे सबसे अधिक हानि होनेका समय

(१) कीड़ेके लगनेके समयकी जाँच करनेसे यह ज्ञात होता है कि (कंसुए) गन्नेके अगोलोंमें छेद करनेवाले कीड़ोंने गन्नेकी फ़स्लपर पूरा अधिकार कर लिया है। इससे अगस्त मासमें १८ फ़ीसदीसे सितम्बर मासतक ६० फ़ी सदी हानि होती है।

गन्नेके तनोंमें छेद करनेवाले कीड़ोंसे सबसे अधिक हानि अर्थात २० प्रतिशततक जनमें होती है। वर्षा आरम्भ होनेपर इससे हानिमें कमी होती जाती है। जड़में छेद करनेवाले कीड़े अगस्त मासमें अधिक हानि पहुँचाते हैं (लगभग १२ प्रतिशततक हानि होती है)।

(स) इन कीड़ोंके जीवनमें कमज़ोरीकी
कुछ हालतें

(१) गन्नेकी फ़स्लमें कीड़ोंका जाड़ेके दिनोंमें अचेत दशामें पड़ा रहना।

(२) अण्डोंका गुल्लोंकी दशामें खेतमें खुले पड़ा रहना।

(३) नई २ सूँड़ियोंका अंडोंसे निकलकर खुली दशामें बाहर पड़ा रहना। कंसुएकी सूँड़ी बीचवाली नर्म पत्तियोंको कुछ समयतक खाती रहती है और तना व जड़ोंमें छेद करनेवाले कीड़ोंकी सूँड़ी भूमिके धरातलपर नये पौधोंकी जड़ोंको कुतरती है। इससे यह पता चलता है कि इन सूँड़ियोंके कुछ समय तक बाहर रहनेके कारण इनको दवा किसी अन्य यंत्रों द्वारा नष्ट करनेका अवसर मिल सकता है और निम्नलिखित तीनों बातोंको:—

(१) इन कीड़ोंके नस्लका साल बसाल जारी रहना।

(२) अधिकसे अधिक इनके कामका वक्त।

(३) इनके जीवनमें कमज़ोरीकी कुछ हालतें।

ध्यानमें रखकर इन कीड़ोंसे बचनेके उपाय
नीचे दिये जाते हैं:—

(१) फ़स्लकी शीघ्र कटाई।

(२) कटाईके बाद खेतको पूर्ण रीतिसे साफ़ रखना यानी सूखी सूखी पत्तियां और पुरानी जड़ें (ठूंठ) इत्यादि खेतसे शीघ्र निकालकर गन्ना बोये जाने वाले अथवा बोये हुए खेतसे बहुत दूरीपर रखना चाहिये। इन ठूंठोंको आगे कम्पोस्ट खाद (पांस) बनानेके काममें ला सकते हैं।

(३) पेड़ी न रखना।

(४) इन कीड़ोंसे रोगसे रहित बीज बोना।

(५) गन्नोंके खेतके निकट उस प्रकारके पौधे जिनपर ये कीड़े लगते हैं उनको नष्टकर देना चाहिये और खेतके पास नहीं उगने देना चाहिये।

(६) अंडोंको हाथसे चुनकर हटा देना चाहिये।

(७) इन कीड़ोंको भुरकोंसे मार डालना चाहिये।

(८) वो पौधे जो इन कीड़ोंके कारण मर चुके हैं उनको खेतसे हटा देना चाहिए। अनुभवसे यह

मालूम होता है कि वह कल्ला जिस एक बारगी इस कीड़ेका असर पहुँच चुका है मुश्किलसे ही बढ़कर गन्ना बढ़कर हो पाता है। इसलिये गुड़ाई करते समय किसानोंको चाहिये कि ऐसे पौधोंको जिनका बीचका कल्ला सूख गया हो होशियारीसे खेतसे दूरकर देवें।

(९) बीचकी यानी अंगोलेकी सूखी हुई पत्तीको दबाकर खींचनेसे कीड़ा मरी हुई हालतमें बाहर अंगोले के साथमें निकल आयेगा। परन्तु अक्सर नहीं भी निकलता है। इसलिये एक लंबा तार ले कर इन छेदोंमें डालकर कीड़ोंको भीतर ही मार डालना चाहिये। उस हालतमें बीचके सूखे कल्लेके निकालनेसे जो पौधेमें छेद हो जाते हैं उसमें एक लोहेका मोटा तार या सूजा डालकर कीड़ोंको पौधेके अन्दर कुचल कर मार डालना चाहिये।

इत्र और सुगन्ध

[उत्तरार्ध]

[ले० श्रीमती कमला सद्गोपाल बी० ए०, हिन्दुस्थान ऐरोमेटिक्स, काशी]

यदि वैज्ञानिक अनुसंधान द्वारा उन सब पदार्थों को बना लिया जावे जो कि प्राकृतिक द्रव्योंमें पाये जाते हैं और यदि इन पदार्थोंकी रचनात्मक परिभाषाका पता रासायनिक विश्लेषण द्वारा कर लिया जावे तो फिर कृत्रिम साधनों द्वारा प्राकृतिक सौगन्धिक द्रव्योंकी नक़ल करना कठिन नहीं है। वर्तमान वैज्ञानिक प्रगति ने इस बातको बहुत सुगमता और सस्तेपनसे हल करके दिखा दिया है। इस विषयकी अधिक गूढ़ जिज्ञासा न करते हुये ऐसे नमूनेके नुसखे नीचे दिये जाते हैं जिनसे कई प्रकारके आवश्यक सुगन्धोंका निर्माण किया जा सकता है।

(१) साबुन के सुगन्ध

(क) बादामः—

बेन्ज़ाल्डीहाइड	२५	भाग
लिनेलो ऑयल	५	”
एनिथोल	५	”
मिथिल ऐन्थ्रेनीलेट	५	”
वेनिलीन	२	”
टरपीनियोल	२५	”
खस	३	”
पानड़ी	२	”
लवंग तैल	३	”
बेन्ज़िल अलकोहल	२५	”
	१००	”

(ख) अम्बरः—

चन्दन तैल	२०	भाग
खस	५	”
पानड़ी	३	”
जिरेनियम ऑयल	५	”
मुश्क ज़ायलोल	५	”
मुश्क अम्बर (४८)	३०	”
कुमेरिन	२	”
वेनिलीन	५	”
लेब्डेनम रेज़िनॉइड	१०	”
अम्बर ऑयल	१५	”
	१००	”

(ग) जेसमिनः—

लिनेलो ऑयल	२०	भाग
बेन्ज़िल ऐसिटेट	३०	”
बेला गोड्बोले	५	”
फिनिल इथिल अलकोहल	५	”
मिथिल ऐन्थ्रेनिलेट	५	”

कनैंगा ऑयल ४ ,,
टरपीनियॉल २५ ,,
एमिल सिनेमिक एल्डिहाइड ६ ,,

१००

(घ) लेवेण्डर:—

लेवेण्डर ऑयल ५२ १० भाग
लेवेण्डर ऑयल (४८) ५० ,,
पानड़ी ५ ,,
चन्दन तैल ५ ,,
मुश्क एम्ब्रेटा क्रिस्टल १० ,,
स्पाईक लेवेण्डर २ ,,
रोज़मेरी ३ ,,
टरपीनियॉल २० ,,

१०० ,,

(च) गुलाब :—

रोज़ (४८) ५० भाग
जिरेनियॉल १५ ,,
रोडिनॉल २० ,,
सिट्रोनेलॉल १० ,,
रोडिनॉल ५ ,,

१०० ,,

(छ) चन्दन :—

चन्दन तैल ३० भाग
सन्दल टरपीन १५ ,,
लवंग तैल ५ ,,
रोडिनॉल रोज़ १० ,,
रोज़ (४८) २५ ,,
पानड़ी २ ,,
कनैंगा ऑयल ३ ,,
मुश्क एम्ब्रेटा क्रिस्टल १० ,,

१०० ,,

(ज) खस:—

रूह खस भाग ३०
मालाबार खस २० ,,
वेटिवर्ट रेज़िनोइड १० ,,
खस (४८) १० ,,
अबालिन ५ ,,
नियोण्टाइन २५ ,,

१०० ,,

(झ) हिना:—

इत्र हिना (सां) ३० भाग
मुश्क अम्बर (४८) २० ,,
सन्दल रेज़िनोइड १० ,,
ओक मॉस ,, ५ ,,
नियोण्टाइन २५ ,,

१०० ,,

(ट) बेला :—

बेला गांधबोले १० भाग
बेला (४८) २५ ,,
जैस्मिनिल एसिटेट (बी) २५ ,,
इत्र बेला (पू) ५ ,,
इण्डोल १० ५ ,,
लिनेलॉल ऑयल ५ ,,
टरपीनियॉल २५ ,,

१०० ,,

(ठ कपड़े धोनेके साबुनका सुगन्ध:—

पामारोसा ऑयल ३० भाग
सिट्रोनिला ऑयल २५ ,,
जिरेनियॉल रेज़िनोइड १५ ,,
टरपीनियॉल २० ,,
बेंज़ाइल एसिटेट १० ,,

१०० ,,

(ड) हजामतके साबुनका सुगन्ध:—

लेवेण्डर (४८) ३५ भाग
रोज़ (४८) २५ ,,
चन्दन तैल ५ ,,

बेञ्जोइन रेज़िनोइड	५ ”
जिरेनियम रेज़िनॉइड	५ ”
लेवेण्डर ऑयल ३६	१० ”
टरपीनियोल	१५ ”
	१०० ”

(२) शिरके तैलों, पोमेड, ब्रीलियण्टाइन इत्यादि के सुगन्ध।

(क) गुलाबः—

रोज़ (४८)	५० भाग
जिरेनियॉल रोज़	१० ”
रोडिनोल रोज़	[illegible] ”
रोज़िनॉल	३ ”
नियेण्टाइन	३० ”
	१०० ”

(ख) जेसमिनः—

जेसमिन (४८)	६० भाग
केनैंगा ऑयल	५ ”
औरेञ्ज ऑयल स्वीट	१० ”
जेसमिनिल एसिटेट (जे)	१० ”
नियेण्टाइन	१५ ”
	१०० ”

(ग) बेलाः—

बेला गोडबोले	२५ भाग
बेला (४८)	३५ ”
बेञ्जिल एसिटेट	१० ”
बिटर औरेञ्ज ऑयल	५ ”
केनैंगा ऑयल	५ ”
नियेण्टाइन	२० ”
	१०० ”

(घ) चमेलीः—

चमेली (४८)	५० भाग
इत्र चमेली (ए)	५ ”
जेसमिन (४८)	१५ ”
केनैंगा ऑयल	५ ”
एमिलसिनेमिक एल्डीहाइड	५ ”
नियेण्टाइन	२० ”
	१०० ”

(च) रजनि-गन्धाः—

आइडियल फ्लावर परफ्यूम	७५ भाग
बेला गोडबोले	५ ”
बकुल (४८)	७ ”
निरोली (४८)	३ ”
पेटिट ग्रेन ऑयल	१० ”
	१०० ”

(३) दन्तमञ्जन, टूथपेस्ट, गारगल इत्यादि के सुगन्ध।

मेनथॉल	५ भाग
थायमॉल	१ ”
यूजिनॉल	३ ”
एनिथॉल	१ ”
यूकिप्टोल	१० ”
वेनिलिन	२ ”
रोज़ (४८)	१३ ”
पिपरमेंट ऑयल	४५ ”
नियेण्टाइन	२० ”
	१०० ”

(४) मुखराग, क्रीम, और स्नो इत्यादि के सुगन्ध।

(क) रोडिनॉल रोज़	२५ भाग
लिनेलॉल	५ ”
सेण्टलॉल रोज़	३५ ”
रोज़िनॉल	५ ”
इत्र गुलाब (ए)	३ ”
पचौलीयोल	२ ”
रोज़ (४८)	२५ ”
	१०० ”

(ख) केवड़ा ऑयल टर्पिनलेस	३०	भाग
रोज़ (४८)	५५	,,
चन्दन तैल	१०	,,
इलांग- इलांग ऑयल	५	,,
	१००	,,

(ग) बर्गेमोट ऑयल	१०	भाग
आयोनोन आल्फा	२०	,,
इरिस १०%	१०	,,
रोज़ (४८)	६०	,,
	१००	,,

रूमालोंके सुगन्ध

(क) एक्ज़ांशिया (एस)	५०	भाग
गन्धराज	२०	,,
वार्डिया १०%	३०	,,
	१००	,,

(ख) वायोलेट (एस)	४०	भाग
मिथिल आयोनोन	५	,,
रोज़ (एस)	२०	,,
वार्डिया १०%	५	,,
वायोलेट कन्क्रीट १०%	३०	,,
	१००	,,

(६) पिये जाने वाले तम्बाकू, सिगरेट और बीड़ी इत्यादिके सुगन्ध

(क) सिगार परफ्यूमः—

युजिनोल	३	भाग
कुमेरिन	२	,,
चन्दन तैल	२	,,
रोज़ (एस टी)	३	,,
कैसकिरेला ऑयल	२	,,
वेनिला एक्सट्रैक्ट १०%	१०	,,
बोर्डोका शराब	५	,,
स्पिरिट	६०	,,
सिडरोल	३	,,
जिरेनियम ऑयल	५	,,
पानड़ी	५	,,
	१००	,,

(ख) वर्जिनिया सिगरेट परफ्यूमः—

कुमेरिन	७	भाग
यूजिनोल	२	,,
रोज़ (एस टी)	६	,,
लेवेण्डर ऑयल ५२%	५	,,
बर्गेमोट ऑयल	३	,,
कैसकिरेला ,,	४	,,
जिरेनियम ,,	३	,,
पानड़ी (४८)	२	,,
खस (४८)	३	,,
स्वीट ऑरेंज ऑयल	१०	,,
इरिस टिंक्चर	१०	,,
वेनिला एसेंस	१०	,,
इत्र बेला (एस)	३	,,
टोनका बीन टिंक्चर	१२	,,
	१००	,,

(ग) बीड़ीका सुगन्धः

इत्र हिना (सी)	२५	भाग
केवड़ा ऑयल १००%	४५	,,
वेटिवर्ट रेज़िनॉयड	१०	,,
वेनिला सॉल	५	,,
मुश्क अम्बर (४८)	१०	,,
ओकमॉस एक्सट्रैक्ट १०%	५	,,
	१००	,,

(७) फलों और खाद्यपदार्थोंके सुगन्ध

(क) सेवका सुगन्धः—

एमिल वेलरियेनेट	३०	भाग
एसिट आल्डीहायड	१०	,,
इथिल नायट्राइट	४	,,
इथिल ऐसिटेट	२०	,,
वेनिला सॉल	१०	,,

इथिल मेलोनेट	६	”
यूनिवरसल सौलवेण्ट	२०	”
	१००	”

(ख) केलेका सुगन्धः—

एमिल एसिटेट	३०	भाग
वेनिला सोल	१०	”
एमिल ब्यूटिरेट	१०	”
बेन्ज़िल प्रोप्योनेट	५	”
इथिल ब्यूटिरेट	१२	”
यूनिवरसल सौलवेण्ट	१५	”
	१००	”

(ग) अनन्नासका सुगन्धः—

एमिल ब्यूटिरेट	४०	भाग
इथिल ”	२५	”
” एसिटेट	५	”
वेनिला सोल	५	”
लेमन सोल	५	”
प्रोपिल वेलरियनेट	१०	”
यूनिवरसल सौलवेण्ट	१०	”
	१००	”

(घ) केवड़ाका सुगन्धः—

केवड़ा ऑयल टर्पिनलेस	१०	भाग
केवड़ा ऐबसोल्यूट	५	”
केवड़ा (एस टी)	१०	”
यूनिवरसल सौलवेण्ट	७५	”
	१००	”

(ङ) गुलाबका सुगन्ध :

रोज़ (एस टी)	१५	भाग
इत्र गुलाब (ए)	५	”
वार्डिया १०	५	”
यूनिवरसल सौलवेण्ट	७५	”
	१००	”

(८) अगर बत्ती इत्यादिके सुगन्ध

(क) चन्दनः—

चन्दन तैल	२०	भाग
सेण्डल रेज़िनोयड	२५	”
” टरपीन	१०	”
नियेण्टाइन	४५	”
	१००	”

(ख) गुलाबः—

रोज़ (४८)	२५	भाग
रोज़ (एस टी)	१०	”
रोज़ रेजिनोयड	१५	”
नियेण्टाइन	५०	”
	१००	”

(ग) अम्बरः—

इत्र हिना (सी)	१५	भाग
मुश्क अम्बर (४८)	१५	”
हिना रेज़िनोयड	१०	”
अम्बर ऑयल	१५	”
नियेण्टाइन	४५	”
	१००	”

(घ) केवड़ाः—

केवड़ा (एस टी)	१५	भाग
केवड़ा ऑयल	१०	”
केवड़ा रेज़िनोयड	१५	”
नियेण्टाइन	६०	”
	१००	”

(९) लेवण्डर वाटरका सुगन्ध

लेवेण्डर ऑयल ५२%	१०	भाग
निरोली ऑयल	½	”
बर्गेमोट ऑयल	½	”
स्वीट ओरेञ्ज ऑयल	२	”
लेवेण्डर फिक्सोल	३	”

इरिस १०%	१	,,
एम्बर	२	,,
वेनिला सोल	[illegible]	,,
मुश्क एक्सट्रैक्ट १०%	[illegible]	,,
एलकोहल ९०	८०	,,
	१००	,,

(१०) यूडिकोलोनका सुगन्ध

बर्गेमोट ऑयल	२	भाग
लेमन ऑयल	५	,,
स्वीट औरेञ्ज ऑयल	३	,,
लैवेण्डर ऑयल ५२	[illegible]	,,
इरिस रूट पिसा हुआ	२	,,
गुलाब जल	१०	,,
एलकोहल ९०	४०	,,
बेन्ज़ोइन रेज़िनॉयड	[illegible]	,,
	६३	,,

चौबीस घंटा तक इस मिश्रणका निष्कर्षण करके फिर वाष्पीकरण किया जावे। पचास भाग खिंच जाने पर उसमें ½ भाग शुद्ध निरोली ऑयल ½ भाग रोज़मेरी ऑयल। चालीस भाग अलकोहल ९० औरेञ्ज फ्लॉवर वाटर दश भाग मिलाकर एक महीनाके बाद काममें लाया जावे।

इसी प्रकारसे सुरती, जर्दा और नाना प्रकारके अन्य पदार्थोंके लिये कृत्रिम सुगन्धोंका निर्माण किया जा सकता है। ऊपर दिये गये नुसखोंसे यह पता चलेगा कि सौगन्धिक द्रव्योंका उपयोग कितने विस्तृत रूपमें हो रहा है। शरीरके प्रत्येक भागके अंगराग, खाने वाले पदार्थ, मिठाई, पीनेके जल, शर्बत, शराब तम्बाकू, सुरती, जर्दा, सिगरेट, बीड़ी, औषध और अन्य सभी प्रकारके पदार्थोंमें सौगन्धिक द्रव्योंका उपयोग इतनी अधिक मात्रामें किया जा रहा है कि इसके बिना इन पदार्थोंका बेचा जाना असम्भव सा है। जो लोग सौगन्धिक द्रव्योंका उपयोग केवल ऐश्वर्य सम्पादनकी दृष्टिसे ही समझते हैं वे सरासर भूलपर हैं। तुलसी इत्यादि सौगन्धिक द्रव्योंका तैल अपनी अद्वितीय चिकित्सोपयोगी और औषध गोचर गुणोंसे रोग निवारणमें अनुपम पदार्थ माने गये हैं। पाश्चात्य देशोंमें तो अब दस्ताने, मोज़े, रूमाल, और पर्स इत्यादि भी सुगन्धित रूपमें बेचे जा रहे हैं। हिन्दुस्तान कभी सुगन्धशास्त्रमें सारे संसारका अग्रणी रहा है। यदि शिक्षित नवयुवक इस ओर फिरसे ध्यान दें तो इस शास्त्र की शीघ्र उन्नति से एक बड़े भारी औद्योगिक व्यापारकी नींव डाली जा सकती है।

उत्तर-पूर्वी भारतमें बाढ़की समस्या

[ले० श्री सुरेशशरण अग्रवाल]

इस वर्षकी भयंकर बाढ़

संयुक्त प्रान्तके पूर्वी जिले, बिहार, उड़ीसा और बंगालमें बाढ़ प्रायः आया करती है। अत्यधिक हानि उड़ीसाके प्रान्तको पहुँचती है और प्रत्येक वर्ष वहाँ धन-जनकी महामारी होती है। अतएव महात्मा गांधी ने गत वर्ष कहा था कि यदि उड़ीसाकी आधुनिक मिनिस्ट्री (कांग्रेस) इस प्रान्तकी बाढ़ समस्याका समुचित हल कर दे तो वह उसकी प्रान्तको, एवं देशको एक महान देन होगी। परन्तु इस बार बाढ़का प्रकोप और भी ज्यादा हुआ, विशेषकर बिहार व संयुक्तप्रान्तमें। यदि आप पटनासे प्रयाग तक रेलमें यात्रा करें तो राह भर जलही जल दिखाई देगा, दूरको वृक्ष भी दृष्टिगोचर होंगे। जहां स्टेशन मिलेंगे वहां नंगे, भूखे, और व्याकुल स्त्री, पुरुषों तथा बालकोंका समूह होगा। इस यात्रामें ऐसा मालूम होगा मानो आप जहाजमें बैठकर समुद्र पर जा रहे

हैं। परन्तु संयुक्त प्रांतमें गत ५० वर्षसे ऐसी भीषण बाढ़ न आई थी। बलिया, आज़मगढ़, गोरखपुर, बस्ती, खेरी, गोंडा और बहराइचके सम्पूर्ण ज़िले जल-युक्त हो गये हैं। वास्तवमें यह कहना कठिन है कि किन ज़िलोंमें बाढ़ नहीं आई है। गंगा, घाघरा, गंडक, सरजू, तापती, सोण, रोहिणी आदि नदियोंमें पानी बहुत बढ़ आया है जिसके कारण सैकड़ों गाँव बह गये हैं और जगह जगह रेल व सड़कके मार्ग बन्द हो गये। इन स्थानों पर अधिकांश जन-संख्या गाँववालोंकी थी जैसा बाबू शिवप्रसाद गुप्त ने बनारस विश्वविद्यालयमें बतलाया था। उपर्युक्त ज़िलों की जन-संख्या निम्न लिखित है।

ज़िला	जन-संख्या	नगरोंमें
बलिया	९, १३, ०००	१८, ०००
आज़मगढ़	१५, ००, ०००	१८, ०००
गोरखपुर	३५, ००, ०००	७४, ०००
बस्ती	२०, ००, ०००	२२, ०००
खेरी	९, ००, ०००	१७, ०००
गोंडा	१, ५०, ०००	१, ७०,०००
बहराइच	१, १०, ०००	३३, ०००

इससे प्रतीत होता है कि अधिक जन-संख्या ग्राम-निवासी है और उन्हींको बाढ़से पीड़ा विशेष कर उठानी पड़ी है। जब निवासियोंकी ऐसी दुर्दशा होगी, तो वहाँके गाय-बैल आदि पशुओंका क्या हाल हुआ होगा? खरीफकी सारी फसल बेकार हो गई है और अन्नदाता किसानके पास रबीके लिये बीज भी नहीं है और उपजमें ८ माह लग जायेंगे। बाढ़ पीड़ितोंकी सहायतार्थ अब हमारे गवर्नमेण्ट व अनेक संस्थायोंके कर्मचारी पहुँच गये हैं और कार्य कर रहे हैं। इस समय तो उनका कष्ट निवारण हो जायगा परन्तु भावीका डर न छूट सकेगा। अतएव आवश्यकता है कि इस समस्याका वैज्ञानिक अनुसंधानकर इस रोगकी जड़ ही काट दी जाये। इन बाढ़ोंके ही कारण हमारे ग्रामोंमें मलेरिया जैसी बीमारियाँ फैल जाती हैं और इस सीधे-सादे विनीत व नम्र कृषकको दुःख देती हैं।

अमेरीकाका उदाहरण

बाढ़ तो संसारके अन्य देशोंमें भी आती हैं। जापान व अमेरीकामें बाढ़ या भूकम्प साधारणसी बातें हो गई हैं। इसका कारण केवल यही है कि वहाँके राज्य व लोगों ने इन प्रश्नों पर पूर्ण रूपसे विचार किया है और वे अपने देशकी नदियों आदिसे भली भाँति परिचित हैं। जहां बाढ़की सम्भावना होती है वहां विशेष रूपसे उसको रोकनेका प्रबन्ध किया जाता है। मिस्सीसिपी नदीमें प्रति ६ वर्षमें बाढ़ आया करती है जिससे बहुत हानि होती है। एक बार २५०,००० लोगोंकी मृत्यु हुई, २०,००० बे घर-बारके हो गये, और इस बाढ़के कारण २७, ०००,००० डालरकी सम्पत्ति, ३५,०००,००० के फल, ५००,०००के खेती-प्रदेश और १६,०००००० की व्यापारिक रोकसे हानियाँ हुईं यानी कुल मिलाकर इस एक बाढ़के ऊपर ७५,००,००० डालर अथवा २ करोड़ रुपयेकी हानि हुई। ऐसे प्रभावको रोकनेके लिये अमेरिका वालोंने बहुतसे कृत्रिम बाँध बना लिये हैं। प्रथम बाँधका जो ४ फुट ऊँचा था, निर्माण न्यू-आर्लियन्स नगरमें हुआ था। अब बाँधोंकी औसत ऊँचाई १३ फुट है और ये कोई ३,००० मील लम्बे हैं। हालैण्डमें राइन नदीके निचले भागोंमें डाइक बनाये गये हैं और इटलीमें वहांकी गंगा, पो नदीको भी बाँधोंसे बाँध दिया गया है। परन्तु अमेरिका और योरपमें प्राप्त अनुभवसे प्रतीत होता है कि केवल बाँधोंके बननेसे काम नहीं चलेगा। वहाँके देशोंमें बाढ़को रोकनेके नवीन उपाय हो रहे हैं, जिसमें कृत्रिम झीलोंकी तैयारी और बाढ़के पानी बहाने वाले नाले बन रहे हैं ताकि जल धारा ठीक प्रकारसे बहे।

बाढ़का कारण

किसी बीमारको दवा देनेके पूर्व वैद्य उसके रोगको भली भाँति जान लेता है। उसके अनन्तर अपनी औषधि देता है। अतएव हमको भी बाढ़के कारण जानने चाहिये। वे निम्नलिखित हैं :—

(१) अधिक वर्षाके कारण नदीमें जल-मात्रा

बहुत बढ़ जाती है और जल बह निकलता है। अतः समीपवर्ती नीचे स्थान पानीसे भर जाते हैं।

(२) नदीके ऊपरी भागोंमें प्राकृतिक रोक जैसे पहाड़ आदिके टूटनेसे। इसका एक अच्छा उदाहरण सन् १९३४की गढ़वालकी अलखनंदा घाटीकी बाढ़में मिलता है। भूमिका एक बड़ा भारी टुकड़ा छः सितम्बर १८९२को नैनीतालसे १३० मील दूर गोहण नामक स्थानके निकट फिसल पड़ा था, जिसके कारण गंगाके निकटके हरिद्वारके ऊपरके सब गांव बह गये।

(३) ऊँचे स्थानों पर जब एक ग्लेशियर नदीको पार करता है तो उसके पीछे नदीमें पानी भर जाता है। यहां बर्फका डाम बन जाता है। जलके बढ़ते हुये दबावके कारण डाम एक दिन टूट जाता है और बंद पानी, एकदम खुलनेके बाद, भीषण ताकतसे फैलने लगता है और नदीकी घाटीके पास हाहाकार मच जाता है।

सिन्धु नदीमें सन् १८४१की बाढ़ इसी कारणसे आई थी। उसकी शाखा श्योक नदी ग्लेशियरोंसे रुक गई। २३,०००, ०००, ००० घन फुटसे ऊंचा पानी बर्फीले बांधोंके पीछे रुक गया जो बाढ़को टूटने पर सन् १८४१की उस भयंकर बाढ़का कारण हुआ। स्विटजरलैंडमें ड्रांस नदीकी घाटीके निवासियोंको ऐसी बाढ़ोंसे कई बार दुःख उठाना पड़ा है।

(४) पृथिवीके विशेष प्रकारसे घूमनेसे तलमें परिवर्तन हो जाता है जो बाढ़का कारण हो सकता है।

(५) वन पानीको तेज़ बाढ़को रोकनेके अच्छे साधन हैं। जङ्गलोंको काट डाला जाय तो नदियोंमें बाढ़ अधिक आ जायगी। निश्चित ही संयुक्त राज्य अमेरिकामें वनोंको हटानेसे बाढ़ें अधिक भीषण और अधिकतर आई हैं।

(६) उपर्युक्त सब कारण तो बाढ़के सर्वत्र कारण हैं। परन्तु बाढ़के भारतवर्षमें आनेका एक विशेष कारण है। वह न प्राकृतिक है, न अत्यधिक वर्षा है, वह हमारी शासक सरकारकी एक विशेष भूल है। हमारे देशकी सरकारने रेलवे लाइनोंके लिये बाँध या टीले बनानेकी स्वीकृति देते समय जलके प्रवाहकी बात पर कदापि कुछ ध्यान ही न दिया। पानीके बहावके लिये यथेष्ट नाले नदियां भी तो नहीं हैं। सरकारका ध्येय न्यूनतम लागत पर सीधेसे सीधा आवागमनका मार्ग बनाना था। रेलवेका बांधोंमें नाले छोड़ने और उन पर इस्पातकी पुलिया बनानेमें बहुत व्यय होता। अतः वे या तो छोड़े नहीं गये या बहुत ही कम कर दिये गये हैं। फलतः पानी रुकता जाता है जिसके कारण स्वास्थ्यप्रद जिले भी मेलेरियाके अड्डे हो जाते हैं और वही जल भयानक बाढ़ोंका कारण होता है जनताको दुःख तो होता है परन्तु सरकारके इस कार्यके विरुद्ध क्या इलाज किया जा सकता है।

हमारी सरकारका कहना है कि स्थान स्थानपर नहरें खोल दी गई हैं जिससे खेतोंमें सिंचाईको जा सके और बाढ़की भी सम्भावना घट जाये। सन् १९१० में बँगाल प्रान्तमें एक नहर कुल्हासे गंगाके किनारे काशीपुर (कलकत्ता) सुन्दरवनमें खोदी गई। इस नहरसे नमकीले पानीकी ज्वार भाटे वाली नदियाँ मिला दी गई हैं। गंगाका जल पीनेमें तो है ही श्रेष्ठ परन्तु उसमें वर्षा ऋतुमें उपजाऊ मिट्टी भी होती है। यदि यह नहर गंगाजलसे भरी गई होती तो नमकीले जल वाले स्थानोंके दोनों ओर स्थित गांवोंको एक वरदान हो जाती। यही नहीं, बरसातमें इस नहर-से गंगाकी मिट्टी आस-पड़ोसके भागोंपर बिखर जाती और भूमिको उपजाऊ कर देती। सरकार इस नहरको सिंचाईके लिये प्रयोग करनेके हेतु कुछ कर भी लगा सकती थी। किन्तु उसका ध्यान तो था सस्ती सी रेलवे लाईन खोलनेका, न कि सिंचाईका। अतएव जब नहरमें पानी भरना हो तो कैसा ही भर दिया जाय, सामुद्रिक या गंगाका। इस पानीसे न तो मिट्टी जमा होगी, न सफ़ाईमें कुछ व्यय ही करना पड़ेगा। अतएव नहर भी जनताको एक शाप ही होगई।

भारतमें बाढ़ें आया करती थीं, परन्तु भेद यह था कि तब पानी अपना तल ढूंढ लेता था और नदियोंमें मिल जाता था और फिर समुद्रमें। हम

यह नहीं कहते कि रेलोंसे कोई लाभ नहीं हुआ है। हाँ हुआ है, किंतु नदीकी बलिपर। अमेरिका फ्रांस, जर्मनी और इंगलैण्डमें भी रेलें नदियोंसे प्राप्त लाभमें कोई बाधा नहीं डालती हैं। उन देशोंमें सरकार नदियोंके ऊपर भी काफी व्यय करती है और उत्तरोत्तर उपयोगी बनाने और सुधार करनेकी कोशिश करती रहती है। हमारे देशमें बात बिल्कुल उलटी है।

संयुक्त प्रान्तकी समस्या

बिहार और संयुक्त प्रांतके मैदानोंके उत्तरी टुकड़े भूचाल भागपर जो संसारमें पूर्व-पश्चिम फैला हुआ है स्थित हैं। भूगर्भ-शास्त्रवेत्ता अब यह स्वीकार करते हैं कि हिमालय पर्वत अभी उच्चतम ऊँचाई तक नहीं पहुँचे हैं, वे अब भी उठ रहे हैं और तल परिवर्तन अब भी हो रहा है। अतएव नैपालमें और हिमालयके नीचे वाले मैदानमें जिसमें गोरखपुर, बस्ती, बहराइच आदि ज़िले हैं, तल परिवर्त्तन हो रहा होगा।

सन् १९३४ के बिहारके भूचालके उपरांत भारतके इस प्रांतमें बाढ़का फिर आना केवल एक स्वाभाविक घटना नहीं है। इससे पता चलता है कि या तो नैपाल हिमालयमें नदियोंके स्रोत उठ गये हैं या दक्षिणी मैदानका एक भाग थोड़ा सा नीचे बैठ गया है, या दोनों बातें एक साथ हो रही हैं। हिमालय पहाड़ अपने जन्मसे उठ रहे हैं और उनके दक्षिणका भाग दबता जा रहा है। भारतका भूगर्भ इतिहास बताता है कि सिन्धु-गंगाका मैदान एक बार बड़ा गहरा समुद्र था और जो हिमालयसे आई नदियोंकी मिट्टीसे भर दिया गया है। हिमालयकी अस्थिरता और उनकी बनावटके कारण भूपात (लैण्डस्लाइड) हिमालयमें प्रायः आया करते हैं। क्या पता कि नेपालस्थ हिमालय में कोई गुप्त भूपात वर्तमान बाढ़का कारण हो।

अत्यधिक वर्षा भी एक कारण हो सकती है परन्तु यह जाननेके पूर्व हमें अपनी नदियोंका पूरा ज्ञान होना चाहिये।

बाढ़से बचनेके उपाय

गत वर्ष अगस्त मासमें उड़ीसामें भयंकर बाढ़ आई थी। तब उड़ीसाकी कांग्रेस सरकार ने सर विश्वेशरय्यासे महात्मा गांधीको मध्यस्थ बना इस समस्याका हल चाहा। उन्होंने एक प्रारम्भिक वक्तव्य दिया था जिसमें क्रमपूर्वक जांच-पड़ताल करने पर जोर दिया गया है और "बाढ़-रोक-मंडल" की स्थापनाकी सिफारिश की है जिसमें सरकारी कर्मचारी और राज्यके प्रतिनिधि भी हों। इस समस्याका जो भी हल किया जाय वह ऐसा हो कि जल नदियोंमें आ सीधे समुद्रकी राह ले। इसके लिये संरक्षक बांध, पानी बहानेके उचित मार्ग, नदियोंके मोहाने खोलकर चौड़े करनेका प्रबंध, और समुद्र तक पानी जानेके सीधे मार्ग होने चाहिये ताकि बाढ़ किसी क्षेत्रमें भी एक उचित मापसे ज्यादा गहरी न हो और न देर तक ठहरनेवाली हो जिससे सब फसलें व्यर्थ न पड़ जायें। आवश्यकता है इस बातकी कि उत्तर-पूर्वी भारतकी सब नदियों पर अलग अलग विचार किया जाये।

बाढ़के रोकनेके हेतु सर विश्वेशरय्याकी सिफारिशें निम्नलिखित हैं। उन्होंने ये उड़ीसाके लिये की थीं परन्तु उनको सारे उत्तर-पूर्वी भारत पर भी लगाया जा सकता है।

(१) जितने स्थानोंमें बाढ़का प्रकोप हो उनमें 'विभाग' बना लेने चाहिये और प्रत्येक विभागके लिये एक सुयोग्य इंजीनियर (एक्ज़ीक्यूटिव इंजीनियरके पदका) हो। उसके नीचे यथेष्ठ कर्मचारी होने चाहिये।

(२) इंजीनियरों का सर्व प्रथम कर्त्तव्य पिछली रिपोर्टों, स्थानिक अनुभवों और सूचनाओं द्वारा आंकड़े और आवश्यक ज्ञान एकत्रित करना होगा, और उसको संक्षिप्त, स्पष्ट और सुन्दर रूपमें छपवाना चाहिये।

(३) एक नियमित अनुसंधान और जलप्रपात संबंधी आंकड़े, जनसंख्या, उपज और प्रत्येक नदीके बाढ़-पीड़ित-भागका क्षेत्रफल तथा अन्य ज्ञान आवश्यक है।

(४) कुछ विशेषज्ञ इञ्जीनियरोंकी एक कमेटी बनाई जाये तो 'सम्मति दातृ समिति'की भाँति स्पेशल स्टाफके कामके विशेष अंगकी देख रेख करे और बाढ़ समस्याका निरंतर अध्ययन करे।

(५) जब नवीन योजनाके लिये सब सामग्री तैयार हो जाये तो जनसंख्या और लाभके विचारसे उसकी लागत पर विचार किया जाये और यह निश्चित हो कि कौनसे काम उठाये जायें और उन पर कितना व्यय करना उचित होगा।

(६) तदुपरांत सब बातोंका व्यय सूत्र-सहित एक सामान्य संग्रह होना चाहिये ताकि प्रांतीय सरकार, यदि आवश्यकता हो तो एक विशेषज्ञ समितिकी सहायतासे, एक पूरीसी योजना और उसके ऊपर व्यय तै कर सके।

(७) जब योजना चलानेके लिये आर्थिक समस्या हल हो जाये तो भिन्न भिन्न स्कीमोंके लिये विवरण तख़मीने तैयार करने चाहियें और आवश्यकता एवं लाभके अनुसार कार्यारम्भ हो।

वास्तवमें सबसे कड़ी बात धनकी है। जहां धनकी समस्या हल हो गई तब कोई कष्ट न रहेगा और भिन्न भिन्न कमेटियाँ भले प्रकारसे काम कर लेंगी और शीघ्रही सफलता प्राप्त होगी।

बाढ़की समस्याका हल होने के लिये संतोष और अध्यवसाय 'इस्तकलाल' की सब से अधिक आवश्यकता है। समस्या पर निरंतर विचार करते रहना चाहिये। इसके लिये अच्छा तो यह हो कि एक स्थायी समिति हो। क्योंकि नदियां अपना मार्ग हमेशा बदलेंगी और उनके मैदानके तलमें परिवर्तन होगा अतएव अनुसंधान रोकना नहीं चाहिये। एक नदीका ज्ञान अधिकसे अधिक होना चाहिये और उसके स्वभावसे परिचित हो ताकि बाढ़ आनेके पूर्व ही इञ्जीनियर और जनता भविष्यवाणी कर सकें।

पहले भी इस समस्या पर कुछ व्यय किया जा चुका है किन्तु वह सब व्यर्थ गया। कारण था उचित प्रबन्ध व योजनाका न होना। बाढ़ समस्याके लिये विज्ञान, योजना, और अधिकार एवं आधिपत्य तो विशेष रूपसे आवश्यक है। धारा सभाओंमें विपक्षी केवल विपक्षके लिये प्रायः शब्दोंकी बौछार किया करते हैं। बाढ़ समस्या पर उनको भी ध्यान देना होगा। हमारे विश्वविद्यालयों, या विद्यालयोंमें भौगर्भिक इञ्जीनियरिंगका भी विषय पढ़ाया जाय और एक एक प्रान्तमें न्यूनतम एक जल-अनुसंधान-प्रयोगशाला हो।

अंतमें एक बात। कहा जाता है कि यदि १६६६ में आग न लगती तो आज लंदन संसारका सबसे बड़ा नगर न हो पाता। उस आगके बाद ही उसका निर्माण हुआ। क्या ही अच्छा हो कि हमारी सरकार बाढ़-प्रभावित स्थानोंका जो पुनर्निर्माण करे तो ग्राम ऐसे बनाये जो आदर्श हों और जिनमें ग्राम-पुनर्निर्माणका भविष्यमें प्रश्न ही न उठे। यदि सरकार ने ऐसा किया और बाढ़-रोकका तुरन्त वैज्ञानिक प्रबंध प्रारम्भ कर दिया तब उत्तर-पूर्वी भारतकी एक महान समस्या हल हो जायगी और कृषकोंका कष्ट दूर हो जायगा।

परिहास चित्र

[ले०—एल-एल० डाउन्स. अनुवादिका श्रीमती रत्नकुमारी एम० ए०]

चित्र १० में अब हम परिहासचित्रणकी सीमामें प्रवेश कर रहे हैं। यहां मैंने आकृतियोंकी सर्वसामान्य और पूर्ण एक ऐसी माला दे दी है जिसमें परिहास-चित्रणके सभी मुख्य अंग समाविष्ट हो गये हैं। आकृति क$_1$, क$_2$, और क$_3$ में साधारण आकृतिअंकन की उत्तरोत्तर अवस्थायें दिखायी गयी हैं, न कि परिहास-चित्रणकी। ख$_1$, ख$_2$ और ख$_3$ में उसी व्यक्तिके परि-हासचित्रकी उत्तरोत्तर अवस्थायें दी गई हैं। इस

इनमें दो सर्वथा भिन्न दृष्टिकोणोंको देखोगे। परिहास-चित्रकारने चित्रके उन अंगोंको स्वेच्छापूर्वक अत्युक्ति-पूर्ण कर दिया है जिनसे मनुष्यका स्वभाव और विशेषतायें अति-शीघ्र व्यक्त हो जायं। क॒ चित्रमें किसी बात पर बल देनेका प्रयत्न नहीं किया गया, पर ख॒ में आंखोंकी आकृतिमें, मोटे ओष्ठोंमें और बालोंके मोड़में स्पष्ट अत्युक्ति करके मनुष्यकी संशयात्मक प्रवृत्तिका चित्रण किया गया है। ख॒ में यही बात और स्पष्ट कर दी गई है, और यदि इसकी तुलना
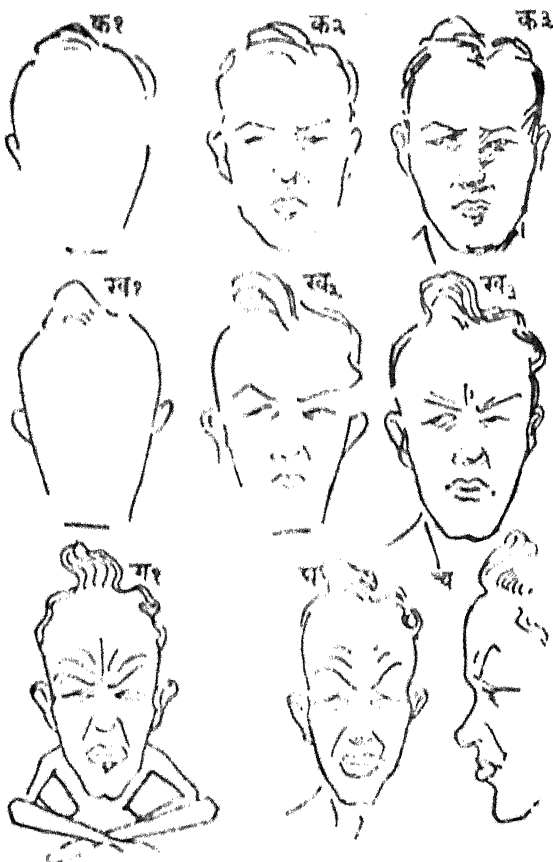
चित्र १०

आकृति क॒ से की जाय तो तुम्हें उस परिहासपूर्ण अत्युक्तिका पता चल जायगा जो सफल परिहासचित्रण-का नितांत आवश्यक गुप्त रहस्य है। इन सब आकृतियोंकी ओर ध्यान पूर्वक देखो और बढ़ाये गये कानों और ख की अतिनिश्चित-भावभंगी पर विशेष ध्यान दो।

संतोषजनक परिहासचित्र खिंच जानेके बाद भी तुम उस समय कठिनाईका बहुधा अनुभव करोगे जब तुम एक पग आगे बढ़ना चाहोगे, क्योंकि बहुधा यह आवश्यक होता है कि चित्र देखनेवाले लोगोंको ख़ूब हँसी आ जाय, और आकृति असम्भवनीयता तक बढ़ा दी जाय, पर इतने पर भी आकृतिकी साम्यता बनी रहे। चित्र १०की आकृति गमें तुम इस सिरको छोटेसे शरीर पर रक्खा हुआ देखोगे, और उसमें मुखकी रेखायें और भी अधिक व्यञ्जनात्मक बना दी गई हैं। मस्तक परकी रेखाओंको देखो। यह चित्रकारके मस्तिष्क-की कोरी कल्पना है, और आकृति क॒ में तुम इसे न पाओगे। पर फिर भी यदि तुम इन दो आकृतियोंकी तुलना करो तो तुम्हें मानना पड़ेगा कि एक आकृति दूसरी का अति उचित और योग्य परिहास है। मुखके अनुकूल ही शरीरकी बनावट दी गई है।

इसके बाद दूसरी कठिनाई तब ज्ञात होगी जब किसी व्यक्तिका अच्छा परिहासचित्र खींच लेनेके बाद तुम इसकी चेष्टा करोगे कि यह साथही साथ मुसकाता हुआ भी मालूम हो। ध आकृतिमें हमारे विषयके अनुकूल ही एक विशेष प्रकारकी मुसकान दिखानेका प्रयत्न किया गया है।

अब स्थिति भी परिवर्तित करनी चाहिये। इस बातको आसान नहीं समझना चाहिये कि जिस व्यक्तिके पूरे चेहरेकी तुमने आकृति खींच ली है, उसकी आकृति किसी अन्य निराली स्थितिसे खींच सको। ऐसा करने-के लिये बड़ी सावधानीसे चेहरेका अध्ययन करना होगा। क्या ओष्ठ, मस्तक, या आँखें आगे निकली हुई हैं या अन्दर धँसी हुई हैं? नाक रोमन-जातिकी है या किसी और प्रकारकी? ठुड्डीकी आकृति कैसी है? इसी प्रकारके सभी प्रश्नोंपर विचार करना होगा और शुद्ध तर्क द्वारा इन प्रश्नोंका उत्तर पाना होगा। मोटी दृष्टिसे चित्र ४ में इस समस्यापर प्रकाश डाला गया है जिसमें हमने एक ही अंगकी सीधीसादी आकृति-

पर सदा विचार किया है, चाहे शिरकी स्थिति कोई भी क्यों न हो।

चित्र १० की म.. आकृतिपर अब विचार करो। स्पष्टतः नाक फूली हुई है, ओष्ठ बाहर निकले हुए हैं, विशेषतया नीचे वाला ओष्ठ; ठुड्डी जो समस्त चेहरेमें अति स्पष्ट है, कुछ चिरी हुई है और संभवतः लम्बी चपटी जातिकी है; आँखें अधखुली और भारी हैं और मस्तक ऊँचा है। ये सब बातें आकृति चमें खींच कर दिखाई गई हैं। यदि इसकी तुलना म.. से की जाय तो तुम इस आकृतिकी सफलताको अवश्य स्वीकार कर लोगे। इस चेहरेकी अपेक्षा कुछ अन्य चेहरोंको खींच लेना अधिक आसान होगा—मोटी, विशेष प्रकारकी नाक और आँखोंकी वजहसे गनीमत समझनी चाहिये।

किसी अन्य दृष्टिसे तुम इसी आकृतिको स्वयं खींचो। किसीको भी खींचो, अपनेको ही खींचो यदि चाहो। अब इस आकृतिसे परिहास खींचनेका प्रयत्न करो, और फिर कई स्थितियोंकी अपेक्षासे इसे खींचो अपने ही शिरको खींचनेमें तुम्हें विशेष आसानी होगी, क्योंकि तुम दो या तीन दर्पणोंकी सहायतासे अपने चित्रकी शुद्धताका परीक्षण कर सकोगे। तुम शीघ्र भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणोंसे परिचित हो जाओगे, और समझ जाओगे कि किस स्थितिमें कैसी आशा रखनी चाहिये।

इस "सर्वतोगत" भावको समझ सकनेका एक बहुत ही अच्छा साधन है—मिट्टीकी मूर्तियोंका निरीक्षण करना। अपने स..पवर्ती किसी मॉडेल-स्कूलमें जहाँ मूर्तियोंके आधारपर चित्रकला सिखायी जाती हो, भर्ती हो जाओ, या घरपर ही अभ्यास करो। ऐसा करनेसे तुम न केवल एक अच्छे परिहास-चित्रकार ही हो सकोगे, तुम इस कलाके अध्ययनमें लगाये गये प्रत्येक क्षणसे आनन्द भी प्राप्त कर सकोगे। 'रूप' का मूल्य समझना और उसका आदर करना जितना तुम्हें ऐसा करने पर आ जायगा, वैसा और किसी प्रकार न आयगा। मॉडेलका काम कुछ शनैः शनैः होता है, पर जिज्ञासु परिहास चित्रकार इससे बहुत शीघ्र ही उचित लाभ उठाने लगता है।

सहायक वस्तुएँ

अब कुछ शब्द सहायक-वस्तुओंके संबंधमें। कलाकारको किसी भी चीज़की उपेक्षा नहीं करनी
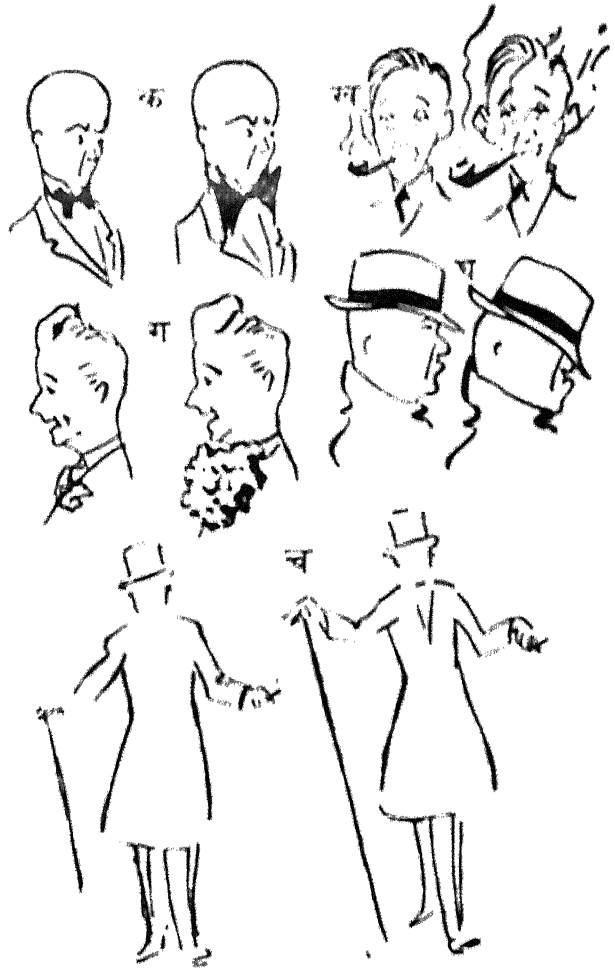
चित्र नं० ११

चाहिये, चाहे वह कितनी ही मामूली क्यों न हो, यदि वह मनुष्यके स्वभाव पर कोई विशेष प्रकाश डालती हो, या उसके चरित्रको विशेष रूपसे स्पष्ट करती हो।

चित्र ११ में यह बात स्पष्ट रूपसे प्रदर्शित की गई है। मैं तुम्हारा ध्यान आकृति क की टाईकी ओर, ख के सिगार और धुएँकी ओर, ग के फूलकी ओर, घ के हैट की ओर, और घ के भारी भरकमपनेकी ओर आकर्षित करना चाहता हूँ। इन सब चीजोंमें कुछ असाधारण विशेषता है जिसे बढ़ाकर दिखाना उचित था। इन असाधारण विशेषताओंसे ही मनुष्यका चरित्र व्यक्त होता है। जिस व्यक्तिका तुम परिहासचित्र खींचना चाहते

चित्र नं० १२

हो, उसकी कोई ऐसी। बात ढूँढ़ निकालो जो उसके साथियोंमें न पायी जाती हो, और जिसको चित्रमें देख-कर संसार समझ जाय कि यह व्यक्ति किस प्रकारका है।

यह याद रखिये कि परिहास-चित्रण भाव-चित्रण-की योग्यताका नाम है। क्या तुम्हारी भावना बड़े झुकानके पीछे एक गंजे व्यक्तिकी है? यदि है तो, तुम्हें झुकाव बड़ा, बहुत बड़ा और मनुष्यको गंजा, ज़ोरदार गंजा, बनाना चाहिये। जो बात तुम्हें अधिक प्रभावित करे, उसे सबसे अधिक प्रभावयुक्त खींचना चाहिये। परिहास-चित्रणके समय कभी संकोच न करो बेधड़क खींचो।

एक क़दम आगे बढ़नेपर कपड़ोंको भी सहायक करना होगा, और इस संबन्धमें मैं तुम्हारा ध्यान चित्र १२ की ओर आकर्षित करता हूँ। यहाँ चित्र क में तुम्हें अपने पुराने मित्र या शत्रु, राजनीतिज्ञसे भेंट होगी। वह प्रातःकी पोशाकमें अपनी सदाकी भाँति एक गरम या उत्तेजक वक्तृता दे रहा है। वह समाचार पत्र जिसके लिये तुम काम करते हो (मेरा ऐसा अनुमान है) इस कुशल वक्ताकी भावनाओंका जिन्हें वह "पुरानी ज़मानी" समझता है, प्रतिरोध करनेमें कमर कसे हुये है। तुम्हें अतः उसे इस बातके अनुकूल ही वस्त्र पहनाने चाहिये जैसे कि चित्र क१ में है। तुम देखोगे कि मैंने उसके कोटकी आस्तीन और कफको और ऐनकको रहने दिया है। उसको बूढ़ औरत ही न बना डालो, केवल वस्त्र पहना कर ऐसा कर दो कि वह 'बूढ़ औरत सा' मालूम होने लगे। अपने चित्र-नायक-की पोशाक बदलनेमें संकोच मत करो। ऐसा करना तो अति मनोरंजक और साधारण हाथकी सफाई है। ख में तुम एक अन्य प्रसिद्ध वक्ताको देखोगे जिसकी विशेषता उसकी शानदार और शुद्ध पोशाकमें है। शायद वह बॉय-स्काउट मेलेमें सभापति हो रहा है, या खुले स्थानमें कैम्प लगानेका अनुरोध कर रहा है। इस अवसरसे तत्क्षण लाभ उठा कर चित्रकारने उसे स्काउट-की पोशाकमें, जैसा चित्र ख१ में है, प्रस्तुत किया है, उसके खड़े होनेका ढंग और चश्मा उसने पूर्ववत् ही रक्खा है। ऐसा करनेसे मूल-पोशाकमें प्रस्तुत करनेकी अपेक्षा आनन्द सौ गुना अधिक आ जायगा। यदि किसी व्यक्तिको देखकर तुम्हें किसी बच्चेकी याद आ जाय, तो उसे तम ग या ग१ के समान बना दो

ऐसी सब अवस्थाओंमें वस्त्रके संबन्धमें अपनी कल्पनाको मुक्त उड़ान लेने दो। मनमाने वस्त्र पहना कर इस प्रकारके चित्र खींचनेमें बड़ा आनन्द आता है, और लोग इसको विशेष पसन्द करते हैं क्योंकि इसमें अन्य प्रकारके परिहास-चित्रणकी गम्भीर प्रयास-जनक-कटुता नहीं रहती है। यह ठीक है कि कपड़े अवसर और व्यक्तिके सर्वथा उपयुक्त और हास्यरसपूर्ण होने चाहिये।

चित्र १३

चित्र १३ के क और क१ चित्रोंको लो। हमारे चरित्र-नायकके खड़े होनेके गंभीर ढंगसे एलिज़बेथके समय की पोशाकका स्मरण हो आयगा। चित्र ख और ख१ में एक अति प्रसिद्ध नाटककार दिखाया गया है जिसे साधारण जीवनकी जटिलताओंको व्यक्त करनेमें आनन्द आता है। इसको मैंने जैसी पोशाक पहनायी है, उसका औचित्य पोशाक स्वयं बता देगी। देखो कि पानीका गिलास वैसा ही बना रहने दिया गया है, और अधिकार-प्रदर्शक खड़े होनेका ढंग भी। जब तक तुमने किसी व्यक्तिको कई प्रकारसे खड़े होते न देखा हो, तब तक खड़े होनेका ढंग परिवर्तित कर देना सदा निरापद नहीं होता। व्यंग्य चित्रोंमें तो तुम्हें मनुष्यका चित्र प्रत्येक स्थितिमें खींचना पड़ेगा, पर परिहास-चित्रणमें तो मेरा विश्वास है कि यदि तुम्हें मनुष्यकी वास्तविक स्थिति देखनेको मिल जाय तो यही अच्छा है कि व्यक्तिको उसी स्थितिमें चित्रित करो।

पर इसका यह अर्थ नहीं है कि अक्षरशः स्थिति वैसी ही रक्खो; पर हाँ; नाक तो बिलकुल वैसी ही रक्खो। उसकी स्थितिका भी वैसा ही परिहास-चित्रण करो जैसा कि उसके अंगोंका, क्योंकि याद रक्खो कि बहुतसे व्यक्तियोंकी विशेषता उनकी स्थिति और भावभंगीमें होती है। स्थिति और भावभंगीके प्रति पूर्ण सम्मानकी भावना होनेके संबंधमें मैं स्मरण दिलाऊँगा, कि बहुधा चेहरों या मुखकी भावनाओंकी अपेक्षा तुम अपने निकटस्थ परिचितों, मित्रों, और सम्बन्धियोंको इन्हींके द्वारा अधिक पहिचानते हो। अपनेसे दो सौ गज़की दूरीपर स्थित अपने भाईको तुम उसके खड़े होने या चलनेके ढंगको देखकर ही पहिचान लोगे। मैं जानता हूँ कि उसके कोट और हैटसे भी तुम परिचित हो, पर यह भी परिचय इस पर अधिक निर्भर है कि वह इन्हें किस ढंगसे पहने हुए है, न कि इस बात पर कि तुम्हें उनके रंग या वस्त्रकी काटसे परिचय है।

जिन व्यक्तियोंके साथ हम रहते हैं उनको हम उनकी चाल-ढालसे, इस बातसे कि वे दरवाज़ा किस प्रकार बन्द करते हैं, या उनके पैरोंकी आहट से, और जैसा कि मैंने पहले कहा है यदि वे दूर हों तो उनकी स्थिति और पहननेके ढंगसे पहचान लेते हैं। इसको सिद्ध करनेके लिये, क्या तुम अब स्मृतिके आधार पर अपने किसी निकटस्थ संबंधीके चित्र खींचनेका प्रयत्न

करोगे ? इसके बाद अपने किसी पड़ोसी या तरकारी बेचनेवाले का, जिसे तुमने एक दो बार ही देखा हो, पर जिसकी तुम्हें याद हो, चित्र खींचो। तुम पाओगे कि यह दूसरा चित्र खींचना अधिक आसान है क्योंकि संभवतः तुमने अपने निकटस्थ मित्रको वर्षोंसे "भली प्रकार" न देखा हो। "भली प्रकार" से देखने-से मेरा तात्पर्य्य उसके अंगों और बाल, आँख और ठुड्डीकी विशेषताओंके अध्ययन करनेसे है। इस सबका निष्कर्ष यह है कि यदि तुम चाहते हो कि जिसका तुम परिहास-चित्र खींचो, उसके मित्र उस परिहास-चित्रमें उस व्यक्तिकी साम्यताका अनुभव करें, तो तुम्हें चाहिये कि तुम उसके भावभंगी, स्वभाव, और सामान्य चरित्रको ठीक समझ जाओ।

चरित्र

ऐसे पुरुष तो हजारों मिलेंगे जो चेहरे और आकृतिकी विशेषताओंको देखते और याद रखते हैं, पर ऐसे कितने हैं जो अधिक सूक्ष्म व्यक्तिगत विशेषताओं-को देख सकते हों ? मैं और तुम दोनों ही ऐसे किसी आदमीको जानते हैं जो, दूसरेकी भावभंगियोंकी नक़ल उतारनेमें बड़ा चतुर है। अच्छे ढंगसे नक़ल उतारनेकी अपेक्षा अधिक मनोरञ्जन एवं हँसी और किसी बातमें नहीं आ सकती। और यह है क्या, सिवाय इसके कि जीता जागता परिहास-चित्रण ? ऐसे तो न तो शरीर-की और न आकृतिकी कोई समानता है, पर यह छोटा नक्कालची लम्बे-से-लम्बे और तगड़े-से-तगड़े व्यक्तिकी नक़ल उतार सकता है। इससे स्पष्ट है कि नक़ल उतारना केवल भावभंगियों और चाल-ढालोंको बढ़ाकर दिखाना ही है। यदि जीती जागती ये नक़लें मनोरञ्जनका इतना साधन हो सकती हैं, तो हम समझ सकते हैं कि चाल-ढाल, स्वभाव आदिका परिहास-चित्रण खींचना भी कितने महत्व का है।

मैं परिहास-चित्रणका एक गया गुज़रा उदाहरण चित्र १४ की क आकृतिमें लेता हूँ। यहाँ एक अति सुन्दर आकर्षक चुस्त कलाकार-महिलाका चित्र है पर यदि कोई इसे क के समान खींच दे तो लोगोंका

चित्र १४

ध्यान इसकी ओर कम जायगा, और शायद कोई पहचाननेका भी प्रयत्न न करे। किसी भी सुन्दरी बालिकाके अंगोंको बिना सौन्दर्य्य नष्ट किये हुए बहुत बढ़ाकर दिखाया नहीं जा सकता। और फिर ये बालिकायें केवल रंग-मंचके प्रकाशमें ही और जब वे नाट्य कर रही हों तभी देखनेको मिल सकती हैं। अतः उनको उसी रूपमें चित्रित करना पड़ता है जिसमें वे मंचपर अधिकतर उतरती हैं। क१ में उसका ऐसा ही चित्र खींचकर दिखाया गया है। उसे देखकर फ़ौरन उसकी स्मृति हो आती है। वह पहचान पड़ जाती है, और अपना पूर्व परिचित को देखकर हँसी आजाती है। कृत्रिम चरित्रणका यह सुन्दर उदाहरण है। निस्सन्देह सभी चरित्रण थोड़े बहुत कृत्रिम होते हैं, पर नाटकीय और साधारण चरित्रणोंमें अन्तर यह है कि मंच पर तो एक

ही घंटेके लिये नेत्र-चरित्रण किये जाते हैं, पर व्यापार या साधारण जीवन-कार्योंमें इन चरित्रणोंको ८-१० घंटे धारण करना पड़ता है, और ऐसा करनेमें अधिक ज़ोर पड़नेके कारण वे इतने प्रभावोत्पादक नहीं रह जाते।

चित्र १४ के समान आकृतियोंमें जहाँ एक सुन्दर बालिका दिखाई गई है, यह अत्यन्त आवश्यक है कि वास्तविक सौन्दर्य नहीं, तो कमसे कम सौन्दर्य-भावनायें तो सुरक्षित रक्खी जाय। मैं विश्वास दिलाता हूँ, यह कोई आसान काम नहीं है। ऐसा करनेमें शैली और व्यक्तिगत आकृति दोनोंपर ही ध्यान रखना चाहिये। यदि वह बालिका-शैलीकी है, जैसाकि हमारे इस चित्रमें है, तो इस विशेषतापर ज़ोर देना मत भूलो। यह देखो कि नाटककी सी चाल-ढाल अंकित करनेके लिये मैंने उसके खड़े होनेको किस प्रकार बढ़ा कर दिखाया है। उसके दामनकी झूलसे उसकी चुस्ती प्रकट होती है। बच्चोंकी सी आँखों द्वारा शैली व्यक्त होती है, और बालोंसे उसका व्यक्तित्व प्रतीत होता है चित्रणमें हम किसी भी ऐसी छोटीसी बातको नहीं छोड़ सकते जिससे नायककी कोई विशेष बात स्पष्ट होती हो।

बढ़ाकर दिखाना या अतिशयता

व्यंग्य और परिहास चित्रोंमें दूसरी स्वाभाविक और अति-लोकप्रिय जो बात है वह चित्र १५ में दिखाई गई है। इस चित्रमें जिस महिलाका चित्र है, वह मेरा अनुमान है, लेडी मैकबेथका नाट्य कर रही है। मैंने पहले उसे आकृति क के रूपमें खींचा, और जहाँ तक रूपकी समानता और परिहाससे संबन्ध है मैं इस चित्रणसे सन्तुष्ट हो गया, पर यह चित्र समाचार-पत्रके कार्टूनके योग्य हो सकता था जहाँ मुझे दो × तीन इंचोंके छोटेसे स्थानमें पाँच छः ऐसी आकृतियाँ खींचनी चाहिये थीं। मैंने अनुभव किया कि मेरा चित्र "पंच" के योग्य नहीं रहेगा क्योंकि यह लम्बाईमें घटाकर डेढ़ इंचका कर दिया जायगा और इसलिये मैंने एक रुचि-पूर्ण चातुरीसे काम लिया और क, के समान आकृति

चित्र १५

खींची। मैंने शिरको बहुत बड़ा बना दिया और फिर शेष आकृतिको पैरोंतक उत्तरोत्तर कम कर दिया। इस चतुराईका उपयोग तभी किया जा सकता है जब विशेषता शिर या चेहरेमें केन्द्रित हो। चित्र ११ की आकृति चूंकि जहाँ खड़े होनेकी शैली ही सर्वस्व है, इस प्रकारकी उत्तरोत्तर कमीसे प्रभाव बहुत कम पड़ जायगा। बहुधा, विशेषकर खेलोंमें, थियेटरमें और राजनीतिक चित्रोंमें यह परमावश्यक बात है कि दर्शक चित्रित मनुष्यको पहचान जायें, और इसलिये ऐसे चित्रोंमें शिर बढ़ा कर दिखाया जाना चाहिये। मैं तुम्हें यह याद दिलाता या उन्हें जो अभीतक इस बातको नहीं समझ पाये बताना चाहता हूँ कि इस पुस्तकमें प्रत्येक चित्र असली चित्रका दो तिहाई घटाकर दिखाया गया है।

इन उत्तरोत्तर पतली होती जाने वाली आकृतियों-में यह ध्यान रक्खो कि गर्दन तो लगभग पूरी

बने, पर कन्धे धीरे धीरे पतले करदो। भुजाओं, धड़ और पैरोंको भी पतला करदो। इस नियमका उल्लंघन करनेपर, अर्थात् मानलो कि तुमने हाथ पूरे आकारके बनादिये, चित्र बहुत भद्दी भावना उत्पन्न करने लगता है।

इस प्रकारके आकृति-लेखनमें प्रचंड-क्रिया बहुत ही अनुपयुक्त है। तुम इस बातको फौरन समझ जाओगे यदि मैं तुम्हें यह बताऊँ कि यदि किसी परिहास-चित्रणमें व्यक्तिकी चेष्टा विशेषता-पूर्ण हो, तो उसमें शिर बढ़ाकर दिखाना अनुचित है क्योंकि ऐसा करनेसे उसकी चेष्टाका महत्त्व मन्द पड़ जायगा। कुछ व्यंग्य-चित्रकार इस चतुराईको दूसरे रूपमें काममें लाते हैं अर्थात् वे शिरके आकारको थोड़ासा बढ़ा देते हैं। ऐसे कार्टूनोंमें जिनमें आकृतिमें चेष्टायें भी चित्रित करनी होती हैं, ऐसा समझौता लाभप्रद होता है।

चित्र १६

हँसोड़-चित्र

अब मैं बहुत बढ़ाकर खींचे गये चित्रोंकी ओर आता हूँ और यद्यपि चित्र १६ में दीगई आकृतियाँ शुद्ध परिहास-चित्रण नहीं हैं, पर तो भी अन्य प्रकारकी चित्रकारीकी अपेक्षा परिहास-चित्रणके अधिक निकट हैं। हँसोड़-चित्रोंकी शैली कुछ विशेष होती है और अच्छा चित्र खींच सकनेके लिये विशेष एकाग्र अभ्यासकी आवश्यकता होती है। किसी हास्य-रसकी पत्रिकाको देखो, शायद तुम समझोगे कि ऐसे चित्र खींचना कितना आसान है, और ये चित्र कितने मामूली हैं, और इनके खींचनेमें किसी कुशलताकी आवश्यकता नहीं, पर ऐसा नहीं है। अन्य व्यापारिक कलाओंकी अपेक्षा कई बातोंमें वे आसान अवश्य हैं, पर जैसाकि सभी प्रकारके कार्योंमें होता है, उनकी भी एक निजी विशेष कठिनाई है जिसे पार करना आसान नहीं है।

ऐसे कार्यके लिये मैं एक विशेष सलाह देता हूँ जो परमोपयोगी है। यह सलाह वही है जो मैं बराबर इस पुस्तकमें देता आरहा हूँ, पर अबतो मैं और ज़ोरसे चिल्लाकर इसे कहता हूँ — "बढ़ाकर खींचो", "बढ़ाकर खींचो"। तुममेंसे बहुतसे तो यदि चित्र १६ की क आकृतिकी तरह खींच सकें तो समझेंगे कि उन्होंने हास्यमें कमालकर दिया। पर हास्यरसके पत्रोंके लिये यह चित्र तो किसी भी कामका नहीं है। ये पत्र-पत्रिकायें बच्चोंके लिये लिखी और चित्रित की जाती हैं और लड़के तथा लड़कियाँ तो ज़ोरदार मज़ाक और हास्यको ही पसन्द करती हैं, वे तो बहुत बढ़ाकर खींचे गये हँसोड़ चित्र चाहेंगी, वे विदूषकको वस्तुतः विदूषकके रूपमें देखना चाहती हैं, वे साधारण मज़ाकमें भी अट्टहास चाहती हैं न कि थोड़ी सी हँसी। वे केवल कौतूहल ही नहीं, अत्यन्त हास्य-प्रद नक़ल चाहती हैं।

इसलिये जब तुम बच्चोंकी पत्रिकाओंके लिये व्यंग्यचित्र खींचनेका अभ्यास कररहे हो तो चित्रको

.खूब बढ़ाकर या फुलाकर दिखाओ। आकृति क की सी नहीं, क₁ की सी खींचो। देखो कि इस चित्र-में क्या क्या बढ़ा दिया गया है—पसीनेकी बड़ी बड़ी बूँदें, उड़ते हुए बाल, और कोटकी ऊलजलूल उड़ान। गति या वेग सूचित करने वाली रेखाओं, छुट्टल हाथों, और बढ़ाये गये कोटके खानेदार लकीरियोंको भी देखो।

चित्र ख और ख₁ में भी तुम यह बात सोचोगे। कोट छोटा कर दिया गया है, पाजामा फैला दिया गया है, और चेहरा बिगाड़ दिया गया है। नायक युवक के मस्तकके ऊपर जो प्रश्न सूचक चिह्न (?) बढ़ा कर लगा दिया गया है, उससे चित्र देखने वाले फ़ौरन समझ जायँगे कि चित्रित व्यक्ति किसी जटिल समस्यामें उलझा हुआ है। सूक्ष्मशब्द सूचक तारोंके समान चिह्न अंकित करनेमें जैसे ग₁ आकृतिमें है, संकोच मत करो। यह अन्तिम चित्र तो ऐसी चित्र-कारीका बड़ा अच्छा उदाहरण है। वैसे तो हममें से अधिकांशोंके लिये, जो केवल उतना ही परिहास चाहते हैं जितना कि डबल्यू. डबल्यू. जेकबसकी हल्की लेखनीमें है, आकृति ग समुचित परिहासपूर्ण समझी जायगी, पर बच्चे तो परिहासकी पराकाष्ठाके लिये उत्सुक होते हैं जैसा कि ग₁ आकृतिमें है। मेरा तो तुमसे अनुरोध है कि यहाँ दिये गये उदाहरणोंका अधिक गंभीरतासे अध्ययन करो, चाहे वे पहली दृष्टिमें मामूली ही क्यों न मालूम होते हों। यह ध्यान रक्खो कि यह काम उतना साधारण नहीं है जितना मालूम होता है, और इनसे न जाने कितने चित्रकार कई पाउण्ड प्रति-सप्ताह कमा रहे हैं।

प्रारंभिक व्यंग्य चित्र

यदि तुम शैलियोंके अभ्यासमें लगे हो, अर्थात् खूब बढ़ाकर हास्य-जनक चित्र खींच रहे हो, पर किसी विशेष व्यक्तिका परिहास-चित्रण नहीं कर रहे, तो मैं तुम्हारा ध्यान चित्र ११ की ओर आकर्षित करूँगा। लगभग सभी पत्रिकाओंमें प्रकाशित होने वाले व्यंग्य चित्रोंमेंसे यह आसान और सामान्यतः कौतुहलप्रद उदाहरण है। बच्चोंके पत्रोंमें जानवरों और प्रौढ़

चित्र ११

व्यक्तियोंके पत्रोंमें पिताओं, मालिकों, माताओं, हास्य करने वालों या फ़ोटोग्राफ़रोंका उल्लेख होता है। इन सब चित्रोंके आधारभूत सिद्धान्त वही हैं जो बच्चों-की हास्य-प्रद पत्रिकाओंके हैं। कुछमें अन्योंकी अपेक्षा अधिक भावनात्मकता होती है, और मैं चित्र १२ में एक आधुनिक शैलीका उदाहरण दे रहा हूँ जिसका जन्म तो अमरीका में हुआ है, पर ब्रिटेनमें भी अधिक लोकप्रिय होती जा रही है।

इन सबमें मुख्य भावना लगभग वही होती है जो बच्चोंके हास्य-प्रद चित्रोंमें। यह है—'बस खींचे जाओ'। कुछ विशेष कामोंके समान इसमें अच्छी आकृतियाँ खींचना इतना आवश्यक नहीं है, किन्तु तुम्हें इस बातका अभ्यास होना चाहिये कि तुम बार बार वही चेहरा भिन्न भिन्न भावनाओंसे युक्त करके खींच सको और एक ही आकृतिको भिन्न भिन्न स्थितियोंमें बैठा

चित्र १८

सको। यह कोई आसान काम नहीं है। इस प्रकार-के अभ्यास करनेका और इस प्रकारके चित्र खींचनेका मुझे बस एक ही उपाय ज्ञात है। किसी हँसोड़ व्यक्तिको पकड़ लो, और उसको देख देख कर ही जीते जागते उदाहरणसे, चाहे वह कैसा ही क्यों न हो, अपने चित्र खींचो। फिर इसे प्रत्येक काल्पनिक स्थितिमें खींचनेका प्रयत्न करो, जब तक कि तुम उसकी प्रत्येक दशा और अवस्थासे परिचित न हो जाओ। इस छोटी आकृतिसे ही अपनी कापियाँ भरदो जब तक तुम्हें ठीक ठीक यह न मालूम हो जाय कि वह किस प्रकारका है और भिन्न भिन्न स्थितियोंमें किस प्रकारका लगता है।

मैं चित्र १९ में अपने अभिप्रायको समझानेके लिये उदाहरण देता हूँ। इस चित्रके परिहासनायकको मैंने ही एक बिसातखानेकी पत्रिकाके लिये खोज निकाला था, और इसमें एक आदर्श बिसातीका उदाहरण है मैं इस चित्रका विवरण नहीं दूँगा, केवल तुमसे अनुरोध करूँगा कि तुम सावधानीसे इसका अध्ययन करो, और अपने परिचितोंमेंसे एक-दोका इसी प्रकार खींचो। कृपया यह स्मरण रखिये कि यहाँ ये सब आकृतियाँ घटाकर एक तिहाई करके दीगई हैं। गौण रूपसे, मैं अनुभव करता हूँ कि तुम्हें इस छोटेसे व्यक्तिके घुँघराले केशोंकी ओर भी संकेत कराद्रूँ। आकृतियोंको शीघ्र खींचनेमें ये सब भेदक बातें बहुत ही उपयोगी होती हैं। किसीकी विचित्र मोंछ, किसीकी आकृति, किसीका क़द, ये सब बातें तुम्हें बहुत सहायता देंगी।

चित्र १९

विशेष व्यंग्य चित्रोंको छोड़कर यह अन्तिम चित्र है, और मैं यह स्वीकार करता हूँ कि जिस जिस

प्रकारसे मैंने बताया है यदि तुम खींचनेका अभ्यास कर लोगे, तो तुम निश्चय रूपसे व्यंग्य चित्र भी खींच-सकोगे, पर फिर भी कुछ संकेत ऐसे हैं जो तुम्हें व्यंग्य-चित्र-खींचने में सहायक होंगे।

व्यंग्यचित्र या कार्टून

व्यंग्यचित्र परिहासचित्रकेही परिष्कृत रूप हैं, यद्यपि दोनोंमें थोड़ासा मौलिक अन्तर भी है। व्यंग्य चित्रका परिहासचित्रसे वही सम्बन्ध है जो किसी ऐतिहासिक रंगीन चित्रका किसी ऐतिहासिक व्यक्तिकी तसवीरसे है। व्यक्तियोंकी अपेक्षा उसका सम्बन्ध विचारों और भावनाओंसे अधिक नहीं है।

व्यंग्यचित्रोंका एक बोधका भी रूप है जैसे "पंच" में प्रकाशित बर्नार्ड पार्ट्रिजके चित्र जो वस्तुतः आपसमें वार्त्तालाप करते हुये दो व्यक्तियोंके परिहासचित्रही होते हैं। इस बोधकी अवस्था वाली आकृतियोंके खींचनेके लिये और अधिक कुछ नहीं बताना है; जो कुछ परिहासचित्रणके लिये कहा गया है वही समुचित है। अधिकतर आकृतियाँ परिहासचित्रकी अपेक्षा तद्रूप-चित्र अधिक होती हैं, और उनसे जो कुछ आनन्द या रस मिलता है विचित्र पोशाक और नीचे लिखे हुये व्यंग्य-शब्दोंके कारण होता है।

व्यंग्यचित्रोंसे हम सामान्यतः वह समझते हैं जो प्रायः दैनिक समाचार पत्रोंमें प्रकाशित हुआ करते हैं, और इनकेही सम्बन्धमें हमें कुछ और जाननेकी आवश्यकता है। पहिले तो प्रत्येक व्यंग्यचित्रके पीछे एक भावना होती है, जिसका महत्व व्यक्तियों के महत्वसे अधिक है। दूसरी बात चित्रण अर्थात् चित्रका बनाना है। अन्तिम बात यह है, कि इसमें कई छोटे और सरल परिहासचित्र होते हैं—कभी कभी दौड़ते हुए, नाचते हुए, चिंघाड़ते हुए, इन्द्रधनुष पर बैठे हुये, शेरोंसे निकलते हुए, या गीत गाते हुये। व्यंग्यचित्रमें चेष्टाओंका महत्व सबसे अधिक है, और इस 'चेष्टा' या 'जीवन'का अंकन करना ही कठिन समस्या हो जाती है।

चित्र २०में पेंसिलसे खींचा गया एक साधारण व्यंग्यचित्र मैंने दिखाया है। आकृतियोंके मुखसे चित्र १८ के समान शब्दोंका निकलना उचित है, और जैसा चित्र २१में दिखाया गया है. इस चित्रका
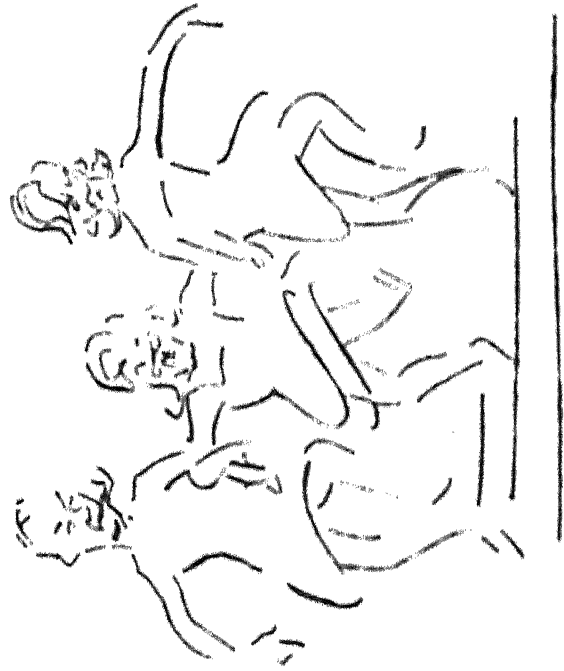
चित्र २०

कोई उद्देश्य नीचे लिख देनेकी आवश्यकता होती है। साधारण पर तीव्र रेखाओंका होना आवश्यक है, और कुछ काली छाया भी बड़ी प्रभावोत्पादक होगी। मैं इस समय समाचार-पत्रोंमें प्रकाशित व्यंग्यचित्रोंका उल्लेख कर रहा हूँ, क्योंकि तुम कभी कभी इन पत्रों-के चित्रोंमें बहुत विस्तार और रूचिसे दी गई शेड या छाया देखोगे, पर ऐसा कम होता है, और ऐसा करना लोकप्रिय भी नहीं है।

यह कहनेकी कोई आवश्यकता नहीं है कि आकृतिलेखन और निबन्धका अच्छा अनुभव होना अति अनिवार्य है। यह भी आवश्यक है कि प्रत्येक देश, युग, या समयकी पोशाकोंका ज्ञान-भंडार भी तुम्हारे पास हो, तुम्हारे पुस्तकालयमें प्रसिद्ध चित्रकारोंके

खींचे हुये फोटो, आकृतिचित्र, या परिहासचित्र भी हों। इनका संकलन तुम समाचारपत्रों, पत्रिकाओं और सूची-पत्रोंमेंसे मनोयोगके साथ कर सकते हो।

तुममें परिहासकी कुशल प्रवृत्ति भी हो, पर यह सदा उदार और लोकप्रिय होनी चाहिये, कभी कटु या असभ्य न हो। बहुत से व्यंग्यचित्र इसलिये असफल हो जाते हैं कि चित्रकारका परिहास आवश्यकतासे अधिक सूक्ष्म होता है।

चित्र २१

मनुष्यकी प्रकृतिका तुम्हें परिचय होना चाहिये, और छोटी छोटी बातोंको (चाहे कितनी ही मन्द क्यों न हों) समझ लेनेकी योग्यता होनी चाहिये, और उन बातोंको इतना तीव्र या तीक्ष्ण बना लेनेकी योग्यता होनी चाहिये कि वे जनताकी रुचिके अनुकूल हो जायँ। यह बात रुचिपूर्वक और शुद्धतासे चित्रित करनेका प्रयास करना चाहिये। तुम्हें अच्छे व्यंग्यचित्र बनानेके लिये कुशल एवं चतुर मनुष्य या स्त्री होनेकी आवश्यकता है।

चित्र २१के सम्बन्धमें तुम देखोगे कि इसके पात्र गतिमान हैं। इस गतिने ही चित्रको 'जीवन' प्राप्त करा दिया है और इसके कारण ही चित्र इतना अच्छा लग रहा है। ऐसे चित्रणमें बस सावधानी यह रखनी चाहिये कि खींचते जाओ—शीघ्रतासे खींचते जाओ, जब तक कि तुम्हारे मस्तिष्ककी सब भावनायें पूरी उतर न आयें—ठीक उसी तरहसे जैसा मैंने चित्र ९की आकृति क₁के शिरके संबंधमें कहा था। चित्र २० में तुम असली पैंसिल से खींची हुई (घटा कर) मूल आकृति देखोगे, जो बादको चित्र २१में पूरा करके व्यंग्यचित्रके रूपमें दिखाई गई है।

फिर मैं यह सलाह दूँगा कि तुम इस चित्रको अब आलोचनात्मक दृष्टिसे देखो, शोधन और परिवर्धन करो पर जब तक नितान्त आवश्यक न समझो, पहली खींची गई रेखाओंको मिटाओ मत—जहाँ कहीं संभव हो तीक्ष्णरेखा खींचकर पहलेमें सुधार कर दो। इस समय अपने आकृतिलेखन और चित्रणमें अधिक सावधान और निश्चयात्मक रहो पर इस बातका अत्यन्त प्रयत्न करो कि शीघ्र खींचे गये मूल-चित्रमें जो 'जीवन' अंकित किया गया था, वह वैसा ही बना रहे। चित्र का निबंध जहाँ आवश्यक हो संशोधित कर दो। ये सब बातें चित्र २१में दिखाई गई हैं। बादको स्याही जितनी सफाई, और शीघ्रतासे हो सके, भरो। अपनी रुचिके अनुकूल काली चटक और छाया भी भर दो, इत्यादि।

ऐसे भी बहुतसे लोग हैं जो प्रति सप्ताह व्यंग्य चित्रोंके योग्य अनेक भावनाओंको सोच सकते हैं, और यदि तुम्हें किसी समाचारपत्रके व्यंग्यचित्रकार होनेका सौभाग्य मिल जाय तो निस्सन्देह अपने मित्रों, परिचितों और अपरिचितोंसे तुमको बहुतसे विचार मिल जायेंगे। तुम्हारा उद्देश्य यह होना चाहिये कि तुम उन विचारोंको व्यंग्यचित्रोंमें परिणत करनेमें समर्थ हो सको।

मैं फिर यह दोहरा देना चाहता हूँ कि पहले तो तुम्हें आकृति-लेखनकला आनी चाहिये, निर्जीव और सजीव दोनों। दूसरी बात यह कि तुम्हें सब प्रकारके पेड़ों, जहाज़ों, मकानों, सवारियों, बादलों और समुद्रके चित्र खींचने आने चाहिये। तुम्हें दृश्योंका, और सबसे अधिक निबन्धका ज्ञान भी आवश्यक है। सम-मापन और प्रबन्धके नियमोंका ज्ञान प्रत्येक प्रकारके चित्रके लिये आवश्यक है, और व्यंग्य चित्र भी तो एक प्रकारका चित्र है। भद्दी तरहसे आयोजित व्यंग्य-चित्र मानो भीगा हुआ कारतूस है। यह प्रभावोत्पादक न होगा। वस्तुतः ऐसे कामोंमें जहाँ प्रत्येक वस्तु जनताके तत्क्षण समझमें आजाने पर निर्भर है, निबन्ध अन्य किसी भी प्रकारकी व्यापारिक कलाकी अपेक्षा, पोस्टर विज्ञापनको छोड़कर, सबसे अधिक आवश्यक है।
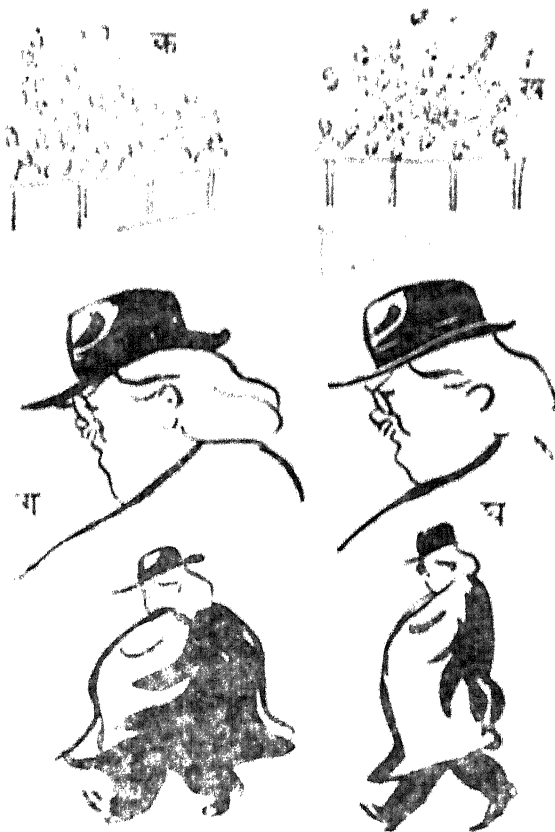
चित्र २२

दूसरी बात यह है तुम्हें व्यंग्य-चित्रको बहुत चीज़ोंसे भर नहीं देना चाहिये। इससे मेरा अभिप्राय यह है कि चित्रमें विषयके अनुकूल जितनी ही कम आकृतियाँ हों उतना ही अच्छा है। फुटबालको निरीक्षण करने वाले जनसमूहको या उसी प्रकारके और किसी झुंडको किसी अति-सरल विधि से चित्रित करना बहुत अच्छा होगा। मैंने चित्र २२ की क आकृति में इसका एक उदाहरण दिया है। हरेकके चेहरेको मत खींचो क्योंकि ऐसा करनेसे बड़ी गड़बड़झाला उत्पन्न हो जायगी। केवल उसी जगह चेहरा खींचो जहाँ आवश्यक हो। यदि तुम जनसमूहको निकटसे चित्रित करना चाहते हो, तो तुम आकृति ख के समान इसमें परिवर्तन कर सकते हो।

इस प्रकार आगाह कर देना उचित जान पड़ता है कि व्यंग्य-चित्रमें परिहास-चित्रणकी मात्रा आवश्यकतासे अधिक हो जाया करती है। आवश्यकतासे अधिक होजानेसे बढ़कर और कोई दोष नहीं है। व्यंग्य-चित्रमें तो वस्तुतः परिहास-चित्रणके संबंधमें थोड़ासा संयम चाहिये। यह इसलिये कि व्यंग्य चित्रमें चित्रकी भावना ही समुचित हास्यप्रद होनी चाहिये, और हास्यके लिये व्यक्तियोंके परिहास-चित्रणका आश्रय न लेना चाहिये। उदाहरणतः चित्र २२ की ग आकृति व्यंग्य-चित्रके लिये काफ़ी हास्यप्रद है पर पृथक परिहास-चित्रणके लिये घ आकृति अधिक उपयुक्त है।

व्यंग्य-चित्रणकी रीति या शैलीके लिये इससे अधिक और नहीं कहना है, और न और कोई सलाह देनी है, इतना ही कहना है कि चित्रमें सादगी होनी चाहिये। चित्र २३ में एक ही विषयको चित्रित करनेकी मैंने तीन शैलियाँ दी हैं। ये तुम्हारे नक़ल करनेके लिये नहीं हैं, केवल यही बतानेके लिये हैं कि एक ही विषय कई शैलियोंमें चित्रित किया जा सकता है और इनमेंसे सभी शैलियाँ एक बराबर ही अच्छी हैं। तुम अपनी निजी शैलीको परिपुष्ट करो। मुक्त हाथसे, पर असावधानीसे नहीं, खींचते जाओ, और अपनी भावना या कहानी को चित्रणके समान ही सादा रक्खो। फोटोग्राफोंकी सहायतासे और विशेषतया जीते जागते

उदाहरणोंसे अभ्यासको बढ़ाते जाओ। यदि तुमने न पढ़ा हो, तो मेरी इसी प्रकारकी अन्य पुस्तकोंको भी पढ़ डालो। यह मैं इसलिये नहीं कहता कि ऐसा

चित्र २३

करनेसे मेरी पुस्तकोंकी बिक्री बढ़ेगी, बल्कि इसलिये कि तुम्हारी योग्यता बढ़ेगी, क्योंकि प्रत्येक पुस्तक एक विशेष ध्येय को सामने रख कर लिखी गई है, विषयकी पूरी जानकारीके लिये एक पुस्तक दूसरी पुस्तकपर निर्भर है।

चित्रणके लिये कोई अवसर हाथसे जाने न दो, चाहे तुम रेलमें हो, या गाड़ीमें, बागमें, मंडलीमें या किसी गलीमें। रूप और मुखाकृति जो चित्र २२ में दी गई है वह एक प्रसिद्ध लेखककी है, और उसे मैंने एक भोजनालयमें ही उसको देखकर उतारा था। यहाँ जो दो पूरे छोटे चित्र दिये जाते हैं, उनको देखकर पता चल जायगा कि अलग खींचे गये परिहास-चित्र-के योग्य आकृति और व्यंग्य-चित्रके योग्य आकृतिमें क्या अन्तर होता है।

यह मैं जानता हूँ कि जो चित्र मैंने इस पुस्तकमें दिये हैं वे अपनी शैलीके सर्वोत्कृष्ट उदाहरण नहीं हैं, पर हाँ इतना अवश्य है—मैं विश्वासमे कहता हूँ—कि इनके आधारपर चित्रकलाकी सचाइयाँ और सिद्धान्त भली प्रकार समझमें आ सकते हैं। इसका सबसे अधिक ध्यान रक्खो कि तुम्हारे परिहास-चित्रण और आकृति-लेखनमें 'जीवन' हो। चाहे कैसी भी और कहीं भी आकृति क्यों न खींचते हो, जीता जागता भाव होना ही सर्वप्रधान है। परिहास-चित्रणमें बढ़ा कर खींचे जानेपर भी 'जीवन' और विषयकी तद्रूपता ये दो बातें बड़ी ही आवश्यक हैं।

जब तुम्हें योग्यता प्राप्त हो जाय तो अपने स्थानके व्यक्तियों और खेलोंके व्यंग्य-चित्र स्थानिक समाचार पत्रोंमें प्रकाशित कराओ। चाहे तुम अपने चित्रोंको बेचो न, फिर भी तुम इस चित्रण द्वारा स्वयं आनन्द उठा सकोगे और तुम्हारे मित्रोंका भी इससे मनोरंजन होगा।

विज्ञान परिषद्की रजत-जयंती

नवम्बरके अन्तिम सप्ताहमें विज्ञान परिषद्की रजत जयंती धूमधामसे मनाई जायगी। इस अवसरपर "विज्ञान" का एक विशेषांक सजधजके साथ निकलेगा। विज्ञानके ग्राहकोंको यह बिना मूल्य मिलेगा, पर वैसे इसका मूल्य १) होगा। आशा है, हमारे प्रेमी विज्ञानके अधिक संख्यामें ग्राहक बनेंगे।

अपने लेखकोंसे भी हमारा निवेदन है कि इस जयंती अंकके लिये अपनी रचनायें शीघ्र भेजें। हम चाहते हैं कि हिन्दीके वैज्ञानिक साहित्यकी इस अंकमें विस्तृत आलोचना हो। अतः हमारे लेखक हमें अद्यावधि प्रकाशित अपने ग्रन्थों और लेखोंसे सूचित करें तो बड़ा ही अच्छा होगा। लेखकोंके संबन्धमें भी हम यह प्रार्थना करेंगे कि वे निम्न ज्ञातव्य बातोंसे सूचित करें :—

(१) लेखकका नाम

(२) जीवन-वृत्त (संक्षिप्त)

(३) प्रकाशित लेख—सन, पत्रिकाका नाम, और विषय सहित

(४) प्रकाशित पुस्तकें

प्रयागमें तो जयंतीका उत्सव समारोहसे मनाया ही जायगा, हमारी प्रार्थना है, कि उन्हीं तिथियोंमें अन्य नगरोंमें जहां हिन्दी साहित्य प्रेमी हैं, सभायें करें, उत्सव मनायें और वैज्ञानिक साहित्यकी चर्चा करें।

हमारे कवरका चित्र

वर्तमान विज्ञापनबाज़ीका युग है। गिरधर कवि ने कहा था "करतूती कहि देत आप कहिये नहिं साईं"। इसका किसी आधुनिक कवि ने बदलकर मज़ाक किया है—"अपने मुख कहि देत और कोइ कहे या नाहीं"। बस, विज्ञापनबाज़ीका यही मूलमंत्र है। परन्तु अब कठिनाई इस बातमें पड़ रही है कि लोग विज्ञापनों की तरफ आँख ही नहीं उठाते, उसे पढ़ते ही नहीं। इसलिये लोगोंका ध्यान आकर्षित करनेके लिये तरह तरह-की युक्तियोंका प्रयोग किया जा रहा है। हालमें एक कम्पनी ने अति प्राचीन कालकी दानवाकारी जंतुका रूप बनाकर सड़कोंपर प्रदर्शित किया और उसपर अपना विज्ञापन लगा दिया।

अवश्य ही लोगोंका ध्यान ऐसे विचित्र विज्ञापनकी ओर आकर्षित हुआ होगा !!

—गो० प्र०

विषय-सूची

मुद्रक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग।

नवम्बर, १९३८ मूल्य ।)

भाग ४८. प्रयाग की विज्ञान-परिषद् का मुख-पत्र जिसमें आयुर्वेद विज्ञान भी सम्मिलित है संख्या

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces & Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

विज्ञान

पूर्ण संख्या २८४ — वार्षिक मूल्य ३)

नियम

(१) विज्ञान मासिक पत्र विज्ञान-परिषद्, प्रयाग, का मुख पत्र है।

(२) विज्ञान-परिषद् एक सार्वजनिक संस्था है जिसकी स्थापना सन् १९१३ में हुई थी। इसका उद्देश्य है कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययन को प्रोत्साहन दिया जाय।

(३) परिषद् के सभी कर्मचारी तथा विज्ञान के सभी सम्पादक और लेखक अवैतनिक हैं। मातृभाषा हिन्दी की सेवा के नाते ही वे परिश्रम करते हैं।

(४) कोई भी हिन्दी-प्रेमी परिषद् की कौंसिल की स्वीकृति से परिषद् का सभ्य चुना जा सकता है। सभ्यों को ५) वार्षिक चन्दा देना पड़ता है।

(५) सभ्यों को विज्ञान और परिषद् की नव प्रकाशित पुस्तकें बिना मूल्य मिलती हैं।

नोट—आयुर्वेद-सम्बन्धी बदले के सामयिक पत्रादि, लेख और समालोचनार्थ पुस्तकें 'स्वामी हरिशरणानन्द, पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी, अकाली मार्केट, अमृतसर' के पास भेजे जायें। शेष सब सामयिक पत्रादि, लेख, पुस्तकें, प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र तथा मनीआर्डर 'मंत्री, विज्ञान-परिषद्, इलाहाबाद' के पास भेजे जायें।

विज्ञान

जिल्द ३९-४० की २० प्रतियाँ हमारे पास आवश्यकतासे अधिक बच गई हैं।

४८० पृष्ठ, बीसों चित्र (एक रंगीन), सजिल्द, मूल्य केवल १।)

पैसा कमानेके अनेक नुसखें; अनेक रोचक लेख; आयुर्वेदके भी अनेक लेख; १।) शीघ्र पेशगी भेजें। डाक व्यय माफ़

आकाशकी सैर

आधुनिक ज्योतिष पर सरल, सुबोध, रोचक, सचित्र और सजिल्द सुन्दर मनोरम पोथी, ८८ पृष्ठ, ५० चित्र (एक रंगीन),

लेखक—डा० गोरखप्रसाद, डी० एस-सी० मूल्य ।।।)

सूर्य-सिद्धान्त

संस्कृत मूल तथा हिन्दी 'विज्ञान-भाष्य'

प्राचीन गणित-ज्योतिषके सीखनेका सबसे सुलभ उपाय

विज्ञान भाष्य इतना सरल है कि इसकी सहायतासे सभी जो इन्टरमिडियट तक का गणित जानते हैं सूर्य-सिद्धान्तका अध्ययन कर सकते हैं। गणित न जाननेवाले भी इस पुस्तकसे तारोंकी पहचान, पुराने ज्योतिषियोंके सिद्धान्त, पञ्चांग बनानेके झगड़े आदि सम्बन्धी कई रोचक विषयोंका ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

पण्डितों और ज्योतिषियोंके लिये तो यह विशेष उपयोगी है।

१११५ पृष्ठ, १३४ चित्र और नकशे। मूल्य ५); सजिल्द ५।।)

अथवा मध्यमाधिकार ।।=), स्पष्टाधिकार ।।।), त्रिप्रश्नाधिकार १।), चन्द्रग्रहणाधिकारसे ग्रहयुत्यधिकारतक १।), उदयास्ताधिकारसे भूगोलाध्यायतक ।।।)

विज्ञान-परिषद, इलाहाबाद

महत्वपूर्ण वैज्ञानिक साहित्य

मिलनेका पता विज्ञान-परिषद, इलाहाबाद

विज्ञान हस्तामलक—विस्तृत विवरण अन्यत्र देखें—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम० ए०, ६)

सुन्दरी मनोरमाकी करुण कथा—वैज्ञानिक कहानी—ले० श्री नवनिद्धिराय, एम०ए०, =)॥

वैज्ञानिक परिमाण—नापकी एकाइयाँ, ग्रहोंकी दूरी आदि, देशोंके अक्षांश, तत्वोंका परिमाण, घनत्व आदि, पदार्थोंके घनत्व, ननकी तनाव शक्तियाँ, स्निग्धता तथा द्रवांक, शब्द संबंधी अनेक परिमाण, दर्पण बनानेकी रीति, वस्तुओंकी वैद्युत बाधायें, बैटरियोंकी विद्युत-सञ्चालक शक्तियाँ, इत्यादि-इत्यादि अनेक बातें तथा चार दशमलव अंकों तक संपूर्ण लघुरिक्थ सारिणी—ले० डा० निहालकरण सेठी, डी० एस-सी०, तथा डा० सत्यप्रकाश, डी० एस-सी० ।॥)

वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्द ४८२१ अंग्रेजी शब्दोंके हिन्दी पारिभाषिक शब्द—शरीर-विज्ञान ११८४, वनस्पति-विज्ञान २८८, तत्व ८६, अकार्बनिक रसायन ३२०, भौतिक रसायन ४८१, कार्बनिक रसायन १४४६, भौतिक-विज्ञान १०१६—ले० डा० सत्यप्रकाश डी० एस-सी० ॥)

विज्ञान प्रवेशिका—विज्ञानकी प्रारंभिक बातें सीखनेका सबसे उत्तम साधन, मिडिल स्कूलोंमें पढ़ाने योग्य पाठ्य-पुस्तक ।)

मिफ़्ताह-उलफ़नून—विज्ञान प्रवेशिकाका उर्दू अनुवाद ले० प्रो० सैयद मोहम्मद अली नामी, एम० ए० ।)

आविष्कार-विज्ञान—उन शक्तियोंका वर्णन जिनकी सहायतासे मनुष्य अपना ज्ञान-भंडार स्वतंत्र रूपसे बढ़ा सके—ले० श्री उदय-भानु शर्मा। पूर्वार्ध ।=)

उत्तरार्ध ॥।)

विज्ञान और आविष्कार—एक्स-रेज, रेडियम, भूपृष्ठशास्त्र, सृष्टि, वायुयान, विकाशवाद, ज्योतिष आदि विषयोंका रोचक वर्णन और इतिहास—ले० श्री सुखसम्पति-राय भंडारी १=)

मनोरंजक रसायन—इसमें रसायन-विज्ञान उपन्यासकी तरह रोचक बना दिया गया है—ले० प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव, एम० एस-सी० १॥)

रसायन इतिहास—रसायन इतिहासके संबंधमें १२ लेख—ले० श्री आत्माराम, एम० एस-सी० ॥।)

प्रकाश-रसायन—प्रकाशसे रासायनिक क्रियाओं पर क्या प्रभाव पड़ता है—ले० श्री वि० वि० भागवत १॥)

दियासलाई और फ़ॉस्फ़ोरस—सबके पढ़ने योग्य अत्यंत रोचक पुस्तक—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम० ए० =)

ताप—हाई स्कूलमें पढ़ाने योग्य पाठ्य-पुस्तक—ले० प्रो० प्रेमवल्लभ जोशी, एम० ए० तथा श्री विश्वम्भरनाथ श्रीवास्तव, एम० एस-सी०, चतुर्थ संस्करण ॥=)

हरारत—तापका उर्दू अनुवाद—ले० प्रो० मेंहदीहुसेन नासिरी, एम० ए०, ।)

चुम्बक—हाई स्कूलमें पढ़ाने योग्य पाठ्य-पुस्तक—ले० प्रो० सालिग्राम भार्गव, एम० एस-सी० ।=)

पशुपक्षियोंका शृङ्गार-रहस्य—ले० श्री सालिग्राम वर्मा, एम० ए०, बी० एस-सी० ―)

जीनत वहश व तयर-पशुपक्षियोंका शृङ्गार-रहस्यका उर्दू अनुवाद—अनु० प्रो० मेंहदी-हुसेन नासिरी, एम० ए० ―)

चींटी और दीमक—सर्व-साधारणके पढ़ने योग्य अत्यंत रोचक पुस्तक—ले० श्री लक्ष्मी नारायण दीनदयाल अवस्थी ।।)

सूर्य-सिद्धान्त—विस्तृत व्योरा अन्यत्र देखें—ले० श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव, बी० एस्-सी०, एल० टी०, विशारद ५)

सृष्टिकी कथा—सृष्टिके विकासका पूरा वर्णन—ले० डा० सत्यप्रकाश, डी० एस्-सी० १)

सौर-परिवार—विस्तृत विवरण अन्यत्र देखें—ले० डा० गोरखप्रसाद, डी० एस-सी० १२)

समीकरण-मीमांसा—एम० ए० गणितके विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य पुस्तक—ले० पं० सुधाकर द्विवेदी, प्रथम भाग १।।)

दूसरा भाग ।।=)

निर्णायक (डिटर्मिनैंट्स)—एम० ए० के विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य पुस्तक—ले० प्रो० गोपालकेशव गर्दे, एम० ए० और श्री गोमतीप्रसाद अग्निहोत्री, बी० एस-सी० ।।)

बीजज्यामिति या भुजयुग्म रेखा-गणित—एफ० ए० गणितके विद्यार्थियोंके लिये-ले० डा० सत्यप्रकाश, डी० एस-सी० १।)

क्षय-रोग—क्षय-रोगमें बचनेके उपाय—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी० एस-सी०, एम० बी० बी० एस०

क्षय-रोग—विस्तृत विवरण अन्यत्र देखिये—ले० डा० शंकरलाल गुप्त, एम० बी० बी० एस० ६)

शिक्षितोंका स्वास्थ्य व्यतिक्रम—पढ़े-लिखे लोगोंको जो बीमारियाँ अक्सर होती हैं उनसे बचने और अच्छे होनेके उपाय—ले० श्री गोपालनारायण सेनसिंह, बी० ए०, एल० टी० ।)

ज्वर, निदान और शुश्रूषा-सर्व-साधारण-के पढ़ने योग्य पुस्तक—ले० डा० बी० के० मित्र, एल० एम० एस० ―)

स्वास्थ्य और रोग-विस्तृत विवरण अन्यत्र देखें—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा ६)

हमारे शरीरकी रचना—विस्तृत विवरण अन्यत्र देखें—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा,

प्रथम भाग २।।।=)

द्वितीय भाग ४=)

स्वास्थ्य-विज्ञान—गृहनिर्माण, वायु, जल, भोजन, स्वच्छता, कीटाणु, छूतवाले रोग, स्वास्थ्य आदि पर सरल भाषामें विशद तथा उपयोगी विवेचन—ले० कैप्टेन, डा० रामप्रसाद तिवारी, हेल्थ ऑफिसर, रीवाँ राज्य । ३)

स्वस्थ शरीर—प्रथम खंड—मनुष्यके अस्थि-पंजर, नस, नाड़ियाँ, रक्ताणु, फुफ्फुस, वृक्क, पेट, शुक्राशय आदिका सरल वृत्तांत और स्वास्थ्य-रक्षाके नियम । दूसरा खंड—व्यक्तिगत स्वास्थ्य-रक्षाके उपाय—ले० डा० सरजूप्रसाद तिवारी, और पं० रामेश्वर-प्रसाद पाण्डेय, प्रथम खंड २)

द्वितीय खंड २।)

आसव विज्ञान—वैद्योंके बड़े कामकी पुस्तक-ले० स्वामी हरिशरणानन्द १)

मन्थर ज्वरकी अनुभूत चिकित्सा—वैद्योंके बड़े कामकी पुस्तक—ले० स्वामी हरिशरणानन्द)

त्रिदोष मीमांसा—यह पुस्तक मुख्यतया वैद्योंके कामकी है, किन्तु साधारण जन भी विषय ज्ञानके नाते इससे बहुत लाभ उठा सकते हैं—ले० स्वामी हरिशरणानन्द १)

क्षार-निर्माण-विज्ञान—क्षार-सम्बन्धी सभी विषयोंका खुलासा वर्णन—ले० स्वामी हरिशरणानन्द ।)

प्रसूति-शास्त्र—विस्तृत विवरण अन्यत्र देखिये—ले० डा० सादीलाल झा, एल० एम० एस० २)

भारतीय वनस्पतियों पर विलायती डाक्टरोंका अनुभव—विस्तृत विवरण अन्यत्र देखिये २)

कृत्रिम काष्ठ—एक रोचक लेख—ले० श्री गंगाशंकर पचौली ≈)

वर्षा और वनस्पति—भारतका भूगोल और आबहवा—भारतकी स्वाभाविक आवश्यकताएँ—शीतलता प्राप्त करनेके साधन—वर्षा और वनस्पति—जल संचय—वनस्पतिसे अन्य लाभ—ये इस पुस्तकके अध्याय हैं—ले० श्री शङ्करराव जोशी ।)

वनस्पति-शास्त्र—पेड़ोंके भिन्न-भिन्न अंगोंका वर्णन, उनकी विभिन्न जातियाँ, उनके रूप, रंग, भेद इत्यादिका सरल भाषामें वर्णन, सर्व-साधारणके पढ़ने योग्य पुस्तक—ले० श्री केशव अनन्त पटवर्धन, एम० एस-सी०, ।।≈)

तरकारीकी खेती—६३ तरकारियों आदिकी खेती करनेका विशद वर्णन ।।≈)

उद्भिजका आहार—एक रोचक लेख—ले० श्री एम० के० चटर्जी ।)

फ़ोटोग्राफ़ी—विस्तृत विवरण अन्यत्र देखिये—ले० डा० गोरखप्रसाद, डी० एस-सी० ५)

सुवर्णकारी—सुनारोंके लिये अत्यंत उपयोगी पुस्तक, इसमें सुनारी संबंधी अनेक नुसखे भी दिये गये हैं—ले० श्री गंगाशंकर पचौली ।)

यांत्रिक चित्रकारी—विस्तृत विवरण अन्यत्र देखिये—ले० श्री ओंकारनाथ शर्मा, ए० एम० आई० एल० ई०,
अजिल्द सस्ता संस्करण २।।)
राज संस्करण सजिल्द ३।।)

वैक्युम-ब्रेक—विस्तृत विवरण अन्यत्र देखें—ले० श्री ओंकारनाथ शर्मा, ए० एम० आई० एल० ई० २)

सर चन्द्रशेखर वेंकट रमन—भारतके प्रसिद्ध विज्ञानाचार्यका जीवन चरित्र—ले० श्री युधिष्ठिर भार्गव, एम० एस-सी० ≈)

डा० गणेशप्रसादका स्मारक-विशेषांक—८० पृष्ठ—सम्पादक डा० गोरखप्रसाद, डी० एस-सी० और प्रो० रामदास गौड़ ४)

वैज्ञानिक जीवनी—श्री पञ्चानन नियोगी, एम० ए०, एफ० सी० एस०, की 'वैज्ञानिक जीवन' नामक बङ्गला पुस्तकका हिन्दी अनुवाद—अनु० रीवा-निवासी श्री रामेश्वरप्रसाद पाण्डेय १)

गुरुदेवके साथ यात्रा—ले० श्री महावीरप्रसाद, बी० एस-सी०, विशारद ।–)

केदार—बद्री यात्रा—बद्रीनाथ केदारनाथकी यात्रा करनेवालोंको इसे अवश्य एक बार पढ़ना चाहिये—ले० श्री शिवदास मुकर्जी, बी० ए० ।)

उद्योग-व्यवसायांक—विज्ञानका विशेषांक—इसमें पैसा बचाने तथा कमाईके सहज और विविध साधन दिये गये हैं। १२० पृष्ठ, १।।)

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै॰ उ॰ ।३।५॥

भाग ४८	प्रयाग, वृश्चिकार्क, संवत् १९९५ विक्रमी नवम्बर, सन् १९३८	संख्या २

आगसे न जल सकनेवाला काग़ज़ और लकड़ी

(ले॰—डा॰ उमाशंकर प्रसाद, एम॰ बी॰, बी॰ एस॰)

बहुत दिनोंसे मनुष्यकी इच्छा इस बातकी है कि वह किसी उपायसे लकड़ीको ऐसा बना सके कि आगका असर लकड़ीपर न हो सके। इसीसे चौथी शताब्दी पहलेसे लोग इस धुनमें पड़ गये थे। इमारती शहतीरों तथा सुन्दर नक्काशीदार कारीगरीके दरवाजों आदिके आगमें जलनेका बड़ा डर रहता है। लकड़ी गोदाम और कागज़के गोदाममें आग लगनेसे बहुत भारी हानि हो जाती है। इन वस्तुओंमें व्यवसाय करनेवालोंको ऐसी वस्तु जो आगसे बचा सके बड़ी लाभदायक होगी और इसीसे यह लोग सर्वदा नयेसे नये उपायोंके पता लगानेमें लगे रहते हैं। इम्पीरियल कैमिकल इण्डस्ट्रीजने ऐसे यौगिक या पदार्थ बनाये हैं जिनके प्रयोगसे घरन, लकड़ीके तख्ते, प्लाईउड, कागज़ तथा अन्य ऐसी वस्तुओंमें आग लगनेका बहुत कम डर रह जाता है।

आगसे बचानेवाले ये यौगिक अपना काम दो प्रकारसे करते हैं। एक उपाय तो यह है कि विशेष दवाओं और क्रियाओंके प्रयोगसे विशेष तापपर ऐसी गैसें पैदा होती हैं जिनमें आग नहीं लग सकती। लकड़ी जलानेके लिये जितने तापकी आवश्यकता होती है उससे कम तापके पैदा होते ही इन मिश्रणसे न जल सकनेवाली गैसें बनने लगती हैं और यह गैसें लकड़ी आदि वस्तु जिसपर यह लगी रहती हैं उसे चारों ओरसे लिफाफेकी भाँति ढक लेती हैं। जिससे लकड़ीमें आग पकड़ना असंभव हो जाता है। दूसरा उपाय यह है कि ऐसा मिश्रण होता है जिसका गुण यह है कि मिश्रण जले हुये आगके कोयलेके लाल अंगारेके ऊपर एक तह बना देता है जिससे आग बुझ जाती है। क्योंकि इस तहके भीतर ओषजन प्रवेश नहीं कर पाता है। इस प्रकार आग बढ़ने नहीं पाती है।

एक बार ऊपरकी दवाओंके प्रयोग किये जानेपर बहुत समयतक लकड़ियाँ सुरक्षित रहती हैं। जाँच करनेसे पता लगा है कि इस क्रिया द्वारा लकड़ीमें किसी प्रकारकी कमजोरी नहीं आती है।

तीन किस्मकी दवायें हैं। पहली श्रेणीमें उस प्रकारकी दवायें हैं जिनसे सब प्रकारकी लकड़ियाँ अर्थात् सब प्रकारके सेल्यूलोज़की बनी वस्तुयें—आग न लगने योग्य बनाई जा सकती हैं यह मिश्रण साधारण काममें आने लायक है जिसके द्वारा मकानके भीतर और बाहर लगनेवाली लकड़ियाँ गरम देशोंमें बचायी जाती हैं। दूसरे प्रकारके मिश्रण बाहरके काममें आनेवाली लकड़ियों और शहतीरोंके लिये हैं जिनसे बड़े काम होते हैं और जो बहुत वर्षोंतक चलते हैं।

तीसरे प्रकारके मिश्रण ऐसी विशेष दवायें हैं जो ब्रुश और स्प्रे (फौव्वारे) द्वारा लकड़ियोंपर छिड़की जाती हैं जैसे चटाई नरकट या बाँसकी टट्टर या काग वगैरह जिनमें दवाइयाँ आसानीसे सोखकर भीतरतक नहीं घुस पाती हैं।

यह सब दवाइयाँ पानीके घोलके रूपमें लगाई जाती हैं। घोल न तो विषैला ही होता है और न इसमें किसी प्रकारकी महक ही रहती है। एक विशेष गुण यह भी है कि यह घोल कीड़े मकोड़ोंको नष्ट भी कर देते हैं और जिस वस्तुपर लगाये गये शीघ्र उसके भीतर भी घुस जाते हैं। इन दवाओंमें मुख्य वस्तु मोन-एमोनियम फॉस्फेट है। जिसके विभक्त होनेसे आग न लगनेकी शक्ति आजाती है। यह भी ख्याल है कि लोहे तथा अन्य धातुपर इनका ऐसा कोई बुरा असर नहीं होता कि उसे काट डाले बल्कि जैसे-जैसे समय बीतता जाता है, हवा पानी इत्यादिसे यह घोल बचाव भी करता है। १२% दवाके घोलके प्रयोगसे सबसे उत्तम काम होता है।

प्रयोगकी विधि

इन घोलोंके काममें लानेकी तीन मुख्य रीतियाँ हैं। किस कामके लिये प्रयोग होगा और कौन सुविधायें होंगी इसीपर चुनाव निर्भर है। सबसे बढ़िया और चलाऊ रीति यह है जिसमें दवाको दबाव द्वारा लगाया जाय जिससे दवा रेशोंमें भीतर तक पहुँच जाय। लकड़ीको पहले भापमें रक्खा जाता है जिसके बाद हवा शून्य स्थानमें और तब १५-१८ % दवाके दूसरे प्रकारके घोलमें डुबाकर विशेष ताप और वायुके दबावमें इन सब क्रियाओंके लिये विशेष यंत्रोंकी आवश्यकता पड़ती है।

दूसरा उपाय यह है कि पहले गरम और फिर ठंडे दवाके घोलमें लकड़ी डुबो दी जाती है कि दवाको लकड़ी सोख ले।

तीसरी रीतिमें दवा फव्वारेके रूपमें छिड़क दी जाती है और इसमें तीसरे प्रकारका मिश्रण काममें लाया जाता है। सुखानेके लिये या तो सूर्यकी गरमी काममें लायी जाती है या बड़ी-बड़ी भट्टियोंमें लकड़ियाँ सुखायी जाती हैं।

यह क्रिया बहुत मंहगी नहीं है बल्कि सस्ती है—बहुत ज्यादा मिश्रण भी नहीं चाहिये। प्रायः एक घनफुट लकड़ीके लिये १ (-२) सेर बैठता। यदि लकड़ीपर दवा लगाकर वार्निश कर दी जाय तो दवा छूटेगी नहीं और आग न पकड़नेका गुण चिरकालके लिये बना रहेगा। पर यदि वार्निश न की भी जाय तो भी यदि दवा ऊपरसे छिटकी जाय तब भी कुछ दवा लकड़ीमें घुस ही जायगी जिससे बचाव हो जायगा। लेकिन यदि लकड़ी फट जाय और बीचमें दरारें पड़ जायें तो इन दरारोंमें नई लकड़ीकी सतह निकल आयेगी वहाँ दवाकी सतह न रहेगी और वहाँ आग लग सकेगी।

न जलनेवाला कागज़

इसी दवा द्वारा कागज़ भी आगसे न जलने योग्य बनाया जाता है। कागज़ बनाते समय ही इस दवाका प्रयोग किया जा सकता है अथवा कागज़ बन जानेके बाद ऐसे आग न लगने योग्य कागज़की कन्दीलें, झंडियाँ आदि जिनसे उत्सवोंमें सजावटका काम लिया जाता है, बहुत उपयोगी है।

चौना कागज़को भी इसी दवासे आग न लगने योग्य बनाया जा सकता है। पैकिंग आदिमें लपेटने और गद्दी लगानेवाले कागज़से लेकर मोटी-मोटी दफ्तियोंतक जिन्हें दीवारपर लगाया जाता है आग न लगने योग्य बनाया जा सकता है।

कीटाणुओंका हमारे दैनिक जीवनसे सम्बन्ध

(ले० श्री सुदर्शनदेव कुलश्रेष्ठ, एम० ए० प्रीवियस बी० एस-सी० एग्रीकलचर, एल० टी०)

ईश्वरकी प्रकृति विचित्र है। प्राकृतिक सौंदर्य आलोकन करनेके लिये हमें दो नेत्र प्रदान किये हैं परन्तु प्रकृतिकी बहुत ऐसी विचित्रतायें हैं जिन्हें देखनेकी शक्ति इन चर्म-चक्षुओंमें नहीं है। तत्वोंके सूक्ष्म कणोंके अतिरिक्त प्रकृतिमें अनेक प्रकारके ऐसे सूक्ष्म जीव भी हैं जो इन नेत्रोंसे कदापि नहीं देखे जा सकते जबतक कि सूक्ष्म-दर्शक-यंत्रसे न देखा जाय। ऐसे सूक्ष्म जीवको जीवाणु या कीटाणु कहते हैं और अंग्रेजीमें माइक्रोब या बैक्टीरिया।

इनके सूक्ष्म आकारका अनुमान इस प्रकार किया जा सकता है कि लगभग एक हजार १००० कीटाणुओं-को एक रेखामें मिलाकर रख दिया जाय तो कठिनतासे एक सेंटीमीटर लम्बी रेखा बन सकेगी। इन कीटाणुओं-की आकृति तथा आकार एकसे नहीं होते। कुछ बेलनाकार अर्थात छड़की भाँति लम्बी आकृतिके होते हैं जिनको बेसिलाई कहते हैं, कुछ गेंदके समान गोल होते हैं जिनको कोकाई कहते हैं और कुछ टेढ़े-मेढ़े तथा मुड़ी हुई आकृतिके होते हैं जो स्पाइरल या कुण्डली कहे जाते हैं।

कीटाणु कैसे हैं ?

कीटाणुओंके शरीरमें बड़े-बड़े जीवधारियोंकी भाँति अंग नहीं होते केवल एक झिल्लीकी दीवारके भीतर कुछ द्रव पदार्थ भरा रहता है। झिल्ली द्वारा ये जीव अपना भोजन उसी प्रकार चूसते हैं जैसे पौदोंकी जड़ें अपनी झिल्लियों द्वारा भूमिसे अपना भोजन घोल रूपमें चूसती हैं। अन्य जीवोंकी भाँति इनके भी शरीरसे दूषित पदार्थ निकलते हैं और ये वंश-वृद्धि भी करते हैं किन्तु इनके वंश वृद्धिकी रीति बिल्कुल निराली है। एक कीटाणु उचित परिस्थिति (उचित भोजन, गर्मी तथा वायु) के प्राप्त होनेपर लगभग आध घंटेके भीतर ही एकसे दो हो जाते हैं। ये दोनों जीवाणु आकारमें पहले कीटाणुके ही समान हो जाते हैं और उसीकी भाँति दोनों फिर दो-दो भागोंमें विभाजित होते जाते हैं। इनकी वंश-वृद्धिका यही क्रम तबतक चलता रहेगा जबतक विपरीत परिस्थिति उपस्थित नहीं होगी।

इस प्रकार एक घंटेके अंदर एक कीटाणुसे चार कीटाणु और दो घंटेमें सोलह, तीन घंटेमें चौंसठ, आठ घंटेमें पैंसठ हज़ार पाँच सौ छत्तीस और पंद्रह घंटेमें लगभग सौ करोड़ कीटाणु हो जाते हैं। यदि कीटाणुकी वंश-वृद्धिका यही क्रम जारी रहे तो एक कीटाणुसे कुछ दिनोंमें इतने कीटाणु पैदा हो जाँय कि एक मालगाड़ीके डिब्बे भी उन्हें लाद ले जानेमें समर्थ न हों परन्तु ऐसा नहीं होता।

प्रायः प्राकृतिक बाधायें उपस्थित होकर इनकी वंश-वृद्धि-परंपराको छिन्न भिन्न कर दिया करती हैं। कभी भोजनकी कमी, कभी सर्दी गर्मीकी अधिकता और कभी इनका स्वयमुत्पादित विष इनकी वृद्धि अवरोध एवं विनाशका कारण होता है। प्रतिकूल परिस्थितियों-को पार करने हेतु कीटाणु अपनी जीवन-क्रिया स्थगित कर बदली हुई अवस्थाओंमें अनुकूल अवस्थाओंकी प्रतीक्षा करते हैं।

क्या सभी कीटाणु हानिकर हैं ?

कुछ कीटाणु हमारे जीवनके लिये लाभदायक और कुछ हानिकारक हैं। लाभदायक कीटाणु ऐसे पदार्थ उत्पन्न करते हैं जिनसे हमें लाभ होता है और हानिकारक कीटाणु हानिकारक पदार्थ और विष पैदा करते हैं जिनसे हमारी शारीरिक और आर्थिक हानि होती है। कीटाणुका हमारे जीवनसे घनिष्ठ संबंध है क्योंकि प्रायः घातक रोग जैसे प्लेग, हैज़ा, राजयक्ष्मा, मलेरिया, पीला ज्वर इत्यादि इन्हींसे पैदा होते हैं।

भूमिमें कई प्रकारके कीटाणु पाये जाते हैं। कुछ हानिकारक कीटाणु पृथ्वीके (मिट्टीके खाद आदि)

जीवांशको नष्ट करके उसकी नाइट्रोजनको जो पौदोंका मुख्य भोजन है निकाल देते हैं, जिससे फसलोंकी बहुत हानि होती है। इनके विरुद्ध कुछ लाभदायक कीटाणु मिट्टीके अन्दर हवाके स्वतंत्र नाइट्रोजनको नाइट्रेट (पौदोंके भोजन) के रूपमें एक करते हैं इस क्रियाको नाइट्रीफिकेशन और इन कीटाणुओंको नाइट्रो फ़ाइंग बैक्टोरिया कहते हैं।

मिट्टीमें एक दूसरे प्रकारके भी लाभदायक कीटाणु पाये जाते हैं जो प्रायः एक मुख्य जातिके पौदोंकी जड़ोंमें निवास करते हैं। मटर, चना, अरहर, सनई, मूँगफली इत्यादि जिनमें तितली जैसा फूल लगता है लग्यूमनस जातिके पौदे हैं। इनमेंसे किसी भी पौदेकी जड़का निरीक्षण करनेपर जड़ और उनकी शाखाओंमें अनेक फफोले तथा घुंडियोंसी दिखाई पड़ेंगी। इन्हीं फूली हुई जगहोंमें लाभदायक कीटाणु निवास करते हैं। वे कीटाणु हवाकी स्वतंत्र नाइट्रोजनको पौदेके भोजनके रूपमें एकत्र करते हैं जिससे पौदे और भूमिके भीतर पौदोंके भोजनकी मात्रा अधिक हो जाती है। इस क्रियाको नाइट्रोजन फिक्सेशन या नोषजनीकरण कहते हैं। हवामें ⅘ भाग नाइट्रोजन है। परन्तु पौदोंके लिये व्यर्थ है जबतक उसके भोजनके रूपमें परिवर्तित न हो जाय। ये कीटाणु अपने इस परिवर्तन द्वारा कृषिको बहुत लाभ पहुँचा देते हैं। भूमिकी ऊपरी शक्तिको स्थायी रखने एवं बढ़ानेके लिये बीचमें ऐसी फसलोंका बोना बहुत लाभदायक होता है। इसलिये फसलोंके परिवर्तनमें लग्यूमनस फसलोंको अवश्य स्थान देना चाहिये।

दहीके कीटाणु

हमें यह जानकर आश्चर्य होगा कि जिस दहीको हमलोग बड़े चावसे खाते हैं उसके अन्दर असंख्य कीटाणु हैं। सम्भव है कि बहुतसे लोग यह जानकर दहीसे घृणा करने लगें परन्तु साथ ही साथ उन्हें यह भी जान लेना चाहिये कि उनके उपाय करनेपर भी वे कीटाणुसे बच नहीं सकते क्योंकि हवामें भी असंख्य कीटाणु वर्तमान हैं जो प्रतिपल श्वास द्वारा हमारे शरीरमें प्रवेश करते रहते हैं। दूध जमानेवाले कीटाणु प्रतिपल श्वास द्वारा हमारे शरीरमें प्रवेश करते रहते हैं। दूध जमानेवाले कीटाणु दूधके अन्दर खटाई उत्पन्न कर देते हैं जिससे दही में खट्टापन आ जाता है। यह खटाई कीटाणुके शरीरसे निकला हुआ पदार्थ है जो हम लोगोंके लिये लाभप्रद है क्योंकि इससे पाचन-क्रियामें सहायता मिलती है।

रोगोत्पादक कीटाणु

कीटाणु हमें चारों तरफसे घेरे हुये हैं। हवामें, भूमिपर तथा हमारे प्रयोगकी प्रत्येक वस्तु—चाकू, कलम, कपड़े इत्यादि वस्तुओंमें कीटाणु हैं। ऐसी दशामें हमारा शरीर किस प्रकार इन अदृश्य शत्रुओंसे रक्षा कर सकता है? प्रकृतिने हमारे तथा हमारे अतिरिक्त अन्य जीवोंके शरीरमें विचित्र शक्ति प्रदान की है जिसके कारण हानिकारक कीटाणु हमें सर्वदा नहीं सता सकते। इसमें संदेह नहीं कि इन कीटाणुओंका प्रकोप घातक जन्तुओंके प्रकोपसे भी अधिक भयानक है। शरीरके अन्दर पहुँचकर ये कीटाणु केवल भोजन ही नहीं लेते प्रत्युत विष भी उत्पन्न कर देते हैं जो रोगका कारण होता है। किसी-किसी कीटाणुका विष अधिक तीव्र होता है जैसे प्लेग, हैजाके कीटाणुका और किसी-किसी कीटाणुका कम जैसे मलेरिया इत्यादि का।

शरीरकी रक्षक शक्ति

हमारे शरीरके अन्दरकी रक्षक-शक्ति अन्दर प्रवेश करनेवाले कीटाणुसे युद्ध किया करती है। हमारे रुधिरमें असंख्य रक्त-कणोंके अतिरिक्त कुछ श्वेत अणु भी होते हैं जिनमेंसे कुछ ऐसे होते हैं जो वीर सैनिकोंकी भाँति सम्पूर्ण शरीरमें चक्कर लगाते रहते हैं और जहाँ कहीं भी किसी शत्रु (कीटाणु) को पकड़ा, उसपर आक्रमण करके उसे हड़प जाते हैं किन्तु यदि शत्रुओंकी शक्ति अधिक हो तो इस युद्धमें शरीर-रक्षक-शक्ति पराजित हो जाती है और शरीरपर शत्रुओंका आधिपत्य हो जाता है। शरीर अपनी रक्षाके निमित्त कीटाणु द्वारा उत्पन्न किये विषको श्वेत,

मूत्र, मल इत्यादि साधनों द्वारा बाहर निकाला करता है। हृदय तीव्र गतिसे काम करने लगता है जिससे शरीरमें गर्मी (ज्वर) उत्पन्न हो जाती है और नाड़ीकी गति बदल जाती है। कीटाणुका प्रकोप तीव्र होनेपर शरीरकी सारी शक्तियां विफल हो जाती हैं और जीवनसे हाथ धोना पड़ता है।

रोगोंसे बचनेके लिये यह आवश्यक है कि शरीरकी रक्षक शक्ति सबल रहे। विशेष प्रकारके रोगों जैसे हैजा, प्लेग इत्यादिसे बचनेके लिये प्रायः टीके द्वारा शरीरकी रक्षक शक्तिको बढ़ा लिया जाता है।

रक्तके श्वेत अणुके अतिरिक्त कुछ प्राकृतिक रसायनिक क्रियाओं द्वारा भी कीटाणु द्वारा पैदा किया हुआ विष नष्ट कर दिया जाता है। जो कीटाणु भोजन द्वारा शरीरमें प्रवेश करते हैं वे प्रायः पेटके तेजाबी रसद्वारा नष्ट हो जाते हैं। शरीरके चर्ममें होकर कीटाणुका प्रवेश असम्भव है। जब हम सो जाते हैं तो गलेके अन्दरकी झिल्ली बाह्य कीटाणुको निकालकर मुँहकी ओर फेंक देती है ताकि वे भीतर प्रवेश न कर सकें। सोकर उठनेपर हम लोग इसे कुल्लासे बाहर निकाल देते हैं।

हानिकारक कीटाणुसे बचनेके उपाय

रोगोत्पादक कीटाणु निम्नलिखित रीतियोंसे हमारे शरीरमें प्रवेश करते हैं।

(१) भोजन तथा पानीके साथ (२) हवाके साथ (३) शरीरके किसी घावके साथ तथा (४) कीड़े मकोड़ोंको काटनेसे जैसे मच्छरसे मलेरिया और पिस्सूसे प्लेगके कीटाणु। इसके अतिरिक्त हमारे दैनिक प्रयोगकी वस्तुओंको छूकर यदि भोजन या घावपर लगा दिया जाय तो ये कीटाणु शरीरके अंदर प्रवेश करते हैं। आंख तथा राजयक्ष्मा (तपेदिक) की बीमारीके कीटाणु प्रायः रोगीके रूमाल व तौलियाद्वारा दूसरोंतक पहुँच जाते हैं। इन कीटाणुओंसे बचनेके लिये निम्नलिखित नियमोंका ध्यान रखना आवश्यक है।

(१) खाने-पीनेकी वस्तुयें शुद्ध तथा कीटाणुरहित हों, उबालनेसे प्रायः वस्तुओंके कीटाणु मर जाते हैं। भोजन करनेसे पहिले हाथोंको कीटाणुनाशक साबुन तथा अन्य वस्तुओंसे मल-मलकर भली भाँति शुद्ध कर लेना चाहिये। धूलके कणोंमें भी असंख्य कीटाणु भरे रहते हैं। इसलिये भोजन सामग्रीको धूल तथा अशुद्ध वायुसे बचाना चाहिये। (२) सर्वदा शुद्ध वायुमें साँस लेनी चाहिये। धूल तथा धूयेंसे भरी हुई वायुके साथ राजयक्ष्मा आदि बीमारियोंके कीटाणु फेफड़ेमें पहुँच जाते हैं। (३) शरीरमें कहीं घाव होनेपर सावधानी तथा स्वच्छतासे धोकर एवं दवा लगाकर मरहम पट्टी करनी चाहिये और ऐसा करनेमें कीटाणुनाशक वस्तुओं जैसे पोटास, परमैंगनेट, टिंचर आयोडीन, कारबोलिक साबुन तथा उबालने आदिका प्रयोग करना चाहिये। (४) बहुतसे कीड़े, बीमारियोंके कीटाणु फैलाते हैं जैसे मक्खी तथा चींटे द्वारा हैजा, पेचिस, दस्त आदिके कीटाणु, मच्छर काटनेसे मलेरिया तथा पीले ज्वरके कीटाणु तथा चूहेके पिस्सूसे प्लेगके कीटाणु फैलते हैं। जूँ, खटमल आदि भी खुजली आदि बीमारियोंके कीटाणु फैलाते हैं।

जबतक कीटाणु तथा उनके नाश करनेके उपायोंसे मनुष्य अनभिज्ञ थे तबतक साधारण चीरफाड़ सरलतासे नहीं की जा सकती थी। पक जानेका तथा मवाद पड़ जानेका बहुत भय था। कोई नहीं जानता था कि ऐसा क्यों होता है किन्तु कालान्तरमें अन्वेषणों द्वारा यह ज्ञात हो गया कि मवाद कीटाणु द्वारा ही होता है। मवादके कीटाणु चाकू तथा अन्य औजारों द्वारा शरीरमें प्रवेश कर जाया करते थे किन्तु अब औजारोंको उबालकर कीटाणु रहित कर लेनेकी विधि ज्ञात हो गई है। हाथोंको कीटाणु-नाशक घोल तथा साबुनसे धोकर इस प्रकार उबाले हुये औजारोंसे चीर फाड़ करनेसे कीटाणुके शरीरके भीतर प्रवेश करनेका किंचित मात्र भी भय नहीं रहता। इस कीटाणु रहित रीतिसे अब हृदय, दिमाग, गुर्दा, कलेजा आँत इत्यादिके अत्यन्त

नाजुक आपरेशन भी बड़ी सरलतासे किये जाते हैं। अभी किसी विदेशी डाक्टरने दिमागकी शल्य-परीक्षण करके उस स्थानको जहाँपर चिन्ता तथा शोकका केन्द्र है, अलग कर देनेमें सफलता प्राप्त की है। उसने इस प्रकार कई मनुष्योंको निश्चिन्त तथा शोक रहित बना दिया है। उनका कहना है कि ऐसा करनेसे मनुष्यकी बुद्धिमत्ता तथा विचार-शक्तिमें न्यूनता आ जाती है। इसके अतिरिक्त आपरेशन द्वारा शरीरके अंग भी बदले जा सकते हैं जैसे यदि किसी मनुष्यका कोई अंग (नाक, कान इत्यादि) सुन्दर सुडौल न हो तो वह उनको कटाकर किसी दूसरे व्यक्तिके सुन्दर अंग खरीदकर उस स्थानपर लगाया सकता है।

इस प्रकारके कीड़ोंसे सावधान रहना चाहिये और कृमि-नाशक वस्तुओंके प्रयोगसे उन्हें नष्ट कर देना चाहिये। सूर्य्यका प्रकाश भी कीड़ोंके नष्ट करनेमें सहायक होता है। महामारीके पश्चात घरकी दीवालों आदिको कृमि-नाशक वस्तुओंसे फार्मेलीनके घोल आदिसे शुद्ध कर लेना चाहिये।

इसके अतिरिक्त शरीरकी आत्म-रक्षक-शक्तिको प्रबल रखनेका प्रयत्न करना चाहिये। यह शक्ति प्राकृतिक होती है परंतु प्रयत्नसे बढ़ाई भी जा सकती है। स्वास्थ्यके नियमोंका पालन करनेसे प्राकृतिक-रक्षक-शक्ति निर्बल नहीं होती लेकिन शराब आदि मादक वस्तुओंके सेवनसे तथा विलासता आदि कुटेवोंसे यह शक्ति क्षीण हो जाती है।

मनुष्यने रोगोत्पादक कीटाणुओंके विजय करनेमें मर्यादित सफलता प्राप्त की है किंतु फिर भी नई-नई बीमारियाँ जैसे— गर्दन तोड़ बुखार, बेरी-बेरी इत्यादि उत्पन्न होती जाती हैं जिनके मुख्य कारण ज्ञात करनेके लिये नवीन अन्वेषण प्रतिदिन हो रहे हैं। पता नहीं मनुष्य-अन्वेषणों द्वारा अन्य प्राकृतिक शक्तियोंपर कहाँतक विजय हो सकेगा। कुछ लोगोंका विचार है कि यदि विज्ञानका यही तारतम्य चलता रहा तो कोई आश्चर्य नहीं कि वह कभी मृत्युपर भी विजय प्राप्त करले।

अञ्जीर

[लेखक—श्रीयुत रमेश वेदी आयुर्वेदालङ्कार]

विविध नाम

हिन्दी—अञ्जीर।

संस्कृत—उत्पत्ति बोधक नाम:—फल्गु (निकम्मे स्थानोंपर हो जानेवाला वृक्ष)

परिचय ज्ञापक नाम

खरदला, खर पत्री (खुरदुरे पत्तोंवाला); फनिका (पत्तोंका आकार फन जैसा होता है); मन्जुल (सुन्दर व मृदुफलवाला), अराजि (रेखाओंसे रहित फलवाला), फल्गु (मृदुफल और शाखाओं वाला), कक्षा फल्गु, जवने फला (फल शाखाओंके अक्षमें आते हैं); उदुम्बरी (छोटे गूलर जैसा); कृष्णोदुम्बरिका, काकोदुम्बरिका (गूलर जैसे काले फलवाला)

गुण प्रकाशक नाम

मलपू (मलं पुनाति = मलकी शुद्धि करनेवाला) श्वित्र भैषज्यं (श्वेत कुष्ठकी औषधि); कुष्ठघ्नी (कुष्ठ नाशक)।

अंग्रेजी—फ़िग।

लैटिन—फ़ाइकस केरिका, लिन।

नैसर्गिक वर्ग अर्टिकेसी।

प्राप्ति स्थान

बिलोचिस्तान, अफ़ग़ानिस्तान, ईरान, टर्की, अफ्रीका, पश्चिमीय एशिया और मेडिटेरेनियन प्रान्तमें मिलता है। भारतके पश्चिमोत्तर भागसे पूर्वकी ओर अवधतक और दक्षिणमें पूना और भारतके बहुतसे भागोंमें इसकी खेती है। तीन हज़ार फ़ीट ऊँचेतक

हिमालय और आबू पर्वतपर मिलता है। कुछ-कुछ पथरीली ज़मीनमें यह अच्छा होता है। ज़मीनमें नीचे तीन-चार फ़ुटतक पथरीली हो तो अच्छा है। अधिक पानी या नमीवाली ज़मीन यह पसन्द नहीं करता। चूनेकी अंशवाली ज़मीनमें अच्छा फलता है।

वर्णन

यह आगेका मध्यम आकारका वृक्ष पन्द्रहसे बीस फ़ीटतक ऊँचा होता है। इसकी छाल भूरी और चिकनी होती है लकड़ी सफ़ेद कुछ कठोर, छिद्र बहुत छोटे और मध्यमाकार, प्रायःकर अण्डाकृति और विभक्त; शाखायें मुलायम जिनके बीचमें बहुतसा गूदा होता है। पत्ते ऊपरसे अधिक खुरदरे, चौड़े, आकृति दानेदार, चारसे आठ इञ्च लम्बे, पत्र दण्ड दोसे तीन इञ्च लम्बे आधारीय नाड़ियाँ तीनसे पाँच, मध्य पसलीपर और नाड़ियोंके तीनसे छै जोड़े होते हैं। फल आधीय, बहुत कुछ नासपाती या अमरूदके जैसे आकारके गूदे और बीजोंसे भरे हुये, व्यास आधेसे एक इञ्च। कच्चे फलका रंग हरा और पके हुयेका पीताभ या भूरा जामनी अथवा रक्ताभ श्यामल। फल वर्षमें दो बार आते हैं—जून जुलाईके फल अम्ल होते हैं, इसलिये इन्हें तोड़ दिया जाता है। फिर जनवरीमें फलना शुरू होता है। ये फल अच्छे होते हैं और वर्षाके प्रारम्भतक तैयार हो जाते हैं। फलों-की तादादपर मौसमका असर पड़ता है। अधिक गरमी और सरदीके कारण कभी-कभी फल कम आते हैं। चाकूसे चीरा देने या पत्थरसे चोट पहुँचानेपर वृक्षके प्रत्येक अंगमेंसे दूध निकलता है। कच्चे फलमें विद्यमान दूध फलके पकनेपर मधुर रसके रूपमें परिवर्तित हो जाता है।

भेद

पंजाबका फगवारा गूलर अंजीरसे मिलता जुलता है परंतु उसके फल इससे कुछ छोटे होते हैं। भारतमें उगनेवाली अंजीरकी विभिन्न जातियोंको उनके उत्पत्ति स्थानके अनुसार हम सामान्यतया निम्न दो जातियोंमें श्रेणीकरण कर सकते हैं—

(१) कृषि की हुई और
(२) स्वयं उग आनेवाली।

जंगली जातिके फल और पत्ते प्रायः अपेक्षाकृत छोटे होते हैं। पौदे भी कम ऊँचे होते हैं और प्रायः सीधे एक काण्डिक वृक्ष न बनकर झाड़ीका रूप धारण कर लेते हैं जिसके मूलमें ही अनेक पतली-पतली शाखाएं निकलकर ऊपर और बाहरकी ओर फैल जाती हैं। इस जातिके पौदे नदीके किनारों, खेतोंकी बाढ़ों मकानोंकी दीवारोंके साथ तथा पुराने मकानोंके खण्डहरों और बगीचोंमें स्वयं उग आते हैं। यहां-पर इनके बीजोंके वाहक कौए या अन्य पक्षी होते हैं।

फलोंके रंगकी दृष्टिसे उसके तीन भेद होते हैं—पीत, श्वेत और श्याम। भारतमें होनेवाली उपरोक्त दोनों जातियोंके फल सामान्यतया गहरे जामनी या ललाई लिये हुये काले रंगके होते हैं। सफेद अञ्जीर-की भी कहीं-कहीं खेती होती है। बाहरसे आनेवाले अंजीरोंका छिलका हलके पीले या सफेद भूरे रंगका होता है। स्मर्णाका अंजीर पीला होता है। बाजारमें ये विलायती अंजीरके नामसे बिकते हैं।

जिस फलके ऊपरका छिलका पतला हो और अन्दरके बीज और गूदा साफ दिखाई दें वह अच्छा माना जाता है। स्मर्णाके अंजीर सबसे अच्छे होते हैं। भारतवर्षमें पूनाके पास खेड़ शिवपुर नामक गांवके अंजीर सबसे अच्छे समझे जाते हैं, परन्तु अफ़गानिस्तान और एशियाके अंजीर हिन्दुस्तानी अंजीरोंसे अच्छे होते हैं।

आवागमन

भारतवर्षमें अधिकतर अंजीर बाहरसे आते हैं। कुछ अफ़गानिस्तानसे पंजाबमें आते हैं और कुछ स्मर्णा तथा अन्य देशोंसे जहाज द्वारा बम्बईमें उतारे जाते हैं। बाहरसे आनेवाले अंजीर चपटे किये हुये और रस्सीकी लम्बी मालाओंमें गुथे होते हैं। और बोरियोंमें भर कर भेजे जाते हैं। इन्हें सुखाते समय रंग चढ़ाने और छिलकेको नरम करनेके लिये गन्धककी धूनी दी जाती है या नमक और शोरा मिले हुये गरम पानीमें डुबोकर निकाल लिया जाता है।

संग्रह

फल पकनेपर वृक्षसे तोड़ लिये जाते हैं। इन्हें धूप और खुली वायुमें सुखाया जाता है। सूखते समय ओस और वर्षामें नहीं भीगने देना चाहिये। अच्छी तरह सूख जानेपर टोकरियों और बोरियोंमें भर लिये जाते हैं। सूखते समय जो फल फट जाते हैं वे खराब हो जाते हैं।

कृषि

भारतमें इसकी खेती पंजाब और दक्षिणमें पूनामें होती है। इसके लिये बहुत अधिक उपजाऊ जमीन की जरूरत नहीं होती। क्यारियाँ तैयार करके आधेसे एक इंचतक मोटी और एक या डेढ़ फुट लम्बी कलमें काट-काट कर लगा देते हैं। लगानेका समय वर्षाका आरम्भ है। दो महीनेमें ये जड़ें फोड़ देती हैं और नये पत्ते निकल आते हैं। ये पौदे एक सालमें तैयार हो जाते हैं। जुलाई-अगस्तमें इन्हें लगानेका अच्छा समय है। नर्सरीमेंसे अच्छे मजबूत पौदे चुनकर उठालें और खेतमें बाहरसे चौदह फीटके अन्तरपर लगायें एक एकड़में लगभग दो सौ पौदे लगाये जा सकते हैं।

खाद

इसके लिये गोबर और घास पत्तेका खाद सबसे अच्छा है। पौदेकी जड़ोंको हर साल अगस्तमें चारों ओरसे खोद देना चाहिये। जड़ें मट्टीसे बाहर आ जायंगी और इन्हें इसी प्रकार पांच दिनतक खुला रहने दें जिससे हवा और धूप अच्छी तरह लग जाय। छठे दिन इन्हें खादसे ढक दें। एक वृक्षके लिये दो टोकरी खाद पर्याप्त होती है। यह प्रक्रिया वर्षाकी समाप्तिपर अगस्त सेप्टेम्बर मासोंमें की जानी चाहिये

सिंचाई

वृक्षपर फल आ जानेपर प्रत्येक सप्ताह पानी दिया जाना चाहिये अन्यथा फल नष्ट हो जाते हैं। सिंचाईका समय सेप्टेम्बरसे आरम्भ होता है और जब-तक फल तैयार न हो जायं सिंचाई जारी रखनी चाहिये।

पौदा लगानेके दो या तीन साल बाद फल देना आरम्भ कर देता है और पन्द्रहसे बीस सालतक अच्छे फल देता रहता है। इसके बाद फल छोटे हो जाते हैं और वृक्ष सूख जाता है।

रासायनिक विश्लेषण

सूखे और पके अंजीरमें साठसे सत्तर प्रतिशत तक अंगूरी खाण्ड तथा वसा निर्यास, लवण और एल्बुमिन होते हैं इसके अतिरिक्त प्रोटिओन, एमिनो एसिड, टाइरोसीन, एन्जाइम, केरीन, लाइपेज़ और प्रोटोज़ भी होते हैं। इसके दूधमें प्रोटीनको पचानेवाला एक पदार्थ (पेप्टोनाइज़िंग फर्मेंट) होता है। कच्चे फलमें निशास्ता होता है।

उपयोगी भाग—फल—कच्चे और पक्के, दूध।

मात्रा—पांचसे सात दाने।

प्रतिनिधि—चिलगोजा और मुनक्का।

प्रभाव—शीतल, अनुलोमक, लेपक, क्षोभहर, कफघ्न, रक्तपित्त नाशक, बल्य और पुष्टिकर है। इसके दूधमें विद्यमान पेप्टोनाइज़िंग फर्मेण्टका फाइबीन और दूधपर पेपेनके समान प्रभाव होता है। यह निशास्तेको खाण्डमें बदल देता है।

योग

अंजीर पानक—अंजीर एक पाव, मेथी बीज चूर्ण चार माशा, मिश्री एक सेर, पानक बनावे। इसमें सोंठ एक तोला, जावित्री, जायफल, दालचीनी छोटी इलायची, सब मिलाकर एक तोला डालें।

मात्रा—दोसे चार तोला।

रोग—रक्त दोष, दुर्बलता आदि।

अंजीर पाक

दो सेर सूखे अंजीर और एक सेर छिली हुई बादामकी गिरीको पीसकर चार सेर घी और चार सेर खाण्डमें भूने। उतारकर कुछ ठण्डा होनेपर निम्न द्रव्योंको पूर्ण मिला दें—सफेद मूसली चार तोला, इलायची छोटी ढाई तोला, चिरौंजी दस तोला, पिस्ता दस तोला, शीतलचीनी एक माशा, केशर एक तोला।

मात्रा—एकसे ढाई तोला।

रोग—मलबंधि, नैर्बल्य, अर्श, रक्त और पित्त दोष आदि।

उपयोग

अंजीर एक सुमधुर फल है और अन्य सूखे मेवों की तरह खाया जाता है। यह आरोग्यजनक और सुपच पथ्य है। राजनिघण्टु इसे भ्रम नाशक, भारी, गर्भके लिये हितकर, स्तन्य प्रवर्त्तक, वात शमक, त्वचाके विकारों, रक्त पित्त, क्षय, दाह और विषको दूर करनेवाला, ग्राही, मलबंधिक, वृष्य, शुक्रवर्द्धक, तथा पौदेकी त्वचाको व्रण नाशक मानता है। यहां लेखक पके अंजीरको अम्ल और कटु कहता है और फलमें कषाय रस भी समझता है। अंजीरमें इन रसोंकी प्रधानता हमें असंगत जान पड़ती है। आशा है आयुर्वेदके प्रेमी लोग इसपर अपने विचार हमें लिख भेजनेकी कृपा करेंगे।

पके फलोंका नियमित अन्तः प्रयोग वृक्क व मूत्राशय अश्मरी और यकृत तथा प्लीहाके अवरोधोंको दूर करता है। वृक्कोंके अवरोधको हटाकर यह उनके कार्यको नियमित करता है जिससे मूत्रकृच्छ्रता और बहुमूत्रता दोनोंमें लाभदायक है। वृक्कोंको शक्ति देता है।

बवासीरमें इसका निम्न प्रकारसे प्रयोग हितकर होता है—चार, पांच सूखे अंजीरोंको पानीमें भिगोकर आवृत पात्रमें रख दें। प्रातः काल उसी पानीमें इन्हें मसलकर पी जायं। इसी विधिसे सुबहके भिगोये हुये अंजीरोंका शर्बत शामको लिया जा सकता है। मीठा और स्वादु बनानेके लिये इसमें आवश्यकतानुसार शहद या मिश्री भी मिलाई जा सकती है। इसके सेवनसे आंतें साफ रहती हैं और मल साफ होता है। गुदापर जोर न पड़नेसे अर्श प्रकट नहीं होते। रोगीको घृतपान कराते हुये अंजीरके दूधका स्थानिक लेप भी अर्शको दूर करता है (ओठल)।

बच्चोंकी यकृत् वृद्धिमें अंजीर बहुत प्रभावकारी मानी जाती है। सिरकेमें डाली हुई अंजीरका प्रयोग प्लीहा वृद्धिको कम करता है।

बादाम और पिस्तेके साथ अंजीरोंको कुछ काल-तक खाया जाय तो मस्तिष्ककी कमजोरी दूर होती है, स्मरण शक्तिकी वृद्धि होती है और बुद्धि तेज होती है। सूखे अंजीर, छिली हुई बादामकी गिरी, पिस्ता, इलायची, चारोली, किशमिश, खाण्ड और थोड़ासा केसर; सबका चूर्ण करके आठ दिनतक गौ घृतमें डालकर रखें और तब इसे प्रतिदिन प्रातःकाल दो तोलेकी मात्रामें लें। यह एक बहुत पुष्टिकर वृष्य रसायन जैसा प्रभाव करता है। अंजीर पाकका प्रतिदिन प्रातः सायं सेवन वीर्यदोष नाशक, जीवनी शक्ति वर्द्धक, कामोद्दीपक, और अत्यन्त पौष्टिक है। इसमें अभ्रक और प्रवाल भस्म प्रत्येक ढाई तोला मात्रामें भी मिलाया जा सकता है। इसका प्रयोग रक्तको साफ करता है, शरीरकी गरमीको नष्ट करता है, रक्त और पित्तके विकारोंमें लाभकर है। मलबध दूरकरके अर्शको शान्त करता है। अंजीर पाकके प्रतिदिन सेवनसे खून साफ होता है, शक्ति आती है और स्मरण शक्ति तथा बुद्धि बढ़ती है। दो, चार ताज़े पके अंजीरोंको थोड़ीसी खाण्डके साथ मिलाकर ओसमें रखा रहने देकर प्रातः काल ही खाये जायं तो कहा जाता है कि शरीरकी गर्मी दूर होती है। इसका जलीय शीतकषाय मूत्र मार्गकी उत्तलनको शान्त करता है। शीतकषायका सेवन बीस, तीस दिन निरन्तर करना चाहिये।

अंजीरको खोलकर अंदरके गूदेको गरम करके मसूढ़ेके पाकको रोकनेके लिये नरम पुल्टिसके रूपमें प्रयुक्त किया जाता है। सूखे या हरे अंजीरोंको सिल बट्टेपर पीसकर कल्क बना लें। हलका गरम करके यह शोथ युक्त ग्रन्थियों और नये निकले अपक्व फोड़ोंपर लगानेसे सूजनको हटाता है। मुखके व्रणोंको आराम करनेके लिये इसका दूध लगाया जाता है। श्वेत कुष्ठकी प्रारम्भावस्थामें, कहते हैं, अंजीरके पत्तोंके रसका स्थानिक प्रयोग उसको अधिक फैलने देनेसे रोकता है। श्वेत कुष्टमें मलबंधिको दूर करनेके लिये अंजीरके पक्व फलोंका शीतकषाय सर्वोत्तम औषधि उपकार समझा जाता है, इसमें गुण भी सिका देना चाहिये

(चरक, चिकित्सा स्थान, अध्याय ७)। शोढल इसे दद्रु नाशक, मुख वा नाकसे होनेवाले रक्त स्राव और रक्तातिसारमें लाभदायक समझता है।

प्रदर रोगमेंभी कई लोग इसकी सिफ़ारिश करते हैं। अंजीरके ऊपर होनेवाले बान्देको बकरीके दूधके साथ ऋतु स्नाता वन्ध्या नारी खावे तो उसे सन्तान हो जाती है, ऐसा वैद्य मनोरमामें वर्णन है।

ओठ, मुख, जिह्वा आदि फटनेकी जिन्हें शिकायत रहती है ऐसे निर्बल मनुष्योंको ताज़ी अंजीरें एक अच्छे बल्यका काम करती हैं। कोष्ठ बद्धताके लिये प्रतिदिन दूधके साथ खाया जाता है।

अंजीर कफको पतला करके बाहर निकाल देता है, इसलिये श्लैष्मिक या पुरातन कासमें लाभ करता है। इसका शर्बत या पानक श्वासोंमें लाभदायक होता है।

चरक अंजीरको शीतल और गुरु मानता है। वह इसमें रसायन और वाजीकरण गुण समझता है। (सूत्रस्थान, अध्याय २६)। सुश्रुत भी इसमें यही गुण मानता है (सुश्रुत, सूत्रस्थान, अध्याय ४६)।*

सभापतिका भाषण

[शिमलाके २७ वें अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलनके अन्तर्गत विज्ञान-परिषद्के सभापति श्री प्रो० फूलदेव सहाय वर्माका भाषण]

आरम्भ

आप लोगोंने मुझे इस हिन्दी साहित्य सम्मेलनके विज्ञान परिषद्का जो अध्यक्षपद प्रदान किया है उसके लिये मैं आप लोगोंका बड़ा अनुगृहीत हूँ। मैं सर्वथा इसके अयोग्य हूँ। हिन्दी-साहित्यके क्षेत्रमें मैंने ऐसा कोई कार्य नहीं किया है जिससे इस सम्मानका पात्र बन सकूँ। यह केवल आप लोगोंकी अनुकम्पा है कि आज मैं इस पदपर प्रतिष्ठित हूँ यद्यपि मैंने हिन्दी-की कोई विशेष सेवा नहीं की है पर हिन्दीके प्रति मेरा प्रेम अवश्य ही असीम है। कौन ऐसा समझदार व्यक्ति होगा जिसे अपनी राष्ट्रीय भाषाके प्रति प्रेम न होगा। यदि वह राष्ट्रीय भाषा उसकी मातृ-भाषा भी है तो कहना ही क्या। शायद हिन्दीके प्रति इस मेरे प्रेमके कारण ही आप लोगोंने मुझे इस पदपर प्रति-ष्ठितकर मुझे सम्मानित किया है। इस पद-प्राप्तिसे मैं हिन्दीकी कुछ सेवा कर सकूँगा इसी भावनासे प्रेरित होकर मैंने आपका निमंत्रण सहर्ष स्वीकार कर लिया और उसके फल-स्वरूप आज मैं आपकी सेवामें उपस्थित हूँ। इतना तो मैं जानता हूँ कि यदि मैं अपने साहित्यकी कुछ सेवा कर सकूँगा तो वह आप लोगोंके सहयोग और सहानुभूतिसे ही। मैं आशा करता हूँ कि जिस भावनासे प्रेरित होकर मैंने यह सम्मान स्वीकार किया है उसी भावनासे प्रेरित हो आप भी मुझे साहाय्य प्रदान करेंगे।

हमारा साहित्य

बड़े हर्षकी बात है कि आज सारा देश इस बात-को स्वीकार कर रहा है कि इस देशकी राष्ट्रीय भाषा हिन्दी ही हो सकती है। यह सन्तोषका विषय है। हिन्दीको राष्ट्रीय भाषा बनानेके प्रयत्नमें इस युगके महान् पुरुष महात्मा गांधी, और श्रीराजगोपालचारी एवं श्रीसुभाषचन्द्र बोस सरीखे प्रमुख देश-भक्त लगे हुये हैं। यद्यपि नक्कार खानेमें तूतीकी आवाज सदृश इधर-उधरसे कभी-कभी यह ध्वनि भी सुनाई दे देती है कि हिन्दीका साहित्य अपरिपूर्ण होनेके कारण यह राष्ट्रभाषा बननेके योग्य नहीं है। उत्तर भारतकी भाषाओंके विज्ञान-साहित्यकी मुझे कुछ जानकारी है। बंगाली भाषाके भी विज्ञान-साहित्यसे मैं अनभिज्ञ नहीं हूँ। मैं दावेके साथ कह सकता हूँ कि अब भी हिन्दीमें जितना विज्ञान-साहित्य विद्यमान है उतना

उत्तर भारतकी अन्य भाषाओंमें नहीं है। हिन्दीके विज्ञान-साहित्यका सविस्तर वर्णन मैंने बिहार प्रांतीय साहित्य सम्मेलनकी त्रैमासिक पत्रिका "साहित्य" के वर्ष १ खण्ड २ अङ्कमें "हिन्दीमें वैज्ञानिक साहित्य और उसकी प्रगति" शीर्षक लेखमें किया गया है।

मेरे इस कथनका यह आशय कदापि नहीं है कि हिन्दीमें विज्ञान-साहित्य पर्याप्त है। जब हम हिन्दीके इस अंगकी, पाश्चात्य देशोंकी भाषाओंके विज्ञान-साहित्यसे, तुलना करते हैं तब हमें साफ़ मालूम होता है कि हमारा विज्ञान-साहित्य प्रायः नहींके बराबर है। यह अवश्य ही हमारे लिये लज्जा और दुखकी बात है। जिस भाषाको हम राष्ट्र-भाषा होनेका गौरव दे रहे हैं उसमें आवश्यक साहित्यका अभाव अवश्य ही एक बड़ी खटकनेवाली बात है और कुछ सीमातक हमारी अकर्मण्यताका द्योतक है।

साहित्य निर्माणका कार्य हम हिन्दी-भाषा भाषी ही अधिक सुविधा और सरलतासे कर सकते हैं। यह हमारा ही उत्तरदायित्व है कि इसके साहित्यकी पूर्ति करें। यह हमारा ही कर्तव्य है कि हिन्दी-साहित्य-की अपरिपूर्णताके कलंकको मिटा डालें अन्यथा आगे आनेवाली पीढ़ी हमें दोष देगी कि हमने साहित्य-निर्माणके कार्यको सम्पादित न कर अपने कर्तव्यकी अवहेलना की है, अपने उत्तरदायित्वको नहीं निभाया है।

वैज्ञानिक युग

आजका समय 'वैज्ञानिक युग' कहा जाता है। इस युगमें पग-पगपर हमें वैज्ञानिक साधनोंका आश्रय लेना पड़ता है। जो वस्त्र हम धारण करते हैं वे अधिकांश कृत्रिम रंगोंसे रंगे होते हैं। जिस रेशम-का हम प्रयोग करते हैं वे अधिकांश कृत्रिम रीतिसे रासायनिक विधिसे, तैयार किये होते हैं। जो कपड़े आज बनते हैं उनके अत्यधिक भाग (केवल खादी अपवाद है) उन मशीनोंके द्वारा बने होते हैं जिनका आविष्कार वैज्ञानिकोंने किया है। जो जूते हम पहनते हैं उनके चमड़े क्रोम-टैनिंग द्वारा तैयार होते हैं। जिस तेलका हम उपयोग करते हैं वह वैज्ञानिक ढंगसे शोधित कृत्रिम विधिसे प्रस्तुत द्रव्यों द्वारा सुगन्धित किये जाते हैं। वस्तुतः वैज्ञानिकोंके द्वारा सूक्ष्मसे सूक्ष्म गंधोंकी नकलें कर ली गयी हैं। हमारे खाद्य पदार्थोंके प्रस्तुत करनेमें विज्ञानका हाथ कम नहीं है। गेहूँ, धान और ईखकी खेतीमें वैज्ञानिक अन्वेषणसे बहुत उन्नति हुयी है। छोटे-छोटे नगरोंमें भी ताज़े अंगूर, सेव, संतरे और नाशपाती इत्यादि सुन्दर पुष्टिकर फल केवल काश्मीर और अफ़गानिस्तानसे ही नहीं वरन अमेरिका, जापान और आस्ट्रेलियासे भी वैज्ञानिक विधिसे सुरक्षित बर्फसे ढके कमरोंमें लाये जाते हैं ताकि वे सड़ गलकर नष्ट न हो जायँ और उनमें ताज़ा-पन बना रहे।

औषधिके निर्माणमें विज्ञानने आशातीत उन्नति की है। अनेक रोगोंकी चिकित्सायें जो पहले मालूम न थीं आज रासायनिक विधिसे तैयार होकर मनुष्य मात्रकी व्याधि दूर करनेमें समर्थ हो रही हैं। जब हम आधुनिक वाहनोंका विचार करते हैं तब हमें मालूम होता है कि विज्ञानने कितने अद्भुत चमत्कार दिखलाये हैं। जहाँ पहले केवल हाथोंसे चलायी जानेवाली नावें, बैल-घोड़ा - गाड़ियाँ और घोड़े ही एक स्थानसे दूसरे स्थान ले जानेमें साधन थे वहाँ आज वाष्प-सञ्चालित जहाजें, रेल-गाड़ियाँ, मोटरबसें, मोटरकारें और वायु-यानका प्रयोग हो रहा है और जिस यात्राके सम्पादनमें पहले महीनों और वर्षों लग जाते थे उस यात्राको अब आधुनिक साधनोंसे घण्टों और दिनोंमें ही सम्पादन कर लेते हैं।

आजकल रेडियोके द्वारा खबरें हजारों मीलोंकी आकर हमें प्राप्त होती हैं। हजारों मीलोंकी दूरीपर स्थित किसी महान व्यक्तिका व्याख्यान अथवा प्रसिद्ध गायक वा गायिकाका सुमधुर गान हम सुन लेते हैं। सिनेमाके द्वारा एकसे एक अद्भुत दृश्य और संसार-के प्रसिद्धसे प्रसिद्ध स्थान, व्यक्ति, अभिनेता वा अभिनेत्रियोंको देखते हुये उनके सुमधुर गान और हृदयाकर्षक अभिनयसे हम आनन्द उठाते हैं। विशिष्ट

अवसरोंके लिये विज्ञानने हमें जो सुख-साधन दिये हैं उनका संक्षिप्त वर्णन भी इस भाषणके कलेवरको बहुत अधिक बढ़ा देगा।

उपर्युक्त कारणोंसे आज विज्ञानका अध्ययन अनिवार्य है। बेकारीकी समस्याको हल करनेके लिये भी विज्ञानका अध्ययन आवश्यक है। पाश्चात्य देशोंमें विज्ञानके सहयोगसे व्यवसायियोंने नयी-नयी साधन-विधियोंका आविष्कार कर उद्योग-धंधोंमें बड़ी उन्नति की है। यदि हम उद्योग-धंधोंमें उनसे मुकाबला करना चाहते हैं तो हमें भी विज्ञानका सहारा लेना पड़ेगा। बिना विज्ञानके सहारे रंग बनानेके, धातुओंके निर्माणके, मिट्टीके बर्तन बनानेके, सूती या रेशमी वस्त्रोंके प्रस्तुत करनेके और युद्ध-सामग्रियोंके निर्माणके धन्धोंमें हम उनसे मुकाबला नहीं कर सकते।

दश वर्षीय योजना

विज्ञानका वास्तविक ज्ञान प्राप्त करनेके लिये देशी भाषाओंका माध्यम अत्यावश्यक है। जिस प्रकार माके दूधके समान पुष्टिकर और जल्द पचकर शक्ति उत्पन्न करनेवाला दूसरा कोई पदार्थ नहीं है उसी प्रकार जो ज्ञान मातृ-भाषाके द्वारा प्राप्त होता है वह सच्चा और वास्तविक होता है और उसीसे लाभ उठाया जा सकता है। विदेशी भाषाओंके द्वारा प्राप्त ज्ञान छिछला होता है और उससे लाभ नहीं उठाया जा सकता, परीक्षाएँ भले ही पास कर ली जायँ। अतः हिन्दीके द्वारा ही प्राप्त ज्ञानको हम अपना वास्तविक ज्ञान कह सकते हैं और उससे लाभ उठा सकते हैं। इस कारण हिन्दीमें विज्ञान-साहित्यका होना न होना हमारे राष्ट्रके जीवन-मरणका प्रश्न है। हिन्दीमें विज्ञान साहित्यकी वृद्धिपर विचार करना प्रत्येक देश-भक्तका कर्तव्य होना चाहिये। अनेक वर्षोंके सोच-विचारके फलस्वरूप एक "दश वर्षीय योजना" मैं आपके सम्मुख रख रहा हूँ। आशा करता हूँ कि आप इस योजनापर गम्भीरतासे विचारकर देखेंगे कि इससे वैज्ञानिक साहित्य-निर्माणमें कहांतक सहायता मिल सकती है।

वैज्ञानिक साहित्यके निर्माणमें दो बड़ी अड़चनें हैं। एक तो वैज्ञानिकोंकी हिन्दीमें कुछ लिखनेसे अरुचि और दूसरे प्रकाशकोंका अभाव। कुछ वर्ष हुये गङ्गा नामक मासिक-पत्रके एक विशेषाङ्क "विज्ञानाङ्क" का मैंने सम्पादन किया था। उस समय इस संबंधमें कुछ कार्य करनेका अवसर मिला था। उस अनुभवसे मैं निःसंकोच कह सकता हूँ कि हिन्दी-भाषा-भाषियों-में वैज्ञानिकोंकी कमी नहीं है। अनेक वैज्ञानिक विद्यमान हैं जो चाहें तो उत्कृष्ट कोटिके ग्रंथ लिख सकते हैं। ऐसे वैज्ञानिकोंसे काम लेना, उन्हें इस कार्यमें उत्साहित करना, हमारा कर्तव्य है।

जो विज्ञानवेत्ता कोई ग्रन्थ लिखते भी हैं उन्हें छपवानेके लिये प्रकाशकोंका सर्वथा अभाव है। जिस पुस्तकको पाठ्य-पुस्तक बननेकी आशा नहीं उसके प्रकाशक साधारणतया मिलते नहीं। प्रकाशक उन्हीं पुस्तकोंके प्रकाशनमें धन लगाते हैं जिनसे अर्थ-लाभकी आशा रहती है। ये प्रकाशक साहित्य निर्माणकी दृष्टिसे तो इस क्षेत्रमें आये नहीं हैं। अतः उनसे यह आशा रखना व्यर्थ है कि वे साहित्य-निर्माणकी दृष्टिसे पुस्तकोंका प्रकाशन करेंगे। प्रयागकी विज्ञान परिषद् ही एक ऐसी संस्था है जो केवल वैज्ञानिक साहित्य-निर्माणकी दृष्टिसे पुस्तकोंका प्रकाशन करती है पर जनताके सहयोगके अभावसे वह विशेष कार्य नहीं कर सकी है। जबतक वैज्ञानिक पुस्तकोंके प्रकाशनका विशेष यत्न न किया जायगा तबतक ऐसी पुस्तकोंका प्रकाशन सम्भव नहीं है।

मेरी दस वर्षीय योजना यह है। वैज्ञानिक पुस्तकों-के लेखन और प्रकाशनके लिये जल्दसे जल्द एक लाख रुपया इकट्ठा किया जाय। अधिकसे अधिक ६ महीने-के प्रयत्नसे यह धन संग्रह हो सकता है। इसके लिये प्रांतीय सरकारोंसे वार्षिक सहायता प्राप्त की जा सकती है। कमसे कम तीन प्रांतीय सरकारें, संयुक्त प्रांत, बिहार और मध्यप्रांत जहाँकी भाषा हिन्दी है, ऐसी हैं जिनसे अवश्य ही सहायता प्राप्त की जा सकती है। कुछ देशी रियासतें भी हैं जहांकी भाषा हिन्दी है। उनसे भी वार्षिक चन्देके

रूपमें सहायता प्राप्त हो सकती है। इस धनके एकत्र करनेके साथ ही पांच हजार ऐसे स्थायी ग्राहक भी ठीक कर लिये जायँ जो पुस्तकोंके प्रकाशित होते ही उनकी एक-एक प्रति खरीद लें। अनेक पुस्तकालय हैं, अनेक शिक्षा-संस्थायें हैं, अनेक विश्वविद्यालय हैं, अनेक देशी रियासतें हैं, एवं अनेक धनी-मानी व्यक्ति हैं जो ऐसी ग्रन्थमालाके स्थायी ग्राहक बन सकते हैं। इस एक लाख रुपयेसे प्रारम्भमें एक-एक हज़ार रुपया लगाकर १०० पुस्तकें लिखवायी और प्रकाशित की जायँ। प्रति पुस्तकमें पहले एक हज़ार रुपया खर्च करना पड़ेगा। इस एक हज़ारके पाँच सौ फी लेखकको पुरस्कार दिया जाय और पाँच सौ रुपया प्रकाशनके प्रारम्भिक खर्चमें लगाया जाय। ये पुस्तकें १०० से २०० पृष्ठोंकी हों और उनका मूल्य फी पुस्तक एक रुपया रहे। पाँच हज़ार स्थायी ग्राहकोंके होनेसे हर एक पुस्तककी बिक्रीसे प्रायः पाँच हज़ार रुपया तत्काल प्राप्त हो जायगा। ऐसी दस पुस्तकें प्रति वर्ष प्रकाशित की जायँ ताकि १० वर्षोंमें १०० पुस्तकें उत्कृष्ट कोटिकी —विज्ञानकी प्रत्येक शाखाओंकी कमसे कम एक और किसी-किसी शाखाओंकी दो या दोसे अधिक भी— तैयार हो जायँगी। इन सौ पुस्तकोंमें कुछ अर्थकरी, उद्योग-धन्धा सम्बन्धी, वैज्ञानिक पुस्तकें भी रह सकती हैं जिनका उल्लेख स्वर्गीय श्री रामदास गौड़ जीने नागपुरके सम्मेलनके विज्ञान-परिषद्के अध्यक्ष-पदसे किया था। ये सौ पुस्तकें वैज्ञानिक साहित्य निर्माणकी पहली सीढ़ी होंगी। सम्भवतः उन्हीं पुस्तकोंके लाभसे दूसरी सीढ़ीकी २०० से ३०० पृष्ठोंकी दूसरी सौ पुस्तकें अन्य दस वर्षोंमें लिखवायी और प्रकाशित की जा सकती हैं। तब इसकी तीसरी सीढ़ीकी ४०० से ५०० पृष्ठोंकी पुस्तकोंके प्रकाशनसे हम पाश्चात्य देशों-की भाषाओंके वैज्ञानिक साहित्यसे तुलना करनेमें समर्थ हो सकेंगे। यह कार्य या तो प्रयागके हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन या प्रयागकी विज्ञान-परिषद् या काशी की नागरी-प्रचारिणी-सभाको सौंपा जा सकता है।

वैज्ञानिक भाषा

वैज्ञानिक पुस्तकोंकी भाषा कैसी है, इस संबंधमें कुछ कहना यहाँ असंगत नहीं होगा। वैज्ञानिक पुस्तकों-का प्रमुख उद्देश्य वैज्ञानिक विचारोंको जनतामें फैलाना होता है। जब-जब महान् पुरुष इस पृथ्वी-पर अवतरित हुये हैं और वे किसी विशेष विचारको जनतामें फैलाना चाहते हैं तब-तब उन लोगोंने उस समयकी प्रचलित सरलसे सरल और सुबोध भाषाका ही उपयोग किया है। यही कारण है कि बौद्ध धर्मकी सारी धर्म-पुस्तकें उस समयकी प्रचलित भाषा प्राकृत या पालीमें ही मिलती हैं, श्री गुरु नानक देव और अन्य सिख गुरुओंने अपने सदुपदेशोंको उस समयकी प्रचलित भाषा हिन्दीमें दिया है। गोस्वामी तुलसी-दासने रामचरितमानसकी रचना हिन्दीमें हीकी और महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाशको हिन्दीमें ही लिखा। इससे हम इस सिद्धान्तपर पहुँचते हैं कि वैज्ञानिक पुस्तकोंकी भाषा सरलसे सरल होनी चाहिये।

पारिभाषिक शब्द

वैज्ञानिक ग्रन्थोंमें पारिभाषिक शब्दोंका प्रयोग अनिवार्य्य है। कुछ वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्द ऐसे हैं जो किसी विशेष अर्थको लेकर प्रयुक्त हुये हैं। उसी अर्थको जतानेके लिये नये शब्दोंको हम गढ़ सकें तो अवश्य ऐसा करें और ऐसा करना उचित भी है। यदि ये पारिभाषिक शब्द भारतकी सब भाषाओं— हिन्दी, बंगाली, मराठी और गुजरातीमें एक ही हों तो हमारा क्षेत्र बहुत विस्तृत हो जाता है और हमें अधिक विद्वानोंका सहयोग प्राप्त हो सकता है। यद्यपि पारिभाषिक शब्दोंके अनुवादके पक्षमें मैं हूँ पर रासायनिक द्रव्यों और अन्य पदार्थोंके नामोंको हिन्दीमें अनुवाद करनेके मैं बिलकुल विरुद्ध हूँ। इससे हमें कोई लाभ नहीं दिखाई पड़ता। पर त्रुटियाँ अनेक प्राप्त होती हैं। केवल कार्बनिक रसायनके यौगिकोंकी संख्या ही दो लाखसे अधिक है। इसके अनुवाद करनेमें जो समय, दिमाग और धन लगेगा

यह तो है ही पर ऐसा होनेसे हम सरलतासे पाश्चात्य देशोंके साहित्यसे लाभ नहीं उठा सकेंगे जो विज्ञानके परिपूर्ण ज्ञानके लिये अत्यावश्यक हैं।

शिक्षा पद्धतिमें सुधार

आधुनिक शिक्षा-पद्धतिमें दोष है, इसे प्रायः सभी स्वीकार करते हैं। इस शिक्षासे मस्तिष्ककी उन्नति अवश्य होती है पर शरीरके अन्य अवयव बहुत कुछ निकम्मे रह जाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि आजकलके शिक्षित व्यक्ति स्वतंत्र व्यवसायकी ओर नहीं झुकते। प्रत्येक शिक्षित व्यक्तिके लिये नौकरी मिलना सम्भव नहीं है। इस कारण इस शिक्षा-पद्धतिको परिवर्तित करें इसके दोषोंके दूर करनेमें देशके प्रमुख व्यक्ति संलग्न हैं। इसके फल स्वरूप कुछ समयसे प्रारम्भिक शिक्षाके संबन्धमें एक योजना देशके सम्मुख उपस्थित है। यह योजना 'मौलिक शिक्षाकी वार्धा योजना''के नामसे विख्यात है। इस योजनापर सामयिक पत्रोंमें बहुत कुछ वाद-विवाद, पक्ष और विपक्ष में, चल रहा है। इस योजनामें विज्ञानका क्या स्थान है, इसपर विचार करना हमारा कर्तव्य है।

वार्धा-योजना ७ वर्षसे १४ वर्षकी उम्रके बालकोंके लिये है। इसमें विज्ञान-विशेषतः व्यवहारिक विज्ञानका स्थान बहुत ऊँचा रहना चाहिये। सन्तोषकी बात है कि इस योजनामें विज्ञानका समावेश समुचित रूपसे किया गया है। उदाहरण स्वरूप गाँवोंमें कौन-कौन फसलें, वृक्ष और पौधे उपजते हैं। वे कितने बड़े होते हैं। उनकी छालें, धड़, पत्ते, फूल, फल और बीज किस रूप, रंग और आकारके होते हैं। फसलें कब बोयी और काटी जाती हैं। उनके बीज कितने दिनोंमें अंकुरित होते हैं। उनकी जड़ों, धड़ों, पत्तों, फूलों और बीजोंसे कौन और कैसे कार्य होते हैं। बीज कितने प्रकारके होते हैं। वे कैसे पवन, जल और पशुओंके द्वारा एक स्थानसे दूसरे स्थानको ले जाये जाते हैं। पौधे कैसे साँस लेते हैं। कार्बनको वे कैसे ग्रहण करते और उससे बढ़ते हैं। जड़ोंसे वे कैसे जल और आहारको ग्रहण करते है।

वायु क्या है। साँसके लिये क्यों आवश्यक है। जलनेमें वायुका क्या भाग है। आग क्या है। रहनेके कमरे क्यों हवादार होना चाहिये। वायुमें जो धूलकण रहते हैं उनसे क्या लाभ वा हानि होती है। कौन-कौन बीमारियाँ धूलके कारण हैं। फैलती हैं। जो वायु साँसके द्वारा बाहर निकलती है उसमें और साँसके द्वारा अन्दर जानेवाली वायुमें क्या भेद है। वायु किन-किन गैसोंसे बनी है। उसमें क्या-क्या अशुद्धियाँ रह सकती हैं। इन अशुद्धियोंको कैसे दूर किया जा सकता है। वायुके शुद्ध करनेमें पेड़-पौधे कैसे सहायक होते हैं। कमरे कैसे हवादार बनाये जा सकते हैं। वायुमण्डलका दबाव क्या है।

इसी प्रकार जन्तु-विज्ञान, रसायन भौतिक विज्ञान गणित ज्यौतिष, शरीर-क्रिया विज्ञान, आरोग्य विज्ञान,वानस्पतिक विज्ञान इत्यादि व्यवहारिक विज्ञानके सभी अङ्गोंका उस योजनामें समावेश है, यद्यपि इधर उधर कुछ दो चार आवश्यक बातें पाठ्यक्रममें छूट गयी हैं। इस शिक्षा-पद्धतिमें पढ़े बालक आजके बालकोंसे कहीं अधिक जानकार होंगे इसमें कोई भी सन्देह नहीं है। विशेषतः जब उनकी शिक्षा मातृभाषाके द्वारा दी जायगी।

पर इस योजनाको सफल बनानेके लिये अच्छे शिक्षकोंका होना अत्यावश्यक है। ऐसे सुयोग शिक्षक इस समय प्राप्त हो सकेंगे इसमें मुझे सन्देह है। इसके लिये विशेष प्रयत्नकी आवश्यकता है। समय समयपर इन शिक्षकोंको विश्वविद्यालयोंके नगरोंमें बुलाकर विशेषज्ञोंके द्वारा व्याख्यान दिलाना आवश्यक है। यह कार्य प्रान्तीय सरकारें कर सकती हैं। ऐसा होनेसे ही वार्धा-योजनाके सफल होनेकी सम्भावना हो सकती है। और इसे सफल बनानेका प्रयत्न प्रत्येक देश-हितैषीको करना चाहिये।

रंग

[ले० श्री कार्तिकप्रसाद बी० एस-सी०]

संसारमें आजकल करोड़ों रुपया तरह-तरहके रंगोंकी खोज तथा उनके अध्ययनमें खर्च हो रहा है। इन्हीं रंगोंके कारण छोटी मोटी तथा प्रतिदिन काममें आनेवाली सैकड़ों वस्तुओंकी खपत पहलेसे कई गुना अधिक हो गई है क्योंकि सभी लोग ऐसी ही वस्तु लेना पसंद करते हैं जो देखनेमें चित्ताकर्षक तथा सुन्दर हो।

यह बात ध्यानमें रखने योग्य है कि बहुतसी चीज़ें ऐसी हैं जिनकी चमक दमक तथा रूपरंगसे आकर्षित होकर हम उन्हें खरीद लेते हैं और यदि उन्हीं चीजोंका रंग खराब हो जाय तो हम उन्हें कदापि न खरादेंगे। उदाहरणके लिये आप मामूली तेलकी शीशी अथवा अन्य कोई इसी प्रकारकी दूसरी वस्तु ले लीजिये। अगर शीशीका रंग तथा उसपर के लेबिल इत्यादि रंगीन हैं और वह सुन्दर कागजमें लपेटी है तो हम उसे लेनेके लिये आकर्षित होते हैं, चाहे भीतरका माल कैसा ही क्यों न हो। बाजारमें एक मामूली होल्डर खरीदने जाइये। मैं निश्चित रूपसे कह सकता हूँ कि आप उसी कलमको पसंद करेंगे जिसका रंग चमकीला तथा सुन्दर होगा। यही कारण है कि अब बाजारमें काले रंगके फाउन्टेनपेनोंका रिवाज उठता जा रहा है और उसके स्थानपर एकसे एक लुभावने रंगके कलम आने लगे हैं।

रंगोंके पीछे हमारे मनोभाव

रंग केवल विषयकी उदासीनता और सादापन ही नहीं दूर करते हैं बल्कि उनका असर हमारे मनोभावोंपर भी पड़ता है। भिन्न-भिन्न रंगों द्वारा हमारे हृदयमें भिन्न-भिन्न भावोंका उदय होता है।

लाल रंग लड़ाई, द्वेष, खतरा इत्यादिका चिन्ह समझा जाता है। इसी प्रकार नारंगी रंगके प्रभावसे कुछ गर्मीका अनुभव होता है।

हरा रंग विजय, प्रसन्नता, निर्भयता इत्यादिका द्योतक है। नीले रंगके प्रकाशमें गर्म स्थान भी कुछ ठंढासा प्रतीत होता है। इसी जानकारीके आधारपर एक कारखानेवालेने अपने कारखानेके बेंच इत्यादि, जहाँपर बिजली द्वारा "वेल्डिंग" (या जुड़ाई) होती थी, नीले रंगमें रंगा दिये जिसके कारण वहाँके काम करनेवालोंको गर्मीका अनुभव कम होता था और काफी आराम मिलता था।

इसी प्रकार रंगोंका असर पुरुषोंपर स्त्रियोंसे भिन्न होता है। रंगोंका एक विशेषज्ञ अनुसंधानके बाद इस निर्णयपर पहुँचा कि पुरुषोंको नीला रंग अधिक पसंद है तथा स्त्रियोंको लाल।

अगर हम एक नीली मोटर देखते हैं तो उसका कारण यह है कि मोटर पर एक इस प्रकारका पदार्थ लगा है जो केवल नीले प्रकाशको ही लौटाता है तथा अन्य सब रंगोंके प्रकाशको सोख लेता है।

रंग क्या है?

सफेद रोशनी मुख्यतर सात रंगोंके मिश्रणसे बनी है अतः जो वस्तु जिस रंगके प्रकाशको लौटा देती है हम उस वस्तुको उसी रंगका देखते हैं। अगर सब रंगकी प्रकाश रश्मियाँ लौट जायं तो वह वस्तु सफेद दीखेगी तथा सभी रंगके रश्मियोंको सोख लेनेसे वह वस्तु काली लगेगी।

एक औसत दर्जेके मनुष्यकी आँख बहुत थोड़ेसे रंगोंकी पहचान कर सकती है पर विशेष रूपसे अभ्यस्त लोग सैकड़ों रंगोंकी भिन्नताका अनुभव कर सकते हैं। चतुर निरीक्षकोंको, जोकि रंगे हुये सूतकी जांच करते हैं पीले सूतकी जांच करते हैं पीले सूतकी जांचमें हजारों लाल तथा और भी अन्य रंगोंके रेशे दिखलाई पड़ेंगे, पर एक अनभ्यस्तको केवल पीले रेशे ही मालूम

होंगे। अब कुछ ऐसी मशीनें भी बनाई गई हैं जो अभ्यस्त मनुष्यकी आँखकी तरह सब प्रकारके हल्केसे हल्के रंगोंकी पहचानकर देंगी। परन्तु मनुष्यके मस्तिष्क पर रंगसे जो प्रतिक्रिया होती है उसका असर इन मशीनों द्वारा नहीं मालुम हो सकता जैसा कि मनुष्य की आँख कर सकती है।

विविध प्रकारके रंग

रंग दो भागोंमें विभाजित किये जा सकते हैं खनिज रंग और बुकनोका रंग बुकनीके रंग ऐसे पदार्थ हैं जिनका घोल तैय्यार किया जा सकता है पर खनिज रंग पानी या अन्य बहुतसे तरल पदार्थों में नहीं घुल सकते। इसके अतिरिक्त बुकनीका रंग जिस वस्तुको रंगता है उसके लिये उसमें "आकर्षण" होता है जिसके कारण वह रासायनिक क्रिया द्वारा उसमें बिलकुल मिल जाता है। इसके विरुद्ध खनिज रंग जिस वस्तुपर लगाया जाता है उसे केवल एक पतले सतहसे ढक लेता है। इसकी क्रिया रासायनिक नहीं होती।

आरम्भमें हम लोग केवल प्राकृतिक रंगका ही प्रयोग करते थे। लाल रंगके लिये लाल मिट्टी (आइरन ऑक्साइड) का उपयोग होता था। इसी प्रकार नीले रंगके लिये नीला तूतिया, हरेके लिए ताँबेके भिन्न-भिन्न लवण इत्यादिका प्रयोग किया जाता था। यही नहीं, तरह तरहके पेड़ पौधोंका छाल, लकड़ियों और फलों इत्यादिसे भी रंग तैयार किया जाता था। मिट्टीके भी कई प्रकारके रंग तैयार किये जाते थे जो चीनी मिट्टीके बर्तनोंको रंगनेमें अब भी उपयोगी हैं, कारण यह है कि यह रंग भट्ठीकी तेज़ आँचमें, जिसमें यह बर्तन पकाये जाते हैं, नष्ट नहीं होते।

परन्तु इन सब उपायोंसे रंग तैयार करनेकी क्रिया बहुत ही महँगी थी। इसके अतिरिक्त एक खराबी यह थी कि अधिकतर जिन चीज़ोंपर यह रंग चढ़ाये जाते थे उनपर वे अच्छी तरह ठहर नहीं सकते थे यही कारण था कि सैकड़ों वर्षों तक केवल धनी तथा राजा महाराजा ही रंगीन वस्तुओंका उपयोग कर पाते थे पर वर्तमान युगमें रंगोंकी इतनी उन्नति हो गई है कि करीब-करीब सभी चीज़ें रंगी जाने लगी हैं। अब सस्तेसे सस्ते कपड़ा आपको सुन्दरसे सुन्दर रंगमें मिल सकता है।

कोलतारके रंग

इस विषयमें इतनी उन्नतिका मुख्य कारण कोयले तथा उससे तैयार की जानेवाली अन्य वस्तुओंकी जानकारी है। कोयला जब खूब गर्म किया जाता है तब उसमेंसे एक काला तथा गाढ़ा तरल पदार्थ निकलता है जिसे हम कोलतार कहते हैं। यही काला कोलतार आधुनिक रंग-विज्ञानकी जान है। पिछली शताब्दीके मध्यमें सर विलियम पर्किन नामक एक वैज्ञानिकने कोलतारसे कुनैन बनानेका प्रयत्न किया। वे कुनैन तो न तैयार कर सके पर उसके बदलेमें उन्हें जिस बातका पता चला उसके कारण संसारमें रंगके व्यवसायमें ग़ज़बकी उन्नति हुई। कुनैनकी जगह पर्किन्सको जो वस्तु मिली उसे पानीमें घोलनेपर एक धुँधले लाल रंगका घोल तैयार हो गया असलमें कुनैनकी जगह प्रथम कृत्रिम रंगका आविष्कार हुआ! यह आविष्कार बादमें बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुआ। अगर हम कहें कि आधुनिक रंग बनानेकी क्रियाका यह आविष्कार पहली सीढ़ी था तो कोई अनुचित बात न होगी। सर विलियमको आश्चर्य तो इस बातका हुआ कि जिन वस्तुओंकी वे परीक्षा कर रहे थे उनकी मात्रा कम या अधिक करनेसे भिन्न भिन्न प्रकारके रंग तैयार होते थे। जब कोलतारको स्रवित किया जाता है तब भिन्न-भिन्न तापपर भिन्न-भिन्न पदार्थ निकलते हैं जैसे बेंज़ोल, नेफ्थेलीन, ऐन्थ्रासीन इत्यादि। इसके अलावा और भी बहुतसे पदार्थ निकलते हैं परन्तु अधिकतर रंग इन्हीं तीन वस्तुओंसे तैयार किया जाता है। तरह-तरहके क्षार और अम्लोंके साथ रासायनिक क्रिया द्वारा इन वस्तुओंसे अनेक पदार्थ तैयार किये जाते हैं तथा इन नये पदार्थोंके कम या अधिक मात्रामें मिलानेसे रासायनिक क्रिया द्वारा सैकड़ों-हजारों प्रकारके घुलनशील रंग तैयार होते हैं।

रंग तैयार करनेकी विधिमें जर्मनीके लोग सबसे बढ़े हैं।

इनको इस कलामें सिद्धि प्राप्त करनेसे पहले करोड़ों रुपया व्यय करना पड़ा तथा वर्षों तक कठिन परिश्रम करना पड़ा। एक जर्मन कंपनीको रासायनिक नील तैयार करनेके लिये बीस वर्षतक घोर परिश्रम तथा करीब १,५० ००,००० रुपया खर्च करना पड़ा। आज संसारमें यह रासायनिक ढंगसे तैयार किया हुआ नील सब रंगोंसे अधिक प्रयोग किया जाता है। इसके आविष्कारसे पहले प्राकृतिक नील प्रयोग किया जाता था जिसकी खेतीके लिये भारतवर्ष प्रसिद्ध था। इसी आविष्कारका फल है कि नीलकी खेती अब इस देश से लुप्त प्रायः हो गया है।

रासायनिक ढंगसे तैयार किये गये रंगोंकी संख्या करीब २००० से कुछ ऊपर है। पर इन रंगोंको भिन्न-भिन्न परिमाणमें मिलानेसे कई हज़ार और भी रंग तैयार होते हैं। परन्तु अब वैज्ञानिकोंका ध्यान अधिक रंग तैयार करनेकी ओरसे हटकर रंगोंको पक्का तथा खूब चमकीला बनानेकी तरफ गया है। अब इसपर अधिक ध्यान दिया जा रहा है कि रंग सस्तेसे सस्ता तथा पक्के से पक्का हो जिससे तेज़ाब, रोशनी, धुलाई इत्यादिसे उसका रंग फीका न होने पावे। कई रंगोंमें इस विषयमें काफी सफलता प्राप्त हुई है।

'वायुमंडल विज्ञानका संक्षिप्त इतिहास'

[ले०—श्री बाबूराम पालीवाल]

पहला युग

वायुमंडल विज्ञान धराके विस्तृत विज्ञानकी एक शाखा है। यह उन प्राकृतिक घटनाओंसे सम्बन्ध रखता है जो, पृथ्वीको घेरे हुए वायुमंडलमें सदैव प्रगट हुआ करती हैं। यह तो निश्चय ही है यह विज्ञान मानवजातिके बड़े कामका है क्योंकि इसका उन विषयोंसे घनिष्ठ सम्बन्ध है जो मनुष्यका जीवन स्थिर रखनेके लिये खेती करनेके लिये, समुद्रमें जहाज चलानेके लिये वायुमें वायुयान उड़ानेके लिये तथा अन्य बातोंके लिये जिनका मानव जीवनसे गहरा सम्बन्ध है बड़े उपयोगी तथा आवश्यकीय हैं। इस विषयने विचारशील पुरुषोंका ध्यान हर समयमें अपनी ओर आकर्षित किया है। हिन्दू कालमें इसका नाम आन्तरिक्षा था, और प्राचीन आचार्योंने इस विषयका बड़े विस्तृत रूपसे अध्ययन किया था। वाराहमिहिरने जो कि ५०५ ई० से० ५८७ तक जीवित रहा अपनी प्रसिद्ध पुस्तक पंच सिद्धान्तिकामें उस समयकी इस विद्याका उल्लेख किया है। यूरोपमें एरिस्टॉटलने (३८४ से ३२२ ईसासे पूर्व) इस विषयका वैज्ञानिक ढंगसे अध्ययन करके उसका विवरण अपनी पुस्तक 'मेट्रोलोजीका'में लिखा है। इसके बाद करीब दो हज़ार वर्ष तक यानी १७हवीं शताब्दीतक इस विद्यामें कोई अधिक कार्य नहीं हुआ। हाँ, कोरियामें पानी नापनेके लिये वर्षा मापक यंत्र का व्यवहार सन् १४४२ ई० से होने लगा था।

दूसरा युग

वास्तवमें वायुमंडल विद्याका वैज्ञानिक ढंगसे अध्ययन तो सन् १६०१ ई० से आरम्भ होता है जब कि गैलिलियो नामक विज्ञानवेत्ताने तापमापक (थर्मामीटर) यंत्रका आविष्कार किया, फिर सन् १६४३ ई० में टारीसेलीने भारमापक यंत्र (बेरोमीटर) का आविष्कार किया और तब ओटोवोन ग्वेरिक नामक विज्ञानवेत्ताने इस यंत्रकी सहायतासे शीघ्र आनेवाले तूफान इत्यादिके आनेकी भविष्यवाणी देनेके नियमोंकी खोज की। सन् १६५७ ई० में बायलने

इस विषयमें अधिक ज्ञान बीन की और उन्हीं के नाम-पर 'बायलके सिद्धान्त'का आविष्कार हुआ।

इस समयमें प्रथम यूरोपीय वर्षा-मापक यंत्र एक इटेलियन व्यक्ति बेनेडेटो केस्टेलीने सन् १६३९ ई० में आविष्कार किया और तापमापक यंत्रका खूब प्रचार हो गया।

सन् १६५३ ई० में फर्डीनेन्ड द्वितीय (टसकेनीके बड़े राजकुमार) ने उत्तरीय इटलीमें कई वायुमंडल निरीक्षनालय खुलवाये। सन् १६८६ ई० में एडमेंड हेलीने अपनी पुस्तकमें ट्रेडविण्ड या व्यापारी हवायें तथा मानसूनके विषयमें लिखा और यह बताया कि इसका कारण विषुवत् रेखा तथा ध्रुवोंके बीच पृथ्वी और समुद्रके बीच तापक्रमकी असमानता है।

सन् १७३५ ई० में हैडले नामक विज्ञानवेत्ताने यह बताया कि पृथ्वीके घूमनेका प्रभाव व्यापारी हवाओंपर पड़ता है। सन् १७४९ ई० में ग्लासगोके विलसन नामक व्यक्तिने पतंगोंके साथ तापमापक यंत्र बाँधकर ऊपरी वायुका तापक्रम नापनेमें सफलता पाई और फ्रेन्कलिनने सन् १७५२ ई०में अपना प्रसिद्ध 'पतंग द्वारा अन्वेषण' किया जिससे यह साबित किया कि गरजनेवाले बादलोंकी विद्युत बिलकुल उसी विद्युतके समान है जो पृथ्वीपर दो चीजोंकी रगड़से अथवा दूसरे तरीकोंसे पैदा की जाती है।

इस प्रकार वायुमंडल विज्ञानके इतिहासका दूसरा युग १८वीं शताब्दिके अन्ततक समाप्त होता है। इस युगमें बहुतसे विश्वसनीय निरीक्षण किये गये इस लिये इस समयको 'सावधान-निरीक्षण' का युग कह सकते है।

तीसरा युग

तीसरा युग १८५० ई० तकका समय है। इस समयमें यह प्रयत्न किया गया कि प्राकृतिक घटनाओं-के घटनेका कारण तार्किक ढंगसे बतलाया जाय। इस विषयकी खोज करने वालोंके नाम डोव, रेड फील्ड, पिडिंगटन, मे डेस् एसपी तथा लूमिस विशेष उल्लेख-नीय हैं। डोवने जो कि एक जर्मनीके वायु-मंडल विज्ञानवेत्ता थे वायुके सामान्य प्रवाहकी व्याख्या की। रेड फील्डने अमरीकामें साइक्लोन या बवंडर आंधियों-की उत्पत्तिका अध्ययन किया और यह महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाला कि बीचमें अचल वायु है तथा उसके चारों ओर बवंडर विपरीत दिशामें घूमता है। इस कामको बादमें पिडिंगटनने जारी रक्खा और उन्होंने बहुतसे महत्वपूर्ण परिणाम निकाले और अन्तमें साइनोप्टिक चार्टको वायुमंडल-विज्ञानमें ईजाद करने-का श्रेय एच० डबल्यू ब्रांडसको है। सन् १८४३ ई० में एसपीने संयुक्त राज्य अमरीकामें वायु मंडल विभागकी स्थापना की और साइक्लोनकी रूप रेखाका अध्ययन किया।

चौथा युग

वायुमंडल विज्ञानका चतुर्थ युग सन १८५० ई० से १८६५ ई० तक है इस समयमें संसारके बहुतसे देशोंमें वायु-मंडल विज्ञान विभाग स्थापित किये गये। सन् १८५४ ई०में इङ्गलैंडमें एडमीरल फिट्ज़ रॉयकी अध्यक्षतामें वायु मंडल विज्ञान विभागकी स्थापना हुई। सन् १८५७ ई० में फिटज़रॉयने यह प्रबन्ध किया कि एक ही निश्चित समयपर बहुतसी जगहोंपर एक साथ वायु मंडलका निरीक्षण किया जाय और उन निरीक्षणोंकी सहायतासे उन्होंने तूफान उठनेके नियमका आविष्कार किया और उनकी भविष्य वाणी करनेमें भी समर्थ हुये। इसी समयमें यही काम फ्रान्समें ली वेरियर तथा हॉलेंडमें बायज़ बेलोट-का ध्यान आकर्षित कर रहा था। बायज़ बेलोटने ही उस नियमका जो कि उन्हींके नामपर प्रसिद्ध है प्रकाशन किया "अर्थात् अगर तुम हवाकी तरफ पीठ करके खड़े हो तो उत्तरी कटिबन्धोंमें न्यून वायु भार तुम्हारे बायें हाथकी तरफ होगा"। लगभग १८६० ई० के अमेरिकाके फेरेलने पृथ्वीपर वायु परिक्रमण-की व्याख्या की।

पांचवां युग

पांचवां युग १८७० ई० से अब तकका समय कहा जा सकता है इस समयमें पुराने अनुमानोंको

बहुतसे निरीक्षणों द्वारा परीक्षा की जा रही है और देखा जा रहा है कि अनुमान ठीक सिद्ध होते हैं अथवा नहीं। इस युग की एक विशेषता यह है कि पतंगों तथा गुब्बारों द्वारा ऊपरी वायुका निरीक्षण किया गया और इससे बहुतसी बातें प्रकाश में आई हैं।

भारतवर्षमें प्रयोगशालायें

भारतवर्षमें वायु-मंडल विज्ञान-विभागके स्थापित करानेका श्रेय बंगालकी एशियाटिक सुसाइटी-को है जिसने भारत सरकारके पास वायु-मंडल विज्ञान विभाग स्थापित करनेकी आवश्यकतापर एक प्रार्थनापत्र भेजा था जो स्वीकार कर लिया गया। और सन् १८६५ ई० से भारतमें वायुमंडल विज्ञान विभाग स्थापित हो गया और प्रान्तीय सरकारोंकी अध्यक्षतामें कार्य आरम्भ हो गया जो कि सन् १८७५ ई० तक जारी रहा। उसके पश्चात् सन् १८७५ ई० से इसका प्रबन्ध केन्द्रीय सरकारके हाथमें चला गया। सन् १९१४ ई० में ऊपरी वायुका अध्ययन करनेके लिये आगरेमें जे० एच फील्डकी अध्यक्षतामें वायु निरीक्षणालय स्थापित किया गया।

गत महायुद्धके बाद सरकारने वायुयानोंके लिये इस विभागकी आवश्यकता अधिक अनुभव की और इसकी उन्नति होती गई और दिन प्रतिदिन होती जाती है।

इस विभागका प्रधान कार्यालय आजकल पूना है और उसके डाइरेक्टर जनरल श्री सी० डबल्यू० बी० नोरमंड हैं। इस विभागके अंतर्गत ऊपरी वायु-का अध्ययन करनेके लिये एक अलग शाखा है जिसका प्रधान कार्यालय आगरेमें श्री० गौरीपति चटर्जीकी अध्यक्षतामें है। ऊपरीवायुके अध्ययनमें दिनपर दिन उन्नति होती जा रही है और उसके निरीक्षण वायुयानों तथा भविष्यवाणी प्रकाशित करनेके लिये बड़े लाभदायक सिद्ध हुये हैं। भारत-वर्ष में पूना, कलकत्ता, तथा कराचीमें प्रतिदिन दो बार भविष्यवाणी प्रकाशित होती है जो तुरन्त ही बे-तारके तारों द्वारा वायुयानों तथा समुद्रके जहाजों पर पहुँचाई जाती है। भारतवर्षके वायुमंडल-विज्ञान विभागने बहुत सा मौलिक कार्य किया है और इस कारण अन्तरराष्ट्रीय वायुमंडल वैज्ञानिक संघमें भारत-का एक विशेष स्थान है। समस्त भारतमें भिन्न-भिन्न श्रेणियोंके लगभग ३५० निरीक्षणालय हैं जिनसे प्रतिदिन तार द्वारा समाचार पूना कलकत्ता, कराची तथा रंगून पहुँचाये जाते हैं और वहाँ से उन्हींके आधारपर भविष्यवाणी प्रकाशित की जाती हैं।

तैलोंका उपयोग

[ले०—डा० सत्यप्रकाश डी० एस-सी०]

तैलोंका व्यवहार कई कामोंमें होता है जिनमेंसे मुख्य ये हैं।

(१) खानेके काममें जैसे घी, सरसों, तिल बिनौला या नारियलका तैल।

(२) साबुन बनानेके काममें—जैसे महुआ, नारियल, तिल, और नीमका तैल।

(३) पेंट और रंगोंके मिलानेमें—जैसे अलसी या तारपीनका तैल।

(४) जलानेमें—मिट्टीका तैल, अंडी, सरसों और नीमका तैल।

(५) दवाओंमें—मछली या कॉडलिवरका तैल, अंडीका तैल।

(६) मशीनमें—मिट्टीके तैलके साथ चर्बी, नीट सफुट, अंडी, जैतून आदिके तैल।

तैल निकालना

कोल्हूसे पेरकर तैल निकालना—हमारे देशमें कोल्हूसे पेरकर तैल अधिकतर निकाला जाता है। बैल इस

कोल्हूको घुमाते हैं। सरसों, अंडी, निमकौरी और तिल तीनोंका तैल इसी विधिसे निकालते हैं। ये सब चीजें देखभालकर अच्छी लेनी चाहिये, और जितनी पकी होंगी उतना ही तैल इनमें होगा। बादको जो खली रह जाती है उसमें भी काफ़ी तैल होता है। यह खली जानवरोंके खानेके काममें या खादके काममें लायी जानी चाहिये।

हाइड्रौलिक प्रेससे तैल निकालना—आजकल कारखानोंमें इन मशीनोंके द्वारा तैल निकालते हैं। बीजोंको थैलोंमें भरकर प्लेटों-बीचोंमें एकके ऊपर एक चिन देते हैं। पानीके प्रभावके द्वारा ये बॉक्स-नोंसे ऊपरकी एक बेलन द्वारा दबाये जाते हैं। बाक्स में छेद बने होते हैं। दबाये जानेपर जो तैल निकलता है, यह इन छेदोंमेंसे बहकर नालियोंमें आ जाता है।

ये मशीनें कई तरहकी बनाई गई हैं। किसीमें पेरनेका काम बेलनोंसे लिया जाता है किसीमें कोल्हुओं-से और किसीमें और ही किसी योजना से।

इन विधियोंमें कभी-कभी बीजोंको कूटकर पानीकी भापसे गरम कड़ाहोंमें पकाते हैं, और फिर तैल निकालते हैं। ऐसा करनेसे तैल जल्दी और ज्यादा निकलता है।

बड़े-बड़े कारखानोंमें तैल निकालनेमें चार क्रियायें करते हैं, और इन चारोंके लिये मशीनें बनाई गई हैं।

(१) बीजको पहले कूटा या पीसा जाता है जिससे बीजमें स्थित तैलके कोष्ठ छिन्न भिन्न हो जांय।

(२) कूटे हुए बीजको गरम किया जाता है जिससे तैल जल्दी निकल आवे, और बीजका अल्बुमन पृथक् हो जाय।

(३) अब सांचा बनानेवाली मशीनोंमें धीरेसे दबाकर कूटे हुए बीजोंको हाइड्रौलिक प्रेसके योग्य बनाया जाय।

(४) हाइड्रौलिक प्रेसमें इसमेंसे तैल निकाला जाय।

भापसे या पानीके साथ उबालकर तैल निकालना—पशुओंकी चर्बीसे तैल निकालनेकी विधि इस प्रकार है। सीसाके अस्तर लगे बर्तनोंमें चर्बीको भरते हैं, और कारखानोंमें चर्बीको कुण्डलियोंमें प्रवाहित भाप द्वारा गरम करते हैं। मामूली कामके लिये चूल्हेकी आगपर भी गरम कर सकते हैं। चर्बीके ऊपर गरम पानी भर देते हैं, और कुछ घंटों तक गरम होने देते हैं। ठण्डा होनेपर चर्बीका तैल पानीपर तैरने लगता है और इसे अलग निथार लिया जाता है।

मछलीका तैल भी इसी प्रकार निकाला जाता है (उ० दे०)।

घोलकोंकी सहायतासे तैल निकालना—कोल्हू या हाइड्रौलिक प्रेससे तैल निकालनेपर खलीमें ८–१० प्रतिशत तैल फिर भी बच रहता है। यदि खलीमेंसे शेष तैल भी निकालना हो, तो घोलकोंका प्रयोग करते हैं। निम्न चार द्रव तैलके अच्छे घोलक हैं।

(१) कार्बनडाई सल्फाइड (क्वथनांक ११७ डिग्री)

(२) पेट्रोलियम ईथर (क्वथनांक १७६ से २४८ डिग्रीतक)

(३ कार्बनटेट्राक्लोराइड (क्वथनांक १७० डिग्री)

(४) बेंज़ीन या बेंज़ोल (क्वथनांक १७६ डिग्री)

कार्बन डाई सल्फाइडका उपयोग पाम आयल, अलसीके तैल आदिके लिये अच्छा है। पशुओंकी हड्डियोंमेंसे चर्बी अलग करनेके लिये कार्बन टेट्राक्लोराइड अच्छा है। मामूली कामोंके लिये पेट्रोलियम ईथर सबसे अच्छा है।

आगको इन घोलकोंसे दूर रखना चाहिये। ठंडे तापक्रमपर ही खलीमें ये घोलक मिलाओ और खूब हिलाकर रख छोड़ो। तैल इन घोलकोंमें घुल जावेगा। घोलकको अलग निथार लो, और सावधानी-से घोलकको उड़ा दो (धूपमें रखकर या सुरक्षित भभकोंमें गरम करके)। तैल रह जायगा। तैलमें भापको प्रवाहित करके घोलककी शेष दुर्गन्धको भी दूर कर दो।

घोलकोंमें आग लग जानेका भय रहता है; अतः यदि गरम घोलकोंमें तैल घुलाना हो, तो गरम करनेका

विशेष प्रबन्ध करना चाहिये जिससे घोलककी भाप इधर उधर बर्तनोंमेंसे न निकलती हो और आग न लग जाय। आगको भापसे अलग रखनेके लिये 'सुरक्षित अंगीठियाँ' (सेफ़्टी बाथ) बनाई गई हैं।

तैलको साफ़ करना

तैलमें दो प्रकारकी अशुद्धियाँ बहुधा रहती हैं, एक तो वे जिनसे तैलका रंग साफ़ नहीं दिखाई पड़ता। तैलके साथ-साथ बीजका प्रोटीन अंश भी थोड़ासा चला आता है, जिससे रंग धुँधला काला या लाल दिखाई देने लगता है, दूसरी अशुद्धियाँ दुर्गन्ध संबन्धी हैं। तैलको साफ़ करनेकी सामान्य विधियाँ ये हैं।

(१) तैलको गरम करके—गरम करनेमें तापक्रम ऐसा रक्खो कि तैल तो जले नहीं पर इसका प्रोटीन अंश नीचे बैठ जाय। अलसीके तैलमें यह आवश्यक होता है।

(२) तैलमें भाप प्रवाहित करके—तैलमें अतितप्त भाप या मामूली भाप भी प्रवाहित करते हैं। ऐसा करनेकी एक सरल रीति यह है। तैलमें आधा भाग पानी मिलाओ और फिर उबालो। पानीकी भापके साथ तैलका दुर्गन्धमय उड़नशील अंश भी उड़कर अलग हो जायगा। कास्टर ऑयल (अंडीके तैल) और खाने योग्य इन तैलोंकी दुर्गन्ध मिटानेके लिये इस विधिका प्रयोग करते हैं।

(३) बर्फ़में ठंडा करके—जो तैल जल्दी जमते नहीं हैं, उनका प्रोटीन भाग बर्फ़में ठंडा करनेसे नीचे बैठ जाता है और ऊपर साफ़ तैल बच रहता है। इस विधिका उपयोग कम होता है।

(४) फुलर-मिट्टी, कोयलेके चूर्ण, या किसी चीनी मिट्टीकी सहायतासे—०.२ प्रतिशतसे लेकर १० प्रतिशत तक फुलर-मिट्टी मिलाकर तैलोंको खदबदाओ। गरम करके तापक्रम १७५ डिग्रीके लगभगका करलो कुछ तैल १० मिनटमें ही साफ़ हो जायंगे, और कुछ एक घंटा तक समय लेंगे। बादको फिल्टर-प्रेसमें छानलो। तैलोंके साफ़ करनेमें फुलर-मिट्टी सबसे अच्छी है।

(५) तैलोंको ओषदीकृत करके—बहुधा ऐसा होता है कि तैलोंकी प्रोटीन-अशुद्धियाँ रासायनिक पदार्थोंसे बहुत शीघ्र ओषदीकृत होकर नष्ट हो जाती हैं, और तैलपर उतनी मात्रासे कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता। इस विधिसे बहुतसे तैलोंका रङ्ग साफ़ किया जा सकता है।

(क) ओषदीकृत करनेकी सबसे सरल विधि तैलमें हवा प्रवाहित करना है, तैलको धूपमें रखकर या तापक्रम ऊँचा करके हवा प्रवाहित करनेसे काम जल्दी होगा। पाम ऑयलमें यह विधि काम देती है। तापक्रम २२०—३०० डिग्री होना चाहिये।

(ख) सोडियम डाइक्रोमेटसे—चर्बी या पाम ऑयलमें इसका विशेष उपयोग करते हैं, लोहेके बर्तनोंमें यह प्रयोग न करना चाहिये। सीसाके अस्तर लगे बर्तन अच्छे होते हैं। तैलको १२५—१३५ डिग्री तक गरम करो। जितना तैल हो उसके हिसाबसे १½ से १¾ प्रतिशत मात्रा सोडियम डाइक्रोमेटकी लेकर न्यूनतम पानीमें घोलो। अब तैलमें मिलाकर धौंकनीसे हवा धौंककर खूब खदबदा लो। ऊपरसे तैलके हिसाबसे २½ से २¾ प्रतिशत नमकका तेज़ाब मिलाओ और ५—१० मिनट खूब खदबदाओ। शान्त रखनेपर क्रोमेटका घोल अलग हो जायगा, और शुद्ध तैल अलग। तैल अलग करके पानीसे कई बार धोओ।

(६) धूप दिखा कर—इस विधिसे तैल धीरे-धीरे साफ़ होता है। पोस्ता, अलसी, अंडी आदिका तैल इस प्रकार साफ़ किया जा सकता है। चीनी या एनेमेलकी तश्तरियों या चिलमचियोंमें तैल भरकर ऊपरसे कांचके प्लेटोंसे ढँको और धूपमें रख छोड़ो। बड़े मुँहकी कांचकी बोतलोंमें भी यह काम हो सकता है।

तैलोंके गुण

गुणोंके हिसाबसे तैलोंको दो मुख्य भागोंमें बाँटा जा सकता है

(१)—शीघ्र सूखनेवाले तेल जैसे अलसीका तेल। इनका व्यवहार पेण्ट या रङ्गोंके मिलाने-में होता है। ये तेल जलानेके कामके नहीं हैं क्योंकि हवाके संसर्गसे ये गाढ़े पड़कर ठोस या रोग़नदार हो जायेंगे।

(२) न सूखनेवाले तैल जैसे तिल, सरसों आदि-के। इनका व्यवहार अन्य सब कामोंके लिये होता है।

वैज्ञानिक दृष्टिसे तैलोंके निम्न गुण देखने चाहिये—

(१) द्रवणांक या जमने और पिघलनेका तापक्रम।

(२) तैलका गाढ़ापन।

(३) साबुन बनानेकी योग्यता—एक ग्राम तैलको साबुन बनानेके लिये जितने मिलीग्राम कॉस्टिक पोटाश-की आवश्यकता होगी उसे तैलकी 'साबुन संख्या' कहते हैं। मानलो कि किसी तैलकी साबुन संख्या २०० है, तो इसका तात्पर्य यह है कि एक ग्राम तैलको साबुन बनानेमें २०० मिलीग्राम अर्थात् ०·२ ग्राम कास्टिक पोटाश लगेगा। अर्थात् २० प्रतिशत कास्टिक पोटाश लेनेसे पूरा तैल साबुन बन जायगा। हम तैलोंकी साबुन-संख्या आगे देंगे जिससे मालूम हो जायगा कि साबुन बनानेमें किस तैल में कितना कास्टिक पोटाश मिलाना चाहिये।

(४) आयोडीन-संख्या—आयोडीन-संख्यासे तैल-की शुद्धताका पता चलता है। इससे तैलकी पहचान आसानीसे की जा सकती है। तैलोंमें आयोडीन सोखनेका गुण होता है, पर कोई तैल कम आयोडीन सोखता है और कोई अधिक। एक ग्राम तैल जितने मिलीग्राम आयोडीन सोखेगा, उसे उस तैलकी आयोडीन-संख्या कहेंगे। सूखनेवाले तैलोंकी आयो-डीन-संख्या अधिक होती है, और न सूखनेवालोंकी कम।

तैलोंकी आयोडीन संख्या

सूखनेवाले तैल	
अलसी	१७३-२०१
सोया	१३०-१४३
पोस्त	१३३-१४३
कम सूखनेवाले तैल	
जई	१११-१३०
बिनौला	१०८-११०
तिल	१०३-१०८
न सूखनेवाले तैल	
बादाम	९३-९७
चावल	९१-१०५
जैतून	७९-८८
अंडा	८३-९०
मछलीका तैल	
सारडिन	१६१-१९३
सालमन	१५५-१६१
हेरिंग	१२[illegible]-१४७
काडलिवर तैल	१३०-१७०
वनस्पतिक चर्बी	
खजूर	५१-५७
गरी	८-१०
पाशविक चर्बी	
लार्ड	४६-७०
बीफ-टैलो	३८-४६
मटन-टैलो	३५-४६
मक्खन (घी)	२६-४०

अंडीका तैल

यह एरण्डके बीजोंसे निकलता है। बीजमें ४५-५० प्रतिशत तैल होता है जिसमेंसे देशी विधिमें ३०-३५ प्रतिशत तैल और मशीनोंमें ४० प्रतिशत तैलतक निकाला जा सकता है।

बिना गरम किये हुए जो तैल पहली धारमें निकलता है, वह दवा कामके लिये दवाओंमें दिया जाता है।

इसकी खलीमें एक विषैला एल्केलॉयड होता है, इसलिये खली पशुओंके खिलानेके कामकी नहीं है। पर खादमें इसका उपयोग करना चाहिये। पेर लेनेपर

जाती है। इस तैलका उपयोग दवाओंमें अधिक होता है।

कुछ मछलियोंकी यकृतसे निकले तैलोंके गुण सारिणीमें दिये जाते है—

सारिणी

	कॉड	शार्क	हैलिबट
घनत्व	०·९२२-९०·४१	०·९१०-०·९२८	०·९१८-०·९३०
साबुन संख्या	१६८-१९०	१४०-१९७	११०-२२५
आयोडीन संख्या	१३५-१९८	१११-१५५	१२६- ५४

दवाओंके अतिरिक्त इनका उपयोग ऑयल क्राय. चमड़ेके काम, या रबरके सामान बनानेमें भी होता है।

तैल निकालनेकी विधि इस प्रकार है: मछलियोंके शरीरमें यकृत काटकर एकत्रित कर लो और इन्हें भापके द्वारा गरम करो (ऐसे बर्तनोंमें गरम करो, जिनमें भापके आने जानेके लिये जैकेट बने हों)। ऐसा करनेसे तैल निकलने लगेगा। पहली बार निकला हुआ यह तैल दवाओंके कामका है। अधिक ऊँचे तापक्रमपर गरम करनेसे हलका भूरा तैल और निकलेगा। यह मध्यम श्रेणीका है। देरतक पानीके साथ उबालनेपर जो तैल निकलेगा वह 'ब्राउन ऑयल' कहलाता है।

दवाओंके लिये कॉड लिवर तैल सबसे अच्छा होता है और कभी-कभी इसमें शार्क-लिवर ऑयल भी मिला देते हैं।

कोलतार तैल—कोलतारको भभकेमें गरम करनेसे अनेक पदार्थ मिलते हैं। पहले इन्हें चार तैलोंमें पृथक् किया जाता है।

१—लाइट ऑयल (हलका तैल) १७०° सेण्टीग्रेड° तक उबलनेवाले।

२—मिडेल ऑयल (मध्यम तैल) १७०° से २३०° तक।

३—हेवी ऑयल (भारी तैल) २३०° से २७०° तक।

४—हरा तैल २७०° के ऊपर

इनमेंसे पृथक् किये गये पदार्थोंमें निम्न मुख्य हैं—

१—बेंज़ोल—(क) ५० प्रतिशत बेंज़ोल जो १०० सेंटीग्रेडके नीचे ५० प्रतिशत खौलता होता है। यह बेंज़ीन, टॉलवीन, और ज़ाइलीनका मिश्रण होता है।

(ख) ९० प्रतिशत बेंज़ोल जो १००° सेंटीग्रेडके नीचे ९० प्रतिशत खौलता होता है, और ऊपरवाली तीनों चीज़ोंका मिश्रण होता है।

(ग) शुद्ध बेंज़ीन।

२—सोलवेण्ट नफ़्था—बेंज़ीन हाइड्रोकार्बनका मिश्रण।

३—नैफथलीन।

४—एन्थ्रासीन।

५—कार्बोलिक एसिड।

६—क्रिओज़ोट ऑयल।

७—पिरीडिन।

गरीका तैल—नारियलकी गरीमें ३० से ४० प्रतिशततक तैल होता है। गरीको नारियलमेंसे निकालकर शीघ्र ही सुखा लेना चाहिये नहीं तो वह खट्टा हो जाता है। सुखानेका काम गरम हवासे या धूपसे किया जाता है। इसमें ५-६ प्रतिशतसे अधिक पानी नहीं रहना चाहिये नहीं तो फफूँदी लग जायेगा, और लगभग एक चौथाई तक तैल नष्ट हो जायगा।

हरी गरीमें ३० से ४० प्रतिशत तैल रहता है और ५० प्रतिशत पानी। सूखी गरीमें ५० से ७० प्रतिशत तैल होता है।

गरीको गरम वातावरणमें पेरना चाहिये ऐसा करनेसे तैल जल्दी निकल आता है। खलीमें १० प्रतिशत तैल और २० प्रतिशत प्रोटीन रह जाता है और यह पशुओंको खिला देनी चाहिये।

इसका व्यवहार खानेमें और साबुनमें और शिरमें लगानेके योग्य तैल बनानेमें अधिक होता है। यह ६० से ७२ डिगरी तकके तापक्रममें जम जाता है। इसकी साबुन संख्या २४६-२४८ है (अन्य तैलोंकी अपेक्षा कहीं अधिक, क्योंकि इसमें ग्लिसरीन अधिक होती है)। यह बिना गरम किये ही कास्टिक सोडा या पोटाशके साथ साबुन दे देता है। इसका साबुन नमक डालनेसे अवक्षेपित नहीं होता।

गरीके तैलकी आयोडीन संख्या बहुत ही कम ८-१० है। इसका घनत्व ०.९२६ है।

गाय बैल या भेड़की चर्बी—इनका उपयोग खानेमें, या साबुन बनानेमें किया जाता है। इन पशुओंके सभी अंगोंसे चर्बी निकालकर अलग कर लो और हलकेसे गरम करो। चर्बी पिघल जायगी और शेषरेशवादि बिना पिघले रह जायगी। पिघले भागको निथार कर अलग कर लो। थोड़ासा नमक छिड़क देनेसे रवचा चर्बीमेंसे शीघ्र अलग हो जाती है।

भेड़की चर्बीमें गायकी चर्बीसे अधिक दुर्गन्ध होती है, अतः मारगेरिन बनानेमें या अच्छी जातिके साबुन बनानेमें इसका उपयोग नहीं हो सकता।

दोनों चर्बियोंके गुण यहाँ दिये जाते हैं:—

	गायकी	भेड़की
घनत्व	०.९४३-०.९५२	०.९३७-०.९५३
साबुन संख्या	१९३-२००	१९२-१९५
आयोडीन संख्या	३५-४७	३३-३४
जमनेका तापक्रम	८६	९५

जैतूनका तैल—ओलइव-ऑयल—पके फलमें ४०-६० प्रतिशत तैल होता है, पर कहीं-कहींके फलोंमें बहुत ही कम होता है। अधपके फलोंसे अच्छा तैल निकलता है। छिलकोंको निकालकर बीजको हलकेसे दबाकर जो तैल निकलता है, वह खानेके भी योग्य होता है। दुबारा बिना गरम किये ही जो तैल निकलता है, वह मध्यम श्रेणीका होता है। आखीरमें शेष तैल गरम करके या कार्बन बाइ-सलफ़ाइड आदि घोलकोंकी सहायतासे निकालते हैं। यह तैल निम्नतम श्रेणीका होता है।

इसकी खलीमें खटाँयद शीघ्र पैदा हो जाती है। ताज़ी खली पशुओंको खिलायी जा सकती है, पर अधिकतर खली खादके काममें आती है।

मामूली तैलको पहले पानीसे धोते हैं, और फिर छानकर शान्त रख छोड़ते हैं। ऐसा करनेसे मोमका-सा भाग नीचे बैठ जाता है, और ऊपर स्वच्छ तैल रह जाता है। इसका रंग पानीके रंगका-सा पर कभी-कभी पीला या हरा भी होता है।

विदेशोंमें यह तैल सलादके साथ खानेमें आता है। यह मशीनके रैल बनानेके विशेष कामका है क्योंकि इसमें गाढ़ापन भी रेप-ऑयलसे अधिक होता है; और गोंदकी-सी चप चपाहट भी इसमें बहुत कम पैदा होती है। रेशम, या ऊनको धोनेका विशेष साबुन इससे बनता है।

इसका घनत्व ०.९२० है। इसकी साबुन संख्या १८५-२०३, और आयोडीन संख्या ७७-९५, है। यह ३५ से ५० तापक्रमके बीचमें जमता है।

तारपीनका तैल—टरपेण्टाइन—चीड़ या देव-दारकी तरहके वृक्षोंके गोंदीले पदार्थोंसे यह तैल निकाला जाता है। पेड़ोंके तनोंमें भूमिसे एक-दो फुट-की ऊँचाईपर कटोरोंके आकारके जिनमें दो-दो सेरके लगभग दूध आ सके, गड्ढे काट देते हैं इस छेदके ऊपर तनोंमें कई दराज कर देते हैं जिनसे दूधके बहकर नीचे आनेमें आसानी हो। मार्चसे सितम्बर-तक इस गड्ढेमें गोंदीला दूध आकर जमा होता रहता है।

इस प्रकार वृक्षोंके गोंदको पृथक् करके तैलके कारखानोंमें भेजते हैं आग या अतितप्त भापसे गरम किये गये भभकोंमें इनका स्रवण किया जाता है। तारपीनका तैल पानीकी भापके साथ उड़कर अलग

आ जाता है, और भभकेमें जो पदार्थ बच रहता है उसे रोजिन या रजन कहते हैं।

तस भापके उपयोगसे जो रजन मिलता है वह साफ़ होता है, पर आगके उपयोगसे बचा रजन काला होता है।

गोंदमेंसे लगभग २० प्रतिशत तारपीनका तैल निकलता है। तैलका घनत्व ०.८७ के लगभग होता है। यह ३२० डिगरीपर उबलता है।

तारपीनका तैल वार्निश, पौलिश या अन्य कामोंमें घोलकके रूपमें किया जाता है।

रजन पानीमें नहीं घुलता, पर स्पिरिटमें क्लोरोफार्म और ईथरमें घुल जाता है। यह सोडाके साथ साबुन बनाता है। नरम और कठोर दोनों प्रकारके साबुन बनानेमें इसका उपयोग किया जाता है। नरम साबुनमें ७-१० प्रतिशत मिला देनेसे साबुन साफ़ और चमकदार बनता है।

रजनको ३४०० डिगरीतक भभकेमें गरम करनेपर इसमेंसे 'रोजिन स्पिरिट' और 'रोजिन आयल' नामक द्रव पदार्थ निकलते हैं जिनका उपयोग तारपीनके तैलमें मिलावट करने या और तैलोंमें मिलानेमें किया जाता है।

तिलका तैल—तिलमें ५०-५७ प्रतिशत तैल होता है जिसमेंसे देशी विधि द्वारा ३० प्रतिशतके लगभग और मशीनों द्वारा ४२-४८ प्रतिशतके लगभग तैल निकल आता है। इसकी खलीमें तैल और प्रोटीन बहुत होता है, इसलिये यह पशुओंके खिलानेके काममें आती है। मार्गेरीन या विलायती घी बनानेके काममें भी यह आता है। इसका उपयोग इत्रोंमें, दवाओंमें, और साबुन बनानेमें भी होता है। बादाम और जैतूनके तैलमें इसकी मिलावट बहुत की जाती है। इस तैलमें यह विशेषता है कि यह जल्दी खट्टा नहीं पड़ता।

इसका घनत्व ०.९२३-०.९२६, साबुन संख्या १८८-१९३, और आयोडीन संख्या १०३-११० है।

नीट सफुट आयल—पशुओंके पैरोंका तैल गाय, भैंस, बकरे, भेड़, घोड़े, आदि पालतू पशुओंके पैरोंको पानीके साथ उबालनेसे यह तैल निकलता है। घुटनेसे नीचे सुरतककी सामने वाली हड्डीमें सबसे अच्छा तैल होता है, पर अधिकतर पूरे पैरको ही उबाला जाता है। कसाई खानेसे ये पैर प्राप्त हो सकते हैं।

कभी-कभी घोड़े और भेड़ोंके पैरोंको मिलाकर तैल निकालते हैं। यह बहुत नीचे तापक्रमपर (२८ से १४ डिगरीपर) जमता है। चमड़ेकी सफ़ाईमें इसे बहुत काममें लाते हैं। मशीनोंके सूक्ष्म भागोंमें दिया जानेवाला तैल भी इससे बनता है।

इसका घनत्व ०.९११ है, साबुन संख्या १९४-१९९ और आयोडीन संख्या ६६-७६ है।

पाम-आयल या ताड़का तैल—अफ्रीकाके पाम पौधेके फलसे यह तैल निकाला जाता है। फलके गूदेमें ५० प्रतिशत और गुठलीमें ४५ प्रतिशत तैल होता है।

(१) तैल निकालनेकी देशी अफ्रीकन विधि इस प्रकार है—पके फलोंको पानीके साथ सड़ने देते हैं। ऐसा करनेसे कठोर गूदा नरम पड़ जाता है। गूदेको पीटकर निकाल लेते हैं, और गुठलियाँ बीनकर अलग कर देते हैं। गूदेको फिर पानीके साथ उबालते हैं। ऐसा करनेसे तैल पानीपर तैरने लगता है, जिसे अलग निथार लिया जाता है। इस विधिमें फल सड़ानेके कारण बहुतसा तैल नष्ट हो जाता है।

(२) आधुनिक विधि इस प्रकार है—ताजे फलोंको दो घंटेतक भापके संसर्गमें आने देते हैं, और फिर गूदेको अलग करके गुठल सहित ही सैण्ट्रीफ़्यूगल-एक्सट्रैक्टरमें मथते हैं। ऐसा करनेसे जो तैल निकलता है, वह सर्वोत्तम होता है। बादको गुठलियाँ अलग कर देते हैं और भापसे प्रभावित करके हाइड्रॉलिक मशीनमें दबाते हैं। इस विधिसे लगभग सभी तैल अलग हो जाता है, और यह मध्यम श्रेणीका होता है।

(३) गुठलियोंमेंसे तैल निकालना—गुठलियोंको साफ़कर पीसकर आटेके समान कर लिया जाता है

और फिर हाइड्रोलिक प्रेस या कोल्हूमें पेरकर इसमें-से तैल निकालते हैं।

घोलकोंकी सहायतासे भी तैल निकालते हैं।

ताजे पाम ऑयलका उपयोग अफ्रीका-वासी खानेमें करते हैं। इसमें मीठा स्वाद और अच्छी गन्ध होती है। पर इस तैलमें धीरे-धीरे खटाँयद बढ़ने लगती है। अफ्रीकासे यूरोप पहुँचते-पहुँचते ५०-६० प्रतिशततक अम्ल पैदा हो जाते हैं। तैलका रंग गहरा पीला या लाल होता है। ताज़ा तैल मक्खन-सा मालूम पड़ता है।

इस तैलको शुद्ध करनेकी दो विधियाँ हैं :—

(१) हवासे—तैलमें अम्ल अधिक होता है इस लिये सीसा (लेड) का अस्तर किये हुए बर्तनोंमें रखते हैं, और ताँबेकी कुण्डलियोंमें अति तप्त भाप प्रवाहित करके तैलको गरम करते हैं। जब तैलका तापक्रम २१२ डिगरी हो जाय तब इसमें हवा प्रवाहित करते हैं। ऐसा करनेसे तैलका रंग स्वच्छ हो जाता है।

(२) सोडियम डाइक्रोमेटसे—ऊपरकी विधिके समान ही जब तापक्रम १४० डिगरी हो जाय, तो इसमें प्रति १०० भाग तैलके लिये १-३ भाग सोडियम डाइक्रोमेट और उतना ही नमक या तेजाब और १०-१० भाग पानी मिलाकर धीरे-धीरे छोड़ते हैं और घोलको हवा द्वारा खलबलाते रहते हैं। ऐसा करने-पर तैलका रंग बिलकुल साफ़ हो जाता है।

पाम ऑयल साबुन और मोमबत्ती बनानेके काम-में आता है। टिनके व्यवसायमें पाम ऑयल प्रे.जुका उपयोग होता है। इसके अम्लोंको शिथिल करके मशीनका तैल भी बनाते हैं।

पाम ऑयलका घनत्व ०.९२२, साबुन संख्या २००-२०३, और आयोडीन संख्या ५२-५६ है। यह १०६ डिगरीपर बिलकुल पिघल जाता है।

गुठलीसे निकले तैलकी साबुन संख्या २४६ और आयोडीन संख्या १३.५ है। यह ६७ डिगरीपर पिघलता है।

पोस्ताका तैल

यह खानेके काम आता है, और चित्रकारोंकी सुन्दर पेन्टोंमें जैतूनके तैलके साथ इसकी मिलावट भी की जाती है! बिना गरम किये पेरा हुआ तैल स्वच्छ श्वेत होता है, पर गरम करके पेरा हुआ लाल होता है।

इसका घनत्व ०.९२४-०.९२७, साबुन संख्या १८९-१९७ और आयोडीन संख्या १३७-१५७ है।

बादामका तैल

तैल अधिकतर कड़वे बादामोंमेंसे निकाला जाता है पर कभी-कभी मीठे बादामोंमेंसे भी। पर दोनों तैल लगभग एक ही हैं। कड़वे बादामोंमें मीठेकी अपेक्षा तैल अधिक होता है।

इसका उपयोग दवाइयोंमें, या अति मूल्यवान साबुनोंमें किया जाता है। इसमें मिलावट भी बहुत रहती है।

इसका घनत्व ०.९१८ है, साबुन संख्या १८८की-९५ और आयोडीन संख्या ९३-१०१ है।

बॉयल्ड ऑयल—शीघ्र सूखनेवाले तैलोंको जैसे अलसीका तैल, पेण्टके योग्य बनानेके लिये कुछ लवणोंके साथ उबालते हैं। ये लवण बहुधा मैंगनीज़, कोबल्ट या लेडके यौगिक होते हैं (मैंगनीज़ बोरेट, लेड रसीनेट, कोबल्ट टंग्सटेट आदि)। इस प्रकार पकाये हुए तैलको बॉयल्ड ऑयल कहते हैं। चार सेर तैल पकानेके लिये १ पावके लगभग लवण लेने चाहिये।

बॉयल्ड ऑयलका उपयोग वार्निश, पेण्ट, और एनेमेलमें होता है।

बिनौलेका तैल—बीजके ऊपरकी भूसी निकालकर कभी तैल पेरा जाता है और कभी बिना निकाले ही। बीजोंमें १६से २४ प्रतिशत तैल होता है। छिलके रहित बीजोंमें ३४-३९ प्रतिशत होता है।

बिनौलेकी अच्छी खली पीले रंगकी होती है और मामूली खलीमें कुछ भूरापन होता है।

मामूली तैलमें पपड़ीका काला रंग आ जाता है। तैल ३ प्रतिशत कास्टिक सोडा डालकर शुद्ध कर लिया जा सकता है। ऐसा करनेसे तैलकी अम्लता भी दूर हो जाती है, और रंग भी साफ़ हो जाता है।

खानेके लिये तैल फुलर-अर्थ (मिट्टी) से स्वच्छ किया जाता है। एक सेर तैलके लिये १ छटांक मिट्टी लो। मिट्टीको तैलके साथ खूब हिलालो। शान्त रखनेपर मिट्टी नीचे बैठ जायगी, और तैलके रंगको भी सोख लेगी।

अति तप्त भाप द्वारा बिनौलेके तैलकी गन्ध भी दूर की जा सकती है।

यह तैल अधिकतर खानेके काम आता है। शीघ्र सूखनेके कारण मशीनके तैलके कामका यह नहीं है। थोड़ा बहुत पेण्टोंमें काम लाया जाता है। विदेशोंमें रासायनिक विधिसे (हाइड्रोजनेशनके द्वारा) यह लार्ड बनानेके काममें भी बहुत आता है।

इसका घनत्व ०-९२३-०९२६, साबुन संख्या १९१-१९६, और आयोडीन संख्या १०१-१२१ है।

मछलीका तैल—मछलीके लगभग सभी अंगोंमें तैल होता है। जिस मछलीके यकृत (लिवर) में तैल अधिक होता है, उसके अन्य अंगोंमें कम, और जिसके और अंगोंमें अधिक होता है उसकी यकृतमें कम।

मछलीके तैलमें एक विशेष दुर्गन्ध होती है, और तैलका रंगभी वनस्पतिक तैलोंके रंगकी अपेक्षा कुछ अधिक गहरा होता है। रंग और गन्ध अधिकतर इस बातपर निर्भर है कि तैल निकालनेके पहले मछली कितनी सड़ने दी गई है। पानी या भापके साथ उबालकर अधिकतर तैल निकाला जाता है। तैल निकाल लेनेपर जो अंश बच रहता है उसका उपयोग खादमें करते हैं।

निम्न प्रकारकी मछलियोंका तैल व्यापारमें विशेष काममें आता है। मेनहेडन मछली, जो अमरीकाके एटलान्टिक तटपर फाँसी जाती है; जापानी मछलीका तैल अर्थात् सार्डीन तैल या हेरिंग मछलीका तैल; और पैसिफिक सागरके तटपर सालमन मछलीका तैल। इन तैलोंके गुण नीचे देते हैं।

	मेनहेडन	सार्डीन या हेरिंग	सालमन
रंग	पीला-भूरा	पीला-भूरा	काला
घनत्व	०-९३१	०-९३२-०९३४	०९२७२
आयोडीन संख्या	१ ०-१७०	१८१-१८७	१६८
साबुन संख्या	१९०-१९५	१८-१९१	१८८

मशीनके तैल—लुब्रिकेटिंग आयल—मशीनके तैलोंमें पेट्रोलियमके साथ टैलो ऑयल (भेड़ या गायको चर्बीका तैल), नीट्सफुट ऑयल, अंडीका तैल, रेप ऑयल, या ज़ैतूनका तैल काममें लाना चाहिये। सूखनेवाले तैल इस कामके लिये बुरे हैं, और इन तैलोंमें मुक्त अम्ल (और खटाँयद पैदा होनेकी) मात्रा कम होनी चाहिये, नहीं तो मशीनको हानि पहुँचेगी।

जब पेट्रोलियम (मिट्टीके तैलोंको उबालते हैं, लाइट आयल और केरोसिन तैल निकल जानेके बाद जो तैल बचा रहता है उसे अकेले भी मशीन के तैल के काममें लाते हैं। इसे लुब्रिकेटिंग ऑयल कहते हैं। इसका घनत्व ०·८६-·९२ होता है।

ये लुब्रिकेटिंग तैल शेलसे (कोयलेकी खानमें पाये जानेवाला एक पदार्थ) भी भभके द्वारा प्राप्त किये जाते हैं।

पेट्रोलियमसे प्राप्त लुब्रिकेटिंग ऑयलको वैकुअम-भभकोंमें अतितप्त भापसे फिर कई अंशोंमें अलग-अलग करते हैं। पहला अंश 'सोलर ऑयल' कहलाता है जो हलका होनेके कारण मशीनके कामका नहीं है।

दूसरा अंश 'स्पिंडल-ऑयल' कहलाता है जो सूक्ष्म पुर्जों, डायनेमो और अन्य अतितेज़ चलने वाली मशीनोंके काममें आता है। इसमें स्पर्म-ऑयल भी मिला दिया करते हैं।

तीसरा अंश 'एंजिन-आयल' कहलाता है, और यह मध्यम श्रेणी का होता है।

अंतिम अंश 'सिलेण्डर-आयल' है जो मामूली मोटे पुर्जोंके लिये काम आता है।

गुलाबोंका 'पाउडरी मिलड्यु' रोग

[अनुवादक :—श्री राधानाथ टण्डन बी, एम० सी०-एल० टी०]

जितने फूल है उन सबमें गुलाब प्रिय माना जाता है। छोटे बड़े, सबोंको गुलाबसे स्नेह है।

अन्य पौधोंकी भांति गुलाबके पौधोंमें भी अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। सबसे महत्व पूर्ण रोग 'पाउडरी मिलड्यु' है जिसको हम लोग "भूरी" कहते हैं। इस रोगका प्रकोप विशेषकर 'एडवर्ड रोज़' तथा 'लवोर्नीर' और 'ला फ्रान्स्री' जैसे पल्य कलमसे लगाए गए गुलाबोंपर होता है।

रोगका चिह्न

यह रोग तरुण डण्ठलोंपर श्वेत या बैंगनी वर्णके बुकनीदार धब्बोंकी विद्यमानतासे सरलता पूर्वक पहचाना जा सकता है।

पुराने भागोंपर यह रोग अधिक नहीं होता है। तरुण उगते हुए पल्लव 'भूरी' रोगसे पूर्णतया आच्छादित हो सकते हैं, जिसका बहुधा परिणाम यह होता है कि नसों और पत्तियोंमें घुमाव और चौनापन उत्पन्न हो जाता है तथा कलियोंमें भी मरोड़ तथा बिगाड़ आ जाते हैं।

रोगका कारण

'भूरी' रोग एक अणुवीक्षणीय परोपजीवी फङ्गस पौधेमें हो जाता है, जो अपना जीवन तरुण टहनियोंपर व्यतीत करता है तथा उन्हींमें से खींचा हुआ भोजन भक्षण करता है। फङ्गस पौधेके बीज वायु द्वारा बागमें तथा पौधोंके भिन्न-भिन्न भागोंपर ले जाये जाते हैं, जहाँ इस छूत रोगके नए केन्द्र बनना आरम्भ हो जाते हैं। अक्तूबरकी काट छाँटके पश्चात् यह 'भूरी' रोग टहनियोंपर बड़े विस्तारसे फैल जाता है, कारण कि इसको अपनी वृद्धि तथा विकासके लिए ठण्डी तथा शुष्क ऋतुकी आवश्यकता पड़ती है।

पुराने तनोंपर यह फङ्गस वर्षसे वर्षतक सोए हुए धागोंके रूपमें जीवित रहते हैं।

रोगको वशीभूत करनेका उपाय

कठिनतासे कोई ऐसा रोग होगा जो इतने विस्तारसे फैला हुआ हो और तब भी इतनी सरलतासे वशीभूत हो जावे जैसा कि यह भूरी रोग।

महीन पिसा हुआ गन्धक (२००० मेशमहीन) रोग दूर करनेमें बड़ा लाभदायक है।

गन्धककी धूल उत्तम रीतिसे या तो एक कौड़ाके नमूनेकी भुरकनेवाले यन्त्रसे अथवा एक हल्की धौंकनीसे लगाई जाती है।

प्रथम बार इसको तब लगाना चाहिए जब काटनेके पश्चात् तरुण टहनियाँ लगभग ४ इञ्च लम्बी हो जाएँ, तथा इसको प्रत्येक १० दिनपर ऋतुके अनुसार दुहराते रहना चाहिए। 'लेड आर्सीनेट' का १० भाग यदि महीन पिसे हुए गन्धकके प्रत्येक ९० भागसे मिला दिया जाए तो इसका प्रभाव और अधिक बढ़ जायेगा, कारण कि 'लेड आर्सिनेट' भी इस प्रकारके रोगसे बचाव करता है।

रोगी

घरके बागोंमें जहां कि गुलाबोंकी संख्या प्रति न्यून हो, एक साधारण महीन मलमलकी थैलीमें ही बारीक पिसा हुआ गन्धक लिया जा सकता है, और टहनियोंपर भुरका जा सकता है। इस कामके लिये किसी भी यंत्रकी आवश्यकता न होगी। -(गार्डनरसे)

भुस भरना

[ले० डा० गोरखप्रसाद, डी० एस-सी]

भुस भरना या टैक्सीडर्मी एक अत्यंत उपयोगी कला है। शिकारमें मारे गये जानवरोंकी खाल खींचकर उनमें भुस भरकर उनको स्वाभाविक रूप दिया जा सकता है। इस कलासे धन भी उपार्जन किया जा सकता है और आनंद भी उठाया जा सकता है, परंतु मज़ा उन्हीं लोगोंको मिलेगा जो शिकारसे प्रेम रखते हैं, दूसरोंको इससे घृणा भी हो सकती है।

वैज्ञानिक कामके लिये भी भुस भरनेकी अकसर आवश्यकता पड़ती है। प्रत्येक कौतुकागार (म्यूज़ियम) में भुस भरे जानवर और पक्षी रहते हैं। प्रत्येक अच्छे कालेजमें या विश्वविद्यालयमें जहाँ जन्तुविज्ञान पढ़ाया जाता है भुस भरे जानवरों और पक्षियोंकी आवश्यकता रहती है। बहुतसे शौकीन अपना मकान सजानेके लिये ऐसे जानवरों और पक्षियोंको मोल लेनेके लिये तैयार रहते हैं। इसीसे आज भुस भरनेकी एक सरल और सच्ची रीति दी जाती है। दो चार बार अभ्यास करनेसे अवश्य ही मनुष्य अधिक अच्छा कार्य कर सकेगा, परंतु कोई कारण नहीं कि प्रारंभसे ही काफ़ी सफलता क्यों न मिले।

सुन्दर परवाले पालतू पक्षी, या शिकारमें मारे गये तरह-तरहके छोटे बड़े सभी पक्षी भुस भरकर सुरक्षित और स्वाभाविक आसनमें रक्खे जा सकते हैं आप स्वयं इस कामको आसानीसे कर सकते हैं, हाँ यदि आप जानें कि इस कार्यको संपादित करनेकी शुद्ध रीति क्या है। बहुत कम ही यंत्रोंकी आवश्यकता पड़ती है। एक खूब तेज़ चाकू या जर्राही नश्तर, थोड़ासा तार, लकड़ीका भूआँ और थोड़ासा धैर्य, बस इतने ही की आवश्यकता है। परंतु जब आप शिकार करने जाँय तो कृपया ध्यान दें कि बच्चा जननेके समय में आप चिड़ियोंपर धावा न करें।

कबूतर या मैनापर पहले अभ्यास करना अधिक अच्छा होगा क्योंकि ये चिड़ियाँ आसानीसे मिलती हैं। एक दोके खराब हो जानेपर भी कोई विशेष हानि न होगी और ये बहुत बड़ी होती हैं और न बहुत छोटी, बहुत बड़ी या बहुत छोटी चिड़ियोंमें भुस भरनेमें अधिक कठिनाई पड़ती है। ऐसी चिड़िया चुनो जिसकी कोई हड्डी न टूटी हो और जिसके पर ख़ून या मिट्टीसे खराब न हो गये हों। चिड़ियोंमें भुस भरनेमें सदा ध्यान रखना चाहिये कि पर सदा स्वच्छ रहें। उसपर किसी समय भी ख़ून, गर्द, पानी, आदि न लगने पाये। पहली बात यह है कि आँखोंका रंग, चोंच और परका भी रंग, कहीं लिख लिया जाय। पीछे इसकी आवश्यकता पड़ेगी, क्योंकि इन अंगोंका रंग सूखने पर मिट जाता है और इस लिये तैल-रंगों से हाथसे भरना पड़ता है। अन्य कहीं भी मांसल स्थान हो तो उसका रंग भी कहीं टाँक लेना चाहिये। यह भी बदरंग हो जायगा। परका रंग नहीं उड़ता। यदि पर आदिपर कहीं ख़ून लगा हो तो रूईके गालेसे पोंछकर साफ़ करदो। मुँह और नाकमें रूई ठूँस दो, जिससे इनके रास्ते ख़ून या रस उस समय न बह आये जब खाल उतारी जायगी, और इस प्रकार पर ख़राब हो जाय।

अब चिड़ियेको चित लेटा देना चाहिये। सिर आपकी बाईं ओर रहे। अपनी अंगुलियोंसे छातीके

परोंको अगल-बगल हटा दो। तेज़ चाकू या नश्तरसे चित्र १ में 'क' से 'ख' तक दिखलाई गई रेखापर काट दो। सावधान रहो कि चीरा इतना गहरा न हो कि पेट कट जाय नहीं तो अंतड़ी-पचौनी निकल पड़ेगी। चीरा केवल इतना गहरा हो कि चमड़ा कट जाय।
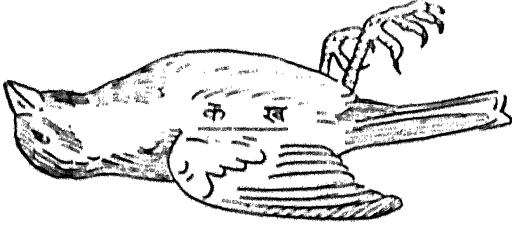
चित्र १—चिड़ियेको चित लेटाकर 'क' से 'ख' तक नश्तर लगाओ।

ज्यों ही नश्तर लगाओ त्यों ही घावपर खूब सोहागा छिड़को। सोहागा ख़ूब बारीक सूखा पिसा हुआ रहे और नश्तर लगानेके पहले ही काफ़ी सोहागा अपने पास रख लो। सोहागा भुरभुरानेसे सोहागा खून और पानीको सोख लेता है। ऐसा न किया जाय तो खून पानी बहकर परों पर पहुँच जायगा और वे गंदे हो जायँगे। सोहागा चर्मको सड़नेसे सुरक्षित भी रखता है।

अब चमड़ेको उसी प्रकार उतारना चाहिये जिस प्रकार तकियेपरसे गिलाफ़ परन्तु इस क्रियामें चमड़ा बहुत खींचा-ताना न जाय, नहीं तो यह इतना बढ़ जायगा कि फिर भुस भरनेपर चिड़ियेकी प्रकृति ही दूसरी हो जायगी। अँगुलियों और किसी धार-रहित छुरीसे चमड़ेको धीरे-धीरे नीचेकी ओर खिसका देना चाहिये। जब टाँगोंतक चमड़ा उधड़ जाय तब रुकना चाहिये।

अब टाँगको बाहरसे पकड़कर चिड़ियेके घुटनेको भीतर ढकेलना चाहिये। इस प्रकार चमड़ा टाँगपर कुछ उलट जायगा और प्रायः घुटने तककी हड्डी और माँस भीतरसे दिखलाई पड़ने लगेगा। अब कैंचीसे या चाकूसे टाँगको घुटनेके पाससे काट देना चाहिये। चमड़ा न कटने पाये। इसी प्रकार दूसरी टाँगको भी काट देना चाहिये। ऐसा करनेसे घुटनेसे नीचेकी टाँग चमड़ेमें जुटी रहेगी, शेष टाँग अलग हो जायगी।

इसके बाद चिड़ियेको पट कर देना चाहिये। पूँछकी ओर चमड़ा खिसकाना चाहिये और तब भीतरसे पूँछको शरीरके पाससे काट देना चाहिये, जिससे पूँछ चमड़ेमें लगी रहे और शरीरसे पृथक हो जाय। चमड़ा ज़रा भी न कटे।

अँगुलियों और धार-रहित चाकूकी सहायतासे और बड़ी सावधानीके साथ पीठ परसे खाल उधेड़ते चले जाओ और पंखकी ओर आओ। तब कैंचीसे चमड़ेके भीतरसे पंखको काट डालो। पंख बाहर चमड़ेमें ही लगा रहे।

अब चमड़ेको धीरे-धीरे गरदन परसे उतारो, परंतु अब विशेष ध्यान रहे कि चमड़ा खिंच-तनकर बढ़ने न पाये। धीरे-धीरे करके चमड़ेको सिर परसे उतार दो। ऐसी चिड़ियोंमें जिनका सर गरदनसे बड़ा होता है, जैसे बत्तक वगैरहमें, सरके ऊपर भी चमड़ेमें नश्तर लगाना पड़ता है, परंतु ऐसा करनेमें ध्यान रखना चाहिये कि आँख या कानके पासका चमड़ा न कटे। उलटते-उलटते चमड़ा सरपरसे उलटकर चोंचपर चढ़ जायगा। चोंच और चमड़ेकी संधि टूटने न पाये। अब खोपड़ीके पाससे काटकर गरदनको अलग कर दिया जाता है। चित्र २ में यह स्थान × से सूचित किया गया है। बाईं ओर चमड़ा है। दाहिनी ओर खोपड़ी और शरीर है। बिंदुमय रेखापर चमड़ेसे खोपड़ी जुड़ी हुई है। चोंच बाईं ओर है। चमड़ेके भीतर छिपे रहनेके कारण चित्रमें नहीं दिखलाई पड़ती।

अब टाँगों और पंखोंपर एक बार फिर ध्यान देना चाहिये।

टाँगपर चमड़ेको वहाँतक उलटना चाहिये जहाँ परोंका अंत होता है। पंखमें हड्डियोंपर चमड़ा उलट देना चाहिये—चमड़ेकी बाहरी ओर माँस रहे, पर भीतर पड़ जायँ। ऐसा करनेपर पंखकी हड्डियोंपर

लगा माँस आसानीसे छुड़ाया जा सकता है। आदि से अंततक सोहागा खूब भुरभुराते रहना चाहिये, जिससे एकतो सब खून और पानी उसी दम सूखता जाय और बहकर परतक न पहुँचने पाये। और दूसरे चमड़ा खूब सीझ जाय। अब चमड़ा, खोपड़ी टाँग और पंखकी हड्डियोंपर लगे सब माँस छुड़ा देना चाहिये। चिमटीसे पकड़कर आँखोंको खोपड़ीमें से खींचकर निकाल लेना चाहिये। खोपड़ीके गड्ढेको ज़रा बड़ा करके भीतरका सब गूदा निकाल लो।
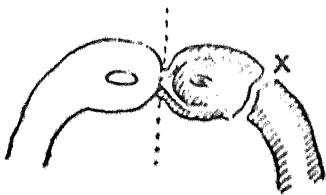
चित्र २—चमड़ा उलटकर खोपड़ीसे गरदन-को × से चिह्नित स्थानपर अलग कर देना चाहिये

खोपड़ीपर लगे सब माँसको अच्छी तरह छुड़ा डालो। टाँग और पंखकी नसें काटकर फेंक दो। पर हड्डियाँ रहने दो। इन्हीं हड्डियोंके सहारे ही चिड़िया आरोपित की जायगी। बड़े पक्षियोंमें पंखको नीचेसे चीरना पड़ता है, अन्यथा सब माँस हड्डियोंपरसे नहीं हटाया जा सकता। नस काटते समय ध्यान रखना चाहिये कि बाहरके पर तितर-बितर न हो जायँ।

चमड़ेके भीतर जहाँ कहीं भी माँस लगा हो उसे कुंद चाकूसे खुरचकर छुड़ा देना चाहिये। बत्तक आदि चिड़ियोंमें बहुत चर्बी रहती है। चर्बीको भी निकाल देना चाहिये। इसके लिये खुरचनेके बाद पेट्रोल या बेनज़ीनसे तर रुईसे रगड़ कर बची खुची चर्बी छुड़ा देनी चाहिये। जब चमड़ा पूर्णतया स्वच्छ हो जाय और उसमें माँस, चर्बी या गर्द ज़रा भी न लगी रहे तब ऊपर संरक्षक पदार्थ लगाया जा सकता है। एक काफ़ी अच्छे संरक्षक सोहागेका घोल है जो यों बनता है :—

पानी	२ बोतल
कारबोलिक ऐसिड	३० बूँद
सुहागा जितना घुल सके	

इसे शीशेके बरतनमें रखना चाहिये। कारबोलिक ऐसिड अँग्रेज़ी दवाखानोंमें मिलता है। यह शरीरपर न पड़ने पाये, नहीं तो घाव हो जायगा।
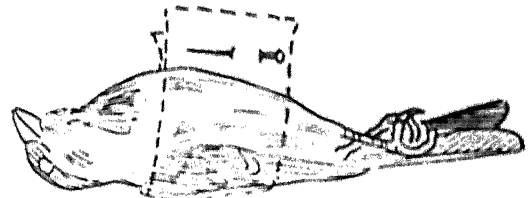
चित्र ३—खाल भरनेके बाद पंख चिकनाकर उस पर काग़ज़ लपेटकर आलपीनसे टाँका जा सकता है।

इसे लगानेके पहले फिरसे जाँच कर लेनी चाहिये कि चमड़ा स्वच्छ है। कहीं भी सूखा सुहागा न लगा रहे, माँस, चर्बी और गर्द भी कहीं न लगी रहे। फिर रुईसे चमड़ेके भीतर सब जगह सुहागा और कारबोलिक ऐसिडवाला घोल पोतना चाहिये। कहीं भी छूटने न पाये। आँखोंके गड्ढोंमें रुई ठूँस देनी चाहिये और सिर और गलेके चमड़ेको उलट लेना चाहिये। इसी प्रकार टाँग और पंखके पास भी चमड़ा उलट लेना चाहिये। चमड़ा सीधा करनेके बाद परोंको चिकना लेना चाहिये जिसमें वे ठीक उसी स्थितिमें हो जायँ जिस स्थितिमें वे जीवित पक्षियोंमें होते हैं।

अब आरोपणका कार्य आरंभ किया जा सकता है। स्मरण रहे कि खोपड़ी और पंख और टाँगकी हड्डियाँ अब भी चमड़ेमें लगी हैं। इन हड्डियोंके ही सहारे चिड़िया खड़ी की जायगी। और उसकी आकृति ठीक रक्खी जायगी। स्वाभाविक आकार और रूप लानेके लिये यह आवश्यक है कि अब एक कृत्रिम शरीर बनाया जाय और तारका ढाँचा भी बनाया जाय। तारकी मुटाई चिड़ियेके बड़े-छोटे होने पर निर्भर

है। जितनी ही बड़ी चिड़िया होगी उतने ही मोटे तारकी आवश्यकता पड़ेगी। मैनाके लिये दो तार टाँगोंके लिये चाहिये जो करीब एक-एक फुट लंबे हों। प्रत्येकका एक सिरा नुकीला बना लेना चाहिये। ये तार इतने मोटे हों कि चिड़िया इनके बल खड़ी हो सके। १६ या १८ नम्बरके तारसे काम चल जायगा। इससे कुछ पतला तार गरदनके लिये चाहिये। १८ या २० नंबरका तारका एक टुकड़ा जो करीब ८ इंच हो काफ़ी होगा। इसके दोनों सिरोंको नुकीला कर लो। करीब इतना ही मोटा, परंतु इससे कुछ छोटा (करीब ६ इंचका) एक टुकड़ा पूँछको सहारा देनेके लिये चाहिये। इसका बहुत जल्द अनुभव हो जाता है कि कितनी बड़ी चिड़ियाके लिये कितना मोटा तार चाहिये।
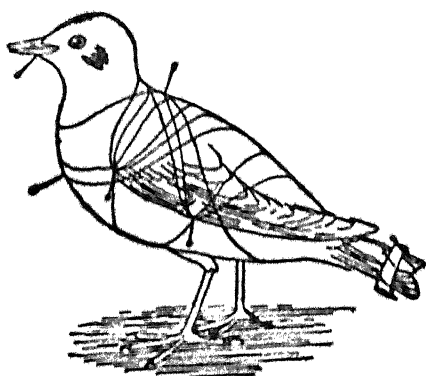
चित्र ४—खालमें भुस भरनेके बाद सुखानेके पहले खालको तागेसे अच्छी तरहबांध देना चाहिए

अब कृत्रिम शरीर बनाना चाहिये जो खालके भीतर रक्खा जायगा। वस्तुतः खालमें भुस नहीं भरा जाता। ऐसा करनेसे शरीरके आकार और रूपके ऊपर अपना विशेष वश नहीं रहता और अस्वाभाविक रूप ही अक्सर उत्पन्न होता है। इस लिये लकड़ीके घूयेका शरीर बनाया जाता है। यह चीड़ या किसी नरम लकड़ीको मशीनसे बारीक-बारीक छीलनेसे उत्पन्न होता है। करीब ११ इंच चौड़ी और कागज़के समान मोटी लंबी-लंबी परन्तु एक दूसरेमें उलझी हुई लच्छियोंके रूपमें यह घूआ होता है। अक्सर टूटने-फूटनेवाली चीज़ें विदेशसे इसीमें लपेटकर आती हैं, इस लिये किसी भी बिसातीसे यह घूआ आसानीसे मिल जायगा, परंतु गवरमेंट वुड वर्किङ्ग इंस्टिट्यूट, बरेलीसे ऐसा घूआ खरीदा भी जा सकता है।
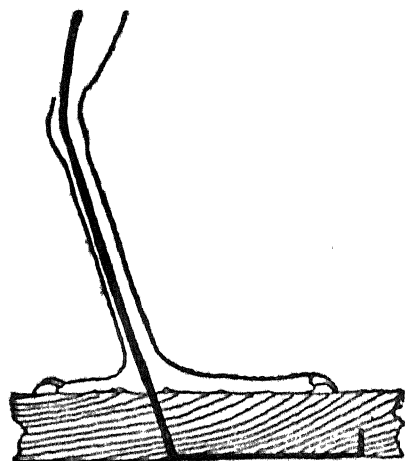
चित्र ५—यदि चिड़ियाको काठपर खड़ाकरना हो तो मोटे तारकी सहायता लेनी चाहिए। तारको पैरकी हड्डियोंसे सटाकर बांधना चाहिए और इसके सिरेको लकड़ीके छेदमें छोड़कर मोड़ देना चाहिए

बारीक घूयेको लेकर पहले उसे पानीमें अच्छी तरह भिगोकर नरम कर डालना चाहिये। फिर चिड़ियेके भीतरसे निकले शरीरको अपने सामने आदर्शके रूपमें रखकर घूयेका शरीर बनाना चाहिये और उसपर सैकड़ों बार बारीक, मजबूत तागा लपेटकर उसे यथा संभव चिड़ियेके असली माँसवाले शरीरके आकारका कर देना चाहिये। सावधानीसे प्रत्येक ब्योरेमें सचाई लानी चाहिये। लकड़ीका घूआ न मिले तो पुआलसे भी काम चल सकता है, विशेषकर बड़ी चिड़ियोंके लिये।

घूयेका शरीर बना लेनेके बाद इसमें उस तारको खोंस देना चाहिये जो गरदनको सहारा देनेके लिये काटा गया था। इसके उस सिरेको जो घूयेमें घुसा है

मोड़कर सँड़सीसे दबा देना चाहिये जिसमें यह फिर आगे-पीछे खिसक न सके।

अब चिड़ियेकी गरदन नापनी चाहिये और उसीके अनुसार गरदनवाले तारपर कपड़ा तहपर तह लपेटकर कृत्रिम गरदन तैयार करनी चाहिये। नाप और मुटाईमें यह असली गरदनके बराबर ही रहे।

इसके बाद टाँगोंमें तार लगाना चाहिये। टाँगके बराबर बनाया गया एक तार लो और उसे चिड़ियेके तालूमें बाहरकी ओरसे घुसेड़ो। तार पैरकी हड्डीको जड़से ऊपरतक छूता रहे। फिर तार और हड्डीपर कपड़ा इस प्रकार लपेटो कि वह माँस निकलनेके पहले जितना मोटा था उतना मोटा हो जाय।

छोटी चिड़ियोंको आरोपित करनेमें पंखमें तार डालनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती, परन्तु बड़ी चिड़ियों-के लिये यह बहुत आवश्यक है। पंखका तार आरंभ-में पंखकी हड्डीसे सटाकर रखा जाता है और अच्छी तरह बाँध दिया जाता है। फिर इसपर कपड़ा सून या पटुआ उन नसों और माँसके स्थानपर लपेट दिया जाता है जो काटकर फेंक दिया गया है। तार-के अंतिम भागको इच्छानुसार मोड़कर या तो चिड़िया-के उड़नेकी स्थितिमें पंख प्रदर्शित किये जाते हैं या चिड़ियाके बैठे रहनेकी स्थिति दिखलाई जाती है।

अब कृत्रिम शरीरको खालके भीतर रक्खा जा सकता है। गरदनवाला तार इस नापका और इस आकारका कर दिया जाता है कि यह खोपड़ीको ताने रहे। इसके बाद पंखके तारोंको मोड़कर या दबाकर पंखको उचित स्थानमें कर दिया जाता है। फिर टाँगों का और अंतमें पूँछको ठीक किया जाता है। तब सब अवयव अपने-अपने स्थानमें ठीक आ जाते हैं। तब खालकी सिलाई की जा सकती है। सुई छोटी हो और तागा बारीक हो। पूँछकी ओरसे प्रारंभ कर छातीकी ओर बढ़ना चाहिये। डोभ (टाँका) छोटे-छोटे हों और तागेमें पर न फँसने पावें। जब सिलाई हो जाय तो टाँग पकड़कर चिड़ियेको उठाना चाहिये और धीरेसे झकझोर देना चाहिये। यदि शरीर ठीक बनाया गया है और तार ठीक लगाये गये हैं तो पर अपने आप ठीक-ठीक स्थानमें आ जायँगे। अब चिड़िया अपने आसनपर बैठाई जा सकती है। यह आसन किसी भी प्राकृतिक डाली या टहनीका बनाया जा सकता है; जैसा आपको पसंद हो। चिड़ियेको आरोपित करनेके लिये डालमें दो बारीक छेद कर दिये जाते हैं और टाँगवाले तार उन्हीं-में डाल दिये जाते हैं। नीचेसे मोड़कर उनको स्थायी कर दिया जाता है।
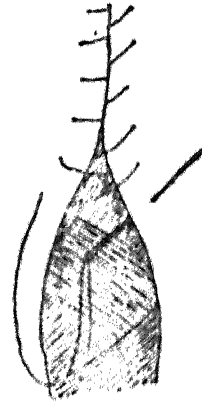
चित्र ६—खालको सीनेकी रीति। ऊपर टाँके दिख-लाई पड़ रहे हैं। सुईके नीचे अभी खाल जुटी नहीं है। टाँके लगाकर तागा कसनेपर खाल जुट जायगी

अब समस्त कार्यवाहीके सबसे रोचक अंशकी पारी है—अर्थात् चिड़ियेको सजीव आसनमें आरोपित करना—ऐसी स्थितिमें उसे स्थायी करना जिसे देखनेसे वह प्राकृतिक जान पड़े। इसके लिये गरदन, पंख, टाँग और पूँछ इस प्रकार मोड़ी या घुमाई जाती है कि आरोपित पक्षी प्राकृतिक-सा दीखता हुआ अंगविन्यास धारण करता है। ऐसा करनेमें सफल होनेके लिये, यह आवश्यक है कि ध्यान-पूर्वक देखा जाय कि चिड़िया जीवित अवस्थामें और प्राकृतिक वातावरणमें कौन-सा आसन धारण करती है। परोंको अपने उचित क्रममें सजाओ और छोटे-छोटे तार या आलपीनोंकी सहायतासे परोंको उचित स्थानमें स्थायी करो। गलेके गड्ढेमें रुई ठूँस दो, जिससे गला स्वाभाविक रीतिसे फूल जाय, परंतु अधिक न फूलने पाये और तागेसे बाँध-

कर चोंच अच्छी तरह बंद कर दो। चंगुलको डालीपर आलपीनोंकी सहायतासे दबाये रक्खो। इसके लिये चंगुलपर दफ्ती रखकर दफ्तीमें दोनो ओर आलपीन गाड़ो, जिसमें स्वयं चंगुलमें आलपीन न चुभाना पड़े। पूँछके परोंको फैला दो और उनको दो दफ्तियोंके बीच बाँधकर फैला हुआ रक्खो जब चमड़ा पूर्णतया सूख जायगा तब सब अंग उसी स्थानमें पड़े रहेंगे जिस स्थानमें वे सूखते समय रक्खे गये थे। यदि कहीं पर उठ आया हो और दबानेके बाद भी उठ आना चाहे तो वहाँ दफ्ती बाँध दो। जब चिड़िया ठीक आकारकी हो जाय और पर सब ठिकाने कर दिये जाँय तब कुल चिड़ियेको बारीक तागेसे खूब लपेटकर बाँध दो, जिसमें सूखते समय कोई अंग घट-बढ़ न जाय इसमें दो तीन सप्ताह लगेंगे। बड़ी चिड़ियोंके सूखनेमें चार पाँच सप्ताह लगेंगे।

जबतक ऊपरकी क्रिया की जाय तबतक आँखोंके स्थानमें गीली रुईकी गोली रख देनी चाहिये जिसमें वहाँका चमड़ा नरम रहे। अब वहाँ गाढ़ी लेईसे आँखें बैठा दी जाती हैं। लेई वैसी ही हो जिससे दफ्तरी लोग जिल्द बाँधते हैं शीशेकी आँखें बनी-बनाई बिकती हैं और अनेक आकार और रंगकी आती हैं। आँखोंको चुनते समय आरंभमें आँखोंका रंग जो टाँक लिया गया था उसे पढ़ लेना चाहिये। आँखें किसी बड़ी दूकानपर ली जायँ या वहाँसे मँगाई जायँ तो अच्छा है क्योंकि बड़ी दूकानोंपर हर तरहकी आखें रहती हैं और ठीक ढंगकी आँखोंका मिलना वहाँ अधिक संभव है। लेई खूब लगानी चाहिये परंतु लेई बाहर न निकल पड़े। आँखें उचित गहराईपर और ठीक कोणपर लगें। अधिक या कम तिरछी आखों, या उभरी या धँसी हुई आँखोंसे सब काम चौपट हो जायगा।

जब चिड़िया पूर्णतया सूख जाय तब तागेको खोल डालना चाहिये और दफ्तीके टुकड़ोंको हटा देना चाहिये। तार जो बाहर बढ़े हों उनको भी काट डालना चाहिये। अब फिर, आरंभमें टाँकी गई टिप्पणियोंको पढ़कर मिट गये या फीके पड़ गये चोंच और पैरके रंगोंको तैल-रंगोंसे बना देना चाहिये. परन्तु रंग बहुत गाढ़ा न लगे नहीं तो स्वाभाविकता जाती रहेगी।

प्रभाकर—मार्कर चिह्नक या निशान बनानेवाला

[ले० श्री अमूल्यरत्न प्रभाकर—अध्यक्ष कृषि विभाग बनारस]

गन्ना या खरीफकी फसलें जो साधारणतया बोई जाती हैं उनकी निराई गुड़ाई इत्यादि खुरपी, फावड़े या किसी ऐसे औजारसे की जाती है जिसमें काफी समय लगता है और खर्च होता है। यदि यही फसलें नियमानुसार ठीक फासलेपर लाइनोंमें बोई जायं तो यह सब काम बहुत कम समय व खर्चमें बैलोंसे देसी या मिट्टी पलटनेवाले हल या अन्य यंत्रों द्वारा जैसे अकोला हो, सिफारा या कल्टीवेटर इत्यादिसे हो सकते हैं। ठीक फासलेपर समानान्तर रेखाओंमें बोनेके लिए चिह्नक (मार्कर) काममें लाया जा सकता है जिसको गाँवके बढ़ई बहुत आसानीसे बना सकते हैं।

(१) तीन या चार फीटकी लंबी लकड़ी जिसका पौन भाग गोल हो।

(२) खूँटा जो कि लकड़ीमें सरकाकर किसी जगह फिट किया जा सकता है।

(३) चाबी जिससे खूँटा फिट किया जाता है।

(४) बोल्ट व नट या खूँटी जिससे चिह्नक देसी हलमें कसा जाता है।

(५) खूँटेकी नोकपर लोहेकी साम।

एक सीधी लकड़ीका तीन अंगुल मोटा टुकड़ा ऐसी लम्बाईका लिया जाय कि जिसपर फसलें बोनी हों और उसके तीन चौथाई भागको गोल करके उसमें

एक खूँटा इस तरह सही कर देना चाहिए कि उसको जहाँ चाहें सरकाकर चाबीसे क़ायम रख सकें। दूसरे चौखूँटे सिरेपर एक छेद करके उसको (एक बोल्ट व
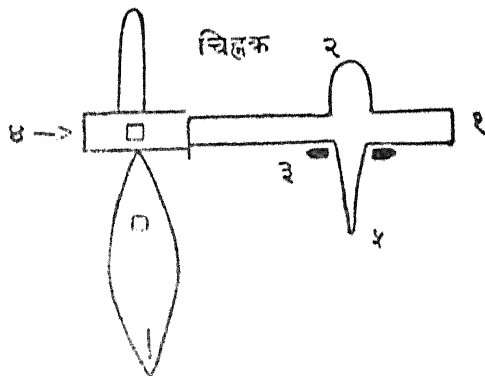
नटसे या खूँटीसे, जिसका मत्था एक तरफ बताशेदार होगा, कि छेदसे निकल न सके; और दूसरी ओर सूराख करके एक कीलसे फ़िट कर दिया जायगा) हलके माथेमें बायें तरफ कस देना चाहिए। यह इतना ढीला रहे कि चिह्नकका डंडा आसानीसे ऊपर व नीचे हरकत कर सके। और खेतमें कोई रुकावट या ऊँचा नीचा आनेपर चिह्नक ऊपर नीचे होकर बराबर लकीर बनाता रहे।

अब यह खेतमें काम करनेके लिए तैयार है।

जिस फ़ासलेपर फ़सल बोनी हो उसपर चिह्नक-को गोल लकड़ीमें सरकाकर चाबीसे फ़िट कर देना चाहिए। बहुत अच्छा काम निकालनेके लिए खेतमें ऐसे फ़ासलेपर रस्सीसे हराइयोंके लिए निशान बना देने चाहिए कि जिसमें उस फ़ासलेका भाग जा सके जिसपर कि फ़सल बोना है जैसे यदि तीन फ़ुटके फ़ासलेपर बोना है तो हराइयोंके चिह्न रस्सीसे १८, २१ या २४ फ़िटके फ़ासलेपर बना दिये जायँ। जिस समय हल पहली लकीरपर फ़सल बोनेके लिए चलेगा उसकी बाईं तरफ एक लकीर बनती जायगी और जब हराईमें घूमकर हल आवेगा तब दूसरी लकीर बनाता आवेगा जिसपर कि बोनेके लिए फिर चलेगा। इसी प्रकार यह सिलसिला चलता जायगा।

चिह्नक

फ़सलोंको क़तारोंमें बोनेके लिये

३ ४ ५ २ १

१ हलका पहला कूँड़ जिसमें बीज बोया गया।

२ समानान्तर रेखा चिह्नक (लकीर बनाने-वाले) से बनती गई।

— — — हलका मार्ग।

३ दूसरा कूँड़ जो हराई भरकर बना और जिसमें बीज बोया गया।

४ चिह्नकसे बनती गई समानान्तर रेखा।

— — हलका मार्ग।

अब हल नं० २ पर आयगा और ५ पर समानान्तर रेखा बनेगी।

३ ४ ५ २ १

प्रभाकर-भट्ठी

खूब गुड़ खाइए। यह चीनीसे अधिक पुष्टिकारक है।

[ले० श्री अमूल्यरत्न प्रभाकर]

इसमें गुलकोज़ है जिससे पाचन-शक्ति बढ़ती है। गुलकोज 'डी' का एक पौंडका डिब्बा १।=) में बिकता है। इसके सम्बन्धमें न्यूट्रिशन रिसर्च लेबॉरेटरी (पौष्टिक आहार-अनुसंधान-शाला) के भूतपूर्व डाइरेक्टर डाक्टर मिकरिसन कहते हैं कि गुड़में थोड़ा प्रोटीन (करीब ६ फी सदी), खनिज लवण (३ से ६ फी सदी) और कुछ जीवनतत्व पाये जाते हैं जो बढ़िया साफ शक्करमें नहीं होते। इसमें मूल्यवान् धातु आयोडीन भी काफी मात्रामें पाई जाती है जो बढ़िया साफ शक्करमें नहीं होती। इसमें फौलाद भी काफी परिमाण-में होता है इसलिए शरीरमें ख़ूनके न होनेपर जो पीलापन आ जाता है उसको मिटानेकी शक्ति इसमें होती है।

संयुक्त प्रान्तमें ६५ फी सदी गन्नोंका गुड़ बनाया जाता है परन्तु अच्छा नहीं बनता और दाम कम आते हैं। इसके लिए सरकारने गुड़ उन्नति विभाग खोला है। इसके सम्बन्धमें जो कुछ जानना हो उसके लिए गुड़ डिवेल्पमेंट ऑफिसर, इंडस्ट्रीज डिपार्टमेंट, कान-पुरसे पत्र-व्यवहार कीजिए।

अच्छा गुड़ बनानेके लिये

प्रभाकर-भट्ठी

एक अनिवार्य चीज़ है।

यह वही भट्ठी है जिसपर कांग्रेस प्रदर्शिनी काशीमें २० दिसम्बर १९३७ से ५ जनवरी १९३८ तक ऐसा गुड़ मनों बनाकर आठ सेरका बेचा गया जैसा लोगोंने पहले नहीं देखा था। उस समय बाजार-में बहुत अच्छे गुड़का भाव १२—१३ सेर था। हजारों आदमी गुड़ लेनेके फिराकमें रहे परन्तु अधिक न बननेके कारण न पा सके। बहुतसे आदमियोंने इसको बनाना सीखा।

इसपर गुड़ या राब देशी भट्टीके मुक़ाबलेमें बहुत जल्दी, अच्छी व कम खोईमें पक जाती है। कोयमबटोर-गन्नेमें रस अधिक होनेके कारण देशी भट्टीमें खोईके अलावा फ़ालतू ईंधन और लगाना पड़ता है तब कहीं गुड़ या राब तैयार होती है। इस भट्टीमें फ़ालतू ईंधन बिलकुल नहीं लगाना पड़ता। देशी भट्टीके मुक़ाबिलेमें जो नतीजे बरामद हुए नीचे दिये जाते हैं। इनसे यह साबित होता है कि इसके चलानेमें कितना फ़ायदा है। यह नतीजे बहुतसे नतीजोंकी औसत है।

नाम भट्ठी	रस जो पकाया गया			खोई जो लगी		
	मन	सेर	छ०	मन	सेर	छ०
देशी	२	२२	८	१	२१	१२
प्रभाकर	२	३०	०	१	४	०

समय जिसमें गुड़ पका		खोईजो एक मन रसपकाने में लगी	समयजो एक मन रस पकानेमें लगा
घंटा	मिनट	सेर	मिनट
२	११	२२·१४	५१·५१
१	३	१५·००	२२·८२

भट्ठी बनानेकी तरकीब

चौरस ज़मीनपर, जहाँ हवाकी रुकावट न हो, पूरब-पच्छिम रुख (या जिस तरफ़ सुभीता हो) एक रस्सी तानकर पन्द्रह हाथ लम्बी दाग़-बेल लगाओ। इस दाग़-बेलको मियानेमें (बीचोंबीच) देकर पूरबकी तरफ़से पच्छिमकी तरफ़ एक नाली सात इंच चौड़ी, दस इंच गहरी और आठ फ़ीट लम्बी बनाओ। इसके बाद जिस कड़ाहीमें गुड़ बनाना है उसकी पेंदीसे चार इंच कम दायरा खींचो और उसको दो फीट गहरा जैसा देशी भट्ठीके लिए खोदते हैं खोदो। इस गड्ढे-के अन्दर पच्छिमके किनारेको छूते हुए एक गढ़ा ७ फ़ीट लम्बा, १॥ फ़ीट चौड़ा और २ फ़ीट गहरा खोदा

जाली १½'×२'
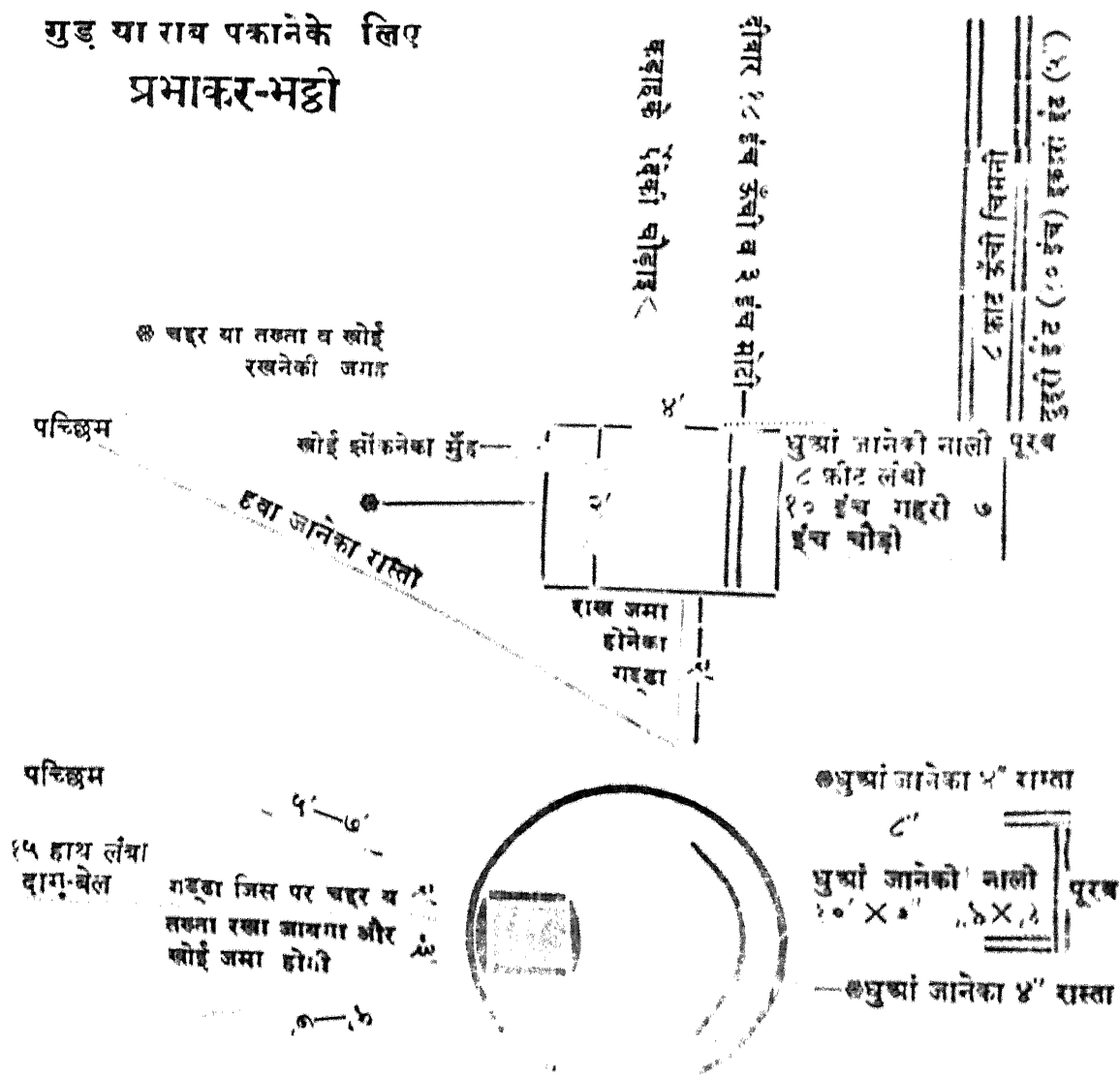
जावे यानी यह गड्ढा ज़मीनकी सतहसे ४ फ़ीट गहरा हो। इसके बाद इसी सिलसिलेमें ४ इंच ज़मीनको छोड़कर पश्चिमकी तरफ़ एक गड्ढा २-३ फ़ीट चौड़ा और ५-७ फ़ीट लम्बा जैसी गुंजायश हो हवा जाने और राख निकालनेके लिये ढलानदार ऐसा खोदा जाय, जैसा कि तसवीरमें दिखाया गया है, जो नीचे ही नीचे जाकर ४ फ़ीटवाले गड्ढेमें मिल जाय। इसकी गहराई पश्चिमकी तरफ़ सिलसिलेवार कम होती जायगी। इसका मतलब यह है कि हवा आसानीसे उस जालीमें होकर, जो २ फ़ीट चौड़े गड्ढेपर कड़ाही-के नीचे रक्खी जायगी, गुज़रती हुई और आगमें तेज़ी पैदा करती हुई नाली व चिमनीसे गुज़र जावे। इसलिए कि जो शोला (आग की लौ) पैदा हो, कड़ाही को बिना सब गरमी दिये हुए न निकल जाय,

एक दीवार डेढ़ फ़ीट ऊँची व ३ इंच मोटी एकहरी गुम्मा (नम्बरी) ईंट की मियानेसे ९ इंच छोड़कर
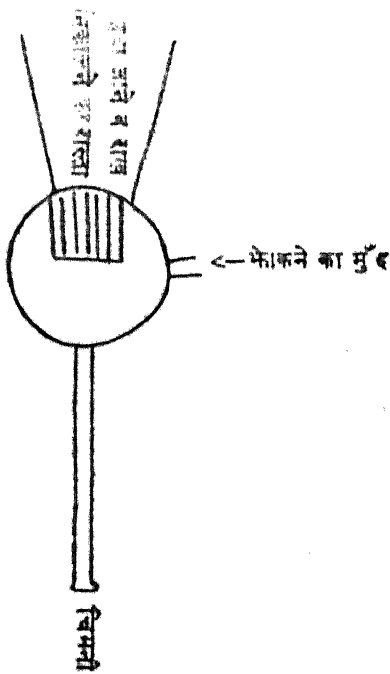
किसी क़दर गोलाई लिये हुए बनाई जाय जिसके दोनों तरफ़ हवा आनेके लिए ४ इंच जगह रहे। सात इंच चौड़ी और १० इंच गहरी नालीको ईंटोंसे पाटकर उसपर ख़ूब मिट्टी डाल दी जाय, ताकि साँस न रहे। इसके बाद एक चिमनी, 'जिसके अन्दरकी पैमाइश (नाप) ९ इंच × १ फ़ुट हो, कम-से-कम ८ फ़ीट ऊँची बनाई जावे। इसको ४ फ़ीटकी ऊँचाईतक दोहरी ईंटकी-यानी १० इंच मोटी और इसके बाद एकहरी ईंटकी यानी ५ इंच मोटी बना सकते हैं जिससे ईंटोंकी किफ़ायत होगी। जहाँ ईंटें न हों वहाँ उस मिट्टीसे जो भट्ठा खोदनेमें निकली है, ईंटें बनाई जा सकती हैं या वही मिट्टी चिमनी बनानेके काममें लाई जा सकती है। चिमनीकी अन्दरूनी पैमाइशमें कोई कमी-बेशी न हो, वरना काम ठीक न बनेगा। चिमनीके ऊपर मिट्टीका पलस्तर कर देना चाहिए, जिससे धुआँ सिवाय चिमनीके इधर-उधरसे न निकले।

नाली व चिमनीको अकसर साफ़ करते रहना चाहिए जिससे हवा न रुके। कड़ाहीवाले गड्ढेमें जाली रख दी जाय और उसके ऊपर ६ इंच गोल छेद खोई झोंकनेके लिए बना दिया जाय। इसके बाद जो दो तीन फ़ीट चौड़ा और ५-७ फ़ीट लम्बा गड्ढा है उसको झोंकनेके मुँहके नीचे से ३ फ़ीटतक पत्थर, तख़्ता, बाँसकी फराटी या लकड़ीके टुकड़ोंसे पाट दिया जाय। इसपर खोई रखकर झोंकनेके लिए आदमी बैठेगा।
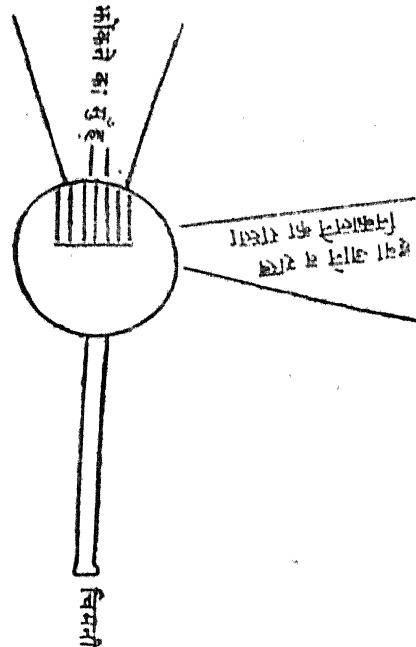
यदि ज़्यादा ज़मीन न हो या तख़ता वग़ैरः से पाटनेकी दिक़्क़तसे बचना चाहें तो सादी तरकीब यह है कि कड़ाह रखनेवाले गड्ढेमें खोई झोंकनेका मुँह किसी एक तरफ़ बना दिया जाय और हवा आनेका व राख निकालनेका रास्ता उसके समकोण हो जैसा कि नीचे दिखाया गया है। इसमें बहुत आसानी हो जाती है। गाँववालोंने काशी प्रदर्शनीमें जहाँ कई तरहकी भट्ठियोंपर गुड़ बनाकर दिखाया जाता था सादा होनेकी वजहसे इसीको पसन्द किया।

न तो जालीपर राख जमा होने पावे और न नीचे गड्ढेमें ही। इसको निकालते रहना चाहिए

वरना हवाका गुज़र मुश्किल हो जायगा, चाशनी देरमें आयेगी और खाई अधिक लगेगी। अब भट्ठी तैयार हो गई। गड्ढेके ऊपर कड़ाही रखकर काम शुरू किया जा सकता है।

लोहेकी जाली आध इंच मोटे लोहेकी छड़को चौखटेमें जड़कर इस तरह बनाई जाय कि एक छड़से दूसरीका फ़ासला एक अंगुलसे ज़्यादा न हो। छड़ोंके सिरोंको पीठकर दो सूत मोटी डेढ़ इंच चौड़ी लोहेकी पट्टीमें जड़ दिया जावे। इसकी पैमाइश २ फ़ीट लम्बी व १॥ फ़ीट चौड़ी होनी चाहिए। लोहेकी छड़ दो फ़ीट लंबी होनी चाहिए।

*विशेष जानकारीके लिए अपने यहाँके कृषि-विभागके इंसपेक्टरसे या डिविज़नल सुपरिन्टेन्डेन्ट बनारससे मिलिए या पत्र-व्यवहार कीजिए।

—

*अब लोहेकी जाली बजाय आध इंच मोटी लोहे की छड़के जो बड़ी महँगी पड़ती है पौन इंच चौड़ी गाँठोंके बन्दकी पत्तीकी जो एक आने सेर गाँवमें मिलती है बनाई जा सकती है। उसका इस तरह ⌒ आधो गोल करके बनाना चाहिए। एक जालीके लिए ढाई सेर पत्ती जिसमें १८ तानें निकल आयेंगी और ३८ रिविटकी ज़रूरत होगी जिसके दाम तीन-चार आनेसे अधिक न होंगे। लम्बाई चौड़ाई सब वही रहेगी यानी २ फ़ीट लम्बी और १॥ फ़ुट चौड़ी।

जो अपने यहाँ न बना सकें वह डिवीज़नल सुपरिन्टेंडेंट, कृषि विभाग, बनारस, से छः आनामें मँगा सकते हैं। रेलका किराया इसके अलावा रहेगा

विषय-सूची

रजत जयन्ती अंक

विज्ञान-परिषद्, प्रयाग, का मुख पत्र

प्रधान सम्पादक
डाक्टर सत्य प्रकाश, डी० एस-सी०

रजत जयन्तीके उद्घाटन-कर्त्ता

शिक्षा मंत्री माननीय श्री सम्पूर्णानन्द जी

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५ ॥

भाग ४८	प्रयाग, धनार्क, संवत १९९५ बिक्रमी	रजत जयन्ती अंक	दिसम्बर, सन् १९३८ फर्वरी १९३९ में प्रकाशित	संख्या ३

परिषत् की आयोजना

[ले०—श्री महामहोपाध्याय डा० गंगानाथ झा, एम० ए०, डी० लिट०, एल-एल० डी०]

विज्ञान परिषत्का आविर्भाव संसारके 'अद्भुत' पदार्थों-में गिना जा सकता है, क्योंकि इसके आविर्भावकोंमें एक पंडित और एक मौलवी थे। मूल सूत्रपात करनेवाले चार आदमी थे—मौलवी हमीदुद्दीन (म्योर कालेजमें अरबीके प्रधान अध्यापक), गंगानाथ झा (उसी कालेजमें संस्कृत-के प्रधान अध्यापक), सालिग्राम भार्गव (उस कालेजमें Physics laboratory के संचालक), रामदास गौड़ (Chemical laboratory के संचालक)। प्रथम सूत्रपातके अनन्तर गोपालस्वरूप भार्गव, ब्रजराज तथा हीरालाल खन्ना भी सम्मिलित हुए। कार्यारम्भ कर दिया गया। द्रव्यका नितान्त अभाव था। पर उत्साह प्रशंसनीय था। बहुत शीघ्र पं० सुंदरलाल जी (Sir Sunder Lal, Vice-Chancellor) की सहायता मिली। उसीके बलपर उत्साह और बढ़ा। कार्य-प्रणाली कई मार्गोंमें चली। लेक्चर, ग्रंथ निर्माण, मासिक पत्र, सभी प्रकार उत्साह-गम्य थे। सो भी दोनों भाषाओंमें—हिन्दी और उर्दूमें भी। 'हिन्दुस्तानी' का भूत 'Common language' के रूपमें, तथा पूर्ण रूपेण प्रवृत्त था। पर विज्ञान परिषत्ने आरम्भ ही से पार्थक्य ही को उपकारक समझा। इसी सिद्धान्तके अनुसार लेक्चर हिन्दी उर्दू दोनों भाषाओंमें होते रहे। दो तीन पुस्तकें भी दोनों भाषाओंमें लिखी गईं। इस काममें म्योर कालेजके सहकारी अध्यापक मौलवी नासरी साहब ने बड़ी सहायता की। कुछ ही दिनोंमें इस कार्यसे सभी श्रेणीकी जनता प्रसन्न हुई। एक वार्षिकोत्सवमें लाट साहब Sir James Meston सभापतिके आसनपर बैठे—डाक्टर गणेश प्रसादका लेक्चर हुआ—Mathematical Research विषय था—लेक्चर शुद्ध हिन्दीमें हुआ। और लाट साहब ने भी जो कुछ कहा प्रायः उर्दू ही में कहा। इसी प्रकार काम चलता रहा।

पर मासिक पत्र जबतक चारु स्थायीरूपसे नहीं चलने लगा तबतक हम लोग सन्तुष्ट नहीं हुए। द्रव्यकी कठिनता रहते हुए भी केवल उत्साहके बलपर एक दो अंक प्रकाशित हुए। ग्राहकोंकी संख्या बढ़ने लगी—परन्तु धीरे धीरे। दो एक साल तक पत्रिकाका चलना सन्दिग्ध ही रहा। पर वृद्धोंके आशीर्वाद तथा कार्यकर्त्ताओंकी युवक मंडलीके अदम्य उत्साहसे काम चलता ही गया। ग्राहकों-की संख्या भी बढ़ी, और तरह तरहकी सहायता भी आने लगी। इसका यश रामदास गौड़, हीरालाल खन्ना, सालिग्राम भार्गव, गोपालस्वरूप भार्गव, ब्रजराज—इन्हीं को है। यदि एक आध और सज्जन इनके साथ रहे हों तो उनका नाम मुझे स्मरण नहीं है। यदि हों, तो मुझे क्षमा करें।

म्योर कालेज ही के अध्यापक वर्गमें कुछ लोग ऐसे भी थे जो आरम्भमें हम लोगोंकी हँसी भी उड़ाया करते पर किसी तरह कार्य्य चलता ही गया। और अब इतने दिनोंपर परिषत् तथा उसकी मुख-पत्रिका किस श्रेणीका उपकार कर रही है सभी लोग जानते हैं।

खेद एक ही बातका है कि कई कारणोंसे—जिसमें कार्य्य-कर्त्ताओंका और ग्राहकोंका अभाव ही मुख्य था—हिन्दीके साथ-साथ उर्दूमें कार्य्य नहीं चल सका। पर मुझे कुछ ऐसा स्मरण हो रहा है कि इसी तरह का कार्य्य 'अंजुमन तरक्की उर्दू' या कोई ऐसी ही नामवाली समिति करने लगी थी। यह भी एक कारण रहा हो। जो कुछ हो अपने जीवनमें इस परिषत्को ऐसी उपयोगितावस्थामें देखकर हृदयमें बड़ा सन्तोष होता है। पूर्ण आशा है कि मातृभाषाकी ओर लोगोंकी श्रद्धा बढ़नेसे यह परिषद् दिनानुदिन उन्नति करती जायगी और अपनेको 'Common language' की पिशाचीसे पूर्ववत् सुरक्षित रक्खेगी।

देश व्यापी शुभ कामनायें एवं सन्देश

हमारे शुभाकांक्षी प्रसिद्ध वैज्ञानिक:

[१]

नोबेल पुरस्कार विजेता सर्व-शिरोमणि सर चन्द्रशेखर वेंकट रमन ने परिषद्की जयंतीके अवसरपर निम्न संदेश भेजा है :—

Dear Dr. Satya Prakash,

I write to send you my warmest good wishes for the occasion of the celebration of the Jubilee of the Vijnana Parishad. The work of making scientific literature accessible in Hindi is a most beneficient activity, and lovers of science will feel grateful for the excellent work that is being done by the Parishad and by yourself as Editor-in-chief of the Vijnana.

Yours Sincerely,
C. V Raman
Indian Institute of Science,
Bangalore.

24th November 1938.

[२]

परिषद्के आजीवन सदस्य वयोवृद्ध श्रद्धास्पद आचार्य सर प्रफुल्लचन्द्ररायकी शुभ कामनायें—

The Vijnana Parishad with its monthly organ the Vijnana completes its 25th year of useful service. The want of a scientific nomenclature in the Vernacular is a great obstacle in the path of the progress of science. But the Vijnana has steadily coined a set of appropriate terms in the vernacular and has been the means of popularising scientific knowledge. We are apt to forget that at present not even 1 per cent of our population can read and understand English.

I have been a constant reader of the Vijnana and its articles are often contributed by competent persons and as such they have been of immense service.

Long may this Parishad continue in its patriotic work.

Nov. 23, 1938. P. C. Ray.

[३]

इस प्रान्तके जगत्-प्रसिद्ध वैज्ञानिक वनस्पति-शास्त्र-वेत्ता डॉ० बीरबल साहनी, डी० एस-सी०, एफ० आर० एस०, की शुभ कामनायें—

Dear Dr. Satya Prakash,

Allow me to offer you my best wishes for a successful Silver Jubilee. The Vijnana Parishad is no doubt filling an important gap, and the usefulness of the Society depends largely upon your able guidance and your tenacity of purpose. I shall look forward to see the Special Jubilee Number of the Vijnana.

Yours sincerely,
Birbal Sahni

[४]

परिषद्‌के आजीवन-सदस्य और भूतपूर्व सभापति, भारतके सर्व श्रेष्ठ रसायनज्ञ डा० नीलरत्न धर, एसिस्टेण्ट डाइरेक्टर, शिक्षा विभाग, संयुक्त प्रान्तका शुभ सन्देश :—

The Vijnana has faithfully served the cause of Science in this country for a quarter of century. It has carried on pioneering work in the dissemination, diffusion and popularisation of the exact sciences and their applications in a language which is read and appreciated by the largest number of our countrymen and women.

The need of Vijnana has borne fruit now by the general acceptance of the principle that education in India should be carried on in the dialect of the province and the value of the work carried by the Vijnana and the Parishad will be appreciated more and more.

I fervently hope that the teachings of science and its applications will be understood and appreciated by our brethren in rural areas who really govern the country. I wish a bright future for the Vijnana and that it may extend its activities for the true education and Progress of our land, the future of which depends on the adoption of scientific principles in our daily life and in extension of our industries.

May the Vijnana serve the dual function of science, the discovery of truth for its own sake and the helping of mankind by creating wealth and industrial development and combating disease, suffering and death if possible.

17-11-38. N. R. Dhar.

[५]

परिषद्‌के सभापति देश-प्रसिद्ध प्राणिशास्त्र-वेत्ता डा० कर्म नारायण बाहलका शुभ सन्देश

विज्ञान परिषद्‌को काम करते हुए २५ वर्ष हो गये हैं। इस समयमें परिषद् अपनी विज्ञान-पत्रिका बराबर निकालता रहा है, और इसने हिन्दी जाननेवालोंके लिये वैज्ञानिक साहित्य तय्यार किया है। हिन्दी तथा उर्दूमें परिषद् ने कई वैज्ञानिक पुस्तकें भी प्रकाशित की हैं। क्योंकि परिषद्‌के पास अपनी पूंजी थोड़ी थी इसलिये परिषत्‌ने अपना काम बहुत नहीं बढ़ाया परन्तु फिरभी हमें

इस बातका हर्ष है कि हमने २५ वर्षमें काफ़ी काम किया है।

मैं उन सभासदोंको धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने उत्साह-के साथ काम किया है और हिन्दी पढ़नेवाली जनताकी सेवा की है। आशा है कि आगामी वर्षोंमें परिषद्का काम और भी बढ़ेगा और हिन्दी प्रेमी परिषद्की आर्थिक तथा हार्दिक सहायता करते रहेंगे।

कर्म नारायण बाहल
१७–१२–३८

राष्ट्र संचालकोंके शुभ सन्देश

[१]

बंबई सरकारके प्रधानमंत्री माननीय श्रीयुत बी. जी. खेर—

Dear Sir,

I am glad to know that you propose to celebrate the Silver Jubilee of Vijnana early in December and it gives me great pleasure to send you my hearty felicitations and good wishes on that occasion. I wish the readers of the Special Jubilee Number all joy.

Yours faithfully,
B. G. Kher
Poona, Prime Minister,
26th November 1938 Government of Bombay.

[२]

श्रद्धेय माननीय श्री सम्पूर्णानन्द जी, शिक्षा मंत्री, संयुक्त प्रान्त

प्रिय सत्यप्रकाश जी,

मुझे यह जानकर हर्ष हुआ कि विज्ञान परिषद् अपनी रजत जयन्ती मनाने जा रहा है। परिषद्के द्वारा इस प्रान्तके विज्ञानके प्रचारमें बड़ी सहायता मिली है और तो मुझे आशा है कि आगे भी होगी। मैं उसको सच्ची बधाई देता हूँ और उसके उत्तरोत्तर अभ्युदयकी कामना करता हूँ।

भवदीय
सम्पूर्णानन्द
(कैम्प) काशी मंत्री
ता: २६–११–३८ शिक्षा विभाग, संयुक्तप्रान्त

[३]

बिहार प्रान्तके शिक्षा-मंत्री माननीय डा० सैयद महमूद

Dear Sir,

It gives me great pleasure indeed to send my good wishes to the "Vijnana Parishad" on the occasion of its completing the 25th year of active existence devoted to the cause of propagating scientific knowledge through Hindi. The galaxy of men who have from time to time guided the destinies of this institution is ample testimony of the high level of its activities. Institutions of this type will play a great role in enriching our vernaculars in the future so as to equip them for performing the great responsibilities with which they are being invested as the medium of instruction in our schools and colleges.

Yours truly,
Syed Mahmud,
Minister of Education,
7th December 1938 Patna, Bihar.

[४]

माननीय श्रीमती विजया लक्ष्मी पंडित, मंत्री, लोकल सेल्फ़ गवर्नमेंट

महाशय,

विज्ञान परिषद्के उत्सवके समयमें आपको हार्दिक बधाई देती हूँ कि आपने इस परिश्रम और उत्साहके साथ २४ सालसे इसको बढ़ाया—जो काम परिषद् कर रहा है वो बहुमूल्य है—और मुझे विश्वास है कि हिन्दुस्तानकी उन्नतिमें इससे बहुत मदद पहुँचेगी।

लखनऊ भवदीया
नवम्बर २१, १९३८ विजयालक्ष्मी पंडित

[५]

माननीय डा० कैलाशनाथ काटजू, न्याय मंत्री, संयुक्तप्रान्त—

I am glad to learn that the Vijnana Parishad of Allahabad has completed 25 years of its useful existence and that it will celebrate its Silver Jubilee some time this mouth. It is indeed an event of which its founders and all those interested in it may feel justifiably proud. The Parishad has been rendering very valuable services to the cause of Hindi scientific literature and with the increasing demand for scientific books in Indian languages for use in Schools and Colleges and rural libraries the need for such institution will also increase. So far as Hindi scientific literature is concerned, the Parishad since its foundation has published several books and pamphlets and also issues a monthly journal of which Dr Satya Prakash is the Editor-in-Chief. I send the management my felicitations on this happy occasion and wish the Parishad many years of public usefulness.

K N. Katju,
Minister of Development and Justice, U. P.

Lucknow,
Dec. 19, 1938

[६]

संयुक्त प्रान्तीय लैजिस्लेटिव कौन्सिलके सभापति माननीय डा० सर सीताराम जी

"तमसो मा ज्योतिर्गमय"—"हे ईश्वर हमको अन्धकार में से ज्योतिमें ले चलो।"

अज्ञान अन्धकार है, भ्रम पूर्ण है,
ज्ञान ज्योति है, भ्रम नाशक है।

"ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः"—'बिना ज्ञानके मुक्ति नहीं' ऐसी शास्त्रकी आज्ञा है। तो हम मुक्ति चाहते हैं तो ज्ञान प्राप्त करें, बिना ज्ञान मुक्ति नहीं। मुक्तिके अर्थ केवल सांसारिक बंधन अथवा जन्म-परम्परा अथवा पाप-पाशसे ही मुक्तिके नहीं, किन्तु जैसी भी मुक्ति हो बिना ज्ञान प्राप्त किये नहीं मिल सकेगी।

भारतमें हिन्दी साहित्यमें वैज्ञानिक विषयोंपर पुस्तकों की बड़ी कमी है जिससे प्रायः केवल हिन्दी जाननेवाले भारतवासी पुरुष व स्त्री विज्ञानसे अनभिज्ञ रह अन्धकारमें रहते हैं। पश्चिममें वैज्ञानिक विद्याका प्रचार काफ़ी है और जापानमें भी। स्वदेशकी उन्नतिके अनेक साधन बिना विज्ञान न मिलते न सिद्ध होते—इसलिये यदि प्रयागकी विज्ञान-सभा वैज्ञानिक विषयोंपर पुस्तकें लिखवाकर हिन्दी भाषाका भंडार भर सके तो धन्य समझी जावेगी। आशा है कि ऐसी पाठावलिकी भाषा सुगम व सरल तथा उसके विषय सत्य व गंभीर होंगे—लेखक भी अच्छे प्रसिद्ध विद्वान हों—जिससे पाठकोंको लाभके साथ साथ इस

और रुचि भी हो, नहीं तो भय है कि ऐसी पुस्तकें कहीं पुस्तकालयोंको ही सुशोभित न करें। "विज्ञान परिषद् प्रयाग" की आयोजनापर मेरी पूरी सहानुभूति है और उसकी सफलताके लिये शुभ कामना है और परिषद्की रजत जयन्तीपर बधाई।

मेरठ सीताराम

२४-११-३८

[७]

प्रान्तके एडवोकेट-जनरल डा० नारायण प्रसाद अष्ठाना, भूतपूर्व वायस-चैन्सलर आगरा विश्वविद्यालय

Dear Mr. Editor,

I am very glad to learn that you are celebrating the Silver Jubilee of the Vijnana Parishad and of the monthly paper Vijnana. The institution has during its twenty five years' existence rendered signal service to the cause of progress of science. It has found out new vocabulary for scientific terms and thus opened the way for popularising modern scientific truths. I heartily felicitate the society and its organ on the great work and wish both of them ever increasing success.

Yours sincerely,

20th November 1938. N. P. Asthana.

भारतीय विश्वविद्यालयोंकी शुभ कामनायें

[१]

परिषद्के भूतपूर्व उप-सभापति महामना पूज्य पं० मदन मोहन मालवीय, वायस-चैन्सलर, काशी विश्व विद्यालय—

Dear Sir,

I am glad to know that you are celebrating the Silver Jubilee of the Vijnana Parishad. I congratulate the Parishad on the success it has achieved during the last twenty five years of its existence and hope that during the next twenty five years it will record greater progress and thereby earn the further gratitude of all those who desire to promote the well being of the people by spreading a knowledge of Science among the teeming millions whose mother tongue is Hindi.

I wish your function every success.

Yours sincerely,
M. M. Malaviya
Vice-Chancellor,

28-12-38. Benares Hindu-University.

[२]

श्री डा० आर० सी० मजूमदार, वायस-चैन्सलर ढाका विश्वविद्यालय

Dear Dr. Satyaprakash,

May I convey my hearty congratulations on the occasion of the Silver Jubilee of the Vijnana Parishad. It has completed 25 years of useful career and has immensely enriched the Hindi language and literature. Its mission has been partially fulfilled, and I hope that during the years that will follow, it will continue the noble work it has been doing in the past. The propagation of scientific truths in modern Indian vernaculars has been a crying need, and the Parishad has done a great deal to remove it so far as the Hindi speaking people are concerned.

I hope its example will be followed in other Provinces; and soon the higher scientific truths discovered in any part of the world will be available in the language of the people.

Wishing you all success.

Yours sincerely
R. C. Majumdar,
Vice-Chancellor,
22-11-1938. University of Dacca

[३]

श्री सी० आर० रेड्डी, वायस-चैन्सलर आन्ध्र विश्वविद्यालय

Dear Sir,

The work done by the Vijnana Parishad has been of immense value in the development of Modern Indian Languages and helping them to adapt themselves to the various needs of this scientific age. Unless our languages are made sufficiently competent to cope with the multifarious and progressive demands of science, we shall be left in the backwaters. And I am not one of those who believe that the truest pro gress is the swiftest relapse to primitivism.

Yours sincerely,
C. R. Reddy
Vice-Chancellor,
6-12-38. Andhra University, Waltir.

[४]

श्री टी० जे० केदार, वायस-चैन्सलर नागपुर विश्वविद्यालय

Dear Dr. Prakash,

I am delighted to hear that the Hindi Vijnana Parishad of Allahabad is celebrating its Silver Jubilee this year. The pioneer work of the Parishad in bringing out scientific literature in Hindi is well known and, I hope, that it will receive all the appreciation and support it deserves.

Encouragement of original scientific literature in Indian languages is the surest way of facilitating the introduction of Indian Languages as media in our Universities.

I wish the celebrations a great success.

Yours sincerely
T. J. Kedar
Vice-Chancellor,
1st December, 1938. Nagpur University.

[५]

दीवान बहादुर श्री एस० ई० रङ्गानाथन, वायस-चैन्सलर, मद्रास विश्वविद्यालय

Dear Sir,

I regret that I am unable to attend the Silver Jubilee Celebration of the Vijnana Parishad. I send you, however, my heartiest congratulations on the splendid work the Parishad has been doing during the past twenty-five years, and wish the Parishad continued success and prosperity.

Yours truly,
S. E. Runganadhan,
Vice-Chancellor,
30-11-1938. University of Madras.

[६]

वायस-चैन्सलर पंजाब विश्वविद्यालयकी ओरसे

We offer our felicitations to the Vijnana

Parishad on the occasion of the celebration of its Silver Jubilee and wish it a successful career in the future.

Sd. Dr. Lakshman Sarup
on behalf of the
Vice-Chancellor,
University of Punjab.

Lahore,
Dated 22-11-38.

[७]

श्री पं० अमरनाथ झा, वायसचैन्सलर प्रयाग विश्वविद्यालय

I am very pleased to learn that the Vigyan Parishat is to celebrate its 25th anniversary of its foundation. I have always taken a keen interest in its work and was for some time actively associated with it as a member of its Council. As I look back to the past I remember the great care and devotion with which the late Babu Ram Das Gour fostered it. It is a matter of gratification that another person who may be regarded with Mr. Gour as a joint founder is still actively associated with it. I refer of course to Mr. Saligram Bhargava. On behalf of the University I, wish the Parishat long years of useful service.

Amaranatha Jha,
Vice-Chancellor,
University of Allahabad.

[८]

श्री डा० पी० बसु, वायसचैन्सलर आगरा विश्वविद्यालय

Dear Sir,

On the completion of the twentyfifth year of the existence of the Vijnana Parishad I send it my best wishes with the hope that it will continue to do good work in widely spreading scientific knowledge all over the country.

Yours faithfully
P. Basu,
Vice-Chancellor,
Agra University.

23-11-1938.

सहयोगी संस्थाओंकी शुभाकांक्षायें

[१]

हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद

प्रिय डाक्टर सत्यप्रकाश जी,

विज्ञान परिषद् हमारे प्रान्तकी एक प्रतिष्ठित विद्वत् संस्था है और ज्ञानकी उन्नति चाहने वाले प्रत्येक देशवासी को जानकर हर्ष हुये बिना नहीं रह सकता कि यह शीघ्र ही अपने जीवनके २५ वर्ष समाप्त करके अपनी रजत जयंती मनाने जा रही है। जिन विद्वानोंके नाम इस संस्थासे आरम्भसे संबंध रहे हैं उनका सहयोग किसी भी संस्थाके लिये गौरवकी बात है। मुझे इसमें बिल्कुल सन्देह नहीं कि आनेवाले वर्षोंमें विज्ञान परिषद् और भी उत्साहके साथ इस देशकी भाषाओं द्वारा विज्ञानकी उन्नतिके कार्यमें आगे बढ़ेगा। इस अवसर पर हमारी हार्दिक शुभ कामना स्वीकार करें।

भवदीय
ताराचन्द

दिसम्बर १७—११—३८

[२]

हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

महोदय,

विज्ञान परिषद्की रजत जयन्तीके अवसरपर हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयागकी ओरसे हार्दिक बधाइयाँ। इन चौबीस पचीस वर्षोंमें आपकी परिषद् ने हिन्दी साहित्य की जो सेवा की है वह किसी भी हिन्दी हितैषीसे छिपी

नहीं है । परिषद्‌का मुखपत्र "विज्ञान" हिन्दीमें ही नहीं, भारतकी सभी भाषाओंमें अद्वितीय स्थान रखता है और अपने ढंगकी अनूठी चीज़ है । परिषद् ने और भी विज्ञान संबंधी साहित्य संसारके सामने उपस्थित किया है । वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दोंका रूप स्थिर करनेमें भी इस परिषद् ने प्रशंसनीय कार्य्य किया है । इन सब सेवाओंके लिये हिन्दी संसार ऋणी है । इस शुभ अवसर पर सम्मेलन अपनी शुभ कामनाओंकी अञ्जलि अर्पण करता हुआ, ईश्वरसे प्रार्थना करता है कि विज्ञान-परिषद् उत्तरोत्तर उन्नति करे और राष्ट्रभाषाका मुख उज्वल करे ।

भवदीय,

२६–११–३८ बाबूराम सक्सेना

प्रधान मंत्री

[३]

इण्डियन कैमिकल सोसायटी, कलकत्ता

The Indian Chemical Society offers its heartiest congratulations to the Vijnana Parishad on the occassion of its Silver Jubilee Celebration and wishes it continued prosperity.

Yours truly,

P. K. Bose,

29-11-1938. Hony. Secretary.

[४]

बंगीय साहित्य परिषद् कलकत्ता

The Bangiya Sahitya Parishad sends its heartiest felicitations on the occasion of the Silver Jubilee of the Vijnana Parishad, whose noble efforts for bringing out original and popular literature on all scientific subjects in Hindi cannot but extort admiration from all well wishers of our country. The Bangiya Sahitya Parishad as a sister institution appreciates its work greatly and prays to the Almighty for its continued success.

Yours faithfully,

M. M. Bose,

24-12-38. Hony. Secretary.

[५]

नागरी प्रचारिणी सभा काशी

संपादक महोदय,

विज्ञानकी रजत-जयंतीके शुभ अवसर पर नागरी-प्रचारिणी सभाकी ओरसे मैं आपकी संस्थाको हार्दिक बधाई देता हूँ । आपकी संस्था ने गत २५ वर्षोंमें हिन्दी भाषाके माध्यम द्वारा विज्ञानका प्रचार करके देशकी प्रशंसनीय सेवा की है । इस युगमें हमारे दैनिक जीवनमें भी विज्ञानका साधारण ज्ञान अनिवार्य सा हो गया है । अतः जनतामें सरल हिन्दी भाषाके द्वारा उसका अधिकसे अधिक प्रचार करना इस समय राष्ट्रकी बहुत बड़ी सेवा है । सभाकी यह शुभ कामना है कि इस महत्त्व-पूर्ण कार्यको पूरा करनेके लिये आपकी संस्था सफलता पूर्वक आगे बढ़ती रहे ।

भवदीय

बनारस सिटी रामनारायण मिश्र

१८–११–३८ सभापति

अग्रगण्य शुभचिन्तकोंके सन्देश

[१]

पूज्यपाद श्री महात्मा नारायण स्वामीजी

मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि प्रयागकी प्रसिद्ध समिति विज्ञान-परिषद्‌ने अपने बहुमूल्य आयुके

२५ वर्ष समाप्त कर लिये हैं और इसी उपलक्षमें वह अपनी रजत-जयन्ति मना रही है। यह बात किसी भी स्वाध्यायशील व्यक्तिसे छिपी नहीं है कि परिषद्ने अपने मासिक पत्र विज्ञान द्वारा वैज्ञानिक सिद्धांतोंका कितनी उत्तमतासे प्रचार किया है। देशके सहस्त्रों व्यक्तियोंने उससे लाभ उठाया और हिन्दी भाषाको भी उससे सम्पन्नता प्राप्त हुई है। मैं हृदयसे चाहता हूँ कि परिषद् चिरकाल तक अपना शुभ उद्योग जारी रखनेमें समर्थ हो।

शोलापुर नारायण स्वामी
२१-११-३८

[२]

श्रद्धेय काका कालेलकर

प्रिय सत्यप्रकाश जी,

मुझे क्षमा कीजिये। आपके पत्रका उत्तर इससे पहले नहीं दे सका। 'विज्ञान परिषद्'की रजत-जयन्ति कब है सो आपने अपने पत्रमें नहीं लिखा था।

विज्ञान परिषद्ने जो ठोस सेवाकी है उससे तो राष्ट्र-भाषा हिन्दीकी शक्ति बहुत कुछ बढ़ी है। अब समय आ गया है कि 'विज्ञान परिषद्' द्वारा अन्य प्रांतीय संस्थाओंसे सहयोग प्राप्त करके विज्ञानकी राष्ट्रीय परिभाषा तयकी जाय और लोक सुलभ वैज्ञानिक साहित्य प्रकाशित करनेकी योजना भी हाथमें ली जाय। विज्ञान परिषद् ही इस कार्यमें अग्रेसरत्व ले सकता है।

वर्धा भवदीय
२-१२-३८ काका कालेलकर

[३]

श्रद्धेय बा० शिवप्रसाद जी गुप्त

मैं विज्ञानका उस दिनसे शुभचिन्तक हूँ जब वह पहले पहल अध्यापक श्री रामदास जी गौड़के प्रयत्नसे निकलना आरम्भ हुआ था। मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता होती है कि यह अपने जीवनके २५ वर्ष पूरे कर अब आगे पदार्पण करने जा रहा है। भगवान इसको दिनो-दिन उन्नत करे। शिशु जब अपनी माताके स्तनका दुग्धपान करता है तभी प्रौढ़, बलिष्ट, और उन्नत होता है। धायके दूधपर पले बालक दुर्बल और अल्पजीवी हुआ करते हैं। इसमें अपवाद भी होते हैं पर वे अपवाद ही हैं, यह नियम स्वाभाविक नियम नहीं हो सकता। इसी प्रकार वैज्ञानिक साहित्य अथवा साधारण साहित्य भी उसी समय उन्नतिके पथपर अग्रसर हो सकता है जब उसको अपनी स्वाभाविक माता मातृभाषाका पूरा सहारा मिलता है। मेरा विश्वास है कि जब तक भारतीय विद्वान अपनी भाषामें लिखने पढ़ने न लगेंगे, तब तक देश और समाजमें ज्ञान और विज्ञानका वास्तविक प्रचार न होगा। विदेशी भाषा द्वारा बनाये हुये विद्वानोंकी वही दशा रहेगी जैसी वर्षाऋतुमें जुगनुओं द्वारा आलोकित उद्यानकी होती है "ये जुगनू भी नई ही रोशनीके गिर्द फिरते हैं। अन्धेला ही रहा गुलशनमें गोये जाबजा चमके।" सूर्यकी प्रखर ज्योति अपनी मातृभाषा द्वारा ही होना सम्भव है। भगवान वह समय शीघ्र दिखावे जब यह सत्य विद्वानोंके समझमें आ जावे और वे इस बातका संकल्प कर लें कि वे अपनी मातृभाषाका भण्डार भर कर उसे इस योग्य बना दें कि संसारका सब ज्ञान उसके द्वारा प्राप्त किया जा सके।

सेवाकरका मकान, लखनऊ कृपाभिलाषी
५ मार्ग शीर्ष १९९५ शिवप्रसाद गुप्त

[४]

डा० सर शफआत अहमद खां

Dear Dr. Satya Prakash,

I am delighted to hear that Silver Jubilee of

the Vijnana Parishad, Beli Road Allahabad, is going to be celebrated this year. It has done most useful work and has given an impetus to the preparation of original and popular literature on scientific subjects in Hindi. The Society has my most sincerest sympathy.

Yours Sincerely,
Shafaat Ahmad Khan
1-12-1938. 31, Stanley Road, Allahabad.

[५]

राय बहादुर श्री पं० कमलाकर द्विवेदी, चीफ़ रेवेन्यू काउन्सिलर, उदयपुर

भारतवर्ष प्राचीन कालसे अध्यात्मिकताका केन्द्र रहा है। किन्तु हमारी इस सर्वोत्कृष्ट अध्यात्मिकताका भी अपवाद है। किसी भी वस्तुकी अतिशयता चाहे वह कितनी ही सुन्दर क्यों न हो हानिकर होती है। आज दिन हम पाश्चात्य देशोंके पीछे हैं। भौतिक उन्नतिके लिए विज्ञानकी परमावश्यकता है। मूलमें ब्रह्म ज्ञान तथा विज्ञानका लक्ष्य एक ही है, फिर भी हम अपने लक्ष्यकी ओर तभी सुनिश्चित रूपसे अग्रसर हो सकते हैं जब दोनोंमें समन्वय हो। भारतवर्षमें अभी तक यह समन्वय नहीं हो सका है। इसका प्रधान कारण है कि हमारे देशका साहित्य तथा हमारे देशके नवयुवकोंका ध्यान अभी तक विज्ञानकी ओर समुचित रीतिसे आकृष्ट नहीं हुआ है। हमें यह जान कर बड़ा हर्ष है कि विज्ञान परिषद् इतने दिनोंसे विज्ञानकी उन्नतिके लिए सचेष्ट तथा सतर्क रहा है। अपने देशमें वैज्ञानिक उन्नतिके साधनोंका अभाव होते हुए भी आज दिन भारतवर्षके अनेक वैज्ञानिकों ने पाश्चात्य देशके वैज्ञानिकों से टक्कर ली है और अपने देशका मुख उज्ज्वल किया है। यह जानकर कि विज्ञान परिषद्‌की आज रजत-जयन्ती है, हमें अपूर्व हर्ष हो रहा है। यह मेरी हार्दिक इच्छा है कि परिषत् इसी प्रकारसे अपनी सेवाओं द्वारा देशके विज्ञानकी उन्नति करता रहे।

२३-१—३९ कमलाकर द्विवेदी

[६]

प्रो० श्री अमियचन्द्र वन्द्योपाध्याय प्रयाग विश्वविद्यालय

विज्ञानकी रजत-जयन्तीके शुभ अवसरपर बधाई देते हुए मैं असीम आनन्दका अनुभव कर रहा हूँ।

गत २५ वर्षोंमें इस पत्र ने जो विज्ञान और कलाके प्रचारमें प्रयत्न किया है वह अत्यन्त प्रशंसनीय है। इस पत्र ने सरस और सरल भाषामें विज्ञानका सन्देश प्रत्येक हिन्दी भाषाभाषी मनुष्य तक पहुंचाया। मेरा यह कहना कि इस उद्देश्यकी पूर्ति करनेवाला आज तक यही एक पत्र है—अत्युक्ति न होगा।

आजसे कुछ वर्ष पूर्व शिक्षा-प्रेमियोंका ध्यान हिन्दी और उर्दूको विज्ञान और गणितके विषयोंकी शिक्षाका माध्यम बनानेके प्रश्नकी ओर आकृष्ट हुआ। परन्तु साधना-भावके कारण हाई स्कूल तककी कक्षाओंमें ही इन भाषाओंमें इन उपयोगी विषयोंकी शिक्षा दिया जाना पर्याप्त समझा गया। आज शिक्षा-नीतिज्ञोंके सम्मुख दूसरा प्रश्न है—वह यह है कि विश्वविद्यालयोंकी ऊँचीसे ऊँची कक्षाओंमें भी विज्ञान आदि विषयोंको मातृभाषामें ही पढ़ाया जावे। इन प्रान्तोंमें प्रत्येक अनुभवी और बुद्धिमान पुरुषकी यह अत्यन्त स्वभाविक और आकांक्षित आशा है कि बहुत ही निकट भविष्यमें साहित्य-कला-विज्ञानकी उच्चतम शिक्षा भी मातृभाषामें ही दी जावे।

कदाचित् इन भावोंका प्रेरक कुछ अंशोंमें 'विज्ञान' ही हो, क्योंकि इस पत्र ने गूढ़से गूढ़ विषयपर रोचक भाषा में विवेचन कर यह सिद्ध कर दिया है कि हिन्दीमें भी विज्ञान का अध्ययन सफलतापूर्वक किया जा सकता है।

विज्ञानके संस्थापकों और संचालकों को पत्र-संचालनमें विपरीत वातावरणसे संघर्ष करना पड़ा। इन सब कठिनाइयोंके होते हुये भी पत्र दिनो-दिन उन्नति करता चला गया—यह कार्यकर्ताओंकी निःस्वार्थ सेवाओंका ही फल कहा जा सकता है। इसके लिए सारा प्रान्त उनका आभारी है। इसके अतिरिक्त विज्ञान परिषद् ने समोचित संख्यामें वैज्ञानिक ग्रन्थोंको प्रकाशित किया और ज्यों ज्यों आवश्यकता पड़ती गई नये नये वैज्ञानिक शब्दों की रचना करके भाषाके कोषको भी अधिकाधिक विस्तृत किया। आज हिन्दी भाषा विज्ञानकी सेवाओंके कारण अवश्य पूर्वापेक्षा अधिक धनी है। परन्तु कार्यकी इतिश्री यहीं नहीं हो जाती। अभी बहुत कार्य शेष है। विश्व-विद्यालयों और कालिजोंमें हिन्दीको विज्ञानकी शिक्षाका माध्यम बनानेके पूर्व इस बातकी आवश्यकता है कि विभिन्न विषयोंपर हिन्दीमें अधिक संख्यामें अच्छेसे अच्छे ग्रन्थ लिखे जावें। यही नहीं भौतिक और रसायन शास्त्र जैसे प्रगतिशील विषयोंमें आजकी लिखी हुई पुस्तक पाँच वर्ष पश्चात् अपूर्ण समझी जाने लगेगी। इस हेतु नये नये अन्वेषणोंको समुचित स्थान देनेके लिए समय समयपर नवीन पुस्तकें लिखे जानेका प्रबन्ध करना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि इनके अभावमें भारतीय विद्यार्थी संसारसे बहुत पिछड़ जावेंगे और शिक्षाका आदर्श भी गिर जावेगा। जब तक इन कठिनाइयोंको पार करनेके साधन लब्ध न हों तब तक हिन्दीको शिक्षाका माध्यम बनाना उचित नहीं। उत्साही नवयुवक इस कार्यका उत्तरदायित्व अपने कंधोंपर ले सकते हैं। उन्हें मातृभाषाकी सेवाके लिये कटिबद्ध हो जाना चाहिये। वे वैज्ञानिक विषयोंपर सुन्दर सुन्दर उपयोगी ग्रन्थ लिख कर—हिन्दीको शिक्षणका माध्यम बनानेकी चिर-अभिलाषित आशाको फलीभूत कर सकते हैं। विज्ञानका संपादक-मण्डल उत्साही लेखकोंको आवश्यक शिक्षा देकर ग्रन्थ-लेखनके कार्यको आगे बढ़ा सकता है।

विज्ञानके लिए अत्यन्त उज्ज्वल भविष्य है। मेरी यह हार्दिक अभिलाषा है कि इस पत्रका प्रचार दिनोदिन बढ़ता जावे तथा यह विज्ञान और कलाके प्रचारके सद्-उद्देश्यमें पूर्ण रूपसे सफल हो।

अध्यापक अमियचन्द्र वन्द्योपाध्याय

[७]

श्रीयुत राय कृष्णदास जी

प्रयागके विज्ञान परिषद् और उसके मुखपत्र 'विज्ञान' के द्वारा हिन्दी जनताका जितना ज्ञानवर्धन हुआ, उतना यदि किसी अन्यदेशका अपने ही देशके किसी अन्य प्रान्त-की संस्थाने किया होता तो वैसी संस्था क्या जाने कितनी प्रसिद्धि प्राप्त कर लेती। किन्तु इन प्रान्तोंकी अवस्था कुछ और ही है। ऐसी परिस्थितिमें उन महामनाओंके प्रति मेरी श्रद्धापूर्वक नति है जो इस संस्थाको लगनके साथ विगत २५ वर्षोंसे चलाते रहे हैं। आज परिषद्की रजत जयन्तीका सुयोग देखकर हृदयमें बड़ा उल्लास होता है। यद्यपि इस उल्लासमें स्वर्गीय गौड़जीका अभाव बड़ा खटकने वाला है किन्तु उनका आत्मा जहां भी होगा वहींसे इस अवसर पर प्रसन्न और सुखी होगा।

भगवान करे एक दिन परिषत्‌को स्वर्ण ही नहीं, हीरक जयन्ती मनानेका सुयोग्य भी आवे और तब तक यह संसारकी अग्रगण्य वैज्ञानिक संस्थाओंमें स्थान प्राप्त करले।

काशी

२३-११-३८ कृष्णदास

[८]

बाबू मैथिली शरण गुप्त

प्रिय महोदय,

विज्ञान परिषद्‌से हिन्दीका गौरव है। प्रभुसे प्रार्थना है, उसकी उत्तरोत्तर उन्नति हो। उसकी उन्नतिसे हमारी उन्नति है।

चिरगाँव विनीत

२४-११-३८ मैथिलीशरण

[९]

श्री पं अयोध्यासिंह जी उपाध्याय 'हरिऔध'

महोदय !

कृपा पत्र मिला, स्मरणके लिये धन्यवाद! मैं और मेरा सन्देश क्या? किन्तु जैसे भगवान भुवन भास्करके प्रकाशमें रजकण चमकने लगते हैं, उसी प्रकार मैं भी किसी प्रकाशके अवलम्बसे चमक उठूँ तो उठूँ, नहीं तो मैं क्या हूँ। मेरा सन्देश इतना ही है—

दोहा

उदित दिवाकर सदृश हो, हरे देश अज्ञान।
विज्ञ बनावे लोकको, विज्ञार्जित विज्ञान॥

कृपाकांक्षी

हरिऔध

[१०]

डा० धीरेन्द्र वर्मा

प्रिय डा० सत्य प्रकाश जी,

आपके पत्रसे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि विज्ञान परिषद् अपनी सेवाके २५ वर्ष शीघ्र पूरे करने जा रहा है।

परिषद् ने हिन्दीमें विज्ञानके सम्बन्धमें जो कार्य किया है वह किसीसे छिपा नहीं है। विदेशी भाषाओंमें होनेवाले कार्य्यसे इसकी तुलना भले ही न की जा सके किन्तु भारतीय भाषाओंके तत्संबन्धी कार्य्यमें निश्चय ही इसका स्थान बहुत ऊँचा है। यह कार्य और भी अधिक तेज़ीसे तथा ऊँचे पायेका नहीं हो सका इसका उत्तरदायित्व परिषद्‌के कार्यकर्ताओं पर नहीं है। बल्कि विदेशी सरकार, विदेशी भाषाका शिक्षाका माध्यम होना, तथा फलस्वरूप अंग्रेजी पढ़ी लिखी हिन्दी जनताकी अंग्रेज़िया मनोवृत्ति पर है।

मुझे विश्वास है कि अब जब विदेशकी परिस्थितिमें अंतर हो रहा है, विज्ञान परिषद्‌की पुरानी सेवाओंका ठीक मूल्य आँका जासकेगा तथा भविष्यमें इसकी सेवाओंसे देश विशेष लाभ उठा सकेगा। अन्तमें मैं परिषद्‌के कार्यकर्त्ताओंको हार्दिक बधाई दिये बिना नहीं रह सकता जो परिस्थितिओंके अनुकूल न होने पर भी तन मन धनसे अपने ध्येयमें निरन्तर लगे रहे। देशका भविष्य ऐसे ही सच्चे तथा दृढ़ लगन वाले कार्यकर्त्ताओं पर निर्भर है।

आज यदि श्री रामदास गौड़ जी जीवित होते तो अपने लगाये हुए इस पौधेको इतना बड़ा देख कर कितने प्रसन्न हुए होते।

हिन्दी विभाग भवदीय

विश्व विद्यालय, प्रयाग धीरेन्द्र वर्मा।

७-१२-'३८

[११]

श्री मदन मोहन सेठ, जज, प्रयाग

My dear Satya Prakash,

I am glad to receive your letter telling me that the Vijnana Parishad Allahabad completes its 25th year.

The Parishad has been doing a very useful work. Whatever may be said by some, Hindi is bound to be the Lingua Franca of India and that in the near future. Then the work of the Parishad would receive its due need and appreciation.

In the present times, it was Swami Dayanand, the founder of the Arya Samaj, who for the first time realised the fact of the Hindi becoming an all India language and wrote all his works in Hindi. It was more than half a century ago, even before the Indian National Congress came into being. It is a matter for gratification that in our own times Mahatma Gandhi has also taken up the same position. We cannot but recall the services of the late Mr. Justice Sharda Charan Mitra of Bengal who did his best to popularise Hindi amongst non-Hindi knowing people. I very much value the work of the Parishad which is an important although a difficult one, and offer my sincerest felicitations to the Parishad and its workers, and wish a very long life of usefulness and prosperity to the Parishad.

Yours sincerely
M. M. Seth,
Dist. and Session Judge,
Allahabad.

[१२]

श्री लाला दीवानचन्दजी, भूतपूर्व वायस-चैन्सलर आगरा विश्वविद्यालय

The aims of the Vijnana Parishad are very laudable and the amount of work it is doing is quite considerable. Having completed the first twenty-fiye years of its useful existence, it now attains adulthood. I hope it will not only continue its beneficient activities but will also extend them.

Diwan Chand,
Principal, D A.V. College.

Nov. 28, 1938.

[१३]

श्री दुलारेलाल भार्गव

प्रिय महोदय,

हमें आपका सूचना पत्र मिला। यह जानकर अत्यंत हर्ष हुआ कि विज्ञान परिषद् इस वर्ष दिसंबरके महीनेमें अपनी रजत जयन्ती मनानेका आयोजन कर रही है। विज्ञान परिषद् ने हिन्दीके लिये जो कार्य किया है और पिछले २५ वर्षोंसे 'राष्ट्र भाषाकी जो सेवा की है, वह किसीसे छिपी नहीं। राष्ट्रकी आवश्यकताओंके साथ साथ हमारा विश्वास है, आपकी संस्थाकी महत्ता भी बढ़ेगी। क्योंकि देशकी औद्योगिक उन्नति पूर्णतः विज्ञानके आधुनिक आविष्कारोंके समुचित उपयोगपर ही अवलंबित है, और जब सारे देशमें औद्योगीकरणका आंदोलन चल रहा है, एवं राष्ट्रभाषा हिन्दीको ही अनेक प्रकारके वैज्ञानिक विषयोंकी शिक्षाका माध्यम बनाया जा रहा है, तब निकट भविष्यमें हम आपकी संस्थासे राष्ट्रोत्थान

के कार्यमें बहुत बड़ी सहायताकी आशा करते हैं। भगवान् आपके उद्देश्यको सफल करे। विशेष कृपा।

लखनऊ
२०–१२–३८

भवदीय
दुलारेलाल

[१४]

श्री युधिष्ठिर भार्गव, सम्पादक जयाजी प्रताप, ग्वालियर

गत २५ वर्षोंमें प्रयागके विज्ञान परिषद् ने हिन्दी साहित्य अतएव भारतीय राष्ट्रकी जो ठोस पर मौन सेवाकी है वह हिन्दी भाषाके इतिहासमें विशेष स्थान रखती है। प्रारम्भमें लोकप्रिय साहित्यकी सृष्टि, वैज्ञानिक शब्द कोष-निर्माण, पाठ्य पुस्तकोंकी रचना, लोकप्रिय व्याख्यानोंका आयोजन तथा सबसे महत्वपूर्ण कार्य 'विज्ञान'का प्रकाशन—यह सब ऐसी बातें हैं जो कुछ चुने हुए कार्यकर्ताओंकी लगन तथा अध्यवसायका परिणाम हैं। यदि विज्ञान परिषद् हिन्दीमें राष्ट्रभाषाके गौरवके योग्य वैज्ञानिक साहित्य उत्पन्न न कर सका तो इसमें दोष हिन्दी-भाषा-भाषी जनताका है, न कि परिषद्का। हजारोंका घाटा सहकर उसका मूल्य व्यक्तिगत परिश्रमसे चुकाना तथा इतनी कठिनाइयों होते हुये एक संस्थाको जीवित रखना हंसी–खेल नहीं है। यदि भारतवर्षमें ऐसी परिस्थिति होती जैसी कि अन्य प्रगति-गामी देशोंमें है तो विज्ञान-परिषद्को वही सम्मान प्राप्त होता जो लन्दनकी रोयल सोसायटी या पेरिसकी एकेडमी को है। यदि अब भी जनता और प्रान्तीय तथा रियासती सरकारें ऐसी संस्थाका महत्व समझ लें तो कोई कारण नहीं कि हम इस संस्थाकी गिनती संसारकी प्रतिष्ठित वैज्ञानिक मजलिसोंमें न कर सकें। आशा है कि परिषद् अपनी जन्मभूमि संयुक्त-प्रांतमें मान तथा प्रतिष्ठा प्राप्त कर एक अखिल-भारतीय संस्थाके महत्वको शीघ्र ही प्राप्त कर सकेगी।

ग्वालियर राज्यके एक मात्र पत्र "जयाजी प्रताप" की ओरसे विज्ञान परिषद्को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए तथा शुभ-कामनायें प्रेषित करते हुए मुझे गौरव तथा आनन्दका अनुभव होता है।

युधिष्ठिर भार्गव
सम्पादक
जयाजी प्रताप, ग्वालियर

[१५]

डा० प्रेमराज शर्मा, सम्पादक गोरखा पत्र, नैपाल

आजके युगमें जब कि प्रत्येक सुसभ्य देश वैज्ञानिक साधनोंसे सुसज्जित है, सिर्फ भारतवर्ष ही पीछे रहे यह उचित नहीं। इसलिए अपने पड़ोसियोंकी वैज्ञानिक अभिरुचियोंको देखते हुए आज नेपाल भी प्रसन्न है। मेरे विचारमें भारतके प्राचीन गौरवको ढूँढ़ निकालनेके लिए आधुनिक विज्ञान ही हमारा परम सहायक सिद्ध होगा। कुछ लोगोंका कहना है कि आधुनिक विज्ञानसे मानव जगतको भारी नुकसान उठाना होगा और इससे मानवताको भी भारी धक्का पहुंचे बिना न रहेगा। इसका सरल उत्तर यही है कि हम लोग आगकी निन्दा करनेकी मूर्खता न करें क्योंकि उसके दुरुपयोगके बिना किसी प्रकारके खतरेकी संभावना नहीं है। दूसरा पहलु है वैज्ञानिक उन्नति मैसिनोंकी प्रचुरताको बढ़ावेगा और उसके परिणाम स्वरूप बहुतसे लोग बेकार हो जायेंगे, और देशका धन पूंजिपतियोंके अंगुलियोंमें केन्द्रित हो जायगा। इसका उपाय है—किसी एक व्यक्तिकी पूंजीसे कोई भी

बड़ा कारखाना न खोला जाय। किसी एक बड़े कारखानेके लिये बहुतसे शेयर होल्डर बनाये जायँ। आधुनिक विज्ञानके यन्त्र हमारे अमूल्य समयको बचाते हुये याने हमारे आयुको बढ़ाते हुये हमें बहुतसे आवश्यक कार्यों और विचारोंकी ओर झुकनेका काफी समय देंगे। अतएव हम इस विज्ञानकी उपासना क्यों न करें। और एक ऐसे परिषद्‌की अभ्यर्थना भी क्यों न करें जिसने हिन्दी और हिन्दुस्थानकी विकटसे विकट स्थितिमें अपने कर्तव्यको पूरा करनेमें अपनी ओरसे कुछ कम परिश्रम नहीं किया। इन सब कारणोंसे प्रयागकी विज्ञान परिषद्‌को उसके रजत-जयन्तीके अवसरपर शतशः धन्यवाद देनेमें हमें संकोच नहीं।

[१९]

मेजर हीरासिंह, इन्दौर

Dear Sir,

Many Thanks for your letter received on dated 10-11-38. My hearty congratulation for the Silver Jubilee of the Vijnana Parishad.

I believe the crown of success will always remain in the head of the Vijnana Parishad which is conducted so selflessly by you and your honourable colleagues. With hearty respects to all the honourable workers of the Parishad.

Yours sincerely,
Heera Singh,
Major.

सम्पादकीय

विज्ञान परिषद्‌की रजत जयन्ती मनानेका प्रश्न स्वर्गीय बाबू रामदास जी गौड़ने अपने देहावसानसे कुछ मास पूर्व उठाया था। हमें आज यह जयन्ती उनकी अनुपस्थितिमें मनानी पड़ रही है। गत दो तीन वर्षोंके भीतर ही परिषद्‌से सम्बन्ध रखनेवाली कई आत्मायें दिवंगत हो गईं—श्री डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, ला० सीताराम जी, डा० गणेश प्रसाद जी और अध्यापक रामदास जी गौड़। इधर वयोवृद्ध श्री पं० महावीर प्रसाद जी द्विवेदीके देहावसानसे समस्त साहित्यिक जगत्‌में उदासीनता छा गई। ईश्वर इन सबकी आत्माओंको सद्‌गति दे।

हमारा विचार दिसम्बर १९३८ में जयन्ती मनानेका था, पर कुछ अनिवार्य्य कारणोंसे जयन्तीका उत्सव २१ फर्वरी १९३९ को मनाया जा सका। इस अवसर पर देश भरके वैज्ञानिकों, राष्ट्र संचालकों, सहयोगी संस्थाओं और अग्रगण्य व्यक्तियोंने अपनी शुभ कामनायें भेजकर हमें कृतार्थ किया है। ये कामनायें हमारे उत्साहको बढ़ा रही हैं, और हमें यह जानकर सन्तोष हो रहा है कि हमारे कार्य्यका मूल्य देश समझता है और हमें देशकी सेवा करनेका अवसर मिल रहा है। हमें विश्वास है कि हमारे कार्य्यमें समस्त राष्ट्र सहयोग देगा। —सत्यप्रकाश

परिषद्‌के जन्मदाता

महामहोपाध्याय डा० गंगानाथ झा।
सभापति १९२८-१९३०

अध्यापक स्व० बा० रामदास गौड़।
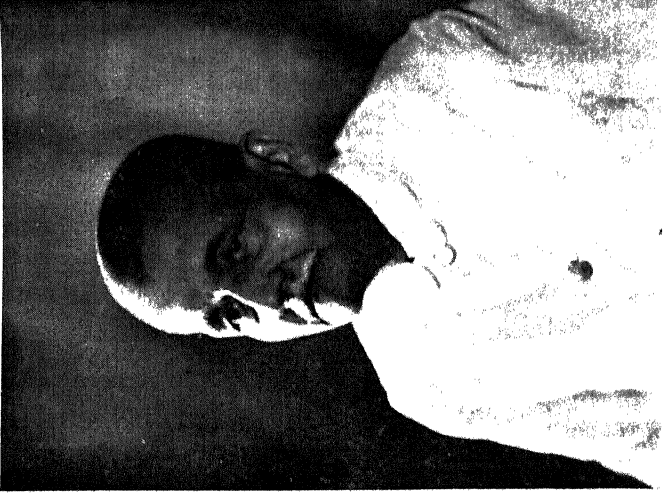
प्रोफेसर श्री सालगराम भार्गव।

सीमेंट, उसके गुण और बनाने की रीति

[ले० डा० सन्तप्रसाद टण्डन, एम० एस-सी०-डी० फिल०]

सृष्टिकी आदि अवस्थामें मनुष्य जानवरोंकी ही तरह जंगलमें बिना किसी मकानके रहता होगा। सृष्टिके विकासके साथ ही साथ मनुष्य जंगली अवस्था छोड़ कर धीरे-धीरे सभ्यताकी ओर अग्रसर हुआ। अपनेको शत्रुओंसे तथा प्राकृतिक कोपोंसे बचानेके लिए उसे किसी सुरक्षित स्थानकी आवश्यकता मालूम होनेपर उसने मकान बनानेकी विद्या सीखी। प्राथमिक अवस्थामें मकान जंगलकी लकड़ियों तथा पेड़ोंकी पत्तियोंके सहारे बने। बादमें मिट्टीके मकान शुरू हुये और फिर उसके बाद पक्के ईटोंके मकान बनाना मनुष्यने सीखा। पक्के मकानोंके लिए ऐसे जुड़ाईके मसालेकी आवश्यकता जो मकानको मज़बूत बनाये रखे उसी समयसे शुरू हुई होगी। जब किसी चीज़की आवश्यकता पड़ती है तभी मनुष्यको उसे मालूम करनेकी प्रेरणा भी होती है। इसी नियमके अनुसार जुड़ाईके मसालेकी भी खोज धीरे-धीरे हुई। इस बातका निश्चित रूपसे पता लगाना कि मनुष्यने कबसे जुड़ाईके मसालेका प्रयोग शुरू किया बड़ा मुश्किल है। किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि जबसे मनुष्यने इतिहास लिखना शुरू किया उससे बहुत काफी पहलेसे ही इस चीज़का किसी न किसी रूपमें इस्तेमाल होना शुरू हो गया था। साइप्रस द्वीपके एक मन्दिरके भग्नावशेषको देखनेसे यह साफ मालूम होता है कि उसके पत्थरोंकी जुड़ाईमें चूनेका मसाला अवश्य ही इस्तेमाल किया गया था। यह मन्दिर संसारके सबसे अधिक पुराने भग्नावशेषोंमें बतलाया जाता है।

पुराना इतिहास—ईजिप्टके निवासी चूनेके बजाय अधफुंके जिप्सम (खटिकम् गन्धेतका खनिज) का प्रयोग जुड़ाईके लिए करते थे। पिरामिडमें जो ४ हजार वर्ष पहलेके बने हुये समझे जाते हैं इसी मसालेका प्रयोग हुआ है। रोमके पुराने निवासियोंने यह मालूम किया था कि ज्वालामुखीकी राख तथा चूनेका मिश्रण पानीके अन्दर कड़ा पड़ जाता है। इस प्रकारका मिश्रण उन इमारतोंकी जुड़ाईके लिए जिनको पानीके अन्दर रहना था उन दिनों इस्तेमाल किया गया। रोमकी पुरानी प्रसिद्ध इमारतोंके बनानेमें (जैसे पैनथियान, कैराकोलाका स्नानघर आदि) इसका प्रयोग हुआ है। रोमकी सभ्यताके बाद १८ वीं शताब्दीके अन्त तकके कालमें कोई विशेष नवीन खोज इस ओर हुई नहीं मालूम पड़ती। आज कलकी सीमेंट बनानेकी पद्धतिकी नींव इसी शताब्दीके अंतमें डाली गई।

स्मेटन नामक एक अंग्रेज़ इंजीनियरने प्रथम बार इस सम्बन्धकी खोजकी ओर सन् १७५६ में ध्यान दिया। उसको एडीस्टोन लाइटहाउस (रोशनी घर) बनानेके लिए ऐसे मसालेकी जरूरत थी जो पानीके अन्दर तुरन्त मज़बूती पकड़ ले। अपने प्रयोगोंके सिलसिलेमें उसने मालूम किया कि जो चूनेका पत्थर जितना अधिक मिट्टी मिश्रित होता है उसको फूंकनेसे उतना ही मजबूत जुड़ाईका मसाला तैयार होता है। सन् १८२४ में एस्पडीन नामक अंग्रेज़ने चूनेके पत्थर तथा मिट्टीके मिश्रणको फूंकनेसे तैयार हुये मसालेको पोर्टलैंड सीमेंट नाम दिया। इंगलैंडमें पोर्टलैंड नामक स्थानका पत्थर बहुत मज़बूत और अच्छा समझा जाता है। एस्पडीनने इस नये मसालेकी बनी हुई इमारतोंको पोर्टलैंड स्टोनकी ही मज़बूतीका समझ कर इसके लिए पोर्टलैंड सीमेन्ट नाम चुना।

पोर्टलैंड सीमेन्ट मुख्य रूपसे चूनेके सिलीकेट-तथा चूनेके एल्यूमिनेटोंका एक मेल है जो चूनेके पत्थरके साथ उचित मात्रामें मिट्टी मिला कर फूंकनेसे बनता है। तापक्रम करीब-करीब द्रवाङ्कतक पक्का

जाता है। फूंकनेके बाद जो गोलियें इस मिश्रणसे तैयार होती हैं उन्हें क्लिनकर कहते हैं और इनको लगभग ४-५ फी सदी जिप्समके साथ मिला कर बहुत महीन पीस देनेसे सीमेन्ट तैयार हो जाती है।

सीमेन्ट पानीकी उचित मात्राके मिलानेपर पहले जमती है और फिर कड़ी हो जाती है। चूने और इसमें फर्क यह है कि सीमेन्ट पानीके अन्दर ही कड़ी हो जाती है और चूनेकी तरह इसमें कड़ापन या मज़बूती लानेके लिए कर्बन द्विओषिदकी आवश्यकता नहीं पड़ती। इसकी घुलनशीलता पानीमें बहुत कम है और इस कारण यह उन जगहोंमें इस्तेमाल करनेके लिए जो या तो पानीके अन्दर रहनेवाले हों या जिनका संसर्ग पानीसे अधिक होता हो बहुत उपयुक्त है। ऐसी जगहोंमें चूना बेकार रहता है।

सीमेन्टका रासायनिक रूप—सीमेन्ट वास्तवमें क्या रासायनिक पदार्थ है इस विषयपर बहुत दिनोंसे प्रकाश डालनेका प्रयत्न रसायनज्ञ करते आ रहे हैं। किन्तु इतनी सब खोजोंके बाद भी कोई एक सर्वमान्य निश्चित विचार इस सम्बन्धका अभीतक नहीं हो पाया है। भिन्न-भिन्न प्रयोगोंके आधारपर वैज्ञानिकों ने भिन्न-भिन्न मत प्रकाश किये हैं।

सीमेन्टमें ये यौगिक मिलते हैं—द्विखटिकम तथा त्रिखटिकम् सिलीकेट और त्रिखटिकम् एल्यूमिनेट तथा कुछ चूने तथा लोहेकी ओषिदके यौगिक जिनका अभी तक ठीकसे पता नहीं लगाया जा सका है। वैज्ञानिकों ने इन यौगिकोंको शुद्ध रूपमें बनाकर इनके गुणोंका अध्ययन करनेका प्रयत्न किया है। कुछ लोग इस बातमें अब भी संदेह करते हैं कि त्रिखटिकम् सिलीकेटका यौगिक सीमेन्टमें रहता है। वे ऐसा समझते हैं कि द्विखटिकम् सिलीकेटकी आवश्यकतासे अधिक वर्तमान रहनेवाली खटिकम् ओषिद द्विखटिकम् सिलीकेटमें ही ठोस-घोलकी दशामें रहती है। अधिकतर लोगोंका यही मत है कि पोर्टलैन्ड सीमेन्टमें त्रिखटिकम् सिलीकेट तथा त्रिखटिकम् एल्यूमिनेट्के यौगिक एक दूसरेमें ठोसकी दशामें ही घल कर एक ठोस घोल बनाते हैं।

इस सम्बन्धमें बेट्स और फिलिप्सके प्रयोग बहुत महत्वके हैं। उन लोगोंने सीमेन्टमें पाये जानेवाले हर एक यौगिकको अलग शुद्ध रूपमें बनाकर उनपर अलग-अलग पानीके प्रभावका अध्ययन किया। उन यौगिकोंके परस्परके भिन्न-भिन्न मिश्रणपर भी पानीके प्रभावकी जांच की। इनके अतिरिक्त उन्होंने कम चूना—अधिक सिलीका, साधारण चूना-सिलीका तथा अधिक चूना-कम सिलीकाके मिश्रणसे, भिन्न-भिन्न सीमेन्ट तैयारकीं और उनपर भी पानी आदिके प्रभावको देखा। उनके प्रयोगोंसे यह सिद्ध हुआ कि सीमेन्टमें कड़ापन तथा मज़बूती लानेवाले केवल त्रिखटिकम् तथा द्विखटिकम सिलीकेट हैं। एल्यूमिनेट यौगिक केवल एक द्रावक (फलक्स) का कार्य करते हैं। इनके अनुसार त्रिखटिकम् एल्यूमिनेट बहुत शीघ्र पानीमें उद्-विश्लेषित हो जाता है। इस क्रियामें बहुत ताप पैदा होता है; यहाँ तक कि मिश्रण उबलने लगता है। यह यौगिक पानीके साथ बहुत मुलायम तथा कुछ पतले रूपमें रहता है। २४ घंटोंके अन्दर इनकी जो कुछ मज़बूती होती है वह पहुँच जाती है, किन्तु यह मज़बूती इतनी नहीं होती कि मकान बनानेके काममें यह लाया जा सके।

द्विखटिकम् सिलीकेट साधारण रूपसे नहीं जमता। यह उद्-विश्लेषित भी बहुत धीरे होता है और शुरूके दिनोंमें इसमें कुछ भी मज़बूती नहीं मालूम होती। अधिक दिनों बाद यह मज़बूत हो जाता है। ऐसी सीमेन्टमें जिनमें मज़बूती देरमें आती है सम्भवतः यही यौगिक अधिक मात्रामें वर्तमान रहता है।

त्रिखटिकम् सिलीकेटमें सीमेन्टके करीब-करीब सब ही गुण मौजूद रहते हैं। यह ७ दिनोंके अन्दर ही पूरी मज़बूती पकड़ लेता है। त्रिखटिकम् एल्यूमिनेट मिलानेपर त्रिखटिकम् सिलीकेटकी मज़बूती घट जाती है और यह शीघ्र ही जम भी जाता है। जिप्सम मिलानेपर जमनेके कालमें वृद्धि हो जाती है।

त्रिखटिकम् तथा द्विखटिकम् सिलीकेटों और त्रिखटिकम् एल्यूमिनेट मिलानेपर सीमेन्टके प्रायः सब ही गुण पूरी तौरसे आ जाते हैं।

सीमेन्ट मिश्रण या स्लरी

एक अच्छी सीमेन्टमें निम्न लिखित चीज़ें लगभग निम्न लिखित मात्रामें पायी जाती हैं !

सिलिका	(शै ओ $_2$)	२२·० प्रतिशत
एल्यूमिना	(स्फ$_2$ ओ$_3$)	७·५ ,,
लोहम् ओषिद	(लो$_2$ ओ$_3$)	२·१ ,,
खटिकम् ओषिद	(ख ओ)	६२·० ,,
मगनीसम् ओषिद	(म ओ)	२·५ ,,
गन्धक त्रिओषिद	(ग ओ$_3$)	१·५ ,,

दो अच्छी सीमेन्टोंके विश्लेषण नीचे दिये जाते हैं :

	१		२
सिलिका	२०·२	प्रतिशत	२०·८२३
एल्यूमिना	६·५७	,,	६·४५
लोहम् ओषिद	२·१०	,,	२·८
खटिकम् ओषिद	६४·७१	,,	६४·९९
मगनीसम् ओषिद	०·९९	,,	१·३०
गन्धक त्रिओषिद	·२·२	,,	२·२३
गरम करने पर-निकलनेवाले पदार्थ	२·५२	,,	१·९२

कोई भी ऐसे पदार्थ जिनके मिश्रणको ऊँचे तापक्रमपर गरम करनेके बाद जो पदार्थ बने उसमें ऊपर लिखी चीज़ें ऊपर दी हुई मात्राके आस पास मौजूद हों तो वैसे पदार्थ सीमेन्ट बनानेके काममें आ सकते हैं।

सीमेन्ट बनानेके लिए अधिक चूनावाले किसी पदार्थको किसी अधिक सिलीकावाले पदार्थके साथ जिसमें एल्यूमिना तथा लोह ओषिद भी उचित मात्रामें मौजूद हों ठीक अनुपातसे मिलाकर लगभग १४०० श पर गरम किया जाता है। मटरके दानेसे लेकर अखरोटके आकारकी गोलियें बनती हैं जिन्हें किलंकर कहते हैं। ये गोलियें हरापन लिये हुये काले रंगकी होती हैं और बड़ी कड़ी होती हैं। इनको लगभग ४ प्रतिशत जिप्समके साथ मिलाकर महीन पीसा जाता है। यही महीन पिसी हुई चीज़ सीमेन्ट है।

सीमेन्ट तैयार करनेके लिये ये खनिज पदार्थ प्रयोगमें लाये जाते हैं !—

खटिकम् ओषिदवाले पदार्थ	सिलिका और एल्यूमिना-वाले पदार्थ
चूनेका पत्थर	मिट्टी
चूर खड़िया	स्लेट
सीपी आदि	लोहेकी अंगीठियोंकी नीचे बची हुई मैल
सीमेन्ट-पत्थर	

साधारण रीतिसे हिन्दुस्तानमें चूनेके पत्थर तथा मिट्टीके मेलसे ही सीमेन्ट अधिक तैयार होती है। पत्थरमें लोह ओषिद (लो$_2$ ओ$_3$) का अंश ४ फ़ी सदीसे अधिक नहीं होना चाहिए। मिट्टीमें सिलिका का अंश एल्यूमिनासे ३-४ गुणा अधिक होना चाहिए।

चूनेके पत्थर तथा मिट्टीके मेलसे सीमेन्ट बनानेकी विधिका पूरा वर्णन नीचे दिया जायगा। अन्य चीज़ोंसे सीमेन्ट बनानेमें किन्हीं एक दो क्रियायोंमें थोड़ा फर्क हो जाता है।

प्रथम जिस पत्थर तथा जिस मिट्टीको काममें लाना है उनका पूरा विश्लेषण किया जाता है। उनके विश्लेषणके आधारपर एक दूसरेको किस अनुपातमें मिलाना चाहिए इसका हिसाब लगाकर मिश्रण तैयार किया जाता है। नीचेके उदाहरणसे मिश्रण तैयार करनेका तरीका मालूम हो जायगा।

उदाहरणके लिए चूनेका पत्थर तथा मिट्टी नीचे प्रकारकी ली गई है—

	चूनेका पत्थर		मिट्टी	
सिलिका	०·४	प्रतिशत	५६·३	प्रतिशत
एल्यूमिना	०·२	,,	२१·४	,,
लोहम् ओषिद	०·३	,,	४·५	,,
खटिकम् ओषिद	५४·८	,,	२·४	,,
मगनीसम् ओषिद	०·७	,,	१·६	,,
गरम करनेपर निकलनेवाले पदार्थ	४३·२	,,	९·४	,,

क्षारीय पदार्थ	०'४	४'४	,,
	१००	१००	,,

यद्यपि सीमेन्टके यौगिकोंका पूरा निश्चित पता अभी तक नहीं है फिर भी साधारण अनुभवोंसे यह सिद्ध है कि सीमेन्टमें चूना, सिलिका और एल्यूमिनाकी मात्रायें जब ऐसे अनुपातोंमें रहती हैं जिनसे त्रिखटिकम् सिलीकेट तथा त्रिखटिकम् एल्यूमिनेट बननेकी संभावना अधिक रहती है तभी सीमेन्ट बहुत अच्छा बनता है। त्रिखटिकम् सिलीकेटमें चूना और सिलीकाका अनुपात २'८ और १ है। त्रिखटिकम् एल्यूमिनेटमें चूना तथा एल्यूमिना (ख ओः स्फ, ओ,) १'६५ : १ है। ऐसी सीमेन्ट जिसमें ये चीज़ें इन अनुपातोंमें मौजूद हों बहुत उत्तम आदर्श सीमेन्ट होगी। किन्तु अभीतक ऐसी सीमेन्ट नहीं बन पायी है। इसमें कई प्रकारकी दिक्कतें सामने आती हैं। साधारण रीतिपर ऊपरके अनुपातोंको २'७ और १'६ क्रमानुसार लेकर हिसाब लगाया जाता है।

हिसाब इस प्रकार होगा—

सिलिकाके लिए आवश्यक चूना—

मिट्टीका सिलिका × २'७ = ५६'३ × २'७ १५२'०१

चूनेके पत्थरका

सिलीका × २'७ ०'४ × २'७ १'०८

एल्यूमिनाके लिए आवश्यक चूना—

मिट्टीका एल्यूमिना × १'६ २१'४ × १'६ ३४'२४

चूनेके पत्थरका " × १'६ ०'२ × १'६ = ०'३२

एल्यूमिना कुल आवश्यक चूना १८७'६५

मिट्टीका चूना घटाओ = २'४०

१८[illegible]'५

इसको चूनेके पत्थरमें मौजूद चूनेसे भाग दो।

$$\frac{१८५'२५}{५४'८} = ३'४$$

अतः मिश्रणमें ३'४ भाग चूनेके पत्थरका और १ भाग मिट्टीका होना चाहिए। इस मिश्रणको स्लरी कहते हैं। ऊपरके हिसाबसे इस मिश्रणमें ये चीजें इस प्रकार रहेंगी—

सिलिका ०'४ × ३'४ १'३६ + ५६'३ = ५७'६६ ÷ ४'४ = १३'१

एल्यूमिना ०'२ × ३'४ = ०'६८ + २१'४ = २२'०८ ÷ ४४ = ५'०

लोहम् ओषिद् ०'३ × ३'४ = १'०२ + ४'५ = ५'५२ ÷ ४'४ = १'३

खटिकम् ओषिद् ५४'८ × ३'४ = १८६'३२ + २'४ = १८८'७२ ÷ ४'४ = ४२'९

मगनीसम् ओषिद् ०'७ × ३'४ = २'३८ + १'६ = ३'९८ ÷ ४'४ = ०'८

तप्त होनेपर कमी ४३'२ × ३'४ १४६'८८ + ९'४ = १५६'२८ ÷ ४'४ = ३५'५

क्षारीय पदार्थ ०'४ × ३'४ = १'३६ + ४'४ = ५'७६ ÷ ४'४ = १'३

इस स्लरीके हर एक पदार्थको $\frac{१००-कमी}{१००}$ = ०'६४५ से भाग देनेपर उस चीज़की प्रतिशत मात्रा सीमेन्टमें मालूम हो जायगी। अतः ऊपरकी स्लरीका सीमेन्ट इस प्रकार होगा—

सिलिका	२०'३	प्रतिशत
एल्यूमिना	७'८	,,
लोहम् ओषिद्	२'०	,,
खटिकम् ओषिद्	६६'५	,,
मगनीसम् ओषिद्	१'४	,,
क्षारीय पदार्थ	२'०	,,

स्लरीको फूंकनेमें जो कोयला प्रयोगमें आता है उसकी राख मिलनेसे ऊपर लिखी हुई मात्राओंमें थोड़ा फर्क पड़ जाता है। एल्यूमिना और लोह ओषिदकी मात्रायें कुछ बढ़ जाती हैं और चूनेकी थोड़ी घट जाती है।

मिश्रण तैयार करनेके दो भिन्न-भिन्न तरीकोंके अनुसार दोनों विधियोंको दो भिन्न नामोंसे पुकारा जाता है। पहली विधिमें मिश्रण बनानेमें लगभग ३५ से ४० फी सदी पानी मिलाया जाता है और यह बनी हुई स्लरी एक पतली कीचड़के रूपमें होती है। इस विधिको गीली-रीति कहते हैं दूसरी विधिमें मिश्रण तैयार करनेमें पानीका बिल्कुल मेल नहीं होता। मिश्रण महीन पिसी हुई मैदाके रूपमें रहता है। इसको शुष्क-रीति कहा जाता है।

सीमेंट बनानेकी गीली-रीति

यह विशेष कर उनपदार्थोंसे सीमेंट बनानेमें जो प्राकृतिक दशामें मुलायम तथा नमी लिये हुये होते हैं। अधिक उपयुक्त है।

पत्थरको छोटे टुकड़ोंमें तोड़ना—चूनेका पत्थर खदानसे बड़े भारी-भारी टुकड़ोंमें आता है। इनको एक दम चक्कीमें डालकर महीन नहीं किया जा सकता। पहले क्रशरमें इनके लगभग १ घन इंच बराबर टुकड़े किये जाते हैं। क्रशर बहुत तरहके होते हैं। अधिकतर स्विंग हैमर क्रशर व्यवहारमें लाया जाता है। इस क्रशरमें बीचकी मोटी मोटी धुरीके चारों ओर थोड़ी दूरपर लम्बे लोहेके मजबूत डंडे लगे रहते हैं। हर एक डंडेके अंतमें चक्कर घूम जानेवाले एक मजबूत लोहेका हथौड़ा लगा रहता है। नीचे एक मोटे लोहेका पत्तर (प्लेट) होता है जिसपर पत्थर एक गोलाकार घूमनेवाली चेन द्वारा पहुँचाया जाता है। इस पत्तर और हथौड़ेके बीचमें केवल इतनी जगह रखी जाती है कि जिससे १ इञ्चके करीबके टुकड़े बाहर जा सकें और बड़े टुकड़े रुक जायँ। क्रशरकी धुरी एक बिजलीकी मोटर द्वारा बहुत तेज़ीसे घूमती है और हथौड़े पत्थरोंपर चोटें करते हैं। आवश्यकतानुसार छोटे हो जानेपर पत्थर बाहर निकल कर एक लम्बी गोलाकार घूमनेवाली रबर-की पेटी (बेल्ट) पर गिरते हैं और उसके द्वारा पत्थर पीसनेकी चक्कीके ऊपर बने हुये बड़े गहरे समकोण आकृतिके कुओंमें जिन्हें "हापर" कहा जाता है डाल दिये जाते हैं। इन कुओंके नीचेका हिस्सा शुण्डाकार (कोन) होता है और उसमें एक छेद पत्थरको मिलमें पहुँचानेके लिए रहता है।
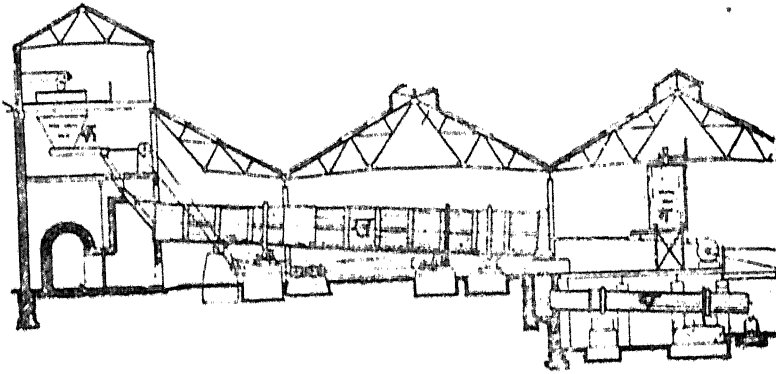
वाश-मिल—मिट्टीको अलग वाशमिलमें डालकर पानीके साथ स्लरीके रूपमें कर लिया जाता है। मिट्टीमें चूंकि कुछ चिपक रहनेका गुण रहता है, इस कारण पत्थरके साथ इसे क्रशरमें डालनेसे यह क्रशरके छेदको जिससे पत्थर बाहर निकलता है बंद कर दिया करती है। इसी दिक्कतके कारण इसे वाशमिलमें स्लरीके रूपमें बनाया जाता हैं। वाशमिल गोल लगभग ९-१० फुट गहरा तथा १३-१४ फुट व्यासका एक सीमेन्टका कुआँ सा रहता है। इसके बीचमें एक खंभा रहता है जिसके ऊपर एक बड़ा दाँत दार दार पहिया (गेयर) एक मोटर द्वारा घूमता है। इसके सहारे दो आमने-सामने बड़ी लोहेकी वजन-दार चौड़ी प्लेटें जो मोटी-मोटी लोहेकी जंजीरोंके बंधी रहती हैं घूमती हैं। मिट्टी तथा पानी कुंएमें पड़ता रहता है और ये लोहेके चक्के उन्हें अच्छी तरह मिला देते हैं और जो बड़े टुकड़े रहते हैं उन्हें छोटे कर देते हैं। यहाँसे एक जाली द्वारा मिट्टीका पतला स्लरी बाहर जाता है और फिर एक पंपके द्वारा लगभग ५० फुट गहरे और १० फुट व्यासवाले गोलाकार कुंओंमें जिनका नीचेका हिस्सा शुण्डाकार होता है भर दिया जाता है। इन कुंओं में मोटी नलियों द्वारा संकुचित हवा (कम्प्रेस्ड एयर) भेजनेका प्रबन्ध रहता है जिससे स्लरी बराबर ज़ोरसे हिलती रहती है और मिट्टी नीचे बैठने नहीं पाती। इन कुंओंको साइलो कहते हैं।

चित्र—सीमेंटका कारखाना

पिसाई—पिसाईका काम जिन चक्कियोंमें होता हैं उन्हें बाल और ट्यूब-मिल कहते हैं। ये मिलें मजबूत लोहेकी नलीके आकारकी लगभग ४९ फुट लम्बी तथा ८ फुट व्यास-की होती हैं। इनके आकारके कारण ही इन्हें ट्यूब-मिल कहा जाता है। इस पूरी मिलके अन्दर कई कमरे मोटी लोहेकी

जालियें लगाकर विभाजित कर दिये जाते हैं। हर एक कमरेसे दूसरे कमरेमें पिसा हुआ पत्थर इन जालियोंके छेदों द्वारा जाता है। जालियोंके छेद आवश्यकतानुसार महीन होते जाते हैं और अंतकी जालीका छेद इतना महीन रहता है कि १ वर्ग इंचमें लगभग १७२×१७२ छेद रहते हैं। हर एक कमरोंमें लोहेके वज़नदार गोले भिन्न-भिन्न नापके डाल दिये जाते हैं। मिल १ मिनटमें १६ बार घूमती है। मिलके घूमनेपर लोहेके गोले ऊपर नीचे उछलते हैं और पत्थरोंपर चोटें करते हैं। इन चोटोंसे पत्थर महीन पिस जाता है। इन मिलोंमें पत्थर तथा मिट्टीकी पतली स्लरी और पानी ठीक अनुतापमें जाते रहते हैं और महीन पिसनेके बाद जो स्लरी बाहर निकलती है वह एक बहती हुई कीचड़के रूपमें रहती है इस स्लरीमें लगभग ३५ से ४० फीसदीतक पानी रहता है। इस स्लरीको साइलोंमें भर दिया जाता है और दबी हवा द्वारा बराबर ऊपर नीचे चलाया जाता है। इस स्लरीका नमूना लेकर रसायनज्ञ उसमें मौजूद चूने आदिकी जांच करता है। जितने चूनेवाली स्लरी उसको बनानी होती है उसे बना कर वह एक बड़े गोल १४-१५ फुट गहरे तथा १०० फुट व्यासवाले तालाबमें डाल लेता है। एक बार अन्दाज हो जानेके बाद मिलमें पत्थर तथा मिट्टी जानेकी मिकदार इस प्रकार बांध दी जाती है कि ठीक स्लरी तैयार होनेमें अधिक दिक्कत नहीं पड़ती। ठीक स्लरी हमेशा उसी बड़े तालाबमें इकट्ठी होती रहती है और फिर यहींसे फूंकनेके लिए बड़े लम्बे गोलाकार लोहेकी भट्टीमें भेज दी जाती है।

फुकाई—स्लरी तैयार हो जानेके बाद अगली क्रिया इसको आवश्यक तापक्रमपर गरम करनेकी होती है। इसके लिए लम्बे नलीके आकारके गोलाईसे घूमनेवाले लोहेके भट्टे इस्तेमाल किये जाते हैं जिन्हें रोटरी किल्न कहते हैं। ये भट्टे १०० फुट लम्बाई तकके तथा ११-१२ फुट व्यासके होते हैं। भट्टेके अन्दर चारों तरफ एक पर्त ऐसी ईंटोंकी जुड़ाई होती है जो बहुत ऊँचे तापक्रमपर टूटने नहीं पाती। भट्टेके एक सिरेपर स्लरी भेजनेका रास्ता बना रहता है और इसी सिरेसे मिली हुई एक ऊँची चिमनी रहती है जिसके द्वारा फुकाईमें पैदा हुई गैसें तथा सीमेंटकी कुछ धूल बाहर निकलती है। भट्टेके दूसरे सिरेपर लोहेकी लगभग १ फुट व्यासकी एक नली लगी रहती है जिसके द्वारा महीन पिसा हुआ कोयला अन्दर भेजा जाता है। कोयले पीसनेकी मिल भी उसी प्रकारकी होती है जैसी पत्थर पीसनेवाली। कोयलेकी मिलसे एक बहुत तेज घूमनेवाले पंखेका सम्बन्ध रहता है जिसकी तेज़ हवासे कोयला मिलमें पहुँचाया जाता है। एक सिरेसे स्लरी आती है और दूसरे सिरेसे कोयला पहुँचकर उसी सिरेसे लगभग २० फुट अन्दर जलता है भट्टा बराबर एक या १½ मिनटमें १ चक्करकी रफ्तारसे घूमता रहता है। यह स्लरीवाले सिरेसे बराबर थोड़ा ढालके रूपमें खड़ा किया जाता है जिससे स्लरी आपसे आप आगे बढ़ती रहती है। जैसे-जैसे स्लरी आगे आती है इसका अधिक गरम हिस्सेसे सम्पर्क बढ़ता जाता है। क्रमानुसार इसका पानी पहले वाष्प बनकर निकलता है, फिर सूखी स्लरीमेंसे अधिक तापक्रमके कारण कर्बन द्विओषिद आदि पृथक होकर निकलने लगती है और केवल धातुओंकी ओषदें ही रहती हैं। उस हिस्सेमें आनेपर जहाँ कोयला जल रहा है ये स्लरीकी ओषदें लगभग गलाईकी दशा पर पहुँच जाती हैं। यहींपर खटिकम ओषिदका सिलिका तथा एल्यूमिनासे रासायनिक योग होता है और सीमेंटके यौगिक जिनका उल्लेख शुरूमें किया जा चुका है बनते हैं। यहाँसे जो चीज़ बनकर बाहर आती है वह मटरके दानेसे लेकर अखरोटके आकार तककी गोलियोंके रूपमें रहती है। इसको क्लिंकर कहते हैं। यह क्लिंकर बाहर निकलनेपर पानीके फुहारे द्वारा थोड़ा ठंडा किया जाता है और फिर एक बड़े गोदाममें पहुँचा दिया जाता है। इस गोदामसे आवश्यकतानुसार क्रेन द्वारा उठा कर यह पिसाईके लिये सीमेन्ट मिलके उसी प्रकारके हापरमें जैसा पत्थरका हापर बतलाया गया है डाल दिया जाता है। यहींसे यह मिलमें जाता है। एक दूसरे हापरसे जिप्सम लगभग ४ फीसदीके हिसाबसे क्लिंकर के साथही मिलमें जाता रहता है। मिलमें बहुत महीन पिसाई होती है। पिस जानेके बाद यही सीमेन्ट होती है और वह बड़े-बड़े साइलोंमें जैसा स्लरीके लिये बतलाया गया है भर दी जाती है और यहींसे बोरोंमें भर कर बाहर भेज दी जाती है।

सीमेन्ट बनानेकी सूखी-रीति—इस रीतिमें और गीली रीतिमें केवल इतनाही अन्तर है कि इसमें स्लरी तैयार करनेमें पानी बिल्कुल नहीं मिलाया जाता। पत्थर तथा मिट्टीको शुरूमें सुखाकर तब दोनोंको उचित अनुपातोंमें मिलाकर पीसते हैं। यह सूखा मिश्रण फुकाईके लिए भट्टेमें भेज दिया जाता है।

कुछ जगह ऐसा किया जाता है कि सूखी स्लरी बनानेके बाद उसमें लगभग ८ फ़ीसदी पानी मिलाकर टिकिये बना ली जाती हैं और फिर इन्हीं टिकियोंको भट्टेमें फूंका जाता है।

अन्य बाकी क्रियायें करीब एक ही सी दोनों रीतियोंमें रहती हैं।

सीमेन्टके गुणोंकी जांच—सीमेंटकी मज़बूतीके लिए कुछ बातोंका ध्यान रखना बहुत जरूरी है। सीमेंटमें त्रिखटिकम् ओषिद्का अंश जितना अधिक रहता है उतनी ही अधिक मजबूती सीमेंटमें आती है। महीन पिसाईके ऊपर भी मजबूती थोड़ी निर्भर होती है। अधिक महीन पिसी हुई सीमेंट उसी प्रकारकी मोटी पिसी हुई सीमेंटसे कुछ अधिक मजबूत होती है।

सीमेंटकी मजबूती तथा उसके अन्य गुणोंपर मकान आदि जो भी इमारत बनानेमें वह प्रयोग की जाती है उनकी मजबूती निर्भर करती है। थोड़ीसी खराबीसे सीमेंट इतनी अधिक ख़राब हो जाती है कि उसमें फिर मिट्टीके बराबर भी ताकत नहीं रह जाती। इसीलिए हर एक देशने अपने यहांके लिए सीमेंटके ख़ास-ख़ास गुणोंकी सीमायें निर्धारित कर दी हैं और जो सीमेंट उस सीमासे नीची रहती है वह अनुपयोगी बतला दी जाती है। हमारे यहाँ इंगलैंड द्वारा निर्धारित सीमाओंके हिसाबसे सीमेंटकी जांच की जाती है। ये सीमायें इस प्रकार हैं:—

महीन पिसाई—सीमेण्ट इतनी बारीक होनी चाहिए कि १७० × १७० छेद प्रतिवर्ग इंचवाली चलनीमें १५ मिनटतक हाथसे १०० ग्राम सीमेंटको चालनेके बाद १० ग्रामसे अधिक मोटी सीमेंट न बचे।

जमाई—लगभग २२ फ़ीसदी पानी मिलाकर सीमेंट को एक सांचेमें भर दिया जाता है और थोड़ी-थोड़ी देरमें एक सुई द्वारा जो वाइकट-सुई कहलाती है यह देखा जाता है कि सीमेंटका जमना शुरू हुआ या नहीं। जमना शुरू होनेपर सुई सीमेंटके अन्दर पूरी नहीं घुसती। इसका काल ३० मिनटसे कम नहीं होना चाहिए। सीमेंटके बिलकुल जम जानेका समय १० घंटेसे ज्यादा नहीं होना चाहिए।

मज़बूती—एक भाग सीमेंट तथा तीन भाग इसके लिए विशेष विलायतसे आनेवाली नियत बालू मिलाकर ८ फ़ीसदी पानीके साथ अच्छी प्रकार घोटकर खास सांचोंमें एक लोहेकी कन्नी द्वारा मजबूतीसे भर दिया जाता है। दूसरे दिन सूख जानेपर इन सांचोंमेंसे निकाल कर इन्हें पानीमें डाल दिया जाता है। ये ब्रिकेट्स कहलाते हैं। दो दिन बाद इनको इसकी विशेष मशीनों द्वारा खिंचावके दबावसे तोड़ा जाता है। जितने दबावपर यह टूटता है उतनी ही इसकी मज़बूती समझी जाती है। सीमेंटकी मज़बूती ३ दिनवाले ब्रिकेट्ससे ३०० पौंड प्रतिवर्ग इंच तथा ७ दिनमें ३७५ पौंड प्रतिवर्गइंचसे कम नहीं होनी चाहिए।

हिन्दुस्तानकी सीमेंट साधारणतः ५०० पौंड प्रति-इंचकी मज़बूतीको होती है।

सीमेंटका जमाव तथा कड़ापन—सीमेंटमें पानी मिलानेपर उद् विश्लेपणकी क्रिया शुरू होती है। इस क्रियाके फल स्वरूप जमाव तथा कड़ापन सीमेंटमें आता है।

शुरू-शुरूमें सीमेंटके कड़ापन तथा मजबूतीका कारण यह समझा जाता था कि पानीके साथ चूना सिमेंटसे अलग हो जाता है और फिर उसी पानीमें घुल जाता है। सीमेंटसे चूना अलग होनेकी क्रिया पानीमें चूना घुलनेकी क्रियासे अधिक तेज रहती है। उस समय अधिक चूना त्रिखटिकम् उदौषिद्के पानी मिले रूपमें रवा होकर जमने लगता है और एक जालसा बन जाता है। ये रवे अपने जालमें सीमेंटके अछूते रवोंको जकड़ लेते हैं और इस प्रकार एक मज़बूत आकार खड़ा हो जाता है।

आज कल ऐसा विश्वास किया जाता है कि सीमेंटमें पानी मिलानेपर ये चीजें बनती हैं, (१) छोटे ६-पहल, चपटे त्रिखटिकम एल्यूमिनेटके रवे (२) महीन

सुईके आकारके लम्बे एक-खटिकम् सिलिकेटके रवे। (३) एक-खटिकम सिलिकेटके कलोदोंके ढेर (४) बड़े ६ पहल खटिकम् उदौषिद्के रवे। लोह ओषिद् सिलिकाके साथ लोह सिलिकेट या चूनेके साथ त्रिखटिकम् फेराइट बनाते हैं।

सीमेंटका जमना—पहलवाले चपटे त्रिखटिकम एल्यूमिनेट तथा सुईके आकारके महीन लम्बे एक-खटिकम् सिलिकेटके रवोंके वर्तमान रहनेके कारण होता है। मज़बूती एक-खटिकम सिलिकेटके कलोदोंके बननेके कारण आती है। इन कलोदोंके कण खटिकम उदौषिद्के जाल में जमते हैं और सीमेंटके रवोंको मज़बूतीसे जकड़ देते हैं।

हमारे देशका एक सामान्य रोग

मन्थर ज्वर या टायफायड

(ले०—श्री स्वामी हरिशरणानन्द "वैद्य")

मन्थर ज्वर या मोतीझरा नामकी बीमारी इस समय समस्त भारतमें फैली हुई है और जिस प्रान्तमें देखो, इसका काफी प्रकोप दिखाई देता है। यह बीमारी प्रायः बालकोंको अधिक घेरती है। अन्य बीमारियोंकी अपेक्षा इसके प्रकोप द्वारा मृत्यु संख्या भी बहुत अधिक है। इसका प्रधान कारण जनताकी अनभिज्ञता और अन्ध विश्वास है, और कुछ डाक्टरों हकीमों तथा वैद्योंका भ्रम व भूलें इसमें सहायक होती हैं। हमने अनेक अवसरोंपर देखा है कि रोग समझनेमें डाक्टर, वैद्य और हकीम प्रतिशत ५० से अधिक स्थानोंमें भूल कर जाते हैं जिसका परिणाम रोगीकी मृत्यु होता है।

ये भूलें और भ्रम कैसे होते हैं, और उन्हें किस तरह समझा और देखा जा सकता है, यही इस लेखका मुख्य विषय होगा।

टायफायडमें मलेरियाका भ्रम—यद्यपि यह रोग अपना निश्चित लक्षण रखता है, और एक सप्ताहके भीतर ही अपने लक्षणोंसे स्पष्ट हो जाता है तथापि आरम्भमें ही अन्य रोगोंका भ्रम और अन्य रोगकी चिकित्सा प्रायः इसके लक्षणोंको स्पष्ट करनेमें बाधक होती है।

भारतमें जिस तरह इस बीमारीका प्रकोप बना रहता है उसी तरह मलेरिया विषमज्वर अथवा शीतज्वर नामके रोगका सब ओर प्रकोप देखा जाता है। वैद्य और डाक्टर रोगारम्भ कालमें अथवा यों कहिये कि पूर्वरूपकी स्थितिमें इस रोगको प्रायः विषमज्वर समझ लेते हैं। आयुर्वेदमें सन्तत और सतत नामके दो विषम ज्वरोंके भेद दिये गये हैं। यह भ्रमके कारण हैं। इन ज्वरोंके सम्बन्धमें उल्लेख है कि सन्तत ज्वर सात, दस व बारह दिन तक निरन्तर बना रहता है। इसी तरह सतत ज्वर भी कुछ कम हो कर फिर बढ़ता घटता है किन्तु १४ दिन तक बना रहता है। इन ज्वरोंका शास्त्रीय उल्लेख वैद्योंको इतना अधिक भ्रममें डालता है कि वह इसी भूलमें विषम ज्वरकी चिकित्सा आरम्भ कर रोगीको भयंकर स्थितिकी ओर पहुंचा देते हैं। कई वैद्य तो इससे भी अधिक भूल करते हैं कि मन्थर ज्वरको विषमज्वरके अंतरगत मानते हैं। मन्थर ज्वरको वे विषम ज्वरका ही एक भेद बताते हैं। और विषमज्वरकी ही चिकित्सा करते रहते हैं। जिसका परिणाम यह होता है कि रोग बिगड़ जाता है वास्तवमें विषमज्वर और मन्थर ज्वर दोनों ही भिन्न रोग हैं। इनके कारण भी भिन्न हैं और उन कारणोंसे प्रादुर्भूत विषाक्त शक्ति भी भिन्न हैं। यही नहीं, चिकित्सा भी एक दूसरेके बिलकुल विरुद्ध है। जो औषध या जो अनुमान विषम ज्वरके लिये अनुकूल पड़ते हैं वह औषध और वह अनुपान मन्थर ज्वरके बिलकुल विरुद्ध पड़ते हैं।

डाक्टरोंकी भूलें—जिस तरह वैद्य आरम्भमें ही भ्रममें पड़ जाते हैं, इसी तरह डाक्टर भी शीतप्रधान देशोंके मन्थरज्वर (टायफायड) का लक्षण अथवा जो उन्होंने अपने ग्रन्थोंमें पढ़ा मन्थर ज्वरका लक्षण इस मन्थर ज्वरमें न देखकर भारी भ्रममें पड़ जाते हैं।
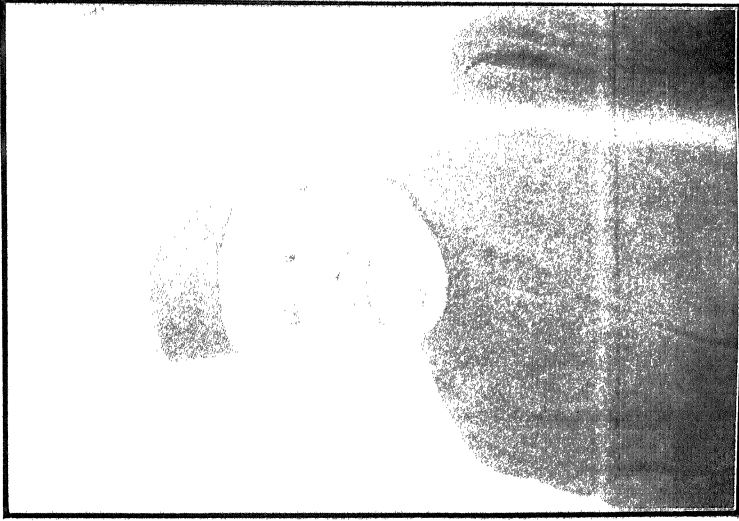
स्व० माननीय डा० सर सुन्दरलाल ।
प्रथम सभापति १९१३-१९१७

स्व० माननीय राजा सर रामपाल सिंह
सभापति १९१७-१९२०
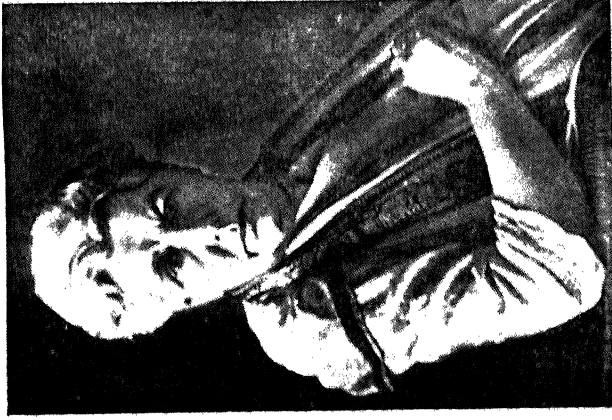
स्व० डा० एनी बीसेंट ।
सभापति १९२०-१९२१

माननीय डा० सी० वाई, चिन्तामणि ।
सभापति १९२२-१९२५

जिस ज्वरमें सप्ताहके पश्चात उदरपर गुलाबी रंगके धब्बे या चिंह न उत्पन्न हों—जो दबानेसे दब जानेवाले और छोड़ देनेपर फिर उभर आनेवाले न हों—उसे कोई भी डाक्टर टायफायड नहीं मानते। ग्रीवापर खशखाशवत् सूक्ष्म दोनोंका प्रादुर्भाव उनके मनमें मन्थर ज्वरके लक्षणोंमें दिया ही नहीं है। जिस किसी रोगीकी ग्रीवा या वक्षस्थलपर इस प्रकारके मुक्तादाने देखते हैं, कहते हैं यह तो प्रस्वेद जनक ग्रन्थियोंके शोथ मुक्त हो जानेके कारण उसके उभार बन जाते हैं। वह इन्हें मन्थर ज्वरके लक्षणोंमें कोई स्थान देनेके लिये तैय्यार नहीं। न वह ऐसे चिह्नयुक्त ज्वरोंको टायफाइड मानकर टायफायड की चिकित्सा ही करते हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि रोग बढ़ता चला जाता है और उनके किये कुछ नहीं बनता।

कई बार रक्त परीक्षामें भी बैसिलस टाइफोसिस नहीं देखे जाते। कई बार तो रोगारम्भके १०-१२ दिन तक विडाल परीक्षा द्वारा जो पुञ्जकिरण (एग्लुटिनेशन) होता है वह भी अवधिपूर्वके कारण नहीं दिखाई देता। कई बार तो पेराटायफायडके रोगाणु देखे जाते हैं। यह ऐसे कारण हैं जिनसे बड़े-बड़े डाक्टर चक्करमें आ जाते हैं और वह चिकित्सामें भयंकर भूलें करते हैं। इसीलिये रोग अन्य और चिकित्सा अन्य होनेके कारण रोगीकी स्थिति प्रतिदिन बिगड़ती चली जाती है।

मन्थर ज्वरके लक्षण

यह स्मरण रखना चाहिये कि यह संचारी रोग है। और बच्चोंमें बहुत जल्दी फैलता और उनपर इसका असर होता है। यह कीटाणु जन्य रोग है। इसके कीटाणु प्राय: मल, मूत्र, प्रस्वेद, स्पर्श, द्वारा व मक्खी द्वारा भोजनसे व थूककणोंके श्वास पथमें पहुँच जानेपर उनके द्वारा दूसरोंमें फैल जाता है। कीटाणु जब शरीरमें पहुंच जाते हैं तो वह रक्त लसिका यकृत प्लीहा, क्षुद्रान्त्र आदि में पहुंचकर बढ़ता है और जब तक इसके विषका संक्रमण शरीरमें नहीं होता तब तक किसी प्रकार रोगका चिह्न दिखाई नहीं देता। विष संक्रमणके साथ ही ज्वरारम्भ शिर:शूल, अंगमर्द, कब्ज या अतिसारके चिह्न दिखाई देते हैं। कइयोंको साधारण शीत लगकर या रोमाञ्चके पश्चात् ज्वर हो जाता है जिसका वेग धीरे-धीरे बढ़ता जाता है। कईयोंको आरम्भसे ही १०२-१०३ ज्वर हो जाता है। इस स्थितिमें ज्वरको देखकर प्राय: वैद्य विषमज्वरका अनुमान लगा लेते हैं, क्योंकि ज्वरारम्भमें मन्थर ज्वरके कोई विशेष लक्षण परिस्फुट नहीं होते। तीन चार दिनके पश्चात् जिह्वापर श्वेत वर्णकी मलिनता आती है तथा जिह्वाके किनारे व अग्र भाग अधिक लालिया युक्त होते हैं।

यदि बालक इस ज्वरसे पीड़ित है तो उसमें एक विशेष लक्षण ऐसे समय और स्फुट होता है कि वह तन्द्रामें अधिक पड़ा रहता है जगाओ, बुलाओ तो जरा आंखें खोल कर फिर बन्द कर लेता है। मानो वह कहता है, हमें इसी स्थितिमें पड़ा रहने दो। १५-१५ वर्ष तकके बालकोंमें यह स्थिति प्रतिशत ९९ बालकोंमें पाई जाती है और रोगारम्भके प्रथम सप्ताहमें ही अधिक रहती है। जब सप्ताह समाप्तिका समय समीप होता है और मुक्तावत्दानेवाले होते हैं उन दिनों ज्वर और व्याकुलता बढ़ जाती है। प्राय: बालक बहुत बेचैन रहता है। यह स्थिति यदि दाने न निकलें तो तीन चार दिन तक देखी जाती है। ऐसे समयोंमें मुक्तावरोधका कारण प्राय: शीत गुण प्रधान औषधियोंका सेवन होता है। जो वैद्य डाक्टर या हकीम, हिम, फांट, शर्बत, अर्कका उपयोग करते हैं या अन्य शीतलोपचार करते हैं उनके उक्त उपचारसे सप्ताहान्तमें जो शरीर व्यापक विष प्रस्वेद मार्गसे बाहर आनेवाला होता है वह, रक्तस्थ ही बना रहता है। जिसका परिणाम भयंकर हो जाता है। यहींसे ही इस ज्वरकी अवधि बढ़ जाती है। २१ दिनकी अपेक्षा यह अवश्य ही अधिक समय ले लेता है। यदि ऐसे समयोंमें रोगीका उदर अधिक विकारी बना रहा निरंतर उसे दूध दिया जाता हो तो इसका परिणाम यह होता है कि ज्वरकी मात्रा १०४-१०५ तक पहुँच जाती है। ऐसे समयोंमें रोगीकी नाभिके आसपास दबानेसे वह अधिक दर्द मानता है। प्राय: उदरमें वायुकी उपस्थिति पायी जाती है रोगी अधिक व्याकुल रहता है, जब उत्तापकी मात्रा १०४ अंशसे अधिक बनी रहती है। प्रभातके समय जब कि

प्रायः इस रोगमें ज्वरकी मात्रा बढ़ जाया करती है और मध्याह्नकालके पश्चात् ही बढ़ती है और रात्रिको ९-१० बजे तक वह बढ़ी हुई स्थितिमें बनी रहती है, तत्पश्चात घटने लगती है। यह ज्वरका चढ़ाव उतार साधारण दशामें ही रहता है किन्तु, जब मुक्तावरोध हो जाय उत्तापकी मात्रा १०४ के लगभग प्रभातमें हो तो मध्याह्नके पश्चात् अवश्य ही १०५ या इसके ऊपर तक पहुँचनेकी निश्चित सम्भावना होती है। यही दशा रोगीमें सन्निपातिक स्थिति उत्पन्न करती है। अर्थात् जब उत्तापकी मात्रा १०४ अंशसे अधिक बनी रहती है तो वह शरीरके लिये असह्य होती है। इतने अधिक उत्तापका प्रभाव सबसे अधिक मस्तिष्क, फुफ्फुस, व यकृतादिपर होता। शरीरकी धमनियाँ उत्ता-पधिक्यसे फैल जाती हैं, रक्त-चाप बढ़ जाता है और उस चापका प्रभाव फुफ्फुस तथा मस्तिष्कपर अधिक होता है। मस्तिष्कपर इसका प्रभाव पड़ते ही रोगी मूर्छावस्थाकी ओर जाने लगता है। प्रलाप और हाथ पैर अव्यवस्थिति गति चलने लगते हैं। फुफ्फुसपर इसका प्रभाव बढ़ते ही उसमें प्रदाहके लक्षण (न्यूमोनियाके लक्षण) परिस्फुट होते हैं और रोगी भयंकर स्थितिमें चला जाता है।

जब यह स्थिति उत्पन्न हो जाती है तो डाक्टर पूर्व रोगकी चिकित्सा छोड़कर विद्यमान उपद्रवोंकी चिकित्सा करने लगते हैं। वैद्योंके भी हाथ पैर फूल जाते हैं और वह तीव्र रसोंका उपयोग थोड़ी-थोड़ी देरके बाद निरंतर करने लग जाते हैं। हकीम बिचारे तो इस स्थितिमें कुछ भी सफलता प्राप्त नहीं कर पाते, वह इस स्थितिको सँभाल नहीं सकते। यदि रोगी दूसरे सप्ताहकी अवधि तक इस स्थितिमें लटका हुआ चला जाता है। और चिकित्सा किसी रस वैद्य की है तो रसोंका प्रभाव कभी-कभी बहुत अच्छा पड़ता है। रस उष्णवीर्य्या होनेके कारण वह रक्तस्थ विषको पुनः दूसरे सप्ताहमें विसर्जनके समय सहायता देते हैं। इससे अगले सप्ताह मुक्तावत् दाने पेट कण्ठ व वक्षस्थलपर प्रकट होते हैं। उस समय भी चिकित्सक इनको देख ले या परिवार वालोंकी दृष्टि इन मुक्तावत् दानोंकी ओर पड़ जाय तो रोग विनिश्चय हो जाता है। डाक्टरोंको यह दाने दिखलाई भी दे जायं तो वह इन्हें टाइफायडका लक्षण न माननेके कारण इनको उपेक्षाकी दृष्टिसे देखते हैं और वह अन्य उपद्रवों या ज्वरोंकी चिकित्सामें लगे रहते हैं जिसका परिणाम बहुत ही बुरा होता है।

जब प्रथम सप्ताहके अन्तमें मुक्ता नहीं निकलते रुक जाते हैं और दूसरे सप्ताहके अन्तमें भी नहीं निकलते या बहुत कम निकल कर रह जाते हैं, तो इसका परिणाम यह होता है कि वह ज्वर उतरनेमें ही नहीं आता। वैद्य और डाक्टर सिरसे पैर तकका ज़ोर लगाते हैं पर ज्वर मानो कहता है कि हम तो अब रोगीके साथ ही जाने-वाले हैं।

अन्य रोगोंका भ्रम

ऐसी स्थितिमें डाक्टर और वैद्योंको प्रायः क्षयका भ्रम उत्पन्न हो जाता है। उसका कारण निम्न होता है। यह निश्चित बात है कि जब प्रथम सप्ताहान्तमें मुक्ता न निकलें और ज्वरका वेग बढ़ जाय तो शरीरके आन्तरिक अंग अद्धिघातित हो जाते हैं प्रायः यकृत प्लीहा फुफ्फुस, मस्तिष्क आदि अंग अवश्य ही कुछ न कुछ विकृतिको प्राप्त हो जाते हैं। यदि फुफ्फुस या श्वास पथकी कुछ भी विकृति हो तो इसमें कास अवश्य ही आने लगता है। कासको ज्वरके साथ देखकर प्रायः क्षय या राज यक्ष्माका भ्रम हो जाता है। बहुतसे डाक्टर जो थूक व रक्त परीक्षा नहीं कराते, इस स्थितिको देखकर प्रायः क्षयकी प्रारम्भिक स्थिति बना देते हैं। ऐसे समयोंमें ज्वर भी वेगवान् नहीं चढ़ता। प्रत्युत सुबह और शामके उत्तापमें २—३ अंशका अन्तर पड़ा करता है। प्रायः ज्वर १०१-१०२ कभी-कभी तीन भी देखा जाता है। खांसी साथमें होती है। शरीर धीरे-धीरे क्षीण होता चला जाता है। बच्चोंमें तो इस स्थितिमें आकर शरीर इतना क्षीण होता है कि मांस शरीरपर रहता ही नहीं। शरीरकी तमाम त्वचामें सिकुड़नकी तहें दिखाई देने लगती हैं। बालक सूख कर कांटा बन जाता है। बच्चोंकी इस स्थितिको देख कर अनेक वैद्योंने इस स्थितिका एक विशेष नाम रख छोड़ा है। वह इसे माता, मसान, छाया पड़ना सूखाकी बीमारी आदि नाम देते हैं। उनके मतमें यह स्थिति ग्रह दोषके कारण उत्पन्न होती है।

इसीलिये वह इसका ग्रहशन्ति टोटका, टोनासे करनेका प्रयत्न करते हैं। घरवाले स्वयम् भी ऐसी हालत देख कर इसे एक विशेष रोग ही समझते हैं। कई वैद्य इसे क्षयका भेद (धातु शोष) ही मानते हैं। इस तरह भूल और भ्रमके कारण रोगीकी स्थिति बिगड़ जाती है और वह असध्यावस्थाको प्राप्त कर सदाके लिये संसारसे प्रयाण कर जाता है।

इसके एक दो साधारण उदाहरण देना अनुपयुक्त न होगा।

इसी अगस्तके महीने मैं मसूरी चला गया। उन्हीं दिनों मेरे एक निकटतम मित्रके जामाता मन्थर ज्वरसे प्रपीड़ित हो गये। उनके घर अभी केवल ५ मासकी एक बालिका थी। उनकी उस बीमारीकी दशामें उस छोटी लड़कीको उनके साथ कभी-कभी लिटा देते थे। बीमारीकी दशामें उनके पास खेलती भी रहती थी। बीमारीका वह आप तो स्वस्थय होने लगे उधर लड़कीको ज्वर हो गया। डाक्टरोंको दिखाया गया। डाक्टर कहने लगे इसे साधारण (मामूली) बुखार है। मेरे पास जब इसकी सूचना आई, मैंने उन्हें परामर्श दिया कि यदि ज्वर एक सप्ताह तक न उतरे तो मन्थर ज्वर होनेकी सम्भावना है। उस लड़कीकी डाक्टरी चिकित्सा होती रही। १५ दिन हो गये, ज्वर न टूटा, स्थिति खराब होती चली गई वैद्यको दिखलाया. वैद्य कहने लगे पित्त बढ़ा हुआ है, गर्मीकी अधिकता है। अभ्रक भस्म, सत् गिलोय, वंशलोचन आदिका सम्मिश्रण देते रहे स्थिति बिगड़ता ही चली गई। लड़कीको लेकर उसकी माता अपनी ससुरालसे पिताके घर आ गई। यहां एक वैद्यने बतलाया कि इसे तो मन्थर ज्वर है। हालत बहुत बिगड़ चुकी थी। दो महीनेमें लड़की सूख कर कांटा हो गई, शरीरपर मांसका कहीं चिह्न तक न रहा। औरतें टोना, टोटका करानेमें लगीं। किन्तु, वैद्य जी निदानमें तो ठीक रहे चिकित्सामें उन्हें सफलता न मिली। इतनेमें मैं भी मसूरीसे आ गया। लड़कीको देखकर डाक्टरों-वैद्योंकी भूलपर पश्चात्ताप हुआ। अन्य वैद्यों या डाक्टरोंकी चिकित्सा छुड़ाकर स्वयम् मन्थर ज्वरकी चिकित्सा करने लगा। औषध देनेके दूसरे ही दिन गलेसे लेकर समस्त पेट व पीठ तक मुक्तावत् दानोंका प्रादुर्भाव हुआ। वह दाने आज पन्द्रह दिनसे बीच-बीच में थोड़े बहुत निकलते व अदृश्य होते रहते हैं। अब उस बालिकाकी स्थिति ठीक होने लग रही है। ज्वर भी जाता रहा, अन्य उपद्रव भी मिट गये। शरीर भर रहा है। और दस पन्द्रह दिनमें उसके बिलकुल ठीक हो जानेकी सम्भावना है। इस समय मेरे पास काफी मन्थर ज्वरके रोगी हैं। उनमें एक लड़की १६ वर्ष की ऐसी है जिसे ६ माससे ज्वर है, साथमें खांसी है, फेफड़े खराब हैं यकृत भी बढ़ा है। चल फिर नहीं सकती, इतनी कृशा है। कई डाक्टरोंने मिलकर उसको देखा है। सबकी सम्मति है कि इसको राजयक्ष्मा या तपेदिक है। मेरे पास उसे लाया गया। मैंने उसके लक्षणोंको देख कर बतलाया कि इसको तपेदिक नहीं। मन्थर ज्वर बिगड़ा हुआ है। इसका प्रमाण मैं एक सप्ताहकी चिकित्सामें दे दूंगा। मेरे पास सबसे बड़ा प्रयोग यही है कि यदि रोगीको मन्थर ज्वर है तो उसको हमारी चिकित्साके दो चार दिन बाद मन्थर ज्वरके वह मुक्तावत् दाने अवश्य निकलने चाहिये। इस लड़कीको तीसरे दिन ही वह मुक्ता गलेसे लेकर समस्त उदर तक बल्कि जंघा भाग तक दिखाई दिये।

मेरे एक मित्र डाक्टर एम० बी० बी० एस० हैं, उन्होंने भी देखे तो कहने लगे इस प्रकारके मुक्ता अन्य कई ज्वरोंमें निकल सकते हैं, यह कोई टाइफायडका चिह्न नहीं। वह अभी भी इसे टाइफायड स्वीकार नहीं करते। वह मुक्ता प्रादुर्भावको इस रोगका कोई मुख्य लक्षण माननेको अब भी तैयार नहीं। हम कहते हैं कि सिवाय मन्थर ज्वरके अन्य किसी भी ज्वरके रोगीमें इस प्रकारके मुक्तावत् दाने प्रादुर्भूत नहीं होते। यदि होते हों तो दिखलाओ ? वरना हम जिस ज्वरीमें मन्थरकी सम्भावना बतलावें उसमें चिकित्सा द्वारा प्रादुर्भूत हुवे दिखलावेंगे। वह कहते हैं तुम्हारी औषधसे ऐसा हो जाता होगा।

डाक्टर साहब उस रोगीको नित्य देखते हैं जिसे वह तपेदिक बतलाते थे, वह अब ठीक हो रही है। उसकी बहुत सी बीमारीकी अलामतें दूर हो चुकी हैं, ज्वरांश भी अज्ञात दशामें रह गया है, फेफड़े साफ होगये हैं,

खांसी बेमालूम है। यह सब देखते हुये यह तो मानते हैं कि तुम्हारी चिकित्सासे उसे लाभ हो रहा है पर वह यह नहीं मानते कि इसे टाइफायड है। हम कहते हैं कि यह क्षयका रोगी नहीं, इसे क्षय होता तो यह इस तरह इतनी द्रुतगतिसे राजी न होता। पर उनके दिमागमें तो विलायतका टाइफायड घुसा हुआ है। न वह निकले न उन्हें विश्वास हो।

यह शिक्षा तथा अविचारकी इतनी भयंकर भूलें हैं जो समयकी स्थिति तक उन्हें पहुँचने ही नहीं देतीं और उनकी इन भयंकर भूलोंका परिणाम बिचारे रोगोंको भुगतना पड़ता है। इस अन्ध परम्परामें वैद्य व डाक्टर पड़कर न जाने कितने लाखों प्राणियोंकी जानें ही लेते होंगे। पर उनमें अनुभव व विचारका अभाव उन्हें इसकी सत्यताको परखनेका अवसर ही नहीं देता। अन्तमें हम डाक्टरों व वैद्योंसे प्रार्थना करेंगे कि डाक्टर डाक्टरोंकी और वैद्य वैद्योंकी एक बड़ी कान्फ्रेन्स बुलावें तथा भारत-में फैले इस मन्थर ज्वर या टाइफायड ज्वरके लक्षणोंका रूप निश्चित करें जिससे वैद्यों व डाक्टरोंका भ्रम व भूलें जो इस रोगको न समझनेमें होती हैं वह दूर हों तो लाखों बच्चों व बड़ोंकी अमूल्य जानें बच सकती हैं।

मन्थर ज्वर प्राचीन रोग नहीं

मन्थरज्वर दीर्घकालसे चली आई बीमारियोंमें नहीं। इसीलिये इसका उल्लेख किसी प्राचीन ग्रन्थोंमें नहीं मिलता। योग रत्नाकर जिसकी रचना काल कोई ४०० वर्षके लगभग है उसके समयमें आयुर्वेदज्ञोंको इसका पता चला। फिर भी उस समय इसका प्रसार भारतके उत्तर पश्चिम प्रान्तमें ही रहा। यह रोग तो इसी चालीस पचास वर्षमें अधिक व्यापक हुआ हैं। इससे पहिले आजसे कोई सौ १५० वर्ष पूर्व कुछ प्रकोपके चिह्न राजपूताना कच्छ काठियावाड़में मिले हैं। अब तो यह समस्त भारतमें राजयक्ष्मावत् व्यापक हो गया है। और बड़े-बड़े शहरोंमें बालकोंकी मृत्यु संख्या जितनी इस रोग द्वारा होती देखी जाती है इतनी समस्त फैले हुये अन्य रोगों द्वारा नहीं देखी जाती।

क्षय निरोधका जितना बड़ा आयोजन किया जा रहा है यदि तहकीकात की जाय तो पता लगे कि उससे अधिक इस रोगके निरोधका आयोजन अत्यन्त आवश्यक है। बच्चोंकी जितनी अधिक संख्या इस रोगसे घिरकर मर जाती है मुझे तो अन्य रोगोंसे घिरकर मरनेवालों बच्चोंकी संख्या इससे चौथाई भी दिखाई नहीं देती। वैद्य डाक्टर तथा घरवाले सभी इस रोगकी पहचानमें धोखा खा जाते हैं और अनभिज्ञतामें ही यह रोग बालकों व बड़ोंको अपने चंगुलमें फँसाकर ले जाता है। जब रोग बढ़ जाता है तो किसीके किये कुछ नहीं बनता। क्या यहांका चिकित्सक समुदाय मेरे उक्त कथनकी सत्यताको जाननेकी चेष्टा करेगा ?

आयुर्वेदके धुरन्धर विद्वान्का निधन

महान् शोक एवं सन्तापसे इस समाचारको आयुर्वेदविद् जगत् सुनेगा कि बम्बईके प्रसिद्ध चिकित्सक रसयोग सागर नामक वृहद् ग्रन्थके संकलन कर्त्ता पं० हरिप्रपन्न जी २६ सितम्बर १९३८ को न्यूमोनियां रोगसे ग्रसित हो सदाके लिये इस संसारसे चले गये। परिषद् उक्त परलोकगत विद्वानके सम्बन्धियोंके प्रति समवेदना प्रकट करता है।

ध्रुव घड़ी*

[ले०—श्री महावीर प्रसाद श्रीवास्तव]

रातमें समय कैसे जानें ?

तारों भरी रात भी कैसी सुहावनी होती है ! किसी मैदानमें खड़े होकर ऊपर सिर उठाइए तो चारों ओर छिटके हुए अनगिनती तारे दिखाई पड़ते हैं मानों प्रकृति माता दिवाली मना रही है। यह तारे हमसे अरबों कोस दूर होते हुए भी हमारे कितने कामके हैं यह बहुत कम लोगोंको मालूम है। सावन भादोंकी रात इसलिए भयावनी होती है कि इन महीनोंमें बादलोंके घिरे रहनेसे रातमें तारोंकी रोशनी भी हमें नहीं मिलती। इन तारोंसे हमें धीमी-धीमी रोशनी ही नहीं मिलती, प्रकृतिके बहुतसे रहस्योंका भी पता चलता है। यह इस बातके भी साक्षी हैं कि सृष्टिका कोई ओर छोर नहीं है, यह कहां तक फैली हुई है और कबसे आरंभ हुई।

इतनी दूर रहनेवाले सूर्य, चन्द्रमा और तारोंकी बातें सभी देशोंकी दंतकथाओं और पुस्तकोंमें भरी पड़ी हैं क्योंकि हमारा जीवन बहुतसी बातोंमें इन्हींपर अवलम्बित है। घड़ी, पहर, दिन, रात, पखवारा, महीना, ऋतु, वर्ष, युग आदिकी गणना इन्हींके द्वारा की जाती है। पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्खिन आदि दिशाओंका ज्ञान इन्हींसे होता है। बड़े-बड़े विज्ञान-विशारद अब भी इनकी खोजमें करोड़ों रुपया खर्च कर रहे हैं और इनके रहस्योंका पता लगा रहे हैं। इस लेखमें हम केवल इतना ही बतलाना चाहते हैं कि इनसे रातमें समयका ज्ञान कैसे किया जाता है।

सौर और नाक्षत्र दिन

जब रातको आकाश साफ हो ठीक-ठीक समय बतलानेवाली एक अच्छी घड़ी लेकर किसी खुली जगहमें बैठ जाइए और देखिए कि कौनसा चमकीला तारा आपके मकानके किसी कंगूरे या पेड़की किसी टहनीको छूता हुआ उसके ऊपर किस समय देख पड़ता है। यह समय अपनी नोट-बुकमें लिख लीजिए। दूसरे दिन फिर उसी जगह बैठकर उसी तारेको देखिए कि वह उसी कंगूरे या टहनीके ऊपर किस समय आता है। अगर आपकी घड़ी ठीक होगी तो आज वह तारा उस स्थानपर चार मिनट पहले ही पहुँच जायगा। यदि आप लगातार पंद्रह दिन तक ठीक उसी जगह बैठ कर उसी तारेको उसी स्थानपर देखें तो मालूम हो जायगा कि प्रतिदिन चार-चार मिनट पहले आनेके कारण पन्द्रह दिनके अंतमें यह ठीक एक घंटा पहले वहां आ जायगा। एक महीनेके बाद देखनेपर वह दो घंटा पहले ही वहां पहुँचा रहेगा। यही हाल सब तारोंका है। सभी तारे २३ घंटा ५६ मिनटमें एक पूरा चक्कर लगा लेते हैं। इसी समयको नाक्षत्र दिन कहते हैं क्योंकि तारेको नक्षत्र भी कहते हैं। एक नाक्षत्र दिनमें २४ नाक्षत्र घंटे होते हैं।

इसी प्रकार यह भी देखा जा सकता है कि सूरज ऐसा एक चक्कर पूरे २४ घंटेमें लगा लेता है। इस समयको सौर दिन कहते हैं।

अरुन्धती तारा

[illegible] महीनेमें उत्तर पूरबके कोनेमें ९; १० बजे रातको एक बड़ा ही मनोहर तारापुंज देख पड़ता है। इसमें सात तारे हैं और प्रायः सभी चमकीले हैं। इसको सप्तर्षि कहते हैं और इनके नाम भी प्राचीन कालके प्रसिद्ध सात ऋषियोंके नामपर रखे गये हैं। अंग्रेजीमें इनके कई नाम हैं परन्तु सबसे प्रसिद्ध नाम "ग्रेट-बेयर" है। इस समय सबसे ऊपरवाले दो तारोंकी ऊंचाई प्रायः बराबर है। यदि इनको मिलानेवाली रेखा बायीं ओर बढ़ायी जाय तो यह ध्रुव तारे तक पहुँच जाती है। इसलिए सप्तर्षिके प्रथम दो तारोंको 'ध्रुव-निर्देशक' कहते हैं क्योंकि इनसे ध्रुव तारेका पता आसानीसे लग जाता है। सप्तर्षिका छठां तारा ध्यान

देने योग्य है। इसका नाम वशिष्ठ है। इससे प्रायः मिला हुआ एक बहुत ही धीमी रोशनीका तारा है जिसे अरुन्धती कहते हैं। यह अंधेरी रातमें भी तेज निगाहवालोंको ही दिखाई पड़ता है। जैसे वशिष्ट ऋषिके साथ उनकी स्त्री अरुन्धती रहती थी वैसे ही यह मंद तारा वशिष्ट तारेके साथ रहता है। विवाह संस्कारमें वर और वधूको ध्रुव वशिष्ट और अरुन्धती तीनों ही दिखलाये जाते हैं और यह शिक्षा दी जाती है कि जैसे ध्रुव तारा अपने स्थानपर अचल रहता है वैसे ही वरवधू अपनी प्रतिज्ञापर अचल रहें और जैसे अरुन्धती अपने पति वशिष्टके साथ सदा रहती है वैसे ही वधू भी अपने पतिके साथ रहे। भूगोलके पाठमें सप्तर्षि और ध्रुव तारेकी पहचान बहुत पहले करा दी जाती है क्योंकि सप्तर्षिके द्वारा ध्रुव तारेका स्थान सहज ही मालूम हो जाता है और ध्रुवसे उत्तर दिशाका ज्ञान सहज ही हो जाता है जिससे और दिशाएं भी सहज ही जानी जा सकती हैं।

लघु और बृहद् सप्तर्षि

ध्रुव तारा सदा एक ही जगहपर दिखाई पड़ता है, अन्य तारोंकी तरह अपनी जगह नहीं बदलता। कई घंटोंका अंतर देकर बहुत ध्यानसे देखनेपर ही यह मालूम हो सकता है कि यह तारा भी अपनी जगहसे थोड़ासा हट जाता है परन्तु व्यवहारमें यह अचल ही माना जाता है। यह जिस दिशामें रहता है वही उत्तर है। काशी प्रयागमें यह क्षितिजसे २५,२६ अंशके लगभग ऊंचा देख पड़ता है। ज्यों-ज्यों उत्तर जाइए त्यों-त्यों इसकी ऊंचाई बढ़ती जाती है। लखनऊमें २७ अंश, हरद्वारमें ३० अंश, श्री नगर (काश्मीर) में ३५ अंशके लगभग इसकी ऊंचाई रहती है। ज्यों-ज्यों दक्खिन जाइए त्यों-त्यों इसकी ऊंचाई कम होती जाती है। जबलपुरमें २३ अंश, नागपुरमें २१ अंश, दक्खिन हैदराबादमें १७ अंश और मद्रासमें १३ अंशके लगभग ऊंचाई होती है। यही इन शहरोंके अक्षांश भी हैं। यदि किसी स्थानका अक्षांश जानना हो तो ध्रुव तारेकी ऊंचाई जान लेना काफी होता है।

इस तारेके पास ही ६ और तारे हैं जो इसके चारों ओर घड़ीकी प्रतिकूल दिशामें बराबर घूमते हुए देखे जा सकते हैं। इन सात तारोंसे भी एक विशेष आकृति बनती है जिसको पहचानना कठिन नहीं है। इनका नाम भी लघु सप्तर्षि है क्योंकि यह भी सप्तर्षिके सदृश हैं परन्तु आकार छोटा है और चार तारे बहुत धीमी रोशनीके हैं। इनमेंसे ध्रुव तारा एक किनारेपर है और काफी चमकीला है दूसरे किनारेपर जो दो तारे हैं वह भी काफी चमकीले हैं जिनमेंसे एकका रंग कुछ पीला है चित्रमें इसका नाम पीले लिखा गया है। इस तारेका नाम सुविधाके लिए पीला तारा रख लिया जाता है। शेष चार तारे बहुत धीमी रोशनीके हैं और अंधेरी रातमें ही दिखाई देते हैं।

जनवरीके महीनेमें जैसे उत्तर-पूर्वकी दिशामें सप्तर्षि नामक तारा पुंज दिखाई पड़ता है, वैसे ही उत्तर-पश्चिम दिशामें ध्रुव तारासे पश्चिम प्रायः उतनी ही दूरीपर

चित्र १
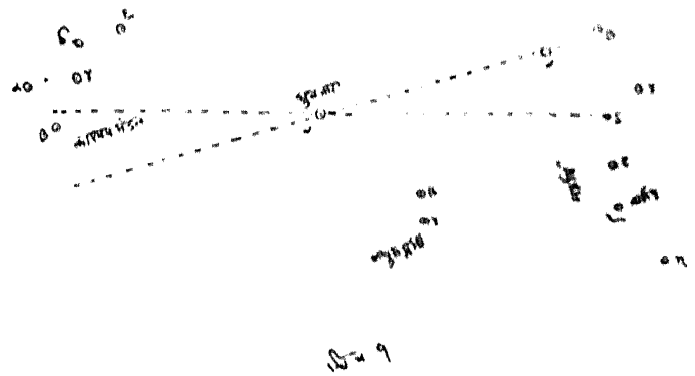
जितनी दूरीपर सप्तर्षि पूर्वकी ओर है एक तारा पुंज और भी है जिसको काश्यप मंडल कहते हैं। इस समय इसकी ऊंचाई ध्रुवकी ऊंचाईसे कुछ अधिक होती है। यह जिस समय ध्रुव तारेके ऊपर आता है उस समय अंग्रेजीके एम् अक्षरके समान देख पड़ता है। जिस समय यह ध्रुव तारेके ठीक नीचे आता है उस समय इसकी शक्ल अंग्रेजीके डबल्यू अक्षरकी तरह हो जाती है परन्तु यह दृश्य हिन्दुस्तानमें नहीं देख पड़ता, इंगलैन्ड जर्मनी

आदि बहुत उत्तरके देशोंमें ही देख पड़ता है।

अब तक तीन तारा पुंजोंकी चर्चा की गयी है। इन तीनोंकी सपेक्ष स्थिति नीचेके चित्रके अनुसार होती है। पहली जनवरीकी रातको सवा दस बजे उत्तरकी ओर देखनेसे यह तीनों तारा पुंज इसी स्थितिमें देख पड़ते हैं। ६ घंटेके बाद अर्थात् सवाचार बजे रातको सप्तर्षिके प्रथम दो तारे ध्रुव तारेके ठीक ऊपर आ जाते हैं।

लघु सप्तर्षिसे समयका ज्ञान

इस लेखमें हम यह बतलाना चाहते हैं कि लघु सप्तर्षिके ध्रुव और पीले तारेसे रातके किसी समयका ज्ञान कैसे किया जाता है। चौथी जनवरीकी रातको ८ बजे यह ध्रुव तारेके ठीक नीचे रहता है और २ बजे रातको ध्रुवसे ठीक पूरब रहता है। चौथी मार्चकी रातको ४ बजे प्रातःकाल वह ध्रुव तारेसे ठीक ऊपर रहता है और १० बजे रातको ठीक पूरब। इसी प्रकार और महीनोंकी चौथी तारीखको भी इसकी स्थिति जानी जा सकती है।

यदि हम यह कल्पना करलें कि ध्रुव तारा एक घड़ीके केन्द्रपर है और लघु सप्तर्षिका पीला तारा उस घड़ीकी घंटा बतलानेवाली सुई है तो इन दोनोंकी सहायतासे हम रातका समय मोटे हिसाबसे जान सकते हैं। इस कल्पित घड़ीको हम 'ध्रुव घड़ी' के नामसे पुकारेंगे। जिस समय पीला तारा ध्रुव तारेसे दहनी तरफ रहता है उस समय ध्रुव घड़ीमें ३ बजते हैं और जिस समय बायीं तरफ रहता है उस समय ध्रुव घड़ीमें ९ बजते हैं। जब पीला तारा ध्रुव तारेसे ठीक नीचे रहता है तब ध्रुव घड़ीमें ६ बजते हैं और जब यह ध्रुव तारेसे ठीक ऊपर रहता है तब ध्रुव घड़ीमें १२ बजते हैं। यह चार घंटे तो आसानीसे जाने जा सकते हैं। अन्य घंटोंके लिए कल्पनासे काम लेना होगा। यदि पीला तारा उस स्थितिमें हो जो चित्रमें दिखलाई गयी है तो वह ध्रुव घड़ीके ३ और ६ घंटोंके बीचमें ही होगा। ६ और ३ घंटोंके स्थानोंके बीच जो धनु बनता है उसको तीन बराबर भागोंमें बांटनेकी कल्पनाकी जा सकती है और यह देखा जा सकता है कि पीला तारा ५ घंटेके स्थानपर है या ४ या इनके बीचवाले साढे तीन, साढे चार या साढे पांच घंटोंपर है। चित्रमें यह ५ घंटेपर दिखाई पड़ता है। अभ्यास करनेपर घंटेके चौथाई भागका भी अन्दाजा सहज ही लगाया जा सकता है। इसी प्रकार हम यह अन्दाजा कर सकते हैं कि पीला तारा किस घंटे या उसके अर्द्ध या चौथे भागपर है। इतना जान लेनेपर नीचे लिखे सूत्रसे हम काम ले सकते हैं।

इष्टकाल = १० या ३४ या ५८—२ (घ + म)

यहां 'घ' ध्रुव घड़ीका घंटा है जहां पीला तारा दिखाई पड़ता है और 'म' अंग्रेजी महीनेकी संख्या है। इससे जो समय निकलता है वह उस महीनेकी चौथी तारीखका समय घंटोंमें आता है जिसकी गणना १२ बजे रातसे की जाती है। यदि किसी और तारीखका समय जानना हो तो चौथी तारीखसे जितने दिन बीते हों उनकी संख्याको ४ गुणा कर दो और जो गुणनफल आवे उतने ही मिनट कम कर दो।

यदि 'घ' और 'म' के योगका दूना १० से कम हो तो दससे घटाओ, नहीं तो ३४ या ५८ जिससे घट सके उससे घटाओ। इसीलिए सूत्रमें १० या ३४ या ५८ तीन संख्याएं लिखी हैं।

उदाहरण (१) दिये हुए चित्रमें पीला तारा ५ घंटेकी जगह देख पड़ता है। यह जाननेके लिए कि यह चौथी जनवरीके किस समयका चित्र है हमें सूत्रमें 'घ' की जगह ५ और 'म' की जगह १ रखना चाहिए क्योंकि जनवरी पहला महीना है। इस प्रकार

इष्टकाल १०—२ (५ + १) = १०—१२

जो नहीं घट सकता इसलिए हमें १० की जगह ३४ लिखना चाहिए।

∴ इष्टकाल = ३४—१२ = २२ अर्थात् रातके १० बजे।

यदि १५ जनवरीको यही स्थिति हो तो ११ × ४ मिनट १० घंटेसे कम कर दो।

अर्थात् १५ जनवरीको ९ बजकर १६ मिनट पर ही यह स्थिति देख पड़ेगी।

उदाहरण (२)—मान लीजिए नवम्बर मासकी २२ तारीखको ध्रुव घड़ीमें साढ़े ७ बजे हैं तो इष्टकाल क्या

है। नवम्बर ११ वाँ महीना है। इसलिए नवम्बरकी ४ तारीखका इष्टकाल = १० या ३४ या ५८—२ (७॥ + ११)

= ५८—३७ = २१ घंटा या ९ बजे शाम

२२ तारीख ४ तारीखसे १८ दिन पीछे पड़ती है इसलिए १८ × ४ = ७२ मिनट या १ घंटा १२ मिनट और घटा देना चाहिए। इसलिए २२ तारीखका इष्टकाल ७ बजकर ४८ मिनट हुआ।

उदाहरण (३)—२७ मार्चके ८ बजे रातको ध्रुव घड़ीमें क्या बजेगा ?

यहाँ इष्टकाल ८ बजे रातका है जो मध्य रात्रिसे २० घंटा है। सूत्रका 'घ' जानना है मार्च तीसरा महीना है इसलिए म = ३, ४ मार्चसे २७ मार्च तक २३ दिन होते हैं इसलिए २३ × ४ मिनट = ९२ मिनट या १॥ घंटा, इसलिए।

२० = १०—२ (घ + ३)—१॥
= १०—२ घ—६—१॥
२॥—२ घ

∴ २ घ = २॥—२० जो नहीं घट सकता, इसलिए २॥ में २४ जोड़ देना चाहिए।

इसलिए २ घ = २४ + २॥—२० = ६॥ घंटा

∴ घ = ३। घंटा

अर्थात् २७ मार्चके ८ बजे रातको ध्रुव घड़ीमें ३। बजेगा। ऐसी दशामें पीला तारा ध्रुव तारेसे पूरबकी ओर कुछ नीचे रहेगा।

यह सूत्र जिस सिद्धान्तपर बनाया गया है, वह बहुत ही सरल है। दिसम्बरकी चौथी तारीखके १० बजे दिनको पीला तारा ध्रुव तारेके ठीक ऊपर आ जाता है इसलिए उस समय ध्रुव घड़ीमें १२ बजते हैं। इसीको आधार मानकर सूत्रकी रचना की गयी है। यदि इस रातको ध्रुव घड़ीमें ३ बजा हो तो इष्टकाल १०—३ × २ या ४ होगा अर्थात् ४ बजे रातको पीला तारा ध्रुवसे ठीक पूरब होगा। यदि ध्रुव घड़ीमें ८ बजा हो तो इष्टकाल १०—८ × २ या ३४-१६ = १८ घंटा होगा जो ६ बजे शाम है। यदि दिसम्बरके सिवा और कोई महीना हो तो प्रतिमास दो-दो घंटा पहले ही यह स्थिति आवेगी। इसीलिए मासकी संख्याको भी २ से गुणा करके १० या ३४ या ५८ से घटाया जाता है। चौथी तारीखके सिवा और तारीखोंके लिए प्रतिदिन चार-चार मिनटकी और कमी की जाती है।

इस सूत्र में 'घ' जितना ही शुद्ध होगा समय भी उतना ही शुद्ध निकलेगा। इसलिए पीले तारेकी स्थिति ठीक-ठीक जाननेका अभ्यास करना चाहिए। अभ्यास कर लेनेपर आधे घंटेसे अधिक भूल नहीं हो सकती।

इस सूत्रसे जो समय आता है वह रेलवे टाइमके अनुसार होता है, इसलिए उन्हीं स्थानोंके लिए ठीक होता है जो मिरजापुरके देशान्तर रेखाके आस पास है जैसे काशी, प्रयाग, अयोध्या, फैजाबाद, जौनपुर सुल्तापुर आदि। रायबरेली, लखनऊ, कानपुरके लिए भी दस मिनटसे अधिक अन्तर नहीं पड़ेगा। परन्तु पटना, देहली आदिके लिए बहुत अन्तर हो जायगा। इस लिए ऐसे स्थानोंके लिए देशान्तर संस्कार भी करना चाहिए।

पटना मिरजापुरसे ३ अंशके लगभग पूर्व है इस लिए पटनामें ३ × ४ = १२ मिनट पूर्व ही पीले तारेकी वह स्थिति होगी जो मिरजापुरमें सूत्र से आये हुए कालमें होती है इसलिए पटनावालोंके लिए इष्टकालमें १२ मिनट और घटाना पड़ेगा तब रेलवे टाइम ठीक निकलेगा। इसके प्रतिकूल देहली मिरजापुरसे ५ अंशके लगभग पश्चिम है इस लिए देहलीवालोंको सूत्रसे आये हुए करणमें ५ × ४ = २० मिनट और जोड़ना चाहिए तब रेलवे टाइम ठीक आवेगा।

नारी शिल्पमन्दिरकी आवश्यकता

(लेखिका—श्रीमती कमला सद्गोपाल बी० ए०, हिन्दुस्थान एरोमटिक्स कं०, काशी)

हिन्दुस्थानके सौभाग्यसे वैज्ञानिक प्रगति और वर्तमान राजनैतिक जागृतिके कारण आज देशमें चारों ओर राष्ट्रीय औद्योगिक योजनाकी चर्चा सुनाई दे रही है। हमारा देश आज तक कृषि प्रधान देश माना गया था किन्तु बीसवीं सदीके युगमें पाश्चात्य देशोंने वैज्ञानिक उन्नति द्वारा उद्योग-धन्धोंको उन्नतकरके जिस प्रकारसे उन्नतिकी चरमसीमा प्राप्त की है उसके सन्मुख केवल कृषिके भरोसे किसी भी देशका ठहर सकना असंभव हो चुका है। इसी कारणसे हमारे देशके कुछ प्रगतिशील व्यक्तियोंने कई प्रकारके उद्योग-धन्धोंको चला कर न केवल अपने देशके धनको विदेशोंमें जानेसे रोका है, अपितु लाखों पढ़े लिखे और अनुभवी नवयुवकों तथा कार्य कुशल मजदूरोंको ससम्मान जीविका उपार्जन करनेका अवसर भी दिया है। इस लेखका उद्देश्य विज्ञानके पाठकोंका ध्यान उस दिशा की ओर खींचना है जिस ओर अभी तक कोई चेष्टा नहीं की गई।

हमारे देशके दुर्भाग्यसे साधारण शिक्षाका इतना अभाव है कि १०% से अधिक व्यक्ति साक्षर नहीं कहे जा सकते। तिसपर स्त्रियोंकी साक्षरता ५% से भी कम है। इस आवश्यक साक्षरताके तीव्र अभावके अतिरिक्त हमारे समाजको घुनकी तरह खानेवाला रोग बाल विधवाओं और निराश्रिता स्त्रियोंके रूपमें विद्यमान है। पढ़ी लिखी अथवा वर्तमान सभ्यताके समाजमें पली हुई स्त्रियोंमेंसे भी अधिकांश उन महिलाओंका है जिनका बहुतसा समय केवल मात्र सोने, गपशप लगाने, एक दूसरेकी चुगली करने और बेमतलब, दूसरी महिलाओंके ऊपर दोष लगानेमें ही व्यतीत हो जाता है। देशका भविष्य भावी सन्ततिके ऊपर निर्भर है और भावी संतानका सारा उत्तरदायित्व इन्हीं महिलाओंके ऊपर निर्भर है। ऐसी अवस्थामें यदि हमारे देशके नवयुवक और नवयुवतियां राष्ट्र और समाजके प्रति अपने कर्तव्यका पालन नहीं कर रहीं और देशके स्वातंत्र्य-संग्राम के लिये निस्वार्थ सैनिकोंका अभाव पाया जाता है तो इसकी सारी जिम्मेदारी उन नेताओंके ऊपर है जिन्होंने राष्ट्र और समाजकी पुनर्रचना करते हुये देशकी महिलाओंके उपयोगी समयका सदुपयोग करनेकी ओर जरा भी ध्यान नहीं दिया। उन्नतिशील पाश्चात्य देशोंमें किसी भी महिलाको यह स्वतंत्रता प्राप्त नहीं है कि वह हमारे देशकी महिलाओंकी तरह समयका दुरुपयोग कर सके। प्रत्येक स्थानकी महिलाओंके लिये उनकी स्थानीय और पारिवारिक स्थितियोंके अनुसार उनको व्यायाम, वायु-सेवन, वन भ्रमणके अतिरिक्त नियम पूर्वक राष्ट्रोन्नतिके लिये शिक्षा और उद्योगधन्धोंके क्षेत्रोंमें काम करना पड़ता है। इसी राष्ट्रीय नीतिका यह परिणाम है कि उन देशोंके उद्योग-धन्धे इतने उन्नत हैं कि हम लोग अभी तक उन का सामना नहीं कर सकते।

हमारे देशमें बड़े-से-बड़े कपड़ेके कारखानेदार अभी तक इतने बढ़िया और सस्ते रुमाल तथा गंजी मोजे इत्यादि नहीं बना सके जितने सस्ते और सुन्दर यही पदार्थ जापानसे आते हैं। चीन और जापानके बने हुये मोजे गंजी और मेजपोश इत्यादि इतने चित्ताकर्षक और सस्ते दामोंपर मिल रहे हैं कि हम लोग उससे अधिक दाम देकर उससे सादा कपड़ा भी नहीं खरीद सकते। इसी प्रकारसे जापानकी बनी हुई छोटी-छोटी चटाइयां, खिलौने और चीनी मिट्टीके बरतन इत्यादि और चीनके हाथकी सिलाईके काम बाजारमें इतने सस्ते मिल रहे हैं कि उनके सामने हमारे देशकी बनी हुई वैसी चीजें ठहर नहीं सकतीं। आखिर इस बातका कारण क्या है? इन देशोंकी आर्थिक और औद्योगिक नीति, आवश्यक पदार्थों का सस्तापन, कार्य कुशल और अनुभवी नवयुवकोंकी बहुतायत तथा साक्षर और कार्यपटु मजदूर साधारणतया यह मुख्य कारण कहे जा सकते हैं। किन्तु इनके अतिरिक्त एक बड़ी भारी बात यह भी है कि सैकड़ों उद्योग धन्धे चीन जापान और पाश्चात्य देशोंमें ऐसे हैं जिनके संगठनमें उन देशोंकी स्त्रियोंका बहुत भारी भाग रहता है। इसीके परिणाम स्वरूप ऐसे बहुतसे काम, इतनी सस्ताई-

से हो जाते हैं कि उनके लिये विशेष प्रकारसे दुगना तिगना दाम बढ़ जाता है।

दृष्टान्तके तौर पर चीन और जापानमें पाठशालाओं तथा अन्य कार्मोंपर जानेवाली लड़कियाँ और अन्य स्त्रियां इधर-उधर आते जाते और आपसमें बैठे हुये रूमाल गंजी, मोजे, होजियरीके विविध सामान तथा हाथकी, सिलाई कुल काम तय्यार करती रहती हैं। इन देशोंमें ऐसी बड़ी भारी संस्थायें हैं जो इन कार्मोंको बांटकर करनेके लिये आवश्यक पदार्थ महिलाओंमें बांटकर अपनी इच्छाके अनुसार ऐसे पदार्थ बनवाती हैं कि जिनकी मांग न केवल उन्हीं देशोंमें होती है अपितु उससे कहीं अधिक मांग विदेशोंमें भी हुआ करती है। इस नीतिके कारण जहां इस प्रकारके काम, करनेवाली स्त्रियों और लड़कियाँ अपने घरोंकी आर्थिक उन्नति करती है वहां साथही अपने समयके सदुपयोगसे देशका भी उन्नतिका कारण होती हैं।

आज हमारे देशमें इस बातकी बड़ी सख्त जरूरत है कि करोड़ों बाल विधवाओं, अनाथ और निर्धन महिलाओंको अपने पैरोंपर खड़ा करनेके लिये और साक्षरता तथा समयका सदुपयोग बढ़ानेके लिये एक ऐसी देश व्यापी अखिल भारतीय संस्थाका निर्माण किया जावे कि जो नारी शिल्प मन्दिरोंका जाल देश भरमें बिछा कर इस मुख्य समस्याका वास्तविक हल करे। दुखकी बात तो यह है कि देश भरमें जितनी भी संस्थायें महिलाओंके नामपर काम कर रही है, वह अपने सारे कर्तव्योंकी इति श्री इसी बातमें समझती हैं कि वर्षमें दो चार बार सभाओं द्वारा प्रस्ताव पास करके पुरुषोंपर लानत और फटकार भेज दिया करें। कुछ बड़े-बड़े घरानोंकी स्त्रियोंको चाय तथा भोज द्वारा सम्मानित कर दिया करें और धनी स्त्रियोंके वैभव और फ़ैशनका प्रदर्शन किया जा सके। इन संस्थाओंको वास्तवमें शीघ्रसे शीघ्र नारी शिल्प मन्दिरकी आयोजनाकी ओर ध्यान देना चाहिये।

मेरे विचारमें इस नारी शिल्प, मन्दिरकी आयोजनामें तीन मुख्य विभाग रखे जाने चाहिये :—

(१) शिक्षा विभाग—जिसके द्वारा महिलाओंको साक्षर बनाकर उनको देश समाज और राष्ट्रके प्रति अपने कर्तव्योंका ध्यान दिलाया जा सके।

(२) औद्योगिक विभाग—जिसके द्वारा देशमें प्रचलित ऐसे पदार्थोंको स्त्रियों द्वारा निर्माण कराया जावे कि जिनके बनानेमें विशेष शारीरिक परिश्रम न हो। घरके काम काजकी भी ज़रा हानि न हो और साथ ही साथ उनके समयका सदुपयोग भी हो सके। इस कामके लिये नारी शिल्प मन्दिरोंकी ओरसे महिलाओंमें आवश्यक पदार्थ बांट कर व्यापारकी मांगके अनुसार चीज़ें बनवाई जानी चाहियें।

(३) विक्री विभाग—यह विभाग इस संस्थाकी उन्नतिके लिये सबसे आवश्यक अंग हैं। इस विभागका वही काम होना चाहिये कि, जो देशके बड़े-बड़े शहरोंमें संचालित खादी भंडारों द्वारा किया जा रहा है। अखिल भारतीय चर्खासंघने देशके विविध भागोंमें जुलाहोंको संगठित करके हाथकी कताई व बुनाईका ऐसा सुन्दर प्रबन्ध कर रखा है कि अब इतने भारी संगठनके होते हुए भी वह देशकी मांगको पूरा नहीं कर सकते। इस संस्था द्वारा बनवाये गये खादीको बेचनेका सारा काम खादी भंडारोंके ही हाथमें है। ठीक इसी प्रकारसे नारी शिल्प मन्दिरोंका बिक्री विभाग इस प्रकारसे संगठित किया, जाना चाहिये कि महिलाओं द्वारा बनाये गये सामानकी बिक्री अधिकसे अधिक हो और प्रचार बढ़े।

इसी दृष्टि कोणसे मुख्य केन्द्रोंमें नियम पूर्वक भंडार स्थापित किये जावें और इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे प्रदर्शन मेले और बाज़ार इत्यादि भी लगाये जावें, कि जिनमें स्त्रियां सब दुकानें लगायें और ऐसे बाज़ार तथा प्रदर्शन केवल मात्र महिलाओंके ही लिये खुले रहने चाहिये।

इस आयोजनाके द्वारा जिन-जिन उद्योग धन्धोंको नारी शिल्प मन्दिर द्वारा संगठित किया जा सकता है उनका कुछ उल्लेख दृष्टान्तके लिये नीचे दिया जा रहा है :—

(१) हाथकी कताई व बुनाई।

(२) सिलाई, बुनाई, कसीदा काढ़ना, क्रोशिया तथा ऊनके काम।

(३) रुमाल, टाई, मोज़े और गंजी इत्यादिका बनाना।

(४) साड़ियोंके बॉर्डर लगाना साड़ियोंकी छपाई, सफ़ाई; रंगाई व फ्यरोग्राफ़ीका काम।

(५) चमड़ेके कुशन, पर्स, मनीबेग, बैल्ट और हैण्ड-बेग इत्यादि बनाना।

(६) ऑयल पेन्टिंगके जम्पर, साड़ी व मेज़ पोश इत्यादि बनाना।

(७) जूतेकी लेस और घड़ीके फीते इत्यादि बनाना।

(८) बांस, बेंत और लकड़ी इत्यादिके टोकरी तथा अन्य पदार्थ बनाना।

(९) रस्सीयां और विविध प्रकारकी डोरी बनाना।

(१०) मूर्ती निर्माण।

(११) स्त्रियोपयोगी अंगराग बनाना जैसे सिरके तेल, क्रीम, स्नो, पौडर, सुरमा, बिन्दी, मांगके सिंधूर, आलता तथा नाखूनके पौलिश इत्यादि।

(१२) रबर बैलून तथा निपल इत्यादि बनाना।

(१३) पावरोटी, केक, लैमनड्राप टॉफ़ी और चॉकलेट इत्यादि बनाना।

(१४) शरबत, आइसक्रीम और फलोंके रस आदि बनाना।

(१५) दूधकी क्रीम व मक्खन बनाना।

(१६) अचार, चटनी, मुरब्बे तथा संरक्षित फल तथा शाककी डिब्बा बन्दी।

(१७) कार्ड बोर्डके डिब्बे बनाना।

(१८) स्प्रेपेंसिल द्वारा चित्र बनाना।

(१९) प्लाई वुडके ऊपर रंगीन चित्र काटना।

(२०) चित्रोंके फ्रेम बनाना।

(२१) पिनकुशन तथा स्टेशनरीके अन्य सामान बनाना।

(२२) हेयरपिन, सेफ्टीपिन तथा पिन बनाना।

(२३) काढ़नेके लिये चित्रोंके नमूने बनाना।

(२४) कागज़के फूल व पत्ती बनाना।

यदि इस लेखके पढ़नेसे इस आवश्यक विषयकी ओर विज्ञानके कुछ पाठकोंका ध्यान आकर्षित हो तो समय मिलनेपर इस नारी शिल्प मन्दिरकी आयोजनाके अन्य अंगोंपर विचार इसी पत्रिका द्वारा किया जावेगा। अच्छा हो कि इसी विषयपर लगातार लेखों द्वारा एक देश व्यापी आन्दोलन संगठित किया जावे।

यह प्रसरण शील जगत

[ले०—श्री भगवती प्रसाद श्रीवास्तव एम० एस-सी०]

मनुष्य स्वभावसे ही एक जिज्ञासु प्राणी रहा है। आस पासकी वस्तुओंका ध्यान पूर्वक निरीक्षण करना मानो उसकी नस-नसमें विदित है। आजसे बहुत दिनों पहले, जब मानव सभ्यता अपने शैशवावस्थासे होकर गुजर रही थी, लोगोंने पृथ्वीकी विशालतापर गौर किया, इसके आकारके बारेमें तरह-तरहकी कल्पनाएं कीं। पृथ्वीका विस्तार क्या है? इसका जन्म कब हुआ? इन प्रश्नोंके उत्तर ढूंढ़नेका लोगोंने प्रयत्न किया। किन्तु उनका मानसिक विकास इस ऊंचाई तक न पहुँच पाया था कि वे इन प्रश्नोंका सही उत्तर दे सकते अतएव लोगोंने इन जटिल प्रश्नोंको सुलझानेके लिये पौराणिक कहानियोंका निर्माण किया।

समयकी प्रगतिके संग मनुष्यका ज्ञान भी बढ़ा—प्रकृतिके रहस्योंका उसने क्रमशः भेद पानेमें सफलता प्राप्तकी। कल्पनाकी उड़ानको छोड़ उसने सत्यकी कठोर भूमिपर चलना सीखा। सहस्त्रों वर्षके अथक परिश्रमके उपरान्त उनकी खगोल विद्या इस योग्य बन सकी कि वे यह जान सकें कि पृथ्वीका व्यास ८००० मील है और

यह सूर्य की परिक्रमा करती है। खगोल विद्याकी इन प्रारम्भिक मंज़िलोंके तय कर लेनेके बाद आगे बढ़ना काफ़ी सहल हो गया। थोड़े ही समयमें ज्योतषियोंने सौर परिवारके सभी ग्रहोंके बारेमें पूरी जानकारी प्राप्त कर ली। विज्ञानके नूतन तम यंत्रोंकी सहायतासे हजारों, लाखों मील दूरके आकाश पिण्डोंकी दूरी उनका तापक्रम तथा उनका वज़न सभी कुछ मालूम किया जा सका।

आज इस विशाल जगतके बारेमें ज्योतिष विज्ञान ने काफ़ी जानकारी हासिल करली है। अनेक गलत धारणाओंको आधुनिक ज्योतिष विज्ञानने झूठा साबित कर दिखाया है। आज हम यह जानते हैं कि इस अखिल ब्रह्माण्डमें मनुष्य और उसका निवास स्थान पृथ्वी; इन दोनोंकी कोई हस्ती नहीं। समुद्रके किनारे पड़े हुए रेतके हजारों कणोंमेंसे पृथ्वी भी इस निःसीका विश्वमें एक कणके समान है।

अखिल ब्रह्माण्डकी पैमाइशका काम निरन्तर जारी है। सौर परिवारके सदस्योंका अध्ययन करनेके उपरान्त वैज्ञानिकोंने अपनी दूरबीन आकाशके नक्षत्रोंकी ओर घुमाई। गणित आदिकी सहायतासे उसने सौर परिवारके सबसे निकटके पड़ोसी प्रॉक्सिमो सेन्टारीकी दूरी निकाली और बताया कि यह तारा पृथ्वीसे इतना दूर है कि इस नक्षत्रसे पृथ्वी तक प्रकाशको आनेमें ४॥ वर्ष लगते हैं। स्मरण रहे कि आलोक रश्मियाँ एक सेकण्डमें लगभग २ लाख मीलकी दूरी तय कर लेती हैं। इससे और आगे बढ़नेपर गगन मण्डलमें अनेक नक्षत्र मिलते हैं जो इतनी अधिक दूरीपर हैं कि वहाँसे पृथ्वी तक प्रकाशको आनेमें सहस्त्रों वर्ष लग जाते है। ये सभी नक्षत्र सूर्यके समान या उससे भी अधिक ज्योतिवाले हैं। और भी आगे बढ़ने पर हम ऐसे नक्षत्रों तक पहुँचते हैं जहांसे आलोक रश्मियोंको पृथ्वी तक आनेमें एक लाख वर्ष लग जाते है। हमारा स्थानीय नक्षत्र मण्डल जो आकाश गंगा द्वारा परिवेष्ठित है यहीं समाप्त होता है। इस नक्षत्र मण्डलकी भांति अनेक दूसरे नक्षत्र मण्डल भी मिलते हैं। हमारा निकटतम पड़ोसी नक्षत्र मण्डल एन्ड्रामेडा हमसे इतनी दूर है कि वहांसे प्रकाशको पृथ्वी तक आनेमें पूरे ८ लाख वर्ष लगते हैं। यह भी आकाश गंगाकी ही भांति विशाल कार्य है। वैज्ञानिकों ने हिसाब लगाया है कि इस पृथ्वीपर जितनी संख्या मनुष्योंकी है, उससे २०० गुना अधिक नक्षत्र आकाश गंगामें पाये जाते हैं।

अन्ड्रामेडा तथा अन्य बाह्य नक्षत्र मण्डलोंके सम्बन्ध में अनुसन्धान करते समय ज्योतिषज्ञोंने एक बड़ी अद्भुत बात देखी। आकाश गंगासे परेके नक्षत्र मण्डल—नीहारिकाओं—के प्रकाशका विश्लेषण करनेपर वे इस निष्कर्षपर पहुँचे हैं कि ये नीहारिकाएं प्रबल वेगके साथ हमसे दूर हटती जा रही हैं। इनकी रफ्तार सैकड़ों मील प्रति सेकण्डतक पहुँचती है। साथ ही, जो नीहारिकाएं हमसे जितनी ही अधिक दूरी पर है, वे उतनी ही अधिक तीव्र गतिसे हमसे दूर भागी जा रही हैं—इस प्रकार अनन्त अन्तरिक्षमें हम उन नक्षत्रों तक पहुँच पाए हैं, जहाँसे आलोक रश्मियां लाखों वर्षमें हमारे पास तक पहुँच पाती हैं। निस्सन्देह वैज्ञानिकोंके कुतूहलकी सीमा न रही जब उसे इन नीहारिकाओंकी प्रसाण शीलताका सबसे पहले पता चला।

अनेक विद्वानोंने इस नई खोजके प्रति शंका प्रगट की उन्होंने यह कहनेकी भी जुरअत की कि इस क्षेत्रमें अनुसन्धान करनेवालोंने अवश्य ही कोई भारी गलती की है। आखिर विज्ञानके महारथियोंने बड़ी सावधानीके साथ अपने प्रयोगोंको फिरसे दुहराया किन्तु उन्हें कोई गलती दिखाई न पड़ी— दूरके नक्षत्रोंको प्रसरण शीलतामें अब किसीको संदेह न रहा।

आप स्वभावतः जानना चाहेंगे कि करोड़ों मील दूरके नक्षत्रोंकी रफ्तारको वैज्ञानिकोंने अपनी प्रयोग शालामें बैठे-बैठे कैसे आँक लिया। वैज्ञानिक अपने हाथमें घड़ी लेकर नक्षत्रोंकी रफ्तार नापने नहीं बैठता, संसारकी सबसे बड़ी दूरबीनकी सहायतासे नक्षत्रोंकी आलोक रश्मियोंका वह विश्लेषण करता है। भौतिक शास्त्र बताता है कि विश्लेषण करनेपर इन आलोक रश्मियोंके फ़ोटोग्राफ़से हम यह पता लगा सकते हैं कि अमुक नक्षत्र स्थिर है या चलायमान और यदि चलायमान है तो उसकी गति क्या है? इस रीतिका अवलम्बन कर वैज्ञानिकने पूरा आकाश छान डाला है। यह हमें बताता है कि अमुक नक्षत्र मण्डल १२००० मील प्रतिसेकण्डकी

रफ़्तारसे हमसे दूर भागा जा रहा है, तथा अमुक तारेकी रफ़्तार २५००० मील प्रति सेकण्ड है।

अब प्रश्न उठता है आख़िर क्यों ये नक्षत्र इस तीव्र गतिसे दूर फैल रहे हैं? क्या यह प्रसरण क्रिया कालान्तर तक जारी रहेगी? केवल दूरके ही नक्षत्रोंमें यह बात क्यों दिखाई पड़ती है? निकटके नक्षत्रोंमें प्रसरण क्यों नहीं होता? इन्हीं प्रश्नोंको हल करनेमें वैज्ञानिक आज तल्लीन है। गणित और भौतिक विज्ञानके गूढ़ सिद्धान्तोंकी सहायतासे वैज्ञानिक हमें बताता है कि सारा ब्रह्माण्ड एक रबरके बैलूनकी भाँति चारों ओर फैल रहा है, अतएव इस ब्रह्माण्डमें स्थिर नक्षत्रोंकी दूरी भी बढ़ रही है। इस स्थलपर इस बातका जिक्र कर देना अनुपयुक्त न होगा कि आजसे २० वर्ष पहले प्रो॰ सित्तर ने १९१७ में अपने अनुसन्धान कार्य्यके सिलसिलेमें यह भविष्य वाणी की थी कि दूरके नक्षत्रोंका अध्ययन करनेपर उनमें प्रसरण क्रियाका होना पाया जायगा। और कुछ ही वर्षों उपरान्त प्रयोगशलाओंने उस भविष्यवाणीको सत्य प्रमाणित कर दिखाया।

हम निकटके नक्षत्रोंमें प्रसरण क्रिया नहीं पाते.... वैज्ञानिक कहता है कि आइन्सटाइनके सापेक्षावादके सिद्धान्तके अनुसार तो ऐसा होना ही चाहिए था। सापेक्षवादके अनुसार निकटवर्त्ती वस्तुओंमें आकर्षण शक्ति विकर्षणसे अधिक होती है, किन्तु दूरी ज्यों-ज्यों बढ़ती जाती है आकर्षण कम होता जाता है|और विकर्षण अधिक। अतएव दूरी जब लाखों करोड़ों मीलकी हो जाती है तो आकर्षण एक दम लुप्त हो जाता है, और विकर्षण--तनाव ही उन दोनों वस्तुओंके बीच रह जाता है। यही कारण है कि आकाश गंगासे बाहरकी नीहारिकाओंमें ही प्रसरण क्रिया दिखाई पड़ती है।

उदाहरणके लिये सौर परिवारके सदस्योंके बीचकी आपसकी दूरी इतनी कम है कि हां आकर्षण शक्ति ही प्रधान है—इसीं आकर्षण शक्तिके वशीभूत हो वे सूर्य्यकी नियमित रूपसे परिक्रमा करते हैं।

हमने ऊपर देखा है कि विश्वके उस छोर तक अभी हम नहीं पहुँच पाए हैं, किन्तु यह तो हमें मालूम ही हो चुका है कि दूरी जितनी ही बढ़ती जाती है, प्रसरण-गति भी नक्षत्रोंकी बढ़ती जाती है। ज्योतिषज्ञोंने हिसाब लगाया है कि १३० करोड़ वर्षोंसे विश्वका आकार इस प्रसरणके कारण दूना हो जाता है। अनन्त अन्तरीक्षमें जितनी दूर तक हम प्रवेश कर सकें, क्या बराबर हमेशा हमें तेज़ीसे भागते हुए नक्षत्र मिलते रहेंगे? इस विश्वका आकार क्या अपरिमित है? इस प्रश्नके उत्तरके लिये आइन्सटाइनके सापेक्षवादकी शरण हमें लेनी पड़ेगी। इस सिद्धान्तके अनुसार किसी वस्तुकी गति प्रकाशकी गतिसे अधिक हो ही नहीं सकती, अर्थात प्रसरण गति १८६००० मील प्रतिसेकण्डसे आगे नहीं जा सकती। और १८६००० मीलकी प्रसरण गति उन नक्षत्रोंमें हो सकती है जो हमसे २०० करोड़ आलोक-वर्षकी दूरी पर स्थिर हैं। अर्थात इन नक्षत्रोंसे पृथ्वी तक प्रकाशको आनेमें २०० करोड़ वर्षका समय लगता है। तो इससे फिर यही निष्कर्ष निकलता है कि विश्वका आकार यहीं तक परिमित है, क्योंकि इससे आगे जानेपर तो नक्षत्रोंकी प्रसरण गति प्रकाशकी गतिसे भी अधिक हो जायगी।

इस प्रसरण क्रियाके फलस्वरूप आज जितने नक्षत्र हमें गगन मण्डलमें दूरबीनकी सहायतासे दिखाई देते हैं, उनमेंसे अनेक उस सुन्दूर भविष्य कालसे हमारी दृष्टिसे सदाके लिये ओझल हो जायंगे और तब तो किसी भी उपायसे इन नक्षत्रोंके बारेमें हम कोई भी ख़बर प्राप्त न कर सकेंगे। साथ ही यह जाननेकी जिज्ञासा भी उत्पन्न होती है कि प्रसरण क्रिया कब और कैसे आरम्भ हुई, क्या प्रसरणके उपरान्त संकुचन क्रिया भी होगी? प्रसरण और संकुचनके आरम्भ होनेके पहले इस ब्रह्माण्डका विस्तार क्या था?

विज्ञान आजकल इन्हीं गुत्थियोंके सुलझानेमें लगा हुआ है।

निरक्षरता दूर करनेका उपाय

शहरी मजदूरोंकी शिक्षा

(लेखक—श्री ओंकारनाथ शर्मा, लोको फोरमैन, बी० बी० एण्ड सी० आई० रेलवे सोजत रोड)

जिस प्रकार एक चतुर वैद्य देश, ऋतु, अवस्था, स्वभाव और तात्कालिक लक्षण आदि देख कर प्रत्येक मरीज़की पृथक पृथक प्रकारसे चिकित्सा करता है, उसी प्रकार चतुर शिक्षकोंको भी अपने विद्यार्थियोंकी अवस्था, स्वभाव, आवश्यकतायें और उनके समझनेकी योग्यता आदिपर विचार कर कर ही प्रत्येकके लिये शिक्षाका क्रम निर्धारित करना चाहिये। हमारे देशकी प्राचीन गुरुकुल प्रणालीमें ऐसा ही होता था। लेकिन उपरोक्त प्रकारसे बिना विचारे सब भेड़ोंको एक ही लाठीसे हाँकनेसे शिक्षाके उद्देश्यमें केवल असफलता ही नहीं बल्कि कई बेर विपरीत और अनिच्छित नतीजे भी मिल जाया करते हैं।

ईस्ट इंडिया कम्पनीके राज्यकी स्थापनाके बाद हमारे देशके शिक्षा क्षेत्रमें भी यही हुआ। विदेशियों द्वारा निर्धारित की हुई शिक्षा प्रणाली जो कि उन्होंने केवल अपने मतलबके लिये ही रची थी, जब हमारे सब नवयुवकों, कन्याओं, स्त्रियों और सयाने पुरुषोंपर एक सी लागू कर दी गई, तब हमारे नवयुवक विद्यार्थी चाहे वे किसी भी श्रेणीके रहे हों, नवयुवक बाबू बन गये, कन्याओं और माताओंमें मेम साहिबपन और पुरुषत्वका संचार होगया जिससे भारतियोंका स्वर्ग समान गृहस्थाश्रम श्मशान वत् हो गया और जिन कारबारी सयाने लोगोंने इस प्रणालीकी शरण ग्रहण कर कर साक्षरता प्राप्त करना चाहा वे जैसेके तैसे ही मूर्ख बने रहे और यदि कुछ किया भी तो अपना पेशा छोड़कर बाबू बन बैठे।

इस प्रणालीके विषैले असरका ज्ञान तो हमारे शिक्षा शास्त्रियोंको वर्षोंसे था लेकिन वे पराधीनताके कारण मूक पशुवत् उसी ओर चले जा रहे थे। हमारे सौभाग्यसे हमारे राष्ट्रीय स्वतंत्रता युद्धके संचालक महात्मा गांधीजीने गत वर्ष "वर्धा योजना" के रूपमें अपने जो क्रान्तिकारी विचार जनताके सामने रखे और शिक्षा शास्त्रियों द्वारा ग्रामीण शिक्षाके लिये एक निश्चित योजना बनवाई, उससे शिक्षा क्षेत्रमें एक विशेष जाग्रति उत्पन्न हो गई जिसके कारण हमारे देशके शिक्षा प्रेमी सज्जन शिक्षाके सब पहलुओंपर गंभीर विचार करने लगे, और जहाँ-तहाँ, व्यक्तिगत, राष्ट्रीय और सरकारी शिक्षा संस्थाओंमें अनेक प्रकारके प्रयोग भी होने लगे। कई प्रान्तोंमें जहाँ कांग्रेस मंत्रि-मंडल कार्य कर रहा है, वहाँकी सरकारोंने तो निरक्षरताको जनतामेंसे निकाल देनेका सुसंगठित प्रयत्न भी जारी कर दिया है।

महात्माजीकी यह शिक्षा सम्बन्धी विचार धारा दुनियांके लिये एक दम नई तो नहीं है, लेकिन उसमें जो स्फूर्ति और पवित्र भावनायें भर दी गई हैं, वे बेशक नई और बेजोड़ हैं। इस प्रकारके प्रयोग दुनियांके विभिन्न उन्नत देशोंमें और भारतमें भी जहाँ तहाँ भिन्न-भिन्न दृष्टि कोणोंसे और उद्देश्योंसे हो चुके हैं।

इन पंक्तियोंका लेखक न तो वर्त्तमान शिक्षा प्रणालीके अनुसार पूर्णतया शिक्षित ही कहलाने योग्य है और न शिक्षा शास्त्री ही है, लेकिन परिस्थितियोंके कारण उसे अपने जीवनका बहुतसा भाग, शहरी मज़दूरोंमें बितानेके कारण, उनकी शिक्षाके विषयमें चिन्ता और प्रयोग करनेका कुछ अवसर मिला है, इस लिये उससे प्राप्त कुछ अनुभव पूर्ण विचार नीचे लिखे जाते हैं, और आशा की जाती है कि जो शिक्षा शास्त्री, शिक्षा प्रणालीमें क्रान्ति उत्पन्न करनेके लिये, महात्माजीके अथवा किसी अन्य आदर्शानुसार प्रयत्न कर रहे हैं, उन्हें शायद यह कुछ उपयोगी सिद्ध हों। यदि ऐसा हुआ तो लेखक अपने परीश्रमको सफल समझेगा। निम्न लिखित प्रयोगका मुख्य उद्देश्य शहरोंमें रहनेवाले सयाने कामकाजियों और मजदूरोंको साक्षर बनानेका एक उपयोगी तरीका सामने रखनेका है। वैसे तो चलते फिरते पुस्तकालय, वाचना-

क्य और व्याख्यान और रेडियो आदिके द्वारा प्रचार तो है ही. लेकिन जहां रात्रि पाठशालायें आदि खोलनेका विचार हो वहां किस प्रकारसे शिक्षा दी जावे, इसपर यहां विचार किया गया है।

१—भिन्न-भिन्न पेशोंके अनुसार पाठ्यक्रम तैयार किया जाय।

मजदूर लोग अक्सर दिन भर तो फैक्टरियों और दुकानोंमें काम किया करते हैं, उन्हें केवल रात्रिका समय ही फुरसतका मिला करता है, जिसे वह भोजन आदिसे फारिग होनेके बाद पढ़ाईको दे सकते हैं, और वह भी इस शर्तपर कि उन्हें पहिले ही दिन जो सबक सिखाया जावेगा, दूसरे दिन ही कारखानेमें वे उसका उपयोग कर सकेंगे। यदि ऐसा नहीं हुआ तो वे स्कूल छोड़ देंगे और उन्हें पढ़नेसे सदैवके लिये अरुचि हो जावेगी। उदाहरणके लिये मान लीजिये, किसी इंजीनियरिंग कारखानेमें कोई खरादी है, जिसे उसका फोरमैन कुछ दिनोंसे रोज फटकारता है क्योंकि वह यांत्रिक चित्रोंको न पढ़ सकनेके कारण अपने कामको दक्षता पूर्वक नहीं कर सकता। इसलिये किसी मित्रकी सलाहसे वह किसी रात्रि पाठशालाकी नकशा सीखनेकी कक्षामें अपना नाम लिखवा लेता है। लेकिन, यदि वहांकी पढ़ाईका ढंग ऐसा ही है जैसा कि हमारे वर्त्तमान इंजीनियरिंग कालेज और स्कूलोंमें होता है, तो उसे प्रथम दो सबक तो सुलेख अंक और अक्षर लिखनेके मिलेंगे, फिर मान लीजिये, उसके बाद तीन सबक सीधी रेखा और गोले वगैरा खींचनेके विषयमें मिलेंगे, फिर पांच-सात सबक उसे बिन्दुओं, रेखाओं और ठोस वस्तुओंके प्रलम्बित दृश्य बनानेके विषयमें मिलेंगे, इस प्रकारसे उसके काफी दिन तो यों ही बीत जावेंगे और साथ ही नित्य प्रति फटकारें भी उसे अपने फोरमैनकी सहनी पड़ेंगी, जिससे उसका मन पढ़नेसे बहुत जल्दी ऊब जावेगा। हां, बेशक यह पाठ्यक्रम उनके लिये बहुत उपयुक्त है, जो कि ड्राफ्टसमैन बनना चाहते हैं।

उपरोक्त उदाहरणवाले खरादीके लिये तो यह अच्छा होगा कि पहिला सबक नकशेके दृश्योंपर देकर दूसरेसे ही पुर्जोंके भिन्न-भिन्न नाम पढ़ना सिखाया जावे, फिर नकशेमें आनेवाले संकेतोंका बोध कराया जावे, इसके बादमें भिन्न-भिन्न पैमानोंका उपयोग नकशोंमें क्यों किया जाता है यह बताया जावे और फिर भिन्न-भिन्न प्रकारकी चूड़ियां और किरें किस प्रकारसे नकशोंमें प्रदर्शित किये जाते हैं यह समझाया जावे और अंतमें कुछ सारणियोंका उपयोग समझा दिया जावे। यदि इस प्रकारसे वह एक सप्ताह भी स्कूलमें पढ़ लेगा तो कुछ सीखकर ही निकलेगा और शायद दो तीन दिन बाद ही उसकी डाट फटकार मिलना बंद हो जावे। फिर ऐसा भी हो सकता है कि इस छोटेसे कोर्सको पूरा करनेके बाद वह उच्चकाटिका कोर्स ले लेवेगा जिसमें उसे भली भांति गणित, विज्ञान और अक्षर ज्ञानकी शिक्षा दी जा सकेगी क्योंकि उस समय उसकी बुद्धि जाग्रत हो जावेगी और उसे ज्ञान प्राप्त करनेका चसका लग जावेगा।

२—अन्य विषयोंकी शिक्षा

प्रत्येक शिक्षार्थीको अपना मुख्य विषय पूर्णतया जाननेके लिये अन्य विषय भी सीखने पड़ते ही हैं, और शिक्षाका उद्देश्य सभ्यताका सिखाना और बुद्धिका विकास करना भी उसी समय हो सकता है जब कि शिक्षार्थीको सब विषयोंका थोड़ा-थोड़ा व्यवहारिक ज्ञान हो। इसलिये हमें ऐसा प्रबंध करना चाहिये कि वे सब आवश्यक विषय मुख्य विषयके सहारेसे और साथ-साथ ही सिखाये जावें और उनके अभ्यासका मूल आधार उनका मुख्य विषय ही हो; और वह भी उसी समय सिखाया जावे जबकि उसकी खास आवश्यकता हो।

मान लीजिये यंत्रघरका कोई कारीगर मिस्त्री बननेकी इच्छा रखता है और उसे ऐसा होनेके लिये, साधारण भिन्न, दशमलव भिन्न और त्रैराशिक आदि सीखना आवश्यक है, तो उसे साधारण भिन्नका जोड़ और बाकी उस समय सिखाना चाहिये जब कि वह यांत्रिक चित्रोंसे पुर्जोंका नाम पढ़ कर कच्चे मालकी आवश्यकताका अनुमान लगाना सीखे। जब उसे माइक्रोमीटर गेजोंका उपयोग या नामकी सीमायें सिखाई जावें तब उसे दशमलव भिन्न सिखाई जानी चाहिये, और जब वह चूड़ी या किरें-का काटना सीखे उस समय उसे त्रैराशिक सिखाया

जाना चाहिये। यदि इसी नीतिसे काम लिया जावेगा तो नीरससे नीरस विषय भी सरस हो जावेगा। इस लेखके परिशिष्टमें इस प्रकारके गणितका पाठ्यक्रम अध्यापकोंकी सुविधाके लिये दिया गया है, जिससे मालूम होगा कि गणितका कौन-सा विषय किस समय सिखाना चाहिये। इसी प्रकार अन्य सब विषयोंके पाठ्यक्रम मोचियों, दरजियों, सुनारों, लुहारों, बढ़इयों और कपड़ा बुननेवाले मिल मजदूरोंके लिये तैयार कर लेने चाहिये और जहां जिस प्रकारकी आवश्यकता हो वहां उसी विषयके स्कूल खोल देने चाहियें।

३—अध्यापक पेशेके अनुसार होने चाहिये

अध्यापक ऐसा न हो कि एक अध्यापक तो गणित पढ़ावे, दूसरा चित्रकारी सिखावे और तीसरा यंत्र शास्त्र आदि। अच्छा तो इसीमें है कि एक पेशेके विद्यार्थियोंको सारे विषय उसी पेशेका एक ही अध्यापक पढ़ावे, जिससे विभिन्न विषयोंका उस विशेष पेशेसे क्या सम्बन्ध है? और प्रत्येक पेशेमें उस विषयका कहां-कहां उपयोग हो सकता है समझाया जा सके।

४—उम्र

कक्षायें बनाते समय उम्रका भी विचार करना आवश्यक है। अधिक उम्रके मनुष्य जल्दी सीख सकते हैं क्योंकि वे अपनी कमीको समझते हैं और उनकी बुद्धि दुनियाके अनुभवोंके कारण काफी विकसित हो जाती है। छोटी अवस्थाके विद्यार्थी कुछ बेपरवाह होते हैं, उनके दिलमें शिक्षकको पढ़नेकी तीव्र इच्छा जाग्रत करनी होती है इसलिये उनकी पढ़ाईका ढंग निराला ही रखना होता है।

५—हाजरी

मजदूर करीब-करीब सभी गृहस्थ होते हैं कईयोंकी तो कारखानेकी हाजरी भी रात और दिनकी हफ्ते वार बदलती रहती है, इसलिये स्कूलमें नित्य प्रति-की हाजरीकी आशा भी उनसे नहीं करनी चाहिये। इस लिये सबक इस प्रकारसे बनाये जाने चाहिये कि यदि कोई मजदूर एक सप्ताह न भी आ सके तो दूसरे सप्ताह-में भी उसका काम चालू हो सके और किसी भी एक दिनका सबक व्यर्थ न जावे। ऐसे मजदूरोंको अभ्यासके लिये घरपर करनेका काम भी दिया जा सकता है।

६—फीस

प्रत्येक विद्यार्थीसे कुछ न कुछ फीस जरूर लेनी चाहिये, इससे हाजरी अच्छी होगी, और उन्हें शिक्षाका मूल्य भी मालूम पड़ेगा, जिससे वे अधिक ध्यानसे सीखेंगे। यदि फीस न ली जावे तो उनके मालिकोंका या किसी और प्रकारका दबाव जरूर होना चाहिये।

७—शिक्षक

शिक्षक जिस पेशेके मजदूरोंको सिखावें वे उसमें पूर्ण तथा दक्ष होने चाहिये, अक्सर बुड्ढे और अवकाश प्राप्त मनुष्योंको ऐसी जगहोंपर लेनेका रिवाज है, लेकिन यह याद रखना चाहिये कि उनमें कुछ शक्ति और उत्साह नहीं रह जाता, दूसरी तरफ जवान शिक्षकोंमें उत्साह तो होता ही है लेकिन कार्य दक्षता नहीं होती और वे अपने विद्यार्थियोंकी कठिनाइयां नहीं जानते इसलिये बीचकी अवस्थाके शिक्षक लेना अधिक उपयोगी होगा।

परिशिष्ठ

मिस्त्रीयोंकी गणितकी शिक्षाका पाठ्य क्रम

पाठ—१—संख्या लेखन, व्यवहारिक रीतिसे।

पाठ—२—लम्बाई नापना सिखाते समय, लम्बाई की भिन्न-भिन्न इकाइयाँ सिखाई जावें, और सीधी टेढ़ी और गोल रेखाओंका भेद भी समझाया जावे। और भिन्न-भिन्न रेखा गणितीय आकृतियोंसे परिचय भी करा दिया जावे।

पाठ—३—लकड़ी, लोहा, कील, पेंच आदि बाजार-से खरीदना सिखाते समय, भारतीय और विदेशी धनकी इकाइयां समझाई जावें और उनका साधारण परिवर्तन भी बताया जावे। इसीके साथमें बोझकी वैज्ञानिक
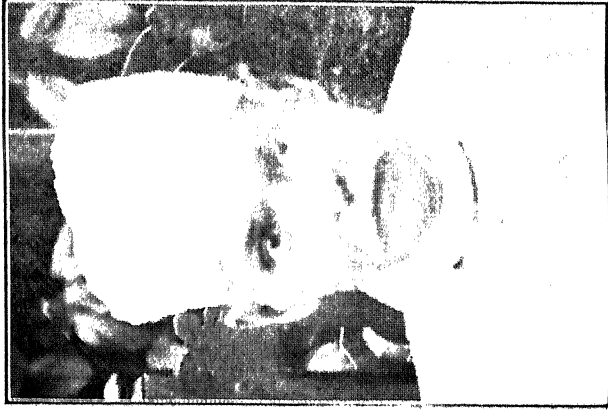
महामना पं० मदनमोहन मालवीय।
तेरह वर्ष तक उपसभापति

बा० शिवप्रसाद गुप्त।
सभापति १९२५-१९२७

स्व० डा० गणेशप्रसाद ।
सभापति १९३३-१९३५

डा० नीलरत्न धर ।
सभापति १९३०-१९३३

व्याख्या की जावे और उसे नापनेकी प्रचलित एकाइयाँ बताई जावें। बोझके भिन्न-भिन्न बाँट दिखा कर उन्हें उठवा कर उनकी सापेक्षताका अनुभव भी करवाया जावे।

पाठ—४—स्टोरमें सामानका जमा और खर्च सिखाते समय साधारण जोड़ और बाकी सिखाई जावे।

पाठ—५—भिन्न-भिन्न आर्डरोंपर काम करनेके लिये कच्चा माल स्टोरसे कितना-कितना और किस-किस प्रकारका लिया जावे यह सिखाते समय साधारण गुणा और भाग सिखाया जावे।

पाठ—६—गुनिया और सावलका उपयोग समझाते समय हर पहल नट और तिपहले रेती वगैरा सामने रखकर कोणोंका माप कालापाससे समझाना चाहिये।

पाठ—७—जमीनका नाप, रँगाई, और चद्दरोंकी जड़ाई आदिका एस्टीमेट बनाना समझाते समय क्षेत्रफल निकालना समझाना चाहिये। और इसी मौकेपर मजूरीका हिसाब लगाते समय, समयका नाप भी समझाना चाहिये।

पाठ—८—तरह-तरहके फरनीचर और लकड़ीके फरमें बनाते समय कितनी लकड़ी खर्च होती है इसका और दीवारोंकी चुनाई और जमीनकी खुदाईका हिसाब लगाना सिखाते समय घनफल मालूम करना सिखाना चाहिये।

पाठ—९—जल-शक्ति, संकुचित हवाकी शक्ति, वाष्प शक्ति और शून्य द्वारा चलनेवाले यंत्रोंको समझाते हुए बताना चाहिये कि हवाका, जलका, संकुचित हवाका वाष्पका और शून्यके कारण दबावका हिसाब किस प्रकारसे किया जाता है। ठोस, द्रव और गैसें क्या हैं और इनके दबावके नियम क्या हैं? भार और दबावमें क्या अंतर है इत्यादि बातें और पिचकारी, पंप और जल-शक्तिसे चलनेवाले प्रेस आदिका सिद्धान्त इसी समय सिखाना चाहिये।

पाठ—१०—वाष्प आदिकी शक्तिसे चलनेवाले इंजनोंके सामर्थ्य आदिका हिसाब समझाते समय बताना चाहिये कि गरमी क्या होती है, उसे कैसे नापते हैं। कार्यशक्ति और सामर्थ्यमें क्या भेद है। अश्वबल क्या होता है। गरमी और विद्युत-शक्तिको अश्वबलमें कैसे नाप सकते हैं, इत्यादि।

पाठ—११—डिवाइडिङ्ग हेडोंके इन्डेक्स प्लेट बनाना और मिलिंग मशीनोंपर किर्रे काटना सिखाते समय लघुत्तम समापवर्त्य और अनुपात सिखाना चाहिये।

पाठ—१२—खराद मशीनपर चूड़ी काटना सिखाते समय जैसा कि सिखाना चाहिये।

पाठ—१३—नकशोंमें नाप पढ़ना सिखाते समय साधारण भिन्नका स्वरूप सिखाना चाहिये। इन्हीं नकशोंके पुर्जोंकी पूरी नाप और टुकड़ोंमें नाप मालूम करना सिखाते समय साधारण भिन्नोंका जोड़ और बाकी सिखाना चाहिये।

पाठ—१४—नकशोंके अनुसार लोहे, पीतलके पुरजों और सरियोंका बोझा आदि निकालते समय भिन्नोंका गुणा और भाग सिखाना चाहिये।

पाठ—१५—गोलाकार और गोल कटावके सामानको बनानेके वास्ते सामानका अंदाजा लगाते समय और बोझे आदिका हिसाब लगाते समय वृत्तकी परिधि और क्षेत्रफल निकालना सिखाना चाहिये।

पाठ—१६—पुली, माल, दाँतवाले किर्रे, चूड़ियाँ, तुला आदिके सिद्धान्त समझाते समय अनुपात और समानुपात सिखाने चाहिये।

पाठ—१७—नापकी सीमाएँ, फीलंगेज, माइक्रोमीटरगेज, और वरनियरगेज आदिका उपयोग समझाते समय दशमलव भिन्नका सिद्धान्त सिखाना चाहिये और साथ ही उसकी जोड़ और बाकी भी सिखानी चाहिये।

पाठ—१८—गरमीके कारण ठोसोंका प्रसार, जैसे इक्कोंकी हालोंमें, रेलोंमें, औसत मालूम करते समय, बोल्ट, रिवट, पिन, काटर, और टाईराडोंकी ताकत मालूम करते समय दशमलवका गुणा और भाग सिखाना चाहिये।

पाठ—१९—वृत्तोंका क्षेत्रफल, गेंदोंका और गोलियोंका घनफल आदि निकालना सिखाते समय वर्गीकरण, वर्गमूल, घनीकरण और घनमूलकी क्रियायें सिखानी चाहिएँ।

पाठ—२०—इस पाठमें बीजगणितके कुछ प्राथमिक सिद्धान्त सिखाने चाहिये।

पाठ—२१—सूत्रोंका उपयोग सिखाते समय समीकरणका सिद्धान्त सिखाना चाहिये।

पाठ—२२—प्रायोगिक रेखागणित पुर्जों पर निशान लगाते समय सिखानी चाहिये।

पाठ—२३—यांत्रिक चित्रकारीके सिद्धान्त अर्थात प्रलम्बित दृश्य बनाना सिखाना चाहिये।

पाठ—२४—टीनवालोंकी प्रायोगिक रेखागणित।

पाठ—२५—सरल त्रिकोणमिति।

तारागण और विश्व-मंडल

(ले०—श्री रमाशंकर सिंह, बी० एस-सी०, विशारद)

कल्पना कीजिये कि आप एक अँधेरी रातमें मैदानमें खड़े हैं। सहज ही में आपका ध्यान चमकते हुये तारागणकी ओर जाता है। वे अपनी अनुपम छटासे मुग्ध कर देते हैं किन्तु क्या आप बता सकते हैं कि वस्तुतः ये तारे क्या हैं और विश्व-मण्डलमें इनका स्थान क्या है? ये तारे तथा नक्षत्र सर्वदा एक ही मार्गका अनुसरण करते हैं या इनकी दूरी हमसे घटती बढ़ती है? ये प्रश्न बड़े महत्वके हैं और आधुनिक समयमें वैज्ञानिकोंने इनकी जाँच करना आरंभ कर दिया है जिससे हम विश्व-रचनाके संबंधमें बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त कर पाये हैं।

ये तारे बहुत दूर हैं किन्तु वैज्ञानिक अपनी प्रयोगशालामें बैठे-बैठे इनकी रचना तथा दूरी संबंधी ज्ञान रश्मि-चित्रमापक द्वारा प्राप्त करते हैं। प्रयोगों द्वारा यह बात सिद्ध है कि ये तारे हमसे दूर चले जा रहे हैं और इस प्रकार विश्व-मण्डल बढ़ रहा है। अब प्रश्न यह है कि विश्व-मण्डल बढ़ेगा क्यों? सापेक्षवादके अनुसार अन्तराल अथवा देशके गुण उसमें रहनेवाली वस्तुओंपर भी निर्भर हैं। तारे और नीहारिकायें प्रकाश-किरणों तथा अन्य ईथरकी लहरें भेज रही हैं। यदि आकाश बढ़ता नहीं तो इस विकरणके कारण आकाशमें रहनेवाले पदार्थोंका स्थायित्व ठीक नहीं रह सकता किन्तु यदि आकाश बढ़ता है तो यह उनके अस्थायित्वका कारण नहीं हो सकता। यह प्रभाव प्रकाश किरणोंके चापके कारण है। मैक्सवेलका यह सिद्धान्त है कि प्रकाशित वस्तु पर प्रकाशकका दबाव पड़ता है। इस प्रकार इस दबावके कारण विश्व मण्डलका फैलना गणितकी दृष्टिसे अति आवश्यक है। एडिंगटन एलक्ट्रनके गुणोंके आधारपर इस फैलते विश्वकी कल्पना करते हैं। उनके अनुसार एलक्ट्रनकी मात्राका संबंध विश्वके परिमाणसे और विश्व भरके सभी एलेक्ट्रनकी संख्यासे है, अर्थात विश्वके एलक्ट्रनकी संख्याके वर्गमूलको उसके अर्ध-व्याससे भाग दें तो जो संख्या प्राप्त होगी उसमें है। विश्वमें एलेक्ट्रनकी संख्या क़रीब १०[illegible] के है और उसका अर्ध-व्यास १,०६०,०००,००० प्रकाश-वर्ष के। एडिंगटनने इसके आधारपर हिसाब लगाया है कि ५२८ किलामीटर प्रति सेकंड प्रति मेगापरसेककी चालसे वस्तुयें फैल रही हैं। पृथ्वीसे बहुत दूरपर जो नीहारिकायें हैं वे १५,००० किलोमीटर प्रति सेकंडसे दूर भागती हुई पाई गई हैं। इससे पता चलता है कि विश्व १०,००० लाख वर्षसे अधिक पुराना नहीं हो सकता। विश्वकी यह आयु तारोंकी उत्पत्ति संबन्धी निकाली गई आयुसे हज़ार गुना कम है किन्तु भू-रचना द्वारा निकाली हुई आयु थोड़ी अधिक है। अस्तु, पृथ्वी इस विश्व-मण्डलकी पुरानी वस्तुओंमें नहीं है। फैलते हुए विश्वके आधारपर जो इसकी आयु निकाली गई है उसके इतने कम होनेके कारण कई कठिनाइयाँ उपस्थित हो जाती हैं। आइनस्टीन और सिटरका कहना है कि उपरोक्त गणनामें जो राशि है उसके धन या ऋण होनेका ज्ञान न होनेके कारण कोई वजह नहीं कि इस

विश्वको हम सिकुड़ता हुआ क्यों न समझें। लैमेटेयर विश्व-रचना के लिये आतिशबाज़ीके सिद्धान्तकी कल्पना करता है। उसका कहना है कि विश्व-रचनाकी गति सर्वदा वही नहीं रही है जो इस समय है। इस समय विश्वमें जो वस्तुएँ दीखती हैं वे केवल एक बहुत ही तेज़ आतिशबाज़ीकी राख और धुयेंके समान हैं। कस्मिक किरणों इसका पूर्ण संकेत कर रही हैं। कस्मिक किरणोंमें जो शक्ति अन्तर्हित है वह बहुत-कुछ पदार्थोंके भीतरकी सारी शक्ति के तुल्य है और शायद उसका सवाँ भाग है। यह बहुत आश्चर्य-भरी बात है कि ये किरणें जो कठिनाईसे पहिचानी जा सकी हैं इतनी शक्ति रखती हैं। इसका अनुमान यों किया जा सकता है। सभी अणु शक्तिसे परिपूर्ण हैं और इस प्रकारकी एक औंसकी शक्ति यदि प्राप्त हो सके तो वह एक जहाज़को सारे अटलांटिक महासागरमें चलाने भरको पर्याप्त होगी। इस प्रकार सारे विश्वमें न जाने कितने अणु होंगे और उनकी अपार शक्तिकी तुलना कस्मिक-किरणोंकी शक्तिसे की जाय। केवल तारओंकी शक्ति कस्मिक किरणोंसे कम है, अस्तु संभव है तारागण ही इन कस्मिक किरणोंके जन्मदाता हों। इस समय ताराओंके चारों ओर जो वायु-मण्डल है उनमें कस्मिक किरणें घुस नहीं सकतीं, इससे यह पता चलता है कि शायद ताराओंके पास पहले वायु-मण्डल न हो। लेमेटेअर इस परिणामपर पहुँचता है कि तारे १००,००० वर्ष पूर्व पैदा हुये होंगे और उनकी रचनामें कस्मिक-किरणोंका विशेष हाथ है। जब रेडियमका एक अणु टूटता है तो गामा किरणें निकलती हैं जो कस्मिक किरणोंके समान हैं। क्या यह संभव नहीं कि कस्मिक किरणें भी आरंभमें एक असाधारण-अणुके टूटनेसे बनी हों और यह अणु पृथ्वी तथा ताराके सदृश हो। युरेनियम सब अणुओंमें भारी है किन्तु 'जीन्स' युरेनियम अणुओंसे भी बड़े अणुके अस्तित्वकी कल्पना ताराओंकी शक्तिके समझाने के लिये करता है। लेमेटेअर ताराको इसी असाधारण-अणुके विघट्टन अथवा विच्छिन्नका प्रतिफल बताता है।

लेमेटेअरके इस सिद्धांतके अनुसार विश्व पृथ्वीसे दस गुना अधिक पुराना नहीं हो सकता। सर्वप्रथम सारा विश्व एक असाधारण-अणुके भीतर निहित था। सारा विश्व पृथ्वीसे अधिक बड़ा नहीं था। जब इस अणुका स्फोटन हुआ तो इससे कण तथा किरणें निकलीं और आकाश बढ़ना आरंभ हुआ। इस असाधारण अणुके कुछ भाग इतने भारी हुये होंगे कि उनके आकर्षणके द्वारा कुछ कणोंका दूर जाना कठिन था। इस प्रकार तारा तथा तारागणकी रचना हुई होगी। इसी विस्फोटनके समय बहुत-से कण और साधारण अणु एक गैसकी शक्लमें होंगे और इन्हींमें एकद्रवीकरणसे नीहारिकायें बनी होंगी।

विश्व-रचनाकी ऐसी कल्पना कोई असाधारण बात नहीं हो सकती। एक छोटा-सा बीज बढ़कर एक वृक्ष बन जाता है और एक अंडा बढ़कर पक्षी बन जाता है। इसी प्रकार यह भी संभव है।

विश्व-रचनाके संबन्धमें मिलने वैज्ञानिकका दूसरा सिद्धान्त है। वह पुराने विचारोंको लेकर चलता है और आकाशके वक्र होनेकी भी कल्पना नहीं करता है। आकाश उसके अनुसार पहले बिलकुल शून्य था और केवल एक छोटा-सा गोला इसके भीतर था। तमाम तारे इसी गोलेके भीतर थे और यों हीं घूम रहे थे। बहुत समयके पश्चात् ये तारे आकाशमें दूर-दूर टहलने लगे और आकाशमें सैर करने लगे। सबसे दूर जो वस्तुयें हैं वे उतनी ही तेजीसे भागी जायेंगी जैसा कि प्रयोग द्वारा सिद्ध है। दूसरे शब्दोंमें मिलनेने सापेक्षवादका एक नया व्योहार किया है। वह इस परिणामपर पहुँचता है कि विश्व सभी दर्शकोंको एकसा ही दृष्टिगोचर होगा यदि स्थानीय अनियमितताको दूर कर दिया जाय। प्रत्येक दर्शक अपनेको विश्वके केन्द्रपर समझ सकता है बशर्ते कि वह समय-अक्षको आकाश केन्द्रसे दूर ठीक करके चुने।

ताराओंकी रचनाके संबन्धमें मिलनेका जो सिद्धांत है वह और दिलचस्प है। उसने उन ताराओंको जो कभी विशेष रूपसे चमकते और फिर बुझ जाते हैं और जिन्हें नोवा कहते हैं विशेष महत्व दिया है। आप एक असाधारण अणुकी कल्पना कीजिये जिसकी रचना साधारण अणुओंके इकट्ठा करनेसे न होकर ऋणाणु और धनाणुओंसे हुई है। ई० सी० स्टोनर ने ऐसे असाधारण-अणुका घनत्व निकाला है जो कि पानीसे ३,८,५०,००० गुना अधिक है। क्वान्टम सिद्धांत द्वारा यह सिद्ध है कि एलेक्ट्रन (ऋणाणु) सिवाय

अपनी दशा और स्थान बदलनेके और कुछ नहीं कर सकते और वह पदार्थ बाहरी किसी शक्तिसे प्रभावित नहीं हो सकता। ऐसे पदार्थमें होकर प्रकाशकी किरण पार जा सकती है। अब हम ताराके विषयमें सोचें। ताराका घनत्व पानीसे कम है और विशेषकर अधिकांश गैसके रूपमें विद्यमान है। गैसकी ऐसी रचनाके स्थिर होनेका कारण उसमें अंदर का विकरण है। धीरे-धीरे अंदरके विकरणका दबाव कम होने लगता है और ताराके केन्द्रपर एक विकृत द्रव्यका भाग बनता है। इस द्रव्यकी पारदर्शकताके कारण विकरण-की किरणें अचानक उससे होकर गुजरती हैं किन्तु बाहरी भागसे इस आसानीसे नहीं निकल सकतीं। अतः तारेका बाहरी भाग दूर हट जाता है और एक फैलते हुये लपटके गोलेकेसमान जान पड़ता है। चमकते हुये भागके अचानक बढ़ जानेसे तथा विकृत द्रव्यके बननेके कारण जो शक्ति बाहर आती है उससे तारेकी चमक और बढ़ जाती है। अतः जो पहले फीका जान पड़ता था वह नोवा बनाकर प्रगट होता है। मिल्नेके कथानुसार नोवा प्रत्येक ताराके जीवन एक भाग है। स्वयं हमारे स्थानीय विश्वमें आकाश-गंगामें प्रतिवर्ष एक नोवा दृष्टिगत होता है।

वैज्ञानिक जगतकी दूसरी आश्चर्यजनक घटना इस बातका पता लगाना था कि जो तारे बिलकुल अचल देख पड़ते हैं वे दर असल अचल नहीं हैं। हैलेके इस अनुसन्धानने मानव-जगतमें एक नई आशाका संचार किया। और ताराओंके विषयमें भी की बुनियाद डाली। १८८२में अल्वान क्लार्कने 'सीरियस'के साथ ही एक दूसरे सहचारी तारेका पता लगाया। १९१४में आडम्सने बताया कि सहचर का रंग लाल नहीं प्रत्युत सफ़ेद है और इसका घनत्व पानीसे ६०,००० गुना अधिक है। उस समय ये बातें भद्दी जान पड़ती थीं किन्तु दस वर्षके पश्चात एडिंगटनने बताया कि यह असंभव नहीं हो सकता। रुसार्ड लादरफोर्डने अणुका जो रूप दिया है उसमें से बाहरी एलेक्ट्रनके निकाल लेनेसे उसका आकार कम हो सकता है। तारेके केन्द्रपर ताप-क्रम तथा चापके अधिक होनेके कारण अणु एक दूसरेसे धक्का खाकर अपने बाहरी भागोंको अलग करनेमें सफल हुये होंगे। इस प्रकार हम इतने बड़े घनत्वको असंभव नहीं कह सकते।

एडिंगटन तथा अन्य विद्वानोंने सापेक्षवादपर अवलम्बित एक प्रयोग द्वारा उसके अनुमानको ठीक कर दिखाया। इस प्रकार मिल्नेका सिद्धान्त एक प्रकारसे पूर्ण दीख पड़ता है किन्तु प्रकृतिके विचित्र रहस्योंका सुलझाना वास्तवमें बड़ा दुरूह है। जो बात आज सच्ची दीख पड़ती है उसे हम कल असत्य कहते हैं। कौन कह सकता है ये तारागण भी निकट भविष्यमें कोई दूसरी ही करामात दिखावें।

निःसंक्रामक

[प्रो० फूलदेवसहाय वर्मा, बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी]

मनुष्योंके अनेक और कुछ बहुत भयङ्कर रोग बहुत छोटे-छोटे सजीव पदार्थोंके कारण होते हैं। ये इतने छोटे होते हैं कि हम उन्हें अपनी आँखोंसे देख नहीं सकते। उन्हें देखनेके लिये प्रबल सूक्ष्मदर्शक वा अति सूक्ष्मदर्शकोंकी सहायता लेनी पड़ती है। इन सूक्ष्मजीवोंको "बैक्टीरिया' या माइक्रो आरगेनिज़्म' कहते हैं। हम उन्हें सूक्ष्मजीवाणु कहेंगे। कुछ सूक्ष्मजीवाणु निर्दोष होते हैं और उनसे मनुष्यमात्रकी कोई हानि नहीं होती पर कुछ ऐसे होते हैं जो रोगोंको उत्पन्न करते हैं। इस दूसरे प्रकारके जीवाणुओंको रोग-उत्पादक जीवाणु कहते हैं। ये साधारणतया दो रूपोंमें पाये जाते हैं। एक तो सामान्य सजीव अवस्थामें और दूसरे प्रायःनिर्जीव सुप्त अवस्थामें। पर ये अनुकूल

परिस्थितियोंमें सजीव हो क्रियाशील हो जाते हैं। ये सुप्त सूक्ष्मजीवाणु ताप और रासायनिक वा भौतिक साधनों-से शीघ्र नष्ट नहीं होते।

इन जीवाणुओंकी एक विशेषता यह है कि इनमें जलका अंश अवश्य रहता है और ये जलके कारण ही अपना कार्य करते हैं। इन सूक्ष्मजीवाणुओंको नष्ट करनेके लिये ताकि इनसे रोग फैल न सके वैज्ञानिकोंने अनेक द्रव्यों और साधनोंका आविष्कार किया है। ये पदार्थ प्रधानतया दो प्रकारके होते हैं। एक तो कुछ ऐसे रासायनिक द्रव्य हैं जो सूक्ष्मजीवाणुओंकी क्रियाको, उनकी वृद्धिको रोक देते हैं और उन्हें इस प्रकार निकम्मा बना देते हैं वे कोई क्षति न कर सकें। ये उन्हें बिल्कुल नष्ट नहीं करते। ऐसे द्रव्योंको अंगरेज़ीमें ऐण्टीसेप्टिक्स कहते हैं। हम उन्हें रक्षोघ्न कहेंगे। दूसरे प्रकारके ऐसे द्रव्य हैं जो जीवाणुओंका बिल्कुल विनाश कर देते हैं। ऐसे द्रव्योंको अँगरेज़ीमें डिसइन्फेक्टेंट्स कहते हैं। हम उन्हें निःसंक्रामक कहेंगे। अनेक रासायनिक द्रव्योंका अविष्कार हुआ है जो इन सूक्ष्म-जीवाणुओंकी वृद्धिको रोकते, उन्हें निकम्मा बनाते और उन्हें नाश भी करते हैं। ये रक्षोघ्न और निःसंक्रामक शक्तियाँ विभिन्न रासायनिक द्रव्योंमें विभिन्न होती हैं। इन शक्तियोंके मापनेकी अनेक विधियाँ हैं। जो विधि साधारणतया प्रयुक्त होती है उसे "रिडीयल-वाकर परीक्षण" कहते हैं। इस परीक्षणके द्वारा किसी रासायनिक द्रव्यकी जीवाणु-नाशक शक्तिकी कार्बोलिक अम्लकी जीवाणु-नाशक शक्तिसे तुलना करते हैं। यह प्रयोग साधारणतया २४ घंटेसे उपजे हुए टाइफायड ज्वरके सूक्ष्म-जीवाणु पर करते हैं। जो द्रव्य जलमें अधिक विलेय होते हैं उनकी क्रिया जीवाणुओं पर अधिक तीव्र होती है। जो विष जलमें अविलेय होते हैं उनकी क्रिया अपेक्षाकृत कम। मैं यहां उन निःसंक्रामक और रक्षोघ्न द्रव्योंका वर्णन करूँगा जो कार्बनिक है।

कार्बोलिक अम्ल—इसे फिनोल भी कहते हैं इसका प्रयोग निःसंक्रामक रूपमें लिस्टरने १८६७ ई० में पहले-पहल किया था। यह सरलतासे प्राप्य है और सस्ता होता है। इसे छूनेसे कोई विशेष हानि नहीं होती। रखने-से इसकी निःसंक्रामक शक्ति घटती नहीं। प्रोटीनकी उपस्थितिमें भी इसके कार्यमें कोई बाधा नहीं पड़ती। भिन्न-भिन्न सूक्ष्म-जीवाणुओंपर इसकी क्रिया विभिन्न होती है। सजीव जीवाणु प्रायः सब ही इसके २ से ३ प्रतिशत विलयनमें पाँच मिनटसे कम ही में नष्ट हो जाते हैं। सुप्त सूक्ष्म जीवाणुओंपर इनकी क्रिया बिल्कुल विभिन्न होती है। अंथ्रैक्सके सूक्ष्म जीवाणु इसके ५ प्रतिशत विलयनमें भी ४ दिन तक नष्ट नहीं होते। सेटैनस्के जीवाणु इसके ५ प्रतिशत विलयनमें १५ घंटे तक जीवित रहते पाये गये हैं। यह पर्याप्त मात्रामें कोयलेमें विच्छेदक स्रवणसे प्राप्त होता है। अतः इसे कृत्रिम रीतिसे तैयार करनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती यद्यपि यह बड़ी सरलतासे बेंज़ीनसे तैयार हो सकता है।

क्रीसोल—क्रीसोल फिनोलकी अपेक्षा कम विलेय होता है। इसके संपृक्त विलयनमें केवल २ प्रतिशत क्रीसोल रहता है। क्रीसोल तीन प्रकारके होते हैं। अर्थो-क्रीसोल, मीटा-क्रीसोल, और पारा-क्रीसोल। अर्थो और पारा-क्रीसोलकी निःसंक्रामक शक्ति एकसी होती है पर मीटा क्रीसोलकी बहुत कुछ भिन्न होती है। व्यावसायिक क्रीसोल ३५ भाग, मीटा-क्रीसोल ४० भाग और पारा-क्रीसोल २५ भाग रहता है। इसकी रक्षोघ्न शक्ति शुद्ध क्रीसोलसे तीव्र होती है। मनुष्योंके लिये क्रीसोल फीनोल से कम विषैला होता है। इसकी विलेयताके बढ़ानेके लिये अनेक यत्न किये गये हैं। उनमें एक विधि है कोमल साबुनके साथ एमलशन (पयस्य) बनाना। ऐसा ही तैयार किया हुआ लायज़ोल नामक पदार्थ है जो अंग्रेजी औषधालयोंमें मिलता है। यह इमलशन केवल सरजरीमें ही प्रयुक्त नहीं होता वरन् घरों, अस्तबलों और पैखानोंमें भी व्यवहृत होता है। इन इमलशनोंके बनानेके लिये अनेक यंत्र बने हुये हैं जिनमें 'कीनोक' औटो-मिक्सर वा 'शॉयर माल्सर' प्रमुख हैं।

थाइमोल—इसका व्यवहार दिन प्रति दिन बढ़ रहा है। यह कुछ पौधोंसे प्राप्त होता है। जवायनके बीजसे तेल निकलता है जिसे जवायनका तेल कहते हैं। इस तेलमें ५० से ५५ प्रतिशत तक थाइमोल रहता है। थाइमोल-की माँग इतनी शीघ्रतासे बढ़ रही है कि इस माँगकी पूर्त्ति के लिये कृत्रिम रीतिसे इसे प्राप्त करनेकी अनेक चेष्टायें

हुई हैं और कुछ ऐसी विधियोंका आविष्कार हुआ है जिनसे यह सस्ता तैयार हो सकता है। ऐसी एक विधिमें साइमीन प्रयुक्त होता है। एक दूसरी विधिमें मीटा-क्रीसोल से यह तैयार होता है। ये दोनों ही विधियाँ इसके आविष्कारकोंने पेटेन्ट करा ली हैं।

सैलोल—यद्यपि फीनोल एक बहुमूल्य रक्षोघ्न है विषैले और क्षादक होनेके कारण इसका प्रयोग उतनी स्वतंत्रतासे नहीं किया जा सकता। यह मुँहसे खाया नहीं जा सकता क्योंकि इससे मुह जल जाता है। इस कारण फीनोलसे कुछ ऐसे द्रव्य बनाये गये हैं जो मुख को जलाते नहीं। ऐसा ही एक पदार्थ सैलोल है। यह सैलिसिलिक अम्ल और फिनोलके योगसे बना है। मुँहसे खानेपर पेटमें यह ज्योंका त्यों रहता है पर आँतोंमें फीनोल और सैलिसिलक अम्लमें विच्छेदित हो आँतोंके लिये रक्षोघ्नका कार्य करता है। अतः यह सैलोल एक महत्व-पूर्ण उत्कृष्ट कोटिका आभ्यंतरिक निःसंक्रामक रोगोंके निवारणमें प्रयुक्त होता है। अनेक विधियोंसे यह तैयार हो सकता है पर इसके तैयार करनेकी सर्वोत्कृष्ट विधि सैलिसिलिक अम्लको फिनोल और फास्फरस-आक्सी क्लोराइडके साथ १२०° श० तक गरम करना है।

फेनील कार्बोनेट—फेनील कार्बोनेटके प्रयोग भी अधिकाधिक बढ़ रहे हैं। फीनोल, थाइमोल, क्रीयोसोट और ग्वैकोल-के कार्बोनेट प्रयुक्त हुये हैं। फीनोलको सोडियम हाइड्रॉक्साइडमें घुलाकर उसमें फौसजीन गैसके प्रविष्ट करानेसे फीनोल कार्बोनेट अविक्षिप्त हो जाता है। उसे छानकर सोडियम कार्बोनेटके हलके विलयनमेंऔर फिर जलमें धोनेसे यह शुद्ध रूपमें प्राप्त होता है। ऐसा प्राप्त फीनोल कार्बोनेट चमकता हुआ सूई-सा मणिभ होता है। यह जलमें अविलेय है पर अलकोहल और ईथरमें शीघ्रता-से घुल जाता है। इसी प्रकार थाइमोलमें फोसजीनके ले जानेसे थाइमोल कार्बोनेट और ग्वैकोलमें ले जानेसे ग्वैकोल कार्बोनेट प्राप्त होते हैं।

फार्मलडीहाइड—फीनोलके बाद फार्मलडीहाइड एक सर्वोत्कृष्ट निःसंक्रामक है। इसका जीवाणुनाशक शक्ति प्रबल होती है। इससे सब प्रकारके सूक्ष्म जीवाणु नष्ट हो जाते हैं। इससे छूनेमें कोई भय नहीं है। सब प्रकारके द्रवोंमें यह घुल जाता है। चमड़े और अन्य कार्बोनिक पदार्थोंके सुरक्षित रखनेके लिये यह सर्वोत्कृष्ट संरक्षक है। रीडीयलके प्रयोगानुसार एक भाग फार्मल्डी-हाइड एक लाख भाग दूधको ७ दिन तक सुरक्षित रख सकता है। यह साधारणतया मेथिल अलकोहलके आक्सी करणसे प्राप्त होता है। आक्सीकरणके लिये वायु-मण्डल का आक्सीजन अधिक सस्ता पड़ता है पर इस आक्सी-करण क्रियाके लिये किसी प्रवर्त्तककी आवश्यकता पड़ती है। ताम्र अधिक उपयोगी क्रियाशील प्रवर्त्तक सिद्ध हुआ है। तुरन्तका लध्वीकृत ताम्र अधिक अच्छा होता है। यह क्रिया प्रायः ४०० श० पर अच्छी तरहके सम्पादित होती है। ताम्रके स्थानमें थोरियम आक्साइड, अस्बेस्टसपर स्थित सीरियम सल्फेट, कृष्ण-प्लाटिनम वा अस्बेस्टसपर स्थित प्लाटिनम भी प्रयुक्त हो सकता है। पर इन सबके प्रयोगसे अनेक गौण क्रियाएँ होती हैं जिनसे कार्बन डाइ-आक्साइड, कार्बन मोनाक्साइड, और हाइड्रोजन अधिक मात्रामें बनते हैं। इस कामके लिये मेथिल अलकोहल प्रायः शुद्ध रहना चाहिये। एक प्रतिशत ऐसीटोनके रहनेसे कोई हानि नहीं होती पर २ प्रतिशत ऐसीटोनके होनेसे फार्मल्डी-हाइडकी मात्रा बहुत कम हो जाती है। यह क्रिया एक विशेष प्रकारके यंत्रमें सम्पादित की जाती है।

आयोडोफार्म—आयोडोफार्म एक उच्च कोटिका रक्षोघ्न है। यह पीले रंगका ठोस पदार्थ है। जलमें यह अविलेय होता है पर अलकोहल और ईथरमें घुल जाता है। इसमें एक विशेष प्रकारकी गंध होती है जिसे बहुत-से व्यक्ति पसन्द नहीं करते। पर सस्ता होनेके कारण अब भी यह पर्याप्त मात्रामें उपयुक्त होता है। आयोडीनके कारण ही इसमें रक्षोघ्नका गुण होता है।

एथिल अलकोहलपर पोटाशियम कार्बोनेटकी उपस्थितिमें आयोडीनकी क्रियासे यह बनता है। एथिल अलकोहलके स्थानमें ऐसीटोन भी प्रयुक्त हो सकता है। अधिक सुविधासे यह एथिल अलकोहल और पोटाशियम आयोडाइडके विद्युत विच्छेदनसे प्राप्त होता है।

क्लोरामिनटी—क्लोरीन वा ब्लीचिंगपाउडरके सदृश क्लोरीनवाले पदार्थ उत्तम निःसंक्रामक हैं पर क्षादक क्रियाके कारण उनका व्यवहार बहुत सोच विचारकर करना पड़ता है।

ये पदार्थ अस्थाई भी होते हैं। रखनेसे उनकी निःसंक्रामक शक्तिका ह्रास हो जाता है। क्लोरामिन-टी कार्बनिक पदार्थ है और इसमें क्षादक क्रिया अपेक्षाकृत अल्प रहती है। ठोस होनेसे यह बहुत काल तक सुरक्षित रक्खा जा सकता है।

क्लोरामिन-टी अनेक प्रकारसे तैयार हो सकता है। केवल एक विधिका यहाँ वर्णन किया जाता है। यह विधि रायल सोसायटीकी कार्यवाहीमें पहले-पहल प्रकाशित हुई थी। इसका सविस्तार वर्णन १९१८ ई०के जर्नल आफ सोसायटी आफ कैमिकल ३ इंडस्ट्रीज़के पृष्ठ २८८ टीमें दिया हुआ है। टोलुइन-पारा- सल्फोनेमाइड नामक कार्बनिक यौगिकको सोडियम हाइपो-क्लोराइटके ठंडे विलयन-में घुलाते हैं। उस विलयनको तब गरम करते हैं और उसमें यदि कोई ठोस पदार्थ रह जाय तो विलयनको छान लेते हैं। उसमें तब नमकका संपृक्त विलयन डालते हैं। इससे क्लोरामिन-टी अवक्षिप्त हो जाता है। इसे फिर नमकके विलयनसे धोते और वायुमें सुखाते हैं।

क्लोरमिन-टी एक मणिभीय ठोस पदार्थ है जिसमें क्लोरीनकी हल्की गंध रहती है। इसका एक भाग जलके १५ भागमें घुलता है। गरम जलमें यह अधिक घुलता है। इसमें १२से १३ प्रतिशत सक्रिय क्लोरीन रहता है। इसके जलीय विलयनको १३२ दिन तक रखनेपर भी इसमें शायद ही कोई ह्रास होता है। यह बहुत उच्च कोटिका कृमिनाशक है। घावोंपर इससे कोई खरखराहट नहीं होती। लालज्वर, सीतलाऔर अन्य संक्रामक रोगोंमें यह बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है।

डाइ-क्लोरामिन-टी क्लोरामिन-टीसे मिलता जुलता यह एक दूसरा निःसंक्रामक है जो सूक्ष्म-जीवाणुओंके विनाशमें प्रयुक्त हो रहा है।

हैलेज़ान -यह एक दूसरा नया निःसंक्रामक है। इसका रासायनिक नाम पेरा-डाइक्लोरो-सल्फोन-अमीनो-बेंजोइक ऐसिड है। इसके तैयार करनेकी विधि १९१७ई० में ब्रिटिश मेडिकल जर्नलमें प्रकाशित हुई थी। टोलुइन-पेरा-सल्फोनेमाइडपर सोडियम बाइक्रोमेट और गन्धकाम्ल और जलके साथ उबालनेसे यह बनता है और अवक्षिप्त हो जाता है। इसे फिर जलसे धोकर, सोडियम हाइड्रॉक्सा-इडमें घुलाकर हाइड्रॉक्लोरिक अम्लसे अवक्षिप्त कर इसे शोधित करते हैं। इस पर फिर सोडियम हाइपो-क्लोराइटकी क्रियासे निम्न तापक्रमपर हैलेज़ोन अवक्षिप्त होता है और जलसे धोकर वायुमें सुखाया जाता है।

शुद्ध हैलेज़ोन सफेद चूर्ण होता है। यह जलमें अविलेय होता है पर सोडियम कार्बोनेट, सोडियम बाइकार्बोनेट वा सोहागेके विलयनमें ठंडेमें घुल जाता है। हैलेज़ोनमें प्रायः २६ प्रतिशत सक्रिय क्लोरीन रहता है। यह सरलतासे ऐसी गोलियोंमें बनाया जा सकता है जिसकी तौल दशांश ग्राम हो। ऐसी गोलीमें ४ प्रतिशत हैलेज़ोन, ४ प्रतिशत सोडियमकार्बोनेट और शेष सोडियम क्लोराइड रहता है। एक गोलीसे साधारणतया एक लिटर जलके सूक्ष्मजीवाणु नष्ट किये जा सकते हैं।

कार्बनिक रंग— कुछ रंग सूक्ष्म-जीवाणुओंको बड़ी सरलतासे रंग देते हैं। ऐसा होनेसे उन सूक्ष्म-जीवाणुओंके रोग उत्पादक गुण नष्ट हो जाते हैं। पर ये रंग मनुष्योंके लिये बिल्कुल निर्दोष होते हैं। इसी सिद्धांतपर कुछ कार्बनिक रंग रक्षोघ्नके रूपमें प्रयुक्त होते हैं। इनमें प्रोफ्लेविन और ऐक्रि-फ्लेविन महत्वके हैं। प्रो-फ्लेविन डाइ-अमीनो-ऐक्री-डिन सल्फेट है। इसके तैयार करनेकी विधिको कैसेलाने पेटेंट करायी है। इसके तैयार करनेमें अनेक अवस्थाएँ हैं।

प्रोफ्लेविन कुछ लालापन लिये हुये बादामी रंगका होता है। जलमें यह शीघ्रतासे घुल जाता है। यह जलीय विलयन उदासीन होता है। यह एक सर्वोत्कृष्ट रक्षोघ्न है। अंतड़ियों और इसी प्रकारके अन्य अंगोंके लिये यह बहुत उपयोगी रक्षोघ्न सिद्ध हुआ है। रूईके कपड़े और चमड़ेको पीले रंगमें रंगनेके लिये भी यह एक उपयोगी रंग है।

प्रोफ्लेविनसे ही ऐक्रिफ्लेविन तैयार होता है। घावके लिये यह बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। ऐसे अनेक पदार्थ हैं जो सूक्ष्म-जीवाणुओंको विनाश कर देनेपर मनुष्योंपर उनका कोई हानिकारक प्रभाव नहीं पड़ता। वे ही उत्तम कोटिके रक्षोघ्न समझे जाते हैं जिनका मनुष्य-शरीरपर बहुत कम प्रभाव पड़े पर सूक्ष्म-जीवाणुओंको शीघ्र नष्ट कर दे। इस दृष्टिसे प्रोफ्लेविनऔर ऐक्रि-फ्लेविन सर्वोत्कृष्ट कोटिके रक्षोघ्न हैं।

क्या हमारे वायु-मण्डलके ऊपरी भागका तापक्रम अत्यधिक है ?

[ले०—डा० रामरत्न बाजपेयी, एम० एस-सी०, डी० फिल०]

रामायण पढ़नेवाला प्रत्येक व्यक्ति इस बातसे परिचित होगा कि सम्पातिने सूर्यलोकको उड़कर जानेका प्रयत्न किया था। जब वह बहुत ऊँचा उड़ गया तो सूर्यके समीप होनेके कारण उसके पंख जल गये और वह लंकाके समीप गिर पड़ा। इस कथाके पढ़नेसे यह भली भाँति प्रकट होता है कि इसके लेखकको सूर्य इत्यादि नक्षत्रोंकी दूरीका ठीक-ठीक पता न था तथा वे समझते थे कि यदि कोई व्यक्ति दस-पाँच मील ऊपर चला जाय तो वह सूर्यके समीप हो जायगा और उसकी प्रचण्ड आँचसे जल जायगा। समयकी गतिके साथ मनुष्योंका ज्ञान बढ़ता गया और उन्होंने इस बातका पता लगा लिया कि सूर्य पृथ्वीसे लाखों मील दूर है तथा दस पाँच मील ऊपर उड़ जानेसे हम सूर्यके समीप नहीं पहुँच सकते हैं।

वैज्ञानिक खोजका आरम्भ

स्वतंत्र वायुमें तापक्रम निकालनेका उद्योग सबसे पहले ग्लासगोके प्रो० विल्सनने सन् १७४९ ई० में किया था। उन्होंने तापक्रम मापक यंत्रोंको कनकौओंमें बाँधकर ऊपर उड़ाया और उनके द्वारा ऊपरी वायुमंडलका तापक्रम निकाला। उन्नीसवीं शताब्दीके प्रारम्भसे स्वयंलेखी तापक्रम-मापक यन्त्रोंका प्रयोग होने लगा और इस शताब्दीके उत्तरार्द्ध भागमें लोगोंने वैज्ञानिक यंत्र लेकर स्वयं गुब्बारोंमें ऊपर उड़कर वहाँके तापक्रमका पता लगाना शुरू किया। गत शताब्दीके गुब्बारेके उड़ाके इस नतीजेपर पहुँचे कि वायु-मंडलमें हम जैसे ऊपर चढ़ते जाते हैं तापक्रम प्रत्येक किलोमीटरमें ६ डिग्री सेन्टीग्रेड के हिसाबसे कम होता चला जाता है।

हम जैसे-जैसे वायु-मंडलमें ऊपर जाते हैं तापक्रम क्यों कम होता जाता है ?

यह बात भलीभाँति विदित है कि सूर्यकी किरणें हमारे वायु-मंडलका निचला भाग बिना गरम किये ही एक सिरेसे दूसरे सिरे तक पार कर जाती हैं क्योंकि वायुके मुख्य भाग ऑक्सिजन तथा नोषजन सूर्यकी रोशनीके अधिकतर भागके लिये पारदर्शी हैं। लेकिन पृथ्वीकी बात दूसरी ही है। जब किरणें धरातलपर पड़ती हैं तो यह खूब गरम हो जाता है; और यह उष्ण धरातल अपने समीपकी वायुको भी गरम कर देता है। यह गरम वायु अपने ऊपरकी वायुको भी गरम कर देती है। यह गरम वायु अपने ऊपरकी वायुसे हलकी होनेके कारण ऊपर उठती है। ज्यों-ज्यों यह ऊपर उठती है यह ऐसे वायु मंडलके ऐसे भागमें पहुँचती है जहाँ कि वायुका दबाव कम होता जाता है जिसके फलस्वरूप यह फैल जाती है जिसके फलस्वरूप यह फैल जाती है और ठंडी हो जाती है क्योंकि यह एक अत्यन्त प्रसिद्ध सिद्धान्त है कि वायु दबानेसे गर्म हो जाती है जैसा कि हम प्रतिदिन साइकिलमें हवा भरते समय देखते हैं और फैलनेसे ठंडी हो जाती है।

हिसाब लगानेसे पता लगता है कि एडियेबैटिक ठंडक दस डिग्री सेंटीग्रेड प्रति किलोमीटरके हिसाबसे होनी चाहिये। शुष्क एडियेबैटिक घटावकी दर कहते हैं। जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं घटावकी दर वास्तवमें केवल ६ डिग्री सेंटीग्रेड प्रति किलोमीटर है। इसका इसका कारण यह है कि हमने हिसाब लगानेमें कुछ ऐसी बातें मान ली हैं जो वास्तवमें नहीं पाई जातीं हैं जैसे कि वायु कभी भी बिलकुल शुष्क नहीं होती है, कुछ न कुछ भाप अवश्य बनी रहती है फिर यह क्रिया एक दम एडियेबैटिक भी नहीं हो सकती।

स्ट्रैटास्फियरका अन्वेषण

उन्नीसवीं शताब्दीके अन्त तक लोगोंका विचार था कि हम जैसे ऊपर चढ़ते चले जायँगे तापक्रम प्रत्येक किलोमीटरमें ६ डिग्री सेन्टीग्रेड कम होता चला जायगा। यहाँ तक कि यदि कोई लगभग ५०-६० किलोमीटर तक ऊपर चढ़ जाय तो एक ऐसे स्थानपर पहुँच जायगा जहाँ

कि तापक्रम बिल्कुल शून्य होगा।

परन्तु यह केवल लोगोंका अनुमान था क्योंकि वायु-मंडलके इन अगम्य भागोंके तापक्रमका पता भला किस प्रकार लगाया जाता। गुब्बारोंमें उड़ने-वालोंकी पहुँचके तो यह भाग बाहर ही थे। अतएव वैज्ञानिकोंने तापक्रम निकालनेकी नई रीतियां निकालीं और नये-नये यंत्र स्वयं लेखी तापक्रम मापक यंत्र बनाये जो कि छोटे-छोटे गुब्बारोंके साथ ऊपर भेजे जा सकें। इन गुब्बारोंको सन्धानिक गुब्बारे कहते हैं इनकी उन्नति अधिकतर फ्रांसमें टेसेराइनने, जर्मनीमें आसमनने तथा इंगलैंडमें डाइन्सने की।

सन् १८९९ ई० में इन्ही सन्धानिक गुब्बारोंके द्वारा टेसेराइन तथा आसमनने एक बड़ा प्रसिद्ध आविष्कार किया जोकि विज्ञानके इतिहासमें सर्वदा ऊपर बना रहेगा। इन वैज्ञानिकोंने यह खोज निकाला कि (फ्रांस तथा जर्मनीमें) ११ किलोमीटरकी ऊँचाईपर तापक्रम कम होना अकस्मात् बन्द हो जाता है और उसके ऊपर यह लगभग एकसा रहता है। वायु मंडलका यह भाग जहां कि तापक्रम सर्वदा ४५ डि० से० के लगभग रहता है ऊर्ध्वभाग या स्ट्रैटास्फियर कहलाता है। और सबसे नीचेका भाग जहां कि ऊँचाईके साथ तापक्रम कम होता है अधोभाग या ट्रोपास्फियर कहा जाता है। इन दोनोंके बीचके भागको ट्रोपोपाज़ कहते हैं। थोड़े ही समयके अन्दर इन वैज्ञानिकोंकी खोजका समर्थन पृथ्वीके कोने-कोनेसे हुआ।

सन् १९१० ई० तक स्ट्रैटास्फियरमें तापक्रमकी नाप केवल ऊपरी अक्षांशोंमें हुई थी और वैज्ञानिक लोगोंका विचार था कि ट्रोपोस्फियरमें तापक्रम बराबर एक ही हिसाबसे कम होता चला जाता है जब हम ट्रोपोपाज़में पहुँचते हैं तो या तो तापक्रमका कम होना एक दम रुक जाता है या फिर तापक्रम धीरे-धीरे बढ़ने लगता है अर्थात् ट्रोपोपाज़पर तापक्रम परिवर्तन अचानक ही नहीं होता है बल्कि धीरे-धीरे बढ़ना प्रारम्भ होता है। परन्तु १९१० ई० के लगभग बटेवियामें तापक्रमकी नापसे पता लगा कि उपर्युक्त नियम विषवुत रेखाके समीपके देशोंमें लागू नहीं होते हैं। इन प्रदेशोंमें ट्रोपोस्फियरमें तो ताप-क्रम उसी प्रकार कम होता जाता है जैसा ऊपर अक्षांशों-में; लेकिन ट्रोपोपाज़में पहुँचनेपर ऊपरी अक्षांशोंकी तरह स्थिर रहनेपर धीरे-धीरें बढ़नेके बजाय तापक्रम एक दम बढ़ना प्रारम्भ हो जाता है बटेवियाके तापक्रमकी इन नापोंका समर्थन बादमें भारतवर्षमें आगरा हवा घरमें हुआ और हमारे यहांके एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक के० आर० रामनाथन् ने इसका कारण भी ढूंढ निकाला। उन्होंने इस बातको सिद्धकर दिया है कि इस अन्तरका कारण स्ट्रैटास्फियरमें विभिन्न मात्रामें आपका होना है।

उपरोक्तसे पाठकोंका विचार शायद ऐसा हो गया हो कि सब जगह स्ट्रैटास्फियर में तापक्रम लगभग एकसा ही रहता है। परन्तु वास्तवमें बात ऐसी नहीं है क्योंकि स्ट्रैटास्फियरके अन्दर तापक्रम विषवुत रेखासे ध्रुवोंकी ओर बढ़ता जाता है। वायु मंडलके इस भागमें सबसे ठंडी जगहें विषवुत रेखाके पास पाई जाती हैं। ऋतुओंके साथ भी स्ट्रैटास्फियरके तापक्रममें परिवर्त्तन होता रहता है जो कि भिन्न-भिन्न अक्षांशोंमें अलग-अलग होता है। उदाहरणार्थ भारतवर्षमें स्ट्रैटास्फियर जाड़ोंकी अपेक्षा गर्मीमें अधिक ठंडा और ऊँचा रहता है परन्तु योरोपमें इसकी ताप-क्रम और ऊंचाई गर्मियोंमें ही अधिक रहती हैं।

अब प्रश्न यह उठता है कि आखिरकार स्ट्रैटास्फियरमें ताप-क्रम स्थिर क्यों रहता है। इसका उत्तर हम्फ्रीज, गोल्ड तथा एम्डेन इत्यादि वैज्ञानिकोंने दिया है। परन्तु इन सब प्रमाणोंमें अनेक दोष हैं और अभीतक यह नहीं कहा जा सकता कि यह प्रश्न अब पूर्ण रूपसे हल हो गया है। शायद पाठकोंको इसमें कोई विशेष रुचि न हो अतएव हम इन प्रमाणोंके विषयमें यहाँ कुछ नहीं लिखेंगे।

उल्का क्या कहते हैं?

सबसे अधिक ऊंचाई जहाँ तक कि मनुष्य अब तक पहुँचा है ७२३९५ फीट है। इसका महत्व कप्तान ऐन्ड-र्सन तथा कप्तान स्टीवेन्सन दो अमेरिकन वैज्ञानिकोंको है जो कि सन् १९३५ में नेशनल जिओग्रैफिकल सोसाइटी-की सहायतासे बने हुये प्रसिद्ध गुब्बारे एक्सप्लोरर द्वतीय में चढ़कर इस ऊँचाई तक पहुँचे। फौलादके तारसे उड़ाये

जानेवाले गुब्बारे लगभग ३५ किलोमीटर तक उड़ाये जा चुके हैं तथा सन्धानिक गुब्बारे ४० किलोमीटर तकका संदेश लाकर हम लोगोंको बतला चुके हैं। अभी तक वैज्ञानिकोंके पास कोई ऐसी उपाय नहीं है कि इस ऊँचाईके आगेके वायु-मंडलका ताप-क्रम सीधे-सीधे नाप लेवें। इसके आगे के ताप-क्रमोंका ज्ञान केवल सूत्रात्मक है जिनकी कि कोई प्रयोग द्वारा सीधी गवाही नहीं मिल सकती है।

स्ट्रैटास्फियरके आविष्कारके लगभग बीसप चीस वर्ष बाद तक लोग यही समझते रहे कि वायु-मंडलके ऊंचेसे ऊंचे भाग में भी लगभग वही ताप-क्रम रहता है। जो कि उस जगह पर स्ट्रैटास्फियरमें हैं। परन्तु सन् १९२२ ई० में लिन्डामन और डाब्सन्‌ने इस विश्वासपर पानी फेर दिया और लोगोंको इस बातके लिये विवश कर दिया कि वे ऊपरी वायु-मंडल-के ताप-क्रमके विषयमें अपने विचारोंको संशोधित करें।

हम सब लोगोंने रात्रिके समय सितारोंको टूटते हुये और उनके साथ प्रकाश होते हुये देखा है। कभी-कभी तो यह प्रकाश बहुत अधिक हो जाता है। यह वास्तवमें पत्थरके टुकड़े हैं जो कि अंतरिक्षमें अत्यन्त तीव्रगतिसे भ्रमण करते हैं। जब वे हमारे वायु-मंडलमें पहुँते हैं तो जलने लगते हैं और प्रकाश देते हैं। उल्काओंके प्रकाशका कारण यह है कि जब यह वायुमंडलमें १२ किलोमीटरसे लेकर १०० किलोमीटर प्रति सेकंडकी भयंकर गतिसे गमन करते हैं तो इनके सामनेकी हवा दब जाती है। इस दबावसे इतनी गर्मी उतपन्न हो जाती है कि वह उल्काके पदार्थको जलानेके लिये पर्याप्त होती हैं लिन्डामन तथा डाबूसन्‌ने इस बातका पता लगाया कि ये उल्कायें हमारे वायुमंडलमें लगभग १४० किलोमीटरकी उंचाईपर जल कर दीखने लगते हैं और फिर लगभग ५५ किलोमीटरकी उंचाई पर ओझल होजाते हैं। इन दो उंचाइयों और उल्काओंकी गतियोंके ही निरक्षणसे उपयुक्त वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि लगभग ६० से १०० किलोमीटरकी उंचाईपर तापक्रम २७ डिग्री सेन्टीग्रेड तक हो सकता है उनका कहना है कि यदि हम यह मानें कि इन उंचाइयोंपर भी तापक्रम वही है जो कि स्ट्रैटास्फियरमें है तो गणितसे यह सिद्ध होता है कि १०० किलोमीटरकी उंचाई पर उल्काओंको जलानेके लिये वायुका घनत्व वास्तविकसे १०० गुना अधिक होना चाहिये। पर यदि हम तापक्रम लगभग २७ डिग्री सेन्टीग्रेड मान लें तो प्रश्न बड़ी सरलता पूर्वक हल हो जाता है।

इन वैज्ञानिकोंने इस तापक्रमका एक स्वतंत्र प्रमाण उल्काओंकी न्यूनतम गतिसे निकाला। इससे भी यही सिद्ध हुआ कि ६० किलोमीटरके उपर तापक्रम लगभग २७ डिग्री सेन्टीग्रेड है।

असाधारण शब्द प्रसरण

लिन्डामन और डाब्सनकी इन विचारोंका समर्थन शब्द प्रसरणके प्रयोगोंसे भी होता है। बहुधा ऐसा देखा गया है कि यदि एक स्थान विशेषपर बड़े ज़ोरका धड़ाका हुआ तो उसका शब्द कुछ दूर सुनाई देता है फिर कुछ दूर नहीं सुनाई देता है और इसके थोड़ा आगे सुनाई देने लगता है। अर्थात शब्द दूर स्थित स्थानोंपर सुनाई पड़ता है परन्तु समीपके स्थानोंपर कर्णगोचर नहीं होता है। योरोपीय महा युद्धके ऐसे अनेक उदाहरण हैं जबकि तोपोंका शब्द डोवर जलडमरुमध्यमें नहीं सुनाई पड़ता था परन्तु लन्दन नगरमें साफ-साफ सुनाई पड़ता था। शब्दके इस प्रकार प्रसरणकी व्यापक खोज पहली पहल वानद बोर्नने सन् १९०४ ई० में वेस्टफैलियामें फोर्ड नामक स्थानपर बारूदके धड़ाकेसे की। यह संसारमें सर्वप्रथम व्यक्ति थे कि जिन्होंने यह बतलाया कि दूरके स्थानोंपर पहुँचनेवाला शब्द वह नहीं है जो सीधा-सीधा धरातलपर चल कर अपने जन्म स्थानसे दूसरे स्थानपर पहुँचता है बल्कि यह एक कोण विशेषपर ऊपरको ओर चलता है और वायुमंडलके ऊपरी भागसे टक्कर खाकर लौट आता है। धरातलका वह भाग जहाँ कि शब्द बिलकुल सुनाई नहीं देता है और जो दोनों ऐसे भागोंके बीचमें स्थित होता है जहांकि शब्द सुनाई पड़ता है, निःशब्द कटिबन्ध कहलाता है। वानद बोर्नने हैनके वायुमंडलमें विभिन्न गैसोंके परिमाणके गणनाकी सहायता लेकर यह निष्कर्ष निकाला कि लगभग ७० किलोमीटरकी उंचाईपर उदजनकी अधिकता होगी। उसका कहना था कि इस वायुमंडलमें जहांकि उदजनकी बाहुल्य है शब्दकी गति चतुर्गुण हो जायगी और इस

प्रकार लगभग ३०° का कोण बनाती हुई धरातलपर लौटकर आजायेगी । महायुधमें कुछ गुणात्मक प्रयोग कियेगये परन्तु कोई सुव्यवस्थित प्रयोग न किये जासके। परन्तु युधके बाद अन्तर राष्ट्रीय अंतरिक्ष-संघने उपयुक्त धारणाको सीधे-सीधे प्रयगोंकी कसौटीपर जाँची । बची हुई बारूदका बड़ी सी ढेर लगाया गया और उसमें आग लगाकर एक बड़े जोरका धड़ाका किया गया । इस स्थानके चारों ओर निरीक्षक जिनके पास समय जानने तथा शब्दकी लहर मालूम करनेके सूक्ष्मयंत्र थे खड़े किये गये थे । इन्होंने शब्द पहुँचनेके समयको नोट किया । तथा इनसे यह भी तय हो गया कि वानदवोर्नके सिद्धान्त ठीक नहीं है क्योंकि शब्दोंके पहुँचनेके समय उनके सिद्धान्तसे बतलाये गये समयोंसे बहुत ही कम थे । इसी समय लिन्डामन और डाब्सनके विचार प्रकाशित हुये जिनसे कि इस प्रश्नका उत्तर सरलतापूर्वक मिलगया। विप्पर्टने भी इस प्रश्नका उत्तर ठीक इसी प्रकार दिया परन्तु उसने लन्डामन तथा डाब्सनकी कार्यकी ओर कोई संकेत नहीं किया। पिछले कुछ बर्षोंमें ह्विपिलने ब्रिटिश फौजके तोप विभाग तथा ब्रिटिश ब्राडकास्टिंग कारपोरेशनकी सहायतासे शब्दकी लहरोंके अनेकों रंगोंको नापा। उसने बतलाया कि यह लहरें १२°से २०° की और कभी, ३५° तककी कोण बनाती हुई आती हैं। अपने प्रयोगोंसे वह इस निचोड़पर पहुँचता है कि शब्दकी लहरें ३५-५० किलोमीटरकी उंचाईसे लौटकर आती हैं और वायुमंडलके इस भागमें तापक्रम ८० डिग्री सेन्टीग्रेड कम नहीं है। यहांपर यह कह देना अत्यावश्यक है कि उल्काप्रज्वलन तथा साधारण शब्द प्रसरणके इन निष्कर्षोंको सभी लोग माननेको सन्नद्ध नहीं हैं । स्पैरो तथा ओपाइकने लिन्डामन तथा डाब्सनकी निष्कर्षोंका पूरी तरह प्रतिवाद किया है कि उल्का प्रज्वलनके कारणको समझनेके लिये आसाधारण रूपसे अधिक तापक्रमका मानना आवश्यक नहीं है । वेगार्डका विचार है कि असाधाण शब्द प्रसरणका कारण यह है कि कदाचित् कम:दबावपर शब्द प्रसरणके नियम प्ररिवर्तित हो जाते हैं। परन्तु ह्विपिलने वेगार्डके प्रयोगोंपर बुरी लताड़ फेंकी है और उन्हें अशुद्ध तक बतलाया है।

मुझे भी कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि ५०से ९० किलोमीटरसे लगभग तापक्रम अधिक है परन्तु इस तापक्रमके निकालनेका अभी तक कोई ऐसा उपाय नहीं है जसके विरुद्ध कोई उंगली न उठा सके पहले यह समझा जाता था कि यह अधिक तापक्रमकी उत्पत्ति शोषणसे होती है। इस विषयमें गोबनने सराहनीय खोज की है परन्तु गोज़,भीथम, तथा डाब्सनकी नयी खोजोंसे पता चलता है कि २०से४० ही किलोमीटर तक है अत: वायुमंडके ५०-७० किलोमीटरवाले भागको गरम करनेमें नहीं प्रतीत होता है।

रातको चमकनेवाले बादल

वैज्ञानिकोंका विश्वास है कि ७० किलोमीटरके ऊपर तापक्रम फिर घटने लगता है। इसका प्रमाण रात्रीमें चमकने-वाले बादलोंसे दिया जाता है । यह बादल लगभग ४० किलोमीटरकी उंचाईपर पाये जाते हैं । यहांपर यह कह देना अनुचित न होगा कि कुछ लोगोंका विचार है कि यह बादल नहीं हैं बल्कि ज्वाला मुखी पर्वतोंसे निकली हुई धूलकणोंके समूह हैं परन्तु हम्फ्रीज़का कहना है कि यह बादल ही हैं और ८२ किलोमीटरकी उंचाईपर तापक्रम लगभग ११० डिग्री सेन्टीग्रेडके हैं।

विविध प्रमाण

इसके बाद लगभग १०० किलोमीटरपर तापक्रम फिर बढ़ने लगता है इसका पता हमको ऑयोनास्फीयर के ई-प्रदेशमेंऋणाणुओं संघर्षसंख्या निकालनेसे चलता है। वेली तथा मार्टिनने इसका पता लहरोंकी अन्तर क्रियासे और वेगार्ड तथा रोसेलैंडने मेरुरश्मि चित्रके नोपजनकी रेखा समूहोंसे लगाया । बैबकाकने मेरुरश्मिचित्रकी हरी रश्मिकी चौड़ाईसे हिसाब लगाया है कि हमारे वायुमंडलमें लगभग २५० किलोमीटरकी उंचाईपर तापक्रम ८००° सेन्टीग्रेडके समीप है।

वायुमंडलके उपरी भागमें असाधारणतया अधिक तापक्रमका समर्थन एक और तरहसे भी होता है । हम सबको भली भांति विदित है कि पृथ्वीपर अनेक प्रकारके रश्मिशक्तिक परिवर्तन होते रहते हैं जिन सबमें हिमजन उत्पन्न होती रहती है। परन्तु हमारे वायुमंडलमें यह

गैस बिल्कुल नहीं पाई जाती है। होना तो यह चाहिये कि चुंकि यह गैस बड़ी हल्की होती है अतः वायुमंडलके नीचेके भागको पार करके ऊपरी भागमें एकत्रित होती रहे परन्तु वास्तविक बात तो और ही है। ऐसी प्रतीत होती है कि जब यह गैस वायुमंडलके नीचेके भागको पार करके ऊपरी भागमें पहुँचती है जहां तापक्रम असारण तथा अधिक है जिसके कारण इसके अणुओंकी गति बड़ी प्रबल हो उठती है और वे हमारे वायुमंडलके बाहर चले जाते हैं।
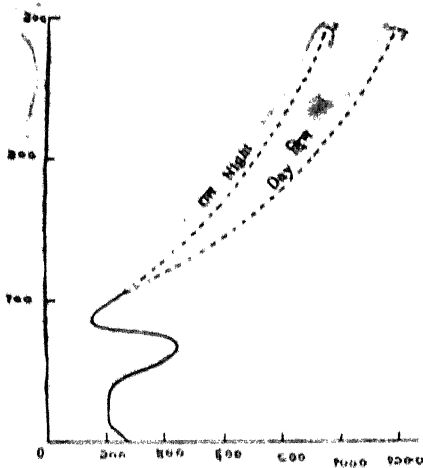
यवन मंडल संबन्धी अनुसन्धान

हाल ही में प्रो० ऐपू लूटनने हमारे वायुमंडलके सबसे ऊपरी भाग (जिसको कि यवन मंडल कहते हैं और जिसका अन्वेषण बे तारके तारकी लहरों द्वारा किया जाता है) के विषयमें यह बतलाया है कि यहां २५०-३०० किलोमीटर की ऊँचाईपर तापक्रम बहुत ज्यादा है। रेडियोकी लहरों द्वारा यह जाना जा सकता है कि अमुक समयपर यवन-मंडलमें (अधिकसे अधिक) प्रतिघन सेंटीमीटरमें कितने ऋणाणु हैं तथा यह घनत्व रात्रि दिवस तथा ऋतुओंके साथ किस प्रकार परिवर्तित होता है। प्रो० ऐपलटनने इन्हीं परिवर्तनों को नापा और उनका मुकाबिला चैपमैन-की प्रकाशयापनके सिद्धान्त द्वारा बतलाये हुये परिवर्तनोंसे किया। फल यह निकला कि यवनमंडलकी नीची सतहों वाली ई तथा फ प्रदेशोंमें उपर्युक्त परिवर्तन चैपमैनकी सिद्धांतके अनुसार ही निकले परन्तु यवनमंडलके सबसे ऊपरी प्रदेश फ$_2$ में ऊपरी सिद्धांत बुरी तरह असफल हुआ उपर्युक्त प्रयोगोंसे यह सिद्ध होता है ई तथा फ$_1$ प्रदेशोंमें तापक्रम तथा घनत्व सालभर लगभग एक ही अवस्थामें रहते हैं परन्तु फ$_2$ प्रदेशके विषयमें हम ऐसा नहीं कह सकते हैं। इस भागमें तो प्रतिघन सेंटीमीटरमें ऋणाणुओंकी तम संख्या ग्रीष्म ऋतुमें दोपहरके समय शरद ऋतुमें दोपहरकी अपेक्षा कम पाई जाती है। परन्तु हिसाब लगानेसे पता चलता है कि शरद ऋतुमें दोपहरके समय यह घनत्व ग्रीष्म ऋतुमें दोपहरके समयसे केवल आधा ही देना चाहिये। एक आश्चर्यजनक बात और भी है कि शरद ऋतुमें तो यह घनत्व सूर्य निकलनेके साथ धीरे-धीरे बढ़ता जाता है और दोपहरके समय सबसे अधिक होकर फिर धीरे-धीरे कम होता जाता है परन्तु ग्रीष्म ऋतुमें ऐसा दो बार होता है और दोपहरके समय घनत्व सबेरे तथा शामकी अपेक्षा कम पाया जाता है। पहले तो इन आश्चर्यजनक बातोंमें लोगोंका विश्वास तथा अमेरिकाके लोगों (गिलीलैंड इत्यादि) का यह विचार था कि यह प्रयोग ठीक-ठीक नहीं हो पाते हैं रेडियोकी लहरें केवल शोषित हो जाती हैं वे अधिकतम घनत्व नहीं बतलाती है। परन्तु बादके और प्रयोगोंने यह बात निर्विवाद सिद्ध करदी कि अमेरिकाके लोगोंके यह विचार निर्मूल है।

प्रो० ऐपलटनने लोगोंका ध्यान इस बातकी ओर आकर्षित किया कि चैपमैनका सिद्धांत इस बातको स्वयं सिद्ध मान लेता है कि वायुमंडलकी प्रत्येक ऊँचाईपर आणविक घनत्व सालभर एक ही बना रहता है। उन्होंने यह बतलाया कि ग्रीष्म ऋतुमें दोपहरके समय ऋणाणुओं-के घनत्वके कम होनेका कारण यह हो सकता है कि अत्यधिक तापक्रमके कारण आणविक घनत्व ही कम हो जाता है। इस प्रकार उन्होंने विज्ञान संसारके सामने यह विचार उपस्थित किया कि यद्यपि ग्रीष्म ऋतुमें दोपहरके समय ऋणाणुओंकी कुल संख्या शरद ऋतुके दोपहरके समयसे अधिक होती है परन्तु ग्रीष्म मध्याह्नमें

अत्यधिक तापक्रमके कारण वायुमंडल प्रसरित हो जाता है जिसके फल स्वरूप आणविक घनत्व कम हो जाता है जिससे प्रतिघन सेंटीमीटरमें ऋणाणुओंकी अधिकतम संख्या कम हो जाती है। प्रो० एप्ल्टनका कहना है कि ३०० किलोमीटरकी ऊँचाईपर तापक्रम ग्रीष्म मध्याह्नमें शरद मध्याह्नकी अपेक्षा तीनसे नौ गुना तक रहता है। उन्होंने हिसाब लगानेर बतलाया है कि ग्रीष्म मध्याह्नमें इस ऊँचाईपर तापक्रम लगभग १२००° सेन्टीग्रेड रहता है। एक अमेरिकाके वैज्ञानिक हुल्बर्टने भी कुछ इसी प्रकारका सिद्धान्त प्रचारित किया है कि ऊपरी वायु-मंडलमें गर्म होकर ऊपर नीचे फैलनेपर निर्भर है।

कुछ ही दिनोंके उपरान्त अमेरिकाके वैज्ञानिक बर्कनर, वेल्स तथा सीटनने अपने प्रयोगोंके कुछ ऐसे फल बतलाये जिन्होंने ऐपल्टनके सिद्धान्तको धराणयीकर दिया। इन लोगोंने फ$_2$ प्रदेशका अधिक-से-अधिक ऋणाणु घनत्व संसारके तीन स्थानों (वाशिंगटन उत्तरी गोलार्द्धमें तथा ह्वाङ्कायो और पादरू दक्षिणी गोलार्द्धमें) पर साल भर निकाला। अपने प्रयोगोंसे इन्हें यह मालूम हुआ कि दोनों ही गोलार्द्धोंमें वर्षके किसी समयमें भी ऋणाणु घनत्वमें दैनिक परिवर्तन किसी ऋतु विशेषपर निर्भर नहीं है बल्कि वार्षिक हैं। इन प्रयोगोंसे हम इस निष्कर्षपर पहुँचते हैं कि हम लोगोंको अपने ऊपरी वायु-मंडलके तापक्रमके विषयके विचारके संशोधन करनेकी आवश्यकता है।

एक दूसरे अमेरिकाके वैज्ञानिक गुडालका कहना है कि इस प्रश्नपर विचार करते समय हमको यह बात नहीं भूल जाना चाहिये कि हमारे आँकड़े केवल थोड़े ही वर्षोंके लिये है जिससे कि सूर्यके धब्बोंका चक्रका ठीक-ठीक प्रभाव बतलाना दुस्तर है परन्तु यदि इस बातको ध्यानमें रखकर यह परिवर्त्तन देखे जावें तो सारी कठिनाइयाँ दूर हो जाती हैं।

लगभग ३०० किलोमीटरकी ऊँचाईपर अत्यधिक तापक्रमका समर्थन आस्ट्रेलियाके प्रसिद्ध वैज्ञानिक मार्टिन तथा पुलीने भी किया है उनका कहना है इस ऊँचाईपर तापक्रम बारहों महीने १२०० डिग्री सेंटीग्रेडके लगभग रहता है। परन्तु इन लोगोंने कुछ ऐसी बातें स्वयं सिद्ध मान ली हैं जो कि संदेहजनक हैं अतएव यह कहा नहीं जा सकता है कि इन लोगोंका यह कहना सत्य है।

लेंगलेके कुछ आविष्कार

(ले० प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव)

सूर्यका रंग क्या है

मौंट व्हिटनी नामक पर्वत शिखरपर लेंगलेने अनेकों प्रयोगों द्वारा सं १८८१ ई० में यह सिद्ध कर दिखाया कि सूर्यका प्रकाश जब वायु-मंडलको पार करता है तो वायु द्वारा उसके अनेक अंश सोख लिये जाते हैं। आशातीत मात्रामें नीले और हरे रंगोंको वायु विशेषतः ग्रहण करती है। अतएव सूर्यसे आनेवाली विकिरण शक्तिका केवल एक अंश ही नहीं वायुमें रह जाता, प्रत्युत पृथ्वी तक पहुँचनेवाले प्रकाशका संगठन भी बदल जाता है।

नीले और हरे रङ्गोंका अन्य रङ्गोंकी अपेक्षा अधिक शोषण होकर जो सूर्य-प्रकाशके अवयव हमतक पहुँचते हैं। उनके सम्मिश्रणको ही हम सफेद रोशनी या श्वेत प्रकाश कहते हैं। अतएव सफेद रोशनी सूर्यसे निकलने और आनेवाले रङ्गोंका मिश्रण नहीं है। यदि यह संभव हो जाय कि हम वायु-मंडलके बाहर (प्रायः २०० मील-से ऊपर) जाकर सूर्य भगवानके दर्शन करें तो उनकी छवि श्याम (हरित + नील) रङ्गकी दिखाई पड़ेगी। वैदिक साहित्यमें विष्णु नाम सूर्यका है। और पौराणिक साहित्यमें विष्णुका रङ्ग श्याम और उनका निवास स्थान सूर्य, मंडल बतलाया गया है।

ग्रीष्म चित्रके किस भागमें अधिक गरमी होती है

लेंगले महोदयने एक नये यंत्रका निर्माण इसी

वर्ष (१८८१ ई) में किया था । उसका नाम है बोलोमीटर । प्लाटिनम धातुका एक पतला टुकड़ा एक विद्युत् चक्रमें सम्मिलित कर लिया जाता है । यदि (विकीरित-शक्ति इस यंत्रपर पड़े तो उसका विद्युत्-बाधा बढ़ जाती है । इस कारण विद्युत् धारामें भी अन्तर पड़ जाता है जो एक अच्छे विद्युत् मापकसे नापा जाता है । इस प्रकार '०००००००१ (एक डिग्रीके दस लाखवें भाग) का अन्तर भी तापक्रममें हो जाय तो उसका पता चल सकता है । हरषेल आदिका मत था कि रश्मिचित्रके पुरा-रक्त (इन्फ्रा-रेड या परा लाल) भागमें अधिक गर्मी होती है, परन्तु लेंगलेने यह सिद्धकर दिखाया कि वस्तुतः नारङ्गी विभागमें अधिक गर्मी होती है ।

पहलेके निरीक्षकोंने रश्मि चित्र त्रिपार्श्वोंसे बनाया था किन्तु त्रिपार्श्व स्वयं कुछ शक्तिका शोषण कर लेता है, दूसरे वह रश्मि चित्रके निचले भागमें शक्तिको-अधिक रश्मियोंको एकत्रित कर देता है इसी कारण निरीक्षण करताओंको भ्रम हो गया । यह दोनों दोष ग्रेटिंग द्वारा बनाये रश्मि चित्रमें नहीं होते ।

हरा रंग क्यों प्यारा लगता है ?

लेंगलेका यह अनुमान है कि लाल रङ्गके देखनेमें आँखके पिछले पर्दे या रेटिनामें लगभग '००१ अर्ग, सामर्थ्य प्रविष्ट होती है, किन्तु हरे रङ्गके देखनेमें केवल '०००,०००,०१ अर्ग, यानी समझिये कि हरे रङ्गकी अपेक्षा लाल रङ्गके देखनेमें १००,००० गुनी अधिक सामर्थ्य रटीनाको ग्रहण करनी पड़ती है ।

जुगनूका प्रकाश

लेंगले और वैरीने यह सिद्ध कर दिया कि शुद्ध प्रकाश—तापहीन प्रकाश भी पैदा हो सकता है । उन्होंने बतलाया कि मोमबत्तीकी अपेक्षा [illegible] भाग सामर्थ्य खर्च करके जुगनू प्रकाश उत्पन्न करता है । बिजली रोशनीको पैदा करनेमें तो मोमबत्तीकी अपेक्षतः बहुत खर्च पड़ता है ।

ओयर्स्टेड और एम्पियर

विद्युत्-चुम्बकत्व—भौतिक शास्त्रकी इस शाखाका जन्म १८१९ में हुआ था । हंस क्रिश्चियन ओयर्स्टेड महोदयका जन्म सं १७७७ ई में हुआ था । इनकी शिक्षा कोपेन हैगेन विश्व-विद्यालयमें हुई, तदनन्तर यह वहीं अध्यापक नियुक्त हो गये और पौली टेकनिक स्कूलमें काम करते रहे ।

हैंसटीनने एक बार १८५७ में फैरेडेको लिखा था कि पिछली शताब्दीमें यह साधारण धारणा थी कि विद्युत् और चुम्बकीय शक्तिमें बड़ी समानता है और संभवतः वह एक ही हैं किन्तु प्रयोगात्मक प्रमाणोंका सर्वथा अभाव था । अनेक प्रयत्न किये गये पर सफलता न हुई । ओयर्स्टेड भी विद्युत् घटके साथ लगे हुये तारको (जिसमें विद्युत् धारा बहती थी) चुम्बकीय दिक् सूचकके ऊपर लम्ब रूपसे खड़ा करके परीक्षा करते थे, किन्तु प्रयत्न निष्फल था । एक बार एक व्याख्यानके समाप्त होनेपर, जिसमें वह एक बल वाले विद्युत् घटमाला काममें ला रहे थे, कहने लगे 'आइये, इस तारको दिक् सूचकके ऊपर समानान्तर रखकर देखें कि क्या होता है । ऐसा करते ही सूईने झुककर तारसे समकोण बना लिया—यह देखकर ओयर्स्टेड महोदयको बड़ा आश्चर्य हुआ ।

उन्होंने तारमें विद्युत् धाराकी दिशा पलटकर देखा तो मालूम हुआ कि दिक् सूचक इस बार विपरीत दिशामें प्रायः ९०° (समकोण) हट जाता है ।

इस प्रकार अचानक वह बात सिद्ध हो गई जिसके लिये युगोंसे प्रयत्न हो रहा था । इसके पहले किसीको कभी ख्याल भी नहीं था कि धाराकी चुम्बकीय शक्ति धाराके जानेवाले तार समकोण बनाती है ।

प्रोफेसर ओयर्स्टेड बड़े मेधावी पुरुष थे, किन्तु प्रयोग करनेमें कुशल न थे । यंत्रोंके उपयोग वह यथावत नहीं कर सकते थे । वह सदैव एक सहायक अथवा किसी श्रोतासे प्रयोग करवाया करते थे ।

ओयर्स्टेडने सूई और तारके बीचमें अनेक माध्यम (काँच, धातु, लकड़ी, पानी, गोंद मट्टीके बर्तन पत्थर,) पृथक्-पृथक् अथवा दो या तीन मिलाकर भी रखे और देखा कि इनकी उपस्थितिसे तारकी चुम्बकीय शक्तिमें कोई अन्तर नहीं पड़ता ।

इसके पश्चात ओयर्स्टेडके प्रयोगका अभ्यास सर्वत्र होने लगा । डुमीनीक फ्रान्सोयस-जीन-अरागोने अगले

वर्ष (१८२० ई०) में यह दिखला दिया कि विद्युत्-वाहक तार लोहेके बुरादेको आकर्षित करता है। अतएव विद्युत्-वाहक तारको चाहे वह किसी भी धातका क्यों न बना हो चुम्बकवत ही समझना ठीक होगा।

१८२२ में डेवी महोदयने बतलाया कि लोहेके बुरादेके टुकड़ोंके खींचनेका रहस्य यह है कि वह परस्पर एक दूसरे-को सिरोंपरसे खींचते हैं और इसी लिये तारके चारों ओर छल्लेसे बना लेते हैं।

एम्पेयर महोदयने जब यह सुना कि तारकी चुम्बकीय शक्ति उस तलमें रहती है जो तारसे समकोण बनाता है तो उन्होंने तारको सर्पिलके रूपमें लपेटकर प्रयोग किया जिसमें तारके प्रत्येक फंदेका प्रभाव उसके अन्दर रखे हर विद्युत् सूचकपर एक प्रकारसे ही पड़े, और इस प्रकार अधिक बलवान हो जाय।

ओयर्स्टेडके अनुयायियोंमें एम्पयर महोदय ही सर्वोत्कृष्ट हैं। यह बड़े मेधावी और बुद्धिमान थे। १२ वर्षकी अवस्थामें इन्होंने लातनी भाषाका अध्ययनकर डाला था कि जिसमें गणितके अच्छे अच्छे ग्रन्थके अवलोकन और अध्ययनमें कोई रुकावट न हो अठारह वर्षकी अवस्थामें लेपलेसके मिकेनीक सेलेस्टीके सब प्रश्न निकाल लिये थे और साथ ही साथ अनेक शास्त्रोंका अवलोकन कर डाला था।

फ्रांसीसी विप्लवमें इनके पिताका सर काट डाला था, इस कारण उनका बड़ा भारी मानसिक चक्कर पहुँचा, इसीलिये यह गत चेष्ट-से होकर घंटों आकाशकी ओर ताकते हुये अथवा रेतके छोटे-छोटे ढेर बनाते रह जाते थे। इन्हीं दिनों इनको रूसोका वनस्पति शास्त्र मिल गया। इसे पढ़कर विज्ञान प्रेम इनके हृदयमें फिर सरसा गया, बुद्धिका परिष्कार हो गया और गवेष्णात्मक काममें फिर जुट गये।

सं १७९९ ई में उनका विवाह हुआ और धार्मिक रङ्ग भी गहरा चढ़ गया। यह रङ्ग यद्यपि बीचमें कुछ हलका पड़ गया था, परन्तु बादमें फिरसे पूर्ववत हो गया। अपने जन्म स्थाक ल्योन्समें ही यह रसायन शास्त्र तथा गणितका अध्ययन करते थे, किन्तु स्त्रीके मरनेके बाद अपना नगर छोड़कर पारिस चले गये और वहाँ पोलीटेकनिक स्कूलमें अध्यापक हो गये।

यद्यपि यह अपने गवेष्णात्मक काममें बड़े व्यस्त रहते थे, तथापि अपनी स्त्रीको बहुत प्यार करते थे, जितना दुःख उन्हें अपने पिताकी मृत्युसे हुआ, उससे कम पत्नीके वियोगमें नहीं हुआ। दाम्पतिके प्रेमका हाल उनके पत्रों और जरनेलसे पता चलता है जिसका सम्पादन और प्रकाशन एच० सी० मेडेमने १८७३ में किया था।

अपने काममें वह इतने तत्पर रहते थे कि एक बार उन्हें अपनी पत्नीके साथ किसी भोजमें सम्मिलित होनेके लिये जाना था। बड़ी कठिनाईसे श्रीमती एण्डी मेरी एम्पयर अपने पतिको प्रयोगशालासे निकल ऊपर जा कपड़े पहनने के लिये राजी कर सकीं। स्वयं नीचे इस आशासे खड़ी रहीं कि वह कपड़े बदल शीघ्र आ जायंगे। जब बहुत देर तक न आये तो वह स्वयम् ऊपर गईं वहाँ क्या देखती हैं कि महाशय जी गहरी नींदमें बेसुध पड़े हैं। प्रतीत होता है कि अपने विचारोंमें मग्न ऊपर गये और विचार करते-करते सो गये।

ओयर्स्टेड ने तो विद्युत् धाराका चुम्बकपर जो प्रभाव होता है, उसका अन्वेषण किया था, परन्तु एम्पेयरने विद्युत् धाराओंके परस्पर आकर्षण और निराकरणपर प्रयोग किये। उकका परिणाम यह निकला :—

(१) यदि दो विद्युत् धाराएं समानान्तर तारोंमें एक ही ओर बहती हैं तो दोनों तार परस्पर आकर्षण करेंगे।

(२) यदि तार समान्तर हों परन्तु धाराएं विपरीत दिशाओंमें बहती हैं तो वह परस्पर निराकरण करेंगी।

इन प्रयोगोंका कुछ लोगोंने तिरस्कार किया और उपहास करते हुये कहा कि यह तो विद्युतके नियमोंके अनुसार ही हैं। तबतो एम्पियर महोदयने उत्तर दिया कि समान विद्युतसे समन्वित वाहक एक दूसरेका निराकरण करते हैं अतएव समानान्तर और एक ओर बहनेवाली धारा आकर्षण क्यों करती हैं।

एक और सज्जनने इस प्रकार तर्क किया "एक विद्युत् धारा एक चुम्बकपर प्रभाव डालती है और दूसरी भी विद्युत् धारा ऐसा ही करती है। अतएव स्पष्ट है कि एक

विद्युत् धारा दूसरी धारापर प्रभाव डालेगी। इसका उत्तर एम्पेयर महोदयने बड़े मजेका दिया । अपनी जेबमेंसे एक तालियोंका गुच्छा निकालकर बोले, एक ताली मेगनेट द्वारा खिंचती है, दूसरी भी खिंचती है। अतएव पहली ताली दूसरीको भी खींचेगी न।"

ओयर्स्टेडके प्रयोगमें विद्युतधारा और चुम्बकके हटावको परस्पर सम्बन्ध बतानेवाला सूत्र भी एम्पियरने बनाया : यदि एक मनुष्य विद्युत् धाराके साथ तैरता हुआ उस चुम्बकके उत्तर ध्रुव या केन्द्रकी ओर देखे, जो उस तारके पास रखा है, तो उक्त केन्द्र उस मनुष्यकी बाएं हाथको तरफ हटेगा।

इस नियमसे किसी तारमें बहनेवाली धाराकी दिशाका पता चल सकता है। यही विद्युत् धारा सूचक (गैलवनस्कोप) का सिद्धान्त है और इसीका परिष्कृत रूप विद्युत्धारा मापक है (गैलवेनोमीटर)

एम्पियरकी पुण्य स्मृति चिरस्थायी करनेके लिये, वैज्ञानिकोंने विद्युत्धाराकी इकाईका नाम भी एम्पियर रखा है। एम्पियरके प्रयोगोंको फेरेडे ने देखा और नये प्रयोग करके यह सिद्ध कर दिया कि विद्युत् धारा और चुम्बक एक दूसरेकी परिक्रमा करने या घेरा डालनेका प्रयत्न करते हैं। यह डेवीके सिद्धान्तका वृहत् रूप है। एम्पियर इस परिणामको लेकर आगे बढ़े। कोवेकका मत था कि विद्युत्धारा वस्तुतः एक प्रकारकी चुम्बकीय क्रिया है, परन्तु एम्पियरने यह मत प्रकट किया कि चुम्बकत्व विद्युत् धाराओंका चमत्कार है। चुम्बकके प्रत्येक अणुमें मध्यभागीय विद्युत्धारा प्रवाहित होती रहती है। जिसके कारण उसमें केन्द्र या ध्रुव पैदा हो जाते हैं। चुम्बकको चुम्बकमय करनेका उपाय इन धारोंको एक ओर प्रवाहित कर देना मात्र है। पार्थिव चुम्बकत्व भी पृथ्वीकी परिक्रमा देनेवाली धाराओंसे ही उत्पन्न होता है। इस नये सिद्धाँत को गणित द्वारा सिद्ध करनेके अभिप्रायसे एम्पियरने एक निबन्ध लिखा इसके सम्बन्धमें मैक्सवेलका मत था कि इस गवेषणाकी रूप रेखा पूर्ण है और उसकी सत्यता अकाट्य है।

भारतमें फल-संरक्षण

[ले० श्री सुरेश शरण अग्रवाल]

अपनी-अपनी ऋतुमें भारतमें नाना प्रकारके फल होते हैं। सब रसीले और सुन्दर। कुछ फल तो संसारमें भारतके सिवा कहीं होते भी नहीं। इनमें आम, नारंगी, केला, लीची मुख्य हैं। परन्तु भारतके अन्य धनकी भांति यह भी बेकार रहते हैं और उनके जीवनसे किसी को कोई लाभ नहीं पहुँचता। जाने इनमेंसे कितने बेकार जाते हैं। इनका एक छोटा सा भाग भी यदि आधुनिक वैज्ञानिक ढंगसे रखा जा सके तो भारत और विदेश दोनोंमें फल—उपजक और ग्राहकको निश्चित ही परम लाभ होगा, आनन्द जो मिलेगा सो अलग। इंग्लैन्डमें संसारमें सबसे अधिक फलोंकी खपत है। वहांके निवासियोंको आम बड़े अच्छे लगते हैं। किन्तु आम जल्दी पक जाने और फिर शीघ्र सड़ जानेके कारण इंग्लैन्ड, नहीं भेजा जा सकता। फलतः पश्चिमी द्वीप-समूह और दक्षिणी अफ्रीकाके कुछ भागोंसे आम वहां जाता है। परन्तु इन्गलैन्डमें वहांके आमका हृदयसे स्वागत नहीं होता क्योंकि जो स्वाद और आनन्द भारतके आममें होता है वह अन्य देशवालेमें कहां? यदि भारतीय फल भी सुगमता पूर्वक और भले प्रकार भेजा जा सके तो वह शीघ्र ही विदेशी बाजारको मार भगायेगा। यही हाल नारंगी या संतरा और अन्य फलोंका है। विदेशकी बात तो दूर, यदि फल-संरक्षण भारतमें ठीक हो सके तो यहांवालोंको ही कितना सुख-प्रद होगा। ऋतु बीतनेपर आम ढूंढनेसे भी नहीं मिलता। बनारस या रामपुरका लंगड़ा जाड़े और बसन्तमें कैसा अच्छा लगे।

भारतमें फलकी उपजकी रेढ़ ही लगती है। इसके विरुद्ध कि वह फल अन्य देशोंको भेजे भारतमें फल विदेशसे आते हैं। इम्पीरियल एकोनामिक कमेटीकी रिपोर्ट है

कि सन् १९३४ में १७३,००० टन डिब्बोंमें बंद फल भारतमें आये। अंग्रेजी देशोंसे आई संख्या कुलका ४४ प्रतिशत थी। अतएव हमारे देशमें फल-संरक्षण का प्रबन्ध करना एक अत्यन्तावश्यक कार्य है। इसमें हमारे शासकोंने हाथ बिल्कुल नहीं बढ़ाया है। केवल गत वर्ष शिमलासे १२ जून १९३७ को एक संवाद आया था कि भारत सरकार काशमीर और बलोचिस्तानके सेब और अंगूर उपजकों को फल-संरक्षण हेतु उचित इत्तला देगी परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि कोई सफल उपाय अभी कार्यरूपमें परिणत नहीं हुआ है। एक ओर यह भारतकी बात। दूसरी ओर इंग्लैण्डमें 'फूड इन्वेस्टिगेशन बोर्ड' और कैम्ब्रिज विश्व विद्यालय तथा इम्पीरियल कालिज आफ साइन्स, लन्दनमें फल-संरक्षण हेतु बहुतसी खोजें की गई हैं जिनसे यथेष्ट लाभकी आशा है। अब वहांपर सेबको एक सालतक ताज़ा दशामें बिना सड़े या गले रखनेका साधन प्राप्त हो गया है। अल्प-जीवी फल जैसे नासपाती हजारों टनोंकी मात्रामें दक्षिणी अफ्रीका, कैलीफोर्निया और अस्ट्रेलियासे लन्दनको जहाजोंमें लाद दिये जाते हैं। यह बात बिना वैज्ञानिक ढंग निकाले नहीं हो सकती थी। यह उपाय निरंतर प्रयोग और परिश्रमके परिणाम हैं।

हमारे यहांका केला भी बड़ा बढ़िया होता है। वह निश्चित जैमायकावाले केलेसे अच्छा होता है जो लन्दनको एक कम्पनी भेजा करती है और जिसने मानों बाजार का ठेका ले लिया है। भारतीय केलेमें एक विशेष सुगंध होती है और वह शीघ्र ही यूरोप संग्राहकोंमें प्रसिद्ध हो जायगा। कलकत्ते के निकट 'चम्पा' केला सर्वश्रेष्ठ है और किसी अच्छे-से-अच्छे नामका मुकाबला कर सकता है। एक अंग्रेजका कथन है कि भारतीय केला बहुतायतसे होता है और उसकी सपलाई लगभग असीमित हो सकती है। भारतीयको केवल यह जाननेकी आवश्यकता है कि किस भांति उचित समयपर काटे, किस प्रकार उसको छुपए ताकि बिना पीले पड़े २५ दिवस उपरान्त अंग्रेजी बाजार पहुँच सके। आवागमनके साधन भी अब पहलेसे सुगम हैं और फल अधिक शीघ्रतासे पहुँच सकता है यदि। इस कामके लिये थोड़ीसी पूँजी लगा दी जाय तो वह विश्वास है कि भारत योरपके केलेके व्यापारका स्वामी बन जायगा।

फल-संरक्षण विधि

फल-संरक्षण उद्योगके कई अंग हैं जिनका वर्णन नीचे किया गया है।

फल-संरक्षणके पूर्वकी दशा-फलोंको रखनेका विचार हो तो कुछ महत्व-पूर्ण बातोंपर ध्यान देना होगा। सर्व प्रथम आवश्यकता है कि मिट्टीको नोषजयनीय खादोंकी मात्रा बस न्यूनतम दी जाय, जिससे उचित उपज हो सके और पोटाश एवं फासफेट भली मात्रा में। कीड़े, मकोड़े जो पौधेका संहार कर डालते हैं, से भी बचानेकी जरूरत है। हमारे देशमें फलको बड़ी निर्दयता पूर्वक तोड़ लेते हैं जिससे कि उसको पीड़ा होती है जो हमें ही हानिकारक है। फलोंको सहजमें रखना चाहिये, यह नहीं कि लुढ़का दिया और इसी ढंगसे रहे कि बाहरको जानेमें एक फलकी दूसरेसे रगड़ न लगे और किसी प्रकारकी कुछ खराबी न हो। जिन फलोंमें जरा भी दुर्गन्ध आती हो या जो सड़े लगते हों उनको फेंक देना चाहिये नहीं तो एक मछली सारे तालाबको गंदा कर देगी। यह अच्छा हो कि फलोंको भंडारमें रखनेसे पूर्व उनको श्रेणियोंमें बांट दिया जाय।

जमा करनेका समय—वास्तवमें फल तोड़नेका समय निश्चित करनेका कोई निर्णायक नहीं है। परन्तु यह बात अनुभव आश्रित है। फल ऐसे समय तोड़े जब न बिल्कुल हरा अथवा कच्चा हो और न पूर्णतया पक गया हो। कच्चा फल तोड़नेसे वह अधिक समयतक रखा जा सकता है परन्तु वह असली स्वादको खो बैठता है और फिर बाजार भी नहीं बना सकता।

तेलके लपेट—फलको देरतक रखने हेतु उनको मोमी कागजसे लपेटनेकी आदत लाभदायक है। तेलके लपेट कृत्रिम पकनेसे ही नहीं बचाते, वरन फलकी ताजगी स्थिर रखते हैं। जैसे आगे लिखा जायगा फल और उसके वातावरणमें, यह कहा जाता है, तेलके लपेट भाप, आक्सीजन और कारबनडाई आक्साइडके लेन—देनको रोकता है। परन्तु साधारणसे लपेट इस लेन-देन

प्रगतिमें अड़चन नहीं डालते। बहुतसे गैस स्टोरेजमें तेली-कागजोंका लपेट अत्यावश्यक कहा गया है क्योंकि उससे फलका रंग बना रहता है और रंग ही खानेवालेको चाहिये।

संग्रह-अवस्था (स्टोरेज दशा) फल-संरक्षणका यह मुख्य भाग है। आजकलके लिये जो विधियाँ प्रचलित हैं वे तीन प्रकारकी हैं (१) ठंडा स्टोरेज (२) गैस स्टोरेज (३) रैफ्रीजीरेटेड गैस-स्टोरेज। तृतीय प्रकार प्रथम दोनोंका मिश्रण है जिनमें तापपर काबू रखा जाता है ताकि फल देरसे पके।

कोल्ड स्टोरेज—इसका सिद्धांत यह है कि निम्न तापक्रमपर फलको सड़ाने व पकानेके साधन बहुत गिर जाते हैं। इसके लिये लगभग तापक्रमकी आवश्यकता होती है। सर्वोचित तापक्रम जाननेके लिये खोज करना पड़ती है। यह ज्ञात हुआ है कि केवल १° फारेनहाइटका भेद फलके स्टोरेज—जीवनमें यथेष्ट परिवर्तन कर सकता है। विशेष तापक्रम तो फलपर ही निर्भर है। स्टोरेज तापक्रमके लिये फलकी दशा भी अपना स्थान रखती है और जहाँ कच्चे फल रखे जायँ वहाँ ऊँचे तापक्रमकी आवश्यकता है और जहाँ पक्के फल वहाँ नीचेकी। अंग्रेजी बेरोंके कोल्ड स्टोरेजमें इन दो दशाओंमें ४०° फ० और ३४° फ० तापक्रमोंका उपयोग करते हैं। और कई तरहके बेरोंके संरक्षणमें सफलता शीत बिन्दुसे नीचे जमानेमें प्राप्त हुई है। इस दशामें फल ठोस जमाये जाते हैं और व्ययके समय धीरे-धीरे नीचे तापक्रमपर थाइंग होता है। जमाने और कोल्ड स्टोरेजमें नाना प्रकारकी दुविधायें पड़ती हैं। इनका कारण हैं भौतिक रसायनिक परिवर्तन जो फलका रंग, स्वाद, हाज़मा आदि बिगाड़ देते हैं इनसे बचाने हेतु सारपमें जमानेकी क्रिया या ०° फ० और—१०° फ० के बीच शीघ्र जमानेकी क्रिया और २४ घंटे तक ३०°—४०° फ० के क्रियाकी जाती है। जब फलको बिना जमाये न्यून तापक्रमपर स्टोर करते हैं तब हानि होती है। प्रत्येक फलके लिये एक न्यूनतम तापक्रम होता है जो वह सह सकता है। इसके नीचे तो फल मानों ठिठुर जाता है और किसी कामका नहीं रहता। भारतीय फलोंके संरक्षण हेतु यह न्यूनतम तापक्रम खोजों और प्रयोगों द्वारा मालूम करना है ताकि जब फलको स्टोर करें तो वह नष्ट न हो।

गैस स्टोरेज—इस विधिमें सार बात वातावरणके गठन और तापक्रमपर नियंत्रण है। फलकी खास गतिपर ही फलका पकना निर्भर है जो तापक्रमके कम करनेसे ही नींवरन वायुकी आक्सीजन मात्रा कम करने और कारबन डाई आक्साइड मात्रा बढ़ानेमें भी कम किया जा सकता है। फल भी समस्त जीवोंकी भाँति साँस लेते हैं। वे कारबन डाइ आक्साइड उगलते और समायतन आक्सीजन ले लेते हैं। फलतः फलके वातावरणमें कारबन डाइ आक्साइड बढ़ जायगी और आक्सीजन कम हो जायगी अतएव एक ऐसे वातावरणमें जिसमें आक्सीजन कम हो और कार्बन डाइ आक्साइड अधिक तो फल साँस कम लेगा और देरसे पकेगा। हवामें आक्सीजन और नाइट्रोजनका आयतन विचारसे २१:७९ अनुपात है। स्टोरेजके हेतु आक्सीजन कम कर देते हैं और फलोंसे प्राप्त कुछ प्रतिशत कार्बन-डाइ-आक्साइड स्थिर रखते हैं। इसके लिये अत्यधिक कार्बन डाई आक्साइड सोडासे सोख लेते हैं। फलको एक सीलड चैम्बरमें स्टोरकर देते हैं। और हवाकी आक्सीजनके स्थानपर कार्बन-डाई-आक्साइड रखते हैं। इस भाँति यह ज्ञात हुआ है कि जब कई प्रकारके सेबोंको गैस-करके-स्टोर तापक्रम-'५० संटीग्रेड-पर रक्षाकी जाती है और १० प्रतिशत आक्सीजनके स्थानान्तरित कार्बन-डाइ-आक्साइड की जाती और वायु प्रवाह भले प्रकार संभाला जाता है तो वे १२ महीने तक खूब बने रहते हैं। यहाँ यह कहना आवश्यक है यदि अनुचित वातावरण या तापक्रम रखा गया तब तो फलका नाश हो जायगा। जब सेब दुष्वातावरणमें लाद दिये गये तो पाँच सप्ताह बाद लन्दन पहुँचनेपर वे बुरी दशामें पाये गये। इंगलैण्डके वैज्ञानिक और औद्योगिक खोज विभागकी डिटलन प्रयोगशालाओं विविध प्रयोग किये गये हैं जिनसे पता चलता है कि एक ही फलके भिन्न-भिन्न प्रकार भिन्न-भिन्न वातावरण और तापक्रममें विषय भेद प्रकार करते हैं और इससे यह उपदेश मिलता है कि फलको गैस-स्टोर करनेसे पूर्व उसके लिये सर्वश्रेष्ठ वातावरण एवं तापक्रम जानने हेतु पूर्ण वैज्ञानिक अनुसंधान कर लेना

चाहिये, तदोपरान्त व्यापारिक कार्रवाई की जाय। यह सर्व विदित है कि भिन्न-भिन्न भाँतिके आम जैसे लंगड़ा, कलमी, फजरी, मुंबई, गोपाल भोग इत्यादि, और संतरा जगह-जगहका जैसे दार्जीलिंग, नागपुर, सिलहट सब पृथक्-पृथक् वातावरण और तापक्रम चाहते हैं क्योंकि सब एक ही विधि और एक ही समयमें नहीं उगते या पकते हैं। सबकी माया निराली है। सबके लिये अलग-अलग प्रयोग किया जाना अनिवार्य है।

रैफरीजिरेटरका प्रयोग—रैफरीजिरेशन या ठंडक एक वस्तुसे गर्मी खींच लेनेपर पड़ती है। ठंडक-कर्त्ता कुछ द्रव हैं जो नीचे तापक्रमपर उबलते हैं। जब कभी एक द्रव उबलता है तो वह गर्मी सोख लेता है। पानीको उबालनेके लिये २१२° फ० पर गर्मी दी जाती है। * सलफर डाई आक्साइड (८०२) १४° फ० अथवा पानीके द्रवणाँकसे १८° तले उबलती है। अतएव यदि किसी पात्रमें सलफर डाई आक्साइड एक कमरेमें १४° के ऊपर रक्खी जाये तो उबलने लगेगी और ओस पड़ोससे गर्मी ले लेगी। पात्र अत्यधिक ठंडा हो जायगा और उसपर पाला पड़ जायगा। सलफर-डाई-आक्साइड रेफरीजीरेशन अथवा ठंडकके लिये कार्बन-डाइ-आक्साइडसे उत्तमतर है और बिजलीके रैफरीजिरेटरोंमें प्रयोग की जाती है। उबलनेपर सलफर-डाई-आक्साइड १३° से १४° फ० तापक्रम चढ़नेकी अपेक्षा १६८ गुना ताप सोखेगी। जब यह एक कन्टेनरमें बिजली रैफरीजिरेटरमें उबाली जाती है तो भोजन या फल शीतल पड़ जाता है। रैफरीजिरेटरसे प्राप्त सलफर-डाई-आक्साइडपर भार डाला जाता है जिससे वह गर्म हो जाती है। उसके फिर ठंडा करनेपर वह द्रव बन जाती और दोबारा रैफरीजिरेटरमें रखे भोजन या फलको ठंडा करनेमें प्रयोग कर ली जाती है। एक बिजलीके रैफरीजिरेटर-की कला चित्रमें प्रदर्शित की गई है। बिन्दुदार रेखाके पूर्वका भाग रैफरीजिरेटरमें है और उसके नीचेवाला रैफरीजिरेटरके नीचे। इसकी कार्य प्रणाली यह है:—

द्रव सलफर डाई आक्साइड तांबेकी नली (२) द्वारा कूलिंग काइल (१) में भरी जाती है जब तक द्रव-तल उचित ऊँचाईपर पहुँच जाये जिससे फ्लोट या तैराक (३) उठ जाता है और सूई वाल्व (४) बंद हो जाता है।

द्रव रैफरीजिरेटरकी गर्मी सोख लेता है जिससे द्रव भाप बन जाती है जो क्वाइलकी चोटीपर जमा हो जाती है। सक्शन लाइन (८) में होता हुआ भापका दबाव
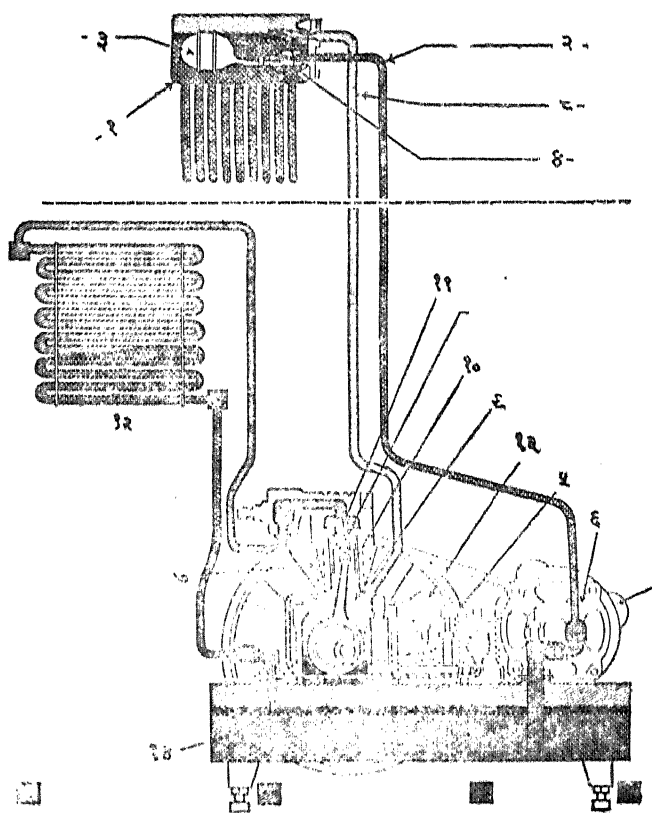
मोटर (६) पर स्विच (५) को बंद कर देता है और कम्प्रेसर (७) चलने लगता है।

कम्प्रेसर, पम्पकी भांति काम करता, भापको सकशन लाइन (८) द्वारा क्वाइलकी चोटीसे एक क्रैंक-कैस (९) में खेंच लाता है।

* सलफर डाई आक्साइड गैस गंधकके जलनेपर बनती है।

अब कम्प्रेसर पिस्टन्स (१०) भापको एक वाल्व (११) से ऊपरको धक्का दे कण्डेन्सर क्वइलों (१२) में पहुँचा देते हैं। क्योंकि भाप क्वाइलों (१२) में भारी शक्तिसे धकेली जाती है, यह चहुँ ओरकी अपेक्षा गरम हो जाती और क्वाइलोंको गरम कर देती है।

यह क्वाइल हवा द्वारा, जो उनमें पूरी शक्तिसे फ़ुहील या पंखा (१३) से चलाई जाती है ठंडे किये जाते हैं। भाप ठंडी होनेपर, और अब भी दवावमें, द्रवमें परिवर्तित हो एक टैंकमें (१४) जिसको रिसीवर कहते हैं, बह जाती है। यहां द्रवको दवावमें रखते हैं जब तक तैराक वाल्व (३) काफ़ी डूब जाता है जिससे सुईवाल्व (४) खुल जाय।

रैफ़रीजिरेटेड गैस स्टोरेज—यह बहुतसे फलोंके लिये कोल्ड स्टोरेजकी अपेक्षा, हवामें कुछ कार्बन-डाई-आक्साइड होनेके कारण, निम्न लिखित लाभ रखता है—

(१) फलका पकना भली मात्रामें रुक जाता है जिससे फल स्टोरेज दशामें अधिक समय तक रखा जा सकता है।

(२) फलके पकनेसे पूर्व जो उसमें परिवर्तन होता है उस परिवर्तनमें भी देर लगती है।

(३) फलकी सख्ती लगभग वैसी ही बनी रहती है।

(४) स्टोरेजसे हटानेके उपरान्त फलका जीवन अति बढ़ जाता है जिससे विभाजक और ग्राहक दोनोंको ही लाभ है।

पिछले दस वर्षों में फल-संरक्षणमें इन्गलैन्डने अधिक उन्नति की है। व्यापारिक गैस-स्टोर करनेवाली संस्थायें सन् १९२८में, जब उद्योग प्रारम्भ किया था, १२ से सन् १९३५में ८० हो गये।

इङ्गलैंडमें इस उद्योगके लिये वैज्ञानिक और पूँजी-पति दोनोंने ही हाथ बढ़ाया है। सर फ्रेन्क स्मिथ, वैज्ञानिक और औद्योगिक खोज विभागके मंत्रीका कहना है कि ५ फ़ुलर रैफरीजिरेटर चैम्बरकी सामग्री पूरा करनेके लिये विशेष रूपसे तैयार किये गये, विभागको मैसर्स जे. ई. हाल लिमिटेडने प्रदान किया था।

अभीतक फलोंपर खोज भारतमें नहीं समान हुई थी। किन्तु अब इस ओर भी ध्यान जाने लगा है। जून १९३५ में पटनामें आमकी प्रदर्शिनी हुई थी जिसमें आम लक्षण ढंग भी लोगोंको दिखाये गये थे। बम्बईकी आधुनिक सरकारने भी अपने आमोंकी रक्षाके निमित्त कार्य करना शुरू कर दिया है। परन्तु इस कलाकी शिक्षा केवल हमारे यहां इलाहाबादमें फल-उगाऊ संस्था खोल रखी है जिसमें हर वर्ष छात्रोंको शिक्षा दी जाती है और परीक्षा उपरान्त उपाधि-पत्र भी मिलता है। यही नहीं, फल-संरक्षणपर घरेलू प्रयोगके लिये विज्ञान परिषद् इलाहाबादके एक महान कार्यकर्ता डाक्टर गोरखप्रसाद ने एक छोटी सी सुन्दर पुस्तक लिखी है।

किन्तु इतनेसे तो कुछ नहीं होता। हमारी सरकार-से प्रार्थना है कि वह एक नवीन विभाग खोले। यह काम सब प्रान्तीय सरकारोंके लाभ का है। उनको चाहिये कि

(१) फल-संरक्षण विभागमें एक एक अध्यक्ष रखे जिनको खेती बाड़ी, पेड़, पौधे, फल आदि विद्याका समुचित ज्ञान हो।

(२) उन अध्यक्षोंके नीचे कुछ और आदमी कार्यके लिये दिये जायँ।

(३) एक कमेटी बने जिसमें वैज्ञानिक, सरकार और प्रजाके प्रतिनिधि हों जो सारे प्रांतके फलोंकी जांच कर उनकी बाबत पूरी खोज करे।

प्रारम्भमें फल-संरक्षण सीखने हेतु कुछ नवयुवकोंको विदेशमें भेजना पड़ेगा। बादको यहीं कालिज खुल सकते हैं जहां भिन्न-भिन्न फलोंपर प्रयोग किये जायँ और उनके संरक्षणका सर्व श्रेष्ठ उपाय ढूँढा जाय।

भारतमें फल-संरक्षण तो कदापि होता ही नहीं है क्योंकि उत्पत्तिकारक भूखों मरता है, उसका शोषक हरा भरा रहता है। परन्तु, जितनी भी देरके लिये हो, अब कहीं-कहीं नवीन सरकारोंके आगमनसे इस परिपाटीमें परिवर्तन किया जा रहा है। यदि फलोंकी ओर भी ध्यान दिया गया तो खेतिहरको, सरकारको, ग्राहकको, सभीको लाभ होगा। लेकिन सबसे महान लाभ यह है कि फल-संरक्षण कारण जब सब को फल खानेको मिलेंगे तो हृष्ट-पुष्ट हो जायंगे जिससे मस्तिष्क और शायद, आत्मा भी स्वस्थ होंगे। हम बलवान हो जायेंगे।

फल संरक्षणकी विधियोंका विस्तृत विवरण विज्ञान परिषद् द्वारा प्रकाशित 'फल-संरक्षण' नामक पुस्तकमें दिया गया है। पाठक इस पुस्तकको अवश्य पढ़ें।

लशुन

[लेखक—श्रीयुत रामेश बेदी आयुर्वेदालङ्कार]

विविध नाम

संस्कृत—परिचय ज्ञापक नाम—शुक्ल कन्द (सफेद कन्द), दीर्घ पलक (लम्बे पत्तोंवाला), उग्र गन्धि (तेज गन्धवाला), विस्रगन्ध (जिसमेंसे दुर्गन्ध आती है), कटु कन्द (स्वाद बहुत तेज होता है), अरिस्ट (अहिंसित, कीड़ोंसे हिंसित नहीं होता, इसमें कीड़े नहीं लगते), जुगुप्सित (कन्दकी तहें एक दूसरेके अन्दर छिपी रहती है), राहूच्छिष्ठ, राहून्सृष्ट (राहूसे जूठाकरके फेंका हुआ), म्लेच्छ कन्द, यवनेष्ठ (म्लेच्छ, यवनप्रिय कन्द) ।

गुण प्रकाशक नाम—रसोन (रसेन ऊन, जिसमें छह रसोंमेंसे एक अम्ल रस कम है) लशुन (रसोनका अपभ्रंश है), महौषध (महान् औषध, ग्राम्य रसायन समझा जाता है । भूतघ्न (कृमि नाशक), वातादि (वात रोगोंका शत्रु) ।

हिन्दी—लहसुन, लस्सन
बंगाली—रसुन ।
मराठी—लसूण ।
गुजराती—लसण ।
अंग्रेजी—गैर्लिक ।
लैटिन—एलियम सैटिवम् लिन ।
नैसर्गिक वर्ग-लिलिएसी ।

प्राप्ति स्थान

भारतमें सब जगह पाया जाता है । जंगलोंमें प्राकृतिक रूपमें स्वयं नहीं उगता । इसका मसालेके रूपमें प्रयोग होनेके कारण इसकी खेती बहुत की जाती है । संयुक्त प्रान्तमें यह बहुत बोया जाता है विशेषकर गढ़वाल और कुमायुंमें । पाश्चर्मीय प्रायद्वीपमें पंजाब और काश्मीरमें भी पैदा किया जाता है । जावाके पहाड़ोंपर यह बहुधा खेती किया जाता है और वहाँ निम्न प्रदेशोंमें अपेक्षाकृत कम ।

कृषि

छोटी-छोटी गाँठोंको पृथक् करके कारियोंमें लगभग सात इंचकी दूरीपर और दो या तीन इंचकी गहराईमें एक-एक बोई जाती है । बोनेका समय औक्टूबर है और ग्रीष्म ऋतुके आरम्भमें फ़सल ले ली जाती है । बीजोंसे भी पौदे तय्यार किये जाते हैं । फ़सल अच्छी हो तो सौसे डेढ़ सौ मन प्रति एकड़के हिसाबसे पैदावार हो जाती है जिसका मूल्य लगभग २५० रुपये अनुमान किया जा सकता है ।

संग्रह

धूपमें सुखानेके बाद गाँठें भविष्यके उपयोगके लिये संगृहीत करके सूखे हवादार स्थानमें रख दी जाती हैं ।

इतिहास

लशुन एशियामें उत्पन्न होनेवाला पौदा है और इसकी कृषि प्रारम्भ किये जानेके सम्बन्धमें कोई ऐतिहासिक रिकौर्ड उपलब्ध नहीं होता । भारतमें यह अत्यन्त प्राचीनकाल (चरकके समयसे अर्थात् दूसरी शताब्दी ईस्वी पूर्वसे) विद्यमान है और यहाँसे ही यह अधिक पूर्वकी ओर फैल गया मालूम होता है । ब्रिटेनके बगीचोंमें यह छठी शताब्दीसे बोया जारहा है ।

भारतीय संस्कृत साहित्यमें इसकी उत्पत्तिके संबंधमें एक आख्यायिका इस प्रकार प्रसिद्ध है —अमृत पान करते हुये राहूके गलेको विष्णु भगवान्के चक्र द्वारा काटे जानेपर उसमेंसे भूमीपर गिरी हुई अमृतकी बूँदोंसे लहसुनकी उत्पत्ति हुई और क्योंकि राहू राक्षस था इसलिये उसके गलेमेंसे गिरा हुआ अमृत भी उच्छिष्ट समझा गया और इससे उत्पन्न लशुन भी दुर्गन्धित बन गया । साक्षात् अमृतसे उत्पन्न होनेपर भी दैत्य देहसे गिरा होनेके कारण लशुन ग्राम्य रसायन समझा जाता है । इसे कथित उच्च जातिके लोग वैष्णव, ब्राह्मण, शैव आदि—नहीं खाते ।

लशुनकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें भाव प्रकाशका वर्णन उपरोक्त आख्यायिकासे भिन्न है । वह लिखता है कि

विष्णु भगवान्‌से जब गरुड़ने अमृत छीन लिया तो जो अमृत बिन्दु गिरे वे पृथ्वीपर रसोन हो गये ।

वर्णन

लशुन एक बहु वार्षिक क्षुप है जिसका वास्तविक तना बहुत घट गया है और उसके आधारमेंसे जड़ें निकलती हैं पत्ते लम्बे तथा चपटे होते हैं और तनेके निकले अर्द्ध भागको ढकते हैं ।

एक दूसरेको ढकते हुये छिलके और उनके आधारीय अक्षमें विद्यमान गाँठें तथा क्षीण तना ये सब मिलकर कन्द बनाते हैं । कन्दमेंसे फूलका डन्ठल निकलकर ऊपर आता है । यह मृदु, स्निग्ध, चमकदार और ठोस होता है । इसके सिरेपर अपूर्ण फूल लगते हैं । फूल छोटे-छोटे और सफेद होते हैं । इनमेंसे अधिकाँश भाग कन्दों या कन्दिलोंमें बदल जाते हैं । कन्दमें अनेक छोटी-छोटी कलियाँ होती हैं । ये सब एक झिल्लीदार आवरणमें बन्द रहती हैं ।

भेद

राज निघण्टुने इसके सफेद और लाल दो भेद लिखे हैं । एक और भेद महारसोनका उल्लेख कैयदेव निघण्टुमें है । मालूम होता है महारसोन लाल लहसन है । साधारण लहसुनकी अपेक्षा इसके पत्ते और कन्द बड़े होते हैं । बाजारमें आम मिलनेवाला सफेद रंगका लहसन श्वेत समझना चाहिये । भाव प्रकाशने लशुनके भेदोंका वर्णन नहीं किया । वह केवल एक प्रकारके लहसनको ही जानता है ।

उपयोग भाग

गाँठें और बीजोंमेंसे निकाला हुआ तेल ।

लशुनकी उग्रगंधको नष्ट करनेके लिये निम्न प्रचलित शास्त्रीय विधि है—लहसुनके ऊपरका छिलका उतारकर अन्दरकी छोटी-छोटी कलियोंको पृथक् करलें । इनके ऊपरका भी पतला आवण निकाल लें और प्रत्येक कलीको लम्ब अक्षमें चीरा देकर उसके मध्य केन्द्रमें विद्यमान उत्पादक अङ्कुरको निकालकर फेंक दें । अब उसे दही या लस्सीमें भिगोकर रख दें और रात भर ऐसा ही पड़ा रहने दें । अगले दिन प्रवहमाण जलमें खूब अच्छी तरह धोकरकर सुखा लें । अब यह उपयोग किये जानेके लिये तय्यार हो गया है । इसे सुरक्षित रख लें ।"

रासायनिक विश्लेषण

लशुनका क्रियाशील तत्त्व एक उड़नशील तेल है । कुचली हुई गाँठोंका तिर्यक् पातन करनेसे यह प्राप्त किया जाता है । तैल स्वच्छ, पारदर्शक, गहरे भूरे या पीले रङ्गका होता है । इसमें तेज लहसनकी-सी गन्ध आती है । यह ०·०६ से ·१ प्रतिशततक निकलता है । १४·५° इसका आपेक्षिक गुरुत्व १·०५२५ है । औप्टिकलि इनएक्टिव है । शुद्ध करनेपर यह नीरंग होता है और निश्लिष्ट हुये बिना तिर्यक् पातित किया जा सकता है । शीत ऋतुके तापमानपर यह कभी-कभी अर्द्ध ठोस हो जाता है और सूक्ष्म स्फटिक बन जाते हैं । १२०° शतांश तक गरम करनेसे तेल विश्लिष्ट हो जाता है । १६ m. m. दबावपर रासायनिक विभाजन करनेसे निम्न चार विभाग प्राप्त हुये—

विभाग १ (६ प्रतिशतक) में एलाइप्रोफाइल डिसल्फाइड होता है । यह चमकीला पीला तेल ६६° से ६९° (१६ m. m. पर उबल जाता है । १५° पर आपेक्षिक गुरुत्व १·०२३१ है । गन्ध प्याज जैसी होती है । पारमिक और लौहिक हरिदूसे बहुतसा निक्षेप देता है ।

विभाग २ (६० प्रतिशतक) में डिएलाइल डिसल्फाइड है । यह हल्का पीला तेल लशुनकी गन्धका है । थोड़ेसे पोटाशियमके साथ ७८° से ८०° पर तिर्यक् पातित करनेसे रंग रहित हो जाता है । १४·८° पर आपेक्षिक गुरुत्व १·०२३६ है ।

विभाग ३ (२० प्रतिशतक) ११२° से १२२° शतांशके बीचमें १६ m. m. दबावपर उबल जाता है । १५° पर आपेक्षिक गुरुत्व १·०८४५ है ।

विभाग ४ (१०·५ प्रतिशतक) १६ m. m. दबावपर १२२° से ऊपर उबलता है । अधिक तिर्यक् पातनपर डिकम्पोज हो जाता है । इसमें मुख्यतया पौलि सल्फाइड् होते हैं ।

इस प्रकारसे यह देखा गया कि तिर्यक् पातनसे प्राप्त

लहसनके किसी भी विभागमें एलाइल सल्फाइड नहीं होता और पहले यह मुख्य पदार्थ समझा जाता था।

उड़नशील तेलके अतिरिक्त निशास्ता लेस (म्युसिलेज) एल्व्युमिन और शर्करा आदि भी होते हैं।

योग

रसोन पिण्ड—लशुनकी छिली हुई गाँठें १० सेर छिलके रहित तिल बत्तीस तोला, हींग, त्रिकुट, यवक्षार, सर्जक्षार, पञ्च लवण, सोया, कुष्ठ, पिप्पली मूल, चित्रक अजमोदा अजवायन, धनिया प्रत्येक चार तोला लेकर सूक्ष्म चूर्ण करलें और पिसे हुये लशुन तथा तिलोंके साथ मिला दें। घृत सिक्त मृत्तिका पात्रमें आधा सेर काञ्जी और १२८ तोला तेलके साथ उपरोक्त द्रव्य मिलाकर सोलह दिन तक रखा रहने देनेसे रसोन पिण्ड तय्यार हो जाता है।

मात्रा—आधेसे एक तोला।

अनुपान—जल।

रोग—आमवात, सर्वांगवात, एकांगवात, अपस्मार, मन्दाग्नि, कास, श्वास,, उदर रोग, इत्यादि, खञ्जवात, शूल।

महारसोन पिण्ड—कुचले हुये लहसुन दस सेर और छिलके रहित तिल पाँच सेर, गौके दूधको जमाकर बनाई हुई लस्सी आठ सेर, त्रिकुट, धनिया, भव्य, चित्रक गज पिप्पली, अजमोदा, दालचीनी, इलायची, पिप्पली मूल प्रत्येक आठ तोला, खाण्ड चौंसठ तोला, काली मिरच आठ तोला, कुष्ठ, काला जीरा प्रत्येक बत्तीस तोला, मधु चौंसठ तोला, अदरक बत्तीस तोला, घृत और तिल तैल प्रत्येक चौंसठ तोला, सिरका एक सौ साठ तोला, श्वेत सरसों और राई प्रत्येक बत्तीस तोला, हींग दो तोला, पाँचों नमक प्रत्येक दो तोला, इन्हें एक मजबूत बरतनमें डालकर अनाजके ढेरमें रखनेसे यह बारह दिनमें तय्यार हो जाता है।

मात्रा—आधेसे एक तोला।

अनुपान—सिरका, सुरा व दूध।

रोग प्रमेह, अर्श, गुल्म, कुष्ठ, शूल आदि।

रसोन तैल—लहसन दस सेर, जल बत्तीस सेर, अवशिष्ट क्वाथ आठ सेर, तिल तेल दो सेर. कल्कार्थ द्रव्य—त्रिकुट, त्रिफला, दन्तीमूल, हींग, सेंधा नमक, चित्रक, देवदारू, बचा, कुष्ठ, मुलैठी, शोभाञ्जन, पुनर्नवा, काला नमक, वाय विडङ्ग, अजवायन, गज पिप्पली, प्रत्येक चार तोला, त्रिवृत्त चौबीस तोला, यथा विधि मन्दाग्निपर तेल सिद्ध करें।

मात्रा—आधा तोला।

रोग—मूत्र कृच्छ, उदावर्त गुद कृमि पार्श्व, कुक्षि और आम शूल, अरुचि आदि।

रसोनाष्टक (लशुनाष्टक)—तक्रमें रखकर निकाली हुई लहसुनकी कलियोंको सिलपर पीस लें। कल्कसे पाँचवाँ भाग इन द्रव्योंका समभागमें चूर्ण मिला दें—सौवर्चल नमक, अजवायन, त्रिकुट जीरा और भुनी हुई हींग तथा लवण। इसमें कल्कका चतुर्थांश तिल तेल मिलएँ।

मात्रा—आधेसे एक तोला।

रोग—अपस्मार, गृध्रसी, उरुस्तम्भ, शूल आदि।

लशुन द्राव—छिली हुई लशुनकी एक छटाँक गाँठें लेकर खरलमें रगड़कर बहुत पतला कल्क बना लें। रगड़ते हुये इसमें धीरे-धीरे एक औंस पानी मिलाकर छान लें। अथवा लहसनको कुण्डी सोटेमें घोटकर रस निकाल लें और एक औंस रसमें तीन या चार औंस शुद्ध जल मिला कर काममें लायें।

रोग—विभिन्न प्रकारके व्रण।

लशुन जल—लशुन द्रावमें आधा भाग पानी मिलाकर उसकी शक्ति कम कर लें।

रोग—अनेक विध व्रण।

तेल—बीजोंमेंसे एक औषधोपयोगी तेल निकलता है। यह साफ, नीरङ्ग और लेसदार होता है।

गाँठोंको पीसकर भी एक तेल निकाला जाता है। यह उत्तेजक होता है और सतत ज्वर (इण्टरमियेटर फीवर) के ठन्डे दौरोंको रोकनेके लिये अन्तः प्रयोग किया जाता है।

प्रभाव

सब अंगोंपर विशेषतः आमाशय, श्वास संस्थान गर्भाशय, वातनाडियों और जननेद्रियोंपर इसका उत्तेजक

प्रभाव होता है। यह दीपक, पाचक, क्षुधा-वर्द्धक, मूत्रल आर्तव प्रवर्त्तक, बल्य, स्वेदक, आमवातहर और रसायन है। रक्त संचारको तेज़ करता है और वात संस्थानको उत्तेजना देता है। गण्डूपद कृमियोंको बाहर निकाल देता है उदर कृमिहर है। स्थानिक उत्तेजक और क्षोभकके रूपमें यह त्वचाको लाल कर देता है और छाला डाल देता है यद्यपि इसका यह कार्य बहुत देरमें होता है। शोथ शामक गुण भी इसमें विद्यमान है।

लशुनके गुण इसमें विद्यमान एक उड़नशील तेलके ऊपर निर्भर करते हैं जो गांठोंको कुचलकर तिर्यक् पातित करनेसे प्राप्त हो जाता है। जब लहसुन खाया जाता है, तो शरीरके भिन्न-भिन्न स्रावोंसे इसकी गन्ध आती है।

उपयोग

भारतके प्राचीन चिकित्सकोंने दवाके रूपमें लहसुनको बहुत ऊँचा स्थान दिया है। आधुनिक चिकित्सामें भी यह पहले बहुत इस्तेमाल किया जाता था पर अब इसका व्यवहार उतना अधिक नहीं किया जाता। यह गरम सारक और उत्तेजक समझा जाता है और ज्वर कास तथा निर्बलतामें दिया जाता है। चरक इसे उदरके विकारों,त्वचाके रोगों और कृमियोंमें देना लाभकारी समझता है और साथ ही इसे स्निग्ध, गरम, गुरु, वायुनाशक और पुंस्त्व शक्तिको बढ़ानेवाला भी समझता है। इसके अतिरिक्त सुश्रुत इसे अजीर्ण अरुचि आदि पेटके विकार, खाँसी, दमा आदि श्वास संस्थानके कष्ट, ज्वर, आँख और हृदयके रोग, हड्डीका टूटना और मस्तिष्क सम्बन्धी निर्बलताओं आदिमें भी देनेकी सिफारिश करता है।

पुरातन आयुर्वेदिक साहित्य में लशुन रसायन माना गया है। कल्प रूपमें इसका व्यवहार किया जाता था। सरदी, वारिश और पालेसे मारे हुये शरीर वालोंके लिये टूटे हुये टेढ़े मेढ़े निष्क्रिय तथा वेदना-युक्त हड्डियोंवालों के लिये और वायुसे पीड़ित व्यक्तियोंके लिये यहां हम लशुन कल्पका उल्लेख करते हैं। यह कल्प पहले वात रोगसे आक्रान्त उद्धवको नारद ने करवाया था—

शीत ऋतुमें और बसन्तमें कफकी प्रधानता होनेसे बसन्त ऋतुमें, अत्यन्त घने बादलोंसे आच्छन्न वर्षा ऋतुमें और आवश्यकता होने पर ग्रीष्म ऋतुमें या सदा ही वात रोगी सामर्थ्यानुसार लहसन का सेवन करता रह सकता है। निर्बल व्यक्ति अपनी शक्तिसे अधिक मात्रामें सेवन करेगा तो दाह, अतिसार, अरुचि तथा किसी काममें मन न लगना आदि लक्षण प्रकट हो जाते हैं। इसलिये इसके सेवनमें शीघ्रता नहीं करनी चाहिये और मात्रा धीरे-धीरे बढ़ानी चाहिये। दौर्बल्यमें अश्वगन्धाके चूर्णके साथ सेवन करना चाहिये। स्वरभंग होतो मुलैठीके साथ चबाते हुये रस अन्दर निगलते जाना चाहिये। गुल्ममें तेलके साथ, कुष्ठमें खैरके साथ और कृमि रोगोंमें कृमिनाशक औषधियों-के साथ यह खाया जाता है। यक्ष्मामें लहसुनका सेवन करते हुये घी और दूधका खूब प्रयोग करना चाहिये या लहसुनको घी और दूधमें पकाकर भी लिया जा सकता है। अर्शमें कुटजकी छालके साथ, प्रमेह, कास, श्वास और विलम्बिकामें त्रिफलाके साथ लेनेसे लाभ होता है।

पैत्तिक अवस्थाओंमें जैसे—पाण्डु सम्बन्धी उदररोग, पैत्तिक शोफ, तृष्णा, वमन और आंखके रोगोंमें लशुन कल्प नहीं करना चाहिये। लहसन शरीरके मोटापेको छांटता है इसलिये शरीरकी कृशता और मदात्ययमें भी यह कल्प निषिद्ध है।

कल्प करते हुये औटाया हुआ पानी पीना चाहिये। मछली, गुण, दही, भल्ले, पकौड़े आदि तली हुई भारी चीज़ें नहीं खानी चाहिये। दिनमें सोना, रातमें जागना, मैथुन, अधिक बोलना और अधिक चलना फिरना आदि छोड़ देना चाहिये। प्रसन्न मन रहना चाहिये।

कल्प करने वाले व्यक्तिकी अग्नि दीप्त होती है। स्वर ठीक होकर वाणी मधुर होती है, बुद्धि बढ़ती है, शारीरिक शक्ति आती है और शरीर सुन्दर होता है। इस प्रकार रूप और गुणसे युक्त स्त्री व पुरुषोंके जननेन्द्रिय सम्बन्धी दोष दूर होते हैं और सन्तान-प्राप्तिकी इच्छा होती है। अमृत-कणोंसे उत्पन्न लशुनको शीत कालमें जो नियमित रूपसे विधि पूर्वक खा लेता है वह निरोग, हृष्ट-पुष्ट, प्रसन्न-वदन, सुवर्णके समान कान्ति-युक्त और सुन्दर गौरवर्ण हो जाता है। स्त्रियोंके साथ रहता हुआ भी वह सौ वर्ष तक जीवित रहता है और बुढ़ापा उसके पास नहीं आता।

लशुनको रसायन रूपमें सेवन करते हुये शराब, माँस तथा अम्ल पदार्थोंका उपयोग करना हितकर होता है। दूध, गुड़ तथा अधिक पानीका उपयोग नहीं करना चाहिए। धूप, अधिक गुस्सा आदिसे भी बचना चाहिये। अत्यधिक थकानके बाद धीरे-धीरे चबाकर निगली हुई लहसनकी एक छोटी गाँठ बहुत क्रियाशील श्रमहरका काम करती है।

कुछ शल्यकर्म सम्बन्धी अवस्थाओंमें जैसे हड्डी टूट जानेपर लहसन, शहद, लाख, घी और खाण्डको पीसकर खानेसे यह एक बल्यका काम करता है और हड्डी शीघ्र जुड़ जाती है। चोट लगना, जोड़ उतर जाना, हड्डी टूटना आदि शल्यकर्म सम्बन्धी अवस्थाओंमें शरीरकी शक्ति बनाये रखनेके लिये बल्य रूपमें महारसोन पिण्ड खाया जाता है। यह दूध, बलवर्द्धक आयुको बढ़ानेवाला और दृष्टिको तेज़ करनेवाला है।

सरदियोंमें रसका नियमित रूपसे सेवन करनेसे आम वात और वातिक शूलके आक्रमणसे रक्षा होती है। वंगसेन कहता है कि वात रोगोंमें लशुनको बारीक पीसकर घीके साथ चटायें और औषधि सेवन कालमें भोजनमें घीका अधिक प्रयोग कराएं। भोजनसे पूर्व लहशुन और तिल तेलका प्रतिदिन सेवन वातरोगों चिरस्थायी तथा सुघोर वातरोगोंको नष्ट करता है। भावप्रकाश इसमें लवणका और समावेश करनेके लिए लिखता है। रसोन तैल लगातार एक मासतक सेवन किया जाय तो वातरोगोंसे छुटकारा हो जाता है। आम वातमें यह कषाय और अवलेहके रूपमें दिया जाता है। लहसन, सोंठ तथा सम्भालू तीनों मिलाकर आधा तोला लें। इसे बत्तीस तोला पानीमें पकाकर आठ तोला बचा लें। यह क्वाथ आम वातमें दिया जाता है अर्दितमें भी पीनेसे लाभ होता है। नाड़ी शूलोंमें जैसे कटिशूल और गृध्रसी शूलमें लशुन पिण्ड देना चाहिये। सन्धि-शोथपर अलसी और आटेमें लशुन मिला पुल्टिस बनाकर बाँधनेसे दर्दको आराम होता है। लशुन कल्कमें जीरा, हींग, सैन्धव और सौवर्चल लवण सोंठ मिरच और पिप्पलीका चूर्ण मिलाकर प्रतिदिन प्रातः काल एक मासतक सेवन करनेसे अर्दित, व्यापी पक्षाघात, ऊरुस्तम्भ, गृध्रसी, कटिशूल आदि नष्ट होते हैं, पेटमें वायुका प्रकोप हो तो वह भी शान्त होता है। बच्चोंके आक्षेप रोग और अन्य वातिक तथा उद्वर्त जन्य रोगोंमें यह लेपके रूपमें बहुत प्रयुक्त होता है। लहसन सोलह तोला, दूध एक सेर और जल आठ सेरको दूध मात्र अवशिष्ट रहने तक पकाएं। इस लशुन-सिद्ध दूधको पीनेसे वात गुल्म, उदावर्त, गृध्रसी, विषमज्वर हृद्रोग और शोथमें शीघ्र लाभ होता है। डाक्टर कार्तिक चन्द्र बोस इसे उपरोक्त रोगोंके अतिरिक्त व्यापी पक्षाघात, गठिया, हिस्टीरिया और अफारेमें भी देनेकी सिफारिश करते हैं।

हिस्टीरियाकी मूर्च्छामें नाकपर लगाया जाता है। तेल और लहसन मिलाकर अपस्मारमें खिलाया जाता है। मूर्च्छाकी अवस्थामें इसका नस्य लाभकारी है। नासा रक्त स्रावमें इसके स्वरसका नस्य दिया जाता है। आमाशयिक उत्तेजक होनेसे यह पाचन क्रियामें मदद करता है। भोजन रूपमें यह दैनिक व्यवहारमें व्यञ्जनोंमें मसालेके रूपमें डाला जाता है। इसकी तीव्र गन्धके कारण व्यञ्जनोंमें स्वादके लिए इसकी बहुत थोड़ी मात्रा पर्याप्त होती है। चीनी लोग भी अपने कुछ प्रिय मसालोंमें डालते हैं। पत्तोंका शाक बनाकर खाया जाता है। अफारेके कारण उदर शूल हो तो लशुन लाभ करता है। यह वायुको निकालता है। लशुन कल्कको मट्ठके साथ मिलाकर प्रातः काल इच्छानुकूल पीनेसे वात श्लैष्मिक शूल दूर होती है और जठराग्नि प्रदीप्त होती है। अरुचि, डकार आना आदि पेटके रोगोंमें लशुन-तेल दिया जाता है। आमातिसार, विशूचिका, ग्रहणी, अजीर्णके लिए रसका योग लशुनाष्टक बहुत उपयोगी है। प्रत्येक भोजनके बीस-पचीस मिनिट बाद पानीमें लिया जा सकता है? मैंने इसे तीव्र प्रवाहिकाकी प्रारम्भिक अवस्थामें भी उपयोगी पाया है। केवल लशुनको पन्द्रह ग्रेनकी दिनमें तीन मात्रायें मठेके साथ देनेसे एक ही दिनमें प्रवाहणोंकी संख्या आधी या तिहाई रह गई और तीन-चार दिनमें पूर्ण आराम हो गया। भाव प्रकाशने लशुनाष्टकको भिन्न-भिन्न रोगोंमें सेवन करनेके लिए बहुत विस्तृत निर्देश दिये हैं। यह पेटके कीड़ोंको निकालनेमें भी प्रयुक्त होता है।

साधारण नमकके साथ दिया जाय तो यह उदर शूल और वातिक शिरो वेदनाको हटाता है। तीव्र उर्द्धाव भेदकमें तथा अन्य प्रकारके सिर दर्दोंमें इसको पीसकर शंख प्रदेशोंपर लेप करनेसे रक्तका प्रवाह उस स्थानकी ओर हो जाता है जहाँ यह लगाया जाता है और सिर दर्द दूर हो जाती है। लेप अधिक देर तक लगा रहे तो छाला भी पड़ सकता है।

सिरकेके साथ मिलाकर कण्ठ व्रण और वाचिक तन्त्रियों (वोकल कौर्डस) के ढीले हो जानेमें ग्राही रूपमें प्रयोग किया जाता है। काग (युवुला) बढ़ आया हो तो लशुन रसका प्रयोग रजत नोषेत जैसा असर करता है।

मलायामें कई प्रकारके आँतोंके रोगोंमें यह मिश्रणोंमें दिया जाता है। गिलोयके साथ यह उदर कृमिहर समझा जाता है, घृत कुमारी और मरिलके साथ विरेचनके लिए दिया जाता है। अजवायनके साथ यह खाँसीमें प्रयुक्त होता है। सिर दर्द, वातिक वेदनाओं, यकृत् अवरोध और स्त्रियोंके विभिन्न रोगोंमें दिये जानेवाले नुस्खोंमें भी लोग इसे डालते हैं।

आर्त्तव प्रवर्त्तकके रूपमें लशुन मासिक धर्मके प्रवाहको जारी कर देता है। यह मूत्रको बहुत अधिक परिमाणमें लाता है इस लिए श्वयथु और सर्वाङ्गमें प्रयुक्त होता है। धन्वन्तरि और राजनिघण्टु दोनों इसमें शोक नाशक गुण समझते हैं। मूल मार्गकी शोथ या मूलाशयकी निर्बलताके कारण मूलरोध हो तो सीवन प्रदेशपर अलसी और आटेके साथ लशुनकी पुल्टिस बनाकर बाँधनेसे लाभ होता है।

वाह्य प्रयोगोंमें त्वचाके रोगोंमें रस लेप रूपमें प्रयुक्त होता है। दादपर लहसनको रगड़ा जाता है। सरसों या नारियलके तेलमें लहसनको भून लिया जाता है और वह कृमियुक्त व्रणोंके लिये उत्तम लेप है। जिन व्रणोंमें कीड़े पड़ गये हों उनपर लशुन-सिद्ध तेलसे भीगा औज़ार रखना एक उत्तम उपचार है। चोट लगनेपर हल्दी तथा लहसन कल्कको तेलमें मिला गरम कर बाँधनेसे शोथ और शूल शान्त होते हैं। लशुन रसमें थोड़ा नमक मिलाकर घसीटवाले स्थान और मोचपर लगाया जाता है। यह वातिक शूल और कर्ण शूलको भी आराम करता है। कर्ण शूल और बाधिर्यमें लशुन और हींगको तेलमें गरम करके तेलकी कुछ बूँदें कानमें डालते हैं। आधा औंस तिल तेलमें थोड़ा-सा लशुन और एक-दो लौंग उबालकर डालनेसे कर्णपूयको वेदनाको कम करता है और बाधिर्यमें उपयोगी होता है।

सिरपर लगानेसे समझा जाता है कि बालोंको सफेद होनेसे रोकता है। जूएं मारनेके लिए इसका रस प्रयुक्त किया जाता है। रेंगनेवाले ज़हरीले कीड़ोंके काटनेपर इसका कल्क लगाया जाता है। कई स्थानोंपर यह घरोंमें इस लिए रखा जाता है कि इसकी तीव्र गन्धके कारण घरमें साँप या दूसरे हानिकारक कीड़े नहीं आते।

गुरुकुल विद्यालय काँगड़ीसे सम्बन्धित श्रद्धानन्द सेवाश्रम हौस्पिटलमें मैंने पुराने दूषित व्रणोंपर लशुनकी पट्टियाँ बँधवाईं और प्राप्त परिणाम सन्तोषजनक थे। पैंतीस सालके एक ग्रामीण पुरुषकी अनामिकाके अन्दरकी ओर बड़ा घाव था। चोट लगे हुए पन्द्रह दिन हो चुके थे। घावपर मैले चीथड़ोंके लपेटने और इसी प्रकारके अन्य ग्राम्य उपचार करनेसे व्रण बहुत गन्दा, दुर्गन्धित, पूय स्रावी और कष्टदायक हो गया था। अंगुलीके अन्तः पृष्ठको पूरा घेरे हुए था। तन्तुओंके पूयमें परिवर्तित होनेकी प्रक्रिया (Sloughing process) बहुत तीव्रतासे जारी थी। अत्यधिक वेदनाके कारण रोगी पट्टी करवानेके लिए अंगुलीको छूने तक नहीं देता था। रोगीको दिलासा देते हुए किसी तरह बहुत सावधानी और कोमलतासे पुरानी पट्टी उतारी और ज़ख्मको लशुन-जलसे साफ़ करके लशुन-द्रावमें भीगे गौज़को रखकर पट्टी बाँध दी। अगले दिन चौबीस घण्टेके बाद फिर पट्टी खोली तो पूय बहुत कम थी, सोज़िश और वेदनामें भी पर्याप्त कमी थी। रोगीने अब पट्टी करवानेमें विशेष कष्ट नहीं अनुभव किया। बिना किसी और प्रकारके औषधोपचारके केवल लशुन चिकित्सासे वह मरीज़ शीघ्र चंगा हो गया। बरसातमें चोट लग कर किसानोंकी टाँगों और पैरोंमें हो जानेवाले दूषित, पूय स्रावी और कीड़े पड़े हुए व्रणोंकी चिकित्सा लशुनसे श्रद्धानन्द सेवाश्रममें की गई। घावोंका विस्तार लगभग रुपये या दो रुपयेके

बराबर था। एक ही प्रकृतिके कुछ घावोंको दो समूहोंमें विभक्त कर लिया गया। जिनमेंसे एक समूहकी केवल लशुनकी चिकित्सा की गई और दूसरे समूहके रोगियोंको चिकित्सामें आधुनिक शल्य तन्त्रमें प्रयुक्त किये जानेवाले कृमिहर रोपक द्रव्योंका व्यवहार किया गया। दोनों समूहोंमें परिणाम लगभग एक समान ही थे। लशुन-रसको मैं उसी शक्तिमें प्रयुक्त करता था जिसका मैंने पहले योगों लशुन-द्राव और लशुनजल नामसे उल्लेख किया है। दूसरे रोगियोंमें भी प्रत्येक रोगीमें सन्तोष जनक सफलता मिली। व्रणोंको कृमि रहित करने और कृमियोंके आक्रमणसे सुरक्षित रखने तथा रोपण क्रिया बढ़ानेके लिये मैं लशुनके प्रयोगकी सिफ़ारिश करूँगा। विशेषकर भारतके गाँवोंमें काम करनेवाले चिकित्सकों तथा ग्राम सेवा करनेवाले व्यक्तियोंको गावोंकी चिकित्सामें इस निरापद चिकित्सा विधिके अवलम्बनसे विशेष लाभ होगा।

कर्नल चोपड़ाकी 'इंण्डिजीनस ड्रग्स औफ़ इण्डियासे' निम्न उद्धरण घावोंपर लहसनके प्रयोगके सम्बन्धमें अच्छा प्रकाश डलता है —

"बाह्य प्रयोगमें व्रण युक्त पृष्ठोंपर और घावोंपर लशुनका रस कृमिहर रूपमें प्रयोग करनेसे सन्तोषजनक परिणाम प्राप्त हुए। सामान्य पातित जलके तीन या चार भागमें लशुन रस मिला कर बनाए घोलसे घावों और ख़राब व्रणोंको धोया जाता है। इस घोलसे धोनेके बाद चौबीस घण्टेके अन्दर कृमियुक्त घावोंमें निश्चित रूपसे उन्नति होती हुई देखी गई और अड़तालीस घण्टेमें तो और भी अधिक स्पष्ट और निश्चित उन्नति थी। न केवल पूय स्रावी ही स्पष्ट रूपसे कम हुआ परन्तु वेदना भी पर्याप्त कम थी और कई रोगियोंमें तो यह सर्वथा बन्द हो गई। इस घोलके लगानेके परिणाम स्वरूप तन्तुओं को किसी प्रकारकी हानि होती हुई नहीं देखी गई। यद्यपि इस घोलकी कार्बोनिकाम्लको एफ़िशियेण्ट अन्य कृमिहरोंकी अपेक्षा कम है परन्तु इसके प्रयोगमें यह स्पष्ट लाभ होता है कि यह कार्बोलिकाम्लकी अपेक्षा तन्तुओंके लिए बहुत कम क्षोभक है। कार्बोलिकाम्ल घोलको जहाँ चालीसमें एक (ढाई प्रतिशत) की शक्तिसे अधिक प्रयोग करना बहुत कम सम्भव होता है वहां लशुन रस तन्तुओंको बिना हानि पहुँचाए बीससे पचीस प्रतिशतककी शक्तिमें प्रयोग किया जा सकता है। मिनचिन (१९१६) कहता है कि पूयस्रावी घावों और दुष्ट व्रणोंकी चिकित्सामें उसने पन्द्रह सालतक लशुनके योगोंका उपयोग किया है और बहुत सन्तोषजनक परिणाम प्राप्त किये हैं।"

अन्तः प्रयोगमें कई प्रकारके निर्बलता जन्य अजीर्णमें लशुन एक दवा है। आध्मान और उदर शूलके रोगियोंको दससे तीस बून्दकी मात्रामें लशुन रस दिया गया और अच्छे परिणाम देखे गये। लशुनका उड़नशील तेल रक्त संचारमें चला जा कर फुफ्फुस और श्वास प्रणालीकी श्लैस्मिक कलासे बाहर निकलता हुआ कृमिहर और उद्वर्तहर कार्य करता है। दमेमें कभी-कभी गरम पानीके साथ लहसनका रस पिलाया जाता है। लैम्ब (१९२५) लशुनके मद्यासवके रूपमें श्लैष्मिक रोगोंमें लशुन प्रयोगकी सलाह देता है। यह अकेला या कफ निस्सारक मिश्रणोंके साथ मिलाकर दिया जा सकता है। आमाशय या आम्लमें श्लेष्मा वृद्ध हो तो लशुनको मरहमके रूपमें पेटपर मला जाता है, उसके बाद हड्डी बांध देनी चाहिये। कास और श्वासके कष्टोंमें यह प्रभावकारी कहा जाता है। मिनचिन (१९१६) के अनुसार लशुन बहुतसे रोगोंकी औषधि है। वह इसे टाइफस, टाइफायड और डिप्थीरियाकी रोधक चिकित्साके लिए अच्छा समझता है। वह सलाह देता है कि पहली दो बीमारियोंमें लशुन रस एक ड्राम प्रत्येक चार या छह घण्टे पीछे शर्बत या माँसके शोर्वेके साथ दिया जाना चाहिये। बारह वर्षसे छोटे बच्चेके लिए शर्बत में आधा ड्राम डालकर देना पर्याप्त होता है। आन्त्रज्वर (टाइफ़ायड) की प्रारम्भिक अवस्थामें देनेसे यह रोगको लगभग निकाल देता है। और आंतोंपर इसका कृमिहर प्रभाव होनेसे यह रोगकी किसी भी अवस्थामें लाभकारी हो सकता है। डिप्थीरियामें लशुनके कतरोंको लगातार चबाते रहें तो इसके गलेपर रहनेसे डिप्थीरियाकी झिल्ली लुप्त हो जाती है, तापमान कम हो जाता है और रोगी अच्छा हो जाता है।

उस विधिसे तीन चार घण्टेमें एक-दो औंस लहसन ले लेना चाहिये। झिल्ली लुप्त हो जानेके एक सप्ताह बादतक एक या दो औंस गाँठ प्रतिदिन चबा लेनी

चाहिए। डिप्थीरियाके रोगीको किसी प्रकारका स्वाद या गन्ध नहीं आती और वह लहसन को केवल गरम अनुभव करता है।

इसकी गन्ध प्रतिदिन तीन-चार घण्टे अन्तः श्वास में लेनेसे कुक्कुर खांसीके कष्ट दायक लक्षण शीघ्रतासे कम हो जाते हैं। कुक्कुर खांसीमें इसकी गाँठोंकी माला बच्चोंके गलेमें पहनाए जानेकी ग्राम्य प्रथा सम्भवतः इसी आधार-पर प्रचलित हो। छोटे बच्चों और शिशुओंको प्रारम्भिक अवस्थामें शर्बतमें बीससे तीस बूंद लशुन रस प्रतिचार घण्टे पीछे देनेसे शीघ्र आराम होता है। इसके गरम कल्क-की पुल्टिस छातीपर लगाई जाती जाती है। श्लैश्मिक रोगोंमें लशुन और काली मिरचका नस्य श्लेस्माका नाश करता है। क्रोसमैन (१९१८) के विचारमें लशुन पर्याप्त मात्राओंमें दिया जाय तो यह निमोनिया (श्वास ज्वर) की चिकित्सामें लाभकारी दवा है। उसने इसे विशेष निमोनियाकी चिकित्सामें दो वर्ष तक प्रयोग किया। उसकी प्रकाशित रिपोर्टके अनुसार मालूम होता है कि तापमान, नाड़ी और श्वास प्रश्वासकी गतिको लगभग चौबीस घण्टेमें साधारणतक नीचे लानेमें यह किसी भी उदाहरणमें निष्फल नहीं हुआ। किसी भी रोगीमें रोगके पांचवें दिनके बाद खतरा नहीं देखा गया। उसने लहसनकी गाँठोंसे बनाये पांचमें एककी शक्तिवाले लशुन मद्यासवको वरता। आधा ड्राम औषधि जलमें मिलाकर प्रतिचार घण्टे बाद दी। अन्य श्वास प्रणालीके रोगों अर्थात् कास, पूति कास और श्लेष्म ज्वरमें परिणाम कम आशाप्रद नहीं थे। श्वास प्रणालीके रोगोंमें यह उत्तेजक, कफ निस्सारक और बल्यका काम करता है।

फुफ्फुसीय क्षयमें लशुन और इसके योगोंका बहुत प्रयोग होता है। वर्तमान कालमें कई इस प्रकारके योग बाज़ारमें चल रहे हैं जिनमें लशुनका रस या इसके अन्य क्रियाशील तत्व होते हैं। फुफ्फुसीय क्षयकी अवस्थामें जमे हुए कफ और कीटाणुओंको लशुन रस प्रायः कम करता है। भूख बढ़ जाती है और कुछ रोगियोंमें तो रात्रिस्वेद पूर्णतया बन्द होता देखा गया है। रोगी अपने आपको अधिक स्वस्थ अनुभव करता है, नींद बढ़ जाती है और पाचन क्रियामें उन्नति दिखाई देती है। भारमें भी वृद्धि हो जाती है। क्षयमें लशुन उत्तम रोधक है। शरीर सूख रहा हो तो इसके योगोंका नियमित सेवन करना चाहिए। क्षयकी अवस्थामें लशुन योगोंके प्रयोगके लिए मिनचिन (१९१६) ने बहुत बल दिया है। उसके अनुसार लशुन सब प्रकारके क्षयी व्रणोंमें, बढ़ी हुई अवस्थामें या जिनके बढ़ जानेकी सम्भावना हो, प्रयुक्त किया जा सकता है। स्वरयन्त्र क्षयके कुछ रोगियोंको उसने इसकी आधेसे एक ड्रामकी मात्रा दिनमें दो या तीन बार देकर चिकित्सा की है और सदा बहुत अच्छे परिणाम प्राप्त किये हैं।

विषम-ज्वरमें भोजन पूर्व तेलके साथ लशुनका प्रति-दिन सेवन करनेसे लाभकारी होता है। मलेरियामें घीके साथ भी प्रातः काल लिया जा सकता है। इसमें भोजनमें बुद्धि वर्द्धक उष्ण वीर्य मांसोंको खाना चाहिये। सतत ज्वरोंमें ज्वरहर रूपमें उपयोगी समझा जाता है।

भारतमें साबुनका व्यवसाय और उसकी प्रगति

[श्री श्याम नारायण कपूर, बी० एस-सी०, ए० एच० बी० टी० आई०]

साबुनका व्यवसाय सर्वथा आधुनिक है। प्राचीन भारतमें साबुन नामकी अथवा ठीक साबुन जैसी कोई वस्तु व्यवहारमें लाई जाती थी इसके यथेष्ट प्रमाण नहीं मिलते हां साबुन जैसी गुणवाली कई प्रकारकी दूसरी वस्तुएं अवश्य काममें लाई जाती थीं। आजकलके ही समान उन दिनों भी नाना प्रकारकी शृंगार और प्रसाधनकी सामग्री तैयार होती थी। शरीरकी सफाई और सौंदर्यके लिये कई प्रकारके उबटन, अंगराग; लेप और चूर्ण व्यवहारमें लाये जाते थे। ये सब चीज़ें आम तौरपर वृक्षोंकी छालों, सुगन्धित पत्तियों, छाल, खली, बेसन, रीठा, और चिरौंजी प्रभृतिसे तैयार की जाती थीं। इनमेंसे कुछ तो अब भी हमारे घरोंमें काममें लाई जाती हैं। इन्हें सुगन्धित बनानेके लिये चन्दन, खस, लोधरा, अगरु, हाऊबेर प्रभृति चीज़ें व्यवहृत होती थीं। साबुनका व्यवसाय आधुनिक कहते हुए भी, भारतमें सौ सवासौ वर्षसे प्रचलित है। कहा जाता है कि जब डच लोग पहली बार भारतमें आये तो उन्हें यहाँके साफ और स्वच्छ धुले हुए कपड़े देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ था और उन्होंने धोबियोंसे कपड़ा धोनेकी तरकीब सीखी थी। उन दिनों दक्षिण भारतके धोबी घटिया क़िस्मका साबुन काममें लाने लगे थे। उन दिनों जो साबुन बनता था वह आज कलके साबुनसे बहुत भिन्न होता था और तबके साबुन बनानेके तरीक़े भी दूसरे ही थे। दक्षिण भारतके अतिरिक्त भारतके दूसरे प्रान्तोंमें भी १०० वर्ष पहिले पुराने ढंगसे साबुन बनानेके चिन्ह मिले हैं।

आधुनिक व्यवसाय का आरम्भ

कहा जाता है कि भारतमें साबुन बनानेका सबसे पहला आधुनिक कारखाना मेरठमें १८७९ ई० में नार्थ वेस्ट सोप कम्पनीके नामसे स्थापित किया गया था। बादमें इसी कम्पनीने एक कारखाना कलकत्तेमें भी खोला। कलकत्तेका कारखाना अब भी काम करता है। इङ्गलैण्डके सुप्रसिद्ध साबुन व्यवसायी मेसर्स लीवर ब्रादर्सके पास है। मेरठके कारखानेके बारेमें अब विस्तृत बातें नहीं मालूम होतीं हां इतना अवश्य कहा जा सकता है कि मेरठ आज दिन भी साबुनका एक बड़ा बाज़ार है और साबुन बनाना मेरठ निवासियोंका एक प्रमुख गृह उद्यम हो गया है।

स्वदेशी का प्रभाव

स्वदेशी आन्दोलनने दूसरे व्यवसायोंकी भांति साबुनके व्यवसायको भी समुचित प्रोत्साहन प्रदान किया। १९०५ के लगभग बंगालमें साबुन बनानेके कई कारखाने खोले गये इनमेंसे अधिकांश तो अब बंद हो गये हैं। इनकी बंदीकी वजह कारखाने चलानेवालोंमें साबुन निर्माणके विशेष ज्ञानका अभाव तथा रुपयेकी कमी ही थी। स्वदेशी आन्दोलनके बादसे दूसरी देशी चीज़ोंके साथ ही देशी साबुनकी मांग भी बराबर बढ़ती गई अस्तु अधिक सुसंगठित और व्यवस्थित कारखाने खोले गये।

महायुद्ध

विगत महायुद्धके अवसरपर १९१४-१९१८ तक इस व्यवसायको भारतवर्षमें सुदृढ़ हो जानेका और भी अच्छा मौक़ा मिला। उन दिनों विदेशोंसे बहुत ही थोड़ा साबुन आ पाता था परन्तु साबुनकी माँग बहुत ज़्यादा थी। जो थोड़े बहुत कारखाने यहां मौजूद थे वे उस माँगको पूरा न कर पाते थे। अकेले फौज ही के लिए बहुत काफी साबुनकी ज़रूरत पड़ती थी। अस्तु इस बीचमें कई एक नये कारखाने खोले गये और पुरानोंकी दशा और भी ज़्यादा अच्छी हो गई। तबसे आज तक साबुनका व्यवसाय उत्तरोत्तर उन्नति करता जा रहा है।

१९१८ में

१९१८ ई० में कमसरियट विभागकी ओरसे साबुन तैयार करनेवाले कारखानोंकी गणना की गई थी। इस

गणनाके अनुसार उनदिनों ब्रिटिश भारतमें [देशी राज्यों-के अतिरिक्त] केवल ११ ऐसे कारखाने थे जो प्रति ६०० टन या उससे अधिक साबुन तैयार करते थे। प्रतिवर्ष ४०० टन या उससे कम साबुन बनानेवाले कारखानों-की संख्या केवल ४६ थी। इनके अलावा बीसियों छोटे-छोटे घरेलू कारखाने और भी थे। उस समय भारतीय कारखानोंमें तैयार होनेवाले साबुनकी मात्रा २२००० टन प्रतिवर्षके हिसाबमें कूती गई थी। इसके अतिरिक्त ७१० टन साबुन स्नान करने योग्य, और तैयार होता था।

वर्त्तमान अवस्था

१९१८ से अब तक बीस वर्षके समयमें साबुन व्यवसायकी बड़ी आश्चर्य जनक उन्नति हुई है। साबुनकी उत्पत्ति २२००० टन प्रतिवर्षसे बढ़कर ७५००० टन प्रतिवर्षसे भी अधिक हो गई है। भारतवर्षमें साबुन बनानेवाले कुल कितने कारखाने हैं इसकी ठीक-ठीक संख्यामें घरेलू ढंगसे साबुन बनानेवालोंकी संख्या शामिल नहीं है। अकेले युक्तप्रान्तमें आधुनिक ढंगसे बढ़िया साबुन तैयार करनेवाले बड़े-बड़े कारखाने हैं। इनमें आधे दर्जन तो अकेले कानपुर ही में हैं। इन बड़े-बड़े कारखानोंके अलावा छोटे-छोटे कारखानोंकी संख्या भी सौसे कहीं ज़्यादा है। मद्रास, बंगाल, पंजाब और बम्बई आदि प्रान्तोंमें भी आधुनिक ढंगसे साबुन तैयार करनेवाले बहुत कारखाने काम कर रहे हैं। बंगाल और बम्बई इस सम्बन्धमें युक्त प्रान्तसे भी आगे बढ़े हुए हैं।

साबुनकी मात्रा बढ़नेके साथ ही साबुन अब पहिलेसे कहीं अधिक बढ़िया भी बनने लगा है। इस समय भारत वर्षमें जितना साबुन तैयार हो रहा है उसका मूल लगभग सवा तीन करोड़ रुपये आँका जाता है। यह सब साबुन यहीं भारतवर्षमें खर्च हो जाता है। इधर कुछ वर्षोंसे ईराक, लंका अदन तथा कुछ और उपनिवेशोंको भी भेजा जाने लगा है।

विदेशी आयात

भारतमें साबुन व्यवसायकी इस उत्तरोत्तर उन्नति का प्रभाव विदेशी आयातपर भी पड़ा है। १९२१ ई० में जहां विदेशोंसे यहां २ करोड़से अधिक मूल्यका साबुन विदेशोंसे भारतमें आता था अब केवल २७ लाख रुपये-का साबुन आता है। निम्नलिखित आंकड़ोंसे इसपर अच्छा प्रकाश पड़ेगा।

१९२०—२१	२०,४,३०,००० रु०
१९३२—३३	८२, ३२, ८७२ रु०
१९३३—३४	७८, ३७, ३६२ रु०
१९३४—३५	६३, २०, ७९८ रु०
१९३५—३६	३४, २७, २६१ रु०
१९३६—३७	२६, ८५, ६३२ रु०

इस समय विदेशोंसे जो साबुन आता है उसका अधिकांश इंगलैण्डका है। इधर कुछ वर्षोंसे जापानी साबुन भी अच्छी मात्रामें आने लगा है। १९३३ में जापानसे १००० टन साबुन भारत वर्षमें आया था। जापानी साबुनकी आयात अब फिर घटने लगी है और यदि उसमें शीघ्र ही साबुनके लिए आवश्यक गुणोंका समावेश न किया गया तो शायद उसका भारतके बाज़ार-में आना अपने आप ही बन्द हो जायगा।

भारतमें विदेशी फ़र्मे

हमारे साबुन व्यवसायमें उन्नति अवश्य हुई है और उसकी प्रगति किसी हदतक सन्तोषजनक भी कही जा सकती है परन्तु इस व्यवसायको विदेशोंके समान पूर्णतया सम्पन्न बनानेमें अभी बहुत कुछ कसर बाकी है। भारतमें विदेशी साबुनकी आयातके कम हो जानेका सबसे ज़्यादा असर इंलैण्डके व्यवसाइयोंपर पड़ा और उनमें भी सबसे अधिक सुप्रसिद्ध फर्म लीवर ब्राद्रर्स पर। परन्तु वे लोग हाथपर हाथ रखकर केवल भाग्यके भरोसेपर बैठनेके आदी नहीं हैं। इंगलैण्डमें बने हुये साबुनको भारतमें लोकप्रिय बनानेके लिए जब वे सब प्रयत्न करके हार गये तो उन्होंने भारतीयोंकी स्वदेशीकी प्रबल भावनाका लाभ उठानेकी ठानी और बम्बईमें साबुन बनानेका एक विशाल कारखाना लीवर ब्राद्रर्स (इण्डिया) लिमिटेडके नामसे स्थापित किया। यह कारखाना दो सालसे साबुन बना रहा है और २०००० टन ने साबुन प्रतिवर्ष तैयार करता है। अस्तु भारत वर्षके समस्त कारखानोंमें बननेवाले

साबुनका चौथा भाग अकेला यही कारखाना तैयार करता है। केवल इस उदाहरणसे हमारे देशके साबुन व्यवसायकी स्थिति विज्ञान पाठक अच्छी तरह समझ सकते हैं।

साबुन व्यवसायको पूर्णतया स्वदेशी बनानेके लिए अभी हमें बहुत सहायता पहुँचा सकते हैं। साबुन खरीदते समय वे केवल यही न देखें कि साबुन भारतमें बना है वरन इस बातकी भी जाँच करलें कि जिस कारखानेमें यह तैयार किया गया है वह पूर्णतया स्वदेशी पूंजीपर चलता है या नहीं।

कास्टिक सोडा देशमें बने

साबुनकी तैयारीके लिए आमतौरपर दो चीज़ोंकी ख़ास ज़रूरत होती है। तेल या चर्बी और सोडा कास्टिक। साबुन बनानेके उपयुक्त तेलों अथवा चर्बीकी भारतमें कोई कमी नहीं है। अच्छे-से-अच्छा तेल भारतवर्षके भी भागोंमें सहूलियतसे मिलता है। कास्टिक सोडाके लिये हमें पूर्णतया विदेशों ही पर निर्भर रहना पड़ रहा है, यद्यपि कास्टिक सोडा तैयार करनेके लिये हमारे यहां कच्चा माल प्रचुर मात्रामें मौजूद है। भारतमें साबुनकी उत्पत्ति बढ़नेके साथ ही कास्टिक सोडाकी आयात बराबर बढ़ती जा रही है। विदेशोंको रुपया जाना साबुनकी कीमतके रूपमें बंद होकर कास्टिक सोडा द्वारा शुरू हो गया है। अस्तु साबुन व्यवसायको पूर्णतया स्वदेशी बनानेके लिए यह बहुत ज़रूरी है कि कास्टिक सोडा स्वदेश ही में तैयार किया जाय। जब तक हम कास्टिक सोडा अपने ही देशमें तैयार न करेंगे हमें साबुनकी तैयारीके लिये बराबर विदेशोंपर निर्भर रहना होगा। कास्टिक सोडाके विदेशी होनेके कारण हमारे यहाँ जो साबुन तैयार होता है वह भी काफ़ी महँगा पड़ता है। महँगा होनेकी वजहसे प्रामाणिक उसकी अभी अच्छी तरह पहुँच नहीं हो पाई है।

ग्लिसरीन

विदेशोंकी तुलनामें हमारे व्यवसायके पिछड़े होनेके सोडाके विदेशी होनेके अतिरिक्त और भी कई कारण हैं। इन कारणोंमें साबुनसे ही ग्लीसरीनकी तैयारी मुख्य है। भारत वर्षमें अभीतक किसी भी देशी कारखानेमें ग्लीसरीन बनानेका प्रबन्ध नहीं हुआ है। और यहाँ प्रतिवर्ष लाखों रुपयेकी ग्लीसरीन विदेशोंसे आती है। विदेशी कारखाने ग्लिसरीन बेचकर आमके आम और गुठलियोंके दाम वसूल कर लेते हैं। ग्लीसरीन की बिक्रीसे उन्हें काफी पैसे मिल जाते हैं और वे अपने साबुनको सात समुद्र पारसे भारतमें लाकर भारतीय साबुनके मुक़ाबिलेपर बेचनेमें समर्थ हैं।

साबुन बनानेकी आधुनिक प्रणालीमें तेल और कास्टिक सोडाको भापकी मददसे उबाला जाता है भली भाँति उबलकर जानेपर नमक डाल कर इस साबुनको फाड़ा जाता है। इस क्रियासे साबुनका मैल और अतिरिक्त क्षार नीचे बैठ जाता है। शुद्ध साबुन नमकके पानीमें न घुल सकनेकी वजहसे ऊपर आ जाता है। साबुनका जो मैल, नमकके पानी और अतिरिक्त क्षारके साथ नीचे बैठता है उसीसे ग्लिसरीन तैयार की जाती है। भारतीय कारखानों में अभीतक ग्लीसरीनकी तैयारीका कोई प्रबन्ध नहीं है और अधिकांश कारखानोंमें ग्लिसरीनका पानी नालियों में बहा दिया जाता है। इस मैल को काममें लाकर हम एक पंथ दो काज सिद्ध कर सकते हैं अब-तक सर्वथा बेकार समझी जानेवाली चीज़से एक क़ीमती चीज़ बनावेंगे और उसके साथ ही विदेशी ग्लीसरीनकी आयातको भी करनेमें सफल हो सकेंगे। इन दोनों बातोंके अलावा साबुनका मूल भी कुछ सस्ता किया जा सकेगा।

सुगन्ध और रङ्ग

कास्टिक सोडाके अलावा नहानेका साबुन तैयार करनेके लिये हमें सुगन्धद्रव्य और रंग तथा साबुन बनानेकी आधुनिक मशीनें भी विदेशों ही से मंगाना पड़ती हैं। भारतवर्ष, जो कुछ दिनों पूर्व समस्त संसारको सुगन्ध भेजता था आज अपनी ज़रूरतें पूरी करनेके लिये परमुखापेक्षी हो रहा है। १४-१५ लाख रुपये वार्षिकको सुगन्ध यहाँ प्रतिवर्ष विदेशोंसे आती हैं। इधर कुछ वर्षोंसे सुगन्ध भी भारतमें तैयार करनेके प्रयत्न शुरू हो गये हैं परन्तु फिर भी स्नानके साबुनमें आम तौरपर जो सुगन्ध व्यवहारमें लायी जाती हैं वे अधिकाँश विदेशी ही होती हैं। देशी सुगन्धको साबुनमें व्यवहार करनेमें लायक रूप देनेके

लिये काफी छानबीनकी जरूरत है। विदेशोंसे जो सुगन्ध साबुनके लिये आती है वह असली न होकर कृत्रिम होती है और इसी लिये असली इत्र एवं फुलेलकी तुलनामें सस्ती पड़ती है। रंग तो अभी तक यहाँ बिलकुल ही नहीं बनते।

अस्तु अभी साबुनके व्यवसायको पूर्णतया उन्नत बनाने और विदेशोंकी प्रतियोगितामें उसकी स्थितिको सुदृढ़ बनानेके लिए मोटे तौरपर चार बातोंकी बड़ी सख्त ज़रूरत है :—

(१) कास्टिक सोडा भारतमें बनाया जाय, (२) साबुनके साथ ग्लिसरीन बनानेका प्रबन्ध किया जाय, (३) सुगन्ध एवं रंग भी स्वदेश ही में तैयार किये जायं और (४) बढ़िया साबुन बनानेके लिए मेशीनें भी देश ही में बनें। दक्षिण भारतमें कुछ कारखानोंने साबुन के कारखानोंमें काममें लाई जानेवाली मेशीनें बनाना शुरू किया है परन्तु अभी उनमें बहुत सुधारकी ज़रूरत है और भारतवर्षकी ज़रूरतें पूरी करनेके लिए एक दो क्या कई कारखाने अकेले साबुनकी मेशीनोंको तैयारीमें लग सकते हैं।

अन्य उद्योग धन्धोंपर प्रभाव

साबुन व्यवसायकी जो उन्नति हुई है उसका और भी उद्योग धन्धोंपर अच्छा असर पड़ा है। साबुनकी तैयारीकी वजहसे तेलकी माँग बढ़ गई है और अभी और अधिक बढ़नेकी आशा है। साबुनके डिब्बे, पोस्टर लेबिल एवं विज्ञापन आदिसे प्रेस वालोंको भी अधिक काम मिलने लगा है। साबुन लपेटनेके लिये बारीक कागज तथा कोई बोर्डके बक्से बनानेके नये उद्योग चालू हो गये हैं। साबुन काटने और छापनेकी मेशीनें तथा ठप्पे और साँचे वगैरह बनानेकी भी कई छोटी दूकानें खुल गई हैं।

साबुनके व्यवसाइयोंने अब अपना अखिल भारतीय संगठन भी कर लिया है। भारत सरकारकी ओर स्थापित इन्डिस्ट्रियल रिसर्च कौंसिल भी इस व्यवसायमें दिलचस्पी ले रही है। इस कमेटीके तत्वाधानमें तेल और साबुन व्यवसायके लिए एक स्वतंत्र उपसमिति बनाई गई थी इस उपसमितिमें भारत सरकार प्रान्तीय सरकारों एवं देशी राज्योंके विशेषज्ञ सम्मिलित किये गये थे इस उपसमिति-ने साबुन और तेलके व्यवसाय सम्बन्धी अन्वेषण कार्यका निरीक्षण करके जून १९३६ में अपनी रिपोर्ट पेश की थी। उसमें साबुन व्यवसायपर भारतके विभिन्न भागोंमें होनेवाले अंवेषण कार्यका सिंहावलोकन किया गया था। और कई महत्व पूर्ण समस्याओंसे सम्बन्ध रखनेवाला अंवेषण कार्य विभिन्न सरकारी रसायन शालाओंको बांट भी दिया गया था। कौंसिल समय-समयपर इन प्रयोग शालाओं द्वारा होनेवाले अन्वेषण कार्यका निरीक्षण भी करती रहती है।

साबुन विज्ञानकी शिक्षा

साबुन व्यवसायके आरम्भिक दिनोंमें योग्य एवं सुशिक्षित साबुन निर्माताओंकी बड़ी कमी थी और उन दिनों चालू होनेवाले साबुनके कारखानोंकी असफलता का यह एक प्रमुख कारण भी था। अब इस कठिनाईको भी दूर कर दिया गया है। देशके विभिन्न भागोंमें साबुन विज्ञानकी शिक्षा देनेवाली कई सरकारी एवं ग़ैर सरकारी संस्थायें काम करने लगी हैं। इन संस्थाओंमें कानपूरकी टेकनोलाजिकल इंस्टिच्यूट, काशीके हिन्दू विश्वविद्यालय, कलकत्तेके जादवपुर कालिज-आफ-टेकनोलाजी मद्रासकी केरल सोप इंस्टिट्यूट प्रभृति संस्थाओंके नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इन संस्थाओंमें शिक्षा प्राप्त करने-वाले विद्यार्थी साबुन व्यवसायके संचालनमें प्रमुख भाग ले रहे हैं। कानपूरकी टेकनोलाजिकल इंस्टीट्यूटके विद्यार्थी तो भारतके प्रायः सभी भागोंमें पहुँच चुके हैं।

साबुन व्यवसायका वर्तमान उन्नतिशील प्रगतिके देखते हुए अभी इसका भविष्य बहुत उज्जवल प्रतीत होता है। अपने देशकी जरुरतें पूरी करने ही के लिए अभी साबुनकी उत्पत्तियें समुचित वृद्धि होनेकी गुंजाइश है। इसके साथ ही यह व्यवसाय ऐसा भी है कि इसे केवल बड़े-बड़े कारखानों ही तक सीमित नहीं रखा जा सकता। घरेलू व्यवसायोंमें भी इसे प्रमुख स्थान प्राप्त है। अब भी प्रायः हरेक शहरमें दो चार दुकान साबुन बनानेकी अवश्य पाई जाती हैं। ग्राम उद्योगमें भी इस व्यवसायको अच्छा स्थान दिया जा सकता है।

महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी ।
समीकरण-मीमांसाके लेखक
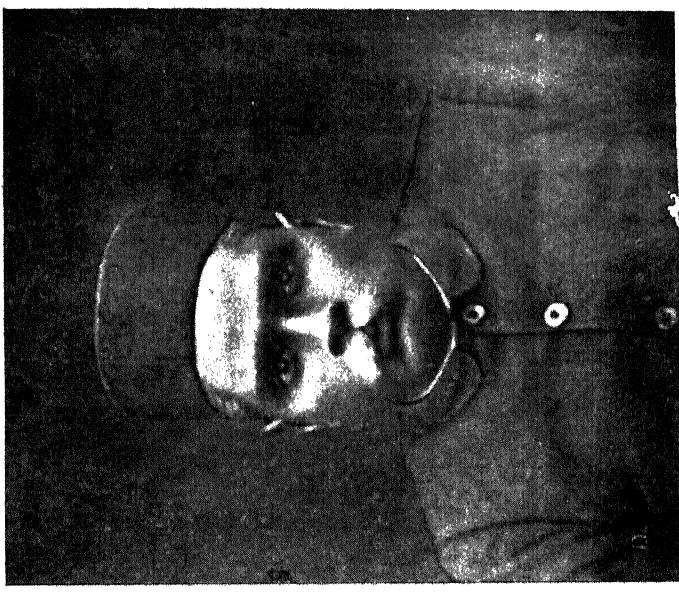
बा० महावीरप्रसाद श्रीवास्तव ।
सूर्य्य सिद्धान्तके विज्ञान-भाष्यकर्त्ता

डा० कर्म नारायण बाहल।
सभापति १९३५-१९३८

श्री फूलदेव सहाय वर्मा।
रसायन पुस्तकोंके लब्ध-प्रतिष्ठ लेखक

पौधोंका भोजन

[ले० श्री जगमोहनलाल चतुर्वेदी, बी० एस-सी०, एल० टी०]

पत्तियोंके काम

प्रकटमें पत्तियाँ पौधेके आभूषण मालूम होती हैं लेकिन विचार-दृष्टिसे देखनेसे पता चलता है कि यह पौधेकी प्रधान अङ्ग हैं जिनपर पौधोंका अधिकांश जीवन निर्भर है। इन्हींके द्वारा पौधे भोजन प्राप्त करते हैं और श्वासोच्छवास और स्वेदन करते हैं। नीचे लिखी हुई पंक्तियोंमें क्रमशः इन्हीं क्रियाओंपर विचार किया जायगा।

पौधोंका भोजन

पौधे जानवरोंकी नाईं बने बनाए पदार्थ अर्थात् अग्निकारक वस्तु (Carbohydrates), मांसकारक वस्तु (Proteids), मज्जाकारक वस्तु (Fat) नहीं खाते। यह पहिले सादा चीज़ोंको प्राप्त करते हैं, उनसे संयुक्त पदार्थ तैयार करते हैं, फिर तैयार की हुई सामग्रीको जानवरोंकी भाँति उपयोग करते हैं।

जानवरोंमें भोजन प्राप्त करने और पचानेके लिए एक विशेष नली होती है जिसे महास्रोत (Alimentary canal) कहते हैं। भोजन इसी नलीके विभिन्न भागोंमें पहुँचकर पचता और रस बनकर रक्तमें मिल जाता है। जो पदार्थ पचनेसे बच जाते हैं मलके रूपमें बाहर निकल जाते हैं। पौधोंमें इस प्रकारकी पाचन-नाली नहीं होती तथापि भोजन बनाने और पचानेकी क्रियाएँ पत्तियों ही में होती रहती हैं।

साधारणतया पत्तियोंमें तीन भाग होते हैं :- (१) डंठल (२) पत्तर (३) नसें। डंठल पत्तेका वह भाग है जिसके द्वारा पत्तियाँ शाखोंपर लगी रहती हैं। डंठलमें भी शाखों और तनोंकी तरह दो प्रकारकी नलियाँ होती हैं। (१) जिनमेंसे पानी और उसमें घुले हुए पदार्थ पत्तरतक पहुँचते हैं और (२) जिनमेंसे पत्तियोंमें तैयार किया हुआ भोजन पौधोंके अधोभागोंमें पहुँचता है। नसें पत्तरको सहारा देती हैं और डंठलकी भाँति इनमें भी दो प्रकारकी नलियाँ होती हैं। पत्तर, पत्तेका पतला चपटा भाग है। यद्यपि पत्तियाँ विभिन्न आकारकी होती हैं। तथापि कुछ गुण सबमें समान पाये जाते हैं। प्रत्येक पत्तीमें एक बाह्य त्वचा होती है। यदि पत्तीका एक पारदर्शक आड़ा टुकड़ा काट लिया जाय और उसे सूक्ष्म-दर्शी-यंत्र (microscope) से देखा जाय तो उसमें ऊपरसे नीचेकी तरफ आनेमें बाह्य त्वचाके कोष्ठोंके नीचे आयताकार कोष्ठ दिखाई देंगे। इन कोष्ठोंके किनारोंपर हरे पदार्थकी छोटी-छोटी गोलियाँ होती हैं। इन्हीं गोलियोंके कारण पत्तियाँ हरी दिखाई देती हैं। आयताकार कोष्ठोंके नीचे हल्के हरे रंगके कोष्ठ होते हैं और इनके बीच-बीचमें खाली जगह होती है जिनमें हवा और पानी भरा रहता है। स्थान-स्थानपर पानी और भोजनकी नलियोंके बंडल होते हैं। पत्तीके पृष्ठ भागकी सतह कहीं-कहींपर टूटी हुई दिखाई देती है। यह पत्तियोंके छिद्र हैं जिन्हें रन्ध्र भी कहते हैं। इनके द्वारा बाहरकी हवा पत्तीके अन्दर पहुँचती है।

भोजन तैयार करनेकी क्रियापर विचार करनेके पूर्व इस बातपर विचार करना चाहिए कि पौधोंका भोजन क्या है। हम देखते हैं कि जब छोटेसे बीजको बोया जाता है तो अनुकूल अवस्थामें एक छोटा-सा पौधा तैयार हो जाता है और बढ़ते-बढ़ते यही नन्हा-सा पौधा एक मोटा लम्बा वृक्ष बन जाता है। पौधोंमें बढ़वार किस तरह होती है यह एक पहेली है। इनकी बढ़वारको देखकर हमको यह तो मानना ही पड़ेगा कि पौधोंके अङ्गमें नई-नई चीज़ें बनती रहती हैं। यह ही पौधोंके भोजन हैं। जिस तरह रोटी पचकर हमारे अङ्गका एक भाग बन जाती है ठीक उसी तरहसे पौधोंके भोज्य पदार्थ भी अपनी असली सूरतमें पौधोंमें नहीं पाये जाते।

यदि आलूके एक टुकड़ेकी जाँच आइयोडीनके घोलसे की जाय तो मालूम होगा कि इसका रंग नीला हो जाता है। इससे सिद्ध होता है कि इसमें पुष्ट तत्व नशास्ता होता है। पौधोंके अन्य भागोंमें भी पुष्ट तत्व पाया जाता है। बीज, फल, तने इत्यादिमें पुष्ट तत्व-

की जाँच इसी प्रकारसे की जा सकती है लेकिन हरी पत्ती-में पृष्ठ तत्वकी जाँच करनेमें एक कठिनाईका सामना करना पड़ता है। पत्तीका हरा रंग आयोडीनके घोलके असरको ज़ाहिर नहीं होने देता। इस लिए पहिले हरे पदार्थको निकाल देना चाहिये। इस कामके लिये पहिले पत्तीको पानीमें उबाला जाता है। ऐसा करनेसे पत्तीमेंसे हवा निकल जाती है। इसके बाद पत्तीको शराबमें जल कुंडी-के ऊपर उबाल लिया जाता है। थोड़ी देरमें हरा पदार्थ शराबमें घुलकर निकल जाता है। पत्तीको पानीसे धोकर इसपर आयोडीनके घोलकी कुछ बूंदें डाली जायँ तो पत्तीका रंग नीला पड़ जाता है। इससे सिद्ध होता है कि पत्तोंमें पृष्ठ तत्व रहता है। पृष्ठ तत्व पौधोंके भोजनका एक प्रधान अंग है।

रसायनज्ञोंका मत है कि पृष्ठ तत्व कारबन, उदजन और ओषजनका संयोगिक पदार्थ है। अब देखना यह चाहिये कि यह तीन तत्व पौधोंको किस तरह प्राप्त होते हैं। पौधे स्थावर हैं इस लिए वह अपने भोजन या तो ज़मीन-से या हवासे प्राप्त कर सकते हैं। स्थलके पौधोंकी जड़ें ज़मीनमें होती हैं मगर यह मिट्टीसे ठोस कणोंको नहीं ले सकतीं। इनको द्रव भोजन मिलना चाहिये। अतएव मिट्टीसे जो कुछ पदार्थ पौधे ले सकते हैं वह ऐसे होने चाहिये जो पानीमें घुल जायँ। कारबन पानीमें घुल नहीं सकता इसलिए पौधे इस तत्वको ज़मीनसे प्राप्त नहीं कर सकते। जब पौधे ज़मीनसे कारबन प्राप्त नहीं करते तो संभव है हवासे करते हों। हवामें कारबन, कारबन द्विओषिदकी सूरतमें होता है जो कारबन और ओषजनसे मिलकर बना है। हवाके १०,००० भागोंमें केवल तीन भाग कारबन द्विओषिद होती है। पुराने ज़मानेके खोज करनेवालोंने यह सोचा कि कारबन जिससे पौधोंका अधिकांश अंग बना हुआ है इस थोड़ीसी मिकदारसे तैयार नहीं हो सकता। यह उनकी बड़ी भूल थी। ब्लेकमेन और अन्य वैज्ञानिकोंने यह निर्विवाद सिद्ध कर दिया कि हवाकी कारबन द्विओषिद ही से पौधोंको संपूर्ण कारबन प्राप्त होता है।

कारबन द्विओषिद रन्ध्र द्वारा पत्तीके अन्दर पहुँच जाती है। यहाँपर यह पानीकी भापसे मिलती है। पानीमें ओषजन और उदजन दो तत्व होते हैं। प्रकाशके प्रभावसे पत्तीके कोषोंका हरा पदार्थ कारबन द्विओषिद और पानीको मिलाकर शकर तैयार करता है।

शकरमें पृष्ठ तत्वकी भाँति कारबन, उदजन और ओषजन यह तीन तत्व होते हैं लेकिन जब शकर कारबन द्विओषिद और पानीके योगसे तैयार होती है तो कुछ आक्सीजन ज़रूर बच रहता है। यह रश्मि संयोगके समय तेज़ीसे निकलती रहती है। अंधेरेमें हरी पत्ती शकर नहीं बना सकती। इस शकरका कुछ भाग जो पत्तियोंमें तैयार हुआ था नलियों द्वारा पौधेके सर्वाङ्गमें पोषणके लिए पहुँच जाता है। जब शकरकी मिकदार बढ़ जाती है तो शकर पौधोंके विभिन्न भागोंमें पहुँच जाती है जहाँ पहुँच कर यह रासायनिक क्रिया द्वारा पृष्ठ तत्वमें बदल जाती है और इकट्ठी होती रहती है।

रश्मि संयोगकी क्रियाको एक उपमा द्वारा इस प्रकार वर्णन किया जा सकता है। कल्पना करो कि पत्ती पाक-शाला है, हरा पदार्थ रसोइया, सूर्यका प्रकाश अग्नि और रन्ध्र पाकशालाके द्वार हैं जिनमें होकर कारबन द्विओषिद अन्दर जाती और ओषजन बाहर निकलती है। नसें पानीके नल हैं, पृष्ठ तत्व भोजन है। जो कारबन द्विओषिद और पानीसे मिलकर तैयार होता है। दिन पर्यन्त पाकशालामें भोजन तैयार होता रहता है और रातके समय इसका उपभोग होता है।

अब यह बात अच्छी तरह समझमें आ सकती है कि प्रकाश पौधोंके लिए क्यों इतना आवश्यकीय है और वृक्ष और पौधे अपनी पत्तियोंको इस तरह क्यों फैलाए रखते हैं कि वह प्रकाश अच्छी तरह प्राप्त कर सकें। जब पौधे किसी वृक्षकी छायामें उगाए जाते हैं तो उनकी बढ़वार अच्छी नहीं होती इसका यही कारण है।

शायद यह जानकर तुम्हें अचम्भा होगा कि लाखों प्राणियोंकी श्वाससे, लकड़ी और कोयले इत्यादि पदार्थोंके जलने व चीज़ोंके सड़ने गलनेसे जो कारबन द्विओषिद निकलती रहती है। इसके होते हुए हवामें ओषजनके प्रमाणमें कमी नहीं होती और कारबन द्विओषिदकी मिकदार दिन दूनी रात चौगुनी क्यों नहीं बढ़ती। इसका

मुख्य कारण यह है कि पौधे हवासे कारबन द्विओषिद लेते रहते हैं और इसके बदले ओषजन मिलाकर स्वच्छ कर देते हैं। इसी लिए हम देखते हैं कि पन-घटमें जिसमें मछलियों और अन्य पानीके जानवरोंको पाला जाता है पानीके हरे पौधे लगाए जाते हैं। ऐसा करनेसे पानीके जानवरोंको काफी ओषजन मिलती रहती है। सड़कोंपर वृक्ष लगाने अथवा घनी बस्तियोंमें वाटिका और उद्यान लगानेका आन्दोलन दो तरहसे हमारे लिए लाभ दायक है। एक तो इस लिए कि इससे शहरकी शोभा बढ़ जाती है और दूसरे इस कारण कि यह मनुष्यका जन्म स्वत्व है कि वह स्वच्छ हवा प्राप्त कर सके। प्राकृतिक समताका यह एक अच्छा उदाहरण है।

कुछ समय हुआ डाक्टर विलियम क्रोकरने पौधोंके पुष्ट तत्व तैयार करनेके संबन्धमें एक बड़ा दिलचस्प प्रयोग किया है। आपने पूर्ण रीतिसे इस बातकी छान बीन की है कि सूर्यके प्रकाशके बदले कृत्रिम प्रकाशसे भी काम चल सकता है और पौधोंके लिए यह किस हद तक उपयोगी हो सकता है। उपर्युक्त सज्जनका कथन है कि आपने अपनी संस्थामें एक बड़ा फौलादी ढाँचा तैयार किया जिसमें ४८ बिजलीके लेम्प लगे हुए हैं। प्रत्येक लेम्प घरमें इस्तेमाल होनेवाले लेम्पोंसे १५ या २० गुना अधिक प्रकाश देता है। यह प्रकाश जो २०० घरोंको देदीप्य करनेकी सामर्थ्य रखता है सूर्यके प्रकाशके बराबर होता है। यह फौलादी ढाँचा जिसमें कृत्रिम सूर्य देदीप्यमान रहता है एक स्थानसे दूसरे स्थानपर इस लिए हटाया जा सकता है कि उसका प्रकाश चुने हुए हरित गृहपर पड़ सके। सूर्यास्तके बाद जब कृत्रिम सूर्य देदीप्य कर दिया जाता है तो ऐसा प्रतीत होता है मानो भगवान भास्कर आकाशमें चलते-चलते ठहर गए हैं। यदि यह कृत्रिम सूर्य सूर्यास्त के बाद हरित गृहके पौधोंको प्रकाशित करे तो पौधे अच्छी तरह बढ़ते हैं क्योंकि अधिक प्रकाश कारबन द्विओषिद प्राप्त करके अधिक पुष्ट तत्व तैयार कर लेते हैं लेकिन यदि यह कृत्रिम प्रकाश सारी रात रहे तो पौधे बीमार पड़ जाते हैं और अन्तमें मर जाते हैं।

पौधे जीवधारी हैं और मनुष्यकी नाईं दिनकी कड़ी मेहनतके बाद उनको भी आरामकी आवश्यकता होती है। जिस तरह मनुष्यके जीवनके लिए आरामकी ज़रूरत है उसी तरह पौधोंको भी आरामकी ज़रूरत है। संसार में प्रत्येक मनुष्य पौधोंपर अपना जीवन निर्वाह करता है। क्योंकि जो भोजन वह खाता है वनस्पति और पशुओंसे प्राप्त होता है और पशु भी आखिर अपना जीवन निर्वाह वनस्पतिपर ही करते हैं।

डाक्टर क्रोकर साहब कहते हैं कि रसायन शास्त्रज्ञ पौधोंके पुष्ठ तत्व तैयार करनेके भेदको जाननेका प्रयत्न कर रहे हैं मगर इस रासायनिक क्रियाका भेद अभी तक उन्हें मालूम नहीं हुआ है। यह अच्छा ही हुआ कि अभीतक उन्होंने इस विषयमें कोई सफलता प्राप्त नहीं की। यदि बिना खेती ही के भोजनकी सामिग्री मिल सकती तो मनुष्यको कृषिकी आवश्यकता न होती और संसारमें वनस्पतिका नाम व निशान तक न रहता। डाक्टर क्रोकरने इस प्रयोगसे यह नतीजा निकाला है कि प्राकृतिक शक्तियोंको मदद देकर अच्छे पौधे उगाए जा सकते हैं। इसका एक उदाहरण "कृत्रिम सूर्य द्वारा प्रकाश पहुँचना" बताया जा चुका है। इसके ही उदाहरण और दिए जाते हैं। एक प्रकाशकी रंगीन किरणोंके संबन्धमें और दूसरा कारबन डाइआक्साइडके सम्बन्धमें।

सूर्यका प्रकाश सात रंगकी किरणोंसे संयुक्त है। इनमेंसे लाल, नीलो, आसमानी और नारंगी किरणोंको हरा पदार्थ सोख लेता है और वही वह किरणें हैं जो रश्मि संयोगमें बहुत उपयोगी होती हैं। प्रयोग द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि ऐसा शीशा जिसमें बैंगनी रंगसे परेकी किरणें (ultra Violet Rays) निकल जाती हैं बहुतसे पौधोंकी बढ़वारके लिए लाभ दायक नहीं है। इस उद्देश्यसे हालैंडमें हरितगृहके लिए कच्चा शीशा इस्तेमाल किया जाता है क्योंकि यह बैंगनी रंगसे परेकी किरणोंको अन्दर नहीं जाने देता।

हवामें कारबन द्विओषिदकी थोड़ीसी मिक़दारको रश्मि संयोग द्वारा शकर बनानेके लिए जितने प्रकाशकी जरूरत होती है उससे कहीं अधिक शक्तिशाली सूर्यका प्रकाश होता है। इससे अनुमान किया जाता है कि यदि इस गैसका परिमाण बढ़ा दिया जाय तो पौधे अधिक

कारबन प्राप्त कर सकेंगे और फल स्वरूप पैदावार बढ़ जायगी। इस अनुमानकी यथार्थता प्रयोग द्वारा हालमें सिद्ध हुई है। इस अभिप्रायसे अनाजों और जड़वाली फसलोंके खेतोंमें कारबनोंकी कारबन डिओक्सिद नलों द्वारा छोड़ दी जाती है। ऐसा करनेसे मालूम हुआ है कि कारबनका एकी कारण (Carbon assimilation) बढ़ जाता है और फलतः पैदावार बहुत बढ़ जाती है।

रश्मि संयोग क्रियाके संबन्धमें यह बताया जा चुका है कि जब पत्तियाँ अधिक भोजन तैयार कर लेती हैं तो अधिक पदार्थ पौधोंके विभिन्न भागोंमें इकट्ठे हो जाते हैं। कुछ पौधों जड़ों या ज़मीनके अन्दरके तनोंमें भी भोजन इकट्ठे होते रहते हैं। इस किस्मकी कुल्हाड़ियाँ खेतोंके लिए बहुत हानिकारक होती हैं। भोजनकी मिकदार पत्तियोंकी गिनतीपर निर्भर है। यदि पत्तियाँ कम कर दी जायं तो पुष्ट तत्वकी मिकदार भी कम हो जायगी। इन बातोंसे पता चलता है कि यदि इस किस्मकी कुल्हाड़ियोंको काटते रहा जाय तो रश्मि संयोग द्वारा भोजन न बन सकेगा और संचय करनेवाले अङ्ग कमजोर हो जायँगे। यदि इन कुल्हाड़ियोंका काटना कई साल तक जारी रक्खा जाय तो इस प्रकारके अङ्ग बिल्कुल विलीन हो जायँगे।

श्री महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी

[ले०—श्री० जयशंकर दूबे एम० ए०]

आजसे लगभग ८० वर्ष पूर्व भारतवर्षमें एक साधारण कुलमें श्री महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदीका जन्म हुआ। आप बाल्यावस्थासे ही बड़े मेधावी तथा कुशाग्र बुद्धिके थे। उस समयमें पठन पाठनके साधन इतने अच्छे नहीं थे जितने कि आज दिन हैं। आपके घरकी आर्थिक दशा कुछ विशेष अच्छी न थी। फिर आप जिस वातावरणमें पल रहे थे वह तो प्राचीनतम रूढ़ियोंके आदर्शका नमूना था। इस कारणसे गुरु द्वारा शिक्षा आपने केवल १३ वर्षकी अवस्थातक पाई। उपरान्त आपने स्वयं ग्रंथोंका मनन तथा अनुशीलन करना शुरू किया और केवल ४ या ५ वर्षके अन्दर आपने काशीके पंडितोंमें यथेष्ट मान प्राप्त कर लिया। और उसके पुरस्कार स्वरूप काशीके गवर्नमेंट संस्कृत कालेजमें आपको ज्योतिष पढ़ानेका भार सौंपा गया। उस समय कालेजमें आपसे कम अवस्थावाला कोई भी प्रोफेसर न था। आपकी अवस्था उस समय केवल १८ वर्षकी थी।

आपकी स्मरण-शक्ति इतनी तीव्र तथा बुद्धि प्रखर थी कि आप सूक्ष्म विषयोंका विवेचन बड़े सरल रूपसे करते थे। एक बारकी बात है कि आप कालेजमें विद्यार्थियोंको पढ़ा रहे थे। लीलावतीमेंका एक प्रश्न था, जिसको कि एक विद्यार्थीने आपसे पूछा। आपने उसको एक रीतिसे समझा दिया। फिर उसी प्रश्नको लेकर एक दूसरा विद्यार्थी आपके पास आया। उसको उन्होंने दूसरी रीतिसे समझा दिया। इसी प्रकार सात विद्यार्थी क्रमशः आपके पास आये और आपने सातोंको सात रीतियोंसे समझाया। अब उन सातों विद्यार्थियोंके आश्चर्यकी सीमा न रही। उन्होंने पंडित जीसे प्रश्न किया कि आपने सात रीतियोंसे बतलानेका क्यों कष्ट किया। पंडित जीने उत्तर दिया कि तुम लोगोंमें इस प्रश्नके उत्तरको ग्रहण करनेकी शक्ति भिन्नतात्मक है अतः मेरी शैली भिन्न-भिन्न थी। इस घटनासे पाठक समझ सकते हैं कि पंडित जी कितने योग्य शिक्षक थे।

आप अपने समयके प्रमुख विद्वानोंमें अग्रणी थे। ज्योतिष जैसे दुरूह विषयके कठिन-से-कठिन प्रश्नोंको आप बड़ी सुगम रीतिसे हल करते थे। एक बारकी बात है कि इंगलैण्डसे कुछ अंग्रेज ज्योतिर्विद आये थे। उनसे पंडित जीकी एक ग्रहकी गति-विधिपर बातचीत हुई। पंडित जीने भी उस ग्रहकी गति-विधिकी गणना की किन्तु उन्होंने उन पाश्चात्योंकी गणना तथा अपनी गणनामें अंतर पाया। हम लोग इस बातको देखते आरहे हैं कि यदि कोई अंग्रेज

किसी बातको कह दे तो उसकी प्रमाणिकतापर कोई आक्षेप नहीं करता। चाहे वे बातें कैसी भी अनर्गल क्यों न हों। उस ज़मानेमें तो अंग्रेजोंकी बातें वेदवाक्य-मानी जाती थीं। चाहे जो कुछ भी हो पंडितजी एक निर्भीक पुरुष थे। उनको अपनी गणना तथा बुद्धिपर विश्वास था। उन्होंने स्पष्ट रूपसे उन पाश्चात्य गणितज्ञोंसे कहा कि आपकी गणनायें गलत हैं। उन लोगोंने पंडित जीकी बातोंका विरोध किया और कहा कि आपकी ही गणना गलत हो सकती है क्योंकि हम लोगोंकी गणना पैरिसकी गणित परिषद् तथा लन्दनकी गणित परिषद्से स्वीकृत हो चुकी है। इसपर पंडित जीने अपनी गणना पैरिस तथा लन्दन परिषद्के पास भेजी और उन परिषदोंसे स्वीकृत गणनाकी भूलोंकी ओर परिषद्का ध्यान आकृष्ट किया। परिषद्ने पुनः उन दोनों गणनाओंकी जाँच की और पंडित जीकी गणनाको ठीक पाया और पंडित जीके पास अपनी भूल स्वीकारका क्षमा पत्र भेजा। पंडित जीके जीवनमें ऐसी अनेक घटनायें हुईं जिनमें कि आपको उन दिनोंके पाश्चात्य गणितज्ञोंसे नोक झोंक लेनी पड़ी। इन सब बातोंसे पंडित जीका नाम विदेशोंमें भी यथेष्ट रूपसे हुआ।

अक्सर आपको अंग्रेजोंके संसर्गमें आना पड़ता था। इस कारणसे आपने अंग्रेजी भी सीखी। आपकी ग्रहण शक्ति इतनी प्रखर थी कि आपने थोड़े दिनोंमें अंग्रेजी भाषामें काफी योग्यता प्राप्त करली। उन्होंने देखा कि संस्कृत भाषामें ज्योतिष संबन्धी पुस्तकें पुराने चालकी हैं। तब अपने देशका गणित-शास्त्र पाश्चात्य देशके गणित शास्त्रके सम्मुख उतना बढ़ा चढ़ा नहीं था जितना कि उस देशका। आपने अपने समयमें ही इस बातका अनुभव किया कि भारतवर्षका गणित-शास्त्र तथा ज्योतिष शास्त्र उस समय तक कभी भी अन्य देशोंके गणितकी बराबरी नहीं कर सकेगा जब तक कि यहांपरके विश्वविद्यालयोंमें उत्तम वेधशालायें न बनवाई जांयगी और अपनी मातृभाषामें गणित संबंधी पुस्तकें न लिखी जायँगी।

इसी उद्देश्यसे आपने गणित संबन्धी कई ग्रन्थ लिखे। किन्तु जिस प्रकारकी शिक्षा प्रणाली पाश्चात्य देशमें प्रचलित है वैसी प्रणाली अपने देशमें संस्कृत शिक्षाकी तो है नहीं, इस कारण आपकी वे पुस्तकें केवल आपके अपने उत्कट पाण्डित्य तथा देशकी गणित विद्याको उपबृंहित तथा सुविस्तृत करनेकी परिचायक मात्र हैं। पंडित जीने देखा था कि पश्चिम देशके गणितकी प्रमुख उन्नतिका मूल कारण है चलन-कलन तथा चलराशि-कलन (दोनों तरहके केलकुलस)। संस्कृत शास्त्रमें ये केलकुलस हैं ही नहीं। इस कमीका आपने विशेष अनुभव किया और उन्होंने चलन-कलन तथा चलराशि-कलन नामक ग्रन्थोंको लिखा। ये ग्रन्थ अपने ढंगके अनूठे हैं और पंडित जीकी विलक्षण प्रतिभाके नमूने हैं। आपने संस्कृत गणित शास्त्रमें समीकरण-सिद्धांतके अभावका अनुभव किया और आपने समीकरण मीमांसा नामक ग्रंथकी रचना की। उक्त ग्रंथ हिन्दी भाषामें लिखा गया है और अपनी मातृभाषामें एक अनुपम वस्तु है। विज्ञान परिषद् प्रयागसे यह प्रकाशित हुआ है। गणित एक ऐसा कठिन तथा दुरूह ग्रन्थ है कि इसमें किसी ग्रंथका लिखना कोई साधारण काम नहीं और खासकरके उस समयमें जब कि पंडित जी शिक्षा विभागमें काम करते थे। वह समय ऐसा था कि लोगोंको नवीनतासे अरुचि थी। लोग पुरानी लकीरके फकीर थे। वे हर एक बातको उसी प्रकारसे होते हुये तथा चलते हुये देखना चाहते थे जिस प्रकारसे प्राचीनकालमें होता था। पंडित जीको इन ग्रंथोंको लिखते हुये देखकर प्राचीन पंडित लोग विशेष प्रोत्साहित न करते थे। पंडित जीके सामने अनेक प्रकारकी कठिनाइयां थीं, अड़चनें थीं किन्तु आप इन सबपर किञ्चित मात्र भी ध्यान न देते हुये अपने कार्यमें अग्रसर होते गये। यहां तक कि उनकी लिखी हुई पुस्तकोंको उनके देहावसानके उपरान्त विज्ञान परिषद तथा संयुक्त प्रांतीय सरकारकी मददसे छपवाया गया। पंडित जी अपने धुनके पक्के थे आपने देखा तथा अनुभव किया कि संस्कृत भाषा तथा उसके पठन पाठनकी शैली इतनी क्लिष्ट है कि किसी प्रकारकी उसकी शैली तथा प्रणाली द्वारा देशमें शिक्षाकी उन्नति होना नितान्त असम्भव है। अतः पंडित जीने विशेषतः ग्रन्थोंका लिखना हिन्दीमें प्रारम्भ किया। आपको अपनी मातृ-भाषाकी उन्नति करनेका इतना ध्यान था कि मरण पर्य्यन्त आप हिन्दी भाषामें ग्रंथ लिखते गये। आपको हिन्दी भाषाके लिखनेका

प्रचलित शैलीसे बड़ी अरुचि थी। उनका कहना था कि उस शैलीसे क्या फायदा जो कि इतनी क्लिष्ट हो कि साधारण जनता जिसको समझ ही न सके। आप श्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्रके समकालीन थे। आपमें और बाबू साहबमें गाढ़ी मित्रता थी। पण्डित जी और बाबू साहब दोनों ही के विचार थे कि हिन्दी भाषाके लिखनेकी शैली ऐसी होनी चाहिये जिसको कि सभी समझ सकें। एक बारकी बात है कि पंडित जीसे मिलनेके लिये कुछ काशी-के विद्वान लोग आये किन्तु पंडित जी न थे और उन लोगोंसे पण्डित जीकी भेंट न हुई। उन लोगोंमेंसे एकने पत्र लिखा "मैंने आपके गृहपर पदार्पण किया किन्तु आपके शुभ दर्शनसे वञ्चित हुआ"। इस पत्रको पढ़कर पण्डित जी खूब हँसे और पण्डित वर्गकी इस प्रकारकी प्रवृत्तिके विरोधमें आपने अपने विचारोंको कठोर शब्दोंमें प्रगट किया। आपने राम कहानी नामक ग्रंथ केवल इस विचारकी पुष्टि करनेके लिये लिखा। राम कहानी अपनी शैलीका अनमोल ग्रन्थ है। पण्डित जी जो कहते थे उसे कर दिखाते थे। आजकल हिन्दुस्तानी एकेडेमी द्वारा इस विषयपर जोर दिया जा रहा है कि शैली ऐसी हो जिसको सब लोग समझ सकें किन्तु मैं देखता हूँ कि केवल बात ही बात है। आज भी जो पुस्तकें छप रही हैं उनकी भाषा कठिन तथा सुबोध नहीं है। पण्डित जीने हिन्दीमें १७ ग्रंथ लिखे। आपको तुलसीकृत रामायणसे बड़ा प्रेम था। आप इस ग्रन्थपर लट्टू थे। आपने बालकांड रामायणका उसी प्रकारकी सुललित तथा सरल संस्कृत भाषामें अनुवाद किया। तुलसीकी विनय पत्रिकाके आप अनन्य भक्त थे उसको भी आपने सुललित तथा सरल संस्कृतमें लिख डाला। पण्डित जीकी यह एक बड़ी उत्कट इच्छा थी हिन्दी भाषा-में गणित शास्त्रका इतिहास लिखा जाय और अपने आपने विचारके अनुसार गणितका एक इतिहास लिखना भी शुरू किया। पहले भागको आपने पूरा किया। उसमें केवल आप पाटीगणितका ही इतिहास लिख पाये हैं। आपकी इच्छा थी कि इसी प्रकारके चार भागोंमें सम्पूर्ण ग्रन्थ तैयार किया जाय किन्तु आप इस इच्छाको पूरी न कर पाये थे कि आपका देहावसान हो गया।

आपने हिन्दी भाषामें अनेक शब्दोंकी रचना की और उनके द्वारा गणित शास्त्रके अनेक विषयोंका नामकरण हुआ। 'डिटरमिनेण्ट' सिद्धान्तके निकालनेवाले पाश्चात्य गणितज्ञ लोग हैं। इसकी चर्चा योरोपमें बहुत है। गणितके नये ग्रन्थोंमें प्रायः लाघवके लिए गणितोंके न्यास-में कनिष्ठफल ही के रूपमें सब वस्तुको लिखते हैं। पंडित जीने इसलिए अपने समीकरण मीमांसामें एक अध्याय 'कनिष्ठ फल' पर भी लिखा है। संस्कृत गणित शास्त्रमें यह एक नवीन विषय है। इसको देखकर प्राचीन ढंगके पंडित लोग आक्षेप करते थे और कहा करते थे कि जब कनिष्ठ फलके बिना ही केवल गुणन, भागहार, योग फल और वियोगफलसे सर्वत्र कार्य निर्वाह हो जाता है तो फिर कनिष्ठ फलके नये-नये नियमोंका क्या प्रयोजन, यह तो व्यर्थ-में ग्रन्थ बढ़ाकर समय नष्ट करना है। इस पर पंडित जीका उत्तर था कि गणित शास्त्रमें जितने लाघवसे काम हों उतनी ही उसकी प्रशंसाकी जाती है। इस लिए गुणन भाजन, में व्यर्थ समय और स्थान खराब होता है उसके स्थानमें यदि क्रिया की युक्ति दिखानेके लिए कनिष्ठ फल ग्रहण किया जाय तो बहुत ही अल्प काल और अल्प स्थानमें सब युक्तियाँ दिखलाई जासकती हैं। पंडित जीमें अन्ध विश्वास न था, वे आदान प्रदानके कायल थे। उत्तम वस्तुको ग्रहण करनेमें आना कानी कदापि न करते थे। उनकी यह चरम इच्छा रहा करती थी कि अपनी मातृभाषा इतनी सुविस्तृत तथा सम्पूर्ण हो कि सभी विषय इसमें आजायं। हम लोगोंको आज दिन यदि किसी भी विषयको विशेष रूपसे पढ़ना होता है तो हम लोग सिवाय दूसरी भाषाके ग्रन्थोंको पढ़ें और कोई दूसरा रास्ता नहीं है। इसी अभावको अनुभव कर आज दिन भी अनेक विद्वान चेष्टा कर रहे हैं कि हिन्दी भाषा सर्व रूपसे सम्पूर्ण हो किन्तु इसके लिये सर्व प्रथम आवश्यकता है कि देशमें पंडित जी जैसे विद्वान हों।

पंडित जी गणित शास्त्र जैसे प्रकाण्ड विषयके आचार्य होते हुए भी भक्ति मार्गके अनन्य पोषक थे। आज कल देखा जाता है कि वैज्ञानिक विशेषकर अनीश्वरवादी होते हैं। या यों कहें कि वे ज्ञानकी ही महत्ताको सर्व श्रेष्ठ समझते हैं तो अत्यन्त उचित होगा। किन्तु पंडित

जी परम भक्त थे। उनका हृदय बड़ा सरल था। आपका जन्म सन् १८६० ई० तथा मृत्यु १९१० ई० में हुई। इस ५० वर्षकी अवधिमें आपने हिन्दी संसारमें एक युगान्तर स्थापित कर दिया। काशी नागरी प्रचारिणी सभासे आपका अटूट सम्बन्ध रहा। आप अपने जीवन पर्यन्त सभाकी उन्नतिके लिए पृथक परिश्रम करते रहे। काशी नागरी प्रचारिणी सभामें जो वैज्ञानिक कोष प्रकाशित हुआ था उसके गणित-ज्योतिष भागके सम्पादक एवं संकलन कर्त्ता द्विवेदी जी ही थे। यह कोष आज भी महत्वका है। पंडित जीके हर एक कार्य अनोखे ढंगसे होते थे। उनके हर एक कार्यमें एक अनुपम नवीनता रहा करती थी। उनको अपनी नवीन तथा स्वच्छ युक्तियोंका गर्व था। वे अनुकरण भी करते थे किन्तु उसमें भी नवीनता लाकर। राममें अनन्य भक्ति तथा हर एक विषयको नवीन दृष्टि कोणसे देखना तथा उनको स्वच्छ युक्तियों द्वारा प्रगट करना यही आपके जीवनका ध्येय था। आपने समीकरण मीमांसामें लिखा है।

जयति जयति रामः सर्वदा सत्य कामः
सकलवपुषि जीवः शोभते योऽप्यजीवः।
तमिह हृदि निधाय स्वच्छयुक्तिम् विधाय,
वदति विविध भेदान् बीजजातानखेदान् ॥

हिन्दीके प्रसिद्ध ज्योतिर्विद्

बाबू महावीरप्रसाद श्रीवास्तव

[ले०—डा० सत्यप्रकाश डी० एस-सी०]

बाबू महावीरप्रसाद श्रीवास्तव हिन्दी संसारके उन इनेगिने व्यक्तियोंमेंसे हैं जिन्होंने इस भाषामें वैज्ञानिक साहित्य उत्पन्न करनेमें विशेष हाथ बटाया है। अपने विद्यार्थीकालसे ही आप विज्ञान परिषद्पर कृपा करते आये हैं। आपकी वैज्ञानिक सेवाओंके उपलक्षमें परिषद्ने आपको अपना ऑनरेरी जीवन सदस्य निर्वाचित किया। आपका लिखा सूर्य्य-सिद्धांतका विज्ञान-भाष्य हिन्दी साहित्यके लिये एक गौरवकी चीज़ है। विज्ञान परिषद् अपना अहोभाग्य समझती है कि यह ग्रन्थ-रत्न प्रकाशित करनेका उसे अवसर मिला। परिषद्की अन्य सेवायें भी आपने कीं। आपकी संक्षिप्त जीवनी हम आपके ही शब्दोंमें नीचे देते हैं।

"मेरा जन्म इलाहाबाद जिलेकी तहसील हँडियाके बिझौली ग्राममें संवत् १९४४ विक्रमीकी कार्तिक शुक्र. २, १८ अक्टूबर सन् १८८७ ई०, मंगलवारको हुआ था। यह गाँव लच्छागिरसे जिसे लोग पाण्डवोंका लाक्षागृह कहते हैं डेढ़ मीलके लगभग पूरब गंगा जीके बायें तटपर बसा हुआ है।

अक्षरारंभ और आरंभिक गणितका पाठ पूज्यपाद पिता मुंशी शिववदनलाल जीने पढ़ाया था। परन्तु उस गाँवमें कोई पाठशाला न होनेके कारण मुझे अल्पावस्थामें ही अपने नानिहाल विजयपुर जिला मिरजापुरमें भेज दिया गया जहां हिन्दीमें सन् १८९९ ई०के आरम्भमें अपर प्राइमरी परीक्षा पास करके सरकारी छात्रवृत्ति प्राप्त की। परन्तु पढ़नेके लिये मिरजापुर जाना पड़ता जहां भेजनेके लिये छोटी अवस्थाके कारण नानीजी ने स्वीकार नहीं किया। इस लिये विजयपुर ही में रहकर वहांके मुख्याध्यापकसे जो अंग्रेजी भी जानते थे दो तीन पुस्तकें अंग्रेजीकी पढ़ीं।

मेरे विजयपुर आनेके शायद दो बरस बाद मेरी माता जी भी वहीं आ गयीं क्योंकि मौरूसी काश्तकारी जमीदारसे मुकदमा लड़नेके कारण रहन चली गयी थी इस लिये जीविकाके लिये पिता जीको कलकत्ते जाना पड़ा। सन् १९०० ई०के सितम्बर या अक्टूबर मासमें मैं भी कलकत्ते चला गया और वहां दो स्कूलोंमें अंग्रेजी पढ़ता रहा। १९०४ ई०के आरम्भमें पिता जी मालिकसे

कुछ मतभेद होनेके कारण नौकरी छोड़कर घर चले आये और खेतीबारीका प्रबन्ध करके गुजर करनेका विचार किया। मैं भी उनके साथ चला आया। उसी वर्ष वैशाख मासमें मेरा विवाह हो गया।

पिता जीके पास इतनी पूंजी नहीं थी कि वे इलाहाबादमें मेरे पढ़ानेका बोझा उठाते परन्तु पढ़नेकी मेरी इच्छा बड़ी प्रबल थी। इसलिये १९०४ ई०की जुलाईमें मैंने अपना नाम प्रयागकी कायस्थ पाठशालामें नवीं कक्षामें लिखाया। यहां फीस माफ थी, पुस्तकें भी मिल गयी थीं। जीवन निर्वाहके लिये तीन रुपयेका एक ट्यूशन कर लिया था, पिता जीसे भी कुछ सहायता मिल जाती थी। परन्तु वह सहायता भी दूसरे ही वर्ष अप्रैलमें बंद हो गयी, प्लेगसे पिता जीका देहान्त हो गया। ऐसी दशामें मेरा पढ़ना लिखना बंद हो जाता यदि उस समय मैं श्रद्धेय रामदास गौड़के साथ न रहता होता। उस समय यह कायस्थ पाठशालामें रसायनके अध्यापक थे। इनके कारण कायस्थ पाठशालाके प्रो० हरगोविंद प्रसाद निगम, बा० हीरालाल हलवासिया और उस समयके हेड मास्टर श्रद्धेय गणेशीलाल जीने मेरी आर्थिक सहायता की थी। इस प्रकार १९०६ ई०में स्कूल फाइनलकी परीक्षा प्रथम श्रेणीमें पासकी।

बीमारीके कारण कायस्थ पाठशालाकी एफ० ए०की कक्षामें देरसे नाम लिखाया, परन्तु ५, ६ दिन पढ़नेके बाद बीमार पड़ गया और विजयपुर चला गया। बीमारीसे एक मास बाद उठा। अब पढ़नेकी हिम्मत छूट गयी थी क्योंकि अस्वस्थताके साथ पढ़ने लिखनेकी ही चिंता नहीं थी वरन् माता, छोटी बहन, छोटा भाई और स्त्रीके पालन पोषणका भी भार सिरपर आ पड़ा था। इसलिये नौकरी करनेका विचार हुआ। एक हफ्तेके लगभग मिरजापुरकी कलक्टरी कचहरीमें काम किया था। इसके बाद मेरे परम सहायक बा० अवध बिहारीलाल जीकी कृपासे मैं सेक्रेटेरियट आफिस इलाहाबादमें २५) मासिकपर अस्थायी रूपसे काम करने लगा। यहां १८ दिनतक काम किया था जब नवम्बर मासमें गजटमें छपा कि एफ० ए० में पढ़नेके लिये मुझे सरकारी छात्रवृत्ति मिलेगी उस समय यह समस्या उपस्थित हुई कि नौकरी करूँ या उसे छोड़कर पढ़ना आरम्भ करूँ। दो चार दिनके असमंजसके बाद स्वर्गीय श्रद्धास्पद अध्यापक रामदास गौड़की प्रेरणासे मैंने फिर कायस्थपाठशालामें नाम लिखाया जहाँसे १९०८ ई० में इंटर मीडिएटकी परीक्षा प्रथम श्रेणीमें पास किया और बी० एस-सी० पढ़नेके लिये म्योर कालेजमें नाम लिखाया। यहां केमिस्ट्रीके असिस्टेंट प्रोफेसर श्रद्धेय सतीशचन्द्र देवकी सहायतासे कुछ किताबें मिल गयीं, कालेजकी फीस आधी माफ हो गयी। कायस्थ पाठशालासे दस रुपये मासका वजीफा और साठ रुपयेका विजयनगरम स्कालर्शिप मिलने लगा। परन्तु इससे भी घरका काम नहीं चलता था इस लिये ल्यूकरगंजमें रहकर एक ट्यूशन भी करना पड़ता था। वहांसे कालेज आने जानेमें दो ढाई घन्टेके लगभग लग जाता था और ट्यूशनके लिये भी डेढ़ घन्टेके लगभग समय देना पड़ता था इसलिये पहले सालकी पढ़ाई नियमित रूपसे नहीं हो पायी। दूसरे साल उस समयके प्रिन्सिपल जेनिंग्स महोदयसे भी ४) की छात्रवृत्ति मिलने लगी। इसलिये ट्यूशन छोड़कर भारद्वाज बोर्डिङ्ग हाऊसमें रहने लगा। इस बोर्डिङ्गमें बिजनौरके बाबू ब्रजनन्दन शरण एक सहपाठी थे जिनसे समय-समयपर कुछ आर्थिक सहायता मिल जाती थी। इस प्रकार पढ़कर १९१० ई० में बी० एस्-सी० की परीक्षा द्वितीय श्रेणीमें पास किया। यदि उस समयके प्रिन्सिपल या प्रोफेसर लोग आजकल के नियमोंका पालन करते होते जिनके अनुसार होनहार छात्रोंको भी दो बड़े-बड़े स्कालरशिप एक साथ नहीं मिलते तो मेरी कालेजकी पढ़ाई असम्भव थी। परन्तु सौभाग्यकी बात है कि उस समय बड़े लोगोंके दिमागमें यह बात नहीं आयी थी कि कालेजकी शिक्षा गरीबोंके लिये नहीं है।

बी० एस्-सी० के आगे पढ़नेकी इच्छा होते हुये भी हिम्मत नहीं पड़ी, इसलिये दो महीने कन्नौजके हाई-स्कूलमें नौकरी कर ली। इसके बाद म्योर सेंट्रल कालेजमें रसायनके असिस्टेंट डिमान्स्ट्रेटरके पदपर नियुक्त हुआ जहाँ ८ महीने तक नौकरी की। दूसरे वर्ष ट्रेनिंग कालेजमें पढ़ने गया १९१२ ई० की जुलाईमें रायबरेलीके गवर्नमेण्ट हाई स्कूलमें असिस्टेंट मास्टर होकर श्रम करने लगा। वहांसे

१९१५ ई० में तीन महीनेके लिये इम्पीरियल रिसर्च इंस्टीट्यूट पूसामें काम करने गया था परन्तु वहाँका वातावरण अनुकूल न पाकर यहीं फिर लौट आया और १९३१ ई० की जनवरी तक यहीं काम करता रहा। ९ जनवरीको यहाँसे बलिया हेडमास्टर होकर गया, जहाँसे साढे चार वर्ष काम करनेके बाद यहां फिर हेडमास्टर होकर आ गया। तबसे यहीं हेडमास्टर हूँ।

आरंभमें साहित्यिक काम करनेका बड़ा उत्साह था। श्रद्धेय श्रीरामदास गौड़की कृपासे लिखने पढ़नेमें रुचि उत्पन्न हो गयी थी। विज्ञान परिषद् और साहित्य सम्मेलनका सदस्य उन्हींके कारण हुआ था। यहाँ नागरी प्रचारिणी सभाकी स्थापना १९१३ या १९१४ ई० में हुई जिसमें मैं पहले सहायक-मंत्री होकर काम करता था, फिर मंत्री कर दिया गया। उस समय साथ काम करनेवाले मित्रोंमें ही वैमनस्य हो गया जिसके कारण मैंने निश्चय किया कि सबसे अलग रहकर ही जो कुछ काम होसके करना चाहिये। इसीके फल स्वरूप विज्ञान-प्रवेशिका का दूसरा भाग लिखा गया जो विज्ञान-परिषदसे सं० १९७४ वि० में प्रकाशित हुआ। 'विज्ञान'-के लिये भी नियमित रूपसे कोई-न-कोई लेख लिखना पड़ता था जिनमेंसे 'गुरुदेवके साथ यात्रा' और सूर्य सिद्धान्तके विज्ञान भाष्यका अधिकांश पुस्तकाकार भी छप गये हैं। विज्ञान भाष्यका आरंभ संवत् १९७९ वि० के कार्तिक मासमें किया गया था जो 'विज्ञान' में लगातार ९ वर्ष तक छपता रहा परन्तु दुर्भाग्यवश अभी तक पूरा नहीं हुआ। 'विज्ञान' की स्थिति डाँवाडोल थी, अपने प्रधान कार्यकी जिम्मेदारी बढ़ गयी थी, भाष्यके लिखनेके लिये पर्याप्त पुस्तकोंका अभाव था इस लिये काम रुक गया। छोटे-छोटे दो अध्याय रह गये हैं। और रह गयी है भूमिका जिसमें प्राचीन कालके प्रसिद्ध-प्रसिद्ध देशोंके ज्योतिष ज्ञानका तुलनात्मक इतिहास लिखनेका विचार है। इस वर्ष विज्ञान परिषद्के मंत्री डाक्टर गोरख प्रसादकी इच्छासे यह काम फिर आरंभ किया गया है, उनसे कुछ पुस्तकें भी मिल गयी हैं। इसलिए आशा है कि यह भाष्य शायद जल्दी ही पूरा हो जाय।

इनके सिवा मैंने प्रयागकी 'गृहलक्ष्मी' में 'कपड़े रंगना' तथा, ज्ञान-मण्डलसे प्रकाशित मर्यादामें 'दस मासके आकाश चित्र' 'भारतवर्षमें कौन तिथि पद्धति राष्ट्रीय दृष्टिसे उपयोगी हो सकती हैं' विषयोंपर दो लेख मालाएं आरंभ की थीं। काशीको 'निगमागम चन्द्रिका' में 'पंचांगोंमें एकताकी आवश्यकता' पर भी एक छोटी लेख माला छपायी थी। लखनऊकी माधुरीमें भी ज्योतिष संबन्धी कई लेख निकले हैं।

कलकत्तेकी हिन्दी पुस्तक एजंसीसे 'समुद्रकी सैर' और 'आकाशकी सैर' नामकी पुस्तकें प्रकाशित हुई थीं। जिनमेंसे पहली बंगलाके 'सागर रहस्य' का अनुवाद है और दूसरी बा० दुर्गा प्रसाद खेतानके 'ज्योतिष शास्त्र' का संशोधित संस्करण है। जिसके सम्पादनका भार इस लेखकको दिया गया था।

संतानें चार हुई, दो पुत्र और दो पुत्री जिनमेंसे एक पुत्र और एक पुत्री जीवित हैं। पुत्र चि० श्रीकृष्ण श्रीवास्तव इलाहाबाद यूनिवर्सिटीकी एम०एस-सी० कक्षामें पढ़ रहा है। पुत्रीका विवाह चि० शिवबहादुर सिनहा एम्० ए०,एल एल० बी० के साथ हुआ है जिनसे इस समय दो कन्याएं हैं।

यही संक्षेपमें मेरी राम कहानी है। अभिलाषा है कि चार वर्ष बाद प्रयागमें स्थायी रूपसे रहकर मातृभाषाकी कुछ सेवा करूं, वैसे ईश्वरकी जैसी इच्छा।

प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा

प्रो० वर्माने रसायन संबन्धी पुस्तकें एवं लेख लिखकर हिन्दी साहित्यका बड़ा उपकार किया है। हिन्दी भाषाके प्रति आपका अनन्य प्रेम है जो हमारे लिये गौरवकी बात है। परिषद्के आगामी वर्षके लिए आप सभापति मनोनीत हुए हैं। आपका संक्षिप्त जीवन नीचे दिया जाता है।

प्रो० फूलदेव सहाय वर्माका जन्म बिहार प्रान्तके सारन (छपरा) जिलेके सुदूर ग्राम, सरयु नदीके बायें तटपर बसा हुआ, कौंसड़ में सन १८९१ ई० के माघ मासमें हुआ था। आपकी शिक्षाका श्रीगणेश गांवमें ही अपने पितामह-के निरीक्षणमें शुरू हुआ। ९ वर्षकी उम्रमें दो वर्षों तक रोगाक्रान्त होनेके कारण आपका अंग्रेज़ी अध्ययन प्रायः १२, १३ वर्षकी उम्रमें गयामें आरम्भ हुआ। आपने पहले मिडिल इंगलिश परीक्षा पास की और उसमें वृत्ति मिली और तब १९१० ई० में कलकत्ता विश्वविद्यालयकी मैट्रिक परीक्षा प्रथम श्रेणीमें पास की और पटना डिविजनमें सर्व-प्रथम आये। इससे आपको १५) की मासिक वृत्ति मिली और पटना कालेजमें भर्ती हुये। वहांसे ही आपने प्रथम श्रेणीमें इण्टरमिडियेट पास की और सम्मानके साथ बी० एस-सी०। बी० एस-सी० में कलकत्ता विश्व-विद्यालयमें आपका स्थान द्वितीय रहा और ३० रु० की मासिक छात्रवृत्ति मिली। आपने एम०एस-सी० कलकत्ता-के प्रेसीडेन्सी कालेजसे पास किया और वहां भी आपका स्थान द्वितीय रहा। आप वहाँ सर प्रफुल्ल चन्द्र रायके छात्र थे। उसी वर्ष सर पी० सी० राय प्रेसीडेन्सी कालेज-से विदा लेकर कलकत्ता युनिवर्सिटीके सायंस कालेजमें वाइस-प्रिंसपल होकर आये। आपने सर पी० सी० रायके सर्व प्रथम अन्वेषण छात्र डा० आर० एल० दत्तके अन्तर्गत अन्वेषण कार्य प्रारम्भ किया था। वहाँ आपने पिक्रिक ऐसिड तैयार करनेकी दो संशोधित विधियोंका आविष्कार किया और एकको इङ्गलैण्डमें और दूसरेको अमेरिकामें पेटेंट कराया। पर वह समय गत यूरोपीय युद्धका होनेके कारण ब्रिटिश सरकारसे आपको सूचना मिली कि पिक्रिक ऐसिड युद्ध-सामग्री होनेके कारण युद्ध-कालमें आप उस विधिको प्रकाशित नहीं कर सकते। इससे उस विधिसे लाभ उठानेसे आप वञ्चित रहे।

एम० एस-सी० पास करनेके बाद आपको विहार सरकारकी ओरसे ३ वर्षके लिये अनुसन्धान कार्य करने को १००) मासिककी छात्रवृत्ति मिली और आप इसके लिए बंगलोरके इण्डियन इंस्टिट्यूट आफ सायंस नामक अनुसन्धान संस्थामें चले गये। वहाँ आपने कार्बनिक रसायनमें सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक डा० सडबोरोके अन्तर्गत २ वर्षों तक कार्य किया। वहाँ आप लायपेज़ नामक एंज़ायम के द्वारा उच्च कोटिके ग्लीसिरिन तैयार करनेमें लगे और अन्तमें उसमें सफल हुये। आपके इस अन्वेषणका फल जर्नल आफ़ दी इन्डियन इंस्टिट्यूट आफ़ सायंसके अङ्क २ भाग १५ के पृष्ठ २१३ से २६५ में छपा है। इस अनु-सन्धान कार्यके कारण उस संस्थाकी डिप्लोमा (A. I. I. Sc.) आपको मिली।

केवल दो वर्ष वहाँ रहकर आप बनारस हिन्दू युनिवर्सिटीमें प्रोफेसर आफ़ केमिस्ट्रीके पदपर नियुक्त हो बनारस चले आये और तबसे आज तक आप वहाँ ही अध्यापन और अनुसन्धान के कार्य करते हैं। बीचमें आपने असहयोगके समयमें हिन्दू विश्वविद्यालयसे त्याग-पत्र दे दिया था और राष्ट्रीय शिक्षाके सम्बन्धमें पटना जानेका निश्चय कर लिया था पर पं० मदनमोहन मालवीय जीके आग्रहसे आपने अपना त्याग-पत्र वापस ले लिया। आपने हैलोजीनेशनपर बहुत महत्वके अनुसन्धान किये हैं। अबतक आपके प्रायः ३ दर्जन मौलिक पत्र वैज्ञानिक पत्रोंमें प्रकाशित हो गये हैं। आपके अन्वेषणके महत्वके सम्बन्ध न्यूयोर्कसे प्रकाशित होनेवाले केमिकल इञ्जिनियरिंग सिरिज़के युनिट प्रोसेसेज़ इनआर्गेनिक सिंथेसिस नामक ग्रन्थमें जो उल्लेख किये गये हैं उनसे स्पष्ट हो जायगा। उपर्युक्त ग्रंथके पृष्ठ १८ पर दिया है :—

Varma produced a whole series of nitro compounds employing nitro-sulfonic acid in fuming nitric

acid. He concluded that nitrosulfuric acid functions because of its dehydrating action ; in which respect, it is more efficaceous than sulfuric acid. - The .... The method appears to possess some merit in the nitration of organic acids.

पृष्ठ १७६ पर लिखा है :— The method of Varma and Panickar which involves the use of sodium nitrite and fuming sulphuric acid may be employed for the iodination of aromatic compound.

आपको बाल्य कालसे ही हिन्दीसे प्रेम रहा है और सामयिक पत्र पत्रिकाओंमें आप बराबर लेख भेजते रहे हैं। जबसे आप बनारस आये तबसे ही विज्ञानमें लेख भेजते रहे और परिषद्‌के कार्योंमें दिलचस्पी लेते रहे। आपने हिन्दीमें चार पुस्तकोंकी रचना की है जिनमें दो पुस्तकें प्राथमिक रसायन प्रथम भाग और द्वितीय भाग बनारसके प्रकाशक मेसर्स नन्द किशोर ब्रादर्सने प्रकाशित की हैं और दो पुस्तकें साधारण रसायन प्रथम और द्वितीय भाग प्राय: ९०० पृष्ठोंकी, बनारस हिन्दू युनिवर्सिटीके पबलिकेशन बोर्डने प्रकाशित की हैं। आपने अंग्रेजीमें रसायनकी ३ पुस्तकें लिखी हैं जो अनेक विश्वविद्यालयों में पाठ्य पुस्तकें निर्धारित हुई हैं। गतवर्ष विहार प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलनके विज्ञान विभागके आप अध्यक्ष निर्वाचित हुये थे और इस वर्ष शिमलामें होनेवाले अखिल भारतवर्षीय हिन्दी साहित्य सम्मेलनके विज्ञान-परिषद्‌के अध्यक्ष थे। गतवर्ष प्रयागके विज्ञान परिषद्‌के वार्षिकोत्सवके अवसरपर आपने विज्ञान और उद्योग-धन्धोंपर भाषण दिया था। अपने भाषणमें आपने उद्योग-धन्धों की उन्नतिके लिये विज्ञानके अध्ययनपर बहुत ज़ोर दिया है। और आपके मतानुसार विज्ञानका अध्ययन उच्च कोटिका तभी हो सकता है जब वह मातृभाषाके द्वारा किया जाय। अत: वैज्ञानिक साहित्यके निर्माणकी आपने बहुत अधिक आवश्यकता बतलायी है। आप स्वदेशी-के बड़े पक्षपाती हैं और बराबर खद्दर और स्वदेशी वस्तुओं-का ही प्रयोग करते हैं। कुछ वर्ष हुए आप हिन्दूविश्व विद्यालयमें कार्बनिक रसायनके प्रोफेसर नियुक्त हुये। हिन्दू विश्वविद्यालयके कोर्ट, कौंसिल, सिण्डिकेट, सिनेट और फैकल्टी इत्यादि सभी संस्थाओंके सदस्य हैं।

'विज्ञान' के कृपालु दो लेखक

हमने विज्ञानके एक अंकमें अपने लेखकोंसे प्रार्थना की थी कि वे हमें अपने जीवन-वृत्तसे कृतार्थ करें। पर समयकी कमीके कारण संभवत: ये हमपर इस संबन्धमें कृपा न कर सके। दो युवक लेखकोंने हमारे पास अपनी सेवाओंका सूक्ष्म विवरण भेजा है जिसे हम यहां उन्हींके शब्दोंमें दे रहे हैं।

श्री भगवतीप्रसाद श्रीवास्तव

मासिक पत्रिकाओंमें वैज्ञानिक विषयोंपर मेरे भी लेख प्रकाशित होते आये हैं। १९३५में फिज़िक्समें एम० एस-सी० करनेके बाद ईविंग कालेजमें जूनियर लेक्चरर फिजिक्स डिपार्टमेंटमें एक वर्षके लिये था। लेख तभीसे लिखना आरम्भ किया। पहला लेख अक्टूबर १९३६ विशाल भारतमें 'धर्मके रास्तेमें विज्ञान' छपा था। तदुपरान्त 'भूगोल'में लगभग प्रतिमास मेरे लेख छपते रहे। विश्वामित्र मासिकमें मेरे लेख प्राय: प्रकाशित होते रहते हैं, जिनका विवरण मैं नीचे दे रहा हूँ। विज्ञान में भी मेरे लेख छपे हैं।

इन दिनों मैं 'साप्ताहिक आज'के 'वैज्ञानिक जगत' स्तम्भका सम्पादन करता हूँ। वैसे तो आजमगढ़की लॉ कोर्टमें प्रैक्टिस कर रहा हूँ।

लेख

'पिछला सूर्य्य ग्रहण'	विज्ञान		१९३६
'हिमालयकी बलिवेदीपर'	"		
'मार्कोनी'	"		
'क्या ब्रह्माण्ड अनन्त है'	विश्वामित्र	मार्च	१९३७
'विज्ञानको अधूरी समस्यायें'	"	अप्रैल	१९३७
'कास्मिक रश्मियां'	"	जुलाई	१९३७
'मंगल निवासियोंसे बातचीत'	"	अगस्त	१९३७
'हालीवुडके जादूगर'	"	फरवरी	१९३८
'अतुल जलराशिके नीचे'	"	जून	१९३८
'अनन्त अन्तरिक्षके संदेशवाहक'	"	अक्टूबर	१९३८
'सृष्टि और प्रलयकी पहेलियां'	भारत	जून ८,	१९३७
'दुनियाकी सबसे बड़ी दूरबीन'	भूगोल	सितम्बर	१९३६

लखनऊके अवध प्रिंटिंग वर्क्सके एडुकेशन पब्लिशिंग कम्पनी द्वारा 'विश्वभारती' हिन्दी पुस्तकके प्रकाशनकी योजना बनाई गयी है। इस विशाल पुस्तकके 'फिजिक्स' और 'भूगर्भ विद्या'के विभागके लिखनेका काम मैंने अपने ऊपर लिया है।

ठाकुर शिरोमणिसिंह चौहान

अक्टूबर १९३८के विज्ञानके पृष्ठ ४०पर रजत-जयंती मनानेका समाचार पढ़ बड़ी प्रसन्नता हुई। श्री गौड़जीके सम्पादन-कालमें श्री गौड़जी एवं डा० करमनारायन बाह्ल के प्रोत्साहनसे मैं भी 'विज्ञान'में कुछ लिखता रहा हूँ। मेरे ग्यारह-बारह लेख तो 'विज्ञान'में प्रकाशित हो चुके हैं और कुछ अधूरे मेरे पास पड़े हुये हैं।

नीचे लिखा नोट, आपकी आज्ञानुसार, जयंतीके अवसरपर प्रकाशित 'विज्ञान'के विशेषांकमें वैज्ञानिक, साहित्यकी आलोचनाके हेतु प्रेषित करता हूँ। जिन अंकोंमें ये लेख प्रकाशित हुए हैं वे सब हमारे पास नहीं हैं क्योंकि यहांपर हमारा तबादिला अभी हालमें हो आया है। पर वे गौड़ जीके सम्पादन-कालके दूसरे भागसे आरंभ होते हैं। मेरा पहला लेख 'जैसा देश वैसा भेष' है और वह दो अंकोंमें प्रकाशित हुआ।

मेरा जन्म १२-२-१९०१को हुआ था। मेरे पिताका नाम ठाकुर दलगंजनसिंह चौहान था और वे कटरा—तरिहा मैनपुरीमें जिमीदारीका काम करते थे। साधारण स्थितिमें होते हुये भी वे बड़े ही दयालु एवं विद्या प्रेमी थे। आरंभ ही से उन्होंने मेरे स्वास्थ्य एवं पठन-पाठनकी ओर विशेष ध्यान रक्खा। गाँवमें उस समय दूसरे दर्जेतक स्कूल होनेके कारण, थोड़ी ही अवस्थाके अपने इकलौते बेटेको पढ़नेके लिये उन्होंने बाहर भेज दिया। अंग्रेजीके छठे दर्जे तककी शिक्षा कालीचरण हाई स्कूल लखनऊमें राय बहादुर बाबू श्याम सुन्दरदास जी बी० ए० की देख-रेखमें हुई। वे उस समय वहांके प्रधान आचार्य थे। आर्थिक कठिनाइयों तथा घरसे अधिक दूर होनेपर भी कालेजकी पढ़ाईके हेतु बाबू साहबके आग्रहसे ही मैं हिन्दू विश्व-विद्यालय, काशी भेजा गया। एफ० ए० और बी० एस-सी०, परीक्षाएं वहां पास कीं। उन दिनों डा० हरूराम मेहराके इंग्लैंड चले जानेके कारण काशीमें प्राणशास्त्र विभागमें कोई सुयोग्य प्रोफेसर न रहा और इस कारण, काशी छोड़कर लखनऊ विश्व-विद्यालयमें डा० करमनारायण बाह्लके यहां एम० एस-सी० में सम्मिलित हुआ और सन् १९२७में उत्तीर्ण हुआ। हाई स्कूल और कालेजकी पढ़ाईमें रायबहादुर और डा० बाह्लसे हमें बड़ी सहायता एवं प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। इन दोनों सज्जनोंकी कृपा दृष्टि हमपर अब तक निरंतर बनी रहती है। सन् १९२६ में सम्मेलनकी 'विशारद' परीक्षा पास की। मार्च सन १९२८ में सब-रजिस्ट्रारीके चुनावमें आ गया और तबसे सब-रजिस्ट्रार हूँ।

वैसे तो हिन्दी साहित्यके विविध विषयोंपर पहले ही से लेख लिखा करता था पर इधर कई वर्षोंसे डा० बाह्ल और स्वर्गीय प्रो० गौड़के प्रोत्साहनसे वैज्ञानिक विषयोंपर लिखनेका चाव बढ़ा जिन्हें गौड़ जी अपने विज्ञानमें बराबर-प्रकाशित करते रहे। दो एक को छोड़ प्रायः सभी लेख सचित्र हैं। सुलतान गंजकी 'गंगा' और प्रयागकी 'सरस्वती' में भी दो एक लेख भेजे। सरस्वतीमें, अभी हाल ही में, एक मठनुमा दीमक-भवनका चित्र जो ९½ फीट ऊंचा था और जो जिला गोरखपुरके घने जंगलोंमें ढूँढा था प्रकाशित कराया था।

सरकारी कामसे जो समय बचता है वह प्रायः साहित्य एवं विज्ञान विषयक पठन-पाठन एवं चर्चामें बीतता है। सम्मेलन और श्री रामायण परीक्षाओंके

प्रचार-प्रसारके लिए लगातार कुछ-न-कुछ किया करता हूँ। आरायज़नवीसी, मध्यमा (सम्मेलन) और उत्तमा (रामायण) का परीक्षक भी होता हूँ। यदा-कदा शुल्क और पुस्तकें आदि देकर छात्र समुदायकी सहायता भी किया करता हूँ।

प्रकाशित लेख

१—जैसा देश वैसा भेष—दो अङ्कोंमें मेष सन्, ३३ या, ३४ में

२—जीवनका विश्वव्यापी पराश्रय—दो अङ्कोंमें

३—तुच्छ कीड़ोंकी बाढ़से भारी लाभ सितम्बर ३४

४—तुच्छ कीड़ोंकी बाढ़से भारी हानि अक्टूबर १९३४

५—घर बैठेका रोज़गार (शहद और मोम पैदा करना) जून १९३५

६—कंगालोंके लिये लाखका व्यवसाय अप्रैल, ३६

७—दरिद्रोंके झोपड़ोंमें रेशमका कारखाना जून, ३८

८—सांपोंकी नकल करनेवाली इल्लियाँ—दो अंकोंमें

९—जान ग्रेगार मैंडेल

१०—दूधकी शुद्धताकी जाँच

११—मनुष्यकी दुम क्या हुई ?

१२—सर चार्ल्स डारविन--यह लेख 'गंगा' के चरितांकमें प्रकाशित हुआ था।

यंत्र शास्त्र वेत्ता पं० ओंकार नाथ शर्मा

यन्त्र-शास्त्रपर हिन्दीमें लिखनेवाले आप एकमात्र व्यक्ति हैं। यंत्रोंका ज्ञान आपको बहुत अच्छा है। विज्ञान परिषद्के आप आजीवन सदस्य हैं, और आप अपने अनुभव पूर्ण लेखोंसे विज्ञानपर सदा कृपा किया करते हैं। आपकी यंत्र-शास्त्र सम्बन्धी पुस्तकें हिन्दीके लिये गौरवकी बात हैं। अपने ही व्यक्ति होनेके कारण और क्या लिखा जाय। हम नीचे आपका सूक्ष्म जीवनवृत्त देते हैं।

आपके पिता पं० लक्ष्मीनारायण गौड़, ग्राम-नांगल चौधरी, जिला नारनौल, रियासत पटियालाके रहनेवाले थे, जीविकाके निमित्त सन् १८९० ई० में अजमेरमें आकर रेलवेमें क्लर्क हो गये थे। वहींपर माता हरिदेवी जीके गर्भसे आपका जन्म सन् १९०४ ई० में हुआ।

आप अपने पिताके इकलौते बेटे थे इसलिये इनके पिताने आरम्भसे ही इनकी शिक्षा और चरित्रगठनपर बहुत ध्यान दिया। स्कूली शिक्षाके अतिरिक्त वे स्वयं इन्हें संसारके महापुरुषों और विख्यात विद्वानोंकी जीवनियां पढ़ाते और उनकी महत्वाकाँक्षाओंको उत्तेजित करते रहते। मैट्रिक तककी साधारण शिक्षाके बाद इनकी स्वाभाविक रुचि यंत्र-विद्याकी ओर देखकर इन्हें कालेजकी शिक्षा न दिलाकर बी० बी० एण्ड सी० आई० रेलवे अजमेरके लोको वर्कशापमें साधारण अपरेण्टिसोंमें भरती करवा दिया और अपने पैरोंके बल खड़े होकर स्वाध्याय और परिश्रमके द्वारा यंत्र निर्माणका उच्च कोटिका ज्ञान प्राप्त करने को उत्साहित किया। फल भी इसका ऐसा ही हुआ। आपकी प्रतिभा वहाँ चमक निकली और कुछ ही वर्षोंमें यंत्र-निर्माणकलामें दक्षता प्राप्त करली। जिसके फलस्वरूप आप सन् १९३१ ई० में इंगलैण्ड और भारतके इंस्टीट्यूशन-आफ-लोकोमोटिव इंजीनियर्स और अमेरिकन सोसाइटी आफ मिकेनिकल इंजीनियर्सके सभ्य चुने गये और फिर उसी कारखानेमें ७ वर्ष तक हैड ड्राफ्टस्मैनके पदपर काम किया। अब कुछ वर्षोंसे उसी रेल्वेके सोजत रोड स्टेशन पर लोकोफोरमैनका काम कर रहे हैं।

अजमेरमें रहते-रहते ही अपनी फुरसतके समय अवैतनिक रूपसे कन्सलटिंग इंजीनियरका काम भी किया करते थे, जिसके फल स्वरूप आपने कई छोटी-छोटी फैक्टरियाँ स्थापित करवाईं जिनमें दिल्लीकी टिन-प्रिंटिंग और मेटल वर्कस् विशेष उल्लेख योग्य हैं। अजमेरके कारखानेमें जिन कारीगरोंके साथ आप काम सीखा करते थे उन्हें प्रयोगिक गणित आदि भी पढ़ाया करते थे। इस अनुभवके बलपर पिछले दिनों महात्मा जीकी वर्धा शिक्षा समितिको बढ़ईगीरी और लोहारीके कामके माध्यमसे इंटरमीडियेट तककी गणितका पाठ्यक्रम बनाकर भेजा था। आपने यांत्रिक चित्रकारी भाग १ और वेक्युम ब्रेक नामक दो उपयोगी पुस्तकें भी यंत्र-शास्त्रपर प्रकाशित करवाई हैं और अब समय-समयपर "विज्ञान" में औद्योगिक विषयोंपर लेख भी दिया करते हैं। आगे चलकर आपसे हिन्दी साहित्यकी औद्योगिक क्षेत्रमें बहुत कुछ सेवा होनेकी आशा है।

तारे कितने बड़े हैं ?

[लेखक—डाक्टर गोरखप्रसाद डी० एस-सी०]

तारे कितने बड़े हैं ? एक समय था जब इसका कोई भी संतोषजनक उत्तर नहीं दिया जा सकता था। कोई उपाय ज्ञात नहीं था जिससे तारे नापे जा सकें या उनकी नापका किसी प्रकार सच्चा अनुमान किया जा सके। केवल मोटे हिसाबसे अनुमान किया जाता था कि वे बहुत बड़े होते होंगे।

सोलहवीं शताब्दीके मध्यमें गैलीलियोंने दूरदर्शक यंत्रका आविष्कार किया। इस यंत्रसे ग्रह और चंद्रमा बड़े दिखलाई पड़ने लगे, परन्तु तारे पूर्ववत् ही नाप--रहित विंदु—सरीखे दिखलाई पड़ते थे। पीछे बड़े-बड़े दूरदर्शक यंत्र बने, परन्तु उनमें भी तारे बड़े नहीं दिखलाई पड़े। ऐसा जान पड़ता था जैसे तारोंका व्यास शून्यके समान हो और जिस प्रकार शून्यको दस हज़ारसे भी गुणा करनेपर गुणनफल शून्य ही मिलता है--यद्यपि अन्य किसी संख्याको दस हजारसे गुणा करनेपर गुणनफल दस हज़ार गुना हो जाता है--ठीक उसी प्रकार बड़े-से-बड़े दूरदर्शकोंमें भी तारोंका व्यास शून्यका शून्य ही रह जाता था।

यह बात इतनी विश्वसनीय थी कि जब हरशेलने अपने बड़े दूरदर्शकसे एक तारेकी जाँच की और वह तारा बड़ा दिखलाई पड़ने लगा तो उसने तुरंत निश्चय कर लिया कि यह कोई तारा नहीं है--अवश्य ही कोई केतु या ग्रह होगा। कुछ दिनोंमें उसके मार्गकी जाँच करनेसे पता चला कि यह वस्तुतः एक ग्रह था। इस नवीन ग्रहका नाम यूरेनस रक्खा गया।

तारोंके व्यासका अनुमान करनेके लिये यह आवश्यक है कि हम यह जानें कि वे कितनी दूर हैं और उनका तापक्रम क्या है। तारोंकी दूरीके बारेमें कई भ्रमपूर्ण बातें पहले प्रचलित थीं यहाँतक कि पहिले तारोंका आकाशमें एक दूसरेकी अपेक्षा स्थिर रहना इस बातका प्रमाण माना जाता था कि पृथ्वी नहीं चलती, सूर्य चलता है ; क्योंकि यदि पृथ्वी चलती होती तो दूरस्थ तारोंकी अपेक्षा समीपवाले तारे अवश्य ही उल्टी दिशामें चलते हुये दिखलाई पड़ते, ठीक उसी तरह जिस प्रकार रेल यात्राके समय वृक्ष परन्तु जैसे-जैसे यंत्रोंकी शक्ति बढ़ती गई, वैसे-वैसे तारा—संबन्धी ज्ञान भी बढ़ता गया। अब हम जानते हैं कि तारे बहुत दूर हैं। पृथ्वीके चलनेके कारण निकटस्थ तारे दूरवाले तारोंके हिसाबसे अवश्य उल्टी दिशामें चलते दिखलाई पड़ते हैं, परन्तु निकटस्थ तारे भी इतनी दूर हैं कि यह गति अत्यन्त सूक्ष्म है। तो भी आधुनिक यंत्रोंसे उनका यह विचलन नापा जा सकता है और गणना द्वारा इसका भी पता लगाया जा सकता है कि वे कितनी दूर हैं।

पता चला है कि तारे अत्यंत दूर हैं। साधारण रीतिसे उनकी दूरीकी कल्पना करना सरल नहीं है, परन्तु इसका कुछ अनुमान निम्न युक्तिसे किया जा सकता है।

कल्पना करो कि हम नाक्षत्र-जगतकी मूर्ति पैमानेके अनुसार बनाना चाहते हैं। हम सूर्यको दो इंच व्यास-वाले गेंदसे सूचित करते हैं। इस पैमानेपर पृथ्वी राईसे कहीं छोटी, केवल सुईकी नोकसे बनाई गई बिंदी-सी—बनेगी और सूर्यसे १६ फुटपर इसे रखना पड़ेगा। परन्तु यद्यपि पैमाना इतना छोटा है पृथ्वी हमें स्पष्ट रूपसे दिखलाई भी नहीं पड़ रही है तो भी निकटतम तारा इस पैमानेपर एक हज़ार मीलसे कुछ अधिक ही दूरपर होगा!

तारोंका तापक्रम भी कल्पना-शक्तिके परे है। जिस आँचपर सोना पिघलता है वह तारोंके तापक्रमके आगे कुछ भी नहीं हैं। परन्तु सभी तारे एक ही तापक्रमके नहीं हैं। कुछ, जो हमें सफ़ेद या नीले दिखलाई पड़ते हैं, बहुत गरम होते हैं। कुछ, जो हमें पीले या लाल दिखलाई पड़ते हैं, कम गरम होते हैं। वस्तुतः उनके रङ्गकी सूक्ष्म परीक्षा करके आधुनिक ज्योतिषी तारेका सच्चा तापक्रम जान लेते हैं।

दूरी और तापक्रम दोनोंका पता लग जानेपर इस बातकी गणना सुगमतासे की जा सकती है कि तारा

कितना बड़ा होगा क्योंकि हम यह भी नाप सकते हैं कि वह हमको कितना चमकीला दिखलाई पड़ता है। अवश्य ही, वह तारा बहुत बड़ा होगा जो लाल (और इस लिये कम तापक्रमका) और अपेक्षाकृत बहुत अधिक दूरपर होते हुये भी हमको बहुत चमकीला जान पड़ता है। वृश्चिक राशिका ज्येष्ठा नामक तारा इसी प्रकारका है। गणनासे यह परिणाम निकलता है कि इसका व्यास हमारे सूर्यके व्याससे तीन सौ गुनासे सो कुछ अधिक ही बड़ा होगा! लगभग तीन करोड़ हमारे सूर्य-जैसे पिंडोंको मिलाकर एक गोला बनानेपर कहीं इसकी बराबरोकी जा सकेगी!

पृथ्वीका व्यास केवल ८००० मील है और तो भी यह हमको इतनी बड़ी जान पड़ती है, परन्तु ज्येष्ठाका व्यास तो लगभग तीस करोड़ मीलका है!

अंक गणितमें करोड़, दस करोड़, या अरब, खरब तककी संख्याओंको गुणा-भाग करते रहनेके कारण हमको ३० करोड़ कोई विशेष बड़ी संख्या नहीं जान पड़ती, परन्तु क्षण भर विचार करनेसे इन संख्याओंकी महानता का चित्र हमारी आखोंके सामने खिंच सकता है। केवल इसीकी गणना कीजिये कि यदि कोई प्रति मिनट १२० तक गिन सके (यह काफ़ी तेज़ गिनना है) तो उसे तीस करोड़ तक गिननेमें कितना समय लगेगा। एक घंटेमें उपरोक्त व्यक्ति ७२०० तक गिनेगा, एक दिन-रातमें ७२००×२४ या लगभग १,७०,००० तक, एक महीनेमें वह ५१,००,००० अर्थात् आधा करोड़से कुछ ही ऊपर गिन पावेगा। तीस करोड़तक गिननेमें उसे ५० वर्ष लग जायँगे, और यह भी तब जब वह दिन रात गिनता रहे, न सोये न खाये।

तारोंके व्यास ही केवल आश्चर्यजनक नहीं हैं। उनका घनत्व तो और भी आश्चर्यजनक है। कई तारोंके निकट एक दूसरा तारा भी रहता है जो बड़े तारेके चारो ओर उसी प्रकार चक्कर लगाता है जिस प्रकार चंद्रमा पृथ्वी के चारो ओर। वर्षों तक उनको बार-बार देखनेसे पता चल जाता है कि एक बार चक्कर लगानेमें कितना समय लगता है। दोनों तारोंके बीचकी दूरी भी दूरदर्शकसे नापी जा सकती है। इस लिये गति-विज्ञानसे पता चल जाता है कि तारोंकी तौल क्या है। तौल और नाप दोनोंका पता चल जानेपर इसकी गणना सुगमतासे हो सकती है कि तारेका घनत्व क्या है।

पता चला है कि कुछ तारे पानीकी अपेक्षा अत्यंत हलके हैं, कुछ अत्यंत भारी। ज्येष्ठा हवासे भी हल्का है। वस्तुतः इसका घनत्व हवाके घनत्वका केवल ३० हज़ारवाँ भाग ही है! इसके विपरीत कुछ तारे विशेषतः वे जो हमको नीले दिखलाई पड़ते हैं, पानीकी अपेक्षा बहुत भारी हैं—कुछ तो पानीसे चालिस हज़ार गुना भारी हैं।

एक बार वैज्ञानिकोंको विश्वास नहीं होता था कि ऐसी भारी वस्तुयें हो भी सकती हैं। इससे यह बहुत आवश्यक प्रतीत होता था कि तारोंका व्यास किसी प्रकार नापा जाय; केवल दूरी, चमक, तापक्रम आदिसे उनके व्यासकी गणना न की जाय। वर्षों तक व्यासका नापना असंभव-सा जान पड़ता रहा, परन्तु १९२० से माइकलसनकी बतलाई रीतिसे तारोंका व्यास नापा जा सका।

रीति यह थी कि दूर दर्शकके सिरेपर एक गरडर बाँधा जाय। इस गरडरपर दो दर्पण रक्खे जायँ जो एक-दूसरेके हिसाबसे हटाये—बढ़ाये जा सकें। तारोंकी रश्मियाँ इन दर्पणोंपर पड़ें और परावर्तित होकर दूसरे दो दर्पणोंपर जायँ। वहाँसे परावर्तित होकर वे दूरदर्शक के भीतर जायँ। इस प्रकारके यंत्रसे तारेपर धारियाँ दिखलाई पड़ती हैं। प्रथम दो दर्पणोंको हटाने—बढ़ानेसे एक विशेष स्थितिमें धारियाँ मिट जाती हैं। उस समय दर्पणोंके बीचकी दूरी नाप ली जाती है। प्रकाश सिद्धांत और गणित-द्वारा तब सुगमतासे तारोंके व्यासकी नाप ज्ञात हो जाती है।

इस प्रकारके नापों और गणनासे अब सिद्ध हो गया है कि वस्तुतः ज्येष्ठाका व्यास ३० करोड़ मील है और उसका घनत्व इतना कम है कि हम ऐसे गैसको पृथ्वीपर शून्य ही मानते हैं। फिर वस्तुतः कुछ तारोंका घनत्व इतना अधिक है कि हम उसकी कल्पना नहीं कर सकते। यदि इस प्रकारके भारी तारे द्रव्य लेकर साधारण नापकी अँगूठी बनाई जाय—करीब उतनी ही बड़ी जितनी आठ आने भर सोनेकी बनती है—तो उसका तौल लगभग पाँच मन होगा।

स्पीकर भवन, लखनऊ
१६. २. ३६

प्रिय गोरखप्रसाद जी—बन्दे।

आपका विज्ञान-परिषद्‌की रजत-जयन्तीके लिए निमन्त्रण-पत्र मिला। विज्ञान-परिषद्‌के कार्यकर्ताओंने इन पचीस वर्षोंमें जो सुन्दर काम किया है उसके लिये मैं इस शुभ अवसरपर उन सबोंको बधाई देता हूँ।

हृदयके कुछ कष्टके कारण मेरा चलना फिरना बिलकुल बन्द है। मैं शरीरसे इस मंगलमय समारोहमें शरीक न हो सकूँगा। आपकी सफलताका प्रार्थी हूँ।

सस्नेह
पुरुषोत्तमदास टंडन
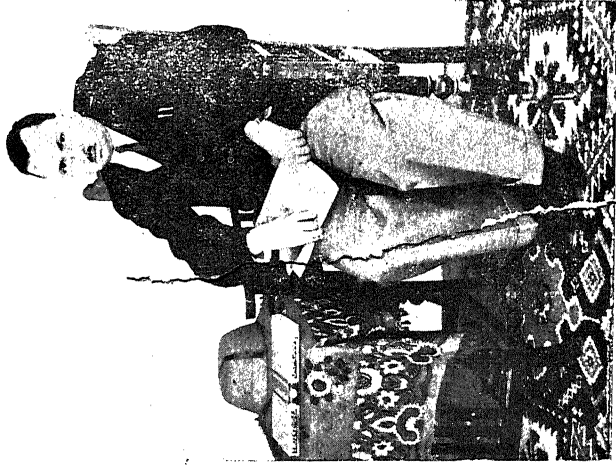
यंत्र-विज्ञान-वेत्ता पं० ओंकारनाथ शर्मा

पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसीके अध्यक्ष, परिषद्के परम सहायक स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य

परिषद्के २५ वर्षका विवरण

[परिषद्की कौंसिलकी ओरसे]

महामना पं० मदनमोहन मालवीयजीने जिस समय हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी स्थापना प्रयागमें की थी उसी समयसे म्योर सेण्ट्रल कालेजके कुछ छात्रों और अध्यापकोंमें इस बातकी चर्चा होने लगी कि क्या आधुनिक वैज्ञानिक साहित्य देशी भाषाओंमें नहीं हो सकता है। इन विचारोंको कार्य्य रूपमें लानेके लिए हिन्दीकी प्रसिद्ध पत्रिका सरस्वतीमें कुछ लेख सन् १९१२ में प्रकाशित किये गये। प्रकृति-निरीक्षणसे सम्बन्ध रखने वाले लेख प्रकाशित करनेका प्रयत्न स्वर्गीय पं० महावीर प्रसाद जी द्विवेदी कई वर्ष पहलेसे कर रहे थे। कुछ अन्य व्यक्तियोंने भी इसी प्रकार लेख और ग्रन्थ लिखनेका समय समय पर प्रयत्न किया। सन् १८७० के लगभग गणित और भौतिक शास्त्रपर पं० लक्ष्मीशंकर मिश्र और स्व० महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदीने उच्च कोटि-की पुस्तकें लिखीं पर प्रकाशन-क्रम अधिक न चल सका। सन् १९०५ में स्व० प्रोफेसर महेशचरण सिंहने रसायन, वनस्पति, और भौतिक शास्त्रोंपर आरम्भिक पुस्तकें छापीं थीं। ये पुस्तकें गुरुकुल कांगड़ीमें काममें आती थीं जहाँ शिक्षाका माध्यम हिन्दी था। इन पुस्तकोंके निकलवाने-का श्रेय महात्मा मुन्शीराम (स्व० स्वामी श्रद्धानन्द) जी को था। इस देशमें नवीन पद्धतिकी शिक्षाका बहुत कुछ संचालन ईसाई संस्थाओंके हाथमें था, और इन्होंने भी कुछ पाठ्य पुस्तकें वैज्ञानिक विषयोंकी प्रकाशित कीं।

म्योर सेण्ट्रल कालेजके अध्यापक महामहोपाध्याय डा० गंगानाथ झा, प्रो० हमीद उद्दीन साहेब, स्व० बाबू रामदास गौड़ और पं० सालगराम भार्गव ने १० मार्च १९१३ के दिन एक मीटिंग की जिसमें यह निश्चय हुआ कि देशी भाषाओंमें वैज्ञानिक साहित्यकी रचना और प्रचार-का काम सुसंगठित रूपसे चलानेके उद्देश्यसे "वर्नाक्यूलर साइण्टिफिक लिटरेचर सोसायटी" की स्थापना की जाय जिसका नाम डा० झा ने विज्ञान परिषद् और मौलवी हमीद-उद्दीन साहेब ने अञ्जुमन-सनाअ-व-फ़नून रक्खा।

इस संस्थाके कार्य संचालनके लिए प्रिंसिपल जे० जी० जेनिंग्स महोदय ने म्योर कालेजमें स्थान भी देनेकी कृपा की और इस कार्यमें पूरी पूरी सहायता न केवल उन्हींसे वरन् प्रोफेसर ई० जी० हिल और जे० जे० ड्यूरक महोदयसे भी मिलने लगी। म्योर कालेजके अन्य हिन्दुस्थानी अध्यापकोंको तो पूरी सहानुभूति थी ही; अतएव कुछ पदाधिकारी चुन लिए गये और ३१ मार्च १९१३ के दिन पहला अधिवेशन हुआ। उसदिन कुछ नियमोंका निर्माण हुआ और मंत्री प्रो० हमीद-उद्दीनको यह आज्ञा मिली कि यूनीवर्सिटीके फेलो, कालिजोंके प्रोफेसरों और भारतीय विश्व विद्यालयोंके प्रमुख विद्वानोंसे पत्र व्यवहार कर उनको मेम्बर बनावें*। प्रायः जैसा हुआ ही करता है, पत्र व्यवहार-का संतोषजनक प्रभाव नहीं हुआ। हतोत्साह न होकर कार्य्यकर्ताओं ने निश्चय किया कि गर्मी की छुट्टियोंमें कुछ आरम्भिक ग्रन्थ तैयार किये जायँ। पं० सालगराम भार्गव और प्रो० गौड़ ने विज्ञान प्रवेशिका भाग १ लिख डाली। लीडर आदि समाचार पत्रों और सरस्वती आदि पत्रिकाओं-ने इस संस्थाके उद्देश्यों और कार्यों की समालोचना करते हुए इसकी प्रशंसा की और प्रोत्साहन दिया।

संस्थाका दूसरा अधिवेशन ३० जूलाई १९१३ के दिन हुआ। उस समय तक ४३ सदस्य बन चुके थे। पारिभा-षिक शब्दोंकी कठिन समस्या उपस्थित होनेपर रसायन, भौतिक, वनस्पति आदि विषयोंकी समितियाँ बना दी गईं और उस समय तक जितने शब्द बनाये जा चुके थे, उनके अतिरिक्त नये और बनाये गये।

परिषद्का पहला व्याख्यान प्रिंसिपल जेनिंग्सके सभा-पतित्वमें हुआ। श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव, विशारद, बी० एस-सी०, एल० टी० रायबरेलीसे व्याख्यान देने आये। विषय था 'अर्कमीदिसका सिद्धान्त'।

धनाभाव होते हुए भी किसी प्रकार विज्ञानप्रवेशिका भाग १ प्रकाशित कर दी गई। सरस्वती, पाटलिपुत्र, लक्ष्मी,

* यह पत्र १८ अप्रैल, १९१३ को प्रकाशित हुआ।

शारदा, प्रताप, मार्डनरिव्यू आदि पत्रों ने इस पुस्तकका स्वागत किया। इसका पहला संस्करण हाथों हाथ बिक गया। प्रोफेसर सैय्यद मोहम्मद अली नामीके प्रयत्नसे विज्ञान प्रवेशिका भाग १ का उर्दू-अनुवाद भी तैयार हो गया।

नये नियम बनाकर २९ अगस्त, १९१४ के बाद पत्र दुबारा भेजे गये और फलस्वरूप ७८ फेलो और ४५ ऐसोशियेट प्रथम वर्षके अन्त (अर्थात् ३१ अक्टूबर १९१४) तक बन गये।

परिषद्‌के उद्देश्य

ऊपर दिये हुए पहले वर्षके विवरणसे यह स्पष्ट हो गया होगा कि परिषद्‌का जन्म निम्न उद्देश्योंसे हुआ :—

(१) भारतीय भाषाओंमें वैज्ञानिक साहित्यकी रचना और प्रकाशन करनेके लिए।

(२) देशमें वैज्ञानिक सिद्धान्तोंका प्रचार करनेके लिये—और साधारणतः वैज्ञानिक खोजके कामको प्रोत्साहन देनेके लिए।

हमारे सभापति

निम्न व्यक्ति परिषद्‌के सभापति रह चुके हैं—

१.	माननीय डा० सर सुन्दरलाल—	१९१३से १९१७ तक
२.	माननीय राजा सर रामपालसिंह	१९१७से १९२० तक
३.	श्रीमती डा० ऐनी बेसेण्ट—	१९२०से १९२१ तक
४.	जस्टिस बा० गोकुल प्रसाद—	१९२१से १९२२ तक
५.	मान०डा०सी०वाई०चिंतामणि	१९२२से १९२५ तक
६.	बाबू शिवप्रसाद गुप्त—	१९२५से १९२७ तक
७.	महा० डा० गंगानाथ झा—	१९२७से १९३० तक
८.	डा० नीलरत्न धर—	१९३०से १९३३ तक
९.	डा० गणेशप्रसाद—	१९३३से १६ मार्च १९३५ तक
१०.	डा० नीलरत्न धर—	मार्च १९३५से ३० सितम्बर १९३५ तक
११.	डा० कर्म नारायण बाहल—	१९३५से १९३८ तक

हमारे पहले सभापति स्व० माननीय डा० सुन्दरलालजीको परिषद्‌के जन्मसे ही इस संस्थाकी ओर पूर्ण सहानुभूति थी, और निरन्तर हर प्रकारसे आप हमारी सहायता करते रहे। हमें याद है कि जिस समय धनाभावके कारण परिषद्‌को विज्ञानके प्रकाशनमें कठिनाई पड़ने लगी तो सर सुन्दरलाल जी ने कहा कि मैं विज्ञान पढ़ता नहीं परन्तु उसके आनेसे मुझे बड़ी तसल्ली होती है और उसे बन्द न किया जाय। आपने २०० रुपये आर्थिक सहायताके रूपमें दिये। यद्यपि पंडितजीको अपने निजी काम और हिन्दू विश्वविद्यालयके कामसे बहुत कम फुर्सत मिलती थी, तथापि परिषद्‌के कामके लिये आप सदा ही उद्यत रहते थे।

हमारे दूसरे सभापति कुर्री सुदौली राज्यके अधीश माननीय राजा सर रामपालसिंह थे। आपने भी तीन वर्ष तक परिषद्‌के कार्यका सुचारु रूपसे संचालन किया।

हमारी तीसरी सभानेत्री स्वर्गीया श्रीमती ऐनी बेसेण्ट थीं। यद्यपि आपको थियोसोफिकल सोसाइटी तथा होमरूलके कामसे कम समय मिलता था, तथापि आपने परिषद्‌के साथ पूर्ण सहानुभूति और सहायताका व्यवहार किया। आप परिषद्‌की पहली आजन्म सदस्या थीं।

स्वनामधन्य दानवीर बाबू शिवप्रसाद गुप्त काशी विद्यापीठका संचालन कर रहे हैं। परिषद्‌को भी आपसे बहुत सहायता मिलती रही है। हमें उनकी शुभ कामनायें सदा प्रोत्साहित करती रही हैं।

संयुक्तप्रान्तके लिबरल दलके नेता माननीय श्री सी० वाइ० चिन्तामणि भी परिषद्‌के सभापति रह चुके हैं। आपको परिषद्‌के उद्देश्यों और कार्योंसे सदा प्रेम रहा है और अपने पत्र लीडर द्वारा परिषद्‌को प्रोत्साहित करनेमें आपने सराहनीय काम किया है। यदि आपकी शुभाकांक्षायें हमारे साथ न होतीं तो परिषद्‌को प्रान्तीय सरकारकी सहायता प्राप्त करनेका सौभाग्य न होता।

महामहोपाध्याय पं० गङ्गानाथ झा परिषद्‌के जन्मदाता ही हैं। आपने गत २५ वर्षोंमें परिषद्‌के साथ सहानुभूति और प्रेमका व्यवहार किया है। आपके कारण परिषद्‌को बड़े-बड़े महानुभावोंसे सहायता मिली है। परिषद्‌के सभी कामोंमें आपके परिपक्व अनुभवसे लाभ

उठाया गया है। हम लोग अब तक बराबर आपसे परामर्श लेते रहते हैं।

जगत्-विख्यात रसायनशास्त्रज्ञ डा० नीलरत्न धर भी जबसे संयुक्त प्रान्तमें नियुक्त होकर आये हैं परिषद्के सदस्य रहे हैं। डा० ई. जी. हिलकी असामयिक मृत्युके बाद भी आपकी प्रयोगशालासे परिषद्के व्याख्यानोंमें पूरी सहायता मिलती रही है। आप अब तक बराबर परिषद्पर कृपा करते रहे हैं, और अब शिक्षा-विभागमें आपके चले जानेसे परिषद्को यथेष्ट सहायता अवश्य मिलेगी, ऐसा हमें विश्वास है।

भारतके सुप्रसिद्ध गणितज्ञ स्वर्गीय डा० गणेश-प्रसादजीके उपकारोंका उल्लेख करना कठिन है। आपने अपने अमूल्य समयको परिषद्के कार्यमें लगानेमें कभी संकोच नहीं किया। जब जब आपको प्रयाग बुलाया गया आप अवश्य पधारे। आपने परिषद्के अधिवेशनोंमें कई व्याख्यान भी दिये। आपने जो गणितकी खोज-का काम संयुक्त प्रान्त तथा बंगालमें किया वह अमूल्य और अमर है। अब आपके शिष्यगण गणितकी खोजका काम कर रहे हैं, और परिषद्के कामोंमें उनका सहयोग प्राप्त हो रहा है।

डा० कर्मनारायण बाह्ल संयुक्त प्रांतमें आनेके पहले लाहौरमें सोसायटी फॉर प्रोमोशन आव् सायण्टिफिक नॉलेजमें कामकर रहे थे। आपको अपनी बच्चा नामक पुस्तकपर पंजाब सरकारसे इनाम भी मिला था। वहाँसे यहां आकर भी आपने परिषद्के काममें पूरा हाथ बटाया। लेखों, व्याख्यानों आदिसे आपने परिषद्की सेवा की है।

उपसभापति

हमारे उपसभापतियोंमें निम्न व्यक्तियोंका नाम उल्लेखनीय है।

(१) महामहोपाध्याय डा० गंगानाथ झा
(२) माननीय पं० मदनमोहन मालवीय
(३) श्री एस. एच. फ्रीमेंटल
(४) श्रीमती ऐनी बेसेण्ट
(५) माननीय राजा सर रामपालसिंह
(६) राय बहादुर पुरोहित गोपीनाथ
(७) राजा आबूजफर साहेब, पीरपुर
(८) प्रो० देवेन्द्रनाथ पाल
(९) श्री सी० वाई० चिन्तामणि
(१०) डा० नीलरत्न धर
(११) प्रोफेसर एस०सी० देव
(१२) डा० शिखिभूषण दत्त
(१३) प्रो० सालगराम भार्गव
(१४) डा० श्रीरंजन

प्रधान मंत्री

निम्न व्यक्ति परिषद्के प्रधान-मंत्री रहे :—

(१) स्व० प्रो० हमीदउद्दीन साहब
(२) स्व० लाला सीताराम बी० ए०
(३) स्व० प्रो० रामदास गौड़
(४) " " सतीशचन्द्र देव
(५) प्रोफेसर सालगराम भार्गव
(६) डा० गोरख प्रसाद

प्रो० हमीदउद्दीन परिष का संस्थापन करके हैदराबाद चले गये और वहाँ उन्होंने उर्दू साहित्यकी सेवाकी।

लाला सीताराम जी ने परिषद्के जन्मसे लेकर पांच छः वर्ष तक प्रधान मंत्रीका काम किया। इसके साथ ही साथ आप बड़ी योग्यतासे लगभग ४ वर्ष तक विज्ञानका संपादन करते रहे।

प्रो० सतीशचन्द्र देव ने प्रधान मंत्रीके पदपर प्रायः १५ वर्ष तक बड़ी योग्यतासे काम किया और म्योर कालेजकी प्रयोगशालासे परिषद्के व्याख्यानोंमें बड़ी सहायता दी। आपके व्याख्यान बड़े रोचक और शिक्षाप्रद होते थे। आपका हास्यपूर्ण मुख-मंडल अब भी आपके सहयोगियोंको याद आता है।

प्रो० सालगराम जी परिषद्के जन्मदाताओंमें से हैं। आपने बड़ी योग्यतासे मंत्री और प्रधानमंत्रीके पदों पर काम किया है और अब भी परिषद्के कामोंमें रुचि ले रहे हैं। आपने बड़ी योग्यतासे "चुम्बक" नामक ग्रन्थ और विद्युत् शास्त्र पर अनेक लेख लिखे। आपका परिषद्-प्रेम असीम है। हिन्दी साहित्य संसार आपके कार्य संचालन और साहित्य-सेवाके लिए सदा आभारी रहेगा।

इस समय डा० गोरख प्रसाद जी प्रधान मंत्री हैं।

मासिक पत्र (विज्ञान)

अपने उद्देश्यकी पूर्तिके मुख्य साधन अर्थात् पत्र-प्रकाशनकी ओर परिषद् का ध्यान जीवनके दूसरे ही वर्ष स्वभावतः आकर्षित हुआ। परिषद्के पहले ही अधिवेशन में प्रोफेसर नन्दकुमार तिवारी ने एक प्रस्ताव उपस्थित किया कि परिषद् हिन्दी, उर्दू अथवा दोनों भाषाओंमें एक पत्र प्रकाशित करे। स्व० रायबहादुर ज्ञानेन्द्रनाथ चक्रवर्ती ने इस प्रस्तावका समर्थन किया। अतएव इस उद्देश्यकी पूर्तिके निमित्त प्रधान मंत्री, डा० गंगानाथ झा, प्रो० रामदास गौड़ तथा ठाकुर केशवचन्द्र सिंह चौधरीकी एक उपसमिति बनादी गई।

इस उपसमिति ने यह निर्णय किया कि परिषद् स्वयं पत्रिका प्रकाशित न करे। २५ नवम्बर १९१४ के दिन प्रबन्धक समितिकी बैठकमें इस प्रस्ताव पर विचार किया गया। निश्चय हुआ कि किसी प्रकाशकको यह काम सौंप देना चाहिये। मिस्टर के० सी० भल्ला ने कुछ शर्तें इस कामके लिए लिखकर भेजी थीं। उनपर विचार हुआ और यह निश्चय हुआ कि सदस्योंसे पूछा जाय कि

(१) आगामी जनवरी (१९१५) से पत्र प्रकाशन हो या न हो और हो तो किस भाषा में।

(२) भल्ला जी की शर्तें मंजूर की जायँ या नहीं।

पत्रोंपर विचार करनेके लिए प्रो० रामदास गौड़, प्रो० हीरालाल खन्ना, डा० गंगानाथ झा तथा स्व० माननीय राय गोकुलप्रसाद बहादुरकी एक उपसमिति १९ दिसम्बर १९१४ के दिन बनायी गई, जिसकी सिफ़ारिशसे ३० जनवरी १९१५ को बैठकमें विज्ञानके प्रकाशनका काम मि० भल्लाको दिया गया गया और सम्पादनका काम परिषद् ने स्वयं अपने हाथमें रक्खा।

पत्रके प्रारंभ करनेकी पहली शर्त यह थी कि कमसे कम २५० स्थायी ग्राहक मिल जायँ। हिन्दीके प्रेमी तो शीघ्र ही २५० से अधिक मिल गये, परन्तु उर्दू-प्रेमी न मिल सके। अतएव "विज्ञान"का प्रकाशन हिन्दीमें आरम्भ हुआ।

उर्दू पत्रके विषयमें भी नई रोशनीके सम्पादकसे शर्तें तय हुई थीं पर परन्तु पर्याप्त ग्राहक न मिलनेसे काम न चल सका।

किसी वैज्ञानिक पत्रके सम्पादनकी योग्यता एक व्यक्तिमें मिलना बहुत कठिन था। परन्तु उस समय कुछ उत्साही सदस्य ऐसे थे जो वैज्ञानिक दृष्टिसे लेखों-का सम्पादन बड़ी लगन और परिश्रमसे अवैतनिक रूपसे करते थे। भाषाकी दृष्टिसे लेखोंका सम्पादन स्वर्गीय लाला सीताराम, बी० ए० तथा स्व० पं० श्रीधर पाठक करते थे।

लाला सीताराम ने कालेजके पठन-पाठन समाप्त करने पर गणित संबंधी कई ग्रन्थ स्वयं लिखे थे, और रोचक वैज्ञानिक विषयोंसे उन्हें बड़ा प्रेम था। हिन्दी-उर्दू दोनों भाषाओंके वे अच्छे ज्ञाता थे। हिन्दीके भी अच्छे कवि थे। अतएव उनका तथा पं० श्रीधर पाठकका (जो एक विख्यात कवि थे) सहयोग मिल जाना परिषद्के लिए सौभाग्यकी बात थी।

हिन्दीके विख्यात लेखकोंने इस कार्यमें हाथ बटाना शायद दुस्साहस समझा हो, अतएव यह कहना चाहिये कि नये लेखक और सम्पादक तैयार किये गये। इस देश-में और कोई वैज्ञानिक पत्रिका देशी भाषाओंमें थी भी नहीं। 'विज्ञान' का प्रकाशित करना इस देशमें एक मौलिक प्रयास था। विज्ञान विषयके विद्वान भाषासे उतने परिचित न थे और हिन्दीके लेखक विज्ञान-विषयों-से उदासीन थे। अतएव प्रोफेसर रामदास गौड़को इस कार्यके लिए उत्साही, भाषाभक्त, विज्ञान-विषयके विशेषज्ञोंसे ही काम लेना पड़ा। हर्ष इस बातका है कि जिसको जो काम दिया गया उसने वह बड़ी योग्यतासे किया। प्रोफेसर देव, डी० एन० पाल, डाक्टर सरकार, प्रोफेसर कुमारचन्द्र भट्टाचार्य, डा० मूलचन्द्र टण्डन आदि सज्जनोंने व्याख्यानों और लेखोंमें पूरी पूरी सहायता दी।

यह कहना अनुचित न होगा कि पहले दो तीन अंकों-की सामग्री प्रो० गौड़ ने बड़े परिश्रमसे एकत्रित की थी परन्तु उन्हें चक्कर आने लगेगा और वह छुट्टी लेकर पहाड़पर चले गये। उनके पीछेसे श्री राधामोहन गोकुलजीसे प्रार्थना-की गई कि आप संपादनमें प्रधान सम्पादकों की (लाला

सीताराम तथा पं० श्रीधर पाठक की) सहायता करें, परन्तु आप विज्ञान विषयसे अधिक परिचित न थे। अतएव पहला अर्थात् अप्रैल १९१५ का अंक निकल आनेके बाद ही सम्पादनमें कठिनाई उपस्थित होने लगी। सौभाग्यवश उस समय गंगाप्रसाद वाजपेयी, बी०एस-सी०, एल०एल० बी० परीक्षाके लिये पढ़ रहे थे। उन्होंने इस कार्यको सँभाला, क्योंकि श्री राधामोहन गोकुल जी दो मास काम करके ही कलकत्ता लौट गये। वाजपेयीजीने घोर परिश्रमसे काम फरवरी १९१६ तक चलाया, किन्तु परीक्षा-काल समीप आजाने पर उन्होंने असमर्थता प्रकटकी। उस समय प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव ने यह काम अपने हाथमें लिया और प्रो० ब्रजराज बी० एस-सी०, एल०एल० बी०की सहायतासे कुछ दिन काम चलाया। तदनन्तर प्रो० भार्गव ने स्वयं यह काम लगभग ८ वर्ष तक चलाया। १९२५ के अगस्त मासमें कार्याधिक्य के कारण प्रो० भार्गव ने काम छोड़ दिया तो डा० सत्यप्रकाश और प्रो० ब्रजराज ने सम्पादन करना आरम्भ किया।

प्रो० गौड़ जी यथावकाश इस कार्यमें सदैव सहायता देते रहे और उन्हींके परामर्शसे काम निरंतर चलता रहा। अन्तमें जब वह असहयोग आन्दोलनके कारण गुरुकुल और हिन्दू विश्वविद्यालय आदिसे अलग हुये तो फिर उन्होंने विज्ञानका सम्पादन-कार्य संभाला और स्वर्गारोहणके एक मास पूर्व तक यह काम बड़ी लगन और योग्यतासे करते रहे।

'विज्ञान' के जन्म और उसके संचालनकी नीतिके सूत्र-धार प्रायः २२ वर्ष तक प्रो० रामदास गौड़ ही रहे। यह उनका ऐसा काम है, जिसके लिए हिन्दी-साहित्य-जगत् सदा आभारी रहेगा। सम्पादकोंमें प्रो०गोपाल स्वरूप भार्गव और श्री सत्यप्रकाशका कार्य सराहनीय है। प्रो० भार्गव ने निरन्तर १०, ११ वर्ष तक "विज्ञान" की और "विज्ञान परिषद्" की सेवा बड़ी तन्मयतासे की। रात दिन उठते बैठते, सोते जागते उन्हें "विज्ञान" का नशा सा चढ़ा रहता था। उनके सम्पादन कालमें विज्ञानका रोचक अंग बहुत पुष्ट रहा। विज्ञानकी धाक सारे हिन्दी साहित्य जगत्में बैठ गयी। डा० सत्यप्रकाशने भी सम्पादन बड़ी तन्मयता और उत्साहसे किया और महीनों पिछड़ा हुआ विज्ञान फिर ठीक समयपर निकलने लगा। उनके सम्पादकत्वमें पाठ्य विषयोंपर बड़ा ध्यान दिया गया। आज कल जबसे प्रो० गौड़का देहावसान हो गया है और डा० गोरख प्रसादके परामर्शसे कार्य संचालन हो रहा है तबसे "विज्ञान" का तीसरा रूपान्तर हुआ है। अब उसकी सजधज निराली है, और औद्योगिक लेखोंकी प्रधानता है। आजकल औद्योगिक लेखोंका बड़ा महत्व है, अतएव विज्ञानका यह पहलू सर्वथा सराहनीय है। इधर चार पांच वर्षसे "आयुर्वेद विज्ञान" नामक पत्र विज्ञानमें लय हो गया है, जिससे अब विज्ञानमें चिकित्सा-संबंधी लेख भी अधिक रहते हैं। स्वामी हरिशरणानन्द भी सम्पादन और प्रकाशनमें पूरी सहायता देते रहे हैं। सम्पादन कार्यमें श्री सालिगराम वर्मा, स्वर्गीय गोपालनारायण सेन सिन्हा बी० ए०, बी० टी०, अध्यापक महावीर प्रसाद श्रीवास्तव बी० एस-सी०, एल० टी०, विशारद और श्री युधिष्ठिर भार्गवने भी समय समयपर सहयोग दिया है जिसके लिए हम उनके कृतज्ञ हैं।

हम यहाँ अपनी प्रान्तीय सरकारके शिक्षा विभागको धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकते क्योंकि इस विभागसे कई वर्षसे हमें "विज्ञान" प्रकाशित करनेके लिये प्रति वर्ष ६०० रुपयेकी सहायता मिल रही है, और हम शिक्षा-विभागको प्रति मास विज्ञानकी ५० प्रतियाँ दे रहे हैं।

विज्ञानके सम्पादक

अप्रेल सन् १९१५ से मार्च १९१६ तक—पं० श्रीधर पाठक तथा ला० सीताराम

अप्रेल सन् १९१६ से जूलाई १९१७ तक—किसीका नाम पत्रिकापर नहीं रहा

अगस्त १९१७ से सितम्बर १९२५ तक—प्रो० गोपाल स्वरूप भार्गव

अक्टूबर १९२५ से अगस्त १९२६ तक—किसीका नाम नहीं

सितम्बर १९२६ से जूलाई १९२७ तक—प्रो०ब्रजराज

अगस्त १९२७से सितम्बर १९३० तक—प्रो० ब्रजराज तथा डा० सत्यप्रकाश

अक्टूबर १९३०से मार्च १९३२ तक—प्रो० ब्रजराज, डा० सत्यप्रकाश और श्री युधिष्ठिर भार्गव

अप्रैल १९३२ से अप्रैल १९३३ तक—प्रो० ब्रजराज तथा डा० सत्यप्रकाश

मई १९३३ से सितम्बर १९३७ तक—प्रो० रामदास गौड़

अक्टूबर १९३७ —डा० गोरख प्रसाद

नवम्बर १९३७ से अबतक—डा० सत्यप्रकाश

इस समय डा० सत्यप्रकाश प्रधान सम्पादक हैं, और सम्पादक-मंडलमें डा० श्रीरञ्जन, डा० रामशरण दास, प्रो० श्री चरण वर्मा, श्रीरामनिवास राय, स्वामी हरिशरणानन्द और डा० गोरख प्रसाद हैं। श्री राधेलाल मेहरोत्रा प्रबन्ध सम्पादक हैं।

हमारे लेखक

सम्पादकोंके अतिरिक्त विज्ञानके लेखकोंमें श्री महाबीर प्रसाद श्रीवास्तव. ने सबसे अधिक परिश्रम किया है। गत पच्चीस वर्ष निरन्तर ही उनके लेख छपते रहे हैं। और वह भी अनमोल। उनके लेखोंके संग्रह—"गुरुदेवके साथ यात्रा" और "सूर्य सिद्धान्तका वैज्ञानिक भाष्य" के रूपमें पुस्तकाकार छप चुके हैं। अन्तिम पुस्तक बड़े अध्ययन और अध्यवसायसे लिखी गई है जिसकी जितनी प्रशंसा की जाय कम है। प्रो० गोपालस्वरूप भार्गवने भी लगभग दस वर्ष तक अनेक लेख अनेक नामोंसे लिखे। कुरैशी, रामप्रसाद, आदि नामोंसे उनके बहुतसे लेख विज्ञानमें निकले हैं। प्रो० सालगराम भार्गवके लेखोंका एक संग्रह "चुम्बक" नामसे छप चुका है। उनके विद्युत् सम्बन्धी बहुतसे लेख विज्ञानमें छप चुके हैं जो आवश्यकता पड़नेपर पुस्तकाकार छापे जा सकते हैं। श्री सालिग्राम वर्मा भी विज्ञानके लिये सन् १९२५ तक लिखते रहे। उनकी एक लेखमाला "पशु-पक्षियोंका शृङ्गार-रहस्य" पुस्तकाकार हिन्दीमें और उर्दूमें ज़ीनत वहश व तयर नामसे प्रकाशित हो चुकी है।

स्वर्गीय भरतपुर निवासी पं० गंगाशंकर पचौलीने भी बहुत लेख लिखे जो "कला", के "सुवर्णकारी" रूपमें पुस्तकाकार भी छप चुके हैं। श्री शंकरराव जोषीजीने भी अनेक लेख कृषि और वनस्पति संबन्धी लिखे जो 'वर्षा और वनस्पति' नामसे पुस्तकाकार छपे। अन्य प्रकाशकोंने भी आपके कुछ लेख पुस्तकाकार छापे।

प्रोफेसर जी० पी० अग्निहोत्रीकी एक लेख-माला 'निर्णायक' के नामसे प्रकाशित हुई। श्री अवध उपाध्यायजीने चलन समीकरणपर पूरी पुस्तक लेख रूपमें विज्ञानमें प्रकाशित की। स्व० डा० बी० के० मित्र जन्मसे बंगाली होते हुये भी विज्ञानसे बड़ी सहानुभूति रखते थे। उनके लेख भी पुस्तक रूपमें प्रकाशित हुये।

प्रो० रामदास गौड़ जी "अब्दुल्ला" आदि नामान्तरोंसे लेख लिखते रहे। स्वर्गीय गोपाल नारायण सेन सिन्हाने भी प्राकृतिक धर्म, शिक्षितोंका स्वास्थ्यव्यतिक्रम आदि लेखमालाएं लिखीं। स्वर्गीय डा० एस० पी० रायके खाद्य सम्बन्धी लेख भी बड़े प्रशंसनीय थे। डा० गोरख प्रसादके प्रख्यात ग्रन्थ फोटोग्राफीका, जो इण्डियन प्रेससे प्रकाशित हुआ है, कुछ अंश पहले "विज्ञान" में लेखमालाके रूपमें छपा था। डा० सत्यप्रकाशके लेखोंके संग्रह "कार्बनिक रसायन", "साधारण रसायन" और "बीज ज्यामिति" के नामोंसे अलग छप चुके हैं। आप अदम्य उत्साहसे काम करनेवाले योग्य पिता (अध्यापक गंगा प्रसाद एम० ए०) के योग्य पुत्र हैं और बड़ी योग्यतासे विज्ञानका सम्पादन कर चुके हैं और अब फिर कर रहे हैं।

डा० त्रिलोकी नाथ वर्माने भी अनेक चिकित्सा-संबन्धी लेख विज्ञानमें दिये। आपकी शैली बड़ी सुबोध और प्रशस्त है। आपने अपना विख्यात ग्रन्थ "हमारे शरीरकी रचना" पहले परिषद्को भेजा था, परन्तु धनाभावसे परिषद् न छाप सकी। आपने जो चिकित्सा-संबंधी साहित्यकी रचना की है वह प्रशंसनीय है।

इधर बहुत दिनोंसे पं० ओंकारनाथ शर्मा हमारे कामोंमें विशेष हाथ बँटा रहे हैं। आप यंत्र-विज्ञानके कुशल अनुभवी हैं, और आपके लेख बड़े उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं।

डा० निहालकरण सेठी, डा० डी० बी० देवधर श्री ब्रजबिहारीलाल गौड़, बाबू कृष्णदेवप्रसाद गौड़, डा० रामचन्द्र भार्गव, डा० उमाशंकर प्रसाद, डा० वा० वि० भागवत, डा० आत्माराम, स्व० श्री ब्रजबिहारी लाल दीक्षित, श्री भगवती प्रसाद श्रीवास्तव, डा० सन्तप्रसाद टण्डन, डा० रामरत्न बाजपेयी, श्रीमती रत्नकुमारी, श्रीमती कमला सद्गोपाल, श्री हरिश्चन्द्र गुप्त, श्री राधेलाल मेहरोत्रा,

और प्रयाग विश्वविद्यालयके अन्य अनेक विद्यार्थी आदिने जो विज्ञानकी सेवाकी है उसके लिये भी हम उनके आभारो हैं।

विज्ञानमें अनेक विषयोंपर लेख छप चुके हैं। इसमें अनेक ग्रंथोंके लिये पर्याप्त सामग्री मौजूद है। विज्ञानने यह सिद्धकर दिया है कि कैसा भी दुरुह वैज्ञानिक विषय क्यों न हो हिन्दी भाषामें लिखा, समझा, और समझाया जा सकता है।

"विज्ञान" ने अनेक लेखकोंके दिल खोल दिये हैं जो विविध वैज्ञानिक विषयोंपर ग्रंथ लिखनेके लिये प्रस्तुत हैं।

स्वामी हरिशरणानन्द

२ अप्रैल सन् १९३४ की कौंसिलमें परिषद्को यह सूचना मिली कि पंजाब आयुर्वैदिक फार्मेसी, अमृतसरके अध्यक्ष श्री स्वामी हरिशरणानन्दजी अपनी फार्मेसीकी सम्पत्ति एवं अपने आयुर्वेद विज्ञान नामक पत्रको परिषद्को सौंपना चाहते हैं। प्रो॰ सालगराम भार्गवने अमृतसर जाकर स्वामीजीसे परामर्श भी किया और सब परिस्थिति १५ जून १९३४की बैठकमें उपस्थित की। सौभाग्यकी बात है कि हमें श्रद्धेय स्वामीजीका सहयोग प्राप्त हो गया। यह निश्चित हुआ कि उनका पत्र आयुर्वेद-विज्ञान 'विज्ञान' में सम्मिलित कर लिया जाय और स्वामी जी विज्ञानके आयुर्वेद-विभागके सम्पादक बनाये जाँय। स्वामीजीकी फार्मेसीका गिफ्टडीड (दान पत्र) अभी तैयार नहीं हो पाया है। परिषद्के पास कोई ऐसा व्यक्ति नहीं है जो अमृतसरमें फार्मेसीका प्रबन्ध कर सके। इसलिये फार्मेसीकी देख-रेख स्वामी जी ही कर रहे हैं। स्वामीजीसे परिषद्को बराबर आर्थिक सहायता भी मिलती रही है जिसके लिये हम उनके आभारी हैं। आपके परामर्शों से भी लाभ होता रहा है।

परिषद् द्वारा प्रकाशित साहित्य

परिषद्के परिश्रमसे विज्ञानके अब तक प्रायः १५,००० पृष्ठ छप चुके हैं जिनमें प्रायः विज्ञानकी सभी शाखाओं और विषयों पर लेख छप चुके हैं। इसके अतिरिक्त परिषद्ने अनेक ग्रन्थ छापे हैं जिनकी सूची नीचे दी गई है। इसको देख कर यह कह सकते हैं कि परिषद्ने हिन्दी साहित्यके वैज्ञानिक अंगकी बड़ी सेवाकी है। यदि साहित्य सेवियोंकी कृपा बनी रही तो भविष्यमें भी इसी प्रकार परिषद् सेवा करती रहेगी। बर्न महोदयकी कृपासे परिषद्को स्व॰ पं॰ सुधाकर द्विवेदीकी समीकरण-मीमांसा नामक पुस्तकको प्रकाशित करनेके लिये प्रान्तीय सरकारसे १२०० रुपयेकी सहायता प्राप्त हुई थी। हमें आशा है कि सरकारसे साहित्य प्रकाशित करनेके लिये आगे भी बराबर सहायता मिलती रहेगी।

नीचे इन पुस्तकोंके प्रथम संस्करण प्रकाशित होनेका समय दिया गया है।

१—विज्ञान प्रवेशिका भाग १—रामदास गौड़—सालगराम भार्गव—१९१४—।)
२—विज्ञान प्रवेशिका भाग २—महाबीर प्रसाद श्रीवास्तव—१९१७—१)
३—मिफ्ताह-उल-फनून—अनु॰ सैयद मोहम्मद अली नामी—१९१५—।)
४—ताप—प्रेम वल्लभ जोषी—१९१५— ।=)
५—हरारत—अनु॰प्रो॰मेंहदी हुसेन नासिरी १९१६—।)
६—पशुपक्षियोंका शृङ्गार रहस्य—सालिग्राम वर्मा—१९१७— -)
७—केला—गंगाशंकर पचौली— १९१७— -)
८—सुवर्णकारी— " — ।)
९—चुम्बक—सालगराम भार्गव— १९१७— ।=)
१०—गुरुदेवके साथ यात्रा—अनु॰ महाबीर प्रसाद श्रीवास्तव—१९१७— ।=)
११—क्षय रोग १९१७— -)
१२—दियासलाई और फासफोरस—रामदास गौड़ १९१८— -)
१३—शिक्षितोंका स्वास्थ्य-व्यतिक्रम—गोपालनारायण सेन सिंह—१९१८— ।)
१४—पैमाइश—मुरलीधर, नन्दलाल—१९१९— १)
१५—कपास—तेजशंकर कोचक—१९२०— =)
१६—कृत्रिम काष्ठ—गंगा शंकर पचौली—१९२०— =)
१७—आलू " १९२० ।)
१८—हमारे शरीरकी कथा—बी.के.मित्र १९२०— -)॥

१९—जीनत वहश व तयर—अनु० प्रो० मेहदी हुसेन नासरी १९२१— —)
२०—मनोरञ्जक रसायन—गोपालस्वरूप भार्गव १९२३— १॥)
२१—सूर्य्य सिद्धान्त—विज्ञान भाष्य—महावीर प्रसाद श्रीवास्तव मध्यमाधिकार—१९२४— ॥≈)
स्पष्टाधिकार १९२५— ॥|)
त्रिप्रश्नाधिकार १९२७— १॥)
चन्द्रग्रहणाधिकारसे भूगोलाध्याय तक १९२९— २।)
२२—फसलके शत्रु—शंकर राव जोषी — |≈)
२३—ज्वर निदान और शुश्रुषा—बी॰के॰मित्र १९२१—।)
२४—मनुष्यका आहार—गोपीनाथ गुप्त वैद्य १९२२—१)
२५—वर्षा और वनस्पति—शंकर राव जोषी—१९२३—।)
२६—सुन्दरी मनोरमाकी करुण कथा—अनु० नवनिद्धिराय—१९२५— —)।
२८—कार्बनिक रसायन—डा०सत्यप्रकाश १९२९—२॥)
२९—वैज्ञानिक परिमाण—डा० निहालकरण सेठी डा० सत्यप्रकाश १९२९—१॥)
३०—साधारण रसायन—डा०सत्यप्रकाश १९२९—२॥)
३१—सर चन्द्रशेखर वेंकटरमन—युधिष्ठिर भार्गव १९३०— ≈)
३२—समीकरण-मीमांसा १ भाग—सुधाकर द्विवेदी १९३१— १॥)
३३— ,, २ भाग— ,, ॥≈)
३४—वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्द १ भाग—सत्यप्रकाश १९३०— ॥)
३५—निर्णायक—गोपाल केशव गर्दे और गोमती प्रसाद अग्निहोत्री— ॥)
३६—उद्भिजका आहार—एन०के० चटर्जी—१९३१—॥)
३७—रसायन इतिहास संबंधी लेख—आत्माराम— ॥|)
३८—प्रकाश रसायन—वा०वि० भागवत १९३२ १॥)
३९—डा० गणेश प्रसादका स्मारकांक — १९३५ — ४)
४०—बीजज्यामिति—सत्यप्रकाश १९३१—१।)
४१—उद्योग व्यवसायांक १९३६— १॥)
४२—फल संरक्षण—डा० गोरख प्रसाद—१९३७— १)
४३—व्यंग्य चित्रण—अनुवादक रत्नकुमारी—१९३८—१)
४४—स्व० रामदास गौड़का स्मृति अंक— १९३८— ।)

हमारा नया प्रयास

इधर जबसे डा० गोरखप्रसादजी प्रधान-मंत्री हुये हैं तबसे परिषद्‌का ध्यान औद्योगिक साहित्य निकालनेकी ओर आकर्षित हुआ है। डा० गोरखप्रसाद लोक-प्रिय वैज्ञानिक साहित्य लिखनेमें सिद्धहस्त हैं। आपको फ़ोटोग्राफी ग्रन्थपर हिन्दी साहित्य सम्मेलनसे मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिल चुका है; और आपका हिन्दुस्तानी एकेडेमीसे प्रकाशित सौर परिवार ग्रन्थ हिन्दी साहित्यके लिये गौरवकी वस्तु है। आपके प्रयत्नसे परिषद्‌की ओरसे एक सुन्दर ग्रंथ-माला निकलनी आरम्भ हुई है। अब तक इसमें दो पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। 'फलसंरक्षण' पुस्तक डा० गोरखप्रसादकी स्वयं लिखी हुई है और 'व्यंग्य-चित्रण' पुस्तक डाउस्टकी एक अति उपयोगी पुस्तकका अनुवाद है जिसे श्रीमती रत्नकुमारीने किया है। प्रो० फूलदेव सहाय वर्माकी मिट्टीके बर्तनोंके सम्बन्धमें एक पुस्तक प्रकाशित हो रही है। लकड़ीपर पॉलिश करनेके विषयपर एक पुस्तककी पांडुलिपि तैयार है और शीघ्र छपेगी। अन्य सर्वोपयोगी विषयोंपर भी पुस्तकें लिखायी जारही हैं। ये छोटे आकारकी १७५ पृष्ठकी सुन्दर सजिल्द और सचित्र पुस्तकें जनताके विशेष कामकी होंगी।

इधर डा० गोरखप्रसाद और डा० सत्यप्रकाश दोनों मिलकर एक बृहद् ग्रन्थकी तैयारी कर रहे हैं। इस ग्रंथमें दस हजार नुसखे, हुनर और तरकीबें रहेंगी, और प्रायः सभी औद्योगिक विषयोंका समावेश होगा। अभी तक 'विज्ञान'के आकारके १५० पृष्ठके लगभग छप सके हैं जिसमें अचार-मुरब्बा, आकस्मिक चिकित्सा, कला संबंधी नुसखे, कृषि, गृहनिर्माण और चमड़ा इन विषयोंका समावेश है। आगेके पृष्ठोंमें आतशबाजी तेल व इत्र, वार्निश, शीशा, साबुन, मोमबत्ती, सेल्यूलायड, रबर मंजन, फेस-क्रीम, रोशनाई, लेई, सरेस, रंग, एनामेल, कुलई, सीमेंट, घरेलू दवायें, शरबत, धुलाई, फोटोग्राफ़ी आदिके सामान सभी विषय रहेंगे। इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थके प्रकाशित होनेमें अभी कुछ समय लगेगा क्योंकि ऐसा काम धीरे धीरे ही हो सकता है।

इस कार्यमें धन भी अधिक व्यय होगा। हमें कई

प्रतिष्ठित व्यक्तियोंसे आर्थिक सहायता मिली है। स्वामी हरिशरणानन्दजीने पुष्कल सहायता दी है, पर फिर भी इस बृहद् आयोजनाके लिये अभी बहुत धन चाहिये। हमने अपनी प्रांतीय सरकारसे भी प्रार्थनाकी है। हमें विश्वास है कि सबके सहयोगसे इस कामको पूर्ण करनेमें हम सफल होंगे।

हमारी और भी बहुतसी आयोजनायें हैं जिन्हें हम उपयुक्त लेखक और धन प्राप्त करनेपर कार्य्य-रूपमें ला सकेंगे।

पारिभाषिक शब्दावली

वैज्ञानिक साहित्य अपनी भाषामें तभी लिखा जा सकता है जब कि अंग्रेजी या अन्य पाश्चात्य शब्दोंके स्थानमें उपयुक्त शब्द अपनी भाषामें मिल सकें। यह तो स्पष्ट ही है कि साधारण बोलचालकी भाषासे यह काम नहीं निकल सकता। ऐसी अवस्थामें हमारे पास दो ही मार्ग रह जाते हैं। एक तो हिन्दीमें संस्कृत, प्राकृत या अन्य भाषाओंके शब्द अपनी व्याकरणके अनुसार बनाकर ले लिये जावें। उर्दूमें यह काम फारसी, अरबी, तुर्की आदिके शब्दोंसे लिया जा सकता है। हिन्दीमें संस्कृतके शब्द लेनेका लाभ यह भी होगा कि इस देशकी सब प्रांतीय भाषाओंमें ये शब्द अपनाये जा सकेंगे। दूसरा मार्ग पश्चिमके शब्दोंको ज्योंका त्यों अपना लेना है। विज्ञान परिषद्ने हिन्दी और उर्दूमें पहले मार्गको अच्छा समझा है। इसका कारण यह है कि अन्य शास्त्रीय विषयोंमें भी पहले ही मार्गसे काम लिया गया है, जैसे दर्शन, समाज-शास्त्र, राजनीति, अर्थशास्त्र, व्याकरण, भाषा विज्ञान आदि विषयों में। दूसरा कारण यह है कि हमें तो वैज्ञानिक साहित्य उन लोगोंके लिये बनाना है जो अंग्रेजी बिलकुल नहीं जानते हैं। अपनी भाषाओंके शब्दों द्वारा भाव अधिक सुगमतासे ऐसे लोगोंकी समझमें आ जावेंगे। हमारा दृष्टिकोण तो यह होना चाहिये कि साधारण वैज्ञानिक साहित्यको समझनेके लिये अंग्रेजी पढ़ना आवश्यक न हो जाय।

हमारे बनाये गये शब्द अपने भावोंके पूरे पूरे द्योतक होते हैं, अतः उनसे अभिप्राय आसानीसे समझमें आ जाता है। यदि पाश्चात्य भाषाओंके शब्द अपनाये जायँगे, तो इस सुविधासे हम लाभ न उठा सकेंगे।

दूसरे मार्गके विरुद्ध हम स्व० पं० लक्ष्मीशंकर मिश्रके वे शब्द भी दोहरा सकते हैं जो उन्होंने सन् १८७३में अपनी त्रिकोणमितिकी भूमिकामें लिखे थे—

"However, it appears probable that if one were to advocate the use of English Terminology, after a lapse of time the English names would be so changed that one who had not watched the gradual degeneracy of the terms would never be able to recognise them. Ultimately, the fancied advantage might prove chimerical and the scientific Hindi might contain a host of corrupted English terms moulded after the native fashion."

विज्ञान परिषद् गत २५ वर्षोंसे अपनी इसी नीतिपर शब्दावली बनाता आरहा है। हमारे बनाये हुये सैकड़ों शब्द अब तो इतने प्रचलित हो गये हैं, कि उनमें बनावटी होनेकी गन्ध भी नहीं आती और लोग बड़ी सुविधासे उन्हें व्यवहारमें ला रहे हैं। रसायनके समीकरण और बीजगणितमें हम अंग्रेजी लिपिके अक्षर प्रयोग करनेके पक्षमें भी नहीं रहे हैं। अंग्रेजी लिपिके प्रयोग करनेका परिणाम तो यह होगा कि व्यर्थ ही हमारे देशवासियोंको दो दो लिपियोंको सीखना पड़ेगा, प्रेसोंमें दो लिपियोंके अक्षरोंकी आवश्यकता पड़ेगी, किसीके यहाँ एक टाइप-राइटरसे काम न चल सकेगा। इसी प्रकारकी अन्य अनेक अड़चनें आ जायँगी।

विज्ञान-परिषद्का उद्देश्य यह रहा है कि साहित्यकी वृद्धिके साथ-साथ ही पारिभाषिक शब्द-समूह बनें। जब तक साहित्यमें प्रयुक्त होकर शब्द मँज नहीं जाते हैं तब तक उनकी उपयोगिताकी जांच नहीं हो सकती है। इसीलिये हमने कोरा शब्द-कोष बनानेका कभी प्रयत्न नहीं किया। जो शब्द हमारे ग्रन्थों और लेखोंमें आ गये हैं, वे अपनी उपयोगिताके स्वयं द्योतक हैं। ऐसे ही शब्दोंका एक संग्रह परिषद् ने 'वैज्ञानिक पारिभाषिक

शब्द' (डा० सत्यप्रकाश द्वारा सम्पादित) प्रकाशित किया है, और साहित्यमें प्रयुक्त अन्य शब्दोंका आगे भी और संग्रह निकालनेका विचार है।

उपसंहार

गत पच्चीस वर्षोंमें जिन परिस्थितियोंमें रह कर विज्ञान परिषद्ने अपना काम चलाया है, उनको देखते हुए हम अपने कामपर सन्तोष प्रकट कर सकते हैं। हिन्दी देशकी राष्ट्र भाषा है और हमारी समस्त शिक्षा इसी भाषामें होनी चाहिये—इस बातको आज सब मान रहे हैं। पर २५ वर्ष पूर्व परिस्थितियाँ इसके कुछ प्रतिकूल थीं। स्कूलोंमें अंग्रेज़ी-भाषा शिक्षाका माध्यम थी। बड़े बड़े घरानोंमें हिन्दीकी पुस्तकें पढ़ा जाना या उनका मोल लेना अप्रतिष्ठित समझा जाता था। पर अब वे दिन नहीं रहे।

विज्ञान परिषद्ने आरंभमें जो छोटी छोटी पुस्तकें निकालीं, वे उस समयके लिए बहुत बड़ी चीज़ थीं। सन्तोषकी बात है कि ऐसी पुस्तकें तो अब अन्य प्रकाशक भी छाप रहे हैं। परिषद् का काम अपने समयसे आगेका है। वह आगेके लिए क्षेत्र तैयार करता है। हमें अभी बहुत काम करना है। देशमें सभी इस समय हमारे कामका महत्व समझते हैं। देशके अग्रगण्य व्यक्तियों के जो शुभ-सन्देश प्राप्त हुए हैं उनसे स्पष्ट है कि देश भरको हमारे साथ सहानुभूति है। युक्त-प्रान्तीय सरकार सदासे हमारी सहायता करती आयी है, और अबतो अपने ही व्यक्तियों-के हाथमें राष्ट्रका संचालन देख कर हमें और भी विश्वास है कि हमें पूरी सहायता मिलेगी और हम भी अपने कार्यसे राष्ट्रकी सेवा कर सकेंगे। यह स्मरण रखना चाहिये कि अब तक हमने जो कार्य किया है उसके लिये न तो हमारे पास कोई स्थायी कोष था, न हमें कभी कोई बड़ा दान ही मिला। हमारी पुस्तकें भी अपने समयसे आगे-की थीं, इस लिए उनकी बिक्रीमें लाभ तो अलग, सदा घाटा ही रहा। लेखकों और ग्रन्थकारोंने हमपर कृपा की और कभी कोई पारिश्रमिक नहीं लिया, सम्पादकोंने निस्स्वार्थ काम किया, और इस सबके भरोसेपर ही हम इतना काम करनेमें समर्थ हुये हैं। हमें आशा है कि आगेके पच्चीस वर्षोंमें और भी अधिक सेवा करनेका अवसर मिलेगा।

विज्ञान-परिषद्का क्रमबद्ध इतिहास

[ले०—डा० सत्यप्रकाश, डी० एस-सी०]

परिषद्का आरंभ बड़े उत्साहसे किया गया। डा० सर सुन्दरलालके प्रयत्नसे इसको गण्यमान व्यक्तियोंका सहयोग प्राप्त होता रहा। ६ दिसम्बर १९१५को आन-रेबिल श्री आर० बर्न, आइ० सी० एस०के सभापतित्वमें परिषद्का दूसरा अधिवेशन मनाया गया और १८ नवम्बर १९१६के वार्षिक अधिवेशनमें प्रान्तके लफटेनेण्ट गवर्नर सर जेम्स मेस्टन ने सभापतिका आसन ग्रहण किया। माननीय श्री चिन्तामणिजीके शिक्षामंत्रित्वके समयसे परिषद्को प्रांतीय सरकारसे ६००) वार्षिककी सहायता विज्ञानके प्रकाशनके लिये मिलती रही। स्व० पं० सुधाकर द्विवेदीकी समीकरण मीमांसाके प्रकाशनार्थ परिषद्को उक्त माननीय बर्नमहोदयके प्रयत्न द्वारा १२५०) मिले। इधर नयी कांग्रेसी सरकारके समयमें हमें वैसे तो कोई सहायता प्राप्त करनेमें सफलता अभी तक नहीं हुई, पर उसकी पुस्तकालय-सम्बन्धी नवीन योजनाके कारण इस वर्ष हमारी १००० रुपयेके लगभगकी पुस्तकें खरीद ली गई हैं। और भी सहायता मिलनेकी हमें आशा है।

सन् १९२०से सन् १९२५ तकका समय परिषद्के लिये विशेष चिन्ताजनक रहा। विज्ञान बहुत पिछड़ गया। कई बार बन्द कर देनेका, पृष्ठोंको घटा देनेका अथवा अन्य प्रकाशकोंको सौंप देनेका विचार होने लगा। यह समय हमारे देशमें राज्यक्रांतिका समय कहा जाना चाहिये। विज्ञान तो राष्ट्र प्रेमकी भावनासे ही निकाला गया था, और स्वाभाविक था कि जब राष्ट्रीय व्यक्तियों-का ध्यान अन्य ओर आकर्षित हो जाय, तो 'विज्ञान' के प्रति जनताकी रुचि कम हो। पर विज्ञान-परिषद्का वह परीक्षाकाल किसी प्रकार व्यतीत हो गया। सन् १९२७-२८से विज्ञान फिर समयपर निकलने लगा। गत तीन वर्षोंसे परिषद्के फिर आशाजनक दिन आ गये

हैं; और इस रजत-जयन्तीके शुभोत्सवके अवसरपर ईश्वरकी कृपासे हम इतने समर्थ हुये हैं कि हम परिषद्‌के वृत्तांतको बिना किसी निराशाकी झलकके प्रस्तुत कर रहे हैं।

यहाँ हम संक्षेपमें तिथि-क्रमसे परिषद्‌के अधिवेशनों-की कार्यवाहीका वर्णन दे रहे हैं। यह विवरण परिषद्‌की कापियोंके आधारपर दिया जा रहा है। तीन कापियाँ या रजिस्टर हमारे पास इस समय विद्यमान हैं—

(१) पहली मोटी कापीमें २ नवम्बर १९१४की 'फर्स्ट ओरडिनेरी मीटिंग'से लेकर २३ जनवरी १९१८की 'एक्स्ट्रा-ओरडिनेरी मीटिंग' (जिसमें डा० सर सुन्दर-लालकी मृत्युपर संवेदना प्रकटकी गई हैं) तकका हाल है। इस कापीके बाद वाली कापी अप्राप्य है।

(२) दूसरी कापीमें १० अप्रेल १९२५की कौंसिल-की मीटिंगसे लेकर २४ अप्रेल १९३५ तककी मीटिंगोंका वृत्तान्त है।

(३) तीसरे रजिस्टरमें १२ सितम्बर १९३५से अब तकके अधिवेशनोंका विवरण है। अभी यह रजिस्टर खाली है और इसमें आगेके भी विवरण लिखे जावेंगे।

विज्ञानमें यदाकदा प्रकाशित विवरणों और अन्य प्राप्य पत्रोंकी भी सहायता ली गई है। खेद है कि १९१८से १९२५के अधिवेशनोंके क्रमबद्ध विवरण हमें प्राप्त न हो सके।

२ नवम्बर १९१४—डा० गंगानाथ झाके मकानपर उनके सभापतित्वमें, ४ बजे सायंकाल—परिषद्‌का पहला सामान्य अधिवेशन। उपस्थित व्यक्ति—सर्व श्री ला० सीताराम, मोहम्मद अली नामी, शान्तिप्रसाद अग्रवाल, डी० एन० पाल, अमरनाथ झा, राय बहादुर शिवप्रसाद, निहाल करण सेठी, छित्तरमल सगोनी, रामदास गौड़ गोपालस्वरूप भार्गव, हीरालाल खन्ना, सालगराम भार्गव। कुछ व्यक्ति फेलो और एसोशियेट नियुक्त हुये।

१४ नवंबर १९१४—डा० झाके स्थानपर उनके सभापतित्वमें ३-३० बजे सायंकाल कौंसिलकी प्रथम बैठक। उपस्थिति—डा० झा, डी० एन० पाल, रामदास गौड़, सालगराम भार्गव। संपादन समितिकी नियुक्ति—प्रधान सं० लाला सीताराम; अन्य संपादक—सालगराम भार्गव और डी० एन० पाल (भौतिक); रामदास गौड़, ब्रज-राज बहादु[illegible] गणित-ज्योतिष); रामशरण निगम, नन्द-कुमार तिवारी, शा[illegible]त प्रसाद अग्रवाल (जीव विज्ञान); ए० जी० शिरीफ, अली नामी (भाषा विज्ञान); गंगानाथ झा, एच० आर० दिवेकर (मनोविज्ञान, इतिहास)

निश्चित हुआ कि सोसायटीकी प्रोसीडिंग अंग्रेजीमें लिखी जायं।

२१ नवम्बर १९१४—सतनामें शारदाप्रसाद द्वारा 'अणु और सौर जगत्‌में समानता' विषयपर हिन्दीमें व्याख्यान।

१८ नवम्बर १९१४—म्योर कालेजमें ११ बजे परिषद्‌का प्रथम वार्षिक अधिवेशन। एस० सी० देवका 'कम्बश्चन'पर व्याख्यान।

२५ नवम्बर १९१४—कौंसिलकी बैठक—डा० झा सभापति—उपसमितिका परामर्श था कि परिषद् स्वयं वैज्ञानिक पत्र प्रकाशित करे, पर कौंसिल ने उचित समझा कि कोई और प्रकाशक इस कामको ले। इस संबंधमें कर्मचन्द्र भल्लाकी शर्तोंपर विचार।

१६ दिसम्बर १९१४—कौंसिलकी मीटिंग। रायबहादुर गोकुल प्रसाद, गंगानाथ झा, हीरालाल खन्ना और रामदास गौड़ (संयोजक) की एक उपसमिति पत्रिका-प्रकाशन-सम्बन्धमें बनी।

१९ दिसम्बर १९१४—म्योर कालेजमें सर सुन्दर-लालके सभापतित्वमें परिषद्‌का द्वितीय सामान्य अधिवेशन। सालगराम भार्गवका घर्षण विद्युत्‌पर व्याख्यान।

३० दिसम्बर १९१४—वायु और वायव्योंपर सतना-में दुर्गादत्त जोशीका व्याख्यान।

१ जनवरी १९१५—'कार्बन और उसका उपयोग'पर सतनामें जोशीका व्याख्यान। रामदास गौड़के नार्मल स्कूलमें दो व्याख्यान।

३० जनवरी १९१५—कौंसिलकी मीटिंग—श्री कृष्ण जोशी सभापति। प्यारेलाल कैसरवानी आयव्यय निरोक्षक नियुक्त हुये। के० सी० भल्ला ४८ पेजकी पत्रिका प्रकाशित करें, प्रतिमास, और परिषद् सम्पादन-

हैं; और इस रजत-जयन्तीके शुभोत्सवके अवसरपर ईश्वरकी कृपासे हम इतने समर्थ हुये हैं कि हम परिषद्‌के वृत्तांतको बिना किसी निराशाकी झलकके प्रस्तुत कर रहे हैं।

यहाँ हम संक्षेपमें तिथि-क्रमसे परिषद्‌के अधिवेशनों की कार्यवाहीका वर्णन दे रहे हैं। यह विवरण परिषद्‌की कापियोंके आधारपर दिया जा रहा है। तीन कापियाँ या रजिस्टर हमारे पास इस समय विद्यमान हैं—

(१) पहली मोटी कापीमें २ नवम्बर १९१४की 'फर्स्ट ओरडिनेरी मीटिंग'से लेकर २३ जनवरी १९१८की 'एक्सट्रा-ओरडिनेरी मीटिंग' (जिसमें डा० सर सुन्दरलालकी मृत्युपर संवेदना प्रकटकी गई है) तकका हाल है। इस कापीके बाद वाली कापी अप्राप्य है।

(२) दूसरी कापीमें १० अप्रेल १९२५की कौंसिलकी मीटिंगसे लेकर २४ अप्रेल १९३५ तककी मीटिंगोंका वृत्तान्त है।

(३) तीसरे रजिस्टरमें १२ सितम्बर १९३५से अब तकके अधिवेशनोंका विवरण है। अभी यह रजिस्टर खाली है और इसमें आगेके भी विवरण लिखे जावेंगे।

विज्ञानमें यदाकदा प्रकाशित विवरणों और अन्य प्राप्य पत्रोंकी भी सहायता ली गई है। खेद है कि १९१८से १९२५के अधिवेशनोंके क्रमबद्ध विवरण हमें प्राप्त न हो सके।

२ नवम्बर १९१४—डा० गंगानाथ झाके मकानपर उनके सभापतित्वमें, ४ बजे सायंकाल—परिषद्‌का पहला सामान्य अधिवेशन। उपस्थित व्यक्ति—सर्व श्री ला० सीताराम, मोहम्मद अली नामी, शान्तिप्रसाद अग्रवाल, डी० एन० पाल, अमरनाथ झा, राय बहादुर शिवप्रसाद, निहाल करण सेठी, छित्तरमल सगोनी, रामदास गौड़ गोपालस्वरूप भार्गव, हीरालाल खन्ना, सालगराम भार्गव। कुछ व्यक्ति फेलो और एसोशियेट नियुक्त हुये।

१४ नवंबर १९१४—डा० झाके स्थानपर उनके सभापतित्वमें ३-३० बजे सायंकाल कौंसिलकी प्रथम बैठक। उपस्थिति—डा० झा, डी० एन० पाल, रामदास गौड़, सालगराम भार्गव। संपादन समितिकी नियुक्ति—प्रधान सं० लाला सीताराम; अन्य संपादक—सालगराम भार्गव और डी० एन० पाल (भौतिक); रामदास गौड़, ब्रजराज बहादु[illegible] गणित-ज्योतिष); रामशरण निगम, नन्दकुमार तिवारी, शा[illegible]त प्रसाद अग्रवाल (जीव विज्ञान); ए० जी० शिराफ, अली नामी (भाषा विज्ञान); गंगानाथ झा, एच० आर० दिवेकर (मनोविज्ञान, इतिहास)

निश्चित हुआ कि सोसायटीकी प्रोसीडिंग अंग्रेजीमें लिखी जायं।

२१ नवम्बर १९१४—सतनामें शारदाप्रसाद द्वारा 'अणु और सौर जगत्‌में समानता' विषयपर हिन्दीमें व्याख्यान।

१५ नवम्बर १९१४—म्योर कालेजमें ११ बजे परिषद्‌का प्रथम वार्षिक अधिवेशन। एस० सी० देवका 'कम्बवचन'पर व्याख्यान।

२५ नवम्बर १९१४—कौंसिलकी बैठक—डा० झा सभापति—उपसमितिका परामर्श था कि परिषद् स्वयं वैज्ञानिक पत्र प्रकाशित करे, पर कौंसिल ने उचित समझा कि कोई और प्रकाशक इस कामको ले। इस संबंधमें कर्मचन्द्र भल्लाकी शर्तोंपर विचार।

१६ दिसम्बर १९१४—कौंसिलकी मीटिंग। रायबहादुर गोकुल प्रसाद, गंगानाथ झा, हीरालाल खन्ना और रामदास गौड़ (संयोजक) की एक उपसमिति पत्रिका-प्रकाशन-सम्बन्धमें बनी।

१६ दिसम्बर १९१४—म्योर कालेजमें सर सुन्दरलालके सभापतित्वमें परिषद्‌का द्वितीय सामान्य अधिवेशन। सालगराम भार्गवका घर्षण विद्युत्‌पर व्याख्यान।

३० दिसम्बर १९१४—वायु और वायव्योंपर सतनामें दुर्गादत्त जोशीका व्याख्यान।

१ जनवरी १९१५—'कार्बन और उसका उपयोग'पर सतनामें जोशीका व्याख्यान। रामदास गौड़के नार्मल स्कूलमें दो व्याख्यान।

३० जनवरी १९१५—कौंसिलकी मीटिंग—श्री कृष्ण जोशी सभापति। प्यारेलाल कैसरवानी आयव्यय निरीक्षक नियुक्त हुये। के० सी० भल्ला ४८ पेजकी पत्रिका प्रकाशित करें, प्रतिमास, और परिषद् सम्पादन-

का भार ले और २५० ग्राहक दिलाये। ३) वार्षिक मूल्य हो।

३० जनवरी १९१५—परिषद्का साधारण अधिवेशन पं० दुर्गादत्त जोशीका गैसोंके इकट्ठा करनेपर व्याख्यान।

२७ फर्वरी १९१५—गोपाल स्वरूप भार्गवका व्याख्यान—'कर्त्ता और संहारक मनुष्य"

६ मार्च १९१५—कौन्सिलका अधिवेशन। परिषद्के प्रकाशनमें सहायता देनेके लिये ५०) मासिकपर कोई नियुक्त किया जाय। विज्ञान प्रवेशिकाका उर्दू संस्करण ला० रामनारायण लालको दिया जाय—रायल्टीपर। सम्पादन-समितियाँ तोड़ दी जायं।

२७ मार्च १९१५—कौंसिलकी बैठक। राधामोहन गोकुल जी सभापति। हिसाब पास। साधारण अधिवेशन—रामदास गौड़का रसायनके चमत्कारपर व्याख्यान।

३१ जुलाई १९१५—कौंसिलकी बैठक—लाला सीताराम सभापति। साधारण अधिवेशन—पुरुषोत्तमदास टंडन भी उपस्थित। सालगराम भार्गवका कम्यूनिकेशनकी सुविधाओंपर व्याख्यान।

२८ अगस्त १९१५—कौंसिलकी बैठक—सैयद मोहम्मद अली नामी सभापति। आर० एस० निगमका व्याख्यान—"प्राचीन दानव"

२५ सितम्बर १९१५—कौंसिलकी बैठक—डा० झा सभापति। सन् १९१५-१६के लिये रामदास गौड़के स्थानमें एस० सी० देव प्रधान मंत्री बनाये जायं। और सालगराम भार्गवके स्थानमें गोपालस्वरूप भार्गव मंत्री। ब्रजराज कोषाध्यक्ष हों (गो० स्व० भार्गवके स्थानमें); डा० सुन्दरलाल सभापति रहें। उपसभापति—गंगानाथ झा, मदनमोहन मालवीय, फ्रीमेण्टल, एनी बीसेंट, रामपालसिंह।

६ दिसम्बर १९१५—द्वितीय वार्षिक अधिवेशन—माननीय आर० बर्न सभापति। डा० झाका 'प्राचीन भारतमें गृह निर्माण और स्वास्थ्य विधान'पर व्याख्यान।

३० अक्टूबर १९१५—साधारण अधिवेशन—डी० एन० पालका व्याख्यान—'स्टीम इंजिन'

२९ जनवरी १९१६—कौंसिलकी मीटिंग। तापके उर्दू संस्करणपर विचार। साधारण अधिवेशन एस० सी० देव सभापति। प्रभुरामका व्याख्यान।

४ मार्च १९१६—काउन्सिलकी बैठक—डा० झा सभापति। विज्ञान प्रवेशिकाका दूसरा संस्करण निकले। "विज्ञान"का उर्दू संस्करण निकालनेके संबंधमें रामदास गौड़ और सै० मो० अली नामीकी उपसमिति।

डा० मूलचन्द्र टंडनका 'शरीरके विविध अंगोंके उपयोग'पर व्याख्यान।

२५ मार्च १९१६—कौंसिलकी मीटिंग—रामदास गौड़ सभापति—मिस्टर भल्लाके साथ कठिनाइयोंके संबन्धमें उग्र विवाद। इस संबन्धमें गौड़, डा० झा, भार्गव, हीरालाल खन्नाकी उपसमिति।

२ अप्रैल १९१६—कौंसिलकी बैठक—डा० झाके घर पर। विज्ञानके उर्दू संस्करणपर विचार। पारिभाषिक शब्दोंपर विचार। धनाभावके कारण डा० त्रिलोकीनाथकी पुस्तक छापनेमें असमर्थता।

६ अप्रैल १९१६—कौंसिलकी बैठक—निश्चय हुआ कि भल्ला जीके हाथसे विज्ञानका प्रकाशन परिषद् स्वयं ले ले।

११—अप्रैल १९१६—कौंसिल। भल्लाको धन्यवाद दिया गया और विज्ञान परिषद्ने 'विज्ञान' ले लिया। डी० पी० आई०को विज्ञानकी प्रतियाँ विभागमें वितरणार्थ मोल लेनेको लिखा जाय।

५ अगस्त १९१६—कौंसिल—हरारत और विज्ञान प्रवेशिका भाग २के प्रकाशनकी स्वीकृति।

२५ मार्च १९१६—गौड़ जीका व्याख्यान—वायुयान पर।

५ अगस्त १९१६—सालगराम भार्गवका व्याख्यान 'मैग्नीफाइंग अवर सेन्सेज' पर।

२६ अगस्त १९१६—कौंसिल—गोपालस्वरूप भार्गव और ब्रजराज संपादन कार्य्य देखें और प्रो० नासरी कोषका कार्य। सीताराम मंत्रीकी सहायता करें।

१ सितम्बर १९१६—डी० एन० पालका व्याख्यान—"लहर और तरंग"- मेहदी हसन नासरी सभापति।

२३ सितम्बर १९१६—कौन्सिल। गोपाल स्वरूपके

स्थानमें सालगराम मंत्री हों। वार्षिक वृत्तान्त और निर्वाचन विषय।

डी० डी० जोशीका फोटोग्राफीपर निबन्ध।

२४ अक्टूबर १९१६—कौन्सिल—बजट—आय १०८३—०-०, व्यय १६६६—०—०। साधारण अधिवेशन—मदनमोहन मालवीय और डा० गणेश प्रसाद आनरेरी फेलो बनाये जायं।—डा० ए. पी. सरकारका 'रंगीन फोटो ग्राफी' पर व्याख्यान।

१८ नवम्बर १९१६—वार्षिक अधिवेशन—सर जेम्स मेस्टन सभापति—डा० गणेश प्रसादका व्याख्यान—'गणित संबन्धी अन्वेषण'।

२ दिसम्बर १९१६—कौन्सिल-डा० झाके घरपर—नागरी प्रचारिणी सभाके वैज्ञानिक कोषका संशोधन परिषद् कर सकता है यदि ३—५ वर्षों तक ५००) वार्षिककी सहायता मिले। 'नई रोशनी' के व्यवस्थापक की शर्तें मंजूर हुईं और उर्दू पत्रिकाके नामके लिए मेहदी-हसन नासरी योग दें। निश्चय हुआ कि गोपालस्वरूप भार्गव विज्ञानका सम्पादन करें।

१६ जनवरी १९१७—कौन्सिल—गोमती प्रसाद अग्निहोत्री सभापति व्याख्यानोंकी आयोजना। काशी नागरी प्रचारिणी सभाके कोष संशोधन पर विचार करनेके लिये डा० झा, बा० श्यामसुन्दरदास और सालगराम भार्गव की उपसमिति। गौड़ जी के प्रस्ताव 'परिषद्की कार्यवाही वर्नाक्यूलरमें हो' पर निश्चित हुआ कि यथाशक्य यह व्यवहारमें लाया जाय। 'पशु पक्षिओंके शृंगार रहस्य' का उर्दू अनुवाद प्रकाशित हो।

साधारण अधिवेशन—डा० कर्म नारायण बाहलका वंश परम्परापर व्याख्यान।

२४ फरवरी १९१७ कौंसिल—प्रकाशन समिति—गोपालस्वरूप भार्गव, ब्रजराज, सुदर्शनाचार्य्य, मेहदी हसन नासरी, वहीदयार खाँ, और मोहम्मद मेहदीकी बनी। सोसायटी फार प्रोमोटिंग सायंटिफिक नालेजके मंत्रीके पत्र पर विचार करनेके लिये मंत्रीको पत्र व्यवहारका अधिकार दिया गया। अधिवेशन—डा० सुन्दर लाल जी और जगदीश चन्द्र वसुको 'सर' की उपाधि पर बधाई। गोपालस्वरूप भार्गवका 'नमककी खानों' पर व्याख्यान।

३१ मार्च १९१७ कौन्सिल—डा० झा के घर पर—आयव्ययका हिसाब स्वीकार। आय १९०९ ||=); व्यय १५७९=)॥।

गोपालस्वरूप भार्गवकाका २५ मार्च १९१७ का पत्र कि वे सम्पादन कार्य करनेमें असमर्थ हैं। उनके स्थान पर ब्रजराज की नियुक्ति। S. P. S. K. के सहयोगकी स्वीकृति।

१४ अगस्त १९१७- कौन्सिलकी विशेष बैठक—डा० झाके घर पर। हिसाब पास। प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव 'विज्ञान' के अवैतनिक सम्पादक निश्चित हुए। सम्पादक-को अधिकार दिया गया कि प्रति मास २५) तक प्रूफ संशोधन और लेखोंका पारिश्रमिक दें। तापका दूसरा संस्करण निकाला जाय।

२५ अगस्त १९१७—साधारण अधिवेशन—डा० ई० जी० हिलकी मृत्यु पर संवेदना। 'बिजलीकी रोशनी' पर डी० एन० पालका व्याख्यान।

२२ सितम्बर १९१७—कौन्सिल—एस. सी. देव सभापति। निश्चय हुआ कि आगेके वर्षके लिये सर राजा रामपाल सिंह परिषद् के सभापति हों। ब्रजराजके स्थान में डी. एन. पाल कोषाध्यक्ष, राजा आबूजफर उपसभापति।

एस. सी. देव का क्लोरीन पर व्याख्यान।

१० नवम्बर १९१७—परिषदका चौथा वार्षिक अधिवेशन। प्रो० एन. सी. नागका 'प्राचीन और अर्वाचीन रसायन' पर व्याख्यान।

१३ अक्टूबर १९१७—कौन्सिल—डा० झा के सभापतित्वमें—निश्चय हुआ कि परिषदका वर्ष ३० सितम्बर को समाप्त हुआ करे और १ अक्टूबरसे आरंभ। सन् १९१७—१८ का बजट आय—१७२५), व्यय १७६५)

डी. एन. सिंहका 'तैल' पर व्याख्यान

१ दिसम्बर १९१७—कौंसिल—व्याख्यानोंकी आयोजना—सैयद अली नामी सभापति। केशव अनन्त पटवर्धनका व्याख्यान—'पौधोंका भोजन'।

२६ जनवरी १९१८—कौन्सिल—सैयद अली नामी सभापति। जनतासे धनकी अपील की जाय।

पी. दास का 'कोयले' पर व्याख्यान

२३ जनवरी १९१८—सर सुन्दर लाल जीकी मृत्युपर संवेदना प्रकाशनार्थ विशेष अधिवेशन।

३० अगस्त १९१९—साधारण अधिवेशन प्रो० सतीशचन्द्र देवका व्याख्यान—'गन्धकका तेज़ाब किस प्रकार बनाया जाता है'।

२२ नवम्बर १९१९—वार्षिक अधिवेशन—राजा रामपाल सिंह सभापति—रामदास गौड़का व्याख्यान—"वैज्ञानिक युगान्तर"। सभापतिका भाषण विज्ञान १०, पृष्ठ ६२ पर देखिये।

वार्षिक वृत्तान्त—विज्ञानका संपादन गोपालस्वरूप भार्गव करते हैं. युक्त प्रान्त और मध्यप्रदेशके डायरेक्टरोंने पुस्तकालयोंके लिये विज्ञान उपयुक्त विवेचित किया। उर्दू भाषामें विज्ञान प्रकाशित करनेका प्रयत्न असफल रहा। अब तककी प्रकाशित पुस्तकें—विज्ञान प्रवेशिका भाग १, २; ताप; पशु-पक्षियोंका श्रृंगार रहस्य; केला; चुम्बक; गुरुदेवके साथ यात्रा; फास्फोरस और दियासलाई; क्षयरोग; सुवर्णकारी, शिक्षितोंका स्वास्थ्य व्यतिक्रम; पैमाइश; मिफताह उलफनून; हरारत; जीनत वहश व तयर। गत पांच वर्षमें ५००० पुस्तकें बिकीं। साहित्य सम्मेलनकी परीक्षाओंके पाठ्य क्रममें कई स्वीकृत थीं, इस लिए बिक्रीमें सहायता मिली। व्याख्यानोंके लिए परिषद्के पास निजी मैजिक लालटेन है और १५०के लगभग स्लाइड।

जूनसे अगस्त १९२१—इन विज्ञानोंके तीसरे कवर पृष्ठ पर दी गई सूचीके अनुसार परिषद् के अधिकारी ये थे:—सभापति—जस्टिस मुंशी गोकुल प्रसाद; उपसभापति—डा० झा, महामना मालवीय, फ्रीमेण्टल, एनीबीसेंट, पुरोहित गोपीनाथ, देवेन्द्र नाथ पाल; प्रधान मंत्री—ला० सीताराम, एस. सी. देव; मंत्री—सालगराम भार्गव, चुन्नीलाल साहनी; कोषाध्यक्ष—ब्रजराज।

हिसाब १ अक्टूबर १९२० से ३० सितम्बर २१ तक—आय—सभ्योंका चन्दा ५२५), पुस्तकोंकी बिक्री ३६७), अन्य १३०४।-); खातोंके हिसाबमें २२८॥।≤) गत वर्षका शेष ७०६॥।≈)॥; ३१३३॥।)॥। व्यय २८०८।-)॥ (देखो विज्ञान दिसम्बर १९२१)।

१० अप्रेल १९२५—परिषद्के प्रधान मंत्री एस. सी. देवके घरपर—कौंसिल—मंत्रीने कहा कि अक्टूबर १९२३ से सितम्बर १९२४ तक कोई काम नहीं हुआ, न कौंसिलकी मीटिंग हुई और न व्याख्यान। विज्ञान ६ मास पिछड़ गया है। इस समय तक सितम्बर १९२४ वाला अंक निकला है। विज्ञान-प्रवेशिका (२), स्वर्णकारी, चुम्बक, और क्षयरोग के दूसरे संस्करण हुये हैं, मनोरंजक रसायन, और सूर्य्य सिद्धान्त (१) छपे हैं। ३० सितम्बर १९२४ तकका हिसाब पास।

इंप्रूवमेंट ट्रस्ट ने ज़मीनके तीन चौथाई दाम १७८८ रुपये शीघ्र मांगे हैं। इस सम्बन्धमें एक डेपुटेशन पं० कन्हैया लाल, डा० धर, प्रो० देव और सालगराम भार्गव का बनाया गया जो पं० बलदेवराम दवेसे मिले, जो ज़मीनका दाम माफ़ करनेके लिये कहे, अथवा क्रय-मूल्य पर परिषद पर देनेको कहे। यह डेपुटेशन शिक्षा-मंत्री, डिस्ट्रिक्ट और म्यूनिसिपल बोर्डसे भी आर्थिक सहायता देनेको कहे जिससे परिषद् का भवन बन जाय। परिषद् की यह जमीन क्रास्थवेट रोडपर हिन्दी साहित्य सम्मेलनके निकट है।

विज्ञानको ठीक समय पर निकालनेका प्रबन्ध किया जाय। गोपालस्वरूप भार्गव ने कहा कि उनके पास संपादनका समय नहीं है। कोई और मार्ग न दिखाई पड़ने पर मंत्रियों पर विज्ञान निकालने का भार सौंपा गया।

२९ अप्रेल १९२५—कौंसिल—डा० ए. पी. सरकारकी मृत्युपर संवेदना। २९ अगस्त १९२५ तक का हिसाब पास। सी. वाई. चिन्तामणिके स्थानमें शिवप्रसाद गुप्त परिषद्के सभापति बनाये जायं। बा० महावीर प्रसाद श्रीवास्तव को परिषदकी अमूल्य सेवाओं और उनके साहित्यक कार्यके उपलक्षमें परिषदका आनरेरी जीवन-सदस्य बनाया जाय। परिषद्के नियमोंमें 'एसोशियेट' शब्द अलग कर दिया जाय। कुछ और परिवर्तन भी हुए।

३१ जनवरी १९१६—कौंसिल—सालगराम भार्गव, प्रधान मंत्री, को अधिकार दिया जाय कि प्लाट १६, क्रास्थवेट रोडके क्रयके संबन्धमें सेल-डीड पर हस्ताक्षर करें, और उचित कार्यवाही भी, और रजिस्ट्रारके दफ्तरमें सेलडीडकी रजिस्ट्री भी करायें। गोपालस्वरूप

भार्गवके स्थानमें ब्रजराज जी सम्पादक हों। गोपालस्वरूप जी को उनकी सेवाओं के उपलक्ष में विशेष धन्यवाद।

३० अक्टूबर १९२६—कौंसिल—प्रो० ए. सी. बनर्जी से प्रार्थना की जाय कि परिषदका दफ्तर और गोदाम बनानेके लिये ठेकेदार नियत करें। गवर्नमेंट और धनी व्यक्तियोंसे अपील।

८ नवम्बर १९२६—कौंसिल—भवनका ठेका रामलाल सोनीको दिया जाय और १००० रुपयेसे अधिक व्यय न हों। सन् १९२७ तकके लिये शिवप्रसाद गुप्त सभापति; मदनमोहन मालवीय, ऐनी बेसेंट, डा० धर, और चिन्तामणि उपसभापति; एस.-सी. देव प्रधान मंत्री और श्रीरंजन कोषाध्यक्ष हों।

२९ नवम्बर १९२६—कौंसिल—बजट-आय व्यय ३६००)। डा० झा और हीरालाल खन्ना जीवन-चन्दा चुका देने पर जीवन-सदस्य बनाये गये।

३० नवम्बर १९२६—वार्षिक अधिवेशन। डा० गंगानाथ झाका प्रजनन-विज्ञान पर व्याख्यान।

गत ५ वर्षके वृत्तान्तमेंः—६००) वार्षिक गवर्नमेंटसे 'विज्ञान' की सहायतार्थ मिल रहा है। इसके बलपर ही विज्ञान चल रहा है। इंप्रूवमेंट ट्रस्टको जमीनके १६८८) दिये। इसी बीचमें परिषद्ने पं० सुधाकर द्विवेदीकी समीकरण मीमांसा प्रकाशित करनेका विचार किया, जिसका आधा खर्चा १२५०) प्रान्तीय गवर्नमेंटने देना स्वीकार किया। विज्ञानकी ५० प्रतियाँ गवर्नमेंटको दी जाती हैं। विज्ञान प्रवेशिका १ का तीसरा संस्करण। सूर्य्य सिद्धांतके २, ३, भाग; निर्णायक प्रकाशित। भवन बननेका आरंभ। आजन्म सभ्य २२।

३० अप्रेल १९२७—कौंसिल—उपसभापति ए० सी० बनर्जीने सभापतिका आसन ग्रहण किया। ३१ मार्च १९२७ तकका हिसाब पास। आय २४४९।≈), व्यय २४३०–)। मकान बनानेमें ११५०) लगा।

२३ अगस्त १९२७—कौंसिल—प्रकाशकोंसे पत्र व्यवहार हो कि किन शर्तोंपर विज्ञान और परिषद्की पुस्तकोंका प्रकाशन ले सकते हैं। गवर्नमेंटसे और सहायता माँगी जाय।

१० नवम्बर १९२७—कौंसिल—वार्षिक वृत्तान्त—आर्थिक दुरवस्थाका हाल। समीकरण मीमांसाका एक भाग तैयार। मिफ्ताहुलफनूनका दूसरा संस्करण रामनारायण लालने छापा। ब्रजराजकी सहायताके लिये सत्यप्रकाशकी सहायक संपादकके रूपमें नियुक्ति। साधारण रसायन और कार्बनिक रसायनका बहुतसा अंश विज्ञानसे रीप्रिण्ट होकर तैयार। वैज्ञानिक परिमाण भी निकलता है।

आगेके लिये शिवप्रसाद गुप्त सभापति, डा० झा उपसभापति, एस० सी० देव मंत्री हों। श्रीरञ्जन कोषाध्यक्ष। शिवप्रसाद गुप्तकी अस्वीकृतिपर वार्षिक अधिवेशन में डा० झा सभापति हुये, सितम्बर १९२७ तकका हिसाब पास। आय ३६२१≡)॥, व्यय ३००३॥)॥

२१ अप्रेल १९२८—कौंसिल—गवर्नमेंटने आर्थिक सहायताके संबन्धमें हिन्दुस्तानी एकेडेमीको लिखनेको कहा। निश्चय हुआ कि यदि एकेडेमी सहायता न दे सके तो विज्ञान तिमाही निकाला जाय।

२७ अगस्त १९२८—कौंसिल—किसी प्रकार सितम्बर १९२८ तकका तो विज्ञान निकाला जाय और फिर गवर्नमेंटको लिखा जाय।

३१ अक्टूबर १९२८—कौंसिल—परिषद्के अधिकारी पूर्ववत् रहें। बजट २०००) का। वार्षिक वृत्तांत–ग्राहक संख्या घट रही है। ब्रजराजको समय कम मिलनेके कारण समस्त संपादन सत्यप्रकाश करते रहे। गवर्नमेंट और एकेडेमी दोनोंने सहायता देनेसे इंकार किया। समीकरण-मीमांसा लगभग समाप्त। रसायन और वैज्ञानिक परिमाण वाली पुस्तकें लगभग पूरी होनेको हैं। हिसाब १९२७-१९२८० आय १४९३॥)॥; व्यय १३२२।–)॥

११ जनवरी १९२९—वार्षिक अधिवेशन। सर तेज बहादुरके सभापतित्वमें सालगराम भार्गवका 'बेतारवाणी सुनना' पर व्याख्यान।

६ सितम्बर १९२९—कौंसिल—मकानके पूर्वी दिवारके प्लास्टरके लिये ३३) खर्च हो। परिषद्के अधिकारी पूर्ववत् रहें।

३ दिसम्बर १९२९ कौंसिल—सत्यप्रकाशको उनकी सेवाओंके उपलक्षमें परिषद्का आनरेरी जीवन-सदस्य बनाया जाय।

१९२९-३० का बजट विज्ञानपर १५५०) और आफिसपर ६६५)। वार्षिक वृत्तांत—कार्बनिक रसायन और साधारण रसायन तैयार।

११ फर्वरी १९३०—वार्षिक अधिवेशन। ३ दिसम्बर सन् १९२९ के प्रस्ताव स्वीकृत। दिसम्बर १९२९ तकका हिसाब पास—आय ३४२७॥≥), व्यय ३००६–)॥

६ अक्टूबर १९३०—कौंसिल—डा० गंगानाथ झाको तीन वर्ष सभापति होते हुये हो गये। आगेके वर्ष डा० नीलरत्न धर सभापति हों, एस. सी. देव उपसभापति, शेष सब पूर्ववत्।

वार्षिक वृत्तांत—आय १४७७≡)॥, व्यय १२१७।–)॥ सत्यप्रकाशके प्रयत्नसे विज्ञान ठीक समयपर निकलता रहा। २३ आजन्म सभ्य और २३ वार्षिक सभ्य। तीन व्याख्यान हुये। श्रीरञ्जनका 'घर घर बाग' पर, डा०व्रजराज-किशोरका रोगोंसे छुटकारा पर, डा० गोरखप्रसादका आकाश गमन विद्यापर।

१३ जनवरी १९३१—वार्षिक अधिवेशन—डा० गंगानाथ झाका व्याख्यान—'प्राचीन भारतमें स्वास्थ्य विधान'।

१ मई १९३१—कौंसिल—पं० विशननारायण भार्गव और राय साहेब एस. सी. देवकी मृत्युपर संवेदना। ३१ मार्च १९३१ तक हिसाब पास।

१९ सितम्बर १९३१—कौंसिल—विज्ञानकी पृष्ठ-संख्या घटा दी जाय, न कि विज्ञान बन्द किया जाय।

२ दिसम्बर १९३१—कौंसिल—प्रो० देवकी मृत्यु पर डा० शिखि भूषण दत्त उपसभापति नियुक्त हुये। श्रीरंजनके स्थानपर सत्यप्रकाश कोषाध्यक्ष। बजट १२००)

वार्षिक वृत्तांत—आय १३१४।)॥; व्यय १६७४।≥)७

तापका चौथा संस्करण विश्वम्भरनाथ श्रीवास्तवसे संशोधित कराके प्रकाशित। बीजज्यामिति, वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्द, सूर्य्य सिद्धांत ५ प्रकाशित।

२५ जनवरी १९३२—वार्षिक अधिवेशन—आगेके वर्षके लिये डा० धर सभापति, डा० शिखि भूषण दत्त उपसभापति, सालगराम भार्गव प्रधान मंत्री, और सत्य प्रकाश कोषाध्यक्ष।

२८ सितम्बर १९३२—कौंसिल—अधिकारी पूर्ववत्

२१ अक्टूबर १९३२—कौंसिल—वार्षिक वृत्तांत—विज्ञान६ के स्थानमें ४ फर्मेका निकला। आर्थिक कठिनाइयाँ। आय १३३६।≥)॥, व्यय १३५४।≥) ला० रामनारायण लालसे विज्ञानके प्रकाशनके संबंधमें पत्र व्यवहार और शर्तें।

११ नवम्बर १९३२—वार्षिक अधिवेशन—रामदास गौड़का व्याख्यान "पौराणिक सृष्टि और विकासवाद" पर, ला० सीताराम सभापति।

३१ मार्च १९३३—कौंसिल—डा० सत्यप्रकाशका पत्र जिसमें विज्ञानकी सम्पादकतासे त्याग पत्र। उनकी सेवाओं पर कृतज्ञता-प्रकाशन और रामदास गौड़की सम्पादक-नियुक्ति।

१५ सितम्बर१९३३—कौन्सिल—३१ अगस्त १९३३ तकका हिसाब स्वीकृत।

२८ अक्टूबर १९३३—कौन्सिल—श्री० एनी बीसेंट-की मृत्यु पर संवेदना। वार्षिक वृत्तान्त—आय १०२७।≡)।

आगामी वर्षके लिए डा० गणेशप्रसाद सभापति बनें और डा० धर उपसभापति, शेष अधिकारी पूर्ववत्।

२९ नवम्बर १९३३—वार्षिक अधिवेशन—प्रो० फूल-देव सहाय वर्मा का 'कृत्रिम रेशम' पर व्याख्यान। पं० इक़बाल नारायण गुर्टू सभापति। डा० गोरख प्रसाद परिषद्के फेलो बने।

२६ फरवरी १९३४—कौन्सिल डा० गणेश प्रसाद सभापति—विज्ञान के सहकारी संपादक ये हों—डा० गोरख प्रसाद, डा० रामशरणदास, श्रीचरण वर्मा, डा० श्रीरञ्जन, सत्यप्रकाश। एलाहाबाद बैंक परिषद्की बैंकर हो और डा० सत्यप्रकाश परिषदकी ओरसे उसमें हिसाब रक्खें।

२ अप्रेल १९३४—कौंसिल—डा० गणेश प्रसाद सभापति—स्वामी हरिशरणानन्द भी निमंत्रणपर उपस्थित थे। स्वामीजीका प्रस्ताव था कि वे अमृतसरकी पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी परिषदको देना चाहते हैं। निश्चय हुआ कि मंत्री गिफ़्टडीड तैयार करायें, और सबकी अनुमति के लिए भेजें। 'आयुर्वेद विज्ञान' को विज्ञानमें सम्मिलित

करनेके संबन्धमें एक उपसमिति बनी—डा० धर, श्री गौड़, सालगराम भार्गव, डा० गोरख प्रसाद और ब्रजराजकी।

१५ जून १९३४—कौन्सिल—सालगराम भार्गवके घरपर—सालगराम भार्गव ने अमृतसर जाकर फार्मेसीके संबन्धमें जो जाँच की थी उसका विवरण रक्खा। उक्त उप-समिति की रिपोर्ट भी रक्खी गई। निश्चित हुआ कि आयुर्वेद विज्ञान 'विज्ञान' में सम्मिलित कर लिया जाय और इसके लिए १ फर्मा सुरक्षित रहे जिसका सम्पादन स्वा० हरिशरणानन्द करें। दान-पत्र तैयार न था अतः विचार स्थगित।

३ अक्टूबर १९३४ कौन्सिल—डा० गणेशप्रसाद सभापति—परिषद के अधिकारी पूर्ववत् रहें।

२४ अक्टूबर १९३४—कौंसिल—डा० गणेशप्रसाद सभापति—बजट १२००)। वार्षिक वृत्तान्त—सम्पादन गौड़ जी करते रहे। स्वामी हरिशरणानन्दकी सहायताओंके लिये कृतज्ञता। आयुर्वेद-विज्ञान विज्ञानमें सम्मिलित। आय १२७०॥)॥, व्यय १४७७॥=)१०

१८ नवम्बर १९३४—वार्षिक अधिवेशन—डा० गणेशप्रसाद का व्याख्यान "यूरोपीय देशोंमें गणित संबन्धी खोजोंमें देशी भाषाका प्रयोग"- डा० नारायण प्रसाद अष्ठाना सभापति।

निर्वाचन—डा० गणेशप्रसाद सभापति, प्रो० सालगराम भार्गव प्रधान मंत्री, ब्रजराज मंत्री, डा० सत्यप्रकाश कोषाध्यक्ष। पं० ओंकारनाथ शर्मा फेलो बने।

१४ मार्च १९३५—विशेष अधिवेशन—डा० गणेशप्रसादकी मृत्यु पर संवेदना।

१६ मार्च १९३५—कौन्सिल—रामदास गौड़ सभापति—डा० गणेशप्रसादकी मृत्युपर संवेदना। इस वर्षके शेष दिनोंके लिये डा० धर सभापति बनाये गये। डा० गणेशप्रसादकी स्मृतिमें विशेषांक निकाला जाय।

२६ अप्रैल १९३५—कौन्सिल

१२—सितम्बर १९३५ — कौन्सिल— डा० दत्त सभापति। डा० निहालकरण सेठी सभापति हों। सालगराम भार्गव डा० धरके स्थानमें उपसभापति, डा० गोरखप्रसाद प्रधान मंत्री हों।

१४ अक्टूबर १९३५—कौन्सिल—डा० धर सभापति—डा० सेठी की अस्वीकृति आनेपर निश्चय हुआ कि डा० कर्म नारायण बाहल सभापति हों।

वार्षिक वृत्तान्त—आय ३०४४॥=)२, व्यय २९९७॥।)। रामदास गौड़ अवस्थ होते हुए भी संपादन करते रहे।

११ नवम्बर १९३५—वार्षिक अधिवेशन—सभापति डा० करम नारायण बाहल, डा० सत्यप्रकाश ने 'आजकल के पारस' पर व्याख्यान दिया।

कौन्सिलके आदेशानुसार निर्वाचन स्वीकार हुआ। सभापति डा० बाहल, उपसभापति डा० दत्त और सालगराम भार्गव, कोषाध्यक्ष डा० सत्यप्रकाश, प्रधान मंत्री—डा० गोरखप्रसाद।

१८ अप्रैल १९३६—कौन्सिल – यदि स्वा० हरिशरणानन्द १०००) वार्षिककी सहायता दें तो वैतनिक सम्पादक रखा जाय। बजट पास १५४५)। प्रो० गोपालस्वरूप आय-व्यय निरीक्षक नियुक्त।

२६ सितम्बर १९३६—कौन्सिल - डा० दत्तके सभापतित्वमें। डा०चिन्तामणि परिषद्‌के जीवन-सदस्य निश्शुल्क बनाये जायँ। पुराने विज्ञानोंको और पुस्तकोंको किसी भी मूल्यपर बेच दिया जाय। दफ़्तरकी मरम्मत हो, और एक कोठरी किरायेपर उठा दी जाय। पुस्तकोंकी बिक्रीका रुपया पुस्तकोंकी छपाईमें ही ख़र्च हो, श्री राधेलाल मेहरोत्रा १०) मासिक पुरस्कारपर मंत्रीके सहायक बनाये जायं। ३) मासिकपर चपरासी कुछ घंटोंके लिए रक्खा जाय। विज्ञान बेचनेकी एजंसीके नियम बनाये जायं।

आगेके वर्षके पदाधिकारी—सभापति—डा० बाहल, उपसभापति—सालगराम भार्गव, डा० शिखिभूषण दत्त; प्रधानमंत्री-डा० गोरखप्रसाद; मंत्री-ब्रजराज; कोषाध्यक्ष-सत्यप्रकाश।

वार्षिक वृत्तान्त—कार्य्य सुचारु-रूपसे चलता रहा, विज्ञान समयसे निकला। योगांक और क्षेमांक दो विशेषांक निकले। इंडियन प्रेस ने विज्ञानके कवर मुफ़्त छापे। विज्ञानका कायापलट हो गया, और ग्राहक भी बढ़ने लगे। गवर्नमेंटसे ६००) मिल रहा है। गौड़ जी सम्पादन करते रहे। व्याख्यान एक ही हुआ।

११ दिसंबर १९३६—वार्षिक अधिवेशन—परिषद्‌के सभापति डा० बाहलने 'जीवनके रहस्य' पर व्याख्यान दिया।

२१ अक्टूबर १९३७—कौन्सिल—डा० बाहल सभापति—प्रो० गौड़ जीकी मृत्युपर संवेदना। निश्चय हुआ कि परिषद्‌के सभ्योंका चन्दा १२) से घटा कर ५) कर दिया जाय। आजन्म सभ्य ७५) हों। जिन सभ्यों-का पूराना चन्दा पुराने दरसे वसूल न हो उनका नये दरसे वसूलकर लिया जाय। परिषद्‌का दफ़्तर जिस मकानमें हैं, उसका ५) मासिक किराया १ अक्टूबर १९३६ से दिया जाय। मिसेज़् गोरखप्रसादका ६०) दान सधन्यवाद स्वीकृत। सहायक-मंत्री राधेलाल मेहरोत्राको १ अक्टूबर १९३७ से १२) प्रतिमास मिले। विज्ञानके प्रूफ संशोधनके लिये २) फर्मा दिया जाय। बजट ४७८९।≡)१०

आगामी वर्षके अधिकारी—सभापति—डा० बाहल, उपसभापति—डा० श्रीरञ्जन,डा० दत्त, प्रधान मंत्री—डा० गोरख प्रसाद, मंत्री-ब्रजराज; कोषाध्यक्ष—डा० सत्यप्रकाश।

वार्षिक विवरण—दो आयुर्वेदांक (जनवरी और जुलाई) के अतिरिक्त कोई और विशेषांक नहीं निकला। ये आयुर्वेदांक ४५०० के लगभग छपते हैं, और फार्मेसी-के सूचीपत्रके साथ नमूनेके तौरपर भेजे जाते हैं, और इनका विशेष ख़र्चा स्वा० हरिशरणानन्द देते हैं। अपने ग्राहकोंको बिना सूची-पत्रके ये अंक जाते हैं। विज्ञान सजधजसे निकलता रहा। आगेके नवीन वर्षका प्रथम अंक 'फलसंरक्षण' अंक निकला जिसका संपादन डा० गोरख प्रसाद ने किया। १० हज़ार नुसख़े, तरकीबें और हुनर के संबन्धमें एक बृहद् ग्रन्थ छापनेकी आयोजना की गई। स्वामी जीने ५००) सहायतामें दिये हैं, और ५ सज्जनों ने भी आर्थिक सहायता का वचन दिया है। १८५०) का कागज़ निरञ्जनलाल भार्गवसे उधार मिला। १० फर्मे छप चुके हैं।

सरकार से ६००) मिले। स्वामी जीसे ८००) की सहायता मिली। कवर इंडियन प्रेसने मुफ़्त छापा। तीन व्याख्यान हिन्दीमें हुए—डा० सत्यप्रकाशका रक्त पर, डा० बाहलका जीवनके रहस्य पर और डा० राम कुमार सकसेनाका 'फूलके रहस्य' पर।

गौड़ जीकी मृत्युके उपरान्त डा० सत्यप्रकाश विज्ञानके प्रधान संपादक नियुक्त किये गये। दस हज़ार नुसख़े वाली पुस्तकके संपादक डा० गोरखप्रसाद और डा० सत्यप्रकाश हों। छोटी-छोटी पुस्तकोंके छपानेका प्रबन्ध मंत्री करें। श्री कन्हैयालाल गोविल आय-व्यय निरीक्षक हों।

परिषद्‌के अधिकारी और कौंसिलके सदस्य

बीचके कुछ वर्षोंके अधिकारियोंकी सूची अप्राप्य है। शेष सब वर्षोंका विवरण यहाँ दिया जाता है। यह विवरण क्रमसंख्याओंमें दिया गया है। प्रत्येक व्यक्तिकी क्रम-संख्या नीचे दी जाती है।

क्रम संख्या नाम

१. डा० सर सुन्दर लाल, एल-एल. डी., के. टी., सी. आई. ई.

२. महामहो० डा० गंगानाथ झा, एम० ए०, डी० लिट, एल-एल० डी०

३. महामना पं० मदनमोहन मालवीय

४ श्री एस० एच० फ्रीमेण्टल

५. श्रीमती डा० एनी बीसेण्ट

६. माननीय सर राजाराम पाल सिंह

७. रायबहादुर पुरोहित गोपी नाथ

८. रायबहादुर ला० सीताराम

९. बाबू रामदास गौड़, एम० एस-सी०

१० प्रो० सालगराम भार्गव, एम० एस-सी०

११ प्रो० सैयद मोहम्मद अली नामी

१२. प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव; एम० एस-सी०

१३. राय साहब प्रो० सतीशचन्द्र देव, एम० ए०

१४. प्रो० देवेन्द्र नाथ पाल, एम० ए०

१५. प्रो ब्रजराज, एम० ए०, बी० एस-सी० एल० एल० बी०।

१६. प्रिन्सपल हीरालाल खन्ना, एम० एस-सी०

१७. राय साहेब बा० श्यामसुन्दर दास, बी० ए०

१८. पं० नन्द कुमार तिवारी, बी० एस-सी०

१९. प्रो० पाण्डेय रामवतार शर्मा, एम० ए०, साहित्याचार्य्य इत्यादि

२०. प्रो० गंगा प्रसाद अग्नि होत्री

२१. श्री राधा मोहन गोकुल जी

२२—२५. रिक्त संख्यायें

२६. राजा आबू जफर साहेब पीरपुर (फ़ैज़ाबाद)

२७. प्रो० मेहदी हुसेन नासरी, एम० ए०

२८. बाबू महाबीर प्रसाद, श्रीवास्तव, बी० एस-सी० एल० टी०, विशारद

२९. बाबू शिव प्रसाद गुप्त, काशी

३० जस्टिस श्री गोकुल प्रसाद हाईकोर्ट प्रयाग

३१. प्रो० चुन्नीलाल साहनी

३२. डा० अन्नोदा प्रसाद सरकार, डी० एस-सी०

३३. माननीय बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन

३४. प्रो० जगद् बिहारी सेठ,

३५ पं० श्रीकृष्ण जोशी

३६. डा० नीलरत्न धर, डी० एस-सी०, आई० ई० एस०

३७ माननीय डा० सी० वाई० चिन्तामणि

३८. प्रो० अमरनाथ जा, एम० ए०

४० पं० कन्हैया लाल भार्गव

४१ प्रो० ए० सी० बनर्जी, आई० ई० एस०

४२ डा० निहालकरण सेठी, डी० एस-सी०

४३ श्री० एस० पी० वर्मा

४४ डा० सत्यप्रकाश, डी० एस-सी०

४५ प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा, एम० एस-सी०

४६ डा० शिखिभूषण दत्त, डी० एस-सी०

४७ डा० हरुराम मेहरा, पी-एच० डी०

४८ डा० गणेशप्रसाद, एम० ए०, डी० एस-सी०

४९ डा० गोरखप्रसाद, डी० एस-सी०

५० स्वामी हरिशरणानन्द जी वैद्य

५१ डा० कर्म नारायण बाहल, डी० एस-सी०

५२. डा० रामशरण दास, डी० एस-सी०

५३. प्रो० परमानन्द, एम० ए०

सन्	सभापति	उपसभापति	प्रधान मंत्री	मंत्री	कोषाध्यक्ष	कौंसिलके सदस्य
१९१४-१५	१	२,३,४,५,६,७	८,९	१०,११	१२	१३,१४,१५,१६,१७,१८,१९,२०,२१
१९१५-१६	१	२,३,४,५,६,७	८,९	११,१२	१५	९,१०,१४,१६,१७,१८,१९,२०,२१
१९१७-१८	६	२,३,४,५,७,२६	८,१३	१०,२७	१४	९,११,१२,१५ १७,१९,२०,२८,२९
१९२०-२१	३०	२,३,४,५,७,१४	८,१३	१०,३१	१५	९,१२,१७,२८,२९,३२,३३,३४,३५
१९२६-२७	२९	३,५,३६,३७	१३,१७	१५	३८	९,१२,२८,३३,३९,४०,४१,४२,४३
१९२७-२८	२	३६	१०,१३	१५,४४	३८	९,१२,२८,३३,३९,४०,४१,४२,४५
१९२८-२९	”	”	”	”	”	”
१९२९-३०	”	”	”	”	”	”
१९३०-३१	३६	१३	१०	”	”	”
१९३१-३२	३६	४६	१०	१५	४४	९,१२,१६,२८,३९,४०,४२,४५,४७
१९३२-३३	३६	”	”	”	”	९,१२,१६,२८,३८,४०,४२,४५,४७
१९३३-३४	४८	३६,४६	१०	१५	४४	”
१९३४-३५	४८ (कुछ समय ३६)	”	”	”	”	९,१२,१६,२८,३८,४०,४२,४९,५०
१९३५-३६	५१	१०,४६	४९	१५	४४	९,१२,१६,२८,३६,३८,४०,४२,५०
१९३६-३७	”	”	”	”	”	९,१२,१६,२८,३६,३८,४२,५०,५२
१९३७-३८	”	३८,४६	”	”	”	१०,१२,१६,२८,३६,४२,५०,५२,५३

विज्ञान परिषद्के सभापति

प्रथम सभापति

स्व० डा० सर सुन्दरलाल जी

[१९१३—१९१७]

आपका जन्म १४ मई १८५७ को हुआ। आपने म्योर कालेज प्रयागमें शिक्षा पाई और कलकत्ता विश्वविद्यालयकी बी० ए० परीक्षा दिसम्बर १८८० में उत्तीर्णकी। जनवरी १८८० में वकालतकी परीक्षा भी पासकी। २१ दिसम्बर १८८० से वकालत आरम्भकी और प्रयागके ज़िला कचहरीमें प्रसिद्धि हुई। सन् १८८३ में हाईकोर्ट में वकालत करने लगे और शीघ्र ही आपकी वकालत चमक उठी और १८८८ में नॉर्थ वेस्ट प्रोविन्सेज़की काउन्सिल आव् लॉ रिपोर्टिंगके सदस्य बनाये गये। सन् १८९३ में अन्य कुछ व्यक्तियोंके साथ सर्व प्रथम एडवोकेट नियुक्त हुए। दिसम्बर १८८८ में प्रयाग विश्वविद्यालयके फैलो बने और सन् १९०४में इंडियन यूनिवर्सिटीज़ एक्टके अनुसार पुनर्संगठित विश्वविद्यालयकी सीनेटके फेलो बने। जनवरी १९०६ में आप पहली बार प्रयाग विश्वविद्यालयके वायस-चैन्सलर नियुक्त हुए। बादको आप काशी विश्वविद्यालयमें भी वायस-चैन्सलर रहे। सन् १९०५ में आपको राय बहादुरकी उपाधि, सन् १९०६ में सी० आई० ई० की उपाधि और सन् १९१७ में आपको सरकी उपाधि भेंट की गई। आपकी मृत्यु फरवरी सन् १९१८ में हुई।

द्वितीय सभापति

माननीय सर राजाराम पाल सिंह

[१९१७—१९२०]

आपका जन्म ७ अगस्त १८६७ ई० को हुआ था। आरम्भिक शिक्षा अलीगढ़ में प्राप्त की। अवधके प्रसिद्ध ताल्लुकेदारोंमें से आप थे। सन् १९१६ में आपको नाइटकी उपाधि मिली। सन् १९०८में यू० पी० सोशल कान्फ्रेन्सके और सन् १९१० में अखिल भारतवर्षीय सोशल कान्फ्रेन्सके सभापति रहे। सन् १९१८ में भारतीय हिन्दू कान्फ्रेन्सके सभापति रहे। १९११में ब्रृटिश इण्डियन एसोसियेशन आव् अवधके सभापति नियुक्त हुए। इन बातोंसे स्पष्ट है कि सार्वजनिक सामाजिक कामोंमें आप कितनी दिलचस्पी रखते थे।

शिक्षा सम्बन्धी कार्योंमें भी आपका अनुराग था। सन् १९०९ तक प्रयाग विश्वविद्यालयके आप फैलो रहे। आप क्षत्रिय कालेज लखनऊके मंत्री भी रह चुके हैं। बनारस विश्वविद्यालयके कोर्टके भी सदस्य थे। इन सबके अतिरिक्त महालक्ष्मी शुगर कारपोरेशन लखनऊ, एलाहाबाद बैंक, लीडर प्रेस आदि अनेक संस्थाओंके डाइरेक्टर और हिस्सेदार भी थे। आप विज्ञान-परिषद्के सभापति भी रहे। आपका पता कुर्री सुदौली राज, रायबरेली, अवध था। खेद है कि १॥ वर्ष हुये आपका देहावसान हो गया।

तृतीय सभापति

श्रीमती डा० एनी बीसेण्ट

[१९२०—१९२१]

श्रीमती एनी बीसेण्टका जन्म १ अक्टूबर १८४७ को और मृत्यु २० सितम्बर १९३३को हुई। इस जगत् प्रसिद्ध महिलाका जीवन वृत्तान्त इस छोटे से स्थलमें लिखना सम्भव नहीं। मेडेम ब्लेवेट्सकीकी मृत्युके उपरान्त थियोसोफिकल सोसायटीकी सभापति रहीं। अपने जीवनके आरम्भिक कालमें महिलाओंके स्वत्वके लिये समस्त संसारमें आपने प्रयत्न किया। अनेक देशोंके सामाजिक और राजनैतिक कार्यों में आपने भाग लिया। १८७९ में अफग़ानिस्तान, १८८१ में ट्रान्सवाल, १८८२ में आयरलैण्ड, १८८५ में सूडान, और फिर जीवनकी प्रौढ़ावस्थामें आपने समस्त सभ्य संसारमें अपने कार्योंसे जीवन संचालन कर दिया। भारतके राजनीतिक क्षेत्रमें आपने १९१४ में पदार्पण किया और होमरूलकी घोषणा की। अपने इन कामोंके लिए नज़र बन्द हुईं। अडयार और काशीकी अनेक शिक्षण संस्थायें आपकी कीर्तिको सदा उज्वल बनाये रक्खेंगी। आप हमारे परिषद्की सर्व प्रथम आजन्म सदस्या थीं।

पंचम सभापति

माननीय डा० सी० वाई० चिन्तामणि

[१९२२-१९२५]

श्री चिरोंवूरि यज्ञेश्वर चिन्तामणिका जन्म १२ अप्रेल १८८० को हुआ। आपका दूसरा विवाह १९ जनवरी १९१३ को। आप युक्त-प्रान्तीय लेजिस्लेटिव कौंसिलके १९१६ से १९२३ तक सदस्य रहे। सन् १९२१से १९२३ तक इस प्रान्तमें सर्व प्रथम शिक्षा-एवं उद्योग-सचिव बनाये गये। उससे पूर्व धारासभाओंमें आपके तर्क और विशदज्ञानका अनुभव मिल चुका था। लिबरल होते हुये भी आप कर्मनिष्ठ एवं निर्भीक नेता रहे। १९२९ में इण्डियन स्टेट पीपल कान्फ्रेन्सके सभापति रहे। १९०९ से १९२० तक आपने 'लीडर' (प्रयाग) नामक पत्रका बड़ी कुशलतासे सम्पादन किया। सन् १९२४ से अब तक आप इस पत्रके प्रधान सम्पादक हैं। अब भारत प्रसिद्ध नेता है और लिबरल फीडरेशनके सभापति, उपसभापति आदि रह चुके हैं। सन् १९३७ के जुबली कोन्वोकेशनमें प्रयाग विश्वविद्यालयने आपको डाक्टरकी उपाधि भेंट की। परिषद्के कार्योंमें आपने आरंभसे ही सहानुभूति रक्खी और आपके कारण परिषद्को बहुतसी सहायतायें मिलीं।

षष्ठ सभापति

श्रद्धेय बाबू शिवप्रसाद गुप्त

[१९२७-१९२७]

प्रसिद्ध हिन्दी प्रेमी गुप्त जीका जन्म सन् १८८३ (आषाढ़ बदी ८, सं० १९४० वि०) को काशीमें हुआ। बालकाल फैजाबाद और अयोध्यामें बीता। १५-१६ वर्ष तककी शिक्षा मौलवी साहेब द्वारा फारसीकी मिली। पिताजीके देहान्तके बाद जब आप ८ वर्षके थे, काशी चले आये। यहाँ आपने महाजनी हिसाब किताब अपने मुनीमसे सीखा। १२-१३ वर्षकी अवस्थामें औपन्यासिक पुस्तकें पढ़कर हिन्दीका स्वतः प्रारम्भिक ज्ञान प्राप्त किया। इसी समय अपने चचेरे भाइयोंके साथ आजमगढ़में अंग्रेजी पढ़ना भी आरंभ किया। राजा मोतीचन्द आपके चाचा थे, उनके प्रस्तावसे जयनारायण स्कूल काशीमें भर्ती हुये। यहाँ आपपर ईसाई विचारोंका प्रभाव पड़ने लगा पर बादको अनेक परिस्थितियोंके कारण और विशेषतया आर्य्यसमाजके प्रभावके कारण आप उस प्रभावसे मुक्त होने लगे। १९०४ में आपने एण्ट्रेंस पास किया। काशीमें एफ० ए० में दो बार अनुत्तीर्ण होकर आप प्रयाग आये और यहाँसे एफ० ए० पास किया। बी० ए० की पढ़ाई कठोर बीमारीके कारण पूरी न हो सकी। १९०४-१९०५ से आपकी रुचि राजनीतिक आन्दोलनकी ओर हुई। अपने एक विदेश-यात्री जातीय मित्रके साथ भोजन करनेके कारण आपका जाति-बहिष्कार किया गया। मालवीय जीके हिन्दू विश्वविद्यालय आन्दोलनमें आपने सहयोग देना आरंभ किया। १९१४ में आप विदेश यात्राके लिये निकले और २१ मार्चके भ्रमणके पश्चात् देश लौटे। सन् १९२४ में प्रकाशित 'पृथिवी-प्रदक्षिणा' पुस्तकमें आपने अपनी इस यात्राका वृत्तान्त लिखा है। पीनाँगमें भ्रमवश आपको गिरफ्तार करके मिर्जापुर भी भेजा गया। ३ मास तक कालकोठरी, कारागार आदिकी विपदायें सहीं। अस्तु। बाबू शिव प्रसाद गुप्तने काशीमें "भारतमाता-मंदिर" निर्माण किया है जिसका उद्‌घाटन अभी तीन वर्ष हुये महात्मा गांधी द्वारा किया गया है। इस मंदिरमें भारतका विशाल मानचित्र है। गुप्तजीके अनन्य देश प्रेमका यह प्रदर्शक है। गुप्त जीकी परिषद्‌पर आरंभसे ही कृपा रह है। हिन्दी भाषाके आप अनन्य भक्त हैं।

सप्तम सभापति

महा महोपाध्याय डा० गंगानाथ झा

[१९२७—१९३०]

आपका जन्म २५ सितम्बर १८७२ को हुआ। आपके पिताका नाम पं० तीर्थनाथ झा और माताका नाम श्रीमती राम काशी देवी था। आपकी माता दरभंगा राजघरानेके महाराज कुमार श्री वासुदेव सिंह जीकी पुत्री थीं। तत्कालीन महाराजा सर लक्ष्मीश्वर सिंह जीके अनुरोधसे डा० झाको प्रारम्भिक शिक्षा दरभंगाके राज स्कूलमें प्राप्त हुई जहाँसे सन् १८८६ में आपने एण्ट्रेन्स परीक्षा पासकी। इसके उपरान्त क्वीन्स कालेज बनारसमें पढ़कर १८८८ में एफ. ए. परीक्षा (कलकत्ता विद्यालयकी) उत्तीर्ण की। इसी समय प्रयाग विश्वविद्यालयकी स्थापना हुई और सन् १८९० में काशीसे इस विश्वविद्यालयकी बी० ए० परीक्षा सम्मानसहित उत्तीर्णकी और सर्व-प्रथम स्थान

प्राप्त किया। क्वीन्स कालेजमें एम. ए. की शिक्षाका प्रबन्ध नहीं था अतः काशीके पंडितोंसे पढ़कर आपने १८९२ में संस्कृतमें एम. ए. उपाधि प्राप्त की। तदुपरान्त काशीके प्रसिद्ध पंडितोंकी अध्यक्षतामें (पं० शिवकुमार मिश्र. पं० जयदेव मिश्र, पं० गंगाधर शास्त्री आदि) आपने संस्कृत साहित्य और दर्शनका विशेष अध्ययन किया। पर एक वर्ष बाद आपको दरभंगा लौट जाना पड़ा और वहाँ महाराजा ने आपको दरभंगा-पुस्तकालयका अध्यक्ष बना दिया। सन् १९०२ तक आप वहाँ रहे, और इस समय में आपने सांख्यतत्त्व कौमुदी, योगसार संग्रह, काव्य प्रकाश, योग भाष्य, श्लोकवार्त्तिक आदि कई ग्रन्थोंका अंग्रेज़ी अनुवाद कर डाला, और शांडिल्य भक्ति सूत्र और प्रसन्नराघवके भाष्य भी लिखे।

सन् १९०२ में डा० थीबोके आग्रहसे आप म्योर कालेज प्रयागमें संस्कृत प्रोफेसर होकर आ गये। सन् १९०९ में प्रयाग विश्वविद्यालयसे प्रभाकर-पूर्वमीमांसा पर विवेचनात्मक ग्रन्थ लिखनेके उपलक्षमें आपको डाक्टर आव् लेटर्सकी उपाधि मिली, और १९१० के नव-वर्षमें महामहोपाध्यायकी उपाधि। इस बीचमें आपने प्रशस्तपाद भाष्य, तर्क भाषा, न्यायसूत्र भाष्य वार्त्तिक, खण्डन-खण्ड-खाद्य आदि अनेक ग्रन्थोंका अनुवाद किया। १९१७ के लगभग मनुस्मृतिको मेधातिथि टीकाका अनुवाद कलकत्ता विश्वविद्यालयके लिये किया जो ८ भागोंमें छपा है। सन् १९१८ में डा० झा संस्कृत कालेज काशीके प्रिन्सपल हुए। सन् १९२१ में नियुक्ति इण्डियन एडुकेशनल सर्विस में हुई। आप सन् १९२३ में प्रयाग विश्वविद्यालयके वायस चैन्सलर चुने गये। लोकप्रियताके कारण १९२६, एवं १९२९ के निर्वाचनोंमें भी आपही इस पद पर निर्वाचित हुए। सन् १९३२ से आप प्रयागमें जीवनके विश्राम दिवस व्यतीत कर रहे हैं। अभी आपका मीमांसा-का सावर-भाष्य प्रकाशित हुआ है और हिन्दू लॉ सम्बन्धी बृहद् ग्रन्थ भी। परिषद् पर आपकी कृपा आरम्भसे आज तक बनी हुई है, और हमें सदा आप अपने परामर्शोंसे अनुग्रहीत करते रहते हैं।

अष्टम सभापति

डा० नीलरत्न धर

[१९३० – १९३३]

आपका जन्म २ जनवरी १८९२ को जैसोर, बंगाल, में हुआ। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा रिपन कालेज और प्रेसीडेन्सी कालेज कलकत्तामें हुई। सर प्रफुल्ल चन्द्र रायके योग्य शिष्योंमें से हैं। सन् १९१५ को भारतीय सरकार को ओरसे छात्रवृत्ति प्राप्त करके लण्डन गये, जहाँ आपने अन्वेषण कार्य किया। सन् १९१७ में लंडनसे और १९१९ में पेरिससे आपको डाक्टर आव् सायन्सकी उपाधि मिली। सन् १९१९ में आप म्योर कालेज प्रयागमें आगये जहाँ १९२३ से १९३८ तक रसायन विभागके अध्यक्ष रहे। सन् १९१९ में आपकी नियुक्ति आई० ई० एस० में हुई थी। इस समय आप शिक्षा विभागमें एसिसटेण्ट डाइ-रेक्टर हैं। आप इंडियन केमिकल सोसायटी एवं नेशनल एकेडेमी आव् सायन्सके सभापति रह चुके हैं। प्रयागमें आपने अपनी सम्पत्तिसे एक प्रयोगशालाका निर्माण किया है जिससे इस प्रान्तको बहुत लाभ होनेकी आशा है। आपके अन्वेषणोंका उल्लेख अप्रैल १९३३ के विज्ञान-में किया जा चुका है।

नवम सभापति

डा० गणेश प्रसाद

[१९३३—१९३५]

आपका जन्म १५ नवम्बर १८७६ को बलियामें हुआ था। आपने प्रयागसे बी० ए० (१८९५), एम. (१९१६), और डी. एस-सी. (१८९८) की उपाधियाँ लीं। भारतीय सरकारसे छात्र-वृत्ति प्राप्त करके १८९९ से १९०४ तक आपने गौटिंजन और कैम्ब्रिज के विश्व-विद्यालयोंमें कार्य किया। फिर म्योर कालेज (१९०४-५) क्वीन्स कालेज (१९०५–१९१४), युनिवर्सिटी कालेज कलकत्ता (१९१४—१९१८), काशी विश्वविद्यालय (१९१८—२३), और उसके उपरान्त कलकत्ता विश्व-विद्यालयमें जीवनके अन्त तक गणितके हार्डिंज प्रोफेसर रहे। आप बनारस मेथेमेटिकल सोसायटीके आजन्म सभापति थे। आगरा विश्व विद्यालयके सञ्चालनमें विशेष कार्य किया। उत्तरी भारतके सभी विश्वविद्यालयोंमें भाग

लेते थे। १९२४ से १९२७ तक संयुक्त प्रान्तकी लेजिस्लेटिव कार्उसिलमें भी आप रहे। अनेक वैज्ञानिक संस्थाओंसे आपका सम्बन्ध था। आगरामें अकस्मात् ६ मार्च १९३५ को आपका देहावसान हो गया! आपके जीवनका विस्तृत विवरण आपके स्मारक-विशेषांकमें (सितम्बर १९३५) निकाल चुके हैं।

दशम सभापति

डा० कर्मनारायण बाहल

[१९३५—१९३८]

आपका जन्म मुलतान, पंजाबमें १४ फर्वरी १८९१ को हुआ था। आपने प्रारम्भिक शिक्षा लाहौरमें प्राप्तकी और वहीं गवर्नमेंट कालेजसे सन् १९१३में एम० एस-सी०की उपाधि ली जिसमें आप पंजाब विश्वविद्यालय में जीव-विज्ञान विषय लेकर प्रथम श्रेणीमें आने वाले प्रथम व्यक्ति थे। लाहौर गवर्नमेंट कालेजमें तीन वर्ष तक आप डिमानस्ट्रेटर और असिसटेण्ट प्रोफेसर रहे। फिर १९१४-१६ तक सैण्ट जान्स कालेज आगरामें जीव-विज्ञानके प्रोफेसर हुये। सन् १९१६में म्योर कालेजमें आपकी नियुक्ति हुई। सन् १९१९में आप आक्सफोर्ड गये जहां आपने अन्वेषक और डिमानेस्ट्रटर दोनोंका काम किया। सन १९१९ में पंजाब विश्वविद्यालय ने आपको डी० एस-सी०की उपाधि दी और १९२१में आक्सफोर्डने आपको डी० फिल०की उपाधि दी। वहांसे लौटनेपर आपको लखनऊ विश्वविद्यालयमें जीव-विज्ञान-विभागका अध्यक्ष नियुक्त किया गया और तबसे अब तक आप वहीं हैं। सन् १९१४में बंगलोरमें सायंस कांग्रेसके जीव-विज्ञान विभागके सभापति रहे। आप इण्डियन ज़ूलोजिकल मेमोयर्स सीरिजके संस्थापक और सम्पादक हैं। नेशनल एकेडेमी आव सायन्सेज, प्रयागके १९३३-१९३५ तक सभापति रहे हैं। नेशनल इन्स्टीट्यूट आव् सायन्सके फाउन्डर-फैलो हैं। रायल एसियेटिक सोसायटी आव् बंगालके भी फैलो हैं। परिषद्के आप १९३५-३८ तक सभापति रहे।

अक्टूबर १९३८में आपको आक्सफोर्ड विश्व विद्यालय ने डी० एस-सी०की उपाधि भेंटकी। आक्सफोर्डसे इस सम्मानको प्राप्त करने वाले आप सर्व प्रथम भारतीय हैं।

डा० बाहल गत २१ वर्षसे अन्वेषणका कार्यकर रहे हैं। आपने भूमि-कृमियोंके स्वरूपके सम्बन्धमें अनेक मौलिक लेख प्रकाशित किये हैं। आपके अन्वेषणोंको अनेक अंग्रेजी, फ्रैंच और जर्मन ग्रन्थोंमें स्थान मिला है। आपकी सम्पदित ज़ूलोजिकल मेमोयर्सने भारतीय जीव-विज्ञानके अध्ययनमें विशेष प्रोत्साहन दिया है।

हिन्दीका वैज्ञानिक साहित्य

[ले० डा० सत्यप्रकाश डी० एस-सी०]

हिन्दी भाषाका वैज्ञानिक साहित्य एक दृष्टिसे तो ६० वर्ष पुराना कहा जा सकता है। हम यहाँ विषयानुसार समस्त वैज्ञानिक पुस्तकोंकी एक सूची दे रहे है जिसमें पुस्तकका नाम, लेखकका नाम, प्रकाशक, समय, और मूल्य दिये गये हैं। इस सूचीकी पुस्तकें नागरी प्रचारिणी सभा काशीके आर्य्य-भाषा-पुस्तकालय, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयागके संग्रहालय या प्रयाग विश्वविद्यालयके पुस्तकालयमें विद्यमान हैं। सूचीके तैयार करनेमें नागरी प्रचारिणी सभाके कार्यकर्त्ताओंसे हमें विशेष सहायता मिली है जिसके लिये हम आभारी हैं। आशा है कि इस सूचीसे सामान्य जनता और साहित्य-जिज्ञासु विशेषतः लाभ उठावेंगे। वैद्यकके ग्रन्थोंकी सूची अधूरी है, क्योंकि संस्कृत साहित्यके आधारपर लिखे गये ग्रन्थोंकी संख्या हिन्दीमें बहुत है। स्वास्थ्य आदिकी छोटी मोटी बहुतसी पुस्तकें यहाँ नहीं दी गई हैं। जबसे स्कूलोंमें विज्ञान विषय हिन्दीमें पढ़ाया जाने लगा है, तबसे स्कूली पुस्तकोंकी संख्या भी बढ़ती जारही है। गणितकी पाठ्य पुस्तकोंका भी यही हाल है। इन विषयोंका संकलन इस सूचीमें ऐतिहासिक महत्वकी दृष्टिसे किया गया है।

इस सूचीमें निम्न बातें द्रष्टव्य हैं :—

(१) देशमें आधुनिक शिक्षाके आरम्भमें ईसाइयोंका सहयोग विशेष था। क्रिश्चियन ट्रैक्ट बुक सोसायटी, बैप्टिस्ट मिशन आदि ने छोटी छोटी पुस्तकें विभिन्न विषयोंपर निकालीं। खेदकी बात है कि बादको ईसाई-जनता हिन्दीसे उदासीन हो गई।

(२) दूसरे समयमें कुछ व्यक्तिगत लोगोंने हिन्दीकी विशेष सेवा की जैसे पं० सुधाकर द्विवेदी, पं० लक्ष्मी-शंकर मिश्र और ला० सीताराम।

(३) हिन्दी माध्यमसे वैज्ञानिक शिक्षाका वास्तविक आरम्भ गुरुकुल कांगड़ीमें हुआ जहाँ कि रसायन, भौतिक विज्ञान, वनस्पति शास्त्र आदिकी पुस्तकें तैयार करायी गई। श्री महेशचरण सिंह, प्रो० रामशरणदास आदि-का नाम स्मरणीय है।

(४) विज्ञान परिषद्की स्थापनासे वैज्ञानिक साहित्यका प्रचार बढ़ा। अनेक लेखक जिनकी पुस्तकें परिषद्में नहीं, प्रत्युत अन्यत्र प्रकाशित हुई हैं, 'विज्ञान'के लेखक रह चुके हैं, और उनकी बहुतसी सामग्री 'विज्ञान'के पृष्ठोंसे ली गई है।

(५) परिषद्के अतिरिक्त राष्ट्रकी सभी साहित्यक संस्थाओं ने वैज्ञानिक साहित्यकी वृद्धिमें यथाशक्य हाथ बटाया है। इन संस्थाओंमें नागरी प्रचारिणी सभा काशी, विज्ञान हुनरमाला आफिस काशी, इंडियन प्रेस प्रयाग, नवलकिशोर प्रेस लखनऊ, गंगा पुस्तकमाला लखनऊ, हिन्दी साहित्य एजन्सी कलकत्ता, मध्य-भारत हिन्दी साहित्य समिति इन्दौर, हिन्दुस्तानी एकेडेमी प्रयाग, हिन्दू विश्वविद्यालय, पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी अमृतसर, धन्वन्तरि मन्दिर फगवाड़ा आदि उल्लेखनीय हैं। आजकल तो सभी प्रकाशकोंका ध्यान इस ओर जारहा है, यह हर्षकी बात है।

(६) हमारे साहित्यकी वृद्धिमें बंगालियों, महाराष्ट्रियों और गुजरातियोंका भी विशेष हाथ रहा है। हिन्दी तो राष्ट्रकी भाषा है, इस दृष्टिसे ऐसा होना ही चाहिये।

(७) हिन्दीके लिये अपना वैज्ञानिक साहित्य गौरवकी बात है। यह निश्चित है कि इस देशकी किसी अन्य भाषामें इतना साहित्य नहीं है।

(८) 'विज्ञान'के पृष्ठोंमें अनेकानेक पुस्तकोंकी सामग्री विद्यमान है जिसके सुचारु संकलनसे साहित्यकी अच्छी सेवा हो सकती है।

(९) राष्ट्रीय परिस्थितियाँ अनुकूल न होते हुये भी जिन व्यक्तियोंने ग्रन्थ लिखे और जिन प्रकाशकों ने प्रकाशित किये, उनके कार्य्य स्तुत्य और अभिनन्दनीय हैं क्योंकि ऐसे कार्योंमें आर्थिक लाभ तो दूर रहा, घाटा ही होता रहा है।

(१०) हम अपने कार्यसे सन्तुष्ट हैं, पर आशा है कि अगले २५ वर्ष हमें और भी अधिक सफलता प्राप्त करावेंगे।

कोश

हिन्दी वैज्ञानिक शब्दावली—

गणित विज्ञान	शुकदेव पांडेय	नागरी प्रचारिणी सभा काशी	१९३१	।।।)
ज्योतिष विज्ञान	शुकदेव पांडेय	” ”	१९३४	।।)
भौतिक विज्ञान	निहालकरण सेठी	” ”	१९२९	।।।)
रसायन शास्त्र	फूलदेव सहाय वर्मा	” ”	१९३०	।।=)

हिन्दी वैद्युत शब्दावली	केशव प्रसाद मिश्र,	रामनाथसिंह, २३२ भदैनी बनारस	१९२५	
	रामनाथसिंह		-	
हिन्दी सायण्टिफिक ग्लॉसरी	श्यामसुन्दरदास	नागरी प्रचारिणी सभा काशी	१९०६	४)
वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्द	सत्यप्रकाश	विज्ञान परिषद् प्रयाग	१९३०	॥)
अर्थ शास्त्र शब्दावली	दयाशंकर दुबे			
शारीर शास्त्रके पारिभाषिक शब्द	एन० एस० सहस्त्रबुद्धे	नार्मल स्कूल, सीतावर्डी, नागपुर	१९३१	
वैद्यक शब्द निधि		ऊँझा आयुर्वेदिक फार्मेसी, रीची रोड अहमदाबाद		

प्रारम्भिक विज्ञान

क्या ?	जगपति चतुर्वेदी	युगान्तर प्रकाशन समिति पटना	१९३७	॥)
क्यों ?	"	" "	१९३६	॥)
क्यों और कैसे ?	नारायण प्रसाद अरोड़ा	गंगा पुस्तकमाला लखनऊ	१९३३	।)
छोटा वस्तु विचार	चण्डीप्रसाद सिंह	खड्ग विलास प्रेस बांकीपुर पटना	१८८३	।)
ज्ञानकी पिटारी	जगपति चतुर्वेदी	आदर्श ग्रन्थमाला दारागंज, प्रयाग	१९३२	१)
पदार्थ विज्ञान		क्रिश्चियन ट्रेक्टबुक सोसायटी	१८४६	
पदार्थ विज्ञान विटप	लक्ष्मी शंकर	चन्द्रप्रभा प्रेस काशी		।=)
प्रकृति	रामेन्द्र सुन्दर त्रिवेदी,			
	द्वारकानाथ मित्र	इण्डियन प्रेस प्रयाग	१९११	१)
प्राकृतिकी	जगदानन्द राय, नन्दकिशोर	"	१९२५	२॥)
विज्ञानकी किताब (१)	रमेशदत्त पांडे	लक्ष्मी प्रेस बनारस	१९०३	=)
विज्ञान पाठ लोअर प्राइमरी (तीन भाग)		मैकमिलन कंपनी कलकत्ता	१९०२	≡),।),।≡)
विज्ञान प्रवेशिका भाग १	रामदास गौड़			
	सालगराम भार्गव	विज्ञान परिषद् प्रयाग	१९१४	≡)
" " भाग २	महावीरप्रसाद श्रीवास्तव	"	१९१७	१)
वैज्ञानिकी	जगदानन्द राय	इण्डियन प्रेस प्रयाग	१९२५	१॥)

भौतिक विज्ञान

चुम्बक	सालगराम भार्गव	विज्ञान परिषद् प्रयाग	१९१७	।=)
ताप	प्रेमवल्लभ जोशी	"	१९२१	।=)
"	प्रेमवल्लभ जोशी			
	विश्वम्भरनाथ श्रीवास्तव	"	(४)	॥=)
प्रश्नोत्तर जड़ तत्व विज्ञान	मथुरादास	मिलिटरी वर्क्स फिरोजपुर	१८८७	
प्रारम्भिक भौतिक विज्ञान	निहालकरण सेठी	काशी हिन्दू विश्वविद्यालय	१९३०	
भौतिक विज्ञान	सम्पूर्णानन्द	नागरी प्रचारिणी सभा काशी	१९१६	१।)
भौतिक विज्ञानशास्त्र २ भाग	शीतलसिंह बघेल	नवलकिशोर प्रेस लखनऊ	१९३६	१॥।)
भौतिकी	गोवर्द्धन	गुरुकुल कांगड़ी	१९१०	॥)
वायुचक्र विज्ञान १,२	लक्ष्मी शंकर मिश्र	बनारस कालेज	१८७४	

वायु विज्ञान	राजाराम सिंह	सीतामऊ मालवा	१६०८	
वायुसागर	वैद्य कालिन एस० वैलेण्टाइन	जयपुर	१८६७	
विजलीकी बैटरियाँ	भीष्म चन्द्र शर्मा	५५ लाटूश रोड लखनऊ	१६३३	।।।)
विद्युत् शास्त्र प्रथम भाग	महेशचरणसिंह	गुरुकुल कांगड़ी	१६१२	
विद्युत् शास्त्र	लक्ष्मीचन्द्र	विज्ञान हुनरमाला आफिस बनारस	१६२२	।।)
वैज्ञानिक परिमाण	सत्यप्रकाश, निहालकरण सेठी	विज्ञान परिषद् प्रयाग	१६२८	१।।)
सचित्र विजली दर्पण	शैलजाप्रसाद दत्त वर्मन	१८१, मानिक तल्ला स्ट्रीट कलकत्ता	१६३१	२।।)
संक्षिप्त पदार्थ विज्ञान विटप	विनायक राव	चन्द्र प्रभा प्रेस बनारस	१८८४	≡)

रसायन

कार्बनिक रसायन	सत्यप्रकाश	विज्ञान परिषद् प्रयाग	१६२८	२।।)
क्षार निर्माण विज्ञान	हरिशरणानन्द	आयुर्वेदिक फार्मेसी अमृतसर	१६२७	।।)
गुणात्मक विश्लेषण	रामशरणदास सक्सेना	गुरुकुल कांगड़ी	१६१६	२।।)
पदार्थ विनिश्चय	द० अ० कुलकर्णी	हिन्दू विश्वविद्यालय काशी	१६१८	।।)
प्रकाश रसायन	वा० वि० भागवत	विज्ञान परिषद् प्रयाग	१६३२	१।।)
प्रारम्भिक रसायन	अमीचन्द्र विद्यालंकार	हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग	१६२८	१)
प्रारम्भिक रसायन (दो भाग)	फूलदेव सहाय वर्मा	नन्दकिशोर एण्ड ब्रदर्स बनारस		
मनोरञ्जक रसायन	गोपालस्वरूप भार्गव	विज्ञान परिषद् प्रयाग	१६२३	१।।)
रसायन इतिहास (लेख)	आत्माराम	,, ,,	१६३५	।।।)
रसायन प्रकाश प्रश्नोत्तर		आगरा स्कूल बुक सोसायटी	१८४७	
रसायन शास्त्र	आनन्द विहारी	नागरी प्रचारिणी सभा आरा	१६०६	।।=)
रसायन शास्त्र	महेशचरण सिंह	नागरी वर्द्धनी सभा प्रयाग	१६०६	
रसायन शास्त्र (हिन्दी कैमिस्ट्री)	,,	इण्डियन प्रेस प्रयाग	१६०६	३।।)
रसायन संग्रह	विश्वम्भर नाथ वर्मा	बड़ा बाजार कलकत्ता	१८६६	
विज्ञान प्रवेशिका-रसायन	गोवर्धन	गुरुकुल कांगड़ी	१६११	।।।)
सरल रसायन	लक्ष्मीचन्द्र	विज्ञान हुनरमाला आफिस काशी	१६१६	१)
साधारण रसायन	सत्यप्रकाश	विज्ञान परिषद् प्रयाग	१६२६	२।।)
साधारण रसायन दो भाग	फूलदेव सहाय वर्मा	हिन्दू विश्वविद्यालय काशी	१६३२	
सुलभ रसायन संक्षिप्त	जे० आर० वैलेण्टाइन		१८५६	।।)
हिन्दीकेमिस्ट्री	लक्ष्मीचन्द्र	विज्ञान हुनरमाला आफिस काशी	१६१७	१)

औद्योगिक

काशी सुरती	वंशीधर त्रिपाठी	ब्रह्मनाल बनारस	१६३२	१।)
कृत्रिम काष्ठ	गंगा शंकर पचौली	विज्ञान परिषद् प्रयाग	१६२०	=)
खजानेकी कुंजी	रामानन्द सरस्वती	सीताराम बुक्सेलर, अलीगढ़	१६२६	१)

गृह शिल्प	गोपाल नारायणसिंह	ज्ञान मंडल काशी	१९२१	॥=)
घरधोणी	अबुदप्रसाद	जयदेव ब्रदर्स बड़ौदा	१९३३	।=)
चर्म बनानेके सिद्धान्त	देवदत्त अरोड़ा	हिन्दुस्तानी एकेडेमी प्रयाग	१९३०	३)
तीसी		मारवाड़ी महासभा, १६० हेरिसन रोड कलकत्ता		४॥)
तेलकी पुस्तक	लच्मीचन्द्र	विज्ञान हुनरमाला ऑफिस बनारस	१९१७	१)
देशी बटन	रामजीवन नागर	वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई	१९०५	
नारियलके रेशेका उपयोग		मारवाड़ी महासभा, १६० हेरिसन रोड कलकत्ता		॥)
प्रैक्टिकल फोटोग्राफी	हरगुलाम ठाकुर	फाइन आर्ट फोटोग्राफिक स्टूडिओ गोरखपुर	१९१५	
फल संरक्षण	गोरखप्रसाद	विज्ञान परिषद् प्रयाग	१९३७	१)
फोटोग्राफी	गोरखप्रसाद	इंडियन प्रेस प्रयाग	१९३१	७)
मसि सागर	वेणी माधव त्रिपाठी	वेंक्टेश्वर प्रेस, बंबई	१८९७	
रंगकी पुस्तक	लच्मीचन्द्र	विज्ञान हुनरमाला ऑफिस बनारस	१९१६	१)
रत्नोंकी खान	के० सी० वर्मन	सुख संचारक कंपनी मथुरा	१९१४	।)
रबर स्टैम्पकृति	बलवन्त लच्मण पावगी	पावगी पुस्तकालय रामघाट बनारस		
रोशनाई बनानेकी पुस्तक	लच्मीचन्द्र	विज्ञान हुनरमाला ऑफिस बनारस	१९१५	॥।)
वार्निश और पेंट	,,	,, ,,	१९१७	१)
विश्व कर्म भंडार १, २	मोहनलाल	सन प्रिंटिंग वर्क्स लाहौर	१८९८	
व्यापार भंडागार	क्षेत्रपाल शर्मा	सुख संचारक कम्पनी मथुरा	१८९७	॥)
व्यापार शिक्षक	गंगाशंकर पचौली	भरतपुर	१९१०	
साबुन बनानेकी पुस्तक	लच्मीचन्द्र	विज्ञान हुनरमाला ऑफिस बनारस	१९१८	१)
साबुन सुगंध विज्ञान		भारत राष्ट्रीय कार्यालय अलीगढ़	१९३३	१।)
स्वदेशी रंग और रंगना	धीरजलाल शर्मा	अकबरपुर, मुरीर, मथुरा	१९२५	॥।)
हजार व्यापार	क्षेत्रपाल शर्मा	सुख संचारक कंपनी मथुरा (६)	१९२५	१)
हरफन मौला	प्यारेलाल	विद्यासागर डिपो अलीगढ़	१९०६	१॥)
हाथके उद्योग धन्धे	अबीरचन्द जैन	महा कौशल पुस्तक भंडार जबलपुर	१९३४	।)

अंकगणित

लीलावती		लच्मी वेंकटेश्वर प्रेस बंबई	१९०६	—
अंक विलास अर्थात् अंक पाश विद्या	जगन्नाथ प्रसाद भानु	लेखक, विलासपुर	१९२५	२)
जंत्री गोल लकड़ीकी मुअक्कर फुट निकालनेकी	एम० मर्सर	इंडियन प्रेस प्रयाग	—	१॥)

बाल गुरु प्रकाश	लक्ष्मीनारायण शर्मा	बालमुकुंद शर्मा, राज स्थानी हिंदी विद्यालय चौक हैदराबाद	१९३५	।-)
अंक गणित भाग १	अयोध्यासिंह उपाध्याय	खड्ग विलास प्रेस बांकीपुर	१८९६	।)
किताब क्यूबिक फुट	अली अकबर खाँ	लेखक मालगुजारी धनवाही	१८९७	१।-)
अंक शिक्षक	आशाराम	गवर्नमेंट हाई स्कूल, गुरदासपुर	१९०१	=)॥
लोअर प्राइमरी अंक गणित	इंस्पेक्टर जेनरल,	चंद्रप्रभा प्रेस काशी (२)	१८८३	=)॥
गणित क्रियाके चौथे भागका हल	ईश्वरी प्रसाद साहब	मुं० कल्याण राय मुदर्रिस नार्मल स्कूल मेरठ (२)	१८८५	।)
गणित प्रदीप भाग १	उमराव सिंह	चिन्तामणि बुकसेलर, फरुखाबाद		-)॥
हिसाब मिडिल क्लास	,,	,,	१८८८	।≡)
गणित विनोद	उल्फत राय	हमीर (३)	१८८५	
गणित दर्पण	कन्हैया लाल दुबे	गयाप्रसाद मुदर्रिस नखास गोरखपुर	१८८५	।)॥
गणित क्रिया तीनों भाग	कल्याण राय	नार्मल स्कूल मेरठ (२०)	१८८६	
गणित भाग १	काशी प्रसाद	लेखक, कुतुब फरोश जौनपुर	१८८७	≡)
गणित शिक्षा प्रणाली	के० एल० किचलू	इंद्रप्रिंटिंग वर्क्स अल्मोड़ा	१९३२	१=)
जबानी हिसाब नंबर १-२	गणेशीलाल चतुर्वेदी	गणेश प्रेस परिपंच मथुरा	१९२९	-)॥
नवीन बड़ा पहाड़ा	,, ,,	,,		)॥
बालगणित	,,	,, ,, ,,		)॥
जिह्वाग्र गणित तृतीय भाग	चंदीसिंह	मेथाडिस्ट पब्लिशिंग हाउस, लखनऊ	१८९२	-)॥
अंक गणित प्रथम भाग	यादवचन्द्र चक्रवर्ती	पी० सी० द्वादश श्रेणी अलीगढ़	१९००	=)॥
गणित गुरु प्रथम भाग	वीरेश्वरचन्द्र चक्रवर्ती	बी० एल० चक्रवर्ती न्यूस्कूल बुक प्रेस ८ डिक्सनलेन कलकत्ता,	१८८६	-)॥
आरंभ गणित दोनों भाग	चिन्तामणि	चिन्तामणि बुकसेलर फरुखाबाद (३)	१८८९	-)॥
गणित प्रकाश	रमानन्द तैलंग			
भुवनेशयंत्र प्रकाश	त्रिलोकी नाथ सिंह आन मै०	लेखक फैजाबाद	१८९५	१)
सुलभ गणित	देवी प्रसाद डिप्टी इंस्पेक्टर गाजीपुर			।=)
बाजारू हिसाब	पन्नालाल	हिन्दी मिडिल स्कूल शहर धार	१९१२	-)
पाटी गणित भाग १	पालीराम पाठक	लेखक नार्मल स्कूल मेरठ	१८७४	≡)
व्यक्त गणित	बापूदेव शास्त्री	मेडिकल हाल प्रेस बनारस	१८७५	॥≡)
गणित दिवाकर	चतुर बिहारीलाल	आनन्दीलाल बुकसेलर उज्जैन		=)॥
नया अंक प्रकाश	,,	,,	१९२८	)॥
अरथिमेटिक शिक्षा प्रणाली	के० सी० भट्टाचार्य, चन्द्रमौलि सुकुल	इंडियन प्रेस प्रयाग	१९२४	॥।)

अंक चंद्रिका भाग १	भवानी प्रसाद पुरोहित	नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ	१९२५	॥।=)
,, भाग २	,,	,,	—	१)
,, भाग ३	,,	,,	—	१)
विद्याज्ञान प्रकाश	व्यास मथुरादास,	वेंकटेश्वर प्रेस बंबई	१९०५	१)
गणित रामायण खंड १	मनराखन लाल	प्रिटिंग प्रेस, लखनऊ	१९००	—
भिन्नके पहाड़े	महानन्द	ग्रंथकर्त्ता डिप्टी इंस्पेक्टर इलाहाबाद (३)	१९११	-)
गणित विज्ञान	मुन्नीलाल	मुदर्रिस सराय मीरगंज, फर्रुखाबाद	१८८८	—
गणित प्रकाश भाग १	वंशीधर लखनऊ	— (३)	१८७३	—
गणित प्रकाश भाग २	श्री लाल	लखनऊ	१८७३	—
गणित लहरी	मोती लाल	—	१९००	—
भेद गणित शिक्षा पद्धति	मुहम्मद खाँ बी० ए०	—	१९०९	॥=)
भेद प्रकाश	रामदीन	हिन्दी मास्टर महाराज स्कूल किशन गढ़ १८९५		)॥।
अंक सारांश	रामनारायण शर्मा	डिप्टी इंस्पेक्टर हमीरपुर	—	-)॥
गणित कौमुदी	लक्ष्मी शंकर	गोपीनाथ पाठक, बनारस लाइट प्रेस	१८९८	।)
,, भाग १	,,	चन्द्रप्रभा प्रेस बनारस (१०)	१८९५	।)
,, ,, २	,,	,, (१०)		≡)
दशमलव दीपिका	वंशीधर	गवर्नमेंट प्रेस, इलाहाबाद	१८८१	=)॥
गणित तरंगिनी	ब्रजमोहन लाल	सीताराम एटा	१८८७	=)॥
अंकगणित	लाला सीताराम	गिर्जाकिशोर घोष मुरादाबाद	१९०७	॥।)
पाटी गणित		मैकमिलन कंपनी	१९०२	।-)
नवीन अंक गणित	अवध उपाध्याय	.रामनारायण लाल प्रयाग	१९२८	२)

बीजगणित

सुलभ बीज गणित	कुंज बिहारी लाल	गवर्नमेंट प्रेस प्रयाग (३)	१८७५	।-)
बीज गणित	यादवचंद्र चक्रवर्ती	पी० सी० द्वादशश्रेणी, अलीगढ़	१९२५	२)
बीज गणित	बापदेव शास्त्री	मेडिकल हाल प्रेस काशी (२)	१८७५	—
बीज गणित	आदित्यराम भट्टाचार्य, जकाउल्ला	— —	१८७४	॥-)॥
हिन्दी बीज गणित २ भाग	पं० मोहन लाल	— (२)	१८५९	॥)
मिडिल क्लास बीजगणित	रामेश्वर प्रसाद	—	—	।=)
बीज गणित प्रवेशिका	श्रीनिवास जोशी	इंद्र प्रिंटिंग वर्क्स अलमोड़ा	—	॥।)
बीज गणित	लाला सीताराम	कौशल किशोर मुरादाबाद	१९०७	१)

क्षेत्रगणित

क्षेत्र कौशल भाग २	अंबिकादत्त व्यास	मानमंदिर, काशी	१८८४	—
क्षेत्र मार्त्तण्ड	गंगा प्रसाद	चतुरबिहारीलाल उज्जैन	१९२८	॥=)
माप नियम दर्पण	गजाधर प्रसाद	ग्रंथकार, दारानगर, इलाहाबाद		-)॥
हिन्दुस्तानी माप विद्या	रामनाथ चटर्जी	इंडियन प्रेस प्रयाग	१९८४	।।)
गणित विज्ञान	मुन्नी लाल	चिन्तामणि तहसीली स्कूल फरुखाबाद	१८८६	।)
क्षेत्रप्रभाकर दूसरा भाग	देवी प्रसाद रामचरण	फरुखाबाद	१८८५	
पैमाइश	नन्दलाल मुरलीधर	रामदयाल अग्रवाल प्रयाग	१९२७	१)
क्षेत्रार्णव	फतहचंद शर्मा	रीडिंग रूम प्रेस चुनार	१८८७	=)॥
क्षेत्र कौमुदी	मुन्नीलाल	सराय मीरा, फरुखाबाद	१८८६	।)॥
माप विज्ञान	रमा शंकर मिश्र	चंद्रप्रभा प्रेस बनारस	१८८४	।-)
मन्स्युरेशन	रतनलाल माधवप्रसाद तिवारी	नवलकिशोर प्रेस लखनऊ (७)	१८८६	
माप प्रबंध	वंशीधर	सिकंदर प्रेस, आगरा	१८५३	≡)
क्षेत्र प्रकाश	शिवप्रसाद शर्मा	संस्कृत पाठशाला जयपुर	१८६४	।।।)
पटवारियोंका हिसाब ३ भाग	,,	आगरा स्कूल बुकडिपो	१८४६	
क्षेत्र चन्द्रिका भाग २	वंशीधर	,,	१८७४	
रेखा गणित	उमाशंकर मिश्र	सरस्वती यंत्रालय काशी	१८८७	

अन्य गणित

गणितका इतिहास (१)	सुधाकर द्विवेदी	संस्कृत कालेज बनारस	१९१०	२)
गति विद्या	लक्ष्मी शंकर मिश्र	इन्सपेक्टर आव् स्कूल बनारस	१८८५	।।।)
चलन कलन	सुधाकर द्विवेदी	संस्कृत कालेज बनारस		
चलराशि कलन	,,	,,		
बीज ज्यामिति	सत्यप्रकाश	विज्ञान परिषद् प्रयाग	१९३१	१।)
समीकरण मीमांसा १, २,	सुधाकर द्विवेदी	,,		१॥), ॥=)
सरल त्रिकोणमिति	लक्ष्मीशंकर मिश्र	मेडिकल हॉल प्रेस काशी	१८७३	
स्थिति विद्या	,,	इन्सपेक्टर आव् स्कूल, बनारस	१८८५	१)

ज्योतिष

आकाशकी सैर	दुर्गाप्रसाद खेतान	हिन्दी पुस्तक एजन्सी कलकत्ता	१९२५	॥)
आकाशकी सैर	गोरखप्रसाद	इंडियन प्रेस प्रयाग	१९३६	।।।)
आर्य भट्टीयम्	अनु० उदय नारायण वर्मा	शास्त्र प्रकाश कार्यालय मुजफ्फरपुर	१९०६	१)
करणलाघव	गंगा शंकर पचौली	हेडमास्टर, स्कूल भरतपुर	१९१२	।।।)
काल बोध	शिवकुमारसिंह	नागरी प्रचारिणी सभा काशी	१८९५	
काल विज्ञान	जगन्नाथ प्रसाद भानु	विलासपुर	१९२९	१।)

काल समीकरण	गंगा शंकर पचौली	भरतपुर	१६१८	i)
खगोल सार	श्रीलाल	(५)	१८८१	-)॥
ग्रह नक्षत्र	जगदानन्द राय	इंडियन प्रेस प्रयाग	१६३३	२)
ग्रह लाघव	टी० पं० राम स्वरूप	वेंक्टेश्वर प्रेस बम्बई	१६०५	
ज्योतिष चन्द्रिका	ओंकार भट्ट	आगरा स्कूल बुक सोसायटी	१८४०	
ज्योतिष तत्त्व भाग १	गंगाशंकर पचौली	प्यारेलाल रईस बरौठा	१८६७	
ज्योतिष शास्त्र	दुर्गाप्रसाद खेतान	७६ काटन स्ट्रीट कलकत्ता		॥=)
ज्योति विज्ञान	सुखसंपतिराय भंडारी	हरिदास कंपनी कलकत्ता		१॥)
ज्योतिर्विनोद	संपूर्णानन्द	नागरी प्रचारिणी सभा काशी	१६१७	१।)
बापूदेव शास्त्रीका उपादान		लाइट प्रेस काशी	१८७६	
शाश्वत कलैण्डर	नयनचन्द्र बोरदूया	उदयपुर	१६३४	
संसारके संवत्	जगनलाल गुप्त	आर्य समाज बुलंदशहर	१६२४	
सुमति प्रकाशिका	इन्द्रनारायण शर्मा	बुद्धिपुरी	१६०८	१)
सूर्य सिद्धान्त	इन्द्र नारायण द्विवेदी	हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग	१६१८	१)
,, ,,	उदय नारायण सिंह	शास्त्र प्रकाश कार्यालय मुजफ्फरपुर	१६०३	२।)
,, ,,	बलदेव प्रसाद मिश्र	वेंकटेश्वर प्रेस बंबई	१६०६	
,, ,, (विज्ञान भाष्य)	महावीरप्रसाद श्रीवास्तव	विज्ञान परिषद् प्रयाग	१६२४-१६३४	५॥)
सौरपरिवार	गोरखप्रसाद	हिन्दुस्तानी एकेडेमी प्रयाग	१९३१	१२)
सौर साम्राज्य	विन्ध्येश्वरी प्रसाद	गृहलक्ष्मी प्रेस प्रयाग	१६२२	॥।=)

यंत्रकला और चित्रकारी

आविष्कारकी कहानियाँ	जगपति चतुर्वेदी	भारतीय पबलिशर्स पटना	१६३१	॥।)
मोटर विज्ञान	झुन्नालाल साहु	दरभंगा		१)
यांत्रिक चित्रकारी १	ओंकारनाथ शर्मा	उद्योग मन्दिर अजमेर	१६३३	३॥)
वायुयान	जगपति चतुर्वेदी	आदर्शग्रन्थमाला दारागंज, प्रयाग	१६३४	॥।)
वैक्युम ब्रेक	ओंकार नाथ शर्मा	उद्योग मन्दिर अजमेर	१६३३	१)
व्यंग्य चित्रण	रत्नकुमारी	विज्ञान परिषद् प्रयाग	१६३८	१)
हिन्दी मोटर गाइड	वि० गं० गोखले	मोटर मेकेनिक, जमखंडी	१६२३	१।)

गृहनिर्माण

भारतीय वास्तु विज्ञान	विध्येश्वरी प्रसाद मिश्र	डिस्ट्रिक्ट इञ्जीनियर पी० डबल्यू डी० ग्वालियर	१६३२	१॥)
सुलभ वास्तुशास्त्र	र० श्री० देश पांडे, कृ० र० गोखले	संगमनेर जि० अहमदनगर	१६३३	३)

प्राणिशास्त्र

अरुण शिखा कल्पद्रुम	रामनरेशसिंह	ईसनपुर प्रतापगढ़	१६२२	

कीट पतंगोंका वृत्तान्त		क्रिश्चियन लिटरेचर सोसायटी, प्रयाग १८६५)॥
कीड़े मकोड़े	भूपनारायण दीक्षित	गंगा पुस्तक माला लखनऊ १८२५ ॥=)
चींटी और दीमक	लक्ष्मी नारायण, दीनदयाल अवस्थी	मध्यभारत हिन्दी साहित्य समिति इन्दौर ।।।)
जंतु जगत	ब्रजेश बहादुर	हिन्दुस्तानी एकेडेमी प्रयाग १९३० ६॥)
जीवन विकास	सदाशिव नारायण दातार	सस्ता साहित्य मंडल अजमेर १९३० १)
पक्षी चित्रमाला		क्रिश्चियन लिटरेचर सोसायटी प्रयाग १८६५)॥
पक्षी परिचय	पारस नाथ सिंह	नवयुग साहित्य मन्दिर १९३३ १)
भूमंडलके प्राणी (१)	राधाचरण शाह	दुर्गा कुंड बनारस १९१८ ॥)
मक्खियोंकी करतूत		इंडियन प्रेस, प्रयाग १९२८ ।=)
मधु मक्षिका (१)	महावीर प्रसाद	भारत मित्र प्रेस, ९७ मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट कलकत्ता १९०३
वन पशुओंकी चित्रमाला		क्रिश्चियन लिटरेचर सोसायटी, प्रयाग १८६५
सर्प	श्यामापद बनर्जी	प्रयाग विश्व विद्यालय १९३५

वनस्पति, कृषि और गोधन

उद्भिजका आहार	एन० के० चटर्जी	विज्ञान परिषद् प्रयाग १९३१ ।)
उद्यान	शंकरराव जोशी	गंगा पुस्तकमाला लखनउ प्रसाद (२) १९२७ १॥=)
कृषि और उद्यानपद्धति	हेमचन्द्र देव	श्रीधाम नदिया १८३६ शक २॥)
कृषि कौमुदी	दुर्गाप्रसाद सिंह	नागरी प्रचारिणी सभा काशी १९१९ १॥)
कृषि विज्ञान (१)	शीतलाप्रसाद तिवारी	रामदयाल अग्रवाल १९२६ =)
कृषिसार	जगेश्वर प्रसाद सिंह	सरस्वती भंडार मुरादपुर, बांकीपुर १९१७ १)
कृषि शास्त्र	तेजशंकर कोचक	गवर्नमेण्ट कृषिविद्यालय बुलन्दशहर १९२४ २)
केसरकी खेती	रामनरेश सिंह	ईसनपुर, प्रतापगढ़
खाद	मुख्तार सिंह वकील	हिन्दी पुस्तक एजन्सी कलकत्ता १९१९ १)
खाद और उसका व्यवहार	गयादत्त त्रिपाठी	राधारमण त्रिपाठी १४ जवहरी मुहल्ला प्रयाग १९१५ ।)

गेहूँके गुण व पैदावारकी तरक्की	अलबर्ट हावर्ड	बैप्टिस्ट मिशन कलकत्ता	१९१२	=)
गोधन	गिरीशचन्द्र चक्रवर्ती	संस्कृत कालेज किशोरगंज, मैमनसिंह	१९२१	४)
गोपालन		इंडियन प्रेस प्रयाग		।।।)
गोरस और गोवर्धन शास्त्र	प्यारेलाल गर्ग, ग० स० फाटक	भास्कर काशीनाथ धारे, कृषि विद्यालय कानपुर	१९२०	२)
तरकारीकी खेती	शंकरराव जोशी	मध्य हिन्दी सहित्य समिति इन्दौर	१९२८	।।=)
पूसाके नये गेहुओंके बीज	हावर्ड	बैप्टिस्ट मिशन कलकत्ता	१९१४	
बाटनी याने वनस्पति विद्या	जे० डबल्यू० अलेकजेण्डर	मेयो कालेज अजमेर	१८९०	
भारतमें कृषि सुधार	दयाशंकर दुबे	हिन्दी पुस्तक एजन्सी कलकत्ता	१९२१	१।।।)
वनस्पति शास्त्र	केशव अनन्त पटवर्धन	मध्यभारत हिन्दी साहित्य समिति इन्दौर	१९२८	।।=)
वनस्पति शास्त्र, १,	महेशचरण सिंह	गुरुकुल कांगड़ी	१९११	१)
,, १, २	,,	,,	१९१५	२)
वर्षा और वनस्पति	शंकर राव जोशी	विज्ञान परिषद् प्रयाग		।)
हिन्दुस्तानमें लाखकी काश्त	सी० एस० मिश्र	सुपरि० गवर्नमेंट प्रिंटिंग, कलकत्ता	१९१४	।।)

वैद्यक और चिकित्सा

अभिनव निघंटु	दत्तराम चौबे	मानिक चौक मथुरा	१८९९	२।।)
आकृति निदान	जनर्दन भट्ट	हिन्दी पुस्तक एजन्सी काशी	१९२३	१।)
आयुर्वेद शब्दार्णव	गंगाप्रसाद शर्मा	भीमसेन शर्मा आर्य सिद्धांत प्रयाग	१८९५	१)
आयुर्वेदीय कोष १	रामजीतसिंह वैद्य	विश्वेश्वर दयाल, बरालोकपुर इटावा	१९३३	६)
आयुर्वेदीय खनिज विज्ञान	प्रतापसिंह	प्रकाश पुस्तकालय कानपुर	१९३१	३)
आरोग्य दर्पण (५ भाग)	जगन्नाथ शर्मा	आयुर्वेदोक्त ओषधालय प्रयाग	१९०५	१।।)
आसव विज्ञान	हरिशरणानन्द	पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी अमृतसर		१)
आहार शास्त्र	जगन्नाथप्रसाद शुक्ल	तरुण भारत ग्रंथावली, दारागंज प्रयाग	१९३३	२।।)
ओषधि विज्ञान (एलोपैथिक मटीरिया मेडिका)	महेन्द्रलाल गर्ग	सुख संचारक कंपनी, मथुरा	१९२८	६)
क्षयरोग, १,	शंकरलाल गुप्त	हिन्दी मन्दिर प्रयाग	१९३३	६)
घरका वैद्य	अत्रिदेव गुप्त	आनन्द बुक डिपो सुल्तानपुर	१९३६	१२)
चरक संहिता १, २,	,,	आर्य साहित्य मंडल अजमेर	१९३५	४)
चिकित्सा चन्द्रोदय १-७	हरिदास वैद्य	हरिदास एण्ड कम्पनी मथुरा (कलकत्ता)		

चिकित्सा सिन्धु	क्षेत्रपाल शर्मा	सुख संचारक कंपनी मथुरा		२।)
छूतवाले रोग	शिवरानी देवी	नागरी प्रचारिणी सभा काशी	१९०६	१)
जर्रांही प्रकाश १-२	लाडली प्रसाद हकीम	नाम यंत्रालय काशी	१८८५	
तिब्बे अकबर	अकबरअली खाँ	बंबई भूषण प्रेस मथुरा	१९२५	४)
त्रिदोष मीमांसा	हरिशरणानन्द	पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी अमृतसर	१९३४	१)
नरदेह परिचय	एम० भट्टाचार्य	इकानमिक फार्मेसी, ८४, क्लाइव स्ट्रीट, कलकत्ता	१९३४	१।।)
प्रकाश चिकित्सा	सुधीर कुमार मुकर्जी	प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग	१९३८	
परिभाषा प्रबोध	जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल	प्रकाश पुस्तकालय कानपुर	१९३३	१।)
फेंफड़ोंकी परीक्षा	शिवशरण वर्मा	धन्वन्तरि मन्दिर, फगवाड़ा, कपूरथला	१९२८	१।।)
बृहद् इञ्जेकशन चिकित्सा	रामविचार पांडेय	लेखक एण्ड कंपनी, बलिया	१९३६	३)
भारत भैषज्य रत्नाकर १, २	नगीनदास छगनलाल शाह	ऊँझा आयुर्वेददिक फार्मेसी अहमदाबाद	१९२८	४।।), ६।।)
भारतीय शल्य शास्त्र	अत्रिदेव गुप्त	प्रकाश पुस्तकालय कानपुर	१९३४	१)
मन्थर ज्वर	हरिशरणानन्द	पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी अमृतसर	१९२९	१)
मानवशरीर रहस्य १,	मुकुन्द स्वरूप वर्मा	नवलकिशोर प्रेस लखनऊ	१९२९	२।।)
मीजरन तिब्ब	कृष्णलाल	बंबई भूषण यंत्रालय मथुरा		१।।)
मूत्र परीक्षा	शिवशरण वर्मा	धन्वन्तरि मंदिर फगवाड़ा, कपूरथला	१९२७	१)
रस परिज्ञान	जगन्नाथप्रसाद शुक्ल	सुधानिधि दारागंज प्रयाग	१९२३	।।=)
रस योग सागर १-२	वैद्य हरिप्रपन्न	भास्कर औषधालय बंबई	१९२७,३०	१२),१०)
रसायन सार १,	श्यामसुंदराचार्य वैद्य	रसायनशाला काशी	१९१५	५।।)
राज यक्ष्मा	मुरारीलाल शर्मा	उमाशंकर त्रिपाठी, १० माल रोड लाहौर	१९३४	२।)
व्रण बन्धन व पट्टियाँ	शिवशरण शर्मा	धन्वन्तरि मंदिर, फगवाड़ा कपूरथला	१९२९	१।=)
विष विज्ञान	मुकुन्द स्वरूप वर्मा	हिन्दू विश्व विद्यालय, काशी	१९३२	१।)
शरीर रचना	भोलानाथ टंडन	होमियो० पबलिशिंग कं०, १४ मदन मोहन चटर्जी लेन कलकत्ता	१९३०	१।।)
संक्षिप्त शरीर विज्ञान	हेमंत कुमारी भट्टाचार्य	गंगा पुस्तकमाला लखनऊ	१९२४	।।=)
शल्य विज्ञान	मुकुन्द स्वरूप वर्मा	नन्दकिशोर एण्ड ब्रदर्स काशी	१९३१	३)
सचित्र इञ्जेकशन चिकित्सा	रमाकान्त त्रिपाठी	सुख संचारक कंपनी मथुरा	१९३३	१।)
सन्तान शिक्षा	रामचरण अग्रवाल	पुस्तक महल प्रयाग	१९३४	१।।)
सर्प विष विज्ञान	दलजीतसिंह वैद्य	रायपुरी चुनार	१९३१	१।)
हमारे शरीरकी कथा	बी० के० मित्र	विज्ञान परिषद् प्रयाग	१९२१	=)।।
हमारे शरीरकी रचना १-२	त्रिलोकीनाथ वर्मा	इंडियन प्रेस प्रयाग (४)	१९३७	२।।।), ४।)

पशु चिकित्सा

अश्वचिकित्सा	पक्षपालसिंह	डायमंड जुबली प्रेस अजयगढ़	१८९६	
करिकल्पलता	मंगलाचरण दीक्षित	वेंकटेश्वर प्रेस बंबई	१८९८	

गजशास्त्र	वीर विक्रमदेव	खरियार		
गोचिकित्सा	कार्त्तिक प्रसाद	हरिप्रकाश यंत्रालय काशी	१८६७	
ढोरोंकी बीमारियोंका इलाज	राजा लक्ष्मणसिंह	राजपूत एंग्लो ओरियंटल प्रेस आगरा	१६००	
तिब्बे हवानात	माधवराव सिंधिया	आलीजाह दरबार प्रेस ग्वालियर	१६१५	॥=)
पशुचिकित्सा	केशवसिंह	वेंकटेश्वर प्रेस बंबई	१८६६	
,,	मैकूलाल शर्मा	शाहाबाद हरदोई	१६१६	।)
,,	शिवचन्द्र मैत्र	मेडिकल आफिसर कालाकांकर	१८६४	॥)
मवेशीकी मुहलिक बीमारियों-की किताब	जे० एच० वी० हौलेन	गवर्नमेंट प्रेस प्रयाग (३)	१६०६	।)
महिषी चिकित्सा	राजा लल्लापजनसिंह जू देव	डायमंड जुबली प्रेस अजयगढ़	१६०६	
शालहोत्र संग्रह	केशवसिंह	वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई	१६०६	

अर्थशास्त्र

अर्थशास्त्र	बालकृष्ण	गुरुकुल कांगड़ी		
अर्थशास्त्र	ब्रजनन्दन सहाय वकील	नागरी प्रचारिणी सभा आरा	१६०६	
अर्थशास्त्र प्रवेशिका	गणेशदत्त पाठक	इंडियन प्रेस प्रयाग	१६०७	
करैन्सी	गौरीशंकर शुक्ल	सरस्वती ग्रन्थमाला बेलनगंज आगरा	१६२१	२)
ग्रामीय अर्थशास्त्र	ब्रजगोपाल भटनागर	हिन्दुस्तानी एकेडेमी प्रयाग	१६३३	४)
नामा लेखा और मुनीबी	कस्तूरमल बाँठिया	बाँठिया एण्ड कंपनी, कचहरी रोड अजमेर	१६३५	६)
पैसा	चन्द्रशेखर शर्मा	कृष्णप्रसादसिंह चौहरी मुरादपुर, बांकीपुर		।=)
भारतीय सहकारिता आन्दोलन	शंकरसहाय सक्सेना	बरेली कालेज बरेली	१६३५	२)
मुद्राशास्त्र	प्राणनाथ विद्यालंकार	नागरी प्रचारिणी सभा काशी	१६२३	२॥)
राजस्व	भगवानदास केला	हिन्दुस्तानी एकेडेमी प्रयाग	१६३७	१)
राष्ट्रीय आयव्यय शास्त्र	प्राणनाथ विद्यालंकार	ज्ञान मंडल, काशी	१६२२	३।)
विदेशी विनिमय	दयाशंकर दुबे	गंगापुस्तकमाला लखनऊ	१६२६	१)
विलायतकी हुंडी	एच० ए० घोष	पैट्रिक प्रेस, २८ कनवेण्ट रोड कलकत्ता	१८६७	१)
संपत्तिका उपभोग	दयाशंकर दुबे, मुरलीधर जोशी			
संपत्ति शास्त्र	महावीरप्रसाद द्विवेदी	इण्डियन प्रेस प्रयाग (२)	१६१६	२॥)

मिश्रित

आधुनिक आविष्कार	चन्द्र शेखर शास्त्री	साहित्य मंडल, बाज़ार सीताराम दिल्ली	१६३६	३)
आविष्कारकी बातें	,,	युगान्तर प्रकाशन समिति पटना	१६३७	॥)
आविष्कारोंकी कथा	श्रीनाथ सिंह	इंडियन प्रेस प्रयाग	१६३६	॥।)

उन्नतिके सिद्धान्त	सालिगराम वर्मा	वैज्ञानिक साहित्य मन्दिर प्रयाग	—	॥)
ज़मीन और आसमानकी बातें	अनु० विद्याभास्कर शुक्ल	सरस्वती सदन दारागंज प्रयाग	१९३४	।≈)॥
जीवट की कहानियाँ	श्याम नारायण कपूर	हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर बम्बई	१९३७	१)
पृथ्वी और आकाश	चन्द्रशेखर शास्त्री	साहित्य मंडल बाज़ार सीताराम दिल्ली	१९३६	३)
प्राकृतिक सौन्दर्य	कल्याण सिंह शेखावत	हिन्दी पुस्तक एजन्सी कलकत्ता	१९२६	२)
भूकवच	शंकर राव जोशी	गंगापुस्तक माला लखनऊ	१९३०	॥≈)
वायुपर विजय	जगपति चतुर्वेदी	रामदयाल अग्रवाल, प्रयाग	१९३१	१)
विज्ञान और आविष्कार	सुखसंपतिराय भंडारी	मध्यभारत हिन्दी साहित्य समिति इन्दौर	१९१९	१≈)
विज्ञानकी कहानियाँ	श्याम नारायण कपूर	नवशक्ति प्रकाशन मन्दिर पटना	१९३७	१),१॥)
विज्ञान वार्त्ता	गुलाब राय	गया प्रसाद एण्ड सन्स आगरा	—	१।)
विज्ञान वार्त्ता	महावीर प्रसाद द्विवेदी	नवल किशोर प्रेस लखनऊ	१९३०	१।≈)
विज्ञानहस्तामलक	रामदास गौड़	हिन्दुस्तानी एकेडेमी प्रयाग	१९३६	६॥)
विश्व परिचय	रवीन्द्रनाथ ठाकुर (हज़ारीप्रसद द्विवेदी)	विश्वभारती ग्रंथालय २१० कार्नवालिस स्ट्रीट कलकत्ता	१९३८	१)
वैचित्र चित्रण	महावीर प्रसाद द्विवेदी	नवल किशोर प्रेस लखनऊ	१९२८	॥≈)
सृष्टिकी कथा	सत्यप्रकाश	हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग	१९३७	१)
सृष्टि तत्त्व	सकल नारायण पांडेय	नागरी प्रचारिणी सभा आरा	१९०४	

विषय-सूची

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग ।

केवल कवर इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस, इलाहाबाद में छपा

जनवरी, १९३९

मूल्य ।)

भाग ४८,

संख्या ४

प्रयाग की विज्ञान-परिषद् का मुख-पत्र
जिसमें आयुर्वेद विज्ञान भी
सम्मिलित है

विज्ञान

पूर्ण संख्या २८६ | वार्षिक मूल्य ३)

नियम

(१) विज्ञान मासिक पत्र विज्ञान-परिषद्, प्रयाग, का मुख-पत्र है।

(२) विज्ञान-परिषद् एक सार्वजनिक संस्था है जिसकी स्थापना सन् १९१३ में हुई थी। इसका उद्देश्य है कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययन को प्रोत्साहन दिया जाय।

(३) परिषद् के सभी कर्मचारी तथा विज्ञान के सभी सम्पादक और लेखक अवैतनिक हैं। मातृ भाषा हिन्दी की सेवा के नाते ही वे परिश्रम करते हैं।

(४) कोई भी हिन्दी-प्रेमी परिषद् की कौंसिल की स्वीकृत से परिषद् का सभ्य चुना जा सकता है। सभ्यों को ५) वार्षिक चन्दा देना पड़ता है।

(५) सभ्यों को विज्ञान और परिषद् की नव-प्रकाशित पुस्तकें बिना मूल्य मिलती हैं।

नोट—आयुर्वेद-सम्बन्धी बदले के सामयिक पत्रादि, लेख और समालोचनार्थ पुस्तकें 'स्वामी हरिशरणानन्द, पंजाब आयुर्वैदिक फ़ार्मेसी, अकाली मार्केट, अमृतसर' के पास भेजे जायँ। शेष सब सामयिक पत्रादि, लेख, पुस्तकें, प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र तथा मनीऑर्डर 'मंत्री, विज्ञान-परिषद्, इलाहाबाद' के पास भेजे जायँ।

महत्वपूर्ण वैज्ञानिक साहित्य

मिलनेका पता विज्ञान-परिषद, इलाहाबाद

नोट—प्रत्येक पारसल पर डाकव्यय और ≡) रजिस्ट्री ख़र्च ग्राहकोंको देना पड़ता है इसलिये कृपया कम दामोंकी पुस्तकें वी. पी. से न मांगें

विज्ञान हस्तामलक—सीधी-साधी भाषामें अठारह विज्ञानोंकी रोचक कहानी और आजतककी अद्भुत बातोंका मनमोहक वर्णन। इस कृतिपर लेखकको मंगलाप्रसाद-पारितोषिक मिला था - ले० प्रो० रामदास गौड़, एम० ए० ६)

सुन्दरी मनोरमाकी करुण कथा—वैज्ञानिक कहानी—ले० श्री नवनिद्धराय, एम० ए० ~)॥

वैज्ञानिक परिमाण—नापकी एकाइयाँ; ग्रहोंकी दूरी आदि; देशोंके अक्षांश; तत्वका परिमाण घनत्व आदि; पदार्थोंके द्रवांक, शब्द संबंधी अनेक परिमाण दर्पण बनानेकी रीति, वस्तुओंकी वैद्युत बाधायें; बैटरियोंकी विद्युत-संचालक शक्तियां, इत्यादि-इत्यादि अनेक बातें तथा चार दशमलव अंकोंतक संपूर्ण लघुरिक्थ सारिणी—ले० डा० निहालकरण सेठी, डी० एस-सी० तथा डा० सत्यप्रकाश, डी० एस-सी० ॥।)

वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्द—४८२१ अंग्रेजी शब्दोंके हिन्दी पारिभाषिक शब्द—शरीर-विज्ञान ११८४, वनस्पति-विज्ञान २८८, तत्व ८६, अकार्बनिक रसायन ३२०, भौतिक रसायन १८१, कार्बनिक रसायन १४४६, भौतिक विज्ञान १०१६ ले० डा० सत्यप्रकाश, डी० एस-सी० ॥)

विज्ञान प्रवेशिका—विज्ञानकी प्रारंभिक बातें सीखनेका सबसे उत्तम साधन, मिडिल स्कूलोंमें पाठ्य-पुस्तक ।)

मिफ़ताह-उलफ़नून—विज्ञान प्रवेशिकाका उर्दू अनुवाद—ले० प्रो० सैय्यद मोहम्मद अली नामी, एम० ए० ।)

आविष्कार-विज्ञान—उन शक्तियोंका वर्णन जिनकी सहायतासे मनुष्य अपना ज्ञान भंडार स्वतंत्र रूपसे बढ़ा सके—ले० श्री उदयभानु शर्मा। पूर्वार्ध ॥=); उत्तरार्ध ॥।)

विज्ञान और आविष्कार—एक्स-रेज, रेडियम, भूपृष्ठ-शास्त्र, सृष्टि, वायुयान, विकासवाद, ज्योतिष आदि विषयोंका रोचक वर्णन और इतिहास—ले० श्री सुखसम्पतिराय भंडारी १=)

मनोरंजक रसायन—इसमें रसायन-विज्ञान उपन्यासकी तरह रोचक बना दिया गया है ले० श्री गोपालस्वरूप भार्गव एम० एस-सी० १॥)

रसायन इतिहास—रसायन इतिहासके संबंधमें १२ लेख—ले० श्री आत्माराम एम० एस-सी० ॥।)

प्रकाश-रसायन—प्रकाशसे रासायनिक क्रियाओंपर क्या प्रभाव पड़ता है—ले० श्री वी० वी० भागवत १॥)

दियासलाई और फ़ॉस्फ़ोरस—सबके पढ़ने योग्य अत्यंत रोचक पुस्तक—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम० ए० ~)

ताप—हाई स्कूलमें पढ़ाने योग्य पाठ्य-पुस्तक—ले० प्रो० प्रेमवल्लभ जोशी, एम० ए० तथा श्री विश्वम्भरनाथ श्रीवास्तव, एम० एस-सी०। चतुर्थ संस्करण ॥=)

हरारत—तापका उर्दू अनुवाद—ले० प्रो० मेंहदीहुसेन नासिरी, एम० ए० ।)

चुम्बक—हाई स्कूलमें पढ़ाने योग्य पाठ्य-पुस्तक—ले० प्रो० सालिग्राम भार्गव, एम० एस-सी०; द्वतीय संस्करण सन् १९३८ ॥)

पशुपक्षियोंका शृङ्गार-रहस्य—लेखक श्री सालिग्राम वर्मा, एम० ए०, बी० एस-सी० -)

जीनत वहश व तयर-पशुपक्षियोंका शृङ्गार-रहस्य-का उर्दू अनुवाद—अनु० प्रो० मेंहदी हुसेन नासिरी, एम० ए० -)

चींटी और दीमक—सर्व-साधारणके पढ़ने योग्य अत्यंत रोचक पुस्तक—ले० श्री लक्ष्मी नारायण दीन-दयाल अवस्थी ।।।)

सूर्य-सिद्धान्त—विस्तृत ब्योरा अन्यत्र देखें—ले० श्री महाबीरप्रसाद श्रीवास्तव, बी० एस्-सी०, एल० टी०, विशारद सजिल्द ५)
सजिल्द ५।।)

सृष्टिकी कथा—सृष्टि के विकासका पूरा वर्णन—ले० डा० सत्यप्रकाश, डी० एस्-सी० १)

सौर-परिवार—विस्तृत विवरण अन्यत्र देखें—ले० डा० गोरखप्रसाद, डी० एस-सी० १२)

आकाशकी सैर—ले० डा० गोरखप्रसाद, डी० एस्-सी० विस्तृत विवरण अन्यत्र देखें ।।।)

समीकरण-मीमाँसा—एम० ए० गणित के विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य पुस्तक—ले० पं० सुधाकर द्विवेदी, प्रथम भाग १।।)
दूसरा भाग ।।=)

निर्णायक (डिटर्मिनैंट्स)—एम० ए० के विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य पुस्तक—ले० प्रो० गोपाल केशव गर्दे एम० ए०, और श्री गोमतीप्रसाद अग्नि-होत्री, बी० एस्-सी० ।।)

बीजज्यामिति या भुजयुग्म रेखा-गणित—एफ-ए० गणितके विद्यार्थियोंके लिये—ले० डा० सत्यप्रकाश, डी० एस-सी० १)

क्षय-रोग—क्षय-रोगसे बचनेके उपाय—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी० एस-सी०, एम० बी० बी० एस० -)

क्षय-रोग—विस्तृत विवरण अन्यत्र देखिये, ले० डा० शंकरलाल गुप्त, एम० बी० बी० एस० ६)

शिक्षितोंका स्वास्थ्य व्यतिक्रम—पढ़े-लिखे लोगोंको जो बीमारियाँ अक्सर होती हैं उनसे बचने और अच्छे होनेके उपाय—ले० श्री गोपालनारायण सेनसिंह, बी० ए०, एल० टी० ।)

ज्वर, निदान और शुश्रूषा—सर्व साधारणके पढ़ने योग्य पुस्तक—ले० डा० बी० के० मित्र, एल० एम० एस० -)

स्वास्थ्य और रोग—विस्तृत विवरण अन्यत्र देखें-ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा ६)

हमारे शरीरकी रचना—विस्तृत विवरण अन्यत्र देखें-ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, प्रथम भाग २।।।=)
द्वितीय भाग ४=)

स्वास्थ्य-विज्ञान—गृहनिर्माण, वायु, जल, भोजन, स्वच्छता, कीटाणु, छूतवाले रोग, स्वास्थ्य आदिपर सरल भाषामें विशद तथा उपयोगी विवेचन—ले० कैप्टेन, डा० रामप्रसाद तिवारी, हेल्थ ऑफिसर, रीवाँ राज्य। ३)

स्वस्थ शरीर—प्रथम खंड—मनुष्यके अस्थिपंजर, नस, नाड़ियाँ, रक्ताणु, फुफ्फुस, वृक्क, पेट, शुक्राशय आदिका सरल वृत्तांत और स्वास्थ्य-रक्षाके नियम। दूसरा खंड—व्यक्तिगत स्वास्थ्य-रक्षाके उपाय—ले० डा० सरजूप्रसाद तिवारी, और पं० रामेश्वर-प्रसाद पाण्डेय, प्रथम खंड २)
द्वितीय खंड २।)

आसव विज्ञान—वैद्योंके बड़े कामकी पुस्तक—ले० स्वामी हरिशरणानन्द १)

मन्थर ज्वरकी अनुभूत चिकित्सा—वैद्योंके बड़े कामकी पुस्तक—ले० स्वामी हरिशरणानन्द १)

त्रिदोष मीमांसा—यह पुस्तक मुख्यतया वैद्योंके कामकी है, किन्तु साधारण जन भी विषय ज्ञानके नाते इससे बहुत लाभ उठा सकते हैं-ले० स्वामी हरिशरणानन्द १)

क्षार-निर्माण-विज्ञान-क्षार-सम्बन्धी सभी विषयों-का खुलासा वर्णन—ले० स्वामी हरिशरणानन्द ।)

लघुतरंगोंके उपयोगसे विविध लाभ

चित्र १—लघुतरङ्ग चिकित्साका एक यंत्र

चित्र ३—लघुतरङ्गसे कर्ण चिकित्सा

(क) (ख)

चित्र २—बगलकी फुड़ियाँ

(क) लघुतरङ्ग क्षेत्रसे अप्रभावित

(ख) लघुतरङ्ग क्षेत्रसे ६ बार प्रभावित होनेके बाद।

(देखो पृष्ठ २६)

चित्र ४ – लघुतरङ्गसे फुफ्फुस चिकित्सा
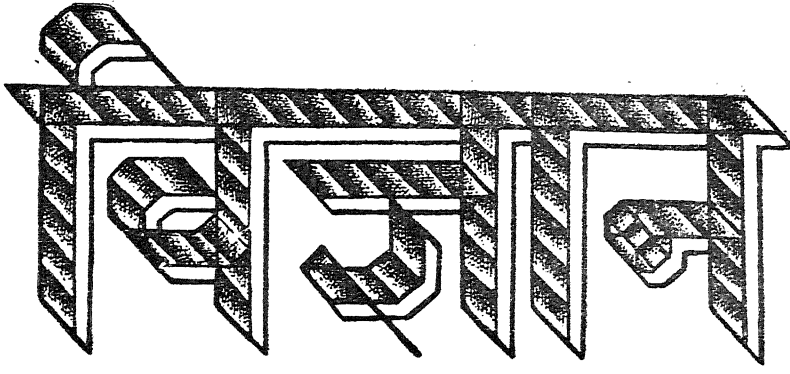
विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ४८	प्रयाग, मकरार्क, संवत् १९९५ विक्रमी जनवरी, सन् १९३९	संख्या ४

मद्यपानसे भयंकर हानियाँ

(ले०—डा० सत्यप्रकाश, डी० एस-सी०)

मद्य या शराबके यों तो बहुतसे उपयोग हैं जिनका पूरा विवरण देनेके लिये बहुतसा स्थान चाहिये, पर इस समय हम इस पदार्थकी मीमांसा केवल एक दृष्टिसे करेंगे। वह दृष्टि है—इससे प्यासको बुझाना। अमीर गरीब दोनों किसी न किसी प्रकारकी शराबको पीकर अपनी प्यासको बुझाना चाहते हैं, और इसमें उनकी अतुल सम्पत्ति नष्ट हो जाती है। इस देशमें तो भोजनके साथ पानी पीनेकी प्रथा है, पर अनेक सभ्य देशोंमें भोजनके समय शराब पी जाती है, और उस समय पानी पीना लोग सभ्य शिष्टाचारके प्रतिकूल समझते हैं। यह फैशन अच्छी श्रेणीके घरानोंमें यहाँ भी प्रचलित होती जा रही है। दावतों और पार्टियोंमें शिष्टाचारके नाते लोग इसका ग्रहण करने लगे हैं। गरीब लोग महुआसे देशी शराब बना कर उससे अपनी तृप्ति करते हैं, और बिना इसके उनके उत्सव फीके ही समझे जाते हैं। हम इस लेखमें कुछ ऐसी बातोंका उल्लेख करना चाहते हैं जिससे लोग मद्य या शराब संबन्धी वैज्ञानिक सत्यताको समझ जायं।

पानी जीवनका आधार है ?

विकासवादी बताते हैं कि जीवनका आरंभ पानीसे ही हुआ। बिना पानीके कोई भी जीवित नहीं रहता है। पानी सबके जीवनका आधार है। यदि किसी भी शरीर धारीको पानीसे वंचित रक्खा जाय तो उसके शरीरमें विष बनने लगता है और यह विष उसके लिये घातक हो जाता है। प्रत्येक प्राणीके लिये आवश्यक है कि उसके शरीरमें पानीका सतत-प्रवाह बहता रहे। अतः प्यासका होना तो प्रत्येक जीवधारी प्राणीका एक लक्षण है। प्यासको बुझानेकी प्रवृत्ति नैसर्गिक है। प्यासका लगना स्वास्थ्यका चिह्न है। प्यासका बुझाना परम आवश्यक क्रिया है। प्यास बुझे, बस यह लालसा प्राणी जीवनकी अति महत्व पूर्ण लालसा है। प्यास बिना पता भी न चलेगा कि शरीरमें विष संग्रह हो रहा है।

पानीका काम पानीसे ही चल सकता है।

मनुष्यकी प्यास पानीसे ही बुझती है, और पानीसे ही बुझानी चाहिये। यह प्यास किसी और द्रवसे न

बुझेगी, न तो शराबसे न किसी ओषधिसे, न किसी भोजनसे और न किसी भी प्रकारके रासायनिक पदार्थसे। आप कितने भी अमीर क्यों न हों, आप चाहे कितना भी धन लुटानेको क्यों न तैयार हों, आपकी प्यास संसारके किसी और बहु मूल्यवान पदार्थसे नहीं बुझ सकती है, यदि बुझेगी तो केवल पानीसे। किसी और चीज़से प्यास बुझानेका प्रयत्न करना मृगतृष्णा-मात्र है, भयंकर भूल है। शराब पीनेके लिये जिस रागात्मक उत्सुकताको "प्यास" कहा जाता है, वह वस्तुतः प्यास नहीं है, वह प्यास शराब पीनेसे बुझती नहीं है, वह तो आगमें घीकी आहुति डालना है। प्यास शब्दका उपयोग मद्यपानके साथ करना वैज्ञानिक भूल भी है और साहित्यिक भी।

दोनों प्रकारकी प्यासोंमें भेद

आप कहेंगे, कि शराबमें भी तो पानी है, हलकी शराब प्यासको बुझा सकती है। इस बातको हम एक उदाहरणसे भली प्रकार समझ सकते हैं। मान लीजिये, आपने हाकी, फुटबाल गोल्फ आदि किसी खेलमें, या दिन भर कुलीगीरीके परिश्रममें अपनेको थका डाला। अब आपको प्यास लगी, और आपने हलकीसी शराब, बेयर, पी ली। इस समय आपकी यह प्यास पानीसे, संतरा या नींबूसे या चायसे, किसी भी पानीसे युक्त पदार्थसे बुझाई जा सकती है, आपकी मांस पेशियोंके जलमें परिश्रमके कारण जितनी कमी हो गई है, वह पानीसे ही पूरी की जाती है। एक तो यह प्यास है। अब दूसरी अवस्था देखिये। आप मित्र मंडलीमें बैठे हैं, आपके शरीरको किसी प्रकारका श्रम नहीं हुआ है, आपके शरीरमें पानीकी समुचित मात्रा है, पर फिर भी आपके मनमें उल्लास उत्पन्न हुआ, आपने वह हलकी शराब, बेयर, मंगाई, और आप उससे तृप्त होकर आनन्द अनुभव करने लगे। अब आप देखिये, दोनों समयके शराब पीनेमें कितना अंतर है। पहली थकी हुई अवस्थामें आपके शरीरका लक्ष्य बेयरमें युक्त पानीकी ओर था। वह प्यास बेयरके मादक अंशके प्रति नहीं, प्रत्युत उसमें स्थित पानीके प्रति थी। पर दूसरी अवस्थावाली उत्सुकता जिसे आप भूलसे "प्यास" कह बैठा करते हैं, बेयरमें स्थित जलके प्रति नहीं, प्रत्युत उसके मादक द्रव्यके प्रति है। यह प्यास नारंगीके रससे या चायसे या पानीसे नहीं बुझ सकती है। वस्तुतः पहली प्यास ही स्वास्थ्यकर असली प्यास है, और यह दूसरी प्यास, प्यास नहीं, मृगतृष्णा है, धोखा और भ्रम है। शरीर विज्ञानकी दृष्टिसे दोनों प्यासें बिलकुल अलग-अलग हैं।

भूख प्यासकी पहचान

प्रत्येक समझदार आदमीको समझना चाहिये कि वह कब भूखा या प्यासा है। वे अमीर लोग बड़े अभागे हैं जो बिना भूखके खाते और बिना प्यासके पीते हैं। भूख और प्यासमें स्वस्थ जीवनके लक्षण हैं। भूख कब लगी है, इसकी पहचान आसानीसे की जा सकती है। किसी भूखे को कोई साधारणसी चीज़ खानेको दीजिये। वह उसे तृषित दृष्टिसे ग्रहण कर लेगा। चीज़ पाते ही उसके मुँहमें पानी आने लगेगा और वह स्वादसे भोजन कर जावेगा। वह साधारण भोजन किसी अफरे आदमीको दीजिये तो वह धन्यवाद पूर्वक उस चीज़ को लौटा देगा, उसके मुँहमें साधारण भोजनके उपस्थित होनेपर पानी न आवेगा, और न भोजनमें उसे स्वाद ही मिलेगा।

पानी पीनेके लिये तो मुँहमें कभी पानी नहीं भर आता है, क्योंकि पानीके पचानेके लिये लाला ग्रन्थियोंके स्राव-लार-की आवश्यकता नहीं होती है। यह बात तो भोजनके ही लिये है। प्यासकी तो यही पहचान है कि शुद्ध जल मनुष्यके सामने उपस्थित कीजिये। यदि वह प्यासा होगा तो जल ग्रहण करके पी जायगा यदि प्यासा न होगा तो वह धन्यवाद पूर्वक क्षमा मांग लेगा। शुद्ध पानीके प्रति यह व्यवहार ही प्यासकी असली पहचान है। प्यासकी पहचान शरबत, शराब या दूध देकर नहीं की जा सकती, क्योंकि ये चीज़ें तो मनुष्य बिना प्यासके भी पी लेता है। शुद्ध कोरे जलसे ही पता चल जावेगा कि मनुष्य प्यासा है या नहीं। प्यासा आदमी तो बिना संकोचके आपसे पानी पीनेको मांग लेगा। प्यासमें भूल बहुत कम होती है। आपके मित्र आपके यहाँ भोजनका कभी उतना आग्रह नहीं करते जितना कि पानीका। यही नहीं, जब आपका मित्र आपसे पानी मांगे तो समझना

चाहिये कि उसे निश्चित रूपसे प्यास लगी है, और आप उसका विश्वास कर सकते हैं। पर यह बात खाना माँगनेमें नहीं होती है। मित्र लोग तो बिना भूखके ही आपके यहाँ मौज उड़ानेको खाना खाना चाहते हैं। उनका यह आग्रह सच्चा आग्रह नहीं है। पर प्यासे मित्रके पानीके प्रति आग्रहमें अधिक सचाई है और आप उसकी प्यासपर विश्वास कर सकते हैं।

शराबकी प्यास प्यास नहीं, एक लत है

मान लीजिये, किसी व्यक्तिने पहले-पहले आज शराब दस बजे भोजनके साथ पी, और शामको भी भोजनके साथ वह शराब पी गया। अब दूसरे दिन, भोजनके साथ उसने पानी पिया। कई गिलास पानी पीनेपर भी उसके मनमें यह भाव उठेगा कि उसकी तृप्ति नहीं हुई. वह भूलसे अपनी इस भावनाको इस प्रकार प्रकट करेगा कि उसने पानी तो पिया पर उसकी "प्यास" नहीं बुझी। यह प्यास वस्तुतः प्यास नहीं है, क्योंकि यह पानीसे बुझ ही नहीं सकती। यह भली प्रकार स्मरण रखिये कि वह प्यास प्यास नहीं है जो जलसे बुझ न सकती हो। उसकी यह झूठी प्यास ही बादको लत पड़ जाती है। बादको शराब पीनेके उपरान्त फिर पीनेवालेको "असली" प्यास भी लगने लगती है। शराबके बाद हमको प्यास क्यों लगती है, यह बात हम आगे समझेंगे।

शराब स्वयं पानी पीती है

आप यह सुनकर आश्चर्य करेंगे कि शराब भी पानी पीती है। शराबको अपनी प्यास बुझानेके लिये पानी चाहिये। यह बात रसायनज्ञ आपको समझा सकेंगे। आपने देखा होगा कि बरसातमें खुला पड़ा नमक हवासे पानी लेकर गीला-गीला हो जाता है, बात यह है कि आपके नमकमें कुछ ऐसी चीज़ें मिली रहती हैं जो पानीकी प्यासी होती हैं। गन्धकका शुद्ध तेज़ाब हवामें खुला रख छोड़िये, धीरे-धीरे यह हवामें पानी पीता रहता है, और यह हलका पड़ जाता है। यही बात शराबमें है। "शुद्ध" शराब जिसे 'एबसोल्यूट एलकोहल' कहते हैं, पानीका बड़ा प्यासा होता है, जहाँ इसे पानी मिलेगा, यह पी जायगा, इसमें तूतियाका नीला रवा डालिये। यह रवेका पानी पी जायगा और रवा सफ़ेद पड़ जायगा। शुद्ध एलकोहलमें भी थोड़ासा पानी मिला रहता है, एक या आधा प्रतिशत, और यह पानी इसमेंसे दूर करना बड़ा कठिन काम है। एलकोहलकी प्यास बुझाना साधारण बात नहीं है। अतः यह याद रखना चाहिये कि शराब स्वयं पानी पीती है।

शराबके बाद मनुष्यको प्यास क्यों लगती है ?

हमने ऊपर देखा कि शराब या एलकोहलको पानीसे कितना स्नेह है। दोनोंमें घनिष्ट मित्रता है। एलकोहलसे पानीको सर्वथा पृथक् करना इसीलिये कठिन होता है। शराब और पानीकी इस घनिष्ट मित्रताके कारण ही शराबी आदमीको इतनी अधिक प्यास लगती है!

आपकी त्वचामें पानी है, यह तो आप जानते ही हैं। आप अपने मुँहकी त्वचापर थोड़ासा शुद्ध शराब यानी एबसोल्यूट एलकोहल लगाइये. थोड़ी देरमें ही जलन आरंभ होगी, आपकी त्वचा जल-सी जायगी। उसका पानी एलकोहल सोख लेगा। बस जो लोग तेज़ शराब पीते हैं, उन्हें आप समझ गये होंगे कि क्यों जलन युक्त एक विशेष स्वादका अनुभव होता है। पेटमें भी भी जाकर ऐसी ही जलन उत्पन्न होती है। इस बातको ऐसे कहना चाहिये कि एलकोहल आपकी त्वचासे पानी लूट कर अपनी प्यास बुझानेका प्रयत्न कर रहा है। आपके प्राकृतिक शरीरमें पानीकी कमी हो सकती है और इसीलिये इस कमीको दूर करनेके लिये ही आपको और प्यास लगती है।

लुटेरो शराब खूनको भी लूटती है

हमने देखा कि एलकोहल त्वचासे पानीको लूट कर ले लेता है। पेटमें पहुँच कर शराब अंतड़ियोंसे पानी सोखती है, और अपनी प्यास थोड़ीसी बुझाकर अब यह रुधिरमें पहुँचती है। शराब अब रुधिरके पानीको लूटकर पीना आरंभ करती है।

आप यह जानते ही होंगे कि शरीरमें इतना पक्का विधान है, कि जहाँ तक बन पड़ता है, रुधिर अपने संगठनको स्थायी रखता है। रुधिरमें चीज़ोंकी मात्रा जहाँ

कम पड़ी, यह कहींसे भी उस कमीको पूरा करनेका प्रयत्न करता है। अब, शराबने रुधिरमें से जब जल पीलिया, तो जो कुछ पानीमें कमी हुई रुधिर अपनी नसोंसे मांग लेता है। फल यह होता है, कि असली नुकसान रुधिर वाहिनी नसों और धमनियोंका होता है। शराब पीने वालोंकी ये धमनियाँ और नसें सूखती जाती हैं। नसोंसे अगर बाकी पानी न मिला तो शरीरके अन्य अंगोंसे और विशेषतः गुर्देसे रुधिर पानी लेने लगता है। अब आप समझ गये होंगे कि लुटेरी शराब शरीरके अंग प्रत्यंगमें पानीकी भयंकर लूट किस प्रकार मचाना आरम्भ कर देती है।

शराबके कारण पानीका दिवाला

यह लूट यहीं समाप्त नहीं होती। जिन त्वचा ग्रन्थियोंसे पसीना निकलता है, उनसे पसीनेके साथ थोड़ीसी शराब भी निकलने लगती है। इस शराबके कारण पसीनेवाली ग्रन्थियाँ अधिक उत्तेजित और अधिक क्रिया शील हो जाती हैं। इनसे पानी अब अधिक मात्रामें बाहर विसर्जित होने लगता है। इस लिये शरीरकी त्वचा और अधिक सूखने लगती है। शरीरमें पानीकी मात्रा और कम हो जाती है। इस प्रकार शरीरमें अन्दर और बाहर पानीकी लूट मच जाती है।

शराबके पाचनसे विष बनता है

पानीकी कमी तो शरीरमें हो ही जाती है, और भी प्रकारसे शराब हानि पहुँचाती है। जैसे वायुकी सहायतासे भोजन पचता है, उसी प्रकार एलकोहल भी पचता है। इस प्रक्रियाको रासायनिक भाषामें ओषदीकरण कहते हैं। यदि एलकोहलके ओषदी करणमें जल और कर्बन द्विओषिद ही बनता, तो कोई विशेष हानि नहीं थी, पर यहाँ तो बात ही दूसरी है। इस ओषदीकरणसे शराब अनेक विषैले पदार्थोंमें परिणत हो जाती है। शराबसे अतः दोनों प्रकारसे घाटा होता है। एक तो यों ही पानीकी कमी हुई, और फिर ये विष भी बनवाये। इन विषोंको शरीरसे विसर्जित करनेके लिये और पानीकी आवश्यकता है। पर पानीके अभावमें ये विष शरीरमें इकट्ठे होने लगते हैं, और परिणाम अन्तमें बड़ा भयंकर होता है।

शराब प्यासको बुझाती नहीं, बढ़ाती है।

अब आप समझ गये होंगे कि शराबसे प्यास बुझती नहीं प्रत्युत बढ़ती है। आरम्भमें जिस चीजका सेवन प्यास बुझानेकी दृष्टिसे किया जाता है, वह आगे चलकर पानीके लिये लूट मचा देती है, और फल होता है कि प्यास बढ़ती ही जाती है। आप यह तो समझ ही गये होंगे कि इस प्यासमें और उस प्यासमें जो स्वास्थ्यके लिये हितकर है कितना अन्तर है। पहली प्यास तो शरीरकी प्यास हैं, और यह दूसरी प्यास तो शराबकी प्यास है। इसकी प्यासको आप क्या बुझायेंगे, यह शरीर ही को बुझा डालेगी। अतः शराबसे प्यास बुझाई नहीं जाती, यह तो बढ़ाई जाती है। प्यासको इस धोखा धड़ीसे बचना चाहिये।

शराबकी लालसा अप्राकृतिक है

अब आप यह समझ गये होंगे कि पानी तो स्वास्थ्यके लिये आवश्यक है, और इसकी प्यास तो स्वाभाविक प्यास है। शराब पीनेकी लालसा अप्राकृतिक है। शरीर स्वभावतः शराब पीनेके लिये कभी उत्सुक नहीं होता है। मनुष्य अपने बनावटी जीवनके कारण शराब पीनेकी लत पैदा कर लेता है। लोग उसे स्वादके लिये, संम्मूच्छके संवेदनाके लिये, कभी उसकी सुन्दर सुगन्धके लिये पीते हैं। कभी-कभी मनुष्य अपनी मनोमय प्रवृत्तियोंके लिये पीते हैं। लोग इसको पीकर जीवनकी शान्तिका आनन्द उठाना चाहते हैं, कोई इसकी आड़में अपने दुःख और झंझटोंको भूलनेका प्रयत्न करते हैं।

शराबीकी पापमय व भयंकर कृत्योंकी ओर प्रवृत्ति

राज विधानमें दुष्कृत्योंके लिये तो दंड विधान है, पर अधिकांश अंशोंमें शराब पीनेके लिये कोई दंड नहीं है। शराब पीकर मनुष्यकी प्रवृत्ति भयंकर कृत्योंकी ओर हो जाती है। अतः शराबीके प्रति तो दंडका विधान और भी अधिक क्रूर होना चाहिये। इस संबन्धमें एक विद्वान अमरीकन वैज्ञानिकका कथन इस प्रकार है—

"Pity, sympathy, medical skill, all forms of noble things, love and

knowledge, are wasted on such a person. What he needs is punishment and punishment of a harsher kind than public opinion of the present day, which is so pitiless to his children would tolerate."

अभिप्राय यह है कि शराबीके प्रति किसी प्रकारकी दया एवं सहानुभूति दिखानेकी आवश्यकता नहीं है, उसके लिये तो अत्यन्त कठोरमय दंड विधान होना चाहिये।

शराब शक्तिकी दात्री नहीं है

शराब शरीरकी शक्तियोंको चूस जानेवाली चीज़ है। इससे शरीरको जो स्फूर्ति मिलती है, वह क्षणिक है, और शरीरके लिये अन्ततोगत्वा हानिकर है। यह स्फूर्ति मनुष्यको भ्रममें डालनेवाली है। शरीरकी संचित शक्तियोंका इससे ह्रास हो जाता है, और पाचन शक्ति शीघ्र क्षीण पड़ जाती है। मन विक्षिप्त और बुद्धि चेतना-शून्य हो जाती है।

शराबियोंपर रोगोंका आक्रमण

ईथर या क्लोरोफार्मके समान एलकोहल प्रोटोप्लाज़िमक विष है, अर्थात् सचेष्ट कोष्ठोंको यह नष्ट करनेका प्रयत्न करता है। जिस यीस्ट या ख़मीर -जामन- से जौ आदिसे शराब बनायी जाती है, यह यीस्ट तक अधिक शराब बन जानेपर नष्ट हो जाता है। शराब इस प्रकार अपने जन्मदाताको भी घातक प्रभावसे नहीं छोड़ती। एलकोहलके बहुतसे अच्छे उपयोग भी हैं, इसकी विद्यमानता-में निर्जीव पदार्थ सुरक्षित रखे जा सकते हैं क्योंकि वे बचे रहते हैं। पर यह बात ही बताती है कि सचेष्ट सजीव कोष्ठ अपना कार्य्य शराबकी विद्यमानतामें अच्छी प्रकार नहीं कर सकते। हमारे शरीरके समस्त व्यापार इन सचेष्ट कोष्ठोंकी क्रियाओंपर ही निर्भर हैं।

हमारे शरीरके रक्तमें श्वेत कण सदा घूमते रहते हैं। ये कण रोगोंसे बचानेमें सदा सहायक होते हैं। जब किसी रोगके कीटाणु रक्तमें मिल जाते हैं तो इन श्वेत रक्ताणुओंसे उन रोगाणुओंका प्रतिरोध करनेवाले अष्टु-विशेष उत्पन्न हो जाते हैं। इन अणुओंमें और रोगाणुओंमें संघर्ष आरम्भ होता है। हमें रक्तके इन श्वेत कणोंको रक्त साम्राज्यकी तैयार सेना समझनी चाहिये। पर जैसा हम कह चुके हैं; एलकोहलसे सचेष्ट कोष्ट मर जाते हैं, और एलकोहलकी विद्यमानतामें रक्तके श्वेतकणोंकी संख्या कम हो जाती है और जो रह जाते हैं, वे भी अति क्षीण हो जाते हैं। इसका प्रभाव यह होता है कि शराबी-पर रोगका आक्रमण शीघ्र होता है और इन लोगोंके रोग दूर करनेमें बड़ी कठिनता होती है। प्रकृति स्वयं जिस विधिसे रोगका उपचार करती है, वह शराबीके शरीरमें ठीक तरहसे नहीं होने पाता। शराबियोंकी रोगके प्रति सहन शीलता कम हो जाती है। प्रो० मेकनीकौफ़-ने पाश्च्यूर-प्रयोग शालामें बहुत दिनों हुए सिद्ध कर दिया था कि रुधिरमें एलकोहलकी बहुत सूक्ष्म मात्रा ही क्यों न मिला दी जाय, श्वेत रक्ताणु उसकी विद्यमानतामें निश्चेष्ट हो जाते हैं, और अपना कार्य्य ठीक रूपसे नहीं कर सकते।

रक्तके श्वेताणु ही नहीं, प्रत्युत अन्य कण भी स्वास्थ्यके लिये किसी न किसी प्रकार हितकर हैं। पर मद्यकी विद्यमानतामें इनकी भी क्रियाशीलता क्षीण पड़ जाती है। फल यह होता है कि स्वास्थ्यको निरंतर हानि होती रहती है।

डाक्टरोंने यहाँ तक दिखाया है कि मन्थर ज्वर या टायफायड, हैज़ा, टिटेनस आदिके रोगोंमें जो इनजेक्शन (या सुइयाँ) दी जाती हैं, या टीका लगाये जाते हैं, उनका प्रभाव शराबियोंपर देरसे और कठिनतासे पड़ता है। प्रो० मेकनिकाफ़ने यहाँ तक कहा है कि कुत्ते काटेका इलाज पाश्च्यूर विधिसे और लोगोंपर जो बहुधा सर्वदा सफल होता है, पर जब-जब इस उपचारमें असफलता मिली, तो पता चला कि ऐसे रोगी वे थे जो शराब पीनेके अभ्यासी थे।

पहले यह रीति थी कि न्यूमोनिया, टायफायड आदि बीमारियोंमें एलकोहलकी मात्रा विशेष दी जाती थी अमरीकामें जहाँ अस्पतालोंमें एलकोहलका जितना व्यय होता था वहाँ अब उसका सौवाँ हिस्सा भी नहीं होता। सन् १८९७ से १९०६ के बीचमें ही मैसाचुसेटसके

अस्पतालमें एलकोहलका खर्चा ७१ प्रतिशत कम होगया। पहले वनस्पतिक ओषधियोंके रस एलकोहलमें घोल कर देनेकी अधिक प्रथा थी, पर अब एलकोहलके दूषित प्रभावके कारण यह प्रथा भी उड़ गयी है। एलकोहलकी विद्यमानतामें दवायें ठीक प्रभाव नहीं कर सकती हैं। यह उल्लेखनीय बात है कि इन अस्पतालोंमें एलकोहल-का ख़र्चा जहाँ कम हो रहा है, दूधका ख़र्चा बढ़ता जा रहा है।

न्यूमोनियाके रोगियोंमें तो यह बात अनेक प्रयोग करके देखी गई है कि मृत्यु संख्या मद्यपी लोगोंमें लगभग अमद्यपी लोगोंकी अपेक्षा १५ प्रतिशत अधिक रही।

इंगलैण्डमें चिकित्सक सर टामस फ्रेज़र इस बातपर बल दिया करते थे कि ज्वरमें एलकोहल देना लाभ कर होता है। वे कहते थे कि ज्वरकी अवस्थामें शरीरको भोजन मिलना ही चाहिये पर और कोई भोजन पच नहीं सकता है। वे एलकोहल भोजनके रूपमें देना चाहते थे। पर अब यह सिद्ध किया जा चुका है, कि भोज्य पदार्थके रूपमें एलकोहलका कोई महत्व नहीं है। ज्वरमें हृदयकी शक्तिपर सदा ध्यान रखना चाहिये, पर एलकोहल हृदय-पर दूषित प्रभाव डालता है।

क्षय रोगमें भी एलकोहल पहले अच्छा समझा जाता था क्योंकि यह माना जाता था कि क्षय रोगके कीटाणु इसकी विद्यमानतामें नष्ट होने लगते हैं। पर यह धारणा भी ग़लत निकली। डा० डिकन्सनके इस सम्बन्धमें ये शब्द हैं:—

"We may conclude and that cnfidently, that alcohol promotes tubercle, not because it begets the bacilli, but because it impairs the tissues and makes them ready to yield the attacks of the parasites."

आपका कहना है कि एलकोहलकी विद्यमानतामें अंगोंकी सहनशीलताका ह्रास हो जाता है, और उनपर क्षय कीटाणुओंका प्रभाव शीघ्रतासे होने लगता है। फिलाडेलफियाके फिलिप्स इन्सटीट्यूटमें भी यह देखा गया कि बिना मद्यवाले रोगी मद्यपी रोगियोंकी अपेक्षा ३०-४० प्रतिशत अधिक अच्छे हुए। न्यूयार्कके डा० एस० ए० क्नोपफ जो यक्ष्माके विशेषज्ञ हैं, कहते हैं—

"Alcohol has never and never cured tuberculosis. It will either prevent or retard recovery."

अर्थात् मद्यसे यक्ष्मा कभी नहीं अच्छा हो सकता। इसके कारण या तो रोग अच्छा ही न होगा, और या अच्छे होनेमें विलम्ब ही होगा।

पेरिसमें 'अन्तर्जातीय-यक्ष्मा-कांग्रेस' जो हुई उसने सर्व सम्मतिसे यह प्रस्ताव स्वीकृत किया था कि

The fight against tuberculosis must everywhere be continued with the fight against alcoholism",

अर्थात यक्ष्मासे बचाव तभी संभव है जब लोगोंसे मद्यपान छुड़ाया जाय। पेरिसके बाद रोममें जो इसी कांग्रेसका दूसरा अधिवेशन हुआ वहाँ भी इसी बातपर ज़ोर दिया गया।

कांग्रेस-सरकारका कर्त्तव्य

हमारे देशके कई प्रान्तोंमें सौभाग्यसे इस समय शासनका अधिकार राष्ट्रीय व्यक्तियोंके हाथमें है, और यह हर्षका विषय है कि मादक द्रव्योंके प्रचारको कम करने-का प्रयत्न किया जा रहा है। अन्य सामाजिक बुराइयाँ मद्य-पानके कारण तो होती ही हैं, और यह प्रश्न आर्थिक महत्वका भी है। आवश्यकता है कि अस्पतालों और मेडिकल कालेजोंमें मद्य संबन्धी दूषित प्रभावोंकी हमारे देशमे तालिका बनाई जाय। इसके संबन्धमें वैज्ञानिक शैलीपर अनुसंधान आरंभ किये जायँ। लोगोंमें यह विश्वास फैलाया जाय कि मद्य पेय पदार्थके रूपमें तो हानिकर है ही, ओषधियोंमें भी इसका प्रयोग बहुधा हानिकर ही है। मद्यपर जितना प्रतिरोध लगाया जाय उतना ही उचित है।

देवदारु और दियारमें भेद

(ले० श्री स्वामी हरिशरणानन्द जी)

इस वृक्षका कौनसा हिस्सा उपयोगी है? इसके सम्बन्धमें हमें अपने ग्रन्थोंसे कुछ पता नहीं लगता। हम जानते हैं कि प्रायः बाजारमें मिलनेवाला तालीसपत्र देवदारु वर्गकी वनस्पति है जिसके पत्ते व पत्तेके पासकी लकड़ियां बाजारमें बिकती हैं। किन्तु देवदारु नामसे इस वृक्षका या इसी वर्गके किसी वृक्षका काष्ट बाजारमें मिलता है। जो चीज़ बाजारमें मिलती है जिसका उपयोग वैद्य मात्र करते हैं, चाहे वह अच्छी हो या बुरी (क्योंकि हमारे पास इसके देखनेका अच्छा रासायनिक साधन नहीं) सब देखा देखी उसीका व्यवहार करते हैं।

बाजारमें अब तक जितने भी देवदारु नामसे काष्ट मिलते हैं उनकी यांत्रिक परीक्षासे पता लगता है कि वह सब एक ही वृक्षके काष्ट नहीं होते। कोई तो दियारका काष्ट होता है कोई कैलका, कोई रैंका, कभी कोई देवदारु का भी मिल जाता है।

अभी कुछ दिनका जिक्र है, मेरे कारखानेसे एक औषध निर्माण शालाको देवदारु भेजा गया उन्होंने उसे देखकर वापस कर दिया और अपना देवदारुका नमूना भेजा। वह कैलकी गांठें थीं, जिनमें तैल काफी होता है। उसे देखकर उसके साथका माल भेजनेमें मेरे द्वारा असमर्थता प्रकट की गई। उन्होंने कहा कि हम तो इसीको देवदारु नामसे वर्त्तते हैं।

हम तालीस पत्रके वर्णनमें* बतला चुके हैं कि देवदारु वर्गमें कोई ११ के लगभग ऐसे वृक्ष हैं जिनका वाह्य दृष्टिसे कुछ रचना साम्य है। किन्तु, समस्त वृक्ष न तो एक जैसे रूपवाले हैं न उनके परस्पर गुण स्वभाव मिलते हैं। न इनकी परस्पर गन्ध ही मिलती है। मैं काश्मीरसे लेकर नैपाल तककी बर्फानी तराइयोंमें फिर चुका हूँ। असली देवदारुके वृक्ष सब स्थानोंमें नहीं होते। कई व्यक्ति दियार (सेड्रस लिबानी) को देवदारु समझते हैं। किन्तु यह दियार देवदारु नहीं देवदारुको पाइनस-देवदारु कहते हैं। यह बद्रीनारायणकी तरफ ही या नैपालकी ओर अधिक पाया जाता है। इसको वहां पहाड़ी लोग देवदारके नामसे ही पुकारते हैं।

दियार और देवदारुमें भेद

दियार और देवदारुके वृक्ष तो एक जैसे होते हैं। किन्तु पत्ते दियारसे देवदारुके कुछ छोटे और मोटे होते है वृक्ष भी ऊंचाईमें दियारसे देवदारुके कुछ छोटे होते हैं। देवदारुवर्गकी लकड़ियोंमें सबसे अच्छी लकड़ी तुर्गकी है उससे उतर कर दियारकी लकड़ी मानी जाती है। काष्टगर दियार और देवदारुके काष्टमें यह अन्तर बतलाते हैं कि दियार और देवदारु दोनों लकड़ियोंके रेशे अपने वर्गकी सब लकड़ियोंसे बारीक होते हैं किन्तु दियारकी लकड़ी नक्काशीके काममें देवदारुकी अपेक्षा खुदाईमें अच्छी रहती है दियारकी अपेक्षा देवदारुकी लकड़ी ज्यादा नरम होती है और पानीमें इससे जल्दी खराब हो जाती है। दियारकी लकड़ीका स्वाद कड़ुवा होता है देवदारुकी लकड़ीका स्वाद फीका होता है। दियारमें चीड़के तरहकी एक विशेष गन्ध आती है। देवदारुमें अजवायनके साथ मिलती जुलती भीनी-भीनी गन्ध आती है। इन दोनोंके स्वाद और गन्ध ऐसी हैं जो साधारण यांत्रिक परीक्षासे जानी जा सकती हैं।

बंगालवाले तो एबिकस वेकिआनाके काष्टको देवदारुके नामसे प्रयोग में लाते हैं। और इसके पत्तोंको तालीसपत्रके नामसे वर्त्तते हैं। पंजाबकी एक दो प्रसिद्ध फार्मेसियां विठर जूनि पेरसको ग्यूनिस नामक इसी वर्गकी एक अन्य लकड़ीको—जिसमें तेलका भाग अधिक होता है और जिसमेंसे जूनिपर तैल निकलता है, इसको व्यवहारमें लाते हैं। हम इस वर्ष देवदारुके पत्र मंगाकर उसकी भी परीक्षा लेना चाहते हैं कि इसमें तथा इसकी लकड़ीमें गुणोंमें क्या अन्तर है। विशेष विवरण हम रासायनिक परीक्षाके पश्चात् देंगे।

---

* 'विज्ञान', जुलाई १९३८

किन्तु, यह निश्चत बात है कि देवदारु दियार नहीं। देवदारके जो शहतीर हरिद्वारमें बिकते हैं उनपर दो L-D का निशान होता है—और दियारके शहतीरपर एक D० का निशान लगा होता है। देवदारु हरिद्वारमें गंगा जीके मार्गसे ही नीचे पहुँचता है। पंजाबमें इसकी लकड़ीके शहतीर नहीं आते। न इसकी लकड़ी ही बिकनेको आती है। कैल, दियारकी लकड़ियां ही अधिक तर देवदारुके नामसे बेची जाती हैं।

मनुष्यकृत हीरे

(ले० श्री व्रजवल्लभ जी)

हममेंसे अधिकतर अब भी हीरेका बनाना एक स्वप्न समझते हैं परन्तु विज्ञानमें खोज करते-करते और सिर्फ इस विचारको रखते हुये कि हीरा कोयलेका सबसे शुद्ध रूप है हमारे वैज्ञानिकोंने आज इसपर भी विजय पाली है।

मैकफरसन कालिज मैकरफरसन (कैनसस) की रसायनशालाके सबसे बड़े प्रोफेसर डाक्टर जे० विलर्ड हरपेने अपने विद्यार्थियोंकी सहायतासे गत नौ वर्षोंमें पचास हीरोंसे अधिक बनाये हैं। उन हीरोंमें सबसे छोटे हीरेका व्यास एक मिलीमीटर यानी करीब ·०४ इंच है और सबसे बड़ा हीरा दो मिलीमीटर लम्बा डेढ़ मिलीमीटर चौड़ा और एक मिलीमीटर ऊँचा है और उसका वजन $\frac{1}{30}$ कैरट है। यह हीरा अरबी गोंदके कोयले (गम अरेबिक कारबन) को पिघले हुये लोहेमें डालकर और तत्पश्चात् उसको नमकके पानीमें ठंडा करके तैयार किया गया है।

डाक्टर हरपेकी सम्मति है कि हीरोंको बड़े पैमानेपर बनानेमें टैकनिकल कठिनाइयोंके अतिरिक्त और किसी कठिनताका सामना नहीं करना पड़ेगा। वह इस समय भी अपने विद्यार्थियोंके साथ इस ओर बहुत खोजकर रहे हैं और उनको पूर्ण आशा है कि वह हीरोंको बड़े पैमानेपर बनानेमें अवश्य उत्तीर्ण होंगे।

मोयसाँकी विधि

हीरेके बनानेमें और भी बहुतसे वैज्ञानिक काम कर रहे हैं। श्री जे० बी० हैन्ने ग्लासगो विद्यालयके प्रोफेसर भी १८७९ ई० से इस ओर खोजकर रहे हैं और अब उनको भी हीरेके बनानेमें सफलता प्राप्त हो गई है। सबसे प्रथम इस ओर खोज करनेवाले वैज्ञानिकोंमें फ्रांसीसी मिस्टर हैनरी मोयसाँ थे। उन्होंने बहुत समय तक इस पर खोज की और फिर १८९६ ई० में वह बहुत ही छोटे-छोटे हीरेके कण बना सके। उनका सबसे बड़ा हीरा $\frac{3}{100}$ इंच व्यासका था। उनका क्रम यह था कि वह बिजलीकी भट्टीमें २०००° शतांशके तापक्रमपर कोयले और लोहेको गरम करते थे, कोयला पिघले लोहेमें घुल जाता था और उस पिघले हुये ढेरको वह बहुत जल्दीके साथ ठंडा करते थे।

डा० हरपेकी विधि

मैकफरसन कालिजके डाक्टर हरपेने १९२३ ई० में एक अखबारमें यह पढ़कर कि हीरा कभी नहीं बनाया जा सकता एक उसके बनानेका संकल्प किया। उन्होंने उसके बनानेकी एक रीति सोचा और उसे अपने ऊँची कक्षाके विद्यार्थियोंको बतलाया और अपने साथ उनको काम करनेके लिये उत्तेजित किया। उनकी हीरा बनानेकी रीतिमें एक बिजलीकी भट्टीका होना आवश्यक था जिसका तापक्रम ४०००से ५००० डिगरी शतांश होना चाहिये। परन्तु विधिवश ऐसी भट्टी न तो यूनाइटेड स्टेटस अमरीकामें और न यूरोपमें मिलती थी। इस कारण उनको ओषजन-उद्जनकी जलती हुई टार्चको काममें लाना पड़ा, परन्तु उस टार्चका ओषजन कोयलेको उस इच्छित तापक्रम तक पहुँचनेसे पहले ही जल कर समाप्त हो जाता था। इससे तो डाक्टर साहबको एक नई कठिनाईका सामना करना पड़ा। उन्होंने टार्चको प्रयोग न करते हुये फिर

भट्टीके निर्माणका कार्य्य प्रारम्भ किया। इसलिये उन्होंने अग्निजितकी ईंटें स्टीलकी प्रयोगशालासे एकत्रित कीं और अपनी एक बिजलीकी भट्टी बनाई। परन्तु भाग्यवश उसकी बिजली खर्च करनेकी ताकत इतनी अधिक थी कि कालिजकी बिजली उसके लिये काफी न थी और इस कारण म्यूनिसपेलिटीके बिजलीघरमेंसे इसके लिये बिजली ली गई। तदनुसार उनकी भट्टीने काम दिया परन्तु वह भट्टी उस तापक्रम तक पहुंचनेसे पहले ही पिघलकर एक ढेरके रूपमें हो गई।

इन सब कठिनाइयोंका सामना करते हुये भी डा० साहबने हिम्मत न हारी और आगामी पाँच वर्ष उन्होंने भट्टीके लिये सामान एकत्रित करनेमें व्यतीत किये। शिकागोके एक मनुष्यने उनको भट्टी निर्माण करनेका पूर्ण विश्वास दिलाया और इसलिये सब अमरीकाकी फेक्टरियोंने डाक्टर साहिबको मुख्य प्रकारके स्टीलके लोहे भेंट दिये। बहुत अधिक कार्य करनेके बाद भट्टी बन कर तैयार हुई। उस भट्टीका तापक्रम अधिक-से-अधिक ४००० शतांश तक पहुंचाया जा सकता था। ग्रेफाइटके रूपके कोयलेसे उन्होंने कटोरी और उसके अन्दरके द्रव्य-को चलाते रहनेके लिये छोटे-छोटे डण्डे तैयार किये।

सात जून १९२९ ई० को इस ग्रेफाइटकी कटोरीमें एक मिश्र गरम करनेके लिये रक्खा गया। इस मिश्रणमें दो भाग रसायन पूर्बक शुद्ध किये हुये लोहेकी किरचियोंका और एक भाग शुद्ध खाँडके कोयलेका था।

यह कटोरी एक घंटा ७ मिनट तक गर्म की गई, जिसके उपरान्त यह जमा देनेवाले हिम-मिश्रणमें ठंडी की गई। जमा हुआ कोयला और लोहा उस द्रव्यमेंसे निकाल लिया गया और लगातार ३०० घंटों तक लोहेको मिलाने-के लिये यह गन्धक और शोरेके तेजाबमें डाला गया। इससे बचा हुआ भाग जो कि अधिकतर कोयला और ग्रेफाइट ही था बहुतसे तेजाबोंमें मिलाया गया और फिर लगातार दो दिन तक खुर्दबीनसे देखनेके पश्चात् इनमें दो पत्थर पाये गये। इनकी डाक्टर साहबने जाँच करके हीरे बतलाये और फिर यह वाशिंगटनके नेशनल ब्यूरो आफ स्टेण्डर्डसमें जाँच करनेके लिये भेजे गये। वहाँपर वह फिर जाँचमें लाये गये और अन्तमें उनके बिलकुल शुद्ध रूपके प्रथम प्रकारके हीरे होने की घोषणा कर दी गई।

उस समयसे मैकफरसन कालिजके विद्यार्थी अपने गुरुदेव डाक्टर हरषेके संरक्षणमें इस ओर प्रयोगकर रहे हैं। उन प्रयोगोंमें वे अनेकों प्रकारके अलग-अलग कोयले को घोलनेके लिये द्रव्य काममें ला रहे हैं और अनेक रीतियोंसे वह कार्य्य कर रहे हैं।

इन्हीं वर्षोंमें उन्होंने शुद्ध लोहा, पीतल, चाँदी, निकल वा स्टील, मांगनीज़का स्टील, टेङ्गस्टन, अलु-मूनियम और दक्षिणी अफरीकाके हीरोंकी खानकी नीली मिट्टीका प्रयोग कोयलेको घोलनेमें किया परन्तु इन सब चीजोंमें लोहेकी किरचियोंको ही सबसे अच्छा पाया गया। पीतलमें लोहा नहीं घुल सकता। टेङ्गस्टन धातुके प्रयोगमें कठिनाई यह पड़ी कि दो घंटे तो टेङ्गस्टनको अपने आप ही पिघलनेमें लग गये और इतने समयमें बहुतसा कोयला भाप बनकर उड़ गया। राँगाके प्रयोगसे उनको अन्तमें हीरा न मिल सका क्योंकि राँगा और कोयला मिलकर लैड कारबाइडके रूपमें परिणत हो गया। चाँदीमें कोयला घुल ही न सका। अलुमुनियममें कोयला मिलकर एक नई वस्तु अलुमूनियम कारबाइडके रूपमें हो गया। हीरेकी खानकी नीली मिट्टीको उन्होंने यह विचार करके प्रयोग किया था कि कहीं प्राकृतिक रूपके हीरोंके बनानेमें इस मिट्टीका भी भाग हो। परन्तु प्रयोग करनेपर उन्हें इसमें सफलता प्राप्त नहीं हुई।

इन्हीं वर्षोंमें उन विद्यार्थियोंने खाँडके कोयलेके स्थानपर अरबीके गोंदके कोयलेका प्रयोग किया है। इसमें उनको बहुत ही अधिक सफलता हुई। उसका मुख्य कारण यह है कि इस गोंदके कोयलेमें खाँड़के कोयलेकी अपेक्षा अधिक परमाणु एक अणुमें होते हैं। उन्होंने साधारण कोयले, लकड़ीके जलजानेके पश्चात् बचे हुये कोयले, काजलके कोयले और बहुतसे अनेक प्रकारके कोयलोंपर प्रयोग किया है परन्तु अन्तमें वह गोंदके कोयलेको ही मुख्य कहते हैं।

इसी प्रकार उन्होंने बर्फ और नमकके घोलके स्थानपर नोषजन और ओषजनका द्रव रूपमें प्रयोग किया परन्तु इन सबसे अच्छा नमकका पानी ही सिद्ध हुआ।

डाक द्वारा विक्री

(सर्व हकूक लेखकको स्वाधीन)

(ले०—श्री मूलजी कानजी चावड़ा संपादक, श्री लक्ष्मी पुस्तक माला सीनुगरा-कच्छ)

कोई भी वस्तु तैयार करनेके बाद सबसे प्रथम कठिनाई उसकी विक्री करनेकी है। वस्तु चाहे कितनी भी सुन्दर और अच्छी बनी हुई हो परन्तु जब तक उसकी विक्री न हो तब तक तैयार करनेवालेको उससे फायदा नहीं मिलता है। ज्यों-ज्यों चीजकी विक्री बढ़ती जाती है त्यों-त्यों वह वस्तु तैयार करनेमें फायदा भी बढ़ता रहता है। इसी लिये वस्तुकी विक्री जहां तक हो सके बहुत जल्दी और बड़े परिमाणमें करनेकी बड़ी ज़रूरत है।

वस्तुओंकी विक्री करनेकी अनेक पद्धतिओंमेंसे एक पद्धति डाक द्वारा विक्री करनेकी है। इसी रीतिसे चीजों-की विक्री यूरोप, अमेरिका इत्यादि देशोंमें बड़े परि-माणमें हुआ करती है। वहां इस पद्धतिका प्रचार दिन प्रतिदिन बढ़ता ही जाता है।

भारतमें भी डाक द्वारा विक्रीकी रीति बहुत आव-श्यक और महत्वकी है क्योंकि यहांकी जन संख्याका बड़ा हिस्सा उसके सात लाख गांवोंमें रहता है। उसमेंसे कितने ही गांव रेल्वे स्टेशनसे बहुत दूरीपर स्थित हैं। इस लिये इन गांवोंमें उत्पन्न होनेवाली चीजोंकी विक्रीके लिये सिर्फ डाक ही एक साधन है। क्योंकि डाकखाना लगभग सब बड़े-बड़े गांवोंमें होनेकी वजहसे वह बहुत उपयोगी हो सकता है। मान लिया जाय कि रेशमके कीड़े अगर गांवोंमें पाले जाय और उनसे तैयार किया हुआ कपड़ा गांवोंमें ही तैयार किया जाय तो भी उसकी विक्री डाक द्वारा हो सकती है। क्योंकि वह कीमती और वजनमें हलका होनेकी वजहसे उसकी विक्री डाक द्वारा करनेमें लाभ हो सकता है। ऐसे दूसरे अनेक उद्योग हैं जो गांवोंमें हो सकते हैं और मालकी बिक्री डाक द्वारा हो सकती है। इसी वजहसे अपने यहां डाक द्वारा विक्री करनेकी रीति खास करके अति महत्वकी और उपयोगी है।

ऊपर लिखे लाभोंके अतिरिक्त कितने और ही खास लाभ डाक द्वारा चीज़की विक्री करनेमें है। इन कारणों-की वजहसे यूरोप अमेरिकाकी तरह अपने देशमें भी डाक द्वारा चीजकी विक्री करनेकी रीतिका जहाँ तक हो सके बहुत जल्दी प्रचार होवे उसके लिये प्रयत्न करनेको प्रोत्सा-हन देनेकी आवश्यकता है।

अपने देशमें डाक द्वारा विक्री करनेकी रीति कुछ वर्ष हुए प्रचलित हुई है लेकिन अब तक उसका प्रचार जितना चाहिये उतना नहीं हुआ है क्योंकि यहांकी बस्तीका बड़ा हिस्सा अनपढ़ है। डाक द्वारा विक्री करनेके लिये जिस वस्तुका विज्ञापन दिया जाता है उसको बहुत थोड़े ही लोग पढ़ते हैं। डाक द्वारा विक्री करनेमें विज्ञापनोंकी आवश्यकता बहुत है क्योंकि ग्राहक बनानेके लिये केवल यही एक अनिवार्य साधन है।

यहाँके वर्त्तमान पत्रोंका प्रचार बहुत कम होनेकी वजहसे बहुतसे पत्रोंमें विज्ञापन देने पड़ते हैं और इससे खर्चा ज्यादा होता है। इसी वजहसे अपने देशमें डाक द्वारा चीज़ोंकी विक्री बहुत कम होती है क्योंकि ज्यादा पत्रों में विज्ञापन देनेका खर्चा ज्यादा होता है। इससे विज्ञापन किसी अमुक पत्रोंमें देनेकी वजहसे ग्राहक कम मिलते हैं। इससे ग्राहक संख्याके हिसाबसे विज्ञापनका ख़र्च ज्यादा पड़ता है।

इसके सिवाय डाकके पार्सल और पत्र व्यवहार इत्या-दिकी दर भी दूसरे देशोंके मुकाबिलेमें और भारतवासियों-की गरीबीको देखकर ज्यादा ही कही जा सकती है। कुछ देशी राज्योंमें राज्यका अपना डाकखाना है और उनकी दर सरकारी डाकखानेके दरसे कम भी है परन्तु उस दरकी मर्यादा उस राज्यके अंतर्गत ही है और चीज़ोंके ग्राहक बहुधा दूर देशस्थ होनेकी वजहसे डाक द्वार विक्री करने-वालोंको उपयोगके नहीं हो सकते। तिसपर भी डाक द्वारा विक्री करनेका कुछ काम इनसे चल ही सकता है।

डाक द्वारा विक्री करनेवालोंको खास फायदा यह है कि उनको दूकान किरायेपर रखनेकी ज़रूरत नहीं है। सामानको व्यवस्थित रखनेके लिये फर्नीचरकी जरूरत भी नहीं है। दिया बत्ती वगैरहके खर्च का भी बहुत कुछ बचाव होता है और दूकानपर हाजिर रहनेकी भी ज़रूरत नहीं होती है।

डाक द्वारा विक्री करनेकी इच्छा रखनेवालोंको दुकान भाड़ा दिया बत्ती, फर्नीचर वगैरहमें जो मासिक खर्च पड़ता है उतना ही खर्च ग्राहक बनानेके लिये, चीज़ों-के विज्ञापन देनेमें करना चाहिये। इस तरहसे बहुत ग्राहक संख्या बढ़ सकती है।

ग्राहकोंका ऑर्डर पत्र द्वारा आवे उसीके मुताबिक वस्तु वी० पी० से पोस्ट पार्सल या रेल्वे पार्सलसे उनको भेजी जाती है। वी० पी० स्वीकार न की जाय और पार्सलके खर्चमें नाहक घाटापड़े, इसी वजहसे बहुतसे लोग ऑर्डरके साथही कुछ एडवान्समें पैसा ले लेते हैं। वस्तु वी० पी० से भेजनेमें प्रथम पैसा लेकर डाकखाना पार्सल मालिकको सौंपता है लेकिन जो पार्सल स्वीकार न किया जाय तो पार्सल भेजनेवालोंको पार्सल खर्चका पैसा—जो भेजने-वालेने पहिले ही खर्च कर दिया है– उसका ही सिर्फ नुकसान होता है। तिसपर भी वी० पी० में खास फायदा यह है कि बिना पैसे मिलनेपर वस्तु ग्राहकको सौंपी नहीं जाती है।

हमारे देशमें इस पद्धतिको अप्रमाणिक लोगोंको तरफ-से कुछ अंश तक नुकसान पहुँचाया जा रहा है। यह लोग आकर्षक लेकिन झूठे विज्ञापन समाचार पत्रोंमें देकर लोगोंको ठग रहे हैं। इसी वजहसे एक बार ठगा हुआ आदमी सच्चे विज्ञापनोंका भी विश्वास करनेमें डरता है। इस वजहसे डाक द्वारा विक्री करनेवालोंको नुकसान होता है। इसलिये समाचार पत्रोंमें सच्चे विज्ञापन ही छपने चाहिये जिससे डाक द्वारा विक्रीकी पद्धतिको प्रोत्सा-हन मिले।

डाकखानेकी तरफसे भी इस पद्धतिको प्रोत्साहन मिले इसके लिये डाककी दरोंमें भी कमी करनेकी ज़रूरत है। डाककी दरोंमें कमी होनेसे इस पद्धतिका ज्यादा प्रचार होगा और उससे डाकखानेको ज्यादा काम मिलने-की वजहसे डाकखानेको ज़्यादा ही फायदा होगा।

डाक द्वारा चीज़ोंकी विक्री करनेवाले लोग नौकरी पेशा या धंधाके आरंभ करनेवाले युवक ही नहीं होते हैं, बड़े-बड़े व्यापारी भी होते हैं लेकिन इस पद्धतिका फायदा खासकर नौकरी पेशा लोगोंको और युवकोंको ज्यादा मिलता है क्योंकि नौकरीपर नियमित समयपर उपस्थित होनेके कारण वे लोग दुकान नहीं खोल सकते हैं। इसी प्रकार युवकोंको जिन्होंने धंधा आरंभ ही किया है, दुकान चलानेका खर्च चलाना मुश्किल है इसलिये इन दोनों वर्गके लोग अपने धंधोंका आरंभ डाक द्वारा विक्रीसे करते हैं और जब विक्री बढ़ती जाती है तब दुकान चलाने-की हिम्मत करते हैं। इसलिये इन लोगोंको प्रोत्साहन देनेके लिये भी डाक द्वारा विक्रीकी पद्धतिको अवश्य प्रचलित करना चाहिये।

ग्रन्थियोंके अन्तःस्राव

हौरमोनोंके चमत्कार

[ले०—डा० सत्यप्रकाश, डी० एस-सी०]

आजकलके चिकित्सा-युगमें दो बातें सुननेमें बहुत आती हैं, एक तो भोजनके सम्बन्धमें विटेमिनोंका नाम, और दूसरा स्वास्थ्यके संबंधमें हौरमोनोंका जिन्होंने "ओकासा" का विज्ञापन पढ़ा है, वे इस बातसे भली प्रकार परिचित होंगे कि शरीरके भिन्न-भिन्न अंगोंसे विविध ग्रन्थि-रस स्रवित होकर रुधिरमें मिलते रहते हैं, और इन रसोंका पर्याप्त मात्रामें होना स्वास्थ्य और शौर्यके लिये आवश्यक है। यदि रस उचित मात्रामें न निकलें, तो शरीरकी वृद्धि रुक जाती है।

शरीरमें दो प्रकारकी ग्रन्थियां हैं। एक तो प्रणाली-युक्त (नसवाली) जिनसे रस बाहरकी ओर निकलकर आता है। लाला-ग्रन्थि जिससे लार निकलती है, इसी प्रकारकी एक ग्रन्थि है। इन ग्रन्थियोंका स्राव 'बहिःस्राव' कहलाता है। दूसरे प्रकारकी ग्रन्थियाँ प्रणाली-विहीन हैं और इनका स्राव बाहर नहीं निकल कर आता। इनका रस अन्दरही रुधिर या लसीकामें स्रवित हो जाता है, और रुधिरके साथ अन्य आवश्यक स्थानोंपर पहुँच जाता है। इन ग्रन्थियोंके स्रावका नाम 'अन्तःस्राव' है। चुल्लिका ग्रन्थि, श्लैष्मिक ग्रन्थि आदि इसी प्रकारकी ग्रन्थियाँ हैं। सबसे पहले क्लौड बर्नार्ड ने दोनों प्रकारकी ग्रन्थियोंका अन्तर स्पष्ट किया। बादको सन् १८८९में ब्राउन सेक्वार्ड ने अण्डकोषोंके अतःस्रावोंपर विस्तृत काम किया और तबसे इस विषयको विशेष प्रोत्साहन मिला। उस समयसे अब तो लोगोंको यह विश्वास हो गया है कि शरीरके स्वस्थ रखने और भोजन-पदार्थोंके ठीक उपयोग होनेमें जितना महत्व इन स्रावोंका है उतना और किसीका नहीं।

हौरमोन या ओजस् पदार्थ क्या है ?

लोगोंकी यह धारणा है कि इन ग्रन्थियोंसे एक विशेष रासायनिक पदार्थ निकला करता है जो रुधिरके साथ जाकर शरीरके अन्य अंगोंमें पहुँचता है. और वहाँ पहुंचकर उन अंगोंको सचेष्ट करता रहता है। इस प्रकारके रासायनिक पदार्थोंको स्टार्लिंगने हौरमोन नाम दिया है जिसे हम ओजस् कह सकते हैं। हर एक प्रणाली-विहीन ग्रन्थिसे एक विशेष हौरमोन निकलती है, और इस हौरमोनका एक विशेष उद्देश्य होता है। यह हौरमोन रुधिर या लसीका (लिम्फ) के साथ जाकर किसी दूरस्थ अंगको क्रिया-शील बनाती रहती है। इन हौरमोनोंमें और बहिःस्रावोंके रसोंमें विशेष अन्तर है। यह अन्य प्रक्रियाओंके उत्तेजित करनेवाले प्रोटीनके बने हुये प्रेरकजीव (एञ्जाइम) नहीं हैं। इन्हें रासायनिक रस जैसे क्षारोद (एलकेलायड) या अन्य कार्बनिक ओषधियोंके समान रस समझना चाहिये जो स्वयं अपना कार्य्य करते हैं।

शैफरका कहना है कि शरीरके अन्दर कुछ ग्रन्थियोंसे ऐसे भी हौरमोन निकलते हैं जो किसी दूरस्थ अंग को सचेष्ट नहीं, प्रत्युत निश्चेष्ट किया करते हैं। इनका नाम उसने चैलोन रक्खा है।

चुल्लिका और उपचुल्लिका ग्रन्थियाँ

टेंटुएके दोनों ओर अण्डाकार दो चुल्लिका ग्रन्थियाँ (थायरोयड) स्थित रहती हैं और ये स्वर-नालसे संयुक्त रहती हैं। ये ५-६ सैण्टीमीटर लम्बी होती हैं। प्रत्येक चुल्लिका-ग्रन्थिके साथ ६-७ मिलीमीटर लम्बी दो-दो उपचुल्लिका ग्रन्थियाँ (पैरा-थायरोयड) होती हैं। इन दोनों ग्रन्थियोंसे अन्तःस्राव होता रहता है।
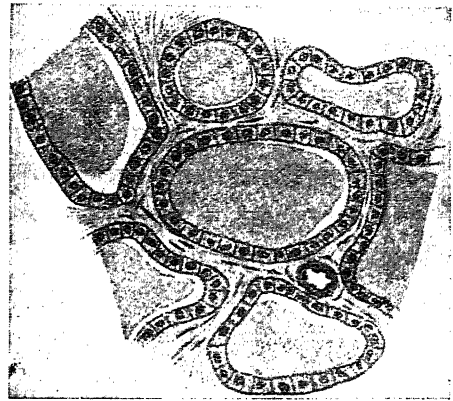
चित्र १—कुत्तेकी चुल्लिका ग्रन्थिका एक दृश्य

यदि प्रौढ़ पशुमें उप-चुल्लिका-ग्रन्थियाँ रहने दी जायं पर चुल्लिका ग्रन्थियाँ अलग कर दी जायँ, तो पशु मरेगा नहीं, पर उसके पाचन-संस्थानमें एक विशेष परिवर्तन हो जायगा। भोजनका पाचन ४० प्रतिशतके लगभग तक कम हो जायगा। वह प्रौढ़ पशु शनैः शनैः क्षीणकाय हो जायगा। यदि पशु बच्चा ही है, तो चुल्लिका ग्रन्थि निकाल देनेपर उसकी बाढ़ मारी जाती है, और उसकी हड्डियाँ ठीक नहीं बनने पाती हैं। पशुका कद छोटा रह जाता है, और वह दुर्बल प्रतीत होता है। यदि चुल्लिका-ग्रन्थि शरीरके किसी दूसरे स्थानमें फिर लगा दी जाय, या इस ग्रन्थिका रस रुधिरमें सुई द्वारा पहुंचाया जाय तो क्षीण पशुकी वृद्धि फिर ठीक प्रकारसे होने लगती है।

यदि पशुओंको चुल्लिका-ग्रन्थिका रस खिलाया जाय या सुई द्वारा शरीरमें पहुंचाया जाय तो उसकी पाचन

शक्ति बढ़ने लगती है। भोजनका ओषदीकरण बहुत बढ़ जाता है, नोषजनीय पदार्थ अधिक विसर्जित होने लगते हैं। शरीरकी तौल कम हो जाती है। हृदयकी धड़कन बढ़ जाती है। एक विशेष प्रकारकी उत्तेजना प्रतीत होती है।

बौमेनने १८९६में चुल्लिका-ग्रन्थिमेंसे एक कलार्द्र पदार्थ प्राप्त किया जिसका नाम उसने आयडो-थायरिन रक्खा। सन् १९१४में कैण्डलने इस ग्रन्थिके रसमेंसे एक रवेदार पदार्थ प्राप्त किया जिसे उसने 'थायरोक्सिन' नाम दिया। सन् १९२६में हेरिंगटनने इस पदार्थकी रासायनिक जांचकी और रासायनिक विधिसे इस पदार्थको तैयार भी किया। यह पदार्थ है:—

(ओउ). क$_{६}$ उ$_{२}$ नै$_{२}$· ओ. क· उ$_{२}$ नै$_{२}$ (कउ$_{२}$. कउ. नोउ$_{२}$ क ओ ओउ)

अर्थात् इसमें नैलिन् (या आयोडीन) होता है। यह थायरोक्सिन चुल्लिका ग्रन्थिका शुद्ध हौरमोन है। इसकी १ मिलीग्राम मात्रा प्रौढ़ पशुको दी जाय तो २ प्रतिशत उसकी पाचनक्रिया बढ़ जायगी। मनुष्यमें सुई द्वारा पहुँचानेपर धीरे-धीरे कुछ दिनोंमें परिवर्तनके चिह्न प्रकट होते हैं। यह तो लोग बहुत दिनोंसे जानते थे कि चुल्लिका ग्रन्थिमें नैलिन् होता है और इसीलिये आयोडाइड (नैलिद) दवाओंमें दी जाती थी जिसके खिलानेसे आश्चर्यजनक लाभ होता था।

चित्र २—बेडौलपनेके रोग र चुल्लिका ग्रन्थिका प्रभाव

बायीं ओर—२३ मासका बेडौल बच्चा

बीचमें—वही बच्चा ३४ मासका, ११ महीना बराबर भेड़की चुल्लिका ग्रन्थिका रस देनेके बाद।

दाहिनी ओर—१५ वर्षका वैसा ही दूसरा बच्चा जिसका इलाज नहीं किया गया।

यह रोग स्विट्ज़रलैण्डमें बहुत होता है, आल्प पर्वतकी घाटियोंमें रहनेवाले लड़कोंमें सूखासे मिलता जुलता यह रोग फैला हुआ है।

सैण्डस्ट्रोमने १८८० ई०में उपचुल्लिका ग्रन्थियोंपर विशेष खोज आरंभ की और इस बातका पता लगाया कि शारीरिक स्वास्थ्यपर इस ग्रन्थिका क्या प्रभाव पड़ता है। लोगोंकी एकमत यह सम्मति है कि उपचुल्लिका ग्रन्थियोंके निकाल देनेपर शरीरमें विषाक्त पदार्थोंका संचय बढ़ जाता है। मांस पेशियोंकी संचालन-शक्ति क्षीण होने लगती है। कुछ लोगोंकी यह धारणा है कि ऐसी अवस्थामें खटिकम् लवण (कैलशम-साल्ट) देनेसे तत्काल लाभ होता है। कुत्तोंकी उपचुल्लिका ग्रन्थियाँ निकाल डाली जायं तो उनमेंसे बहुतसे २-३ दिनमें ही मर जायंगे, और उन्हें टिटेनस-रोग हो आयगा, जिसमें मांसलपेशियां अपना काम करना बन्द कर देती हैं। इन ग्रन्थियोंके निकाल डालनेपर रक्तमें खटिकम् (कैलशम) की मात्रा कम हो जाती है।

सन् १९२५में कौलिप और उसके सहयोगियोंने इस ग्रन्थिमेंसे हौरमोन शुद्ध रूपमें पृथक् किया, जिसका ठीक रासायनिक संगठन अभी पता नहीं है। यदि ऐसे व्यक्तिमें जिसकी उपचुल्लिका ग्रन्थियां निकाल ली गई हों, यह पदार्थ सुई द्वारा रक्तमें पहुँचाया जाय तो उसका टिटेनस रोग दूर हो जायगा और रक्तमें खटिकम्की कमी भी धीरे-धीरे दूर हो जायगी। अधिक रस शरीरमें पहुँचाया जाय तो खटिकम्की मात्रा रुधिरमें प्रति १०० घ. श. म. में १० मिलीग्रामसे बढ़कर २०-२३ मिलीग्राम तक हो जाती है जो कि जीवनके लिये हानिकर है। इसीलिये ऐसी अवस्थामें मृत्यु हो जायगी।

थायमस-ग्रन्थिका हौरमोन

बच्चोंकी वक्षास्थिके पीछे थायमस ग्रन्थि होती है, जो प्रौढ़ावस्थामें बहुधा लुप्त हो जाती है। इसका शिशु-

की वृद्धिसे सम्बन्ध प्रतीत होता है। कुछ लोगोंकी धारणा थी शिशु-जन्म तक इस ग्रन्थिकी चरम-सीमा है, और बादको इसका ह्रास आरंभ होने लगता है। कुछ लोगोंका कहना है कि यौवनके आगमनपर यह पूर्णतः लुप्त-प्राय हो जाती है। इस ग्रन्थिको बच्चोंके शरीरमेंसे निकाल लेनेपर उनकी हड्डियोंका विकास उचित रूपसे नहीं होने पाता। कुछका कहना है कि बच्चोंमें इसके अभावसे सूखा बीमारी भी हो सकती है। थायमस ग्रन्थिकी वास्तविक उपयोगिता क्या है इसका ठीक-ठीक पता अभी नहीं लगा है। संभव है, यह अन्तःस्रावी ग्रन्थि न भी हो।

उपवृक्क ग्रन्थियां

उपवृक्क ग्रन्थियोंको एड्रीनल या सुप्रारीनल ग्रन्थियाँ कहते हैं। सन् १८९६ में ब्राउनसे क्वर्डने यह पता लगाया कि इन उप-वृक्कग्रन्थियोंको निकाल लेनेसे पशु शीघ्र ही मरने लगता है। यह बात सभी पशुओंमें देखी गई है। मृत्युसे पूर्व पशु तेजहीन हो जाता है, माँसल पेशियाँ क्षीण हो जाती हैं, और धमनियोंकी शक्तिका ह्रास होने लगता है। 'एडीसन' रोगकेसे लक्षण दिखाई देने लगते हैं। इन सब बातोंसे उपवृक्क ग्रन्थियोंका महत्व स्पष्ट है। ओलिवर और शैफरने इस ग्रन्थिके मध्यस्थ भाग मेडुलाका रस पशुओंके रक्त-प्रवाहमें सुई द्वारा पहुँचाया, और ऐसा करनेपर उसने विचित्र प्रभाव देखा—हृदयकी धड़कन बहुत कम हो गई, और रक्त-चापकी मात्रा बढ़ गई।

उपवृक्क ग्रन्थिमें जो भाग वल्क (कोरटेक्स) कहलाता है, उसके रससे वैसा प्रभाव नहीं होता जितना कि ग्रन्थिके मध्यस्थके (मेडुलाके) रससे। इन दोनोंका प्रभाव वस्तुतः अलग-अलग है—कोरटेक्सवाले भागके रसका अलग, और मेडुलाका अलग। इसीलिये बहुधा वल्कको अन्तरवृक्क भाग, और मध्यस्थको उपवृक्क भाग कहते हैं।

मध्यस्थ या मेडुला—उपवृक्क ग्रन्थिके मध्यस्थमें एक रासायनिक पदार्थ रहता है जिससे हृदयकी धड़कन कम होती है और रक्त-चाप बढ़ जाता है। यह पदार्थ अति शुद्ध रूपमें ही नहीं, कृत्रिम विधियोंसे भी संश्लेषित किया जा चुका है। सबसे पहिले एबेलने इसके संबंधमें खोज की, और बादको टेकामिन और एलड्रिचने इस पदार्थके शुद्ध रवे प्राप्त किये। बादको स्टोल्ज़ और डेकिनने इस पदार्थका रासायनिक रूप निश्चित किया :—

$क_6$ $उ_3$ (ओउ $)_2$ कउ ओउ. कउ$_2$. नोउ $कउ_3$
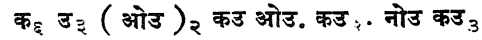
द्वि ओष-द्विव्यील ज्वलीलोल-दारीलामिन। यह रासायनिक पदार्थ कई नामोंसे प्रसिद्ध है। कोई इसे एपिनेफ्रिन कहते हैं और कोई एड्रिनेलिन या एड्रेनिन।

यह पदार्थ उपवृक्क ग्रन्थिके मध्यस्थ भागमें ही पाया जाता है, न कि वल्क (कोरटेक्स) में। जैसा कि कहा जा चुका है, एपिनेफ्रिनके घोलका हृदयकी धड़कन और रक्त-चाप पर विशेष प्रभाव पड़ता है। यह प्रभाव क्यों और कैसे पड़ता है इसकी मीमांसा शरीर-विज्ञान वालोंने बहुतकी है पर इस विषय को हम स्थानाभावके कारण छोड़ देते हैं। शरीरमें शर्करामय पदार्थोंके पाचनमें भी एपिनेफ्रिनका प्रभाव पड़ता है। सुई द्वारा प्रविष्ट करनेपर मूत्रमें शर्करा आने लगती है, और यह प्रभाव कई दिनों रहता है। रुधिरमें भी शर्कराकी मात्रा इसके कारण बढ़ जाती है। कैनन नामक अन्वेषक ने यह दिखाया है कि आवेग और भावावेशकी अवस्थामें उपवृक्क गन्थिसे एपिनेफ्रिन अधिक निकलने लगती है। एपिनेफ्रिनकी अधिक मात्रा देनेका प्रभाव विषैला होता है। प्रति सेर शरीरकी तौलके हिसाबसे इसकी १ मिलीग्राम मात्रा देनेसे शरीर चेतनाहीन होने लगता है, श्वास बन्द होने लगता है, हृदय बैठने लगता है और रुधिरकी धमनियां फूट जाती हैं।

कोरटेक्स या वल्क—बहुतसे लोगोंका विचार है कि जीवनके लिये मेडुलाकी अपेक्षा कोरटेक्स अधिक आवश्यक है। मेडुलाके निकालनेसे मृत्यु नहीं होती पर कोरटेक्सको उपवृक्कग्रन्थिमेंसे पृथक् कर लिया जाय और मेडुला रहने भी दिया जाय तो भी मृत्यु निश्चित है। कोरटेक्समें एपिनेफ्रिन नहीं होती इसमें कौनसा क्रियाशील रासायनिक पदार्थ होता है, यह कहना कठिन है, संभवतः इसमें कोलेस्टेरिनके कोई यौगिक होते हों और एक अम्ल हेक्सयूरोनिक ऐसिड भी होता है।

कोरटेक्सके अन्तःस्रावका संबंध लिंग-ग्रन्थियोंसे भी है। अण्डकोषोंको निकाल लेनेका प्रभाव उपवृक्क ग्रन्थियों-

की चेष्टाओंपर भी पड़ता है। कोरटेक्समें कौनसा हौरमोन है यह बात निश्चित रूपसे नहीं कही जा सकती।

श्लैष्मिक-पिंड या पिट्यूटेरी अंग

श्लैष्मिक पिंड या ग्रन्थि मस्तिष्कमें होती है। इसके दो भाग बताये जाते हैं। एक तो बड़ा पुरो पिंड जिसकी गठन स्पष्टतः ग्रन्थिमय होती है और दूसरा छोटा पश्च पिंड जिसमें कोष्ठ और सूत्र होते हैं। दोनों पिंडोंका विकास पृथक् पृथक् स्रोतोंसे होता है।

सन् १८९५-९६में ओलिवर, शैफर, जाइमोनोविक्ज़ आदि शरीर वेत्ताओंने यह बात प्रदर्शित की कि इस ग्रन्थिका सम्बन्ध रक्तचापसे है। १८९८ में हौवेलने यह दिखाया कि ग्रन्थिके पश्च-पिंडके रससे ही यह प्रभाव होता है, न कि पुरो-पिंडसे।
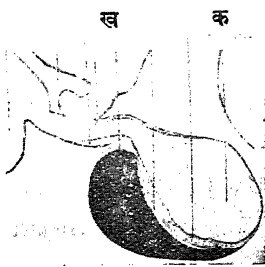
चित्र ३—एक पाढ़ बन्दरको श्लेष्म-ग्रन्थिका खण्ड-चित्र
क—पश्च-पिण्ड
ख—पुरो-पिण्ड

पश्च-पिंड (पोस्टीरियर-लोब)—पश्चपिंडका रस जब रक्त प्रवाहमें सुई द्वारा पहुँचाया जाता है, तो ये बातें प्रकट होती हैः—

(१) रक्तचाप बढ़ जाता है और हृदयकी धड़कन कम हो जाती है। यह प्रभाव उतना तो नहीं होता जितना कि एपिनेफ्रिनमें, पर रहता अधिक देर तक है।

(२) आरंभमें तो मूत्रकी मात्रा बढ़ जाती है, पर बाद को मूत्र बहुत कम हो जाता है। इस प्रभावके कारण पश्चपिंडके रसका उपयोग बहुमूत्र रोग या मधुमेहमें भी करते हैं। ऐसा करनेसे प्यास भी कम लगती है।

(३) इस रसके प्रयोग करनेपर गर्भाशय-संकोच भी होने लगता है। प्रसवके समय गर्भाशय संकोचनको उत्तेजित करनेके लिये पश्चपिंडके रसका प्रयोग किया जाता है।

(४) दूध पिलानेवाले पशुओंमें इस रसका प्रयोग करनेपर दूध अधिक निकलने लगता है, क्योंकि दूध निकालने वाली पेशियाँ अधिक सचेष्ठ हो जाती हैं।

कैम आदि वैज्ञानिकोंका विचार है कि पश्च-पिंडके रसमें दो हौरमोन विद्यमान हैं। एकका संबन्ध रक्तचाप और हृदयकी धड़कनसे है, और दूसरेका संबन्ध गर्भाशय संकोचसे। कैम ने पश्चपिंडके रससे दो पृथक् पदार्थ भी तैयार किये। ये पदार्थ 'ओक्सीटोसिन या पिटोसिन' और 'वैसो प्रेसिन' नामसे बेचे भी जाते हैं। पहलेका सम्बन्ध गर्भाशय संकोचनसे और दूसरेका रक्तचापसे है। इन हौरमोनोंकी रासायनिक गठन अभी अनिश्चत है।

पुरोपिंड (एण्टीरियर-लोब)—इस पिंडके रसको शरीरमें प्रविष्ट करानेसे तत्क्षण कोई लाभ नहीं होता है। लोगों का विचार है कि शरीरकी वृद्धि-गति पर इस रसका विशेष प्रभाव पड़ता है। कभी कभी तो इस रससे शरीरकी वृद्धि सामान्य मात्रासे अधिक भी हो जाती है। इस रसका प्रभाव लैंगिक रसोंका विरोधी है। जब तक शरीरकी वृद्धि होती रहती है तब तक लैंगिक चिह्नोंका प्रतिरोध होता रहता है।

इस पुरोपिंडके रसमें कौन सा रासायनिक पदार्थ विद्यमान है यह कहना कठिन है। रोबर्ट्सन ने इसमेंसे टेथेलिन नामक स्फुर और नोषजनका यौगिक पृथक् किया। सन् १९२९ में क्रौस ने एक रवेदार पदार्थ भी इसमेंसे पाया।

यदि शरीरमेंसे श्लैष्म-ग्रन्थि निकाल ली जाय तो कुछका कहना है कि शीघ्र ही मृत्यु हो जायगी, पर कुछका मत इससे विरुद्ध भी है। कुशिंग ने अपने विस्तृत अन्वेषणोंसे यह दिखाया है कि मृत्युसे पूर्व ये लक्षण प्रकट होते हैं—तापक्रमका घटना बेचैनी और दस्त।

पाइनियल ग्रन्थि

इस ग्रन्थिका भी स्थान मस्तिष्क है। कौमार्य्य अवस्था तक तो यह ग्रन्थि बढ़ती है, पर बादको क्षीण

होने लगती है। इसमें सूत्र या धागेसे रह जाते हैं। मस्तिष्क रेणुकाके उत्पन्न होनेका इससे संबन्ध है। इस ग्रन्थिके रसको सुई द्वारा शरीरमें पहुँचानेसे रक्तचाप कम हो जाता है। बच्चोंकी वृद्धिको यह ग्रन्थि संयमित रक्खा करती है, और उनमें लैंगिक लक्षणोंकी उत्पत्तिको रोकती रहती है। यदि पशुमेंसे यह ग्रन्थि शल्य-विधिसे निकाल ली जायं तो उसमें लैंगिक लक्षण शीघ्र प्रकट होने लगेंगे।

प्रजननेन्द्रियाँ

प्रजननेन्द्रियोंसे भी अन्तःस्राव हुआ करता है। इसका प्रमाण यह है कि अण्डकोषोंके छेदन करनेपर बहुतसे लैंगिक लक्षण परिवर्तित हो जाते हैं। नपुंसकताके लक्षण व्यक्त होने लगते हैं, चिड़ियोंमें पुरुषत्व, और सस्तन प्राणियोंमें स्त्रीत्वकी ओर झुकाव होने लगता है। यदि प्रजनन-ग्रन्थिको शरीरके किसी और भागमें लगा दिया जाय और फिर अण्डकोषोंका छेदन किया जाय तो ये लक्षण नहीं उत्पन्न होते। इससे स्पष्ट है कि प्रजनन ग्रन्थियोंका अन्तःस्राव रुधिरमें हुआ करता है, जिससे गौण लैंगिक लक्षण व्यक्त होते रहते हैं जैसे मूँछोंका निकलना, स्तनोंका विकास आदि।

शुक्र ग्रन्थियाँ

शुक्र ग्रन्थियोंसे वीर्य्यका निकलना तो बहिःस्राव है जिससे हमें यहाँ कोई अभिप्राय नहीं। शुक्र-वाहिनी प्रणालोकी दीवारोंपर स्थित कोष्ठोंमेंसे अन्तःस्राव भी होता है, ऐसी धारणा पहले लोगोंकी थी, पर अब लोगोंकी धारणा यह है कि ग्रन्थिके मध्यमें कोष्ठ होते हैं उनसे अन्तःस्राव होता है। इस धारणा कि पुष्टि इस बातसे होती है कि यदि शुक्र ग्रन्थियोंको अपने स्थानसे निकाल कर और कहीं लगा दिया जाय अथवा इन्हें रौञ्जन किरणोंके सामने रक्खा जाय, तो यद्यपि शुक्र वाहिनी प्रणालियाँ क्षीण हो जाती हैं, फिर भी ऐसे पुरुषमें पुरुषत्वके लैंगिक चिह्न वैसे ही निकलते हैं और कामुक लक्षण पूर्ववत् विद्यमान रहते हैं। जिन लोगोंकी शुक्र-ग्रन्थियाँ अण्डकोषोंमेंसे निकालकर उदरमें सदाके लिये कर दी जाती हैं, उनमें भी पुरुषत्वके सभी गौण चिह्न पूर्ववत् विकसित होते रहते हैं।

स्टाइनाक ने डिम्ब-ग्रन्थि और शुक्र-ग्रन्थियोंपर कुछ मनोरञ्जक प्रयोग किये। उसका कहना है कि इन ग्रन्थियों-के अन्तःस्राव गौण लैङ्गिक लक्षणोंके प्रकट होनेपर अपना प्रभाव डालते हैं। उसने नर-चूहों और नर-शूकरोंका अण्डकोष-वेधन किया, और उसमें उसी जातिके प्राणियों-की डिम्ब ग्रन्थियोंका चस्मा बांधा। उसने देखा कि उस पशुमें नारीत्वके लक्षण प्रकट होने लगे, जैसे बाल नारी जातिके थे, वैसे बाल निकलने लगे, और स्तन उदित होने लगे। यह पशु लगभग पूर्णतः नारी हो गया यहाँ तक कि नर-पशु इसकी ओर मोहित भी होने लगे।

मुर्गोंपर स्टाइनाक ने शुक्र-ग्रन्थियोंके रससे प्रयोग किया। नर-मुर्गके शिरपर विशेष चोटो होती है। जब इसकी शुक्र ग्रन्थियाँ निकाल दी गईं, ये चोटियाँ क्षीण होने लगीं, पर बादको शुक्र-ग्रन्थि रहित मुर्गके शरीरमें शुक्रग्रन्थिका रस सुई द्वारा प्रवेश कराया गया। ऐसा करने पर मुर्गकी चोटी पूर्ववत् फिर बढ़ने लगी।

वृद्ध अवस्थाके मनुष्यमें पुरानी शुक्रग्रन्थियाँ निकाल कर युवक पशुकी (बन्दरकी) ग्रन्थियाँ स्थापित करके यौवन प्राप्त करनेका प्रयास भी इसी सिद्धान्तपर किया जा रहा है। अभिप्राय यह है कि इन ग्रन्थियोंके अन्तःस्राव का स्वास्थ्यपर बहुत लाभकर प्रभाव होता है।

आज काल बहुतसे रसायनज्ञ शुक्रग्रन्थिके रस-स्रावों पर तरह तरहका कार्य्य कर रहे हैं, और उन्होंने इनका रासायनिक स्वरूप भी बहुत कुछ जान लिया है।

डिम्ब ग्रन्थियाँ

डिम्ब ग्रन्थियोंके अन्तःस्रावोका प्रभाव नारीके आवर्त्त जीवनपर बहुत पड़ा करता है, यह बात तो स्वयं सिद्ध है। डिम्ब, योनि, गर्भाशय और दुग्ध ग्रन्थियोंमें ऋतु-परिवर्त्तन इन्हींके आधारपर होता है। यदि डिम्ब ग्रन्थियां निकाल दी जायँ तो ये आवर्त्त परिवर्त्तन बन्द हो जाय। इन ग्रन्थियोंमें से रसस्राव रुधिरमें जाकर मिलता है और वहाँसे शरीरके भिन्न अंगोंमें पहुँचता है। ऋतुकाल निश्चित होनेका कारण भी यही है कि डिम्ब-ग्रन्थिसे अन्तःस्राव निश्चित आवर्त अवधिपर ही निकलता है।

इन अन्तःस्रावोंसे कई हौरमोन निकाले गये हैं और इन्हें बहुतसे नाम दिये गये हैं जैसे ओयस्ट्रिन, फौलिकुलिन, मेनफोरमेन, प्रोगाइनोन इत्यादि। इनका रासायनिक स्वरूप गत चार-पाँच वर्षों में बहुत अध्ययन किया जा चुका है।

क्लोम ग्रन्थि या पैंक्रियस

क्लोम ग्रन्थिके बहिःस्रावकी उपयोगिताका तो लोगोंको बहुत दिनोंसे पता था, पर सन् १८८९ में वान मेरिङ्ग और मिनकोस्की ने यह भी प्रदर्शित किया कि इस ग्रन्थिसे एक अति उपयोगी अन्तःस्राव भी निकलता है। इन वैज्ञानिकों ने यह दिखाया कि यह ग्रन्थि समस्त रूपसे निकाल देने पर भी प्राणी जीवित रह सकता है पर उसके मूत्र में शर्कराकी मात्रा अधिक आने लगती है। इसके बाद अन्य अन्वेषकोंने क्लोम ग्रन्थिकी उपयोगिता पर बहुतसे मनोरञ्जक प्रयोग किये। लोगों ने यह दिखाया कि चाहें पशुको शर्करामय पदार्थोंका भोजन देना बन्द भी क्यों न कर दिया जाय, क्लोम-ग्रन्थि निकाल देनेपर उसके मूत्रमें शर्करा बराबर आती रहेगी। जैसा मधुमेहमें बहुधा होता है, वैसे ही लक्षण इस ग्रन्थिके निकाल देनेपर प्रकट होंगे। मूत्र अधिक आने लगेगा, और उसमें मूत्रियाकी मात्रा बढ़ जायगी। प्राणीको भूख प्यास साधारण मात्रासे अधिक लगेगी। मूत्रमें सिरकोन (एसीटोन) भी पाया जायगा, यद्यपि उतना नहीं, जितना कि मधुमेहमें। मनुष्य की शक्तिका ह्रास होने लगेगा।

वॉन मेरिंग और मिनकोस्की ने दिखाया कि यदि कुत्तोंमें एक चौथाई क्लोम-ग्रन्थि भी छोड़ दी जाय तो उनके मूत्रमें शर्करा न आवेगी। यह ग्रन्थि मधुमेहताको रोकने वाली है, और मधुमेह रोग बहुधा तभी होता है जब इस ग्रन्थिका व्यापार कम हो जाता है।

यदि क्लोम ग्रन्थि निकाल ली जाय और फिर मधुमेह की अवस्थामें इस ग्रन्थिका रस रुधिरमें पहुँचाया जाय तो मधुमेह दूर होने लगेगा। यह ग्रन्थि शरीरमें किसी और जगह लगा दी जाय तब भी मधुमेह अंशतः या सर्वांशतः दूर हो जायगा। इन सब बातोंसे स्पष्ट है कि क्लोम ग्रन्थिसे रुधिरको कोई विशेष हौरमोन प्राप्त होता है। ग्रन्थिके सम्पूर्ण अंगोंका होना कोई आवश्यक नहीं है। क्लोममें अंडाकार छोटे छोटे द्वीप-समूह छितरे रहते हैं जिन्हें लेंगरहेन्सके द्वीप कहा जाता है। इन द्वीपसमूहोंसे ही विशेष हौरमोन निकलता है।

लेंगरहेन्स द्वीपोंके कोष्ठोंसे स्रवित हौरमोनका नाम सन् १९१६ में शैफर ने इन्सुलिन दिया। इस हौरमोनके सम्बन्धमें सबसे उत्कृष्ट कार्य्य बैंटिंग,बेस्ट और मेकलिओड ने १९२१ में किया। बैलके क्लोमसे उन्होंने इन्सुलिनको शुद्ध मात्रामें तैयार किया। इसका उपयोग मधुमेहके रोगियोंपर बहुत किया गया है और अधिकांशतः यह लाभकर ही पाया गया है। ग्रन्थि-रसको मद्यसारके साथ घोलकर निकाला करते हैं।

इन्सुलिनका रासायनिक रूप अनिश्चित है। एबेल ने १९२६ में इसे शुद्ध रवोंके रूपमें प्राप्त किया। शरीरमें इसका घोल प्रविष्ट करानेसे रक्तकी शर्करा-मात्रा कम हो जाती है। इन्सुलिनकी विद्यमानतामें शर्करामय पदार्थोंका ओषदीकरण अधिक होता है और पाचन भली प्रकार होता है।

इस लेखमें कुछ उपयोगी अन्तःस्रावोंका वर्णन ही दिया गया है, और न जाने कितने ऐसे अन्तःस्राव होंगे जिनका परिचय हमको नहीं है पर जो शरीरके स्वास्थ्यके लिये परम हितकर हैं।

बीज समितियाँ

(संयुक्त प्रांतीय कृषि विभागकी विज्ञप्ति)

बीज समितियोंका उद्देश्य किसानोंमें कमखर्ची, खुद ही अपनी मदद करनेके विचार और आपसमें मेल-जोल पैदा करना व बढ़ाना है इसका मूल्य उद्देश्य फस्लके वक्त किसानोंकी ओर ध्यान दिलानेका है। क्योंकि उस समय वह बहुतसे और वह भी हाथ खोलकर खर्च करता है, वह अपनी आवश्यकताओंके लिये कपड़ा व दूसरी चीज खरीदता है लेकिन खर्च करते वक्त उसको इस बात का तनिक भी ध्यान नहीं रहता कि वक्त जरूरतके लिये कुछ बचा रक्खे। दरअस्ल गांवमें इस तरहकी कोई सुविधा ही नहीं है। बीज समितियां इस कमीको पूरा कर देती हैं।

गांव में अनाज ही सिक्काका काम देता है यानी अनाजसे ही ज्यादातर मजदूरी दी जाती है। बीज समितियां अनाज बैंकोंका काम करती हैं जहां किसान अपनी आमदनीका कुछ हिस्सा फस्लके वक्त जमा करा सकता है। १० या अधिक किसान मिल कर बीज समितियां कायम कर सकते हैं। सालाना चन्दाकी तादाद हर मेम्बरकी खेतीके रकबे या उसके हलोंकी संख्याके हिसाबसे ही रक्खी जाती है। इसमें मौसमके अनुसार कमी बेशी भी हो सकती है। समितिके काम तथा गल्लेका पंचों द्वारा होता है और ये पंच समितिके आम जलसेमें चुने जाते हैं। इससे आपसमें मेल जोल बढ़ानेका मौका मिलता है। हर मेम्बर समितिसे उतना ही अनाज उधार ले सकता है जितनी तादाद पंचायत हर एकके लिये मुकर्रर करदे। यह तादाद पंचायत हर एककी अदायगीकी ताकतपर निर्भर है।

समितिकी स्थापना यद्यपि बहुत थोड़ेसे ही होती है परन्तु इसके लाभ आगे जाकर मालूम होते हैं क्योंकि यह अनाज धीरे-धीरे बढ़कर बहुत हो जाता है और किसी मेम्बरको उसका बोझ भी नहीं मालूम होता। मेम्बरोंको कई मौके समितिके कामके ऊपर वादाविवाद (नुकता चीनी) करनेको मिलते हैं और इससे उनको ऐसा मालूम होता है कि समिति उनकी ही खास चीज है। वक्तपर अदायगी करनेसे मेम्बरोंकी हैसियत बढ़ जाती है और उनको इज्जतकी निगाहसे देखा जाता है। इससे दूसरोंमें उत्साह भी उत्पन्न होता है। आपसकी मेल जोलसे उनमें ईमानदारी और एक दूसरेकी सहानुभूति पैदा हो जाती है और एक दूसरेकी सहायताका भाव भी पैदा हो जाता है। बहुतसे गावोंमें ऐसे आदमी मिलते हैं जिन्होंने अनाजका लेन देन ही अपना पेशा बना लिया है और गरीब किसानोंको अधिक हानि उठानी पड़ी है। बहुतसी जगह ब्याजकी दर ५० प्रतिसैकड़ा है। २५ प्रतिसैकड़ा तो मामूली बात है। जब किसान किसी साहूकारके पास कर्ज लेनेको जाता है तो वह ठीक वक्तपर मिलता भी नहीं। साहूकारोंके देनेके बांटोंमें फर्क भी होता है और अनाज साफ सुथरा भी नहीं मिलता मगर वे ही उगाहीके वक्त ठीक बांट निकाल लेते हैं। और अच्छा साफ सुथरा बीज मांगते हैं। इस तरहसे गरीब किसानको दोनों तरफसे नुकसान होता है। किसानोंको इन नुकसानों व दिक्कतोंसे बचानेके लिये समितिकी स्थापनाकी बहुत ही आवश्यकता है। संस्थाओं तथा संचालकोंको बहुत सब्रसे काम लेना चाहिये क्योंकि किसानोंको इसका असली लाभ जाननेमें बहुत समय लगता है परन्तु एक दफा अच्छी तरह काम चालू होनेपर और उनके समझनेपर बादको ज्यादा देख भालकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

भारतवर्षमें कुछ रिवाज-सा पड़ गया है कि किसानोंको फस्लपर भिखारियोंको जो ऐसे समयमें उसे घेरे रहते हैं कुछ अनाज देना पड़ता है। यह दानके नामसे जाता है। इन पेशेवर भिखारियोंको किसानकी तबियत न होते हुये भी दान लेनेकी तरकीबोंको देखकर ताज्जुब होता है कि उसको असली दान कह भी सकते हैं या नहीं। पुराने जमानेमें जबकि भिखारी या तो पूरा तपस्वी ही होता था या अपाहिज होता था उसे दान देना मुनासिब था परन्तु आज कल दानके दुरुपयोगसे वही अनाज बचा-

कर गांवमें समितिके स्थापनामें अधिक सहायता दे सकता है। इससे गांवके सुधार सम्बन्धी कार्मोंमें तथा किसानोंकी अपनी हालत सुधारनेमें अधिक सहायता मिल सकती है।

जब अनाज समितिके मेम्बरोंकी आवश्यकतासे भी अधिक बढ़ जावे तो इसको मेम्बरोंकी आमदनी बढ़ाने-के अन्य कार्मोंमें लगाया जा सकता है।

एक चालू समितिका हाल देकर समझाना अनुचित न होगा :—

मध्य प्रदेशके जिला द्रुगकी वैलोर तहसीलमें बाव-मारा नामका गांव है। सन् १९२६ ई० में जब इस गांव-में यह काम शुरू किया गया था उस समय एक मार-वाड़ीसे (जो वहां आकर रहने लगा था) किसान अनाजका लेनदेन किया करते थे। वहांका सालाना खर्च २०० खाड़ी धान था (१ खाड़ी = १४० पौंड) और यह ५० प्रतिसैकड़ा ब्याजपर ली जाती थीं। एक किसानको जो १० खाड़ी उधार लेता था उसको ६ महीने बाद १५ खाड़ी वापिस करना पड़ता था इस गांवमें एक बीज समिति बनानेकी कोशिश की गई और काश्तकार राजी हो गये। सन् १९२६-२७ में ३४ किसानोंने मिल कर समितिकी नींव डाली और हर एकने १-१ खाड़ी धान जमा करके ३४ खाड़ी धान जमा कर लिया। अगले साल यह ३४ खाड़ी सवायेपर दी गई और फस्लपर धान-के ४२ खाड़ी हो गया। अगले सालका चन्दा मिलाकर ७६ १।२ खाड़ी हो गया।

नीचे लिखे हुये आंकड़ोंसे मालूम होगा कि समितिने हर साल क्या उन्नतिकी :—

साल	गल्ला सालके १ रुपया खाड़ीमें	तादाद मेम्बर
१९२६—२७	३४	३४
१९२७—२८	७६ १/२	४०
१९२८—२९	९५	३८
१९२९—३०	११३	३८
१९३०—३१	१४१	३८
१९३१—३२	१६८	३८
१९३२—३३	२३६	४०
१९३३—३४	२९३	४२
१९३४—६५	३२४	४२

लेन देन इन सालोंमें इस प्रकार हुआ

१९२६—२७	३४ खाड़ी	उधार दिया गया	८ १/२	सूद वसूल हुआ
१९२७—२८	७६	”	१९	”
१९२८—२९	८७ १/२	”	२१ ७/८	”
१९२९—३०	११३	”	२८ १/४	”
१९३०—३१	१०६		२९ १/२	”
१९३१—३२	१६८		४२	”
१९३२—३३	१०८		२७	”
१९३३—३४	२४३		९० ३/४	”
१९३४—३५	३२४		—	
			२३३ ७/८	

ऊपर लिखे आंकड़ोंसे मालूम हो जावेगा कि इन सालों-में ब्याजकी ही आमदनी करीब २३४ खाड़ी हुई और इतनी ही बचत हो गई क्योंकि ब्याजकी दर ५० फी सदी-से घटकर २५ प्रतिसैकड़ा थी ४२ मेम्बरोंके आपसी लेन देनसे अब काफी अनाज उनके जरूरतके लिये मौजूद है और उनकी ही सम्पति है। इस सबका फल यह हुआ कि साहूकारका सारा कारोबार बन्द हो गया और अब वह कम सूदपर अनाज उधार देनेको तयार हो गया परन्तु उससे कोई उधार नहीं लेता था क्योंकि अब मेम्बरोंको उसके लेन देनसे क्या होता है अच्छी तरह मालूम हो गया है। इससे आसपासके किसानोंको भी फायदा हुआ है क्योंकि खाड़ीकी दर अब ५० प्रतिसैकड़ासे घटकर २५ प्रतिसैकड़ा हो गई है।

यह तो इस कामका एक पहलू रहा दूसरा जो इससे बड़ा फायदा हुआ वह आपसमें एकता और सहानुभूति पैदा हो गई और यह उस समय और भी अच्छी मालूम हुई जब सन् १९३२ ई०में समितिने गोदाम बनानेका इरादा किया। यह गोदाम चन्दासे बना है किसीने ईंट दी, किसीने बांस, लकड़ी और खपरेल वगैरह, और मजदूरी खुद मेम्बरोंकी मुफ्त थी गोदाममें धान भरनेके दो बड़े-बड़े कमरे हैं, और एक दालान है जिसमें सब मेम्बर शामको बैठते हैं। आपसी, सहानुभूति, तथा मेल-

जोलके भाव एक दफा हो जानेसे बहुतसे काम बन जाते हैं आसानीसे गोदाम बन जानेसे उनकी हिम्मत और भी बढ़ गई और उन्होंने अब गांवकी दूसरी कमीको पूरा करनेको कोशिश की है अब तक इस गांवमें तालाबका पानी पीनेके काममें लाते थे मगर अब उन्होंने कुआं खोदनेकी ठान ली। खुशहाल मेम्बरोंने पत्थर, लकड़ी, सीमेन्ट वगैरह खरीदनेके लिये रुपया चन्दा देनेका वादा किया और बाकी मेम्बरोंने खोदने वगैरहमें मदद दी। इस तरह करके वह कुआं कुछ ही दिनोंमें तय्यार हो गया। इस कुयेंकी लागतका अन्दाजा ४५० रुपये किया जाता है परन्तु उसमें नकद १३० रुपया ही खर्चा हुआ है बाकी मजदूरी वगैरह खुद मेम्बरोंकी थी।

गांवके बाहर खादके लिये गड्ढे खुदवाना, पशुओंके पेशाबकी मिट्टी खादके लिये तैयार करना, उन्नतिशील बीज बोना, तथा पशुओंकी अच्छी तरह देख भाल वगैरह कामोंकी तरफ भी ध्यान देकर उन्होंने अच्छी उन्नति कर ली है। लेन देनकी बढ़ोतरी तथा अन्य कामोंकी देख-भाल वगैरहके लिये अच्छी तरह देख-भालकी जरूरत थी इसलिये सन् १९३३ में इस समितिकी सरकारसे रजिस्ट्री कराली गई।

सन् १९३२—३३ ई० में गन्ना और मूंगफलीका प्रचार किया गया और नीचे लिखे आंकड़ोंसे पता चलेगा कि उन्होंने हर साल क्या उन्नति की—

साल	रकबा जिसमें नई फस्लें बोई गईं	
	मूंगफली	गन्ना
१९३२—३३	१७ एकड	·०७
१९३३—३४	३४ ”	·५०
१९३४—३५	५२ ”	७·८२
१९३५—३६	६० ”	२२

समितिके मेम्बरोंका ध्यान

सन् १९३२ ई० में बागवानीकी ओर लगा और आम, अमरूद, नीबू और शन्तराके पेड़ थोड़े पैमानेपर लगाये गये और उनकी उन्नति इस ओर जारी है। सन् १९३४ ई० में गांवकी पंचायतकी स्थापना हुई। उसी साल मेम्बरोंने इस बातपर जोर दिया कि आइन्दा चंदा देना बन्द कर दिया जावे। मगर उनको यह सलाह दी गई कि चंदा देना जारी रक्खें और मिलकर खेती शुरू करें। शुरूआत फौरन ही कर दी गई। ७·२५ एकड़ भूमि पट्टेपर ले ली गई और नीचे लिखी जिन्सें बोई गईं।

गन्ना—	...	२·७५ एकड़।
धान—	...	२·५० एकड़।
मूंगफली—	...	१·५० एकड़।
अरहर—	...	·५० एकड़।

पहिली ही सालमें इनको २९० रुपयाका नफा हुआ और इससे उनकी हिम्मतें बढ़ गईं। शामिलात खेतीका रकबा बढ़ा दिया गया है अब मेम्बरोंका इरादा है कि समितिके लिये फलोंका बाग लगाने तथा गन्नेकी खेती करनेके लिये भूमि खरीद लें। इस शामिल खेतीके खर्चके लिये मेम्बर लोग समितिसे अनाज उधार ले लेते हैं और गरीब मेम्बरोंको मजदूरीके रूपमें अनाज मिल जाता है, और उनको खेतीके नफेमें भी भाग मिलता है। इस तरह उन गरीब मेम्बरोंको जो अलहदा अपना स्वतंत्र बाग नहीं लगा सकते वह यहां काम करते हैं। दो मेम्बर अपना निजी कुआं खुदवाकर बाग लगा रहे हैं क्योंकि उनको बाग लगानेका शौक पैदा हो गया है। नई फसलों-की खेती और वह भी कम खर्च करके अधिक नफा देने-वाली होनेकी वजहसे पिछली साल किसानोंको करीब ३,००० रुपयाका नफा हुआ। इस साल गन्ना और मूंगफलीके रकबेकी बढ़ोतरीके साथ-साथ नफा भी करीब-करीब दूना हो जावेगा।

श्रीमती सीमैनकी स्कीमके अनुसार एक महिलाको बैलोदके अस्पतालमें शिक्षा दिलाकर गांवमें छोटी-छोटी बीमारियोंके लिये दवा बांटनेका काम सौंप दिया है। यहांके किसानोंके दिलोंमें उत्साह है और अब तक सफ-लतासे उनका उत्साह दूना बढ़ गया है इन लोगोंकी उन्नतिको देखकर आसपासके किसानोंमें जाग्रति पैदा हो गई और उन्होंने भी समितियां बनाना शुरू कर दिया है और गन्नेकी खेती पांच गांवमें शुरू हो गई है।

इस तरह ग्राम सुधारमें सफलता होना द्रुग जिलेके डिप्पी कमिश्नरोंकी दिलचस्पी तथा अन्य महकमोंके अफसरोंकी कठिन कोशिशका नतीजा है।

———

विश्व निर्माण तथा सापेक्ष्यवाद

[ले० श्री जयशंकर द्विवेदी, एम० ए०]

[अक्टूबर अंकके आगे]

मैंने अपने पिछले लेखमें यह दिखानेकी चेष्टा की थी कि आधुनिक वैज्ञानिकोंने ईथरकी कल्पना करके इस विश्वकी अनेक आश्चर्यमयी बातोंके लिये एक कारण खड़ा कर लिया था। वे हर एक प्राकृतिक कार्यों तथा घटनाओंका विश्लेषण कर उसके उद्भावका एक कारण देनेकी चेष्टा करते हैं। हमारे आपके बीचमें यदि कोई माध्यम नहीं है तो किस प्रकार हमारी बातें आपको सुनाई दे जाती हैं चुम्बकसे यदि कुछ दूरपर एक लोहेका कण रख दिया जाता है तो चुम्बक उसे बिना किसी प्रत्यक्ष माध्यमके अपनी ओर खींच लेता है। न्यूटनने यह सिद्ध किया कि पृथ्वी अपने केन्द्रकी ओर प्रत्येक वस्तुको खींचती है। इस खिंचावका क्या माध्यम है। यह सब ऐसे प्रश्न थे जो कि हल नहीं हुये थे। उन्हींको हल करनेके लिये वैज्ञानिकोंने ईथरकी कल्पना की। वैज्ञानिकोंका यह विचार था कि किसी भी वस्तुपर किसी दूसरी वस्तुका प्रभाव उस समय तक नहीं पड़ सकता जब तक कि कोई माध्यम उन दोनोंके बीचमें नहो। इसलिये वैज्ञानिकोंने ईथरको उन सभी गुणोंसे विभूषित किया जिनसे कि उनके सिद्धांतको सफलता मिले उन्होंने विचार किया कि ईथरके समुद्रमें ग्रह पिण्ड, भ्रमण कर रहे हैं, विद्युत् तरंगें ईथरमें ही उत्पन्न होती हैं। चुम्बक अपनी आकर्षण शक्तिको ईथरमें ही बिखेर रखता है और जब उसकी फैली हुई आकर्षण शक्तिके परिधिके भीतर कोई लोहेका कण आ पड़ता है तो वह उसे खींच लेता है। वैज्ञानिकोंका विचार था कि ईथर द्वारा ही किसी एक पिण्डके एक सिरेसे दूसरे सिरेतक कोई भी प्रवाह प्रवाहित होता है। इतनी कल्पना वैज्ञानिकोंने केवल अपना मतलब साधनेके लिये की थी। और आश्चर्यकी बात यह थी कि उनकी कल्पनाने बड़े सुन्दर परिणाम उपस्थित किये और जिन बातोंको सिद्ध करना चाहते थे, उनको उन्होंने सिद्ध कर दिखाया।

ईथरकी सत्ता भ्रम मात्र है

जिस प्रकारसे ईश्वरकी रचना दृश्यमान है और वह स्वयं अव्यक्त है, वही दशा ईथरकी है। उसके कारण मानव जगत्के अनेक कार्य तो हो रहे हैं फिर भी उसकी सत्ताके विषयमें कोई प्रमाणिक जानकारी नहीं। ईश्वरको मनुष्य अनुभव कर सकता है किन्तु वह उसके वर्णनके परे है। ऐसी ही कुछ महत्ता वैज्ञानिक जगत्में ईथरकी है। किन्तु इतना सब होते हुये भी हमने अपने पहले लेखमें कहा था कि आइनस्टाइनने यह सिद्ध कर दिखा दिया कि ईथरकी जैसी कोई चीज नहीं। इस विश्वमेंके कार्य ईथरके बिना भी हो सकते हैं। ईथर चाहे हो, चाहे न हो उससे हमारे प्राकृतिक कार्योंका कोई संबंध नहीं। ईथरकी सत्ताको प्रमाणित करनेके लिये अनेक प्रयत्न किये गये किन्तु सभी आज तक असफल रहे। इसका मूल कारण यह है कि जिस सिद्धांतकी पुष्टिके लिये वैज्ञानिक लोगोंने ईथरकी कल्पना की थी वह सिद्धांत ही गलत है। इसी कारण आजतक ईथरकी सत्ताका कोई प्रमाण नहीं मिला। वैज्ञानिक लोग इस विश्वको एक भीमकाय यंत्रके सदृश मानने लगे थे और जिस प्रकारसे किसी यंत्रके पुरजोंके संचालनके लिये यह आवश्यक है कि वे किसी माध्यम द्वारा चलाये जायं उसी प्रकार इस विश्वके भी पिण्डोंके बीचमें चलाये जानेके लिये कोई माध्यम है। ऐसी मूढ़ कल्पना वैज्ञानिकोंने की थी। और इसी माध्यमको सिद्ध करनेके लिये उन्होंने ईथरकी रचना की किन्तु उनको अपने मुँहकी खानी पड़ी और सफलता प्राप्त न हुई। आजकलके विशिष्ट वैज्ञानिक इस परिणामपर पहुँचे हैं कि इस विश्वको ऐसा समझना कि यह एक मशीनकी तरह संचालित है और इसके हर एक कार्यके लिये एक न एक कारण ईथरके द्वारा हम पैदाकर सकेंगे, यह नितांत मूर्खता है।

अब प्रश्न यह उपस्थित है कि यदि ईथरके माननेका

सिद्धांत भ्रम पूर्ण है तो सत्य क्या है ? इस विश्वके निर्माण तथा इसकी अनेक गुत्थियोंको सुलझानेके लिये क्या उपाय हैं ? इसपर बहुत दिनोंसे विचार होता आ रहा है और अब हम लोगोंके सामने आइन्स्टाइनका सापेक्ष्यवाद है जो कि कुछ अंशोंमें अनेक विवादास्पद प्रश्नोंपर पहलेसे अधिक प्रकाश डालता है। यद्यपि अभी तक सापेक्ष्यवाद ही एक नितान्त सत्य सिद्धांत है। यह प्रमाणित नहीं हुआ, फिर भी सापेक्ष्यवादके सिद्धांत द्वारा जो परिणाम निकाले गये वे पहलेके बनिस्बत अधिक विश्वासनीय प्रमाणित हुये। इसी कारणसे अब लोगोंका विश्वास ईथरकी काल्पनिक सत्तासे उठ गया और उसके स्थानपर अब आधुनिक वैज्ञानिक लोग सापेक्ष्यवादको अधिक स्थान देने लगे हैं। १९०५ ई० में आइन्स्टाइनने एक साधारण निबंधमें अपने मतका उल्लेख किया और तबसे इस प्रकृतिकी अत्यंत रहस्यमय गुत्थियोंको सुलझानेके लिये सापेक्ष्यवादको ही अत्यंत उत्तम सिद्धांत माना जाता है। पहले वैज्ञानिक लोग हर एक विश्व निर्माण सम्बंधी प्रश्नपर प्रकाश डालनेका प्रयत्न करते थे किन्तु अब आइन्स्टाइन जैसे दार्शनिक गणितज्ञोंसे आशाकी जाती है कि वे इन प्रश्नोंका उत्तर देंगे।

समयका अबाधित प्रवाह

अभी तक हम लोगोंका ऐसा अनुमान था कि आकाश हम लोगोंके चारों ओर है तथा समय अबाधित गतिसे आगेकी ओर प्रवाहित हो रहा है। अभी तक हम लोग समयको आकाशसे नितांत भिन्न करके समझते थे। हम लोग आकाशमें आगे बढ़ सकते हैं। पीछे हट सकते हैं। तथा हम लोगोंका उसपर अधिकार है। हम जिस तरह चाहें उसका उपयोग कर सकते हैं किन्तु हमारा प्रभाव समयपर किञ्चित मात्र भी नहीं है। हम किसी भी प्रकार समयको अपने वशमें नहीं ला सकते हैं। यदि इस समय ८ बजेका समय है तो इसके बाद ९ ही बजेगा ७ नहीं बज सकता। हम इस प्रकार देखते हैं कि समयपर हमारा कुछ भी अधिकार नहीं है। हम जिस दिनसे इस भौतिक संसारमें जन्म ग्रहण करते हैं उसी समयसे अबाधित गतिसे कालके मुखमें अग्रसर होते जाते हैं, और अंतमें कहां विलीन हो जाते हैं इसका अभी तक कोई पता नहीं। आकाशमें यदि हम चाहें तो मंद अथवा तीव्र गतिसे चल सकते हैं पीछे या आगेकी ओर हट बढ़ सकते हैं, किन्तु समयके इस भीषण प्रवाहमें हम नितांत असमर्थ हैं। हमारी शक्ति इतनी भी नहीं है कि हम एक सैकेण्डके सौवें, व हजारवें हिस्से भी पीछे अथवा आगे बढ़ जांय। इसका प्रवाह अबाधित तथा नितांत अक्षुण्ण है। इस काल चक्रको समझनेकी चेष्टा मनुष्य अनादि कालसे करता आया है किन्तु अभी तक इसे सम्पूर्ण रूपसे समझ नहीं पाया।

अब सापेक्ष्यवादके सिद्धांतने हम लोगोंके सामने ऐसे परिणाम उपस्थित किये हैं कि जिनसे समयकी कोई वाह्य सत्ता ही नहीं रह जाती। उसने कुछ ऐसे परिणाम वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा निकाले जिसमें कि उसने यह सिद्ध किया कि प्रकृतिके तमाम कार्य्य समयसे निरपेक्ष हैं। या हम यों कहें कि काल तथा आकाश एक दूसरेसे इस प्रकार गुथे हुये हैं कि एक दूसरेसे कहाँ अलग होते हैं या इन दोनोंका कहां संधि स्थल है, यह नितांत अनिश्चित है। समय अबाधित गतिसे प्रवाहित हो रहा है अथवा स्थिर है इसको प्रकृति बिलकुल नहीं जानती।

आधुनिक वैज्ञानिकोंने यह सिद्ध कर दिखाया है कि सारे पदार्थोंकी बनावट विद्युतमय है। सभी पदार्थ विद्युत परमाणुओंमें विघट्टित किये जा सकते हैं, और हर एक प्राकृतिक घटनाकी आत्यन्तिक अवस्था विद्युत्मय है। सापेक्ष्यवादके समर्थकोंने यह बात साबित कर दिखायी कि हर एक प्राकृतिक घटना इस विश्वमें काल तथा आकाशसे भिन्न-भिन्न रूपसे नहीं हो रही है किन्तु इस विश्वकी हर एक प्राकृतिक घटनाको काल तथा आकाश इस प्रकार परिव्याप्त कर रहे हैं कि एकको दूसरेसे पृथक् करना नितान्त असम्भव है। हर एक प्राकृतिक कार्य काल तथा आकाशके संयोगसे निर्मित है। काल और आकाश इस प्रकारसे संयुक्त हैं कि उनको अलग-अलग आकाश तथा कालमें विभाजित करना नितान्त कल्पनातीत है।

हॉकीका उदाहरण

जब कि हम लम्बाई और चौड़ाईको एकमें समझना चाहते हैं तो हम क्षेत्रफलकी कल्पना करते हैं। मान लो

कि हमने एक हॉकी खेलनेके मैदानकी कल्पना की। अब उसमें खेलाड़ी खड़े होकर अपनी सुविधाके अनुसार उस क्षेत्रको दो हिस्सोंमें विभाजित कर कुछ लोग फारवर्डकी जगह लेते हैं, कुछ बैक होते हैं, कुछ हाफ बैक होते हैं, और खेल शुरू होता है। खेलाड़ी लोग अपनी स्थितिके अनुसार कभी गेंदको अपने आगे जाता हुआ देखते हैं और कभी अपनेसे पीछे। किन्तु यदि हम गेंदको देखें तो वह समग्र मैदानमें प्रकृतिके नियमके अनुसार जिधर वह प्रेरित किया जाती है उधर जाती है। उसके लिये आगे अथवा पीछे जैसी कोई बात नहीं। वह आगा पीछा लम्बाई चौड़ाई कुछ नहीं जानती। उसके लिये समग्र मैदान एक वस्तु है। उस मैदानमें लम्बाई चौड़ाई जैसी कोई दो भिन्न-भिन्न सत्तायें हैं, इसकी उसको कोई कल्पना नहीं। वह तो केवल प्राकृतिक नियमों-का पालन करती है, और प्राकृतिक नियम लम्बाई, चौड़ाई ऊंचाई तथा समय सबसे परे हैं। प्राकृतिक नियमोंका इनसे कोई सम्बन्ध नहीं। प्राकृतिक नियम तो क्षेत्रफलको एक वस्तु समझते हैं। और वे अपना कार्य करते हैं।

त्रिदिककी कल्पना

अगर हम लम्बाई, चौड़ाई तथा ऊंचाईकी कल्पना एकमें करें तो हमारे सामने एक त्रिदिक् जगत् उपस्थित होता है। पृथ्वीके समीप तो हम ऊंचाईकी कल्पना कर सकते हैं, और हमें ऐसा जान पड़ता है कि ऊंचाई क्षेत्र-फलसे भिन्न वस्तु है किन्तु अनन्त आकाशमें जाकर इन तीनोंकी कोई भिन्न-भिन्न सत्ता नहीं रह जाती। इस अनन्त आकाशमें लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई ये तीनों इस प्रकार एक दूसरेसे मिल जाते हैं कि तीनोंकी व्यक्त रूपसे कल्पना असम्भव-सी जान पड़ती है। वहांपर हमारे पास कोई ऐसा साधन नहीं जिसके द्वारा कि यह जाना जा सके कि यह आकाश वास्तवमें त्रिदिक् है। अभीतक हमने पाठकोंको यह दिखलानेकी चेष्टा की कि हमने अपनी विचार धाराको बढ़ाते-बढ़ाते किस प्रकार लम्बाई और चौड़ाईका संघटनकर क्षेत्रफलकी कल्पनाको, और फिर उसके उपरान्त हम लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाईका संघटन कर घनफलकी कल्पना करते हैं और हमारे सामने एक त्रिदिक् जगत् उपस्थित होता है। अब यदि त्रिदिक् जगत्में चतुर्दिक जगत्की हम कल्पना करना चाहें तो वह कुछ असम्भव-सा जान पड़ता है। कारण यह कि हमें इस चौथी दिशाका कोई परोक्ष ज्ञान नहीं है। न तो हमें कोई ऐसा अनुभव ही है जो कि सर्व साधारणके लिये प्रत्यक्ष हो। यहाँपर हम पाठकोंके सामने इस चतुर्दिक जगत्की कल्पनाको प्रस्तुत करना चाहते हैं जिससे कि सापेक्ष्यवादका अत्यन्त घनिष्ट संबंध है।

चतुर्दिक् संसार

आइन्स्टाइनकी यह कल्पना है कि यदि इस प्रत्यक्ष भौतिक त्रिदिक् जगत्के साथ कालका संघटन किया जाय तो चतुर्दिक जगत् उपस्थित होता है। आकाश त्रिदिक् है, यह मैंने पाठकोंको दिखलाया। आकाश त्रिदिक् है यह बात लोगोंकी समझमें जल्दी आ जाती है क्योंकि इसका अनुभव उन्हें प्रत्यक्ष है। किन्तु यदि पाठक गण अपनी विचार धाराको और व्यापक बनावें और आकाशको त्रिदिक न मानकर आकाशको चतुर्दिक मानें तथा इस चतुर्थ दिशाकी कालके रूपमें कल्पना करें तो एक चतुर्दिक जगत्-की कल्पना उनके सम्मुख प्रस्तुत होगी। प्रथमतः तो यह कल्पना बड़ी विचित्र तथा अकाल्पनिक-सी प्रतीत होती है किन्तु बार-बार अनुभवका क्षेत्र बढ़ाने तथा कल्पना करनेसे कुछ भासित होने लगता है। फिर भी जिस प्रकार इस त्रिदिक् जगत्का अनुभव प्रत्यक्ष नहीं होने पाता क्योंकि हमें इस चतुर्थ दिशा कालका कोई प्रत्यक्ष अनुभव नहीं है।

भारतकी प्राचीन गौरव गरिमाके दिनोंमें ऐसा कहा जाता है कि ऐसे ऋषि-मुनि थे जो कि भूत, वर्तमान एवं भविष्यको सदैव अपने वशमें रखते थे। कहनेका तात्पर्य यह है कि उनके लिये समयका प्रवाह दृश्यमान था। वे भूत तथा भविष्यके चक्करमें नहीं रहते थे। वे जो 'है' उसे जानते थे। आज भी तो हम जानते हैं कि जो वर्त-मान है वही भूत होता है और भविष्य है, वह भी एक दिन वर्त्तमान होगा। अतः भूत और भविष्यकी कोई सत्ता नहीं। सत्ता यदि है तो केवल वर्तमानकी। भूत और

भविष्य तो केवल समयके प्रावाहका पीछा और आगा दिखानेवाले हैं। जो ऋषि त्रिकालज्ञ हुआ करते थे उन्हें इस कालका प्रत्यक्ष अनुभव था किन्तु उनका यह अनुभव भौतिक नहीं था आध्यात्मिक था। पाश्चात्य देशवासी आज सभी आध्यात्मिक जगत्‌की बातोंको भौतिक रूपमें जगत्‌के सामने प्रत्यक्ष कर रहे हैं। अनेक बातें पहले लोगोंकी केवल कल्पना थीं। अब वे ही पाश्चात्य वैज्ञानिक अनुसन्धानी द्वारा प्रत्यक्ष ही रही हैं। भारतके योगी अपने योग बल द्वारा अनेक आश्चर्य-जनक कार्य करते सुने गये हैं। आज जिन प्राकृतिक शक्तियोंपर विजय प्राप्त करके मनुष्य अनेक कार्य सर्व साधारणके लिये कर सकता है उन्हीं प्राकृतिक शक्तियोंपर प्राचीन भारतमें ऋषि तथा योगी लोग व्यक्तिगत रूपसे विजय प्राप्तकर हमारे अनेक आश्चर्य-जनक कार्य करते थे।

आज हम जिस कालकी कल्पना तक करनेमें असमर्थ हो रहे हैं उसीपर हमारे पूर्वज सम्पूर्ण रूपसे अधिकार रखते थे। वे इस अधिकारका प्रदान दूसरोंको भी करते थे किन्तु पात्र देखकर। उनका यह प्रदान सार्वजनिक नहीं था। वह केवल अधिकारी तथा जिज्ञासुको ही था। चाहे जो कुछ भी हो प्राचीन कालकी तुलनामें आजका दृष्टि कोण बदला हुआ है। आज हम चाहते हैं कि जो बात एक आदमी जानें उसे सब जानें, उससे सब लाभ उठावें, और वह सार्वजनिक उपयोगमें आ सके, यदि ऐसा है तो यह बात ठीक अथवा यह अनुसंधान ठीक नहीं तो गलत। आधुनिक युग व्यक्तिगत महत्ताका नहीं है। आज का युग तो सामाजिक महत्ताका युग है।

(क्रमशः)

आयुर्वेदका सिद्धान्त-वाद

[ले० श्री स्वा० हरिशरणा नन्द जी]

अनेक वैद्योंकी यह धारणा है कि आयुर्वेद भी वेदवत् अनादि है। इसको सर्व प्रथम मानव जगत्‌में प्रकट करने वाले ब्रह्मा जीने रचा। उन्होंने ही सृष्टि-रचनाके समय जिन आदि महर्षियोंको उत्पन्न किया उन्हें इसको पढ़ाया। उनसे धीरे-धीरे मानव जगत्‌में फैला। इसीलिये वह आयुर्वेदका सिद्धान्त सर्वदा सत्य सनातन है। उसे कोई बदल नहीं सकता। आयुर्वेद ऋषियोंको तो पढ़ना पड़ा, परन्तु ब्रह्माको स्वतः आ गया, क्या .खूब, इस तरहकी सिद्धान्त-वादकी बुनियाद केवल विश्वासकी रेतीली भूमि पर रक्खी गई है, वास्तविकताका इसमें लेश नहीं।

प्रथम तो सृष्टिके आरम्भमें बिना रजवीर्य सम्मेलनके मनुष्यको अयोनिज उत्पन्न करना, केवल कल्पना है। इसपर भी आरम्भिक मानवी सृष्टिका मूल पुरुष (ब्रह्मा) जिसे समस्त वेदों, उपवेदोंका स्वतः ज्ञाता मानते हैं, पूर्व कल्पनासे भी बढ़ी हुई असम्भावित कल्पना है। जिस तरह जन्म लेकर कोई बालक बिना पढ़ाये ज्ञानवान्, विद्यावान् नहीं बन सकता इसी तरह मानव जातिका मूल पुरुष भी बिना शिक्षणके वेदों और उपवेदों का ज्ञाता नहीं बन सकता।

धार्मिक जगत्‌में विश्वास रखने वालोंकी बातें निराली हैं। वह कहते हैं कि जिस ईश्वरने सृष्टिका उपक्रम किया उसने ही ब्रह्माको सर्वगुण व सर्व विद्या सम्पन्न बनाया। न भी बनाया हो तो वह उसे बना सकता है। उसने ही ब्रह्माको उत्पन्न करते ही उसे सर्व विद्या व गुण सम्पन्न बना दिया। यह ईश्वर द्वारा ब्रह्माकी उत्पति उक्त बातों-की असत्यताको छिपानेके लिये गढ़ी गई है। ईश्वर कोई मनुष्यतन-धारी प्राणी नहीं। (यहां अवतारोंकी चर्चा नहीं है न अवतार सृष्टिके आदिमें थे) वह तो निराकार निर्विकल्प, निर्लेप, निरंजन सार्वभौम एकरस सत्ता है। उसको (जो मानव रचनावत् नहीं) मानवोंका पूर्वज उत्पन्न करने वाला बताना संसारकी प्रकाशमान् आंखोंमें धूल झोंकना है।

सृष्टिमें जितनेभी चर अचर जीव हैं कोई भी बिना सजातीय बीजके उत्पन्न नहीं होते। फिर सृष्टिकी आदि

में एक-एक जीवके जोड़ेका बिना किसी सजातीय प्राणी-के उत्पन्न हुआ मानना प्राकृतिक नियमोंकी महान् अव-हेलना करना है। यही नहीं ईश्वरीय न्यायपर भयंकर कुठाराघात है। यदि ईश्वरके नियम अचल और अटल हैं तो कोई कारण ऐसा नहीं, जो उसके नियमोंको तोड़ सके। ईश्वर स्वयम् अपने नियमोंको बनाकर कभी नहीं तोड़ेगा।

सृष्टिका आरम्भ कैसे हुआ?

इस समयके अत्यन्त विश्वसनीय अनुसन्धान सिद्ध-कर रहे हैं कि सृष्टिकी रचना भिन्न-भिन्न प्राणियोंके एक-एक जोड़ेसे नहीं हुई, प्रत्युत सृष्टिके आरम्भमें निर्जीव जगत्‌की उत्पत्तिके साथ सर्व प्रथम जलाशयोंमें अत्यन्त सूक्ष्म सजीव जगत्‌की रासायनिक क्रमसे रचना हुई। वह आदिकी सजीव सृष्टि जितने सूक्ष्म शरीरमें हुई। उसका वह सूक्ष्म शरीर आज भी सृष्टिके प्रत्येक चर अचर प्राणियोंके दीर्घाकार शरीरमें छिपा हुआ है जिसको अब वैद्य लोग भी आधुनिक शरीर शास्त्र पढ़कर जानने लगे हैं। उन अत्यन्त सूक्ष्म शरीर धारी अयोनिज सजीव सृष्टिसे योनिज सृष्टिका विकास हुआ। उस योनिज सृष्टिकी विकास श्रृंखलामें आगे चल-कर मानव योनिकी एक श्रृंखला कहीं शाखा प्रशाखाओंमें जाकर बनती है। जिसकी शरीर रचना अन्य प्राणियों-वत है। जो मानव प्राणी इस तरह सृष्टिमें विकसित हुआ वह आरम्भसे ही सर्व विद्यानिधान, ज्ञानवान् नहीं हो सकता प्रत्युत वह ज्ञानकी सीढ़ियोंपर क्रम-क्रमसे हजारों वर्ष लगाकर ही चढ़ सकता है।

आयुर्वेदका ज्ञान भी इसी क्रमसे धीरे-धीरे विकसित हुआ। और जैसे-जैसे पूर्व पुरुष इसमें उन्नति करते गये इसे नियम बद्ध करते चले गये। वह अपने विद्यमान साधनोंकी सहायतासे जो कुछ समझे उसका उन्होंने स्थितिके अनुसार रूप दिया। किन्तु उनका वह दिया हुआ रूप या आयुर्वेदके सम्बन्धी सिद्धांत कोई ऐसा अचट, अटल सिद्धान्त नहीं हो सकता जिसमें उन्होंने स्वयम् परिवर्तन न किया हो।

हम यदि पूर्वसे पूर्वके रचे ग्रन्थोंको क्रमसे देखें तो अनेक बातें जो पूर्वके ग्रन्थोंमें संक्षेपसे हैं, आगे उनका विस्तारसे वर्णन पाते हैं। कई बातें जो पूर्वके ग्रन्थोंमें ढूँढे नहीं मिलतीं आगेके ग्रन्थोंमें उनका उल्लेख है। उससे आगेके ग्रन्थोंमें और भी अधिक ज्ञानका प्रमाण मिलता है। उदाहरणके लिये त्रिदोषको ही लीजिये—चरक संहिताका बात कलालपि अध्याय ध्यानसे पढ़ा जाय तो ज्ञान होता है कि त्रिदोष सिद्धान्त उससे पूर्व बहुत शिथिल स्थितिमें या सुश्रुतके मतानुसार तो रक्त धातु भी दोषमें परिगणित किया गया है। ज्ञात होता है उन्हीं आत्रेयके समय त्रिदोष सिद्धांतको सार्वभौम माना गया। जिसकी अधिक स्पष्ट व्याख्या वाग्भटने की। जो त्रिदोष सिद्धांतपर विस्तृत विवेचन वाग्भटने दिया है उससे आगेके टीकाकार किसी न किसी अंशमें कुछ न कुछ अवश्य अधिक व्याख्याकर गये हैं। यदि आयुर्वेदको ऐसे समय विश्वासके डब्बेमें न बन्द किया जाता तो आगे इसमें अनेक परिवर्त्तन होनेकी सम्भावना थी। किन्तु उसपर तो त्रिकालज्ञ प्रणेताओंकी मोहर लगा दी गई थी जिसे किस धार्मिक जगत्‌के प्राणिका साहस था जो तोड़ डालता। आयुर्वेद चिकित्सामें त्रिदोष सिद्धांत स्तम्भ रूप हैं किन्तु, आज इस सिद्धांतका खोखलापन क्रियात्मक रूपमें न दिखाई देनेसे प्रकट हो रहा है। आज एक भी वैद्य त्रिदोष सिद्धांतकी वैज्ञानिक परिभाषा बनाने और क्रियात्मक निदर्शन करानेमें समर्थ नहीं दिखाई देता।

आयुर्वेदके समस्त अंगोंमें कल्पनाका नहीं क्रियात्मक-वादका राज्य है। हर एक बात करके दिखाई तथा देखी जा सकती है। अब औषधियोंके गुण, प्रभाव भी प्रत्यक्ष साधनों द्वारा शरीरपर नापे व तोले जा सकते हैं। ऐसी स्थितिमें—इस समयके जाज्वल्यमान् विज्ञानके प्रकाशमें काल्पनिक सिद्धांतोंके चक्करमें फंसे रहना कहांकी बुद्धि-मानी है।

सिद्धान्तके प्रकार

सिद्धान्त दो प्रकारके होते हैं। एक तो वह जो कुछ ही प्रत्यक्षको आधार लेकर कल्पनाकी नींवपर रक्खे जाते हैं जैसे त्रिदोषवादका सिद्धान्त। दूसरे वह सिद्धान्त हैं जो शुद्ध क्रियात्मक विज्ञानकी सहायतासे गढ़े जाते हैं। जैसे ओषधनिर्माण सम्बन्धी सिद्धान्त या चिकित्सा सिद्धान्त।

काल्पनिक सिद्धान्तोंका सम्बन्ध कर्मठ क्षेत्रसे दूर होता है इसीलिये इनको सिद्ध करनेके साधन और होते हैं तथा उन्हें भारी भ्रमरूपी चक्र व्यूहसे लेजाकर दिखाया जाता है और उस चक्र व्यूहकी स्थितका विश्वास जमाया जाता है कि यह वास्तवमें इसी तरहका है। कर्मठ सिद्धान्तोंमें ऐसे भ्रम जालकी जरूरत नहीं होती। प्रश्न उठनेपर उसे सीधी साधी स्थितसे करके दिखा दिया जाता है कि यह इस सिद्धान्तकी स्थापनाका क्रम है। कर्मठ सिद्धान्तोंका झुकाव सदा ही उद्देश्य सिद्धिकी ओर देखा जाता है। और उनमें परिवर्तत आता रहता है इस तरह जितने भी सिद्धान्त कर्मठ भूमिपर खड़े किये जाते हैं वह परिस्थितिके अनुकूल बदलते रहते हैं या बदले भी जाते हैं। क्योंकि उसके प्रत्येक विभागमें हर एक क्रिया कुशलका सदा प्रवेश बना रहता है। और वह क्रिया कुशल ही उसको समयकी स्थितिके अनुसार बना सकता व बदल भी सकता है। वह उसका निर्माता होता है इसीलिये ऐसे सिद्धान्त सजीव सचेष्ट कहलाते हैं अनेक वैद्य उस समय अनेक कर्मठ सिद्धान्तोंको जब बनता बिगड़ता बदलता देखते हैं तो उनके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहता। वह कह देते हैं कि वह सिद्धान्त ही क्या जो बनता बिगड़ता रहे। योरूपके वैज्ञानिक सिद्धान्तोंका परिहास उड़ाते हैं। किन्तु उन्हें इस बातका पता नहीं कि हम जिन काल्पनिक सिद्धान्तोंको मानते हैं वे तो जड़ हैं। जड़ वस्तु सदा ही अचल रहती है पर उसका चल संसारके लिये होना न होनेके बराबर ही है। उससे कुछ भी सिद्ध नहीं होता। मन मोदकसे क्या कभी किसी की तृप्ति हुई है?

हमारे ज्ञानकी सीमा अब केवल प्राचीन ग्रन्थ तक ही सीमित नहीं रह गई। प्रत्युत, एक क्या कई समुद्रोंको पार करती हुई पाताल तकके निवासी व्यक्तियोंके रचित ग्रन्थ तक जा पहुँची है। और इस समय जितनी भी क्रियात्मक साधन उपलब्ध है उनकी सर्व सहायता लेनेके लिये हमारी आत्मा हम सबोंको प्रेरित कर रही है, हमें अब इसी कर्मठ भूमिमें प्रवेश करके अपने सिद्धान्तोंको सक्रिय सबल सचेष्ट बनाना चाहिये जभी उन्नति हो सकती है। जड़ सिद्धान्त जो स्वयम् न हिल सकते हों न जिनमें सजीवताके चिह्न हों यदि उन्हें पूजना ही हो तो उनका मंदिर बना कर उनकी स्थापना कर देना ही श्रेयस्कर है।

चिकित्सा जगत्में क्रान्ति

लघु तरंगोंके उपयोगसे विविध लाभ

[ले०—डा० रामरत्न वाजपेयी, एम० एस-सी०, डी० फिल; एल-एल० बी०]

भौतिक शास्त्र चिकित्सामें एक विशेष स्थान रखता है। वास्तवमें चिकित्साका एक विशेष अंग इसी पर निर्भर है। अर्वाचीन समयमें इसकी महत्ता और भी बढ़ गई है। आजकल इसकी चिकित्सक सन्तानें एक्स किरणें, अल्ट्रा वायलेट किरणें, तथा रेडियम इत्यादिको कौन नहीं जानता है जिनके द्वारा आधुनिक चिकित्सक अनेक कष्ट साध्य रोगोंके आक्रमणोंको सरलतापूर्वक दूर करनेमें सफल हुये हैं। डा० नेहरूका एलेक्ट्रोकलचर भी एक विशेष महत्व रखता है। उन्होंने तो इस सिस्टमके द्वारा मनुष्य, पशु, वृक्ष, पौधे, खाद्य पदार्थ सभीके उत्थानका बीड़ा उठाया है। चिकित्साके अन्य अंग जहां भौतिक शक्तियाँ रोग निवारण करती हैं जल चिकित्सा तथा ताप चिकित्सा हैं। और अब तो नश्तरका स्थान भी विद्युतने ले लिया है। आजकल अनेक आपरेशन इसी शक्तिके द्वारा किये जाते हैं। ताप चिकित्सा यद्यपि भारतवर्षमें प्राचीन समयसे प्रचलित है परन्तु आजकल तो इसका काया पलट ही हो गया है। अब तक तो हम लोग किसी चोट, शोथ अथवा गांठोंकी पीड़ाको सीधे-सीधे अग्नि, गर्म पानी अथवा

भापसे सेंक कर ही ताप चिकित्साकी पराकाष्ठा समझते थे। इस रीतिमें अंग विशेषका ऊपरी भाग ही मुख्यतर गर्म होता था और भीतरी भाग पर कोई विशेष प्रभाव न पड़ता था जिसके फलस्वरूप कष्ट निवारक प्रक्रियाओंकी गति मन्द रहती थी। परन्तु आज इस सेंकके लिये रेडियोकी लहरें काममें लाई जाती हैं। यह लहरें शरीरके एक ओरसे दूसरी ओर तक पार कर जाती हैं जिसके कारण अंग विशेष जो कि सेंका जा रहा है केवल त्वचापर ही गर्म नहीं होता है बल्कि तापका प्रभाव एक सिरेसे दूसरे तक मांस मज्जा सभीको पार कर जाता है। चिकित्साकी इस रीतिको रेडियो-थैरैपी ताप चिकित्सा अथवा दीर्घ-तरंग-चिकित्सा कहते हैं। यह अनेक रोगोंके दूर करनेमें सफलतापूर्वक काममें लाई जा चुकी है। इसका आन्तरिक नियम तापोत्पादन द्वारा रोग निवारण है। परन्तु यह भी शरीरसे अंगोंमें अधिक गहराई-पर विशेष ताप उत्पन्न करनेमें असमर्थ है और उसके लिये नीचे लिखा उपाय काममें लाया जाता है।

हाल ही से चिकित्सकोंके हाथ एक दूसरा बहुमूल्य उपाय आ गया है। चिकित्सक इस रीतिको लघु-तरङ्ग-चिकित्सा अथवा अच-स्पन्दन-चिकित्सा कहते हैं। इसमें टेलीविज़न तरङ्गोंका उपयोग होता है। इस रीतिने चिकित्सकोंके लिये एक विस्तृत क्षेत्र खोल दिया है। इसपर अनेक प्रयोग किये जा चुके हैं जिनसे कि पता लगता है कि यद्यपि यह चिकित्सा सर्व रोग निवारक नहीं कही जा सकती है परन्तु तो भी निकट भविष्यमें ही यह मनुष्य तथा रोगोंकी लड़ाईमें एक अपूर्व अस्त्र सिद्ध होगी। इस लेखका अभिप्राय केवल इस रीतिके मुख्य सिद्धान्तोंका वर्णन करना तथा इसकी उपयोगिता बतलाना है।

लघुतरङ्ग चिकित्साकी अन्य रीतियों, मुख्यतर ताप-चिकित्सासे तुलना

चिकित्सामें विद्युत स्पन्दनोंका एक विशेष लाभ यह है कि इनके द्वारा शरीरमें प्रवल विद्युत् धारायें भेजी जा सकती हैं। विद्युत् विश्लेषण तथा विद्युत्के धक्कोंके भयके कारण सीधी-धारा द्वारा यह कार्य सम्पादन करना तो असम्भव ही है। उलटी-सीधी धाराओंमें भी यह भय उपस्थित है और जब तक झूलन संख्या १००,००० के ऊपर नहीं पहुँच जाती है स्नायुओंके ऊपर इनका उग्र प्रभाव कम नहीं होता है।

लघु-तरङ्ग-चिकित्सा चिकित्साकी अन्य ऐसी रीतियोंसे जिनमें कि विद्युत् धाराओंका प्रयोग किया जाता है एक मुख्य विशेषता यह रखती है कि इस रीतिमें शरीरके प्रयोग किये गये अंग विशेषके आन्तरिक भागमें प्रबल ताप उत्पन्न होता है। केवल रौञ्जन किरणें ही दूसरा ऐसा उपाय हैं कि जिसके द्वारा हम शरीरके आन्तरिक भागोंमें ऐसा ताप-प्रभाव पैदा कर सकें परन्तु रौञ्जन किरणोंके प्रभावकी प्रकृति इससे सर्वथा विभिन्न है। विद्युत् चिकित्साकी अन्य रीतियोंमें या तो थोड़ा भाग ही शरीर-के अन्दर घुसता है या सम्पूर्ण शक्ति मुख्यतया त्वचा तथा इसके समीपवर्ती भागोंमें ही शोषित हो जाती है।

लघु-तरंग-चिकित्सामें प्रयोग किये जानेवाले विद्युत स्पन्दनोंके उत्पन्न करनेकी दो रीतियाँ

विद्युत् स्पन्दन जिनका कि प्रयोग लघु-तरंग-चिकित्सा-में होता है मुख्यतर दो प्रकारके यन्त्रोंमें उत्पन्न की जाती है। एक तो स्फुलिंग-उत्पादकों और दूसरे कपाट-उत्पादकोंसे। स्फुलिंगोत्पादकमें नियमित समयपर-प्रतिसेकंड अनेक बार चिनगारियाँ उत्पन्न होती रहती हैं जिसके कारण ऐसे विद्युत् स्पन्दन पैदा होते हैं जिनकी लहर-लम्बाई एक ही नहीं होती है। और जिस प्रकार एक हिलते हुये दोलक या पेण्डुलमके स्पन्दनके झोंटे धीरे-धीरे वायु-प्रतिरोधके कारण कम होते जाते हैं उसी प्रकार इन विद्युत्के स्पन्दोंके झोंटे भी क्रमशः कम होते जाते हैं। इसी कारणसे ऐसे स्पन्दन रोधित-स्पन्दन् कहलाते हैं। इसके विरुद्ध कपाट-उत्पादकोंमें ऐसे स्पन्दन उत्पन्न करना सम्भव है जिनके झोंटे एक ही बने रहें और स्पन्दक एक ही झूलन संख्यापर झूलता रहे। यहाँ पर यह बतला देना अनुचित न होगा कि कपाटमें स्पन्दन किस प्रकार होते हैं तथा उनके झोंटे और लहर लम्बाई किस प्रकार स्थिर बनी रहती है।

यदि हम हिलते हुये दोलक या लंगरमें ऐसे समय-पर जब कि वह मध्यस्थानसे जाता है इतनी शक्ति प्रत्येक वार पहुँचाते रहें जितनी कि वायुके प्रतिरोध इत्यादिके द्वारा ह्रास होती है तो यह ठीक ही है कि वह दोलक एक ही से झोंटेसे हिलता रहेगा। दूसरे, दोलकमें हम जानते हैं कि जब वह मध्य स्थानपर पहुँचता है तो उसकी गत्यर्थक-सामर्थ्य अधिकतम होती है। फिर यह सामर्थ्य धीरे-धीरे स्थित्यर्थक सामर्थ्यमें परिवर्त्तित होती रहती है, यहाँ तक कि जबकि वह लौटनेके स्थानपर पहुँचता है तो उसकी सामर्थ्य केवल स्थित्यर्थक ही होती है, गत्यर्थक सामर्थ्य बिल्कुल नष्ट हो जाती है। लौटनेपर स्थित्यर्थक फिर गत्यर्थक रूपमें परिवर्त्तित होती रहती है और इसी प्रकार यह क्रिया जारी रहती है। इसको हम दोलनका स्पन्दन् कहते हैं। ठीक इसी प्रकार कपाट-उत्पादककी स्पन्दन कुण्डलीमें जिसमें कि समाई तथा आवेश रहते हैं स्पन्दन होते रहते हैं। एक समय पर सारी सामर्थ्य संग्राहक ही में विद्युत्-स्थितिके रूपमें विराजती है इसकी तुलना दोलककी स्थित्यर्थक सामर्थ्यसे होती है फिर इसके बाद यही सामर्थ्य चुम्बकीय रूपमें परिवर्तित होकर आवेशसे सम्बन्धित रहती है यह दोलककी गत्यर्थक सामर्थ्य कही जा सकती है। इन स्पन्दनोंके झोटे स्थिर रखनेके लिये कपाटका पट-कुण्डलीसे सामर्थ्य ग्रिड-कुंडलीमें भेज दी जाती है इस प्रकार जूलियन तापकी हानि पूरी होती रहती है और स्पन्दनोंके झोटे स्थिर बने रहते हैं। स्पन्दनोंकी लहर-लम्बाई केवल समाई तथा आवेशपर निर्भर होती है और चूँकि उनमें कोई परिवर्तन नहीं होता अतः उत्पादक एक ही झूलन संख्यापर झूलता रहता है। यहाँ पर यह कह देना उचित है कि यह बात सर्वथा ठीक नहीं है कि समाई तथा आवेशमें कोई परिवर्तन नहीं होता है। तापक्रमके साथ-साथ यह भी परिवर्तित होते हैं परन्तु विशेष उपायों द्वारा यह परिवर्तन इतने कम कर दिये जाते हैं कि उनका होना न होना बराबर ही है।

चिकित्सा तथा अन्य प्रयोगोंके लिये यह अत्यावश्यक है कि प्रयोगकी ठीक-ठीक दशा जानी जा सके और फिर वही दशा मुकाबिलेके लिये फिर उत्पन्न की जा सके। स्फुलिंग उत्पादकमें अनेक झूलन संख्याओंकी लहरें उत्पन्न होती हैं इसलिये प्रयोग की ठीक-ठीक दशा जानना और फिर दोबारा उसी दशामें काम करना असम्भव-सा ही प्रतीत होता है अतएव अनुसंधान करनेके लिये कपाट उत्पादकोंका प्रयोग ही ठीक प्रतीत होता है कपाटोत्पाकोंके पक्षमें एक और बात है कि इनके द्वारा विभिन्न लहर-लंबाईयोंका प्रभाव भी बड़ी आसानीसे जाना जा सकता है और फिर बतलाया जा सकता है कि कौनसी लहर-लंबाई किसी विशेष अवस्थामें सबसे कपाटोत्पादकसे उत्पन्न की हुई लघुतरङ्ग सामर्थ्य एक रासायनिक औषधिसे की जा सकती है जिसका कि चिकित्सोपयोगी प्रभाव केवल एक ही बातपर निर्भर है और वह है औषधि मात्रा।

चिकित्सामें विद्युत स्पदंनोंके प्रयोग करनेकी विभिन्न रीतियाँ

विद्युत् स्पन्दन कई प्रकारसे प्रयोगमें लाये जाते हैं। सबसे सरल उपाय यह है कि शरीरका अंग विशेष जिसकी चिकित्सा करना है विद्युत् धाराओंके सीधे रास्तेमें रख दिया जाय। ताप-चिकित्सामें धारायें साधारणतया पट-विद्युतोंद्वारा बहती है इन विद्युतोंपर बहुधा १० से १०० वोल्टन तक अवस्थाभेद रहता है। यदि पटोंके साथ शरीरका संपर्क-क्षेत्र अधिक रहे तो धारा शक्ति काफी अधिक रहती है।

डी आरसनवल रीतिमें जिसमें कि अधिक उच्च वोल्टन प्रयोग किये जाते हैं काँच-शून्य-विद्युतोंमें जिनमें किसी अंशतक अति न्यून-गैस भरी रहती हैं अधिकतर काममें लाये जाते हैं। नलियोंमें उपस्थित गैसोंमें तड़ित्-यापनके द्वारा एक धारा उत्पन्न होती है जो कि शरीरमें ब्रश-डिस-चार्ज द्वारा प्रवेश करती है। कभी-कभी तो रोगी प्रथ्वीपर ही पड़ा रहता है और कभी अवरोधकतिपाईपर। दोनों ही दशाओंमें पूरे शरीरमें बिजली दौड़ती है—पहली दशा में सीधे-सीधे प्रथ्वीमें प्रवेश कर जाती है तथा दूसरी दशामें समाई-विधि द्वारा।

स्वयं-चालनमें डी आर्सनवलने विद्युत् स्पन्दनोंके दूरस्थ प्रभावोंका उपयोग किया। इस रीतिमें उच्च-स्पंदन धारा मनुष्यके शरीरमें एक बिशाल सोलेनायडके द्वारा

प्रवेश कराई जाती है। मनुष्य सोलेनायडके मध्यमें रहता है और इस प्रकार सोलेनायडके मध्याक्षका स्थान लेता है। यहांपर भी सोलेनायडके छल्लोंसे समकोण बनाते हुये विद्युत्-चुम्बकी क्षेत्रका प्रयोग होता है। इस क्षेत्रकी अधिकतम शक्ति सोलेनायडके केन्द्रपर ही होती है। इस प्रकार रोगीका पूर्ण शरीर क्षेत्र शक्तिसे प्रभावित होता है। इसके द्वारा रक्त-प्रवाहपर और मुख्यतर रक्त-चापपर प्रभाव पड़ता है। लोगोंका यह भी विश्वास है कि इसका स्नायु-संस्थानपर भी एक साधारण शान्तिप्रद प्रभाव होता है। परन्तु इस रीतिका एक मुख्य दोष यह है कि इसमें बहुत छोटी लहरें नहीं प्रयोग की जा सकतीं है। क्योंकि इतने बड़े सोलेनायडका प्रवेश जिसमें कि मनुष्य सरलता पूर्वक बैठ सके बहुत अधिक होगी।

चौथी रीतिमें संग्राहक-क्षेत्रका प्रयोग होता है। इसमें रुग्ण अंग संग्राहकके बीच विद्युत-स्थितिक क्षेत्र शरीरके रुग्ण अंगसे प्रवेश करता है। अब हम यह बतलायेंगे कि यह सब किस प्रकार किया जाता है। रोगी पहले चिकित्सा-गद्दीपर बैठाया जाता है। उत्पादक इस समय बन्द रहता है। इसके बाद ठीक प्रकारके विद्युतोद चुने जाते हैं और वह अपने स्थानपर लगा दिये जाते हैं। फिर विद्युतोदोंके बीचमें शरीरका रुग्ण भाग रक्खा जाता है और विद्युतोदों तथा शरीरके बीच की दूरी ठीक की जाती है। कभी-कभी शरीर तथा विद्युतोदोंके बीचमें शीशे इत्यादिके तख्ते भी रक्खे जाते हैं। इसके बाद उत्पादक चलाया जाता है। पहले कपाटोंवेत गर्म होते हैं और तब तक जो लहर-लंबाई लगाना हो ठीक कर ली जाती है। इसके बाद उच्च वोल्टन या पद-वोल्टन लगाया जाता है और यंत्र अनुकूलता दशामें लाया जाता है। मात्रा अधिकतर तन्तुको वोल्टनको घटा बढ़ा कर ठीक की जाती है। कभी-कभी यह काम पट-वोल्टनको घटा बढ़ा कर भी किया जाता है। मात्रा यहां तक दी जाती है कि रोगीको गर्मी प्रतीत होने लगे। कितने समय तक रोगीको इस अवस्थामें रखना चिकित्सकके अनुभव तथा रोगीकी दशा-पर निर्भर होता है।

इस रीतिमें मुख्य नाते जिनका कि ध्यान रक्खा जाता है यह हैं :—

(१) अंगकी मोटाई (२) सामर्थ्यकी मात्रा (३) सामर्थ्यकी लहर, लंबाई (४) अंगकी अपेक्षा विद्युतोदों-की बड़ाई-छोटाई (५) अंग तथा विद्युतोदोंके बीचकी दूरी (६) अंग तथा विद्युतोंके बीचमें उपस्थित अन्य पदार्थ जैसे कपड़े इत्यादि।

लघुतरंगोंके शारीरिक तथा चिकित्सोपयोगी कुछ प्रभाव

ताप तथा रक्त एकत्री करण प्रभाव—इन लहरोंके प्रभावसे ताप उत्पन्न होता है और अंग विशेषमें रक्त अधिक मात्रामें एकत्रित होने लगता है। यद्यपि यह दोनों बातें दीर्घ-तरंग चिकित्सामें भी होती हैं परन्तु दोनों क्रियायें एकदम विभिन्न हैं। जैसा कि और जगहपर भी बतलाया गया है लघुतरंगोंमें दीर्घ तरंगोंकी अपेक्षा तापक्रम उत्पन्न होता है और रक्त अधिक समय तक एकत्रित रहता है। श्लामका कहना है कि लघु-तरंगोंका रक्त एकत्री करण प्रभाव ४८ घंटे तक रहता है।

पीड़ा नाशक प्रभाव

इस चिकित्साका एक मुख्य भाव यह है कि इससे दर्द बहुत कम हो जाता है कभी-कभी तो बिल्कुल नष्ट ही हो जाता है। यह प्रभाव सबसे अधिक पहले प्रयोगमें प्रतीत होता है और दीर्घ तरंग चिकित्सा तथा अन्य भौतिक चिकित्साओंकी अपेक्षा अत्यधिक मात्रामें होता है।

शोथ नाशक प्रभाव

इन लहरोंका दूसरा मुख्य प्रभाव यह है कि यह विकट शोथ तथा कीटाणु क्रियाओंमें बहुत लाभ पहुँचाती हैं। ऐसी दशाओंमें दीर्घ तरंगें चिकित्सा तो एक दम असफल होती हैं क्योंकि इससे शोथ बढ़ती तथा फैलती है। श्लाइफेकने यक्ष्मा विशेष (प्ल्यूरेल एम्पाइमा) तथा फुफ्फुस—विकारोंके कष्ट साध्य एवं असाध्य रोगियोंको इस चिकित्सा द्वारा बिना आपरेशन किये ही अच्छाकर दिया है। उसका कहना है कि कीटाणु क्रियाओंमें छोटी-से-छोटी लहर लंबाइयां कालमें लानी चाहिये। लाइबस्न भी इसका समर्थन करता है। इस

चिकित्साका यह प्रभाव किसी अंशतक इसके रक्त-एकत्रीकरण प्रभावपर निर्भर है जिससे कि श्वेत रुधिराणु अधिक आनेसे शरीरकी संरक्षण शक्ति बढ़ जाती है। श्लाइफेकका कहना है कि मृत कीटाणुओं द्वारा औटो वैक्सिनेशन भी होता है। क्योंकि उसने यह देखा कि फरङ्क्लिोकी चिकित्सा करते समय उनमेंसे बहुत बिना चिकित्साके ही अच्छे हो गये। श्लाइफेकने यह भी सिद्ध कर दिखाया है कि लघु तरंग क्षेत्रमें पीव तथा शोथित चर्म स्वस्थ चर्मकी अपेक्षा अधिक मात्रामें गर्म होते हैं।

कीटाणु नाशक प्रभाव

श्लाइफेक, हासी, लाइबस्नी तथा अन्य चिकित्सकोंने यह सिद्धकर दिखलाया है कि लघु तरंग क्षेत्रकी कम मात्रासे भी कीटाणु मर सकते हैं। और यह प्रभाव लहर लंबाईपर निर्भर नहीं है। श्लाइफेकने यक्ष्माके कीटाणुओंको लघु-तरंग-क्षेत्रमें तीनसे आठ घंटेतक रखकर मारकर दिखलाया है। उसका कहना है कि यह प्रभाव केवल तापपर ही निर्भर नहीं है क्योंकि यदि यह कीटाणु एक ही कलचरमेंसे लिये जायं और उनमेंसे कुछ लघु-तरंग क्षेत्रमें और कुछ उष्णजल कुंडीमें एक ही तापक्रम तक गर्म किये जायं तो उष्ण जलवाले कीटाणुओंके मारनेके किये लघु-तरंग-क्षेत्रवाले कीटाणुओंकी अपेक्षा कहीं अधिक समय चाहिये।

चिकित्सोपयोगी प्रभावोंका रहस्य

लघु-तरंगोंके चिकित्सोपयोगी प्रभावोंका बहुत बड़ा भाग निसन्देह रुग्ण चर्ममें तापोत्पादनपर निर्भर है। परन्तु चिकित्सकोंके निरीक्षणोंसे पता चलता है कि लघु-तरङ्गोंके बहुतसे ऐसे चिकित्सोपयोगी प्रभाव हैं जो कि केवल तापोत्पादन द्वारा समझाये नहीं जा सकते हैं। स्टाइबाकका अनुमान है कि लघु तरङ्गोंके विशेष झूलन संख्याओंमें कुछ विशेष रोग ग्रसित रोगियोंमें ऐसे विशेष प्रभाव उत्पन्न होते हैं जो कि तापचिकित्सा अथवा दीर्घ-तरङ्गोसे उतनी ही सामर्थ्यसे चिकित्सा करनेपर दिखलाई नहीं पड़ते हैं।

श्लाइफेकने अनेकबार लघु-तरंगोंसे चिकित्सा करनेपर कुछ लाभदायक बातें देखीं जो कि वह ताप चिकित्सासे कभी न कर सका। डी० आर्सलवलने सबसे पहले उच्च-स्पन्दन-धाराओंके चर्म प्रभावोंका पता लगाया। इस प्रभावके खोज निकालनेका पूरा श्रेय उसको है। पैरिस निवासी सेडमन तथा कैहेनका अनुभव है कि यद्यपि वे बहुत थोड़ी सामर्थ्यवाला लघु तरङ्ग यन्त्र काममें लाये तथापि लघु-तरङ्गोंके चिकित्सोपयोगी प्रभावोंको वह उत्पन्नकर सके। इन लोगोंके बहुत कम सामर्थ्यसे वाले प्रयोगोंसे यह सिद्ध होता है कि लघु तरङ्ग चिकित्सा ताप प्रभावपर विशेषतया निर्भर नहीं है क्योंकि इतनी कम सामर्थसे अधिक मात्रामें ताप उत्पन्न होना असम्भव है। ठीक इसी बातका पता लाइबेस्नीके प्रयोगोंसे भी चलता है। उसमें यद्यपि अत्यन्त अधिक सामर्थ्यवाले यंत्र प्रयोगमें लाये गये परन्तु उसने विद्युतोंको शरीरके रुग्ण अंगसे इतनी दूर रक्खा कि अंग विशेष बिल्कुल थोड़ा ही गरम हो सके। इसी प्रकार कई एक अन्य चिकित्सक भी इसी निष्कर्षपर पहुँचे हैं कि कई रोगोंमें लघु-तरङ्गोंकी ऐसी कम मात्रा काममें लानेसे जिससे कि गर्मी बहुत थोड़ी ही उत्पन्न हो सके अधिक गर्मी उत्पन्न करनेवाली मात्राकी अपेक्षा अधिक लाभ पहुँचता है। उपर्युक्त वैज्ञानिकोंके प्रयोगोंसे यह बात निर्विवाद सिद्ध होती है कि लघु-तरङ्ग चिकित्सकके चिकित्सोपयोगी प्रभावोंका मुख्य कारण वह थोड़ीसी गर्मी जो कि इस चिकित्सासे शरीरमें उत्पन्न होती है नहीं हो सकती। यह प्रभाव अन्य 'विशेष क्रियाओं'के कारण ही होते हैं।

मैकिन्लीके प्रयोगिक अन्वेषणसे पता चलता है कि जिस कीड़ेका स्नायु-संस्थान जितना ही अधिक विकसित होगा उच्च-स्पन्दन धाराओंका प्रभाव उतना ही अधिक पड़ेगा तथा लार्वोंमें जिनका स्नायुसंस्थान कीड़ोंकी अपेक्षा कम विकसित रहता है उतना प्रभाव नहीं पड़ता है। परन्तु जब दोनोंके स्नायु संस्थानोंके विकासमें कोई अन्तर नहीं रह जाता है तो दोनोंमें उच्च स्पन्दन धाराओंके प्रभावमें भी कोई भेद नहीं होता है। औडैतका सिद्धांत जिसे कि उसने सिद्ध करके भी दिखलाया है यह है कि

उच्च स्पन्दन धाराओंमें लघु-तरङ्गों तथा दीर्घ--तरंगों, दोनों ही दशाओंमें स्नायु चर्मोंपर एक विशेष प्रभाव डालती हैं। डी आर्संत्वलका कथन भी यही है कि उच्च स्पन्दन धाराओंका प्रभाव सीधा-सीधा स्नायु संस्थानपर ही होता है, और फ्लामनेने तो प्रयोगों द्वारायह दिखला दिया है कि लघु-तरंगें संवेदन-शील स्नायु संस्थानपर सीधा प्रभाव डालती हैं। गेबहार्ड्ट, सेडमन् तथा कैहेन, और डासेट इत्यादि चिकित्सकोंने यह देखा है कि न्यूरेलजिया, न्यूराइटिस तथा संवेदनशील स्नायु संस्थानके किसी विकारसे ग्रसित रोगी लोगोंपर इस विद्युत् चिकित्साका प्रभाव उन रोगियोंकी अपेक्षा जिनके कि स्नायु संस्थानमें कोई विकार नहीं होता दूसरी ही प्रकारका पड़ता है। एक मजेदार बात यह है है कि यदि न्यूरेजिया अथवा न्यूराइटिस रोग-मुक्त व्यक्ति एक ऐसे कमरेमें ले जाये जावें जिसमें उच्च विद्युत् स्पन्दन उत्पन्न हो रहे हैं या जिससे उपर्युक्त स्पन्दन जा रहे हों तो उन लोगोंको एक धीमी कुरुचिपूर्ण झनझनाहट प्रतीत होगी चाहे रोग को छोड़े हुये कई वर्ष क्यों न हो गये हों, और इस सबमें विशेष बात तो यह है कि यह केवल पूर्व-विकार-ग्रसित स्नायुतन्दओं ही में होता है। यह सब बातें यह सिद्ध करती हैं कि लघुतरङ्ग चिकित्सा और स्नायुसंस्थानमें एक अत्यन्त निकट संबन्ध है।

इस चिकित्सामें कदाचित् सामान्य तथा मस्तिष्क-सुषुम्णा संबन्धी दोनों ही स्नायुसंस्थान प्रभावित होते हैं। और यह प्रभाव उच्च झूलन संख्याओंके सामर्थ्यकी बहुत थोड़ी मात्रा भी उत्पन्न कर सकती है। अतएव इस चिकित्साके फलोंका कारण हम स्नायुओंकी क्रियाओंके परिवर्तनमें पाते हैं। और जहांपर अधिक सामर्थ्य प्रयोग करनेसे ताप भी उत्पन्न होता है वहां इन फलोंका कारण किसी अंश तक तापपर भी निर्भर रहता है। सम्भव है कि कोई अन्य प्रभाव तथा क्रियायें भी होती होवें जिनसे हम लोग अभी अनभिज्ञ हैं।

यहांपर हम यह कह देना उचित समझते हैं कि स्पनन्दन मात्रा जितनी ही अधिक होती जाती है शरीरके कोष्ठोंकी समाई-संबन्धी चेष्टा उतनी ही कम होती जाती है। इसका प्रभाव यह होता है कि लघुतरङ्गोंमें सामार्थ्य-का एक बड़ा भाग शरीरमें समाई विधिसे प्रवेश करता है जिसके फल स्वरूप विद्युत्बाधा तथा जूलियन नाप अप्रधान हो जाते हैं। अतएव ऐसा प्रतीत होता है कि लघुतरङ्गोंके चिकित्सोपयोगी प्रभावोंका कारण कदाचित् कोष्ठोंकी समाईके विद्युत्-स्थितिक परिवर्त्तनमें होवे। लघुतरङ्ग चिकित्सामें समाई सम्बन्धी चेष्टा बहुत अधिक होती है अतएव सामर्थ्यका विशेष भाग गर्मी उत्पन्न करनेमें लगता है और विद्युत्-स्थितिके परिवर्त्तन नहीं होने पाते हैं और यही दोनों चिकित्साओंके फलोंमें अन्तरका कारण है।

उपसंहार

शुद्ध वैज्ञानिकोंकी भांति चिकित्सक लोग ज्ञानकी खोज केवल ज्ञानके लिये ही नहीं करते हैं। उनके वैज्ञानिक अन्वेषणोंका केवल एक मात्र उद्देश्य रोगोंसे युद्ध तथा रोगियोंकी सहायता करना है। इसी कारणसे लघुतरङ्गोंका प्रयोग मनुष्य चिकित्सामें तब तक न किया जा सका जब तक कि यह सिद्ध न हो गया कि इससे किसी प्रकार की हानिकी संभावना नहीं है। आजकल इस चिकित्साके प्रयोगको लगभग दश वर्ष व्यतीत हो गये हैं। तब भी इसकी उपयोगताके विषयमें सभी चिकित्सकोंका मत एकसा नहीं है। यद्यपि लगभग सभी चिकित्सक इसके लाभ-दायक गुणोंको मानते हैं तथापि कुछ लोगोंका विचार इसके विरुद्ध भी है। परन्तु यह हानियां केवल मात्राके प्रश्नपर निर्भर है। इसके अलावा रोगियोंके व्यक्तिगत अन्तर, उनके स्वास्थकी दशा, लघुतरङ्ग चिकित्साके लिये उनकी संवे-दन शक्ति इत्यादिका भी एक विशेष हाथ रहता है। यह व्यक्तिगत बाते एक रोगीसे दूसरे रोगीमें तो विभिन्न पाई ही जाती हैं परन्तु यह भी देखा गया है कि एक ही रोगी विभिन्न समयपर लघु-तरंगोंसे विभिन्न प्रकारसे प्रभावित होता है इन सब बातोंसे भी यही पता चलता है कि यद्यपि यह चिकित्सा सर्व-रोग-नाशिनी नहीं कही जा सकती है तो भी यदि किसी व्यक्ति-विशेषको हानि पहुँचती है तो उसका कारण रोगीकी दशाका ठीक ज्ञान न होना अथवा यह कहिये कि चिकित्सकके अनुभवकी कमी है। केवल कृत्रिम ज्वर चिकित्सामें तो अवश्य कुछ मृत्यु हुई हैं परन्तु उनका कारण भी मात्रासे अधिक सामर्थ्य प्रयोग करना था। अब तक यह चिकित्सा विभिन्न प्रकारके रोगों-

पर आज़माई जा चुकी है। चर्म रोग, शोथ, हड्डियों तथा गोड़ोंके रोग, हृदयरोग श्वास संस्थानके रोग, आंतें, फेफड़े, कलेजा गुर्देके रोग गठिया, बाई, इत्यादिके रोगी अच्छे किये गये हैं। इतना ही नहीं किन्तु मानसिक रोगोंसे ग्रसित व्यक्तियोंको भी अपूर्व लाभ पहुँचा है और बहुतसे एक दम अच्छे हो गये हैं। विकट सूजन दूर करनेमें, पीड़ा हरण करनेमें तथा विकृत घावोंमे अथवा ऐसे स्थानोंको जहां पीब पड़ गया हो अच्छा करनेमें तो यह चिकित्सा रामबाणका कार्य करती है। आवश्यकता इस बातकी है कि इस विषयमें और अधिक प्रयोग करनेका अनुभव प्राप्त किया जाय। परन्तु इस प्रकारके अनुसंधान-के लिये ऐसे व्यक्तियोंकी आवश्यकता है जो भौतिक शास्त्रके पंडित होनेके साथ-साथ आयुर्वेदमें भी दक्ष हों। किसी भी व्यक्तिको इन दोनों शास्त्रोंका पांडित्य प्राप्त करना बड़ा दुस्तर है अतएव भौतिक शास्त्रवेत्ता तथा चिकित्सकोंके सहयोग की बड़ी आवश्यकता है।

प्रकृतिकी प्रयोगशालामें राक्षसी भूलें

(ले०—डा० सत्यप्रकाश डी० एस-सी०)

संयुक्त-सन्तानोंके उदाहरण

यद्यपि कुछ पशुओंमें, जैसे कुत्ता, बिल्ली आदिमें लग-भग एक साथ ही, या कुछ थोड़ेसे समयके अन्तरसे बहुत-सी सन्तानें हुआ करती हैं, और ऐसा होना सामान्य बात है, इसमें किसीको आश्चर्य नहीं होता, पर मनुष्यके बहुधा एक समयमें एक ही सन्तान होती है। एकसे अधिक सन्तानोंका होना अपवाद माना जाता है। फिर भी दो-दो ही नहीं, चार-पाँच तक जुड़वाँ बच्चे होते देखे गये हैं। ऐसा बहुत कम होता है कि ये बच्चे पूरी आयु तक जीवित और स्वस्थ रहें, माताके गर्भाशयमें स्थान संकुचित होनेके कारण उनका विकास ठीक प्रकार नहीं हो पाता है।

एक बार एकसे अधिक बच्चे होनेके कई कारण है जैसे—

(१) एक ही डिम्ब प्रणालीसे कई डिम्बाणुओंका निकल आना।

(२) एक ही समय कई डिम्बप्रणालियोंका फूट पड़ना।

(३) एक ही गर्भ स्थित डिम्बका कई स्थानोंमें अंकुरित होना।

(४) एक ही आकृति स्थानका स्वतः ऐसे कई भागों-में विभाजित हो जाना, जिनमेंसे प्रत्येकसे एक पृथक् शिशुका विकसित होना।

चित्र१ —उरः—संयुक्त सन्तान या थोरासोपेगस।

इन चारों कारणोंके पक्षमें कुछ न कुछ कहा ही जा सकता है।

संयुक्त सन्तानें क्यों होती हैं?

एक बार एकसे अधिक सन्तानोंका होना उतना कौतुहल पूर्ण नहीं है जितना कि एकमें जुड़े हुये कई बच्चों-का एक साथ पैदा होना। यह बहुधा एक ही अंकुरित स्थानके कई भागोंमें विभाजित हो जानेके कारण हुआ

करता है। मनुष्यमें कई डिम्बाणु एक ही समय विसर्जित होते हुये कदाचित् ही कभी पाये गये हों, अतः ऊपर दिये हुये कारणोंमेंसे प्रथम दो कारणोंकी संभावना बहुत कम रह जाती है। पर पशुओंमें तो ऐसा अधिक होता है। कभी-कभी गर्भाशयमें स्थानाभावके कारण भी शिशुओंके दो पिंड आकर सट जाते हैं, और दो शिशुओं-का ही शरीर बन जाता है।
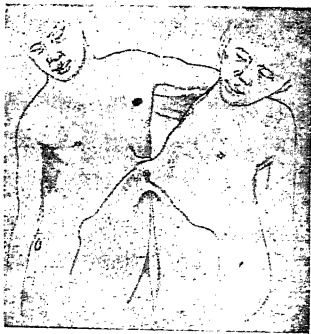
चित्र २—असि संयुक्त सन्तान या ज़ीफोपेगस।

विविध प्रकार की संयुक्त सन्तानें

दो-दो, या तीन-तीन सन्तानें एक साथ जुड़ी पैदा क्यों होती हैं, इसके संबन्धमें लोगोंकी बहुतसी धारणायें हैं। इन सब सन्तानोंका वर्गीकरण करनेमें सबसे पहले इस बातपर ध्यान देना चाहिये कि "उनकी रीढ़की हड्डी (कशेरु) और खोपड़ी अलग-अलग है या नहीं।" यदि वे स्पष्टतः अलग न हों, तो दूसरी बात जो देखनी चाहिये वह यह है कि वे शिशु पुरो भागसे जुड़े हुये हैं या पश्च भाग है, अर्थात् आगेसे या पीछेसे, और यह जोड़ अक्षके शिरकी ओर है या पूँछ की ओर।

इन सन्तानोंमेंसे दोनों शिशु सदा एक ही बराबर न होंगे। ऐसा हो सकता है, कि एक शिशुकी वृद्धि तो नियमित होती रही हो, पर दूसरे शिशुकी वृद्धि मारी गई हो, कभी-कभी तो एक शरीर दूसरे शरीरके आश्रय पर ही जीवित पाया जायगा यह स्वतः मूलस्रोतसे अपना भोजनादि प्राप्त करनेमें असमर्थ होगा। दूसरा शिशु पहलेका कूबड़ मात्र होगा।

संयुक्त सन्तानोंमें दो प्रकारकी जातियाँ पायी जाती हैं। (१) एक तो वे जिनमें दो सन्तानें प्रधानतः अलग-अलग अपनी सत्ता रखती हैं, उनका अक्ष अलग-अलग होता है और शरीरके किसी विशेष भागपर जुड़ी होती हैं। और (२) दूसरी वे जिसमें शरीर तो अलग-अलग नहीं होते, पर एक शरीरमें ही अंगोंकी संख्या अधिक होती है जैसे दोके स्थानमें अधिक होना, स्तन ग्रन्थियोंका अधिक होना, विशेष हड्डियों या पेशियोंका अधिक होना इत्यादि।
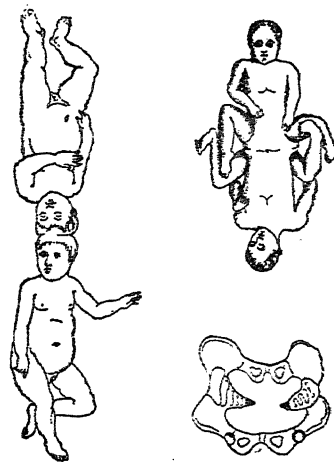
चित्र ३—बायीं ओर—शिर-संयुक्त सन्तान या क्रेनि-योपेगस।
दाहिनी ओर—(१) वस्ति संयुक्त सन्तान या इस्कियोपेगस।
(२) वस्तियाँ कैसे जुड़ीं।

पहली प्रकारकी सन्तानोंके कुछ उदाहरण दिये जाते हैं।

(१) उर-संयुक्त सन्तान—ये सन्तानें छातीके किसी भागसे जुड़ी होती हैं। उन्हें थोरासोपेगस भी कहते हैं। यदि दोनोंके शिर एक दूसरेके सामने हुये तो इन्हें अनिसेध (सूर्य्यदेवके नामपर) कहते हैं। यदि छाती के नीचे किसी तरुणास्थि या कार्टिलेजसे ये संयुक्त हों तो इन्हें असि-संयुक्त सन्तान या ज़ीफोपेगस कहते हैं।

(२) शिर-संयुक्त सन्तान या क्रेनियोपेगस—ये सन्तानें केवल खोपड़ीपर ही जुड़ी होती हैं।

(३) वस्ति संयुक्त संतान या इस्कियोपेगस—ये सन्तानें एक दूसरेके नीचे नितम्बके निकट जुड़ी होती हैं। दोनोंकी बस्तियाँ एकमें सट जाती हैं।

(४) हृत्-रहित संयुक्त सन्तान या एकारडायकस-इसमें एककी अपेक्षा दूसरा शिशु बहुत ही कम विकसित होने पाता है और जहाँ दूसरे शिशुमें अन्य कई अंगोंका प्रभाव होता है, उसमें हृदय भी नहीं होता है, यह मुख्य बात है।

(५) द्विशिरी-सन्तानें या डायसिफेलस—इनमें बहुधा रीढ़की हड्डी तो एक ही होती है और सारे धड़को एक पर शिर दो होते हैं। किसी-किसीमें रीढ़की हड्डियाँ पृथक्-पृथक् स्पष्ट दिखाई देती हैं।

(६) नितम्ब संयुक्त सन्तान या पायगोपेगस - ये सन्ताने लगभग पूर्ण रूपसे अलग-अलग होती हैं, केवल नितम्ब पर थोड़ासा मांस एक दूसरेसे जुड़ा रहता है। चित्र (४) में ऐसे दो जुड़ हुये और शिशु दिखाये गये हैं जो साथ-साथ चलते फिरते और आनन्द करते हुये देखे गये हैं।

चित्र ४—नितम्ब-संयुक्त सन्तान या पायगोपेगस।

सुगन्धित तैल

(ले० डा० सत्यप्रकाश डी० एस-सी०)

[अक्टूबर अंकके आगे]

महुआका तैल—महुआके बीजमें ५० प्रतिशत तैल होता है। इसमें गन्ध भी अच्छी होती है, और कुछ पीला रंग होता है। हमारे देशमें साबुन बनानेके लिये यह सबसे सस्ता तैल है। इसमें १३—१५ प्रतिशत मोम भी है, अतः विदेशोंमें यह मोमबत्तीके काममें भी आता है। इसकी साबुन संख्या १९२ और आयोडीन संख्या ६२ है। यह मामूल तापक्रम ७९—८५ डिगरी, पर जम जाता है।

मिट्टीका तैल—मिट्टीका तैल या पेट्रोलियम जिस रूपमें खदानमेंसे निकाला जाता है, उसी रूपमें काममें नहीं लाया जा सकता। इसको अनेक विधियोंसे शुद्ध करते हैं। ऐसा करनेमें पैट्रोलियममेंसे अनेक बदार्थ निकलते हैं जिनका उपयोग भिन्न-भिन्न कार्मोंमें किया जाता है। इसका विवरण नीचे देते हैं:—

(१) "लाइट ऑयल" या हलके तैल जो १५०° सैण्टीग्रेड तक उबलते हैं।

(२) केरोसीन—या जलाये जानेवाला तैल—१५०°-३००° सैण्टीग्रेड तक उबलनेवाला जो तापक्रमके हिसाबसे सफेद या लाल होता है। नीचे तापक्रमवाला तैल सफेद होता है।

(३) लुब्रिकेटिङ्ग तैल या मशीनके तैल

(४) वेसलीन

(५) पिच जिसका उपयोग सीमेण्टकी तरह, वार्निश बनाने, एसफाल्ट या इंधनके रूपमें होता हैं।

लाइट ऑयलमें निम्न पदार्थ होते हैं :—

पदार्थ	क्थनांक (सैटीग्रेड)	उपयोग
१. साइमीन	०°	रेफ्रीजेरेटरमें ठण्डा
२. रिजोलीन	१८-३०	तापक्रम उत्पन्न करनेमें
३. बेञ्जाइन	४५-६०	दवाओंमें
४. पेट्रोलियम ईथर	७०-९०	रबर या चर्बियोंके
५. लिग्रोइन	१२०—१३०	घोलनेके लिये
६. पेट्रोल	७०—१२०	धब्बे छुटानेके लिये।
७. गेसोलिन	४०—७०	रबर, चर्बी एसफाल्ट
८. बेञ्जोलिन	७०—९९	घोलनेके लिये।
९. नेफथा	९५—१२०	मोटर या एञ्जिनमें जलानेके लिये। घोलक के रूपमें भी।

मूंगफलीका तैल—भिन्न-भिन्न स्थानोंकी मूंगफलीमें तैलकी मात्रा भिन्न-भिन्न होती है। साजी मूंगफलीमें ३५ प्रतिशत और बीजमें ४०-६० प्रतिशत तैल होता है। इनमेंसे तैल दो या तीन बारमें पेरकर निकाला जाता है। बिना गरम किये जो तैल निकलता है, वह बहुत अच्छा और खाने योग्य होता है। दूसरी बार तापक्रम बढ़ाकर जो तैल निकालते हैं वह मध्यम होता है, और खानेके काममें भी आ सकता है, पर ऊँचे तापक्रमपर निकाला गया तैल केवल साबुन बनानेके कामका होता है।

इसकी खलीमें प्रोटीन बहुत होता है, बीजसे प्राप्त खलीमें ४२ से ५२ प्रतिशत तक। अतः इसका उपयोग पशुओंके खिलानेमें बहुत होता है।

छिली हुई मूंगफलियोंमें फफूंदी जल्दी लग जाती है, और इसलिये इनसे निकाले हुये तैलका व्यवहार खानेके काममें नहीं होता। इस तैलको साबुन बनाने, या मशीनके तैलके काममें लाते हैं। इस प्रकारकी मूंगफलीकी खली खादके काममें आती है।

मूंगफलीके तैलको फुलर-मिट्टी या कोयला द्वारा बिलकुल पानी ऐसा साफ किया जा सकता हैं।

मूंगफलीका तैल अन्य खाने योग्य तैलोंमें या घीमें भी मिलावटकी तरह उपयोगमें आता है। कीमती जैतूनके तैलमें भी बहुत मिलाया जाता है।

इसका घनत्व ०.९२०के लगभग और साबुन संख्या १८६-१९६ है। आयोडीन संख्या ८३-१०५ है। यह ३२ से ५० डिगरी तकके तापक्रममें जम जाता है।

रेप ऑयल या कोलजा ऑयल—रेपके बीजोंमें ३३ से ४० प्रतिशत तैल होता है। खलीका उपयोग पशुओंको खिलानेमें और खादमें होता है। मामूली तैलमें का रंग काला होता है और खटमलकी-सी दुर्गन्ध होती है। फुलर मिट्टी या गन्धकके तेजाबकी सहायतासे यह तैल साफ़ किया जाता है। इस तेजाबका यदि उपयोग किया जायगा तो तैलमें अम्लिकता बहुत बनी रहेगी और अतः तैलको काममें लानेके पहले खूब धोना चाहिये।

रेप-आयलका उपयोग अधिकतर मशीनके तैल (लुब्रिकेशन ऑयल) की तरह होता है। यह तैल खूब गाढ़ा होता है, और इसमें खट्टापन कम पैदा होता है, इन्हीं दो गुणोंके कारण यह तैल मशीनके तैलके खास कामका है।

रेप ऑयलका दाम अधिक होता है, अतः इसमें सस्ते तैल जैसे अलसी, बिनौले, मिट्टी या मछलीके तैल मिला दिये जाते हैं। इसमें बहुधा सरसोंका तैल भी मिला होता है।

इस तैलका घनत्व ०·९१३-०·९१७ है, साबुन संख्या १७०-१७९ और आयोडीन संख्या ९७ १०६ है।

शेलसे प्राप्त तैल—शेल (कोयलेकी खानसे प्राप्त एक पदार्थ) से भभके द्वारा तैल मिलता है जिसे शेल-ऑयल कहते हैं। स्रवण करनेकी विधियोंपर यह निर्भर

है कि किस प्रकारका तैल निकले। शेलसे बहुधा निम्न पदार्थ प्राप्त किये जाते हैं—

पदार्थ

१—शेल स्पिरिट या नेफथा (३-५%)
२—जलानेके योग्य तैल (२०-३०%)
३—मामूली तैल (१०-२०%)
४—लुब्रिकेटिंग तैल (२०%)
५—पैराफिन मोम (२०%)
६ - कोक (३%)
७—तार (१५%)

उपयोग

मोटर या इंजिनमें जलानेके काममें लेम्प और इंजिन-में जलानेके लिये गैस बनाने या ऑयल इंजिनमें जलाने-के लिये।

मशीनके पुर्जोंमें डालनेके लिये मोमबत्ती, वैसलीन, जल अभेद्य वस्त्र (मोमजामा) बनानेके लिये।

ईंधन

सन (हेम्प) के बीजका तैल—इसका उपयोग पेंटोंमें, वार्निशमें, मृदु साबुनोंमें, और भोजनमें होता है। इसका घनत्व ०'९३०, साबुन संख्या १९०-१९३ और आयोडीन संख्या १४०-१६६ है।

इसका रंग गहरा हरा है, पर मैलके कारण कुछ धुँधला लगता है। गरम करनेपर रंग कुछ हलका पड़ जाता है।

सरसोंका तैल या कड़वा तैल—यह तैल पीली या काली सरसोंसे निकलता है। हमारे देशमें यह भोजन-में, अचारमें, जलानेमें, और शरीर पर लगानेके काममें आता है। कोल्हूमें पेरा गया तैल खानेके कामका है। मशीनमें बिना गरम किये पेरा गया तैल भी अच्छा होता है, पर बादको गरम भापकी सहायतासे जो तैल निकलता है वह काला और हानिकर होता है। अच्छे तैलमें बुरे तैलकी मिलावट बहुत की जाती है।

बाजारमें सरसोंके तैलकी गन्ध नकली भी बेची जाती है जिससे बुरे तैलमें मिला देनेपर तैल असली तैलके समान मालूम होने लगता है। यह गन्ध एलायल आइ-सो थायोसायनेट नामका एक रासायनिक पदार्थ है।

काली सरसोंका तैल साबुन बनानेके काममें भी आता है। तैलकी साबुन संख्या १७०-१७५ और आयो-डीन संख्या ९२-११० है।

सूअरकी चर्बी—लार्ड सूअरकी चर्बीको लार्ड कहते हैं। इसे पिघलाकर फुलर-मिट्टीकी सहायतासे साफ कर लेते हैं। मिट्टी १½ प्रतिशत अच्छी तरह मिलाकर पिघली चर्बीको टंकियोंमें कुछ मिनटों तक रख छोड़ते हैं और फिर पिघली हुई चर्बीको दबाव डालकर छानते हैं। इस प्रकार साफ चर्बी मिल जाती है।

इस चर्बीको बहुत दबानेपर इसमेंसे तैल निकलता है, और मोमका-सा भाग बच रहता है। मोमका उपयोग मोमबत्तियोंके बनानेमें होता है। तैलका उपयोग खानेमें (मारगेरिनमें) और जलाने या मशीनके तैल बनानेमें किया जाता है।

चर्बी और तैलके गुण नीचे दिये जाते हैं:—

	चर्बी	तैल
घनत्व	०-९३४—०-९३८	०'९१३—'९१९
साबुन संख्या	१९५—२०३	१९०—१९८
आयोडीन संख्या	१७—८५	६७—८८

सूर्य्यमुखीका तैल—सूर्य्यमुखीके फूलके बीजोंमें ५३ प्रतिशत तैल होता है। यह धीरे-धीरे सूखता है, पर फिर भी कुछ कामोंमें इसका उपयोग होता है। साबुनमें और खानेके काममें भी कुछ आता है।

इसका घनत्व ०-९२४-०'९२६ साबुन संख्या १८८-१९४ और आयोडीन संख्या ११९-१३५ है।

सोयाबीनका तैल—चीन, जापान आदि देशोंमें खानेके काममें बहुत आता है। बीजमें १८ प्रतिशतके लगभग तैल होता है। इसकी खलीमें प्रोटीन बहुत होता है अतः पशुओंके खिलाने योग्य है।

इसके तैलसे मृदु साबुन बनता है पेण्ट और वार्निश-में भी इसका उपयोग होता है। अलसीके तैलकी अपेक्षा धीरे सूखता है। जैसे अलसीके तैलको जल्दी सूखानेके लिये मैंगनीज और लेडके लवण काममें लाते हैं,

उसी प्रकार सोयाबीनके तैलके लिये कोबल्ट और टंगस्टेटके लवण काममें लाते हैं। प्रतिगैलन २ पाव कोबल्ट सल्फेट या कोबल्ट टंगस्टेट काममें लाओ।

सोयाबीनके तैलका घनत्व ०.९२२ —०९२८ है, साबुन संख्या १९०-१९४ और आयोडीन संख्या ११४-१४३ है।

स्पर्म ऑयल—एक विशेष प्रकारकी ह्वेल मछलीकी चर्बीसे या उसके शिरसे यह तैल निकाला जाता है। यह तैल वस्तुतः तैल नहीं है क्योंकि इसमें ग्लिसरीन नहीं होता। यह एक प्रकारका द्रव मोम है।

शिरसे निकाला तैल अधिक मूल्यवान होता है। अधिकतर शिरका तैल एक भाग और चर्बीका तैल दो भाग मिलाकर बेचा जाता है।

इस तैलको बर्फमें ठंडा करके मोमके-से अंशको जो जम जाता है पृथक् कर लेते हैं। मोमको अलग करनेके उपरान्त इस तैलका उपयोग मशीनके तैलकी तरहसे किया जाता है। यह अधिकतर लुब्रिकेटिङ्ग ऑयलमें मिलाया जाता है।

इसका घनत्व ०.८८० इसकी आयोडीन संख्या ८६ और साबुन संख्या १२४ है।

कुछ परीक्षित सद्यफल सुलभ योग

(ले०—स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य)

आधासीसी—सैंधा निमक १ माशा को ४ माशे पानीमें घोलकर जिस ओर सिरमें दर्द हो उसकी दूसरी ओरकी नाकसे इस घोलको सूँघकर सुड़क जांय। तीन दिन करें। दिनमें दोपहर तक तीन बार। अथवा समुद्र फलको बकरीके दूधमें घिसकर दिनमें तीन बार सुँघावें अथवा—जमालगोटा (जैपाल बीज) को पानीमें घिसकर दर्दके स्थानपर लेप करदें और मिनट आधा मिनटके भीतर गीले कपड़ेसे अच्छी तरह पोंछकर लेपके स्थानपर घी लगादें।

सिरदर्दकी नस्प—केसर असली कसमीरी पत्ता कपूर, कायफल, सफेद कनेरके फूल इलायची छोटी धनियाके चावल सबको पीस कर नस्पलें। सिरदर्द, नजला, जुकामपर। अथवा—विलायती सतलोबानकी नस्पलें। अथवा—आकके दूधमें चांवल पीसकर तर कर लो फिर सुखाकर पीस नस्प दो।

अमृतांजन या ओरीण्टयलबाम—सत पुदीना ३॥ तोला कपूर २॥ तोला आइल विन्टरग्रीन २॥ तोला आइल यूकेलिप्टिस २॥ तोला क्लोरल हाईड्रेट १। तोला इलायची साधारण (यह वास्तवमें कपूर का तेल होता है पर इलायचीके तेलके नामसे बिकता है) २॥ तोला मोम विलायती (पैरा फ्रीन) सफेद ५ तोला वैसलीन सफेद ७। हरा रंग तेलोंमें डाला जानेवाला ३ माशे।

विधि—मोम और वैसलीनको मन्द-मन्द अग्निपर गलाओ जब गल जाय इससे प्रथम सत पुदीना और कपूरको एक शीशमें मिलाकर जरा रमाईके पास रख दें यह दोनों मिलकर तेल बन जांयगे। इनको तथा अन्य तथा समस्त चीजोंको उस मोममें मिला दो और डब्बीमें भर रक्खो। इसके लगाते-लगाते सिरदर्द काफूर हो जाता है।

सिरदर्दको अंग्रेजी दवा—एस्प्रीन २॥ रत्ती केफीन सायट्रास १ रत्ती एमोनिया ब्रोमाइड २ रत्ती। यह १ खूराक है। खाते ही दर्द जाता रहता है।

पुराने सिरदर्दकी माजूम—हरड़ देशी, हरड़ काबली हरड़ छोटी, बहेड़ा आँवला सब बराबर सबके बराबर धनियांका चावल (मग़ज़) और धनियांका आधा चार मगज (गिरी खरबूजा, गिरी तरबूज, गिरी ककड़ी गिरी खीरा या पेठा) फिर सबका १६ वां भाग बादाम रोगन डालकर चख करो (मिलाओ) फिर बराबरकी मिश्री और दूना शहद डालकर माजून तय्यार करो। खुराक १-२ तोला तक दूधसे या पानीसे। सिरदर्द नजला जुकाम

दीमागी कमजोरी, बीनाई (नेत्र ज्योति) आदिमें बहुत लाभदायी है ।

सिरकी दाद—शीशमकी लकड़ी, नारियलका खोपरा (छिलका) गेहूँ सब बराबर लेकर छोटे-छोटे टुकड़े करके एक हण्डीमें भर दें उस हण्डीमें प्रथम एक छेद या सूराख दुवन्नी जितना करलें । सबको भरकर ढकनेसे बर्त्तन-का मुँह अच्छी तरह बन्द करदें । फिर जमीनमें १½ बालिस्त गहरा गड्ढा खोद कर उसमें एक गिलास रखदें । गिलासके बाहर पानी भरदें । उस गिलासके मुँहसे लगा उस हाण्डीका पेंदा जमादें । हाँडीका सूराख गिलासके बीचमें रहे । हाँडीका पेंदा गिलाससे ऐसा जमावें कि हवा न निकल सके । १ मन कण्डे उस हाण्डीके आस पास चुनकर आग लगादें । तेल नीचेके गिलासमें निकल आवेगा ।

सिर चकराना-चक्कर आना—मूंगकी दाल २ तोला रातको भिजोकर इसमें १४ गिरी मगज, बादाम १ तोला चार मगज (खीरा ककड़ी खरबूजा तरबूजकी गिरी) मिलाकर खूब पीसकर इनका दूध निकालें फिर दो तोला घी बर्त्तनमें चढ़ाकर इस दूधको छौंक दें इसमें ⌡। दूध गायका डालकर उबालें और उतारकर मीठा मिला-कर कुछ दिन पिलावें । इस तेलको दाद, खाज, चम्बलपर लगावें ।

वालचर—डाढ़ी मूंछ या सिर जहां कि बाल उड़ गये हों उस जगहको जरा रगड़कर उसपर सुरमा काला पानीमें घिसकर कुछ दिन लेप कराओ या मलाते रहो । बाल उग आवेंगे । अथवा—बकरीके सींग और हाथी दांतका बुरादा दोनोंको जलाकर काला कर लो । इन्हें दुगने तेलमें मिलाकर खूब पीसो और इसको मलनेके लिये दो, बाल उग आवेंगे ।

बाल बढ़ाना—जिसके बाल झड़ते हों बढ़ते नहीं उसे अरहरकी दाल रातको भिगो सुबह पीसकर उससे नित्य सिर धोते रहना व तेल लगाते रहना चाहिये । बाल झड़ने बन्द हो जांयगे और खूब बढ़ेंगे ।

खिजाब देसी—बालोंपर प्रथम मेंहदीके पत्ते पीस-कर लेप लगाओ १ घंटा लगा रहने दो फिर इसे झाड़ दो इसके बाद वसयाके पत्ते पानीसे पीस कर लगाओ कहड़ेसे १ घंटा बांधे रक्खो वाले भौंरा जैसे काले हो जांयगे । धोकर तेल लगा दो । इस तरह तीसरे दिन करते रहो बाल काले बने रहेंगे ।

खिजाब न० २—कसीस हरा ⌡१॥। शोरा कलमी ⌡१। नीला थोथा ⌡। फिटकरी ⌡। इन सबको इकट्ठा करके इसी तरह सूखा बर्त्तनमें बन्द करके इनका अर्ककशीद (अर्क तेजाब) निकालो । इनका अर्क तेजाबी होता है । इसमेंसे १ तोला अर्क नीली शीशीमें डालकर उसमें ३ माशे चांदीके वर्क या चूरा डालकर एक हफ्ता पड़ा रहने दो चांदी गल जायगी । फिर इसमें २ तोला अर्क गुलाब मिला दो और १ सप्ताह पड़ा रहने दो ।

लगानेकी विधि—बालोंको साबुनसे धोकर खूब सुखाओ पश्चात् इस खिजाबको ब्रुशसे बालोंपर लगाओ । जिल्दपर खिजाब नहीं लगना चाहिये । जब यह खुश्क हो जाय फिर इसी खिजाबसे बालोंको तर करदो तीन बार लगाओ । बादमें पानीसे धोकर तेल लगा दो । बाल काले होंगे ।

बालोंका कल्प—नीबकी गिरू निकालकर उसका तेल निकाले । उस तेलकी रोज मर्रह नस्य लेवै ३ महीना नस्य लेते रहनेपर जड़से काले बाल निकलेंगे ।

विघी—(बच्चोंके कानके पीछेका जख्म)—कुचला जलाकर काला करलो उसमें चौथाई केवीला तथा इतने ही मेंहदी पत्र पीसकर मिलादो और १०० बारका धोया हुआ मक्खन सबके बराबर मिलाकर जख्मपर लगानेको दो ।

कानकी लौर पकना—घोड़ेके कटे हुये सुम जला-कर मक्खनमें मिलाकर लगाओ ।

कानका दर्द—कानके भीतर दर्द हो—प्याजको वार्तक करके तेलमें पकाओ और उस तेलको सुहाना-सुहाना कानमें डालो । अथवा—सुहागा खील कानके भीतर फूंक कर ऊपरसे नीबू रसको दो चार बूँद गरम करके डालो । अथवा सुदर्शनके पत्ते जरा सेंककर उनका पानी निकालो सुहाना-सुहाना कानमें डालो ।

कानके भीतर फुन्सी-फोड़ा—शराब ६ तोला अफीम ३ मा० दोनोंको मिलाकर धूपमें रख दो । दर्दके समय इसे कानमें डालो । अथवा—कानके भीतर थोड़ा-

सा सोडा या सज्जीखार फूँककर ऊपरसे दो चार बूँद नींबू रसकी डालो।

कानवहना—तालाबकी सीप या जीरा राख ५ तो० को कूट छानकर १० तोला तेलमें मन्द-मन्द आंचपर पकाओ जब तेल काफी धुआं देने लगे उतार छान लो। तेल स्थिरकरके कानमें डालो।

कानका बहिरा पर—मुलयन आयल नामक एक हैमोपेथी दवा है। इसे नित्य कानमें डालते रहनेसे खुश्की गर्मीसे उत्पन्न बहरेपनमें लाभ करती है।

कर्णमूल शोथ सूजन—इमलीके बीज, मूलीके बीज, गाजरके बीज, तिल, सेंहजनाके बीज, राई, कलौंजी, सब बराबर पीसकर गुनगुना लेप करें। यह लेप कण्ठमाला-में भी फायदा करता है।

आँख दुखना—इमलीके पत्तोंका रस ५ तोला रसौत साफ १ तोला खील सुहागा ६ माशे फिटकरी ६ माशे अफीम १ माशा सबको गुलाबके अर्कमें घोलकर कांसीकी थालीमें डाल हाथकी हथैलीसे ७ दिन खूब रगड़े। जब गाढ़ा हो जाय बत्ती बनाकर रख लें पानीमें घिसकर आँख में डालें। अथवा—जिंक सलफेट ४ रत्ती अर्क गुलाब २॥ तोलामें मिलाकर शीशीमें भर लें ड्रापरसे दिनमें कई बार डालें। अथवा—सुहागा खील, जस्तका फूल दोनों बराबर इन्हें खूब रगड़ कर रातको आंखमें अंगुलीसे लगावें।

आंखोकी पुरानी लाली, धुन्ध जाला, रोहे—सुहागा नौसादर, शोरा, नीला थोथा, फिटकरी, अफीम हर एक दो माशा रसौत साफ २ तोला मिश्री २ तोला सबको ꠰ भर गुलाब अर्कमें भिगोकर छान मीठी-मीठी आंचपर गाढ़ा करें। और गाढ़ा हो जाय उतार धरें। बहुत कम सलाईकी नोकपर लगाकर आंखमें डालें।

(क्रमशः)

पुस्तक प्राप्ति व समालोचना

सचित्र जननविज्ञान या गर्भाधान रहस्य दो भाग—लेखक—डाक्टर रामनारायण जी वैद्य शास्त्री एल० एम० एस० एम० आर० ए० एस० साइज़ २०×३०/१६ पृष्ट संख्या ६५४ मूल्य ४॥) पता संतति रहस्य आफिस बीगया मनीराम कानपुर।

इस समय जनन विज्ञान व गर्भधान सम्बन्धी बातों-का या यह कहिये काम विज्ञान सम्बन्धी बातोंकी ओर प्रायः प्रत्येक नवयुवक व नवयुवतियोंका झुकाव देखा जाता है। इस व्यापक वासनाकी प्रबल वृद्धिको देखकर अनेक व्यक्तियोंने अनेक दृष्टिसे इसपर अपने-अपने विचार रक्खे हैं। हिन्दीमें इस विषयकी पुस्तकोंकी इतनी बाढ़ दिखाई देती है कि जिसका हिसाब लगाना कठिन है।

हमने इस विषय पर अब तक कई दर्जन पुस्तकें देखी होंगी। किन्तु, यह विषय ऐसा है जिसके लिखनेमें प्रायः अश्लीलता आ ही जाती है। बहुतसे लेखक जान बूझ कर ऐसा ढंग लिखनेका रखते हैं जिससे पुस्तकके पढ़ने वालेका ज्यादा झुकाव काम वासनाकी ओर बढ़ जाता है। प्रायः देखा गया है कि काम विज्ञानकी बातें युवक व युवतियाँ पढ़-पढ़ कर कामुकताके भयंकर गढ़ेमें उतरते चले जाते हैं जिससे उनका जीवन उनका स्वास्थ्य सदा-के लिये ही बिगड़ जाता है।

हम प्रायः ऐसी पुस्तकोंको पढ़कर कई बार यह सोचने लगते थे कि क्या कोई ऐसी इस विषयपर ऐसे ढंगसे पुस्तक नहीं लिखी जा सकती जिससे सामाजिक मर्यादाका अतिक्रम भी न हो सके और संसारमें प्रवेश करनेवाले मनुष्य काम विज्ञानकी वह बातें ऐसे वैज्ञानिक ढंगसे समझ लें कि वह संसारके इस आवश्यक अंगकी पूर्त्ति मानवताको सन्मुख रखकर कर सकें।

हर्षसे कहना पड़ता है कि मुझे अभी थोड़े दिन हुये कानपुर जानेका अवसर हुआ और इत्तिफाकसे डाक्टर साहबसे भी मिलना हुआ।

आप योग्य डाक्टर भी हैं और वैद्य भी, साथमें बहुत समयसे आप आर्य समाजके द्वारा संचालित दातव्य औषधालयमें कितने ही वर्षों से काम कर रहे हैं। आपकी

बातचीतसे ज्ञात हुआ कि आप एक उच्च विचारके तथा कट्टर समाज सुधारक हैं। आपने चलते समय दो पुस्तकें भेंट दीं। और कहा कि समय मिले तो इन्हें पढ़कर इस पर अपनी सम्मति दें। कारण वशात् कई मासके पश्चात् इनमें एक उक्त पुस्तकको पढ़नेका अवसर मिला।

पुस्तकको जैसे-जैसे पढ़ता गया वैसे-वैसे अपने विचारोंके अनुकूल पुस्तककी लेखन शैलीको पाकर बड़ा ही प्रसन्न हुआ। आपने इस पुस्तकका नाम काम-विज्ञान रखकर जनन विज्ञान रख आरम्भसे ही पुस्तक को अन्त न तक शिष्ट सामाजिक परिस्थितिके अनुकूल ज्ञान विज्ञान सम्पन्न परिष्कृत भाषामें लिखा कि पढ़कर चित्त प्रसन्न हो गया। आपने इस पुस्तकको १० प्रकरणमें विभक्तकर मानव जीवन चर्याकी प्रत्येक बातको स्वास्थकी दृष्टिसे विचार किया है और दिन चर्या रात्रि चर्याका कितने अच्छे ढंगसे उल्लेख किया है, वह पढ़ते ही बनता है। हम पाठकोंसे अनुरोध करेंगे कि वह एक बार इस पुस्तकको अवश्य पढ़ें।

सिद्धौषधि प्रकाश—और बालरक्षक—यह दोनों पुस्तकें मराठी भाषामें लिखी हैं। इनका क्रमसे मूल्य २॥), ॥) है।

इनके लेखक हैं वैद्य भूषण गणेश शास्त्री जोशी सम्पादक, आर्य वैद्य पूना। पृष्ठ संख्या क्रमसे ३४४-१०६

उक्त दोनों पुस्तकें प्राचीन आयुर्वेद पद्धतिको लेकर उसी आयुर्वेदिक निदानका विस्तृत विवरण देखकर उस पर अपनी उन्होंने अनुभूत चिकित्सा दी है। बालरक्षकमें तो केवल बालकोंके रोगोंपर ही उनका निदान देकर उस पर चिकित्सा क्रम दिया गया है। पुस्तकें पढ़नेसे ज्ञात होता है कि औषध योजना आपको अच्छी है। और अनेक बातें बड़े कामकी हैं। अधिकतर मराठी भाषोके लिये यह पुस्तकें विशेष उपयुक्त हैं।

वैद्यकमान—लेखक कविराज शान्त स्वामी अनुभवानन्दजी, प्रकाशक सेवा सदन चाँदनी चौक दिल्ली। पृष्ठ संख्या ५६ मूल्य ।) वैधककी मान मात्रा एक नहीं। चरककी भिन्न है तो सुश्रुतको भिन्न। आपने इस मानको इस पुस्तकमें बड़े अच्छे ढंगसे समन्वय किया है। और इस समयके प्रचलित मानको उस मानसे बहुत अच्छी तरह जोड़नेका प्रयत्न किया है। इससे भिन्न आपने इस समयके जितने भी भिन्न-भिन्न वस्तुओंके मान प्रचलित हैं उन सबोंका भी बहुत अच्छी तरह खुलासा किया है। यही नहीं। तोल या मानका जो विस्तृत रूप यूनानीमें पाया जाता है उसका भी अकरादि क्रमसे उल्लेखकर उनका हिन्दीमें मान बताया है। पुस्तक वैद्योंके बड़े ही काम की है।

विषय सूची

मुद्रक तथा प्रकाशक—श्री विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग।

फरवरी, १९३९ मूल्य ।)

भाग ४८, प्रयाग की विज्ञान-परिषद् का मुख-पत्र जिसमें आयुर्वेद विज्ञान भी सम्मिलित है संख्या ५

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces & Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

विज्ञान

पूर्ण संख्या
२८७

वार्षिक मूल्य ३)

नियम

(१) विज्ञान मासिक पत्र विज्ञान-परिषद्, प्रयाग, का मुख-पत्र है ।

(२) विज्ञान-परिषद् एक सार्वजनिक संस्था है जिसकी स्थापना सन् १९१३ में हुई थी। इसका उद्देश्य है कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययन को प्रोत्साहन दिया जाय ।

(३) परिषद् के सभी कर्मचारी तथा विज्ञान के सभी सम्पादक और लेखक अवैतनिक हैं । मातृभाषा हिन्दी की सेवा के नाते ही वे परिश्रम करते हैं ।

(४) कोई भी हिन्दी-प्रेमी परिषद् की कौंसिल की स्वीकृति से परिषद् का सभ्य चुना जा सकता है । सभ्यों को ५) वार्षिक चन्दा देना पड़ता है ।

(५) सभ्यों को विज्ञान और परिषद् की नव-प्रकाशित पुस्तकें बिना मूल्य मिलती हैं ।

नोट—आयुर्वेद-सम्बन्धी बदले के सामयिक पत्रादि, लेख और समालोचनार्थ पुस्तकें 'स्वामी हरिशरणानंद, पंजाब आयुर्वैदिक फ़ार्मेसी, अकाली मार्केट, अमृतसर' के पास भेजे जायँ । शेष सब सामयिक पत्रादि, लेख, पुस्तकें, प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र तथा मनीऑर्डर 'मंत्री, विज्ञान-परिषद्, इलाहाबाद' के पास भेजे जायँ ।

पशु-पक्षियोंका शृङ्गार-रहस्य—ले० श्री सालिग्राम वर्मा, एम० ए०, बी० एस-सी० ~)

जीनत वहश व तयर—पशु-पक्षियोंका शृङ्गार-रहस्यका उर्दू अनुवाद—अनु० प्रो० मेंहदीहुसेन नासिरी, एम० ए० ~)

चींटी और दीमक—सर्व-साधारणके पढ़ने योग्य अत्यंत रोचक पुस्तक—ले० श्री लक्ष्मी-नारायण दीनदयाल अवस्थी ।।।)

सूर्य-सिद्धान्त—गणित ज्योतिषपर अमूल्य ग्रन्थ, पंडितों और ज्योतिषियोंके लिये विशेष उपयोगी; १११५ पृष्ठ, १३४ चित्र और नकशे—ले० श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव, बी० एस-सी०, एल० टी०, विशारद
अजिल्द ५)
सजिल्द ५।।)

सृष्टिकी कथा—सृष्टिके विकासका पूरा वर्णन, ले०—डा० सत्यप्रकाश, डी० एस-सी० १)

सौर-परिवार—आधुनिक ज्योतिषपर अनोखी पुस्तक, ७७६ पृष्ठ, ५८७ चित्र—ले० डा० गोरखप्रसाद, डी० एस-सी० १२)

समीकरण मीमांसा—एम० ए० गणितके विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य पुस्तक—ले० पं० सुधाकर द्विवेदी, प्रथम भाग १।।)
दूसरा भाग ।।=)

निर्णायक (डिटर्मिनैंट्स)—एम० ए० के विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य पुस्तक—ले० प्रो० गोपालकेशव गर्दे, एम० ए० और श्री गोमतीप्रसाद अग्निहोत्री, बी० एस-सी० ।।)

बीजज्यामिति या भुजयुग्म रेखा-गणित—एफ० ए० गणितके विद्यार्थियों-के लिये—ले० डा० सत्यप्रकाश, डी० एस-सी० १।)

क्षय-रोग—क्षय-रोगसे बचनेके उपाय—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी० एस-सी०, एम० बी०, बी० एस० ~)

क्षय-रोग—क्षय-रोगके सम्बन्धमें उपयोगी पुस्तक—ले० डा० शंकरलाल गुप्त, एम० बी०, बी० एस० ६)

शिक्षितोंका स्वास्थ्य-व्यतिक्रम—पढ़े-लिखे लोगोंको जो बीमारियाँ अक्सर होती हैं उनसे बचने और अच्छे होनेके उपाय—ले० श्री गोपालनारायण सेनसिंह, बी० ए०, एल० टी० १)

ज्वर, निदान और सुश्रुषा—सर्व-साधारण-के पढ़ने योग्य पुस्तक—ले० डा० बी० के० मित्र, एल० एम० एस० ~)

स्वास्थ्य और रोग—रोगोंकी विशद व्याख्या तथा उनकी घरेलू चिकित्सा; ९३४ पृष्ठ, ४०७ चित्र—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा ६)

हमारे शरीरकी रचना—१००० पृष्ठ, ४६० चित्र, सुन्दर जिल्द—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, प्रथम भाग (पाँचवीं आवृत्ति) २।।।=)

स्वास्थ्य-विज्ञान—गृहनिर्माण, वायु, जल, भोजन, स्वच्छता, कीटाणु, छूतवाले रोग, स्वास्थ्य आदिपर सरल भाषामें विशद तथा उपयोगी विवेचन—ले० कैप्टेन डा० रामप्रसाद तिवारी, हेल्थ ऑफिसर रीवाँ राज्य ३)

स्वस्थ शरीर—प्रथम खंड—मनुष्यके अस्थि-पंजर, नस, नाड़ियाँ, रक्ताणु, फुफ्फुस, वृक्क, पेट, शुक्राशय आदिका सरल वृत्तांत और स्वास्थ्य-रक्षाके नियम। दूसरा खंड—व्यक्तिगत स्वास्थ्य-रक्षाके उपाय—ले० डा० सरजूप्रसाद तिवारी, और पं० रामेश्वरप्रसाद पाण्डेय,
प्रथम खंड २)
द्वितीय खंड २।)

आसव विज्ञान—(दूसरा संस्करण) विस्तृत विवरण अन्यत्र देखें—ले० स्वामी हरिशरणा-नन्द) १)

मन्थर ज्वरकी अनुभूत चिकित्सा—वैद्योंके बड़े कामकी पुस्तक—ले० स्वामी हरिशरणानन्द १)

त्रिदोष मीमांसा—यह पुस्तक मुख्यतया वैद्योंके कामकी है, किन्तु साधारण-जन भी विषय-ज्ञानके नाते इससे बहुत लाभ उठा सकते हैं—ले० स्वामी हरिशरणानन्द १)

क्षार-निर्माण-विज्ञान—क्षार-सम्बन्धी सभी विषयोंका खुलासा वर्णन—ले० स्वामी हरिशरणानन्द ॥)

प्रसूति-शास्त्र—इस विषयकी उत्तम पुस्तक—ले० डा० प्रसादीलाल झा, एल० एम० एस० २)

कृत्रिम काष्ठ—एक रोचक लेख—ले० श्री गंगाशंकर पचौली =)

वर्षा और वनस्पति—भारतका भूगोल और आबहवा—भारतकी स्वाभाविक आवश्यकताएँ—शीतलता प्राप्त करनेके साधन—वर्षा और वनस्पति—जल संचय—वनस्पतिसे अन्य लाभ—ये इस पुस्तकके अध्याय हैं—ले० श्री शङ्करराव जोशी ।)

वनस्पति-शास्त्र—पेड़ोंके भिन्न-भिन्न अंगोंका वर्णन, उनकी विभिन्न जातियाँ, उनके रूप, रंग, भेद इत्यादिका सरल भाषामें वर्णन, सर्व-साधारणके पढ़ने योग्य पुस्तक—ले० श्री केशव अनन्त पटवर्धन, एम० एस-सी० ॥=)

तरकारीकी खेती—६३ तरकारियों आदिकी खेती करनेका विशद वर्णन ॥=)

उद्भिजका आहार—एक रोचक लेख—ले० श्री एम० के० चटर्जी ।)

फ़ोटोग्राफ़ी—फ़ोटोग्राफ़ी सीखनेके लिये सचित्र उपयोगी ग्रन्थ—ले० डा० गोरखप्रसाद, डी० एस-सी० ७)

सुवर्णकारी—सुनारोंके लिये अत्यन्त उपयोगी पुस्तक, इसमें सुनारी संबन्धी अनेक नुसखे भी दिये गये हैं—ले० श्री गंगाशङ्कर पचोली ।)

यांत्रिक चित्रकारी—इसके जोड़की पुस्तक अँग्रेज़ीमें भी नहीं है—ले० श्री ओंकारनाथ शर्मा, ए० एम० आई० एल० ई०,
अजिल्द सस्ता संस्करण २॥)
राज संस्करण सजिल्द ३॥)

वैक्युम-ब्रेक—यह पुस्तक रेलवेमें काम करनेवालोंके लिये अत्यंत उपयोगी है—ले० श्री ओंकारनाथ शर्मा, ए० एम० आई० एल० ई० २)

सर चन्द्रशेखर वेंकट रमन—भारतके प्रसिद्ध विज्ञानाचार्यका जीवन-चरित्र—ले० श्री युधिष्ठिर भार्गव, एम० एस-सी० =)

डा० गणेशप्रसादका स्मारक-विशेषांक—८० पृष्ठ—सम्पादक डा० गोरखप्रसाद, डी० एस-सी० और प्रो० रामदास गौड़ ४)

वैज्ञानिक जीवनी—श्री पञ्चानन नियोगी, एम० ए०, एफ० सी० एस०, की 'वैज्ञानिक जीवन' नामक बङ्गला पुस्तकका हिन्दी अनुवाद—अनु० रीवां-निवासी श्री रामेश्वर-प्रसाद पाण्डेय १)

गुरुदेवके साथ यात्रा—ले० श्री महाबीर-प्रसाद, बी० एस-सी०, विशारद ।−)

केदार-बद्री यात्रा—बद्रीनाथ केदारनाथकी यात्रा करनेवालोंको इसे अवश्य एक बार पढ़ना चाहिये—ले० श्री शिवदास मुकर्जी, बी० ए० ।)

उद्योग-व्यवसायांक—विज्ञानका विशेषांक—इसमें पैसा बचाने तथा कमाईके सहज और विविध साधन दिये गये हैं। १३० पृष्ठ, १॥)

फल संरक्षण—विस्तृत विवरण अन्यत्र देखें—ले० डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी० १)

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५ ॥

भाग ४८ | प्रयाग, कुंभार्क, संवत् १९९५ विक्रमी | फरवरी, सन् १९३९ | संख्या ५

जलवायुको अपने अनुकूल रखना

[ले०—श्री ब्रजवल्लभ]

आपने देखा या सुना होगा कि इधर कुछ दिनोंसे हावड़ा स्टेशनसे बम्बई तक नं० ३ अप और नं० ४ डाउन बॉम्बे मेल ट्रेनोंमें कुछ विशेष प्रकारके फर्स्ट-क्लास डिब्बे लगा दिये गये हैं। प्रत्येक डिब्बेमें यात्रियोंकी सुविधाके लिये शय्याका और विशेष कार्मोंके लिये प्रत्येक कोचके साथ एक नौकरका भी प्रबन्ध किया गया है। इन कोचोंका नाम 'एयर-कण्डिशण्ड कोच' है।

इन फर्स्ट-क्लास डिब्बोंकी विशेषता यह है कि यात्रा भरमें इनके भीतरका तापक्रम घटेगा बढ़ेगा नहीं, चाहे आप रातमें यात्रा कर रहे हों या दिनमें, चाहे बाहर पानी बरस रहा हो या खूब धूप पड़ रही हो। यह तापक्रम इतना रक्खा जाता है जो स्वास्थ और चित्तको प्रसन्न रखने के लिये सर्वथा अनुकूल हो। यही नहीं, इन डिब्बोंके अन्दर हवा भी सर्वदा एकसी स्वच्छ रहती है। चाहे ट्रेनके बाहर जलवायु शुष्क हो या नम, अन्दरकी जलवायु एकसी ही रहेगी। अन्दर हवाके झोंके भी न लगेंगे, और न कभी दम ही घुटेगा। कमरेमें न कहीं अधिक ठंढा होगा, और न कहीं गरम। पूरा कमरा एक ही तापक्रमपर होगा। कमरेमें सब ओर एकसा प्रकाश भी होगा, ऐसा प्रकाश कि कहीं भी आपकी छाया नहीं पड़ सकेगी—समस्त कमरा एकसा आलोकमय होगा। यह इन डिब्बोंकी विशेषता है। कहीं आँधी, धूल, धुँआका नाम नहीं है। स्वास्थ्यके नियमोंपर ध्यान रखकर इन डिब्बोंको बनाया गया है। इन डिब्बोंकी दूसरी विशेषता यह है कि अन्दर शोरगुल बिल्कुल नहीं है, कितने भी धीरे बात कीजिये, शब्द स्पष्ट सुनाई देंगे। इन डिब्बोंमें प्रति ४० मील चलनेके लिये फर्स्टक्लासके किरायेके अतिरिक्त एक रुपया और देना होगा। कलकत्तेसे बम्बई तक फर्स्ट-क्लास किरायेके अतिरिक्त २७) रुपये और देने होंगे।

वायु वशीकरण विधिका आरम्भ

हम इस लेखमें इसी 'एयर कण्डिशनिंग' या वायुके वशीकरणका उल्लेख करेंगे। जलवायु वशीकरणकी रीतिका प्रादुर्भाव सर्व प्रथम यूनाइटेड स्टेट्स अमेरिकामें सन १९०७ में हुआ था।

मिस्टर डबल्यू० एच० केरिअरने १९११ ई० में मिकेनिकल इन्जीनियरोंकी सोसाइटीमें एक लेख इसके

विषयमें पढ़ा था। इसी वर्ष इसका उपयोग प्रथमतः कलोंके स्थानोंमें किया गया और उसके साथ-साथ ब्रेज़ील-में राव डी जेनिरियोंका पबलिक थियेटर हाल भी जर्मन इन्जीनियरोंके संरक्षणमें ५०००० पौंडके खर्चसे इसी प्रकारका बनाया गया। इसके उपरान्त बहुतसे जन स्थान और होटल आदिमें जहाँपर आरामके लिये धन खर्च करनेमें बिलकुल संकोच नहीं होता था इसका उपयोग किया गया। अब यह समस्त संसारमें फैल गया है।

वशीकरणका अर्थ क्या है?

वशीकरणकी आयोजनामें प्रथम तो बहुत बारीकीके साथ वायुके तापक्रम, शुद्धता, गति और उसमें जलवाष्पके भागको ठीक करनेका विधान होना चाहिये। अमरीका और यूरोपमें बहुत समय तक तापक्रम और जल वाष्पकी समस्यापर प्रयोग किया गया है और अब मालूम हुआ है कि वायुका जाड़ेकी ऋतुमें ६०से ७० डिगरी फारन-हाइट तापक्रम और ४५से ६० प्रतिसैकड़ा जल वाष्पका भाग (आपेक्षिक क्लेदता) होनेसे पूर्णतः आराम मिल सकता है। दूसरी ध्यान देनेकी बात यह है कि इसके द्वारा वायुकी गति भी इसके वशीभूत हो जानी चाहिये इसकी आवश्यकता इस कारणसे पड़ती है क्योंकि मनुष्य-का शरीर इन बातोंका अनुभव करनेमें बहुत संवेदनात्मक होता है।

बाहरकी वायुको एक ऐसे स्थानपर घेरनेके लिये इसकी आवश्यकता पड़ती है कि उसकी गरमी आवश्यक-तानुसार कम कर देनी चाहिये या बढ़ा देनी चाहिये। ग्रीष्म ऋतुमें उसमें कमी और जाड़ेमें बढ़ौतरी करनी चाहिये। उसके अतिरिक्त वह अन्दरकी वायु अनेकों, प्रकारकी जहरीली, धुयेंसे भरी हुई वाष्पोंसे शोषितकी हुई होनी चाहिये जिससे कि घिरी हुई अन्दरकी वायु शुद्ध और प्राकृतिक ताजे रूपमें मालूम हो। अगर जल वाष्प भी इस प्राकृतिक बाहरकी वायुमें अधिक है तो बहुत ठंडे जलकी बौछार उसके ऊपर करके आवश्यकतासे अधिक भागको सतहपर एकत्रित कर देना चाहिये। उन स्थानोंमें जहांपर जाड़ेमें वायुकी जलवाष्पका भाग बढ़ाकर उसका तापक्रम अधिक किया जाता है ठंडे जलकी बौछारका प्रयोग किया जाता है।

वशीकरण यंत्र

जलवायुके वशीकरण यंत्र तीन भागोंमें विभाजित किये जा सकते हैं।

प्रथम, वह जो जाड़ेकी ऋतुमें प्रयोग किये जायें और जिनसे तापक्रम और जलवाष्पका भाग बढ़ाया जा सके।

द्वितीय, वह जो ग्रीष्म ऋतुमें प्रयोग किये जायें और जिनसे तापक्रम और जलवाष्पका भाग घटाया जा सके।

तृतीय, वह जो वर्ष भर प्रयोगमें लाये जावें और जिनसे सब आवश्यकतायें पूर्ण हों।

गत १९३६ ई०से अमरीकावासियोंमें इस विचारका उदय हुआ कि वह अपने निवास स्थानोंमें इस प्रकारके विधानोंका उपयोग करें और यह ऐसे लोगोंके लिये स्वाभाविक ही था जो दिन भर ऐसे दफ्तरोंमें काम करते थे, जो ऐसी रेलगाड़ियोंमें सफर करते थे, जो ऐसे होटलोंमें जलपान करते थे, जो ऐसे सिनेमा, थियेटर और नाच घरोंमें जाकर आनन्द उड़ाते थे जहांपर इस जलवायु-वशीकरणका चमत्कार था। यह सब मनोकामनायें १९३७ ई० में पूर्ण हो गई हैं जबकि विद्युतकलाके विशेषज्ञोंने छोटी मशीनें भी घरोंके प्रयोगके लिये तैयार कर दीं। सन् १९३८में वहांपर छोटी-छोटी मशीनें बन गई हैं जिनसे ५ टनसे लेकर पौन टन भार तककी वायु ठंडी या गरम की जा सकती है। यह कलें रहनेके घरों और बँगलोंके लिये बहुत उपर्युक्त हैं। उन विशेषज्ञोंका विश्वास है कि बहुत शीघ्र यह कलें भी गैस और बिजलीके चूल्हों और ठंडा रखनेवाली रेफरीजरेटरोंके समान साधारण वस्तुयें हो जायेंगी। सम्भवतः इस समय तक इन कलों-की संख्या २५०,००० तक पहुँच गई होगी।

इस विधानके आन्तरिक भाग

सबसे अधिक प्रयोगमें आनेवाली मशीनोंके, मध्य भागमें एक पंखा होता है। यह बिजलीसे घूमनेवाला पंखा बाहरकी वायुको अन्दरकी ओर खींचनेके प्रयोगमें लाया जाता है। अन्दरकी वायु शुद्ध करके प्रयोगशालाके बहुतसे भागोंमें नलों द्वारा संचारित की जाती है और

फिर एक मशीन दूसरी बार अलग मशीनसे शुद्ध और संचारित की जाती है। उन स्थानोंमें लगाई जा सकती है जहांपर ताजी वायु, बिजली और पानी मिल सकते हैं। इस बिजली और पानीकी आवश्यकता वायुको ठंडा करने बिजलीके तारोंको या वायुको गरम करनेवाले चूल्होंको और जल वाष्पको सतहपर एकत्रित करनेवाली मशीनोंको पड़ती है। ग्रीष्म ऋतुको कलें और भी संक्षिप्त हो जाती हैं क्योंकि इनमेंसे उन कलोंकी आवश्यकता नहीं पड़ती है जो गरम करनेके लिये प्रयोग होती हैं।

यह भी कौतूहलजनक प्रतीत होगा कि गत थोड़े मासोंके अन्दर ही बाज़ारमें धूलके कणोंको वायुसे अलग करनेकी मशीनें भी देखनेमें आती हैं। यह बिजलीके द्वारा चलनेवाली मशीनें घर, दूकान, और दफ्तर आदिमें बहुत उपयोगी सिद्ध हुई हैं। इन कलोंके तारोंके बीचमें जो ११००० वोल्टकी बिजली काममें आती है वायुमेंके धूलके कण उलझ जाते हैं और फिर वह वायु ६००० वोल्टोंवाली और पृथ्वीसे सम्बन्धित प्लैटोंमें होकर निकाली जाती हैं। ऐसा करनेसे वायुके कण अणात्मक बिजली ग्रहण करके प्लेटोंकी धनात्मक बिजलीसे खिंच जाते हैं और उन प्लेटोंपर ही चिपक जाते हैं। इन प्लैटोंपर तैलकी भी एक बारीक तह इन धूलके कणोंको चिपटानेमें सहायता देनेके लिये लगा दी जाती है।

वायुको ठंडा करनेके लिये अमोनिया गैसका प्रयोग होता था परन्तु अब दो या तीन वर्षोंसे फ्रिअनका प्रयोग होता है। यह डाई कलोरो डाई फ्लोरो मिथेन गैस होती है।

वायुके जल वाष्पके भागको कम करनेके लिये सिलिका जैलके वायु खींचनेवाले पम्पोंका प्रयोग किया जाता है। पहले समयमें जल वाष्पको सोखनेके लिये कैलशम् क्लोराईडका प्रयोग किया जाता था। इन समयोंमें अमरीकाकी प्रयोगशालाओंने लिथियम क्लोराइड और एकटिवेटेड अलमूनियमका प्रयोग करना ठीक बतलाया है। अब अधिक उपयोगी तरीका बिजलीसे गरम करनेका है जिससे सब जलवाष्प गरम होकर अलग हो जाती है।

इंगलैण्डके वशीकरण विधान

इंगलैण्डमें जो मशीनें उपयोग की जाती हैं वे समस्त वर्ष काम देती हैं। वशीकरण विधानका इंगलैण्डमें बड़ा प्रचार है। गत जनवरी १९३८ को वहाँके शासनाधिकारियोंने इसके विषयमें एक प्रश्न पत्र करीब २३० विद्युतशालाओंके विशेषज्ञोंके पास भेजा था और उनमें बहुतसोंकी सम्मति है कि सिनेमा और पबलिक स्थानोंपर छोटी मशीनोंका प्रयोग करदेना चाहिये। उसमें वायुके धूलके कण अलग करनेकी कलें, गरम करनेके चूलहे, बिजलीके पंखे और जलवाष्पके सोखनेके लिये पम्प और मोटर सम्मिलित करने चाहिये। ऐसा अनुमान किया जाता है कि १९३७ ई०के अन्तमें वहांपर ७०००० हार्स पावरकी शक्ति इस कलामें खर्च की जाती थी।

भारतमें इस कलाका प्रयोग

भारतवर्षमें भी यह कला उन्नति कर रही है। थोड़े रुपये अधिक खर्च करनेसे फर्स्ट क्लासका कलकत्तेसे बम्बई तकका यात्री इसका लाभ उठा सकता है। अभी ५ जुलाई १९३८को कलकत्ता रोटरी क्लबमें मिस्टर एल० पी० मिसराने जो ईस्ट इण्डियन रेलवे हावड़ाके डिविज़नल सुपरिण्टेडेण्ट हैं भाषण देते हुये कहा कि यहांपर जो मुसाफिरोंको इस कलाके प्रयोगसे आराम पहुँचाया जा सकता है वह किसी और देशकी अपेक्षा कम नहीं है। परन्तु फिर भी यात्रियोंकी संख्या उतनी न बढ़ी जितनी आशा थी। यह तो सभी देखते हैं कि इस कलाके उपयोगसे पहले रेलकी जलवायु, अधिक तापक्रम, धूल, रेलके चलनेका शोर यह सब यात्रियोंको रेलमें न सफर करनेके स्थानपर मोटरसे सफर करनेको बाधित करता था परन्तु उस कलाके उपयोगसे मुसाफिरोंकी वह सब कठिनाई दूर हो गई है।

भारत वर्षकी रेल गाड़ियोंके अन्दर जितना भाग वायुका होता है उसका अगर २५ प्रतिसैकड़ा ताजी वायुका हो तो बहुत उपयुक्त रहेगा। जो वायु गाड़ीके अन्दर भेजी जाती है वह पहले छानकर साफ की जाती है और उसकी जलवाष्पका भाग भी कम किया जाता है और फिर वह नलों द्वारा अन्दर जाती है। विद्युत्

चुम्बकीय रीतिसे जाड़ोंमें इसका प्रयोग और भी आसान हो जायेगा। ठंडा करनेवाले बिजलीके तार काममें न लाकर वायुको गरम करनेकी मशीनें काममें लाई जाती हैं। बी० बी० सी० आई० आर० रेलवेमें आइस-एकटिवेटेड रीतिका प्रयोग किया जाता है। गाड़ीके नीचेके भागमें बर्फ रख दिया जाता है और उसके ऊपरसे वायुका संचालन किया जाता है और इससे वायु ठंडी हो जाती है। परन्तु इन सब बातोंकी सचाई उन मुसाफिरोंसे मालूम होती है जो ऐसी गाड़ियोंमें सफर करते हैं। वे इसकी बहुत ज्यादा प्रशंसा करते हैं! कलकत्तेके न्यू लाइट हाउस सिनेमा-में भी उस कलाका प्रयोग किया जाता है। और यद्यपि उसके मैनेजरने टिकटोंके दाम वही रक्खे हैं परन्तु तो भी उसको कोई नुकसान नहीं उठाना पड़ रहा। वहाँपर बैठकर देखनेवालोंको बहुत आराम मिलता है और उनको यह आराम पैसोंमें खरीदते हुये बुरा नहीं मालूम होता। और भी भारतमें कई स्थानोंपर इसका प्रयोग किया गया है। यहाँकी सभी रियासतोंकी कोठियों-में इसका प्रयोग है। बड़े-बड़े धनी पुरुष जैसे कलकत्तेके मिस्टर डालमिया अथवा पटनाके रायबहादुर जालन साहिबके यहाँ भी इसका प्रयोग किया जाता है। बड़े-बड़े कलोंके स्थानोंमें जैसे टाटा कम्पनीमें और बड़े-बड़े शफ़ा-खानोंमें भी इसका उपयोग हो रहा है।

उसके लगाने और रखनेका खर्चा

प्रयोग करते-करते अब इससे सम्बन्ध रखनेवाले मनुष्योंका अनुमान है कि २००० सीटके सिनेमाघरमें सिर्फ वायुके तापक्रमको वशमें करनेके लिये ४,२०० पौंडका खर्च है और समस्त कलोंके लगानेमें १५,००० पौंड प्रतिवर्ष अर्थात् ९०० पौंड प्रतिमासकी लागत है। परन्तु इसके लग जानेपर सिनिमाके आनेवाले लोगोंको बहुत अधिक आराम मिलेगा। और फिर मासिक खर्चेके चलनेमें कठिनाई न होगी।

इसके प्रयोग और लाभ

अमरीका, इंगलेण्ड और यूरोपकी बड़ी-बड़ी प्रयोग शालाओंपर अनुभव करनेके पश्चात् वैज्ञानिकोंकी यह सम्मति है कि खाँसी, जुकाम भी छूतकी बीमारियोंमें से हैं। अगर कमरा जलवायु वशीकृत नहीं है तो ६० प्रतिसैकड़ासे अधिक मनुष्योंको यह बीमारी एक दूसरेके संसर्गसे हो जाती है और अगर कमरा जलवायु वशीकृत है तो ५ प्रतिसैकड़ासे कम मनुष्योंको यह बीमारी छूतसे होती है। इसके अतिरिक्त इसमें रहनेवाले मनुष्य बहुत कम बीमार पड़ते हैं। अमरीकाके दफ्तरोंमें यह देखा गया कि उस कलासे पहले दफ्तरके लोग अपना बहुत समय बीमारीमें खो देते थे और अब उसके प्रयोगसे वह बहुत कम बीमार होते हैं। बहुत समयके अनुमानके बाद यह मालूम हुआ है कि इन कलोंके कारणा मनुष्यमें बीमारीके समयमें घटत ४० प्रति सैकड़ासे ज्यादा होगई है।

दमा और विविध प्रकारकी बीमारियोंमें इसका उपयोग

दमासे पीड़ित मनुष्योंको इस यंत्रसे सुसज्जित कमरोंमें रखकर यह देखा गया कि उनको वह आराम जो दिनोंमें नहीं होता घंटोंमें होगया। परन्तु इसका विचार रखना चाहिये कि अगर किसी रोगीको एक इस कलके अस्पतालमें फायदा हुआ है तो उसको कम-से-कम सोनेके लिये वैसे ही कमरेकी आवश्यकता पड़ती है। ऐसा अनुभव किया गया है कि प्रारम्भिक यक्ष्माके रोगी इस प्रकारके कमरोंमें रखकर बहुत जल्द आराम पाजाते हैं। ऐसी आशा है कि तीन चार वर्षके अन्दर ही इसका बीमारीके क्षेत्रमें बहुत अधिक प्रयोग हो जायेगा।

और दूसरे प्रयोग

अमरीकामें इसके विशेषज्ञोंने ऐसा देखा है कि वायु वशीकृत कमरोंके फरनीचरमें न तो सुकड़न ही पड़ती है और न यह झुलसता ही है। वर्षा ऋतुमें इसके प्रयोगसे दीवार दरिपें, पर्दे और पुस्तकालयकी पुस्तकें भी जल वाष्पको नहीं सोखती हैं और न धूलके कण ही उनमें भरते हैं।

अभी गत वर्षोंके अन्दर ही युनाईटेड स्टेट्स अमरीकामें छोटे साइज़के रहनेके मकानोंके लिये पूर्ण जल-वायु वशीकारक कलोंका निर्माण १,००० से १,१००० डोलरकी क़ीमतमें होगया है। इनसे भी छोटी मशीनें तैयार की गई हैं जो एक कमरेके लिये मशीन तो कलकत्ते-में ही १२००) से १५००) रुपये तकमें खरीदी जासाकती हैं।

समुद्रोंके तलकी मिट्टी कैसी है ?

[ले० डा० रामरत्न वाजपेयी, एम० एस. सी. डी. फिल]

संसारके चित्रपटपर दृष्टि डालनेसे एक विशेष बात यह दिखलाई पड़ती है कि थल जलकी अपेक्षा बहुत कम है। वास्तवमें जल पृथ्वीके ७२ प्रतिशत भागपर अधिकार जमाये हुये है और धरातलके इस बृहत् भागके विषयमें थल की अपेक्षा हम कुछ भी नहीं जानते हैं। भूगर्भविद्या विशारद तथा अन्य वैज्ञानिकोंने थल तथा उसपर निवास करनेवाले जीव, जन्तु वृक्ष, वनस्पति इत्यादिको इस आधिक्यसे पठन तथा मनन कर रक्खा है कि हम यह बात निस्सन्देह कह सकते हैं कि मनुष्य आज दिन पृथ्वी तथा उसपर रहनेवाले जीवधारियोंके पुरातन इतिहास तथा विकासके विषयमें विश्वसनीय ज्ञान प्राप्त कर चुका है। इस पठनसे ऐसा नहीं कि केवल कोरा ज्ञान ही प्राप्त हुआ होवे बल्कि अनेक प्रकारके प्रयोगिक लाभ भी हुये और इस ज्ञानका उपयोग नित्य प्रति अधिकाधिक बढ़ता ही जारहा है।

पृथ्वीके तीन चौथाई भागके विषयमें मनुष्य अबतक अन्धकारमें है इस भागके विषयमें हमारा ज्ञान नहींके बराबर है क्योंकि प्रकृति इसकी रक्षा बड़ी सावधानीसे करती आयी है और इसे मीलों गहरे पानीके नीचे छिपाये हुये है। एक स्थानपर तो यह ६ मील गहरे जलके नीचे सुरक्षित है। हिमालय पर्वतकी विश्व विख्यात एवरेस्ट चोटीकी ऊंचाईकी अपेक्षा यहांपर समुद्रतलकी गहराई कहीं अधिक है। यद्यपि वर्तमान स्थलका बहुतसा भाग ऐसा है जो किसी समयमें समुद्रके गर्भमें था परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि यह भाग केवल छिछले जलके ही अन्तर्गत था।

इतिहासके पृष्ठ

वैज्ञानिकोंका विचार है कि समुद्र तलका अधिकतर भाग सर्वदासे समुद्र तल ही रहा है और समुद्रके जन्मसे अबतक, लाखों वर्ष हुये, जिनमें बराबर इस तलपर विशेष प्रकारकी मिट्टी, नमक, इत्यादि अनेक पदार्थ जलसे अलग होकर एकत्रित होते चले आये हैं। एकके ऊपर दूसरे, मिट्टी, खड़िया, नमक, इत्यादिके यह असंख्य धरातल समुद्रके लाखों वर्षोंके इतिहासके पन्ने हैं जिनमें यह लिखा है कि नदियां किस प्रकारकी मिट्टी लाईं, आइस वर्गसके साथमें कैसे-कैसे कंकड़ पत्थर आये, सामुद्रिक धारायें अपने कोषमें किस प्रकारकी वस्तुयें लाईं, तथा ऊपरके जलमें किस प्रकारके प्राणी उत्पन्न हुये, बढ़े, खेले कूदे और मृत्युको प्राप्त हुये उनकी सन्तानोंमें क्रमशः विकास किस प्रकार हुआ और उन्होंने अमुक-अमुक समयमें कैसे-कैसे रूप धारण किये। इन अनेक जीवधारियों की कब्रें इसी तलमें हैं। यदि यह ऐतिहासिक लेख विभिन्न स्थानोंसे लिये जायं तो यह भी पता लगाया जा सकता है कि शीत जल सृष्टि किस प्रकारकी है तथा उष्ण जल स्टष्टि किस भांतिकी, छिछले समुद्रोंमें किस प्रकारके जल चर उत्पन्न होते आये हैं और गहरे जलमें किस प्रकारके। जिस प्रकारसे अफ्रीकाके हब्शियों तथा टंड्राके एस्किमोंकी आदतें, रीति-रस्म. बनावट, रहन सहन-में बहुत बड़ा अन्तर है उसी प्रकार विषुवत् रेखा तथा ध्रुवोंके समीपवाले जल चरोंमें किस प्रकारका भेद है। मिट्टीके इन धरातलोंमें जलचर विकासके इतिहासके अतिरिक्त बहुतसे रासायनिक तथा भौतिक लेख भी अंकित जल मिश्रित पदार्थोंकी प्रकृति, ओषदी करण, अवकरण, तथा अन्य परिवर्त्तन सब अपनी-अपनी कथायें तलपर अंकित कर गये हैं। इन धरातलोंमें स्थित कंकड़ पत्थर तथा खनिज पदार्थोंके टुकड़ोंके आकार प्रकृतिसे प्राचीन समुद्र धाराओंकी गति तथा गमन-दिशाओं, बर्फके पहाड़ोंकी चालों, तथा सुदूर पूर्व भूतमें समुद्रकी गहराईके विषयमें विश्वसनीय प्रमाण मिलते हैं।

यद्यपि यह इतिहास वैज्ञानिकोंको बहुत समयसे ज्ञात है परन्तु अबतक मनुष्य इसका कुछ भी लाभ न उठा सका। इसका कारण यह है कि हम इस बृहत् इतिहासका केवल प्रथम पृष्ठ ही जो कि सबसे ऊपर स्थित है पढ़ सकते हैं। अबतक समुद्र धरातलसे जो नमूने निकाले जाते थे उनमेंके केवल समुद्रतलके ऊपरी भागका ही मुट्ठी

भर पदार्थ रहता था। यह केवल वर्तमान दशाका समाचार ही बतलाता था और भूत कथनमें एकदम असमर्थ था।

समुद्रसे मिट्टी लानेवाला यन्त्र

समुद्र तलके इतिहासके पृष्ठ बहुत धीरे-धीरे लिखे गये हैं। मिट्टीकी सतहोंका यह रेकार्ड बड़े ही धीरे-धीरे एकत्रित हुआ है। अतएव यदि हम समुद्र तलकी मिट्टीका कुछ थोड़े फुट गहरा नमूना भी ठीक उसी दशामें ऊपर लासकें जैसा कि वह नीचे उपस्थित है तो हम लोग इस थोड़ी-सी मिट्टीके द्वारा ही अनेक वर्षोंका सामुद्रिक इतिहास जान सकते हैं। ऐसे यन्त्रोंके आविष्कारकी आवश्यकता अनेक वर्षोंसे अनुभव की जाती थी और कई एक यन्त्र आज़माये भी जाचुके हैं। हाल ही में वैज्ञानिक लोग एक ऐसा यन्त्र बनानेमें सफल हुये हैं जो तीन मीलसे भी अधिक गहरे समुद्रतलसे दस फुट गहरे मिट्टीके समूह को जैसे-का-तैसा ऊपर ले आता है।

इस यन्त्रको किसी अन्य डिब्बेमें रखनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती है। यह गहराई नापनेकी रस्सी या जंजीरमें बाँध दिया जाता है। हां रस्सी इतनी मज़बूत होना चाहिये कि इसके बोझको संभाल सके। यन्त्र समुद्रतलका स्पर्श करते ही स्वयं संचालित हो जाता है। इसके पाँच भाग होते हैं—बन्दूक, कारतूस, दागनेका यन्त्र, पानी निकालनेका भाग, तथा बर्मा—परन्तु मुख्य भाग एक फौलादकी नली है, जिसके कि अन्दर एक पीतलकी नली होती है। जब यन्त्र समुद्र तलपर पहुँचता है तो इसके ऊपरी भागमें रक्खी हुई बारूद बड़े ज़ोरसे दगती है। बारूदके धड़ाकेकी सामर्थसे लोहेकी नली समुद्र तलकी मिट्टीमें घुस जाती है। जब यह यन्त्र उपर निकाला जाता है तो समुद्रतलकी मिट्टीके धरातलोंके नमूने पीतलवाली नलीके भीतर मौजूद रहते हैं। पीतलकी यह नली मिट्टीके साथ लोहेकी नलीके बाहर निकाल ली जाती है। और दूसरी बार और नमूने लानेके लिये दूसरी पीतलकी नली उसकी स्थान-पूर्ति करती है मिट्टीसे भरी हुई पीतलकी नलीमें लेबिल लगा दिया जाता है और मिट्टीकी विभिन्न सतहोंके नमूने उसी नलीमें निरापद रक्खे रहते हैं जबतक कि प्रयोग शालामें परीक्षाके लिये न खोले जायं।

पहले नमूनोंकी अपेक्षा इन नमूनोंकी विशेषता यह है कि इनमें मिट्टीकी सतहें बिना किसी प्रकारके गड़बड़के ठीक उसी क्रममें प्राप्त हो जाती हैं जिसमें कि वह समुद्र तलमें पाई जाती हैं। इसके फल स्वरूप हम लोग सामुद्रिक घटनाओंका क्रमबद्ध इतिहास मालूम कर सकते हैं। किसी धरातल विशेषकी खोज हम दूर-दूर तक कर सकते हैं और घटनाओंको सामयिक क्रम तथा उनके विस्तारका पता लगा सकते हैं।

प्राचीन जीवोंके भग्नावशेष

यह नमूने अनेक क्षेत्रोंसे काम करनेवाले अनुसन्धान कर्ताओंके कामके हैं। सामुद्रिक जन्तु शास्त्रके पंडित तथा मूल-भग्नावशेषवेत्ताओंके लिये इनमें युगों पूर्व रहनेवाले सामुद्रिक जीवोंके अवशेष (अस्थि पिंजरादि) मिलेंगे विभिन्न सतहयोंमें उत्पन्न हुये कृमियोंकी प्रकृतियोंमें अन्तर मिलेगा। इस अन्तरसे हमको इन जीवोंके विकासके विषयमें बहुत कुछ मालूम होगा। हम यह भी जान सकते हैं कि जल तापक्रमका प्रभाव कृमियोंपर क्या पड़ा और उसके फल स्वरूप उनमें क्या क्या परिवर्तन हुये। इस प्रकारसे यह कदाचित सम्भव है कि हम यह भी बतला सकें कि अमुक समयमें समुद्रके किसी विशेष भागमें तापक्रम विशेष अधिक था अथवा कम और फिर तापक्रमकी वह लहरें इधर-उधर कहां तक व्याप्त थीं और किसी क्षेत्र विशेषमें कितने दिन तक रहीं। शायद इस बातका भी पता लग सकें कि समुद्रका अमुक भाग गहरा था, अमुक छिछला अथवा केवल एक लैगून मात्र था।

समुद्रके तलपर खनिज

अधः क्षेपवेत्ता (सेडीमेण्टोलोजिस्ट) इन नमूनोंमें पाये जानेवाले खनिज पदार्थ तथा पत्थरके टुकड़ोंकी प्रकृति तथा आकारसे यह जान सकते हैं कि भूतकालमें समुद्रकी धाराओंकी दिशायें क्या थीं और उनमें क्या क्या परिवर्तन हुये तथा उन धाराओंकी शक्ति कितनी थी

रेत तथा इन अन्य पदार्थोंकी प्रकृतिसे शायद यह भी पता लगाया जा सकता है कि वर्तमान समुद्र पूर्व समय बर्फके समीप था अथवा स्थलके या यह भाग सर्वदासे समुद्र ही रहा है। यद्यपि यह बात सत्य है कि इन छोटे-छोटे प्रमाणों द्वारा हम पूर्ण रूपसे किसी निष्कर्षपर नहीं पहुँच सकते हैं परन्तु इतनी बात निःसन्देह है कि इन प्रमाणों द्वारा उपर्युक्त बातोंपर काफी प्रकाश डाला जा सकता है और यह प्रमाण हमारे अनेक सिद्धांतोंकी एक अच्छी कसौटी बन सकते हैं।

समुद्र तलमें रेडियमके-से पदार्थ

इन नमूनोंमें पाये जानेवाले कुछ खनिज तथा रासायनिक पदार्थ भी बड़ा महत्व रखते हैं। यहांपर हम हरिन्, प्लविन, नैलिन्, मांगनीज, लौह इत्यादि पाये जानेवाले अनेक पदार्थोंका उल्लेख न करेंगे परन्तु यह बतला देना आवश्यक प्रतीत होता है कि इन सभी पदार्थोंमें रेडियम एक विशेष महत्व रखती है क्योंकि यह इन नमूनोंमें इतनी अधिक मात्रामें पाया जाता है जितनी कि स्थल पर, आग्नेय अथवा अधःक्षेपित किसी भी प्रकारकी शिलाओंमें नहीं मिलती है। वैज्ञानिक लोग अब तक इस रेडियम-बाहुल्यका कारण बतलानेमें सफल नहीं हुये हैं। गहरे समुद्रोंके तलमें अधिकांश भाग एक प्रकारकी लाल मिट्टी होती है। इसी मिट्टीमें रेडियम अधिकता पूर्वक मिला रहता है। यदि इस प्रकारकी मिट्टीकी गहराई काफी है और नीचेतक रेडियम इसी मात्रामें उपस्थित है तो यह गहरे समुद्रतल रश्मिशक्तिक सामर्थ्यके बहुत बड़े खजाने हैं। रेडियमकी इस अधिकतासे भी हम बहुत कुछ सीख सकते हैं सम्भव है कि धरातलके अनेक परिवर्तनोंमें अब तक गहरे समुद्र तलकी सतहें ऊपर नहीं आई हैं अथवा रेडियम किसी रासायनिक अथवा भौतिक क्रिया विशेषका एक अंग है जो अस्थिर है। नमूनोंमें पाये जानेवाले इन रश्मिशक्ति पदार्थों तथा उनके विकीर्ण पदार्थोंका ज्ञान प्राप्त करके सम्भवतः हम लोग इन नमूनोंकी आयुका पता लगा सकते हैं। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि यह समय ज्ञान भूशास्त्र विशारदोंके लिये एक विशेष महत्व रखता है।

वर्तमान समुद्रोंके इतिहासके लेख केवल उनके तलमें हैं। कोई नहीं कह सकता है कि इस इतिहासको हम सरलता पूर्वक पढ़ लेंगे अथवा इसमें भयंकर कठिनाइयोंका सामना करना पड़ेगा। और यह भी नहीं कहा जा सकता है कि इतने कष्टोंके बाद सीपें हाथ आवेंगी अथवा केवल घोंघे। परन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि समुद्रोंके इतिहासके पृष्ठ रूपी यह मिट्टीके नमूने अब हमें सुलभ हैं। इनका पढ़ना या न पढ़ना हमारी योग्यतापर निर्भर है।

जंगलके हानिकारक कीड़े (१)

[ले०—श्री पी० एन० चटर्जी, एम० एस-सी०]

हिन्दुस्तानके जंगल

हिन्दुस्तानकी सबसे बड़ी प्राकृतिक देन उसके सुन्दर जंगल हैं। वर्षा और ऊँचाईपर इस देशके जंगलकी बढ़ती निर्भर रहती है। जहां बहुत अधिक वर्षा होती है वहां बारहों महीने जंगल हरे रहते हैं, और वहां ताड़का पेड़, बांस, तथा रबड़वाले पेड़ पाये जाते हैं। जहां वर्षा बहुत अधिक नहीं होती वहांके पत्ते झड़ते हैं और सागुन, साल और दूसरे पेड़ पाये जाते हैं। और हिमालयके जंगलमें भिन्न-भिन्न ऊँचाईपर देवदार, चीड़, बांज, बांसके पेड़ पाये जाते हैं।

सब देशोंमें जहां प्राकृतिक जंगल पाये जाते हैं, मनुष्य अपनी आवश्यकताके लिये उन्हें काट रहे हैं। इसलिये जंगल अब उतनी शीघ्रतासे पैदा नहीं हो रहे हैं। इसको रोकनेके लिये और जंगलकी देखभालके लिये सरकारने यह बोझा अपने ऊपर उठा लिया है। अब यह भली भांति मालूम हो गया है कि हिन्दुस्तानका बहुत-सा धन जंगलके रूपमें है और उसे सुरक्षित रखना सरकारका मुख्य काम है।

जंगलसे लाभ

जंगलसे लाभ दो प्रकारके हैं—

(१) परोक्ष और (२) प्रत्यक्ष।

परोक्ष

(१) जंगलके कारण देशकी जल वायु अच्छी रहती है, हवामें नमी ज्यादा होती है और भूमिसे पानी भाप बनकर नहीं जा सकता है।

(२) जंगलके कारण झरनेमें पानी बराबर आता रहता है; यह बाढ़को रोकता है और नदियोंमें पानी बराबर चलता रहता है।

(३) जंगल भूमिकी उपजाऊ शक्तिको बढ़ाता है। जंगलके पेड़ोंकी पत्तियां जब झड़ती हैं, वह सब खाद बन जाती है और इस प्रकार भूमि सर्वदा उपजाऊ बनी रहती है।

(४) जंगल आंधीको रोकता है और आस पासके खेतोंको न अधिक ठंढा और न अधिक सूखने देता है और जानवरोंकी रक्षा करता है।

(५) जंगल देशके स्वास्थ्यको बढ़ाता है और शत्रुओंके आक्रमणोंसे बचाता है।

(६) जंगल देशकी सुन्दरताको बढ़ाता है। हरे जंगलोंको देखकर मनुष्योंका मन प्रसन्न होता है और उनमें स्फूर्ति आती है।

प्रत्यक्ष

मनुष्यको जंगलसे मुख्य प्रत्यक्ष लाभ धन का है जो मकान तथा जलानेकी लकड़ियों तथा अन्य उपयोगी बनस्पतियों द्वारा प्राप्त होता है। एक और भी लाभ है। जंगल हिन्दुस्तानके पशुओंके लिये चारा प्रदान करते हैं।

सरकारने जङ्गलको चार भागोंमें बांटा है—

(१) वह जङ्गल जिससे जलवायु बनी रहे।

(२) वह जङ्गल जिससे मुख्य लकड़ियों तिजारतके लिये मिलती है।

(३) छोटे-छोटे जङ्गल जिससे कि दूसरे दर्जेकी लकड़ी मिलती हैं।

(४) वह जंगल जिसमें पशुओंके चरनेके लिये जगह हो।

भारतमें अब जङ्गलका १/५ सरकारके शासनमें है। वर्मा और आसामके जङ्गल सबसे बड़े हैं। हिन्दुस्तानके जङ्गल विशेष करके पहाड़ोंमें हैं और कुछ मैदानोंमें भी पाये जाते हैं।

जंगलका निरीक्षण

जङ्गलकी देख भाल पूरी प्रकार नहीं होनेसे, हिन्दुस्तानको करोड़ों रुपयेका नुकसान है। इसलिये सरकारने जङ्गलकी देखभालके लिये एक जंगलातका दफ्तर कायम किया है संसारमें सब जगहें इस विभागको बड़ा महत्व दिया जाता है। जङ्गलको विशेष करके कीड़ोंसे अधिक नुकसान पहुँचता है। इन कीड़ोंको वशमें करनेके लिये और उनका वैज्ञानिक अनुसन्धान करनेके लिये, सरकारने जङ्गलाती—कीड़ोंका एक दफ्तर बनाया है, जो जङ्गलात दफ्तरका एक बड़ा भाग है।

जंगलके कीड़ोंके अनुसन्धानके लिये केन्द्रीय सरकार प्रायः ७५००० रुपये वार्षिक खर्च करती है। प्रांतीय सरकार अपने जंगलोंके लिये कठिनाईसे इस रुपयेकी १ प्रतिशत भाग खर्च करती है। मध्य प्रांतकी सरकारको उस समय १३७ लाख रुपयेका नुकसान हुआ जब सालकी लकड़ियोंमें बोरर लग गये। बरर पेड़ोंको अन्दरसे बिलकुल खोखला बना देता है, परन्तु बाहरसे पेड़ोंमें कोई दोष नहीं दिखलाई देता। इन घातकोंको वशमें करनेके लिये केवल सवा लाख रुपये खर्च हुये और फिर कभी इस प्रकारका नुकसान नहीं हुआ।

इसी प्रकार सागौन पेड़के डिफोलियेटट या पत्रभक्षकोंसे पेड़की वार्षिक वृद्धिमें १/३" कमी पड़ जाती है जिससे लाखों रुपयेकी आमदनी घट जाती है। शीशमके पेड़का भी यही हाल है।

जंगलाती कीड़ोंके अनुसन्धानकोंका कार्य

जंगलाती कीड़ोंके अनुसन्धानकोंके निम्नलिखित मुख्य दो कार्य हैं—

(१) यह आविष्कार करना कि कौन जातिके कीड़े किस प्रकार पेड़ोंको नुकसान पहुँचाते हैं।

(२) दूसरा कार्य यह है कि किस प्रकार इन घातकोंको सरलता पूर्वक वशमें लाया जाये, जिसमें अधिक व्यय नहीं हो।

इन दोनों प्रश्नोंको सुलझाना कोई साधारण कार्य नहीं है। पहिला काम सबसे कठिन है। क्योंकि कौन जातिके कीड़े सबसे पहिले नुकसान पहुँचाते हैं, कोई

ठीक पता नहीं दे सकता। प्रायः ही उन कीड़ोंको गलतीसे हानिकारक बतलाया गया है जो वास्तवमें ऐसे नहीं हैं। दूसरे कामका प्रयत्न बहुतसे आदमी ठीक प्रकार नहीं कर पाते। वह चाहते हैं कि तुरन्त घातक वशमें आजायें, परन्तु यह बहुत कठिन है। हम लोगोंको यह उचित होगा कि नुकसान करनेवाले जङ्गलके कीड़ोंको धीरे-धीरे वशमें लाना चाहिये जिससे इलाज ठीकसे हो और दुःख हरनेवाली युक्तियां जिससे हम यह चाहते हैं कि तुरन्त लाभ पहुँचे, ठीक नहीं हैं क्योंकि इसमें खर्च अधिक है और असफलता ही प्राप्त होती है।

काश्तकारोंमें तो प्रत्यक्ष और रासायनिक युक्तियां काममें लाई जा सकती हैं क्योंकि उनकी फसलें थोड़े-थोड़े रकबेमें होती हैं परन्तु इन युक्तियोंको जङ्गलमें नहीं लगा सकते हैं। साधारण कारण अधिक खर्चका है। काश्तकार अपने फसलकी देख भाल भली भांति कर सकते हैं परन्तु जङ्गलके लिये यह असम्भव है। इसलिये कीड़ोंके अनुसन्धानक जो कुछ भी अपना मत जङ्गलके कीड़ोंको वशमें लानेके लिये बताते हैं, वह केवल साधारण परिणाम निकालनेके नियम हैं और अकाट्य नहीं हैं।

हानिकारक कीड़ोंको वशमें करनेके लिये आधुनिक मनुष्योंकी प्रवृत्ति प्राकृतिक सहायताकी ओर है। इसको अंग्रेजीमें बायोलाजिक् कनट्रौल या नैचुरल् कनट्रोल कहते हैं। इसमें पैरासाइट् और प्रीडैट्र मुख्य भाग लेते हैं। इसको ठीक समयपर कार्यवाईमें लानेके लिये अधिक चतुराईकी आवश्यकता है।

जंगलके कीड़ोंका अनुसन्धान

जंगलके कीड़ोंके वैज्ञानिक अनुसन्धानके लिये निम्नलिखित बातोंपर ध्यान देना आवश्यक है—

(१) सबसे पहिले कीड़ेकी जीवन कहानी और उसकी वार्षिक उत्पत्ति जानना चाहिए।

(२) फिर यह देखना है कि सालके किस मौसिममें कीड़े बढ़ते हैं। यह बहुत कुछ देशकी प्राकृतिक दशा और उसकी फसलोंपर निर्भर करता है। इसके लिये जंगली प्रदेशोंकी भिन्न-भिन्न मौसमोंकी जलवायुका अध्ययन करना आवश्यक है।

(३) यह मालूम करना कि हानिकारक जंगलके कीड़े किस प्रकार बढ़ जाते हैं और फिर किस प्रकार कम हो जाते हैं। इस बातको सफलता पूर्वक अनुसन्धान करनेके लिये, इन हानिकारक कीड़ोंके प्राकृतिक शत्रुओंकी खोज करना आवश्यक है।

(४) यह मालूम करना कि मुख्य डिफ़ोलियेट्र या पत्र भक्षक केवल एक ही जातिके पेड़में पाया जाता है या आस पासकी दूसरी जातिके पेड़ोंमें भी पाया जाता है (ऐसे पेड़ोंको अंग्रेजीमें आल्टरनेट् होस्ट प्लान्ट कहते हैं)।

(५) यह देखना कि अंतरिक्ष सम्बन्धी बातोंका कीड़ोंके ऊपर क्या प्रभाव है।

(६) डिफ़ोलियेटर या पत्र-भक्षकोंकी पूरी जीवन कहानीका जानना सबसे आवश्यक है, क्योंकि यदि हमको इस बातका पता हो जायेगा, तब डिफ़ोलियेट्रको पेड़ोंको खाते हुये किसी भी अवस्थामें हम पहिचान सकेंगे।

कीड़ोंका वशीकरण या कण्ट्रोल

पेशतर इसके कि हम किसी देशके जंगलके हानिकारक कीड़ोंको वशमें करनेके लिये युक्तियाँ निकालें, सबसे पहिले हमें उस जंगलके डिफ़ोलियेट्रके बारेमें कुछ जानना आवश्यक है।

जिस किसी देशके जंगलमें बायोलाजिकल कन्ट्रोलकी आवश्यकता है, सबसे पहिले उस जगहका प्राकृतिक निरीक्षण आवश्यक है फिर यह खोज करनी चाहिये कि डिफ़ोलियेट्रके कौन-कौनसे प्राकृतिक शत्रु पहिलेसे ही वहाँ पाये जाते हैं, और किन-किनकी और आवश्यकता है; जब इस बातका निश्चय हो जायेगा, तब वहांपर एक इनसैक्ट्री या कृमिशालाके द्वारा पैरासाइटके झुंड बसाये जायेंगे।

पेड़के हानिकारक कीड़ोंको क्या करें ?

जो जंगलोंकी देखभाल किया करते हैं और नहीं जानते कि ऐसे अवसरपर जब कीड़ोंका अचानक आक्रमण हो जाये, तो क्या करना चाहिये उनके लिये निम्नलिखित बातें लाभदायक होंगी। जो भी कोई कीड़े पकड़नेमें आवें-अवसर न चूक करके, इनको जंगलातके दफ़्तरमें भेज

देवें, जहांसे उनको पूरा ब्योरा और उपाय आदि मालूम हो जायेगा।

(१) परवाले इत्यादि कीड़ोंका मारना

सब प्रकारके कीड़े, सिवाये फतिंगे, स्पिरिटमें डालनेसे मर जायेंगे। मट्टीका तैल और पेट्रोल व्यवहार नहीं करना चाहिये। छोटे-छोटे कीड़े जिनके पर सख्त होते हैं (मोगरी इत्यादि) और वे जिनके बदन नर्म होते हैं गरम पानीमें डूबो करके मार देने चाहिये। पतिंगे और तितलीके उरस्को दबानेसे वे मर जाते हैं और फिर उनके पर पीछेकी ओर मोड़ दीजिये।
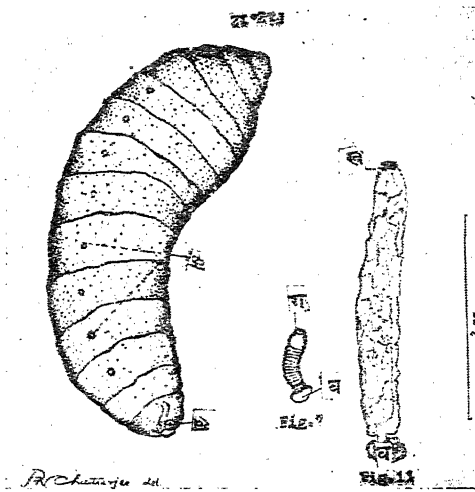
ऐपेनटलीस् मैकेरिलस्की तीन अवस्थावाली मैगोट।
तसवीरमें अंग्रेजी चिह्नोंकी परिभाषा :—

क=स्पायेरेक्ल्
ख=सिर
ग=अधो इन्त्रस्थि
घ=ऐनल वैसीक्ल्

(२) मरे हुये कीड़ोंका पैकिंग

फ़तिंगे और तितलीके सिवाये मरे हुये कीड़ोंको सावधानीसे पतले कागजमें लपेट दें और छोटेसे एक बक्समें कुछ पतले कागजके कतरन देकर बन्द करें। परन्तु थोड़ा भी गीलापन न रहे, नहीं तो फफूंदी लग जायेगी। इसलिये कुछ नेफ्थलीन् छोड़ देनी चाहिये। रुई नहीं व्यवहार करना चाहिये। पतिंगे और तितलीको तिकोने लिफ़ाफेमें भेज सकते हैं।

(३) लार्वा और प्यूपीका पैकिंग

कैटरपिलर, ग्रब्स्, मैगोट्स और प्यूपी जो उबलते हुये पानीमें डूबोकर मारे गये हैं, उनको ७०% अलकोहल या स्पिरिट या फ़ारमैलीनमें रखना चाहिये। शीशीके डाटको मोमसे बन्द कर दें। इसमें एक लैबिल डाल देना चाहिये (अर्थात पैनसिलसे एक कागजमें यह लिखें कि किस पेड़से कीड़ा पाया गया है, जगहका नाम भेजनेवालेका नाम और तारीख)। बोतलोंको एक छोटे बक्समें बुरादा देकर भेजना चाहिये।

(४) ज़िन्दे कीड़ोंका पैकिंग

यदि ज़िन्दे कीड़े पेड़ोंको खाते हुये मिलें, तो यह चाहिये कि लार्वा, कैटरपिलर, प्यूपी इत्यादिको ज़िन्दा ही भेजें। बहुत सारे एक साथ भेजनेमें लाभ है क्योंकि तब इनकी पूरी जीवन कहानीका पता इनसैक्टरीमें लगा सकेंगे।

(५) कैटरपिलर और दूसरे पत्र भक्षक

पत्तेके खानेवाले कीड़ोंको सर्वदा वही पत्ता देकर भेजना चाहिये जिसमें कीड़े सफ़रमें भूखे नहीं रहें, नहीं तो मर जानेका भय है। परन्तु फिर भी कीड़े २४ घंटे बिना पत्तियोंके रह सकते हैं। इनको कभी बोतल या टिनमें नहीं भेजना चाहिये। लकड़ियोंके छोटे-छोटे बक्समें भेजना अच्छा है। परन्तु इस बातका ध्यान रहे कि बहुत पत्तियोंसे सड़ जानेका डर है। उचित तो यह होगा कि ढक्कन सहित बक्स जंगलमें ले जायें और उसमें पत्ती और कीड़े भर दें। छोटी-छोटी पत्तियोंकी टहनियोंका एक छोटा गट्ठा बनाकर, बक्सके किनारेमें कीलोंसे जड़ दीजिये। बक्सके नीचे सूखी हुई घास या सोखता रखना चाहिये। उन पेड़ोंकी पत्तियोंको जो बहुत बड़ी होती हैं जैसे कि सागौनके पेड़की एक-एक तह घासका देकर बक्समें रखना अच्छा होगा। लकड़ी वालीमें छोटे-छोटे छेद करने की आवश्यकता नहीं है। छोटे-छोटे कैटर-

पिलर एक बक्समें जिसका कि माप ८″×८″×१५″ हो, अधिक-से-अधिक दो दर्जन रखने चाहिये। अगर कोई कैटरपिलर ३″—४″ इंच लम्बा हो, तो उसके लिये बक्समें चलने फिरनेको जगह होनी चाहिये।

तसवीरकी परिभाषा :—

ऊपरकी तसवीर = पैरासाइट पालकके अन्दर अंडा दे रही है।

क　= मदि ऐपेनरलीस् मैकेरिलस्

ख　= पालक हपेलिया मैकेरिलस्

बांये ओरकी तसवीर = तीसरी अवस्थावाली पैरासाइट्का मैगोट निकल रहा है।

ग　= पालक

घ　= मैगोट

दाहिने ओरकी तसवीर = पैरासाइटके ककून।

च　= ककूनकी टोप काटकर पैरासाइट निकल गया है।

(६) लकड़ीके बोरर
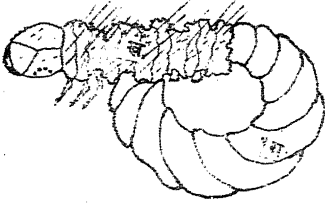
उन कीड़ोंको जो पेड़ोंकी टहनियों और शाखाओंमें छेद करके रहते हैं, टहनी सहित बक्समें भेजना चाहिये। बोररका पता बाहरसे लगा सकते हैं क्योंकि पेड़की टहनियोंमें छोटे-छोटे छेद होंगे और इन छेदोंके ऊपर कुछ बुरादा होगा। इस प्रकारकी टहनियोंको चीरकर जाँच करनेपर उसके अन्दर मोगरीका लार्वा दिखाई देगा और इसमें बहुतसी नलियोंकी शकलके रास्ते दिखाई देंगे। यदि बहुत बड़े लकड़ीका कुन्दा हो, तो उनको बड़ी-बड़ी पत्तियोंमें लपेट कर एक बोरीमें सीकर भेज दें।

यदि कोई ज़िन्दा लार्वा और प्यूपी, जिसको कोई चोट नहीं आई है, लकड़ीके अन्दर मिला हो, तो उनको उसी लकड़ीके बुरादेमें रखकर छोटी शीशीमें भेजना चाहिये।

(७) ज़मीनके अन्दर रहनेवाले कीड़े

इन कीड़ोंको मट्टी सहित ज़िन्दा भेजना चाहिये।

कीड़ों द्वारा नुकसान की हुई पत्तियां, टहनियां, बीज इत्यादि, दो सोख़्तोंके बीचमें दबाकर भेजना चाहिये। और फिर बाहरसे दफ़्तीसे बन्द कर देना चाहिये।

ऊपर लिखी बातोंका पूरा ध्यान रखना आवश्यक है। जंगलकी रक्षाके लिये उचित परामर्श जंगलातके दफ़्तरसे मिल जायेगा।

सागौनके पत्र-भक्षक

हिन्दुस्तानमें सागौनके जंगल निम्नलिखित जगहोंमें पाये जाते हैं :—देहरादून, होशंगाबाद, मध्यप्रान्त, उड़ीसा, मदरास, (निलाम्बर और कुर्ग), बंगाल, बम्बई और बर्मा (बर्मा अबसे अलग कर दिया गया है)। वैज्ञानिक अनुसन्धानसे यह ज्ञात हुआ है कि डिफोलियेटर-को जिनकी जीवन-कहानी बहुत थोड़े समयकी होती है और वार्षिक उत्पत्ति ८-१२ बार है, आसानीसे प्रत्यक्ष युक्तियोंसे वशमें नहीं लाया जा सकता है। इसलिये इन्हें प्राकृतिक शत्रुओंके द्वारा वशमें करना चाहिये—अर्थात पैरासाइट् और प्रीडैटरोंसे।

सागौनके दो मुख्य घातक हैं—

(१) हैपेलिया मैकेरेलिस

(२) हाईब्लीया प्योरा

दक्षिणमें इनकी १३-१४ बार वार्षिक उत्पत्ति होती है और उत्तरमें ८-१० बार। इनके सिवाय और भी दूसरे कीड़े, टिड्डियाँ, मोगरी समय पड़नेपर अधिक हानि पहुँचाते हैं। इन कीड़ोंको जीवन-कहानी बहुत लम्बी होती है।

पत्र भक्षकों या डिफोलियेटरकी बाहरी पहचान

यदि साथमें एक ताल हो तो अधिक सरलतासे पत्र भक्षक पहिचाने जा सकते हैं—

हैपेलिया मैकेरिलस् :—बदन नर्म, तोन जोड़े उरसके पैर पाँच जोड़े, उदरके पैर, सिर अल्प पीला, बड़े लार्वे पीले होते हैं और ऊपरकी ओर गहरा पीला रंग और कुछ पीलो बुन्दियां होती हैं, छोटे लार्वे सफेद-मैले रंगके होते हैं, लार्वा पत्तेपर रेशमी जाल बना देते हैं, लार्वेकी लम्बाई केवल १" है।

हाईब्लीया प्योरा :—बदन नर्म, तीन जोड़े उरसके पैर, पाँच जोड़े उदरके पैर, काला सिर, बड़े लार्वे काले होते हैं और नारंगीके रंगकी लाइने बनी होती हैं छोटे लार्वे राखके रङ्गके होते हैं और विशेषकरके सागौनकी नई पत्तियोंके किनारेको काटकर उसके अन्दर जाल बना कर रहते हैं। सबके बड़े लार्वेकी लम्बाई केवल १¹/४" है।

हानि

इन दो मुख्य डिफोलियेटरके कारण सागौनके पेड़की १/३" वार्षिक बढ़तीका कम होजाना है और करोड़ों रुपये सालका नुकसान होता है।

हैपेलिया मैकेरेलिसकी जीवन कहानी

हैपेलिया मैकेरेलिसके पतिंगे सागौनकी नर्म पत्तियों-के पीछे अंडे देते हैं। अंडा पहिले सफ़ेद देखनेमें होता है और कुछ घंटोके बाद रङ्ग मटीला हो जाता है और अंडेके बदनपर धारियाँ दिखाई देती हैं। अंडेकी सूरत कुछ गोलाकार होती है। अंडेसे जब बच्चा लार्वा निकलता है, तो वह केवल नई और नर्म पत्तियोंको खाता है और जैसे-जैसे बढ़ता जाता है पुरानी पत्तियोंको भी खाने लगता है और जालकी तरह पत्तियोंको बना देता है। लार्वा अपने पूरी जीवनमें चारवार मोल्ट करता है। यह अंडेकी अवस्थामें दो दिन रहता है; लार्वा की अवस्थामें ११ दिन और प्यूपाकी अवस्थामें ४ दिन। अर्थात् पूरी जीवन-कहानी अंडेसे पतिंगेके निकलने तक १७ दिन की है। पतिंगा बहुत दिन जीवित नहीं रहता। कुछ दिन अंडे देकर मर जाता है। परन्तु भली भांति देखभाल करनेसे बहुत दिन तक अंडे दे सकता है। पतिंगेका अंडा देना और नहीं देना, मौसिमके ऊपर निर्भर करता है। प्रकृतिमें हैपेलिया मैकेरेलिसके बहुत जातिके पैरासाइट मालूम किये गये हैं। और इस पुस्तकमें केवल एक पैरासाइटका वर्णन किया जायगा।

ऐपेनटिलिस् मैकेरेलिस्

बाहरी चिह्न—लम्बाई २.८ मिलीमीटर है, दो जोड़े पर हैं जिनके आर-पार दिखाई देता है, बड़े परमें एक तिकोना चिह्न है, नरके पैर काले हैं और मादाके पैर कम काले हैं, एक जोड़ा ऐनटनी (antennae) है जिससे वह टटोलनेका काम लेता है, पिछले पैरोंपर एक जोड़ा कांटा है। मादा पैरासाइटमें एक ओवीपोज़ीटर है जिसके द्वारा पैरासाइट पालकको शिथिल बना देती है और फिर उसके अन्दर अंडे देती है। परन्तु नरमें इस प्रकारका कोई अंग नहीं है। सबसे कठिन कार्य नर और मादाकी शादी कराना है। क्योंकि जिस मादाकी शादी नहीं हुई है, वह जो अंडे देगी उसमेंसे केवल नर ही निकलेंगे और शादी होनेपर अधिक मादा निकलेंगी जिसकी हमें अधिक आवश्यकता है।

पैरासाइटका बढ़ाना—जिस मादा पैरासाइटकी शादी हो गई है, उसको एक दूसरे अवस्थावाले पालकके साथ रख दिया। अब यह पैरासाइट अंडे देनेके पूर्व बहुत फुर्ती और चतुराई दिखाती है। कभी-कभी चुप हो जाती है और यह ताक लगाये रहती है कि कब झपटे और तुरन्त बिजलीकी तरह झपट जाती है, और ओवीपोजीटरसे पहिले पालकको शिथिल बना देती है और निश्चित होकर उसके अन्दर अंडा देती है। कुछ क्षणके बाद पालकको छोड़ देती है और बेचारा पालक कुछ समय तक कष्ट पाता है और फिर अपने खानेमें लग जाती है। पहिली, दूसरी और तीसरी अवस्थावाले पालकोंको पैरासाइट् भली भांति शिथिल कर सकती है और उनके अन्दर अंडा देती है। परन्तु चौथी और पांचवी अवस्थावाले पालकोंके पास वह साहस नहीं कर सकती। पहिली अवस्थावाले पालक अधिक तर मर जाते हैं, क्योंकि ओवीपोज़ीटरकी चोटको वह नहीं सह सकते हैं।

पैरासाइटको जीवन-कहानी

पैरासाइटकी पूरी जीवन-कहानी नौ दिनकी है—अंडेकी अवस्था = २४ घंटे, लार्वा अवस्था = ५ दिन; ककून अवस्था = ३ दिन।

अन्डेसे एक बच्चा मैगोट निकलता है जो पालकके अन्दर खाता रहता है और अपनी तीसरी अवस्थामें पालकके बाहर छेद करके निकल आता है। अब यह मैगोट अपनी रक्षाके लिये एक रेशमका कोवा बना लेता है। तीसरे दिनके बाद इस ककूनके एक सिरेपर टोपी काटकर पैरासाइट् निकल आता है। अब यह पैरासाइट फिर उसी प्रकारसे अंडा देता है और वंश वृद्धि होती रहती हैं। पैरासाइटकी उत्पादन शक्ति पालकसे दुगनी है।

यह मालूम किया गया है कि आखरी अवस्थावाली मैगोट् सर्वदा तीसरी अवस्थावाली पालकके बदनसे निकल आती है। यह भी देखा गया है कि यदि पैरासाइटने अपनी अवस्थावाली पालकके अन्दर अंडा दिया हो, तब पालक केवल दो बार मोल्ट करती है और दूसरी और तीसरी अवस्थावाले पालक केवल एक ही बार मोल्ट करते हैं।

प्रयोग-शालामें १५४ पालकोंको पैरासाइट्ने एक-एक करके शिथिल किया और अपना ओवीपोज़िटर घुसाया। परन्तु केवल ७१ लार्वे (४६%)के अन्दर अंडे और मैगोट मिले और २९ ककून बने। बाकी लार्वे पालकके प्यूपी बन गये और २० मर गये और इनको चीरनेसे कुछ भी नहीं मिला।

इससे यह स्पष्ट है कि ३६% पालक लार्वोंके ऊपर पैरासाइटका कोई भी असर नहीं हुआ पैरासाइटकी अंडे देनेकी शक्तिकी कभी-कभी कम हो जाती है। केवल १३% लार्वा मर गये। २९ ककूनमेंसे केवल एक नर पैरासाइट ११ दिनमें निकला। इसका कारण यह है कि नर और मादेमें ठीक प्रकार मेल नहीं हुआ। कुछ कीड़ोंकी यह विशेषता है कि बिना नरसे मिले उनके अंडेसे जो बच्चे पैदा होते हैं, वे सब नर होते हैं।

पैरासाइटके अंडे और तीन अवस्थाके मैगोटका वर्णन

अंडा

मादा पैरासाइटको चीरनेसे अंडे निकल आते हैं और पानीमें तैरने लगते हैं। अंडेको माप ०·४ × ०·१ मिलीमीटर है। अंडा प्रायः हंसियेकी आकारका होता है और उसके एक छोटी डन्डी भी होती है। देखनेमें सफेद होता और बदन चिकना होता है। अंडेके अन्दर योकके दाने बहुत होते हैं। अंडेकी अवस्था केवल २४ घंटेकी होती है।

प्रथम अवस्थाका मैगोट

यह मैगोट पालकके कोई भी भागमें खाता हुआ पाया जाता है। इसका माप ०.७६ × ०.२ मिलीमीटर है। जब अंडेसे मैगोट निकलता है तब वह सफेद होता है परन्तु धुंधला दिखाई देता है। इसके एक चौकोर सिर है जिसकी चौड़ाई ०·२ मिलीमीटर है। उरस् अभी ठीक प्रकारसे नहीं पता लगती और इसके साथ उदरके ११ खण्ड होते हैं। उदरके आखरी खण्डके साथ एक छोटीसी थैली होती है जो कि सांस लेनेके काममें आती है। इसको अंग्रेजीमें ऐनलबेसीकिल कहते हैं।

उरस्के ऊपर छोटे-छोटे सफेद कांटे होते हैं। उदरके हर एक खण्डपर एक कतारमें ६ सफेद कांटे हैं इसमें कोई ट्रैकी संस्थान नहीं है और एनल वेसीकिल द्वारा सांस लेनेका काम करता है। अन्नमार्ग सीधा है। एक जोड़ा अधो हन्वस्थि है और आगेसे पैना है। इसका माप ०.४ × ०.२ मिलीमीटर है।

द्वितीय अवस्थाका मैगोट

यह प्रथम अवस्थासे बहुत बदला हुआ रहता है। इसका माप १.४८ × ०.२८ मिलीमीटर है और दूसरी अवस्थाके शेष होनेपर इसका माप ३.४ × ०.७६ मिलीमीटर हो जाती है।

यह मैगोट और भी अधिक धुंधला दिखाई देता है क्योंकि अन्नमार्ग भोजनसे भरा रहता है। इसका भी एक एनल वेसीकिल है जो श्वास लेनेके काममें आता है। सिर बहुत अच्छी तरहसे नहीं दिखाई देता है।

अधो हन्वस्थि कठिनतासे मालूम देता है। अन्नमार्ग अब हरा दिखाई देता है। ट्रैकी संस्थान है परन्तु अभी स्पायेरेक्लस् नहीं है।

आखरी अवस्थाका मैगोट

दूसरी अवस्थावाला मैगोट मोल्ट करता है और तीसरी अवस्थाको प्राप्त करता है। इस अवस्थामें यह पालकके बाहर एक छेद करके निकल आता है। सबसे पहिले सिर निकलता है और क्रमशः सारा बदन निकल आता है। पहिले तो यह मैगोट् मैला दिखाई देता है और बादमें कुछ सफेद हो जाता है। यह एक बेलनके सूरतका है। इसमें एनल वेसीकिल नहीं है क्योंकि ट्रैकी संस्थान भली भांति इसमें है। एक जोड़ा अधो हन्वस्थि है और १८ दांत हैं। अधो हन्वस्थिकी माप ०.१२ × ०.४ मिलीमीटर है। इस मैगोटका माप ५.२ × १.२ मिलीमीटर है। सिर और सारे बदनमें कांटे हैं। जब यह मैगोट निकलता है, तब इधर-उधर घूमकर, एक रेशमका कोवा बनाना शुरू करती है और एक घन्टेके अन्दर पूरा कर लेती है।

ककुन दोनों सिरेसे गोल होता है और एक ढोलकी तसवीरका होता है। यह रेशमकी तरह सफेद है और इसका माप ३.६ × १.४ मिलीमीटर है। आखरी अवस्थावाली मैगोट ककूनके अन्दर प्यूपा बनाती है और फिर इसमेंसे पैरासाइट तीसरे दिन निकल आता है।

पैरासाइट कोल्ड स्टोरेजमें २६ दिन जीती रहती है परन्तु लैबोरेटोरीके तापक्रममें २ दिन कठिनसे रहती है।

जड़ों द्वारा पौधोंका भोजन

[ले० श्री जगमोहन लाल चतुर्वेदी, बी० एस-सी, एल. टी.]

हम जानते हैं कि बिना भोजनके जीवन निर्वाह कठिन है। जो भोजन हम खाते हैं हमारे शरीरको बचाने और स्वस्थ रखनेमें मदद देता है। जब हम तोता, मछली या तितलीके बच्चोंको पालते हैं तो हमें इनको नियमसे खिलाने पिलाने और तन्दुरुस्त रखनेका प्रबन्ध करना पड़ता है। यही हाल पौधोंका समझना चाहिये। हम अपना भोजन दूकानसे मोल लेते हैं। पक्षी और बनैले पशु भोजनकी खोजमें इधर उधर घूमते फिरते हैं। तितलियाँ फूलों-फूलों रस चूसती फिरती हैं। पौधा जो एक ही स्थानपर खड़ा बढ़ता रहता है अपना भोजन किस तरह प्राप्त करता है? यह अपना भोजन केवल दो ही जगहसे प्राप्त कर सकता है—ज़मीन और हवासे। इसकी जड़ें ज़मीनसे भोजन ढूँढ़ती रहती हैं और डालियाँ हवामें फैली रहती हैं कि जो कुछ भोजन मिल सके प्राप्त कर लें। हमारा कुछ भोजन तो रोटी, चावल इत्यादिकी तरह ठोस होता है और कुछ दूधकी तरह द्रव होता है। ज़मीन किस क़िस्मका भोजन ज़मीनसे लेती है? कुछ मिट्टीको एक गिलास पानीमें डालकर अच्छी तरह हिलाया जाय तो मालूम होगा कि कुछ हिस्सा पानीपर तैरता रहता है और कुछ गिलासकी तहमें बैठ जाता है। यदि इस पानीको छाना जाय तो पानीपर तैरनेवाला हिस्सा और तहमें बैठा हुआ भाग अलग हो जाता है। छना हुआ पानी बिल्कुल साफ़ मालूम होता है। यदि इसे एक कटोरीमें रखकर गरम किया जाय और सब पानी उड़ा दिया जाय तो कटोरीमें एक सफेद पदार्थ बाकी बच रहता है। यह पदार्थ कहाँसे आया? यह वह पदार्थ है जो पानीने मिट्टीसे प्राप्त किया है। इससे सिद्ध होता है कि मिट्टीमें दो क़िस्मकी चीज़ें पाई जाती हैं। एक ऐसी जो पानीमें नहीं घुलती और दूसरी जो पानीमें घुल जाती है। इन दो क़िस्मकी चीज़ोंमेंसे पौधे किस किस्मकी चीज़ें प्राप्त करते हैं? इस बातके देखनेके लिये दो लाल रंग ले लिए जायँ। एक ऐसा जो पानीमें घुल जाता है और दूसरा जो पानीमें नहीं घुलता। पानीमें घुलनेवाले रंगकी जगह ईओसीन और न घुलनेवाले रंगकी जगह कारमाइनका इस्तेमाल किया जाय। कांचके दो गिलास लेकर एकमें कुछ ईओसीन डालकर पानीमें अच्छी तरह घोल ली

जाय। दूसरे गिलासमें कारमाइन डालकर पानीके साथ हिलाया जाता है। दोनों गिलासोंका पानी लाल हो जाता है। एक गिलासका पानी ईओसीनके घुल जानेके कारण लाल है। दूसरे गिलासका पानी इस लिये लाल है कि कारमाइनके बारीक कण पानीमें अधर तैरते रहते हैं। अब गुल मेंहदीके ऐसे पौधे उखाड़कर जिनमें सफेद फूल लगे हों उनकी जड़ोंको अच्छी तरह धो लिया जाय। एक पौधेकी जड़को एक गिलासमें और दूसरे पौधेकी जड़को दूसरे गिलासमें डाल दिया जाय। थोड़ी देरके बाद दोनों पौधोंसे फूलोंको देखनेसे मालूम होगा कि कारमाइनके पानीमें रक्खे हुए पौधेके फूल लाल हो गये हैं। इस प्रयोगसे सिद्ध होता है कि पौधे जड़ों द्वारा मिट्टीसे ऐसी चीज़ोंको पानीके साथ प्राप्त कर सकते हैं जो पानीमें घुल सकें।

यह देखनेके लिये कि पौधे वास्तवमें मिट्टीसे भोजन प्राप्त करते हैं सूरजमुखीके कुछ बीजोंको बो दिया जाय। जब पौधे पांच या छः इंचके हो जायँ तो कुछ पौधोंको उखाड़ लिया जाय और उनकी जड़ोंको धो डाला जाय। अब एक कांचकी बोतलमें भभकेके द्वारा खिंचा हुआ पानी, दूसरीमें मिट्टी मिलानेके बादका छना हुआ पानी भर दिया जाय। इसके पश्चात् बोतलोंमें सूरजमुखीके पौधोंकी जड़ोंको रुई या पट्टेके सहारे इस तरह रक्खा जाय कि पौधे सीधे खड़े रहें। अब बोतलोंको काले कागज़से ढक दिया जाय ताकि जड़ोंतक प्रकाश न पहुँच सके। इस तरहसे हमारे पास तीन तरहके पौधे होंगे :—

(अ) भभकेके पानीमें रक्खे हुए पौधे

(ब) मिट्टीके पानीमें रक्खे हुए पौधे

(स) मिट्टीमें उगते हुए पौधे।

कुछ दिनोंतक सब पौधोंको प्रकाश और हवामें रक्खा रहने दिया जाय। अगर ज़रूरत हो तो बोतलोंको भभके-के पानी या मिट्टीके पानीसे यथानुसार भर दिया जाय और मिट्टीमें उगे हुए पौधोंको सींचता रहा जाय। थोड़े दिनोंके बाद मालूम होगा कि भभकेके पानीमें उगे हुए पौधोंका बढ़ना रुक जाता है। मिट्टीके पानीमें रक्खे हुए पौधे स्वस्थ मालूम होते हैं लेकिन इतने मजबूत नहीं होते जितने कि ज़मीनमें उगे हुए पौधे। इस प्रयोगसे सिद्ध होता है कि पौधे मिट्टीसे जड़ों द्वारा ऐसे पदार्थ प्राप्त करते हैं जो पानीमें घुल जाते हैं। यह चीज़ें क्या हैं?

उन्नीसवीं शताब्दीके आखिरी ज़मानेमें जर्मन वैज्ञानिक लिबिगने यह सिद्ध कर दिखाया कि पौधोंको अपने जीवन निर्वाहके लिये कुछ रासायनिक तत्वोंकी ज़रूरत होती है। जिनके नाम कारबन, हाइड्रोजन, आक्सीजन, नाइट्रोजन, फासफोरस, गंधक, पोटेसियम, केलसियम, मेगनीसियम और लोहा हैं। यदि हम किसी पौधेकी कुछ ताज़ी पत्तियाँ लेकर तोल लें और फिर गरम करें और सुखाकर तोलें तो मालूम होगा कि सूखी हुई पत्तियोंका वज़न ताज़ी पत्तियोंकी अपेक्षा $\frac{1}{10}$ रह गया है। इससे ज़ाहिर होता है कि ताज़ी पत्तियों-में पानीका वज़न सूखी पत्तियोंके वज़नसे लगभग नौ गुना होता है। अगर सूखी हुई पत्तियोंको और गरम किया तो एक काली चीज़ जलकर तैयार होती है। यह कोयला है जो कारबनकी एक क़िस्म है। पौधेके अङ्गमें इस तरह हाइड्रोजन और आक्सीजन और कारबन यह तीन प्रधान तत्व पाए जाते हैं। अगर इस कोयलेको जलाया जाय तो गैसें जलनेकी क्रियाके साथ निकल जाती हैं और केवल थोड़ी-सी राख बाकी बचती है। इस राखमें नाइट्रोजन, फासफोरस, गंधक, पोटेसियम, केलसियम, मेगनीसियम, लोहा इत्यादि होते हैं। छने हुए मिट्टीके पानी और राखमें १५ प्रतिसैकड़ा एक ही क़िस्मके खनिज पदार्थ अथवा तत्व होते हैं। इससे इस अनुमानकी और भी पुष्टि होती है कि पौधोंमें जो खनिज पदार्थ पाए जाते हैं मिट्टी ही से प्राप्त होते हैं। लीबिगके ज़मानेके बाद सूचीमें बोरन और मेंगनीज़की गिनती और बढ़ गई है। इन कुल तत्वोंमेंसे कारबनको छोड़कर (जो हवासे प्राप्त होता है) शेष सब मिट्टीसे प्राप्त होते हैं। यह तत्व पेचीदा संयोगिक पदार्थ मसलन नाइट्रेट्स, फासफेट्स, पोटाश, क्लोराइड्स, सल्फेट्स इत्यादिकी सूरतमें होते और पानीके साथ पौधोंमें पहुँचते हैं।

प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि पौधेको यदि मेगनीसियम या लोहेका भाग न दिया जाय तो उसकी पत्तियाँ पज़मुर्दा सफेद पड़ जाती हैं और हरा पदार्थ न

होनेके कारण शकर या निशास्ता तैयार नहीं होता। केलसियम जो चूनेका एक भाग है पौधोंकी कोष्ठोंकी दीवारोंके लिए अत्यन्त ज़रूरी है। इसकी यथेष्ट मिक़दार न मिलनेसे पौधोंकी बढ़वार कम हो जाती है, जड़-बल कम तैयार होते हैं और आखिर पौधा मर जाता है। केलसियमके अभाव या ज्यादतीमें सफेद धब्बे पड़ जाते हैं और शकरका बनना कम हो जाता है। पौधे मिट्टीमें स्थित नाइट्रेट्ससे नाइट्रोजन प्राप्त करते हैं। यद्यपि हवामें नाइट्रोजन प्रचुर परिमाणमें होता है तथापि हवाकी इस स्वच्छन्द नाइट्रोजनको पौधे इस्तेमाल नहीं कर सकते। कारबन, हाइड्रोजन और आक्सीजनके संयोगिक पदार्थ पृष्ठ तत्वके साथ जब नाइट्रोजन, गंधक और फासफोरस मिलते हैं तो प्रोटीन तैयार होती है। यदि हरे पौधेके लिये इनमेंसे किसी एकको बन्द कर दिया जाय तो बढ़वार रुक जाती है। और पौधा अपने समयसे पहिले ही कालके मुँहमें चला जाता है। यदि नाइट्रोजन अधिक दी जाय तो बढ़वार तेज़ीसे होती है। पौधेसे लम्बी-लम्बी शाखें और बड़ी-बड़ी पत्तियाँ निकलने लगती हैं। यह भी मालूम हुआ है कि पोटेसियमके अभावमें पत्तियाँ मुड़कर बदशकल हो जाती हैं। इनका रंग राख कैसा हो जाता है और पौधे सहज ही बीमार पड़ जाते हैं। यह सब बात लीबिगकी बोस या तीस सालकी खोजका नतीजा है। यदि पौधोंको बोरनकी कुछ मिक़दार प्राप्त न हो तो उनके अन्दरके कोष्ठ पुंज टूटने फूटने लगते हैं और भोजन और पानी ले जानेवाली नलियाँ टूटे फूटे पदार्थके कारण रुक जाती हैं। अमरीकामें प्रयोग द्वारा मालूम हुआ है कि कुछ पौधोंके लिए जस्त भी ज़रूरी है। यह पौधोंकी बढ़वार और हरे पदार्थके बनानेमें सहायक होता है। केलीफोरनियाँमें संतरोंके ऐसे झाड़ोंपर जिनकी पत्तियाँ पीली बदशकल हो जाती हैं कुछ ऐसी दवा छिड़की जाती है जिसमें जस्त होता है। इस दवाके छिड़कनेके पश्चात् जो नई पत्तियाँ निकलती हैं उनमें हरा पदार्थ पाया जाता है। अमरीकाकी प्रयोग शालाओंमें यह भी मालूम हुआ है कि मैंगनीज़ भी पौधोंकी बढ़वारमें मदद देता है।

पौधोंकी बढ़वारपर रासायनिक तत्वोंका प्रभाव देखनेके लिए पौधोंको बड़े-बड़े मर्तबानोंमें रख दिया जाता है जिसमें पानीमें घुली हुई रासायनिक चीज़ें होती हैं। इन घोलोंको जल-खेती-घोल (संवर्धक घोल) कहते हैं। इनमेंसे कुछमें वह सब तत्व होते हैं जो पौधोंके स्वाभाविक जीवनमें सहायक होते हैं। कुछमें तुलनाके लिये एक-एक करके उन तत्वोंको निकाल दिया जाता है जिनका प्रभाव मालूम करना होता है। प्रयोग किए जानेवाले पौधोंको बारी-बारीसे स्वच्छ रेतमें उगाया जाता है जिसे जल-खेती-घोलसे सींचा जाता है।

किसानोंको पौधे उगानेके लिए मिट्टीमें कुछ पदार्थ मिलाने पड़ते हैं। इन पदार्थोंको खाद कहते हैं। खादें मुख्यतः नाइट्रोजन, फासफोरस और पोटाशके संयोगिक पदार्थ हैं। पोटाश, शकर और पृष्ठ तत्व बनानेमें मदद देते हैं। फासफेट्स पौधोंकी बढ़वार और मुख्यतः अच्छे फलोंके तैयार करनेमें मदद देते हैं। नाइट्रेट्स पत्तियोंके लिए ज़रूरी है। बहुत कर इन्हीं चीज़ोंको पौधे मिट्टीसे लेते हैं। अतएव फसल काटनेके बाद मिट्टीमें इन पदार्थोंका मिलाना ज़रूरी है। गोबर, लीद इत्यादिकी खाद इसी हेतु खेतोंमें दी जाती है। कभी-कभी गोबर और लीदके साथ-साथ मसनूई खादोंका भी प्रयोग किया जाता है। पोटेसियमकी कमीको दूर करनेके लिए पोटेसियम सलफेट इस्तेमाल किया जाता है। फासफेट्सकी कमीको दूर करनेके लिए सूपर फासफेट आफ लाइम, बेसिकस्लेग या हड्डियाँ, और नाइट्रोजनकी कमीको दूर करनेके लिये नाइट्रेट आफ सोडा या सलफेट आफ एमोनिया इस्तेमाल किया जाता है। कुछ पौधे किसी पदार्थको और कुछ किसीको अधिक लेते हैं। इसलिए किसान लोग बदलकर फसल बोते हैं ताकि खेतमें एक किस्मके पौधोंके बाद दूसरी किस्मके पौधे लगाए जायँ जिनकी आवश्यकताएँ पहिलेके पौधोंसे विभिन्न हैं।

प्रकृतिमें फसलें ज़मीनसे काटकर अलग नहीं कर दी जातीं। यह मरकर मिट्टीमें बहुत कुछ उन पदार्थोंको मिला देती हैं जिनको उन्होने मिट्टी ही से प्राप्त किया था। प्राकृतिक अवस्थामें भी कुछ पौधे मिट्टीके बहुमूल्य पदार्थोंको चूसकर उसे कमज़ोर कर देते हैं। इस हेतु ऐसे कुछ पौधोंके बीज परदार या रुएँदार होते हैं और इस तरकीबसे दूर-दूर जाकर गिरते हैं और अनुकूल अवस्थामें पौधे

बनते हैं जहाँ उनके लिए नई मिट्टी मिलती है। कुछ पौधे अन्य प्रकारसे अपना स्थान बदलते रहते हैं। यह सब फसलोंके अदल बदल करनेकी प्राकृतिक विधि है। कुछ पौधे ऐसे भी हैं जो कुदरती ढंगपर एक अनोखी रीतिसे खाद प्राप्त करते हैं। दलदली स्थानके कुछ पौधोंमें नाईट्रोजनकी कमी होती है। अतएव इन पौधोंमें ऐसी तरकीबें पाई जाती हैं जिनकी सहायतासे यह इस कमी-को पूरा कर लेते हैं। इस मतलबके लिये इस क़िस्मके पौधोंमें कीड़ों को पकड़ने उन्हें, मारने उनके रसको चूसने और खादकी तरह अनेक उपयोग करनेकी शक्ति होती है।

अन्य भी कुछ पौधे ऐसे हैं जो नाइट्रोजनसे खाली ज़मीनमें अच्छी तरह बढ़ते हैं। यह फली कुटुम्बके पौधे हैं मसलन मटर, सेम सन इत्यादि। सेमके पौधेको ज़मीनसे खोदनेपर जड़ोंपर छोटी-छोटी गाँठें दिखाई देती हैं। इन गाँठोंमें बहुतसे कीटाणु होते हैं जो अपना भोजन सेमके पौधेसे प्राप्त करते हैं। इस उपकारके बदले यह कीटाणु हवाकी नाइट्रोजनसे पौधेके लिये नाइट्रेट्स तैयार करते हैं। ज़मीनको ताकतवर और उपजाऊ बनानेके लिये किसान अपने खेतमें सनकी फसल उगाता है। इस फसलको काटनेके बदले खेतमें जोत देता है और इस तरहसे अपने खेतमें नाईट्रोजनके ऐसे संयोगिक पदार्थ मिला देता है जिनको पौधोंने हवासे तैयार किया था।

पौधोंकी इस प्राकृतिक क्रियाको पेश नजर रखकर इस बातका प्रयत्न किया गया कि हवाकी नाइट्रोजनको किसी तरहसे काममें लाया जाय। किन्तु नाइट्रोजन एक निष्क्रिय तत्व होनेके कारण आसानीसे किसी तत्वसे युक्त नहीं होता। इसे हम एक ऐसे निरुत्साही बालककी उपमा दे सकते हैं जो दूसरे बालकोंके साथ खेलनेसे झेंपता है। परन्तु कभी-कभी इस बालकको भी लाड़ प्यारसे खेलनेके लिये उद्यत किया जा सकता है। बरसों रसायनज्ञोंने इसका प्रयत्न किया कि नाइट्रोजन और अन्य तत्वोंके मिलनेका कोई सस्ता नुस्खा हाथ लग जाय लेकिन उनका परिश्रम निष्फल हुआ। आखिर जर्मनीके रसायनके प्रोफेसर डाक्टर हाबर (Dr. Haber) के हाथ यह नुस्खा लगा। उसने नाइट्रोजन मिलानेका तरीका मालूम कर लिया और अब हवाकी नाइट्रोजन और पानीकी हाइड्रोजनको मिलाकर कारखानोंमें बड़े पैमानेपर एमोनिया तैयार की जाती है। जब नाइट्रोजन और हाइड्रोजन मिश्रित की जाती हैं तो उनसे कोई संयोगिक पदार्थ नहीं बनता। प्रोफेसर हाबरने बताया है कि इस मिश्रणको भली भांति दबाकर ऐसी गरम नलियोंसे भेजा जाय, जिनमें कुछ विशेष रासायनिक पदार्थ होते हैं तो यह दोनों तत्व संयुक्त होकर एमोनिया बनाते हैं। डाक्टर हाबरके इस प्रशंसनीय कार्यको सराहना किये बिना हम नहीं रह सकते क्योंकि आपने हमें बहूपयोगी नाइट्रेट्स-के अभावके डरसे सदाके लिये बचा लिया।

लघुरिक्थ सारिणीका उपयोग

[ले० श्री ओंकारनाथ शर्मा]

चार अंकोंकी लघुरिक्थ सारणी विज्ञान परिषद् द्वारा प्रकाशित "विज्ञान" और "वैज्ञानिक परिमाण" में छप चुकी है, और पूर्ण रूपसे "मिस्त्रीकी नोटबुक" में भी जो विज्ञानके अंकोंमें प्रकाशित हो रही है छप चुकी है। इसके अतिरिक्त यह चार पृष्ठकी पुस्तकके रूपमें अंग्रेजीमें छपी हुई भी सब पुस्तक विक्रेताओंके यहाँसे मिल सकती है। पाठकोंको चाहिये कि इस लेखका अध्ययन करते समय उसे अपने सामने रखें। साधारण कामोंके लिये चार अंकोकी सारणी ही अधिक सुविधाजनक होती है और विशेष कामोंके लिये ७ अंकों तककी सारणी मिल सकती है। यहां हम ४ अंकोंकी सारणीके प्रयोग तक ही सीमित रहेंगे।

सारणीको देखनेसे पता चलता है कि उसमें केवल लघुरिक्थके अपूर्ण भाग ही दिये हैं और पूर्ण भागोंको

छोड़ दिया है क्योंकि वे तो निगाहसे ही जाने जाते हैं। सारणीको देखनेसे यह भी मालूम होता है कि १ से लेकर ९ तककी संख्यायें भी छोड़ दी गई हैं क्योंकि उनके अपूर्ण भाग भी वे ही हैं जो कि उनकी दशगुणी संख्या १०, २०, ३०, ४०, ५० आदिके। बायें हाथ खड़े कोष्टकमें संख्याओंके प्रथम दो अंक दिये हैं। और उसके बादके १० खड़े कोष्टकोंमें संख्याओंके अपूर्ण भाग दिये हैं, जिनके तीसरे अंक ऊपरके आडेकोष्टकमें क्रमसे दिये हैं। और दाहिनी तरफके ९ खड़े कोष्टकोंमें चौथे अंकका अन्तर दिया है। जिसका उपयोग आगे चलकर बताया जायगा। इस प्रकारसे इन सारणीयोंमें १० से लेकर ९९ (प्रथम दो अंक) तकके लघुरिक्थ चार अंकोंमें दिये हैं।

एक सार्थक अंकवाली संख्या का लघुरिक्थ मालूम करना

उदाहरण:—३ का लघुरिक्थ मालूम कीजिये। सारणी देखनेपर आपको मालूम होगा कि वह १० से आरम्भ होती है लेकिन नीचे चलकर बायें हाथके कोष्टकमें ३० की संख्या मिलती है और उसके सामने ही अगले (दूसरे) कोष्टकमें ४७७१ संख्या है जो कि ३० के लघुरिक्थका अपूर्ण भाग है, और वही ३ का भी हो सकता है। और निगाहसे हम मालूम कर सकते हैं कि उसका पूर्ण भाग ० है क्योंकि ३ की संख्यामें एक ही सार्थक अंक है। अतः ३ का लघुरिक्थ ०·४७७१ हुआ।

दो सार्थक अंकोंवाली संख्याका लघुरिक्थ मालूम करना

उदाहरण:—५४ का लघुरिक्थ मालूम कीजिये। सारिणीके देखनेसे पता चलेगा ५४ के सामने ही दूसरे खड़े कोष्टकमें ७३४२ की संख्या लिखी है जोकि ५४ के लघुरिक्थका अपूर्ण भाग है। और निगाहसे जांचनेपर हम मालूम कर सकते हैं कि इसका पूर्ण भाग १ है, इस लिये हम कह सकते हैं कि लघु० ५४ = १.७३४२.

तीन सार्थक अंकोंवाली संख्या का लघुरिक्थ मालूम करना

उदाहरणः—.०६७८ का लघुरिक्थ मालूम कीजिये पहिले ६७ को बायें हाथके पहिले खड़े कोष्टकमें ढूँढ़िये, और फिर ऊपरवाले आडे कोष्टकोंमें ८ के अंकको ढूँढ़िये जब आठका अंक मिल जावे तब उसके नीचे उतरना शुरू कर दीजिये और जब पहिले खड़े कोष्टके ६७ अंकके सामने आजावें तब ठहर जाइये, उस स्थानपर ८३१२ लिखा होगा। यही ६७८ वाले सार्थक अंकोंकी सब संख्याओंके लघु० का अपूर्ण भाग है। और नियमके अनुसार .०६७८ के लघु० का पूर्ण भाग २ है इसलिये लघु ·०६७८ = $\bar{2}$.८३१२

चार सार्थक अंकोंवाली संख्याका लघुरिक्थ मालूम करना

उदाहरण:—१२३४ का लघुरिक्थ मालूम कीजिये।

सर्व प्रथम १२३ का लघुरिक्थ पिछले उदाहरणमें बताई तरकीबके अनुसार मालूम कर लीजिये। लघु० १२३ = २.०८९९ और १२३० का लघु० = ३.०८९९; और १२३४ का लघु० इससे कुछ ही अधिक होगा। अथवा दूसरे शब्दोंमें यों कहना चाहिये कि चौथे अंकके लिये तीन अंकोंके लघु०में कुछ जोड़ना चाहिये। इसलिये, चौथे अंकके लिये जो कुछ भी जोड़ना आवश्यक होता है, वह सारणीके दाहिने हाथके ९ खड़े कोष्टकोंमें दिया है। इसलिये अंकोंको दूसरी श्रेणीके ऊपरके आडे कोष्टकमें ४ का अंक ढूँढ़िये और जहां वह अंक मिले उससे नीचेको उतरिये जबतक कि बायें हाथके खड़े कोष्टकवाले १२ के अंकके सामने आजावें। वहां आपको १४ का अंक मिलेगा जिसका असली अर्थ है ·००१४। इसी संख्याको यदि १२३० के लघु० में जोड़ दें तो १२३४ का लघु० बन जावेगा।

∴ लघु० १२३४ = ३·०८९९ + ·००१४

= ३.०९१३

यह बात याद रखनेकी बड़ी जरूरी है, इस लिये हम एक और उदाहरण इसी प्रकारका संक्षेपमें समझाते हैं।

उदाहरण:—६५६७ का लघुरिक्थ मालूम कीजिये। सारणीसे हमें मालुम हो जाता है कि ६५६० का लघु०

=३.८१६९। और सारणीकी दूसरी श्रेणीमें ७ के अंकके नीचे, जो कि चौथा अंक है, और पहिले और दूसरे अंक ६५ के सामने हमें ५ का अंक मिलता है जिसका असली अर्थ है '०००५, इसको ३.८१६९ में जोड़नेसे ३.८१७४ हो जाता है, जो कि ६५६७ का लघुरिक्थ है।

लघुरिक्थ सारणीको देखनेसे मालूम होगा कि १० से लेकर १९ तककी संख्याके सामने दाहिने हाथकी तरफ अन्तरके अंकोंकी श्रेणीमें दो-दो पंक्तियां दी हैं।

जब कि संख्याका तीसरा अंक, जिसका कि लघुरिक्थ ऊपरकी पंक्तिसे अन्तरका अंक लेना चाहिये और जब कि तीसरा अंक ५ या उससे अधिक हो तब नीचेवाली पंक्तिसे अन्तरका अंक लेना चाहिये। यह सब सारणीकी लिखावटके तरीक़ेसे ही विदित हो जाता है। अन्तरकी ऊपरवाली पंक्ति ० से ४ तकके तृतीय अंकोंके अपूर्णांकों-के सामने है और नीचेवाली पंक्ति ५ से लेकर ९ तकके तृतीय अंकोंके अपूर्णांकोंके सामने है।

लघुरिक्थ फल और उनका उपयोग

लघु० सारिणीकी सहायतासे किसी भी संख्याका लघु० निकालना तो आपने सीख ही लिया; लेकिन सारणीकी सहायतासे यह भी जानना आवश्यक है कि किसी भी दिये हुए लघु० का मूल अंक अर्थात् लघु० फल (Anti Logarithm) क्या है। वैसे तो लघु० जाननेकी जो तरकीबें ऊपर बताई जा चुकी हैं उनके अनुसार उल्टा चलनेसे भी मूल अंक मिल सकता है।

उदाहरण:—३'८३१८ किस संख्याका लघु० है ?

अब सारणीमें हमें ढूँढ़ना चाहिये कि '८३१८ से मिलती झुलती कौन सी कमतीकी तरफ अपूर्ण भागकी संख्या है; वह हमें ६७ के सामने और ९ के बीच ८३१२ मिलती है, जो हमारे लघु० के अपूर्ण भागसे ६ कम है, और यह ६ हमें लघु० सारणीकी दूसरी श्रेणीसे ९ के नीचेवाले खड़े कोष्टकमें मिलते हैं अतः हमारी इष्ट संख्याके प्रथम दो अंक ६७ तो बायें हाथके खड़े कोष्टकमें मिले, तीसरा अंक ऊपरके आड़े कोष्ठकमें ८ मिल गया और चौथा अंक ९, सारणीकी दूसरी श्रेणी जिसमें अन्तरके अंक हैं ऊपरकी तरफ ९ मिल गया इस प्रकार हमारी संख्या ६७८९ बन गई। अब रहा दशमलव विन्दु के स्थानका निर्णय। इसके लिए हमें देखना चाहिये कि लघु० के पूर्ण भागमें कौनसा अंक है। यहांपर ३ का अंक है, अतः नियमानुसार ४ अंकोंके बाद दशमलव विन्दु होना चाहिये। इस लिये हमारी इष्ट संख्या ६७८९.० है। इसी प्रकार और भी समझ सकते हैं। इस प्रकार लघु० से संख्या जानना व्यवहारमें बड़ी दिक़्क़तका काम है। इस लिये सुभीतेके लिये लघु० फल (Anti Logarithms) की सारणीका उपयोग किया जाता है। यह चार अंकोंकी लघुरिक्थ सारणीके तीसरे और चौथे पृष्ठपर रहती है।

जब कि हमें लघुरिक्थसे उसकी मूल संख्या मालूम करनी होती है तब केवल लघुरिक्थके अपूर्व भागपर ही विचार किया जाता है और उसका पूर्ण भाग तो केवल दशमलवके स्थान निर्णयमें ही सहायक होता है।

यदि आप लघुरिक्थ फलकी सारणीको देखेंगे तो मालूम होगा '००से लेकर '९९ तककी संख्यायें ही बायें हाथके खड़े कोष्टकमें दी गई हैं जो कि लघुरिक्थके अपूर्ण भागके प्रथम दो अंक है और तृतीय और चतुर्थ अंक लघुरिक्थ सारणीकी भांति ऊपरके आडे कोण्टकोंमें दिये हैं।

निम्नलिखित उदाहरणोंपर विचार करनेसे इस सारणीका उपयोग भली भांति समझमें आ जावेगा।

उदाहरण १—१'३६ कौनसी संख्याका लघुरिक्थ है ?

सारणीको देखनेसे मालूम होगा कि '३६के सामने और उसीके पड़ौसमें २२९१ संख्या लिखी हुई है। जिसका मतलब यह है कि २२९१ संख्याके लघुरिक्थका अपूर्ण भाग '३६ है और दिये हुये लघुरिक्थके पूर्ण भाग, जो कि १ है, को देखनेसे मालूम होता है कि मूल संख्या-में दशमलव दो अंकोंके पीछे होना चाहिये अतः मूल संख्या २२.९१ मिश्रित हो गई।

उदाहरण २:—वह संख्या बताइये जिसका लघुरिक्थ २.३१२० हो।

लघुरिक्थ फलकी सारणीके बायें हाथके खड़े कोष्टक में पहिले देखिये कि .३१ कहां है और फिर वहांसे आडे

चलिये जब तक कि २ संख्याके खड़े कोष्टकमें न पहुँच जावें, वहां आपको २०५१की संख्या मिलेगी। यही उस संख्याके अंक हैं जिनके लघुरिक्तका अपूर्णा भाग .३१२ है। अब दिये हुये लघुरिक्थके पूर्ण भागमें २का अंक है, इस लिये मूल संख्यामें दशमलवका चिन्ह २ + १ = ३ अंकोंके बाद होगा। इस प्रकारसे दिये हुये लघुरिक्थकी मूल संख्या २०५'१ होगी।

उदाहरण ३:—वह संख्या बताइये जिसका लघुरिक्थ ०'२२५६ हो?

सबसे पहिले लघुरिक्थ फलकी सारणीके, सर्व प्रथम, बायें हाथवाले खड़े कोष्टको देखिये जहां उसमें '२२की संख्या मिले, वहांसे दाहिनी तरफको आडी पंक्तिमें चलिये और जब ५ संख्याके खडे कोष्ट पहुँचें तब उसमें १६७९ संख्या मिलेगी। यह वह संख्या है जिसके लघुरिक्तका अपूर्ण भाग '२२५ है, लेकिन हमारे दिये हुये लघुरिक्तका अपूर्ण भाग '२२५६ है, इसलिये हमें दाहिने हाथकी तरफवाली अंकोंकी श्रेणीमें देखना चाहिये कि ६के नीचे और '२८के सीधमें कौनसा अंक है? हमें वहां २ मिलता है, जिसे हमें पूर्व प्राप्त संख्या १६७९में जोड़ देना चाहिये जिससे लघुरिक्थके चौथे अंक ६का अन्तर पूरा हो जावे। इस प्रकारसे हम कह सकते हैं कि '२२५६, १६७९ + २ = १६८१के लघुरिक्थका अपूर्ण भाग है। अब दशमलव विन्दुके स्थान निर्णयके लिये हम कह सकते हैं कि, जब हमारे दिये हुये लघुरिक्थके पूर्ण भागमें कोई भी अंक नहीं तब मूल संख्यामें ० + १ = १ अंकके बाद दशमलव होगा।

अर्थात् ०'२२५६, १'६८१का लघुरिक्थ है।

उदाहरण ४:—२'२९४९ किस संख्याका लघुरिक्थ है।

पूर्व उदाहरणकी विधिसे हम जान सकते हैं '२९४, १९६८से लघुरिक्थका अपूर्ण भाग है, और इसके चतुर्थ अंकके लिये हमें ४ और जोड़ना पड़ेगा, इस प्रकारसे, मूल संख्याके अंकोंका क्रम १९७२ होगा। इस दिये हुये लघुरिक्थका पूर्ण भाग २ है इसलिए पूर्वोक्त नियमोंसे यह स्पष्ट है कि हमारी इष्टमूल संख्या एकसे कम अर्थात् भिन्नके रूपमें है और उसके दशमलव विन्दुके बाद २−१ = १ शून्य होगा। अर्थात् $\overline{२}$.२९४९, ०.०१९७२ का लघुरिक्त है।

लघुरिक्थकी सहायतासे दो या अधिक संख्याओं को गुणा करना

नियम:—

दो या अधिक संख्याओंको आपसमें गुणा करनेके लिये उनके लघुरिक्थोंको जोड़ देना चाहिये, और उनके योगफलका लघुरिक्थ फल निकाल लेना चाहिये जो अपना इष्ट गुणनफल होगा।

निम्नलिखित उदाहरणोंका बारीकीसे अध्ययन करनेसे गुणा करनेकी विधि स्पष्ट हो जावेगी। लघुरिक्थोंको लिखते समय ध्यान रखना चाहिये कि उनके दशमलव विन्दु एक सीधमें एकके ऊपर एक आजावें जैसा कि साधारण दशमलवके जोड़में होता है।

उदाहरण:—१—७.२ और ६२.५को लघुरिक्थ द्वारा गुणा कीजिये।

लघु० ७.२ = ०.८५७३

लघु० ६२.५ = १.७९५९

गुणन फलका लघु० = २.६५३२ = योग फल

∴ गुणन फल = २.६५३२का लघु० फल

= ४५०

उदाहरण २:—२३.०७ को ०'१३५४से लघुरिक्थ द्वारा गुणा करो।

लघु० २३.०७ = १.३६३०

लघु० ०.१३५४ = $\overline{१}$.१३१५

गुणन फलका लघु० = ०.४९४५ = योग फल

यहांपर ध्यान देनेकी बात है कि दोनोंको जोड़ते समय नीचे−१, ऊपर क + १को काट देता है। इसलिये अब गुणनफलका लघुफल = ३१२३ जिसमें दशमलव विन्दु एक अंकके बाद होगा।

सूचना:—लघुरिक्थोंको जोड़ते समय दशमलव भाग तो कोई कठिनाई उपस्थित नहीं करेगा क्योंकि वह सदैव धन रहता है लेकिन पूर्ण भागमें ऋण और धन दोनों ही प्रकारकी संख्यायें रहती हैं, जिनका सदैव बीजयोग (Algebraic Sum) मालूम करना चाहिये।

उदाहरण:—०.०३०५६ को ०.४१०५से लघुरिक्थ द्वारा गुणा कीजिये।

लघु० ०.०३०५६ = $\bar{2}$.४८५२

लघु० ०.४१०५ = $\bar{1}$.६१३३

गुणन फलका लघु० = $\bar{2}$.०९८५. योग

यहां ध्यान देनेकी बात है कि लघुरिक्थके अपूर्ण भागके योग फलसे १ हासिल मिलता है, जो कि धन है। उधर पूर्ण भागका योग ३ है अतः १ हासिल मिलाने से, पूर्ण भागमें २ रह जाता है।

$\bar{2}$.०९८५का लघु० फल ·०·०१२५४ है जो कि दी हुई दोनों संख्याओंका गुणनफल है।

आवश्यक सूचना—यहां यह बता देना जरूरी है कि ४ अंकोंकी सारणीसे केवल ४ सार्थक अंकोंमें ही उत्तर निकलता है। सही उत्तर तो ४से अधिक अंकोंमें भी हो सकता है लेकिन हमारे औद्योगिक कामोंमें ४ अंकों तक सही नतीजा निकाल लेना काफी होता है।

लघुरिक्थकी सहायतासे भाग देना

नियम—भाज्यके लघुरिक्थमेंसे भाजकका लघुरिक्थ घटा देनेसे भजन फलका लघुरिक्थ शेष रह जाता है, और उसका लघुरिक्थ फल, भजन फल होता है।

उदाहरण १:—९६ को १६के लघुरिक्थकी सहायता से भाग दीजिये।

लघु० ९६·० = १·९८२३

लघु० १६·० = १·२०४१

लघु० भजनफल = ०·७७८२ शेष

०·७७८२का लघु० फल = ६

∴ ९६ ÷ १६ = ६

सूचना—जब दो लघुरिक्थोंको घटाया जावे तब उनका बीज अंतर (algebraic difference) मालूम करना चाहिये। और जब कि घटाया जानेवाला लघु० जिसमेंसे वह घटाया जा रहा हो, से बड़ा हो अथवा जब पूर्ण भाग ऋण हो, तब, पहिले अपूर्ण भागको घटाना चाहिये और फिर नीचेवाले पूर्ण भागके ऋणके चिन्हको धनमें और यदि धन हो तो धनके चिन्हको ऋणमें बदलकर पूर्ण भागको घटाना चाहिये। यह नीचेके उदाहरणोंसे अधिक स्पष्ट हो जावेगा।

उदाहरण २:—०११९३को लघु०की सहायतासे २.३से भाग दीजिये।

लघु० ·०११९३ = $\bar{2}$.०७६६

लघु० २.३ = ०·३६१७

भजन फलका लघु = $\bar{3}$.७१४९ शेष

∴ भजन फल = लघु० फल $\bar{3}$.७१४९ = ·००५१८७

सूचना—उपरोक्त उदाहरणमें जब हम दशमलवके पहिले अंकको घटाने लगते हैं तब हमें मालूम होता है कि ० मेंसे ३ नहीं घटाया जा सकता इसलिये $\bar{2}$ मेंसे १ उधार लेकर, ० का १० बना लिया, इस प्रकार १० मेंसे ३ निकालने पर ७ बचा। अब क्योंकि $\bar{2}$ मेंसे + १ लिया गया है, इसलिये —८का मान—३ हो जायगा, अतः शेषमें $\bar{3}$ बचेगा। अर्थात् दोनों लघु०का अन्तर $\bar{3}$.७१४९ हो गया।

कई लोगोंको इस प्रकारकी बाकी निकालते समय उधार लेकर वापस देनेकी आदत होती है इसलिये वे यहां ऐसा समझ सकते हैं कि १०मेंसे ३ निकालनेके बाद, लिया हुआ १, ०.३६१७ की ० को वापस देना चाहिये, इसलिये ० का + १ हो जाता है, लेकिन बीज अन्तर निकालते समय चिन्ह बदलना पड़ता है अतः फिर भी बीज अंतर $\bar{3}$ ही रह जाता है।

उदाहरण ३:—६७.९को ·०००८७६५से लघु०की रीतिसे भाग दीजिये।

लघु० ६७.८ = १.८३१२

लघु० ·०००८७६५ = $\bar{4}$.९४२७

भजन फलका लघु० = ४.८८८५

∴ भजन फल = लघु० फल ४.८८८५ = ७७३६०

इस उदाहरणमें भी दशमलवके प्रथम अंक मेंसे घटाते समय १ उधार लिया गया है जिससे, ऊपरके एककी जगह शून्य होगया। अतः ० मेंसे ४ निकालते समय, ४ का चिह्न भी बीज गणितके नियमानुसार बदला गया जिससे जोड़नेपर + ४ उत्तर में आ गया।

घात क्रिया

नियमः—जिस संख्याका किसी भी अंकसे घात करना हो उस संख्याके लघु० को उस अंकसे गुणा कर

देना चाहिये, गुणन फलका लघु० फल, हमारी इष्ट संख्या होगी ।

उदाहरण १:—लघु० की रीति से $८^३$ का मान निकालिये ।

लघु० ८ = ०.९०३१

$\overline{\quad ३}$

लघु० $८^३$ = २.७०९३

और इसका लघु० फल = ५१२.१

∴ $८^३$ = ५१२

उदाहरण २:—लघु की रतिसे $१.१७^५$ का मान बताओ ।

लघु० १.१७ = ०·०६८२

$\overline{\quad ५}$

लघु० $१.१७^५$ = ०.३४१०

और इसका लघु० फल = २.१९३

∴ $१.१७^५$ = २.१९३ २.१९३

उदाहरण ३:—लघु० की रीतिसे $४०^{१.७५}$ का मान बताओ ।

लघु० ४० = १.६०२१

१.७५

८०१०५

११२१४७

१६०२१

लघु० $४०^{१.७५}$ = २.८०३६७५

और इसका लघु० फल = ६३६.३

∴ ४० १.७५ = ६३६.३

उदाहरण ४:—$.७८५४^४$ का मान बताइये ।

लघु० .७८५४ = $\bar{१}$.८९५१

$\overline{\quad ४}$

लघु० $.७८५४^४$ = $\bar{१}$.५८०४

इसका लघुफल = ३८०६

∴ $.७८५४^४$ = ०.३८०६

सूचनाः—अपूर्ण भाग ('५८०४) को ४ से गुणा करते समय हमें ३ हासिलके मिलते हैं जो कि धन है । और पूर्ण भाग, जो कि ऋण है, को ४ से गुणा करनेपर −४ मिलते हैं । इस लिये + ३ + (−३) = −१, इसलिये हमारे उत्तरके लघु० का पूर्णभाग $\bar{१}$ हुआ यह याद रखना चाहिये कि अपूर्ण भाग सदैव धन ही होता है ।

राशियोंका मूल निकालना

राशियोंका मूल निकालनेकी क्रिया भी लघु० की सहायतासे बड़ी आसानीसे हो सकती है, जिसकी विधि निम्नलिखित नियममें दी गई है ।

नियम:—जिस राशिका मूल निकालना हो उसके लघु० को घातांकसे भाग दे देना चाहिये, इसका जो भाग फल होगा वह मूलका लघु० होगा ।

उदाहरण १:—१६०० का वर्ग मूल लघु० की सहायतासे निकालिये ।

लघु० १६०० = ३.२०४१

∴ $२\sqrt{१६००}$ = ३.२०४१ ÷ २

= १ ६०२०५

अर्थात् = १.६०२१

लघु० फल १ ६०२१ = ४०

उदाहरण २:—१२५ का घनमूल लघु० की सहायतासे मालूम कीजिये ।

लघु० १२५ = २ ०९६९

लघु० $३\sqrt{१२५}$ = २.०९६९ ÷ ३

= ०.६९८९७

अर्थात् = ०.६९९०

और लघु० फल ०.६९९० = ५०००

∴ $३\sqrt{१२५}$ = ५

उदाहरण ३:—४०९६ का षष्ठ मूल लघु० की सहायतासे मालूम कीजिये ।

लघु० ४०९६ = ३.६१२३

लघु ६० $\sqrt{४०९६}$ = ३·६१२३ ÷ ६

= ०.६०२०५

अर्थात् = ०.६०२१

लघु० फल = ०,६०२१ = ४

∴ $६\sqrt{४०९६}$ = ४

उदाहरण ४—'०८४१का वर्गमूल लघु०की सहायतासे मालूम कीजिये ।

लघु० ·०८४१ = $\bar{२}$.९२४८

∴ लघु० $\sqrt{.०८४१}$ = $\bar{२}$.९२४८ ÷ २

= $\bar{१}$.४६२४

लघु० फल $\bar{१}$.४६२४ = २९००

∴ $\sqrt{·०८४१}$ = ·२९

आपको याद होगा कि लघु०का पूर्ण भाग चाहे ऋण हो लेकिन अपूर्ण भाग सदैव धन ही होता है, इसलिये जब कि मूल निकालनेके प्रश्नोंमें ऋण, पूर्ण भाग घातांक से पूरा-पूरा विभाजित हो जाता है तब तो कोई कठिनाई नहीं पड़ती, क्योंकि दोनों भागोंका अलहदा भाग फल निकाल लिया जा सकता है, जैसा कि ऊपरके उदाहरणोंमें लेकिन जब कि ऐसा नहीं हो सकता उस समय उसे मतलबके लायक बनानेके लिये थोड़ीसी तबदीली करनी पड़ती है, जो कि नीचेके उदाहरणसे स्पष्ट हो जायगा।

उदाहरण ५:—५$\sqrt{·००३२४}$का लघु०की रीतिसे मान बताइये।

लघु० .००३२४ = $\bar{३}$.५१०५

∴ लघु० ५$\sqrt{.००३२४}$ = $\bar{३}$.५१०५ ÷ ५

= $\bar{५}$ + २.५१०५ ÷ ५

= $\bar{१}$ + ·५०२१

लघु० फल $\bar{१}$.५०२१ = .३१७८

सूचना:—ऊपरके उदाहरणमें $\bar{३}$.५१०५को ५से भाग देना है, यह उसी समय हो सकता है जब कि पूर्ण-भागको ऐसा बना दिया जावे। ऐसा करनेके लिये हमने $\bar{३}$ मेंसे २ निकाल लिया जिससे $\bar{३}$का $\bar{५}$ हो गया।

और साथ ही इस कमीको पूरा करनेके लिये यह +२ लघु०के अपूर्ण भागमें जोड़ दिया, याद रहे कि अपूर्ण भाग सदैव धन ही होता है इसलिये वह २.५१०५ हो गया। इस प्रकारसे $\bar{३}$.५१०५का रूप $\bar{५}$ + २·५१०५ हो गया और उसका मान भी नहीं बदला, इस रूपमें उसे ५के द्वारा आसानीसे भाग दिया जा सकता है।

समीकरणके नियमानुसार यदि किसी संख्यामेंसे कुछ अंश निकाल लें और उतना ही जोड़ लें तो, उसका मान नहीं बदलता। यदि नीचेके उदाहरणोंपर विचार किया जावेगा तो यह बात स्पष्ट हो जावेगी।

$\bar{१}$ = $\bar{३}$ + २; $\bar{१}$ = $\bar{२}$ + १; $\bar{१}$ = $\bar{६}$ + ५; $\bar{२}$ = $\bar{३}$ + १
$\bar{२}$ = $\bar{४}$ + २; $\bar{३}$ = $\bar{८}$ + ५ इत्यादि।

विद्यार्थीको चाहिये कि उपरोक्त उदाहरणको भली भांति सब दलीलों सहित समझ लें क्योंकि इसी प्रकारके उदाहरण आरम्भमें सबसे अधिक कठिनता उपस्थित करते हैं। इसी प्रकारका एक उदाहरण नीचे और दिया जाता है।

उदाहरण ६:—३$\sqrt{·९६९}$का मान बताइये।

लघु० ·९६९ - $\bar{१}$·९८६३

∴ लघु० ३$\sqrt{.९६९}$ = $\bar{१}$.९८६३ ÷ ३

+२ निकालने और जोड़नेपर = $\bar{३}$. + २.९८६३ ÷ ३

= $\bar{१}$.९९५४३

लघु० फल = ·९८९५

∴ ३$\sqrt{.९६९}$ = .९८९५

(क्रमशः)

विषय-सूची

नाड़ी परीक्षा

[ले०—श्री कविराज पुरुषोत्तम देव मुलतानी गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी]

हृदयके प्रत्येक स्पन्दनके साथ कुछ रक्तकी मात्रा धमनियोंमें प्रवेश करती है और इस प्रकार १ मिनटमें ७२ बार रक्तकी कुछ मात्रा धमनियोंमें प्रविष्ट होनेसे और धमनीकी दीवारके लचकीला होनेसे एक प्रकारकी तरङ्ग-सी उत्पन्न हो जाती है। धमनीके इस उतार चढ़ावको अनुभव करनेके कार्यको 'नाड़ी परीक्षा' कहते हैं।

रोगीको ३-४ मिनिट शान्तिसे बिठाकर उसके करतल-को ऊपरकी ओर कलाईको थोड़ासा मोड़कर कलाईपर अंगुष्ट मूलमें होनेवाली धमनीके ऊपर प्रथम तर्जनी फिर मध्यमा और फिर अनामिका तीनों अंगुलियाँ रखकर नाड़ीकी परीक्षा करें। कई बार अंगुलियां रखते ही नाड़ी अधिक तीव्रतासे अनुभव होती है पर थोड़ी देरमें ही वह अपनी साधारण अवस्थामें आ जाती है। जब वह साधारण अवस्थामें आ जाय तभी उसकी परीक्षा आरम्भ करनी चाहिये।

नाड़ी की तीव्रता

सबसे प्रथम नाड़ीकी तीव्रता और मन्दता अनुभव होती है। साधारणतः एक युवक पुरुषमें नाड़ी प्रति मिनिट ७२ बार और युवतीमें ७५से कुछ अधिक चलती है। बालकोंमें अधिक तीव्र होती है। एक वर्ष तककी आयुके बालकमें १२०, ३ वर्षकी आयुके बालकमें १००, ७से १४ वर्ष तककी आयुमें ९० प्रति मिनिट होती है। प्रायः रोगोंके कारण नाड़ी तीव्र हो जाती है। सब ज्वरोंमें विशेषतः पित्तप्रकोपजन्य ज्वरोंमें नाड़ी तीव्र हो जाती है। साधारणतः यह नियम देखा जाता है कि रोगीका जितना डिग्री ताप बढ़ता है उसके साथ-साथ प्रत्येक तापकी डिग्रीके पीछे १० बार नाड़ी भी बढ़ जाती है। श्लेष्म-प्रकोपजन्य ज्वरोंमें यह नियम पूरा-पूरा नहीं लगता उनमें ज्वरको दृष्टिमें रखते हुये नाड़ी जितनी तीव्र होनी चाहिये उतनी नहीं होती। क्षय ज्वर या क्षय रोगकी प्रारम्भिक अवस्थामें नाड़ी कुछ अधिक तीव्र होती है। अतः यदि क्षय रोगके कुछ अन्य लक्षण हैं और रोगीकी नाड़ी निरन्तर प्रतिमिनिट कुछ अधिक चलती हो तो इससे इस रोगका सन्देह और भी बढ़ जाता है। हृदय-पर वसा अधिक संचित होती जाए और हृदयकी मांस-पेशी भी निर्बल होती जायं तो भी नाड़ी तीव्र हो जाती है। तीव्र नाड़ी हृदयकी निर्बलताका सूचक होती है। वातिक नैर्बल्य रोग हो या स्त्रीको हिस्टीरिया रोग हो तो भी नाड़ी तीव्र होती है। शरीरमें किसी प्रकारके जीवाणुओंका विष फैला हुआ हो तो उसका हृदयपर विषैला प्रभाव होनेसे हृदय निर्बल होकर नाड़ी तेज हो जाती है। उदाहरणतः यदि शरीरमें कहीं विद्रधि हो, स्फोट हो, उनमेंसे पूयजीवाणुओं (Strepto & Staphylococci) का विष शरीरमें जाता रहता हो—शरीरके किसी अंगमें—उदाहरणतः गला, गलशुण्डि (Tonsils), आन्त्रपुच्छ (Appendix) गर्भाशय आदि किसीमें शोथ या पाक बनी रहती हो तो नाड़ी तीव्र रहती है। इसी प्रकार पूयमेहका विष शरीरमें फैला हुआ हो तो भी नाड़ी तीव्र रहती है। मद्य, चाय, काफी आदि विषैले पदार्थोंके सेवन करनेवालोंकी भी नाड़ी तीव्र होती है। श्रम करने, काम क्रोध आदि मानसिक आवेशके आ पड़नेसे भी नाड़ी तीव्र हो जाती है। रोगीकी निर्बल अवस्थामें थोड़ा-सा श्रम करनेसे भी नाड़ी तीव्र हो जाती है। लेटनेके बाद सहसा खड़े होनेपर नाड़ी प्रतिमिनिट ४ से ८ तक बढ़ जाती है। किन्तु तुरन्त ही वह अपनी सामान्य अवस्थामें आ जाती है। किन्तु यदि हृदय निर्बल हो तो वह कुछ अधिक देरमें सामान्यावस्थामें आती है और ऐसा हृदय थोड़े श्रमसे या चलने फिरनेसे तेज हो जाता है जिसमें नाड़ी प्रतिमिनिट १६से २४ तक बढ़ जाती है। और श्रमके बाद लिटा देनेपर भी नाड़ीके सामान्यावस्थामें आनेमें ३-४ मिनिटसे अधिक समय लग जाता है। भोजनके बाद सायंकालके समय स्त्रियोंमें आर्तवकालके समय और ४० वर्षकी आयुके पीछे स्त्रियोंमें आर्तवकालकी समाप्तिपर नाड़ी तीव्र हो जाया करती है।

कई बार नाड़ीकी गति अधिक मन्द भी हो जाती है। तीव्र ज्वरोंके बादकी निर्बलतामें जैसे न्यूमोनिया,

टाईफाईडके पीछे नाड़ी मन्द होती है। कामला रोगमें जब पित्तका विषद्रव्य रक्तमें फैला हुआ हो, वृक्करोगमें मधुमेहमें भी नाड़ी मन्द हो जाया करती है। मस्तिष्कमें कोई अर्बुद हो, वातिक आन्तशूल या वातिक आन्त्रगुल्ममें अथवा डिजिटेलिस औषधिके अधिक प्रयोगसे भी नाड़ीकी गति मन्द हो जाती है।

नाड़ीका बल

नाड़ीकी गति जाननेके बाद उसके बलकी परीक्षा करनी चाहिये। नाड़ी जिस बलसे उठकर हाथकी अंगुलियोंपर आघात करती है वही उसका बल कहाता है साधारण व्यक्तिकी नाड़ीको अनुभव करके नाड़ीका बल साधारणसे न्यून हो तो यह हृदयकी निर्बलताका सूचक है। नाड़ीका बल वामक्षेपक कोष्ठ (Left Ventricle) के बलाबलपर निर्भर है। यदि वाम कपाटीका छिद्रावरोध (Mitral Stenon's) हो जिससे रक्त क्षेपक कोष्ठमें न्यूनमात्रामें प्रवेश करे तो रक्तकी मात्राके न्यून होनेसे क्षेपक कोष्ठ (Ventricle) भी निर्बल हो जाता है, और उसका रक्त को आगे फेंकनेका बल भी न्यून हो जाता है। इसके विपरीत यदि महाधमनी कपाटी (Aortic Value) के रुग्ण होनेसे महाधमनी (Aorta) मेंसे रक्त वापस हृदयमें आ जाता हो तो वामक्षेपक कोष्ठमें रक्तकी मात्राके अधिक संचित होनेसे वह आकारमें बड़ा तथा उसकी दीवारें मोटी हो जाती हैं और ऐसी मोटी दीवार वाले क्षेपक कोष्ठके बलपूर्वक रक्तको आगे फेंकनेसे नाड़ीका बल भी बढ़ा हुआ प्रतीत होता है।

नाड़ी का विस्तार

रक्तके नाड़ीमेंसे गुजरते समय नाड़ी स्वभावतः विस्तृत हो जाती है। यदि यह अधिक उठे अर्थात् नाड़ीको हल्कासा दबाकर प्रत्येक स्पन्दनके समय अनुभव करनेसे यह प्रतीत होता है कि नाड़ी रक्तके गुजरते समय फैलती प्रतीत होती है तो नाड़ीका विस्तार बढ़ा हुआ कहा जाता है। यदि हृदय अधिक बलसे रक्तको फेंके अथवा धमनियां अतिशिथिल पड़ी हों तो इन दोनों अवस्थाओंमें धमनी का विस्तार बढ़ा प्रतीत होता । धमनीमें विस्तार बढ़ प्रतीत हो तो यही समझना चाहिये कि धमनियोंमें रक्त अधिक मात्रामें भरा हुआ है। और शरीरके किसी मार्गसे रक्त निकलनेका भय है। नासा, गुदा या मस्तिष्क किसीमें भी रक्तस्राव हो सकता है। तीव्र ज्वरोंमें नाड़ी का विस्तार प्रतीत होता है। नाड़ीका विस्तार किस प्रकार का है यह भी देखना चाहिये। नाड़ी स्वभावतः सहसा उठकर क्षण भर विस्तृत रहकर फिर गिर जाती है। यद्यपि उतनी जल्दी नहीं गिरती जितनी जल्दी उठती है और उसके गिरते हुये एक हल्का-सा उठाव पुनः प्रतीत होता है। इस प्रकार प्रत्येक नाड़ीके विस्तारमें एक प्रारम्भिक, एक मुख्य और एक गौण उभार (उठाव) होते हैं। पहला उठाव वामक्षेपक कोष्ठ के संकोचके कारण और दूसरा महाधमनी कपाटीके सहारा बन्द हो जानेके कारण वहांसे प्रतिक्षिप्त होकर लौटे हुये रक्तके दबावके कारण उत्पन्न होता है। साधारणतः नाड़ी सहसा नहीं गिरती। यदि नाड़ी सहसा उठकर सहसा ही गिरती प्रतीत हो या सहसा उठनेके बाद उसे गिरनेमें पर्य्याप्त देर लगे तो यह रोगका सूचक है। यदि नाड़ी सहसा उठकर सहसा ही गिर जाये तो समझना चाहिये कि महाधमनी कपाटीमें कुछ रक्त वापस चला जाता है। यदि नाड़ी धीरे धीरे उठे और विस्तार देर तक स्थिर रहे और धीरे धीरे गिरे तो महाधमनी कपाटीके छिद्रमें अवरोधका संदेह करना चाहिये।

यदि धमनियोंमें अधिक रक्त भरा हुआ हो तो नाड़ी का विस्तार (Volume) बढ़ जाता है। इसके विपरीत यदि शरीरमें बहुतसा रक्त स्राव हो चुका हो, हृदय नैर्बल्य बढ़ा हुआ हो, वाम कपाटी या महाधमनी कपाटीमें अवरोध हो, शरीर अति निर्बल हो तो नाड़ीका विस्तार घट जाता है।

नाड़ीकी कठोरता

नाड़ीकी कठोरता भी स्पर्शन द्वारा अनुभव करनी चाहिये। स्वस्थ पुरुषकी नाड़ीकी दिवार इस प्रकार अनुभव नहीं की जा सकती किन्तु यदि नाड़ीकी दीवार रोगके कारण कठोर हो गई हो, मुड़ गई हो जैसे कि वृद्धावस्था तथा चिरकाल तक रक्तके दबावके बढ़े रहनेके कारण नाड़ी तारके सदृश कठोर हो जाया करती है तो वह स्पर्शन द्वारा अनुभव होने लगती है।

५ रक्तका दबाव—नाड़ी द्वारा रक्तके दबावका भी पता लगाया जा सकता है। इसके अनुभव करनेको हाथ की तरफ रखी हुई तीसरी अँगुलीको बलसे दबायें, जिससे हाथकी ओरसे नाड़ीमें रक्त न आ सके, फिर दूसरी या मध्यम अंगुलीसे नाड़ीको इतना दबायें कि वह स्पष्ट अनुभव होने लगे। फिर सबसे पहले रखी हुई या प्रथम अंगुलीसे नाड़ीको अधिक-अधिक दबाते जायँ जिस दबाव से मध्यम अंगुलीके नीचे की नाड़ी लुप्त हो जाय। यही संकोच कालिक दबाव (Systolic Pressure) समझें। नाड़ीका प्रसारकालिक (Diastolic Pressure) देखनेके लिये नाड़ीको अंगुलियोंसे हल्का हल्का, फिर मध्यम बलसे और फिर अधिक बलसे दबायें। जिस नाड़ीका प्रसारकालिक दबाव कम होता है वह न्यून बलसे दबने पर अच्छी अनुभव होती है। जिस नाड़ीका दबाव बहुत अधिक बढ़ा हुआ होता है उसकी दीवारोंको दबाकर अनुभव करनेको काफी बल अपेक्षणीय है। साधारण नाड़ीके दबावको अनुभव करनेके लिये मध्यम बल ही पर्याप्त होता है।

नाड़ीके दबावको जाननेके लिये 'रक्त दबाव मापक' यन्त्र (Sphigmomanometer) का प्रयोग किया जाता है। इस यन्त्रमें ५" चौड़ी और १०" लम्बी रबड़की थैली होती है जिसपर कपड़ा चढ़ा रहता है। इसे कोहनीके ऊपर बाहुपर बांधकर इस थैलीके साथ लगे पम्पसे इसमें हवा भरते हैं। रोगी जो लेटा होता है उसकी नाड़ी अनुभवकी जाती है। जब तक नाड़ी सर्वथा लुप्त न हो जावे तब तक हवा भरते रहते हैं। जब नाड़ी सर्वथा लुप्त हो जाए तब इस थैलीके साथ लगा वाल्व खोलकर हवा निकलने दी जाती है। थोड़ी हवा निकलने के बाद जब हाथमें नाड़ी पुनः अनुभव होने लगे तो थैलीके साथ लगी घड़ीके अंकको अंकित करते हैं जो कि संकोच-कालिक दबावका माप होता है। नाड़ीके अनुभव करनेके स्थानपर यदि कोहनीके ऊपरकी नाड़ीपर श्रवण यन्त्र रख कर सुनें और फिर हवा भरकर सुने तो नाड़ीका शब्द नहीं सुनाई देता और फिर वाल्व द्वारा थोड़ी हवा धीरे धीरे निकल जानेपर धीरे-धीरे नाड़ीका शब्द सुनाई देने लगता है। जिस समय शब्द सुनाई देने लगे उस समयका घड़ीका अंक संकोचकालिक दबावका माप होता होता है। धीरे-धीरे नाड़ीका शब्द बढ़ता जाता है किन्तु हवाके अधिक निकल जानेसे यह शब्द लुप्त होने लगता है। ठीक इसी समय अंक नोट करें जो कि प्रसारकालिक दबावका सूचक है।

साधारणतः रक्तका दबाव मध्यम आयुके युवकोंमें १२० से १४० या १५० मिलिमीटर तक हुआ करता है। क्या प्रसारकालिक दबाव ७० से ८० मिलिमीटर तक होता है। बच्चोंमें यह छोटी संख्याकी ओर तथा वृद्धोंमें बड़ी संख्याकी ओर रहता है। और अधिक सूक्ष्मतासे देखें तो २१ से ३० वर्षकी आयु तक क्रमशः दबाव (Systolic) १२३ और ८२ होते हैं और ३१ वर्षसे ४० वर्ष तक १२५ और ८५ होते हैं। ४१ से ५० वर्ष तक १३० और ८६ होते हैं तथा ५१ से ६० वर्ष तक १३३ और ८१ होते हैं। कईयोंका विचार है कि किसी व्यक्तिके रक्तका दबाव उसकी आयुकी संख्यामें १०० जोड़ देनेसे जो अंक प्राप्त होता है उससे अधिक न होना चाहिये और कई रक्तके दबावको जाननेका यह नियम बतलाते हैं कि जितनी आयु हो उससे आधी ९० में जोड़ दें तो उतना रक्तका दबाव स्वाभाविक और इससे अधिक अस्वाभाविक समझें। प्रसारकालिक दबाव जाननेके लिये इसमेंसे ३५ की संख्या कमकर दें।

रक्तके दबावके बढ़नेके कारण—धमनी काठिन्य रोग (Arterio Sclerioris) जिसमें धामनियां कठोर हो जाती हैं, वार्धक्य रोग, वृक्क रोग, हृदयके रोग (वामक्षेपक कोष्ठकी अतिवृद्धि), मानसिक आवेश या क्षोभ, श्रम, श्वास रोगमें फुपफुसमें जब अधिक वायु भरी रहे तथा स्त्रियोंमें आर्तव होता बन्द हो जाए तो रक्तका दबाव बढ़ जाता है।

रक्तके दबावके घटनेके कारण—यदि धमनियां शिथिल हो जायें तथा मूर्छा, क्षयरोग, चिरकालिक रोग, आन्त्र ज्वर आदि, दीर्घ ज्वर रक्तकी कमीसे होने वाले पाण्डु आदि रोग या शरीरसे रक्त, मलमूत्र आदि अधिक निकल जानें या निरन्तर उपवाससे भी रक्तका दबाव घट जाता है।

कुछ परीक्षित सद्यफल सुलभ योग

(ले०—स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य)

[गतांकसे आगे]

फोला जाला—प्याजके रसमें शहद मिलाकर इसकी सलाई आंखमें डालें। अथवा—बरगद (वट) वृक्षका दूध निकाल उसमें कपूर घिसकर सलाईपर चढ़ा कर आंखमें डालें। यह दोनों योग नये फोलामें लाभ करते हैं।

पलकोंकी सुर्खी, मोटापन, पड़वाल, फुन्सियाँ—नौसादर, शोरा, सुहागा, अंजरूत, मैनसिल हर १ तोला सफेदा ६ माशा नीला थोथा ३ माशे सबको निम्बूके अर्कमें ३ दिन खरल करके पलकोंके किनारोंपर मलते व लगाते रहें।

रोहे—पारा १ भाग, चमेलीके फूल ताजे हरे ४ भाग दोनोंको खूब पीसकर एक जान कर लें। इसे सलाईसे पलकोंके भीतर लगावें। खूब सलाईपर दवा लगाकर पलकोंपर रगड़ें।

आंखके पलककी फुन्सी बड़ी—गुहांजनी—लौंग पानीमें घिसकर लगावें। अथवा—सिन्दूर लगावें। बेरकी गांठ घिस कर लगावें।

रतौंधा—लहसुनका रस निकालकर सलाईसे आंखमें डालें। अथवा—भैंसके गोबर रसमें पीपर घिसकर आंखमें आंजें। अथवा नौसादरको प्याजके रसमें रगड़कर आंखमें डालें।

नाकके भीतर जख्म व लाली बनी रहना, नकसीर जाना—रेशम और ऊनको बन्द बर्त्तनमें जलाकर उसको चौगुने मक्खनमें मिलाकर नाकके भीतर लगावें। अथवा—बबूलकी कच्ची कलियां बकरीके दूधमें डालकर उबाललें और सुखाकर कूट पीस मिश्री बराबरकी मिलाकर रख लें। खुराक ६ माशे पेड़ेके शर्बतसे—अथवा १० तोला गेरू पीसकर एक बोतलमें डाल बोतलको पानीसे भरदें। और हिलाकर रखदें जब जल स्थिर हो जाय तो ५ तोला पानी निकालकर थोड़ीसी दूध पत्थरी (संग-जराहत) फांककर ऊपरसे पी लिया करें।

नाकके भीतर मस्सा या गांठ—काष्टिक (सिलवर नाइट्रेट्स) ४ रत्ती गुलाबजल १ औंसमें घोलदें फुरहरीसे नित्य लगावें। यह लोशन शरीरपरके अन्य मस्सोंको जला देता है दिनमें दो तीन बार लगाते रहें।

मुँहके भीतर छाले—तेलिया सुपारीका टुकड़ा मुँहमें रक्खो और चबाओ। अथवा—चमेलीके पत्ते चबाओ। अथवा—गगन धूल कत्था, इलायची वन्सलोचन पीसकर छालोंपर लगाओ। अथवा—कास्टिक लोशन जो नाककी गांठके लिये बताया है उसको फुरहरीसे छालोंपर कुछ देर छुवाते रहो। एक बारके लगाने से छाले जाते रहेंगे।

मुँह आना—रस कपूर पारा खानेसे जो दांत हिल गये हों—सुहागा खील ५ तोला सेलखड़ी ५ तो० नीला थोथा भूना हुआ १ तो० सबको पीसकर रखले। एक गिलास पानीमें ६ माशे घोलकर उस पानीसे कुल्ले करें। दिनमें ३-चार बार करें। दांत हिलने बन्द हो जायंगे।

मसूढ़ोंसे खून जाना—संग जराहत, फिटकिरी, बबूलकी छाल, गूलरकी छाल जली सुपारी माजूफल सब बराबर कूट छानकर इसका मंजन नित्य मसूढ़ोंपर करें।

मंजन बढ़िया—संग जराहत ।॥= लोध पठानी ।, कत्था, सीपका चूना बुझा हुआ मौलश्री छाल, वायविडंग अकरकरा, कायफल, माजूफल प्रत्येक ५ तोला नीला थोथा १ तो० खांड ।, तेल इलायची ६ मा० पिपरमिण्ट ३ माशे सबको बारीक पीस लें मंजन करते रहें। दांतोंकी हर एक बीमारीमें मुफीद है। दांत साफ रखता है। अथवा—कोयला बादाम छिलका, कोयला सुपारी, दोनोंके बराबर संग जराहत इसमें थोड़ासा खानेका निमक मिलाकर दांतोंपर मले। दांत बहुत सफेद होंगे।

मांस खोरा या पायरिया—मौलश्रीकी छाल अनार फलका छिलका निम्बू फलका छिलका सर्द चीनी समुद्र झाग सब पांच-पांच तोला तूतिया ६ माशा सबको कूट पीसकर इसमें १०-१२ बूंद क्रियोजूटको मिलाकर रख

लें। मंजन करें अथवा—क्रियोजूट १ तो० बोरिक्सकम एलम ४ तो० टैनिक एसिड ३ तो० पोटासीयमपर्मंगनेट १ माशे बादाम या सुपारीका कोयला ऽ।- सबको बारीक पीसकर मिला रक्खें। मसूढ़ों व दांतोंके बीच (सन्धि) में ब्रुशसे दवा दाखिल करें और मलें। अथवा—चूना ऽ- हरताल ऽ- दोनोंको सिरकासे पीसकर वर्ग सदावके १ पाव पत्तोंके लुगदेमें रखकर सम्पुटमें बन्दकर इतनी देर पकाओ कि दवाइयां सूख जायं जलने न पावे निकालकर इसमें बराबरका कोयला सुपारी मिलाकर दांतोंपर मले।

दांतोंमें पानी लगना, दन्तहृष—फिटकरी खील कत्था कपूर सब बराबर मिलाकर सबके बराबर दूध-पत्थर मिलाकर रख लें। मंजन करनेसे पानी लगना जाय।

मसूढ़ोंमें वरम, सूजन होना और दर्द—स्प्रिट मेथिलेटिड १ औंसमें मग्नेशिया सल्फाइड (साल्ट) १ तोला पीसकर डाल दो और खूब हिलाओ जब मिल जाय तो इसे मसूढ़ोंपर लगाओ अथवा—निमक फिटकरी नौसादर मिलाकर मलो अच्छी तरह दबाओ।

दांतोंमें कीड़ा और दर्द, दाँतोंमें गड्ढा (जख्म) क्रियोजोटको बहुत बारीक फुरहरी पर लगाकर दर्दके स्थानपर फुरहरी फंसा दो। अगर मसूढ़ेके किनारे लाल हों सूजन हो पीक पड़ी हो तो उस स्थानकी सन्धिमें क्रियाजोटकी फुरेहरी अन्दर तक पहुँचाओ। खबरदार यह मुंहमें कहीं और जगह न लगने दो। यह एक तरहका तेजाब है। फुरहरी भी बहुत छोटी-से-छोटी बनाओ और उसको दवामें डुबोकर जरा छिटक लो ताकि ज्यादा लगी दवा गिर जाय। फिर लगाओ। दांतके गढ़ेमें भी इसीको भर दो। अथवा—हींगको गढेमें भरदो। कटैलीके सूखे फलोंका धुआं किसी नलीसे उस दांत तक पहुँचाओ।

दांतके गढेमें चांदी भरना—चांदीके वर्क लेकर उसमें रत्ती दो रत्ती पारा डालो दोनोंको मिलाते जाओ चाँदीके वर्क इतने मिलाओ कि उसकी गोली बन जाय फिर किसी कपड़ेमें डालकर खूब जोरसे दबाओ ताकि ज्यादा पारा उसमें हो तो निकल जाय। इस गोलीको उबलते पानीमें डालदो उधर दांतके गढेको मैल वगैरहसे खूब अच्छी तरह साफ करके गोली निकालकर फिर हाथसे मलो और गढ़ेमें भरकर खूब बिठा दो और ऊपरसे रगड़-कर दांतको सतहके साथ मिला दो। उसे कहो कि एक दो दिन उस दांतसे दबाकर रोटी वगैरह न खावै। बस, वह चांदी जम जायगी।

गलेके भीतरकी सूजन—पानीमें थोड़ासा नौसादर डालकर पानीको उबालो उसकी भाप गलेके भीतर पहुँचाओ और इसी पानीसे गरारे (कुल्ले) कराओ बाहर इसीके पानीकी पट्टीकी सेंक दो। वैद्य डाक्टरकी सलाह लो।

गलेकी गाँठें बढना (गिलापु, मेम्प्स)—दारु हल्दी, पटोलपत्र, मुलहटी, अतीस, नागर, मोथा, नागकेसर, चिरायता, कुटकी, अनार छाल, बहेड़ा छाल, निमक सैंधा सब बराबर कूटकर काढ़ा बनाय छानकर गाढ़ा करें जब बहुत गाढ़ा हो जाय तो उतारकर इसमें ग्लीसरीन आठ गुनी सुहागा थोड़ा डालकर मिला रक्खें। इसको गलेमें फुरेहरीसे लगावें।

तालुकण्टक—(तालु गिरना या लटक जाना) यह बीमारी छोटे-छोटे बच्चोंको होती है इसके कारण बच्चोंको हरे, पीले दस्त लग जाते हैं बच्चा सूखता जाता है। गर्दन पतली हो जाती है। सिरमें तालु भागकी जगह गड्ढा पड़ जाता है यह इस बीमारीकी सबसे बड़ी सनाख्त है। इस बीमारीमें निम्नलिखित दवा बहुत उपयोगी है—दवाई—वन्सलोचन, इलायची छोटी, धनियांके चावल, कमलगट्टाकी गिरी, दोना मरुआकी मंजरी या तुलसीकी मंजरी जहरमोहरा पत्थर, मुलहटी, दरयाई नारियल सब बराबर लेकर पीस रक्खें। यही दवा बच्चोंको एक एक माशा पानीसे अर्क गावजवानसे दोनों समय खिलावें और इसी दवाको जरा गीला करके अंगुलीपर चढ़ाकर उससे गलेके कव्वेको ऊपरकी ओर उठा दें या दबा दें और वहांपर जरासी दवा भी मल दें। दो तीन दिनमें बच्चा राजी हो जाता है। यह दवा गिलायुं भी लाभ करती है।

खांसी—निमक सांभर १ पाव एरण्ड पत्र ऽ१ सेर दोनोंको कूटकर मिलाए एक हण्डीमें बन्दकरके ३० सेर कण्डोंकी अग्नि दें। खुराक १—२ रत्ती तक। अथवा—निमक अर्कके पत्र कटेली फल अजवायन सबको मिलाकर २० सेर कण्डोंकी अग्निमें फूँक दें। मात्रा १ रत्ती। अथवा

लसोढ़ाके पत्तोंपर निमक लगाकर बन्द वर्त्तनमें जलाकर पीस लें। खुराक २ रत्ती।

खांसी व आवाजेबेरुना (स्वर भंग)—मिर्च मुलहटी, हल्दी, जवाखार सब बराबर सबसे दुगुना गुड़ मिलाकर गोली बेरके बराबर बनाकर मुँहमें रक्खें। अथवा जौ (यव) के दानोंको चिलममें रखकर तम्बाकू वत् पीवे।

पुरानी खांसी—१ तोला खांडमें ४-६ बूँद आकके दूधको डालकर पिलाओ। रातको दूधसे यह खांड खिला दो। इस तरह नित्य खांडमें ताजा दूध निचोड़कर कुछ दिन खिलाओ।

बच्चोंकी काली खांसी—कुत्ता खांसी—आकास बेलको गरम करके उसका रस निकालो और गाढ़ा करके रख लो उसमें से १-२ रत्ती शहदमें मिलाकर चटाओ।

बच्चोंका न्यूमोनियां (पसली चलना डव्वा)—पहिले रेवंद उसारा १-२ रत्तीका जुलाब देवें। जुलाबसे बहुत फायदा पहुँचता है। श्योनाक (सोनापाठा, आल्लू, टेंट्ट) के बीज १-२ लेकर पीसकर गुनगुना करके पिलावें अथवा तालाब घोंघाको आगपर फूंक लें उसके बराबर अजवायन भुनी हुई मिलाकर पीस रक्खें खुराक १ रत्ती पानके रस या अदरक रससे दें। अथवा काकजंघाका कीड़ा निकालकर गुड़में मिलाकर दूधमें घोल पिला दें। अथवा बारासिंहा (मृगदहेग) को अग्निमें जलाकर १।२ रत्तीकी खुराक शहद अद्रक रससे दोनों समय दें। अथवा गोरोचन, रेवंद उसारा, सुहागा केसर, नरकचूर सब बराबर अद्रक रससे १ रत्तीकी गोली बनाकर दें।

खून थूकना या थूकमें खून जाना- सुरमाकी डलीको अग्निमें लाल करके गुलाबके अर्कमें बुझाओ फिर लाल करो और बुझाओ सातबार ऐसा करो फिर पीसकर खूब बारीक करलो ताकि चमक रहे। खुराक ४—६ रत्ती ५ बूँदे चन्दनका तेल मिला शर्बत मिश्री या अंजवारसे खिलाओ। अथवा कैकड़ाको जला लो उसमें बराबरकी लाख कच्ची वंसलोचन सब बराबर मिलाकर पीसलो। खुराक १-२ माशे शहदसे शर्बत अंजवारसे दो।

दमा या खांस रोग - हर समय रहनेवाला — एलवा (मुसब्बर) १ तो० निमक काला १ तो० दोनोंको पीसकर १-२ रत्ती खुराक दूधसे या पानीसे दो अथवा—लौंगको कूटकर २० तोला हो तो १ तों० संखिया पीसकर उसमें मिला दो फिर पाताल यन्त्रसे तेल निकाल लो। खुराक २—४ चावलपर खांडमें मिलाकर दो। अथवा सिंगरफ, सिक्का, संखिया सफेद, तांबा सब तोला २ घी-कुँवार केसरमें घोटकर टिकिया बनाय मिट्टीके बर्त्तनमें बन्द करके १५ मन कण्डोंमें फूँक दें। चावल मुनक्कामें रख कर दें।

दमा सूखा—(खुष्क) पलास (ढाक) वृक्षके छिलके (वक्कल) उतार कर सुखा लो और उन्हें अच्छी तरह जला-कर सफेद भस्म बना लो। इसमें बराबरकी मिश्री पोसकर मिला दो। खुराक—२-३ माशे रातको सोते समय मुँह-में रखकर सो जाओ। सुबह भी पानीसे दो। अथवा—बहेड़ेका छिलका ५ तोला गेरू ६ माशा दोनोंको खूब पीसकर रख लो। खुराक ४ रत्ती शहदमें खिलाओ। अथवा—देसी तम्बाकू जिसकी रस्सी-सी बनी हुई आती है ५ तोला मिश्री ५ तो० दोनोंको देशी शराबमें १ दिन रगड़कर सुखा लो फिर कढ़ाईमें डालकर जलाओ जब काली हो जाय उतारकर पीस रक्खो। खुराक ४ रत्ती पानीसे दो।

दमाका दौरा हो रहा हो उसकी सुंघनी—कटेली पत्र बड़ा कटेला के पत्ते धतूराके पत्ते विलोढानाके पत्ते, सोम (हड़संहारी हड़जोड़ी) खुरासानी अजवायनके पत्ते भांग छोटी (जंग) हरड़ हर एक तोला २ शोरा कलमी २॥ तो० सबको पीसकर रखलो दौराके समय थोड़ी-सी चुटकी दवाको किसी चीज़पर रखकर उसमें दीयासलाई लगादो उसका जो धुआं उठे उसे सूंघो।

हिचकी—स्यालकोटी कागज या कश्मीरी हाथका बना पुराने जमानेका मोटा कागज लेकर बत्ती-सी बनालो उसमें एक तरफ आग लगाकर दूसरी ओरसे सिगरेटवत् पियो। अथवा—मोरके पंख जलाकर राखसे चाटो।

मुँहासे या कील निकलना—मसूरकी दाल पीस कर चेहरेपर मलो और मुँह धो डालो। अथवा—बादाम-की गिरी पीसकर उसमें दहीकी मलाई मिलाकर नित्य चेहरेपर मलो। अथवा—सुहागा फिटकरीको दहीमें मिलाकर मलाओ।

चेहरेको सुन्दर बनानेवाला—(मुख सौंदर्य करण)—हरड़का छिलका कुठपानके पत्तोंका रस तीनोंको पीसकर उवटनवत् चेहरे पर लगाकर नित्य मलते रहो। अथवा—दही और तोर दूधसे नित्य मुख मण्डलको मल मलकर धोते रहनेसे चेहरेका रंग गोरा होने लगता है।

चेहरेका रंग ज्यादा गोरा बनाना—चेहरेपर जितना बड़ा टुकड़ा आसके इतना बड़ा टुकड़ा सावरका लेकर उसमें नाक मुँह और आंखकी जगह बनवाकर इस सावरको रातमें सोते समय मुँहपर चढ़ाकर सो जाओ सुबह खोलदो। १ मास करते रहनेसे चेहरेका रंग बदल जायगा। जब सावरको खोलो तो दहीसे चेहरेको मलकर दही सूख जानेपर चेहरा धो डालो।

स्तुरेकी लागकी फुन्सियां—जो चेहरेपर हजामतसे हो जाती हैं—फिटकरी १ तो० नीला थोथा तुतिया १ तो० दोनोंको पीस अग्निपर चढ़ाकर फुला लो उतारकर इसमें सबकी आधी चीतेकी छाल पीसकर मिला दो। सबको खूब पानीसे पीसकर बत्तियां बनालो। इसे पानीमें घिसकर लगाओ। दवा निम्नलिखित तकलीफोंमें अजहद मुफीद है—यथा—मुँहपरकी झाँई मुँहासे, दाद, चमरस, कील, नेत्रके पलकोंका मोटापन (वक्ते रोग वांझनी) चम्बल, खारश, आतशकके मस्से, व अनेक छूतदार फैलने वाली फुन्सी, फोड़े, पर लगाओ। और चमत्कार रहेगा।

नजला जुकाम—हरड़ कावली हरड़ देसी आँवला मुनक्का काला मग़ज़ धनिया गुलाबके फल गावजवां, हर एक ७ माशे मगज पेठा, खसखाश हरएक १० माशे सबको ६ माशे वारायरोगन डालकर उसमें बादाम रोगन मिला दो। फिर ३६ तोला मिश्रीकी चास बनाकर चासनी को गाढ़ाकर उसमें डालकर वर्फी बना लें। खुराक १ तो० पानीसे या अर्क गावजवांसे।

कण्ठमाला (खनाज़ीर)— साँपको किसी बर्तनमें बन्द करके जला लो और उसकी हड्डियोंको पीस मक्खन में मिलाकर जख्मपर लगाओ। खानेकी दवा—सिरसके बीजोंका चूर्ण करके ऽ१ सेर चूर्णमें ऽ२ सेर शहद मिलाकर रख छोड़ें। खुराक १ तोला। इस दवाके सेवनके लिये निमक न खाय। अथवा—गन्धक शुद्ध ४ तोला चोपचीनी २ तोला पीसकर १ माशाकी मात्रासे किसी रक्तशोधक अर्कके साथ सेवन करावें। या अर्क उसवासे देवें। अथवा—मूंगकी १० तोला शाखको घी कुंवारके रसमें तर करके फूंक लेवें। इसी तरह बकरीके सींग नग ७ को हण्डीमें बन्द करके जलालें और पनवाड़ (चकवड़के) बीज ५ तो० इन सबको पीसकर मिला रक्खे खुराक १ माशा तकके साथ या अर्क कासनीके साथ देवें।

कण्ठमालापर लेप—काला मरा हुआ सांप लेकर उसके पेटमें पीली कौड़ियां जितनी आ सकें भर दें साथमें १ तो० संख्या पीसकर उसके पेटमें डाल दें फिर उसे एक हाण्डीमें रख करके उस पर तेल सरसोंका जितना आवै भर दें। उस हाण्डीका मुँह ढकनेसे बन्द करके २१ दिन जमीनमें गाड़कर रख दें फिर निकालकर कहीं बाहर मैदानमें लेजाकर १ मन कण्डोंकी आगमें रखकर फूंकदें। जल जानेपर कौड़ियां अलहदा निकालकर रखलें और हड्डियां अलहदा तीनोंको जुदा-जुदा पीसकर रख छोड़ें। जो कण्ठमाला बहती हों उनपर तो कौड़ियां लगावें जो बहती न हों न फूटी हों उनपर जरा-जरा स्तुरेसे जख्मके निशान बनाकर उनपर साँपकी हड्डियां छिड़क दें और आस पास उन गांठोंके घी चुपड़कर बाँध दें। पट्टी करदें। अगर दवा लगानेके ही कुछ देर बाद खुश्की लगे तो घी गरम करके पिलावें। अथवा राई, सरसों, तिल सैहजनाके बीज गाजरके बीज सनके बीज, कलौंजी, कालीजीरी, अलसी, मूलीके बीज सब चीजें बराबर लेकर कूट पीसकर बारीक चूर्णसा बनाकर जो कण्ठमाला फूटी हुई न हों उन पर इसे गो मूत्रमें पीसकर गुनगुना करके लेप करता रहे। वह, कछराली पर भी अथवा—फूटी हुई व बहती हुई कण्ठमाला हो तो गधेका सुम (खुर) जलाकर दुगने मक्खनमें-जो १०० पानीसे धोया हुआ हो—मिलाकर लगावें।

घेघा या गलगण्ड-गिल्लड़—गिल्लड़ पत्ता नामक वनस्पतिके पत्ते जो पंजाबमें अमृतसर देहलीसे मिल जाते हैं इनको मुँहमें डालकर चूसते रहनेसे गिल्लड़ जाता रहता है।

पसलीका दर्द-हूक—पसलीके दर्दपर बारासिंघा-सावर सींघको घिसकर गुनगुना करके लेप करो। बारा

सिंघाको आकके दूधमें भिगोकर फूँक लो यही एक रत्ती गरम पानीसे खिलाओ। अथवा—फूँका बारा सिंघा, तेलिया दोनोंको पीसकर उर्द बराबर गोली गर्म पानीसे दो।

दाद, चम्बल—सुहागा, गन्धक, फिटकरी, बराबर निम्बूके अर्कमें या चूना कलीके निखरे जलमें पीसकर लेप करें। अथवा—क्रियोजूट १ तोला कपूर ६ माशे दोनोंको मिलाकर रख लें इसको दाद चम्बलपर चुपड़ दिया करें अथवा नारियल छिलका व शीशम लकड़ी गेहूँका निकाला तेल लगावें। मुहपर लगानेवाले तूतियाकी वह गोली लगावें। अथवा—पुराना जूता जलाकर इसको तेलमें मिलाकर लगावें। अथवा—पारा गन्धक माजूफल मुर्दा संग कत्था मिलाओ। जली सुपारी तूतिया भुना हुआ सब बराबर प्रथम पारा गन्धकको मिलाकर फिर सबको मिलावें। और दूने मक्खनमें जो १०० पानीसे धुला हो मिलाकर लगाते रहें।

फूटी व बहती हुई कण्ठमाला—अकरकरा ६ माशे कुचला ६ माशा रेशमका कीड़ा १ नार जोंक १ नार मोम ६ माशे केसर २ रत्ती सफेदा ६ मा० मीठा तेल १० तो० सब चीजोंको धीमी २ आँचपर यहाँ तक पकावें कि तेल आधा जल जाय उतार लें। खरल करके इसका फाहा जख्मोंपर लगावें।

लाहौरी सोर (जड़ों वाला फोड़ा)—मक्खन १०० पानीसे धोया हुआ ५ तो० हार चिकना ५ माशा मिलाकर फोड़े पर इसका फाहा करे। यह जा करके जड़ै निकाल डालता है।

सफेद दाग-(स्वित्र कुष्ठ)—क्रियोजूट १ तो० कपूर १ तोला दोनोंको मिला दें इसको फुरहरीसे दागोंपर लगाते रहें। अथवा—चित्रक मूलीकी छालको २१ दिन सिरकेमें भिगोकर इसका लेप दागोंपर करते रहें। अथवा—बावची और गेरू बराबर लेकर कूट लें २ तो० नित्य ऽ। पानीमें भिगोकर यह पानी स्थिर होने पर ऊपर ऊपर से उतारकर इसे पी जावें और बाकी फुजला अब शेषको पीसकर सफेद दागों पर लेप करते रहें ४० दिन बिना निमकको रोटी खांय।

सिध्य या सेहुंवा—नीला थोथा फिटकरी बराबर आग पर फुलाकर इसे दहीमें मिलाकर मलै। इसमें कुछ पीसकर गन्धक भी मिलालें और प्याजके रसमें छोड़कर लगावें तो बहुत जल्दी लाभ होता है।

बिवाई फटना—राल १ तो० सुहागा खील १ तो० मोम २॥ तो० तेल १० तो० राल सुहागाको पीसकर सबको तेलमें डालकर गरम करो और रख लो इसे बिवाई पर लगाते रहो। बिवाई पर गरम बत्तीका तेल टपकाओ या मोम टपकाओ। जब मोम बिवाईमें भर जाय तो सलाईको गरम करके बिवाईमें खूब गरम गरम फेर दो। जरा तकलीफ होगी फिर आराम।

आगसे जल जाना—जली हुई जगहपर उसी समय दूधकी मलाई या दहीपरकी मलाई उतारकर उसका लेप मोटा-मोटा लगा दो और जब तक दर्द व जलन न कम हो बराबर मलाईकी तहें चढ़ाते चले जाओ। अगर कोई शख्स ज्यादा जल गया हो या झुलस गया हो उसे उसी समय जितनी जल्दी हो सके कच्चे व ताजे ठण्डे दूधमें लिटा दो। दूध इतना ज्यादा हो कि वह उस दूधमें डूबा रहे। दूधको बरफसे ठण्डा रक्खो। दूधमें बरफका पानी न मिलने पावै। दूध खालिस हो इस तरकीबसे न तो शरीरपर छाले पड़ते हैं न आदमी मरेगा। कई-कई घंटे यह तरकीब काममें लानी चाहिये। ६-८घंटेके बाद दूध बदल देना चाहिये। जब जलन व दर्द जाता रहै फिर निकालो चूनेका स्थिर पानी और तेल भी मिलाकर लगाते हैं मगर मलाई व दूधसे बढ़कर यह फायदा नहीं करता।

चम्बल—नौसादर तूतिया चोकमूल पंजाबकी तीनों बराबर सबको चौगुने तेलमें खूब पकाकर खरल करके रख लें। इसको हर समय लगाते रहें।

खारश गीली व सूखी—गन्धक पीसा हुआ ५ तो० चूनाकली १० तो० दोनोंको ऽ२ सेर पानीमें डालकर खूब पकाओ जब पानी सेर रह जाय उतार लो और पानीको स्थिर होने दो। जब पानी साफ हो जाय ऊपर-ऊपर से पानी ऊतार लो इसे बोतलमें भर रक्खो। स्नानसे प्रथम इस पानीको बदनकी खारशकी जगहपर खूब मलो और साबुनसे स्नानकर डालो। अथवा गन्धक २॥ तो० हरताल २॥ तो० दोनोंको खूब पीसकर २० तोला सरसोंके तेलमें डालकर कढ़ाईमें चढ़ा आगपर रक्खो जब तेल खूब धुआं देने लगे उतारकर रख लो इस तेलकी मालिसकर

खारशके जख्मपर लगाओ। दाद चम्बलपर भी लाभ हो।

बच्चोंको बरसातमें निकलने वाली फुन्सी फोड़े—मुर्दासंग, कबीला, कत्था राल, में हदीके पत्ते। हर एक तोला नीला थोथा ६ माशे सबको कूट पीसकर रख लो। जख्म फोड़ा फुन्सीको साफकरके सुसककर लो फिर उस पर तेल या मक्खन लगा (चुपड़) कर उसपर यह धूड़ा छिड़क दो। खारशपर भी मुफीद है।

कच्चा फोड़ा—जिसमें बहुत जलन व दर्द होती हो—चांवलको पानीमें भिगोकर कण्डीमें डालकर इतना रगड़ो कि उसमें लुहेस (चिकनापना) पैदा हो जाय उसको फोड़ेपर लेप करो उसपर इसीका लेप चढ़ाते चले जाओ फोड़े पर लेप सुसक न होने पावे। दर्द व जलन ३-४ घंटेमें जाता रहेगा। अथवा—शहदको आगपर पकाओ वह जब गाढ़ा होनेपर आवे उसमें सुहागा और एलवा पीसकर बराबर मिला दो। इसको कपड़ेपर लगाकर व्रणपर चिपका दो और ऊपरसे सेंक दो व्रण या फुंसी जल्दी पककर फूट जायगा। अथवा सुहागा एलवाको अण्डेकी जर्दीमें मिलाकर फोड़ेपर लेप करदो। गुड़ बांधो।

पके फोड़े व जख्म पर—प्याज व अजवायन देसी दोनोंसे चौगुना तेल डालकर आगपर चढ़ा दो और इसे इतना पकाओ कि दोनों चीजें जलकर काली हो जायं उतारकर उसी तेलमें इन्हें पीसकर मिला दो बारीक मरहम-सी बन जानेपर जख्मको साफ करके फोड़ेपर लगाओ। अथवा गंधा विरोजा ऽ। तूतिया २॥ तो० को पीसकर विरोजामें मिलादो और इसे पानी डाल-डालकर खूब हाथसे फेंटते हुये धोवो। १० पानी से धोकर पानी निकाल दो डब्बेमें भर रक्खो इसका फाहा कम गहरी फुन्सियोंपर लगाओ यह हरी मल्हम बनती है। अथवा गंधाविरोजा ऽ। सिन्दूर २॥ तो० मुर्दासंग २॥ तो० राल २॥ तो० तूतिया १ तो० सिरका ५ तो० सबको पीसकर विरोजामें मिला दो और फिर धो डालो। इसे जैसे-जैसे धोते रहोगे फूलता चला जायगा। इसका फाहा जख्मपर लगाओ। यह मल्हम बनती है। अथवा कहींसे शेरका गोश्त मिल जाय तो उसको अलसीके तेलमें डाल दो और उसमें ५-१० तोला सिन्दूर मिला दो बस इस तेलको एक हफ्तेके बादसे जख्मपर लगाते रहो। जब तेल सिन्दूर खतम होने लगे और डाल दो बीसों बरस तक यह गोश्तका टुकड़ा जोकि हर बातका काम देगा।

मरहमकी बत्ती बम्बई वाली—तेल जैतून ऽ। मुर्दा संग १५ तोले इसमें पीसकर डाल दो इसमें ईसबगोल अलसीका लबाब पांच-पांच तोला निकालकर सबको मिलाओ, मन्थन करते रहनेपर सब फूलकर गाढ़ा हो जायगा और बत्ती बन जायगी। इसको जख्मोंपर लगाओ।

करबैंकल व जहरीले फैलनेवाले फोड़ेकी मल्हम—बिच्छू बड़े काले रंगके २ अदद (नग) गेहूँ २ तो० अफीम ३ माशे तेल सरसोंका १० सेर सबको एकत्रकर तेलमें यहां तक पकाओ कि बिच्छू वगैरह जलकर काली हो जायं। सबको पीसकर एक जम करलो। इसको जख्म पर लगाओ।

बायटे-खली पड़ना—चोकमूल कुष्ठ अफीम, सब बराबर तिगुने तेलमें सूखे ही पकाकर इसकी मालिस करनी चाहिये।

लाठी वगैरहसे भीतरी गहरी चोट लगना—२-४ मुर्गीके अंडोंमेंसे जर्दी भाग निकालकर तवेपर डालकर आगपर चढ़ाकर खूब भूनो यहां तक कि वह जलने लगे। कलछीसे बराबर चलाते रहो जब जलकर तेल छोड़ने लगे और काफी तेल छोड़ दे इस तेलको निचोड़ लो। इस तेलको चोटके स्थानपर मालिस कराओ और इसकी ५-७ बूँदें दूधमें खांडमें डालकर खिलाओ ऊपरसे दूध पिलाओ। अथवा—राल १० तो० केशर २ माशे संख्या सफेद १ रत्ती सबको पीसकर मिलाओ। और फिर कढ़ाईमें डालकर आगपर रखकर पिघलाओ जब सब गलकर एक जान हो जाय उतार लो पीस रक्खो। इसकी ४ रत्ती खुराक जरूरत के वक्त चोट वालेको खानेको दो। खून चोटकी जगहपर नहीं जमेगा।

बद कांखकी बद-कछराली—गुड़ चूना घुंघची एलवा सबको अण्डेकी जर्दीमें मिलाकर लेप करें व ऊपरसे सेंक दे। अथवा—कुन्दरगोंदको पानीमें पीसकर लगावे और ऊपरसे कपड़ेकी टांची चिपका दें। अथवा—कटेलीके ताजे फल लाकर खूब घोटें जब एक जान हो जाय लेप करके बांध दें ऊपरसे सेंक करें।

माताके शरीरमें दूध

[ले० ठाकुर शिरोमणिसिंह चौहान, विद्यालंकार, एम० एस-सी, विशारद, सब-रजिस्ट्रार, बिलग्राम जिला हरदोई]

पृथ्वीपर ऐसा कौन मनुष्य होगा जिसने दूध न पिया हो। वैसे तो दूध हमारी खाद्य सामग्रीका एक अत्यावश्यक अंग है किन्तु जन्म लेनेके बाद शैशव-कालमें दूधको छोड़ कोई ऐसा स्वास्थ्य वर्द्धक और सहज ही प्राप्त होनेवाला पदार्थ नहीं जिससे बच्चेंका भरण-पोषण किया जा सके। दूध शिशुका प्राकृतिक भोजन है। मानव जातिके शिशुओंका ही दूध प्राकृतिक भोजन हो, सो बात नहीं। प्रायः सभी स्तनधारी प्राणियोंके नवजात शिशुओं-की उदरपूर्ति दूध पिलाकर ही की जाती है। शिशुओंका अनिवार्य भोजन होने ही के कारण तो परमात्माने प्रत्येक जननीको यह पदार्थ मुहैया किया है। नहीं तो जंगलों और खोहोंमें रहनेवाले प्राणियोंको दूध कौन देता।

स्तनधारी प्राणियोंमें प्रायः सभी मादाओंके स्तनोंसे दूध निकलता है। स्तन तो नरोंमें भी पाये जाते हैं किन्तु वे छोटे होते हैं और प्रायः उनमेंसे दूध नहीं निकलता। विविध जातिके प्राणियोंमें स्तनोंकी संख्या और शरीरमें उनकी स्थिति अलग-अलग हुआ करतो है। स्त्रियोंके वक्षस्थलपर दो स्तन होते हैं, एक दाहिना, दूसरा बाँयाँ। हर स्तनके मध्यमें एक शंकाकार उभार होता है जिसे चूचुक कहते हैं। चुचुकके आसपास गहरे रंगका एक घेरा होता है जिसे स्तन-मंडल कहते हैं। प्रत्येक चूचुकमें १५-२० नन्हें-नन्हें छिद्र होते हैं। जिनसे दूध निकलता है। ये छिद्र दुग्ध-स्रोतोंसे सम्बद्ध होते हैं ये उनके बहिर्द्वार हैं।

दुग्ध ग्रन्थियाँ

दूध बननेका कारखाना इन्हीं स्तनोंके भीतर होता है। दुग्ध निर्माण क्रिया एक प्रकारकी ग्रंथियों* द्वारा सम्पादित होती है। इन ग्रंथियोंको दुग्ध-जनक-ग्रंथियां कहते हैं। वे वसा और त्वचासे ढकी रहती हैं। उनमेंसे प्रत्येक ग्रंथि मादाकी दूसरी पसलीसे छठी पसलीतक फैली हुई होती है। पूर्ण बाढ़को पहुँची हुई ग्रंथिमें पंद्रह-बीस खंड (पिंड) होते हैं। ये समस्त खंड बंधक-तंतुओंमें लिपटे हुये होते हैं। प्रत्येक खंडमें दूध उत्पन्न करनेवाले नन्हें-नन्हें उलूखल (एलवी ओलस) होते हैं। इन उलूखलोंसे प्रनालियां निकलती हैं। जिस भांति छोटी-छोटी नदियां एक दूसरेसे मिलकर बड़ी नदी बनाती हैं, उसी भांति उलूखलोंकी ये प्रनालियाँ,

* ग्रंथि शरीरका वह अंग है जिसका कार्य रस बनाना होता है। रस बननेके अनंतर जहां उसकी आवश्यकता होती है, पहुँच जाता है। यह रस शरीरके लिये बड़े महत्वका होता है।

चित्र नं० १
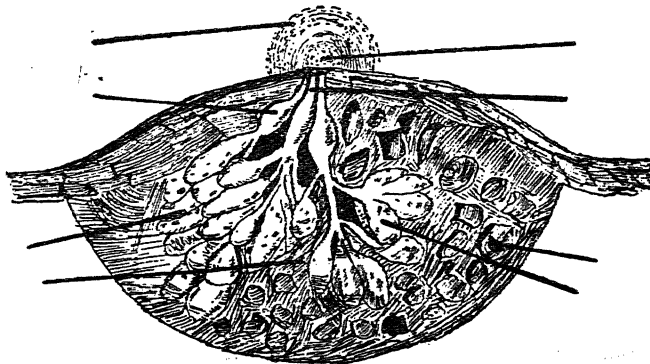
दुग्ध ग्रंथिकी रचना

परस्पर मिलकर, दुग्ध-स्रोत लेक्टी-फेरस-डक्ट बनाती हैं। ग्रंथिके हर खंडसे निकला हुआ दुग्ध-स्रोत चूचुकके एक छिद्रसे संबद्ध होता है। चूचुकके निकट पहुँचकर दुग्ध-स्रोत फूलकर सँपेरेकी महुअरके आकारका हो जाता है। दूध उलूखलमें निस्सरण होकर प्रनालियों द्वारा दुग्ध-स्रोतोंमें आता है और स्तनपर भार पड़ते ही, चूचुकके छिद्र द्वारा बाहर निकल आता है।

जब हम उलूखलों और उनकी प्रनालियोंके काटों (सेकशनों) की परीक्षा करते हैं तब हमें ज्ञात होता है कि उनके अंतः प्राचीर घनाकार पृष्ठाच्छादक सेलोंसे आवेष्ठित होती हैं। मादाके गर्भवती होते ही दूध बननेकी तैयारियां होने लगती हैं। गर्भ धारण करने योग्य जब स्त्री हो जाती है तब उसकी दुग्ध-ग्रंथियां पूर्ण बाढ़को पहुँच जाती हैं। दूध बननेकी तैयारीमें उलूखलोंकी दुग्ध वाहिनियोंमें तो कोई विशेष परिवर्त्तन नहीं होता परन्तु दूध निस्सरण करनेवाले उलूखलोंकी पृष्टाच्छादक सेलें अत्यधिक लम्बी होकर उलूखलके गर्त्त (ल्यूमेन) में प्रलम्बित हो जाती हैं। इन लम्बी-लम्बी सेलोंके जीवन मूल (प्रोटा प्लाज्म) के भीतर अनेकों दानोंका आविर्भाव होता है। फिर ये दाने चक्राकार हो जाते हैं। उनमेंसे कुछ वसा बनाते हैं। बादको वसा छोटे-छोटे मेद बिंदुओंका रूप धारण कर लेती है। इन कोषोंके अणु-केन्द्र भी विभाजित होकर नवीन सेलें बनाते हैं। संभवतः ये नयी सेलें उन सेलों-का स्थान लेती हैं जो जीर्ण-क्षीर्ण होकर दुग्ध-स्रावके साथ दुग्ध वाहिनियोंमें बह जाती हैं। इन सेलोंकी संख्या और आकारमें वृद्धि होने और दुग्ध-स्रावके कारण स्त्रीके स्तन फूल जाते हैं।

प्रसव होनेके पूर्वसे ही स्त्रीके स्तनोंमें एक प्रकारका तरल पदार्थ बनता है जिसे अंग्रेजीमें कोलोस्ट्रम कहते हैं। यह असली दूध नहीं है। असली दूध तो प्रसव होनेके दो-तीन दिन बाद उतरता है। हां, यदि प्रसव होनेके पहले ही से कोई बच्चा माताका स्तन पान करने लगे तो प्रसव होते ही असली दूध प्राप्त हो सकता है। ठीक रूप-से दूध बननेके लिये यह आवश्यक है कि शिशु द्वारा स्तन पान होता रहे। स्तन पानकी कमी अथवा अभावसे स्तनोंका फुलाव क्रमशः जाता रहता है, दूध सूख जाता है और दुग्ध ग्रंथियाँ सिमिट जाती हैं। प्रसवके बाद शिशु द्वारा दूध पीनेकी क्रिया माताके गर्भाशयको आंकुचित करती है—उसे शीघ्र ही वस्तिगह्वरमें सिकुड़नेको उत्तेजित करती है। गर्भाशयके शीघ्र मिट जानेसे कमल और भ्रूणकी कलाओंके विदीर्ण होनेके कारण शिरा कुल्यासे अधिक रक्त-क्षरणकी संभावना जाती रहती है।

(३)

दूधकी मात्रा

साधारणतया स्त्रियोंमें दूध ६-९ मासतक उत्पन्न होता है। किसी-किसी स्त्रीमें साल भर या इससे अधिक

गिनी शूकर चित्र नं० २ व ३
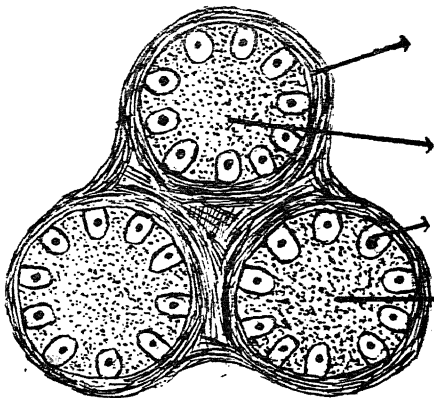
२—तीन प्रनालियोंके व्यत्यस्त काट
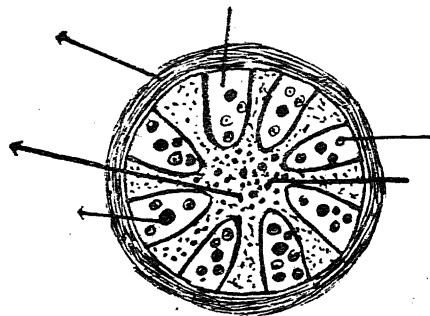
३—एक उलूखलका व्यत्यस्त काट

समय तक दूध निकलता है। शिशुकी बाढ़ और आकार-प्रकार—आवश्यकतानुसार मातामें दूधकी मात्रा बढ़ती-घटती रहती है। जब शिशु अन्न आदिके बने भोजन सरलतासे पचाने योग्य हो जाता है और माताके दूध बिना भी उसका काम चल सकता है तो माताके दूधमें बहुत कमी आ जाती है। नीचे दी हुई तालिकासे यह ज्ञात होता है कि ज्यों-ज्यों शिशु बड़ा होता है त्यों-त्यों छात्रीके दूधकी मात्रा भी बढ़ती जाती है और अन्न प्राशन-संस्कार-के कुछ दिन बाद, जब शिशु दूधके अतिरिक्त और पदार्थ सरलता पूर्वक पचाने योग्य हो जाता है तो माताके दूधमें क्रमशः कमी होने लगती है।

प्रसवकालसे	उत्पन्न हुए दूधकी मात्रा
पहला दिन	२० ग्राम (१ ग्राम=१ माशा)
दूसरा दिन	९७ "
तीसरा दिन	२११ "
चैाथा दिन	३२६ "
पांचवाँ दिन	३६४ "
छठा दिन	४०२ "
सातवाँ दिन	४७८ "
दूसरा सप्ताह	४०२ "
३—४ था सप्ताह	५७२ "
५—८ वाँ सप्ताह	७३६ "
९—१२ वाँ सप्ताह	७९७ "
१३—१६ वाँ सप्ताह	८३६ "
१७—२० वाँ सप्ताह	८६७ "
२१—२४ वाँ सप्ताह	९४४ "
२५—२८ वाँ सप्ताह	९६३ "
२९—३२ वाँ सप्ताह	९१६ " कमी
३३—३६ वाँ सप्ताह	९०९ "
३७ वाँ सप्ताह	८८५ "

गर्भाधान कालमें दुग्ध-जनक-ग्रंथियोंकी वृद्धि अधि-कांशमें कुछ रासायनिक क्रियाओं द्वारा होती है। डिम्ब-जनक-गंथिके पीतांग (कोर्पस लुटियम) और संभवतः भ्रूणमें विशेष प्रकार हारमोन पैदा होते हैं। हिल्डे ब्रांडके अनुसार ये रासायनिक पदार्थ दुग्ध-निर्माण-क्रियामें रोकका काम करते है अर्थात् दुग्ध स्राव नहीं होने देते। इस कालमें सारी शक्ति दुग्ध कोषोंके निर्माण करनेमें ही व्यय होती रहती है। प्रसव होते ही यह अवरोधन करनेवाली शक्ति निकल जाती है। उस पदार्थके हटते ही ग्रंथि कोषोंका असली काम (दुग्ध-निर्माण-क्रिया) आरंभ हो जाता है। एक बार आरंभ होनेपर यह क्रिया स्वतंत्र रूपसे निरंतर जारी रहती है। हां, समय पाकर अथवा माताके पुनः गर्भ धारण करनेपर इस क्रियामें क्रमशः ह्रास होने लगता है और अंतमें बन्द हो जाती है। लोग कभी-कभी गायकी डिम्ब-ग्रंथियोंको इस लिये निकाल देते हैं कि वह अधिक कालतक गर्भ धारण न कर सके और बहुत दिनोंतक दूध देती रहे।

दूध कैसे बनता है

दूधकी बनावटके विषयमें हम लोगोंकी जानकारी अब भी अधूरी है। बहुत खोजें हुईं पर अभीतक लोग किसी एक निश्चयपर नहीं पहुँचे। उसकी बनावटके विषयमें अनेकों कल्पनाएं हैं*। "अरस्तूका कथन है कि दूध रक्तका परिष्कृत रूप है। यह विचार आधुनिक वैज्ञानिकोंकी छानबीनके अनुसार भी सर्वथा सत्य है। १५३८ ई० में पैसीटसने दूधको रज-रक्तका परिवर्तित रूप बतलाया और मक्खन, दही, तोड़ इत्यादिको दूधके भिन्न भिन्न अंग कहा। १६१० ई० में बारटो लैटसने दूधको रक्तकी भांतिका गंधक, पारा और नमक मिश्रित पदार्थ बतलाया। इसी समयमें ल्यूटोविकोटैस्टीने दुग्ध शर्कराको खोज निकाला। १७२२ ई० में क्षुद्रवीक्षण यंत्र द्वारा दूधकी जाँच की गयी और मेद-विन्दुका पता लगा। १७४४ ई० में डोनेने गाय और स्त्रीके खट्टे दूधके चित्र प्रकाशित किये। इसी कालमें लगभग बौरहावेने पशुरसायन शास्त्रकी नीव डाली। इसी वैज्ञानिकने दूध-की हर तरहपर खोज की। १७८० ई० में शूलेने दुग्धाम्ल और कैलासियम फ़ास्फेटकी स्थिति दुग्ध अल्ब्यूमेनमें बतलायी। १८४० ई० में दूधको छना हुआ रक्त और स्तनको छन्ना माना गया परन्तु दूध और रक्तके रासायनिक विश्लेषण द्वारा यह बात रद कर दी गयी। दूधके अंग रक्तमें नहीं पाये जाते। वे स्तनकी गिल्टियोंमें, प्रवाहित रक्तमें और लिम्फ़में बनते हैं"।

*विज्ञान भाग ३ सं० ३ पृष्ठ १३७

माताका दूध ही शिशुका प्राकृतिक भोजन है। उसमें स्वभावतः वे सारे पदार्थ विद्यमान होते हैं जो बच्चेके स्वास्थ्य और बाढ़के हेतु आवश्यक होते हैं। अतएव एक जातिके बच्चेको दूसरी जातिकी माताका दुग्ध पान कराना सरासर भूल है जबतक कि कोई विशेष कारण ही न हो माताका दूध सदैव ताज़ा मिलता है और शीघ्र ही पच जाता है। इसके अतिरिक्त बाहरी दूधमें अनेकों बीमारियों-के कीटाणु भरे होते हैं पर माताके दूधमें विष-विनाशक पदार्थ मौजूद होते हैं। एक वैज्ञानिकके अनुसार यदि किसी स्त्रीमें किसी विषके संबंधमें रोगक्षमताकी शक्ति हो तो वह शक्ति उसके रक्तमें आ जाती है और बच्चा जननेपर उसके दूधमें आ जाती है। इस भांति माताका दूध बाहरी दूधकी अपेक्षा अधिक पोषक और पाचक होनेके सिवा अनंत रोगोंके आक्रमणोंसे शिशुकी रक्षा करता है। उन शिशुओंकी बात ही और है जिनकी माताओंके पर्याप्त दूध नहीं उत्पन्न होता। ऐसी दशामें विवशतः बाहरी दूधका सहारा लेना ही पड़ता है। जान-कारोंका कहना है कि एक वर्ष या उससे कम आयुके जितने बच्चोंकी मृत्यु होती है उनमेंसे अस्सी प्रतिशत मौतोंके लिये उनका अप्राकृतिक भोजन ही उत्तरदायी है।

हवाई जहाज़का इंजन

[ले०—श्री राधेलाल मेहरोत्रा]

हवाई जहाजको चलानेके लिये भापके इंजन अधिक उपयोगी नहीं होते क्योंकि वे बहुत भारी होते हैं। पेट्रोलसे चलनेवाले इंजन ही हलके होनेके कारण ठीक काम देते हैं। सन १८६० में लेनायर नामक व्यक्तिने वह पहला पेट्रोल इंजन बनाया था जो भली भाँति जहाज उड़ानेमें सफल हुआ।

हम यहां यह समझायँगे कि यह पेट्रोल इंजन किस प्रकार चलते हैं और किस प्रकार उनमें क्या कल पुर्जे होते हैं नीचे दिये हुये चित्रोंमें एक पेट्रोल इंजनके सारे पुर्जे अलग-अलग दिखाये गये हैं। पहला पुर्जा इंजनका सिलंडर

चित्र १ — सिलंडर

है। यह एक गोल खोखले डिब्बेकी शक्लका होता जिसका अंदरका खोखला हिस्सा बहुत चिकना होता है और सिरेपर एक ढक्कन लगा होता है। इसके चारों तरफ है धातके चपटे छल्ले-से लगे होते हैं। चूँकि इसकी सतह बहुत बड़ी होती है और इसमें हवा लगती है इसलिये सिलंडरके भीतर जो आंच उत्पन्न होती है वह शीघ्र बाहर निकल जाती है और इसलिये सिलंडर आवश्यकतासे अधिक गर्म नहीं होने पाता।

चित्र २—पिस्टन। तीरसे दिखलाये हुये स्थानोंपर खाँचा कटा रहता है जिसमें चूड़ियां पहनाई रहती हैं, ये चूड़ियां एक जगह कटी रहती हैं और कमानीकी तरह सिलंडरमें चिपककर बैठती हैं जिससे गैस पिस्टन को पार नहीं कर सकती।
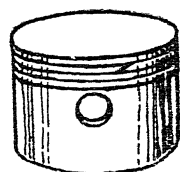
सिलंडरके भीतर पिस्टन खिसका करता है और यह ऐसा सच्चा बनाया जाता है कि इसमें जरा भी ढीला नहीं रहता तो भी आसानीसे ऊपर नीचे चल सकता है। पिस्टन स्वयम् खोखला होता है और इसका केवल एक

चित्र ३— क्रैंकशैफ़्ट
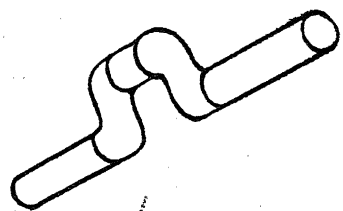
सिरा बन्द रहता है और इसलिये बक्स-सा जान पड़ता है इसके बीचसे एक डंडा लटकता है जिसको कनेक्टिंग-राड कहते हैं। इस डंडेके बड़े सिरेमें छेद होता है जो क्रैंक-शैफ़्टके मुड़े हुये भागपर बैठता है (छिदा हुआ भागका
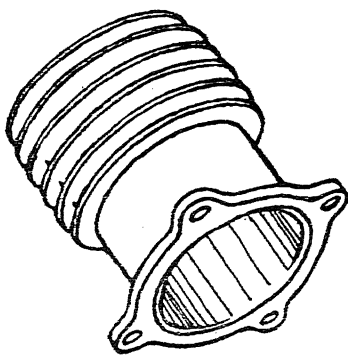
आधा हिस्सा दो बाल्टूसे जड़ा रहता है और क्रैंकशैफ्ट-पर पहनानेके बाद यह बाल्टू कस दिया जाता है) । इस

चित्र ४—कनैक्टिंग रॉड । इसका छोटा सिरा पिस्टनके अन्दर डाले हुये छेदपर बैठता है और बड़ा सिरा क्रैंकशैफ्टके मुड़े हुये भागपर बैठता है ।

प्रकार जब पिस्टन सिलंडरके भीतर ऊपर-नीचे चलता है तब क्रैंकशैफ्ट घूमता है। चित्रमें बायीं तरफ इंजनको काटकर दिखलाया गया है जिससे ठीक पता चल जायगा कि पिस्टन किस प्रकार चलता है।
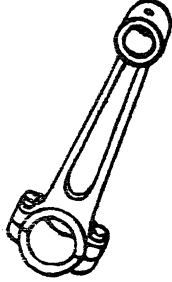
चित्र ५—वाल्व । यह छत्रीनुमा होता है और कमानोके कारण सिलंडरके छेद्पर इतनी जोरसे चिपककर बैठता है कि छेद द्वारा गैस बाहर नहीं निकल सकती (आगामी चित्र देखिये)
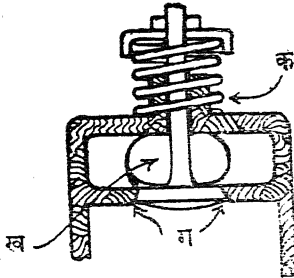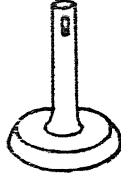
चित्र ६—वाल्व किस प्रकार छेद्पर बैठता है ; क—कमानी; ख—कारब्युरेटरसे गैस आनेका रास्ता; ग—सिलंडरका छेद ;

कोई ऐसा प्रबन्ध रहना आवश्यक है कि हम सिलंडरके भीतर पेट्रोल जाने दें और जब यह जल जाय तो उसे बाहर निकल जाने दें। इसलिये सिलंडरमें दो छेद बने रहते हैं जो वाल्वसे बन्द रहते हैं। देखनेमें यह कुकुरमुत्ता या छत्रीके समान होते हैं और खूब मज-बूत कमानियोंके कारण यह छेदपर कसकर बैठे रहते हैं। दाहिनी ओर बने चित्रसे तुमको ठीक पता चल जायगा कि किस प्रकार यह छेद्को बन्द किये रहते हैं।

जब पेट्रोल सिलंडरके भीतर पहुँच जाता है तो उसे जलानेके लिये बिजलीकी चिनगारीका उपयोग किया जाता है। इसके लिये एक स्पार्क प्लग लगा रहता है जिसमें उचित समयपर बिजली भेजनेसे चिनगारी निकलती है। यह चिनगारी देनेवाला प्लग सिलंडरके एक तीसरे छेद्में कसा रहता है।
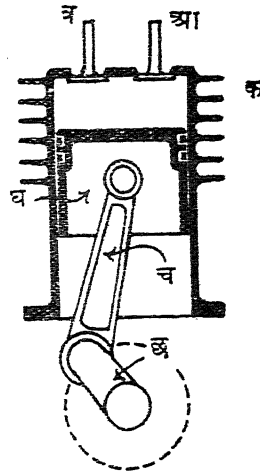
चित्र ७—सिलंडर पिस्टन और क्रैंक शैफ्ट ;
क—सिलंडर अ—आगमन वाल्व व—वहिष्कारक वाल्व घ—पिस्टन च—कनैक्टिंग रॉड छ—क्रैंक शैफ्ट

चित्र ८—स्पार्क-प्लग अर्थात् चिनगारी देनेवाला डाटा । तीरसे वह स्थान सूचित किया गया है जहां चिनगारी निकलती है।

और फिर पेट्रोल ? इन इञ्जनोंमें विशेषरूपसे हल्का पेट्रोल इस्तेमाल किया जाता है जो बहुत आसानीसे गैस बन जाता है। टंकीसे निकलकर पेट्रोल पहले कारब्युरेटरमें

जाता है। वस्तुतः यह एक बहुत पतली टोंटी होती है जिसमें बहुत महीन छेद होता है जब इसमेंसे पेट्रोल ज़ोरसे निकलता है तो यह महीन झींसीके रूपमें निकलता है और तुरंत गैसका रूप धारण कर लेता है जैसा हम आगे चलकर देखेंगे इस टोंटीके चारों तरफ हवा बड़ी ज़ोरसे खींची जाती है और पेट्रोल इसीमें मिल जाता है जिससे अत्यंत शीघ्र जलन-शील मिश्रण बन जाता है।
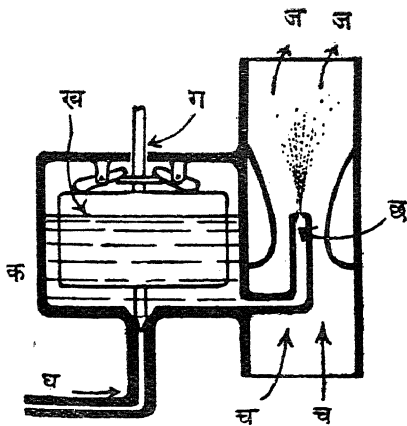
चित्र ९—कारब्युरेटर

क—वह डिब्बा है जिसमें पेट्रोल रहता है इसमें पेट्रोल घ, से अंकित पाइप द्वारा आता है। पेट्रोलमें एक खोखला डिब्बा ख तैरा करता है जिसके बीचमें सुई ग लगी रहती है। जब क में काफी पेट्रोल आ जाता है तो डिब्बा ख ऊपर उठना चाहता है जिसके कारण दो लिवर (तुलाडंड) दबते हैं और सुई नीचे जाना चाहती है और इस प्रकार पेट्रोल आनेवाले रास्तेको कसकर बन्दकर देती है। च—हवा जानेका मार्ग। छ—जैट जिसके द्वारा पेट्रोल आकर हवामें मिलता है। ज—इस रास्ते हवा और पेट्रोलका मिश्रण सिलंडरमें जाता है।

वाल्वोंको उचित समयपर खोलने और बन्द करनेके लिए कैम और टैपेड लगे रहते हैं। धुरीको एक ओर फुला दिया जाता है। इसी उभड़े हुये भागको कैम कहते हैं। जब घूमकर फूला हुआ भाग एक डंडेके नीचे आता है तो यह डंडेको उठा देता है। डंडेको ही टैपेड कहते हैं। जब डंडा ऊपर उठता है तो यह वाल्वको अपनी जगह-परसे उठा देता है और इस प्रकार सिलिंडरका छेद खुल जाता है और इसमें गैस भीतर जा सकती है।
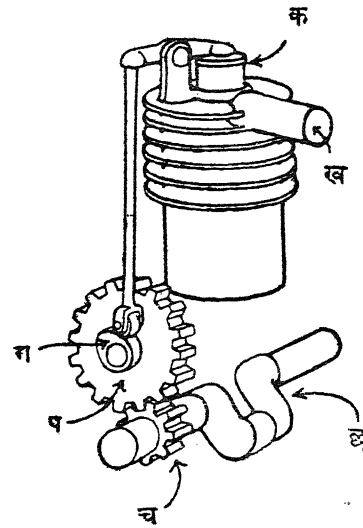
चित्र १०—वाल्व चलानेका प्रबंध। क—वाल्व, ख कारब्युरेटरसे आया हुआ पाइप, ग—कैम घ—दांतोंदार पहिया जिसमें च की अपेक्षा दुगने दांत रहते हैं। च क्रैंक शैफ्टपर जड़ा हुआ दांतीदार पहिया। छ—क्रैंक-शैफ़्ट।

ऐसा क्रैंकशैफ्टके दो बार चक्कर लगानेमें केवल एक बार करना पड़ता हैं। इस लिये कैमको धुरी और क्रैंक शैफ़्टमें इस प्रकार दाँतीदार पहिये लगे रहते हैं कि जितनी देरमें क्रैंकशैफ़्ट दो बार घूमता है उतनी देरमें कैम वाली धुरी एक बार घूमती है। इसी धुरीपर दूसरा कैम भी लगा रहता है जिससे दूसरा वाल्व खुलता है। अगर इञ्जनोंमें एकसे अधिक सिलंडर हो जैसा हमेशा होता है तो भी एक ही धुरीपर बहुतसे कैम लगानेसे काम चल जाता है। सिलंडर पीछे दो कैमोंकी आवश्यकता पड़ती है।

एक वाल्व आगमन (इनलेट-वाल्व) कहलाता है दूसरेको बहिष्कारक (एग्ज़ास्ट वाल्व) कहते हैं। अब देखना है कि इञ्जन किस प्रकार काम करता है।

इञ्जन बननेके बाद शीघ्र ही पता चला कि अच्छी तरह इञ्जन चलानेके लिए यह आवश्यक है कि पेट्रोल

और हवाके जलन-शील मिश्रणको दबाकर संकुचित कर दिया जाय। मोटरके इंजनोंमें अपने प्रारंभिक मापका पंचम अंश दबाकर कर दिया जाता है परन्तु हवाई जहाज़के इंजनोंमें मिश्रणको दबाकर सप्तम अंश कर दिया जाता है यद्यपि हवाई जहाज़ोंमें विशेष पेट्रोलकी आवश्यकता पड़ती है।

सामनेके पृष्ठके चित्रोंसे पता लग जायगा कि इंजन कैसे काम करता है।
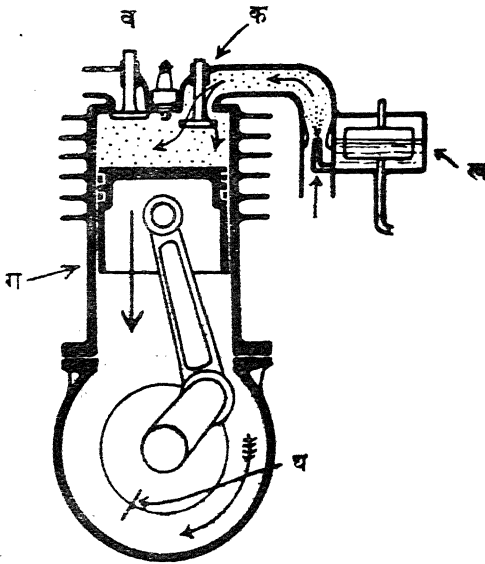
चित्र ११—पिस्टनकी पहली चाल। ग— पिस्टन नीचे जारहा है। क—आगमन वाल्व खुला है और वायु पेट्रोल मिश्रण सिलंडरके भीतर जारहा है। ख—कारब्युरेटर वा बहिष्कारक-वाल्व यह बन्द है। घ—जब क्रैंक इस बिन्दुपर पहुँचता है तब आगमन वाल्व बन्द होता है।

(१) पिस्टन अपने सबसे ऊपरवाली स्थितिसे नीचे जा रहा है। आगमन-वाल्व खुल गया है और बहिष्कारक-वाल्व बन्द है। चूँकि पिस्टन नीचे जा रहा है यह पेट्रोल और हवाको ज़ोरसे चूसता है और इस तरह सिलंडर पेट्रोल और हवाके मिश्रणसे भर जाता है।

(२) जब आगमन-वाल्व बंद हो जाता है, बहिष्कारक वाल्व भी बन्द हो जाता है। पिस्टन अब ऊपर उठता है और गैसको खूब दबा देता है जिससे गैस और भी जलन-

चित्र १२—पिस्टनकी दूसरी चाल। क—पिस्टन ऊपर उठ रहा है और गैसको संकुचित कर रहा है। आ—आगमन वाल्व और व–बहिष्कारक वाल्व दोनों बन्द हैं।
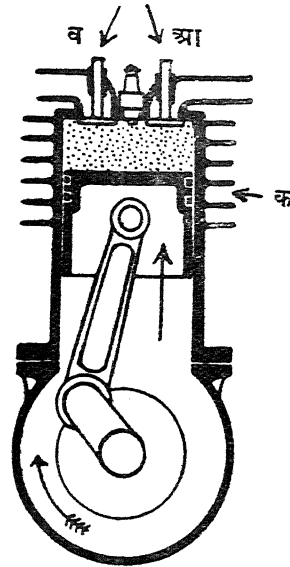
शील हो जाता है यहांतक कि इन्जनको हाथसे चलाना पड़ता है और इसके लिए हवाईजहाज़के प्रोपेलरको हाथसे घुमाना पड़ता है।

(३) ज्यों ही पिस्टन ऊपरी सिरेपर पहुँचता है (या नाम मात्र पहले ही) त्यों ही एक विशेष अधिक वोल्टेज-की विद्युत धारा चिनगारी देनेवाली डट्टे (प्लग) में भेजी जाती है जिससे उसके दो विंदुओंके बीच चिनगारी पैदा होती है। इससे गैस बारूदकी तरह तुरंत जल उठता है और पिस्टनको बड़े ज़ोरसे नीचे ढकेल देता है। पिस्टनके इसी चालमें शक्ति होती है। इससे क्रैंकशैफ़्ट बड़ी शक्तिके साथ घूमता है और उसमें इतना बल आजाता है कि दो तीन चक्कर खुद बिना और किसी शक्तिके प्रोपेलरको साथ लिये घूम सकता है।

(४) पिस्टनके नीचे आते-आते बहिष्कारक-वाल्व खुल जाता है और जला हुआ गैस जब पिस्टन ऊपर उठता है बाहर निकल जाता है। यह इतनी ज़ोरसे बाहर निकलता है कि बहुत आवाज़ होती है। मोटरकारमें इस आवाज़को दबानेके लिये एक विशेष यंत्र लगा रहता है परन्तु हवाई

जहाज़ोंको हल्का रखनेके लिये उसमें यह यंत्र नहीं लगाया जाता है। इसी लिये हवाई जहाज़के इंजन बहुत शोर मचाते हैं।
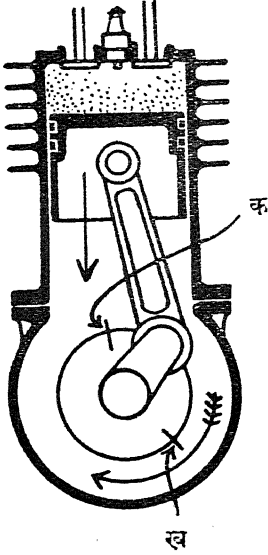
चित्र १३—पिस्टनकी तीसरी चाल। गैस जलनेके कारण पिस्टन शक्तिके साथ नीचे जा रहा है। क—जब क्रैंक इस विन्दुपर रहता है तब डाटमें चिनगारी निकलती है और गैस जल उठता है। ख—जब क्रैंक इस विन्दुपर आता है तब बहिष्ककारक वाल्व खुल जाता है।

जब पिस्टन ऊपर पहुँच जाता है तो बहिष्कारक-वाल्व बन्द हो जाता है और आगमन-वाल्व खुल जाता है और ऊपर लिखा कार्य-चक्र फिर चलता है। इस बार केवल इतना ही अंतर रहता है कि अब क्रैंकशैफ़्टको हाथसे घुमानेकी आवश्यकता नहीं पड़ती, अपने ही झोंकेसे यह कुछ दूर तक घूमता चला जाता है जिससे पेट्रोल भीतर खिंच आता है और संकुचित हो जाता है। चिनगारीके लगते ही जब पिस्टन शक्तिके साथ नीचे चलता है तो क्रैंकशैफ़्टमें नवीन शक्ति आजाती है और इसी प्रकार इंजन बराबर चलता रहता है।
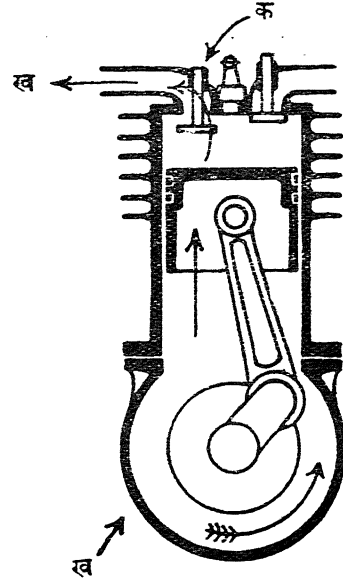
चित्र १४—पिस्टनकी चौथी चाल। पिस्टन ऊपर उठ रहा है, क—बहिष्कारक वाल्व खुला है, ख—इस पाइप द्वारा जला हुआ गैस बाहर निकल रहा है।

मोटरकारके इंजनोंमें क्रैंकशैफ़्टपर एक भारी पहिया लगा रहता है जिसे फ्लाईव्हील कहते हैं। इसके रहनेसे इन्जन प्राय: एक चालसे चलता है। यदि यह न रहे तो इन्जन बहुत झटका देकर चलेगा क्योंकि जब पिस्टन शक्तिके साथ चलेगा तब इन्जन तेज़ चलेगा और जब इन्जन गैसको संकुचित करेगा तब धीमा पड़ जायगा। परन्तु हवाई जहाज़ोंसे इन्जनोंमें फ्लाईव्हीलोंकी आवश्यकता नहीं पड़ती क्योंकि इसमें इतने सिलंडर रहते हैं कि किसी-न-किसी सिलंडरमें गैसके जलनेके बाद, पिस्टन शक्तिके साथ चलता रहता है और इस प्रकार क्रैंकशैफ्ट-पर प्राय: प्रत्येक क्षण किसी-न-किसी सिलंडरसे शक्ति मिलती ही रहती है और फिर प्रोपेलर भी फ्लाईव्हीलका काम बहुत कुछ अंशमें देता है।

मुद्रक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग।

मार्च, १९३९ मूल्य ।)

भाग ४८, प्रयाग की विज्ञान-परिषद् का मुख-पत्र जिसमें आयुर्वेद विज्ञान भी सम्मिलित है संख्या [illegible]

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces & Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

विज्ञान

पूर्ण संख्या २८८

वार्षिक मूल्य ३)

नियम

(१) विज्ञान मासिक पत्र विज्ञान-परिषद्, प्रयाग, का मुख-पत्र है।

(२) विज्ञान-परिषद् एक सार्वजनिक संस्था है जिसकी स्थापना सन् १९१३ में हुई थी। इसका उद्देश्य है कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययन को प्रोत्साहन दिया जाय।

(३) परिषद् के सभी कर्मचारी तथा विज्ञान के सभी सम्पादक और लेखक अवैतनिक हैं। मातृभाषा हिन्दी की सेवा के नाते ही वे परिश्रम करते हैं।

(४) कोई भी हिन्दी-प्रेमी परिषद् की कौंसिल की स्वीकृति से परिषद् का सभ्य चुना जा सकता है। सभ्यों को ५) वार्षिक चन्दा देना पड़ता है।

(५) सभ्यों को विज्ञान और परिषद् की नव-प्रकाशित पुस्तकें बिना मूल्य मिलती हैं।

नोट—आयुर्वेद-सम्बन्धी बदले के सामयिक पत्रादि, लेख और समालोचनार्थ पुस्तकें 'स्वामी हरिशरणानंद, पंजाब आयुर्वेदिक फ़ार्मेसी, अकाली मार्केट, अमृतसर' के पास भेजे जायँ। शेष सब सामयिक पत्रादि, लेख, पुस्तकें, प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र तथा मनीऑर्डर 'मंत्री, विज्ञान-परिषद्, इलाहाबाद' के पास भेजे जायँ।

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ४८ | प्रयाग, मीनार्क, संवत् १९९६ विक्रमी | मार्च, सन् १९३९ | संख्या ६

उत्तरी भारत और संयुक्त प्रान्तमें नदियोंकी समस्या

[ले०—श्री सुरेश शरण अग्रवाल]

उत्तरी भारतके इतिहासको संयुक्त प्रान्तका इतिहास कहना कोई अत्युक्ति न होगी। हमारा यह प्रान्त सदासे विद्या और राजनीतिका केन्द्र रहा है। मौर्यवंश और कुछ अन्य राजाओंको छोड़ कर सबकी राजधानी संयुक्त प्रान्तमें ही थी। आख़िर, इसका कारण क्या है? क्या यह एक बेतुकी घटना ही है या इसके पीछे कुछ तत्व है? हाँ, इसका कारण संयुक्त प्रान्तमें फैली हुई नदियाँ हैं। इस ऐतिहासिक प्रान्तमें गंगा, जमुना, गोमती, घाघरा, गंडक, रामगंगा कौशल्या आदि बड़ी नदियाँ बहती हैं। जहाँ हाथकी उँगलियोंकी तरह फैली हुई ऐसी नदियाँ हों, वहांकी मिट्टी और जलवायु भला उत्तम क्यों न हों। मिश्र बिना नीलके, सुमेर और बैबीलोन बिना दजला और फ़िरातके, चीन बिना ह्वँआंग हू और यांगटि सीक्यांगके, इटली बिना पोके क्या होते? इसका सोचना ही हमारे लिये इस समय कठिन है।

नदियोंके तटपर सभ्यताका विकास

पूर्व समयमें मनुष्य आज जैसा आगे नहीं बढ़ा था। प्रकृतिका वह अधिक गुलाम था परन्तु अब यदि प्रकृतिसे अलग बहुतसी बातोंमें सत्ता चलाता है तो कुछ बातोंमें हमारे पुरुषाओंसे वह पीछे भी है, ख़ैर, प्राचीन कालमें नदियाँ ही देशके जीवनको बनाती थीं। उनसे पीने, नहाने, धोने और खेतोंमें आबपाशी करनेको जल मिलता था भापके प्रयोगके पूर्व वे ही आवागमनका साधन थीं। अतएव सब बड़े-बड़े स्थान नदियोंके निकट बन गये और वहीं बौद्धिक, सामाजिक, कलात्मक उन्नतिमें सहायक बने। धीरे-धीरे यह तट-स्थित स्थान बड़े-बड़े नगर बने और फिर विशाल साम्राज्योंकी राजधानियाँ। इससे ज्ञात होता है कि नदियोंने भारतवर्ष और संयुक्त प्रान्तके

जीवनको ही नहीं बनाया परन्तु सर्व-संसारके जीवनमें उनका गहरा हाथ था।

यूनानी और रोम सभ्यताओंके उत्थानसे बंदरगाहों-की वृद्धि हुई। परन्तु यह नदियोंके तटपर स्थित स्थानोंकी पदवी न ले सके क्योंकि बंदरगाह अंदरका सामान बाहर और बाहरका अंदर भेजनेके लिये केवल उपद्वार थे और फलतः व्यापारियों और धनियोंकी बस्ती थे पर ज्ञान और शिक्षासे अधिक सम्बन्ध न रखते। आज भी संसारके विद्याके केन्द्र लन्दन, न्यूयार्क, मारसेई और बम्बई नहीं हैं। मशीनके आगमनसे अवश्य नदियोंका पूर्व जैसा महत्व नहीं रहा परन्तु अब भी सब जगह बहुत कुछ जनता खेती-पर निर्भर है अतएव नदियोंका आदर है। यही नहीं, खेतीके सिवाय आवागमनके लिये नदियाँ सरलतम साधन हैं और वास्तवमें कोई आवागमन विधि नदियोंसे सस्ती नहीं बैठ सकती दूसरे नदियोंको वशमें कर उनसे बिजली पैदा की जा सकती है जो इस वैज्ञानिक युगमें इतनी महत्व पूर्ण है।

नदियोंसे सिंचाई

उपर्युक्त कथनसे नदियोंके महत्वका अनुमान लगाया जा सकता है। परन्तु, यह बात पूर्वकालीन लोग भी जानते थे, नदियोंपर ध्यान देना चाहिये। सर्वप्रथम, उनका एक वार्शिक चक्कर है जिसमें एक ऋतुमें नदियाँ जलयुक्त होती हैं, कभी-कभी तटसे फैल जातीं और खेतोंको डुबा देती हैं। तब आता है वह समय जब वे सूख जाती हैं। प्राचीन लोगोंने सोचा यदि नदियोंकी चाल-ढाल कुछ बस-में रहे तो नदियोंसे और भी लाभ मिलेगा। इन्हीं विचारों-से आबपाशी या सिँचाईका जन्म हुआ जो मनुष्यकृत एक बहुत प्राचीन कारीगरियोंमेंसे है। आबपाशी बड़े पैमानेपर मिस्र, बैबीलोन, चीन और भारतमें भी होती थी। बैबीलोन (पुराने) में दो नदियाँ बहती थीं और उनके तो केवल ज़रासी ज़मीनकी पट्टी पास पड़ती थी। परन्तु वहाँके निवासियोंने पाँच हज़ार वर्ष पूर्व, नदियोंसे नहरें काटीं और नदियोंसे सुदूर खेतोंको सींचा। यही नहर प्रणाली सन् १२५८ तक ईराक़के फली भूत होनेका कारण थी, जब हुलार खाँकी नेतृत्वमें मंगोलोंने देशको जीता और लगातार सब नहरोंके मुँह बंद कर दिये और जिसका फल यह हुआ कि वह ईराक़ जहाँ १३ वीं शताब्दि तक संसार-में उन दिनोंका सबसे बड़ा नगर (बग़दाद) अब था ऊजड़ हो गया और अभी तक नहीं पनपा हैं। मिश्रवालों-ने अब डाम बांधना शुरू कर दिये हैं जिससे वर्षमें दो तीन फ़सलें हो जाती हैं।

प्राचीन भारतमें सिंचाई

भारतमें भी सिंचाई नई चीज़ नहीं है। पश्चिमवाले भारतको गाथापूर्ण देश समझते थे परन्तु १९०९ में कौटिल्यकी पुस्तक अर्थशास्त्रके मिलनेपर तो वह अवाक रह गये। इस महान ग्रन्थसे पूर्वकालीन भारतका बहुत कुछ पता चलता है और आधुनिक अधिक आदरणीय हो जाता है। ग्रन्थसे ज्ञात होता है कि ईसा से ३०० वर्ष पूर्व महान् मौर्य साम्राज्य आधुनिक अंग्रेज़ी साम्राज्यसे बड़े प्रदेशपर राज्य करता था। काठियावाड़से प्राप्त एक पत्थरपर लिखा मिला है कि सम्राट अशोककी आज्ञासे कि वृहत्-जल भंडार जिसका नाम सुदर्शन झील था, उसके गवर्वर—तुशापा फ़ारसीने पहाड़के पार डाम काट कर बनाया था। एक सिंचाईका प्रबन्ध कावेरी नदीके अनीकट (जहाँ-से वह डेल्टा बनाती है) स्थानपर पहली शताब्दिमें किया गया था और १९ वीं शताब्दि तक लगातार काममें आया। अंग्रेज़ी साम्राज्य-अंतर्गत भारतमें सिंचाईके सरदार सर आर्थर काटनने इसकी मरम्मत कराई।

नदियोंमें दीर्घकालिक परिवर्तन

ऊपर नदियोंके पुराने साम्राज्यका लघुवृतांत दिया गया है। वार्षिक परिवर्तनके अलावा दीर्घ कालिक परिवर्तन भी होते हैं। आश्चर्य होगा कि पंजाबकी नदियाँ अपना मार्ग बदलती हैं और अधिकतर पश्चिमको जाती हैं। वहां तो रेगिस्तान और नदियोंमें मानो द्वन्द्व छिड़ रहा है और रेगिस्तान नदियोंको उत्तर पश्चिमकी ओर फेंक देता है। मोहेञोदारो और हारप्पाकी खोज इसका एक अटूट प्रमाण है। इसके अतिरिक्त सिन्ध और राजपूतानाके रेगिस्तान-के नीचे और नगर दबे हुये हैं। पांच हजार वर्ष पूर्व वहां जल बहुत रहा होगा आजकल तो जितना जल है

उतनेपर जीवन चल सकना असम्भव है। इन परिवर्तनों-से महान हानि होती है। क्या यह रोके जा सकते हैं?

पूर्वीय नदियां गंगा और ब्रह्मपुत्रमें भी बड़े परिवर्तन होते हैं। २०० वर्ष पूर्व गंगा और ब्रह्मपुत्र अपना जल दो भिन्न मार्गोंसे छोड़ते थे जिनमें लगभग डेढ़ सौ मील-का अन्तर था। एक तीसरी राह और भी थी जिससे पानी सीधे समुद्रमें जाता था या इनमेंसे एक नदीमें मिल जाता था। परन्तु १७८७ और १८१८ के बीच महान परिवर्तन हुये जिसके फलस्वरूप गंगा और ब्रह्मपुत्रकी धारायें २०० मील अंदर ही मिल जाती हैं। इससे इन भागोंका जीवन बहुत बदल गया है।

डेल्टावाली नदियोंने गांवोंको तो ढाया ही है किन्तु विशाल नगरों—जो पूर्वकालीन राजाओं और निवासियोंके धैर्य, परिश्रम और प्रतिभाका फल थे—की भी रेड़ मार दी। पाटलीपुत्र जो ईसाके ६०० वर्ष पूर्वसे ५०० वर्ष बादतक भारतका बड़ा नगर था पांच नदियों (गंगा, सोन, घाघरा, गंडक और पुनपुन) के संगमपर था। अब वह दफ़न है, आधुनिक पटनाके तले और भूतलसे १७ फुट नीचे है। इसका पतन कोई राजनीतिक आक्र-मणोंसे नहीं हुआ, भयानक बाढ़ोंसे हुआ। डेल्टावाले भागोंमें नगरका तल तो गिरता जाता है और उसके इर्द गिर्दकी ज़मीन उठ जाती है जिसके कारण बाढ़के पानीकी रोकके हेतु बांध बांधना पड़ते हैं और जब नगर जैसे पाटली-पुत्र, दो नदियोंके बीचमें आ जाता है तब तो दोनों ओरसे आक्रमण होते हैं और बांध व्यर्थ हो कोई रोक न कर पाते जिसके कारण नगरोंपर मिट्टीकी मोटी तह बैठ जाती है। आधुनिक अन्वेषणोंसे पता चला है कि पाटली-पुत्रमें सचमुच बाढ़ें बहुत आती थीं, और अंतमें नगर मिट गया। हो सकता है कि मगध राज्यकी छटी शताब्दि बाद बोलती इसी कारणसे बंद हो गई हो और जब राजा नदियोंकी घोर प्रक्रिया न रोक सके होंगे।

यही नहीं, नदियोंके किनारोंके निकट दलदल बन जाते हैं जिससे भयानक रोग उत्पन्न हो निवासियोंको ग्रस लेते हैं। गौड़ जो पांचवीं शताब्दिसे १५ वीं तक पूर्वी भारतकी राजधानी थी इसी चक्रमें फँस गया। यह गंगा-की दो शाखाओंके बीच स्थित था और महानंदा—एक और बड़ी शाखा—पास बहती थी। नदीके पथ परिवर्तन-से वहां दलदल हो गये जिन्होंने सन् १५७५ में अधिकांश जनताका काम तमाम किया और वह नगर जिसकी आबादीका अनुमान १५ वीं शताब्दिके पुर्तगीज व्यापारी २० लाखसे ऊपर लगाते थे अब घने जंगलोंके तले दबा पड़ा है! पाटलीपुत्र और गौड़के बाद इस मालामें पूर्वी भारतका बड़ा नगर कलकत्ता है। गत २०० वर्षोंमें इसका तल चारों ओरकी भूमि २ से ४ फुट तक नीचे हो गया है। क्या इसकी भी वही दुर्दशा होगी? इन नदियोंके पथ परिवर्तनपर ध्यान देना चाहिये।

इस प्रान्तकी नदियां

'हमारे प्रान्तमें भी नदियोंका काफ़ी प्रकोप है। यमुना तो अधिकतर सूखती जाती हैं। पहले ब्रजप्रदेश वृन्दावनके पास बहती थीं किन्तु अब बहुत दूर हट गई हैं। मथुराके निकट भी अब वह हट रही हैं। यही हाल आगरेमें है। गंगाका पथ भी जरा-जरा बदलता है। नदियाँ नगरोंसे हट कर गावोंकी ओर जा रही हैं। रुहेलखंडमें गंगाकी शाखा रामगंगा बहती है। उसकी भगिनी या शाखा कौशल्या रामपुर रियासतमें बहती है परन्तु धीरे-धीरे कौशल्या रामपुर नगरसे दूर होती जाती है। जनता तो कुछ 'हां' 'न' करती नहीं और न समझती, ज्यादा हुआ तो समझ लिया कि अब रामजीने ऐसा कर दिया कि हमें स्नानके लिये ज्यादा चलना पड़ता है। वास्तविक बात मालूम नहीं हो पाती। आखिर नदियोंको कबतक यों ही छोड़ रखा जायगा। जब उनके ऊपर नियंत्रण हो सकता है तो क्यों न किया जाये। और हां, यही नदियां बाढ़में सहायक होती हैं और लाखोंकी संख्यामें प्राणी मर जाते हैं। (देखिये विज्ञान अक्टूबर १९३८ भाग ४८ संख्या १ में प्रकाशित लेख 'उत्तरी पूर्वी भारतमें बाढ़की समस्या।)

नदियोंके सम्बन्धमें सावधानी

उपर्युक्त दुःखद अपूर्ण वृतांतसे ज्ञात होगा कि संयुक्त प्रान्त और भारतीय अन्य नदियोंकी देख-रेख शीघ्र ही करनी चाहिये, जितनी देरी होगी उतना बुरा होगा। हमारे अंग्रेज़ी शासकोंने भी इस ओर ध्यान दिया था और

ख़ूब रुपया व्यय किया, बस इतना ही किया। नीचे भारतीय नदियोंपर भारत सरकारके १९०३ के प्रधान इञ्जीनियर सर स्प्रिंगने जो ज़ोर दिया है उसका संक्षिप्त-सा परिचय दिया जाता है—

ऐसे अच्छे धन—नहरें और रेलों—के रखनेवाले राज्यसे यह आशा करना अनुचित न होगा कि वह कुछ थोड़ासा वार्षिक ख़र्च मौलिक अनुसंधानमें इस प्रकार करे कि व्ययसे अधिक उपजके रूपमें प्राप्त होवे जिसमें या तो जनताके कामोंमें व्यय कम पड़े या जब काम बन जाये तो जनताकी आर्थिक कठिनाई दूर हो जावे। अबतक भारतवर्षकी नहरों और रेलोंके प्रबन्धमें ऐसे अनुसंधानकी सूझको भी कोई योजना नहीं की गई है। इञ्जीनियर ग़ल्ती करते चले गये हैं, कोई लाभ मिला तो अकस्मात वरना कामसे नहीं या अपने पूर्वजोंके अनुभवसे, और प्रत्येक अपनेको भाग्यवान मानता है यदि प्रकृतिकी भयानक शक्तिसे—जिसमें अधिकतर विशाल नदियाँ ही हैं—जिससे उसका सामना पड़ता है बच जाय। अबतक लोगोंको कोई उत्साह नहीं मिला है, और सचमुच हतोत्साह ही मिला है अपने अनुभव प्रकाशित करनेका और अतएव संसारके अन्य देशोंसे बढ़िया इञ्जीनियरोंके होनेके बावजूद और इनके नदी-सम्बन्धी विशाल कार्य करनेपर भी बहुत कम सफलता मिली है।

कुछ साधन

अतएव निम्न आवश्यकतायें सामने खड़ी हो जाती हैं

(१) एक पैमाइश विभागकी स्थापना जो सम्पूर्ण क्षेमकी जलकी दृष्टिसे जाँच करे और जिसमें भौगर्भिक तत्वोंपर ध्यान रखा जाये।

(२) एक नदी-भौतिक-प्रयोगशालाकी स्थापना जो प्रान्तकी नदियों, बाढ़, सिंचाईका अध्ययन करे।

नदी सम्बन्धी प्रयोगशाला आजकल नई बात नहीं है-प्रत्येक देशमें कुछ-न-कुछ अवश्य होती हैं। नीचे संसारके जल सम्बन्धी अन्वेषणालयोंके नाम दिये गये हैं।

प्रयोगशाला	अध्यक्ष
१. जर्मनी	
बर्लिन (शारलोटेन बुर्ग)	प्रांस्स
ड्रेसदेन	एंगेल्स
दान्तसिश	विन्केल
ब्रुन्सविक	मोयल्लर
कार्ल्सरूहे	रेहबोक
विलहेल्म शावेन	क्रोइगर
मुनिश	थोमा
गोयतिन्गन	प्रांदल्ल
२. आस्ट्रिया—	
वियना	शाफ़रनाक फ्रोख़ हाईमेर
ग्रास	शोकलित्श
३. चेकोस्लोवाकिया—	
ब्रुन	इशाअकेक
४. हंगरी—	
बुडापेस्ट	रोहरिन्गेर
५. रूस	
लेनिनग्राड	तीमोनोफ़
ताशकंद	
६.—स्वेडन	
स्ताकहाल्म	फेलेनीयस
७.—नार्वे	
तृंधजेम	हेग्स्ताल
८. फ्रांस—	
ग्रेनोब्ल	
९. इटली	
मिलान	मारसोलो
पादुआ (रायल अंग्रेजी स्कूल)	शीमेमी
१० हालैंड—	
दैल्फ़त	थिसजी

संयुक्त राज्य अमेरिका—

(अमेरिकाकी प्रयोगशालायें कभी विश्वविद्यालयोंसे मिली होती हैं, कभी वहां व्यक्तिगत प्रबंध होता है)

कार्नेल विश्वविद्यालय, न्यूयार्क	फ्रीमैन
राज्य विश्वविद्यालय, ईओवा	नागलेर

वोरसेस्तर पार्ली टेकनील, वोरसेस्तर	आल्लेन
आलाबामा पावर कालिज,	
बरमिंघम	विन्टर

यह सूची पूरी नहीं है। उदाहरणार्थ इटलीमें बहुत-सी प्रयोगशालायें रोम और पीसाके राज्य इन्जीनियरिंग स्कूलोंसे मिली हुई हैं, आदि।

नदियोंपर वैज्ञानिक कार्य

राज्यक्रान्तिके बाद नदी-भौतिक-ज्ञानका प्रारम्भ इटलीसे होता है जहां १७ वीं शताब्दिमें भी वहांके विज्ञानाचार्यों लेयोनार्डो दाविन्ची, गार्लीलेयो, टारीचेली, ने इटलीकी गंगा-पो-की समस्याओंपर अपना समय और शक्ति लगायी थी। इस विज्ञानपर सर्व प्रथम पुस्तक श्री पाउलफ्रीसी द्वारा लिखित, जो मिलनमें भौतिकके अध्यापक थे, सन् १७६४ में निकली थी। धीरे-धीरे रूस, जर्मनी, अमेरिकाने भी स्वदेशोंके धवल धनको संभालकर रखनेका आयोजन किया।

रिंगके प्रस्तावोंपर हमारी सरकारने कुछ ध्यान न दिया। एक कानसे सुन दूसरेसे मानों उड़ा दिये। ऐसे विशाल भूप्रदेश—भारतवर्ष—में केवल दो प्रयोगशालायें हैं और वह भी छोटी-छोटी नाम मात्रकी। एक तो पूना निकट स्थित खंदकवसलामें, दूसरी लाहौरमें। और संयुक्त प्रान्तमें तो एक भी नहीं।

जैसा ऊपर लिखा है नदियोंके जलसे बिजली भी उत्पन्न की जाती है। हमारे प्रान्तमें पूर्व सरकारने कुछ योजनायें कीं तो किन्तु महालागतके विचारसे अनुपम और संसार प्रदर्शिनीमें पारितोषिक एवं स्वर्णपदक प्राप्त करने योग्य। इसकी चर्चा मेरे एक पिछले लेख 'भारतमें बिजलीका प्रश्न' (देखिये विज्ञान सितम्बर १९३८ भाग ४७ संख्या ६) में की गई है।

अतएव अब हमारी प्रार्थना है कि नदी सम्बन्धी प्रयोगशाला प्रान्तमें खुले और नदियोंपर नियंत्रण रहे। हर्षकी बात है कि गत वर्ष बाढ़के कारण जाननेके लिये एक कमीशन भी हमारे कांग्रेस मंत्रियोंने भेजा जिसने अपनी रिपोर्ट भी दे दी है परन्तु शोक है कि एक बड़े कार्यकर्त्ता जो बनारस विश्वविद्यालयमें भूगर्भके सुयोग्य अध्यापक थे काम करते-करते पहाड़ी चट्टानों और गढ़ोंके प्राप्त हुये।

राष्ट्र और प्रान्तके हेतु जाग्रत सरकार इस समस्यापर भी ध्यान दे। यदि एक सफल योजना बन गई तो नदियां तो बसमें आ ही जायँगीं परन्तु हम सबको लाभ जो होगा उसकी कुछ सीमा नहीं। यही नहीं हम यह भी चाहते हैं कि नदी प्रदेश विहार, उड़ीसा और बंगाल (वहां तो दो नदियां बड़े-बड़े डेल्टे बनाती हैं) की सरकार भी इस महान् प्रश्नपर शीघ्र ध्यान दे और शीघ्रातिशीघ्र अपनी स्कीमें कार्यान्वित करें।

वायुयान सम्बन्धी भारतीय समस्यायें

[ले० श्री ब्रजवल्लभ जी]

विज्ञान इस समय अपने उच्च शिखरपर है। हमें अपने जीवनके एक-एक क्षणको बहुत कृपणताके साथ समाप्त होने देना चाहिये और इसी कारण भारतके नेताओंको जिनको अपने एक वर्षके सभापतित्वमें बहुत कार्य करनेकी इच्छा हुई उन्हें इसी कारणसे वायुयानका आश्रय लेना पड़ा। यद्यपि महात्मा गाँधी अपने बैलगाड़ीके महत्वको ही रखना चाहते हैं परन्तु फिर भी हमारे देशके बड़े-बड़े नेता कभी-कभी वायुयानका उपयोग करते हैं।

मैं अपने पाठकोंको यह बताना उचित समझता हूं कि वायुयानका भारतमें केवल एक सवारीके तौरपर ही प्रयोग होगा क्योंकि अखिल भारतीय कांग्रेसका ध्येय भारतको युद्ध द्वारा नहीं किन्तु अहिंसा और सत्य द्वारा स्वतन्त्र करनेका है। और इस कारणसे भारतीय पुरुष

वायुयानको यौद्धिक प्रयोगमें न लायेंगे परन्तु फिर भी जैसा कि अखिल भारतीय औद्योगिक कमेटीका भारतको एक कारखानेंका देश बनानेका विचार है तो मेरे विचारमें इस वायुयानका बनाना बहुत लाभदायक सिद्ध होगा परन्तु इसके साथ-साथ साधारण सवारीके वायुयानका इतना महत्व नहीं होगा जितना युद्ध सम्बन्धी वायुयानों-का रहेगा। भारतमें वैज्ञानिकोंकी कमी नहीं है। इनमेंसे एक दो भी यदि वायुयानोंका अध्ययन करें तो बहुत ही अच्छा होगा जैसा कि पाठकोंको आगे पढ़कर मालूम होगा। ऐसे समयमें मनुष्यकी बनाई हुई वस्तुओंमें वायुयान ही का सबसे अधिक मूल्य है। मैं अगर थोड़ेसे शब्द युद्ध सम्बन्धी वायुयानोंके संबन्धमें लिखूँ तो अनुचित न होगा। पाठक उसको पढ़कर समझेंगे कि आगामी युद्धमें वायुयानका क्या स्थान है।

विविध प्रकारके वायुयान

वायुयान यों तो अनेक प्रकारके होते हैं परन्तु निम्न-लिखित मुख्य हैं।

१. प्रथम श्रेणीके वायुयान युद्धमें शत्रुओंको आगे बढ़नेसे रोकनेके कार्यमें लाये जाते हैं। पाइलटके समीप तीन मशीनगनें होती हैं जोकि चारों ओर घूम सकती हैं और इनके प्रयोग द्वारा वह शत्रुओंको बढ़नेसे रोकता है। इस प्रकारके वायुयानको सबसे अधिक गति ४७५ मील प्रतिघंटा तक पहुंच सकी है।

२. द्वितीय श्रेणीके वायुयान हरीकेन कहलाते हैं इनमें दो मनुष्य बैठकर मशीनगन चलाते हैं। इनकी भी मशीन-गनें चारों ओर घूम सकती हैं परन्तु इसका वेग १६० मील प्रतिघंटा तक ही है।

३. ततीय श्रेणीके वायुयान दिन और रात भर नगरोंको गोलों द्वारा भस्म करनेके काममें आते हैं।

४. चतुर्थ प्रकारके वायुयान युद्धमें योद्धाओंको ले जानेके काममें आते हैं।

इन्हीं वर्षोंमें जर्मनीने इटलीको चार वायुयान भेंट किये हैं। यह वायुयान ३६० सैनिकोंको उनकी मशीन-गनों, गोला बारूद और मोटर बाइसिकिलोंको साथ लेकर २१० मी० प्रतिघंटाके वेगसे उड़ सकता है और जल और थल दोनोंपर चल-उतर सकता है। इस वायु-यानमें इसके चलानेके लिये १२ इंजिन होते हैं और अगर कोई इंजिन खराब हो जाता है तो मरम्मतके लिये उसीमें एक वर्कशाप भी होती है।

यह वायुयान युद्ध क्षेत्रमें बहुत धीरे २४५ मी० प्रतिघंटाके वेगसे उतर सकता है।

५. पंचम प्रकारके वायुयान छोटे प्रकारके होते हैं और यह बड़े-बड़े सामुद्रिक जहाजोंमें आवश्यकताके समय प्रयोगके हेत रखे रहते हैं। बहुतसे वायुयानोंमें पाइलटोंकी भी आवश्यकता नहीं पड़ती। केवल एक साधारण व्यक्ति उसको पृथ्वीपर उतारनेके लिये रहता है। शेष सब चलानेका काम पृथ्वीपर बैठा हुआ व्यक्ति बेतारकी कलाओं द्वारा करता है। इसका हमको आश्चर्य होगा परन्तु अभी एक वायुयान अमेरिकासे जर्मनी तक इसी तारहीन निरीक्षण द्वारा पहुँचा और अन्तमें पाइलट-ने सिर्फ उसके पहूँचनेके स्थानपर अपना काम किया था इस प्रकारके वायुयान आक्रमण कार्यमें लाये जाते हैं। उसपर बैठा हुआ मनुष्य अपना मन मशीनगनोंसे गोला फेंकनेमें ही लगाये रहता है।

अधिकतर वायुयान गैस छोड़नेके काममें लाये जाते हैं। बमके गोले तो वहीं पर छोड़े जाते हैं जहाँपर सब लोग एकत्रित हों नहीं तो फैले हुये मनुष्योंपर तो उसका प्रयोग व्यर्थ ही होता है वहांपर तो गैसका प्रयोग लाभदायक होता है। बमसे तो तीन वर्ग मील भूमि ही नष्ट की जा सकती है।

भारतका प्रश्न

इससे हमको ज्ञात होता है कि आगामी युद्धमें वायुयानका कितना भाग रहेगा। मैं तो ऐसा समझता हूं कि आगामी युद्ध पृथ्वी क्षेत्रोंमें आकर नहीं लड़ा जायगा किन्तु यह तो प्रयोग शालाओंसे ही होगा। ऐसी मूल्यवान वस्तुका भारतमें निर्माण होनेसे कितना धन एकत्रित हो सकता है।

पाठकोंको ऐसा विचार होगा कि अभी तो भारतमें साधारण कलाओंका बनना ही कठिन है तो फिर वायुयान तैय्यार करना तो स्वप्नसे भी अधिक असम्भव-सा है।

मेरे विचारसे यह बहुत ही आसान है। अभी तक किसी पुरुषने इस ओर ध्यान नहीं दिया है और इसलिये ऐसा है। इस समय जबकि भारतकी शासन प्रणाली भी इसके अनुकूल है और समस्त भारतीय कला संबन्धी कमेटी पं० जवाहरलाल नेहरूके सभापतित्वमें है अच्छा मौका है और वह इस ओर अवश्य ही ध्यान देगी।

इसके साथ-साथ इसके चलानेकी विद्याका अध्ययन करना भी बहुत आवश्यक है। इसको भी वर्तमान शासन प्रणालीको मदद देना चाहिये। और इस समय तो अवश्य जबकि साम्राज्य भरकी डाकका वायुयानसे आना जाना आरम्भ हो गया है इसपर ध्यान देना चाहिये। तीन वर्षका समझौता जो भारतीय सरकार और फ़्लाइंग क्लबोंमें हुआ था वह भी इस सालके अन्तमें समाप्त हो जायगा और इस कारण हमको और भी ध्यान देना चाहिये। और इस लिये गत दो वर्षोंकी वायुयान संबंधी उन्नतिपर विचार करना चाहिये।

गत १९३६-३७में भारतीय गवर्नमेंटने १४३१२८ रु० सात क्लबोंको बटे थे जिसमेंसे सरकारका २३००० रु० वायुयानमें खर्च होनेवाले पेट्रोल फ़ंडसे वसूल हो गया इसी प्रकार १९३७-३८में गवर्नमेंटने १३६५०० रु० दिये और २१००० रु० पेट्रोल टैक्ससे वसूल कर लिये।

इसीमें यह भी बतला देना उचित होगा कि गवर्नमेंट ५१००० रु० पेट्रोल टैक्स, इनकम टैक्स चुंगीके रूपमें वायुयानोंके क्लबोंसे वसूल करती है। ऐसी स्थितिमें अगर गवर्नमेंट वायुयान चलानेकी विद्या भारतीय युवकोंको दिलवाना चाहे तो उसका १ लाख रु० से अधिक खर्च न होगा। इतना तो सरकार प्रसन्नता पूर्वक अपने बजेटसे दे सकती है।

वायुयानोंका इतना प्रयोग होनेपर भी पाइलटोंकी संख्या न बढ़ती। गत तीन वर्षोंसे उनकी संख्या इस प्रकार है—

१९३५	—	६
१९३६	—	१८
१९३८	—	२०

इसका मुख्य कारण यह है कि व्यापारी पाइलटोंने विद्या सीखी और इसलिये रात्रिमें वायुयानोंका प्रयोग गत १९३६ में ६६ घंटेसे गत १९३७में ३४४ घंटे हो गया।

अन्य देशोंमें वायुयान

अगर हम इन संख्याओंको किसी और देशसे मिलावें तो हमको आश्चर्य होगा और यह सोचेंगे कि अभी तक हम संसारसे बहुत पीछे हैं। महायुद्धसे पहले १९१४में ब्रिटेनमें १५० वायुयान थे और २५० उसकी विद्याको जानते थे परन्तु इस समय वहाँ पर ३००० वायुयान हैं और २०००० पाइलट इसकी विद्या जानते हैं और उनमेंसे ३००० काम करते हैं। जर्मनीमें पाइलटोंकी संख्या देख कर अचम्भा होता है वहाँ पर १५००००० पाइलट हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि जिस प्रकार भारतमें भारतीय यूनिवर्सिटीमें पलटनकी विद्या पढ़ाई जाती है उसी प्रकार वहाँपर पाइलट होनेकी विद्या सिखाई जाती है। रूसमें तो ठिकाना ही नहीं।

इसके अलावा हमको वायुयानको वैज्ञानिक लाभकी दृष्टिसे देखना चाहिये और हमको यह भी देखना चाहिये कि भारतके वैज्ञानिक उसमें क्या-क्या और कर सकते हैं।

वायुयान इस संसारमें केवल ३० साल पहले आया परन्तु तिसपर भी इसने आजकल अपना काफ़ी प्रचार कर लिया है। इस वायुयानने इंगलैन्डकी विदेशी राजनीतिको बदल दिया है और थोड़े दिनोंमें और भी बदल देगा। यह सब केवल वायुयानके ही कारण हुआ है। इतना सब तो केवल ३० ही सालमें हुआ है अब अगले तीस सालमें क्या-क्या परिवर्तन हो सकता है इसका हम क्या अन्दाजा लगा सकते हैं? अभी हाल ही में, इगोर आई सिकार्स्कीने जो कि एक प्रसिद्ध रूसका आदमी है वायुयानकी भविष्यमें उन्नतिके बारेमें बताया है, सिकार्स्कीने १९१४ में एक ऐसा जहाज़ बनाया था जो कि पाँच टन वजनमें था और जिसमें १५ आदमी जा सकते थे और उसने इसीसे वेगका रेकार्ड किया था जो कि कई वर्षों

तक चलता रहा। उसने न्यूयार्कमें एक व्याख्यान दिया था। इस व्याख्यानमें उसने वायुयानकी गति, ऊंचाई और नापके बारेमें कहा था।

अधिक-से-अधिक गति

आजकल अधिक-से-अधिक वायुयानकी गति ४४० मी० प्रतिघन्टा है ६४५ फुट प्रतिसैकंड है यह गति बन्दूककी गोलीकी गतिकी आधी है वायुयानकी मामूली गति जिससे कि आजकल चलते हैं २०० मील प्रतिघन्टा है। परन्तु शायद यह गति थोड़े ही दिनोंमें ३०० मी० प्रतिघन्टा हो जाय। किर्साने कहा है कि ३० वर्ष बाद वायुयानकी गति १००० मी० प्रतिघन्टा हो जायगी परन्तु सिकार्स्की इसमें विश्वास नहीं करता क्योंकि यह मालूम किया गया है कि हवाकी एक चलते हुये चीज़के साथकी गति एक अजीब तरहसे बदल जाती है—यदि यह गति आवाज़की गतिसे ज्यादा हो जाय जो कि ७६० मील प्रतिघन्टा है। इसका असर वेगपर ५०० मील प्रति-घन्टाके बाद ही से होने लगता है इसलिये वायुयानकी अधिक-से-अधिक गति ५०० मील प्रतिघन्टा हो सकती है।

वायुयानकी अधिक-से-अधिक ऊँचाई

वायुयानकी आजकलकी अधिक-से-अधिक उड़नेकी ऊँचाई ७२३३५ फुट है। इस ऊँचाईपर चलानेवालेके नीचे ६५ प्रतिशत हवा है और इसलिये इससे ऊँचे बढ़ना मुश्किल है। ५४००० फुटकी ऊँचाई तक जानेके लिये चलानेवाले-को खास चीज़ें पहननी पड़ती हैं और आक्सीजन साँसमें लेनी पड़ती है। १०००० फुटके ऊपर कोई आदमी अधिक समय तक मामूली तरहसे नहीं घूम सकता। इंजिन भी उसके बाद काम नहीं करते जब तक उनके साथ खास बातें न की जायँ। उसको सामुद्रिक सतहके दबावपर लानेके लिये उनके साथ एक हवा दबानेकी मशीन लगाई जाती है। ज्यादा ऊँचाईपर पेट्रोल बहुत शीघ्र ही जल उठता है इसलिये इसको दबाववाले बक्सों-में रखा जाना चाहिये। और इसलिये बक्सको काफी भारी होना चाहिये कि यह इस दबावको सह सकें।

वायुयानका भीतरी दबाव

१०००० फुटके ऊपर एक मनुष्य ज्यादा समयतक नहीं उड़ सकता इसलिये पूरे डिब्बेको ही दबावकी जरूरत पड़ती है। १०००० फुटकी ऊँचाईपर प्रतिवर्गफुट १५७२ पौण्ड होता है और २५००० फुटपर यह केवल १८५ पौण्ड ही रह जाता है। इसलिये यदि जहाज़ २५००० फुटवाले दबावपर लानेके लिये बाहरी दबावकी जरूरत पड़ेगी इसलिये खिड़कियों आदिको इतना काफी मजबूत होना चाहिये कि वे इस भारी दबावको सह सकें। क्योंकि यदि कहीं भी छोटासा छेद हो गया तो सब मनुष्योंके मरनेकी सम्भावना है।

सिकार्सकी का यह विचार है कि वे वायुयान जो पेट्रोलसे चलते हैं १०,००० फुटके ऊपर नहीं आ सकते।

व्यापारिक समस्यायें

सिकार्सकी का यह विचार है कि १००० टनके जहाज़ जो कि १००० आदमियोंको ले जा सकें बनाये जा सकते हैं। उसका यह कहना है कि पाँच जहाज़ जो कि सिर्फ १०० आदमी ले सकता है एक स्टीमरको जगह जो कि २५०० आदमी ले जाता है के लिये काफी है क्योंकि जितने समय-में स्टीमर एक बार आ सकता है उसी समयमें वायुयान पांच बार आ सकता है। इसलिये १०० टनवाले वायुयान बहुत शीघ्र ही बनने चाहिये। इन सब जहाज़ोंमें केवल तैरनेवाले तालाबको छोड़ कर बाकी सभी चीजें जो कि एक स्टीमरमें होती हैं होंगी।

परन्तु यदि हाइड्रोजन द्रव पेट्रोलकी जगहपर काममें लाई जाने लगे तो यह सब बातें आसान हो जाँय और तब एक आदमी विषुवत् रेखाके चारों तरफ बिना रुके ही जा सकता है।

प्रोफेसर जे स्मालने ग्लेसगो विश्वविद्यालयमें अपना यह विचार बतलाया था कि जितना धन कि क्वीन मेरी जहाज द्वारा एटलानटिक महासागरके आरपार जानेवाले जल यात्रियोंको कुल वर्षमें खर्च करना पड़ता है उससे एक तिहाई धन उनको वायु द्वारा यात्रा करनेमें लगाना

पड़ेगा परन्तु यह तब ही सम्भव है जबकि वायुयानोंके लगातार आने जानेवाले बेड़ेका प्रबन्ध हो जावे।

वायुयानके इंजिनमें टरबाइनकी उपयोगिता

एक सौ टनकी मशीनके चलानेके लिये २०,००० हार्स पावरकी आवश्यकता पड़ती है। अगर यह शक्ति इण्टरनल कम्बश्च एंजिनके द्वारा ली जावे तब तो १८० सिलेण्डर चाहियेंगे और जिसके कारण बहुतसे झमेले करने पडेंगे। परन्तु इससे बचनेके लिये एक टरबाइन ही प्रयोगमें लाई जा सकती है। और फिर यह भी सम्भव मालूम पड़ता है कि भापकी शक्तिका ही वायुयानमें प्रयोग हो जायेगा।

अखिल साम्राज्य वायु-योजना और उससे भारतको कैसे लाभ होगा

इस १६३८ वर्षमें प्रारम्भसे ही अखिल साम्राज्य-वायु-योजनाके प्रयोगसे मनुष्योंकी रुचि और आकर्षित हो गई परन्तु फिर भी खेदका विषय है कि गवर्नमेण्ट किसी ऊँची शिक्षाका प्रबन्ध नहीं करती है। टाटा कम्पनीने अपना एक स्कूल इस प्रकारकी विद्याका अपने खर्चेपर खोला है। बिना विशेष विद्याके जिसने सामुद्रिक जहाज़ोंका चलाना, शुरू कर दिया उसके लिये यह अधिक नहीं है। कम-से-कम आजकल हर एक विद्यार्थीको तार हीनकी विद्या, वायुयान चलाना, गोला चलाना और अनेकों मुख्य-मुख्य विद्यायें सीखनी आवश्यक हैं। इस विद्याका सबसे बड़ा कालेज लण्डनमें है। वहांपर सम्पूर्ण अध्ययनमें ३०००० रु० खर्च होता है। इतना अधिक रुपया एक साधारण व्यक्तिका कार्य नहीं है यह तो उसी समय सम्भव है जबकि गवर्नमेंट इसकी ओर ध्यान दे। या तो उसको भारतमें ही एक ऐसा कालेज खोलना चाहिये या उसकी छात्र वृत्तिके रूपमें विद्यार्थियोंकी जो वहांपर जाकर पढ़ना चाहते हैं सहायता करनी चाहिये। इस समय जब कि किसी भी समय महायुद्ध छिड़ सकता है भारतीय गवर्मेण्टका यह कर्तव्य है कि अगर वह वायुयानिक विद्याके पढ़ानेके खर्चको नहीं सहन कर सकती तो कम-से-कम उसको वायुयानके खतरेसे बचनेके उपायके लिये स्कूल और कालेज़ोंमें व्याख्यान अवश्य दिलवाने चाहिये। कलकत्ताका एक 'एयटी एयर क्राफ़्ट स्कूल' क्या-क्या कर सकता है। कितने विद्यार्थियोंको वह शिक्षा दे सकता है। हम लोगोंके तो रोंगटे खड़े हो जाते हैं जबकि हम समाचार पत्रोंमें ऐसे आक्रमणोंका वर्णन पढ़ते हैं। हम लोगोंको तो अभी तक ईश्वरीय कृपासे ऐसी दशा देखनेका अवसर नहीं है। हम यह तो जानते ही हैं कि रेलगाड़ी लड़नेसे मनुष्योंकी क्या दुर्दशा होती है। यह कष्ट उन वायुयुद्धोंकी अपेक्षा बहुत कम मालूम होते हैं। विषैली गैस, हँसानेवाली गैस, बेहोश कर देनेवाली गैस, अंधा बना देनेवाली गैस, रुला देनेवाली गैसके अतिरिक्त अब एक मस्टर्ड गैस निकाली गई है जिससे मनुष्यकी खाल एक क्षणमें झुलस जाती है और बहुत धीरे-धीरे उसके प्राण निकलते हैं इन्हीं शोचनीय स्थितियोंमें पड़कर तो अबीसीनिया निवासियोंने अपना देश इटलीके हाथमें दे दिया और अब देखिये चीन और जापानके युद्धमें क्या होता है। इन सब बातोंका भी भारतीय सरकारको विचार करना चाहिये और इसके अनुकूल प्रबन्ध करने चाहिये।

हम किस स्थानपर हैं ?

[ले०—श्रीयुत श्रीकृष्ण श्रीवास्तव बी० एस-सी०]

हमारी पृथ्वी गोल है, देखनेमें चौरस इसलिये जान पड़ती है कि वह इतनी बड़ी है कि एक समयमें हम उसके बहुत छोटेसे भागको देख सकते हैं, जैसे २ फुट व्यासवाली परिधिका एक अंगुलका टुकड़ा बिल्कुल सीधा जान पड़ता है। जिस वस्तुका कोई ओर छोर नहीं है उसपर किसी गांव या शहरका स्थान स्थिर करना बड़ा कठिन है परन्तु सौभाग्यसे पृथ्वीके बारेमें हमें कुछ बातें ऐसी मालूम हैं जिनसे किसी स्थानका निश्चय करना हमारे लिये बड़ा

सुगम हो जाता है। पृथ्वीपर एक रेखा ऐसी है जिसपर रहनेवालोंको हर मौसिममें दिन रात समान होते हैं, १२ घन्टेका दिन और १२ घन्टेकी रात। यदि पृथ्वीके गोलेपर वह रेखा खींच दी जाय तो इससे भू-पृष्ठके दो बराबर-बराबर टुकड़े हो जाते हैं। इस रेखाकी परिधि २५००० मीलके लगभग है। इस रेखाको भू-मध्य रेखा कहते हैं। हमारे आचार्योंने इसका नाम विषुवत-रखा है। जिसका अर्थ है दो बराबर भागोंमें अलग करनेवाली रेखा। इससे समकोण बनाती हुई किसी रेखापर उत्तर या दक्खिनकी ओर उड़ें तो हम ऐसे स्थानोंपर भी पहुँच सकते हैं जहां छः महीनेका दिन और छः महीनेकी रात होती है। उत्तर-वाले स्थानको उत्तरी ध्रुव और दक्षिणवाले स्थानको दक्षिणी ध्रुव कहते हैं। विषुवत रेखासे समकोण बनानेवाली और उत्तरी दक्षिणी ध्रुवोंको मिलानेवाली रेखाको उत्तर दक्षिण रेखा या मध्यान्ह रेखा कहते हैं क्योंकि इस रेखापर-के सभी स्थानोंपर मध्याह्नकाल एक ही समय होता है जब-कि एक किसी सीधी खड़ी हुई लकड़ीकी छाया ठीक उत्तर या दक्षिणमें पड़ती है। बस इन्हीं दोनों रेखाओं या परिधियों (विषुवत रेखा मध्याह्न रेखा) की सहायतासे हम पृथ्वीके किसी स्थानका निश्चय आसानीसे कर सकते हैं। चित्र १ में व वा विषुवत रेखा है और उ द मध्याह्न रेखा है। सारे भू-मण्डलकी दृष्टिसे इन रेखाओंको वृत्त भी कह सकते हैं। इसलिये विषुवत रेखाकी जगह विषुवत-वृत्त या केवल विषुव-वृत्त और उत्तर-दक्षिण रेखाको मध्याह्न-वृत्त कहना अधिक उपयुक्त होगा।

चित्र १
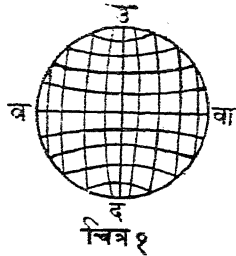
यहाँ तक जो कुछ कहा गया है उससे प्रकट हो गया होगा कि यह दोनों रेखायें यथार्थमें वृत्त (परिधि) हैं उससे वृत्तोंका भी ओर छोर नहीं होता इसलिये भू-पृष्टपर हमें किसी प्रकारकी नाप करनेके पहले विन्दु या स्थान स्थिर कर लेना पड़ता है। मध्यकालीन भारतके इतिहासमें अवन्ति या उज्जैनी राजनीति और विद्याका केन्द्र होनेके कारण मुख्य मानी जाती थी इसलिये हमारे मध्यकालीन ज्योतिषियोंने इसीको मध्य स्थान माना था परन्तु आज कल सारे भू-मण्डलपर ग्रीनिचकी वेधाशाला मुख्य समझी जाती है। और इसीसे देशान्तरोंकी नाप की जाती है। अब यह बतलाना है कि अक्षांश और देशान्तर क्या है?

विषुवत-वृत्तके किसी विन्दुसे यदि आप मध्याह्न वृत्तपर उत्तर या दक्षिणकी ओर चलकर ध्रुवपर पहुँचें तो भू-परिधि-का चौथा भाग आप तै कर लेंगे। इससे भू-केन्द्रपर जो कोण बनता वह एक सम-कोण (९० अंश) के बराबर होता है। इसलिये विषुव वृत्तसे ध्रुव तक जानेमें ९० अंश चलना पड़ता है। यदि हम विषुव वृत्तसे ध्रुव तककी दूरी-को ९० बराबर भागोंमें बाँट दें तो यह अंश **अक्षांश** कहलायेंगे, विषुव वृत्तसे उत्तरवाले अंशोंको उत्तर अक्षांश, और दक्षिणवालेंको 'दक्षिण अक्षांश'। यदि इन्हीं विन्दुओं-से विषुव वृत्तके समानान्तर भू-पृष्ठपर रेखायें खींच दें तो इन्हें अक्षांशकी समानान्तर रेखायें कहेंगे। नकशोंमें पूरब-से पश्चिम जानेवाली रेखायें यही हैं।

इसी प्रकार यदि हम विषुव वृत्तको ३६० बराबर भागोंमें बाँट दें और हर एक विन्दुसे होती हुई मध्याह्न रेखा उत्तर या दक्षिण ध्रुव तक खींचें तो इन्हें **देशान्तर** रेखा कहते हैं। नकशोंमें उससे दक्षिण खिंची हुई रेखायें यही हैं।

इन्हीं दोनों रेखाओंकी सहायतासे हम भू-पृष्ठपर किसी स्थानका निर्देश आसानीसे कर सकते हैं। प्रयागका अक्षांश २५ अंश २५ कला उत्तर और देशान्तर उज्जैनीसे ६ अंश ६ कला पूर्व तथा ग्रीनिचसे ८१ अंश से ४८ कला पूर्व है। देशान्तरको समयकी इकाइयों घन्टा मिनट और सेकंडमें भी लिखनेकी परिपाटी है। एक घन्टा ४ मिनट अथवा १० पलके समान होता है।

अक्षांश और ध्रुव तारेकी ऊँचाईका संबन्ध—यदि किसी स्थानका अक्षांश जानना हो तो रातमें ध्रुव-तारे-की ऊँचाई अंशोंमें नाप लो। स्थूल रीतिसे यही उस स्थानका अक्षांश होगा। ऐसा करनेके लिये एक सीधा बाँस जिसकी ऊँचाई अपनी आँखकी ऊँचाईसे दो या तीन फुट अधिक हो जमीनपर सीधा गाड़ दीजिये और इससे

दक्षिण इतनी दूरीपर खड़े हो जाइये कि ध्रुव-तारा बांसकी चोटीसे मिला दीख पड़े। अपने पैरके अंगूठेसे बांस तककी दूरी ठीक-ठीक नाप लीजिये। सीधा खड़ा होनेपर ज़मीनसे आपकी आँख जितनी ऊँचाईपर होती है यह तो मालूम ही होगी। बस इन्हीं तीनों नापोंसे आप ध्रुव-तारेकी ऊँचाई नाप सकते हैं।

चित्र २
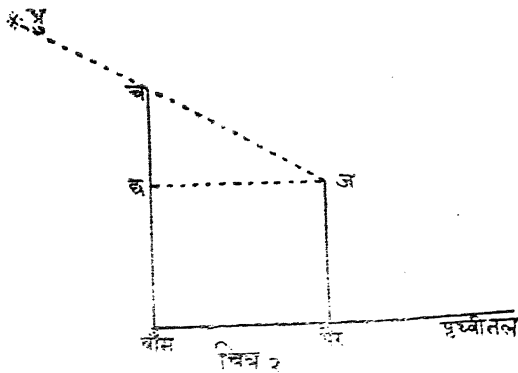
बाँसकी ऊँचाई—आंखकी ऊँचाई = च छ

बांससे पैरकी दूरी = अ छ—कागजपर एक समकोण त्रिभुज खींच लीजिये जिसकी भुजायें च छ और अ छ से अनुपातमें लम्बी हों। च छ के कोण च अ छ नाप लीजिये, बस यही उस स्थानका अक्षांश होगा।

यह जाननेके लिये कि ध्रुवतारेकी ऊँचाई अक्षांश-के बराबर कैसे होती है आपको चित्र ३के ऊपर ध्यान देना होगा। इसमें गोल रेखा 'प' स्थानका मध्याह्न वृत्त है, 'भ' भूकेन्द्र है जो 'प'से ४००० मीलके लगभग दूर है। व, वा विषुव-वृत्तके दो विन्दु हैं और उ पृथ्वीका उत्तर ध्रुव है। भ उ को उ की तरफ बहुत दूर बढ़ानेपर 'ध' ध्रुव ताराको स्थान आता है जो पृथ्वीसे अरबों मील दूर है। 'प' पर स्पर्श रेखा क प श खींची गयी है जो भ उ ध रेखा को 'श' विन्दुपर काटती है। यही क प श रेखा प स्थानका क्षितिज है। इस लिये श प ध कोण प स्थानपर ध्रुव तारेकी ऊँचाई हुई। यह सिद्ध करना है कि यही श प ध कोण 'प' स्थानके अक्षांश व भ प कोणके बराबर है।
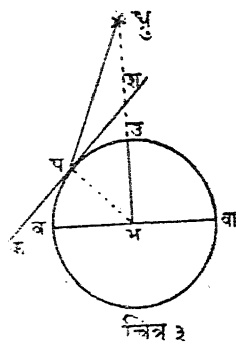
चित्र ३

क प श स्पर्श रेखा त्रिज्या भ प से समकोणपर है. इसलिये ∠प श भ और ∠प भ श मिल कर एक समकोणके समान हुये। परन्तु ∠व भ प और ∠प भ उ मिल कर एक समकोणके बराबर होते हैं, और ∠प भ श और ∠प भ उ एक ही हैं, इस लिये ∠प भ व = ∠प श भ

= प का अक्षांश

∠प श भ त्रिभुज प श ध का बहिर्कोण है इस लिये यह = ∠श प ध + ∠प ध श

परन्तु ध पृथ्वीसे अरबों मील दूर है इस लिये ∠प ध श इतना छोटा है कि यह नहींके समान समझा जा सकता है, इसलिये ∠प श भ = ∠ध प श

= ध्रुव-तारेकी ऊँचाई अंशोंमें।

'विज्ञानके एक पिछले अंक'में बतलाये गये नतांश चक्रसे दिनमें मध्यकालीन सूर्यकी ऊँचाई जान कर किसी स्थानका अक्षांश और भी सुगमता-पूर्वक जाना जा सकता है। परन्तु मध्याह्न-कालमें सूर्यकी ऊँचाई प्रतिदिन एक-सी नहीं रहती, जाड़ेके दिनोंमें यह बहुत कम होती है और गर्मियोंमें बहुत अधिक। इस लिये हमको सूर्यकी क्रांति भी जाननेकी आवश्यकता पड़ती है, जो नीचे लिखी हुई सारणीसे प्रायः ठीक-ठीक जानी जा सकती है। विषुवत् रेखा या वृत्तकी चर्चा पहले हो चुकी है। यदि इस रेखा पर का ऊर्ध्व तल आकाश तक बढ़ा दिया जाय तो आकाशमें जहाँ तक यह पहुँचता है उसे विषुवन्मंडल कहते हैं। २१ मार्च या २३ सितम्बरको सूर्य विषुवन्मंडल पर रहता है, इसलिये सारी पृथ्वीपर इन्हीं तारीखोंमें दिन रात बराबर होते हैं। इसी दिन सूर्यकी क्रान्ति शून्य रहती है। और तारीखोंमें सूर्य विषुवन्मंडलसे उत्तर या दक्खिन रहता है। सूर्यसे विषुवन्मंडलको जो दूरी होती है उसे सूर्यकी क्रान्ति कहते हैं। यदि वह उत्तर हुआ तो उत्तर-क्रांति और दक्षिण हुआ तो दक्षिण क्रान्ति कहलाती है। नीचे दी हुई सारणीसे यह जाना

जा सकता है कि किस तारीखको सूर्यकी क्रान्ति क्या है :—

काल समी-करण मि-नटोंमें	उत्तर क्रान्तिकी तारीखें	क्रान्ति	दक्षिण-क्रान्ति की तारीखें	काल समी करण मि-नटों में
+७॥	२१ मार्च	०	२१ मार्च	+७॥
+५॥।	२६ ”	२	१६ ,,	+८॥।
+४।	३१ ”	४	१० ,,	+१०॥
+२॥।	५ अप्रैल	६	५ ;,	+११॥।
+१॥	१० ”	८	२८ ,,	+१२॥।
०	१६ ”	१०	२३ ,,	+१३॥
—१॥	२२ ”	१२	१७ ,,	+१४।
—२॥	२८ ”	१४	११ ,,	+१४॥
—३।	४ मई	१६	५ ”	+१३
—३॥।	१२ मई	१८	२९ जनवरी	+१३।
—३॥।	२० मई	२०	२१ ”	+११॥
—२॥	१ जून	२२	१० ”	+७॥
+१॥	२१ जून	२३½	२२ दिसंबर	—१॥
+५॥	१२ जुलाई	२२	३ ”	—१०।
+६।	२३ ”	२०	२२ नवम्बर	—१३॥।
+६।	१ अगस्त	१८	१३ ”	—१५॥।
+५॥	९ ”	१६	६ ”	—१६।
+४॥	१५ ”	१४	३१ अक्टूबर	—१६।
+३	२२ ”	१२	२५ ”	—१५॥।
+१॥	२७ ”	१०	१९ ”	—१५
—१	२ सितम्बर	८	१४ ”	—१३॥।
—२	७ ,,	६	९ ”	—१२॥
—४	१३ ,,	४	३ ”	—१०॥।
—५॥।	१८ ,,	२	२८ सितंबर	—९।
—७॥	२३ ,,	०	२३ ”	—७॥

नतांश-चक्र द्वारा अक्षांश जाननेकी रीति—

नतांश-चक्र दफ़्तीका एक अर्द्ध-वृत्ताकार टुकड़ा, जिसमें 'छ' एक छेद है और 'प' स्थानपर (जो कि अर्द्ध-वृत्तका केन्द्र है) एक आलपीन गड़ी हुई है। अर्द्ध-वृत्त १८० बराबर हिस्सोंमें विभाजित है। छेदमें एक डोरा लगा हुआ है जिसके सहारे नतांश-चक्र सूर्यके तलमें बिल्कुल सीधा लटकाया जा सकता है। ऐसी दशामें यह देखना चाहिये कि आलपीनकी छाया धनुके किस निशानपर पड़ती है। अब चित्र ५ पर गौर कीजिये। मान लीजिये प की छाया फ पर पड़ी। अतः कोण ब प फ मालूम हो गया, और इस लिये कोण स प ज़ मालूम हो गया। अब यदि सूर्य उत्तरी गोलार्द्धमें है तो इस कोणमें सूर्यकी क्रान्ति जोड़ देनेसे अक्षांश तुरन्त मालूम हो जायगा इसके विपरीत सूर्य यदि दक्षिणी गोलार्द्धमें है तो उसकी क्रान्ति कोण स प ज से घटा देनेपर अक्षांश मालूम हो जायगा। यदि प स्थान दक्षिणी गोलार्द्धमें है तो क्रान्तिका हिसाब ठीक उलटा होगा।
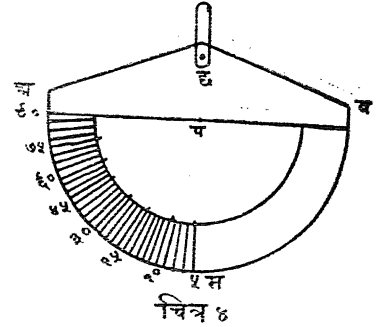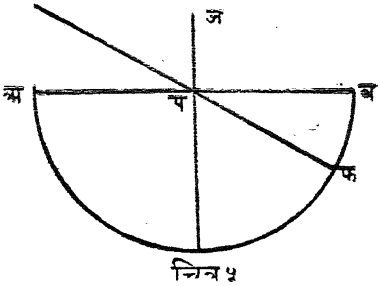
चित्र ४

चित्र ५

हम ऊपर देख चुके हैं कि अक्षांश निकालनेका नियम केवल कोण स प ज (चि० ५) नापना है। यदि यह कोण आप नाप लीजिये, चाहे जिस रीतिसे, बस फिर क्या आपने बाज़ी मार ली। यह रीति जो वर्णन की जायगी उसमें नीचे दी हुई वस्तुओंकी आवश्यकता है:—

कीलें २. तार या डोरेके टुकड़े ३ या ४, एक दफ़्ती-का टुकड़ा, एक फ़ोटोग्राफ़िक नेगेटिव या एक काला या रंगीन शीशा, और कुछ पत्थरके टुकड़े।

रीति—एक सीधे तने वाला पेड़ ढूंढ़ लीजिये, जिसका तना कम-से-कम ७ फुट ऊँचा हो। एक कील तनेमें

पृथ्वीसे ६ फुटके लगभग ऊपर 'अ' गाड़िये और उसमें एक डोरा बांध दीजिये। डोरेके दूसरे सिरेपर एक पत्थर-का टुकड़ा बांध दीजिये। इस हालतमें डोरा बिल्कुल सीधा नीचेकी ओर लटका रहेगा। इस दशामें अब रेखा बढ़ाने पर पृथ्वीके केन्द्रसे होकर गुज़रेगी। यह चित्र ५ की ज प रेखा हुई। अब व स्थानपर एक दूसरी कील गाड़ दीजिये और उसमें एक दूसरा डोरा ब त बाँध दीजिये। दफ़्तीके टुकड़ेको तेहरा मोड़िये और नीचेकी तहमें एक छोटा छेद कीजिये, उसके ऊपर एक

चित्र ६

फोटोग्राफिक नेगेटिव या रंगीन शीशा रखिये और सबसे ऊपरकी तहमें मोड़के पास एक बड़ा छेद कीजिये। इस ऊपरी पर्तके मोड़से होते हुये डोरा व तको अपने सरपरसे ले जाइये और डोरेके सिरेपर एक पत्थरका टुकड़ा बाँध दीजिये ताकि डोरा कसा रहे। ऊपरी कीलमें भी एक और डोरा अ त बांधिये और दफ़्तीके छेदसे देखते हुये अपने स्थानको ऐसा ठीक कीजिये कि दफ़्तीका छेद, कील 'अ' और सूर्य्य तीनों डोरेकी सीधमें हों और डोरा 'अ त' 'व त'से ९०°का कोण बनावे। तब 'व त'की लंबाई नाप लीजिये। अब एक फुटको एक इंचके बराबर समझ कर ६ इंचकी लकीर क ख कागजपर खींचिये। इस रेखा-के ऊपर एक अर्द्धवृत खींचिये। मान लीलिये कि व त की लम्बाई ४ फ़ुट है। तो ख को केन्द्र मानकर ४ इंचकी त्रिज्याका एक धनु खींचिये जो अर्द्धवृतको 'ग' स्थान-पर काटे। इस तरहसे एक त्रिभुज क ख ग बन जायगा। चांदेसे कोण ख क ग नापा जा सकता है। इस तरहसे चित्र ५का कोण स प ज मालूम हो जायगा। इस कोणसे सूर्यकी क्रान्तिके कारण उत्पन्न हुई अशुद्धि निकाल देने-पर स्थानका अक्षांश ठीक-ठीक मालूम हो जायगा। अब यह बतलाना आवश्यक है कि अक्षांश पर सूर्यके क्रांन्तिका प्रभाव कैसे पड़ता है।

अब ज़रा चि० ६ की ओर ध्यान दीजिये। 'ख' ठीक सरके ऊपरवाला विन्दु है। 'वि वी' विषुवत्-रेखा है. प एक स्थान है और 'र' तथा 'श' सूर्य की २ अवस्थायें हैं— एक तो वह जब कि सूर्य उत्तरी गोलार्द्धमें रहता है और दूसरी जब कि दक्षिण गोलार्द्धमें रहता है। अब 'र' के ऊपर ध्यान दीजिये। कोण ख के वि अक्षांश है और यह दो कोणोंके योगके बराबर है, (यानि कोण ख के विकोण ख के र + कोण र के विकोण र के वि सूर्यकी क्रान्ति कहलाती है। अब नतांश-चक्र द्वारा कोण नापा जा चुका है। इस लिये यदि सूर्यकी क्रान्ति मालूम हो (जो दी हुई सारणीसे बड़ी आसानीसे मालूम हो सकती है) तो कोण ख के वि बड़ी जल्दी मालूम हो जायगा। यही प स्थानका अक्षांश होगा। पाठकगण, चित्रके सहारे बड़ी आसानीसे समझ सकेंगे कि जब सूर्य उत्तरी गोलार्द्धमें होगा तो सूर्यकी क्रान्ति कोण ख के र में जोड़नेपर कोण ख के वि (अक्षांश) के समान होगा परन्तु यदि सूर्य दक्षिणी गोलार्द्धमें है तो कोण ख के रा (जो नतांश-चक्र द्वारा नापा जा चुका

चित्र ७

है) से घटाने पर कोण ख के वि (अक्षांश) ज्ञात होगा। यदि 'प' स्थान दक्षिणी गोलार्द्धमें है तो क्रम उलट जायगा, यानी जब सूर्य उत्तरी गोलार्द्धमें है तो सूर्यकी क्रान्ति घटानी होगी और यदि दक्षिणी गोलार्द्धमें है तो सूर्यकी क्रान्ति जोड़नी होगी। अतः एशियाके किसी भी स्थानका अक्षांश जाननेके लिये ज्येष्ठ मासमें सूर्यकी क्रान्ति कोण ख के र में जोड़नी चाहिये और अगहन मासमें घटानी चाहिये। इसके उलटे आस्ट्रेलियामें सूर्यकी क्रान्ति ज्येष्ठ मासमें कोण ख के र में जोड़नी चाहिये और अगहन मासमें कोण ख के र से घटानी चाहिये।

अब देशान्तरकी ओर ध्यान दीजिये। आप किसी ग्लेब-को देखिये तो आपको मालूम होगा कि विषुवत रेखासे

१० अंशका कोण बनाती हुई एक दूसरी रेखा भी है जो उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवोंसे होकर जाती। इसको शून्य मध्याह्न रेखा कहते हैं। अब ग्लोबपर किसी स्थानसे इस रेखाके बीचका धनु जो कोण पृथ्वीके केन्द्रपर बनाता है उसी कोणको उस स्थानका देशान्तर कहते हैं। स्थान-स्थानपर समयका अन्तर देशान्तर और काल-समीकरणके कारण होता है। ग्रीनविच शून्य मध्याह्न रेखापर है इस लिये अन्तर-राष्ट्रीय समझौतेसे ग्रीनबीचके

समयको प्रामाणिक समय मानते हैं। यहाँसे पच्छिम जितने स्थान हैं वहांका समय स्टैंडर्ड समयसे ४ मिनट प्रतिअंश देशान्तर पीछे होता है और पूरबमें ४ मिनट प्रति अंश देशान्तर आगे रहता है। इस लिये यदि हमको किसी स्थानपर वहांके स्थानीय मध्याह्न और प्रामाणिकका अन्तर मालूम हो जाय तो उसमें केवल काल समीकरण जोड़ या घटाकर, जैसा उचित हो, उस स्थानका देशान्तर मालूम किया जा सकता है।

रीतिः एक घड़ी जोकि स्टैंडर्ड टाइमसे मिली हुई हो लीजिये। एक सीधी लकड़ी ज़मीनपर बिल्कुल सीधी धूपमें गाड़ दीजिये और उसके छायाकी लम्बाई समय-समय पर नापते जाइये। जब घड़ीकी छाया सबसे छोटी हो बस वही ठीक दोपहरका समय है उस समय घड़ीमें समय देख लीजिये। इस समयमें काल समीकरण जो कि किसी स्थानके लोकल टाइम (स्थानीय समय) और औसत समयका अन्तर है जोड़िये या घटाइये तो उस स्थानकेठीक दोपहरका समय स्टैन्डर्ड टाइप देनेवाली घड़ीमें मालूम हो जायगा। यह समय १२ बजेसे जितना अधिक होगा उतना ही (१ अंश प्रति ४ मिनट) उस स्थानका देशान्तर पच्छिम होगा। और यदि १२ से कम हुआ तो उसी हिसाबसे वह स्थान पूर्वमें होगा। इस तरह किसी स्थानका देशान्तर मालूम किया जा सकता है।
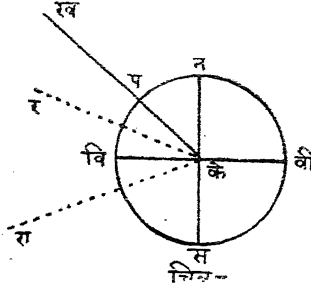
नतांश दर्पणसे भी दोपहरका ठीक पता लगाया जा सकता है। बल्कि इसके द्वारा अधिक सुगमता पूर्वक और ठीक-ठीक मालूम किया जा सकता है। इसकी रीति यह है कि १० बजे (स्टैंडड टाइम) नतांश निकाल लीजिये (विधि वही है जो अक्षांश निकालनेके काममें आती है।) वही नतांश दोपहरके बाद भी एक बार होगा। अब यह देखना है कि स्टैंडड टाइमसे कै बजे वही नतांश फिर होता है। १७ बजे और इस समयके औसतमें काल—समीकरण-का (दोपहरका प्रमाणिक समय तथा स्थानीय समय) करने-के बाद जो समय आवे वही दोपहरका समय है अब और का अन्तर मालूम हो सकता है, इस लिये देशान्तर भी मालूम हो सकता है।

अब पाठकको यह ज्ञात हो गया होगा कि वह चाहे जिस अनजान स्थानपर हो वह केवल उस स्थानका अक्षांश और देशान्तर मालूम करके बता सकेगा कि 'हम किस स्थान पर हैं।

नये परमाणुओंकी रचना*

[ले०—डा० सत्यप्रकाश डी० एस-सी०]

वैज्ञानिक संसारमें यह युग क्रान्तिका है। इस युगके चार चमत्कार हैं। सबसे पहला चमत्कार तो है, यहाँ बैठे हुये दूर दूर देशोंके गाने सुन लेना—रेडियोका नाम तो अब सबको मालूम हो गया है। दूसरा चमत्कार है, यहां बैठे बैठे अन्य देशोंमें होते हुए कामोंको अपनी आंखोंसे देख लेना। यह दूर-दृष्टिकी विद्या अभी अधिक प्रचलित तो नहीं हुई

*यह व्याख्यान संक्षेपतः विज्ञानपरिषद्की रजत जयंती पर २१ फर्वरी १९३९ को माननीय श्रीसम्पूर्णानन्द जी, शिक्षामंत्री युक्त-प्रान्तके सभापतित्वमें विजयानगरम् हॉल, म्योरकालेजमें दिया गया था। अनेक आलोक-चित्र दिखाये गये।

है, पर है यह भी एक बड़ा भारी चमत्कार-तीसरा-चमत्कार है, आकाश-गमन अर्थात् वायुयानोंसे देश देशान्तरमें उड़ते फिरना। पर चौथा चमत्कार इन तीनों चमत्कारोंसे कुछ कम आश्चर्यका नहीं है, अर्थात् अपने प्रयोगों द्वारा एक तत्त्वको दूसरे तत्त्वमें परिणत कर देना, अथवा तरह तरहके परमाणुओंकी रचना करना। यह काम कितने महत्त्वका है, इसका अनुमान इस बातसे लगाया जा सकता है कि इस क्षेत्रमें काम करनेवाले जितने वैज्ञानिकोंको जगद्-विख्यात नोबेल पुरस्कार मिल चुका है उतना कदाचित् ही अन्य किसी क्षेत्र में काम करनेवाले वैज्ञानिकोंको मिला होगा। लार्ड रथरफोर्ड, फ्रेडरिक सार्डी, कुरी, चैडविक, यूरे, एण्डरसन, फ्रेडरिक जोलिओट, कुरी-जोलियोट और फर्मी—इतने व्यक्ति इस क्षेत्रमें काम करके नोबेल पुरस्कार प्राप्त चुके हैं, और न जाने अभी आगे कितने व्यक्तिओंको और सौभाग्य मिलेगा। इस बातसे ही अनुमान लगाया जा सकता है कि यह विषय कितने महत्त्वका है।

परमाणुओंका चित्र किस प्रकारका है ?

जिस समय सन् १९०४ में प्रसिद्ध जापानी वैज्ञानिक नागाओका-ने यह कल्पना प्रस्तुतकी कि प्रत्येक परमाणु-एक छोटासा सौरमंडल है, तो लोगोंको सहसा विश्वास न हुआ। यह बात कविकी कोरी कल्पना समझी जाने लगी कि प्रत्येक परमाणुके अन्दर ऋणाणुओंका एक समूह परमाणुके धनकेन्द्रके चारो ओर उसी प्रकार चक्कर लगाता है जैसे सूर्य्यके चारो ओर अनेक ग्रह। पर कुछ दिनों बाद ही इंगलैण्डकी एक प्रयोगशालाके वैज्ञानिक रथरफोर्डने अपने प्रयोगों द्वारा यह दिखा दिया कि परमाणुके अन्दर धन विद्युत्से युक्त एक केन्द्र होता है। यह बात सन् १९०८ की है। बादको बोह्र ने परमाणुओंकी रचनाके सम्बन्धमें और भी विवेचनात्मक अन्वेषण किये।

इस समय हम जानते हैं कि परमाणुमें एक धन-केन्द्र होता है। इसके चारो ओर ऋणाणु चक्कर लगाते हैं, पर सब ऋणाणु एक ही परिधिमें नहीं घूमते। ऐसी कल्पना की गई है कि पहली परिधिमें घूमनेवाले ऋणाणुओंकी संख्या अधिकसे अधिक दो हो सकती है। दूसरी परिधि पर अधिकसे अधिक ८ ऋणाणु हो सकते हैं, तीसरी पर १८, चौथी पर ३२, पर सबसे बाहरवाली परिधि पर ऋणाणुओंकी संख्या ८ से अधिक नहीं हो सकती। एक तत्त्वके परमाणु दूसरे तत्त्वके परमाणुओंसे इन्हीं ऋणाणुओंकी संख्यामें भिन्नता रखते हैं। सबसे हलका तत्त्व जो हमको ज्ञात है उद्जन है जिसमें केन्द्रके चारो ओर एक ऋणाणु चक्कर लगाता है। दूसरा तत्त्व हिमजन है जिसमें एक परिधिपर दो ऋणाणु चक्कर लगाते हैं। पहली परिधि पर दोसे अधिक ऋणाणु चक्कर नहीं लगा सकते। तीसरा तत्त्व शोणम् है जिसमें तीन ऋणाणु हैं, जिनमेंसे दो तो पहली परिधि पर हैं, पर तीसरा ऋणाणु एक नईदूसरी परिधिपर है। इस दूसरी परिधिपर ८ ऋणाणु तक चक्कर लगा सकते हैं, अर्थात् १० वें तत्त्व नूतनम्में जाकर यह परिधि भी पूरी हो जाती है। नूतनम्में १० ऋणाणु हैं जिसमें पहली परिधि पर २ और दूसरी पर ८ हैं। निश्चेष्ट समुदायके तत्त्व—हिमजन, नूतनम्, आलसीम्, गुप्तम्, अन्यजन आदि तत्त्वोंमें सभी परिधियां ऋणाणुओंसे परि-पूर्ण हैं अर्थात् किसी भी परिधि पर ऋणाणुओंकी संख्या बढ़ नहीं सकती। अधिक संख्या वाले तत्त्वके लिये नयी परिधि आरम्भ करनी पड़ेगी।

हम यहां नीचेकी सूचीमें निश्चेष्ट समुदायके तत्त्वोंका विवरण देते हैं जिससे स्पष्ट हो जायगा कि अमुक तत्त्वमें कितनी परिधियाँ हैं, और उन परिधियोंमें कितने ऋणाणु हैं। किसी भी तत्त्वमें ऋणाणुओंकी पूरी संख्या उस तत्त्वकी "परमाणु संख्या" कहलाती है। जिस तत्त्वकी "परमाणु-संख्या" २७ है, उससे हमारा तात्पर्य यह होगा कि इस तत्त्वके केन्द्रमें २७ इकाई धन विद्युत् है, और इतनी धन-विद्युत्के साम्यके लिये २७ ऋणाणु भिन्न भिन्न परिधियों पर केन्द्रके चारो ओर चक्कर लगा रहे हैं जिन सबमें मिलकर २७ इकाई ऋण विद्युत होगी। इसी प्रकार अन्य परमाणु-संख्याओंको भी समझना चाहिये।

तत्व	परमाणु संख्या	ऋणाणु-परिधियाँ					
		१	२	३	४	५	६
हिमजन	२						
नूतनम्	१०	२	८				
आलसमीम्	१८	२	८	८			
गुसम्	३६	२	८	१८	८		
अन्यजन	५४	२	८	१८	१८	८	
रेडन	८६	२	८	१८	३२	१८	८

कई परमाणु-भारोंका एक ही तत्त्व

गत शताब्दीमें लोगोंकी यह धारणा थी कि प्रत्येक तत्वका एक निश्चित परमाणु-भार होता है, पर यह बात तो अब बिलकुल निर्मूल प्रतीत होती है। हमको अब यह कहना चाहिये कि प्रत्येक तत्वकी परमाणु-संख्या तो निश्चित है, पर परमाणुभार निश्चित नहीं है। उदाहरणार्थ, हमको इस समय तीन भारोंवाले उदजन ज्ञात हैं जिनके परमाणु भार १, २ और ३ हैं। साधारण उदजनकी अपेक्षा अन्य दो क्रमशः दुगुने और तिगुने भारी हैं। पर तीनों प्रकारके उदजनोंकी परमाणु संख्या १ ही है। परमाणु-संख्या ही तत्वका असली सूचक है। हिमजन तत्वका परमाणु-भार ३ और ४ दोनों है। इसी प्रकार अब हमें कई परमाणु-भारवाले स्फटम्, रजतम् स्वर्णम् आदि तत्व प्राप्त हैं। कई परमाणु-भार वाले एक ही तत्वको हम "समस्थानिक" कहते हैं।

नया परमाणु कब बने

साधारण भौतिक और रासायनिक साधनोंसे बाहर परिधियोंमें चक्कर लगानेवाले ऋणाणुओंकी संख्या घटायी बढ़ायी जा सकती है पर इतना कर देनेसे नया परमाणु नहीं बन जाता। जब किसी धातुको अति उच्च तापक्रमतक गरम किया जाता है तो उसकी सबसे बाहरवाली परिधिसे एक दो ऋणाणु बाहर निकल जाते हैं। इसी प्रकार शून्य नलीमें थोड़ासा वायव्य लेकर उच्च वोल्टनकी उल्टी-सीधी धारा प्रवाहित करनेसे भी वायव्यके परमाणुओंके कुछ ऋणाणु छिन्न-भिन्न किये जा सकते हैं पर इस प्रकारके परिवर्तनसे वस्तुतः नये परमाणु नहीं बनते। जब तक परमाणुके "धन-केन्द्र" को तोड़ा-जोड़ा न जायगा तब तक नये परमाणु नहीं बन सकते। गत ८-१० वर्षोंमें वैज्ञानिकोंका प्रयत्न केन्द्रको छिन्न-भिन्न करनेका रहा है, और ऐसा करनेमें उन्हें बड़ी सफलता प्राप्त हुई है। वैज्ञानिक लोग केन्द्रको केवल तोड़-फोड़ ही नहीं सके हैं वे इनमें कुछ जोड़ भी सके हैं अब तो वैज्ञानिक एक ही तत्त्वके परमाणु को कई प्रकारसे बना सकते हैं—हलके तत्त्वोंमें कुछ जोड़ करके अथवा अपनेसे भारी तत्त्वोंमेंसे कुछ निकाल करके।

कुछ प्रारम्भिक प्रयोग

विज्ञान परिषद्के (११ नवम्बर) १९३५ के वार्षिक अधिवेशनमें मैंने जो व्याख्यान दिया था उसमें तत्त्व-परिवर्तनके अनेक उदाहरणोंका उल्लेख किया गया था। पर तबसे इस समय तक अनेक नये प्रयोग किये जा चुके हैं जिनके फल और भी अधिक मनोरंजक हैं। आज हम यहां इन नये प्रयोगोंका ही उल्लेख करेंगे। पर श्रृंखला-क्रम टूट न जाय और विषय समझमें आ जाय इसलिये कुछ पुराने प्रयोगोंकी पुनरावृत्ति भी अनुचित न होगी।

सन् १९१९ में रथरफोर्डने यह देखा कि रेडियम-बी और सी (रश्मिम्-ख और-ग) से निकलने वाले एलफा कण जब नोषजन गैसमेंसे होकर निकलते हैं तो दोनोंके परमाणुओंके संघर्षसे कुछ नये कण निकलने लगते हैं जिन पर धन-विद्युत्की एक इकाई मात्रा है, और जिनका परमाणुभार १ है। इन कणोंको प्रोटोन या एकाणुक कहते हैं। सन् १९२५ में ब्लेकेटने और १९२८ में हारकिन्सने इन संघर्षोंका विशेष अध्ययन किया, और इन्होंने परिणाम निकाला कि यह प्रक्रिया निम्न प्रकार होती है—

$$\text{नो}^{१४} + \text{हि}^{४} = \text{उ}^{१} + \text{ओ}^{१७}$$

अर्थात् इस संघर्षसे न केवल प्रोटोन ($\text{उ}^{१}$) ही बनता है, किन्तु साथ ही साथ नये प्रकारका ओषजन (१७ परमाणु-भारवाला) भी बन जाता है—साधारण ओषजनका परमाणु-भार १६ है।

टंकम्के परमाणु एलफा कणों (हिमजन-केन्द्र) से संघर्ष खाकर प्रोटोन और नये प्रकारका कर्बन देते हैं—

$$\text{टं}^{१०} + \text{हि}^{४} = \text{उ}^{१} + \text{क}^{१३}$$

सन् १९३० में बोथे और बेकरने और बादको कुरी और जोलिओटने (१९३१) यह देखा कि बेरीलम्के समान कुछ हलके तत्त्वोंके परमाणुओंपर जब एलफा-कण टक्कर लगाते हैं तो गामा किरणोंके समान अति प्रवेशशील कुछ किरणें निकलती हैं। दूसरे ही वर्ष सन् १९३२ में प्रो० चैडविकने यह दिखाया कि ये किरणें वस्तुतः किरणें नहीं हैं, ये तो उदजन केन्द्र या प्रोटोनके समान भारवाले कण हैं। एकाणुक या प्रोटोनोंमें तो धन विद्युत्की एक इकाई मात्रा होती है, पर इन नये कणोंके केन्द्र न तो ऋणात्मक हैं, और न धनात्मक, चैडविकने इन नये कणोंका नाम न्यूट्रोन रक्खा जिन्हें हम निरणुक कह सकते हैं। ये कैसे उत्पन्न हुये यह बात नीचेके समीकरणसे स्पष्ट हो जायगी। बेरीलम् परमाणुके केन्द्र हिमजन केन्द्रों (एलफाकणों) से संघर्ष खाकर किस प्रकार परिवर्तित हो जाते हैं, यह बात समीकरणमें बतायी गयी है।—

$$\text{बे}^{९} + \text{हि}^{४} = \text{न्यू}^{१} + \text{क}^{१२}$$

अर्थात् बेरीलम् तत्त्वसे हमें न्यूट्रोन और कर्बन परमाणुका केन्द्र प्राप्त हो गया। अब तो अनेक तत्त्वोंके केन्द्रोंको हिमजन केन्द्रोंसे संघर्ष कराके दूसरे तत्त्वोंके केन्द्रोंमें परिवर्तित किया जा चुका है। यह काम कितने महत्त्वका हुआ है, यह इस बातसे स्पष्ट हो जायगा कि चैडविक महोदयको अपने इन प्रयोगोंके उपलक्षमें नोबेल पारितोषिक मिला।

नये नये परमाणु केवल हिमजन केन्द्रोंके संघर्षसे ही नहीं बनाये गये, अन्य भी अनेक प्रकारके संघर्षोंसे बने जिनका उल्लेख गत व्याख्यानमें किया जा चुका है। अब तो हमारे पास चार प्रकारके साधन विद्यमान हैं—

(१) तत्त्वोंके केन्द्रोंको एलफाकणों (हिमजन केन्द्रों) से संघर्ष कराके।

(२) तत्त्वोंके केन्द्रोंको एकाणुकों (प्रोटोनों) से संघर्ष कराके।

(३) तत्त्वोंके केन्द्रोंको निरणुकों (न्यूट्रोनों) से संघर्ष कराके।

(४) तत्त्वोंके केन्द्रोंको द्व्यणुकों (भारीउदजन केन्द्र या डाइप्लोनों) से संघर्ष कराके।

एलफाकणोंसे संघर्ष खाकर कर नये परमाणु बन सकते हैं, यह हम ऊपर देख चुके हैं। एकाणुकों (प्रोटोनों अथवा उदजन केन्द्रों) के संघर्षसे कैसे नये परमाणु बनते हैं, नीचेके उदाहरणसे स्पष्ट हो जायगा। सन् १९३२में कोक्रोफ़्ट और वाल्टनने अतितीव्र वेग वाले एकाणुकोंके प्राप्त करनेकी सुगम विधि निकाली। जब ये एकाणुक शोण-ओषिदके संघर्षमें आये, तो इन्होंने एलफाकण पैदाकर दिये—

$$\text{शो}^{७} + \text{उ}^{१} = २\ \text{हि}^{४}$$

अर्थात् शोणम् तत्त्वसे हिमजन केन्द्र बन गये। इसी प्रकार टंकम् तत्त्वके केन्द्र एकाणुकोंके संघर्षसे बेरीलम् और हिमजन केन्द्रोंमें परिवर्तित हो जाते हैं—(डी और गिलबर्ट १९३६)—

$$\text{टं}^{११} + \text{उ}^{१} = \text{हि}^{४} + \text{बे}^{८}$$

निरणुकों या न्यूट्रोनोंसे परमाणु परिवर्त्तन किस प्रकार होता है, यह बात निम्न समीकरणसे स्पष्ट हो जायगी। इसमें यह दिखाया गया है कि नोषजनके केन्द्र निरणुकोंसे संघर्ष खाकर टंकम् और हिमजनके केन्द्रोंमें परिणत हो जाते हैं।

$$\text{नो}^{१४} + \text{न्यू}^{१} = \text{टं}^{११} + \text{हि}^{४}$$

द्व्यणुकोंसे संघर्ष

सन् १९३२में यूरे ने भारी-पानीकी खोज की जिसके विद्युत् विश्लेषणसे भारी उदजन प्राप्त होता है। यूरेकी ये खोजें बड़ी ही कौतूहलजनक थीं। यह भारी-उदजन साधारण उदजनकी अपेक्षा दुगुना भारी है। साधारण उदजनसे जैसे साधारण-उदजन-केन्द्र जिन्हें एकाणुक या प्रोटोन कहते हैं, प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार इस भारी-उदजनसे अति उच्च वोल्टन द्वारा भारी-उदजन-केन्द्र प्राप्त होते हैं जिन्हें हम द्व्यणुक कहेंगे। इन्हें कुछ लोग डाइप्लोन कहते हैं और कुछ डाउटेरोन। सन् १९३३ में लेविस, लॉरेन्स और लिविंग्स्टनने यह मालूम किया कि अति तीव्र वेग वाले द्व्यणुकोंकी सहायतासे परमाणुओंके केन्द्र बड़ी अच्छी तरह छिन्न भिन्न किये जा सकते हैं। कोक्रोफ़्ट और वाल्टन ने साधारण उदजनसे जिस प्रकार तीव्र-वेगी एकाणुक प्राप्त किये थे उसी प्रकार इन

लोगों ने, बिलकुल उसी विधिसे, भारी उदजनसे विद्युत्-नलीमें अति उच्च वोल्टनके प्रयोगसे द्वयणुक प्राप्त किये।

शोण ओषिदपर एकाणुकोंके प्रभावसे जो एलफाकण प्राप्त होते हैं, उनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। पर इसी शोण ओषिदपर यदि द्वयणुकोंका संघर्ष कराया जाय तो और भी अधिक सामर्थ्यवाले एलफा-कण निकलने लगेंगे जैसा कि नीचे दिखाया गया है—(एकाणुकोंको $\text{उ}^{१}$ से और द्वयणुकोंको $\text{उ}^{२}$ या $\text{ड}^{२}$ सूचित करेंगे)

$$\text{शो}^{६} + \text{उ}^{२} = २\ \text{हि}^{४}$$

इसी प्रकार बेरीलम्, टंकम्, कर्बन, नोषजन, सैन्धकम् और स्फटम् तत्त्वोंके केन्द्र भी द्वयणुकोंके संघर्षसे छिन्न भिन्न हो जाते हैं और हिमजन-केन्द्र जिन्हें एलफाकण कहते हैं बन जाते हैं। सन् १९३६ में कोक्रोफ्ट और लेविस ने टंकम् और द्वयणुकके संघर्षको निम्न समीकरण द्वारा सूचित किया—

$$\text{टं}^{१०} + \text{उ}^{२} = ३\ \text{हि}^{४}$$

द्वयणुकोंके संघर्षसे न केवल हिमजन केन्द्र ही प्राप्त होते हैं, अन्य तरहके केन्द्र भी बनते हैं। सन् १९३४ में कोक्रोफ़्ट और वाल्टन ने दिखाया कि शोणम् धातुके केन्द्रोंसे द्वयणुकों द्वारा कभी कभी एकाणुक (प्रोटोन) भी निकल सकते हैं।

$$\text{शो}^{६} + \text{उ}^{२} = \text{शो}^{७} + \text{उ}^{१}$$

इस प्रकियामें ६ भार वाला शोणम् ७ भार वाले शोणम्में परिवर्तित होजाता है।

कर्बन तत्त्वपर द्वयणुकोंका प्रभाव और भी कौतूहल-जनक है। इस संघर्षमें कुछ सामर्थ्य गामा–किरणोंके रूप में भी विसर्जित होती है और १२ भार वाले कर्बन केन्द्रसे १३ भारवाला कर्बन बन जाता है। प्रक्रिया इस है :—

$$\text{क}^{१२} + \text{उ}^{२} = \text{क}^{१३} + \text{उ}^{१} + \text{गामा किरण}$$

ओलिफेण्ट, किन्से और रथरफोर्ड ने १९३४ में यह पाया कि शोणम् केन्द्र द्वयणुकोंके साथ संघर्षमें आकर कुछ निरणुक या न्यूट्रोन भी देता है :—

$$\text{शो}^{७} + \text{ड}^{२} = \text{न्यू}^{१} + २\ \text{हि}^{४}$$

एक ही तत्वपर कई प्रकार के प्रभाव

हमने अभी शोणम् तत्त्वके सम्बन्धमें देखा कि द्वयणुकोंके संघर्षसे इसमें कई प्रकारसे परिवर्तन हो सकते हैं जिनको पृथक् पृथक् समीकरणों द्वारा सूचित करना पड़ता है। इसी प्रकारका सबसे मनोरञ्जक उदाहरण तो स्फटम् (एल्यूमीनियम) तत्त्वका है। द्वयणुकोंके प्रभावसे इससे कभी मगनीसम्, कभी दूसरे भार वाला स्फटम् और कभी शैलम् प्राप्त होते हैं। नीचे दिये गये समीकरणोंसे यह बात बिलकुल स्पष्ट हो जायगी—

$$\text{स्फ}^{२७} + \text{उ}^{२} = \text{म}^{२५} + \text{हि}^{४} \quad (\text{मगनीसम})$$

$$\text{स्फ}^{२७} + \text{उ}^{२} \quad \text{शै}^{२८} + \text{उ}^{१} \quad (२८\ \text{भारका स्फटम्})$$

$$\text{स्फ}^{२७} + \text{उ}^{२} = \text{शै}^{२८} + \text{न्यू}^{१} \quad (\text{शैलम्})$$

पहली प्रक्रियामें मगनीसम्के साथ हिमजन निकलता है। दूसरी प्रक्रियामें २८ भार वाले स्फटम्के साथ एकाणुक या प्रोटोन निकलता है और तीसरी प्रक्रियामें शैलम् केन्द्रके साथ निरणुक या न्यूट्रोन निकलता है।

द्वयणुकोंकी सहायतासे बहुतसे तत्वोंके परमाणु-केन्द्रोंका विभाजन किया जा चुका है। गत व्याख्यानमें ओलीफेण्ट, हार्टेक और रथरफोर्डके १९३४ के उस प्रयोगका वर्णन किया जा चुका है, जिसमें डाइप्लोन या द्वयणुकोंको त्र्यणुकोंमें परिवर्तित किया गया। साधारण नौसादर (अमोनियम हरिद, नोउ$_{४}$ ह) के उदजनोंको भारी उदजनसे स्थापित किया गया। भारी उदजनको हम ड से सूचित करेंगे। ऐसा करनेसे द्वयणुकीय अमोनियम हरिद नो ड$_{४}$ ह मिला। जब यह पदार्थ तीव्रगामी द्वयणुकों (१७०००० वोल्ट) के संघर्षमें लाया गया तो द्वयणुक त्र्यणुकोंमें परिवर्तित हो गये। त्र्यणुकोंको $\text{उ}^{३}$ या $\text{त्र}^{३}$ से हम सूचित करेंगे।

$$\text{ड}^{२} + \text{ड}^{२} = \text{त्र}^{३} + \text{उ}^{१}$$

यह त्रयणुक भी उदजन तत्वके ही केन्द्र हैं, पर साधारण उदजनके नहीं; उस उदजनके जो साधारण उदजनसे तिगुना भारी है।

धनाणुओंकी खोज

गत व्याख्यानमें धनाणुओंकी खोजका उल्लेख किया जा चुका है। पर धनाणुओंके महत्त्वको आज हम और भी

अधिक समझनेमें सफल हो सके हैं। चैडविक द्वारा न्यूट्रोनों की खोजके थोड़े दिन उपरान्त ही इस बातका प्रयत्न किया जाने लगा कि जैसे ऋण विद्युत्की सबसे छोटी इकाई एलेक्ट्रोन या ऋणाणु कहलाती है, उसी प्रकारकी धन विद्युत्की भी तो कोई छोटीसे छोटी इकाई मिलनी चाहिये। विश्वरश्मियों (कॉस्मिक किरणों) के अध्ययनके लिये मिलीकन और एण्डरसनने खड़ा विलसन-मेघालय तैयार किया था जिसे उन्होंने शक्तिशाली विद्युत-चुम्बक-के ध्रुवोंके बीचमें रक्खा। ये विश्व-रश्मियाँ अन्तरिक्षसे भूमण्डलपर अबाध रूपमें बरसती रहती हैं। यह बहुत दिनोंसे ज्ञात था कि जब ये रश्मियाँ पदार्थोंपर पड़ती हैं तो उनमेंसे अति तीव्र गामी ऋणाणु विसर्जित होने लगते हैं। इन विसर्जित पदार्थोंको चुम्बकीय क्षेत्रके प्रभावमें रखनेपर कौतूहलपूर्ण घटना यह प्रतीत हुई कि जहां कुछ ऋणाणुओंके पथ एक ओर वक्रीभूत हुये, वहां साथ ही साथ कुछ पथ उल्टी दिशामें वक्रीभूत भी पाये गये। इस बातसे यह अनुमान लगाया गया कि यदि एक ओरके वक्रपथ ऋणाणुओंके कारण बने हैं तो दूसरी उल्टी दिशा-के वक्रपथ किन्हीं धन विद्युत्वाले कणोंसे बने होंगे। एण्डरसनके १९३२ के इन प्रयोगोंने यह स्पष्ट कर दिया कि जैसे ऋण विद्युत्की छोटीसे छोटी इकाई ऋणाणु है, उसी प्रकार धन-विद्युत्की छोटी इकाई धनाणु या पोज़ीट्रोन है। ऋणाणु और धनाणु दोनोंका भार लगभग एक ही बराबर है—उदजन परमाणुका १८०० वाँ भाग।

सन् १९३३—३४ में एण्डरसन, कुरी, जोलिओट आदि वैज्ञानिकोंने यह दिखाया कि थोरम्-ग" से निकली हुई गामा किरणें जब सीसा या किसी अन्य धातुपर पड़ती हैं, तो इस प्रक्रियामें धनाणु भी उत्पन्न होते हैं। यही नहीं, जब बेरीलम् धातु एलफाकणोंके संघर्षमें आती है, तो न्यूट्रोन और गामा किरणें दोनों निकलती हैं। यह गामा किरणें भी जब किसी पदार्थ द्वारा शोषित होती हैं, तो धनाणु विस-र्जित करने लगती हैं। इस प्रकार धनाणुओंका गामा किरणोंसे अटूट सम्बन्ध है। बहुत संभव है, धनाणु गामा किरणोंके ही भाग हों धनाणु और ऋणाणु बहुधा साथ ही साथ गामा या विश्व किरणों द्वारा पैदा होते हुये देखे गये हैं। इससे यह भी अनुमान लगाया जा सकता है कि गामा किरणें ऋणाणु और धनाणुके बराबर संयोगसे बनी हैं।

प्रकृतिके रश्मिशक्तिक पदार्थ

बेकरेल, कुरी, सौडी आदिके प्रयोगोंसे यह बात बहुत दिनोंसे स्पष्ट हो गई थी कि रश्मिम् (रेडियम), पिना-कयम् (यूरेनियम), थोरम् आदि तत्वोंमें रश्मिशक्तिक या रेडियोएक्टिव गुण हैं। रश्मिशक्तिक गुणोंका अर्थ यह है कि इन तत्त्वोंके परमाणु स्वतः विभाजित होते रहते हैं। विभाजित होते समय इनमेंसे तीन प्रकारके पदार्थ निकला करते हैं (१)—धन विद्युत्से युक्त एलफाकण या हिमजन केन्द्र; (२) ऋण विद्युतसे युक्त बीटाकण या ऋणाणु और (३) बिना विद्युत्वाले गामा किरण। ये तीनों एलफा, बीटा और गामा कण परमाणुके केन्द्रमें से टूट कर निकलते रहते हैं और परमाणु एकके बाद एक किसी दूसरे परमाणुमें परिवर्तित होता रहता है। रश्मिशक्तिक पदार्थोंका जीवन अस्थायी है, और वैज्ञानिकोंने इन पदार्थोंके अर्ध-जीवन-काल की गणना भी की है।

हम यहाँ रेडियम या रश्मिम्के तत्वकी कहानी देते हैं। रश्मिम्के केन्द्रसे एक एलफा और एक बीटा कण निकल कर रेडन तत्व बनता है, पर यह प्रक्रिया इतने धीरे धीरे चलती है कि यदि हम १ ग्राम रश्मिम्से आरंभ करें तो २००० वर्ष बीतने पर आधा ग्राम रश्मिम् ही रेडनमें परिवर्तित होगा। अतः हम यह कहेंगे कि रश्मिम्का अर्ध जीवन काल लगभग २००० वर्ष है। रेडनसे एलफा और बीटा कण और निकल कर रश्मिम्-क तत्व बनता है, जो कुछ क्षण ही जीवित रहता है। इसका अर्ध जीवन काल ३ मिनटके लगभग है। इतने समयमें इसकी आधी मात्रा रश्मिम्-ख में परिणत हो जाती है। रश्मिम्-ख का अर्ध जीवन काल २७ मिनटका है, और यह तत्व स्वतः रश्मिम्-ग में परिणत हो जाता है जिसका अर्ध-जीवन-काल लगभग १२ मिनट है। इसी प्रकार क्रम आगे बढ़ता जाता है। नीचेकी सारिणीमें रश्मिम्से उत्तरोत्तर बने हुये तत्वोंके परमाणुभार और उनके अर्ध-जीवन-काल दिये जाते हैं—

तत्व	परमाणु भार	अर्ध जीवन काल
रश्मिम्	२२६.५	१७३० वर्ष
रेडन	२२२.५	३.८५ दिन
रश्मिम्-क	२१८.५	३ मिनट
रश्मिम्-ख	२१४.५	२६.७ मिनट
रश्मिम्-ग$_1$	२१४.५	१९.५ मिनट
रश्मिम् ग$_2$	२१४.५	१.४ मिनट
रश्मिम्-ग	२१४.५	१०$^{-6}$ सैकण्ड
रश्मिम्-घ	२१०.५	१५.८३ वर्ष
रश्मिम्-ङ	२१०.५	४.८५ दिन
रश्मिम्-च (पोलोनियम)	२१०.५	१३६ दिन
सीसा	२०६.५	—

इस सारिणीमें दी गई उत्तरोत्तर श्रृंखलामें जहाँ परमाणु-भारमें चारका अन्तर है वहाँ समझना चाहिये कि यह परिवर्तन एक एलफाकण निकलनेके कारण है, क्योंकि एलफाकण हिमजन केन्द्र हैं जिनका परमाणुभार ४ है। जहाँ परमाणुभारमें कोई अन्तर नहीं है वहाँ समझना चाहिये कि यह परिवर्तन बीटा कणके निकलनेके कारण है क्योंकि बीटा कण ऋणाणु हैं जिनका भार नहींके बराबर हो है।

रश्मिशक्तिक होनेका यह गुण भारी परमाणुभार वाले तत्वोंमें ही पाया जाता है, क्योंकि उनके धन केन्द्रोंका घनत्व बहुत अधिक है, एक बिन्दुमात्र स्थानमें इतना अधिक भार होनेके कारण उनका गठन स्थायी नहीं है। इसीलिये इन तत्वोंके केन्द्र स्वतः विभाजित होते रहते हैं, और ये निम्न भारवाले तत्वोंमें परिणत हो जाते हैं।

प्रयोगशालामें बनाये गये रश्मिशक्तिक पदार्थ

हमने यह देखा कि रश्मिशक्तिक पदार्थ वे हैं, जिनके केन्द्र दीर्घकालीन नहीं है। इनके केन्द्र स्वतः विभाजित होते रहते हैं, पर इन सबका अर्धजीवनकाल निकाला जा सकता है। विभाजित होते समय इनके केन्द्रोंसे एलफा, बीटा, या गामा कण निकलते हैं। पर प्रकृतिमें पाये गये रश्मिशक्तिक तत्वोंकी संख्या सीमित है। चार ही तत्वोंकी रश्मिशक्तिक श्रृंखलायोंपर अधिक विवेचनाकी गयी है-- पिनाकम् (युरेनियम); रश्मिम् (रेडियम); थोरम् (थोरियम्) और शक्तिनम् (एक्टिनियम)।

पर गत चार वर्षोंसे वैज्ञानिकोंके अध्यवसायसे हमको अब तो ऐसे साधन प्राप्त होगये हैं कि हम अपनी प्रयोगशालामें अनेक रश्मिशक्तिक पदार्थ बना सकें। रश्मिशक्तिक तत्वोंके धनकेन्द्र अस्थायी होने चाहिये और उनका जीवनकाल परिमित। हमारी प्रयोगशालाओंमें जो रश्मिशक्तिक पदार्थ बने हैं, उनसे एलफा, बीटा, या गामा किरणें ही नहीं, धनाणु भी विसर्जित होते रहते हैं। तात्पर्य्य यह कि जब कोई रश्मिशक्तिक तत्वकेन्द्र किसी दूसरे तत्वमें स्वतः परिणत होता है तो उसमेंसे एलफा, बीटा, गामा कण या धनाणु इन चारोंमें से किसीका भी विसर्जन हो सकता है। प्रकृतिके रश्मिशक्तिक पदार्थ तो उच्च परमाणुभार वाले हैं, पर हमारे बनाये गये तत्व हलके-भारी सभी प्रकारके हैं। इनके बनानेका मौलिक श्रेय श्रीमती आइरीन कुरी और उनके पति फ्रेडरिक जोलिओटको है जिन्हें दो वर्ष हुये अपने इस महत्त्वपूर्ण कार्य्यके लिये नोबेल पारितोषिक मिल चुका है। पाठकोंको यह जानकर आनन्द होगा कि आइरीन कुरीकी माता मेडेमकुरी रेडियमकी आविष्कारक

थीं और आइरीनकी माताको भी अपने कार्य्यके उपलक्षमें दो बार नोबेल पारितोषिक मिला था।

तत्व केन्द्रोंके पारस्परिक संघर्षोंसे जिनका उल्लेख गत पृष्ठोंमें किया जा चुका है, कभी कभी कुछ ऐसे पदार्थ बनते हुये प्रतीत होते हैं जो अति अस्थायी होनेके कारण 'तत्क्षण' दूसरे स्थायी केन्द्रमें परिणत हो जाते हैं। इनके इस परिवर्तनकी गति नहीं नापी जा सकती, उनका जीवन-काल शून्यके ही बराबर है। पर फिर भी कभी कभी कुछ ऐसे केन्द्र बन जाते हैं, जो हैं तो अस्थायी पर उनमें परिवर्तन धीरे धीरे होता है, और उनका जीवन-काल नापा जा सकता है। इनमें समयकी अपेक्षासे जो परिवर्तन होता है उसमें वही नियम लागू होता है जो प्राकृतिक रश्मिशक्तिक पदार्थोंके परिवर्तनमें पाया जाता है।

सन् १९३४ में आइरीन कुरी और जोलिओट पोलोनियमसे निकले हुये एलफाकणोंका प्रभाव टंकम्, मगनीसम्, और स्फटम् धातुपर अध्ययन कर रहे थे। उन्होंने देखा कि संघर्षके परिणाम-स्वरूप निकले हुये पदार्थोंमें एकाणुकों (प्रोटोनों) के अतिरिक्त निरणुक (न्यूट्रोन) और धनाणु भी हैं। ९५ प्रतिशत विभाजित केन्द्रोंसे तो एकाणुक निकले, पर ५ प्रतिशत केन्द्रोंसे निरणुक और धनाणु। जब एलफाकण देनेवाले पोलोनियमको इन धातुओंके निकटसे अलग किया गया, तो निरणुकोंका निकलना तो तत्क्षण बन्द हो गया, पर धनाणु फिर भी कुछ समय तक निकलते रहे। धनाणुओंका निकलना उसी लघुरिक्थ नियमके अनुसार धीरे धीरे क्षीण होने लगा, जिसके अनुसार प्राकृतिक रश्मिपदार्थोंसे एलफा, या बीटा कणोंका निकालना क्षीण होता है। यदि उपर्युक्त धातुको पोलोनियमके संसर्गमें लाया जाय तो धनाणुओंका निकलना उसी लघुरिक्थ गतिसे (शून्यसे आरंभ करके एक स्थिर मात्रा तक) फिर बढ़ा। इससे स्पष्ट हो गया एलफा कणोंके सम्पर्कमें आनेपर इन धातुओंसे निरणुक और धनाणु दोनों एक ही प्रक्रियामें पैदा नहीं होते हैं—दोनोंके विसर्जित होनेके दो अलग अलग कारण हैं। यह बात स्फटम् धातुके उदाहरणसे स्पष्ट हो जायगी। स्फटम् धातु एलफा कणोंसे संघर्ष खाकर पहली प्रक्रियामें निरणुक देती है :—

$$^{२७}\text{स्फ}_{१३} + {}^{४}\text{हि}_{२} = {}^{१}\text{न्यू}_{०} + {}^{३०}\text{स्फु}_{१५}$$

बायीं ओर दी गयी संख्यायें तत्व केन्द्रका परमाणुभार सूचित करती हैं और दाहिनी ओर दी गई संख्यायें तत्वकी परमाणु-संख्या (केन्द्र पर धनात्मक विद्युतकी मात्रा) बताती हैं। इस पहली प्रक्रियामें न्यूट्रोन या निरणुकके साथ साथ स्फुर तत्वका केन्द्र बना जिसका परमाणुभार ३०, और जिसपर धनविद्युतकी मात्रा १५ है। स्फुर तत्वका इस प्रकारका केन्द्र अस्थायी है अतः यह धनाणुओंको विसर्जित करके दूसरे स्थायी केन्द्र शैलम्में धीरे धीरे परिणत हो जायगा। यह परिवर्तन समीकरण द्वारा इस तरह सूचित किया जा सकता है।—

$$^{३०}\text{स्फु}_{१५} = {}^{०}\text{ध}_{१} + {}^{३०}\text{शै}_{१४}$$
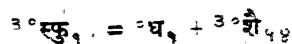
इस ३० भारवाले स्फुरको 'रश्मि-शक्तिक स्फुर' कहते हैं, क्योंकि यह धीरे धीरे धनाणु विसर्जित करके नियमित समयमें शैलम्में परिणत हो जाता है। धनाणु विसर्जित करनेकी गतिसे यह अनुमान लगाया गया है कि रश्मिशक्तिक स्फुरका अर्धजीवन काल ३.२ मिनट है। इन प्रक्रियाओंमें बना हुआ रश्मिशक्तिक पदार्थ स्फुर ही है, इसकी परीक्षा रासायनिक विधियोंसे भी की जा चुकी है, जिसका विस्तृत विवरण देना इस व्याख्यानमें संभव नहीं है।

जिस प्रकार स्फटम्से रश्मिशक्तिक स्फुर बना उसी प्रकार कुरी और जोलिओटने टंकम्से एलफा कणोंका संघर्ष कराके रश्मिशक्तिक नोषजन, $^{१३}\text{नो}_{७}$ और मगनीसम से रश्मिशक्तिक शैलम् $^{२७}\text{शै}_{१४}$ बनाये। दोनोंके साथ न्यूट्रोन या निरणुक निकले। इन दोनों रश्मिशक्तिक केन्द्रोंके अर्धजीवन काल क्रमशः १४ मिनट और २.५ मिनट थे।

अब तो बहुतसे रश्मिशक्तिक पदार्थ इन्हीं विधियोंसे बनाये गये हैं। कुछ उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं—

(१) नोषजन (भार १४) और एलफाकणसे रश्मिशक्तिक प्लविन (भार १७ और अर्धजीवनकाल १.१ मिनट) बना।

(२) सैन्धकम् (भार २३) और एलफाकणसे रश्मिशक्तिक स्फटम् (भार २६ और अर्धजीवनकाल ७ सैकण्ड) बना।

(३) स्फुर (भार ३१) और एलफाकणसे रश्मि-

शक्तिक हरिन् (भार ३४ और अर्धजीवन काल ४० मिनट) बना।

(४) पाशुजम् (भार ४१ संभवतः) और एलफाकण-से स्कन्दम् (भार ४४ और अर्धजीवनकाल १८० मिनट) बना।

एकाणुक और द्वयणुकोंके संघर्षसे रश्मिशक्तिक तत्व बनाना

ऊपर जितने कृत्रिम रश्मिशक्तिक पदार्थोंका उल्लेख किया गया है, वे एलफा कणोंके संघर्षसे बनाये गये। कुरी और जोलिओटके इन प्रयोगोंने भौतिक जगत्‌में क्रान्ति मचा दी. और फिर तो लोगोंने अन्य प्रकारसे रश्मिशक्तिक पदार्थ बनाने आरंभ कर दिये। कोक्रेफ़्ट, गिलबर्ट और वाल्टन; एवं लॉरिटसेन, क्रेन और हार्परने अपने प्रयोगोंमें यह देखा कि एकाणुक (प्रोटोनों) और द्वयणुक (डाउटेरोन) के संघर्षोंसे भी परिमित काल तक जीवित रहनेवाले अनेक अस्थायी रश्मिशक्तिक पदार्थ बनाये जा सकते हैं। एकाणुक के संघर्षसे तो केवल कर्बनने (भार १२) रश्मिशक्तिक नोषजन (भार १३) दिया जिसका अर्धजीवन काल ११ मिनटके लगभग था। इस प्रक्रियाको हम निम्न समीकरण द्वारा सूचित करेंगे। तारक चिह्न (✲) से रश्मिशक्तिक केन्द्र सूचित किया गया है।

$$^{१२}\text{क}_{६} + {}^{१}\text{उ}_{१} = {}^{१३}\text{नो}^{\ast}_{७}$$

इस रश्मिशक्तिक नोषजनसे धीरे धीरे धनाणु निकलते रहते हैं और यह स्थायी कर्बन (भार १३) में परिणत हो जाता है

$$^{१३}\text{नो}^{\ast}_{७} = {}^{०}\text{ध}_{१} + {}^{१३}\text{क}_{६}$$

कर्बन (भार १२) पर द्वयणुकोंका संघर्ष होने पर भी रश्मिशक्तिक नोषजन (भार १३) और निरणुक बनते हैं—

$$^{१२}\text{क}_{६} + {}^{२}\text{उ}_{१} = {}^{१}\text{न्यू}_{०} + {}^{१३}\text{नो}^{\ast}_{७}$$

इस रश्मिशक्तिक नोषजनका भी अर्धजीवन काल ११ मिनट है।

द्वयणुकोंके संघर्षसे बने कुछ रश्मिशक्तिक तत्वोंके उदाहरण हम यहाँ देते हैं—

(१) टंकम् (भार १०) और द्वयणुकोंसे रश्मिशक्तिक कर्बन (भार ११, अर्धजीवनकाल २० मिनट) और न्यूट्रोन बने।

यह रश्मिशक्तिक कर्बन धनाणु विसर्जित करके स्थायी टंकम् (भार ११) में परिणत होने लगा।

(२) नोषजन (भार १४) और द्वयणुकोंसे रश्मिशक्तिक ओषजन (भार १५, अर्धजीवन काल १२६ सैकण्ड) बना। यह रश्मिशक्तिक ओषजन भी धनाणु विसर्जित करके स्थायी नोषजन केन्द्र (भार, १५) में परिणत होने लगा।

(३) ओषजन (भार १६) द्वयणुकोंसे रश्मिशक्तिक फ़्लविन् (भार १७, अर्धजीवन काल १.१६ मिनट) बना।

(४) सैन्धकम् (भार २३) और द्वयणुकोंसे रश्मिशक्तिक सैन्धकम् (भार २४, अर्धजीवन काल १५.५ घंटे) बना और साथमें एकाणुक, और गामा किरण भी निकले। यह प्रक्रिया ऊपरवाली प्रक्रियाओंसे भिन्न है—

$$^{२३}\text{सै}_{११} + {}^{\ast}_{२}\text{उ}_{१} = {}^{२४}\text{सै}^{\ast}_{११} + {}^{१}\text{उ}_{१} + \text{गामा}$$

इस रश्मिशक्तिक सैन्धकम्‌से धनाणु नहीं विसर्जित होते। यह तो धीरे धीरे ऋणाणु विसर्जित करके स्थायी मगनीसम् (भार २४) में परिणत हो जाता है—

$$^{२४}\text{सै}^{\ast}_{११} = {}^{०}\text{ऋ}_{-१} + {}^{२४}\text{म}_{१२}$$

(५) हेंडरसन, लिविंगस्टन, और लॉरेन्सने (१९३४) ठीक इसी प्रकारकी प्रक्रियाओं द्वारा स्फटम् (भार २७) और द्वयणुकोंसे रश्मिशक्तिक स्फटम् (भार २८) और एकाणुक प्राप्त किये। यह रश्मिशक्तिक स्फटम् भी धनाणु नहीं किन्तु ऋणाणु विसर्जित करके धीरे-धीरे स्थायी केन्द्र शैलम् (भार २८) में परिणत हो जाता है।

निरणुकोंके संघर्षसे रश्मिशक्तिक पदार्थ बनाना

जिस समय सन् १९३१ में चैडविकने निरणुकों अर्थात् न्यूट्रोनकी खोजकी थी, कौन जानता था कि इनसे अनेक नये परमाणु बनाये जा सकेंगे। धनात्मक, विद्युत्‌से युक्त एकाणुकों, एलफाकणों और द्वयणुकोंसे तो केवल हलके तत्वही रश्मिशक्तिक तत्वोंमें परिणत किया जा सके। साधारणतः कहा जा सकता है कि पांशुजम् (परमाणु संख्या १९) से अधिक भारवाले तत्वों पर इन तीनों

धनात्मक साधनोंका आशाजनक सफल प्रभाव नहीं पड़ा। पर निरणुकोंकी सहायतासे तो भारी परमाणुभार वाले तत्व भी प्रभावित किये जा सके। इन प्रयोगोंको फर्मी ने १९३४-१९३५ में आरंभ किया था और उनका यह काम इतने महत्वका समझा गया कि अभी कुछ महीने हुये गत वर्षका नोबेल पारितोषिक उन्हें भेंट किया गया।

एकाणुक, द्व्यणुक और एलफा कण तो जितने तीव्रगामी होंगे, उतने अधिक सफल-परिणाम देंगे। पर निरणुकोंके विषयमें बात उलटी है। इनकी गति धीमी कर देने पर प्रभाव अधिक अच्छे पाये गये हैं। गति धीमी करनेकी विधि यह है कि इनके मार्गमें पानी या पैराफिन् मोम रख दिया जाता है जिसमेंसे निकलनेपर यह धीमे पड़ जाते हैं। बेरीलम् और रेडनके सम्पर्कसे निकले हुये निरणुकोंको प्रयोगमें लाया जाता है।

निरणुकोंसे रश्मिशक्तिक पदार्थ बड़ी सुगमतासे बनते हैं। फर्मीने ६० तत्वोंके साथ प्रयोग किये, और उनमेंसे ४० में से रश्मिशक्तिक पदार्थ प्राप्त हुये। सब तत्वोंके साथ प्रक्रियायें एक सी नहीं होतीं। हम तीन प्रकारकी मुख्य क्रियाओंका यहाँ उल्लेख करेंगे—

(१) तत्व केन्द्रमें निरणुकोंके समा जानेसे—यह प्रक्रिया अति सामान्य और सबसे अधिक उपयोगी है। सैन्धकम् तत्व (भार २३) के केन्द्र पर निरणुक जैसे ही आकर टक्कर खाता है, वह वहीं पकड़ लिया जाता है; और रश्मिशक्तिक सैन्धकम् (भार २४) बन जाता है—

$${}^{२३}\text{सै}_{११} + {}^{१}\text{न्यू}_{०} = {}^{२४}\text{सै}^{*}_{११}$$
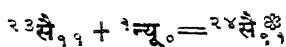
(२) तत्व केन्द्रमें निरणुकके संघर्षसे एकाणुक विसर्जित हो—इस प्रकारकी प्रक्रियाका उदाहरण मगनीसम् (भार २४) का है। निरणुकके संघर्षसे यह रश्मिशक्तिक सैन्धकम्-में परिणत हो जाता है, और एकाणुक पृथक् होता है—

$${}^{२४}\text{म}_{१२} + {}^{१}\text{न्यू}_{०} = {}^{२४}\text{सै}^{*}_{११} + {}^{१}\text{उ}_{१}$$
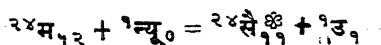
(३) तत्व केन्द्रमें निरणुकके संघर्षसे एलफाकण विसर्जित हो—ऐसा बहुत कम होता है, पर फिर भी स्फटम् (भार २७) के साथ इस प्रकारकी प्रक्रिया पायी गयी है। इससे भी रश्मिशक्तिक सैन्धकम् प्राप्त होता है—

$${}^{२३}\text{स्फ}_{१३} + {}^{१}\text{न्यू}_{०} = {}^{२४}\text{सै}^{*}_{११} + {}^{४}\text{हि}_{२}$$
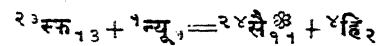
आजकल तो वैज्ञानिकोंने तत्वोंको अपने वशमें इस प्रकार कर लिया है कि एक ही प्रकारका तत्व कई विधियों से बनाया जा सकता है। अभी हमने देखा कि रश्मिशक्तिक सैन्धकम्के बनानेकी चार विधियाँ हैं। (१) सै२३से द्व्यणुकके संघर्षसे, (२) सैन्धकम् (भार २३) से निरणुक-के संघर्ष से (३) मगनीसम और निरणुकसे, और (४) स्फटम् और निरणुक से।

यहाँ नहीं, सैन्धकम् (२३) से अकेले न्यूट्रोन (निरणुक) के प्रभावसे न केवल रश्मिशक्तिक सैन्धकम् ही बनता है, रश्मिशक्तिक प्लविन् (भार २० और रश्मिशक्तिक नूतनम (भार २३) भी बनते हैं। इन दोनोंके बननेकी प्रक्रियाओंको नीचे दिया जाता है—

$${}^{२३}\text{सै}_{११} + {}^{१}\text{न्यू}_{०} = {}^{४}\text{हि}_{२} + {}^{२०}\text{प्ल}^{*}_{९}$$

$${}^{२३}\text{सै}_{११} + {}^{१}\text{न्यू}_{०} = {}^{१}\text{उ}_{१} + {}^{२३}\text{नू}^{*}_{१०}$$
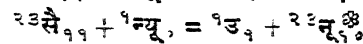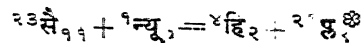
न्यूट्रोनों (निरणुकों) से प्राप्त रश्मिशक्तिक पदार्थोंसे धीरे धीरे ऋणाणु निकला करते हैं, न कि धनाणु जैसा अन्य कृत्रिम रश्मिशक्तिक पदार्थोंमें होता था। सन् १९३५ में लिब्बी, पेटेरसन, और लेटिमर ने एक मनोरञ्जक उदाहरण पाया। कृत्रिम रश्मिशक्तिक पदार्थोंकी रश्मि-शक्ति अधिकतर एक ही श्रेणी तक पायी गयी थी; अर्थात् एक बार ऋणाणु निकाल देनेके बाद स्थायी तत्व मिल जाता था। पर इन वैज्ञानिकोंने देखा कि हरिन् (भार ३७) और न्यूट्रोनसे जो रश्मिशक्तिक हरिन् (भार ३८) बनता है वह न केवल ऋणाणु देकर आल-र्गीम् (भार ३८) में परिणत हो जाता है, प्रत्युत यह आल-र्गीम् भी रश्मिशक्तिक है, और यह धीरे धीरे एलफाकण विसर्जित करके स्थायी गन्धक (भार ३४) में परिणत हो जाता है—

$${}^{३७}\text{ह}_{१७} + {}^{१}\text{न्यू}_{०} = {}^{३८}\text{ह}^{*}_{१७}$$

$${}^{३८}\text{ह}_{१७} = {}^{०}\text{ऋ}_{-१} + {}^{३८}\text{आ}^{*}_{१८}$$

$${}^{३८}\text{आ}^{*}_{१८} = {}^{४}\text{हि}_{२} + {}^{३४}\text{ग}_{१६}$$
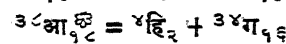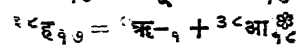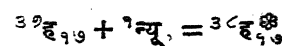
९३ वाँ और ९४ वाँ तत्त्व

कृत्रिम रश्मिशक्तित्व पर प्रयोग किये जानेसे पूर्व रसायनज्ञोंके तत्वोंकी संख्या तो ९२ थी। ९२ वां तत्व पिनाकम् (भार २३८) है। फर्मीने पिनाकम् पर निर-

णुओंका संघर्ष कराया तो उसे रश्मिशक्तिक पिनाकम् (भार २३९) मिला। अन्य रश्मिशक्तिक पदार्थोंके समान यह ऋणाणु विसर्जित करने लगा। ऐसा करने पर स्पष्ट है कि नया तत्व अवश्य बना होगा जिसका परमाणुभार २३९ और परमाणु संख्या ९३ होगी। इस ९३ वें तत्वको हम फर्मी-तत्व कहेंगे। यह कैसे बना, यह बात यहाँ समीकरणमें दिखायी जाती है—

$$ {}^{238}\text{पि}_{92} + {}^{1}\text{न्यू}_{0} = {}^{239}\text{पि}_{92}^{\ast} $$

$$ {}^{239}\text{पि}_{92}^{\ast} - {}^{239}\text{फ}_{93} + \text{ऋ}_{-1} $$

यह तत्वोंके आवर्त्त-संविभागमें रैनम्की श्रेणीका है अतः इस एका-रैनम भी कहा जाता है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि रश्मिशक्तिक पिनाकम् (भार २३९) का अर्ध जीवन काल १३ मिनट है। यही नहीं, ९३ वां फर्मी तत्व भी रश्मिशक्तिक प्रतीत होता है और इसका अर्धजीवन काल १०० मिनट है। यदि ९३ वां तत्व भी उसी प्रकार रश्मिशक्तिक हो जैसे ९२ वां, तो एक ऋणाणु और निकल जाने पर ९४ वां तत्व भी अवश्य बना होगा।

$$ {}^{239}\text{फ}_{93}^{\ast} = {}^{239}\text{फा}_{94} + {}^{0}\text{ऋ}_{-1} $$

इस प्रकार स्पष्ट है कि वैज्ञानिकों ने ९३ वें और ९४ वें तत्वोंको प्रयोगशालामें बना कर दिखा दिया है। अभी न जाने कितने तत्व आगे और बन सकेंगे। तत्वोंको वशमें करके वैज्ञानिकोंने अपने अपूर्व कौशलका परिचय दिया है। नये नये परमाणुओंको नयी विधियोंसे बना लेना इस युगका सबसे बड़ा चमत्कार है।

पेटेण्ट दवायें, जनता और डाक्टर

[डा० उमा शंकर प्रसाद, एम० बी०, बी० एस०]

सभी मनुष्योंमें चाहे वे सभ्य हों या असभ्य अन्ध-विश्वासकी मात्रा प्राकृतिक रूपमें पायी जाती है। पूरे सबूतके न होते हुये भी सब लोग अफवाहों पर शीघ्र विश्वास कर लेते हैं। मनुष्यके इस स्वभावसे लाभ शायद ही कभी होता हो परन्तु हानि प्रायः होती है। इस अंध-विश्वासकी बातके कारण सबको अपने स्वास्थ्यमें बहुत हानि सहनी पड़ती है।

गुप्त वस्तुयें सभ्य, असभ्य, सभी मनुष्योंको अपनी ओर बल पूर्वक आकर्षित करती हैं। गुप्त मंत्रोंमें सबको बहुत विश्वास रहता है लेकिन उन्हें ही सबसे खोलकर कहनेपर उस मंत्रके जादूका आकर्षण चला जाता है। ठीक यही बात दवाइयोंके बारेमें भी लागू है। प्रायः लोगोंको गुप्त दवाइयोंमें अधिक विश्वास होता है चाहे उस ओषधिमें कोई लाभदायक वस्तु न हो। परन्तु यदि किसी बढ़िया ओषधिकी बनावट, तथा विशेष रोगपर यह ओषधि किस प्रकार कार्य करके रोग दूर करती है जनताको समझा कर बतलायी जाय तो बहुत कमको इस ओषधिमें विशेषता ज्ञात होगी। यह मनुष्यका स्वभाव ही है कि वह गुप्त वस्तुमें विशेषता अनुभव करे।

शायद कोई पूछे कि यदि सचमुच ही पेटेण्ट दवाइयाँ या नीम हकीमोंकी ओषधियोंमें कोई गुण नहीं है तो जनता क्यों इन्हें खरीदती और प्रयोग करती है इसका उत्तर इस प्रकार होगा कि रोगी या जनताकी धारणा ऐसी ओषधियों तथा नीम हकीमोंके सम्बन्धमें इस भाँति होगी:— नीमहकीम न तो सरकारी नियमसे डाक्टर हैं और न उन्होंने डाक्टरोंकी भाँति विशेष शिक्षा पाकर परीक्षायें पास की हैं तब भी वे लोगोंको निरोगी कर देते हैं। अवश्य ही उनमें दैविक ज्ञान है और परीक्षा पास डाक्टरसे जिसे कई वर्ष तक कठिन पढ़ाई करनी पड़ी है नीम हकीम अवश्य कुछ विशेषता रखता होगा। गुप्त बात ही आकर्षणका कारण हो जाती है।

पुराने समयमें इस प्रकारकी दवायें बेचनेवाला स्वंय ही अपनी बनायी ओषधियाँ बेचा करता था। इसके ग्राहक वही होते थे जिन्हें ओषधिसे कुछ लाभ ज्ञात होता था तथा वह लोग जिन्हें कुछ लाभ पाये मनुष्य सिफारिश करते थे। ऐसी हालतमें यदि ओषधियाँ कुछ लाभ नहीं करती थीं तो उस मनुष्यके ओषधि बेचनेका रोज़गार समाप्त हो जाता था या यदि तब भी लोग उसकी ओषधि

खरीदते थे तो उस ठगमें बातें बनानेका बहुत बड़ा गुण रहता था जिससे लोग फँस जाते थे। अवश्य ही यह ठग मनुष्यके स्वभावसे बहुत परिचित रहता था और उसकी बातें तथा स्वभाव ही एक विशेष गुण थीं परन्तु उसकी दवायें कोई हानि नहीं पहुचाती थीं। संसारके सभी भागोंमें ऐसे ठग-डाक्टर विद्यमान थे और प्रायः सब जगह अब भी हैं।

आधुनिक कालमें इन ठग-डाक्टरोंकी समस्या बिल्कुल दूसरी है और सभी बुद्धिमान स्त्री-पुरुषोंको इस समस्यापर विचार करना उचित है। अमेरिका आदिमें और मुख्यतर भारतवर्षमें पढ़े लिखे स्त्री-पुरुष नित्य ही भाँति भाँतिकी औषधियोंके विज्ञापन पढ़ा करते हैं। कोई भी मासिक, साप्ताहिक, दैनिक हिन्दी, उर्दू या कोई भाषाका पत्र आप पढ़ें तो देखेंगे कि मुख्यतर विज्ञापन विचित्र ओषधियोंके सम्बन्धमें होते हैं जिनके सेवनसे सब प्रकारके रोग दूर हो जायेंगे। केवल पत्रिकायें ही नहीं, बल्कि शहरकी दीवारोंपर, सिनेमा घरमें स्लाइडों-द्वारा, डाकके लिफाफों-पर तथा अन्य कितनी ही भाँति इन पेटेण्ट ओषधियोंका विज्ञापन भरा रहता है जिससे ये दवायें बच्चों, जवानों, वृद्धों, तथा स्त्रियोंके मस्तिष्कमें स्वयं अपना घर बना लेती हैं। विज्ञापनका ज़ोर पहले न था परन्तु आजकल इस कलाकी ओटसे ठग लोग भी अपनी वस्तुओंकी खूब धूम मचा देते हैं। साथ ही दवाओंके साथ ऐसा वर्णन करते हैं कि सभी मनुष्य उन्हें पढ़कर एक बार यही विचारने लगते हैं कि यह सब रोग अवश्य मेरे शरीरमें हैं और इस दवाके सेवनसे रोग मुक्त होना संभव है। विज्ञापन ऐसी ज़ोरदार भाषामें लिखे रहते हैं कि मनुष्यके हृदयमें यह पक्का निश्चय हो जाता है कि यदि किसी विद्वान डाक्टरके पास परीक्षा कराने जायेंगे तो वह भी इसी ओषधिके सेवन-के लिये कहेगा। यदि डाक्टरकी राय ली गई और डाक्टर-ने परीक्षा करके बतलाया कि वह व्यक्ति बिल्कुल ठीक है तो भी उस मनुष्यको विश्वास न होगा और वह चुपचाप ओषधि खरीदकर उसका सेवन करेगा। अपना स्वास्थ्य सबको बहुत प्यारा है इस लिये कड़े दिलवालोंको शायद अपने डाक्टरके कहनेमें विश्वास हो जाय परन्तु कमज़ोर दिलवाला तो विश्वास न करेगा और अपनको रोगी समझ बैठेगा। उसको यह नया मानसिक रोग लग जायगा। अपना धन व्यर्थ खराब करेगा और चुपचाप पेटेन्ट दवायें खायेगा। एक हानि इस प्रकारके विज्ञापनसे और होती है कि यदि कोई मनुष्य सचमुच रोगी हो तो वह इन झूठी ओषधियोंपर विश्वास करके उनके सेवनमें बहुत समय बिता देगा। किसी डाक्टरके पास जानेकी आवश्यकता न समझेगा और बीमारीके प्रारम्भमें २–३ मासमें उचित चिकित्सासे वस शीघ्र रोग-मुक्त हो जाता पर अब वह ऐसा करना व्यर्थ समझेगा। बेचारा हार कर डाक्टरकी शरण लेता है जब रोग असाध्य हो जाता है।

इस समस्याका उपाय

इंगलैंडमें इस समस्याको दूर करनेके लिये लार्ड होर्डर महोदयने हाउस आफ लार्डसूसे कई बार प्रयत्न किया। भारतवर्षमें भी कर्नल चोपड़ा (कलकत्ता स्कूल आफ ट्रापिकल मेडिसिनके डाइरेक्टर) ने १९२३ से ही इस ओर ध्यान दिया। ड्राई,इनकायरी कमेटीकी रिपोर्टमें भी इसी बातपर पुनः ध्यान आकर्षित किया। विलायतमें तो सीक्रेट रेमेडीज़ (१९०८) और 'मोर सीक्रेट रेमेडीज़ (१९१२) नामकी दो पुस्तकें बृटिश मेडिकल एसोसियेशनने छपायीं जिनमें इस प्रकारकी ओषधियोंकी विश्लेषण करके बनावट और उसकी पोल खोल कर जनता के सामने स्पष्ट की। इन पुस्तकोंकी माँग जनतामें अच्छी थी परन्तु उस समय अंग्रेज़ी पत्र-पत्रिकाओंने इस सम्बन्धमें कुछ दिलचस्पी नहीं ली। १९१४ में पार्लेमेण्टने एक सिलेक्ट कमेटी पेटेन्ट ओषधियोंके बारेमें बैठाई। इस कमेटीने बहुत छान बीनके बाद बड़ी रिपोर्ट बनाई जिसमें ओषधियोंका सरकारी रजिस्ट्री होना, प्रत्येक ओषधिकी बनावटका नुसखा देना, तथा विज्ञापनमें रुकावट डालनेपर अपनी सम्मति दी थी लेकिन खेद है कि उक्त कमेटीकी कोई भी बात सरकारने कार्यमें परिणत नहीं की। इस कमेटीकी रिपोर्टका सारांश यह है :—"पेटेण्ट ओषधियोंके रोजगारसे जनताको बहुत बड़ी रुगविद्यामें फँसना पड़ता है और यह रोजगार बहुत बड़े पैमानेपर फैला हुआ है। इस संबन्धमें जो कानून बने हैं वह बिल्कुल कमज़ोर हैं और बुराईको रोकनेमें असमर्थ हैं। अब यह हालत असह्य हो रही है। जनताकी भलाईके

लिये कानून बनानेकी आवश्यकता है। पुराने कानूनमें अदल-बदल करना बेकार है।

१९१७ में पार्लेमेंण्टने आतशक, सुज़ाक आदि रोगोंके सम्बन्धमें कानून बनाया कि इन बीमारियोंको केवल प्रमाणित डाक्टर ही इलाज करें तथा इन बीमारियोंका विज्ञापन करना अथवा इन बीमारियोंको अच्छा करनेकी पेटेण्ट ओषधियां बेचना वर्जित है।

पेटेण्ट ओषधियोंको रोकनेके लिये १९३१ में दूसरा बिल पार्लेमेण्टमें पुनः आया लेकिन कुछ सफलता न मिली। १९३६ में भी यही हाल रहा। इस समय बृटिश कानून इस संबन्धमें इस प्रकार है :—साधारण कार्य्योंके लिये अंग्रेजी कानूनमें कोई शक्ति नहीं है जिससे लोग-मनमानी ओषधियाँ खरीदें, या बनायें चाहे वे बिल्कुल बेकार ही हों (हां, कुछ विष छोड़कर) तथा इनके विज्ञापन करनेमें, झूठे प्रमाण पत्रों द्वारा सच बतलानेमें, बनाये नामके डाक्टरके हस्ताक्षरके ज़ोरपर, ओषधिका मन चाहा नाम रख कर और मनमाना महँगा दाम ले कर भोली जनताको लूटे जानेमें रुकावट डालें।

डाक्टरी पेशेवाले पेटेण्ट ओषधियों तथा गुप्त दवाओंमें विश्वास ही नहीं करते। गुप्त ओषधियोंकी पोल खोलनेको तैयार रहते हैं। इन गुप्त पेटेण्ठ दवाओंकी बनावटमें बड़ी महंगी और बहुत असर करनेवाली दवाओंसे लेकर सबसे झूठे ठगनेकी दवायें तक भरी रहती हैं। कुछ ऐसी दवायें जनतामें विज्ञापन द्वारा नहीं भेजी जाती हैं। परन्तु केवल डाक्टरोंको ही विज्ञापनसे भेजी जाती हैं परन्तु इनसे भी बहुत हानि हो जाती है बहुत अच्छी ओषधियों तथा बिल्कुल खराब ओषधियोंका पक्का पता तो शीघ्र ही जनताको लग जाता है परन्तु इन दोनोंके बीचकी ओषधिसे ही बहुत हानि होती है।

पेटेण्ट ओषधियोंसे हानि

सौभाग्यसे 'डेन्जरस ड्रग्स एक्ट'के कारण कुछ रुकावट पड़ जाती है परन्तु बहुतसी पेटेण्ट ओषधियोंसे जनताको बहुत हानि पहुँचती है। कुछ पेटेण्ट ओषधियां ऐसी हैं जिनमें शराबका बहुत बड़ा भाग रहता है और इन ओषधियोंका शराबकी भांति लत और नशा पड़ जाती है। १९१४ में कमेटी ऐसी १२ दवायें ढूंढ सकी थी जिनमें शराबकी मात्रा १६% से २१% तक थी। इनकी बोतलोंपर शराबका नाम तो कहीं रहता नहीं और बहुतसे शाकहारी भी अनजानमें इनके आदी होकर इनका सेवन करते हैं।

कितनी ही बार तो इन ओषधियोंके सेवनसे मृत्यु हो चुकी है। कुछ दवायें ऐसी हैं जो सिर-दर्द तो जल्द दूर करती हैं और बहुत सस्ती होती है लेकिन वह बहुत विषैली होती हैं जिसके कारण डाक्टर उनको कभी प्रयोग नहीं करते। उदाहरणके लिये एसिटा निलियम है। कुछ सस्ती सिर-दर्दकी दवाओंमें यह ओषधि मिली रहती है जो बहुत हानिकर है। एक संस्थाने गर्भ गिरानेकी सस्ती दवा बनानेके लिये महँगे एप्रिकॉटके ऑयलकी जगहपर सस्ता ट्राइक्रेसिल फॉसफेटका प्रयोग किया जिससे कितने ही लोगोंको फालिजकी बीमारी हो गई। मोटापा दूर करनेकी बहुत गुप्त दवायें बिकती हैं। मोटापा दूर करनेकी ओषधियोंमें डाइ-नाइट्रो फीनोलके प्रयोगसे बहुत अधिक मृत्यु हुईं। इसीसे यह दवा अब विषके कानूनमें है। कुछ दिन हुये अमेरिकामें भी इसी प्रकारकी दुर्घटना हुई थी जिससे कम-से-कम ७३ प्राणी मृत्युके शिकार हुये। जर्नल आव अमेरिकन मेडिकल एसोसियेशनने इस विपत्तिपर अपनी राय इस प्रकार दी :—

"यह बात विश्वास करने योग्य नहीं समझी जायगी कि ओषधि बनानेवाले फ़र्मकी ओषधि खरीदनेको न कहेंगे परन्तु उपरोक्त घटनासे सबको अपनी आँख खोलकर चौकन्ना हो जाना चाहिये क्योंकि हम देख रहे हैं कि यह भी हो गया। एक दवा बनानेकी अदूरदर्शिता, लापरवाही तथा जल्दी-बाज़ीके कारण ६० मृत्यु हो गईं। उसने बिना कुछ जाँच पड़तालके ही डाक्टरों तथा जनतामें अपनी ओषधि बेची। सचमुच भोजन और ओषधियोंको रोकनेके क़ानूनमें कमीका इससे अधिक बुरा परिणाम और नहीं हो सकता है।

उपर्युक्त घटना अमेरिकामें हुई लेकिन हमारे भारत वर्षमें ऐसी घटनायें बहुत होती हैं और उनपर लोग ध्यान भी नहीं देते हैं। इनको रोकनेका कोई उपाय भी नहीं है। नई-नई ओषधियाँ आजकलके बड़े-बड़े रासायनिक विज्ञानके कालमें नित्य ही बनती हैं परन्तु इन नई ओषधियोंकी पूरी

जाँच हुये बिना ही बाज़ारमें बेचे जानेसे रोकनेके लिये कोई कानून नहीं है। हाँ विषोंके लिये कुछ कानून हैं परन्तु नई ओषधियोंके स्वभाव, गुण-अवगुणका पता लगानेमें तो कुछ समय लगता है। और आवश्यकता पड़नेपर उन्हें भी विष-क़ानूनमें डालनेमें तो बहुत समय लग जाता है परन्तु उससे बहुत पहले ही यह हानिकर दवायें बाज़ारमें गुप्त तथा पेटेण्ट नयी आविष्कृत दवाओंके नामपर धूमके साथ बिकती हैं और जनतामें कितनी हानि पहुँचती है। उदाहरणार्थ, एक बड़ी सनसनीदार घटना कुछ दिन हुये इंगलैण्डमें हुई जिससे किसी पिट्सवर्गके करोड़ पतिकी मृत्यु हो गई। जवान बने रहनेकी एक पेटेण्ट दवाके बहुत दिन तक सेवन करनेके कारण इनकी मृत्यु हुई। बादमें पता चला कि उस पेटेण्ट दवामें रेडियम बहुत अधिक मात्रामें था।

जब २६ जुलाई १९३८ में पार्लमेण्टमें लार्ड होर्डर ने इस विषयको उठाया था तो बहुत लोगोंने उनके ऊपर दोषारोपण किया था कि लार्ड होर्डर चाहते है कि पेटेन्ट सस्ती दवायें बन्द हो जायँ तो गरीब जनताको हार कर डाक्टरोंके पास दवाके लिये जाना पड़ेगा और डाक्टरोंका रोज़गार चमकेगा। कुछ पत्रिकाओंने भी उनपर काफी कटाक्ष किया। लेकिन होर्डर महोदयने तो यह साबित कर दिया कि अंग्रेजी जनताकी पेटेण्ट दवायें प्रतिवर्ष २५,०००,००० से ३०,०००,००० पौंडकी बड़ी रकम चूस लेती हैं। इतनी रकम तो इंगलैण्डके सब अस्पतालोंमें भी सालभरमें नहीं लगती।

लार्ड होर्डरका कहना सत्य था। सरकार तो अपनी ओरसे जनताको स्वास्थ्यकी शिक्षा देनेके लिये बहुत बड़ी रकम खर्च कर रही है और उसने शारीरिक उन्नतिके बड़े-बड़े स्कूल खोले हैं, इस विषयमें उचित शिक्षाका प्रचार कर रही है और दूसरी ओर पेटेण्ट दवाओंके बड़े ज़ोरदार विज्ञापनोंसे ताकतकी दवा, धोखेकी घरेलू दवा आदिके नामपर जनताके मानसिक भावको उल्टी शिक्षा देनेका प्रयत्न कर रहे हैं। जब सरकार सचमुच जनतापर इतना धन खर्च करके उनकी शारीरिक तथा मानसिक उन्नति चाहती है तो क्या उसका कर्तव्य नहीं है कि इस प्रकारके धोखेवाले हानिकर तथा अनुचित विज्ञापन और पेटेण्ट औषधियोंके रोजगारको रोके?

उपाय

१९१४ की सिलक्ट कमेटीने इस समस्याके लिये तीन उपाय सोचे थे :—

(१) रजिस्ट्रेशन—एक महकमा सरकार ऐसा बनाये जिसका काम इस प्रकार हो :—(क) एक रजिस्टर रक्खा जाय जिसमें पेटेण्ट तथा अन्य ओषधियोंके बनानेवाली कम्पनियोंका पूरा पता हो, विदेशसे इस प्रकार औषधियोंको मँगाकर बेचनेवाले दुकानदारोंका नाम हो और प्रत्येक इस रोजगारका-व्यक्ति रजिस्ट्री प्रमाण-पत्र रक्खे जिसमें फर्मका या धर्मके प्रतिनिधिका पूरा पता लिखा रहे तथा उन दवाओंकी सूची हो जो बनायी जायँ, बाहरसे मँगायी जायँ अथवा जिन्हें बनानेका विचार हो।

(२) औषधियोंका नुसखा खोलकर बतलाया जाय

प्रत्येक ओषधि, गुप्त, पेटेंण्ट, घरेलू आदिके बनानेकी, विधि उसमें पड़नेवाली सब दवाओं आदिका पूरा नाम, मात्रा, ताक़म आदि तथा किन बीमारियोंको अच्छा करनेकी दावा करती है, कुछ नमूनेकी बनी दवा, इस महकमेमें रक्खी रहें। यह सब बातें सबको प्रकाशित न कर दी जाँय बल्कि सरकार इन बातोंकी उचित जाँच रासायनिक विश्लेषण आदि द्वारा सरकारी अधिकारियोंसे कराये।

(३) विज्ञापन पर अधिकार

"दवाओंकी झूठी बनावट देना ग़ैर कानूनी समझा जाय। झूठी बनावटसे आशय यह हो कि कोई दावा जैसे रोग अच्छा होगा अथवा झूठी दवाओंका नाम आदि अथवा कोई उपाय जिससे लोगोंमें ग़लत आशय निकलें कानूनके विरुद्ध समझा जाय। तथा ओषधि-निर्माता किस सबूतपर अपने उक्त ओषधिको लाभकर सिद्ध करता है यह भी लिखे।

इस कमेटीने कई राय और भी दीं जैसे नपुंसकता इत्यादि काम रोगके विषयपर कोई विज्ञापन न निकले। गर्भ गिरानेकी दवाका विज्ञापन भी कानूनके विरुद्ध समझा जाय। कुछ नीचे दी गई बीमारियोंका भी विज्ञापन मना कर दिया जाय जैसे :—

कैन्सर	मधुप्रमेह
क्षय रोग,	लकवा,
कोढ़,	मिर्गी
बहरापन	दौराआना

भारतवर्षकी अवस्था तो अब बहुत शोचनीय हो रही है। यह सच है कि भारतवर्षमें पढ़ी लिखी जनता बहुत कम है इससे पत्र पत्रिकाओंका विज्ञापन अपढ़ जनताके पास बहुत कम पहुचता है। पत्र पत्रिकाओंमें मुख्यतर नपुंसकता के दूर करनेकी ओषधियोंकी भरमार रहती है। सस्ते तथा रद्दी नीचे दरजेकी पत्रिकाओंमें ऐसे विज्ञापन भरे रहते हैं। कुछ विज्ञापन तो इतने घृणित होते हैं कि इन पत्रोंको लड़कों, लड़कियों तथा और स्त्रियों और स्कूलमें पढ़नेके लिये देनेमें संकोच होता है। कुछ दिन हुये इसी विषय पर किसी महिलाने गाँधी जीके पास लिखा था कि वह कुछ कर सकें। समाज सेवकोंको इस ओर ध्यान शीघ्र देकर समाजके इसगन्दे कीड़ेकी जड़ उखाड़ फेंकना चाहिये। पत्र-पत्रिकाओंके संचालकोंको ऐसे विज्ञापन रुपयेके लालचमें पड़ कर कभी न छापने चाहिये और यदि पत्र-पत्रिकायें ऐसा करनेसे न रुकें तो इन पत्र-पत्रिकाओंका वहिष्कार करना चाहिये।

आज कल श्रीमती लेडी लिनलिथिगोकी अपीलसे जनताका ध्यान क्षयरोगकी ओर आकर्षित हुआ है और इससे लाभ उठानेके लिये ठग तथा झूठे ओषधिवाले मौका पाकर खड़े हो गये हैं जिससे इन दिनों क्षय-रोगकी बहुत ओषधियोंका विज्ञापन पत्रोंमें दिखलाई देने लगा है।

बृटिश मेडिकल एसोसियेशनने कुछ झूठी दवाइयोंके विरुद्ध लिखा था जिससे उन दवाओंके बनानेवालोंने उक्त एसोसियेशनके विरुद्ध नालिश करके हरजाना माँगा था लेकिन मुकदमेमें हार जानेके कारण जनतामें झूठी पोल खुलनेसे उन्हे अपनी ओषधियाँ बन्द करनी पड़ी थीं। १९१८ में इनफ़्लुआ बहुत ज़ोरोंपर था और उस समय एक पेटेण्ट कीटाणु नाशककी बड़ी चर्चा रही। जनताने ख़ूब ख़रीदा। बृटिश मेडिकल एसोसियेशनका चेतावनीपर इस दवाकी विक्री घट गयी लेकिन १९२४ में पुनः इस दवाके बिकनेकी बड़ी कोशिश हुई। दोहरे पेजके बहुत बड़े आकारके जोरदार विज्ञापन निकलने लगे जिसमें दावा था कि आदर्श कीटाणु—नाशक अब संसारको मिल गया इत्यादि, सभी अंग्रेजी पत्रोंमें विज्ञापन निकलते थे। केवल डेली-मेलने विज्ञापन छापनेसे इनकार कर दिया और उल्टे अपने अखबारमें केमब्रिज विश्व विद्यालयके रसायनके प्रोफेसर सर विलियम पोपका तीन कालमका लेख छाप दिया जिसमें उक्त पेटेन्ट औषधिके कीटाणु नाशक गुणके दावेका खंडन किया गया था तथा बतलाया कि "ट्राइ-मेथेनोल एलाइलिक कारबाइड" नामकी जो दवा कम्पनीवालोंने घोषित की थी वह बिलकुल झूठी थी क्योंकि ऐसा कोई रासायनिक यौगिक नहीं बन सकता था। और जनतापर रोब डालनेको बड़े-बड़े झूठे नाम गढ़े गये थे। प्रो० पोपने विश्लेषण करके बतलाया था कि उक्त दवाकी बनावट इस भाँति थी :—

फारमेल्डि हाइड	प्रायः १%
ग्लिसरीन	प्रायः ४%
पानी	प्रायः ६५%
तथा कुछ महक	

महकका रहना आवश्यक था क्योंकि ओषधि बनानेवालोंका कहना था कि उक्त कीटाणु नाशक लहसुनके रससे तैय्यारकी गई है। प्रो-पोपने हिसाब लगाया था कि इस दवाके १ गैलन बनानेमें कुल १ शि ६ पें० १ रु०) लगते और जनताको १ गैलनकी कीमत ४ पौंड १० (७० रु०) देनी पड़ती थी। इस लेखसे जनताकी आँख खुल गई। इस ओषधिका दावा यह भी था कि इससे क्षय, कैन्सर तथा असाध्य रोग दूर हो जाते हैं। प्रो० पोपने अपने लेखका अंत इस प्रकार किया थाः—क्षय तथा कैन्सरकी बीमारियाँ बहुत अधिक लोगोंको होती हैं और इनसे मृत्यु भी बहुत होती है। पेटेण्ट ओषधियोंकी बिक्री इससे बहुत अधिक होती है कि इन ओषधियोंका दावा होता है कि इन असाध्य रोगोंको अच्छा कर देगी।

"हमारे कितने ही गरीब घरों और कुटुम्बोंमें एक या दो ऐसे असाध्य रोगी मिलते हैं और उनके गरीब सम्बन्धी अपने प्यारे भाई, बहन, माँ, बाप या पुत्र आदिके लिये अपना पेट काट कर रुपया इन असाध्य रोगियोंपर खर्च करते हैं।

यह सोच कर बहुत दया तथा दुःख होता है कि यह गरीब असहाय तथाकम बुद्धिवाले कुटुम्बी अपने सम्बन्धीको असाध्य रोगसे बचानेके लिये भटकीले, धोखेबाजीके गुप्त या पेटेण्ट ओषधियोंके विज्ञापनको पढ़ कर उनके शिकार हो जाते हैं और उनको सच समझ कर कि शर्तिया रोग मुक्त हो जायेगें, अपना सब धन भोलेपनमें खर्च कर देते हैं उस धनसे जो कूड़ा बिचारोंको पेटेण्ट और गुप्त दवाके नामपर मिलता है, उसका कहीं अच्छा उपयोग होता यदि उस धनको यह अपने रोगी बन्धुके अन्य आवश्यक काममें खर्च करते।

विदेशी पेटेण्ट दवाओं तथा गुप्त ओषधियोंको बेचनेका मुख्य स्थान तो भारतवर्ष है। नित्य ही विज्ञापनकी ढेरकी ढेर डाक और थैलियाँ पोस्टमैनकी पीठ तोड़ती रहती हैं। पत्र-पत्रिकाओंमें पूरे पेजके बहुत बड़े दिलचस्प विज्ञापन सबको आकर्षित करते हैं। नित्य ही नई ढूँढ़ खोजकी ताकतदार ओषधि पढ़नेमें आती हैं। इनसे बचनेके लिये क्या हमें अब पैर पर नहीं खड़ा होना चाहिये। हम क्या नहीं समझते कि डच क्विनइन तथा जर्मन सिन्थेटिक मलेरिया दूर करनेकी दवामें आपसमें बहुत होड़ लगी है और विज्ञापन-बाजीमें एक दूसरेको झूठा सिद्ध करनेमें खूब खर्च कर रहे हैं? यह सब रुपया कहाँसे आता है? अवश्य ही हमें इस खर्चका दाम भी महँगी ओषधिके रूपमें देनी पड़ती है।

हमें आशा है कि जनता पेटेण्ट और गुप्त ओषधियों तथा विज्ञापनोंपर विश्वास न करके प्रमाणित डाक्टरोंसे राय लिया करेगी। साथ ही पत्र-पत्रिकामें भी ऐसे विज्ञापनमें रुकावट डालनी चाहिये। सरकारको भी शीघ्र उचित कानून द्वारा इस बुराईको दूर करना चाहिये।

वैज्ञानिक संसारके ताज़े समाचार

मोटरका हुड बटन दबानेसे बन्द होगा।

एक मोटरके नये मॉडलमें केवल एक बटन दबानेसे मोटरका हुड (छत) उठ जाता है। एंजिनका वैक्यूम इस कार्यमें सहायता देता है। हुड इतना जल्द उठता है या गिरता है कि आश्चर्य होता है विशेषकर जब इस बातपर ध्यान दिया जाता है कि साधारणतया हुड उठाने या गिरानेमें २ आदमियोंकी ज़रूरत पड़ती है।

नक़ली रेशम ८०० गुना जल्द कतेगा

पहले शहदके समान गाढ़ा विस्कोससे नक़ली रेशमके सूत कातने तकके विविध क्रियाओंमें ९० घंटा लगता था परन्तु अब अमरीकाके पेंसविल शहरमें एक ऐसी मशीन खड़ी की जारही है जो इस कामको ६½ मिनिटमें कर डालेगी इस वेगका रहस्य एक पेटेण्ट की हुई तकली है। ये तकलियां देखनेमें ग्रामोफ़ोनके रिकार्डकी तरह होतीं हैं परन्तु नज़दीकसे देखनेपर ज्ञात होगा कि इनमें बहुतसी बेकलाइटकी बनी उंगलियां हैं जो विस्कोसके तारको एंठती हैं और इस प्रकार कते तागेको २०० फुट प्रतिमिनट नीचे उन रासायनिक घोलोंमें गिराती हैं जो विस्कोसको कड़ा कर देते हैं। इन घोलोंमेंसे निकल कर तागा तकलियोंपर मशीन द्वारा लिपट जाता है।

कृत्रिम गाय जो जुगाली करती है और ग्राहकोंको आकर्षित करनेके लिये रंभाती है।

विदेशी अहीरोंमेंसे कुछ, ग्राहकोंको अपनी दुकानपर आकर्षित करनेके लिये ऐसी कृत्रिम गाय खड़ी करते हैं जिसके पेटमें मशीन रहती है जिससे दुम हिलती हैं कान फड़फड़ाता है। गाय जुगाली करती है यहाँ तक कि गाय रंभाती भी है गायके पेटमें एक मोटर लगा रहता है जिसमें कई एक डंडे जुते रहते हैं जो पूंछ आँख कान मुँह और सिरको चलाते हैं एक भाथी लगी रहती है जिसके दबाने और छूटनेपर रंभानेकी आवाज़ निकलती है। बाहरसे देखनेमें गाय असली गायकी तरह जान पड़ती है परन्तु बगलमें इस प्रकार कटी रहती है कि यह दरवाज़ेकी तरह खुल सकती है जिससे मशीनकी सफ़ाई होसकती है।

दस मीलसे भी ऊँचा

इटलीके कर्नल मेरिथोपेजी हालमें क़रीब ११ मील ऊँचा उड़ सके। उन्होंने ऐसा कपड़ा पहन रक्खा था जो देखनेमें समुद्री गोता खोरोंका-सा था। अपने एक इंजिन वाले कैपरोनी हवाई जहाज़ पर वे ५६६३ फुट ऊँचा उड़ सके।
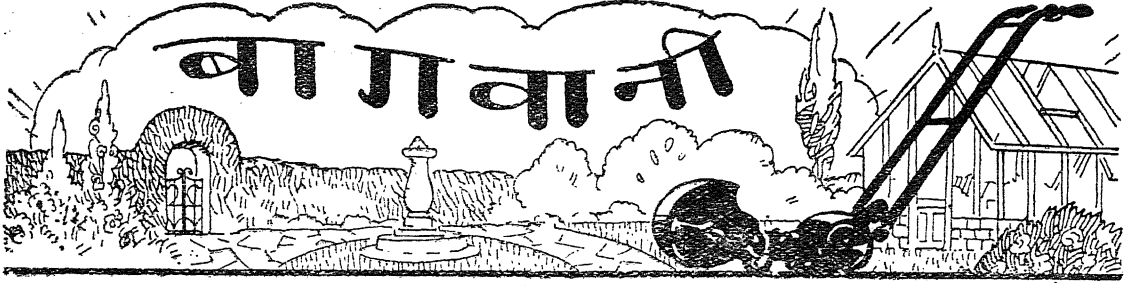
बिना मिट्टी के पौधे उगाओ; जल-खेती या हाइड्रोपोनिक्स

[ले०—श्री० प्रो० जगमोहनलाल चतुर्वेदी, उस्मानिया टीचर्स ट्रेनिंग कालेज]

पौधोंकी खेतीके इस नवीन एवं निराले तरीक़ेके लिये बहुतसे शब्द प्रयोग किये जाते हैं मसलन टंकी-खेती, पानी-खेती, जल-खेती इत्यादि। जल-खेतीकी अर्वाचीन विद्या अपनी विचित्रताके कारण एक जोशीले कृषि वेत्ताको—चाहे वह नोसिख हो अथवा धुरन्धर वैज्ञानिक खोजी—मुग्ध कर लेती है। केलीफोरनिया युनीवर्सिटीके डाक्टर डब्लू-एफ गेरिकने जल-खेती-घोलके माध्यममें पौधोंके उगानेकी जो विधि प्रतीपादितकी हैं वह सौ साल पुराने तरीक़ेका रूपान्तर मात्र है जब कि वैयक्तिक पौधोंको इन्द्रिय विज्ञान सम्बन्धी शोधके निमित्त पोषक-घोलमें उगाया जाता था। इस परिपाटीमें कोई मौलिकता तो है नहीं अलबत्ता उपरोक्त सज्जनने इसके द्वारा जन साधारणके विनोदार्थ अथवा व्यापारिक परिमाणमें पौधोंके उगानेका मार्ग प्रदर्शित किया है।

जल-खेती कोई ऐसा साधन नहीं है जो कृषि अथवा बाग़बानीके माने हुए तरीक़ोंमें विप्लव उत्पन्न कर दे और न इस बातका डर है कि यह पुराने विधानोंको बिलकुल उलट देगा जिसका परिणाम यह हो कि प्रत्येक कमरे अथवा गृहका स्वामी अपने-अपने लिये टमाटर और आलू उत्पन्न करनेमें प्रवृत्त हो जाय अथवा ऐसे महानुभाव जो शौक़ीन मिज़ाज हैं, सेवती, बिगोनिया अथवा इसी प्रकारके अन्य फलोंको अपने-अपने घरों अथवा कमरेमें उगाने लगें। ऐसे मनुष्य जिन्हें पौधोंकी नियंचित पैदावारसे हार्दिक प्रेम है—जगहकी तंगी और मिट्टीके अभावमें भी जल-खेती द्वारा अपने मन चाहे पौधे उत्पन्न करनेके लिये थोड़ी बहुत जगह तलदासा अथवा छत पर कहीं-न-कहीं ढूंढ़ ही लेते हैं।

प्रयोग करनेवालोंको भली भांति समझ लेना चाहिये कि इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि मिट्टीकी उपयुक्त हालतमें उगे हुए पौधोंकी अपेक्षा जल-खेती प्राप्त पौधोंकी उपज अधिक होती है अथवा पौधे अच्छे उत्पन्न होते हैं।

जब पौधे मिट्टीमें उगाये जाते हैं तो वह अपना भोजन बहुतसे रासायनिक पदार्थोंसे प्राप्त करते हैं जो स्वभावतः मिट्टीमें मिले रहते हैं अथवा खाद द्वारा मिला दिये जाते हैं। पानी इन पदार्थोंमेंसे घुलन शील भोजनको अलग कर लेता है और उसे पौधोंकी जड़ोंके उपभोगके लिये पहुँचा देता है। जल-खेतीमें पौधे मिट्टीसे वंचित रहते हैं। उनकी जड़ें ऐसे पानीमें प्रविष्ट कर दी जाती हैं जिसमें यथेष्ट पोषक-लवण मौजूद होते हैं। पौधे पोषक-घोलसे ऐसे पदार्थों कोचूस लेते हैं जो उनका पालन पोषण करते हैं। अतएव साधारण अवस्थामें पौधोंकी प्रगति और क़दके हिसाबसे सारे घोलको बार-बार बदलते रहना उचित होगा अन्यथा विश्लेषकको यह देखना पड़ेगा कि पौधोंकी बढ़वारके ज़मानेमें कौनसा पदार्थ खर्च हो गया है। घोलको साइफन द्वारा बदला जा सकता है अथवा टंकी बनाते समय उसमें चुस्त डाट लगा दी जाय।

पौधे कहां लगायें ?

लकड़ी, कांक्रीट अथवा लोहेकी टंकियाँ—जिन्हें एसफाल्टसे रंग दिया गया हो—इस कामके लिये उपयुक्त

होंगी। इनको जितना चाहो लम्बा और चौड़ा बना लो लेकिन गहराई ६ इंच होनी चाहिये। सरलताकी दृष्टिसे प्रारम्भिक प्रयोगोंके लिये ६ फीट लम्बी २ फीट चौड़ी और ६ इंच गहरी टंकी उचित होगी। इसमें पहिले २५ गैलन पानी भर दिया जाय और पानीकी सतहपर टंकीके अन्दरकी तरफपर निशान कर दिया जाय क्योंकि यह अत्यन्त आवश्यक है कि घोल इस निशानसे बहुत नीचे न उतरने पाए। तारकी जालीकी चटाईको जिसमें छोटे पौधोंके लिये एक-एक इंचके और बड़े पौधोंके लिये दो-दो इंचके छेद हों—एसफाल्टसे रंग दिया जाय। चटाईको फिर इस तरह बिछाया जाय कि यह पानीकी सतहसे तीन इंच ऊँची रहे इस ऊँचाई द्वारा प्राकृतिक रीतिसे पौधोंको हवा प्राप्त हो सकेगी। जल-खेतीमें यह बात ज़रूरी है कि घोलमें अधिक वायु पहुँचानेका प्रबन्ध किया जाय। नेथेर्नाल गोल्ड हेराल्ड-के कथनानुसार—जिसने विस्तृत परिमाणपर जल-खेतीकी है—इन छोटी-छोटी टंकियोंके घोलोंमें हवा पहुँचानेके लिये प्रतिदिन दो दफे बाइसिकिल पम्पको घोलमें थोड़ी देर तक तेजीसे चलाना पर्याप्त होगा।

जालीपर भूसा बिछाओ

जालीपर कुछ भूसा बिछाकर उसपर बुरादा डाल दिया जाय। इस सतहपर यदि बीज बोना हो तो दो इंच मोटा भूसा बिछाया जाय। यदि कलमों, पौधों और गडियोंको लगाना हो तो भूसेकी तह तीन या चार इंच मोटी होनी चाहिये।

जब पहिली दफा पौधे लगाये जायँ अथवा बीज बोये जायँ तो घोलमें इतना पानी डाल दिया जाय कि जालीसे लगभग एक इंच तक आ जाय। इस तरह पानी डालने-से घोल दिये हुये नुसखेकी अपेक्षा कुछ पतला ज़रूर हो जाता है मगर इससे हानि नहीं। सफेदा जलीय जड़ोंके तैयार होनेके बाद ही घोलका गाढ़ापन नुसखेके अनुसार रक्खा जाय और पानी जालीसे तीन इंच नीचे उस सतह तक रक्खा जाय जहां टंकीपर निशान कर दिया गया था। जब भूसेमें रक्खे हुये पौधे काफी बड़े होते हैं तो उनकी भूरे रंगको ज़मीनी जलीय जड़ोंके बननेके पहिले मर जाती हैं। पौधोंको इस तरह लगाया जाय कि उनकी जड़ें भूसे और जालीके छेदोंसे निकलकर पोषक-घोलमें पहुँच जायँ।

पौधोंका रोपना

बीज बोनेके पहिले जालीके ऊपरके बुरादे और भूसे-को तर कर दिया जाय तत्पश्चात बीजोंको बिखेरकर ढक दिया जाय। कलमों और पौधोंको जालीपर उसी भांति लगाया जाता है जिस तरह कि मिट्टीमें। पौधोंको अपने स्थानसे उखाड़कर यहाँ लगानेसे पहिले उस मिट्टीको जहां वह लगाये गये थे अच्छी तरह तर कर लिया जाय ताकि उनकी जड़ें टूटने न पाएँ। भूसेमें लगानेके पूर्व पौधोंकी जड़ोंको धोकर मिट्टीके कण अलग कर दिये जायँ और जड़ों-को पोषक-घोलमें डाल दिया जाय। गडियोंको भी भूसेमें उसी तरह लगाते हैं जिस तरह कि मिट्टी में। यदि यह अच्छी हालतमें हो तो इनमें जड़ें निकलने लगती हैं। भूसेको सदा तर रक्खा जाय मगर इतना गीला भी न किया जाय कि हवा पहुँच न सके और पानी ठहरा रहे। पानी ठहरे रहनेकी अवस्थामें इस बातकी आशंका है कि कीटाणुओंके कारण पौधे सड़ने लगेंगे।

यह सच है कि शत प्रतिशत सफलताका दावा करना संभव नहीं और विशेष स्थान, हवा, ताप और नमीकी हालतमें पौधोंकी जल-खेती द्वारा सफलता पूर्वक उगानेके पहिले बहुतसी त्रुटियां होंगी जिन्हें अनेक प्रयोग करके ठीक करना होगा। इस विधानसे पौधोंको उगानेमें पानी-की खासियत, पोषक-नुसखेमें अधिक खारेपनको मारनेके लिये रासायनिक पदार्थोंका उचित परिमाणमें मिलाने इत्यादिपर विचार करना होगा। जल-खेती द्वारा पौधे उगानेमें पानीके अम्लीय और क्षारीय गुण भी विचारणीय हैं। इसका अंदाजा लिटमस काग़ज़से किया जा सकता है। यदि पानी क्षारीय हो तो उसमें हलका गंधका मल या नोषिकाम्ल मिला दिया जाय ताकि घोल थोड़ा अम्लीय हो जाय।

पानीमें कौनसे लवण घोले जायँ ?

दूसरी बात पोषक नमकोंका चुनाव है। यों तो बीज बेचने वालोंसे पोषक नमकोंके बहुतसे नुसखे मिल सकते हैं मगर इनमें जाँच द्वारा यह मालूम करना पड़ता है कि जिन पौधोंको उगाना अभीष्ट है उनके लिये यह उपयुक्त हैं या नहीं। यदि कोई वैज्ञानिकोंके प्रयोग सिद्ध एवं मान-

नीय नुसखोंको काममें लाना चाहे तो वह डाक्टर जान-एम आरथरके अनुभूत नुसखोंमेंसे किसीका इस्तेमालकर सकता है।

डाक्टर जे-डब्लू शिवका प्रयोग सिद्ध घोल जो कि आसानीसे तैयार किया जा सकता है और जिसे सफलता पूर्वक इस्तेमाल किया जाता है—नुसखा नम्बर (१) में दिया गया है। दूसरा घोल जिसे डाक्टर आरथर और उनके सहकारियोंने अनुभव द्वारा अपनी संस्थामें प्राप्त किया है नुसखा नम्बर (२) में दिया गया है। यह दूसरा नुसखा बहुतसे पौधोंके उगानेमें इस्तेमाल किया है। इस नुसखेके पदार्थोंकी मात्रा आउंसोंमें दी गई है और शिवके नुसखेके समान २५ गैलन घोल तैयार करनेके लिये काफी है। डाक्टर आरथर यह जरूरी समझते हैं कि घोलमें लोहा बोरन और मैंगनीजकी कुछ मात्रा मिला दी जाय। इस मतलबके लिये आइरन क्लोराइड, बोरिक एसिड और मैंगनीज क्लोराइडका संयुक्त घोल तैयार कर लिया जाय। इन घोलोंको नुसखेके २५ गैलन घोलमें बोरन और लोहेकी दस-दस बूंदे और मैंगनीजकी ५ बूंदे के हिसाबसे मिला दिया जाय। इन नुसखोंको तैयार करनेके लिये यह जरूरी नहीं है कि रासायनिक शुद्ध नमक इस्तेमाल किये जायँ क्योंकि साधारण खादमें काममें आनेवाले नमक भी उसी हद तक उपयोगी हैं।

केलीफोरनिया यूनीवर्सिटीके कृषि कालिजकी प्रयोग-शालाके प्रोफेसर डी० आर होगलेंड और डाक्टर डी० आई आरननने बहुतसे पौधे उगानेका एक नुसखा बतलाया है। इसके पदार्थ नुसखा नम्बर (३) में दिये गये हैं। उनका यह भी कहना है कि इस नुसखेको अन्य नुसखोंसे इस बातमें अधिक महत्व प्राप्त हैं कि एमोनियम फोसफेटकी उपस्थिति हानिकारक खारेपनकी उत्पत्तिको बहुत दिनोंके लिये टाल देती है। एमोनियम और मैंगनीसियमके लवण बिल्कुल शुद्ध होने चाहिये मगर शेष दो खादके काममें आनेवाले नमक हो सकते हैं। पानीमें लवणको नुसखेमें लिखे हुए क्रमसे मिलाया जाय। इस नुसखेमें लोहा, बोरन मैंगनोज, जस्त और तांबा मिला दिया जाय। यद्यपि ताँबा और जस्त पौधोंकी बढ़वारके लिये जरूरी है तथापि इन्हें पोषक-घोलमें मिलानेकी आवश्यकता नहीं क्योंकि यह तत्व पोषक नमक अथवा पानीमें मैलके रूपमें पाये जाते हैं। बोरन और मैंगनीजके घोल (जरूरत होनेपर तांबे और जस्तके घोल) दिये हुये अनुपातमें प्रत्येक बार पोषक-घोलके बदलनेपर मिला दिये जायँ।

लोहा मिलानेके लिये एक चाय-चम्मच भर आइरन टारट्रेट को एक क्वार्ट पानीमें घोल लिया जाय और इसकी इक प्याली ६५ गैलन घोलमें प्रत्येक सप्ताह मिला दी जाय। यदि पौधोंका रंग भदरंग हो तो इससे भी जल्दी-जल्दी आइरन टारट्रेटका घोल मिलाया जाय।

बोरन मिलानेके लिये एक चाय-चम्मच भर बोरिक एसिड एक गैलन पानीमें घोल ली जाय और इस घोल-का $1\frac{1}{2}$ पाइंट २५ गैलन पोषक-घोलमें मिला दिया जाय।

मैंगनीज़ मिलानेके लिये एक चाय-चम्मच भर शुद्ध मैंगनीज़ क्लोराइड एक गैलन पानीमें घोल लिया जाय। प्रोफेसर होगलेंड और डाक्टर आरनन सिफारश करते हैं कि इस घोलके एक भागमें दो भाग पानी मिला दिया जाय फिर इस हलके किये हुये घोलका एक पाइंट २५ गैलन पोषर-घोलमें मिला दिया जाय।

जस्तको मिलानेके लिये एक चाय-चम्मच भर शुद्ध ज़िंकसलफेट एक गेलन पानीमें घोल दिया जाय और चार चाय-चम्मच भर यह घोल २५ गेलन पानीमें डाल दिया जाय।

ताँबा मिलानेके अभिप्रायसे शुद्ध एक चाय-चम्मचम भर नीला थोथा (तूतिया) एक गैलन पानीमें घोल दिया जाय। इस घोलके एक हिस्सेमें चार हिस्से पानी डालकर हलका कर लिया जाय और हलकाये हुये घोलका एक चाय-चम्मच भर २५ गैलन पोषक घोलमें मिला दिया जाय।

हवा और पानीसे जिन तत्वोंको पौधे प्राप्त करते हैं उनके सिवाय पौधोंको कम-से-कम ग्यारह और तत्वोंकी जरूरत होती है चाहे पौधोंको पानी या मिट्टीमें उगाया जाय। जल-खेतीके समय इन पदार्थोंको यथेष्ट रूप और परिमाणमें पानीके साथ मिला देनेमें सावधानी बर्ती जाय। उपजनेकी क्रियांमें यह बात स्वाभाविक पाई जाती है कि कुछ पौधे विशेष रासायनिक पदार्थोंको

दूसरोंकी अपेक्षा अधिक उपभोग करते हैं और यह भी सत्य है कि उपजके भिन्न-भिन्न समयमें किसी एक रासायनिक पदार्थको दूसरेकी अपेक्षा अधिक इस्तेमाल करते हैं। घोलकी विश्लेषण क्रियाके कठिन कामको बार-बार करनेके बदले एक विधि तो यह है कि प्रत्येक अर्ध मासमें टंकियोंको खाली कर दिया जाय। ऐसा करनेपर भी यह जरूरी होगा कि पानीको एक निर्दिष्ट सतहपर बनाये रखनेके लिये घोलमें कभी-कभी पानी डाल दिया जाय। घोलके अर्ध मासिक परिवर्तनके समय जब टंकी खाली हो जाय तो पहिले इसमें १२½ गैलन पानी भर दिया जाय। तदुपरान्त पोषक नमक मिला दिये जायँ और शेष १२½ गैलन पानी दबावके साथ टंकीमें डाला जाय ताकि रासायनिक पदार्थ कुल पानीमें अच्छी तरह घुल मिल जायँ। टंकीको खाली करने और भरनेकी क्रिया-में न्यूनतम समय दिया जाय ताकि जड़ें सूखने न पायें।

पौधोंकी देखभाल

जल-खेती करनेसे पौधोंको मिट्टी द्वारा होनेवाली बीमारियाँ नहीं लगने पातीं परन्तु कीड़े, फफूंदी और कीटाणु इन पर भी उतने ही व्याप्त हैं जितने कि मिट्टीमें उगे हुये पौधोंपर। बहुधा फफूंदी कष्ट दायक होती है क्योंकि टंकीके पानीके कारण पौधोंमें तरी बढ़ जाती है। यदि पौधोंपर पिसी हुई गंधक छिड़की जाय तो फफूँदीसे पौधोंको सुरक्षित रक्खा जा सकता है।

ताप और प्रकाशकी दैनिक तीव्रता और मुद्दत पौधोंके लिये उतने ही महत्व पूर्ण हैं चाहे उनको पानीमें उगाया जाय या मिट्टीमें। जनरल एलिक्ट्रिक प्रयोगशालामें लारेंस-सी-पोर्टर और उनके सहकारियोंने हाल ही में कृत्रिम प्रकाश द्वारा पौधोंको अधिक प्रकाश पहुँचाकर कुछ सफलता प्राप्त की है। इससे पता चलता है कि बदली और जाड़ोंके दिनोंमें जब सूर्य प्रकाशके घंटे कम हो जाते हैं प्रत्येक दिन पौधोंको तीन घंटा बिजलीका प्रकाश देना लाभदायक होता है। एक धाती आइना जो सूर्यकी किरणोंको प्रतिबिम्बित करता है—इस तरह झुकाया जाय कि टंकीकी पूरी सतहपर सम प्रकाश पड़ सके। इस प्रकाशके लिये १५० वाटका मज्-डा लेम्प पर्याप्त होगा। इस लेम्पको चर्खी द्वारा टंकीके ऊपर लटका दिया जाय ताकि पौधोंकी बढ़वारके साथ-साथ इसे भी उठाया जा सके।

नियंत्रित हालतमें जल-खेती द्वारा टमाटर, आलू, तरबूज, चुकन्दर, गाजर और अन्य पौधे भली भांति उगते हैं। गुलाब, सेवती, बिगोनिया और ग्लेडीओलस व अन्य फूल-पौधे सफलता पूर्वक उगाए जा सकते हैं। एक उत्साही-कार्य कर्ताको जल-खेतीमें अन्वेषणका एक विस्तृत मैदान खुला पड़ा है। एक बार इस विलक्षण विधि द्वारा सफलता पूर्वक फूल और तरकारी पैदा करनेके बाद, तरकारियोंके स्वाद, फूलोंके रंग और गंधको बढ़ानेके संबन्धमें प्रयोग किये जा सकते हैं। लेकिन इन प्रयोगोंमें किस हद तक सफलता होगी अन्वेषण द्वारा ही मालूम हो सकेगा, इसमें संदेह नहीं कि थल-खेतीकी अपेक्षा जल-खेती द्वारा उगाये हुये पौधोंकी परस्थितियाँ अधिक काबूमें होती हैं और इसके आधारपर अन्वेषकके पक्षमें बहुतसी सुविधायें होती हैं।

जल खेतीके नुसखे

नुसखा नं० १	
मोनो-पोटेशियम फॉसफेट	७½ चम्मच
कैलशम नाइट्रेट	२० ”
मैंगनीसियम सलफेट	१२½ ”
अमोनियम सलफेट	२½ ”
नुसखा नं० २	
नाइट्रिक एसिड	३.८४ औंस
अमोनिया	.८८ ”
गन्धकका तेजाब	.६७ ”
फासफोरिक ऐसिड	१.२१ ”
पोटाश कास्टिक	.४८ ”
चूना	.४७ ”
मैगनीशियम ऑक्साइड	.५५ ”
नुसखा नं० ३	
अमोनियम	½ ”
पोटेशियम नाइट्रेट	२½ ”
कैल्शम नाइट्रेट	२½ ”
मैगनीशियम सलफेट	१½ ”

[ले० डा० गोरख प्रसाद डी० एस-सी०]

१९३८ में उन्नति

सन् १९३९ के लिये जो ब्रिटिश जरनल अलमनक निकला है (मूल्य २॥ शिलिंग प्रकाशक हेनरी ग्रीन बुक कम्पनी लन्डन) उसमें उन सब नवीन बातोंका संक्षिप्त विवरण दिया गया है जिनका पता सन् १९३८ में लगा। इनमेंसे कुछ चुने हुये विषयोंका विवरण नीचे दिया जाता है।

तेज़ी और प्रकाशान्तर

जेम्स साउथ वर्थने विभिन्न प्लेटोंकी तेज़ी और उनके प्रकाशान्तर (अर्थात शुद्ध प्रकाश दर्शन या एक्सपोज़र पानेपर और भरपूर डेवलप किये जानेपर स्वच्छ और काले भागोंके घनत्वका अन्तर) के संबन्धकी जाँच की है। पता चला है कि प्लेट जितना ही अधिक तेज़ होता है उसमें प्रकाशान्तर उतना ही कम आता है। परन्तु पैन्क्रोमैटिक प्लेटोंमें उतनी ही तेज़ीपर भी साधारण प्लेटोंकी अपेक्षा अधिक प्रकाशान्तर आता है। किसी पैंक्रोमेटिक प्लेटका महत्व प्रकाशान्तर प्रायः उतना होता है जितना इसकी चौथाई तेज़ीके प्लेटमें आता है। इससे प्रत्येक्ष है कि जब कभी तेज़ी और प्रकाशान्तर दोनोंकी आवश्यकता साथ ही पड़े जैसे तीव्र गति फ़ोटोग्राफ़ीमें या समाचार पत्रोंके लिये फ़ोटोग्राफ़ीमें पैंक्रोमेटिक प्लेटोंका इस्तेमाल करना चाहिये।

टिकाऊ टैंक डेवलपर

फ़िल्मोंको टंकीमें डेवलपरकी आवश्यकता पड़ती हैं जो बहुत फीका होनेपर भी जल्द ख़राब न हो। आर बी विलकॉकने निम्नलिखित नुस्खा निकाला है जिसके अनुसार बनाया गया डेवलपर कई दिन तक चलता है।

मेटल	२० ग्रेन
हाइड्रो क्वीनोन	८० ,,
सोडियम सल्फ़ाइट (सूखी बुकनी)	१ औंस
कास्टिक सोडा	४५ ग्रेन
बोरेक्स (सोहागा)	१८० ,,
पोटेशियम ब्रोमाइड	३० ,,
पानी	१०० औंस

६५ डिग्रीपर डेवलप करनेपर लगभग १५ मिनट लगेंगे। यदि २५ मिनट तक डैवलप लिया जाय तो महत्म प्रकाशान्तर उतपन्न होगा। ऊपरके डेवलपरसे निगेटिवमें काफ़ी महीन दाना (ग्रेन) बनता है। परन्तु यदि निगेटिव एंलार्ज करनेके लिये बनाया जाय और इस लिये यदि बहुत बारीक दानेवाले निगेटिवकी आवश्यकता हो तो निम्न लिखित नुस्खेसे काम लेना चाहिये। इस डेवलपरमें ६५ डिग्रीपर डेवलप करनेसे २५ मिनट समय लगता है। यदि ४० मिनिट तक डेवलप किया जाय तो महत्म प्रकाशान्तर उतपन्न होगा। परन्तु इस डैवलपरमें यह गुण है कि यदि तेज़ प्लेट या फ़िल्म भी ५ घंटे तक पड़ा रह जाय तो भी उसमें धुंधलापन (फाग) उत्पन्न नहीं होगा। नुसख़ा यह है।

मेटल	६० ग्रेन
ग्लाइसिन	१८० ,,
सोडियम सल्फाइट	

(सूखी बुकनी)	¾ औंस
सोडियमकारबोनेट	
(सूखी बुकनी)	¼ "
बोरेक्स	¾ "
पानी	१७० "

कड़ा करनेवाला हाइपो-घोल

यह सभी फ़ोटोग्राफ़र जानते होंगे कि सल्फ़ाइट और फ़िटकरी पड़ा हुआ हाइपोके घोलमें अक्सर सफ़ेद तलछट बैठ जाती है। और इसलिये यह हाइपोकी घोलक शक्तिके समाप्त होनेके बहुत पहले ही ख़राब हो जाता है और भी विल्कॉकने बहुत छान-बीनके बाद निम्न नुसखा दिया है जो बहुत टिकाऊ है और जिसमें तलछट जल्द नहीं बैठती।

पानी	८० औंस
सोडियम सल्फ़ाइट	४ "
एसेटिक एसिड	
(बिना पानी मिला)	६ "
सोडियम साइट्रेट	२ "
फिटकरी	८ "

इन पदार्थोंको नुसख़ेमें बतलाये गये क्रमसे घोलना चाहिये। इस घोलका १० औंस हाइपोके घोलके १५० औंसमें मिलाया जाता है।

डेवलपर और निगेटिवके दाने

ई-पी, जेफ़रीने विभिन्न प्लेटों और डेवलपरोंसे जो दाने उत्पन्न होते हैं उनको सूक्ष्म दर्शक यंत्रसे नापा है। उनके अनुसार यदि इलफ़ोर्ड साफ़्ट ग्रेडेसन पैन्क्रोमेटिक प्लेटको साधारण डेवलपरसे डेवलप करनेपर उत्पन्न हुये दानोंका नाप यदि १०० माना जाय तो इलफ़ोर्ड स्पेशल रैपिड पैंक्रोमेटिकमें उत्पन्न हुये दानोंका नाप ७१ होगा और इलफ़ोर्ड रैपिड प्रोसेस प्लेटोंके दानेकी नाप ५५ होगी। फिर यदि पायरो सोडा डेवलपरसे उपरोक्त किसी प्लेटको डेवलप करनेपर जो दाने आयं उनकी नाप १०० मानी जाय तो बोरेक्स पड़े हुये मेटल हाइड्रो क्विनोन डेवलपरसे जो दाने उत्पन्न होंगे उनकी नाप ८४ होगी।

ड्यूफ़ेकलर

ड्यूफ़े कलर वे प्लेट और फ़िल्म हैं जिनपर आपसे आप रंगीन चित्र उतरता है यह भारतवर्षमें भी आसानीसे मिल सकता है इनको केवल ऐसे घोलोंसे डेवलप और कड़ा करना पड़ता है जिससे वे बदरंग नहीं होते। ई-जे-स्टीचर विभिन्न घोलोंके प्रयोगके बाद इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि सबसे अच्छा घोल कड़ा करनेके लिये वह है जिसमें १०० भाग पानीमें ५ भाग क्रोम एलम पड़ा रहता है। और इस घोलके प्रत्येक औंसमें एक बूंद लिकर एमोनिया पड़ा रहता है। प्रथम बार प्लेट या फ़िल्मको डेवलप करनेके बाद कुछ समय तक धोकर प्लेट या फ़िल्मको उपरोक्त क्रोम एलमके घोलमें कड़ा करना चाहिये। ५ मिनटमें जिलेटिंग काफ़ी कड़ी हो जायगी। इसके बाद रिवर्सल और दुबारा डेवलप करनेकी क्रिया साधारण रीतिसे करनी चाहिये।

वैद्युत प्रकाश मापक

कई वर्षोंसे ऐसे प्रकाश मापकोंका प्रचार बढ़ता जा रहा है जिनमें प्रकाशको बिजली द्वारा नापा जाता है। इन प्रकाश मापकोंके प्रयोगसे एक्सपोज़रमें गल्ती होनेका डर बिल्कुल जाता रहता है। परन्तु ऐसे मापकोंका दाम कुछ अधिक होता है। वेस्टन एलेक्ट्रिकल इन्स्ट्रूमेंट कम्पनी एन्फील्ड इंग्लेंडने इस वर्ष एक बहुत छोटा वैद्युत प्रकाश मापक बनाया है जो काफ़ी तेज़ है। इससे ६० वाटकी बिजलीकी बत्तीसे जो रोशनी ६ फुटकी दूरीपर पड़ती है वह भी नापी जा सकती है। देखनेमें यह एक चौकोर बक्सके समान है जो ½ इंचसे ज़रा कम ही मोटी है। दाम ४ पौंड है।

चलती बोलती तसवीरें

प्रसिद्ध पाथे कम्पनीने इस वर्ष एक नवीन यंत्र बेचना आरम्भ किया है जिसमें केवल ६ ½ मिलीमीटर चौड़ा फ़िल्म लगता है। (साधारण मशीनोंमें ३५ मिलीमीटर चौड़ा फ़िल्म लगता है) इस लिये फ़िल्मोंका दाम बहुत कम लगता है और मशीन भी सस्ती बिकती है। इसके रीलोंपर ८०० फुट लम्बे फ़िल्म आ जाते हैं और इसमें २०० वाटका लैम्प लगा रहता है जिससे ३, ४ फ़िट चौड़ी तसवीर आसानीसे दिखलाई जा सकती है। दाम ६० पौंड है।
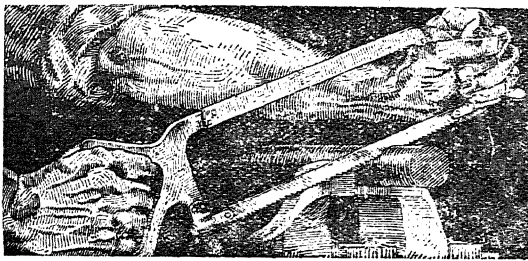
चलनेवाली बतख

चलनेवाले खिलौने लड़कोंको बड़े प्यारे लगते है। बहुतसे अधिक आयुके लोगोंको भी ऐसे खिलौनोंका कूद-फांद अच्छा लगता है। खिलौने बनानेवाले कई एक रीतियाँ जानते हैं जिनसे खिलौनोंमें चलनेकी शक्ति लाई जा सकती है, जैसे जोड़, क्रैंक, अकेंद्रित चक्र, आदि, परन्तु सबसे सुगम उपाय वह है जिसमें अवयव अपने भार और झोंकेके कारण आगे बढ़ते हैं। इस सिद्धांतपर बना एक अति सरल खिलौना चलनेवाली बतख है, यद्यपि, जैसा निम्न विवरणसे प्रत्यक्ष है, इसी सिद्धान्तपर अनेक अन्य खिलौने बनाये जा सकते हैं।

बतख बनानेके लिये ½ इंच मोटी लकड़ी चीहिये। चारखानेपर बतख और इसके सब अवयवोंका सच्चा चित्र दिया गया है। लकड़ीपर आध-आध इंचके चारखाने खींच कर इन चित्रोंको उतार लेना चाहिये।

विंदुमय रेखाओंसे दिखाई गई टाँगें केवल जड़ते समय टाँगोंको कहाँ रखना चाहिये यही सूचित करती हैं। बतख बिना टाँगोंके ही लकड़ीसे काटी जाती है। पैर जोड़नेवाली कीलके लिये बिल्कुल ठीक स्थानपर एक छेद बर्मीसे करना चाहिये। यदि इस छेदके स्थानमें कुछ अंतर पड़ जायगा तो खिलौना ठीक काम न कर सकेगा। काटने और छेदनेके बाद आँख और पंख रंगसे बना देना चाहिये। अच्छा तो यह होगा कि बतखका कुल शरीर एनामेलके रंगसे रंग दिया जाय और उसपर पंख आदि बना दिये जायँ और टाँगें सबके बाद जोड़ी जायँ।

चारखानेपर बना २ से अंकित भाग टाँग है। इस शकलकी टाँगें ½ इंच मोटी लकड़ीसे काटनी चाहिये। इन दोनो टाँगोंको एक साथ ही बाँक (वाइस) में दबाना चाहिये और फिर आवश्यकतानुसार सावधानीसे रेत कर दोनों टाँगोंको ठीक-ठीक एक ही शकलका कर देना चाहिये परन्तु उनकी शकल ठीक चित्र की तरह ही रह जाय। जब दोनों टाँगें एक साथ ही बाँकमें दबी रहें तभी कीलके छेद भी कर लेना चाहिये। इस पर विशेष ध्यान दिया जाय कि छेद बिल्कुल ठीक स्थानपर हो और बिल्कुल चौकक (लंब) हो, तिरछा न हो।

चारखानेपर बने ४ से सूचित चित्रको देखनेसे पता चल जायगा कि टाँगें कैसे बनती हैं। भाग २ पर भाग ३ के समान, परंतु कुछ बड़ी काटी गई लगडी दो पेंचोंसे जड़ दी जाती है। इस लकड़ीका चित्र नहीं बनाया गया है क्योंकि नापमें यह ठीक-ठीक टाँगके नीचेवाले भागके बराबर होती है।

पेंच कसनेके पहले लकड़ियोंके बीच सरेस लगा लिया जाय तो और भी अच्छा है। अवयव ३ के नीचेवाले भाग का स्वरूप ठीक अवयव ४ के नीचेवाले भागकी तरह होता है जोड़ने और पेंचसे कसनेपर दोनों टाँगोंके नीचेका भाग १ इंच चौड़ा हो जायगा।

इसके बादकी क्रिया सबसे महत्वपूर्ण और कुछ कठिन भी है, परंतु सावधानीसे काम करनेपर अवश्य सफलता मिलेगी। एक टाँगको लेकर बाँकमें कसो, गोलाकार किनारा ऊपर रहे। पतली रेतीसे गोलाकार भागका बाहरी पार्श्व रेत कर ढालू कर दो, जिससे देखनेपर इसका रूप चारखाने पर बने चित्र ४ के समान हो जाय—चित्रमें विंदुमय रेखासे अंकित भाग ही रेत कर निकाला जाता है, काला रंगा भाग रह जता है। लकड़ीको इस प्रकार रेतना चाहिये कि बाहरी और भीतरी किनारोंका केंद्र एक ही रहे।

रेतनेके बाद टाँगका रेता हुआ भाग कैसा दिखलाई पड़ेगा यह चित्र २ में विंदुमय रेखासे प्रदर्शित किया गया है। चित्र ३ में रेते हुये किनारेका सच्चा रूप और आकार दिखलाया गया है। रेतनेके बाद टाँग सीधी खड़ी न हो सकेगी क्योंकि इसके नीचेवाला भाग अब बगलकी ओर ढालू हो गया है। दूसरी टाँग भी ठीक इसी प्रकार बनाई जाती है। अवश्य ही उसकी ढाल दूसरी ओर होती है।

का सिरा मेज़को छूने लगे तब बतखके शरीरपर एक चिह्न टाँगोंकी स्थिति जाननेके लिये लगा लेनी चाहिये। इसके बाद टाँगोंके भीतर एक-एक विरंजी (छोटी कील) जड़ देनी चाहिये जिससे टांगें अधिक पीछे न जा सकें, केवल चिह्न तक ही वे पीछे जा सकें।

अब बतखकी छातीमें एक छोटा सा हुक कस कर उसमें तागा बाँध देना चाहिये और खिलौना तैयार हो जायगा।
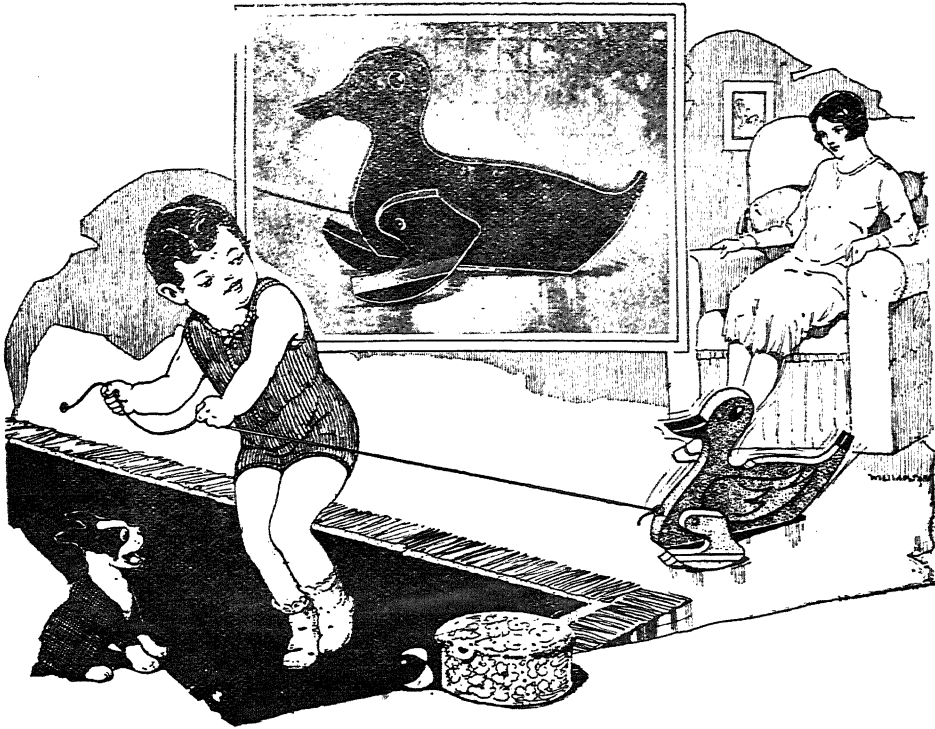
अब टाँगोंको बतखकी शरीरसे एक कील द्वारा जोड़ा जाता है। इस कीलकी मोटाई इतनी हो कि टाँगे आसानीसे झूल सकें। इस झूलनेमें कोई अड़चन न पड़े इस अभिप्रायसे टाँगों और शरीरके बीच पतले पीतलका वाशर लगाकर और अनावश्यक भाग काटकर सिरेको हथौड़ेसे चिपटाकर देना चाहिये जिससे टाँग निकलने न पाये।

खिलौनेको अब किसी मेजपर रखना चाहिये और उसे धीरेसे आगे ढकेलना चाहिये। जब टाँगोंके गोलाकार भाग

जब खिलौनेको ज़मीनपर तागेके बल खींचा जाता है तब यह किसी-न-किसी ओर कुछ लुढ़क पड़ता है। यदि बाँई ओर लुढ़कता है तो बाँई टाँगके नीचेवाले पृष्ठकी बतख आगे बढ़ती है। इतनी देरमें दाहिनी टाँग झूल कर आगे चली जाती है। तबसे कुल बतख लुढ़क कर दाहिनी ओर झुकती है, जिससे दाहिनी टाँगपर बोझ आ जाता है और बतख इस टाँगके बल अब आगे बढ़ती है। इतनेमें बाँई टाँग झूल कर आगे बढ़ जाती है। इसी

प्रकार बतख बराबर दाहने-बायें झूमती रहती है और टाँगें पारी पारीसे आगे बढ़ा करती हैं। इस लिये देखनेमें यह खिलौना बड़ा मनोरंजक लगता है क्योंकि यह बहुत कुछ असली बतखकी तरह ही चलता है (बॉय मैकेनिकसे)।
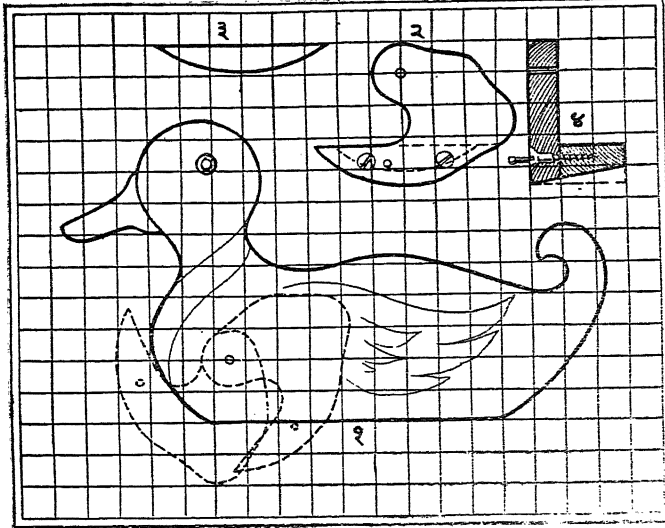
सोयाबीन

[ले० डा० रामरत्न वाजपेयी, एम-एस-सी०, डी० फिल०]

हमारे संयुक्त प्रान्तमें जबसे कांग्रेसने राज्यकी बागडोर अपने हाथमें ली है अनेक प्रकारके सुधारोंकी योजनायें हो रही हैं। देशके स्वास्थ्यकी ओर भी पर्याप्त ध्यान दिया जा रहा है। कहीं मातृगृह और शिशु औषधालय खोलनेका उपाय कर रहे हैं तो कहीं यक्ष्मा तथा मलेरियाको जीतनेका प्रयत्न। गाँवोंमें औषधालय अधिकाधिक संख्यामें खोले जा रहे हैं। निस्सन्देह अधिक मात्रासे क्विनीन बँटवाना, क्षयरोगियोंके लिये सैनाटोरियम खुलवाना, कोढ़ियोंके लिये विशेष प्रदेश बसाना आदि कार्य आवश्यक कार्य हैं। परन्तु यह वृक्षकी जड़ न काट कर उसकी टहनियां काटना है जिसका फल यह होता है कि जब तक वृक्षकी जड़ उपस्थित है और वह अपनी भोजन सामग्री जुटा रही है तब तक एक टहनी रहने पर दूसरी निकल आवेगी। रोगोंको रोकनेके लिये सर्वतोपरि मुख्य उपाय यह है कि लोगोंके स्वास्थ्यमें उन्नति की जाय जिससे कि वे अपने ऊपर रोगोंके आक्रमण अपनी सहन शीलतासे सफलीभूत न होने दें। इसके लिये लोगोंको शरीर तथा उसकी आवश्यकतायें तथा विविध प्रकारके भोजनोंके विषयका पूर्ण ज्ञान होना चाहिये। उनको यह बात पूरी तौरसे मालूम होना चाहिये कि संयमित और समतुलित भोजन किसे कहते हैं और हम प्रत्येक ऋतुकी वस्तुओंमें-से कौन-कौन-सी चीज़ें किस मात्रामें खाकर अपने शरीरको आवश्यकताओंको पूरा कर सकते हैं। साथ ही साथ गवर्मेंटका यह भी कर्त्तव्य है कि जो पदार्थ खानेके लिये विशेष रूपसे गुणकारी तथा अच्छे हैं उनकी खेती अधिक मात्रामें करानेकी सुविधायें दे।

इस लेखमें हम सोयाबीनके विषयमें लिखेंग। मुझे स्मरण है कि कई साल हुये तब सोयाबीनके लिये बड़ा प्रोपेगैण्डा किया गया था परन्तु अब कुछ दिनोंसे फिर शान्त हो गया है। अतएव मैं आशा करता हूँ कि लगभग सभी पाठक

इसके नामसे अवश्य परिचित होंगे। 'विज्ञान' में भी उन दिनों इसपर कई लेख निकले।

सोयाबीनकी विशेषता यह है कि इसमें प्रोटीन, बसा खनिज पदार्थ तथा विटामिन अन्य खाद्य पदार्थोंकी अपेक्षा कहीं अधिक मात्रामें पाये जाते हैं। सोयाबीनमें प्रोटीन ४० प्रतिशत पाया जाता है। इतनी अधिक मात्रामें प्रोटीन होनेके कारण यह पदार्थ माँसका स्थान पूर्ण रूपसे ले सकता है। यदि हम सोयाबीन तथा गेहूँ इत्यादि अन्य खाद्य पदार्थोंके बराबर भागमेंसे प्रोटीन निकालें तो सोयाबीनसे निकला हुआ प्रोटीन

माँसकी अपेक्षा	लगभग दो गुना
अंडेकी अपेक्षा	४ गुना
रोटी "	५ गुना
गेहूँ "	४ गुना
दूध "	१२ गुना
चावल "	६ गुना

होगी।

सोयाबीनकी प्रोटीन मात्राके मुकाबिलेके लिये हम दूसरा उदाहरण वह देते हैं कि आधा सेर सोयाबीनके ओर से जितना प्रोटीन मिलता है उतना प्रोटीन प्राप्त करनेके लिये हमको १॥ गैलन दूध अथवा २१ अंडोंकी आवश्यकता होगी।

सोयाबीनमें प्रोटीन केवल अधिक मात्रामें ही नहीं निकलता बल्कि यह अत्यन्त उच्च श्रेणीका भी होता है। इसको शरीर बड़ी शीघ्रता पूर्वक पचा लेता है। इसके प्रोटीनमें एक अनोखी बात यह है कि यह माँस, मछली तथा अनाजोंके प्रोटीनकी भाँति शरीरके अम्ल उत्पन्न नहीं करता बरन् क्षारता उत्पन्न करता है।

सोयाबीनकी क्षारता उत्पन्न करनेका गुण अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि अम्ल उत्पन्न करनेवाले खाद्य पदार्थोंसे रक्त तथा अन्य शारीरिक द्रवों की क्षारता कम हो जाती है जिसके फल स्वरूप शरीरकी संक्रामक रोगोंसे लड़नेकी शक्ति क्षीण हो जाती है विशेष थकावटके लक्षण दिखलाई पड़ने लगते हैं और यकृत, वृक्क-वाहिनी, तथा शरीरके अन्य भागोंमें क्षीण कारक क्रियायें प्रारम्भ होने लगती हैं सोयाबीन अपनी वसा मात्राकी अधिकतामें भी अनोखा है। इसकी अधिकता निम्न लिखित सारिणीसे भली भांति प्रकट होती है।

पदार्थ	बसा प्रतिशत
मटर	१
गेहूँ	१·७
दूध	३·५
अंडा	१०·५
माँस	१०·७
सोयाबीन	१८

वसाकी अधिकताके कारण, सोयाबीन शरीरको अत्यन्त अधिक मात्रामें शक्ति प्रदान करता है और इस बातमें अन्य खाद्य पदार्थोंकी अपेक्षा कहीं बढ़ा चढ़ा है। सोयाबीनकी कलारीमें तापमात्रा भी अन्य भोजनोंकी अपेक्षा अधिक है। सोयाबीनके एक पौंडमें १९३० कलारीकी अपेक्षा गेहूँके एक पौंडमें १६३३ कलारी ही मिलती हैं।

डा० 'कूपेल वाइसरके अनुसार सोयाबीनकी बसामें ३ प्रतिशतसे अधिक फॉस्फेटाइड जिनमें सिफेलिन तथा लेसिथिन होते हैं पाये जाते हैं। किसी भी अन्य पौधेमें यह पदार्थ इस मात्रामें नहीं मिलते हैं। यहाँपर यह बतलाना आवश्यक प्रतीत होता है कि लेसिथिन मनुष्य शरीरके प्रत्येक अंगका विशेषकर स्नायु तन्तुओं हृदय, तथा यकृतका एक आवश्यक अंश है होरवथके प्रयोगोंसे यह पता चला है कि जब कोई व्यक्ति सोयाबीन भोजनपर रहता है तो शरीरके उपर्युक्त भागोंमें लेसिथिन प्रतिशतकी मात्रा अधिक हो जाती है। इस प्रकार सोयाबीन स्नायु तथा मस्तिष्कके लिये एक अच्छा भोजन है। इसका उपयोग विभिन्न खाद्य पदार्थोंकी पोषक शक्ति बढ़ाने तथा स्नायु-रोगोंके दूर करनेमें किया जा चुका है।

माइसेल तथा बोकरके अन्वेषणोंसे पता चला है कि सोयाबीनके तेलमें कोई मुक्त मज्जिकाम्ल नहीं होता है। चूंकि मुक्त मज्जिकाम्ल आँतोंको श्लेष्मिक झिल्लियोंमें उत्तेजित करते तथा शोथ उत्पन्न करते हैं अतएव सोयाबीनका तेल खानेके लिये अत्यन्त उपयुक्त है। इस तेलमें विटामिन-अ तथा लेसिथिन अधिक मात्रामें रहता है और इस प्रकार यह मक्खनसे समानता रखता है।

सोयाबीनमें खनिज लवण—खटिकम् (कैलाशम), स्फुरेत (फॉस्फेट), लोह—भी अधिक मात्रामें पाये जाते हैं। तथा स्फुरकी आवश्यकता दांतों तथा हड्डियोंको मजबूत तथा स्वस्थ बनानेमें पड़ती है सूखा (मिठुआ रोग) का एक मुख्य कारण खनिज लवणोंकी कमी है। नीचे लिखी सारिणीसे पता चलता है कि सोयाबीनमें इन लवणोंकी, गेहूँ जौ तथा मटरकी अपेक्षा कितनी अधिकता है।

	भस्म प्रतिशत	खटिकम् प्रतिशत	स्फुर प्रतिशत	लोहम् प्रतिशत
गेहूँ	१·६०	०·०४	०·४२	०·००५
जौ	०·५६	०·०४	०·४०	०·००४
मटर	२·६०	०·०८	०·४०	०·००६
सोयाबीन	४·६०	०·२६	०·५६	०·०१०

आजकल सभी लोग जानते हैं कि हमारे शरीरके प्रत्येक भागके लिये विभिन्न विटामिनोंकी कितनी आवश्यकता रहती है और उनके न मिलनेसे कितनी बीमारियां उत्पन्न होती हैं। डाक्टरोंका कहना है कि सोयाबीनमें सभी विटामिन पाये जाते हैं।

सोयाबीनकी शर्करामें नशास्ता बहुत कम मात्रामें (०·५ प्रतिशत) पाया जाता है अतएव यह मधुमेहके रोगियोंके लिये जिन्हें न्यून-नशास्ता वाले भोजनकी आवश्यकता होती है बहुत उपयोगी है।

सोयाबीन खानेके लिये अनेक रीतियाँ हैं। इसको पानीमें कुछ घंटे भिगोकर और फिर उसी पानीमें उबालें। इस पानीमें नमक तथा नीबू मिलानेसे अच्छा रसा या शोरबा बनता है। उबले हुये बीनको तलकर खा सकते हैं।

सोयाबीनका दूध भी बनाया जाता है। पहले पानी उबाला जाता है। फिर उबलते हुये पानीमें सोयाका आटा धीरे-धीरे मिलाया जाता है। पानीको बराबर चलाते रहना चाहिये जिससे कि सोयाकी गुत्थियां न पड़ जावें। आटा डालनेके बाद १० या १५ मिनट तक खूब उबलने दो फिर उतारकर कपड़ेसे छान लो इसके बाद छने हुये रसमें शहद या शकर मिलालो। यदि अधिक स्वादिष्ट बनाना हो तो गुलाब अथवा केवड़ा जल मिला लो। पानी और सोयाके आटेका अनुपात ७:१ का होना चाहिये। इस दूधका दही भी बनाया जा सकता है। सोयाके दूधके गुणोंका पता नीचेकी सारिणीसे लगेगा जिसमें इसका मुकाबिला बकरी गाय तथा स्त्रीके दूधसे किया गया है।

	जल प्रतिशत	भस्म प्रतिशत	प्रोटीन प्रतिशत	वसा प्रतिशत	कर्बोदत प्रतिशत
बकरीका दूध	८७·००	०·५०	४·००	४·५०	४·००
गायका दूध	८७·३०	०·८०	३·२०	३·५०	५·२०
स्त्रीका दूध	८७·६५	०·२५	१·३०	२·५०	६·००
सोयाका दूध	८८·०३	०·५२	२·४०	३·१५	६·१०

सोयाके आटेकी रोटियां भी बनाई जा सकती हैं। परन्तु इसके खानेकी सबसे अच्छी रीति तो यह है कि सोयाबीन इतनी देर तक जलमें भिगोया जाय कि उसमें अंखुवे फूध आवें और फिर वैसा ही चबाकर खाया जावे।

विषय-सूची

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग।

अक्टूबर-नवम्बर अंक

रजत-जयन्ती-अंक

दिसम्बर १९३८

जनवरी-फरवरी-मार्च अंक

Only Cover Printed at The Indian Press, Ltd., Allahabad

अप्रैल, १९३९ मूल्य ।)

भाग ४९, प्रयाग की विज्ञान-परिषद् का मुख-पत्र जिसमें आयुर्वेद विज्ञान भी सम्मिलित है संख्या १

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces & Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

विज्ञान

पूर्ण संख्या २८९ | वार्षिक मूल्य ३)

नियम

(१) विज्ञान मासिक पत्र विज्ञान-परिषद्, प्रयाग, का मुख-पत्र है।

(२) विज्ञान-परिषद् एक सार्वजनिक संस्था है जिसकी स्थापना सन् १९१३ में हुई थी। इसका उद्देश्य है कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययन को प्रोत्साहन दिया जाय।

(३) परिषद् के सभी कर्मचारी तथा विज्ञान के सभी सम्पादक और लेखक अवैतनिक हैं। मातृभाषा हिन्दी की सेवा के नाते ही वे परिश्रम करते हैं।

(४) कोई भी हिन्दी-प्रेमी परिषद् की कौंसिल की स्वीकृति से परिषद् का सभ्य चुना जा सकता है। सभ्यों को ५) वार्षिक चन्दा देना पड़ता है।

(५) सभ्यों को विज्ञान और परिषद् की नव-प्रकाशित पुस्तकें बिना मूल्य मिलती हैं।

नोट—आयुर्वेद-सम्बन्धी बदले के सामयिक पत्रादि, लेख और समालोचनार्थ पुस्तकें 'स्वामी हरिशरणानंद, पंजाब आयुर्वैदिक फ़ार्मेसी, अकाली मार्केट, अमृतसर' के पास भेजे जायँ। शेष सब सामयिक पत्रादि, लेख, पुस्तकें, प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र तथा मनीआॅर्डर 'मंत्री, विज्ञान-परिषद्, इलाहाबाद' के पास भेजे जायँ।

पशु पक्षियोंका शृङ्गार-रहस्य—लेखक श्री सालिग्राम वर्मा, एम० ए०, बी० एस-सी० ~)

जीनत वहश व तयर-पशुपक्षियोंका शृङ्गार-रहस्य-का उर्दू अनुवाद— अनु० प्रो० मेंहदी हुसेन नासिरी, एम० ए० ~)

चींटी और दीमक—सर्व-साधारणके पढ़ने योग्य अत्यंत रोचक पुस्तक—ले० श्री लक्ष्मी नारायण दीन-दयाल अवस्थी ॥।)

सूर्य-सिद्धान्त—विस्तृत ब्योरा अन्यत्र देखें—ले० श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव, बी० एस्-सी०, एल० टी०, विशारद सजिल्द ५)

सजिल्द ५॥)

सृष्टिकी कथा—सृष्टि के विकासका पूरा वर्णन—ले० डा० सत्यप्रकाश, डी० एस्-सी० १)

सौर-परिवार—विस्तृत विवरण अन्यत्र देखें—ले० डा० गोरखप्रसाद, डी० एस-सी० १२)

आकाशकी सैर—ले० डा० गोरखप्रसाद, डी० एस्-सी० विस्तृत विवरण अन्यत्र देखें ॥।)

समीकरण-मीमाँसा—एम० ए० गणित के विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य पुस्तक—ले० पं० सुधाकर द्विवेदी, प्रथम भाग १॥)

दूसरा भाग ॥=)

निर्णायक (डिटर्मिनैंट्स)—एम० ए० के विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य पुस्तक—ले० प्रो० गोपाल केशव गर्दे एम० ए०, और श्री गोमतीप्रसाद अग्नि-होत्री, बी० एस्-सी० ॥)

बीजज्यामिति या भुजयुग्म रेखा-गणित—एफ-ए० गणितके विद्यार्थियोंके लिये—ले० डा० सत्यप्रकाश, डी० एस-सी०

क्षय-रोग—क्षय-रोगसे बचनेके उपाय- ० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी० एस-सी०, एम० बी० बी० एस० ~)

क्षय-रोग—विस्तृत विवरण अन्यत्र देखिये, ले० डा० शंकरलाल गुप्त, एम० बी० बी० एस० ६)

शिक्षितोंका स्वास्थ्य व्यतिक्रम—पढ़े-लिखे लोगोंको जो बीमारियाँ अक्सर होती हैं उनसे बचने और अच्छे होनेके उपाय—ले० श्री गोपालनारायण सेनसिंह, बी० ए०, एल० टी० ।)

ज्वर, निदान और शुश्रूषा—सर्व साधारणके पढ़ने योग्य पुस्तक—ले० डा० बी० के० मित्र, एल० एम० एस० ~)

स्वास्थ्य और रोग—विस्तृत विवरण अन्यत्र देखें—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा ६)

हमारे शरीरकी रचना—विस्तृत विवरण अन्यत्र देखें—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, प्रथम भाग २॥=)

द्वितीय भाग ४=)

स्वास्थ्य-विज्ञान—गृहनिर्माण, वायु, जल, भोजन, स्वच्छता, कीटाणु, छूतवाले रोग, स्वास्थ्य आदिपर सरल भाषामें विशद तथा उपयोगी विवेचन—ले० कैप्टेन, डा० रामप्रसाद तिवारी, हेल्थ ऑफिसर, रीवाँ राज्य। ३)

स्वस्थ शरीर—प्रथम खंड—मनुष्यके अस्थिपंजर, नस, नाड़ियाँ, रक्ताणु, फुफ्फुस, वृक्क, पेट, शुक्राशय आदिका सरल वृत्तांत और स्वास्थ्य-रक्षाके नियम। दूसरा खंड—व्यक्तिगत स्वास्थ्य-रक्षाके उपाय—ले० डा० सरजूप्रसाद तिवारी, और पं० रामेश्वर-प्रसाद पाण्डेय, प्रथम खंड २)

द्वितीय खंड २।)

आसव विज्ञान—वैद्योंके बड़े कामकी पुस्तक—ले० स्वामी हरिशरणानन्द १)

मन्थर ज्वरकी अनुभूत चिकित्सा—वैद्योंके बड़े कामकी पुस्तक—ले० स्वामी हरिशरणानन्द १)

त्रिदोष मीमांसा—यह पुस्तक मुख्यतया वैद्योंके कामकी है, किन्तु साधारण जन भी विषय ज्ञानके नाते इससे बहुत लाभ उठा सकते हैं—ले० स्वामी हरिशरणानन्द १)

क्षार-निर्माण-विज्ञान—क्षार-सम्बन्धी सभी विषयों-का खुलासा वर्णन—ले० स्वामी हरिशरणानन्द ।)

प्रसूति-शास्त्र—विस्तृत विवरण अन्यत्र देखिये—ले० डा० प्रसादीलाल झा, एल० एम० एस० २)

कृत्रिम काष्ठ—एक रोचक लेख—ले० श्री गंगाशंकर पचौली =)

फल-संरक्षण—विस्तृत विवरण अन्यत्र देखें-ले० डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी० ॥।)

वर्षा और वनस्पति—भारतका भूगोल और आब-हवा—भारतकी स्वभाविक आवश्यकताएँ—शीतलता प्राप्त करनेके साधन—वर्षा और वनस्पति—जल संचय-वनस्पतिसे अन्य लाभ—ये इस पुस्तकके अध्याय हैं—ले० श्री शङ्करराव जोशी ।)

वनस्पति-शास्त्र—पेड़ोंके भिन्न-भिन्न अंगोंका वर्णन, उनकी विभिन्न जातियां, उनके रूप, रंग, भेद इत्यादिका सरल भाषामें वर्णन, सर्व-साधारणके पढ़ने योग्य पुस्तक—ले० श्री केशव अनन्त पटवर्धन, एम० एस-सी०, ॥=)

तरकारीकी खेती—६२ तरकारियों आदिकी खेती करनेका विशद वर्णन ॥=)

उद्भिजका आहार—एक रोचक लेख—ले० श्री एम० के० चटर्जी ।)

मुद्रण-प्रवेश अर्थात कम्पोज कला—अनु० गोपी वल्लभ उपाध्याय २)

फ़ोटोग्राफ़ी—विस्तृत विवरण अन्यत्र देखिये—ले० डा० गोरखप्रसाद, डी० एस-सी० ७)

सुवर्णकारी—सुनारों के लिये अत्यंत उपयोगी पुस्तक, इसमें सुनारी संबंधी अनेक नुसखे भी दिये गये हैं—ले० श्री गंगाशंकर पचौली ।)

यांत्रिक चित्रकारी—विस्तृत विवरण अन्यत्र देखिये—ले० श्री ओंकारनाथ शर्मा, ए० एम० आई० एल० ई०,
अजिल्द सस्ता संस्करण २॥)
राज संस्करण सजिल्द ३॥)

वैक्युम-ब्रेक—विस्तृत विवरण अन्यत्र देखें—ले० श्री ओंकारनाथ शर्मा ए० एम० आई० एल० ई० २)

सर चन्द्रशेखर वेंकट रमन—भारतके प्रसिद्ध विज्ञानाचार्यका जीवन चरित्र—ले० श्री युधिष्ठिर भार्गव, एम० एस-सी० =)

डा० गणेशप्रसादका स्मारक-विशेषांक—८० पृष्ठ—सम्पादक डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी० और प्रो० रामदास गौड़ ४)

वैज्ञानिक जीवनी—श्री पञ्चानन नियोगी, एम० ए०, एफ० सी० एस०, की 'वैज्ञानिक जीवन' नामक बङ्गला पुस्तकका हिन्दी अनुवाद—अनु० रीवा-निवासी श्री रामेश्वरप्रसाद पांडेय १)

गुरुदेवके साथ यात्रा—ले० श्री महाबीरप्रसाद बी० एस-सी०, विशारद

केदार-बद्री यात्रा—बद्रीनाथ केदारनाथकी यात्रा करनेवालोंको इसे अवश्य एक बार पढ़ना चाहिये—ले० श्री शिवदास मुकर्जी, बी० ए० ।)

उद्योग-व्यवसायांक—विज्ञानका विशेषांक-इसमें पैसा बचाने तथा कमाईके सहज और विविध साधन दिये गये हैं। १३० पृष्ठ, १॥)

व्यंग्य चित्रण—विस्तृत विवरण अन्यत्र देखें। अनुवादिका श्री रत्नकुमारी एम० ए० १)

अरिष्टक-गुड़-विधान ।=)
लवङ्-गुड़-विधान =)
बबूल-गुड़-विधान ।-)
पलाण्डु-गुड़-विधान ।-)
अर्क-गुड़-विधान १)

सम्पादक—**डा० गड़पति सिंह वर्म्मा**

दुग्ध-गुड़-विधान १)
हुन्नर-प्रचारक १)

लेखक—**डा० गड़पति सिंह वर्म्मा**
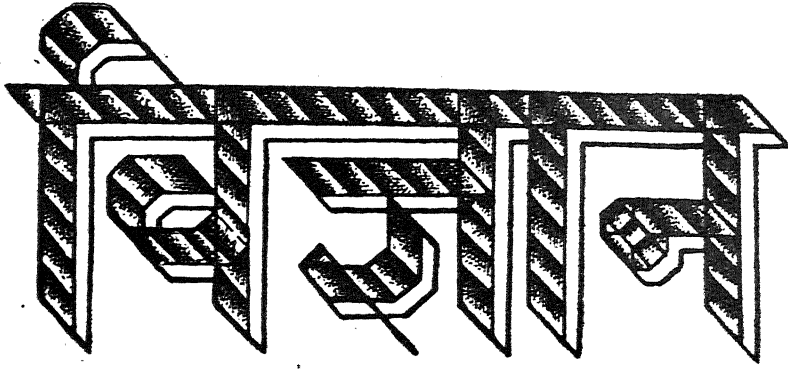
विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्याभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ४९	प्रयाग, मेषार्क, संवत् १९९६ विक्रमी	अप्रैल, सन् १९३९	संख्या १

मिट्टीके बरतनका निर्माण

[ले०—प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा]

सांचा

बरतन बनानेमें साँचे बहुत आवश्यक हैं। ये कीमती भी होते हैं। साधारण तश्तरीसे लेकर सुन्दर सुराही तक बनानेमें साँचेकी ज़रूरत पड़ती है। साँचा एक प्रकारकी वस्तुके लिये एक ही होता है। किसी-किसी बरतनके भिन्न-भिन्न भागोंके लिये आवश्यकतानुसार अनेक भी हो सकते हैं। साँचे या तो अग्निजित मिट्टीके बनते हैं या प्लास्टर-आफ़-पेरिसके। प्लास्टर आफ़ पेरिसके साँचोंकी अपेक्षा अग्निजित मिट्टीके साँचे अधिक साफ सुथरे होते हैं और उनपरके चिह्न अधिक स्वच्छ होते हैं। ये अधिक दिन तक टिकते भी हैं। पर इनमें दो दोष भी होते हैं। ये अधिक कीमती होते हैं और उनमें जलके सोखनेकी शक्ति बहुत कम होती है। जलके सोखनेकी शक्ति कम होनेके कारण अधिक संख्यामें इनकी आवश्यकता होती है। इन दोषोंके रहते हुये भी प्यालोंकी मुट्ठियों और उसी प्रकारके छोटे-छोटे सामानों जैसे फूल, पत्ते, माला और आभूषणोंके तैयार करनेमें इनका व्यवहार होता है।

आजकल प्लास्टर-आफ़-पेरिस अधिक मात्रामें साँचोंके तैयार करनेमें प्रयुक्त होता है। इसके साँचोंमें सोखनेकी शक्ति बहुत अधिक होती है। ये आसानीसे तैयार भी होते हैं और अधिक समय तक टिकते भी हैं यदि उन्हें तैयार करनेके १०—१५ दिनके बाद प्रयोगमें लावें! जैसा बरतन तैयार करना होता है वैसा ही साँचा बरतनसे कुछ बढ़के होना चाहिये ताकि उसमेंके बने बरतन सिकुड़ कर पूर्व बरतनके समान उतरें। प्याले, सुराही और वैसुन पृथग्न्यासकके साँचे साधारणतया प्लास्टरके होते हैं पर पेचीले आकार और सुन्दर चित्रोंसे आभूषित सामानोंके साँचे अग्निजित् मिट्टीके ही बनते हैं।

नमूनेका बना साँचा कदाचित् ही ढालनेके लिये प्रयुक्त होता है। इस साँचेको "ब्लौक" वा "मास्टर" साँचा कहते हैं। ये इसके साँचोंके ढालनेमें प्रयुक्त होता है। और इन दूसरे साँचोंसे ही वे सामान बनते हैं। प्रयोगमें लानेके पूर्व साँचोंको पूरा सुखा लेना चाहिये। बीच-बीचमें उन्हें सुखाते रहनेसे वे अधिक दिन तक टिकते हैं। उन्हें कम

गरमीमें ही सुखाना अच्छा होता है ।

जिस 'मास्टर' साँचेसे दूसरे साँचे तैयार होते हैं उसके तहकी धूलोंको खूब पोछ डालते हैं । यदि ये बहुत सूख गये हों तो उन्हें कुछ सेकंड तक पानीमें डुबा लेते हैं । तब उसे कोमल ब्रशके द्वारा पानी और साबुनके पायससे रगड़ लेते हैं । एक भीगे स्पञ्जसे तब साबुनको पोछ डालते हैं । अब यह व्यवहारके लिये तैयार है ।

अब प्लास्टर आफ़ पेरिस ३ भाग और जल १ भागको मिलाकर उसे खूब हिलाते हैं ताकि लेई बनकर प्लास्टर-का जमना शुरू हो जाय । यह करीब ५ मिनटमें हो जाता है । प्लास्टरकी इस लेईको घूमते हुये साँचेमें डालते जाते हैं और लेईको खूब हिलाते जाते हैं ताकि हवाके बुलबुले उससे निकल जायं । फिर प्लास्टरको जमनेके लिये छोड़ देते हैं । जब यह जम जाता है तब उसे साँचेसे निकाल डालते हैं । साँचेके तलको अब लोहेके चाकूसे साफ कर लेते हैं । उसपर यदि कोई नम्बर लिखना होता है वा कोई चिह्न बनाना होता है तब लिखवा बना लेते हैं । साँचे आवश्यकतानुसार कठोर वा कोमल हो सकते हैं । कम पानी देनेसे वे कठोर होते हैं । और अधिक पानीसे कोमल । मास्टर साँचे साधारणतया कोमल प्लास्टरके बनते हैं पर जिन साँचोसे वस्तुएं बनती हैं उन्हें "केसिंग" कहते हैं । ये साधारणतया कठोर प्लास्टरके बनते हैं ।

जल प्लास्टरके साँचे बहुत दिनों तक विशेषतः नम स्थानोंमें रखे रहते हैं तब उनके ऊपर सफ़ेद आच्छादन पड़ जाता है । इस आच्छादनमें सैन्धक गन्धेत (सोडियम सलफ़ेट) पर्याप्त रहता है । यह सोडियम सलफ़ेट कुछ तो मिट्टीसे आता है और कुछ प्लास्टरके पानीमें घुलानेसे और कुछ कैलसियम सलफ़ेटपर सोडियम कार्बनेटकी क्रियासे बनता है । कुछ पदार्थ प्लास्टरकी विलेयताको वढ़ाते हैं । इनमें विलेय फॉसफ़ेट हैं । इसी कारण बोन चीनी (बोन-चाइना) के साँचे उतने दिन नहीं टिकते जितने मिट्टीके साँचे टिकते हैं । प्लास्टरके साँचे आर्द्र स्थानमें रखे रहते है उनपर सोडियम सलफ़ेटका बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है । यदि सोडियम सलफ़ेटके विलेयको मिट्टीके बरतनोंपर डाला जाय तो यह विलेय बरतनके अन्दर धीरे-धीरे प्रविष्ट कर हफ़ते दो हफ़्तेमें उस बरतनको खा डालता है । यही कारण है कि आर्द्र स्थानमे रखे साँचे बहुधा खराब हो जाते हैं और काममें लानेपर टूट जाते हैं । मिट्टीके सदृश किसी नम्र पदार्थको किसी विशेष आकारमें बनानेमें अनेक क्रियाओंका सम्पादन करना पड़ता है । इनमें निम्न लिखित क्रियाएं प्रमुख हैं ।

(१) फेंकना

चाकपर फेंकना वा डालना

गोल बरतनोंके बनानेमें चाककी ज़रूरत पड़ती है । चाक दो प्रकारके होते हैं एक देशी चाक जो स्वयं कुम्भारोंके द्वारा वा उनके सहायकोंके द्वारा चलाये जाते हैं । दूसरे वे चाक जो यंत्रोंसे चलाये जाते हैं । हाथसे चलनेवाले चाकमें एक गोला चक्र होता है जो नीचेकी ओर ज़मीनपर किसी खूँटीसे लगा होता और ऊपरसे किसी डंडेके द्वारा चाकके छेदसे घुमाया जाता है । कुम्भार जमीनपर बैठकर उस चाकको घुमा कर उसपर मिट्टीका लोंदा रखकर आवश्यक आकारमें हाथोंसे बनाता है । बरतनके आकार नष्ट न हो जायं इससे ज़रूरी है कि मिट्टी ऐसी गीली (नरम) न हो कि कुछ दबावसे ही उसका आकार नष्ट हो जाय । पर मिट्टी पर्याप्त कठोर भी नहीं होनी चाहिये नहीं तो जैसा रूप बरतनको देना चाहते हैं वैसा सरलतासे न दे सकते हैं । अतः चतुर कुम्भार अपनी मिट्टी ऐसी बनाता है कि न वह अधिक
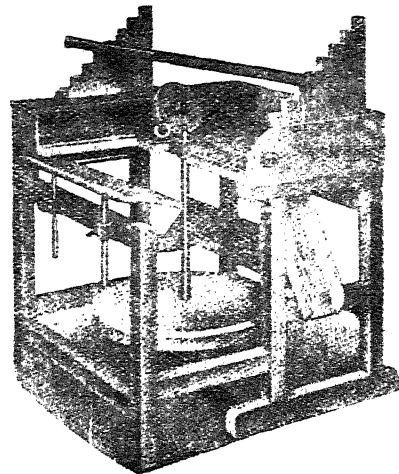
चित्र १—कुम्हारका किक-ह्वील

कठोर होती है और न अधिक नरम। वह अपने हाथोंको इस प्रकार घुमाता है कि वह चाकके घुमावके अनुकूल हो।

यंत्रोंसे चलनेवाला चाक दूसरे प्रकारका होता है। यह लकड़ीके बने हुये फ्रेम या मेजपर स्थित होता है। इस मेज़के केन्द्रमें एक छड़ होता है। इसी छड़पर चक्र लगा रहता है। इस चक्रके नीचेके भागमें एक ठोस फ्लाई-व्हील लगा होता है जिसे चाकपर काम करनेवाला कुम्भार पैरसे चलाता है। कुम्भार स्वयं एक तिपाईपर बैठा रहता है और पैरोंसे फ्लाई-व्हीलको चलाता जाता है और हाथोंसे बरतनोंको गढ़ता जाता है। जब किसी बड़े बरतनको वा किसी ठीक-ठीक आकारके बरतनोंको बनाना होता है तब चाकको बड़ी दृढ़तासे चलानेकी ज़रूरत पड़ती है। ऐसी दशामें एक दूसरे पहियेकी ज़रूरत पड़ती है जिसके चलाने-का सिद्धान्त वही है जो चरखोंके पहियेको चलानेका सिद्धान्त है। तब चाकको चलानेके लिये कुम्भारके अलावे एक और आदमीकी ज़रूरत पड़ती है। जब अधिक सामानोंको तैयार करना होता है तब बिजलीसे चाकको चलाते हैं। पर इसमें असुविधा यह होती है कि चालको इच्छानुसार न्यूनाधिक जल्दीसे नहीं कर सकते। चाकको चलानेके पहले उसपर मिट्टीके लौंदे रख लेते हैं।

(२) घुमाना।

जब किसी आकारके ठीक प्रतिरूपको बनाना होता है तब ऐसे आकारके बनानेके लिये खराद (चक्र यन्त्र, लेद) की ज़रूरत होती है। खराद पर चढ़ानेके पहले वह मिट्टी इतनी कड़ी होनी चाहिये कि दबावको सह सके पर साथ ही साथ इतनी कोमल भी न होनी चाहिये कि नखोंसे उसपर खुरचन पड़ सके। इसके लिये ऐसी मिट्टी सर्वोत्कृष्ट होती है जो खरादमें चढ़ानेपर २से ३ इंच लम्बा छीलन निकाल सके। मिट्टीके सामानोंके तैयार करनेमें खड़े उध्वा-धार वा पड़े प्रतिगामिक दोनों प्रकारके खराद प्रयुक्त होते हैं। खरादके काठके मूठमें अनेक प्रकारके ३ स्थानके छोटे-छोटे चाकूके फल लगे रहते हैं इन्हीं फलोंसे मिट्टीके बरतन छीले जाते हैं अन्तमें वे इस्पातके फलों वा सींघके फलों-से ऐसे छीले जाते हैं कि उनपर चमक भी आ जाती है। अच्छे मिट्टीके बरतनोंके तैयार करनेमें चतुर अनुभवी कुम्भार-का होना बहुत आवश्यक है। यदि इन बरतनोंका क़द वा आकार छोटा बड़ा हो तो वे सरलतासे जाना जा सकता है पर उनमें कोई मरोड़ हो तो उसका पहचानना बहुत कुछ कठिन होता है। ये मरोड़ खरादको अनियमित रूपसे चलानेसे बनते हैं। ये मरोड़ पालिश करनेसे लुप्त हो जाते हैं पर कैसी ही चतुरतासे ये पालिश किये क्यों न हों पकाने पर वे फिर प्रकट हो जाते हैं। बरतनोंपर जब कोई नकाशी करनी होती है तब नकाशीके पट्टीको जब खरादमें घूमता है उसी समय दबाते हैं इन पट्टियोंपर थोड़ा तारपीनका तेल लगा देनेसे इनकी नकाशी अच्छी उतरती है।

(३) जौलीपर चढ़ाना।

जिस क्रियासे मिट्टीके बरतनोंको प्लास्टरके साँचेमें ढाल कर बनाते हैं उसे जौलीपर चढ़ाना या जौलीइंग कहते है। यह एक यंत्रके द्वारा होता है जिसे जिगर और जौली कहते हैं। यह क्रिया उन बरतनोंके लिये प्रयुक्त होती है जो गोल और अण्डाकार होते हैं और जिन्हें बहुत अधिक तादादमें तैयार करना पड़ता है।

जिगर कुम्भारके चाकके सदृश एक खड़ा उर्ध्वाधार स्तम्भ होता है। इसके ऊपरके भागमें प्यालेके आकारका बरतन होता है जिसमें साँचा रखा जाता है यह एक नियमित गतिसे साधारण शक्तिसे सञ्चालित होता है। इनमें पैरका ब्रेक होता है जिससे इच्छानुकूल वह चलाया या बन्द किया जा सकता है।

चित्र २ स्तम्भ

जौली एक ऐसा यंत्र है जिसमें छिलनी या प्रोफाइल लगा होता है। यह इस प्रकार लगा होता है कि वह जिगर पर रखे साँचेके बाहर और भीतर दोनों ओर लगाया जा सके। जौली दो प्रकारके होते हैं। एक प्रकारकी जौलीमें तीरछी बाजु होती है और उसे समतुलित करनेके लिये वजन होता है। यह एक स्तम्भपर चढ़ायाहुआ होता है। उस वजनकी दूसरी ओर बाजुके एक खाना होता है जिसमें छिलनी लगी रहती है। दूसरे प्रकारकी जौलीमें एक ऊर्ध्वधार स्तम्भ होता है जिसमें दो वा अधिक पुलियां लगी रहती हैं। इन्हीं पुलियोंमें एक खड़ा इस्पात-

का छड़ लगा रहता है और छड़के साथ ही समतुलित भार। इसी छड़के नीचले छोरमें छिलनी लगी रहती है।
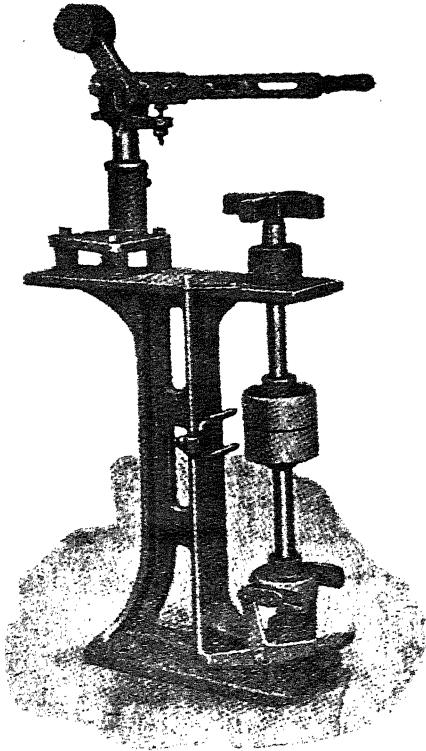
चित्र ३—जौली

जौली घड़े, सुराही इत्यादि बीचमें निकले हुये बरतनोंके तैयार करनेमें प्रयुक्त होता है।

छिलनी लोहे वा इस्पातकी मोटी चादरें होती हैं जिनके एक किनारेपर कोनियाँ निकली होती है। इनका आकार ऐसा होता है कि नये बने बरतनोंसे आवश्यकतासे अधिक मिट्टी उनसे हटायी जा सके और उन्हें साँचोंसे सटाकर आवश्यक आकार दिया जा सके। इन छिलनियोंको बहुत ठीक तरहसे रखना चाहिये और यदि इनके किनारे घिस जायं तो रेतकर तेज़ बना लेना चाहिये। इङ्गलैण्डमें जो छिलनियाँ प्रयुक्त होती हैं वे प्रायः ०-६ से १ सेंटीमीटर मोटी होती हैं। पर जर्मनी और फ्रांसमें जो प्रयुक्त होती हैं वे प्रायः ०,५ सेंटीमीटर मोटी होती हैं। छिलनीकी आवश्यक मोटाई मिट्टीकी प्रकृतिपर निर्भर करती है। मिट्टीके बरतनोंपर काफ़ी तादादमें मिट्टीके अतिनम्र रोड़े होते हैं। अतः यदि छिलनी विशेष मजबूत न हो तो कार्य करनेके समय हिल-डोल सकती है। इससे बरतनोंके विभिन्न भाग पर कम वा अधिक दबाव पड़ सकता है। इससे ऐसे बरतन पकाने पर चिटक जाते हैं।

तश्तरी और रकाबी इत्यादि छीछले बरतनोंके बनानेमें पहले मिट्टीके एक छीछले तवे वा "बैट"को बनाते हैं। यह एक दूसरे बैट बनानेके यंत्रमें बनता है। इस बैटको तब साँचे पर रखते हैं और एक भींगे स्पंजसे सांचे और मिट्टीके बीचकी वायुको दबाकर निकाल डालते हैं। इसके लिये घूमते हुये जिगरपर साँचेको रखते हैं और फिर छिलनी लगे हुये जौली द्वारा सांचेको दबाते हैं और हाथसे तब तक उसपर दबाव बढ़ाते जाते हैं जब तक वह सामान बन कर तैयार न हो जाय।

यदि बरतन बहुत पतले हों जैसे पोरसीलेनके बरतन होते हैं तो बैटको चमड़े वा किरमिचसे आच्छादित काठके घेरेपर बनाते हैं। उठानेपर मिट्टीके बरतन टूट न जायं इससे उस काठके घेरेके साथ ही बैटको हटाकर बहुत धीरे-धीरे साँचे पर रखते हैं।

खोखले बरतन जैसे प्याले, सुराही, बेसीन इत्यादि साँचेके अन्दर बनाये जाते हैं और बरतनके अभ्यन्तर भागमें ही छिलनी रहती है। चिपटे बरतनोंके बनानेमें भी यही विधि प्रयुक्त होती है पर औजारोंके प्रयोगमें अधिक सावधानीकी जरूरत रहती है ताकि बरतनोंके छोर उसे छू न जायं। ऐसे बरतनोंके बनानेमें जिनके पेट बहुत बड़े और मुँह बहुत छोटे हों जैसे घड़े, सुराही जग इत्यादि ऊर्ध्वाधार जौली ही अधिक उपयोगी होती है।

(४) दबाना।

प्यालोंके मूठों, टाइलों (खपड़ों) और चित्रित ईंटों इत्यादिके निर्माणमें नम्र मिट्टियां प्रयुक्त होती हैं। प्यालेकी मूठ सदृश वस्तुएँ पहले प्लास्टरके साँचोंमें बनती हैं। साँचोंके दो अर्ध-भागोंके बीच नम्र मिट्टीके लोंदेको रखकर हाथोंसे दबाकर आवश्यकतासे अधिक मिट्टीको निकाल डालते हैं। बड़े-बड़े सामानोंके लिये धातुओंके

साँचेको काममें लाते हैं। साँचेके दो भाग जब एक दूसरे पर रखे जाते हैं तब उनका आकार उस बरतनके आकारका हो जाता है जो उस साँचेमें बनता है। इन साँचोंके बीच नम्र मिट्टीको रख कर आवश्यकतासे अधिक मिट्टीको निकाल डालते हैं। फिर साँचेके ऊपरके भागको हटाकर नीचेके भागको उलट देते हैं। चित्रित ईंटों व इसी प्रकारके अन्य भारी चीजोंको दो क्रमोंमें बनाते हैं। पहले क्रममें ईंटोंको किसी तारसे उपयुक्त कदमें करते हैं और फिर दूसरे क्रममें प्रत्येक भागको भिन्न-भिन्न नमूनोंके ठप्पेमें रखकर प्रेसमें दबाते हैं।

जो प्रेस इस कामके लिये प्रयुक्त होते हैं वे पिलर प्रेस व स्क्रू प्रेस होते हैं। इसमें ठप्पे इस्पात वा ढालवां लोहेके होते हैं। चूंकि इन ठप्पोंपर बहुत दबाव पड़ता है उन्हें मजबूत होना बहुत जरूरी है। इस प्रेसमें केवल दबानेसे बरतनोंपर काट-छांट करके अनेक पेचीले पदार्थ बनाये जा सकते हैं। अतः स्पातवा ढालवां लोहेके ठप्पेसे ही यह कार्य अधिक सुविधासे हो सकता है।

(५) ढलना

यह वह कार्य है जिससे प्लास्टरके साँचेमें द्रव मिट्टी-की लेई डालकर किसी विशेष आकारके मिट्टीके बरतन बनाये जाते हैं। मिट्टीकी लेई डालनेके कुछ समयके बाद आवश्यकतासे अधिक मिट्टीकी लेईको साँचेसे ढालकर निकाल लिये जाते हैं। साँचेके भीतरका भाग मिट्टीसे जम जाता है क्योंकि इस लेईका कुछ जल सांचा सोख लेता है। इस मिट्टीके परतको कुछ समयके लिये साँचेमें छोड़ देते हैं ताकि वह पर्याप्त कठोर हो जाय। इसमें वह बरतन साँचेका रूप धारण कर लेता है। अब उसे साँचेसे बाहर निकाल लेते हैं। इस ढालनेमें किसी विशेष चतुर कुम्भारको जरूरत नहीं होती। पतलीसी लेई भी इसमें सुविधासे प्रयुक्त हो सकती है। ढलवें बरतन अधिक हलके और कम मजबूत होते हैं पर ये अधिक रन्ध्रमय होते हैं। ढलवें बरतन अधिक सिकुड़ते हैं और पकानेपर इनका वजन अधिक कम हो जाता है पर ढलाईसे अनेक विचित्र प्रकारके बरतन अधिक सुगमतासे बनाये जा सकते हैं ऐसे बरतनोंको अन्य विधियोंसे बनानेमें असम्भव नहीं तो कठिनता बहुत ही अधिक होगी। पर ढलाईमें अनेक साँचोंकी जरूरत पड़ती है और ये साँचे बहुत समय तक टिकते नहीं हैं।

कितने समय तक साँचोंमें मिट्टीकी लेई रहनी चाहिये यह बहुत कुछ मिट्टीकी नम्रता, साँचोंकी शोषण-शक्ति और बरतनोंकी मोटाईपर निर्भर करता है। यह समय कम किया जा सकता है विशेषतः बहुत मोटी और भारी ढलाईके लिये यदि साँचेको एक वायुरोधक बरतनमें रखकर साँचेकी चारों ओरकी वायुको निकाल डाले व साँचेके अन्दर वायुका दबाव डालें।

यदि एकसे अधिक प्रकारकी मिट्टीको साँचेमें डालना होता है तो पहले रंगीन मिट्टीको ब्रुशसे साँचेमें लगाकर तब साधारण मिट्टीकी लेईको साँचेमें डालते हैं।

मिट्टीकी लेईमें क्षारीय लवणोंके डालनेसे लेई अधिक पतली हो जाती है और उसमें मिट्टीके छोटे-छोटे कण छितरे रहते हैं। अम्लों व आम्लिक लवणोंसे लेई मोटी हो जाती है। जिस लेईमें क्षारीय लवण डाले जाते हैं वह लेई बहुत धीरे-धीरे जमती है। लेईका बहाव तापक्रम, आर्द्रता और लेईके पतलेपनपर बहुत कुछ निर्भर करता है। सैन्धककर्बनेट (सोडियम कार्बोनेट) की अपेक्षा सैन्धक शैलेत सोडियम सिलिकेट) और दाहक सोडासे लेईको पृष्ठ-तनाव बढ़ जाती है। इससे साँचेमें भापकी छोटी-छोटी बूंदें या बुलबुले रह सकते हैं जिससे बरतन खराब हो सकते हैं।

केवल सोडियम कार्बोनेटके प्रयोगसे लेई शर्बतके सदृश गाढ़ी हो जाती है। इससे सोडियम कार्बोनेट और सोडियम सिलिकेटके मिश्रण ही अधिक उपयोगी हैं।

जब मिट्टीमें पानी मिलाकर मथा जाता है तब पहले कुछ घन्टोंमें बड़े महत्वके परिवर्तन होते हैं क्योंकि इस समय भिन्न-भिन्न वस्तुओंके बीच क्रियाएं होती हैं। यदि मिट्टीको पूरा न मथा जाय विशेष कर अलकलीके डालने पर तो वह लेई समावयव नहीं होगी और ऐसी लेईसे ढालनेमें कठिनाइयां होंगी। यदि यह लेई अधिक काल तक वायुमें खुली रहे तो वायुसे कर्बन द्विओषिद शोषित कर उसके ऊपर पपड़ी बनेगी जिसे तोड़ कर

मिलानेसे बरतनोंपर एक प्रकारके कुछ बादामी रंगके दाग पड़ जाते हैं।

(६) अन्तिम तैयारी

बरतनोंको भट्टीमें पकानेके पहले कुछ और क्रियाओंके करनेकी ज़रूरत पड़ती है। उनमें दो प्रयोग हैं। पहला यदि बरतनोंके भिन्न-भिन्न भाग अलग बने हैं तो उनको मिलाकर इकट्ठा करना। और दूसरे यदि उनके आकारमें कोई त्रुटि है तो उसे दूर करना और बरतनोंकी सफाई करना।

यदि किसी सामानके भिन्न-भिन्न भाग अलग बने हैं तो उन भागोंको उसी लेईसे जोड़ते हैं जिस लेईसे वे भाग बने हैं। भागोंकी जोड़ाई उसी अवस्थामें होनी चाहिये जब वे कुछ आर्द्र हों। बिलकुल सूख न गये हों यदि उन भागोंके सूख जानेपर जोड़ाई होगी तो भट्टीमें चढ़ानेपर वे चिटक सकते हैं।

बरतनोंके दबाने और ढालनेपर साँचोंके कारण उन पर कुछ निशान वा अन्य त्रुटियां रह सकती हैं। इन त्रुटियोंको एक छोटीसी चाकू वा नहरनीसे हटा देना और फिर स्पंजसे पोंछ डालना चाहिये। यदि ढालनेमें कुछ गड़े व पतले चटक रह गये हो तो उनमें थोड़ी लेई डालकर सुधार लेना चाहिये। तश्तरी वा रकाबीको पहले रेत कागजसे और फिर फलालेनसे रगड़कर साफ कर लेना चाहिये।

(७) सुखाना

यह वह क्रिया है जिससे मिट्टीके बरतानोंका पानी भट्टीमें चढ़ानेके पहले सुखा लेते हैं ताकि बरतनोंके पकानेके काममें शीघ्रता हो। और बरतनोंके चिटकनेका कोई भय न रहे। जो बरतन चूर्णोंको दबाकर बनाये जाते हैं उनको सुखानेकी कोई ज़रूरत नहीं पड़ती, वे सीधे भट्टेमें पकाये जाते हैं।

सुखानेपर पहले बरतनोंके पृष्ठसे जलके कुछ अंश भाप बनके उड़ जाते हैं। तब बरतनके नीचेके भागोंसे केशाकर्षणके द्वारा जल ऊपर चला आता है। इस प्रकार यह क्रिया जब तक जारी रहती है जब तक वह बरतन बिलकुल सूख न जाय। सूख जानेपर पानीका जितना आयतन निकल जाता है उतना ही उस बरतनमें सिकुड़न होता है। पहले जब पानी पृष्ठसे भाप बनकर निकल जाता है तब उस स्थानको अन्दरसे पानी आकर भर देता है और ठोस कणोंके बीचका स्थान पानीसे भरा रहता है और यह कार्य तब तक होता रहता है जब तक उसमें पानी रहता है। जब अन्दरका सब पानी सूख जाता है तब ठोस कणोंके बीच सूषि बनते हैं इस प्रकार सूखनेकी क्रिया तीन क्रमोंमें होती है।

१—पहले क्रममें बरतनके पृष्ठसे उतना ही पानी उड़ता है जितना नीचेसे आकर उसके स्थानको ग्रहण कर लेता है। इस दशामें बरतनोंमें उतना ही सिकुड़न होता है। जितना पानी भाप बनकर उड़ जाता है। इस क्रमके अन्तमें बरतन चर्म-कठोर (लेदर-हार्ड) है ऐसा कहा जाता है।

(२) दूसरे क्रममें बरतनके पृष्ठसे जितना पानी उड़ता है उससे कम पानी नीचेसे ऊपर आता है। उससे बरतनोंके अन्दर सूषि बनना शुरू होते हैं। बरतनोंके रंग कुछ हलके हो जाते है। इस क्रियाके अन्तमें बरतन अस्थि-कठोर (बोन-हार्ड) हैं ऐसा कहा जाता है। ऐसे बरतन भट्टीमें रखनेके योग्य होते हैं।

(३) तीसरे क्रममें कृत्रिम गरमीसे बरतनोंको प्रायः ११०° पर गरम करते हैं। इससे उनका सारा जल निकल जाता है। यह वास्तवमें भट्टीमें पकानेका पहला क्रम है। इस क्रममें सिकुड़न प्रायः नहीं होता पर बरतन अधिक सुषिर हो जाते हैं।

चीनी मिट्टीके बरतन मामूली तौरसे जल्दी सूखते हैं। उनमें सिकुड़न कम होती है और उनके सूषि बड़े-बड़े होते हैं। नम्र मिट्टीके साथ यदि चूना मिला हुआ है तो ऐसी मिट्टी अपेक्षाकृत पानी सोख लेती है। जो मिट्टी अधिक पानी सोखती है उसके बरतनोंमें अधिक सिकुड़न होता है और उनके छेदोंके बीचका स्थान अधिक होता है। जिस कच्चे बरतनमें १० प्रतिशत जल रहता है उसमें दैर्ध्य सिकुड़न प्रायः एक प्रतिशत हो जाते है, जिसमें २५प्रतिशत जल रहता है उसमें दैर्ध्य सिकुड़न प्रायः १० तक होते हैं। ढालवां बरतन जौलीपर बने बरतनोंकी अपेक्षा अधिक सिकुड़ते और सुषिर होते हैं। हाथसे बने बरतन जिनके पृष्ठके क्षेत्र-फल अधिक हैं वे जल्दी सूखते हैं। जिन बर-

तनोंमें मोटे और पतले दोनों भाग होते हैं उनके पतले भाग मोटे भागकी अपेक्षा ज्यादा जल्दी सूख जाते हैं और इससे मोटे भागमें तनाव पड़ता है। यह तनाव यदि प्रयाप्त प्रबल है जिसे वे सहन नहीं कर सकते तो ये चिटक वा टूट जाते हैं। इस कारण मोटे और पतले भागोंके बीच अक्समात परिवर्तन नहीं होना चाहिये। मोटेसे पतले भागोंको धीरे-धीरे पतला करते हुये जोड़ना चाहिये।

सुखाने का समय

बरतनोंके सुखानेमें कितना समय लगना चाहिये यह बहुत कुछ उनकी बनावट, आकार और मोटाईपर निर्भर करता है। चूंकि सूखनेकी क्रियाके प्रथम क्रममें सुखाई बहुत जल्दी होती है इस दशामें बरतनोंको भींगे कपड़ोंसे ढकनेसे लाभ होता है। कभी-कभी साँचेको ही बरतनोंके साथ उलट कर रख देते हैं ताकि वे बहुत जल्दीसे न सूख सकें। जल्दीसे सूखनेमें उनके आकारमें विकार उत्पन्न हो सकता है। धीरे-धीरे सूखनेकी अपेक्षा जल्दीसे सूखनेमें सिकुड़न कम होती है। यदि एक ही मिट्टीके दो बरतन बने हों तो जो बरतन २४ घन्टेमें सूख जायगा उसमें सिकुड़न प्रायः ६ प्रतिशत होगा और जो १२ घन्टेमें सूखेगा उसमें सिकुड़न प्रायः ७ प्रतिशत होगी।

आर्द्रता

बरतनोंके सूखनेपर वायुमण्डलकी आर्द्रताका बहुत कुछ प्रभाव पड़ता है। यदि आर्द्रता कम है अर्थात् वायु सूखी है तो बहुत जल्दी सूख जाते हैं और यदि आर्द्रता अधिक है तो वे शीघ्र सूखते नहीं और उन्हें उच्च तापक्रम पर सूखानेकी जरूरत पड़ती है। अधिक आर्द्र वायुमें बरतन कम समयमें कृत्रिम रूपसे सुखाये जा सकते हैं। सुखानेकी कृत्रिम रीतिका व्यवहार इस दृष्टिसे अच्छा है। कुछ उच्छोषकोंके प्रयोगसे भी जिनमें जल वाष्प दिया जा सकता है सूखानेका समय कम किया जा सकता है। कम समयमें बरतनोंके सूखनेसे चिटकनेकी सम्भावना बहुत होती है।

तापक्रम और वायु

यदि वायु शान्त है तो सूखनेमें अधिक समय लगता है और यदि वायु बहती है तो वे जल्दी सूख जाते हैं। यदि शान्त वायुमें सूखनेका बेग १०० है तो जब वायु घण्टे में प्रायः १ मीलका चालसे बहती है तो सूखनेका बेग १०१ और यदि घण्टेमें २ मीलका चालसे बहती है तो ११७ हो जाता है। जिस प्रकार बहती वायुमें वाष्पीभवन अधिक शीघ्रतासे होता है वैसा ही बहती वायुमें मिट्टीके बरतन अधिक शीघ्रतासे सूखते हैं। ताप क्रमकी वृद्धिसे सूखनेकी क्रियामें बहुत वृद्धि होती है। तापक्रम १०° की वृद्धिसे सूखनेकी क्रिया प्रायः २½ गुना बढ़ जाती है। ४२° की वृद्धिसे तो प्रायः १० गुना बढ़ जाती है।

सूखनेकी क्रियापर नमकका असर

नमकसे बरतनोंके सूखनेका बेग कम हो जाता है और अधिकांश दशाओंमें सिकुड़न बढ़ जाती है। नमकसे बरतनोंके रंग अच्छे होते हैं। सुखाने और पकानेमें जो दिक्कतें होती हैं वे बहुत कुछ २ प्रतिशत वजनमें नमकके रहनेसे कम हो जाती हैं। इसका कारण यह है कि नमकके कारण मिट्टीका केशाकर्षण बढ़ जाता है और ज्यों ही पृष्ठका जल सूख जाता है अन्दरसे जल आकर उस स्थानको ले लेता है। सोडियम कार्बोनेटसे सूखनेकी गति कम हो जाती है पर चिटकनेकी सम्भावना बढ़ जाती है। सोडियम क्लोराइड और सोडियम कार्बोनेटसे पकानेके समय मिट्टीके काँची करण मंडल की अवधि बढ़ जाती है। दूसरे शब्दोंमें निम्न तापक्रमपर ही मिट्टी काँच-सा बनना शुरू करती है ज़रूरतसे ज्यादा न पकती है।

सुखानेकी विधि

भिन्न-भिन्न वस्तुओंके लिये विभिन्न अवस्थाओंमें अलग-अलग विधियां प्रयुक्त होती हैं। जब मिट्टीको केवल धोकर सुखाते हैं तो उसे खुली भट्टीपर रखकर कोयलेकी आँचसे गरम करते हैं। मिट्टीके सामान बनानेके कारखानेमें बायलरसे निकली गरम गैसोंको भी इस कामके लिये प्रयुक्त करते हैं। पोरसी लेना, ईंट इत्यादिके कारखाने जहाँ भारी-भारी चीजें बनायी जाती है वहां भट्टीसे निकले नष्ट तापको सुखानेके काममें ला सकते हैं। यह ताप भट्टीसे बड़े-बड़े नलोंके द्वारा लाकर उच्छोषकोंमें प्रयुक्त होता है। भट्टोंके ऊपर भी बरतनोंको रखकर सुखा सकते हैं। भारतमें कृत्रिम रीतिसे बरतनोंके सुखानेके लिये अनेक महीनोंमें

जरूरत नहीं पड़ती क्योंकि सूर्यका प्रकाश ही इसके लिये पर्याप्त होता है। कुछ बरसातके दिनोंमें ही कृत्रिम तापकी जरूरत पड़ सकती है। तब भट्टीकी बची हुई गरमी बड़ी सरलतासे काममें लाई जा सकती है।

मैल छाँटना

बरतनोंका मैल छाँटना कुंभारोंका एक होवा है। मामूली तौरसे बरतनोंके सुखानेपर उनके पृष्ठपर गन्दे सफ़ेद मैल जम जाते हैं जो पकानेपर भी नहीं जाते। कभी-कभी पकानेपर ही ये मैल प्रकट होते हैं। यह मैल कैलशियम सल्फेटके कारण बनता है। कैलशियम सल्फेट जलमें कुछ विलेय होता है। कुछ लवणोंकी उपस्थितिमें इसकी विलेयता और भी बढ़ जाती है।

कच्चे बरतन जब धीरे-धीरे सूखते है—तब उनमें जो विलेयलवण होते हैं वे पृष्ठ पर चले आते हैं और जैसे-जैसे पानी सूखता है वैसे-वैसे वे निक्षिप्त होते जाते हैं। ये निक्षेप उन स्थानोंपर अधिक होते हैं जहां पानी अधिक सूखता है। ये निक्षेप बरतनोंकी अन्तिम तैयारीके समय हटाये जाते हैं। यदि सूखनेकी गति इतनी तीव्र है कि अन्दरसे उतनी तेजीसे पानी नहीं आ सकता तब अन्दरसे ही पानी सूखता है। उस दशामें बरतनोंके पृष्ठ भागपर निक्षेप नहीं होते।

कभी-कभी सुखाने वाली गैसोंसे भी बरतनोंपर मैल जम जाते हैं। ऐसी गैसोंमें गन्धककी गैसें रहती हैं जो मिट्टीके कैलसियम कार्बोनेटके साथ मिलकर कैलसियम सल्फेट बनती हैं। ये सल्फेट पहले विलेय होते हैं पर पीछे बरतनोंके ऊपर इकट्ठे हो जाते हैं। बरतनोंके सूखने पर तो ये सरलतासे हटाये जा सकते हैं पर एक बार पक जानेपर वे स्थायी बन जाते है और उनपर जब लुक (ग्लेज) फेरा जाता है तब लुक उनपर चढ़ता नहीं गिर पड़ता है। भट्टीमें चढ़ानेपर जब भट्टी ठंढी रहती है तब जलावनकी राखके क्षारीय लवण बरतनोंके लवणोंके साथ मिलकर मैल बनते हैं। कभी-कभी बरतनोंके पकानेके बाद भी बरतनोंपर मैल बन सकते हैं। ये सफेद पीले वा हरे रंगके हो सकते हैं और इस्तेमाल करनेके वर्षों बाद बन सकते हैं। यदि इन बरतनोंके पकानेकी भट्टोका तापक्रम पर्याप्त ऊँचा नहीं है ताकि मिट्टी अविलेय सिलिकेटोंमें परिणत हो जाय तो मिट्टीके लवण—सोडियम, पोटासियम, मैगनीसियम और कैलसियमके क्लोराइड, सल्फेट और सिलिकेट—धीरे-धीरे घुलकर वर्षा व अर्द्रवायुके कारण पृष्ठ भाग पर चले आते हैं और मैल बनते हैं। वेनेडियम लवणोंके कारण पीले और हरे मैल बनते हैं। ईंटोंमें जो पीले मैल बनते हैं वे वेनेडिक-आक्साइडके कारण बनते हैं। कोयलेकी धूलोंके कारण वेने डिक-अम्ल बेनेडिक-आक्साइडमें परिणत हो जाता है जिससे यह मैल कुछ नीलापन लिये हुये हरे रंगका होता है।

इस मैल बननेको रोकनेके लिये कुछ चीजें मिट्टीमें मिलाई जा सकती हैं। इस कामके लिये बेरियम कार्बोनेट वा बेरियम क्लोराइड या दोनों प्रयुक्त होते हैं। इससे कैलसियम सल्फेट मिट्टीमें नहीं रहता। वह कैलसियम कार्बोनेट वा क्लोराइडमें परिणत हो जाता है। इससे मैल बननेकी सम्भावना नहीं रहती। इस कामके लिये अवक्षिप्त बेरियम कार्बोनेट ही अच्छा होता है। प्राकृतिक बेरियम कार्बोनेट उतना अच्छा कार्य नहीं करता। बेरियम क्लोराइड जलमें विलेय होनेके कारण शीघ्र कार्य करता है। जब थोड़ा बेरियमसे काम चल जाय तो बेरियम क्लोराइड ही प्रयुक्त करना चाहिये। एक जर्मन पेटेंटमें इस कामके लिये एक कार्बनिक पदार्थ प्रयुक्त होता है। इस पदार्थसे आच्छादित बरतनके पकानेपर ये जल जाता है और कैलसियम सल्फेटके साथ रासायनिक क्रिया होकर वह ऐसे पदार्थमें परिणत हो जाता है जो आपसे आप गिर पड़ता है।

एरण्ड

[लेखक—श्रीयुत रामेश वेदी आयुर्वेदालङ्कार]

नाम

संस्कृत—लाल और सफ़ेद एरण्डके नामोंके सम्बन्धमें संस्कृत लेखक बहुत स्पष्ट नहीं हो सके हैं। कैयदेव व्याघ्र-पुच्छ नाम शुक्लैरण्डको देता है और भावप्रकाश रक्तैरण्ड को। उत्तानपत्रक राजनिघण्टु और भावप्रकाश रक्तैरण्ड-का नाम देते हैं परन्तु कैयदेव श्वेतैरण्डका। सबूक तथा अन्य अधिकतर पर्याय दोनोंके लिये समान रूपसे प्रयुक्त किये गये प्रतीत होते हैं। पहले हम इसी प्रकारके नामोंका उल्लेख करेंगे जिनसे दोनोंका ग्रहण किया जा सकता है, और उसके बाद भेदक नाम लिखेंगे।

परिचय ज्ञापक नाम :—तरुण (वृक्ष छोटा ही होता है); वर्द्धमान (पौदेकी वृद्धि बहुत तीव्र होती है); हस्तिकर्ण, हस्तिकर्णी, नाग कर्ण, हस्तिपर्ण (हाथीके कानके समान चौड़े पत्तोंवाला); करपर्ण, करपर्णा, पञ्चाङ्गुल (हाथकी अंगुलियोंके समान पांच मुख्य नाड़ियाँके जिसके पत्तेमें हों); यक्षहस्त, गन्धर्व हस्तक (यक्ष और गन्धर्वके हाथ जैसे पत्तोंवाला छोटा वृक्ष); याचनक (फैलाए हुए हाथके समान मानो पत्ते याचना कर रहे हों, क्या पहले समयमें पत्ता भिक्षावृत्तिमें काम आता था ?) उत्तान पत्रक (ऊपरको उठे हुए या फैले हुए पत्तोंवाला), दीर्घ दण्डक (लम्बे पत्र दण्डवाला); व्याघ्र पुच्छ (पतली शाखाओंपर बालों या मुलायम काँटोंवाले समूहोंमें लगे हुए फल व्याघ्र पुच्छके पिछले सिरेकी तरह दीखते हैं ?); चित्र, चित्रक, चित्रबीज (चित्रित बीजोंवाला); स्निग्ध (बीजा-वरण चिकना होता है, अथवा स्नेह-तेल-देनेवाला वृक्ष); गन्धर्व (गांधारपति इति, जिसमें स्वर निहित है; खोखली छोटी शाखाएं पहले सम्भवतः बांसकी तरह मुरली बनाने के काम आती हों)।

गुण प्रकाशक नाम :—वातादि (वात रोगोंका शत्रु)।

भेदक नाम—:श्वेतैरण्ड, सितैरण्ड, शुक्लैरण्ड, शुक्ल-एरण्ड, शुक्ल (सफ़ेद एरण्ड)।

रक्त, रक्तैरण्ड (लाल एरण्ड); लोहित शीर्षक (लाल सिरवाला); व्यालम्ब (लम्बा)।

ह्रस्वैरण्ड (छोटा एरण्ड)।

स्थूलैरण्ड (मोटा एरण्ड); महैरण्ड , महापंचांगुल (बड़ा एरण्ड) आदि।

हिन्दी—एरण्ड
बंगाली—भेरण्डा।
सन्थाल—एरण्डम।
आसाम—एरि।
बिहार—अण्ड।
गोण्ड—नेरिण्ड।
उत्तर पश्चिम प्रान्त—अरण्ड, रेण्डि, रेरि, भट्रेरि।
पञ्जाब—अनेरु, हनौली, अरण्ड, अरिण्ड।
पश्तो—अरहण्द।
अफगानिस्तान—बाज़—अञ्जीर, बुज़ अञ्जीर।
बौम्बे—एरण्डि।
दक्षिण—यरण्ड, इरण्ड,रुण्ड, इण्ड।
मराठी—एरण्डि, यरण्डीचा।
गुजराती—एरण्डो।
कर्णाटक—एरडु आवडलके।
तैलङ्गी—आमिद पुचेद।
अंग्रेजी—कैस्टर आँयल प्लाण्ट।
लैटिन—रिसिनस कौम्युनिस, लिन।

नैसर्गिक नर्ग—युफ़ोबिएसी।

प्राप्ति स्थान

एरण्ड ऊसर देशोंका मूल निवासी है। भारतमें सब जगह बोया जाता है और यहाँ यह प्राकृतिक बना लिया गया है। भारतमें पहाड़ोंपर छः हज़ार फुटकी ऊँचाई तक मिलता है। मारवाड़में प्राकृतिक बना लिया गया है। ऊपर बर्मामें जंगली है और कभी खेती नहीं किया गया। आसाम-में बंझड़ ज़मीनोंमें स्वयं उगा हुआ होता है और इसके

पत्ते एक देशीय रेशमके कीड़ेको खिलाये जाते हैं। भारत-में मैदानोंमें मानवीय बस्तियोंके पास कूड़े कचरेके ढेरके ऊपर और फालतू ज़मीनोंपर बहुधा उग आता है।

वर्णन

यह सदा-हरा रहने वाला छोटा वृक्ष या बड़ी झाड़ी है। संस्कृतमें तो प्रसिद्ध उक्ति है कि जहां कोई वृक्ष न होने वहां एरण्ड ही वृक्ष समझ लिया जाता है। (निरस्तपे पादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते)। इसके पत्ते हरे या लाल आभा लिये हुये होते हैं, पत्तोंका व्यास एकसे दो फुट। पत्र दण्ड चारसे बारह इंच लम्बे। पुरुष पुष्प एक हो पुष्प दण्डपर मादा फूलोंसे ऊपर होते हैं। छाल पतली, हलकी हरिताभ-धूसर। लकड़ी सफ़ेद मुलायम, हलकी, बीचमें मृदु गूदा होता है और कभी-कभी अनियमित पूरी अन्तः काष्ठ भो होती है।

भेद

संसारके प्रत्येक भागमें बहुत देरसे बोया जानेके कारण इसके अनेक भेद बन गये हैं। इनमेंसे कुछ तो एरण्डके विशुद्ध भेद या उपजातियां कही जा सकती हैं परन्तु दूसरों का वनस्पति शास्त्रकी दृष्टिसे भी इतना महत्व नहीं है और ये जातियां उद्यान विशेषज्ञोंकी कलाकी उत्पत्ति समझनी चाहिये जिनकी पिछली शताब्दीमें ही सुन्दर और आकर्षक पत्तों तथा तनोंके रूपमें सृष्टि हुई है।

समस्त संसारमें प्राप्त एरण्डके प्रकारोंको कुछ लेखकोंने सोलह भेदोंमें परिगणन किया है। इनमें बहुत अधिक स्पष्ट भेद नहीं प्रतीत होता और एक दूसरेसे सादृश्य रखते हुए ये कुछ समूहोंमें बंटे हुए मालूम पड़ते हैं जिन समूहों-का मूल एक जातिकी बोयी हुई अवस्थाएं ही हैं।

प्राचीनतम संस्कृत ग्रन्थों और सर्व प्रथम युरोपियन रचनाओंसे लेकर वर्तमान समयके सब लेखक इसके दो मुख्य भेदोंको स्वीकार करते हैं। इन दो बड़े प्रकारोंका विभिन्न रूपसे नामकरण किया गया है जो एक ओर तो बीजोंके आकारको प्रकट करते हैं और दूसरी ओर शाखाओं, पत्तों और पत्रदण्डोंके रंगको प्रकट करते हैं।

दो मुख्य भेद इस प्रकार किये जा सकते हैं—

(१) यह ऊँची बहुवार्षिक झाड़ी या लगभग वृक्ष होता है जो आम तौरपर बाढ़ बनाने के उद्देश्यसे या नाज़ुक फ़सलोंपर छाया देनेके उद्देश्यसे खेतोंके चारों ओर बोया जाता है। इसके फल बड़े, बीज लाल तथा बड़े और अधिक परिमाणमें तेल देते हैं—लगभग चालीस प्रतिशतक। यह तेल घटिया किस्मका होता है और मुख्यतया जलाने और मशीनोंमें देनेके काममें आता हैं। लैम्प-के तेलके रूपमें बहुत इस्तेमाल होता है।

(२) अधिक छोटा वार्षिक पौदा है। कभी-कभी शुरू फ़सलके रूपमें बोया जाता है। यद्यपि बहुधा दूसरी फ़सलोंके साथ पंक्तियोंमें बो लिया जाता है। इसके बीज छोटे सफ़ेद और उनपर भूरे धब्बे होते हैं। इसमें तेल सैंतीस प्रतिशतक निकलता है। तेल सावधानीसे और अधिक खर्चीले तरीकोंसे निकाला जाता है। यह तेल बढ़िया होता है और मुख्यतया औषधि रूपमें व्यवहृत होता है।

एरण्डका एक और भेद कहा जाता है जिसे हम 'मीठा या भक्ष्य' एरण्ड कह सकते हैं। कहते हैं, इसके बीजोंमें कोई विषैला तत्व नहीं होता और इनसे निकाला हुआ तेल खाद्य पदार्थके रूपमें भोजनोंके पकानेमें इस्तेमाल किया जा सकता है। चीनी एक प्रकारके एरण्ड तेलको भोजन पकानेमें काम लाते हैं। इसके फल चिकने होते हैं। प्रायः कहा जाता है कि अफ्रीका निवासी और वेस्ट इण्डीज-के नीग्रोज़ एक प्रकारका एरण्ड तेल भोजनोंको पकानेमें बहुत प्रयुक्त करते हैं। एलिसन लिखता है कि झेलममें बीज व्यञ्जनोंमें डाले जाते हैं। हरि-रुदकी घाटी और खोरा-सानमें विरेचन रूपमें बीजोंका प्रयोग अज्ञात है और तेल केवल जलानेके काम आता है।

कैयदेव, राज निघण्टु, भाव प्रकाश आदि संस्कृत लेखकोंने इसके लाल और सफ़ेद दो भेद किये हैं। राज-निघंटुने इन भेदोंके अलावा एक भेद हस्वैरंड। (शाल्य-हयादि वर्ग, श्लोक ५७) और दूसरा स्थूलैरंड (शाल्य-हयादि वर्ग श्लोक ५६) किया है। यह एरंडके महा पूर्वक पर्याये स्थूलैरंडके लिये प्रयुक्त करता है, और रस, वीर्य, विपाकमें इसे अधिक गुणकारी समझता है (राजनिघंटु, शाल्यहयादि वर्ग, श्लोक ५६—स्थूलैरंडो मुखभद्रयः स्यात्

रस वीर्य विपक्तिषु)। भावप्रकाश लाल और सफ़ेद एरंडके गुणोंमें भेद नहीं समझता। 'एरंड युग्मम्' इस प्रकार वह एरंडके गुण लिखना आरम्भ करता है (भाव प्रकाश, पूर्वखंड, गुडूच्यादि वर्ग, श्लोक ६२)। अन्य लेखकोंने भी प्रायः दोनोंपर हर एक तरह ही विचार किया है। जिन्होंने दोनोंका पृथक्-पृथक् वर्णन किया है वे इनके भेदक गुणोंको बहुत स्पष्ट नहीं कर पाये हैं। मुसलमान लेखक भी इसके लाल और सफ़ेद दो भेदोंका उल्लेख करते हैं, लाल अधिक क्रियाशील कही जाती है।

इतिहास

आधुनिक वनस्पति-शास्त्र-वेत्ताओंका यह खयाल प्रतीत होता है कि एरण्ड भारतका मौलिक पैदा नहीं है और पौदेकी खेती बहुत सम्भवतः अफ्रीकासे फैली है जहां कि वास्तवमें यह जंगली रूपमें जाता है। एरण्डका मौलिक निवास स्थान दक्षिणीय एशिया मालूम होता है। बहुतसे ऊसपर प्रदेशोंमें यह पौदा अत्यन्त प्राचीन कालसे बोया जा रहा है। चीनके साहित्यमें इसका सबसे पुरातन वर्णन तांगा काल—ईस्वी पश्चात् ६१८से ९०६—में मिलता है। इजिप्टमें यह चार हजार ईस्वी पूर्वमें है। पुरातन इजिप्ट निवासी तेल निकालते थे और जलानेके लिये इस्तेमाल करते थे। दलदलों वाले स्थानोंमें रहने वाले इजिप्ट निवासी यह तेल शरीर पर मलनेके लिये इस्तेमाल करते थे। डिपोस्कोरीपड्स जानता था कि तेल उदर क्रमिहर है और वमन लाता है और यह विरेचक भी है। परन्तु उस समयके अन्य चिकित्सकों ने इस ज्ञान का कोई संकेत नहीं दिया। इस कालसे पूर्व भारतमें यह विरेचनके लिये उपयोगमें आता था और आमवातमें लेप भी किया जाता था। मूलके भी कई योग चरक सुश्रुतमें दिये हैं। सुश्रुत इसके लाल और सफेद दो भेद लिखता है जैसे कि उसने स्वयं पौदेको देखा हो। वह इसके ताजे अंगोंको विभिन्न प्रकारसे प्रयोग करनेके लिये लिखता है। यह पौदा उस उस समय भारतमें सुलभ था। यह स्पष्ट है कि सुश्रुत लिखे जानेके समय यह पौदा भारतमें अच्छी तरह ज्ञात था और यहीं पर होता था, और सम्भवतः बोया भी जाता हो। इस तथ्यसे मालूम होता है कि ईस्वी संवत्से कई सौ शताब्दियों पूर्व भारतीयोंकी इस पौदेसे परिचिति थी। अब भी यह बाह्य हिमालयमें मानवीय प्रभावसे काफी दूरी पर स्वतः उगा हुआ मिलता है। इसलिये अफ्रीकामें इसका मूल निवास मानना यद्यपि आपत्ति-जनक नहीं है परन्तु भारत भी इसका मौलिक उद्भव स्थान हो सकता है।

श्रीयुत डी कैण्डोलेने अपनी पुस्तक कृषि किये जानेवाले पौदोंका उद्भव (ओरिजिन ऑफ कल्टिवेटेड प्लान्ट्स) में संसारके अन्य भागोंमें एरंडकी खेती प्रारम्भ किये जानेके सम्बन्धमें बहुत मनोरंजक ऐतिहासिक और वानस्पतिक तथ्य दिये हैं, जिनका हम यहां उल्लेख करते हैं। किसी भी देशमें, वह लिखता है, यह पौदा इतनी निश्चिततासे जंगली नहीं कहा जा सकता जितना एबिसीनिया, सेनार और कर्दोफोनमें है। गोमेलोके पास कायरकी घाटीमें चट्टानी स्थानोंमें यह आम होता है। अपर सेन्नारके उन हिस्सोंमें जहां बारिशमें बाढ़ आ जाती है यह जंगली है। कर्दोफोनमें माउण्ट कोहनके उत्तरीय ढालमें कोल्दागीमें भी यह देखा गया है। ईजिप्टमें एरंड बोया जाता है और प्राकृतिक बना लिया गया है। अल्गेरिया, सारडीनिया और मोरक्को तथा केनरीजमें मुख्यतया समुद्र तट पर यह रेतामें मिलता है और यहां भी सम्भवतः यह सदियोंसे प्राकृतिक बना लिया गया। एरेबिया फेलिक्स पर्वतोंपर यह होता है। विलोचिस्तान और पर्शियाके दक्षिणमें मिलता है, परन्तु कुछ कम जैसे कि सीरिया, एनाटोलिया और ग्रीसमें।

मलाबारमें यह बोया जाता है और रेतामें उगा हुआ मिलता है परन्तु आधुनिक एंग्लोइंडियन लेखक इसे जंगली नहीं समझते। कोचीन और चीनमें बोया हुआ और विना बोया हुआ दोनों रूपमें मिलता है। मालूम होता है बोये हुये पौदोंसे बच कर कुछ बीज निकल गये हैं और यह वहांकी मौलिक उपज नहीं है। जावामें यह बहुत फैला हुआ है और वहांके बीजोंमेंसे तेल भी बहुत अधिक परिमाणमें निकलता है। अम्बोयनामें बस्तियों और मैदानोंके आस-पास कहीं बोया जाता है वह भी अधिकतर औषधोपयोगके लिये। एक जंगली जाति यहां बंभड़ जमीनोंमें उगती है यह निस्सन्देह

बोये गये पौदोंसे ही उत्पन्न हुई है। जापानमें माउन्ट वंतूजनके ढालोंपर और झाड़ियोंमें उगता है। अमेरिकाके ऊसर प्रदेशोंमें यह पौदा बोया जाता है। कूड़ेके ढेरों आदि पर यह सुगमतासे उग आता है परन्तु किसी भी वनस्पतिशास्त्रवेत्ताने इसे वास्तवमें तद्देशीय नहीं पाया। अमेरिका अन्वेषणके बाद यह वहां ले जाया गया होगा। ईजिप्ट और पश्चिमीय एशियामें यह इतने अधिक प्राचीन कालसे बोया जा रहा है कि गलतीसे यह वहांकी मौलिक उपज समझ ली जाती है।

युरोपियन चिकित्सामें इसके स्थान प्राप्त करनेका इतिहास इस प्रकार है—तेरहवीं शताब्दीके माध्यमें रतिस्बनका पादरी एलबर्टस मैग्नस एरंडकी खेती करता था। टर्नर (१५६८) के समयमें यह उद्यान वृक्षके रूपमें अच्छी तरह ज्ञात था। इसी सदीके अन्तमें गिरार्दे इसे रिसिनस या किक नामसे जानता था। वह लिखता है कि इसके तेलका नाम ओलियम रिसिनम है और बाह्य प्रयोगमें त्वचाके रोगोंमें काम आता है। इस कालके बाद मालूम होता है कि तेल सर्वथा उपेक्षित हो गया। यहां तक कि डेलके १६६३के विस्तृत फार्माकोलोपियामें इसका ज़िक्र तक नहीं किया गया। हिल (१७५१) और लेविस (१७११) के समयमें दुकानोंमें एरंडके बीज बहुत कम मिलते थे और एरंड तेल मुश्किलसे ज्ञात था। १७६४ में पीटर केनवेन एक चिकित्सकने, जिसने बहुत साल तक वेस्ट इण्डीजमें चिकित्सा कार्य किया था, एरंडके सम्बन्धमें एक निबन्ध प्रकाशित किया जिसमें उसने सुख विरेचकके रूपमें इसका उपयोग करनेकी ज़ोरदार सिफारिशकी। इस निबन्धके दो संस्करण निकले और फ्रेंचमें भी यह अनूदित हुआ जिससे तेल की उपयोगिता और अच्छी तरह लोगोंको मालूम हुई। फिर हम देखते हैं कि एरंडके बीजोंको १७८८ के लण्डन फार्माकोपियामें स्थान दिया गया और उनसे तेल निर्माणके निर्देश भी दिये गये हैं। वुडविले अपनी मेडिकल बौटनी (१६६०) में लिखता है कि तेल देरसे पर्याप्त उपयोगमें आ गया है। इस काल तक और इसके बाद भी अनेक वर्षों तक युरोपियन-चिकित्साके लिये आवश्यक तेल और बीजोंका थोड़ा सा परिमाण जमायकासे प्राप्त किया जाता रहा। धीरे-धीरे मार्केटमें इस तेलका स्थान ईस्ट इन्डीज़-में उत्पन्न होने वाले तेल ने ले लिया।

व्यापारिक महत्व

भारतमें बहुत बड़े क्षेत्रमें एरण्डकी खेती हो रही है। वेस्ट इण्डियन आइलेण्ड्स, उत्तरीय अमेरिका और इटलीमें बहुत अधिक तादादमें बीज इकट्ठे किये जाते हैं और उनसे तेल निकाला जाता है। बीज और तेल दोनों ही व्यापार-के महत्व पूर्ण पदार्थ हैं। तेल चिकित्सामें सारे संसारमें बहुत परिमाणमें प्रयुक्त होता है। तेलकी एक बहुत बड़ी तादाद, चिकित्सामें प्रयुक्त होनेवाले परिमाणसे कहीं अधिक, साबुन और चमड़ेके तेल बनानेमें, वायुयानोंमें, एंजिनोंमें तेल देनेके लिये तथा अन्य इण्डस्ट्री प्रयोजनोंके लिये ख़र्च हो जाता है। भारत बहुत दिनोंसे एरण्ड तेलका बहुत बड़ा उत्पादक है और इसका निर्यात व्यापार कर रहा है। १९२४-२८ में ४७४४५१ गैलनसे ६६६६२६ गैलन तक तेल बाहर भेजा गया जिसका मूल्य १०१२५८५ से १८६९८६६ रुपये तक है। इसी कालमें बीज भी बड़े-बड़े परिमाणमें बाहर गये हैं और उनका मूल्य २८८६६६५ से २५८३२८३५ रुपये आंका जा सकता है।

इतनी बड़ी उत्पत्तिको देखकर यह निराशाजनक बात है कि उत्तम श्रेणीका चिकित्सोपयोगी तेल भारत अपनी मांग पूर्तिके लिये भी नहीं पैदा कर रहा। अशुद्ध तेल निकाला जाता है और यह मुख्यतया इण्डस्ट्री सम्बन्धी प्रयोजनोंके लिये काम आता है। चिकित्सोपयोगके लिये सर्वोत्तम तेल इटालियन या फ्रेंच तेल है जो कि शीत-निष्पीड़नसे प्राप्त किया जाता है। प्रथम निष्पीड़न ही केवल उत्तम श्रेणीका तेल देता है और यह लगभग तेंतीस प्रतिशतक होता है जहां तुलनामें बीजोंके अन्तिम निष्पीड़न तक चालीससे पैंतालीस प्रतिशतक तेल प्राप्त किया जा सकता है। इटालियन और फ्रेंच तेल छिलके उतारे हुए बीजोंसे निकाले जाते हैं। इस लिये ये स्वादमें भारतीय तेलोंकी तुलनामें अधिक मृदु होते हैं। भारतमें अच्छा चिकित्सोपयोगी तेल तय्यार करनेमें विशेष कठिनाइयां नहीं हैं और आशा की जाती है कि भारत द्रव्य गुणके एक महत्वपूर्ण और सस्ते विरेचनकी मांगकी पूर्ति करेगा।

व्यापारिक परिमाणमें बीजोंसे तेल निकालनेकी दो विधियां हैं—

१, ठण्डी विधि—यवकुट किये हुये बीजोंसे निष्पीड़न की प्रक्रियासे बिना गरमीकी सहायतासे तेल निकाला जाना चाहिये। इस प्रकारसे निकाला हुआ तेल नीरंग या हल्का-सा पीला या तृण वर्ण होता है। लगभग निःस्वाद होता मृदु और ईषत् तिक्त होता है। पानीमें उबालकर निकालनेसे गन्ध और स्वाद दोनों ख़राब हो जाते हैं और शीति निष्पीड़नसे निकाले तेलकी अपेक्षा यह शीघ्र ही सड़ जाता है।

२, गरम विधि—भारतमें इस विधिसे इस प्रकार निकाला जाता है—बीजोंके छिलके उतार कर उन्हें पीसा जाता है और तब पानीमें उबाला जाता है। पृष्ठपर आये हुये तेलको निथार कर छान लिया जाता है। फिर दुबारा थोड़े पानीके साथ मिलाकर तिक्त तत्वको निकालनेके लिये उबालते हैं। तेल अधिक लेनेके लिये कई बार बीजोंको भून लिया जाता है इससे तेल भूरा-सा और कड़वा हो जाता है और यही परिणाम दुबारा उबालनेमें होता है यदि पानीका अंश वाष्प बन कर उड़ जानेके बाद उबालनेकी प्रक्रियाको बन्द करनेमें सावधानी न रखी जाय।

बड़े परिमाणमें तेल निकालनेकी विधि निम्न है—धूल और छिलकोंसे बीजोंको पूर्णतया साफ़ करके एक उथले लोहेके बर्तनमें डाला जाता है। यहां इन्हें हल्की गरमी पहुँचाई जाती है—इनको भूनने और विश्लिष्ट होने देनेके लिये अपर्याप्त और इससे अधिक नहीं कि वह हाथसे बर्दाश्त न की जा सकती हो। इस प्रक्रियासे तेल पर्याप्त द्रव हो जाता है और निष्पीड़नमें सुगमता रहती है। तब बीज एक सशक्त हाइड्रोलिक प्रेसमें डाले जाते हैं। इस प्रकार एक श्वेताभ तैलीय द्रव प्राप्त होता है जो पर्याप्त मात्रामें पानी भरे हुए स्वच्छ लोहेके बोयलर्समें डाल दिया जाता है। कुछ समय तक यह मिश्रण उबाला जाता है और पृष्ठपर उठ आनेवाली मलिनताएं निथार ली जाती हैं। अन्तमें पानीके ऊपर एक स्वच्छ तेल रह जाता है। इस द्रवमें म्युसिलेज और निशास्ता विलीन हुए होते हैं और एल्ब्युमिन गरमीसे जम जाती है। जमी हुई एल्ब्युमिन पानी और तेलके बीचमें एक सफ़ेद-सी स्तर बनाती है। साफ़ तेल अब सावधानीसे निकाल लिया जाता है और स्वल्प परिमाणमें पानीके साथ उबालनेके बाद यह प्रक्रिया पूर्ण हो जाती है। जलीय वाष्प उठने बन्द हो जाने तक गरमी दी जाती है। इस अन्तिम प्रक्रियाका उद्देश्य तेलको अधिक शुद्ध करना होता है, इसके तिक्त उड़नशील पदार्थको निकाल देकर इसे कम क्षोभक बनाना होता है। परन्तु गरमी अधिक न लगने देनेमें बहुत सावधानी करनेकी आवश्यकता है। नहीं तो तेलमें भूरा रंग और तिक्त चरपरा-सा स्वाद आ जाता है। इस सब प्रक्रियाके बाद तय्यार तेलको बैरल्समें डालकर मार्केटमें भेज दिया जाता है।

विश्लेषण

मद्रास, बम्बई, संयुक्त प्रान्त और मध्य प्रान्तके बीजोंकी एक बड़ी संख्याकी परीक्षा की गई और मालूम हुआ कि इनमें पचीससे पैंतीस प्रतिशतक छिलका होता है और कुछ अपवादोंको छोड़ कर गूदेमेंसे साठसे सत्तर प्रतिशतक या सारे बीजका पैंतीससे पचास प्रतिशतक तेल निकलता है। छोटोंकी अपेक्षा बड़े बीज अधिक तेल देते हैं।

वाष्पीकरणसे एल्युमिनस पदार्थोंके जम जानेसे और तब क्षारणसे निकाल दिये जानेसे शुद्ध हो जानेके कारण तेलके बहुतसे व्यापारिक नमूनोंमें स्वतन्त्र स्निग्ध अम्लों (फ़ैटी एसिड्स) का थोड़ा अनुपात होता है।

तेल स्निग्ध, गाढ़ा, चिपचिपा लेसदार, नीरंग या हलका-सा पीला होता है। गन्ध हलकी, स्वादमें पहले चिकना-सा निःस्वाद और बादमें तिक्त तथा अरुचिकर। १५ '५° पर आपेक्षिक गुरुत्व ०'९६३ से०'९६४; सावुनीकरण मान १७७ से १८४; आयोडीन मान ८१'४से ८५.३; अविलेय स्निग्ध अम्लोंका पिंघलाव विन्दु १३°, आयोडीन मान ८६ से ८८।

पतले स्तरोंमें खुला रहनेपर भी तेल शुष्क नहीं होता एब्सोल्यूट एल्कोहल, ईथर और तारपीनके तेल (टर्पेण्टाइन ऑयल) में सर्वथा विलेय है। नब्बे प्रतिशतक एल्कोहलमें ३½ में १ घुलनशील है।

तेलमें मुख्यतया ग्लिसरोलका रिसीनोलिएट या ट्रि-रिसिनोलीन होता है। पामिटीन और स्टिरीन थोड़े परिमाणमें होते हैं। एब्सोल्यूट एल्कोहल और ग्लेशियल एसिटिक

एसिडमें यह सब अनुपातोंमें बहुत अच्छी तरह मिल जाता है। रिसिनोलीक एसिडके ग्लिसराइड्स तेलके विरेचक प्रभावमें मुख्य कारण हैं। मुख द्वारा पिलाया जानेपर तेल साबुन बन जाता है और स्वतन्त्र अम्ल मुक्त हो जाता है जो प्रभाव उत्पन्न करता है।

तेलके अतिरिक्त बीजोंमें एक बहुत विषैला पदार्थ होता है। यह विषैला तत्व एल्ब्युमिनौयडकी प्रकृतिका पदार्थ है और इसको रिसीन नाम दिया गया है। यह एक प्रबल विष है जिसका रक्तके जमावपर निश्चित प्रभाव है। इसमें विरेचन प्रभाव जरा नहीं है और आमाशय तथा अन्य मार्गमें रक्त स्रावजन्य शोथ उत्पन्न कर देता है। त्वचाके नीचे सूचिवेध दिया जानेसे भी इसका यह प्रभाव होता है। तेलमें यह सर्वथा नहीं होता। बीजोंमें विद्यमान रिसिनीन भी विषैला तत्व है। रिसिनीनका सूत्र $क_{१७} उ_{१३} नो_{४} ओ_{४}$ है। दबे हुये या पेले हुये बीजोंमेंसे ०·३ प्रतिशतक। रिसिनीनकी प्राप्तिके लिये पेले हुये बीज या छिलका उबलते जलमें उबाले जाते हैं। गरम जल पर कषायका पानी उड़ाया जाता है और अवशेष एल्कौहलमें डाला जाता है। एल्कौहलिक घोलको फिर सुखाया जाता है। और अवशेषको कास्टिक सोडेमें डाल जाता है। इस विधिसे अशुद्धियाँ विलीन हो जाती हैं और पीछे बची हुई रिसिनीन एल्कौहल या जलमें स्फटिक बना ली जाती है। स्फटिक छोटे-छोटे टुकड़ोंमें और चमकदार होते हैं। यह १९४° पर पिघल जाता है स्वाद कड़वा होता है। जल, क्लोरोफौर्म, एल्कौहल, बेन्जीन और ईथरमें शीघ्रतासे विलेय है। जलीय घोल उदासीन होता है। सावधानीसे गरम करनेपर रिसिनीन ऊर्ध्व पातित की जा सकती है। सान्द्र गन्धकाम्लमें विलेय है। घोल नीरंग बनता है जो गरम करनेसे तृण पीत और फिर चमकीला क्लैरेट सदृश लाल हो जाता है। पोटाशियम डाइक्रोमेटके स्फटिकके साथ नीरंग गन्धकाम्लका घोल चमकीला हरा रंग देता है। यह रिसिनीनकी परीक्षा कही जाती है।

प्रभाव

बादाम तेल और जैतून तेलकी तरह यह मृदु और अक्षोभक है। त्वचापर मलनेसे अथवा शिरा या गुदामें डालनेसे यह रेचन करता है। छातीपर लगानेसे कहते हैं दूध स्रावमें वृद्धि करता है परन्तु इसके लिये एरण्ड पत्रोंकी पुल्टिस अधिक प्रभावकारी है।

आमाशयपर इसका स्थानिक कार्य वहीं है जो त्वचा पर। इसका स्वाद अप्रिय मालूम होता है। ग्रहणीमें होनेवाले साबुनीकरण (सैपोनिफ़िकेशन) के परिणाम स्वरूप बननेवाले क्षारीय रिसिनोलिएटके कार्यके कारण जी मचलाना, तिलमिलाहट और वमन आदि लक्षण कभी-कभी इसके अन्तः प्रयोगमें होते हैं आन्त्रीय ग्रन्थियों और आन्त्र गतिको यह कोमलतासे उत्तेजित करता है और वेदना रहित, गतिवान्, निश्चित और उत्तम मृदु विरेचक है। चारसे छै घन्टेके बीचमें कार्य करता है। प्रवाहण संख्यामें दोसे चार होते हैं। मल मुलायम या अर्द्धद्रव होता है परन्तु जलीय नहीं होता। अन्तिम प्रवाहणोंके साथ तेल बाहर निकल जाता है और कभी-कभी मरोड़े भी पैदा करता है।

बीजोंका विष प्रभाव—बीजोंकी अंकुरोत्पत्तिके समय रिसिनीन अधिक परिमाणमें होता है। इसलिये इस समय ये अधिक विषैले होते हैं। रिसीनमें क्रियाशील विषैले पदार्थ दो हैं—एक जमालगोटे (जैट्रोफ़ा कुर्कास) में पाया जानेवाला कुर्सीन और दूसरा रत्तीमें होनेवाले एब्रीन।

बीजोंके खाये जानेसे मृत्यु हो जानेका कारण यह रिसीन पदार्थ है। इसका कार्य रक्तको जमा देना है। एक बीज खानेका परिणाम भी गम्भीर हो सकता है। कइयोंका ख़्याल है कि चार बीज मौत ला देनेमें पर्याप्त हैं। रिसीनकी क्रियाशील उबलते पानीके तापमानपर नष्ट हो जाती है। तैल निष्पीडनके ग्राम्य तरीकोंमें बीजोंको पहले अच्छी तरह भूननेमें जहां तेल अधिक परिमाणमें प्राप्त करनेका उद्देश्य होता है वहां सम्भवतः इस बातका भी ख़्याल होता है कि रिसीनके विषैले प्रभाव होनेका अवसर बहुत हद तक कम कर दिया जाय। अच्छी तरह भूने हुये बीज विरेचनके लिये बिना किसी घातक परिणामकी आशङ्काके खाये जा सकते हैं। पुराने लोग तीस बीजोंकी मात्राका जिक्र करते हैं परन्तु इससे बहुत गम्भीर परिणाम हो सकते हैं। एक बारमें केवल छै या सात बीज बहुत देख

भालके बाद दिये जाने चाहिए। कहते हैं, बीजोंका अन्तः प्रयोगमें असर उनसे निकलने वाले आनुपातिक तेलकी अपेक्षा कहीं अधिक होता है। बिना भूने हुये बीज आमाशय और ओठोंमें क्षोभ पैदा करके वमन और विरेचन प्रारम्भकर देते हैं और वमन तथा अतिसार शीघ्र ही उग्र हैजेका रूप धारण कर लेते हैं।

अन्तः प्रयोगमें विरेचनके लिये दिये गये तेलका कुछ अंश निस्सन्देह जज़्ब हो जाता है और जब स्तन ग्रन्थियोंसे बाहर निकाला जाता है तो स्तनपायीब च्चोंको जुलाव ला सकता है। कई रोगी इसके उपयोगके आदी हो जाते हैं। स्थिर मलबन्धमें यह अनुपयोगी होता है।

योग

एरंड तैल घोल (मिस्चुरा ओली रिसिनी)—एक औंसमें तीन ड्राम।

मात्रा—एकसे दो औंस।

कैस्टर औयल कैप्स्यूल्स—लचकीले कैपस्यूल्समें प्रत्येकमें तीससे साठ बूंद होता है।

एरण्ड तैल वस्ति (एनिमा ओली रिसिनी)—एरंड तेल दो औंस, निशास्तेका लेस एक पाइण्ट।

मात्रा और सेवन विधि

एक युवा व्यक्तिको अनुलोमनके लिये तीस बूंदोंकी न्यूनतम मात्रासे आठ औंस तक अधिकतम मात्रा देनेकी जरूरत पड़ती है। सामान्यतया युवाओंके लिये एक बार चारसे छः ड्रामकी मात्रा दी जाती है। बच्चे कभी-कभी बड़ी मात्राएं बर्दाश्त कर लेते हैं। नव जात शिशुके लिए एक छोटा चायका चम्मच भर बड़ी मात्रा नहीं है। शीत निष्पीड़नसे निकाला हुआ तेल लगभग स्वाद रहित होता है और कौड लिवर औयलकी तरह दिया जा सकता है। तेलकी अरुचिकर गन्ध, चिकनापन और खराब-सा स्वाद बबूल निर्यासके लेस या अण्डेकी ज़र्दीके साथ घोल (इम्लशन) बनानेसे या कैप्स्यूल्समें देनेसे हटाया जा सकता है। सरदियोंमें पिलानेसे पहले तेलको ज़रूर गरम कर लेना चाहिये। गरम कोफ़ी या दूधके ऊपर तैरता हुआ तेल लिया जाय या तेलकी एक मात्रा लिये जानेके दो घण्टे बाद एक चायका प्याला गरम पानी लिया जाय तो प्रायः इसके कार्यमें सहायता मिलती है। भोजन इसके कार्यको रोकता है या मन्द कर देता है। कहते हैं, तारपीनके तेल (टर्पेण्टाइन औयल) की कुछ बूंदें इसमें मिला देनेसे इसका विरेचक प्रभाव बढ़ जाता है।

सामान्य उपयोग

भारतमें यह अत्यन्त प्राचीन कालसे जलाया जा रहा है। कुछ सालों पहले आजकलकी अपेक्षा कहीं अधिक जलाया जाता था। भारतमें सबसे अच्छा लैम्प तेल यही ज्ञात है। विश्वास किया जाता है कि यह अन्य वानस्पतिक और खनिज तैलोंकी अपेक्षा अधिक शीतल तथा अधिक स्वच्छ प्रकाश देता है और अधिक स्थिरतासे जलता है। एरंड तेल अत्युत्तम सफ़ेद प्रकाश देता है जो मिट्टीका तेल, सरसों, अलसी और सब प्रकारके दूसरे तेलोंकी तुलनामें चाहे वे वानस्पतिक, प्राणिज या खनिज हों कहीं बढ़िया है। जिस धीमी चालसे तेल जलता है वह इसके ख़र्चमें भी काफ़ी असर डालता है। एक चौथाईसे आधे तक बचत हो जाती है लैम्पके तेलके रूपमें इसका ख़तरेसे रहित होना एक और ख़ूबी है। लेम्पके तेलोंमें सम्भवतः सबसे सस्ता पड़ता है।

खालों और सब प्रकारके चमड़ोंके सामानको सुरक्षित रखनेके लिये एरंड तेल प्रयुक्त किया जाता है इसका यह गुण देरसे ज्ञात है। यह चूहों और दूसरे चमड़ेके शत्रुओंको दूर रखता है और उनकी पौलिशको ख़राब नहीं करता। कई रंगोंको तय्यार करनेमें भारतीय रंगसाज़ एरंड तेलको सहायक पदार्थके रूपमें इस्तेमाल करते हैं। कपड़ेकी छपाई करनेवाले भी इसका उपयोग करते हैं।

सब प्रकारकी मशीनों, छोटी बड़ी घड़ियोंमें गतिके लिये दिया जाता है। सब प्रकारके साबुन और सुगन्धित तेलोंके बनानेमें यह सस्ता और सर्वोत्तम तेल है। इसके लाभदायक प्रभाव इसके लेपक गुणके कारण हैं। यह सिरको ठंडा रखता है। त्वचाके छिद्रों और बालोंकी जड़ोंको मुलायम और खुला हुआ रखता है।

तेल निकालनेके बाद बची हुई खली जलानेके काम आती है। भारतमें कई स्थानोंपर जहाँ कोयला कम होता

है इससे एक प्रकारकी गैस बनाई जाती है जो ठीक कोल गैसकी तरह काम देती है और कुछ अंशोंमें उससे बढ़िया ही है।

खलीमें नोषजन पर्याप्त होती है। खादके लिए इसकी बहुत मांग है। विशेष कर आलू, गेहूँ और गन्नेके लिए। किये गये परीक्षणोंसे मालूम होता है कि एरंडकी खली देनेसे पैदावारमें फ़र्क पड़ जाता है। इसमें तेलका अंश होनेसे यह धीरे-धीरे विश्लिष्ट होती है और बढ़ती हुई फ़सलको उपयुक्त भोजन देती रहती है।

कइयोंका ख़याल है कि जानवरोंको खली खिलानेसे दूध बढ़ जाता है परन्तु युरोपियन पशु पालकोंके मतमें यह पशुओंके लिये हानिकारक है। कहते हैं कि यदि खली डेढ़ घंटे तक ११५° शतांशके तापमानपर गरम की जाय तो यह हानिरहित हो जाती है—सम्भवतः बीजोंके हानिकर पदार्थ रिसीनके गरमीमें नष्ट हो जानेसे। यह खली सूअरोंको सफलता पूर्वक खिलाई गई हो।

आसाममें एरंड रेशमके कीड़ोंको खिलाया जाता है। शाखाओं और छालसे काग़ज़ बनाया जाता है।

गौएं पत्तोंको शौकसे खाती हैं। मद्रासमें ख़याल किया जाता है कि इससे उनका दूध बढ़ जाता है। पत्तोंके साथ छोटी-छोटी शाखायें भी पशु खा जाते हैं। भैंसोंको पत्ते खिलाये जाते हैं। दूध बढ़ानेके उद्देश्यसे पत्तोंका रस भी पिलाया जाता है।

सूखे हुये पौदे और बीजोंके निष्पीड़नके बाद बची हुई खली गन्नेके रससे गुड़ बनानेमें। ईंधनके रूपमें बहुत इस्तेमाल होती है। मैसूर और भारतके अन्य भागोंमें एक ख़ास प्रकारका ईंधन बनाया जाता है जिमें एरंडकी खली एक निश्चित अनुपातमें गोबरके साथ मिला कर सुखा ली जाती है।

भारतकी निर्बलतम लकड़ियोंमें एरंडकी लकड़ी है। एक मामूलीसी आंधी शाखाओंको मज़ेमें तोड़ डालती है। परन्तु काटनेपर यह सूखकर सख्त हो जाती है और तब इसमें कुछ शक्ति आ जाती है। इस अवस्थामें झोंपड़ियों-की छतोंमें बांसोंके स्थानपर और गारेकी झोंपड़ियोंकी दीवारोंमें डालनेमें बहुत प्रयुक्त होती है। इस प्रयोजनके लिए इसके व्यवहारमें मुख्य अच्छाई यह कही जाती है कि किसी भी खेती की जानेवाली फ़सलकी अपेक्षा यह लकड़ी दीमकों और दूसरे कीड़ोंके आक्रमणसे अधिक सुरक्षित रहती है। परन्तु आम तौरपर देखा गया है कि हरे पौधेमें प्रायः किसी भी खेती की जानेवाली फ़सलकी अपेक्षा दीमकें बहुत जल्दी लग जाती हैं। तनोंके अन्दरका सम्पूर्ण भाग प्रायः ये नष्ट कर देती हैं और अक्सर यह इनके आवृत्त मार्गको बनानेमें लगी हुई मिट्टीसे भरा होता है।

मधुमक्खियां एरंडकी शौकीन कही जाती हैं। भारतमें यदि मधुमक्खी पालन व्यवसायका प्रचार हो तो उसके लिये एरंडकी खेती सहायक हो सकती है। मधुमक्खियोंके शुद्ध शहद और मोमकी जहाँ बड़े परिमाणमें प्रगति होगी वहां एरंडके बीजोंका उपयोग तेल बनानेमें किया जा सकेगा।

चिकित्सा सम्बन्धी उपयोग

यह एक निरापद सुरक्षित क्रियाशील विरेचक औषधि है और प्रत्येक आयके सब प्रकारके स्वभाववाले व्यक्तियों-को बिना झिझक दी जा सकती है। बिना किसी प्रकारका क्षोभ और गरमी उत्पन्न किये यह निश्चित रूपसे कार्य करती है। गर्भावस्थामें और प्रसवके बादकी अवस्थामें स्त्रियोंके लिये, अर्श, भगन्दरसे ग्रस्त व्यक्तियोंके लिये, नाज़ुक स्त्रियों, बच्चों, बूढ़ों और कमज़ोरोंके लिये सुरक्षित-तम और सर्वोत्तम विरेचक है। पेट सम्बन्धी शल्यकर्मोंमें, वस्तिगह्वर (पेल्विक) रोगोंमें, पयविण शोथमें, ज्वरोंमें, विशेषकर आन्त्रज्वरकी मलबन्धमें और सेण्टोनीनकी एक मात्रासे पूर्व या पश्चात् एरंडतेलका विरेचनके लिये उप-योग सुरक्षिततम है। नवजात शिशुओंको तीन सप्ताह लगातार प्रति दिन थोड़ी थोड़ी मात्राओंमें दिया जाता है। अधोभागहर सशमनके रूपमें सुश्रुतने एरंडका उल्लेख किया है (सूत्रस्थान ३९-४)। फूल भी प्रायः कर अनु-लोमक औषधिके रूपमें प्रयुक्त होते हैं। मूलत्वक्में भी विरेचक गुण समझा जाता है। लाल मिरच और तम्बाकू-के पत्तोंके साथ इसको पीसकर निम्बुके बराबर मोदक बना लेते हैं, घोड़ोंकी कोष्ठ बद्धताके लिये यह अत्युत्तम दवा है।

अपाच्य या अपच भोजनसे उत्पन्न शिशुओंके तथा दूसरोंके अतिसारमें एरंड तेलकी एक मात्रा देनेसे ही लाभ

होता है। इसमें अहिफेन मद्यासव (टिंक्चर ओपिआई) मिलाया जा सकता है। उदररोगोंमें स्नेह पानके बाद एरंड सिद्ध दूधसे विरेचन देना चाहिये। संजात बल कायाग्नि पुनः स्निग्धं विरेचयेत। पयसा सत्रिवृत्कल्केनोरुवूक गृतेन वा॥ चरक, चिकित्सित स्थान, १८–६८)। उपावर्तमें दूध मांस रस, त्रिफला रस, मूत्र, मदिरा आदिके साथ तेल दिया जाता है (पयसा मांसरसैर्वा त्रिफल रस पूष मूत्रमदिरादिभिः। दोषानुबन्ध योगात्प्रशस्तमैरण्डजं तैलम्॥ चरक, चि० २६–२७)। शूल निवारणके लिये सोंठ और एरंड मूलके जलीय कषायमें हींग तथा सौवर्चल नमक डाल कर पीनेसे शीघ्र आराम होता है (विश्व मेरंडजं मूलं क्राथ पित्वा जलं पिवेत्। हिङ्गु सौवर्चलोपेतं सद्यः शूल निवारणम्॥ भाव प्रकाश, मध्यम खण्ड, चिकित्सा प्रकरण, शूलाधिकार, श्लोक ३६) वारुणी और मांडमें एरंड तेल मिला कर गुल्ममें दिया जाता है और वात गुल्ममें तेलको दूधमें डाल कर पीते हैं (पिवदेरंडकं तैलं वारुणीमंड मिश्रितं तदेव तैलं पयसा वात गुल्मी पिवेन्नरः॥ चरक, चि० ५–८६)। बड़ी आंतों और गुदाके भ्रंशमें तेल एनिमाके रूपमें सफलता के साथ दिया जाता है।

तीव्र प्रवाहिकाकी यह अत्युत्तम औषधि है। रोग-आरम्भमें ही दी जानी चाहिये और अहिफेन मिला कर दी जाय तो मरोड़े भी शीघ्र ही बन्द हो जाते हैं। एरंड तेल दो से चार ड्राम और अहिफेन मद्यासव दससे बीस बूंदकी मात्रामें दिया जाना चाहिये। इसी तरह छोटी मात्राओंमें पुरातन प्रवाहिकामें भी लाभ करता है। इसके लिये एरंड तेलकी पन्द्रहसे बीस बूंद अहिफेन मद्यासवकी पांचसे दस बूंदोंके साथ जलीय घोल (इमल्शन) बनाकर दिया जाता है। एरंड मूलको दूधमें पका कर प्रवाहिकामें पिलाया जाय तो प्रवाहणोंमें रक्त आना बन्द हो जाता है (मूतमेरंड मूलेन......... पयः। एवं क्षीर प्रयोगेण रक्तं पिच्छाव शाम्यति॥ चरक, चि० १०–५१)।

अर्शमें एरड, आक, विल्व और बांसेके पत्तोंके क्राथसे सेक किया जाता है (वृषार्कैरंड विल्वानां पत्रोत्क्राथैश्च सेचयेत्॥ चरक, चि० ६–४४)। अपतानकमें एरण्ड तेलसे सेक करना चाहिये (उरुवूक तैलं......अपतानिकानां परिषेकादिषु उपयोज्यम् सुश्रुत, चि० ५-१८)।

पत्ते वेदनायुक्त सन्धियों पर लगाये जाते हैं। पुरातन आपवातिक विकारोंमें तेल बहुत प्रभावकारी समझा जाता है और विभिन्न शास्त्रीय योगोंमें प्रयुक्त होता है। एरण्ड मूल भी अनेक आमवातिक विकारों और वात-संस्थानके रोगोंमें कई योगोंमें दी जाती है। वृष्य और वातघ्न औषधियोंमें एरण्डकी मूल उत्तम मानी जाती है। (एरण्ड मूलं वृष्य वातहराणाम्। चरक सूत्र स्थान, २४–३३)। अंगमर्द, प्रशमन, स्वेदोपग और भेदनीय वर्गोंकी दस दस औषधियोंके प्रत्येक वर्ग में चरक ने एरण्ड गिनाया है। पुरातन सन्धिक आमवातमें बाह्य उपयोगमें एरण्ड तेल वेदनाको दूर करता है और काठिन्यको हटाता है। एरण्डका वातारि (वात नाशक) नाम इसके इस गुणकी ओर संकेत करता है। भावप्रकाशका विश्वास है कि आमवात जैसे बड़े रोगको नष्ट करनेमें एरण्ड तेल अकेला ही पर्याप्त है (आमवात गजेन्द्रस्य शरीर वनचारिणः। एक एव निहन्ताऽऽशु एरण्ड तैल केशरी॥ भावप्रकाश, मध्यम खण्ड, चिकित्सा प्रकरण, आमवाताधिकार, श्लोक ५०)। कटिशूल गृध्रसी, पक्षाघात आदि स्थानिक आमवातिक विकारोंमें यह औषधि पुरातन संस्कृत साहित्यमें बहुत लाभप्रद समझी गई है। छिलके उतारे हुये एरण्डके बीजोंको पीसकर दूधमें पका लें, इस दूधका पानी कटिशूल और गृध्रसीकी परम औषधि है (निष्कुल्यैरण्डबीजानि पिष्ट्वा क्षीरे विपाचयेत्। तत्पानन्तु कटिशूले गृध्रस्याम् परमौषधम्॥ भावप्रकाश, मध्यम खण्ड, चिकित्सा प्रकरण, वातव्याध्यधिकार, श्लोक १३७)। गोमूत्रके साथ एक मास तक प्रातः एरण्ड तेलका पीना गृध्रसी और उरुग्रहको दूर करता है (तैलं मैरण्डजं प्रातर्गोमूत्रेण पिवेन्नरः। मासमेकं प्रयोगोऽयं गृध्रस्यूरुग्रहापहः॥ भावप्रकाश, मध्यम खण्ड, चिकित्सा प्रकरण, वातव्याध्यधिकार, श्लोक १३५)। एरण्ड तेलके साथ हरड़को विधिवत् सेवन करनेसे आमवात, गृध्रसी, वृद्धि, अर्दित दूर होते हैं (एरण्ड तेल युक्तां हरीतकी भक्षयेन्नरो विधिवत् आमानिलार्तियुक्तो गृध्रसी वृद्धपदितो नियतम्॥ भाव

प्रकाश, मध्यम खण्ड, चिकित्सा प्रकरण, आमवाताधिकार, श्लोक ५१)। गठिया तथा आमवात जन्य शोथ और पयस्विनी स्त्रियोंकी छातीकी शोथको कम करनेके लिये बीजोंको कुचल कर बनाई हुई पुल्टिस लगाई जाती है। पत्तोंका उपयोग भी यही गुण करता है. पर थोड़े अंशमें। घावों और चोटोंको साफ करनेके लिये रसका उपयोग होता है।

स्त्रियोंके दुग्ध स्रावको रोकनेके लिये पत्तोंको पीसकर छाती पर लेप किया जाता है. तीन दिनमें दूध आना बन्द हो जाता है। कई लेखकोंका इसके विपरीत विचार है कि पत्तोंको गरम करके छाती पर लगाया जाय और बारह घंटे या अधिक देर तक रखा जाय तो प्रसवके बाद दूध लानेमें ये असफल नहीं होते। इसी तरह पेट पर लगानेसे रजःस्रावको बढ़ाते हैं। यद्यपि अनेक लेखकोंका ख्याल यही है कि छाती पर लगाई गई पत्तोंकी पुल्टिस दुग्धस्राव बन्द कर देती है।

एरण्ड मूलमें ज्वरहर गुण होनेसे इसका दूधमें कषाय बनाकर ज्वरोंमें पिलाया जाता है। पेटकी दर्द या ऐंठनको भी यह कषाय आराम करता है (एरण्डमूलोत्क्वथित ज्वरात् सपरिकर्तिकात् । पयो विमुच्यते पीत्वा·········॥ चरक चिकित्सित स्थान, अध्याय ३, श्लोक २३५)।

कासमें एरंडके पत्तोंका और त्रिकटुके तेलके साथ सेवन करना चाहिये (एरंड पत्रक्षारं वा व्योषतैलं गुणान्वितम् । लिह्यात् एतेन विधिना······॥ चरक, चि० २२—१६५)। मुसलमान लेखक तेलको पक्षाघात दमा, प्रतिश्याम, आन्त्रशूल, अफारा, आमवात, श्वमशु और नष्टार्तवमें देते हैं। वे दस बीज पीसकर मधुके साथ चटानेसे विरेचनके लिये पर्याप्त समझते हैं। अफीम और दूसरी नशीली चीजोंके विष प्रभावको कम करनेके लिये ताज़ा रस वामकके रूपमें इस्तेमाल होता है।

बढ़ी हुई चर्बीके नाशके लिये एरंड पत्रसार और हींग मांडके साथ पी जाती है (क्षारं वा वातारिपत्रस्य हिङ्गुयुक्तं पिवेन्नरः। मेदोवृद्धि विनाशाय भक्तं मंडसमन्वितम् ॥ भाव प्रकाश, मध्यम खण्ड, चिकित्सा प्रकरण, स्थौल्याधिकार, श्लोक २१)। शहदमें भिगोकर एरंड मूलको रात भर रक्खा रहनेके बाद उसका पानी पीनेसे मुटापा छंटता है, पेट बढ़ता नहीं (यद्वोरुबूकमूलं मधुदिग्धं स्थाप्यते निशां सकलाम् । तस्य सलिलस्य पानाज्जठरे वृद्धिः शमंयाति ॥ भाव प्रकाश, मध्यम खंड, चिकित्सा प्रकरण, स्थौल्याधिकार, श्लोक २५)। दूधमें एरंड तेल डालकर एक मास तक अनावश्यक वृद्धिको दूर करनेके लिये दिया जाता है (सक्षीरं वा पिवेन्मासं तैलमेरंडसम्भवम् । सुश्रुत, चि० ११—६)। वात श्वपथुमें महीना या आधा महीना तक गोमूत्रके साथ एरंड तेल पिलायें (······पायपेच्चतम् । मासमेरंडजं तैलं गोमूत्रेण समन्वितम् ॥ वाग्भट्ट ३. ३०—६)।

आंखमें कोई वाह्य पदार्थ गिर पड़नेपर अक्षि पटल पर रगड़ लग गई हो और क्षोभ हो तो एरण्ड तेलकी एक बूंद अक्षि-पटल पर डालनेसे क्षोभ दूर हो जाता है। नेत्र विकारोंमें एरंड पत्र और मूल अनेक प्रकारसे प्रयुक्त होते हैं। पौदेकी छाल, पत्ते और मूलका बकरीके दूध और पानीमें बनाया कषाय नवीन अक्षि शोथमें लाभकारी होता है। एरंड पल्लवे मूले त्वचि भाजं पयः सृतम् ।·········
······सुखोष्णं सेचने हितम् ॥ (चक्रदत्त)। वाताभिष्यन्दमें भी इस कषायसे सेक करनेसे लाभ होता है। (सुश्रुत, उ ६—११)। आंखके शोथ सम्बन्धी रोगोंमें जौके आटेके साथ पुल्टिस बना कर बीज लगाये जाते हैं।

कर्ण बाधिर्यमें तेल कानमें डाला जाता है। त्वचाके अनेक रोगोंमें यह उपयोगी औषधि समझी जाती है। वातरक्तमें शूल हटानेके लिये एरंडके बीजोंको दूधके साथ पीस कर लेप करते हैं (क्षीरापिष्टं......एरंडस्य फलानि । कुर्याच्छूलनिवृत्यर्थं......॥ चरक, चि २६—७६)। पुरातन वृद्धियों और त्वग्ररोगोंमें मूलत्वक् विरेचन और रसायनके रूपमें इस्तेमाल होती है और बाहर भी लगाई जाती है। रक्तकी उष्णताके कारण उत्पन्न हुए समझे जानेवाले त्वचाके धब्बोंपर कोंकणमें तेल लगाया जाता है। मैसूरमें ऐसे रोगोंमें जिनमें समझा जाता है कि ऊष्मा अधिक हो गई है तेल सिरपर मला जाता है। बहुतसे केश तैलों और पोमेड्समें तेल आधारीय द्रव्य रूपमें प्रयुक्त होता है।

चीनी चिकित्सामें अनेक बीमारियोंमें कुचले हुए बीज

[शेष पृ० २६ पर]

गत दस वर्षोंमें फ़ोटोग्राफ़ीकी प्रगति

[ले०—डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी०]

इधर दस वर्षोंमें फोटोग्राफीमें काफी अंतर पड़ गया है। सबसे अधिक परिवर्तन है फ़िल्मोंका प्रचार और छोटी नापोंका अधिकाधिक प्रयोग। प्लेटोंकी खपत अब बहुत कम हो गई है और शौकीन फोटोग्राफरोंमें तो इसका इस्तेमाल बहुत कुछ बन्द हो गया है। दस वर्ष पहले कार्टर प्लेटोंका बहुत उपयोग होता था। अब ३¼″ × २¼″ के नापके फ़िल्म ही अधिक इस्तेमाल होते हैं। ऐसे भी कैमरे बनते है जिसमें वेस्ट पाकेट साइज़के आधे नापके चित्र उतरते हैं। ऐसे कैमरोंमें वेस्ट पाकेट नापके ही फ़िल्म लगते हैं परन्तु उसपर आठके बदले १६ चित्र उतरते हैं. सिनेमा फ़िल्म भी, जिसकी चौड़ाई ३५ मिलीमीटर होती है, कुछ कैमरोंमें लगते हैं इनपर १″ × १½″ नापके चित्र उतरते हैं। ऐसे कैमरे भी खूब चल निकले हैं। एक ओर तो चित्रोंकी नाप छोटी होती जा रही है दूसरी ओर एनलार्जमेंट बनानेके यंत्रका अधिकाधिक उपयोग हो रहा है, विशेषकर ऐसे यंत्र जिनमें कागज़ पड़ा लगाया जाता है और जिसमें फ़ोकस अपने आप हो जाता है।

साथ ही फ़िल्म और डेवेलपर ऐसे बनाये जा रहे हैं कि एनलार्ज करनेपर चित्रोंकी तीक्ष्णता कम न होने पावे और चित्र दानेदार न दिखलाई पड़े। लेंज़ भी पहलेसे अधिक तेज़ बनाये जा रहे हैं और इस प्रकार छोटे नाप वाले कैमरोंमें कई एक सुविधायें रहती हैं जो बड़े कैमरोंमें नहीं रहतीं। एक तो छोटे नापके कारण फ़िल्मका खर्च कम बैठता है; दूसरे; छोटा रहनेके कारण कैमरा सदा पास रक्खा जा सकता है। तीसरे, इसमें बहुत तेज़ लेंज़ लगाये जा सकते हैं (फ़ १·५ तकके)। इतने तेज़ लेंज़ बड़े नापके कैमरोंके लिये बन ही नहीं सकते। चौथे, कम फ़ोकल लम्बाई होनेके कारण फ़ोकसकी गहराई इन कैमरोंमें अधिक होती है, अर्थात् पास और दूरकी वस्तुयें एक साथ ही फ़ोकसमें आ जाती है।

आधुनिक कैमरा

आधुनिक कैमरेमें समय बचानेकी ओर विशेष ध्यान दिया जाता है। बहुत कम स्थानमें इसमें इतने कल पुर्जे यों रहते हैं कि इससे प्रायः सभी तरहका काम हो सकता है। अच्छे मेलके आधुनिक कैमरे उसी सचाईसे बनाये जाते हैं जिस सचाईसे घड़ियाँ या सूक्ष्म दर्शक यंत्र बनते हैं और इनसे जो चित्र बनते हैं—चाहे लेंजका छेद खूब बड़ा भी हो चित्र सर्वत्र अत्यंत तीक्ष्ण होते हैं। इन कैमरोंको चार जातियोंमें विभाजित किया जा सकता है।

१—मिनियेचर कैमरे (अति सूक्ष्म कैमरा)—इनमें ३५ मिलीमीटर चौड़ा अर्थात् सिनेमावाला फ़िल्म लगता है। चित्र जैसा ऊपर बतलाया गया है १″ × १½″ नापका उतरता है। दृश्य बोधक (व्यू फ़ाइंडर) बिना दर्पणवाला होता है और आँखसे सटाकर प्रकाश दर्शन (एक्सपोज़र) दिया जाता है। साधारणतया रेंज फ़ाइन्डर दूरी-मापक भी लगा रहता है जिससे विषयकी दूरी ठीक-ठीक नापी जा सकती है और इस प्रकार फ़ोकस बिलकुल सच्चा किया जा सकता है। इन कैमरोंमें तेज़-से-तेज़ लेंज़ लग सकते हैं। एक रोल फ़िल्मपर ३६ चित्र उतरते हैं।

२—छोटे पाकेट रोल फ़िल्म कैमरे—ये साधारण रोल फ़िल्म कैमरोंकी तरह होते हैं परन्तु इनमें १२ या १६ चित्र उतरते हैं जिनको नाप १⅝″ × २⅜″ या २¼″ × २¼″ होती है। इनमें भी दर्पणरहित दृश्यबोधक होता है। अच्छे

कैमरोंमें रेंज़-फ़ाइंडर (दूरी-मापक) भी लगा रहता; है कैमरेमें २० या २७ नम्बरका रोल फ़िल्म लगा रहता है।

३—दो लेंज वाले रिफ़्लेक्स कैमरे—इनमें सबसे लोक, प्रिय नाप वह है जिसमें २० नम्बरका रोल फ़िल्म लगता है और २¼″ × २¼″ नापका चित्र उतरता है। कैमरेको कमरके पास रखकर चित्र लिया जाता है। परन्तु अक्सर एक दर्पणरहित दृश्यबोधक भी लगा रहता है। दो लेंजोंमेंसे एक तो फ़ोटो लेनेके लिये होता है और दूसरा फ़ोकस पर्देपर दर्पणकी सहायतासे चित्र बनाता है। ऐसे कैमरेमें दूरी-मापककी कोई आवश्यकता नहीं रहती क्योंकि फ़ोकस पर्देकी सहायतासे फ़ोकस ठीक किया जा सकता है। वे लोग इसे अधिक पसन्द करते हैं जो चित्रको बिना एनलार्ज किये ऐल्बममें रखना चाहते हैं। ऐसा कमरा साधारणतया इतना बड़ा होता है कि इसे पाकेटमें रखनेमें सुविधा नहीं होती।

४—छोटे रिफ़्लेक्स कैमरे जिनका दर्पण प्रकाशदर्शन देते समय उठ जाता है—इनमें दो लेंज़वाले रिफ़्लेक्सोंकी तरह सब सुविधाके ऊपरसे यह भी सुविधा रहती है कि फ़ोटोग्राफर चाहे कोई भी लेंज़ लगा सकता है, बहुत पास की वस्तुओंका भी फ़ोटो खींचा जा सकता है और ऐसे कैमरे तौलमें भी हलके होते हैं। इस तरहके कैमरे छोटे-बड़े सभी नापके मिलते हैं।

कुछ नवीन उन्नतियाँ

बहुतसे कैमरोंमें अब लाल खिड़की द्वारा फ़िल्मपर छपे नम्बरोंको देखनेकी आवश्यकता नहीं रहती। उनके बाहर चित्र गिननेके लिये एक सुई लगी रहती है जिसका संबन्ध फ़िल्मसे रहता है। जितनी देरमें फ़िल्म एक चित्रके बराबर चलता है उतनी देरमें सुई एक नबंरसे दूसरे नंबर पर हो जाती है। बाज़ कैमरोंमें फ़िल्म चलानेवाले पुर्ज़े और शटरमें इस प्रकारका संबंध रहता है कि फ़िल्मपर दुबारा प्रकाशदर्शन दिया ही नहीं जा सकता। लाइका कैमरामें जब फ़िल्म आगे खसकानेके लिये चाबी ऐंठी जाती है तो शटर भी प्रकाशदर्शन देनेके लिये तैयार हो जाता है। यदि इस चाबीको न ऐंठा जाय तो प्रकाशदर्शन दिया ही नहीं जा सकता और इस लिये कभी भी ऐसी भूल नहीं हो सकती कि फ़िल्मके एक ही भागपर दोबार प्रकाशदर्शन दिया जाय। कुछ अन्य कैमरोंमें ऐसा उपाय लगा रहता है कि प्रकाशदर्शनके देनेके बाद घोड़ा दबा ही रह जाता है और यह तभी छूटता है जब फ़िल्म घुमानेकी चाबी ऐंठी जाती है।

ऊपर कहा गया है कि कुछ कैमरोंमें चित्रको गिननेके लिये बाहर एक सुई लगी रहती है। इस जातिके कुछ कैमरोंमें ऐसा भी प्रबंध रहता है कि सवा दो इंच चौड़े फ़िल्मपर इच्छानुसार १२ या १६ चित्र लिये जा सकते हैं। अब बहुतसे कैमरोंमें, जिनमें चित्र गिननेके लिये बाहर सुई नहीं भी रहती और जो साधारणतया २¼″ × ३¼″ नापके चित्र खींचते हैं, ऐसा एक धातु-पत्रका मास्क भी लगाया जा हकता है जिससे उसी फ़िल्मपर आधे नापके १६ चित्र खींचे जा सकते हैं। इसके लिये कैमरेकी पीठमें दो छेद रहते हैं और प्रत्येक नम्बरको पहले एक छेदमें, फिर दूसरेमें लाया जाता है।

नम्बर देखनेके लिये यदि कोई छेद कैमरेकी पीठमें रहता है तो उसके द्वारा कुछ-न-कुछ लाल प्रकाश भीतर पहुँच ही जाता है। इन दिनों पैनक्रोमैटिक फ़िल्मोंका अधिक प्रयोग होता है ऐसे फ़िल्मलाल प्रकाशसे भी खराब हो जाते हैं। इस लिये नम्बर देखनेवाली खिड़की पर कोई ढक्कन लगा रहता है जिसको साधारणतया बंद रक्खा जाता है।

दर्पण लगे छोटे दृश्यबोधकका भी अब लोप हुआ जा रहा है। इन छोटे दृश्यबोधकोंमें ठीक ठीक पता नहीं लगता कि फ़ोटोमें कितना दृश्य आयगा। अब ऐसे दृश्यबोधकोंका उपयोग जिनमें सीधे देखा जाता है अधिक होता है।

शटरके घोड़े भी लेंज़के पाससे हटाकर कैमरेकी पेंदी या उदर पर ला दिये गये हैं। स्पष्ट है कि लेंज़पर लगे हुये घोड़े को दबानेमें लेंज़ या कैमरेके हिल जानेकी अधिक संभावना रहती है। पेंदी या उदर पर लगे हुए घोड़ेके दबानेमें अधिक सुविधा होती है और कैमरेके हिलनेका डर कम हो जाता है। घोड़ेको इस स्थितिमें रखनेपर कुछ ऐसे तुलादंड लगे रहते है जो शटरके असली घोड़ेको दबा सकते हैं।

उन रिफ़्लेक्स कैमरोंमें जिनके शटर फ़ोकल प्लेन जाति-

के होते हैं और जिनमें दर्पण लगा रहता है एक बड़ा सुभीता यह होता है कि उनमें इच्छानुसार कोई भी लेंज़ लगाया जा सकता है। कुछ कैमरोंके साथ छः-सात लेंज़ ख़रीदे जा सकते हैं और एकके बदले दूसरा लेंज़ दो चार सेकंडमें लगाया जा सकता है। इस प्रकार फ़ोटोग्राफर आवश्यकता या इच्छानुसार वाइड-ऐँगिल लेंज़, टेली-फ़ोटो लेंज़ या न्यूनाधिक फ़ोकल लम्बाईके साधारण लेंज़ लगा सकता है और कई कठिन परिस्थितियोंमें भी पूरे नापका चित्र उतार सकता है।

एक दो कैमरे ऐसे भी बने हैं जिनके शटर और फ़िल्म सिनेमा मशीनोंकी तरह चलते हैं। इनमें एक कमानी लगी रहती है जिसमें पहले चाबी भर दी जाती है। तब शटरके घोड़ेको दबानेसे पहले फ़िल्मको प्रकाशदर्शन मिलता है और फिर फ़िल्म आप-से-आप खिसक जाता है। इस प्रकार १० सेकंडमें पूरे फ़िल्म पर एक्सपोज़र दिया जा सकता है जिससे १२ चित्र उतर आते हैं।

कैमरोंके सुविधा जनक प्रयोगमें केवल दो ही कठिनाइयाँ पड़ती हैं। एक तो विषयकी दूरी ठीक-ठीक न जान पानेसे फ़ोकस बिगड़ जा सकता है। दूसरे, प्रकाशदर्शन आवश्यकतासे अधिक अथवा कम हो सकता है। दूरीके लिये जैसा हम ऊपर बतला चुके हैं कैमरेमें या तो दूरी-मापक लगा रहता है या कैमरा रिफ़्लेक्स जातिका होता है और रिफ़्लेक्स कैमरेमें प्रवर्धक ताल भी लगा रहता है जिससे फ़ोकस पर्देका चित्र बड़े आकारका दिखलाई पड़ता है और इस प्रकार सच्चा फ़ोकस किया जा सकता है।

ठीक प्रकाशदर्शन नापनेके लिये अब वैद्युत प्रकाश-मापक लगा रहता है। इसमें सिलीनियम नामक धातु रहता है जिसपर न्यूनाधिक प्रकाश पड़नेसे न्यूनाधिक मात्रामें बिजली पैदा होती है जो एक बहुत सच्चे मापकसे नापी जाती है। इस प्रकार प्रकाशदर्शनमें अशुद्धि केवल बहुत असावधानीके कारण ही हो सकती है।

अधिक जानकारीके लिए कैमरे बनानेवालोंके कैटलागोंको सावधानीसे पढ़ना चाहिये। ऐसे कैमरे भी बनते हैं जिनमें लेंज़-छेद आपसे आप इतना छोटा या बड़ा हो जाता है कि फ़िल्मको प्रकाशदर्शन ठीक मिलता है। ऐसे कैमरेमें लेंज़ छेदको छोटा बड़ा करनेवाला घोड़ा सिलीनियम सेलमें जुता रहता है जिससे शटरके खुलते ही लेंज़ छेद आपसे आप प्रकाशके अनुसार ठीक नापका हो जाता है। कोडक कम्पनीके इस प्रकारके कैमरेमें दूरी-मापक फ़ोकस करनेवाले पेंचमें जुता है जिससे दूरी-मापककी घुंडी घुमाने पर जब वस्तु बिना टूटी हुई मालूम होती है तब फ़ोकस आपसे आप ठीक होजाता है। शटर दबानेका घोड़ा फ़िल्म ऐंठनेके बेलनमें जुता है जिससे प्रकाश दर्शन देनेके बाद फ़िल्म आप-से-आप आगे खिसक जाता है और कोरा फ़िल्म लेंसके सामने आजाता है।

छोटे कैमरे सस्ते नहीं होते क्योंकि उनको बहुत सच्चा बनाना पड़ता है और उनमें बढ़ियाँ लेंज़ लगाने पड़ते हैं जिसमें काफ़ी बड़े एनलार्जमेंट बनाने पर भी चित्र अतीक्ष्ण न हो जायँ।

छोटे कैमरोंका प्रयोग

अत्यंत छोटे कैमरेके इस्तेमालमें विशेष ध्यान देना चाहिये कि कैमरा इस प्रकार पकड़ा जाय कि प्रकाशदर्शन देते समय ज़रा हिले भी न ये। १/२५ सेकिंडसे अधिक प्रकाश दर्शन देनेके लिये कैमरेको तिपाईपर रखना चाहिये। कैमरेका भीतरी भाग पूर्णतया स्वच्छ रहे। इसके लिये फ़िल्म लगानेके पहले नर्म स्वच्छ ब्रशसे कैमरेको अक्सर साफ़ कर लेना चाहिये, नहीं तो धूलके कण फ़िल्मपर बैठते हैं और निगेटिवमें नन्हे-नन्हे बहुतसे सुई-छिद्र बन जाते हैं जो एनलार्ज करनेपर चित्रको बिलकुल चौपटकर देते हैं। फ़ोकस-की गहराईपर बराबर ध्यान रखना चाहिये। स्मरण रक्खो कि उस दूरीके लिये फ़ोकस करना चाहिये जो दूर और पास वाले वस्तुओंके गुणनफलको इन दोनों दूरियोंके जोड़के आधेसे भाग देनेसे प्राप्त होता है। इसके बाद लेंज़के छेदको इतना छोटा कर देना चाहिये कि दूर और पासवाले वस्तु दोनों फ़ोकसमें आ जायँ। उन वस्तुओंकी गणना उपरोक्त नियममें न करनी चाहिये जो दूर पर हों और प्रधान चित्रके लिये अनावश्यक हों।

नवीन लेंज़

दिनों-दिन अधिकाधिक तेज़ लेंज़ोंका प्रयोग बढ़ता जा रहा है। बहुतसे कैमरोंमें १·६ नं० का लेंज़ लगा हुआ

मिल सकता है। सिनेमा कैमरोंके लिये फ़ ०·८ नम्बरके लेंज़ मिल सकते हैं और छोटे कैमरोंके लिये फ़/१·५ तकके लेंज़ बराबर बिकते हैं। टेलीफोटो लेंज़ोंका भी प्रयोग बढ़ रहा है। पिछले राज्याभिषेकके समय एक फ़ोटोग्राफरने एक बहुत बड़ा और बहुत लम्बे फ़ोकल लंबानका टेलीफ़ोटो लेंज़ बनवाया था जिससे वह सड़कके किनारे के एक मकानसे ही महाराज अष्टम जार्जका इतना बड़ा चित्र ले सका जितना साधारण लेंज़ोंसे केवल छै-सात फुट परसे ही लिया जा सकता।

प्लेट और फ़िल्म

पहले प्लेट बहुत तेज़ बनते थे और फिल्म उतने तेज़ बन नहीं सकते थे। परन्तु अब फिल्म भी उतने ही तेज़ बनने लगे हैं जितने तेज़-से-तेज़ प्लेट। दिनों दिन फिल्मों की तेज़ी बढ़ती जा रही है। पैनक्रोमैटिक फिल्मों और प्लेटोंका प्रयोग भी बढ़ता जा रहा है। ११०० एच. डी. के फिल्म और प्लेट बराबर बाज़ारमें बिकते हैं और इनके प्रयोगमें कोई कठिनाई नहीं पड़ती। पैनक्रोमैटिक होनेके कारण ये कृत्रिम प्रकाशमें पुराने प्लेटोंकी अपेक्षा कहीं अधिक तेज़ होते हैं। आधुनिक फ़िल्ममें एक ऐसा रंग भी लगा रहता है कि उनमें हैलेशन नहीं होता। इससे चित्र ऐसे अवसरोंपर भी तीक्ष्ण आता है जब कोई काली वस्तु किसी अत्यंत चमकीली वस्तुके सामने पड़ती है। उदाहरणार्थ, पुराने बिना बैक किये हुये प्लेटोंपर पेड़ोंकी पतली टहनियाँ आकाशके सामने पड़नेपर प्रायः मिट-सी जाती थीं, परन्तु आधुनिक फिल्मों और प्लेटोंपर ये टहनियाँ खूब तीक्ष्ण उतरती हैं।

फ़िल्मपर जो रंग लगा रहता है वह डेवेलपरमें कट जाता है या ऐसिड हाइपोके घोलमें मिट जाता है। साधारण निगेटिवको खूब एनलार्ज करनेपर चित्र दानेदार हो जाते हैं (चित्र देखिये)। आधुनिक फ़ोटो जैसा ऊपर बतलाया गया है, छोटे पैमानेपर लिये जाते है, और इनको एनलार्ज करना पड़ता है। इसलिये यथासंभव इनको बारीक दानेका बनाया जाता है। प्रायः सभी कारखानेवाले एक ऐसा फिल्म अवश्य बनाते हैं जो बहुत बारीक दानेका और साथ ही काफ़ी तेज़ भी होता है। उतने ही तेज़ीके पुराने फ़िल्मों और प्लेटोंकी अपेक्षा वे बहुत बारीक दानेके होते हैं।

पहले फिल्म जितने ही तेज़ बनाये जाते थे वे उतने ही बड़े दानेके होते थे परन्तु सन् १९३१ में एक कोयलेसे निकाले नवीन रंगका पता चला जिससे मंद मसाले पैनक्रोमैटिक भी हो जाते हैं और बहुत तेज़ भी। ऐसे मसालेसे बने फिल्म और प्लेटोंके आगे साधारण फिल्म और प्लेटोंका प्रयोग मिटता जा रहा है। वर्तमान समय में सिनेमा कैमराके लिये बने फिल्म प्रायः सभी पैनक्रोमैटिक होते हैं। यूरोप और अमेरिकाके अधिकांश फोटोग्राफर और भारतवर्षके भी अच्छे फोटोग्राफर प्रतिदिन पैनक्रोमैटिक प्लेट या फिल्म ही इस्तेमाल करते हैं। ऐसे प्लेटोंके प्रयोगसे और लेंज़पर हलका लाल या नारंगी प्रकाश-छनना (फ़िल्टर) लगा देनेसे चेहरा बहुत साफ़ उतरता है। पुरानी चालके फ़िल्म अब केवल अमेचरोंके हाथ ही खपते हैं, परन्तु इस क्षेत्रमें भी उनका प्रयोग कम हुआ जा रहा है। इसमें संदेह नहीं जान पड़ता कि अंतमें सब कामोंके लिये पैनक्रोमैटिक सामानका ही प्रयोग होगा।

ये प्लेट डेवेलप करनेमें वैसे ही स्वच्छ रहते जैसे पहले वाले मंद प्लेट। धुंध (फ़ॉग) का नाम भी नहीं रहता। इन प्लेटों और फ़िल्मोंका साधारण फ़िल्मों और प्लेटोंसे अब कोई विशेष दाम अधिक नहीं रहता।

यदि निगेटिवोंको खूब एनलार्ज करना हो तो प्रकाश-दर्शन आवश्यकतासे अधिक न देना चाहिये। पतले निगेटिवोंसे ही अच्छे एनलार्जमेंट बन सकते हैं। फ़िल्मोंको डेवेलप करते समय ध्यान रखना चाहिये कि भिन्न-भिन्न घोल प्रायः एक ही ताप-क्रमके और काफ़ी ठंडे रहें। फ़िल्म को कड़ा करना हो तो उसे डेवेलप करनेके पहले ही फार्मलीनमें कड़ा कर लेना चाहिये। एक बार गर्म पानीमें पड़ जानेसे नेगेटिव फूल जाता है और उसे पीछेसे कड़ा करने में काम ठीक नहीं बनता। छोटे निगेटिवोंके फ़िल्मोंमें इस पर भी विशेष ध्यान देना चाहिये कि उनमें किसी तरहकी खरोंच न लगने पाये या उसपर धूलके कण न बैठने पायें क्योंकि एनलार्ज करनेपर ये बहुत भद्दे हो जाते हैं। कम प्रकाश-दर्शन पाए निगेटिवोंको बहुत देर तक डेवलप करनेसे वे अधिक दानेदार हो जाते हैं और अधिक प्रकाश दर्शन पाये और इस लिये गाढ़े हो गये निगेटिवोंमें तीक्ष्ण-

ता कुछ कम हो जाती है। स्पष्ट है कि छोटे कैमरोंसे लिये गये चित्रोंको प्रकाश-दर्शन प्रायः बिल्कुल ठीक मिलना चाहिये, अन्यथा निगेटिव ख़ूब एनलार्ज करनेके योग्य न रह जायँगे।

काग़ज़

पहले केवल गैसलाइट पेपर ही दो तीन मेलका बनता था जिनमेंसे एक पर साधारण प्रकाशांतर, एक पर कुछ कम और एक पर कुछ अधिक आता था। ब्रोमाइड पेपर सब एक ही मेलके बनते थे। परन्तु अब ब्रोमाइड पेपर भी कई एक प्रकाशांतरके बनते हैं और गैसलाइट पेपर तो पांच-पांच छः-छः प्रकाशांतरके बनते हैं।

अब निगेटिवके प्रकाशांतरको देखकर एक उपयुक्त प्रकाशांतरका गैसलाइट कागज़ चुना जा सकता है और निगेटिवके गाढ़ेपनके हिसाबसे कम या अधिक प्रकाशदर्शन देकर उचित कालेपनकी छाप तैयारकी जा सकती है। इस प्रकार जिन निगेटिवोंसे पहले अच्छे चित्र किसी प्रकार आ ही नहीं सकते थे उनसे काफ़ी अच्छे चित्र खींचे जा सकते हैं।

इनफ़्रा-रेड प्लेट

जब किसी वस्तुको गरम किया जाता है तब यह पहले लाल होता है, फिर पीला हो चलता है, और अधिक आँच पानेसे यह इतना गरम हो जाता है कि इससे सफ़ेद रोशनी निकलने लगती है। प्रकाश एक प्रकारकी लहर है। लहरोंकी लम्बाई ज्यों-ज्यों कम होती जाती है त्यों-त्यों प्रकाश उत्तरोत्तर अधिक नीला होता जाता है। यदि कोई वस्तु केवल इतनी गरमकी जाय कि वह लाल भी न होने पाये तो इसमेंसे कुछ प्रकाश नहीं निकलता। तो भी इसमेंसे बराबर लहरें निकलती हैं जिनको उपरक्त (इनफ़्रा-रेड) लहर कहते हैं। सूर्य और बिजलीकी रोशनी-में इस तरहकी लहरें बराबर निकलती रहती हैं। लेंज़ पर उचित जातिका प्रकाश-छनना लगा देनेसे प्रकाशके अन्य अवयव रुक जाते हैं, केवल उपरक्त रश्मियाँ ही भीतर जा सकती हैं। देखनेमें ये प्रकाश-छनने बिल्कुल काले जान पड़ते हैं।

अब इलफ़ोर्ड कम्पनी और कुछ अन्य कम्पनियाँ ऐसा प्लेट बनाती हैं जिन पर उपरक्त रश्मियोंका पूरा प्रभाव पड़ता है और ये प्लेट आसानीसे ख़रीदे जा सकते हैं, परन्तु भारतवर्षमें इन प्लेटोंका प्रयोग अभी केवल जाड़ेमें ही किया जा सकता है और प्लेटको ताज़ा विलायतसे मँगाना पड़ेगा क्योंकि गरमीके कारण यह प्लेट जल्द ख़राब हो जाता है।

इन प्लेटोंका प्रयोग साधारण प्लेटोंकी तरह किया जाता है, परन्तु इनको पूर्णतया अंधकारमें (पैनक्रोमैटिक प्लेटोंकी तरह) डेवेलप किया जाता है। इनके लिये एक विशेष लैम्प भी मिल सकता है जिससे ऐसा प्रकाश आता है जो इन प्लेटोंके लिये हानिकारक नहीं है। परन्तु पूर्णतया अंधकारमें डेवेलप करनेमें कोई विशेष कठिनाई न होनेके कारण ऐसे लैम्पोंके बिना भी काम चल सकता है।

किसी भी कैमरेसे काम चल सकता है। परन्तु तीक्ष्ण फोकस लानेके लिये लेंज़छेद कुछ छोटा कर देना पड़ता है। इनफ़्रारेड प्लेटोंको धातुके बने प्लेट घरोंमें बन्द करना चाहिये क्योंकि उपरक्त रश्मियाँ लकड़ीके भीतर घुस सकती हैं। इसी कारणसे ऐसे कैमरेका प्रयोग करना चाहिये जो धातुका बना हो। साधारण कैमरेको टीनके डिब्बेमें रखकर और लेंज़के सामने छेद काटकर भी काम किया जा सकता है। साधारण रीतिसे पहले फ़ोकस करके लेंज़पर विशेष इनफ़्रारेड फिल्टर चढ़ा देना चाहिये।

प्रकाश-छनना लगनेके बाद इलफोर्डके इनफ़्रा-रेड प्लेटोंकी तेज़ी २० एच० डी० मानी जाती है। इस प्रकार दोपहरके समय फ/४·५ पर करीब १/१० सेकंडका प्रकाश-दर्शन लगेगा।

इनफ़्रा-रेड प्लेटों पर लिये गये फ़ोटोमें दूरस्थ वस्तु भी वैसी ही स्पष्ट और प्रकाशांतरयुक्त आती है जैसे कोई समीपकी वस्तु, क्योंकि दूरकी वस्तुएँ आँखको इसलिये धुंधली दिखलाई पड़ती हैं कि बीचमें बहुत कुछ आसमानसे आया नीला प्रकाश वायुके अणुओंके कारण बिखर जाता है और वे प्लेटको धुंधला कर

देता है। इनफ्रा-रेड प्लेटोंपर तीन-तीन सौ मीलको दूरी वाले पहाड़ोंके चित्र काफी स्पष्ट उतर आते हैं।

इनफ्रा-रेड प्लेटोंपर नीला आसमान काला उतरता है। हरी पत्तियाँ बहुत कुछ सफ़ेद सो उतरती हैं। सफ़ेद बादल बहुत स्पष्ट उतरते हैं। काले आसमानके कारण दिनमें भी लिया गया चित्र ऐसा जान पड़ता है जैसे रातमें लिया गया हो। इस लिये अक्सर जब यह भावना उत्पन्न करनी होती है कि चित्र रातमें लिया गया है तो इनफ्रा-रेड प्लेटोंका प्रयोग किया जाता है। परन्तु ऐसा चित्र उस समय खींचना चाहिये जब आकाशमें कोई बादल न हो, नहीं तो बादलोंके बहुत स्पष्ट उतरने के कारण सभी जान जायँगे कि चित्र दिनमें खींचा गया है।

इनफ्रा-रेड प्लेटोंको कुछ कम ही डेवलप करना चाहिये, नहीं तो उनमें इतना प्रकाशांतर आ जाता है कि निगेटिवके गाढ़े भागोंका ब्योरा छपना कठिन हो जाता है।

वर्तमान खपत

वर्तमान समयमें दुनिया भरमें कुल मिला कर करीब २०,००० आदमी प्लेट बनानेके कारखानोंमें काम करते हैं। कच्चे मालमें १५,००० मन चाँदी, १८,००० मन रुई (फिल्म बनानेके लिये) ६०,००० मन जिलेटिन, ३,६०,००० मन लकड़ीकी लुग्दी (कागज बनानेके लिये) इस्तेमाल होता है। फोटोग्राफीका सामान कई कामोंके लिये इस्तेमाल होता है। सबसे अधिक मात्रा सिनेमा के चित्रोंके खींचनेमें ही ख़र्च होता है। पांच लाख मील लम्बा फिल्म प्रति वर्ष इन चित्रोंमें ख़र्च होता है। अमेचर (अर्थात अव्यवसाई फोटोग्राफ़र) ४५,००० मन फिल्म अपने स्नैपशाटोंके लिये ख़र्च करते हैं और उन निगेटिवोके छापनेके लिये २,१०,००० मन कागज़ ख़र्च करते हैं। व्यवसाई फोटोग्राफर करीब २४०,००० मन फिल्म, २४०,००० मन प्लेट और २७०,००० मन कागज़ मनुष्य—चित्रण और विज्ञापन-संबंधी चित्रोंके लिये ख़र्च करते हैं। प्लेटोंका खर्च दिनों-दिन कम हुआ जारहा है; केवल इंगलैण्डमें व्यवसाई फोटोग्राफर अब भी प्लेटोंका प्रयोग करते है। पी०ओ०पी० कागज़का व्यवहार अब केवल ग्राहकोंके पास प्रूफ भेजनेके लिये, अर्थात् उनकी पसन्दगी या नापासन्दगी जाननेके लिये कच्चा फोटो भेजनेके काममें आता है।

डेवलपर

इन दिनों मेटल हाइड्रोक्विनोन डेवेलपर का प्रयोग प्रायः सर्वत्र होता है। घनत्व-मापक यंत्रोंके प्रयोगसे प्लेटोंके डेवेलप करनेके समय और प्रकाशदर्शन, प्लेटोंकी जाति, तापक्रम इत्यादि विषयोंका पारस्परिक संबंध पर अब ख़ूब खोजकी गई है।

डेवेलपरमें जितने ही अधिक समय तक प्लेट या फ़िल्म रक्खा जाता है उतना ही अधिक उसमें प्रकाशान्तर आता है अर्थात् उतना ही अधिक निगेटिवके हलके और गाढ़े भागोंके घनत्वमें अन्तर रहता है। इसका अर्थ यह है कि जैसे-जैसे अधिक समय तक डेवेलप किया जाता है उसीके हिसाबसे प्रत्येक भागका घनत्व बढ़ता जाता है। ऐसा नहीं होता कि निगेटिवका सबसे काला भाग पहले पूर्ण रूपसे काला हो जाय और तब इसके हलके भागोंका घनत्व बढ़े। ऐसा भी नहीं होता कि निगेटिवके हलके भागका बढ़ना रुक जाय और गाढ़े भागोंका घनत्व बढ़ता ही चला जाय। होता यह है कि यदि डेवेलप करनेके समयको बढ़ानेसे निगेटिवके गाढ़े भागोंका घनत्व ५० प्रतिशत बढ़ जाय तो इतने समयमें निगेटिवके हलके भागोंका भी घनत्व ५०% बढ़ जायगा और इस प्रकार कुल मिलाकर निगेटिवके हलके और गाढ़े भागोंके घनत्वका अंतर बढ़ जायगा। वैज्ञानिक लोग प्रकाशान्तर सूचित करनेके लिये संख्याओंका प्रयोग करते हैं।

डेवेलपरमें डालनेके बाद जब पहले पहल चित्र दिखलाई पड़ता है उस समय प्रकाशान्तर बहुत कम रहता है। यह प्रकाशान्तर पहले बहुत जल्द बढ़ता है। फिर प्रकाशान्तर-वृद्धिकी गति मंद पड़ जाती है। कुछ समय बाद प्रकाशान्तरका बढ़ना इतना कम हो जाता है कि अधिक समय तक डेवेलप करने पर प्रकाशान्तर कुछ विशेष नहीं बढ़ता। यह महत्तम प्रकाशान्तर फिल्म

या प्लेटकी बनावट पर निर्भर है। प्रोसेस प्लेटोंपर बहुत अधिक प्रकाशान्तर आता है। तेज़, मनुष्य-चित्रणके लिये विशेष रूपसे बनाये गये, प्लेटोंका महत्तम प्रकाशान्तर बहुत कम होता है। यदि मनुष्य चित्रणके लिये बने विशेष प्लेटका महत्तम प्रकाशान्तर एक माना जाय तो प्रोसेस प्लेटका महत्तम प्रकाशान्तर लगभग ४ होता है।

यदि प्रोसेस प्लेटकी तरह अधिक प्रकाशान्तर देनेवाले प्लेटोंको कम समय तक डेवेलप किया जाय तो प्रकाशान्तर कम आयेगा। तो भी ऐसे प्लेट साधारण फोटोग्राफीके लिये ठीक नहीं होते। बात यह है कि ऐसे पेटोंपर केवक १ से लेकर ४ तकके प्रकाशवाली वस्तुएँ ही दिखलाई जा सकती हैं। उदाहरणार्थ, यदि किसी प्राकृतिक दृश्यका चित्र लिया जाय जिसमें (१) सायेमें स्थित घास हो जिसका प्रकाश एक माना जाय और (२) धूपमें स्थित वृक्ष हों जिसमें घासकी अपेक्षा चौगुना प्रकाश आता हो, अर्थात जिसका प्रकाश ४ हो और (३) सफेद मकान हो, जिसका प्रकाश १० हो और (४) आकाश हो जिसका प्रकाश १६ हो, तो शुद्ध प्रकाश-दर्शन देने पर भी निगेटिवमें ये सभी वस्तुयें अलग-अलग नहीं दिखाई जा सकतीं। यदि घास और वृक्ष दिखाई पड़ेंगे तो वृक्ष, सफेद मकान और आकाश सभी प्रायः एक समान सफ़ेद दिखाई पड़ेंगे, क्योंकि निगेटिवपर केवल एकसे लेकर ४ तक प्रकाश देनेवाली वस्तुएँ भिन्न भिन्न घनत्वकी उतरेंगी। अब इसकी तुलना तेज़ प्लेट या फ़िल्मसे कीजिये जिसमें एकसे लेकर २५६ तकके प्रकाशकी वस्तुएँ निगेटिवमें भिन्न-भिन्न घनत्व की उतरेंगी।

किसी भी प्लेट या फ़िल्मपर महत्तम प्रकाशान्तर आजाने के बाद अधिक समय तक डेवेलप करनेसे प्रकाशान्तर बढ़ेगा नहीं; सब जगह धुंध उत्पन्न होगा और इस लिये धीरे-धीरे प्रकाशान्तर घटता ही चला जायगा। महत्तम प्रकाशान्तरको गामा इनफिनिटी भी कहते हैं।

बारीक दानेवाला डेवेलपर

यह ऊपर बतलाया जा चुका है कि निगेटिवको एनलार्ज करनेपर चित्र दानेदार हो जाता है और यह आवश्यक है कि यथासम्भव निगेटिवका दाना छोटा हो। दानेका छोटा-बड़ा होना बहुत-कुछ फ़िल्म और प्लेटकी बनावट पर निर्भर है, परन्तु थोड़ा-बहुत यह डेवेलपर पर भी निर्भर है। इस लिये जब निगेटिवोंको काफ़ी एनलार्ज करना हो तो बारीक दाने वाला प्लेट या फ़िल्म चुनना चाहिये। तब उन्हें किसी भी डेवेलपरसे डेवेलप किया जा सकता है। परन्तु यदि सबसे बारीक दानेवाले नेगेटिवकी आवश्यकता हो तो विशेष डेवेलपरका प्रयोग करना चाहिये। दानेके दृष्टि-कोणसे डेवेलपर तीन जातियोंमें बाँटे जा सकते हैं। प्रत्येक जातिके विभिन्न डेवेलपरोंमें कोई विशेष अंतर नहीं होता। डेवलपरोंकी पहली जाति वह है जिसमें मेटल-हाइड्रोक्विनोन है। ये बड़े शक्तिशाली होते हैं और निगेटिवके सायेवाले भागोंमें पूरा ब्योरा लाते हैं, अर्थात् इन डेवलपरों से डेवेलप करनेपर प्लेट अपनी पूरी तेज़ी पर काम करता हुआ माना जा सकता है। इन डेवलपरोंसे पूरे समय तक डेवेलप करनेपर दाना काफ़ी बड़ा हो जाता है परन्तु, यदि इन डेवेलपरोंमें प्लेटों और फ़िल्मोंको थोड़े ही समय तक डेवेलप किया जाय तो दाना काफ़ी छोटा रहता है। निगेटिवमें प्रकाशान्तर कम रहता है परन्तु विगरस गैसलाइट या कन्ट्रास्ट ब्रोमाइडपर छापने या एनलार्ज करनेसे पूरा प्रकाशान्तरका चित्र उतर आता है।

डेवेलपरोंकी दूसरी जाति वह है जिनमें पैरा-फ़ेनीलीन-डायामाइन वाले डेवलपर हैं। इन डेवलपरोंसे दाना बहुत बारीक आता है, परन्तु साथ ही प्रकाशान्तर भी कम आता है और निगेटिवके सायेवाले भागोंमें उतना ही ब्योरा लानेके लिये जितना मेटल-हाइड्रो क्विनोन डेवलपरसे आता है पचगुना या छः गुना प्रकाशदर्शन देना पड़ता है, अर्थात प्लेट या फ़िल्मकी तेज़ीका पूरा उपयोग नहीं किया जा सकता।

डेवेलपरोंकी तीसरी जाति वह है जिनके गुण ऊपरकी जातिवाले डेवेलपरोंके बीचमें होता है। उनसे मझोले नाप के दाने आते हैं और प्रकाशदर्शन भी थोड़ा-सा ही बढ़ाना पड़ता है। इस जातिमें बोरैक्स (सोहागा) पड़ा हुआ मेटल-हाइड्रोकिनोन डेवेलपर है।

दूसरी जातिका एक अच्छा नुसखा यह है :—

पैरा फ़ेनिलीन डायमाइन	१० भाग
ग्लाइसिन	१ ,,
सोडा सल्फ़ाइट (सूखी बुकनी)	६० ,,

पानी १००० ,,

प्रकाशदर्शन साधारणसे दुगना या ढाई गुना देना चाहिये। यदि उपरोक्त नुसख़ेसे ग्लाइसिन निकाल दिया जाय तो प्रकाशदर्शन चौगुना या पचगुना देना चाहिये।

मझोले दानेवाले डेवेलपरोंके दो नुसख़े नीचे दिये जाते हैं।

नं० १ वाले डेवेलपरसे डेवेलप करनेमें साधारणतया ६ से १२ मिनट तक समय लगता है और नं० २ वाले नुसख़ेसे १०-२५ मिनट तक समय लगता है। बोरिक ऐसिड और बोरैक्स दोनों सस्ती चीज़ें हैं और हर एक अंग्रेजी दवाखाने में मिलती हैं।

	नं० १	नं० २
मेटल	२ भाग	२ भाग
हाइड्रोकिनोन	५ ,,	५ ,,
सोडा सल्फ़ाइट (सूखी बुकनी)	१०० ,,	१०० ,,
बोरैक्स	२ ,,	८ ,,
बोरिक ऐसिड	—	८ ,,
पानी	१००० ,,	१००० ,,

एरण्ड

(पृष्ट १८ का शेष)

और उनके साथ एरण्ड तेल मिल कर बाह्य लेपोंमें काम आता है। छालों और जले हुए भागोंपर लगाये जाते हैं। बीजोंकी गिरी खा भी ली जाती है और इसका प्रभाव वही समझा जाता है जो तेलका। सिरदर्दोंमें शंखास्थियों पर, पक्षाघातमें हथेलियोंपर बीजोंको मसला जाता है, मूत्र-मार्ग-अवरोधमें ये मूत्र-प्रणालीमें प्रविष्ट किये जाते हैं। प्रसवोत्पत्ति शीघ्र करनेके लिये या कमलको बाहर निकालनेके उद्देश्यसे गर्भवती स्त्रियोंके तलवोंपर बीजोंको मला जाता है।

सहायक पुस्तकें

१, मैटीरिया मेडिका एण्ड थेराप्युटिक्स; आर. घोष।

२, इण्डिजीनस ड्रग्स औफ़ इंडिया; आर. एन. चोपड़ा।

३, इंडियन मेडिसिनल प्लाण्टस्; वसु एंड कीर्तिकर।

४, मैटीरिया मेडिका एण्ड नेचुरल हिस्ट्री औफ़ चाइना; फ्रेडरिक पोर्टर स्मिथ।

५, दि कमर्शियल प्रौडक्ट्स औफ़ इंडिया; सर जौर्ज वाट।

६, ए डिक्शनरी औफ़ दि इकौनोमिक प्रौडक्ट्स औफ़ दि मलाया पेनिन्सुला; आई. एच. बुर्किल।

७, ए डिक्शनरी औफ़ दि इकौनोमिक प्रौडक्टस् औफ़ इंडिया; वाट।

८, ए मैनुयल औफ़ दि इंडियन टिम्बर्स; गैम्बल।

९, चरक। १०, सुश्रुत। ११, भावप्रकाश निघंटु। १२, राज निघंटु। १३, कैयदेव। आदि।

'फूलका प्रयोजन'

[ले० प्रो० जगमोहन लाल चतुर्वेदी, सिकन्दराबाद-दक्षिण]

पौधोंमें जड़, तना और पत्तियाँ होती हैं जिनके काम अलग अलग हैं मसलन् जड़ोंका काम पानीमें घुली हुई चीज़ोंको चूसना, पत्तियोंका काम भोजन निर्माण करना, सांस लेना और स्वेदन करना, तनेका काम पत्तियोंमें तैयार किये हुये भोजन को पौधोंके नीचेके अंगोंमें और चूसी हुई चीज़ोंको पौधेके सर्वांगमें पहुँचाना है। जब पौधा तरुणावस्थाको पहुँचता है तब उसमें फूल लगते हैं। फूलोंका क्या प्रयोजन है? प्रायः हम देखते हैं कि फूलोंके गुलदस्ते हमारी मेज़ोंको सुशोभित करते हैं। फूलोंके हार हमारी शृंगारकी चीज़ें हैं। देवताओं और महात्माओंके प्रति श्रद्धा और भक्ति अभिव्यक्त करनेके लिये हम उनके चरणोंमें पुष्पाञ्जलि भेंट करते हैं। फूलोंके इत्र और अर्कसे

महफिले महकती हैं, लेकिन क्या हमने कभी इस बात पर ध्यान दिया है और समझनेका प्रयत्न किया है कि इनका क्या काम है ? क्या इनका इतना ही प्रयोजन है कि मनुष्यके काम आयें ? यदि इतना ही प्रयोजन होता तो हम बहुत जल्द इस ईश्वरीय देनसे वंचित हो जाते और आज जो हम नैसर्गिक सुखोपभोग कर रहे हैं वे हमारे लिये स्वर्गीय स्वप्न होते। मनुष्योंका स्वार्थ और पौधोंकी उदारता जगत विख्यात है—यहाँ तक कि हमारा जीवन पौधोंपर निर्भर है। ऐसी अवस्थामें क्या यह बात मनोरम न होगी कि हम फूलोंका प्रयोजन समझनेका प्रयत्न करें ? फूलोंका क्या काम है, यह समझनेके पहिले यह ज़रूरी है कि हम फूलोंकी रचनासे परिचित हो जाँय। इस कामके लिये ऐसे फूल लिये जाँय जिनका निरीक्षण अच्छी तरह किया जा सके। धतूरेके फूल जो प्रत्येक स्थानपर सुलभ हैं, हमारे प्रयोजन सिद्धिके लिये पर्याप्त हैं।

धतूरेके फूलका रंग सफेद होता है। यह शाख पर छोटी डंडी द्वारा लगा रहता है। फूलके सबसे बाहरके भागमें, पांच मिली हुई हरी पत्तियोंका एक ग़िलाफ होता है, जिसे फुल-पात कहते हैं। फुल-पातके हर हिस्सेको फुल-पत्ती कहते हैं। फुल-पातको निकाल देनेके बाद सफ़ेद रंगका मुकुट अथवा फुल-पंख दिखाई देता है, जो पाँच पंखड़ियों से मिलकर बना है। इसका आकार क़ीफ़के समान है। फुल-पंखको लम्बाईमें चीरनेसे प्रत्येक पंखड़ी पर एक सलाई सी दिखाई देती है। यह नरकेसर है, जो फूलका नर अंग है। नर केसरके ऊपरी भागमें एक डिबिया होती है जिसमें एक चूर्ण भरा रहता है। इस चूर्णको पराग कहते हैं। अतएव इस डिबियाको जिसमें पराग भरा रहता है, पराग-डिबिया कहते हैं। नर केसरके समूहको नर-कीट कहते हैं। फूलके बीचमें एक मूसली होती है। यह फूलका मादा भाग है। जिस तरह फूलके नर भागको नरकेसर, उसी तरह मादा भागको स्त्री-केसर कहते हैं। स्त्रीकेसर एक या अधिक फूल-पत्रोंसे मिलकर बनती है। इसमें दो प्रधान हिस्से होते हैं। नीचेका हिस्सा जो कुछ फूला हुआ होता है, और ऊपरी भाग जो लौंगके आकारका होता है। नीचेके हिस्सेमें एक या अधिक बीज-अंडे होते हैं। इस भागको बीज-थैली कहते हैं। ऊपरी भाग कभी कभी बीज-थैलीपर लगा रहता है और कभी एक नलीके ज़रिये ऊपर उठा रहता है स्त्रीकेसरके फल-पत्ते मिले होते हैं अथवा अलग अलग। जब फल-पत्ते मिले होते हैं तो ऐसा मालूम होता है कि केवल एक ही फल-पत्ता है। इससे घबड़ानेकी कोई बात नहीं, क्योंकि बहुधा स्त्रीकेसरके ऊपरी भागको देखकर यह बताया जा सकता है कि इसमें एक ही फल-पत्ता है या अधिक। इस ऊपरी हिस्सेमें जितनी ही घुंडियाँ दिखाई देती हैं उतने ही फल-पत्तों-मिलाप समझना चाहिये। धतूरेके फूलकी स्त्रीकेसरके ऊपरी भागमें दो घुंडियाँ होती हैं। इससे स्पष्ट है कि इसमें स्त्रीकेसर दो फल-पत्तोंके मिलनेसे तैयार हुई है।

फुल-पात और फुल-पंख कलीकी अवस्थामें नरकेसर की रक्षा करते हैं। नरकेसर और स्त्रीकेसर फूलके पुरुष और स्त्री हैं अथवा वह भाग है जिनसे वंश वृद्धि होती है बागोंमें बहुधा देखनेमें आता है कि बहुतसे फूलोंपर कीड़े आकर बैठते हैं। इन कीड़ोंमें तितली और मधु-मक्खी-को तो सबने ही देखा होगा। फूलों पर कीड़े आकर क्यों बैठते हैं ? पौधोंको कीड़ोंसे हानि है या लाभ ?

फूलोंका प्रधान काम बीज बनाना है, जो नस्ल क़ायम रखनेका एक साधन है। इस मतलबके लिये यह ज़रूरी है कि बीज-अंडा और पराग आपसमें मिलें। इस कामको पूरा करनेका पहिला क़दम यह है कि पराग स्त्रीकेसरके ऊपरी भाग पर जा पहुँचे। परागके स्त्रीकेसर पर जाने की क्रियाको पराग-सेचन कहते। पराग कोई ऐसी वस्तु तो है नहीं, जो स्वयं चल सके। अतएव यह ज़रूरी है कि कोई ऐसा ज़रिया अथवा माध्यम होना चाहिये जो पराग को स्त्रीकेसरके ऊपरी भाग तक पहुँचा दे। ये माध्यम हवा और कीड़े हो सकते हैं। कुछ फूल हवासे और कुछ कीड़ोंसे सिक्त होते हैं, अथवा यों समझना चाहिये कि भिन्न भिन्न फूलोंमें पराग-सेचनकी युक्तियाँ भिन्न भिन्न होती हैं। ऐसे फूलोंको जिनपर पराग हवाके ज़रिये पहुँचता है वायु-सिक्त कहते हैं; और ऐसे फूलोंको जिन पर पराग कीड़ोंके माध्यमसे पहुँचता है, कीट-सिक्त कहते हैं। कुछ फूलोंमें पानी, पक्षी इत्यादि भी पराग सेचन करते हैं लेकिन इनकी संख्या कम होनेसे इनका ज़िक्र यहाँ नहीं किया जायगा।

हवा पराग-सेचनका कोई भरोसेका माध्यम नहीं है, क्योंकि वायु अपने साथ परागको किसी भी दिशामें ले जाती है। संभव है कि हवा उस दिशाकी ओर न चल रही हो जिधर स्त्रीकेसर अपने प्रीतम (पराग) से मिलनेकी प्रतीक्षा कर रही हो। अतएव वायु-सिक्त फूलोंमें परागकी बहुतायत होनी चाहिये जिससे कुछ तो अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच सकें। इस मतलबके लिये इस प्रकारके फूलोंमें नरकेसर लम्बे और बहुत होते हैं। पराग-डिबियाँ आसानीसे हिलती हैं, और इनमेंसे पराग झड़ने लगता है। स्त्रीकेसरका ऊपरी भाग लम्बा, चिपकना या बालदार होता है। नरकेसर और स्त्रीकेसर हवाके प्रहार के लिये खुले रहते हैं।

बहुतसे पौधोंमें कीड़े फूल पर पराग ले जाते हैं। इन कीट-सिक्त फूलोंमें विचित्र तरकीबें पाई जाती हैं। पहिली ज़रूरत तो यह है कि पराग हवा और पानीसे सुरक्षित रहे। इस आवश्यकताको पूर्ण करनेके लिये नरकेसर फूलके अन्य भागोंसे सुरक्षित रहते हैं लेकिन इतने भी ढके नहीं रहते कि कीड़े इन तक पहुँच न सकें। हमने धतूरेके फूल की रचना बतलानेके बाद यह प्रश्न किया था कि फूलों पर कीड़े आकर क्यों बैठते हैं? पौधोंको इनसे हानि है या लाभ? हम समझते हैं कि पाठकगण स्वयं अब इस प्रश्न-का उत्तर दे सकेंगे। कीड़े अपने भोजनकी खोजमें फूलों पर आते हैं! जिस तरह स्त्री अपने पतिको रिझानेके लिये श्रृंगार करती है, फूल भी अपनी सजधज, हावभाव और कटाक्षसे कीड़ोंको आसक्त करते हैं। इनका सुन्दर मुखड़ा, मतवाली मुस्कान, भीनी भीनी मधुभरी सुगंधमें ऐसा जादू है कि कीड़े इनकी उपेक्षा नहीं कर सकते। जब कीड़े फूलोंका आलिंगन करते हैं तो यह उनका यथोचित आतिथ्यसत्कार करते हैं। इनके इस आतिथ्य सत्कार से प्रसन्न हो वे कीड़े फूलोंके नरकेसरसे पराग ले जाकर स्त्री केसर पर डाल देते हैं। जब पराग और बीज-अंडा मिलते हैं तो बीज बन जाता है जो पौधेकी संततिको संसारमें चिरकाल तक बनाये रखनेका एक साधन है। कीट-सिक्त फूलकी पंखड़ियाँ अच्छे रंगकी होती हैं। इनमें सुगंध होती है, और मधु भी पाया जाता है। इन फूलोंमें स्त्रीकेसर और नरकेसर इस तरह लगे रहते हैं कि ख़ास ही क़िस्मके कीड़े परागको स्त्रीकेसरके ऊपरी भागपर पहुँचानेको सामर्थ्य रखते हैं। इन फूलोंमें पराग-डिबियाँ कम होती हैं और पराग चिपकना होता है।

बहुधा एक फूलका पराग उसी क़िस्मके पौधेके दूसरे फूलकी स्त्रीकेसरके ऊपरी भाग पर गिरता है। सेचनकी इस विधिको परसेचन कहते हैं। इससे यह न समझ लेना चाहिये कि सब फूलोंमें परसेचन क्रिया ही होती है। ऐसे भी फूल हैं, जिनमें फूलका पराग उसी फूलकी स्त्रीकेसरके ऊपरी भाग पर गिरता है। सेचनकी इस विधिको आत्मसेचन कहते हैं। पौधोंके लिये परसेचनक्रिया अधिक लाभ दायक है, क्योंकि आत्मसेचन क्रियासे जो बीज बनते हैं उनसे उगे हुये पौधे कमज़ोर होते हैं। अतएव प्रकृति ने आत्मसेचनक्रियाको रोकनेका पौधोंमें प्रबन्ध किया है, मसलन् कुछ पौधे ऐसे हैं जिनमें नर और मादा फूल अलग अलग पौधोंपर लगते हैं। इस तरकीबसे आत्म सेचन किसी हालतमें हो ही नहीं सकता। इसकी दूसरी अवस्था वह है जब कि नर और मादा फूल होते तो अलग अलग हैं मगर एक ही पौधे पर लगे रहते हैं। इसमें भी आत्म सेचनकी संभावना नहीं है। जब एक ही फूलमें नर और मादा भाग पाये जाते हैं तब यह बहुत संभव होता है कि फूलका पराग उसी फूलकी स्त्री केसर के ऊपरी भागपर जा पड़े। इस क्रियाको किसी हद तक कम करनेके लिये प्रकृति ने ऐसा प्रबन्ध किया है कि पराग और बीज-अंडा अलग अलग समयमें पकते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि आत्मसेचन क्रियाकी संभावना कम हो जाती है। कभी कभी फूलोकी रचना ही इस प्रकार-की होती है कि केवल परसेचन क्रिया ही संभव होती है।

जब हवा अथवा कीड़ोंके ज़रिये लाया हुआ पराग स्त्रीकेसर पर गिरता है तब स्त्री केसरके ऊपरी भागसे रस प्राप्त करके परागमें से एक नली निकलती है। यह नली बढ़ते बढ़ते बीज-अंडा तक पहुँच जाती है, और बीज-अंडे के छेदमें प्रवेश करती है। यहाँ पर नली फट जाती है और इसमेंसे एक उत्पादक-कोष्ट निकल कर बीज-अंडेमें के अंडेसे मिलता है। इसे हम गर्भाधान क्रिया कह सकते हैं। गर्भाधान क्रियाके बाद फूलके वह हिस्से जो बेकार होते हैं, सूख कर झड़ जाते हैं। स्त्रीकेसर बढ़ते बढ़ते फलमें बदल जाती है और बीज-अंडे, बीज बन जाते हैं। बस यही फूलका काम है।
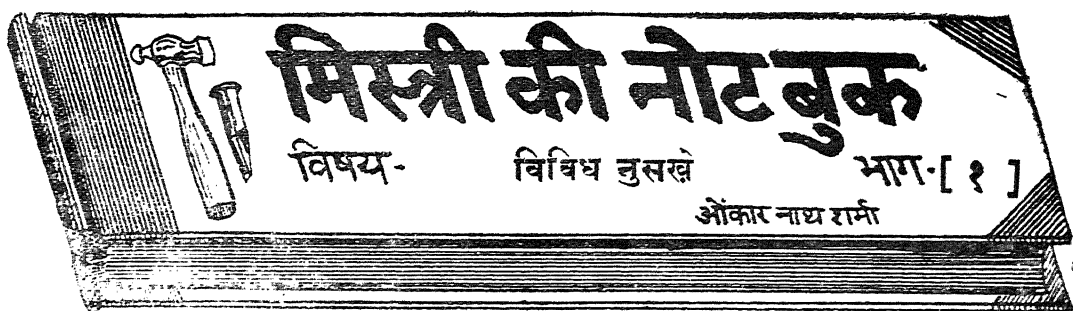
कारखानेकी इमारतका नक़शा बनाना

ले०—ओंकार नाथ शर्मा

(लेखककी "औद्योगिक प्रबन्ध" नामक अप्रकाशित पुस्तकका दूसरा अध्याय।)

किस प्रान्तमें कारखाना बनाय जाय, यह निश्चय होनेपर, दूसरी मुख्य बात यह विचारनेकी है कि वहाँपर कितनी और किस तरहसे ज़मीन ख़रीदी जावे। कितनी ज़मीनकी आवश्यकता होगी, यह ठीक-ठीक बता देना सहज काम नहीं है। इसके लिये भावी कारखानेके कामके पूर्ण अनुभवकी आवश्यकता है। उसका हर एक कर्मचारी किस प्रकार काम करेगा, इस बातकी तसवीर पहले ही अपने दिमाग़में बना लेनी होगी और आवश्यकतानुसार उसे लिखतमें भी ले जाना पड़ेगा। इसीसे ज़मीनके आकारका बहुत कुछ निश्चय करनेमें सहायता मिलेगी।

सबसे पहिले, जिस जगह ज़मीन खरीदनी हो उसका साइट पलान तैयारकर लेना चाहिये। जिसमें उस ज़मीन और उसके पड़ोस वाली ज़मीनकी ऊँचाई और निचाई मालूम हो जावे, वहाँ कहाँ कहाँ पर रास्ते हैं, मैला पानी निकालनेकी मोरी किधर है। या किधरको बनाई जा सकती है, हमारे कामके लिये पानी किधरसे आवेगा, गैस या बिजलीकी शक्ति किधरसे प्राप्त हो सकती है और रेलकी लैन वग़ैरह किधरसे आ सकती है, आदि बातें मालूम हो जावें और साथ ही उसकी हदें भी मालूम हो जावें। इस की सहायतासे कारखानेका कच्चा नक़शा निम्नलिखित बातोंपर विचार करनेके बाद तैयार किया जाना चाहिये।

मालकी तैयारीका निश्चय—(क) इस सम्बन्धमें पहिली बात यह सोचनेकी है कि आरम्भमें, प्रति सप्ताह ४८ घंटे काम करके हमें कितना तैयार माल निकालना है और बादमें कारखानेकी उन्नति हो जानेपर प्रति सप्ताह अधिक-से-अधिक कितना माल तैयार करना चाहते हैं।

(ख) इस बातके निश्चय हो जानेके बाद हमें यह निश्चय करना चाहिये कि इस कामको करनेके हमारे तरीके क्या होंगे। तरीक़े जहाँ तक हो पूर्ण आधुनिक होने चाहिये, जिससे हम बाहर वालोंकी प्रतियोगितामें खड़े रह सकें। यह सब भली भाँति निश्चय हो जानेके बाद निम्नलिखित प्रकारसे हम जान सकते हैं कि हमारे कारखानेमें कितनी और कौन-कौनसी मशीनें होनी चाहिये, उन्हें बनानेके लिये इंजन वग़ैरह कितने गड़े होंगे, हमें कितने आदमियों-की ज़रूरत है और इस सबके लिये हमें कितनी जगहकी आवश्यकता होगी।

(ग) यंत्रगृह—मान लीजिये, हमारा कारखाना हमारे ही पेटेन्ट आयल इंजन बनानेके लिये खोला गया है। और यह निश्चय हो चुका है कि उस प्रकारके ५० इंजन प्रति सप्ताह बनाकर तैयार किये जावेंगे। अब हमें चाहिये कि नीचे दी हुई सारणीकी जैसी एक सारणी बना लें और उस इञ्जनके हर एक पुर्ज़ेके नाम दूसरे कोष्ठमें लिख दें और उनके सामने ही तीसरे कोष्ठमें यह लिख दें कि वैसे पुर्ज़े एक इञ्जनमें कितने लगेंगे। सब तरहकी मशीनोंके नाम, जो आपके कारखानेमें उन पुर्ज़ोंको बनानेके लिये लगाई जावेंगी ऊपरके आड़े कोष्ठमें लिख दें। अब हर एक प्रकारके पुर्ज़ेके विषय-में यह सोचना चाहिये कि उन्हें बनाते समय किस-किस मशीनपर कितना-कितना समय लगेगा। और जितना समय ध्यानमें जँचे उसके अनुसार नीचे दिये हुये उदा-हरणकी विधिसे उस पुर्ज़ेका उस मशीनपर कुल समय उस पुर्ज़ेके सामने उसी मशीनके नीचे लिख दीजिये।

यंत्रोंकी संख्याका निर्णय करनेके लिये सारणी ।

पुर्ज़ों के नम्बर	एक पूरे यंत्र में पुर्ज़ों की संख्या	यंत्रों के नाम और जाति																							
		खराद नं० १		खराद नं० २		खराद नं० ३		बरमा नं० १		बरमा नं० १		बरमा नं० २		बरमा नं० ३		रंदा नं० १		रंदा नं० २		मिलिंग मशीन		सीधे किर्रें काटनेकी मशीन		तिरछे किर्रें काटनेकी मशीन	
		क	ख	क	ख	क	ख	क	ख	क	ख	क	ख	क	ख	क	ख	क	ख	क	ख	क	ख	क	ख
पु० १	१											५	४·१												
पु० २	१					७	६	१	१									३०	२५						
पु० ३	८	२०	१३३	१०	६६·७					३	२·५														
पु० ४	१					८	७							१५	१२·५										
पु० ५	२			४०	६६·७			६	१५							१८	४५								
पु० ६	३																								
पु० ७	१			१५	१२·५																				
इसी प्रकारसे यह सूची पूरी कर कर मान लीजिये इसके क और ख चिह्नित कोष्ठों के योग अन्त में निम्नलिखित प्रकार हैं ।																									
पु० १८६	४	१००	३३४					२०	६७																
एक सप्ताह के मशीन घंटे			८२०		६६०		८०		१०		७०		४६		११०		१७०		५००		५६		८		
मशीनोंकी संख्या			१९		१५		३		४		३		१		३		४		११		१		×		

सूचना—१ पुर्ज़ोंकी तैयारीमें किसी मशीन पर जितना भी (समय) मिनटोंमें, उसी मशीनके 'क' चिह्नित कोष्टमें भरना चाहिये ।

१ सप्ताहमें तैयार किये जाने वाले यंत्रोंके कुछ पुर्ज़ोंकी तैयारीका समय, घंटोंमें, उसी मशीनके 'ख' चिह्नित कोष्टमें भरना चाहिये ।

और इसी प्रकारसे पूरी सारणीको भर लेना चाहिये। यहाँ पर सारणी पूरी न दिखाकर समझानेके लिये उसका केवल एक भाग ही दिखाया गया है।

उदाहरण—मान लीजिये, एक इञ्जनमें ४ पिस्टन लगते हैं और किसी मशीनपर एक पिस्टन २० मिनट लेता है तो ४ पिस्टन २०×४=८० मिनट लेवेंगे। और ५० इञ्जनोंके लिये $\frac{२० \times ४ \times ५०}{६०} = \frac{२००}{३} = ६६\frac{२}{३}$ अर्थात् लगभग ६७ घंटे लगेंगे। सारणीमें यह समय लिखते समय ध्यान रखना चाहिये कि प्रत्येक मशीनके नीचे-नीचे कोष्ठ बने हैं।

पहला 'क' चिह्नित कोष्ठ तो एक पुर्ज़ेके लिये और दूसरा 'ख' चिह्नित कोष्ठ एक सप्ताहके लिये है। अतः ऊपरके उदाहरणमें प्राप्त किया हुआ अंक २० पहिले और ६७ दूसरे काष्ठमें लिखना चाहिये। पूरी सारणीके भर जानेपर प्रत्येक मशीनके सप्ताह भरके कामके समयको जोड़ लेना चाहिये। मान लीजिये, मिलिंग मशीनके काम-का एक सप्ताहका योग ५०० घंटे आता है और एक मशीन सप्ताहमें अधिक-से अधिक ४७* घंटे काम कर सकती है। अतः सप्ताहका काम पूरा करनेके लिये हमें उस प्रकारकी $\frac{५००}{४७} = १०\frac{३०}{४७}$ अथवा ११ मशीनोंकी आवश्यकता पड़ेगी।

यहाँ एक बात और भी ध्यानमें रखनी चाहिये। वह यह है कि कोई भी मशीन लगातार दिन भर काम नहीं कर सकती। कुछ समय पुर्ज़ेके खोलने और बाँधनेमें, औज़ारोंको ठीक करनेमें, नये औज़ार गोदामसे लाने और लौटानेमें खर्च होता है। कुछ समय कारीगर बीचमें पानी वग़ैरह पीनेमें ले लेता है। कई बेर मशीनके ख़राब हो जानेपर उसके दुरुस्त करनेमें कुछ समय लग जाता है। अतः इन सब बातोंका उचित विचारकर एक-दो मशीने अधिक ही लगानी चाहिये।

* सूचना—कारखानेमें काम तो एक सप्ताहमें ४८ घंटे ही होता है लेकिन सप्ताहके अंतमें छुट्टीके पहिलेका एक घंटा कारीगरोंको अपने औज़ार और यंत्रोंकी सफ़ाई के लिये दिया जाता है।

उपरोक्त बातोंको उदाहरण द्वारा समझानेके लिये यहाँपर जो सारणी दी गई है, उसके अंकोंके अध्ययनसे पता चलेगा कि खराद मशीन नं० १ और ३ में एक-एक मशीन अधिक ली गई है, और खराद नं० २ में भी केवल २ घंटेके कामके लिये एक अधिक मशीन ली गई है। उधर बरमा नं० ३ में भी २ स्थानपर ३ मशीनें ली गई हैं। इसलिये मामूली दैनिक कार्यके अतिरिक्त इन मशीनोंपर मरम्मतका काम भी हो सकता है। तिरछे किरें काटनेकी मशीनपर सप्ताह भरमें केवल ८ ही घंटेका काम है। अतः ८ घंटेके कामके लिये एक पूरी मशीन खरीदना ठीक नहीं, क्योंकि उसकी लागत बहुत अधिक होनेसे उसके काम आदिका खर्च व्यर्थका ही लगता रहेगा। इस मशीनका काम किसी विशेष औज़ारकी सहायतासे रंदा नं० १ पर किया जा सकता है।

इस प्रकारसे जब हमें यह पूरा निश्चय हो जावे कि हमारे यंत्रघरमें आवश्यकतानुसार अमुक-अमुक सामान और यंत्र अमुक-अमुक संख्यामें रखना अभीष्ट है, तब हमें चाहिये कि प्रत्येक सामान और यंत्रोंपर काम करनेके लिये आदमी और माल सहित, अधिक-से-अधिक जितनी लम्बी चौड़ी जगहकी आवश्यकता होगी, यह निश्चय कर लें। इस जगहकी प्रदर्शित करनेके लिये किसी छोटे पैमानेके अनुसार पहले पुट्ठेके कुछ टुकड़े काट लेने चाहिये, और उनपर यह लिख लें कि वे किस जगह अथवा वस्तु-को प्रदर्शित करते हैं। जब सब टुकड़े तैयार हो जावें तब हमें चाहिये कि उन टुकड़ोंको लेकर किसी काग़ज़पर पिनों द्वारा, जिस तरकीबसे हम अपनी मशीनों और सामानको जमाना चाहते हैं, उसी तरकीबसे जमा लें। *देखिये चित्र नं० १ और २। इन्हें जमाते समय ध्यान रखना चाहिये कि मशीनों और सामानके बीचमें आद-मियों और ठेलोंके आने जानेके लायक़ जगह छोड़ दी जाय। प्रत्येक मशीनके लिये, उसका कच्चा माल एक तरफ़ और तैयार माल दूसरी तरफ़ रखनेके लिये भी कुछ

*सूचना—इन टुकड़ोंको किस प्रकार जमाना चाहिये यह बात "कारखानेका ढंग जमाना" शीर्षक अगले अध्यायमें समझाया गया है।

जगहकी आवश्यकता पड़ा करती है अतः जहाँ ज़रूरी हो उसका भी विचार रखना आवश्यक है। इस प्रकारसे जब सब टुकड़े ठीक-ठीक जम जावें तब हम अनुमानकर सकते हैं कि हमारे यंत्रघरको कितनी और किस आकार की ज़मीन चाहिये और उसपर किस प्रकारकी इमारत बनाई जावे।

(घ) तैयारी-विभाग

इस विभागमें कितने कारीगरोंकी आवश्यकता पड़ेगी, यह बात भी, हम उसी तरकीबसे जान सकते हैं जिससे हमने यंत्रोंकी संख्या मालूमकी थी। यहाँ पर प्रत्येक कारीगर को एक मशीन मान लेना चाहिये और देखना चाहिये कि सप्ताह भरका काम करनेके लिये—

१—अकेले आदमीके करने योग्य कामको एक आदमी कितने घंटोंमें करेगा।

२—दो आदमियोंके जोड़के करने योग्य कामको दो आदमियोंका एक जोड़ा कितने घंटेमें करेगा; इत्यादि। इसी प्रकार कुलियोंकी सहायताका अंदाज़ भी लगा लेना चाहिये। इस प्रकार सब प्रकारके घंटोंका जोड़ लगा कर उन जोड़ोंको ४७ से भाग देना चाहिये। ऐसा करनेसे मालूम हो जायगा कि कुल काम करनेके लिये हमें कितने अकेले कारीगर, कितने दो कारीगरोंके जोड़े, और कितने-कितने मज़दूर उनके साथ चाहिये। फिर कुलका जोड़ लगाकर हम जान सकते हैं कि हमें कुल कितने कारीगर और मज़दूर चाहिये। कारीगरोंकी संख्यासे ही हम जान सकते हैं कि हमें कितनी बेचें (ठीयें) जमानेको चाहिये और उनके लिये कितनी जगहकी आवश्यकता होगी। मज़दूरों और कारीगरोंकी संख्याका हिसाब लगाते समय यह भी ध्यानमें रखना चाहिये कि कोई आदमी लगातार ८ घंटे रोज़ काम नहीं कर सकता उसे बीचमें औज़ार ढूँढ़ने, टट्टी और पेशाब करने, पानी आदि पीने और आपसमें एक दूसरेसे बातचीत करनेमें समय लगाना ही पड़ता है। उन्हें साल भरमें कुछ दिन छुट्टी भी देनी पड़ेगी अतः आवश्यकतासे कुछ अधिक आदमी लेना ज़रूरी है।

बननेवाले यंत्रोंके लिये तैयारी विभागमें स्थानः—

मान लीजिये, एक इंजनके पुर्जोंको जोड़कर खड़ा करनेमें हमें २४ घंटे लगते हैं, और हमें एक सप्ताहमें ५० इंजन निकालने हैं, तो सप्ताह भरमें हमारे पास २५ × ५० = १२५० घंटेका काम होता है। हमारा कारखाना सप्ताहमें केवल ४७ घंटे ही उत्पादक कार्य करता है तो हमें $\left(\frac{१२५०}{४७} = २६\frac{२८}{४७}\right)$ २७ इंजनोंके लिये स्थान चाहिये। कभी-कभी किसी विशेष कारणवश किसी इंजन के तैयार करनेमें देर भी हो सकती है इस लिये कमसे-कम २८ इञ्जनोंके लिये स्थानका प्रबन्ध करना आवश्यक है। प्रत्येक इंजनको तैयार करनेके लिये उसके अलहदा अलहदा पुर्ज़े लाकर उसके आस पास रक्खे जावेंगे, उनपर कुछ काम भी किया जावेगा। उसके आस पास और चारों तरफ़ आदमी भी फिरेंगे। यदि पुर्ज़े भारी होंगे तो उन्हें लाने और ले जानेके लिये ठेले भी आवें जावेंगे अतः इन सबका ध्यान रखना आवश्यक है।

(ङ)—ढलाईखानाः—ढलाई खानेके लिये जगह का हिसाब भी पूर्व वर्णित विधिके द्वारा ही लगाया जा सकता है। कई बेर, जो ढलाई बेकार चली जाती है इसका भी उचित विचार कर लेना आवश्यक है। ढलाईखानेमें लोहा और पीतल गलानेकी भट्टी कितनी बड़ी होगी और गला हुआ धातु साँचोंमें कितनी जल्दी भरा जा सकता है; इन दोनों बातोंके ऊपरही यह निर्भर रहता है कि वे साँचें ज़मीनको कितनी देर तक रोके रहेंगे।

(च) लोहारखाना, फरमाघर और औज़ारघर— यंत्रघर, तैयारीविभाग और ढलाईखानेका हिसाब लगानेके बाद लोहारखानेके लिये जगहका अंदाज़ा लगाना पाठकोंके लिये अब कठिन न होगा। फरमाघर और औज़ारघरके लिये जगहका अंदाज़ा वहांके काम और यंत्र वग़ैरहको देख कर ही किया जा सकता है, और असलमें इनके लिये जगहका अंदाज़ा लगाना अनुभवके ऊपर ही निर्भर रहता है।

(छ)—परीक्षाविभाग—ढलाईखाना, लोहारखाना, यंत्रघर और तैयारी विभाग सब मिलकर कितना काम निकालते हैं और उनका प्रतिदिन आपसमें कितना

लेन देन होता है। इत्यादि बातोंपर ही इस विभागकी जगहका अनुमान निर्भर रहता है।

(ज) गोदाम :—प्रत्येक कारखानेमें तीन प्रकारके गोदाम हुआ करते हैं। पहले प्रकारका तो वह जिसमें कच्चा माल रक्खा जाता है,और जिसमेंसे आवश्यकतानुसार कारखानेसे सब विभाग कच्चा माल लेले कर अपना अपना काम चलाते रहते हैं। दूसरे प्रकारका गोदाम वह होता है, जिसमें अधतैयार पुर्ज़े, तैयार पुर्ज़े जो कि यंत्रमें लगाये जानेको है और जुड़े, जुड़ाये यंत्रके स्वतंत्र भाग रक्खे जाते हैं। इस प्रकारके गोदाम प्रत्येक विभागमें अलहदा अलहदा हुआ करते हैं। तीसरे प्रकारका गोदाम वह होता है जहां पर बिक्रीके लिये तैयार सामान अथवा यंत्र रक्खे जाते है और माँग आने पर भेज दिये जाते हैं।

प्रत्येक नम्बरी माल जो कि गोदाममें रक्खा जाता है उसके न्यूनाधिककी कुछ सीमा रहती है। वह सीमा किस प्रकारसे निश्चितकी जावे, यह बात गोदामप्रबंधके अध्यायमें विस्तारपूर्वक बताई जावेगी। जब प्रत्येक सामानकी अधिक सीमा मालूम हो जावे, तब उसके लिये कितनी जगहकी आवश्यकता होगी, यह जानना आवश्यक हो जाता है। जो बहुत छोटा सामान होता है उसके लिये तो आलमारियाँ और संदूकें रखनी पड़ती हैं जिनमें वह भर दिया जाता है, और जो भारी सामान होता है वह किसी प्रकारके स्टेण्डों पर अथवा ज़मीन पर रक्खा जाता है। आलमारियों, संदूकों और स्टेण्डोंपर सामान रखने और वहाँसे उठानेवालोंके लिये घूमने फिरनेको काफ़ी जगह रखना आवश्यक है।

छोटे नम्बरी मालको गोदाममें रखनेके लिये अधिक सीमाका अन्दाज़ा लगाते समय एक बात और ध्यानमें रखनेकी है, वह यह कि छोटे छोटे पुर्ज़े तैयार करनेके लिये कई यंत्र ऐसे होते हैं जो एक बेर बाँध देनेके बाद एक ही प्रकारकी क्रिया असंख्य पुर्ज़ोंपर जल्दी-जल्दी करते रहती हैं। इस प्रकारकी मशीनें जिन्हें आटोमेटिक मशीनें कहते हैं, जहाँ काममें लाई जावें वहाँ इसीमें अच्छा है कि मशीनको एक बेर किसी विशेष क्रियाके लिये बाँध देनेके बाद जहाँ तक हो सके उससे ख़ूब काम ले लेना चाहिये जिससे कई महीनोंके ख़र्चके लायक पुर्ज़े तैयार हो जावें। यहां पर यह बता देना आवश्यक है कि इस अध्यायके आरम्भमें यंत्रोंकी संख्या और उनके लिये आवश्यक स्थानका निर्णय करनेके लिये जो तरकीब बताई गई है उसका यहाँ दुरुपयोग नहीं हो रहा है बल्कि कुछ दूर-दर्शितासे काम लिया जाता है। उदाहरणके लिये मान लीजिये कि एक सप्ताहका काम किसी आटोमेटिक मशीन पर ६ घंटेमें पूरा हो जाता है और उसमेंसे ३ घंटे मशीन को उस विशेष क्रियाके लिये बाँधनेमें लग जाते हैं, तो इस प्रकार असली काम तीन ही घंटे हुआ। जब यहाँ पर उस मशीनको बाँधनेके बाद तीन घंटेकी जगह २१ घंटे लगातार चलाकर ७ सप्ताहका काम तैयार करलें तब ६ सप्ताहके ३ घंटके हिसाबसे जो १८ घंटे मशीनके बाँधनेमें ख़र्च होते वे बच जाते हैं. जो किसी दूसरे काममें लगाये जा सकते हैं। इस लिये जहाँ उचित समझा जाय एक सप्ताहके बजाय कई सप्ताहका काम तैयार कर लेना चाहिये।

कच्चामाल भी थोड़ा-थोड़ा एक सप्ताहके लिये नहीं ख़रीदा जाता, वह भी एक दम बहुत सा ख़रीद लिया जाता है जिससे सस्ता पड़े लेकिन उसके ख़रीदनेकी भी हद होती है और वह सामानकी खपत और बाज़ारके भावको देखकर निश्चित की जाती है।

हर एक प्रकारके तैयार और कच्चे मालके लिये गोदाममें जगहका निश्चय करते समय यह सोचना चाहिये कि वह किस प्रकारका सामान है. उसका कितना ख़र्च होता है—अर्थात् एक-एक, दो-दोकी संख्यामें होता है अथवा अधिक।

(झ)—पैकिंग-विभाग और दफ़्तर आदिः—तैयार मालकी जितनी माँग हो और जितने आर्डर आनेकी आशा हो उसके अनुसार ही पैकिंग, विभागके लिये जगह निश्चित करनी चाहिये। इसके लिये कोई ख़ास नियम नहीं दिया जा सकता। केवल अनुभव ही मार्ग-प्रदर्शक हो सकता है।

जाँच—विभाग, दफ्तर और रंग-साजी आदि विभागों के लिये भी जगहका निश्चय पूर्व वर्णित विधियों और कामके अनुभव द्वारा हो सकता है।

(ञ)—कामके तरीक़ोंको बारीकीसे जाननेकी आवश्यकता:—जिस सामानको तैयार करनेके लिये कारखाना खोलनेका विचार किया है, उस सामानकी बनावट किस प्रकारसे थोड़ेसे समय और थोड़ी सी लागतमें तैयार किया जा सकता है, उसपर कौन कौन सी क्रियायें कौन कौन सी मशीनों द्वारा होंगी और कौन कौन सी हाथसे होंगी इत्यादि, बातोंका पहिलेसे ही पूराज्ञान होना चाहिये और यह भी निश्चय कर लेना चाहिये कि जिस तरीक़ेसे हम सामान पर प्रत्येक क्रिया करेंगे वे तरीक़े सबसे सस्ते, अच्छे और आधुनिक हैं? यदि यह अध्ययन पहिलेसे भली भाँति न किया जावेगा तो फिर बार बार रद्दोबदल करनेमें बड़ी हानि उठानी होगी।

(ट)—मशीनोंकी खरीद:—कारखानेका नक़्शा जमाने के पहिले यह निश्चय कर लेना आवश्यक है, कि बाज़ार में किस किस प्रकारकी मशीनें नहीं लगानी चाहिये बल्कि जहाँ तक हो सके उस सामान पर प्रत्येक क्रिया करने के लिये विशेष प्रकारके यंत्र जो कि उसी प्रकारके समान पर उसी प्रकारको क्रिया करनेके लिये बनाये गये हैं लगाने चाहियें। यह ध्यानमें रखना चाहिये कि इस बातमें कोई भूल हो जानेसे, चाहे वह असावधानीके कारण हो अथवा किसी थोड़ेसे लोभके कारण, बड़ा नुकसान उठाना पड़ता है और फिर उसे सुधारना बड़ा कठिन हो जाता है!

(ट)—पुराने बेढंगे कारखानोंकी हालत।

कई पुराने कारखानोंमें देखा जाता है कि उनकी मशीनें बेढंगे तौर पर लगी हुई हैं, वहाँ तैयारीके लिये सामान बार-बार आगे-पीछे ऊपर नीचे इधर-उधर भेजा जाता है। कई बेर सामान लेजानेवालों के लिये रास्ता रुक जाता है। मशीनें इतनी पास पास लगाई हुई हैं कि काम करनेवालोंके लिये चलने फिरने, कच्चा और तैयार सामान रखनेके लिये काफी जगह ही नहीं होती। कई बेर तो यहाँ तक होता हैं कि मशीन पर काम करनेवालोंको अपनी जगह छोड़कर हट जाना पड़ता है तब दूसरे आदमीको वहाँसे रास्ता मिलता है। जगह जगह कोनोंमें अँधेरा रहता है, वहाँ रोशनी करनी होती है। मशीनोंके माल का जंगल सा लगा रहता है। कई कोठरियाँ इतने एकान्त में होती हैं कि उनमें काम करनेवाले आदमी बेखटके अपना समय नष्ट किया करते हैं, उन्हें कोई देखनेवाला नहीं होता। कई बेर निरीक्षकोंको कई मंज़िलोंपर होनेवाला काम सम्भालना पड़ता है। पुराने कारखानोंमें देखा जाता है कि कारीगर लोग लोहेके गज़ और काला धागसे पुर्ज़ोंको नापते हैं। उनके पास कोई मेज़ नहीं होते जिनसे जल्दी-जल्दी और सही नापा जा सके। कारीगरोंको नक़्शे नहीं दिये जाते, निरीक्षक लोग कामको जबानी समझा देते हैं और कारीगर लोग अपनी स्मरणशक्ति और विचारके अनुसार काम करते हैं। कई भागोंमें साफ़ हवा बिल्कुल नहीं आती, बल्कि तेल आदिकी दुर्गन्ध आती रहती है। अँधेरे कोनों और ठीयोंके नीचे कारीगर लोग बिगड़े हुए पुर्ज़ों को फेंक देते हैं जो बर्षों तक वहीं पड़े रहते हैं। उनका कोई हिसाब पूछनेवाला नहीं होता। उन कारखाने-में किये हुए किसी भी कामका हिसाब, वर्णन या सूचना किसी रजिस्टरमें नहीं लिखी जाती, केवल निरीक्षकों और पुराने कर्मचारियोंकी स्मरण शक्तिपर ही भरोसा किया जाता है। नये-नये अविष्कारोंसे कोई लाभ नहीं उठाया जाता, पुरानी घिसी हुई मशीनोंसे ही काम निकालनेकी कोशिश की जाती है, चाहे कितना भी समय ख़र्च हो जावे। क्या इस प्रकारके कारखानेसे आजकलके वैज्ञानिक युगमें व्यापारिक तीव्र प्रतिस्पर्धाके रहते हुए कोई लाभ उठा सकता है?

(ठ)—कारखानेकी इमारतका तर्ज़:—जब यह निश्चय होजाय कि प्रत्येक विभागके लिये हमें इतनी जमीनकी आवश्यकता है, तब उसके भविष्य विस्तार आदिका ख़्याल रखते हुए हम अंदाजा लगा सकते हैं कि हमें कुल कितनी ज़मीनकी आवश्यकता पड़ेगी। यहाँ इस सम्बन्धमें यह बता देना है आवश्यक है कि कारखानों-की अकसर दो प्रकारकी इमारतें हुआ करती है। एक तो वे, जो एक मंजिला होती हैं, जिनकी छतें ढाल होती हैं। दूसरी प्रकारकी इमारतें वे होती हैं जो गोदामके तर्ज़पर कई मंजिलोंमें बनी होती हैं।

जहाँ छोटा और हल्का सामान तैयार किया जाता हो, हल्की हल्की मशीनें काममें आती हों, और जहाँ खम्भोंकी

दूरी या महराबकी चौड़ाई १६ फ़ीटसे २५ फ़ीट तक रखनेमें कोई हानि न हो वहाँ दो या अधिक मंजिल बनानेमें लाभ रहता है। ऐसी इमारतोंमें ज़मीनकी काफ़ी बचत हो जाती है। जहाँ पर २५ फ़ीट लम्बी चौड़ी जगहसे अधिक जगहकी एक छतके नीचे आवश्यकता होती है, वहाँ अकसर टीनकी छतें लगाकर एक मंज़िला इमारतें ही बनाई जाती हैं। क्योंकि २६ फ़ीटसे अधिक दूरीके खंभों या चौड़े महराबके ऊपर दूसरी मंजिल बनानेमें अधिक ख़र्चा बैठ जाता है। एक मंजिला इमारतमें मालकी भीतरी बारबरदारीके ख़र्चेमें बहुत कुछ कमी हो सकती है। इस प्रकारकी इमारत जहाँतक हो सके लम्बी चौड़ी एक ही छतमें बनाई जावे अर्थात् उसमें अलहदा अलहदा कमरे न बनवाये जावें तो वह बहुत सस्ती बन सकती है। उसमें अच्छी रोशनी और हवा मिल सकती है, बुनियाद का ख़र्चा थोड़ा होता है। दीवारोंमें मशीनोंके चलनेसे थरथराहट कम होती है। निरीक्षकोंके लिये भी, एक छत के नीचे होनेवाले कामको सम्भालना सरल होता है। हरएक कमरेकी लम्बाई-चौड़ाई इतनी होनी चाहिये कि उसमें जिस तरहसे चाहें सामान और मशीनोंको जमा सकें। ध्यान रखना चाहिये कि कमरेकी चौड़ाई जितनी अधिक होगी उतनी ही छतमें अधिक लागत बैठेगी। और यदि उस छतमें खिड़कियाँ न होंगी तो उतनी ही अधिक ऊँची छत बनानी पड़ेगी। जिससे उत्तरकी दीवारमें इतनी ऊँची खिड़कियाँ बनाई जा सकें, जिनके कारण सारे कमरेमें रोशनी फैल जाय। यदि उस कमरेमें कोई क्रेन चलानेकी आवश्यकता हो अथवा मशीनोंके लिये कोई भारी शाफ्ट लगाना हो तो भी छत को ऊँचो बनाना आवश्यक होगा।

(ड) सन् १९११ ई० के भारतीय कारखानोंके क़ानून और उसके सन १९२२ ई० के संशोधनके अनुसार कारखानोंकी इमारतोंमें निम्नलिखित बातें होनी चाहिये।

१—जिस कारखानेमें कोई स्वयंचालक यंत्र अथवा बिजलीकी मोटर द्वारा कोई मशीनें नहीं चलाई जाती वहाँ प्रति आदमी पीछे कमसे कम ३६ वर्गफ़ीट स्थान और कमसे कम ५०० घनफ़ीट जगह स्वाँस लेनेके लिये होनी चाहिये।

२—जहाँ मशीनोंको चलानेके लिये कोई स्वयंचालक यंत्र अथवा बिजलीकी मोटर काममें आवे वहाँ कमसे कम प्रति कर्मचारी पीछे ७०० घनफ़ीट जगह स्वाँस लेनेके लिये होनी चाहिये।

३—प्रत्येक कर्मचारीके लिये ताले कुंजीवाली सन्दूक रखनेके लिये भी कुछ जगह होनी आवश्यक है। कर्मचारियोंके भोजन और प्यासके लिये किसी साफ़ हवादार जगहमें प्रबंध होना चाहिये। यदि किसी कर्मचारीके कभी चोट वग़ैरह लग जावे तो उसकी मरहम, पट्टी और सेवाके लिये भी उत्तम स्थानका प्रबन्ध होना चाहिये।

इमारतें, असलमें भीतर रहनेवाले लोगों और सामानको सरदी, गरमी, धूप और बरसातसे बचानेके लिये बनाई जाती हैं और साथ ही इस लिये भी कि कारखानेका क़ीमती समान औज़ार और मशीनें वगैरह चोरी न चली जावें। इस लिये इमारतको बनाते समय ध्यान रखना चाहिये कि वह इमारत इस प्रकारकी हो जिसमें सदैव एकसा तापक्रम रहे, खूब रोशनी आवे, यहाँकी हवा गंदी न हो और चोरीका भय न हो। छतोंमें से बरसातका पानी न चूने पावे, लेकिन ऊपर ही ऊपर बह कर नालियोंमेंसे निकल जावे। इमारतकी कुर्सी भी इतनी ऊँची होनी चाहिये जिसमें आस पासके पानीके बहाव और बाढ़का पानी कारखानेमें न भर जाय।

भारतवर्ष जैसे गरम देशोंमें जहाँ धूप बड़ी तेज पड़ती है वहाँ धूपकी गरमीसे बचानेके लिये इमारत पूर्वसे पश्चिम की तरफ लम्बी बनानी चाहिये और उत्तरकी तरफवाली दीवारमें बड़ी बड़ी खिड़कियाँ बना देनी चाहियें। किसी कारण वश यदि इमारत उत्तरसे दक्षिणकी तरफ लम्बी बनानी पड़े तो उसकी छत आरेके दांतोंके ढंगकी बनानी चाहिये, जिसके उनकी छतमें उत्तरकी तरफ खिड़कियाँ रख कर रोशनी लेली जावे।

दोनों तरफ़ ढालू छत बनानेसे यह लाभ नहीं हो सकता। किसी कारण वश पूर्वसे पश्चिमकी तरफ बनाई जानेवाली इमारत यदि चौड़ाईमें अधिक बनानी पड़े जो एक महराबमें न आ सके और जिसमें उत्तरकी खिड़कियाँ द्वारा रोशनी न पहुँच सके तो एकसे अधिक २० से २५ फ़ीट तकके महराब बनाकर चौड़ाईमें

आरेके दाँतोंकी तरह छत बना देनी चाहिये जिससे उत्तरकी दीवार खिड़कियोंके अलावा प्रत्येक महराबपर भी छतमें उत्तरकी तरफ रोशनी आनेके लिये खिड़कियाँ बनाई जा सकें।

(ढ़) इमारतका मसाला:—

इमारत बनानेके मसालेके विषयमें भी यहाँ कुछ विचार करना आवश्यक है। स्थानीय कारणोंसे मसालेमें भिन्नता होजाती है जिसके कारण इमारतकी तर्ज़में भी भिन्नता आ जाती है। कई बेर मसालेका चुनाव कामको देखकर उसके अनुसार किया जाता है, वहाँ खर्चे आदिका ख़्याल छोड़ देना पड़ता है।

जहाँ तक हो सके इमारत ऐसे मसालेसे बनाई जानी चाहिये जिसपर आगका असर न हो। दीवारें केवल ईंटोंसे केवल पत्थरोंसे ईंट और स्पातके ढाँचे, चद्दर, और जालियों द्वारा बनाई जाती हैं। जिन प्रांतोंमें ईंटें सुलभता से प्राप्त हो सकती हैं वहाँ ईंटोंका प्रयोग करना ही लाभ-दायक हो सकता। ईंटोंसे दीवारें अच्छीं, जल्दी और थोड़े ख़र्चेमें बनाई जा सकती हैं। लम्बी दीवारोंको, बीच बीचमें स्पातके खम्भे लगाकर, मज़बूत बना सकते हैं।

स्पातके ढाँचे और ईंटोंसे इमारत बनानेमें एक बड़ा भारी लाभ यह है कि जब भी आवश्यकता हो, महराबोंके बीचमें ईंट, जाली, चद्दर अथवा लोह पुष्ट कंकरीटकी चौकियोंकी परदी बना कर आसानीसे लगाई जा सकती है जो स्पातके खंभों और छतके शहतीरोंके बीचमें मजबूतीसे ठहर सकती है। इस प्रकार एक बड़े कमरेके कई छोटे-छोटे भाग सस्तेमें बन सकते हैं।

आज कल लोह पुष्ट कंकरीटकी इमारतें बनानेका भी बहुत रिवाज हो गया है। जो कारखाने आबादीसे बहुत दूर बनाये जाते हैं, जैसे कि आर्द्र-विद्युत-शक्ति-गृह आदि, वहाँ लोह पुष्ट कंकरीटकी इमारत बनाना बड़ा लाभ-दायक और उपयोगी होता है, क्योंकि एक तो, वहाँ कंकरीट बहुत कम ख़र्चमें प्राप्त हो जाती है और दूसरे, वहाँपर स्पातके बड़े बड़े शहतीरोंकी आवश्यकता नहीं पड़ती। इस लिये निर्जन स्थानोंमें उन्हें पहुँचानेका जो बेहद खर्च होता है, वह बच जाता है। इस प्रकारकी इमारतोंमें एक बड़ा भारी ऐब यह रहता है कि वे जिस कामके लिये बनाई जाती हैं, बादमें उसके अलावा किसी दूसरे काममें नहीं आ सकती। जब तक कि उनके बनाते समय ही इस बातका ध्यान न रक्खा जाय।

स्पातके ढाँचों, चद्दरों और जालियों द्वारा इमारते वहीं बनाई जाती हैं जहाँ थोड़ेसे समयके लिये ही काम चलाना हो। इनमें टूट फूट और मरम्मतका ख़र्च अधिक होता है। सरदी गरमी और बरसात आदिका बचाव भी बहुत कम होता है। शहर और कसबोंमें इस प्रकारकी इमारतें बनानेके लिये वहाँको सरकारसे आज्ञालेना भी आवश्यक होता है।

जंगलके हानिकारक कीड़े (२)

[ले०—श्री पी० एन० चटर्जी, एम० एस-सी०]

मैंने विज्ञान के फरवरी अङ्क में इस सिलसिले का प्रथम भाग लिखा है। जिसमें सागोन पेड़के एक मुख्य डिफ़ोलियेटर या पत्र-भक्षक (हेपलिया मैकेटेलिस्) के एक परोपजीवी कृमि (एपेनटेलिस् मैकेरेलिस्) का वर्णन किया है। इस अंकमें हपेलिया मैकेटेलिस्के दो परोपजीवियोंका वर्णन किया गया है।

ऐपेनटेलिस् रुइडस् बिलाकनसन्

इस परोपजीवीका मुख्य पालक हपेलिया मैकेटेलिस वाकर् है जो सागोन पेड़का पत्र-भक्षक है। इसका दूसरा पालक भी है—पाइरोसटा सिलटिलिस् जो कैलीकारया आरबोरीआ पेड़का पत्र-भक्षक है। यह परोपजीवी तीन जगहोंमें पाया गया है—होशंगाबाद, राहटगाँव, और देहरादून।

तरुण अवस्था वाला परोपजीवी २·० मिलीमीटरसे २·५ मिलीमीटर लम्बा होता है। उसका रंग काला है और ऐनटेनी गहरा भूरा है। पैरका रंग कुछ लाल है। परोपजीवीका लार्वा अर्थात मैगोट अपने पालक लार्वाके अन्दर रहता है और उसको खाता रहता है और बेचारा

पालक इस प्रकार अपना जीवन दूसरेके लिये दे देता है। यह मालूम किया गया है कि हपेलिया मैकेरेलिसके एक लार्वाके अन्दर १२ परोपजीवी भलीभाँति बढ़ सकते हैं और पैरासाइटके दूसरे पालक पाईरोस्टा लार्वाके अन्दर अधिकसे अधिक १४ व्यक्ति पाये गये हैं। आखिरी अवस्था वाली मैगोट पालकके अन्दरसे निकल आती है, और मैक्रोटेलिसके रेशमके जालके अन्दर अपना रेशमका कोवा कातने लगती है। पैरासाइटका कोवा थोड़ा लम्बा होता है और रंग कुछ हरा-सफेद या कुछ आसमानी-हरा होता है।

पैरासाइटकी संक्षेपमें जीवन कहानी :—

मैगोट अवस्था=१६—२० दिन (नवम्बर-दिसम्बर)

कोवा अवस्था = ५—६ दिन (आखिरी सितम्बर)

" =१२—१४ दिन (नवम्बर)

" =१५—१८ दिन (दिसम्बर)

" =२२—२४ (जनवरी)

यह देखा गया है कि जब तापक्रम घटता है। परोपजीवोके बढ़नेकी गति भी घटती है, परन्तु यह ज्ञात होता है कि यह परोपजीवी सुप्तावस्थामें नहीं रहता।

सेड्रोया पैराडोक्सा विलकिनसन

इस परोपजीवीके बहुतसे पालक हैं, जो अनेक जातिके पेड़ोंके पत्र-भक्षक हैं, परन्तु विशेष पालक मैकेटेलिस् है जो सागोन पेड़का पत्रभक्षक है। यह परोपजीवी देहरादून और सहारनपुरमें पाया जाता है। पिछले वर्ष इस परोपजीवीका झुंड मद्रास (निलाम्बर) में बसाया गया और ये प्राकृतिक दशामें भी पाये गये हैं।

पैरासाइटका अंडा देना :— मादा परोपजीवी जब एक हपेलीया मैकेटेलिस् लार्वाको ढूँढ पाती है, तो सबसे पहिले पैरासाइट पालकको शिथिल कर देती है। अपने डंक या ओवोपोजीटर को अत्यन्त चतुराईसे पालकके बदन पर घुसा देती है और ज़हर डाल देती है जिससे कि पालक शिथिल हो जाये, परन्तु पालक मर नहीं जाता। यह देखा गया है कि २४ घंटेके अन्दर पालक लार्वा बिलकुल शिथिल हो जाता है और तब मादा परोपजीवी निःसंदेह शिथिल पालकके बदनके ऊपर अंडे देना आरम्भ कर देती है। प्रायः हर प्रकारसे १२ अंडे एक समयके अन्दर दे देती है और यह अंडे सब एक जगह पालकके बदनके एक टुकड़ेके ऊपर देती है। यह देखा गया है कि एक पैरासाइट अधिकतम २६ अंडे दे सकती है।

परोपजीवी अंडेकी तसवीर कुछ लम्बी है और प्रायः एक बेलनकी तरह है। परन्तु यह एक ओरसे तंग और हुआ है। अंडेकी माप ·४२ × ०·२ मिलीमीटर है। नये अंडेका रंग कुछ मक्खन सा सफ़ेद होता है। जब अंडा पुराना हो जाता है तब उसके अन्दर बच्चा मैगोट अपूर्ण दशामें दिखलाई देता है। जब तक अंडेसे बच्चा नहीं
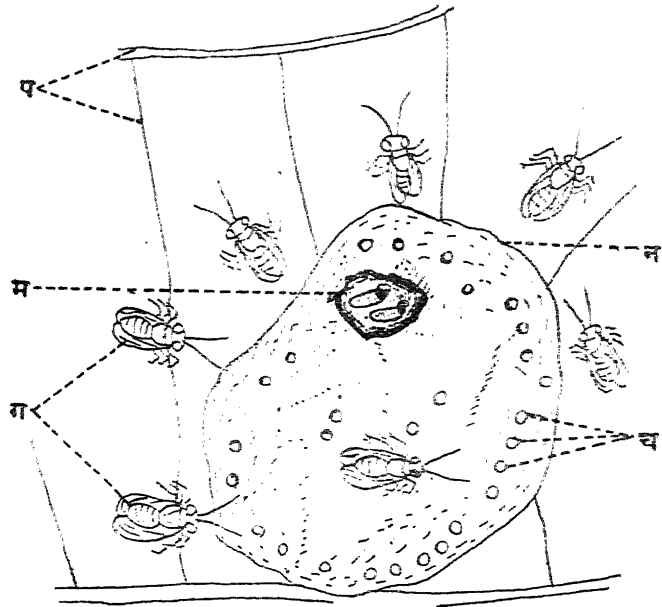
चित्र १—मादा सेड्रीया पैराडक्सा पालकके ऊपर एक झुंडमें अंडे दिये हैं और अंडोकी देख भाल कर रही है।

निकलता है, तब तक पैरासाइट अंडेके झुंडकी देख भालमें सर्वदा लगा रहता है।

मैगोट या लार्वा:—जब अंडेसे बच्चा मैगोट निकल आता है, तब वह पालकके बदन पर फिरने लगता है और उसको खाने लगता है। नया निकला हुआ मैगोट पारदर्शक

होता है। दूसरे दिन कुछ ललाई आ जाती है, जो प्रायः पालकके चमड़ेके रंगकी होती है। तीसरे दिन रंग कुछ और ज़्यादा लाल होता है और ऊपरकी ओर कुछ सफ़ेद बुंदी लाइनमें दिखाई देने लगती है। जैसे जैसे मैगोट बढ़ते जाते हैं, वे पालकके सारे बदनमें फैल जाते हैं और चौथे दिन तक पालकको छिपा लेते हैं। आखिरी अवस्थावाली मैगोट कुछ लाल-नारंगीके रंगकी होती है जिसके बदन पर पीले बुंदियोंकी धारियाँकी दिखाई देती है। मैगोटका पहिले दिनका माप = ०.४२ × ०'१८ मिलीमीटर; मैगोटका दूसरे दिनका माप = ०'६० × ०'२८ लिटीमिटर; मैगोटका तीसरे दिनका माप = १'७५ × ०' ६० मिलीमीटर; मैगोटका चौथे दिनका माप ३'०० × १'०० मिलीमीटर।

पैरासाइटका प्यूपाः—कक्कून वा कोवा बनानेके पहिले मैगोट रेशमकी सहायतासे सागोन पत्तेपर एक प्रायः गोल घर बनाती है। यह घर कुछ लाल—सफ़ेद रङ्गका होता है और इस घरकी सूरत मकड़ेके घरकी तरह होती है जिसमें मकड़ी अंडा देती है। इस घरके पास मुर्झाया हुआ पालक पड़ा रहता है। अब इस घरके अन्दर प्रत्येक मैगोट अपना सफ़ेद कोवा बनाते हैं।

पैरासाइटका निकलना :—इन कोवों-से एक एक करके पैरासाइट एक छोटा छेद बना कर निकलते हैं। जब सब परोपजीवी निकल जाते हैं, तब घरके ऊपर छोटे छोटे छेद दिखाई देते हैं।

जीवन कहानी:—इस परोपजीवीकी जीवन कहानी और मौसमी परिवर्त्तन प्रायः पालकके अनुकूल है। सालके आखिरी चार महीनोंमें पैरासाइटकी भिन्न अवस्था कृमिशालामें बढ़ा कर मालूमकी गयी है, जो निम्नलिखित है।

महीना	शादी और अंडा देना	अंडा अवस्था	लार्वा अवस्था	प्यूपा अवस्था	कुल जीवन कहानी
सितम्बर	३	१	४	६	११
अक्टूबर	३	१	४	८	१३
नवम्बर	३	२	५	१४	२१
दिसम्बर	६	३	११	१९	३३

यह देखा गया है कि कृमिशालामें जितने परोपजीवी पैदा किये गये हैं मादा परोपजीवीकी तादाद नरसे कहीं अधिक थी। १५८ परोपजीवीमें से ८४% मादा, और १६% नर। यह परोपजीवी बिना शादीके भी पैदा हो सकता है। परन्तु इस हालतमें सब नर निकलते हैं। यह हाल हैपेनरेर्लाल् मैकेटेलिस्के साथ भी है।

मादा परोपजीवीके बच्चोंकी देखभाल :—यह सदा देखा गया है कि केवल एक ही पालकको एक परोपजीवी शिथिल करती है और उसीके पास मरते समय तक रहती है। मालूम यह होता है कि निःसन्देह परोपजीवी पालकके बदनसे रस चूस कर जीवित रहती हैं। जिस प्रकार
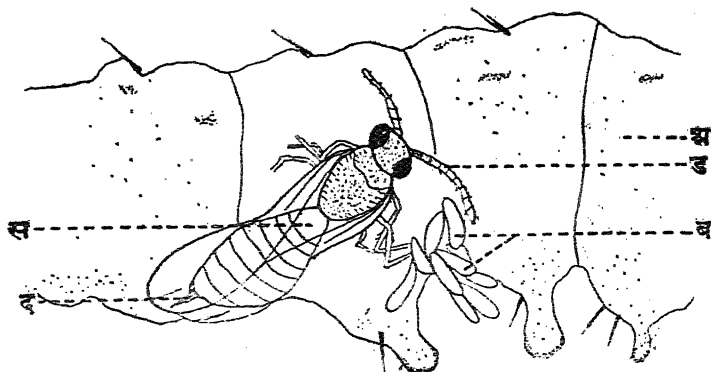
चित्र—२ पालक (हपेलिया मैकेरेलिस) के ऊपर पैरासाइट (ऐड्रोया पेराडक्सा) के मैगोट फैले हुये हैं और खा रहे हैं। पालककी दशा इस समय सूकड़ी हुई है।

मादा परोपजीवी अपने बच्चोंको देखभाल करती है, यह बहुत ही आश्चर्य जनक है। कितना ही परोपजीवीको तंग करो, फिर वहीं आजाती है कभी उड़ने या अपनेको बचाने की चेष्टा नहीं करती है। शायद परोपजीवी अपने बच्चोंको दुश्मनोंसे बचा कर रखती है।

तरुण परोपजीवीकी पूर्ण आयु साधारण हालतमें मादे परोपजीवीकी आयु जैसा कि ऊपर लिखा है, अपने बच्चोंकी आयुसे अधिक होती है। परन्तु नरका जीवन बहुत कम है। २८ दिन मादा पैरासाइट और ८ दिन

नर। जब जाड़ा पड़ने लगता है, तब यह परोपजीवी सोने जाता है।

अप्रेल और मईके महीनेमें यह देखा गया है कि परोपजीवी साधारण हालतमें अधिकसे अधिक २५ दिन जीवित रहा (प्रयोगशालाका तापक्रम ७७°–८५°फ) और कोल्ड स्टोरेजमें ४५ दिन (कोल्ड स्टोरेजका तापक्रम ५०°–६०° फ)।

कीलोनेला एस-पी॰

इन परोपजीवीका मुख्य पालक हपेलिया मैकेटेलिस् है, जो सागोनके पत्तोंको चाट जाता है। यह केवल अभी तक होशंगाबादमें ही पाया गया है। यह औरोंकी तरह पालकके अन्दर अपनी लार्वा-अवस्था बिताता है। परन्तु केवल एक व्यक्ति एक पालकके अन्दर बढ़ता है। यह देखा गया है कि परोपजीवीका लार्वा, पालकके अन्दर ११ दिन (जुलाई) तक रहता है और फिर बाहर निकल कर एक रेशमका कोवा बना लेता है। यह कोवाकी अवस्थामें ५ से ८ दिन तक रहता है (जून और सितम्बरके महीनोंमें)।

क्रेमनप्स डेज़रटर

इस परोपजीवीका मुख्य पालक होलिया मैकेटेलिस है, जो सागोन पेड़का पत्रभक्षक है। यह विशेष करके ब्रह्मामें पाया गया है, परन्तु देहरादूनमें भी मिला है (गर्मियोंके छुट्टीमें)। इस परोपजीवीकी पूरी जीवन कहानी मौसिमके अनुकूल १६–३८ दिनकी होती है। यह अन्दर अंडा देती है और इसका लार्वा अन्दर खाता रहता है और फिर बाहर निकल कर एक कोष बना लेता है।

माइक्रोब्रेकोन एस-पी॰

इस पैरासाइटका मुख्य पालक हेपलिया मैकेरेलिस् है जो सागोन पेड़की पत्तियोंको जालके प्रकारका बना देता है। यह पैरासाइट देहरादूनमें मिलता है।

जीवन-कहानी:—पैरासाइट एक मैकेरेलिस् लार्वाके ऊपर चढ़ बैठती है और पालक ऊपरके नीचेके भागमें अंडे दे देती है। अंडा देते समय पैरासाइट अपनी डंक अथवा ओवीपोजीटरको कुछ दूर तक निकाल देती है, और फिर उचित जगह ढूंढ़कर अंडे देती है। पैरासाइट एक अंडे भी देती है और कभी कभी एक झुंडमें अधिकतम ८ अंडे दे देती है। अंडे की माप ०·५×०·१३ मिलीमीटर है। नवम्बरके महीनेमें अंडेसे २-३ दिनके अन्दर बच्चा निकल आता है। पैरासाइट अपने ओवीपोजीटर से पालकको चुभोती है और इस प्रकार शिथिल कर देती है कि फिर जहाँ जहाँ चुभोया है, उस जगह पालकके बदनसे रस निकल आता है इसको पैरासाइट खाती है। माइक्रोब्रेकोनके लार्वे सब एकत्र होकर पालकको बाहरसे खाने लगते हैं और अन्तमें एक कतार करके पालकके करीब प्यूपा बन जाते हैं। कोवाका रंग मटीला-सफेद होता है और उसका माप १×२ मिलीमीटर है। नवम्बरके महीनेमें कोवा-अवस्था ९-१० दिनका होता है। तरुण पैरासाइट १४-२८ दिन तक जीवित रही। मादे पैरासाइट बिना शादी सब नर
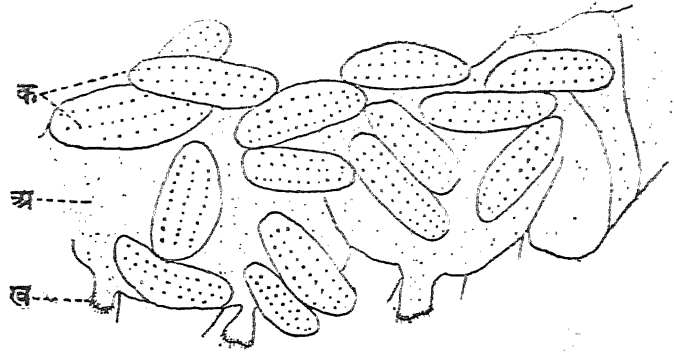
चित्र—३ आखरी अवस्था वाली मैगोट एक घर बना लिया है और इस घरके अन्दर मैगोट अपना कोवा बनाते हैं। इस घर (कोवोंका झुंड) के ऊपर छोटे-छोटे छेद दिखाई देते हैं, जिसमें से बच्चे सेड़ीया निकले हैं और टहल रहे हैं। इस घरको एक जगह काट कर (म) उसके अन्दर दो कोवा दिखाया है, जिसकी टोपी काटकर पैरासाइट निकल आता है।

अ = पालक
ह = पैनटेनी

ब = अंडे

द = ओभीपोजीटर

स = मदि सैडूीया पैराडाक्स

क = आखिरी अवस्था मैगोट

ख = पालकके उदरके पैर

प = रेशमके सूत

म = दो कोवा घरके अन्दर

ग = बच्चे सैडूीया पैराडोक्सा अभी निकले हैं।

न = कोवोंका झुंड या घर

च = छोटे-छोटे छेद जिसमें से बच्चे निकले हैं।

बच्चे पैदा करती हैं।

माईक्रोगेस्टर इनडिकस

इस पैरासाइटका मुख्य पालक हेपलिया मैकेरेलिस है, जो सागोन पेड़ोंका पत्र-भक्षक है। यह बहुत जगहोंमें पाया गया है—होशङ्गाबाद, नीलाम्बर, गंजाम, देहरा-दून।

जीवन कहानी:—तरुण पैरासाइट भूरे रंगका होता है और स्पष्ट कुछ काला-भूरा या कुछ गहरा लाल दाग छाती और आखिरी तीन उदरके भागोंमें पाया जाता है। यह परोपजीवी बड़े पालकके अन्दर अपनी लार्वा-अवस्था व्यतीत करता है। केवल एक परोपजीवी एक पालकके अन्दर रहता है। आखिरी अवस्था वाला लार्वा पालकके बाहर निकल आता है और एक बेलनकी सूरतका रेशमका कोवा बनाती है। इस परोपजीवीको बहुत कुछ ऐवाकारेलिस् मैकेरेलिस्के कोवासे मिलता जुलता है, परन्तु यह कुछ छील देता है। यह देखा गया है कि सितम्बरके महीनेमें लार्वा अवस्था १० दिनकी होता है, कोवा अवस्था ८ (सितम्बर), १३ दिन (नवम्बर) और अधिकतम ३४ दिन (दिसम्बर-जनवरी)।

विषय-सूची

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग।

Only Cover Printed at The Indian Press, Ltd., Allahabad

ई, १९३९ मूल्य ।)

प्रयाग की विज्ञान-परिषद् का मुख-पत्र जिसमें आयुर्वेद विज्ञान भी सम्मिलित है

ा ४९. संख्या २

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces & Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

विज्ञान

पूर्ण संख्या २९०

वार्षिक मूल्य ३)

नियम

(१) विज्ञान मासिक पत्र विज्ञान-परिषद्, प्रयाग, का मुख-पत्र है।

(२) विज्ञान-परिषद् एक सार्वजनिक संस्था है जिसकी स्थापना सन् १९१३ में हुई थी। इसका उद्देश्य है कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययन को प्रोत्साहन दिया जाय।

(३) परिषद् के सभी कर्मचारी तथा विज्ञान के सभी सम्पादक और लेखक अवैतनिक हैं। मातृभाषा हिन्दी की सेवा के नाते ही वे परिश्रम करते हैं।

(४) कोई भी हिन्दी-प्रेमी परिषद् की कौंसिल की स्वीकृति से परिषद् का सभ्य चुना जा सकता है। सभ्यों को ५) वार्षिक चन्दा देना पड़ता है।

(५) सभ्यों को विज्ञान और परिषद् की नव-प्रकाशित पुस्तकें बिना मूल्य मिलती हैं।

नोट—आयुर्वेद-सम्बन्धी बदले के सामयिक पत्रादि, लेख और समालोचनार्थ पुस्तकें 'स्वामी हरिशरणानंद, पंजाब आयुर्वैदिक फ़ार्मेसी, अकाली मार्केट, अमृतसर' के पास भेजे जायँ। शेष सब सामयिक पत्रादि, लेख, पुस्तकें, प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र तथा मनीऑर्डर 'मंत्री, विज्ञान-परिषद्, इलाहाबाद' के पास भेजे जायँ।

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ४९ | प्रयाग, मेषार्क, संवत् १९९६ विक्रमी | मई, सन् १९३९ | संख्या २

बच्चोंका भोजन

[ले०—उमा शंकर प्रसाद एम० बी०. बी०. एस०]

बच्चोंके भोजनमें भी वही आवश्यक वस्तुयें रहनी चाहिये जो बड़ोंके समतुलित भोजनमें होती हैं, और उनकी मात्रा उम्रके अनुसार बढ़ती रहनी चाहिये। भोजन-की मात्रा ऐसी होनी चाहिये जिससे शरीरको आवश्यक कलारोकी शक्ति मिल सके। यह शक्ति मुख्य भोजनके शर्करा वसामयके भागसे मिलती है। उचित मात्रामें प्रोटीन भी परमावश्यक है जिससे शरीरके अंग बढ़ने तथा माँस पेशियों आदिके घिसे भागको नया बनानेमें काम आये। चूँकि बच्चे बहुत जल्द बढ़ते हैं। इसलिये उनके बढ़ते अंगोंकी बनावटके लिये प्रोटीन विशेष रूपसे आवश्यक है। साथ ही भोजनमें खनिज लवण, और जलकी मात्रा-का भी उचित रूपमें रहना आवश्यक है जिससे स्वास्थ्य अच्छा रहे। इस बातसे निश्चिंत रहनेके लिये कि भोजनमें सभी आवश्यक वस्तुयें उचित मात्रामें हैं, हमें चाहिये कि बच्चोंको जल्दसे जल्द साधारण मिश्रित भोजन देना प्रारंभ कर दें और ध्यान रक्खें कि इस भोजनमें प्रोटीन भाग दाल, फल तथा हरा शाक अवश्य उचित मात्रामें हो।

बच्चोंका भोजन

बच्चोंका भोजन दूध ही है जिसमें लोहेको छोड़ कर अन्य सभी आवश्यक भाग उचित मात्रामें और सरलतासे हज़म होनेके रूपमें पाये जाते हैं। ३ माहकी अवस्था पर या कुछ पहले, ऐसे बच्चोंमें जिन्हें किसी कारण मांका स्तनपान नहीं मिलता है और बोतल द्वारा बनावटी दूध दिया जाता है, विटेमिन-सी की कमीको पूरा करनेके लिये ताज़े संतरेका रस भी देना आवश्यक है। इसके देनेकी सबसे सरल और बढ़िया रीति यह है कि रसमें पानी मिला कर पतला कर ले और कुछ चीनी डाल कर मीठा भी बना दे। शुरूमें चायकी एक चम्मचकी मात्रामें देना चाहिये और यह मात्रा बढ़ाते बढ़ाते बच्चेकी ६ माह की अवस्था तक पूरे संतरेका रस निचोड़ कर देना चाहिये। इसके बादसे नित्य एक संतरेका रस निचोड़ कर या एक संतरा खानेके लिये बराबर देना उचित है क्योंकि हम जानते हैं कि विटेमिन-सी नित्यके भोजनमें कमसे कम एक संतरेकी रसकी मात्रातक आवश्यक है। यदि संतरा

पसन्द न हो या न मिले तब टमाटरका रस देना चाहिये। बुख़ारमें शरीरको विटेमिन-सीकी अधिक आवश्यकता पड़ती है इसलिये ऐसी हालतमें संतरेके रसकी मात्रा बढ़ा देनी चाहिये। फलोंका विटेमिन-सी बहुत जल्द खराब हो जाता है। इस लिये ताज़ा ही फल हमेशा काममें लाना चाहिये। गरम करनेसे या रसको देर तक निचोड़ कर हवामें रखनेसे ओषदी करणके कारण विटेमिन-सी बहुत जल्द नाश हो जाता है। इस लिये फलके रसको निचोड़नेके बाद शीघ्रही काममें लाना चाहिये और इसका जितना ही सेवन करे उतना ही बढ़िया है।

४ माहके बाद साधारण बच्चों और बोतल द्वारा ऊपर का दूध पीनेवाले बच्चोंको कुछ सप्ताह बाद ही चायकी एक चम्मचकी मात्रामें मछलीका तेल भी (जिन्हें आपत्ति नहो) सुबह और शाम नित्य देना चाहिये जिससे विटेमिन-ए और डी भोजनमें उचित मात्रामें आ जाँय। गरमीके दिनोंमें मछली का तेल कुछ माहके लिये नहीं दिया जा सकता है। स्कूली बच्चोंके लिये मछलीके तेलको विशेष आवश्यकता है, क्योंकि इसी अवस्थामें बच्चे बहुत बढ़ते हैं और पढ़ाईमें परिश्रम भी करना पड़ता है। मछलीके तेलके तेज़ सतसे साधारण मछलीका तेल जिसमे जौ का सत मिला हो, बढ़िया होगा। जिन लोगोंको किसी कारण मछलीका तेल खानेमें आपत्ति हो, वे बच्चोंको समुचित मात्रामें दूध पिलावें। भोजनमें विटेमिन-ए और-डी और प्राकृतिक अवस्थामें दूध, तथा दूधको वस्तुयें विशेषकर मक्खन, और अंडे, पाशविक बसा और ग्रन्थिक अंगोंमें पाई जाती हैं। हरी तरकारियोंमें केरोटीन रहता है जिससे विटेमिन-ए बनता है। चर्बीमें घुलनेवाली विटेमिन जैसे ए और-डी गरमीसे बहुत जल्द नहीं नाश होती हैं। यदि बच्चा मछलीका तेल पीना पसन्द न करे या हज़म न कर सके तो उस अवस्थामें इन तेलोंकी सत हेलीवेरोलका प्रयोग करना चाहिये। इन ओषधियोंमें यह विशेषता है कि अनुपान-मात्रा कुछ बूंद ही होती है और विशेष स्वाद न रहनेसे किसी खाने या पीनेकी वस्तुमें मिली दी जा सकती है और बच्चोंको इसका पता भी नही लग सकता इन औषधियोंको शरीरका बोझ कम करनेके लिये फाका करते समय भी सेवन किया जाता है।

विटेमिन-बी भोजनमें, दूध, फलोंका रस, बादमें अंडा, सब्ज़ी तथा दालसे मिलता है यह विटेमिन खाना बनानेके लिये गरमी तथा ओषदी करणसे बहुत आसानीसे नहीं खराब हो जाता और बहुतसी खाद्य-वस्तुओंमें पाया जाता है। कभी-कभी मारमाइट भी खिलाना चाहिये। इसमें विटेमिन-बी अधिक मात्रामें होता है। इससे भूखभी बढ़ती है। इस लिये जिन बच्चोंके भूख न लगे, तौल घटता हो और जिन्हें उचित मात्रामें भोजन न मिले उनके लिये मारमाइट १ चम्मच नित्य विशेष उपयोगी होगा।

६ माहकी अवस्थासे आगे

बच्चेकी खूराकमें ६ माहकी अवस्थाके बाद अंडे भी आने चाहिये। यदि अंडासे परहेज़ हो तो इसके स्थानपर दूधकी अधिक मात्रा या सूखे फल जैसे, बदाम, अखरोट, किशमिश, पिस्ता आदि पोस कर उचित मात्रामें दिये जा सकते हैं। १½ सालकी अवस्थातक पहुँचनेपर आधा—उबाला अंडा दिया जा सकता है। अंडेमें बहुत बढ़िया किस्मके प्रोटीन, फासफोरस, कैलशियम, आयरन (लोहा) (हज्म होनेके रुपमें) तथा विटेमिन-ए,-डी और बी पाये जाते हैं। २ साल तक प्रति सप्ताह २-३ अंडे यदि हज़म हो सके दिये जा सकते हैं लेकिन कुछ बच्चोंको अंडेसे बदहजमी होने लगती है। ऐसे बच्चोंको अंडा धीरे-धीरे देना चाहिये।

६ माहकी अवस्थापर, लोहेकी मात्रा बढ़ानेके लिये, हड्डीका शोरबा या फल और सब्ज़ीका उबाला रस देना चाहिये। बाजारोंमें ऐसा बन्द टीनका पैकेट सरलतासे मिल जायगा। लोहेसे रक्त बनता है और हरे फल तथा तरकारीमें से ही प्रधान सब उम्रवालोंके लिये लोहा प्राप्त होता है। २ से ५ साल तक उबली तरकारीको मसल कर महीन बना कर खिलाया जा सकता है और इसका खिलाना बहुत आवश्यक है। ५ वर्षके बाद सलाद धनिया, टमाटर आदिकी चटनी पीस कर या पतली कतर कर खिलानी चाहिये। स्कूली लड़कोंको हरी तरकारी बहुत आवश्यक है और अधिक मात्रामें खूब खानेको मिलनी चाहिये क्योंकि इसमें उनके लिये विटेमिन, खनिज

लवण. जल तथा "सीठी" रहता है। ६ से १० माह तक पहुँचनेपर बच्चेको कच्चा फल, सेब, केला आम शरीफा, पपीता आदि थोड़ा थोड़ा खाना आवश्यक है। बहुत कड़े फल अभी नहीं देने चाहिये नहीं तो दाँत पूरे न होनेके कारण बच्चा भली भाँति चबा न सकेगा और निगल जायेगा जिससे हाज़मा ख़राब होगा और पेटमें दर्द होने लगेगा। ५ सालके बाद बच्चोंको सब फल ख़ूब खाने चाहिये। बाज़ारके फलोंके मुरब्बोंमें बहुधा चीनी बहुत कम खाने देना चाहिये क्योंकि अधिक चीनी खानेसे भोजनके लिये रुचि नहीं रह जाती है। शहद और जेली छोटे बच्चोंके लिये लाभदायक है।

दाल

६ माहके बाद बच्चोंको भोजनमें अन्न देना चाहिये। अन्नसे बच्चेको केवल कलारी गरमी ही मिलती है. और कुछ नहीं क्योंकि लोहा तथा विटेमिनकी जो मात्रा अन्नमें रहती है वह तो छिलकेके साथ ही कुटेन और बनोजमें निकल जाती है। इस उम्रके बादसे हमेशा कलारी-गरमी इन्हीं अन्नों द्वारा ही शरीरको मिलती है। आरम्भमें ऐसा अन्न देना चाहिये जो खाना बनानेमें बहुत जल्द पक कर मुलायम हो जाय और सरलतासे हज़म हो जाय जैसे, जौ, दलिया, आदि। एक ही वस्तु प्रयोग न करके कई किस्में खिलानी चाहिये। दाँत सुन्दर तथा मज़बूत निकल आनेपर बिस्कुट, रोटीपर मक्खन या शहद लगाकर देना चाहिये जिससे बच्चा काटनेकी कोशिश करे। इससे जबड़ोंको ताकत पहुँचती है और दाँत सुन्दर तथा मज़बूत निकलते हैं। उबला आलू भी मल कर देना चाहिये। आलूमें लोहा, प्रोटीन और विटेमिन अधिक हैं इसलिये इसे नित्य बचपनमें देना चाहिये। नमक लगाकर बच्चे बड़े चावसे इसे खाते भी हैं। बहुत बच्चोंको अन्न बहुत खिलाया जाता है क्योंकि माँ-बापको इसमें कम खर्च करना पड़ता है जिससे बच्चोंका पेट भर जाता है और ये बच्चे दूध, अंडे, मक्खन फल, तरकारी नहीं पाते। अमीरोंके बच्चे मिठाई तथा मुरब्बा बहुत खाते हैं और दूध आदि इसी लिये नहीं पीते कि उनको भूख रहती नहीं। फल यह होता है कि बच्चोंको दूध, मक्खन, फल आदि आवश्यक स्वास्थ्यकर वस्तुयें नहीं मिलती और बच्चेका हाज़मा बिगड़ जाता है, स्वस्थ नहीं रहता और दाँत भी मुश्किलसे टेढ़े मेढ़े निकलते हैं। बड़े होनेपर बहुधा बच्चे स्कूलके लिये पैसा पाते हैं और मनमानी मिठाई तथा चाट मसाले खाते है जिससे घरपर भूख नहीं लगती। माँ-बाप इस बातको बहुत कम समझ पाते हैं या दुलार के कारण कुछ नही कर सकते हैं। इसका एक उपाय है कि बच्चोंको पैसा न देकर स्कूलके मास्टरोंको पैसा भेजना चाहिये और वहाँ लोग जलपानका उचित प्रबन्ध किया करें। साथ ही बच्चोंको भी उचित शिक्षा दी जाय कि वह भले बुरे भोजनको शीघ्र समझें। बहुत मिठाईसे भूख भी नहीं लगती और दाँत भी खराब हो जाते हैं।

मैदेको काममें नहीं लाना चाहिये। गेहूँके छिलकेमें विटेमिन-बी रहता है तथा आटामें चोकर रहनेसे दस्त अच्छी तरह होता है।

माँस और मछली

१ से १½ सालकी अवस्थापर आमिषहारियोंको बच्चोंको माँस शुरू कराना चाहिये। गोश्तमें बहुत अच्छे किस्मका प्रोटीन होता है तथा लोहे और खनिज लवणोंके साथ विटेमिन भी होता है। शोरबेसे भूख लगती है। कलेरीमें विटेमिन तथा रक्त बनानेका अंश बहुत अधिक होता है, इससे माहमें दो चार बार इसे भी खिलाना चाहिये।

बहुत बच्चोंको माँस अच्छा ही नहीं लगता अथवा माँ-बाप माँससे परहेज़ करते हैं। ऐसे बच्चे आवश्यकतासे अधिक वज़नी होते हैं। माँससे परहेज होनेपर तो दाल ही एक ऐसी वस्तु बच जाती है जिसमें माँसके कुछ गुण हैं।

मछली भी माँसके साथ ही शुरू करनी चाहिये। मछलीमें फासफोरस बहुत होता है तथा विटेमिन-ए और-डी भी अच्छी तादादमें चर्बीवाली मछलियोंमें पाया जाता है। सप्ताहमें एक दो बार मछली भी खानी चाहिये।

बड़े बच्चोंको दूध

बचपन भर दूधकी अधिक मात्रा परमावश्यक है क्योंकि कैलशियम सबसे अधिक दूधसे ही सरलतासे

हजम होकर मिलता है। साथ ही दूधमें अच्छे किस्मका प्रोटीन जो हज़म हो सके, खनिज लवण और सभी विटेमिन होते हैं। विटेमिनके सम्बन्धमें ध्यान रखना चाहिए कि जाड़ेके दिनोंमें तथा उन गायोंमें जो कोठरियोंमें बँधी रहती हैं और खेतमें चरने नहीं पाती हैं, विटेमिन बहुत कम हो जाता हैं। बच्चोंको न्यूनतम आवश्यक कैलशियम पानेके लिये नित्य प्रति कमसे कम (१½ पाइंट) = ६½छ० बढ़िया दूध पीना चाहिये। लीग आव् नेशन्सके अनुसार (१ लीटर (१¾ पाइन्ट) = ८¾ छ० दूध फल और सब्जीका नम्बर दूधके बाद कैलशियम लवणोंके लिये है। लेकिन यह ध्यान रखना चाहिये कि दूधकी जगह अधिक तरकारी खा कर कैलशियमकी पूर्ति करनेमें तरकारी की बहुत अधिक मात्रा खानी पड़ेगी जो सम्भव नहीं है।

७ या ८ वर्षके बच्चोंको साधारण उचित भोजनसे कैलशियम इस मात्रामें भिन्न भिन्न वस्तुओंमें मिलेगी:—

	मिलीग्राम कैलशियम
दुध द्वारा ५ छ०	६७६·०
फल तथा सब्जीसे	७८·१
१ अंडेसे	२८·५
अन्य भोजनकी वस्तुओं द्वारा	७१·८
कुल जोड़	८६२·४
उचित आवश्यक मात्रा	१०००·०
कमी	१३७·६

इस भोजनमें फल तथा तरकारीमें, सुबह संतरा, फल आलू और तरकारी खानेके समय दोपहरको तथा ताज़ा फल नाश्तेमें शामको मिलता था। हम देख सकते हैं हैं कि फल और तरकारीकी मात्रा इस उम्रमें और अधिक नहीं बढ़ायी जा सकती है। यह जानते हुये कि न्यूनतम कैलशियम १ ग्राम नित्य मिलना आवश्यक है और इस कारण ऊपरके भोजनमें नित्य १४० मिलीग्राम कैलशियम कम है, हम इस कमीको पूरा करनेके लिये दूधको २—२½ छ० की मात्रामें और बढ़ा दें तो कैलशियम पूरा हो जायगा। अंडेसे भी कैलशियम मिलता है और टमाटर में भी कैलशियमकी अच्छी मात्रा रहती है परन्तु दूधसे बहुत कम।

बच्चोंको ठंडा पानी दिनमें और विशेष कर भोजनोंके बीचमें खूब पीना चाहिये। चायकी आदत बहुत खराब है। और चाय, कहवा आदिसे सर्वदा दूर रखना चाहिये।

खाना पकानेमें ध्यान रखना चाहिये कि मसाला बच्चों के भोजनमें न रहे। बहुत देर तक तेज़ आगपर उबालने या भूनने से बहुत विटेमिन खराब हो जाते हैं। दूधको बहुत पकाकर गाढ़ा बनानेसे आसानीसे हज़म नहीं किया जा सकता है। मिठाइयोंमें बहुधा रङ्ग डाला रहता है। ऐसी मिठाइयाँ काममें नहीं लानी चाहिये। ध्यान रखना चाहिये कि बच्चे भोजनको भली भाँति दाँतसे कुचला करें और जल्दीमें भोजन न करें। बहुत जलता भोजन भी हानिकर है। खानेके पहले रोने या दुःखी रहनेसे पाचन-शक्ति कम हो जाती है।

संतरेका इत्र

संतरेके फूलको गुलाबके फूलकी तरह पानीके साथ भपकेमें चुआनेसे संतरेका जो इत्र मिलता है उसे अँग्रेजीमें ऑयल आफ़ निरोली कहते हैं। पत्तियों, डंठलों और छोटे-छोटे कच्चे फलोंको (जो आपसे आप झड़ कर गिर पड़ते हैं) गुलाबकी तरह भपकेमें चुआनेसे जो इत्र मिलता है उसको अँग्रेजीमें ऑयल आफ़ पेटिट ग्रेन कहते हैं। पके नारंगीके छिलकोंको निचोड़नेसे और स्थिर रखकर नीचे बैठे जलयुक्त रससे पृथक करनेपर उससे जो इत्र मिलता है उसे आयल आफ़ ऑरेंज कहते हैं। संतरेके फूलोंसे मद्यसारकी सहायतासे निकाले गये इत्रको अँग्रेजीमें ऑरेंज फ्लावर ऐबसोलूट कहते हैं। फूलोंको पानीके साथ भपकेमें जब चुआते हैं तो ऑयल आफ़ निरोलीके साथ-साथ संतरा-जल (ऑरेंज फ्लावर वाटर) भी मिलता है।

भारतवर्षमें वस्तुओंकी खपत कम है, परन्तु यूरोप आदिमें इनकी खपत बहुत है, विशेष कर यू-डि-कलोन बनानेमें।

अब आयल ऑफ निरोली कृत्रिम रीतिसे भी बनता है और साधारणतः इसी कृत्रिम पदार्थका ही उपयोग किया जाता है।

प्राकृतिक देन और विज्ञान

[ले० – जगेश्वर दयाल वैश्य, एम० ए०, बी० एस—सी०, ए० टी० सी०]

किसी भी देशकी उन्नति बहुत कुछ हद तक उसकी प्राकृतिक देन पर निर्भर है। जब प्राकृतिक देन द्वारा उस देशकी प्रतिदिन बढ़ती हुई आवश्यकताओंको पूर्ति नहीं हो पाती तब विज्ञान अपना चमत्कार दिखलाता है। इसलिये यह कहना अनुचित न होगा कि प्रकृति जिस वस्तुकी कमी छोड़ देती है, विज्ञान उसकी पूर्ति करता है।

किसी भी देशकी प्राकृतिक देन चाहे जितनी अच्छी हो उसके युद्ध-पथ पर अग्रसर होते ही चारों ओरसे कमी कमीको ही पुकार आने लगती है। अधिकांश कल-कारखाने बन्द हो जाते हैं, किसान लोग अपने खेतोंको छोड़ देते हैं। क्या आपको मालूम है कि ऐसा क्यों होता है? इनमें काम करने वाले कुछ सैनिकोंमें भर्ती हो जाते हैं और कुछ हथियार व गोला-बारूदके कारखानोंमें काम करने चले जाते हैं। देशके अन्दर विदेशोंसे भी माल कम आने लगता है। इसलिये युद्धके समय कुछ बहुत ही महत्वपूर्ण आविष्कार हो जाते हैं ताकि आवश्यकताकी वस्तुयें उस समय मिलने वाले सामानसे बनाई जा सकें।

शान्तिके समय भी विज्ञानवेत्ता उसी तत्परतासे अपनी प्रयोग शालामें नये नये प्रयोग करते रहते हैं। उस समय उनका ध्येय होता है कि अपने देशकी प्राकृतिक देनसे अधिकसे अधिक ऐसी वस्तुयें बनाना जिनके लिये उनके देशको विदेशोंकी ओर ताकना पड़ता है। देशको स्वाव लम्बी बनानेके विचार कुछ वर्षोंसे बहुत तीव्रतासे सब देशोंमें फैलते जा रहे हैं। कुछ देशोंको तो यह पूर्ण आशा है कि वह दिन दूर नहीं है जब वे उन वस्तुओंके बदले, जो उनके यहाँ पैदा नहीं हो सकती हैं, दूसरी वस्तुयें बना लेंगे जो सब प्रकारसे उसी प्रकार उपयोगी सिद्ध होंगी।

नमक से सोडा बनाओ

नमकसे सोडा बनानेकी प्रसिद्ध लीब्लैंक रीतिका उचित सत्कार फ्रांस राज्यक्रान्तिके दिनोंमें हुआ था। इसरीतिका अविष्कार सन् १७८७ ई० में हुआ था। सन् १७७५ ई० फ्रेंच एकेडमी ने यह घोषणाकी थी कि नमकसे सोडा बनाने वाली रीति पर १२,००० पौंडका पारितोषिक दिया जायगा। इसी ने लीब्लैंकको इस ओर प्रोत्साहित किया था। दुर्भाग्यवश उसको पारितोषिक नहीं दिया गया। उसे केवल इस रीतिका पेटेण्ट दे दिया गया। यह पेटण्ट भी सन् १७९३ ई० में रद्द कर दिया गया। धनाभाव तथा स्वास्थ्य ठीक न रहनेके कारण लीब्लैंक अपनी सोडा बनाने वाली फैक्टरीको अधिक दिन न चला सका और एक दिन उसे फैक्टरी बन्द करनी पड़ी। पेट पालनेके हेतु वह एक कारागारमें भर्ती हो गया। वह इस मानसिक और आर्थिक संकट की पीड़ाको अधिक दिन सहन न कर सका और उसने सन् १८०६ में आत्माघात करके इस संसारसे विदा ले ली। किसी ने सच कहा है 'याद आयेगी तुझे मेरी वफ़ा मरनेके बाद'—उसके आत्मघात कर लेनेके बाद फ्रेंच लोग वास्तविक मूल्य समझे और उसकी स्मृतिमें सन् १८८६ में एक स्मारक बनवाया गया।

नाइट्रोजनसे अमोनिया बनायी गयी

नाईट्रोजन और हाईड्रोजनसे अमोनिया बनानेकी हैबरकी रीतिका इतिहास लीब्लैंक रीतिसे मिलता जुलता है। यह रीति हैबर (जो एक जर्मन विज्ञान वेत्ता था) ने सन् १९१४ में प्रकाशितकी थी। यद्यपि जर्मनी उस समय युद्ध-क्षेत्रमें डटा हुआ था तो भी इस रीतिका महान महत्व तथा अपरिमित लाभ समझनेमें जर्मनीको दो वर्षका समय लग गया। इस रीतिके कारण जर्मनीको नाईट्रेटोंके लिये दूसरे देशोंकी ओर ताकना नहीं पड़ा। नाईट्रेट युद्धके समय गोला-बारूद बनानेका काम देते हैं और शान्तिके समय खादका काम देते हैं। लेकिन इतने महत्वकी रीतिके आविष्कारकका भी उसके जीवनमें आदर नहीं हुआ। उसको अपना देश छोड़ना पड़ा और विदेशमें ही सन् १९३४ में उसकी मृत्यु हुई।

कोयलेसे तेल बना

बहुत ही कम देश ऐसे सौभाग्यशाली हैं जिनमें तेलके कुएँ पाये जाते हैं, इसलिये बहुत दिनोंसे विज्ञान-वेता दूसरी वस्तुओंसे तेल बनानेकी फ़िक्रमें हैं। बरजियस नामी एक विज्ञानवेत्ता ने कोयले से तेल निकालनेकी एक रीति मालूम की है। कहा जाता है कि जर्मनीमें १०,००,००० टन पैट्रोल प्रति वर्ष कोयलेसे बनाया जाता है। इंगलैंडमें भी कितने ही कारखाने कोयलेसे पैट्रोल बनानेके खुल गये हैं।

लकड़ीसे शक्कर

बरजियस और उसके साथी लकड़ीसे बूरा बनानेके भी प्रयोग कर रहे हैं। बरजियसका कहना है कि पेड़का आधा भाग बिलकुल व्यर्थ जाता है। इस भागसे जोकि ख़राब जाता है काफ़ी बूरा बनाई जा सकती है। हमारे भोजनके लिये बूरा अथवा कार्बोहाईड्रेटकी बहुत आवश्यकता पड़ती है; इसलिये इसमें सफलता मिल गई तो वे सब देश जिनमें काफी लकड़ी होती है भोजन के किये भी स्वावलम्बी हो जायगें।

नकली रबड़ आदि

नकली रबड़ आज कल कितनी ही रीतियोंसे बनाया जा रही है। रबड़के अन्दर आई-सो-प्रीनके अणु होते हैं उनका मुख्य कारण यह है कि उसमें आईसोप्रीनके ७०० या ८०० अणुओं तक की लड़ी पाई जाती है। नकली रबड़के अन्दर अणुओंको इतनी लम्बी लड़ अभी नहीं बन सकी है, इसलिये वह प्राकृतिक रबड़की बराबरी नहीं कर सकता। लेकिन कुछ दिनोंमें यह अवगुण भी अवश्य ही दूर हो जायगा।

नकली ऊन और सिल्क तो धड़ाधड़ बन रहो है।

ऊपर केवल थोड़ेसे ही दृष्टान्त दिये गये हैं कि युद्ध और शान्ति दोनों समय विज्ञानकी उन्नति किस प्रकार होती है। प्रत्येक विज्ञानवेत्ता सदैव इसी धुनमें डूबा रहता है कि 'नर हो न निराश करो मन को।

केवड़ेका इत्र और जल

अन्य इत्रोंकी अपेक्षा इसकी बिक्री बहुत होती है। कुछ लोगोंका अनुमान है कि भारतवर्ष में जितने इत्र खपते हैं उनमें आधेसे अधिक केवड़े के हैं। जिस पौधेसे इत्र निकाला जाता है, वह पाँच से लेकर २५ फुट ऊँचा होता है और साधारणतः १० फुट ऊँचा होता है। इसके पत्ते तलवारको तरह लम्बे और सकरे होते हैं और उनके किनारे पर पैने काँटे होते हैं। जूलाईके अन्तसे लेकर दिसम्बर तक इसमें सफेद या कुछ पीले फूल होते हैं जो बहुत खुशबूदार होते हैं। फूल चिकनी हरी पत्तियो में लिपटा रहता है और इन पत्तियोंमें भी सुगन्ध होती है। तोड़ कर रख देनेसे घंटे भरके भीतर ही फूल की गन्ध बदल जाता है और रुचिकरके बदले अरुचिकर हो जाता है।

फूलों में चन्दनका तैल और पानी छोड़कर उस भभकेसे उसी प्रकार चुआते हैं जैसे गुलाब का इत्र, साथ ही केवड़ा जल भी मिल जाता है। फूल में चन्दन का तैल छोड़ने के बदले जिस बर्तनमें इत्र इकट्ठा किया जाता है उसीमें चन्दनका तैल डाल दिया जा सकता है, चन्दन का तैल केवड़ेके इत्रकी वाष्प सोखलेगा। सस्तेपन के विचारसे चन्दनके तैलके बदले स्वच्छ खनिज तैलका उपयोग भी कुछ लोग करते हैं। परन्तु ये इत्र इतने अच्छे नहीं होते।

खुशबूदार पत्तियोंसे भी इत्र निकाला जा सकता है यद्यपि उनसे बहुत कम इत्र निकलता है।

कारखानेका ढंग जमाना

ले०—ओंकार नाथ शर्मा

(लेखककी "औद्योगिक प्रबन्ध" नामक अप्रकाशित पुस्तकका तीसरा अध्याय ।—)

प्रत्येक विभागके लिये कितनी और किस आकारकी ज़मीनकी आवश्यकता होगी, इस बातको निश्चय करनेकी विधियोंपर बहस करते समय विज्ञानके गत अंकमें ज़ोर देकर कहा गया था कि संचालकोंको चाहिये कि कारखाना स्थापित करने और उसका नकशा बनानेके पहिले ही प्रत्येक कामके तरीकोंको बारीकीके साथ समझलें जिससे बिक्रीका सामान इतना सस्ता और अच्छा बनाया जा सके कि हम बाजारकी होड़में खड़े हो सकें। ऐसा करनेके लिये हमें, प्रत्येक यंत्र, और औज़ार खूब सोच विचार कर सबसे आधुनिक प्रकारके खरीदने पड़ेंगे, प्रत्येक विभागकी स्थिति कारखानेकी चार दीवारोंमें खूब सोच विचार कर रखनी होगी और प्रत्येक विभागके प्रत्येक यंत्र ठीये और कटघरेको "कारखानेका ढंग जमाना" कहते हैं। इसका भी कारखानेकी ज़मीनके आकार पर बड़ा असर पड़ता है। पिछले अध्यायके चित्र संख्या १ में दिखाये गयेके अनुसार सब कार्डोंको काट चुकनेके बाद, इस अध्यायके अवतरणोंमें निर्धारित नीतिको ध्यानमें रखते हुये उन्हें पिछले अध्यायके चित्र सं० २ के समान जमाना चाहिये। प्रत्येक विभागके सामानोंको जमाकर प्रत्येक विभागकी जमीन और इमारतका कच्चा नकशा तैयार कर कारखानेका पूरा नक़शा तैयार करना चाहिये।

क्रिया क्रमानुसार मशीनोंकी मात्रा

प्रत्येक कारखानेका ढंग जमाते हुए मुख्य बात जो ध्यानमें रखनेकी है वह यही है कि जो भी सामान तैयार किया जाय वह एक क्रियासे दूसरीके लिये, एक मशीनसे दूसरीपर, और एक विभागसे दूसरेमें जहाँ तक हो सके लगातार अबाध्य गतिसे चलता रहना चाहिये। कारखानेमें जो भी यंत्र अथवा वस्तु बनाई जावे उसके बनानेका कार्य-क्रम ऐसा होना चाहिये कि उसका मुख्य भाग कच्चे सामान के गोदामसे अपनी यात्रा आरम्भ करे और एक अवस्थासे दूसरीमें होता हुआ आगे बढ़ता रहे और रास्तेमें उसके अन्य हिस्से जो कि या तो बाजारसे तैयार खरीदे गये हैं, या उसीके अनुसार समानान्तर मार्गोंसे अपनी यात्रा करते हुए वहाँ तक पहुँचे हैं उसमें लगते रहें और वह मुख्य भाग सबको साथ लेकर आगे चलता रहे और अंतमें पूरा यंत्र अथवा सामान बन कर परीक्षा—विभागमें होता हुआ तैयार मालके गोदाममें पहुँच जाय, जहाँसे ग्राहकोंको भेज दिया जा सके।

छोटे कारखानोंमें सारे विभाग अकसर एक ही छतके नीचे रहा करते हैं और बड़े कारखानोंमें हर एक विभागके लिये अलहदा अलहदा इमारत अथवा कमरे होते हैं। लेकिन पूर्वोक्त नियम दोनों जगह लग सकता है। निरर्थक ही किसी सामानको इधरसे उधर लाने और ले जानेमें व्यर्थकी गड़बड़ी फैलती है, जगह रुकती है और खर्च होता है। जहाँपर सामान बहुत भारी होता है, वहाँ उसे एक जगहसे दूसरी जगह पहुँचानेके लिये ठेले काममें लाये जाते हैं और अनेक मजदूरके दल इसी कामके लिये रक्खे जाते हैं। यदि मशीनें बे तरतीब जमाई गई हों तो इधर उधरके ठेलोंसे मार्ग रुक जाता है जिसमें बड़ी दिक्कत होती है और समय नष्ट होता है। यहाँपर कुछ उदाहरण केवल सिद्धान्तको समझानेके लिये दिये जाते हैं :—

१—किसी सनके कारखानेमें, कागज़के कारखानेमें अथवा लकड़ी, पुट्ठे आदिके डिब्बे बनानेके कारखानोंमें अथवा लकड़ीके चीर—घरोंमें जहाँ एक सिरेसे सामान दूसरे सिरे तक बनता चला जाता है वहाँ मशीनें चित्र संख्या १ के अनुसार लगानी चाहिये।
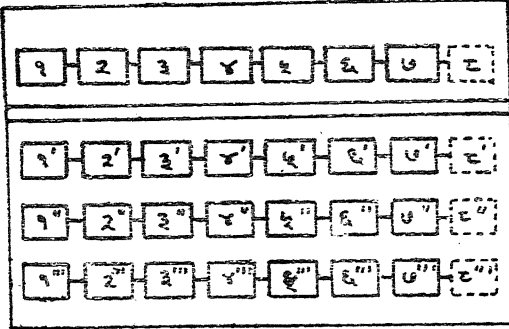
चित्र नं १, २

२—बटन आदि जैसी चीज़ें बनानेके कारखानोंमें जहाँ तरह तरहके मालपर एक सी ही क्रियायें करनी होती हैं वहाँ आवश्यक मशीनोंका दल समानान्तर पंक्तियोंमें चित्र संख्या १ के अनुसार लगाना चाहिये। जैसे एक पंक्ति में तांबेके बटन बनें दूसरीमें पीतलके तीसरीमें लोहेके और चौथीमें सोनेके, इत्यादि। इसी प्रकारसे और भी बातें समझनी चाहिये।

३—जिन कारखानोंमें ऐसे यंत्र बनाये जाते हों जो कई पुर्ज़ोंसे मिलकर बनते हों तो वहाँके यंत्रोंको कुछ इस प्रकारसे जमाना चाहिये जैसे कि संख्या ३ में दिखाया है गया।
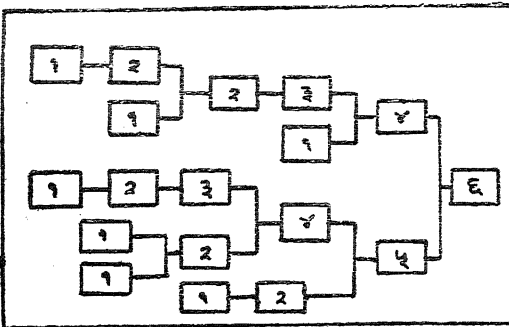
चित्र नं० ३

कई ऐसे भी अवसर उपस्थित हो जाते हैं जहाँ ऊपर बताई हुई किसी भी तरकीबसे ठीक ठीक मशीनें जमाई नहीं जा सकती, लेकिन इन सिद्धान्तोंको ध्यानमें रखते हुए यदि थोड़ा बहुत भी काम किया जायगा तो बहुत कुछ लाभ हो सकता है। वैसे तो हर एक विषयका अपवाद होता है, लेकिन किसी भी नियमको तोड़ते समय खूब विचार कर लेना चाहिये कि ऐसा करनेसे फ़ायदा अधिक होगा या नुक़सान।

चालक यंत्रके प्रकारानुसार मशीनोंको जमाना

यंत्रोंको चलानेके लिये जिस प्रकारके चालक यंत्रका प्रयोग होता है उसके कारण भी मशीनोंके जमानेमें उपरोक्त नियमके विरुद्ध हेर फेर करना पड़ता है। यदि मशीनोंको चलानेके लिये किसी बड़े वाष्प इंजन अथवा तेल इंजनका प्रयोग करना पड़े तो उसके कारण यंत्र घरमें बड़ी बड़ी और भारी शाफ्ट लगानी पड़ेंगी। यदि मशीने भी लम्बी कतारमें लगानी पड़ें तो इंजन अथवा मोटर का पट्टा शाफ्टपर ऐसी जगह लगाना चाहिये, जिससे सब मशीनोंको उचित शक्ति मिलती रहे और शाफ्टपर अधिक ज़ोर न पड़े।

चालक यंत्रका स्थान निर्णय करना

अकसर इंजनका पट्टा शाफ्टके बीचमें ऐसी जगह लगाया जाता है कि जिससे वह दोनों ओरकी मशीनोको बराबर शक्ति देता रहे। अधिक शक्ति चाहनेवाली मशीनों को जहाँ तक हो सके इञ्जनके पास दोनों तरफ लगाना चाहिये और थोड़ी शक्ति चाहनेवाली छोटी मशीनोंको इञ्जनसे दूर लगा सकते हैं। इसके विरुद्ध, यदि किसी बड़ी मशीनको शाफ्टके एक सिरेपर इञ्जनसे बहुत दूर लगादें तो इञ्जन उसे भली भाँति शक्ति नहीं पहुँचा सकेगा और उसके शाफ्टपर बहुत अधिक मरोड़ बल पड़ेगा, जिससे शाफ्टको बहुत हानि होगी और मशीन संतोष-प्रद कार्य नहीं कर सकेगी।

यदि एक शाफ्टसे चलाई जानेवाली मशीनें सब एक सी हीं में अथवा एक सी ही शक्ति चाहनेवाली हों तबतो इञ्जनके पट्टेको शाफ्टके बीचमें बेखटके लगा

सकते हैं। यदि किसी कारण वश मशीनें किसी विशेष प्रकारसे लगानी पड़े, जहाँ इञ्जनके पट्टेके लिये उचित स्थान ढूँढना कठिन हो जाय वहाँ निम्नलिखित विधिका प्रयोग करना चाहिये।

एक चौखानेदार कागजका टुकड़ा लीजिये और उसके नीचेके भागमें वह लम्बा शाफ्ट जिसके विषयमें विचार करना है, और उससे चलने वाली मशीनों को, जिस प्रकार-से वे जमाई गई हैं, किसी मोटे पैमानेसे बना दीजिये, मानते हुये प्रत्येक यंत्रकी पुलीके ऊपर, जितने अश्वबल-की उस यंत्रको आवश्यकता हो उतना ही अश्वबल प्रदर्शित करती हुई ऊँचाई पर एक-एक बिन्दु लगाते चले जाइये। सब मशीनोंके बिन्दु लगा चुकनेके बाद उन सबको पूर्ण रेखाओं द्वारा जोड़ दीजिये। यह सब कर चुकनेके बाद शाफ़्टके एक सिरेसे आरम्भ कीजिये और पहिलीको छोड़कर दूसरी मशीनकी पुलीके ऊपर पहिली और दूसरी मशीनके अश्वबलके योगको प्रदर्शित करती हुई
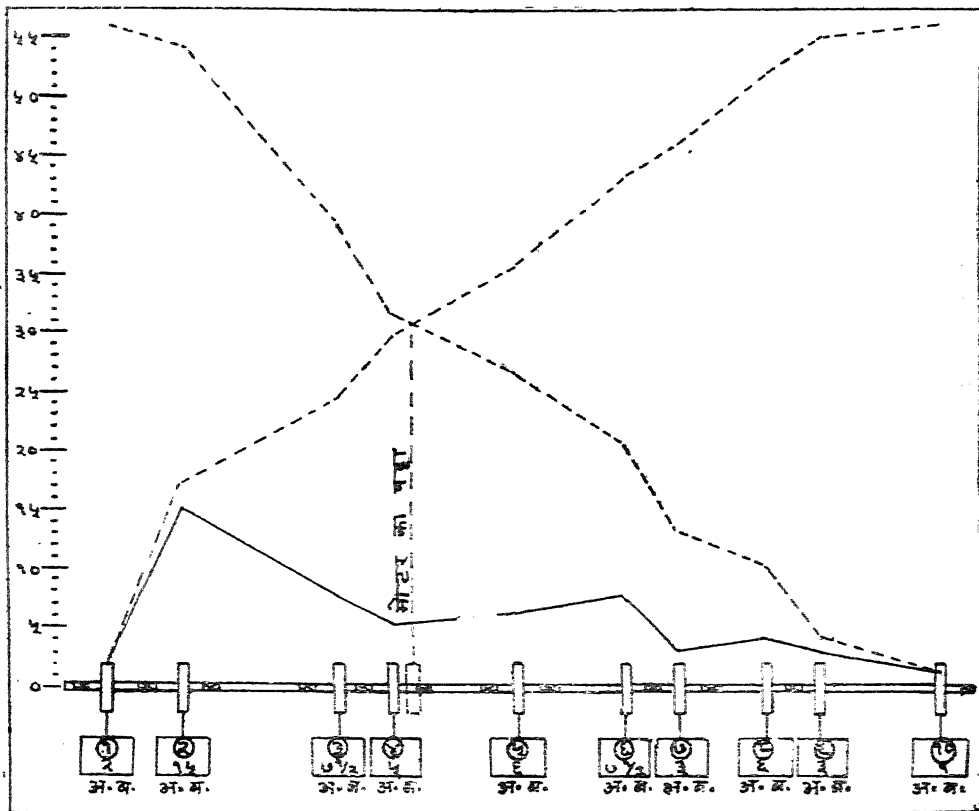
चित्र नं० ४

और शाफ्ट पर प्रत्येक मशीनकी पुलीका स्थान भी निश्चित कर दीजिये और साथ ही यह भी लिख दीजिये कि उन्हें कितने कितने अश्वबलकी आवश्यकता होगी। देखिये, चित्र सं० ४ अब एक छोटे खानेकी ऊँचाईको एक अश्वबल अथवा दो अश्वबल अथवा जैसा भी मौक़ा हो ऊँचाईपर एक बिन्दु लगाइये, फिर तीसरी मशीनकी पुली-के ऊपर पहिली, दूसरी और तीसरी मशीनके अश्वबलके योगको प्रदर्शित करती हुई ऊँचाईपर एक बिन्दु लगा दीजिये, फिर चौथी मशीनकी पुलीके ऊपर भी, पहिली, दूसरी, तीसरी और चौथी मशीनके अश्वबलके योगको

प्रदर्शित करती हुई ऊँचाई पर एक बिन्दु लगा दीजिये और इसी प्रकार आगे वाली मशीनोंपर भी एक-एक बिन्दु लगा दीजिये जो उस मशीन और उससे पहिले वाली सब मशीनोंके अश्वबलके योगको प्रदर्शित करती हुई ऊँचाई पर हो। सब मशीनोंके ऊपर इस प्रकार बिन्दु लगा चुकने पर उन सब बिन्दुओंको एक बिन्दु-रेखा द्वारा जोड़ दीजिये।

शाफ़्टके दूसरे सिरेसे भी प्रत्येक मशीन पर इसी प्रकार बिन्दु लगाइये और उन सबको भी इसी प्रकार एक बिन्दु—रेखा द्वारा जोड़ दीजिये। जहाँ दोनों ओरकी बिन्दु रेखायें आपसमें मिल वहाँसे शाफ्टपर एक लम्बी रेखा बनाइये और जहाँ वह रेखा शाफ्टकी रेखाको काटे वहींपर इंजनकी पुलीका स्थान होगा।

बड़े इंजन और शाफ्टों द्वारा मशीनें चलानेसे हानि—अनुभव हमें बताता है कि लम्बे लम्बे शाफ़्ट लगा कर यंत्र—घरकी सारी मशीनोंको किसी एक बड़े इंजन-से चलानेमें कोई लाभ नहीं होता। बड़े शाफ्टोंके साथ गोलो और बेलनके बीयरिंग लगाने पर भी इंजनकी बहुत सी शक्ति व्यर्थ हो जाती है, क्योंकि उनमें भी बहुत काफ़ी रगड़ पैदा हो जाती है। उनकी सम्भाल और मरम्मतमें भी काफ़ी खर्च पड़ जाता है। इसके अति-रिक्त सबसे भारी ऐब यह है कि यदि किसी छुट्टीके दिन या रात को, जबकि और सब कारखाना बंद रहता है, आवश्यकता पड़ने पर थोड़ी सी मशीनोंसे काम लेना पड़े तो इंजनके साथ ही सारे यंत्र-घरके शाफ्ट व्यर्थ ही में चलने लगेंगे, जिससे इंजन की, पूरी हद तक काम न करनेके कारण और शाफ्टोंकी रगड़ द्वारा बेशुमार ताकत बरबाद हो जावेगी।

स्वतंत्र मोटरसे लाभ

आजकल बिजलीकी मोटरोंका अधिक प्रचार हो जानेके कारण कुछ ऐसा रिवाज पड़ गया है, कि जिस मशीनको चलानेके लिये ५ से अधिक अश्वबलकी आवश्यकता हो, अथवा जो मशीन कभी कभी ही काममें आने वाली हो उसके साथ एक स्वतंत्र मोटर लगा दी जावे। इससे सबसे बड़ा सुभीता यह रहता है, कि मशीनको जहाँ चाहें वहाँ लगा सकते हैं, और चाहे जब और चाहे जितनी देर काम ले सकते हैं।

मशीनोंके जत्थे बनानेसे लाभ—बाकी मशीनें जिनके लिये स्वतंत्र मोटर नहीं लगाई जा सकती, उनके सुविधानुसार कुछ जत्थे बना लिये जाते हैं; और प्रत्येक जत्थे को एक मोटर से चलाया जाता है। जैसा नीचेके चित्र सं० ५ में दिखाया है। मशीनों के छोटे छोटे जत्थे बनाने से लम्बे लम्बे शाफ्टोंकी आवश्यकता नहीं पड़ती; छोटे छोटे और हल्के शाफ्ट लगानेसे रगड़में कम शक्ति बरबाद होती है।
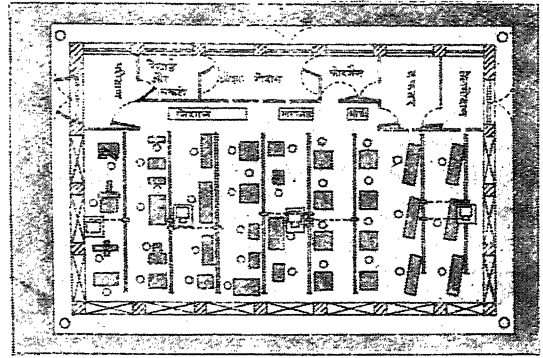
चित्र नं० ५

समान शक्ति के जत्थे

मशीनों के जत्थे कुछ इस अंदाज से बनाने चाहिये कि जिसमें प्रत्येक जत्थेका अश्वबल लगभग एक सा हो। इससे सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि सारे कारखानेमें सब जगह कुल एक दो प्रकारकी मोटरें ही लगाई जावेंगी। जिससे थोड़ेसे ही मोटरोंके फालतू पुर्ज़े रखने पड़ेंगे और एक मोटरका पुर्ज़ा दूसरीमें भी लग सकेगा जिसमें काफ़ी बचत और सहूलियत रहेगी।

स्थिर और अस्थिर भारकी मशीनोंके जत्थे—बड़ी बड़ी मशीनें जिस पर सदैव कामका भार रहता है, अलहदा जत्थेमें लगानी चाहिये और छोटी छोटी मशीने जिन पर सदैव कामका भार रहता है उनके भी अलहदा जत्थे बनाने चाहिये। वे बड़ी और छोटी मशीनें जो थोड़ी थोड़ी देर चलाकर बंदकर दी जाती हैं और फिर चला दी जाती हैं, अर्थात् जिनपर भार अस्थिर रहता

है उनके भी अलहदा जत्थे बनाने चाहिये। इस प्रकारकी छान बीन करनेसे शक्तिकी बहुत बचत हो जाती है।

मोटरों के लिये स्थान

मोटरें सदैव जमीन पर ही लगाना आवश्यक नहीं। शाफ्टोंकी ऊँचाईपर. शहतीरों के मंच बनाकर, उनपर भी मोटरें लगाई जा सकती है, जिससे ज़मीनपर जगहकी बचत हो जाती है।

प्रकारके विचारसे मशीनें लगाना

जिन कारखानोंकी छत आरेके दांतोंके तर्ज़की होती है, जिसमें छतके रोशनदानोंमें से सारे फर्शपर एकसा प्रकाश आ जाता है, वहाँ तो कोई मशीन किसी भी जगह लगाई जा सकती है; लेकिन जहाँ प्रकाश किसी एक तरफ़से ही आता है, वहाँ मशीनों और अन्य औजारोंको कुछ सोच विचार करलगानेकी ज़रूरत होती है। सूर्यका प्राकृतिक प्रकाश काम करने वालोंके लिये सुखप्रद और यंत्रकी कार्य क्षमताका वर्द्धक होता है, इसलिये बहुत बारीकीसे काम करने वाली मशीनें प्राकृतिक प्रकाशके स्थानपर ही लगानी चाहिये और अन्य साधारण मशीनोंके लिये मध्यम प्रकाशकी जगह चुननी चाहिये। जहाँ पर प्रकाश बहुतही कम मिलता हो वहाँ बिजली आदिके प्राकृतिक प्रकाशका प्रबन्ध करना चाहिये। स्वयं काम करने वाली मशीनें बिजलीके प्रकाशमें लगाई जा सकती हैं, क्योंकि उन्हें एक बेर बाँधनेके बाद अपने आप ही काम करती रहती हैं।

साधारण इंजिनियरिंग कारखानों की मशीनें

जिन कारखानोंमें कोई नम्बरी माल अधिक मात्रामें नहीं बनाया जाता जैसे कि मरम्मत करनेके इंजिनियरिंग कारखानोंमें होता है, वहाँ क्रिया-क्रमानुसार मशीनोंको जमानेकी आवश्यकता नहीं होती। वहाँ तो केवल जातिके अनुसारही जत्थे बना दिये जाते हैं। जैसे चूड़ी काटनेकी मशीनें, दाब मशीनें, बरमे, खराद, और रंदा मशीनें आदि अलहदा अलहदा जत्थेमें लगा दी जाती हैं। केटस्टन खरादें और चूड़ी काटनेकी मशीनें शाफ्टसे ४५° का कोण बनाती हुई लगाई जाती है जैसा पिछले अध्यायके चित्र संख्या २ की ऊपरकी पंक्तिमें दिखाया गया है। ऐसा करनेसे मशीनोंमें लगाया हुआ सरिया तिरछा हो जाता है और थोड़ी जगह घेरता है। जहाँ बहुतसी बरमें की मशीनें लगानी होती हैं वहाँ दो मशीनोंकी पीठ मिला कर लगानी चाहिये, क्योंकि काम करने वाले को बरमेके पीछे जानेकी कभी ज़रूरत नहीं पड़ती। रंदों, छेद डालने वाली बोरिंग मशीनों और झूलेदार अर्थात् रेडियल बरमोंके चारों तरफ़ काफ़ी जगह छोड़नी चाहिये।

अन्य विभाग

जिन सिद्धान्तोंपर यंत्र-घरका ढंग जमाया जाता है, उन्हीं सिद्धान्तोंके अनुसार दूसरे विभागोंको भी जमाया जा सकता है। अतः उनको यहाँ पर दोहराना अनावश्यक होगा। पाठक स्वयं विचार कर प्रत्येक विभागका नकशा बना सकते हैं।

पूरे कारखानेका नकशा

सब विभागोंका नकशा बना चुकनेपर अब यह निश्चय करना रह जाता है कि किस किस विभागको किधर किधर जमाना अधिक लाभदायक होगा। सिद्धान्त समझानेके लिये यहाँपर कुछ उदाहरण दिये जाते हैं।

शक्तिगृह

शक्तिगृह सड़क या रेलकी पटरीके निकट होना चाहिये जिससे कोयला वगैरह एकदम बायलटके पास उतार लिया जावे।

ढलाई खाना

ढलाई खाना भी सड़क या रेलकी पटरीके निकट होना चाहिये जिससे कच्चा लोहा, मिट्टी, और कोयला वगैरह जहाँ आवश्यकता हो वहाँ ही उतार लिया जा सके।

लोहार खाना

ढलाई खानेके बाद लुहारखाना होना चाहिये। क्योंकि इन्हें भी ईंधनकी और भारी भारी कच्चे लोहेके सरियोंकी आवश्यकता पड़ती है। आबदारी विभागके पास ही ठप्पे खोदनेका विभाग होना चाहिये।

यंत्रघर

यंत्रघर जहाँ तक हो. शक्ति-गृहके नज़दीक ही होना चाहिये जिससे उसमें आसानीसे शक्ति पहुँचाई जा सके, और इसके आस पासमें ही ढलाई खाना और लुहारखाना होना चाहिये जिसे ढले और गढ़े हुए पुर्ज़े आसानीसे यांत्रिक क्रियाओंके लिये पहुँचाये जा सके। यंत्र घरके

दरवाज़ेके पास ही परीक्षण—विभाग होना चाहिये जिससे पुर्जोंकी खराद होनेके पहिले ही निकम्मे पुर्जोंको छाँट कर बाहर कर दिया जा सके और खराद चुकनेपर और तैयारी विभागमें जानेके पहले फिर उनका परीक्षण हो सके।

तैयारी और निमाण विभाग

यंत्र घरके बाद ही ये दोनों विभाग, क्रमसे होने चाहिये, जिससे यंत्रघरसे खरादे हुए पुर्जोंका हाथसे फिटिंग करनेके बाद आगे चलकर उन्हें पूरी मशीनमें जोड़ा जा सके।

फरमा घर

फरमाघर ढलाई खानेकी बग़लमें या उसके ऊपरकी मंजिलमें हो सकता है। लकड़ीका काम हलका होनेके कारण उसे ऊपरकी मंजिलोंमें बनानेमें कोई हानि नहीं पड़ती।

नकशा-घर

नकशा घर, फरमाघरके बराबरमें या दफ्तरके साथ होना चाहिये, लेकिन हर एक हालतमें दिनका प्रकाश खूब मिलता रहना चाहिये। उत्तरी गोलार्द्धमें स्थिति कारखानोंमें उत्तरकी तरफ बड़ी बड़ी खिड़कियाँ रखना अधिक लाभदायक होता है, क्योंकि उधरसे प्रकाश तो खूब आता रहता है लेकिन सीधी धूपसे बचत हो जाती है। दूसरी मंजिलपर नकशाघर बनाना भी अच्छा है।

बढ़ोत्तरीकी गुंजाइश

हरएक विभागकी इमारत ऐसी होनी चाहिये कि आवश्यकता होनेपर वह बढ़ाई जा सके। ऐसा न होना चाहिये कि मौजूदा इमारतमें बढ़ानेकी गुंजाइश न होनेके कारण उसके लिये दूसरी इमारत अलहदा बनाई जावे। प्रत्येक इमारतके बनाते समय यह भी ध्यानमें रखना चाहिये कि जिस उद्देश्यसे वह बनाई गई है उसके अस-फल होनेपर वह किसी दूसरे काममें भी आसके।

कारखानेके विभागोंकी इमारतोंकी व्यूह रचनाः— किस कारखानेकी रचना किस प्रकार कारखानेमें होनेवाले काम और अन्य कई बातोंपर निर्भर रहता है जिनका ज़िक्र यथास्थान हो चुका है, इसके लिये कोई खास नियम नहीं दिये जा सकते, क्योंकि यह सब परस्थिति पर निर्भर रहता है। यहाँपर कुछ सिद्धान्त समझानेके लिये उदाहरण दिये जाते हैं।

चित्र सं० ६ में दफ्तरके लिये जो इमारत बताई है वह कई मंजिलमें हो सकती है। नीचेकी मंजिल कच्चे और तैयार मालका गोदाम बनानेके काममें आ सकती है। दफ्तरके सामने एक सीधा रास्ता बना है जिसके दोनों तरफ सब विभागोंकी इमारतें बनी हुई हैं। इस
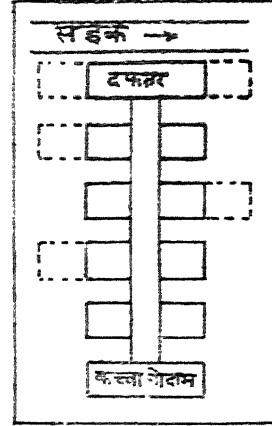
चित्र नं० ६

प्रकारकी रचनामें सामान, कच्चे मालके गोदामसे निकल कर एक ओर से हर एक विभागमें बनता हुआ आगे बढ़ सकता है और दूसरी तरफसे तैयार होता हुआ लौट सकता है और अंतमें तैयार मालके गोदाममें आकर जमा हो सकता है। यदि आवश्यकता हो तो किसी मशीनका मुख्य भाग एक ओर को बनता हुआ आगे बढ़ सकता है और दूसरी तरफसे उसमें लगने वाले छोटे छोटे पुर्ज़े बन कर मुख्य भागमें लगते चले जाते हैं। यही रचना भिन्न भिन्न प्रकारकी दो वस्तुओंके बनाते समय भी उपयोगी हो सकती है, जहाँ दोनों वस्तुएँ स्वतंत्र रूपसे बनती हुई आगे बढ़ सकती हैं और जहाँ दोनोंमें एक प्रकारकी क्रियायें करनेका अवसर आवे तब वे दूसरी तरफ जाकर वे क्रियायें करवा सकती हैं। इसमें कच्चे माल का गोदाम दूसरे सिरे पर भी हो सकता है। विभागोंकी बढ़ोत्तरीकी गुँजाइश विन्दु-रेखा द्वारा दिखाई गई है।

चित्र सं० ७ में जो रचना दिखाई गई है, उसमें सामान एक तरफसे बनता हुआ आगेको चल सकता है और दूसरे सिरेसे तैयार होकर निकल सकता है। ऐसी हालत में एक तरफ कच्चे मालका गोदाम होगा और दूसरी तरफ तैयार मालका; और उनके बीचमें दफ्तर होना चाहिये। दफ्तरके ऊपरकी मंजिलमें नकशा-घर हो सकता है। विभागोंकी इमारतोंमें बढ़ोत्तरीकी गुँजाइश बिन्दु-रेखा द्वारा बताई गई है।

चित्र सं० ८ में एक और तरह की व्यूह रचना दिखाई गई है जिसके बीचमें तो दफ्तर और गोदाम है और तीनों तरफ किरणोंकी भाँति सब विभागों की इमारतें बनी हुई हैं।

कारखाने के कर्मचारियों के आने और जानेके लिये केवल एक ही रास्ता होना चाहिये और मालके आने और जानेका दूसरा रास्ता अलहदा होना चाहिये, और जब कारखाने की छुट्टी हो उस समय वह एक घंटे पहिले बंद हो जाना चाहिये, जिससे मजदूर लोगोंके आने और जानेके समय उन पर पूरी निगाह रह सके।

कारखाने की चहारदिवारी अर्थात् हाते की दीवार कम से कम दस फीट ऊँची जरूर होनी चाहिये जिसके ऊपर काँटेके तार लगे हो और यदि हो सके तो चारों तरफ़ खाई भी हो जिससे चोरीका भय कम रहे। दोनों फाटकोंके पास चौकीदार की कोठरी होनी चाहिये।

हृदय वैषम्य

[ले० श्री पुरुषोत्तम देव मुलतानी]

हृदय और नाड़ीकी परीक्षा करते हुए यह भी देखना चाहिये कि इसकी गति तथा शक्ति में किसी प्रकारकी विषमता तो नही है। यदि इनका स्पन्दन और उठाव नियमित अन्तरोंपर न हो तो इनकी गतिमें विषमता समझें। इसी प्रकार यदि नाड़ीका उठाव या विस्तार न्यूनाधिक हो तो उसे भी विषमता कहा जाता है। प्रायः हृदयकी मांसपेशीके निर्बल हो जानेपर हृदयकी गतिमें विषमता उत्पन्न हो जाती है। हृदयकी विषमताका यन्त्रों द्वारा पर्याप्त अनुभव किया गया है। यन्त्रकी सहायताके बिना यह विषमता ठीक तरह जानी नहीं जा सकती है। हृदयमें जो २ विषमतायें मुख्यतः पाई जाती हैं वे निम्न हैं :—

हृदयमें रक्त लानेवाली शिराओं और ग्राहक कोष्टके मध्यमें एक विशेष प्रकारकी ग्रन्थि 'सिनो-ओरिकुलर नोड' होती है, जिनमें हृदयको संकुचित करनेवाली स्वाभाविक गति उत्पन्न होती है जो यहाँसे उत्पन्न होकर क्षेपक कोष्ठों तक एक विशेष सूत्रों द्वारा जाती है। यदि इस गति उत्पादक यंत्रमें कोई रोग हो जाये तो हृदयकी गति विषम हो जाती है।

गति उत्पत्ति वैषम्य

(साइनो-एरीथमिया) साधारणतः हृदयगति उत्पादक केन्द्रमें सदा समान अन्तरोंपर गति उत्पन्न होती है। वागस नाड़ी इस गतिका नियामन करती है। कई बार बीच बीचमें गति—उत्पत्ति शीघ्रतासे होने लगती है प्रायः बालकोंमें श्वास लेते समय श्वास द्वारा वागस नाड़ीके उत्तेजित होनेसे तो हृदयकी गति तेज़ और उच्छ्वासके समय गति फिर साधारण हो जाती है। यदि बालक श्वासको रोक ले तो विषमता बन्द हो जाती है और यदि गहरी श्वास ले तो विषमता या नाड़ीकी गति बढ़ जाती है।

अतिरिक्त स्पन्दन

(एक्सट्रा सिस्टोल) कई बार बीच बीचमें हृदयके क्षेपक कोष्ट (वेण्ट्रीकल) की मांसपेशीके किसी एक विशेष केन्द्रमें से अतिरिक्त गति उत्पन्न होने लगती है और यह गति उचित समयसे पूर्वही उत्पन्न हो जाती है जिसमे क्षेपक कोष्ठोंमें समयसे पूर्वही हल्का सा स्पन्दन हो जाता है। अतएव इस स्पन्दनसे पूर्वका अन्तर छोटा और इससे पिछला अन्तर अनुचित तौरपर

लम्बा होता है। यदि हृदयका यह अतिरिक्त स्पन्दन बहुत हल्का हो तो यह भी संभव है कि यह हाथकी नाड़ी तक न पहुँचे और इस प्रकारकी नाड़ीका अनुभव करते समय एक धमन लुप्त हुआ सा प्रतीत हो और उसकी जगह एक लम्बा अन्तर अनुभव हो तो यह अतिरिक्त स्पन्दन कभी शीघ्र शीघ्र और कभी कभी देरमें होते हैं। यह भी देखा गया है कि यदि व्यायाम और ज्वरसे हृदय तीव्र हो जाय तो यह विषमता लुप्त हो जाती है। किन्तु व्यायाम और ज्वरके पीछे विश्राम या निर्बल अवस्थामें ये अतिरिक्त स्पन्दन अधिक होने लगते हैं। इस अतिरिक्त-स्पन्दनके ठीक पीछे होनेवाला वास्तविक स्पन्दन ग्राहक कोष्ठमें उत्पन्न तो हो जाता है परन्तु क्योंकि उस समय क्षेपक कोष्ठ इस अतिरिक्त स्पन्दनसे शिथिल होता रहता है, अतः वह क्षेपक कोष्ठको संकुचित नहीं कर सकता जिसमें इस अतिरिक्त स्पन्दनके पीछे एक लम्बा अन्तर प्रतीत होने लगता है। किन्तु एक बात ध्यान देने योग्य है कि इन तीनों स्पन्दनों (जिनके बीचका स्पन्दन अतिरिक्त स्पन्दन है) का समय इसके किसी भी तीन स्पन्दनोंके समान ही होता है। यद्यपि प्रथम तीन स्पन्दनोंमें एक लम्बा अन्तर अवश्य है। कभी कभी इस लम्बे अन्तरके पीछेका स्पन्दन अधिक बलवान् होता है और रोगीको उसका झटका भी अनुभव हो सकता है।

यह अतिरिक्त-स्पन्दन प्रायः क्षेपक कोष्ठोंमें उत्पन्न होता है, पर कभी कभी ग्राहक कोष्ठोंमें भी मिलता है। रोगी दशामें अतिरिक्त-स्पन्दन अतिरिक्त समयसे कुछ पूर्व ही हो जाता है और उसके पीछे तक लम्बा अन्तर और फिर स्वाभाविक स्पन्दन होता है। परन्तु इस अवस्थामें उन तीन स्पन्दनोंका समय (जिनमें बीचका अतिरिक्त स्पन्दन है) किसी भी तीन स्पन्दनोंसे कम होता है। डिजिटेलिसके अति-प्रयोग, तम्बाकूके सेवनसे, रक्तका दबाव बढ़ जानेसे तथा अजीर्ण रोगोंमें यह अतिरिक्त स्पन्दन पैदा हो सकता है। आम बातके कारण महा धमनी कपाटीमें प्रत्यावर्तन या वाम कपाटीमें अवरोध हो तो भी इनका अतिरिक्त-स्पन्दनसे सन्देह हो सकता है!

हृदय-कम्प (पैराक्सीसमल टेकीकार्डिया)

हृदयगति उत्पत्ति केन्द्रसे अतिरिक्त स्थानमें यदि निरन्तर कुछ कालके लिए अतिरिक्त-स्पन्दन उत्पन्न होने लगे और वह सारे हृदयको कम्पित करने लगे तो कभी कुछ समयके लिये सहसा हृदय और नाड़ीकी गति अति तीव्र हो जाती है। एक मिनटमें १२० से २०० बार तक चलने लगती है। इस प्रकारका हृदय कम्प सहसा आरम्भ हो जाता है और कुछ मिनट या कुछ दिन तक रह कर फिर सहसा ही हट जाता है। इस अवस्थामें अतिरिक्त स्पन्दन या तो ग्राहक कोष्ठ या हृदय गति मार्ग या क्षेपक कोष्ठ इनमेंसे किसी एक स्थानमें होने लगता है।

हृदयका तीव्र स्पन्दन (औरि कुलर फ्लटर)

कई बार हृदयके ग्राहककोष्ठमें १ मि० में २०० या ३०० बार स्पन्दन उत्पन्न होने लगता है परन्तु क्षेपक कोष्ठ इतनी बार संकोच नहीं कर सकता। अतः वह प्रत्येक दूसरे संकोचपर संकुचित होता है और नाड़ी प्रति मिनिट १०० या १५० बार चलती है। कभी कभी क्षेपक कोष्ठ किसी गतिसे तो संकुचित हो जाता है और किसीसे नहीं होता, तब नाड़ीको गति बड़ी तीव्र और विषम हो जाती है। रोगीको अपने हृत्प्रदेशपर स्वयं यह कम्प अनुभव होती है। अतिश्रम या चिन्ताके वेगके आनेपर क्षेपक कोष्ठ ग्राहक कोष्टके प्रत्येक संकोचके पीछे संकुचित होने लगता है। ऐसे तीव्र कम्पसे रोगीकी मृत्यु भी हो सकती है।

पूर्णनाड़ी वैषम्य (औरिकुलर फिब्रीलेशन)

नाड़ी का प्रत्येक उठाव भी विषम होता है। तथा उनके बीचका अन्तर भी विषम होता है। इस प्रकार नाणी पूर्णतया विषम होती है। इस रोगमें गति उत्पत्ति केन्द्र क्षीण सा हो जाता है और जैसे अपनी वातनाड़ी कट कर जाने पर कोई कम्पन करने लग जाता है, वैसे ही हृदय भी स्वतः कम्पन करने लगता है, कुछ कम्पन क्षेपक कोष्ठ तक पहुँचते हैं और बहुतसे कम्पन निर्बल होनेसे क्षेपक कोष्ठ तक पहुँचते भी नहीं। कई कम्पन अति निर्बल होते हैं जिनमें नाड़ी बहुत कम उठती है और नाड़ीका अति वैषम्य हो जाता है।

६ क्रमिक वैषम्य (पल्सस अल्टर्नेम)

क्षेपक कोष्ठ एक बार बलसे (कठिनाई से) और दूसरी बार बलवान् स्पन्दन करे तो नाड़ीका एक उठाव ऊँचा और एक नीचा होता है। उठावोंके बीचका अन्तर नियमित होता है। हृदय के क्षीण हुये मांसतंत्रु दुबारा पूरी तरह और पूरे बलसे संकुचित नहीं होते तथा थोड़ेसे तन्तुहो संकुचित होते हैं।

हृदय रोग सूचक लक्षण

श्वास काठिन्य—रोगी को यह शिकायत रहती है कि थोड़ा श्रम करने से भी उसका श्वासवास चढ़ जाता है। हृदयमें हृत्कम्प होने लगता है। यदि रोग चिरकालिक हो तो रोगी रात्रिको सहसा उठ बैठता है और उसे लेटे रहनेकी जगह बैठ कर श्वास लेना पड़ता है। हृत् प्रदेश पर बेचैनी, दर्द और श्रम करनेके बाद ये लक्षण हों तो हृदयरोगका अनुमान करे।

श्वमश्रु—श्वमश्रु विशेष कर पैरों पर हो तो वह भी हृदय रोग को सूचित करती है।

सहसा मुँह फीका पड़ जाता हो, सिर में चक्कर आ जाता हो या फिसिमद होकर मूर्छा सी हो जाती हो तो भी हृदय-रोगका सन्देह करे। ओष्ठ, नासिका, कण अंगुलियोंके सिरों पर नीलिमा झलकती हो तो ये लक्षण हृदनैर्बल्य को सूचित करते हैं।

बर्तनों पर लुक फेरना और रंग चढ़ाना

[ले० प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा]

मिट्टी के बर्तनों पर कांच ऐसे पदार्थोंका लेप चढ़ाया जाता है जिससे उनमें जल प्रविष्ट न कर सके और उनमें सुन्दरता भी आ जाय। इन लेप वाले पदार्थों को लुक कहते हैं। ये कांच से इस बात में भिन्न होते हैं कि इनमें केवल सिलिकेट नहीं होते और इनमें अलुमिना का अंश भी विभिन्न होता है। वास्तविक कांच की अपेक्षा इन लुकोंमें गालनकी अवधि भी भिन्न भिन्न होती है। लुक वास्तवमें ऐसा होना चाहिये कि बर्तनकी मिट्टी के साथ कुछ न कुछ रसायनिकरीमें संयुक्त हो सके ताकि वह उनसे हटाया जा सके।

कांच के सदृश लुक अमारीभीय होता है। यह अलकली और क्षारमृत्तिका धातुओंके सिलिकेट वा बोरेटका बना हुआ होता है यह अतिशीतल द्रव होता है। इनमें रासायनिक यौगिकों के विशिष्ट गुण नहीं होते। इनका संगठन वा विश्लेषण परिणाम असली अलकली क्षारमृत्तिका वा अन्य धातुओं के द्विवन्धक आक्साइडके रूपमें प्रदर्शित किया जाता है। ऑक्साइडके रूपमें लिखनेसे अधिक सुविधा होती है और इनके गुणों पर विरोध हो सकता है। इन लुकोंमें कुछ वस्तुयें ऐसी डाली जाती है। जो उनकी पारदर्शिकता को नष्ट कर उन्हें अपारदर्शक बनावें। ऐसे पदार्थ वङ्ग यशद और अलुमिनियमके आक्साइड और कैलशियम फासफेटवा हड्डी के भस्म हैं। लुक ऐसा होना चाहिये कि सूखने पर धूने ना और झाड़नेसे गिरन पड़े।

लुकके अवयवों को पीसनेके समय सो हरगावा धातुओंके लवण सदृश वस्तुएँ पानीमें घुलने से निकल न जाय इससे इन विलेय पदार्थोंको सिलिका, चूना वा लेड आक्साइडके साथ मिलाकर आग पर पिघला कर अविलेय बना लेते हैं। इस प्रकार पिघला कर कांच सदृश बनानेकी क्रिया को 'फ्रीटीकरण' कहते हैं और द्रवितढेर को "फ्रिट"। इस फ्रिट में फिर अन्य अविलेय पदार्थों को मिला कर जलके साथ पीसते है इस फ्रिटीकरण के द्वारा लुक के मिश्रणोंके बनानेमें अनेक लाभ हैं।

(१) लुकके अनेक अवयवोंके घनत्वकी विभिन्नता बहुत कुछ घट जाती है जिससे कुछ अवयवों के नीचे तल में बैठ जाने की सम्भावना कम हो जाती है।

(२) इससे कार्बन डाय-ऑक्साइड तथा अन्य गैसे निकल जाती है। लुकके भट्टीमें पकाने का कार्य बहुत कुछ कम हो जाता है।

(३) अम्लों में लुककी विलेयता न्यून हो जाती है। सीसा के विषैले होनेकी सम्भावना भी बहुत कुछ घट जाती है।

(४) विलेय पदार्थ अविलेय बन जाते हैं ।

लुकके मिश्रण यदि तादाद में कम हैं तो अग्निजित् मिट्टीकी घरियोंमें रखकर विशेष भट्टो में उन्हें गरम कर फ्रिटी करण करते हैं। जब वे पिघल जाते हैं तो जलमें उन्हें ढारलेते हैं। इससे वे टूट जाते हैं और तब पीसनेमें सुविधा होती है। यदि बड़ी तादादमें तैयार करना होता है तब उन्हें परावर्त्तन भट्टीमें ऐसा करते हैं। इस भट्टीमें कोयले वा तेलसे भट्टी गरमकी जाती है। इस मिश्रणके रखने से पहले भट्टी को गरम कर लेते हैं और पिघलने पर उसे लकड़ी से चलाते रहते है ताकि खूब मिलकर वह बिलकुल समावयत बन जाय। भट्टी एक सी गरम रहनी चाहिये और यदि फ्रिट में सीसा (धातु) है तो उसे सधूम वा लध्वीकरण वातावरण में नहीं गरम करना चाहिये नहीं तो सीसा का आक्साइड लध्वीकृत हो वाष्प बनकर उड़ जा सकता है। पिघल जाने पर उसे बहुत देर तक गरम भी न करना चाहिये नहीं तो उसकी अलकली धातुयें नष्ट हो सकती हैं।

जिस कठोर लुकमें विलेय चीजें नहीं होती वे इस प्रकार पिघलाई नहीं जाती। उन्हें खूब महीन पीसते हैं ताकि वे २०० मेशवाले चलनीमें बिलकुल छन जाये। थोड़ी मात्रामें यह पीसना "पौट मिल"में होता है। ये पौट मिल कठोर पोरसीलेन के बने होते हैं। बड़ी मात्रामें पीसना 'बौल मिल' में होता है। लुक को पीस लेनेके बाद उसे विद्युत-चुम्बकमें ले जाते हैं ताकि लोहे के टुकड़े उससे अलग हो जाय। यदि सफेद रंगकी आवश्यकता है तो उसमें बहुत थोड़ा हल्का नोला रंग डालते हैं। इस्तेमाल करनेके पहले कम से कम दो सप्ताह उसे छोड़ रखते हैं। इससे उसके गुण बहुत कुछ बढ़ जाते हैं। इसे रखनेके लिये काठके कठौते काममें लाते हैं। इन कठौतोंमें मिलानेके लिये मजबूत क्षोभक लगे रहते है ताकि कठौतेके पेंदे में लुक बैठ न जाय। कभी कभी थोड़ा अम्ल व शोरवा भी कठौतेमें डाल देते हैं।

बरतनोंपर लुक कैसे फेरा जाता है यह बहुत कुछ उनकी बनावटपर निर्भर रहता है। अनेक विधियोंसे लुक फेरा जाता है जिनमें निम्नलिखित मुख्य हैं।

डुबाना

जल्दी और एकसा लुक फेरनेका तरीका बर्तनोंको लुकमें डुबाना है। कुछ पके हुये बर्तनों पर ही ऐसे लुक फेरा जाता है। यदि बर्तन पके हुये नहीं हैं तो उन्हे ऐसा मज़बूत होना चाहिये कि लुकके द्रवमें भिगानेपर वे अपने आकारको कायम रख सके। लुकके चढ़नेको मोटाई, बर्तनकी सुषिरता डुबाकर रखनेके समय और लुकके घनत्वपर निर्भर रहती है। डुबानेवाले लुकमें कुछ नर्म मिट्टी वा इसी प्रकारके अन्य पदार्थ मिला देना चाहिये ताकि लुकके सूखनेपर उसमें बांधनेकी शक्ति आजाय। लुकको जब पिघलाते हैं तब कुछ मिट्टी अलग रख लेते है और पीसनेके समय उसमें मिलाकर पोसते हैं। इस कामके लिये कभी कभी बबूलका गोंद वडेक्स्ट्रीन इस्तेमाल करते हैं।

ढालना

जब बर्तनोंके एक तरफ ही लुक फेरना होता है तब उसपर लुक ढालते हैं। खोखले बर्तनोंके अन्दर यदि लुक फेरना होता है तब द्रव लुकको उस बर्तनमें भर देते हैं और फिर कुछ समयके बाद लुक ढाल लेते हैं। टाइलपर जब लुक फेरना होता है तब अविरत धारामें गिरते हुये द्रव लुकपर शीघ्रतासे उसे ले जाते हैं। इससे उसके पृष्ठ भागपर लुकका एक पतला लेप चढ़ जाता है।

छिड़कना

कुछ बरतनोंपर छोटेके रूपमें यंत्रोंसे लुक फेरा जाता है। जो चित्र यंत्र इस कामके लिये प्रयुक्त होते है उन्हें "स्पेयर" वा "ऐरोग्राफ" कहते हैं। यह यंत्र दबावसे भरी वायुसे जड़ा रहता है। लुकके द्रवमें कुछ बबूलका गोंद मिला देते हैं ताकि वह मलाई सा गाढ़ा हो जाय। बड़े-बड़े कच्चे बरतनोंपर जो डुबाये नहीं जा सकते, लुक फेरनेके लिये यह विधि बड़ी उपयोगी है।

धुरियाना

भीगे बर्तनेपर लुकके महीन चूर्णके भुर भुरानेसे लुक बरतनोंपर सट जाता है। यह विधि घटिया बरतनोंके लिये ही प्रयुक्त होती है। कभी-कभी यह विधि पकाये हुये बर्तनोंको सवांरनेके लिये भी प्रयुक्त होती है।

ऐसी दशामें ऐसे बर्तनोंको पहले किसी चिपचिपे पदार्थमें डुबाकर तब उसपर लुकके चूर्णको सावधानीसे भुरभुरा देते हैं। यह चिपचिपा पदार्थ गोंद व राल होता है जो भट्टीमें पकानेपर जल जाता है और उससे लुकपर कोई असर नहीं पड़ता।

लेपन—सुन्दर चित्रित बर्तनोंपर जिनपर अनेक रंगोंका लुक फेरना होता है, ब्रुशके द्वारा लुकमें थोड़ा सरेस व जिलेटिन मिलाकर गाढ़ा बना लेते हैं।

भाप बनाकर लुक फेरना—कभी कभी लुकको भट्टीमें गरम करते हैं। इससे लुक भट्टीकी आंचसे भाप बनकर उड़ता है और बर्तनोंपर जाकर बैठ जाता है।

लुक क्या है ?

लुकमें निम्न लिखित चीज़ें रहती हैं।

अलुमिना—यह चीनी मिट्टी फेल्स्पार, चीनी पत्थर और फूँका हुआ फिटकरीके रूपमें प्रयुक्त होता है। इससे लुकोंका द्रवणाङ्क (तापक्रम जिसपर वह द्रवित होता है) चढ़ जाता है। इससे कांच्य-हीनता रुकती है और लुकोंपर वायुमण्डलका प्रभाव कम पड़ता है। अलुमिनाके अधिक रहनेसे सूखनेपर लुकके चिटकनेकी सम्भावना रहती है। इससे भट्टीपर चढ़ानेमें लुकके इकट्ठा होनेकी भी सम्भावना रहती है। लुकमें इससे महीन सूराख भी बन सकते हैं। लुकमें जितनी सिलिका (रेत) हो सके उसके दसवें हिस्सेसे अधिक अलुमिना न रहना चाहिये। अधिक रहनेसे चमक कम हो जाती है और वह इनेमल सा देख पड़ता है।

सिलिका—यह स्फटिक, चकमक पत्थर, बालू, चीनी मिट्टी, पत्थर और फेल्स्पारके रूपमें इस्तेमाल होता है। यह क्षारोंके साथ उच्च तापक्रमपर संयुक्त हो गालनीय पदार्थ बनता है। इससे लुक कम गालनीय और शीघ्र न बहने वाला होता है। सूषिर बर्तनोंपर यह शीघ्र सोख जाता है। अधिक सिलिकाके होनेसे पकानेपर चिटकनेकी सम्भावना कम हो जाती है। यदि सिलिका का अंश अधिक है तो लुक काँच-हीन होना शुरू होता है। इस क्रियामें सिलिसिक अम्ल अलग हो जाता है जिससे उसकी चमक नष्ट हो जाती है।

बोरिक आक्साइडः—वह बोरैक्स (सोहागा), बोरो कैलसाइट, बोरेसाइड व बोरिक अम्लके रूपमें लुकमें डाला जाता है। सिलिकाके सदृश यह भी क्षारोंके साथ संयुक्त हो कांच सा पदार्थ बनता है। अलकलीके साथ जो यौगिक बनते हैं, वे घोलमें विलेय होनेपर अन्य धातुओंके यौगिक अविलेय होते हैं। बोरिक अम्ल और सिलिकाके कांच परस्पर मिश्रणीय होते हैं पर बोरेक्सके कांच शीघ्र पिघलनेवाले होते हैं। इस कारण लुकके द्रवणाङ्कको कम करनेके लिये सिलिकाके साथ-साथ थोड़ा बोरिक आक्साइड भी मिलाते हैं। बोरिक आक्साइडसे लुकमें अधिक चमक आ जाती है; पर जल, अम्ल और अलकली लवणोंका इस पर शीघ्र क्रिया होती है। खुरचनेसे ऐसे लुकपर चिह्न भी पड़ सकता है। यदि सिलिकाकी तायदादसे बोरिक आक्साइडकी तायदाद पांचवे हिस्सेसे अधिक रहे, तो भट्टीमें पकानेपर बर्तनोंपर दूध सी सफेदी बन सकती है।

अलकली—यह सोडियम और पोटेशियम कार्बोनेट व नाइट्रेटके रूपमें प्रधानतः फेल्सपरा, बोरेक्स और पत्थरके साथ प्रयुक्त होता है। इनसे लुक जल्दी पिघलता है। ऐसे लुक पर जलवायुका असर भी जल्दी होता है। जिन लुकोंमें अलकली अधिक रहती है वे बहुत चिटकते हैं।

लेड आक्साइड—यह लिथार्ज, रेड लेड, वाइटलेड व गलेना के रूपमें प्रयुक्त होता है। सिलिकाके साथ मिलकर यह अगालनीय कांच बनती है। इसके होनेसे लुक पर जलवायुका कम प्रभाव पड़ता है; इसमें लुकके अन्य अवयव जल्दी घुल जाते हैं और लुक पर्याप्त पतला होता है। इससे वायुके बुलबुले निकल जाते हैं और लुक चमकीला और साफ़ होता है। पर इससे दरार अधिक फटते हैं। सीसाके लवण पेटके अन्दर जानेपर आमाशयके रसोंमें घुलते हैं, बाहर नहीं निकलते। धीरे धीरे इनकी मात्रा बढ़ती जाती है और अन्तमें इतनी हो जाती है कि वे विषका काम करते हैं। इससे सीसाके लवणोंसे सावधान रहना चाहिये और अन्य पदार्थोंके साथ पिघलाकर ही मज़दूरोंके हाथमें देना चाहिये।

कैलशियम आक्साइड व चूनाकली—यह चूना-पत्थर, संगमरमर व बारो कैलसाइट व डोलोमाइटके रूपमें प्रयुक्त होता है। वह अलकलीके साथ मिलकर युग्मलवण, सिलिकेट और बोरेट बनता है। इससे लुक जल्दी पिघलता है और जो तल बनता है, वह कठिनतासे खुरचा जाता है। इसके लुक दूध सफ़ेदसे होते हैं, क्योंकि यह विरञ्जनका कार्य करता है। यदि कार्बोनेट प्रयुक्त करना है तो उसे जलाकर कार्बन डाय-क्साइड निकाल देना चाहिये ताकि बर्तनोंके लुकपर छोटे छोटे छेद न बन जाँय।

मैगनीसिया—यह डोलोमाइट और मैगनीसाइटके रूपमें इस्तेमाल होता है। यह उच्च तापक्रमके लुकमें काम आता है। चूनेके सदृश यह भी लुकको सफ़ेद बना देता है। ज़्यादा होनेसे लुकमें लकीरें वा धब्बे पड़ जाते हैं।

बेराइटा—यह बेराइटीज़ व वेदेराइटके रूपमें प्रयुक्त होता है। इससे लुकमें बहुत चमक आ जाती है। यह मामूली तौरसे सीसाके स्थानमें प्रयुक्त होता है।

जिंक आक्साइड, टिन आक्साइड, ज़िरकोनियम आक्साइड और सोडा व पोटाशके अण्टीमोनियेट। जिंक आक्साइड और टिन आक्साइड तो प्रायः सब लुकोंमें प्रयुक्त होता है। जिंक आक्साइडकी थोड़ी मात्रासे लुकोंकी चमक बढ़ती है, पर अधिक ठंडे होनेपर जिंक सिलिकेट मणि मी कृत हो जाता है। इस कारण जिंक आक्साइड मणिकीय लुकोंके निर्माणमें प्रयुक्त होता है।

लुक फेरनेके दोष

जब बर्तनोंपर लुक फेरे जाते हैं तब उनपर अनेक दोष देख पड़ते हैं। उनमें प्रधान दोष यह है कि उन बर्तनों पर बहुत बारीक बाल सी दरारें फट जाती हैं। इसका कारण यह है कि बर्तन एक प्रकारकी मिट्टीसे बने होते हैं और लुक दूसरे प्रकारके सामानोंसे। इन दोनों प्रकारकी चीज़ोंपर ताप और शीतका अलग अलग प्रभाव पड़ता है। ताप और शीतसे दोनों भिन्न भिन्न डिगरियोंमें बढ़ते और सिकुड़ते हैं। इस विभिन्न प्रसारसे उनपर तनाव पड़ना है, और वे फट जाते हैं। इस दोषको "चिटकना" कहते हैं। जब सिकुड़न कम होती है तब लुक छोटे छोटे टुकड़ोंमें टूट जाते हैं और बर्तनोंसे अलग भी हो जाते हैं विशेषतः किनारोंपर। कभी-कभी यह तनाव इतना तीव्र होता है कि बर्तन टूट भी जाते हैं। इस दोषको 'छीलना' कहते हैं।

चिटकनेकी जाँच मामूली तौरसे नमक और शोरेके संपृक्त विलयनमें कुछ घण्टों तक जाँचके टुकड़ोंको उबालनेसे करते हैं। ऐसे उबाले हुए टुकड़े ठंडे जलमें यदि बारी-बारीसे पाँच बार डुबाये जाँय और चिटके नहीं तो ऐसा लुक उच्च कोटिका समझा जाता है। एक दूसरा तरीक़ा यह है कि जाँचवाले बर्तनको १५ मिनटोंतक १७५° श० पर बिजलीके चूल्हेमें गरम करते हैं और उसे जल्दीसे प्रायः २०° श०के ठंडे जलमें डुबा देते हैं। यदि इससे उसपर दरार न पड़े तो वह उत्तम कोटिका समझा जाता है। यह चिटकना अनेक विधियोंसे रोका जा सकता है। यदि लुकका संगठन नियत है तो बर्तनोंके संगठनको निम्नलिखित रीतिसे परिवर्तित कर चिटकना रोक सकते हैं:—
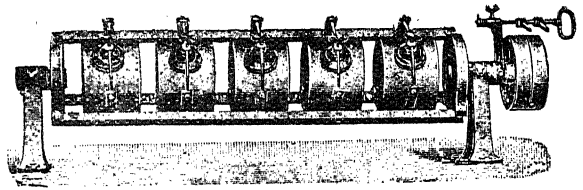
चित्र १

१—मिट्टीके अंशको कम करके उसमें फ्लिंटके अंशको बढ़ा देते हैं। रेतके स्थानमें अच्छा जला हुआ फ्लिंट चिटकना रोकने के लिये अच्छा होता है। फ्लिंट को खूब महीन पीसकर इस्तेमाल करनेसे चिटकना रुकता है।

२—बर्तन बनानेमें चीनी मिट्टीके कुछ अंशके स्थानमें बौल मिट्टी*का प्रयोग करते हैं। कुछ सीमा तक चूनेसे भी चिटकना रुकता है। बोन चाइना × के बर्तन अन्य बर्तनोंसे कम चिटकते हैं क्योंकि इसमें चूना होता है।

---

* यह एक विशेष प्रकारकी मिट्टी है जो बहुत महीन और बहुत ही नम्र होती है।

× बोनचाइना चीनी मिट्टी सफ़ेद खली और हड्डीकी राख डालकर बनाई जाती है।

३—फेलस्पार व द्रावकके कम होनेसे चिटकना कम होता है। अलकली और अलुमिना चिटकनेमें सहायक होते हैं।

४—बहुत समय तक व ऊँचे तापक्रमपर बर्तनोंके पकानेसे चिटकना कम होता है। पर कांचसा और सुषिर बर्तनोंपर उलटा असर होता है।

५—अग्निजित बर्तनोंमें ग्रोग (इसका वर्णन आगे होगा) के अनुपानकी वृद्धिसे चिटकनेकी सम्भावना कम होती है।

यदि बर्तनोंका संगठन नियत है और वह बदला नहीं जा सकता तो लुकके संगठनको निम्नलिखित विधियों-से बदलकर चिटकना रोक सकते हैं।

१—लुकमें सिलिकाके अंश बढ़ानेसे व कुछ सिलिका-के स्थानमें सोहागाके इस्तेमाल करनेसे।

२—लुकमें चीनी मिट्टी व अलुमिनाका थोड़ा अंश रखनेसे।

३—ऊँचे अणुभारके द्रावकोंके स्थानमें निम्न अणुभारके द्रावकोंके डालनेसे

४—लुकको ऊँचे तापक्रम पर व अधिक समय तक पकानेसे

जो उपाय चिटकना रोकनेके लिये किये जाते हैं ठीक उसका उलटा छीलना रोकनेके लिये किया जाता है।

लुकोंका एक दूसरा दोष 'गोला' बनना है। जब लुक मुलायम होता है तब उस पर दो शक्तियाँ कार्य करती हैं। एक शक्ति लुकको बर्तनोंपर चिपका कर रखती है और दूसरी शक्ति बर्तनोंके किनारेके भागोंमें लुकको धीरे धीरे घसीट कर छोटे-छोटे दाने बनाती है। जब दूसरी शक्ति पहली शक्ति से अधिक होती है तो लुक-तल पर 'गोलाबनने' के दोष होते हैं।

यदि बर्तनों पर धूल-कण हैं व चर्बीले पदार्थ हैं व कांच से तल हैं तो पहली शक्ति कम होकर उन पर गोला बनता है। लुक के बहुत महीन पीसनेसे मिट्टीके अधिक रहनेसे व मैगनीशियाके अधिक होनेसे यह दोष पैदा होता है।

लुकोंका एक दूसरा दोष पंखीकरन और गन्धकी-करन है। बर्तनों पर जो लुक आंशिक रूपसे मणिभीकृत हो जाते हैं उन पर पंखके आकार के चकत्ते पड़ जाते हैं। जिस लुकमें चूना अधिक और अलुमिना कम होता है उसमें प्रधानतः चकत्ते पड़ते हैं। यह चकत्ता कैलशियम सिलिकेटके बनने के कारण पड़ता है। यह हलके हाइड्रो-क्लोरिक व हाइड्रो फ्लोरिक अम्लमें जल्दी घुल जाता है। अलुमिना के कारण ये मणिभ नहीं बनते।

चूनेके सल्फ़ेट भी जो कुछ तो लुक से और कुछ जलने वाली गैसों से बनते हैं, बर्तनोंके पृष्ठ भाग पर पतले आवरण बन सकते हैं और ठंडे होने पर मणिभीकृत हो तल को धुँधले बना देते हैं। अधिक आम्लिक लुकोंमें यह कम विलेय होता है। इससे लुक सिलिका को घुलाकर अधिक आम्लिक बन जाता है और उसमेंका घुला हुआ सल्फ़ेट लुकसे निकल कर तलपर पतले आवरण का परत बनता है। यदि भट्टीकी वायुको समय समय पर लध्वीकृत रखें तो सल्फ़ेट जल्दी ही लध्वीकृत हो उड़ जाता है पर यदि लध्वीकृत ज्वाला में पर्याप्त ताप न हो तो ऐसा बना हुआ अम्ल लुकमें घुल जाता है और पीछे फूट निकल कर अन्य दोष पैदा करता है।

लुकके बर्तनोंके तल पर कभी-कभी बहुत छोटे-छोटे छेद देखे जाते हैं। ये गैसोंके निकलनेसे बनते हैं और पिघले हुये लुकोंसे फिर भरते नहीं। कभी-कभी ये साँचों-में ढालनेके समय भी बनते हैं। सफाई करनेके समय हट जाते हैं पर भट्टीमें पकाने के समय फिर निकल आते हैं। कुछ सुराख ऐसे होते हैं जिनके चारों ओर काले धब्बे पड़ जाते हैं। लुकमें व अधपके बर्तनोंमें जो कार्बनिक पदार्थ रहते हैं उनके जलनेसे बनते है। यदि बर्तनों पर लुक फेरनेके पहले उन्हें नम जगहों पर रखें तो वे गैसों को सोख लेते हैं और आगमें पकाने पर निकल आते हैं। इससे उन पर छेद बनता है।

एक अच्छे लुकका विश्लेषण परिणाम निम्नलिखित है—

सिलिका (शै ओ $_2$)	४६.२३	प्रतिशत
बोरिक आक्साइड (ब$_2$ओ$_3$)	७.०९	”
अलुमिना (सफ$_2$ ओ$_3$)	७.६३	”
लेड आक्साइड (सी ओ)	२३.२७	”
सोडियम आक्साइड (सै$_2$ ओ)	६.२८	”
पोटैशियम आक्साइड (पां$_2$ ओ)	६.५२	”

उपर्युक्त वस्तुएँ वास्तव में आक्साइडके रूपमें लुकमें नहीं रहती। ये ऊपर लिखे लवणोंके रूपमें रहती हैं पर उनका विश्लेषण परिणाम आक्साइड के रूपमें ही दिया जाता है।

रंग

मिट्टीके बर्तनोंके रंगोंके दो प्रमुख विभाग हैं।

एक, वे रंग जो उच्च तापक्रम को सहन कर सकते हैं और इस कारण उच्च तापक्रम पर प्रयुक्त होते हैं और दूसरे, वे जो निम्न तापक्रम पर ही प्रयुक्त होते हैं। पहले प्रकार के रंगों को लुक रंग कहते हैं।

इन दूसरे प्रकारके रंगों को "इनेमल" रंग कहते हैं। कार्बनिक रंग इस काम के लिये प्रयुक्त नहीं हो सकते हैं, क्योंकि भट्टी में वे शीघ्र ही जल जाँयगे।

लुक रंग

इन रंगोंके दो भाग हैं। एक वास्तविक रंग और दूसरे द्रावक। रंग और बर्तनोंके बीच द्रावक मध्यस्थ मण्डलका काम करता है। द्रावकसे बर्तनों की मिट्टी और रंगों के बीच घनिष्ट संबंध स्थापित होता है। टूटे हुये बर्तनों को पीसकर द्रावक बनाते हैं। निम्नलिखित वस्तुओं को आँचमें फूँक कर भी अच्छा द्रावक बना सकते हैं।

स्फटिक ४५ भाग
फेल्स्पार ३० ,,
चीनी मिट्टी २० ,,
सफेद सीसा ५ "

इनेमल रंग भी वास्तविक रङ्ग और द्रावकसे बने होते हैं। पर इनका द्रावक कोमल कांच वाले पदार्थोंका बना होता है। इस कोमल कांचसे संवृत भट्टीके निम्नताप क्रम पर ही रङ्ग पिघल जाता है। इस द्रावकका कुछ अंश कोमल लुकमें प्रविष्ट कर रङ्गके साथ घनिष्ट रूपसे मिल जाता है। द्रावकके नीचे लिखे दो नुसखे अच्छे हैं।

द्रावक क	द्रावक ख
रेड लेड ३ भाग	रेडलेड ३ भाग
सोहागा २ ,,	सिलिका १ ,,
सिलिका १ "	

इन्हें गरम कर, पीस कर तैयार रक्खा जाता है।

रंगों का तैयार करना

आम तौर से रङ्गको एक छोटी संवृत्त भट्टीमें गरमकर तैयार करते हैं। पर जो कारखाने इसके लिये अलग भट्टी नहीं रख सकते वे उसी भट्टीमें जिसमें वे बर्तनोंको तैयार करते हैं, रङ्गोंको भी पकाते हैं। इन रङ्गोंको वे दु:गालनीय मिट्टीके बाक्समें रखकर भट्टीके एक कोनेमें रख देते हैं। पर ऐसी दशामें कुछ कठिनताएँ होती है। क्रोम-हरा व ताम्रलालके सदृश कुछ रङ्ग ऐसे हैं जिनके लिये लध्वीकरण वातावरण चाहिये और कुछ रङ्ग ऐसे हैं जिनके लिये आक्सीकरण वातावरण चाहिये। ये दोनों वातावरण एक भट्टीमें नहीं प्राप्त हो सकते।

इस प्रकार भट्टीमें पकाये हुये रङ्गोंको छोटे-छोटे टुकड़ों-में तोड़ कर महीन पीसते हैं। यह इतना महीन होना चाहिये कि २४० मेश की चलनीमें छन जाय! पीसनेके बाद उन्हें स्वच्छ जलसे पूरा धो डालते हैं। यह दोनों प्रकार के—लुक और इनेमल—रङ्गोंके लिये इस्तेमाल हो सकता है। केवल द्रावकोंके विभिन्न मात्राओंमें मिलाने की जरूरत पड़ती है। लुक रङ्गोंके लिये द्रावकके साथ मिला कर फिर आगमें फूँकने से अच्छा होता है।

रंग चढ़ाना

रंगों के चढ़ानेके लिये ब्रश (तुलिका) सर्वोत्कृष्ट साधन है। यद्यपि और भी अनेक विधियाँ हैं जिनसे रंग चढ़ाया जा सकता है। ब्रुशसे रंग चढ़ानेके लिये कोई ऐसा द्रव प्रयुक्त करने की जरूरत पड़ती है जिसमें रंगोंके
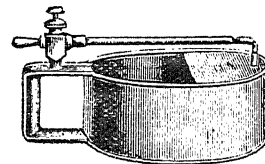
चित्र २

बाँधने की शक्ति हो। द्रव के सूख जाने पर रंग दृढ़तासे बर्तनों पर चिपक जाता है। आमतौरसे जो द्रव इस कामके लिये प्रयुक्त होता है। उसे 'चर्बी तेल' कहते हैं, यद्यपि इसमें चर्बी बिलकुल नहीं होती। दो भाग रजन

को ७ भाग तारपीन के तेल से मिला कर वाष्प-उष्मक पर गरम करने से इसे बनाते हैं; अथवा १०० भाग तारपीनके तेल में एक भाग उबाला हुआ अलसीका तेल मिला कर इसे तैयार करते हैं।

इस द्रवमें रंग को खूब मिला कर बर्तनों पर लगाने से रंग बड़ी सुगमतासे चढ़ जाता है। तारपीन का तेल जल्द उड़ जाता है और अलसीका तेल वा रजन रह जाता है जो बर्तनों पर रंग को पकड़े रहता है। मिट्टी व इनेमल के बर्तनों पर रङ्ग चढ़ाने के लिये 'नीडल स्प्रेयर' भी अधिकतासे काममें लाते हैं। २० से ३० पाउण्ड फ़ी इंच की वायु के दबाव में इसे इस्तेमाल करते हैं। रङ्गमें थोड़ा तारपीन व चर्बीका तेल मिला लेते हैं ताकि वह पर्याप्त पतला हो जाय।
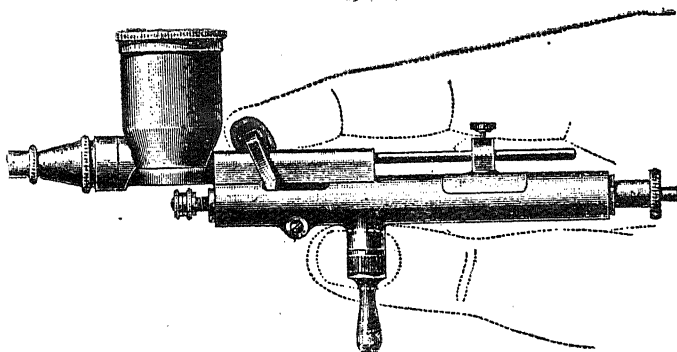
चित्र ३—नीडल स्प्रेयर

जब अनेक बर्तनोंपर एकही प्रकारके चित्रका रंग चढ़ाना होता है तब "क्रोम-लिथोग्रफिक" छपाईसे ऐसा करते हैं। इस विधिमें चित्रको एक विशेष विधिसे कागज़ो पर छाप कर उसे तैयार रखते हैं। बड़ी सरल विधिसे इस चित्रको लुक फेरे हुये बर्तनोंपर हस्तान्तरित करते हैं। ऐसे चित्रवाले कागजोंपर गोंद लगा रहता है। एक मिनट तक इन्हें पानीमें डुबाकर सावधानीसे बर्तनोंपर ऐसे रखते हैं कि चित्रका मुख बरतनकी ओर रहे। तब इसे स्पंजसे धीरे धीरे रगड़ते हैं ताकि कागज़ उसपरसे हट जाय और रङ्गीन चित्र बर्तनोंपर बैठ जाय। बर्तनोंको फिर संवृत्त भट्टीमें फूँकते हैं। इससे वह चित्र पक्का हो जाता है।

किस आक्साइडसे कौन रंग बनता है यह निम्न-लिखित सारिणीसे पता लगेगा।

आक्साइड	रंग
कोबाल्ट आक्साइड	आस्मानी
कौपर आक्साइड	आस्मानी और हरा
फेरिक आक्साइड	आस्मानी, हरा और पीला
मैंगनीज़ डायक्साईड	बैंगनी, बादामी और पीला
युरेनियम आक्साइड	पीला और नारंगी
क्रोमियम आक्साइड	पीला और हरा

कोबाल्ट आक्साइड

जितने आस्मानी रंग मिट्टीके बर्तनोंपर देखे जाते हैं उन सबमें कोबाल्ट आक्साइड अकेले वा अन्य आक्साइडों-के साथ मिला हुआ रहता है। विभिन्न अवयवोंके उपयुक्त अनुपातमें लेनेसे अनेक आभाएँ गाढ़ीसे हल्की तक प्राप्त हो सकती हैं। आमतौरसे कोबाल्ट आक्साइडके रूपमें इस्तेमाल होता है पर कार्बोनेट और फ़ास्फ़ेटके रूपमें भी यह प्रयुक्त हो सकता है। कोबाल्टसे बने रंग दो प्रकारके होते हैं। एक अलूमिनेट व मैटब्लू और दूसरा सिलिकेट व ब्राइटब्लू। कोबाल्टके लिये अलूमिनासे सिलिका अच्छा होता है क्योंकि सिलिका का रंग आसानोसे बनता है और उच्च तापक्रम पर स्थायी होता है, पर अलूमिनाका रंग उच्च तापक्रम पर अस्थायी होता है और सिलिकाके रंगमें परिणत हो जाता है।

कोबाल्ट आक्साइड	२० भाग
अलूमिना	६० भाग
जिंक आक्साइड	२० भाग

इनको मिलाकर ३ व ४ सेगर कोन तक फूंकने और तब जले हुये ढेरको पीसने और धोनेसे स्टैंडर्डब्लू तैयार होता है।

कोबाल्ट आक्साइड ५ भाग, अलूमिना ९० भाग और जिंक आक्साइड ५ भागको फूँक कर पीसने और धोनेसे हलका आस्मानी रंग (लाइटब्लू तैयार होता है। इस कामके लिये पोटाश और अमोनिया ऐलमको भट्टी

में जलाकर धोनेसे पोटैशियम सल्फ़ेट घुलकर निकल जाता है और अलुमिना रह जाता है। चमकीले आस्मानी रंग को अन्य नामोंसे भी पुकारते हैं। इन्हें आल्ट्रामैरिन, मजेरिन, विलो, कैण्टन इत्यादि भी कहते हैं। कोबाल्ट आक्साइड ६८ भाग, फ्लिंट १५ भाग, फेलस्पार १३ भाग और सफ़ेद खली ४ भागको ६ कोन तक गरम करनेसे लुक रंग 'स्टैंडर्डब्लू, प्राप्त होता है। "रायलब्लू" के लिये कोबाल्ट आक्साइड ४० भाग और द्रावक—क ६० भाग को गरम करना पड़ता है। ये रंग सीस लुकके लिये बड़े उपयुक्त हैं, पर जिस लुकमें चूना अधिक रहता है उसके लिये उपयुक्त नहीं, क्योंकि चूनेके सिलिकेट बननेसे मणिभी करणके कारण उनमें दूधापन आ जाता है। इस दोषको दूर करनेके लिये सफ़ेद खलीके स्थानमें अलुमिना इस्तेमाल होता है।

बर्तनोंके मिट्टीके रंग

कभी-कभी जिस मिट्टीसे बर्तन बनाते हैं उस मिट्टी मेंही रंग मिला देते हैं। यदि किसी बर्तनको दूध सा सफ़ेद बनाना होता है तो उसमें थोड़ा आस्मानी रंग मिला देते हैं। इसके लिये थोड़ा कोबाल्ट आक्साइड पर्याप्त है। इतने थोड़े आक्साइडको मिट्टीके बड़े ढेरके साथ एकसा मिलाना कठिन होता है। इस कारण आक्साइडके कुछ फ्लिंट और पत्थर भो मिला देते हैं ताकि उसके रँगनेकी शक्ति कम हो जाय और बर्तनोंपर आस्मानी रंगके धब्बे न पड़ें। इस कामके लिये विलेय कोबाल्टके लवण भी प्रयुक्त होते हैं और मिट्टीके ढेरमें अमोनियाके द्वारा अवक्षिप्त कर लिये जाते हैं। मिट्टीमें मिलानेका एक अच्छा नुसखा यह है।

कोबाल्ट आक्साइड	२५ भाग
फ्लिंट व स्फटिक	१२ भाग
फेलस्पार	८ ,,
चीनी मिट्टी	५ ,,

इन्हें पोस और धोकर २०० छेदवालों चलनीमें चाल डालते हैं। इसका ०·१ से०·३ प्रतिशत पर्याप्त होता है।

कौपर आक्साइड

कौपर आक्साइडसे भिन्न-भिन्न लुकोंमें भिन्न-भिन्न रंग बनते हैं। साधारण लुकोंमें इससे हरा रङ्ग बनता है। द्रावकके साथ १००००° श० के नीचे ही गरम करनेसे यह तैयार होता है। ऊँचे तापक्रमपर यह वाष्पीभूत हो जाता है। अतः इनेमल रङ्गके लिये ही यह उपयुक्त है। कौपर आक्साइड १० भाग, फ्लिंट २५ भाग, लेड ६० और सोहागा ४ मिलाकर फूँकनेसे अच्छा इनेमल रङ्ग बनता है। अधिक अलकलीवाले लुकोंमें तांबेसे बहुत सुन्दर आसमानी रंग प्राप्त होता है। इसे टुरकोयज़ब्लू कहते हैं। इस रंगका हरा कौपर सिलियेटमें परिणित होनेकी सम्भावना रहती है। वायुमण्डलके वाष्पसे यह रङ्ग नष्ट हो सकता है। इसका एक बहुत सुन्दर रंग निम्नलिखित पदार्थोंको मिलाकर फूँकनेसे बनता है।

बालू वा फ्लिंट	४७·१४ भाग
लालसीस	२२·५८ ,,
सोडियम नाइट्रेट	१२·८० ,,
पोटेशियम नाइट्रेट	१२·६६ ,,
कौपर आक्साइड	४·७१ ,,

लध्वी करण वायुमें तांबेसे लाल रङ्ग प्राप्त होता है। यह लाल रङ्ग दो आभाओंका होता है। इन दोनों आभाओंका बनना ज़रा कठिन होता है पर नीचे लिखे नुसखोंसे सुन्दर तांबेका रङ्ग प्राप्त हो सकता है।

	अरबी चमक	इटेलियन चमक
कौपर सल्फ़ाइड	२६·८७ भाग	२४·७४ भाग
सिल्वर सल्फ़ाइड	१·१५ ,,	१·०३ ,,
पारा	—	२४·७४ ,,
लाल मिट्टी	७१·६८ ,,	४६·४६ ,,

इन सब वस्तुओंको द्रागा कान्थ गोंदमें मिलाकर ब्रुश से सावधानीसे बर्तनोंपर लेपते हैं। इन बर्तनोंको तब सूखाकर संवृत्त भट्टीकी प्रबल लध्वी करण वायुमें पकाते हैं। तापक्रम इतना होना चाहिये कि लाल मिट्टी लुकसे चिपक जाय। यदि भट्टीका तापक्रम बहुत ऊँचा हो तो उसमें कुल लकड़ीके टुकड़े व बुरादा डाल कर वातावरण लध्वीकरण रखते हैं।

लोहेका आक्साइड (गेरू)

लोहेके आक्साइडसे पीलासे बादामो रंग तक प्राप्त हो सकता है। लध्वीकरण वायुमें हरा रंग

प्राप्त होता है जिसे "सीलेडन-हरा" कहते हैं। फेरस सल्फेटके फूंकनेसे लोहेका आक्साइड प्राप्त होता है। यदि फेरस सल्फेट के साथ जिंक सल्फेट व अलुमिना मिलादें तो पीला रङ्ग बहुत चमकदार हो जाता है और अन्तमें नारंगीसे कपिलवर्ण हो जाता है। यदि फूँकनेका तापक्रम ६००° — ६५०° श० हो तो मूंगा-लाल वा रक्त लाल प्राप्त होता है। ७००°—७५०°श० गरम करनेसे बैगनी - बादामी या बैगनी काला प्राप्त होता है। मैंगनीज़ सल्फेटसे काला रंग गाढ़ा हो जाता है। लोहेके आक्साइडको तीन वा चार गुने (तौलमें) द्रावक क व ख के साथ मिलानेसे ये रंग प्राप्त होते हैं। पीला व लाल लुक-रंगोंके लिये लोहा उपयुक्त नहीं है। ऐसे लुक-रंगोंके लिये एक विशेष प्रकारका खनिज "जापानी रेड" प्रयुक्त होता है उसका प्रायः ५ प्रतिशत बर्तनोंकी मिट्टामें मिलानेसे पकानेपर बहुत सुन्दर मांस सी आग वाला लाल रंग प्राप्त होता है। इस जापानी रेडका संगठन निम्नलिखित है।

लोहेका आक्साइड	८·२४ भाग
सिलिका	८७·३८ ,,
अलुमिना	१·२५ ,,
गरम कनेपर हानि	१·२० ,,

मैंगनीज़ रंग

हल्का और गाढ़ा इनेमल बादामी रंग मैंगनीज़ यौगिकों से प्राप्त होता है। मैंगनस् आक्साइड और अलुमिना के मिलानेसे "मैंगनीज बादामी" तैयार होता है। मैंगनस् सल्फेट और पोटाश ऐलम (फिटकरी) के विलयनको मिलाकर उसमें सोडियम कार्बोनेटके विलयन डालनेसे अव क्षेपको धो और सूखा कर फूँकनेसे "मैंगनीज़ बादामी" प्राप्त होता है। इस बादामीकी आभा उपर्युक्त दोनों अवयवोंके अनुपातपर निर्भर करती है। इसे द्रावकके साथ मिलाकर इस्तेमाल करते हैं। यदि लुकमें अलकली अधिक हो तो अलकलीपर मैंगनेटके बननेसे बैगनी रंग प्राप्त होता है।

युरेनियम

युरेनियमसे अनेक पीले रंग प्राप्त होते हैं। आक्सीकरण वायुमें हल्का हरा-पीलासे लेकर चमकीला सुर्ख रंग तक प्राप्त हो सकता है और लध्वी करण वायुमें हरा-बादामी से काला तक प्राप्त होता है। ये रंग १० कोन तक स्थायी होते हैं। इस कारण जहाँ अन्य पीले रंग इस्तेमाल नहीं हो सकते वहाँ ये होते हैं। बाज़ारोंमें एक धुँधला नारंगी रंग बिकता है यह वस्तुतः सोडियम व पोटेशियम युरेनेट होता है।

क्रोमियम रंग

क्रोमियमसे विभिन्न अवस्थाओंमें विभिन्न रंग प्राप्त होते हैं। क्रोमियम रंगको आगमें पकानेके बाद खूब धोनेकी ज़रूरत पड़ती है। सफ़ेद खलीको क्रोमियम आक्साइड के साथ मिलानेसे "विक्टोरिया हरा" वा "पन्ना-हरा तैयार होता है। लेड क्रोमेट और रेड लेड ३५ भागको इसके तिगुने द्रावकके साथ मिलाकर जलानेसे चमकीला सुर्ख रंग प्राप्त होता है। इसे "मुंगा सुर्ख" कहते हैं। इन सुर्ख रंगोको जहाँतक हो सके निम्न तापक्रम पर फूंकना चाहिये। ऊँचे तापक्रम पर ये विच्छेदित हो जाते हैं। इन्हें आक्सीकरण वायुमें फूँकना चाहिये नहीं तो लध्वीकरण वायुमें धुँधले हरे रंगके हो जाते हैं।

टिन आक्साइड को एक प्रतिशत क्रोमियम आक्साइडके साथ आक्सीकरण वायुमें गरम करनेसे फूँकने के तापक्रमके अनुसार गुलाबी अथवा गाढ़ा किरमिजी रंग प्राप्त होता है। इसे 'क्रोम-टिन गुलाबी" कहते हैं। चूना के डालनेसे प्रक्रिया का तापक्रम कम हो जाता है और उसके साथ साथ उसका रंग अधिक स्थायी होता है। नीचे लिखे नुसखेसे बहुत सुन्दर गुलाबी रंग प्राप्त होता है।

टिन आक्साइड	६० भाग
सफ़ेद खली	३० "
फिल्ट	५ "
पोटेशियम डाइक्रोमेट	५ "

पोटेशियम डाइक्रोमेट को पानी में घुलाकर और चीज़ों को उसमें मिला कर १२—१३ कोन के आक्सीकरण तापक्रम पर पकाने से यह रंग प्राप्त होता है। इस जले हुये ढेर को पीस कर गरम जल से तब तक धोना चाहिये जब तक धोया हुआ पानी बिल्कुल साफ़ न हो। रंग

ऊँचे और नीचे दोनों तापक्रमों पर इस्तेमाल हो सकता है। ऊँचे तापक्रम के लिये इसमें ४ गुना (तौलमें) द्रावक मिला कर इस्तेमाल करना चाहिये। सफेद खलीके कुछ अंशके स्थानमें फ्लोर स्पार या पुराना प्लास्टर का साँचा सुविधा से प्रयुक्त हो सकता है।

मिश्रित रंग

मिश्रित रंगों के लिये अनेक रंगीन आक्साइड को इस्तेमाल करते हैं। इन मिश्रित आक्साइडों को आग पर फूँक कर द्रावकोंके साथ मिला कर प्रयुक्त करते हैं।

६० भाग क्रोमियम आक्साइड और ४० भाग बाल्ट आक्साइड को ६-१० कोन पर लध्वी-करण वस्तुमें जलाने से " रूसी-हरा" प्राप्त होता है।

४५ भाग फेरिक आक्साइड, ४३ भाग क्रोमियम और १२ भाग बाल्ट आक्साइड से काला रंग प्राप्त होता है।

५२ भाग फेरिक आक्साइड और ४८ भाग क्रोमियम आक्साइड से बादामी रंग प्राप्त होता है। थोड़ा जिंक आक्साइड से रंग कुछ गहरा हो जाता है।

२४ भाग फेरिक आक्साइड, २० भाग क्रोमियम आक्साइड, ३ भाग अलुमिना और ५३ भाग जिंक आक्साइड से चाकलेट रंग बनता है।

१२ भाग फेरिक आक्साइड, १० भाग क्रोमियम आक्साइड, २८ भाग अलुमिना और ५० भाग जिंक आक्साइड से नारंगी गुलाबी रंग प्राप्त होता है।

द्रव सोना

गंधक-बालसम नामक पदार्थमें सोना घुल जाता है। इस प्रकार घुल कर स्वर्णका रेज़िनेट बनता है। यदि इस द्रवको लुक फेरे हुये बर्तनोंपर लगाकर संवृत्त भट्टीमें पकाते हैं तो उन बर्तनोंपर चमकीला सोना रह जाता है। इस द्रवको नीचे लिखे तरीकेसे तैयार करते हैं।

४.८ ग्राम सोनेको, २८.८ ग्राम अम्ल राजमें घुलाते हैं। सोनेके इस विलयनमें सल्फर बालसम आधाग्राम तारपीनका तेल २० ग्राम, वेनिस तारपीन १० ग्रामका मिश्रण डालकर उसे खूब मिलाकर वाष्प-उष्मक पर गरम करते हैं। जब वे खूब मिलजाते है तब करीब १२ घण्टा रखकर विलेय भागको ढाल लेते हैं। यदि यह अधिक आम्लिक है तो जलमे इसे धो डालते है और यदि बहुत गाढ़ा है तो तारपीनसे पतला बना लेते हैं।

गन्धक बालसम बनानेकी रीति यह है:—१ भाग वेनिस तारपीनको ५ भाग तारपीनके तेलमें खूब मिलाकर उष्मक पर गरम करते हैं ताकि वे मिलकर समावयव बन जाय। जब वह समावयव हो जाता है तब उसमें एक भाग महीन पीसा हुआ गंधक डालकर बिलकुल घुला लेते हैं।

चमक

लुक फेरे हुये बर्तनोंपर बिस्मथका बहुत पतला लेप देनेसे उनपर चमक आ जाती है। इससे बिस्मथ लवण आक्साइडोंके साथ मिलाकर चमकके लिये इस्तेमाल होता है। निम्नलिखित नुसख़े से मोती-सी-चमक प्राप्त होती है।

३० ग्राम रजनको धीरे धीरे गरम कर पिघलाते हैं और तब बराबर हिलाते हुये उसमें १० ग्राम बिस्मथ नाइट्रेट डालते हैं। ज्योंही वह बादामी रंगका हो जाता है त्योंही उसमें बराबर हिलाते हुये ४० ग्राम तारपीनका तेल मिलाते हैं। ठंडे होनेपरर ३५ ग्राम तारपीन और डालते हैं। बिस्मथ लवणक घुलजानेकी ज़रूरत पड़ती है। कुछ दिनों तक इसे रख देते हैं। उसपर यदि कोई झाग जम जाय तो उसे फेंक डालते हैं।

रंगीन चमक

ऊपर लिखी विधिसे तैयार पदार्थमें युरेनियम नाइट्रेट के डालनेसे कुछ सुर्खी लिये हुये बादामी चमक प्राप्त होती है। इन दोनोंके मिलानेसे नकली सोनेकी चमक आती है। कोबाल्टसे धुंधला बादामी और क्रोमियमसे हरी चमक आती है। इन चमकोंको ब्रुशसे बर्तनोंपर लगाते हैं और उन्हें संवृत्त भट्टीमें पकाते हैं। अच्छी चमक के लिये यह आवश्यक है कि इन्हें एक भावसे लगावें। चमकोंको लगाकर उन्हे शीघ्र ही सुखा लेते हैं ताकि वे बूंदोंमें न हो, नहीं तो चमक एकसा नहीं होता है।

श्री जमशेदजी नौशेरवांजी ताताकी जन्म-शताब्दी

[ले०—डा० आत्माराम, डी० एस-सी०]

ताताका नाम उन चिरस्मरणीय व्यक्तियोंमें से है जिन्होंने भारतकी गिरी हुई दशाको दूर करनेका बीड़ा उठाया हो। यों तो कभी ताताने अपने व्याख्यानोंमें या किसी संस्थाके उद्घाटनमें यह न कहा होगा कि भारतवर्षको अपनी गिरी दशासे उठना चाहिये या राजनैतिक उन्नतिके लिये उन्होंने लोगोंका उकसाया हो। परन्तु यदि देखा जाय तो उस समय जब कि भारतके वर्त्तमान नेताओंमें बहुतोंका जन्म भी न हुआ होगा और सर्वोपरि नेता महात्मा गांधीने स्वतन्त्रताका ज्ञान भी लोगोंको न दिया होगा, ताता ने भारतको स्वतंत्र बनानेके व्यवहारिक साधनोंका उद्घाटन किया था। पाठक इनसे शायद सहमत न हों। परन्तु यह बात नितांत ठीक है। भारतवर्ष इतनी दीन तथा शोचनीय दशाको क्यों पहुँचा? इसका उत्तर तो सभी जानते हैं कि कला, कौशल तथा दस्तकारियोंके प्रभावसे वह देश जिसको बनाई हुई चीज़ें पहिले बाहरके देशोंमें इज्जतकी निगाहसे ख़रीदी जाती थीं आज छोटासे छोटी चीज़के लिये दूसरे देशोंका मोहताज बना हुआ है! इसमें सन्देह नहीं कि यदि भारतवर्ष स्वतंत्र होना चाहता है तो उसको अपनी दस्तकारियोंका बढ़ाना पड़ेगा और वर्तमान युगमें विज्ञानकी बिना सहायताके किसी देशकी दस्तकारियाँ अन्य देशोंका मुकाबला नहीं कर सकतीं। ताताने सबसे पहिले भारतमें दस्तकारियों को वैज्ञानिक रीतियोंसे चलानेका उद्योग किया, तथा जनताको इसके लिये उसकाया। इसलिये इसमें संदेह नहीं कि भारत—स्वतन्त्रताके महारथियोंमें ताताका स्थान बड़ा ऊँचा रहेगा। गत ३ मार्च सन् १९३९ ई० को सारे भारतवर्षमें और विशेष कर जमशेदपुर जो ताताके नाम पर प्रसिद्ध है उसको शतवर्ष-जन्म-गाँठ (जन्मशताब्दी) बड़े समारोहसे मनाई गई। यह लेख उस महान् आत्माके लिये इस महत्त्वपूर्ण अवसरपर विज्ञानको ओरसे एक श्रद्धांजली है।

पिताका कारबार

जमशेद जी नौशेरवां जी ताताका जन्म ३ मार्च सन् १८३९ ई० को पारसी कुटुम्बमें हुआ। इसके पिताका नाम नौशेरवां जी था। ताता पारसियोंमें पुजारी होते हैं। ताताके जीवनपर पढ़नेके समयकी बातोंका विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। ताताके पिता नौशेरवां जी अपनी जवानीमें ही पुजारियोंके बन्धनोंको तोड़कर व्यवसायोंमें लग गये थे। जमशेदजीकी पढ़ाई विशेषकर बम्बईके ऐल्फिन्सटन कालेजमें हुई। यहाँसे पढ़नेपर किसी वकीलके यहाँ कानून संबन्धी बातें सीखकर चीन देश अपने पिताके कारबारको देखनेके लिये गये। परन्तु अमेरिकन लड़ाईके बाद कुछ कारणोंसे जमशेदजीके पिताका कारबार एकदम नष्ट हो गया। उस समय नवयुवक ताताने जिस धैर्य्य तथा तीक्ष्ण बुद्धिका परिचय दिया वह सर्वदाके लिये याद रहेगी। उसका कर्ज़दारोंपर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उन्होंने उसको अपनी ओरसे उसकी ही कम्पनीका ऋण चुकानेवाला बना दिया। इससे अधिक सच्चाई व ईमानदारीका क्या प्रमाण मिलेगा? मानचस्टरमें रहनेके कारण ताताको उस समय पश्चिमी रीतिपर रुई-व्यवसाय-संचालनका अच्छा अनुभव प्राप्त हुआ। उसी समय जनरल नेपीयरकी अध्यक्षतामें एक एबीसीनिया गया हुआ था। उसके खाने-पानेकी चीज़ोंका ठेका नौशेरवां जी ताताको मिला जिससे उन्होंने काफ़ी लाभ उठाया।

नागपुरमें कपड़ेका कारखाना

इस रुपयेसे ताता जीवनके विलासमें लिप्त नहीं हुआ, बल्कि उस गये समयमें कपड़ेकी मिल खोली। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रकृतिने ताताको व्यवसायके सब हथकंडे सिखा कर ही पैदा किया था। ताताने सबसे पहिले यह सोचा कि मिलको ऐसी जगह स्थापित करना चाहिये जहाँपर कच्ची चीज़ें पास हों, तथा बेचनेकी सुविधा भी हो। अर्थात् बाज़ार भी; इसलिये नागपुर सबसे अच्छी जगह मालूम हुई। बहुतों ने ताताके इस विचारका विरोध किया, पर वह न माना। बाद की बातोंने दिखा दिया कि ताताका विचार बिलकुल ठीक था, क्योंकि नागपुरकी एम्प्रेस

मिलकी अपेक्षा कोई कपड़ेकी मिल अधिक लाभ न दिखा सकी। यहाँ यह कह देना अनुचित न होगा कि यदि भारतवर्षमें दस्तकारियोंकी असफलताका कारण खोजा जाय तो एक कारण यह भी मिलेगा कि बहुत सी मिल बिना सोचे स्थापित कर दी गईं, यानी न तो कच्ची चीज़ोंके पास रक्खी गईं और न बाज़ारके पास।

अनुभवी ताता

नागपुर मिलकी सफलतासे ताता केवल एक अनुभवी व चतुर व्यवसायी ही प्रसिद्ध न हुआ बल्कि उसमें अपनी योग्यताका भरोसा तथा दृढ़ संकल्प भी उत्पन्न हुआ। इसके पश्चात् ताताने बहुत सी मिलें जो कुप्रबन्धके कारण शोचनीय दशाको पहुँच चुकी थीं, ख़रीद लीं और उनका संचालन करके पूरा लाभ दिखलाया। ताताकी इतनी भारी सफलताका एक अन्य कारण था—अपने कर्मचारी चुननेकी विलक्षण बुद्धि। यह गुण भारतके लोगोंमें ज़रा कम पाया जाता है। यहाँ यह कह देना उचित है कि इसका विशेष कारण है हृदय-संकीर्णता। जब हम लोग कोई काम करते हैं तो चाहते हैं कि हमारा भाई, दामाद, रिश्तेदार या जाति वाला इसका संचालक हो; उसकी चतुरताका ध्यान नहीं रखते, इसीलिये हम लोगोंको असफलता होती है। इस संबन्धमें स्वर्गीय सर आशुतोष मुकर्जीका नाम याद आता है। लेखककी दृष्टि में भारतके विश्वविद्यालयोंमें उनसे महान वाइसचांसलर अभीतक नहीं हुआ। संकीर्णता उनमें छुई भी न थी। उनकी छाँट सर्वदा व्यक्तिके गुणोंपर होती थी, चाहे बंगाली हो या न हो। उदाहरणार्थ, सर चन्द्रशेखर रमन नोबेल पुरस्कारके विजेता, सर सर्वापाली राधाकृष्णन, गणितज्ञ स्वर्गीय डाक्टर गणेश प्रसाद। वास्तवमें भारत में रमन जैसे वैज्ञानिक होनेका बहुत कुछ श्रेय सर आशुतोष मुकर्जीको है। यद्यपि ताताका बहुतसा कारबार उनके बेटोंने संभाला पर ताता ने उनको इतना चतुर तथा अनुभवी भी बनाया कि वे इतने कड़े कार्य्यको संभाल सके।

लोहे और बिजलीके कारखाने

भारतको व्यवसायोंमें उन्नति प्राप्त करानेकी लग्न ताता के विचारोंमें आजीवन सर्वोपरि रही। इतने दिनों पहिले ताताको ही यह बात सूझी कि इस व्यवसायिक उन्नतिके प्राप्त करनेके लिये पहिले मुख्य व्यवसाय जैसे लोहा तथा सस्ती व अधिक शक्ति-संचय (पावर-सप्लाई) होना आवश्यक है। इसकी ओर भारत सरकारका ध्यान ताताने आकर्षित किया। मगर कोई सफलता प्राप्त न हुई। ताताके मरनेके पश्चात् ही उसकी कम्पनीने जमशेदपुरके लोहेका कारखाना तथा पश्चिमी घाटके जल सम्बन्धी बिजलीके कारख़ाने खोले। परन्तु इनकी नींव वह स्वयं अपने हाथोंसे डाल चुका था। इनके प्रारम्भिक खोजका सारा ख़र्च ताता ने किया और कमसे कम अपने जीवन-कालमें उसे सरकारसे एक कौड़ी भी न मिली।

लोहेकी खानोंकी खोज

लोहेका कारख़ाना खोलनेके लिये ताताने इंगलैण्ड तथा अमरीकाके कारख़ानोंका भ्रमण किया। अमरीकामें पेरिन महोदयकी सलाहसे मि० वेल्डको भूगर्भ-कार्य्य करनेके लिए भारतवर्ष लाया क्योंकि कारख़ाना खोलनेसे पहिले धातुका पता लगाना ज़रूरी था। सन् १९०३ ई० में ताताके सुपुत्र स्वर्गीय सर दोराबजी ताता तथा मि० वेल्ड ने मध्यप्रदेशके जंगलोंमें छानबीन करके डंडी लोहाराके ज़िलेमें लोहेके संग्रह ढूँढ़ निकाले, और सम्भालपुरके पास पद्मपुर जो झरियाकी कोयलेकी खानों तथा महानदीके पास है कारख़ाना स्थापित करनेका निर्णय किया। ज्योलोजिकल सर्वे के पी० एन. बोस महोदय ने पन्द्रह वर्ष पहिले डंडी लोहारामें लोहेका पता लगाया था। बोस महोदय का नाम जमशेदपुरके कारखानेसे सर्वदा संयुक्त रहेगा। जिस समय पद्मपुरमें कारखाना खोलनेका निर्णय हो चुका था, और काम शुरू करनेमें थोड़ी ही देर थी ठीक उसी समय बोस महोदय जो तब मयूरभंज राज्यमें भूगर्भ-विभाग के अध्यक्ष थे, गुरुमहशिनी पहाड़ीपर लोहेकी तहकी तह विदित की थीं, और दोराबजीको लिखा कि पदमपुरके बजाय यदि गुरुमहशिनी पहाड़ीके पास लोहेका कारखाना खोला जाय तो बहुत अच्छा होगा। क्योंकि डंडी लोहाराके लोहेसे गुरुमहशिनीका लोहा अच्छा अधिक और सुगमतासे खोदा जा सकता था। चतुर वैज्ञानिक गुरुमहशिनीमें लोहेकी इस प्रकारकी तह

को जिसमें ६'९ प्रतिशत लोहा धातु है एक प्राकृतिक अद्भुत रचना समझते हैं। महाराजा ने जिन्होंने बड़ी सहानुभूति दिखायी कम्पनीको धातु खोदनेकी आज्ञा दे दी। इस कार्य्यमें महाराजाने वह उदारता प्रकटकी जो ज़रा इस देशमें कम पाई जाती है। पहिले तीन साल धातु मुफ़्त खोदने दी, फिर बड़े सूक्ष्मकर (रायल्टी) पर, यानी दो पैसे टनसे आरम्भ करके धीरे धीरे आठआने टन तक, बनानेपर ठेका दे दिया। दुनिया भरमें कहीं भी इतने कम कर पर धातु नहीं मिलती। साकचोमें जो उस समय स्वर्णरेखा नदीके पास छोटा सा गाँव था, कारखाने खोलने का निर्णय किया। यहाँ कोयला पास था तथा कलकत्ता जैसा बड़ा शहर जहाँसे लोहा बाहरको जाता है एक बड़ा बाज़ार है आज साकची गाँवका नाम ही हट गया. वहाँपर जमशेदपुर शहर ताताके नामपर बसाया गया, जिसमें ब्रिटिश साम्राज्यका सबसे बड़ा कारखाना है, और लगभग डेढ़ लाख आदमी रहते हैं।

कम्पनीके लिये धन

दोराबजी ताता तथा जमशेदजीके मुख्य सहकारी बरजोरजी बादशाहने १९०८ ई० में विलायत जाकर कम्पनीके लिये धन इकट्ठा करनेकी बड़ी चेष्टाकी मगर असफल रहे। क्योंकि अंगरेज़ोंको एक तो इतने बड़े कार्य्यकी सफलताका विश्वास ही न था। दूसरे, यदि रुपया देते भी तो ऐसी शर्तोंपर जिनसे कि ताताके हाथमें कुछ न रहता। भाग्यवश उस समय भारतमें लार्ड कर्ज़नके किये हुए बंग-विच्छेदके कारण स्वदेशोकी लहर चल रही थी; दोराबजी ने इस अवसरका पूरा पूरा लाभ उठाया। मानों बिल्लीके भागों छीका टूट पड़ा। सुबहसे शाम तक ताताका दफ्तर रुपया देनेवालोंकी भीड़से भरा रहता था। बूढ़े, जवान गरीब, अमीर, आदमी, स्त्री, पुरुष सभी ने सामर्थ्य अनुसार धन दिया। यहाँ तक कि तीन हफ्तेमें २ करोड़ रुपया इकट्ठा हो गया। लगभग ५० लाख रुपया कार्य्य संचालनके लिये ग्वालियरके स्वर्गीय महाराजा सिंधिया ने दिया था। २७ फरवरी सन् १९०८ में ताताके मरण-पर्यन्त साकची के स्थानपर वर्तमान जमशेदपुर कारख़ानेकी नींव डाली गई थी। सन् १९११ ई० में पहिलीबार कच्चा लोहा (पिग-आयरन) तथा १६ फरवरी सन् १९१२ को पहिली बार फ़ौलाद या इस्पात बनी। खेद, है कि जमशेद जी अपने कार्य्यकी सफलता देखनेके लिए जीवित न रहे।

पानीसे बिजली

ताताकी दूसरी बड़ी व्यवस्था जल सम्बंधी बिजली का संचालन थी। एमप्रेस मिलकी स्थापनाके लिये नागपुर में रहनेके समय नर्मदाके झरने जो प्रसिद्ध बिल्लौरी चट्टानों के पास है, ताताकी आखोंमें खटकते रहते थे। दूध सागर॰ के झरनोंसे भी बिजली पैदा करनेकी व्यवस्था की गई। इस कार्य्यमें एक मि० गोसलिंगको प्रारम्भिक कार्य करनेके लिये रक्खा गया। छुट्टीके दिनोंमें गोसलिंग पश्चिमी घाटकी पहाड़ियोंपर घूम रहा था, वहाँपर उसने एक ऐसा स्थान मालूम किया जहाँ नदीके पानीके अतिरिक्त बरसाती पानी इकट्ठा किया जा सकता था, जिससे अधिक मात्रामें बिजली पैदा की जा सकती थी। कावेरी झरनोंकी विद्युत व्यवस्थाकी सफलताके आधारपर गोसलिंगने ताताले पश्चिमीघाटमें बिजलीका कारख़ाना खोलनेका अनुरोध किया। ताता इनके रहस्यको तुरन्त समझ गया और एक कम्पनीकी स्थापना की। परन्तु कारख़ाना खोलनेके लिए ज़मीन और बहुत सी बातोंकी आवश्यकता थी। ताता स्वयं भारत-मंत्री लार्ड हैमिल्टनसे मिला और सहायताका वादा करा लिया। यह कार्य्य भी ताताके जीवन कालमें न हो सका। रुपया मिलनेमें फिर असुविधा हुई। परन्तु सन् १९१० ई० में लार्ड सीडेनहेमने शोलापुरमें कपड़ेकी एक मिलका उद्घाटन करते हुये जनताको इस लाभदायक व्यवस्थाके लिये रुपया देनेको प्रेरित किया। ७ नवम्बर सन् १९१० ई० में ताता-जल-सम्बन्धी विद्युत् कम्पनी खुली तथा ११ फरवरी सन् १९१५ ई० को विद्युत् धाराका संचालन हुआ।

बम्बईमें इतने बड़े कारख़ाने होनेका कारण इस सस्ती शक्तिका होना है। एक बार जब वहाँ शक्ति मिलने लगी, तब बहुतसे कारखाने बढ़ गये तथा नये खोले गये। यहाँ तक कि लोनावालाका बिजली घर बदल गया और बादमें खोपोली तथा भीराके बड़े बड़े बिजली घर बनाने पड़े।

शिक्षाकी व्यवस्था

पाठक समझेंगे कि ताताने अधिकतर ऐसे काम किये

जिनसे उसे खूब धन मिला। अवश्य, परन्तु ताता दान देनेमें भी उतना ही उदार था। पहिले कहा जा चुका था कि भारतकी दस्तकारियोंको बढ़ानेके लिये वैज्ञानिक शिक्षाका होना आवश्यक है। इस लिये शुरूमें भारतवासियोंके लिये पश्चिमी देशोंमें पढ़नेके लिये ताताने छात्रवृत्ति स्थापित की। ताता विशेषकर वैज्ञानिक शिक्षाके पक्षमें था। ताताके मरण-पर्यन्त इस कोषको जो जे. एन. ताता-शिक्षा-व्यवस्थाके नामसे प्रसिद्ध है और भी बढ़ा दिया। इसमें इस समय लगभग दस लाखसे अधिक रुपया जमा है। परन्तु यह तो शुरुआत थी। ताता तो भारतमें वैज्ञानिक शिक्षाकी सुविधा करना चाहता था। इस लिये भारत सरकार तथा देशी रियासतोंसे इसके लिये अनुरोध किया और स्वयं कहा जाता है २५ लाख रुपया देनेका संकल्प किया। मैसूर दरबार ने सुप्रसिद्ध दीवान सर सेशाद्री अय्यरके प्रभावसे पाँच लाख रुपया प्राथमिक व्ययके लिये तथा पचास हज़ार रुपया सालाना देनेका इस शर्तपर वादा किया कि बंगलौरमें विद्यापीठ स्थापित की जाय। भारत सरकारने विश्वविख्यात प्रो० सर विलियम रेमज़ेको इस व्यवस्थाकी जांच करनेके लिये १९०१ में भारतवर्ष बुलाया। प्रो० रेमज़ेने भारतमें वैज्ञानिक शिक्षाकी सुविधाका रहस्य तथा आवश्यकता को दर्शाया और बंगलौरमें ही विद्यापीठ स्थापित करनेका निर्णय किया। परन्तु महा खेद है कि जो कार्य्य ताताको इतना प्रिय था वह भी उसकी मृत्युके पश्चात् उसके पुत्रों के बार बार चेष्टा करनेपर पूरा हुआ। सन् १९०६ ई० में प्रो० रेमज़ेके विद्वान् सहायक तथा शिष्य डा० ट्रेवर्स विद्यापीठके प्रथम अध्यक्ष होकर आये। सन् १९११ में ई० भारतीय विज्ञान विद्यापीठ (इण्डियन इंस्टीट्यूट आव् सायन्स) बंगलौरमें कार्य्य आरम्भ किया।

ताताकी उदारतायें

ताता-वंश जनता सम्बन्धी कार्योंके लिये दान देनेमें विख्यात है। लगभग सात वर्ष हुये ताताके सुपुत्र सर दोराबजी ने अपनी स्त्रीकी स्मृतिमें पच्चीस लाख रुपया देकर एक कोष (लेडी ताता मेमोरियल ट्रस्ट) स्थापित किया जिसके ब्याजसे १५० रु० मासिककी १० छात्रवृत्तियाँ भारतवासियोंको और लगभग ५००) मासिक की चार छात्रवृत्तियाँ जो अन्य देशोंके लोगोंको भी दी जाती हैं, स्थापितकी गई हैं। यह छात्रवृत्तियाँ ऐसे कार्य्यके लिये दी जाती हैं जो रोगोंकी शान्ति करने तथा स्वास्थ्य बढ़ानेसे सम्बन्ध रक्खें। कितनी उदार उद्देश्य है।

वास्तवमें ताताको भारतका ऐण्डस कारनेगी कह सकते हैं। यहाँ यह बता देना उचित है कि कारनेगी ने १० शिलिंग मासिक वेतनपर अपनी जीवन-लीला आरम्भ की थी और एक अमरीकन लोहेके कारखानेमें कुली हुआ था। बादमें इसका सभापति हुआ। उसने १० अरब रुपया दान देकर वाशिंगटनकी कारनेगी-विद्यापीठ खोली जो अमरीकामें विज्ञानका सबसे बड़ विद्यापीठ है। कहा जाता है कि संसारके किसी व्यक्तिने विज्ञानके लिये इतना दान नहीं दिया। परन्तु कारनेगीकी तरह ताताको अपने कार्योंको फूलते फलते देखनेका सौभाग्य प्राप्त न हुआ। लगभग सभी बड़े काम जिनसे ताताका नाम चिरस्मरणीय रहेगा, उसके मरणोपरान्त हुये।

ताता जैसे महान व्यक्ति सर्वदा पैदा नहीं होते वे तो ईश्वरकी कृपासे देशकी उन्नतिका मार्ग दिखलानेके लिये कभी-कभी संसारमें भेजे जाते हैं। ईश्वर उनको वैसी ही बुद्धि भी देता है। ताता ने भारतके उद्धारके लिये जो जो काम किये उसके लिये भारतवासी सर्वदा उसके सादर ऋणी रहेंगे। यद्यपि ताता ने स्वयं रुपया कमाया, परन्तु उससे जनताको कितना लाभ हुआ, लाखों भारतवासी ताताके कारखानोंके कारण अपनी जीविका कमाते हैं। सैकड़ों विद्यार्थी अपनी शिक्षा समाप्त करते है। वास्तवमें जो काम ताता ने किये उनमें जातीयताकी झलक टपकती है और उसके सब कार्योंका मुख्य ध्येय भारतका उद्धार था। इस लेखका मुख्य उद्देश भारतवासियोंको उस महान् आत्माकी याद दिलाना, है जिसने भारतको उन्नतिका मार्ग दिखलाया तथा उस उन्नतिको प्राप्त करने के साधनोंका संचालन किया। उन लोगोंके लिये जो साधारण असुविधाओंसे काम करनेसे हट जाते हैं तथा उनके लिये भी जिन्हें रुपया भले कार्योंमें लगानेके लिये कुछ दिक्कत होती है, ताताकी जीवन-लीलासे अधिक ज्वलन्त उदाहरण नहीं मिल सकता।

वायुभार मापक यंत्र

[ले० श्री बाबूराम पालीवाल]

किसी स्थानका किसी विशेष समयपर मौसम उस स्थानके उस समय पर वायुमंडलकी हालतको कहते हैं जो आम तौरपर ६ बातों द्वारा बतायी जा सकती है। इनको वायुमंडल-वैज्ञानिक-तत्व कहते हैं। वे (१) वायुभार (२) तापक्रम (३) बलेदता (४) वायुके आनेकी दिशा और उसकी गति (५) मेघ और (६) वर्षा हैं। ऋतुओंकी भविष्य-वाणी प्रकाशित करनेमें इन तत्वोंका जानना बड़ा आवश्यकीय है। अतः प्रत्येक दिन इनका विवरण तार द्वारा भविष्यवाणी प्रकाशित करने वाले कार्यालयों (यानी पूना, कलकत्ता और कराँची) को हर एक वायु-निरीक्षणालयसे भेजा जाता है। इस लेखमें हम उन यंत्रोंका विवरण देंगे जो वायुभार जाननेके लिये काममें लाये जाते हैं।

वायुभार नापनेके काम में जिस यंत्रका व्यवहार होता है उसे भार-मापक या बैरोमीटर कहते हैं। यह दो प्रकार का होता है :—

(१) वह जिसमें तरल धातुका प्रयोग किया जाता है। यह तरल धातु सर्वदा पारा होती है।

(२) वह जिसमें तरल धातुका प्रयोग नहीं किया जाता। इसे एनोराइड बैरोमीटर कहते हैं।

(१) तरल धातुके प्रयोगके बैरोमीटर दो प्रकारके होते हैं :—

(क) स्टेण्डर्ड फोर्टिन्स बैरोमीटर—इस यंत्रका अधिक मात्रामें प्रयोग किया जाता है। यह लगभग ३ फुट लंबी, व ¼ इंच (६ मिलीमीटर) व्यासकी काँचकी नली [चित्र १ में (क)] में पारा भर कर बनाया जाता है। इस काँचकी नलीमें पारा भर कर और उँगली लगा कर, जिससे पारा निकल न जाय, एक पारा भरे हुये प्यालेमें, जिसे सिसटर्न [चित्र १ में ज] कहते हैं उलट देते हैं। काँचकी नलीको हिफाजतसे रखनेके लिये उसे पीतलके खोल (चित्र १ में ख) में बिठला देते हैं, जो बीचमें कटा होता है जिससे भीतरकी काँच वाली नलीका पारा दीखता रहे। पीतलके खोलके ऊपर पैमाना [चित्र १ में ग] बना होता है, और उस पर एक वर्नियर [चित्र १ में घ] होता है। यह वर्नियर खोलके भीतर एक दूसरी नलीसे जुड़ा रहता है जो स्क्रू [चित्र १ में च] द्वारा नीचे ऊपरको उठाया जा सकता है। इस प्रकार वर्नियरकी सहायतासे इस यंत्रकी माप इंचोंमें ०.००२ इंच तक ली जा सकती है। इस यंत्रकी विशेषता यह है कि सिसटर्नमें भरे हुये पारेको एक हाथी दाँतके बने हुये पोइण्टर [चित्र २ में ह] से बिलकुल छुआकर यंत्रका शून्य निश्चित किया जाता है, और नलीमें भरे पारेकी ऊपरी सतहको पैमानेपर पढ़कर वायुभार मालूम किया जाता है। बैरोमीटरकी नली एक प्लेट (चित्र २ में ज) में होकर निकलती है। उनसे यह एक चमड़े (किड्लेदर) के टुकड़ेसे बाँध दी जाती है। सिसटर्नमें हवा इस घटने-बढ़ने वाले जोड़से होकर आती जाती रहती है। और इस तरह वायुमंडलके वायुभारसे प्रभावित होकर पारा घटता-बढ़ता रहता है। सिसटर्नमें काँचका एक सिलेण्डर (चित्र २ में फ) होता है जो तीन बड़े बड़े पेंचों (चित्र २ में प) द्वारा पीतलके खोलसे जुड़ा होता है। पारा सिसटर्नमें भरा रहता है, जिसका नीचेका हिस्सा दो लकड़ीके टुकड़ोंका बना होता है, जिनसे एक चमड़े (किड् लेदर) की थैली (चित्र २ में न) लगी रहती है। इसके नीचे एक पेंच (चित्र २ में स) लगा होता है, जिसके द्वारा पारेकी सतह को हाथी दाँतके
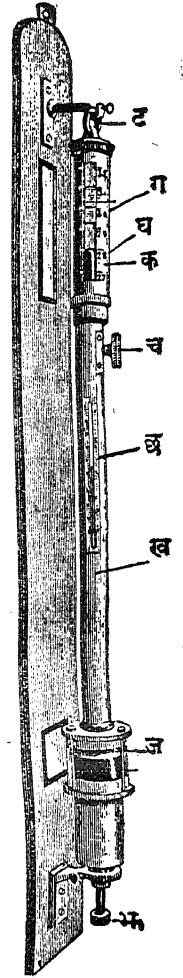
चित्र १

पोइण्टरसे छुआया जाता है और बैरोमीटरके पैमानेका शून्य निश्चित किया जाता है। वायु-भार पढ़ते समय पहिले पेंच (चित्र २ में स) द्वारा सिसटर्नके पारे को सतहको हाथी दाँतके पोइण्टर (चित्र २ में ह) से बिल्कुल ठीक ठीक छुआ दिया जाता है, और नलीमें पारेकी सतहको वर्नियरकी सहायतासे पैमाने पर पढ़ लिया जाता है। वायुभारके साथ-साथ ही वायु-तापक्रमका भी पारे पर असर पड़ता है, और उस असरको ठीक करनेके लिये एक थर्मामीटर पीतलके खोलमें लगा रहता है। (चित्र १ में छ) उसको भी पढ़ लिया जाता है और उसके कारण पारे पर जो असर होता है उसे कम कर देने पर ठीक वायु-भार मालूम हो जाता है। इस यंत्रका आविष्कार टोरीसेली (सन् १६०८ से १६४७) ने किया था।

चित्र २
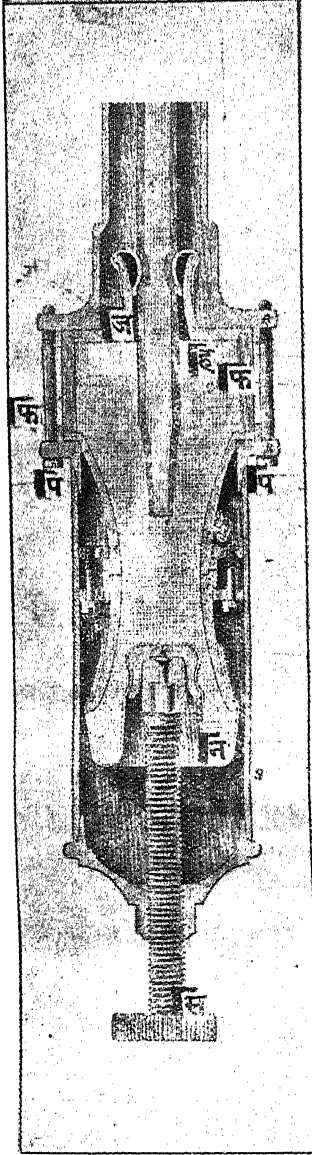
(ख) क्यू पेटर्न बरौमीटर — दूसरा तरल धातुके प्रयोगका भार-मापक यंत्र क्यू-बेरौमीटर है। इसमें सिसटर्न स्टीलका बना होता है और इसमें पेंच द्वारा पारेकी सतहको ऊपर-नीचे करनेका प्रबन्ध नहीं होता। परन्तु उसकी अपेक्षा इसके पैमाने इस तरह बने होते हैं कि उसमें सिसटर्नमें पारेके घटने-बढ़नेके असरका खयाल रक्खा जाता है, अर्थात् ऊपर पैमाना बहुत छोटा और ज्यों ज्यों नीचे आता जाता है बड़ा होता जाता है। इस बैरोमीटरका पैमाना फौर्टिन स्टेण्डर्ड बैरोमीटरकी सहायतासे बनाया जाता है। इस प्रकारके बेरोमीटरसे यह लाभ है कि इसका सिसटर्न सटा रहता है। इस कारण यह आसानीसे कहीं भी ले जाया जा सकता है, और समुद्र आदिमें अधिकतर काममें लाया जाता है।

(२) एनोराइड बेरोमीटर—इस भार-मापक यंत्रमें तरल धातुका प्रयोग नहीं किया जाता। इसका आविष्कार बीडीने सन् १८४३ ई० में किया था। इसमें जैसा कि इसके नामसे प्रगट होता है एनोराइड धातुका प्रयोग किया जाता है। यह एनोराइड धातुक दो पतली चद्दरोंक जिनका व्यास लगभग $1\frac{1}{2}''$ ह झाल कर बनाया जाता है इसके अन्दरकी हवाको ट्यूब (चित्र ४ में १२) द्वारा निकाल कर अन्दरका वायुभार कम करके उसे झाल दिया जाता है, जिससे बाहरकी हवा अन्दर न जा सके। इस प्रकार झली हुई चद्दरोंकी मोटाई लगभग $\frac{1}{8}''$ इंच होती है। इस यंत्रमें एक स्टीलकी स्प्रिंग (चित्र ४ में २) लगी रहती है जिससे यह यंत्र फट न जाय। जब वायुभार बढ़ता है तो चद्दर के साथ सटो हुई धुरी नीचेको धसकती है और इससे रौड (चित्र ४ में ३) तथा स्प्रिंगका सिरा नीचेको धसकता है। इस ऊपर-नीचेको गतिको जोड़ (चित्र ४ में ४) द्वारा दांये-बांयेकी गतिमें परिवर्तित कर दिया जाता है और इस प्रकार सुई जो कि वायुभार दिखलाती है वह

चित्र ३

दायें बांये घूमती है । इस प्रकारका बेरोमीटर उतना सही नहीं होता जितना तरल धातुवाला होता है परन्तु

चित्र ४

क्योंकि यह चद्दरका बना होता है और इससे टूटनेका भय दूसरोंकी अपेक्षा कम होता है, इस लिये यह कहीं भी आसानीसे ले जाया जा सकता है, विशेषकर हवाई जहाज़ोंसे इसका खूब प्रयोग होता है ।

इन सब यंत्रोंके अलावा एनोराइड धातुकी सहायतासे एक स्व-लेखक यंत्र बनाया जाता है। यह चार्टके ऊपर वायुभार अपने आप लिखता जाता है। इस यंत्रको बेरोग्राफ कहते हैं। यह एनो राइड बेरौमीटरकी तरह ८ झले हुये वेक्यूअम बॉक्सोंका बना होता है। क्योंकि इसमें एनोराइड बेरोमीटरकी अपेक्षा आठ गुनी ताकत काममें लाई जाती है इसलिये यह उसकी अपेक्षा अधिक सही होता है।

इस प्रकारके एक यंत्रका चित्र दिया जाता है। इसमें (चित्र ५ में १) वायुभारके असरसे घटने-बढ़नेवाली ८ ऐनोराइडके वेक्यूअम बॉक्स एक दूसरेसे झले हुये हैं, और एनोराइड बेरोमीटरकी तरह इनके भीतरकी हवा निकाल ली गई है। (चित्र ५ में २) तना। (चित्र ५ में ३) यह एनोराइडके वेक्यूअम बॉक्समे जुड़ा रहता है और जो वायुभारके घटने-बढ़नेपर बॉक्सोंके साथ ऊपर नीचेको होता है। इसके ऊपर नीचे जानेकी हरकतको लिखनेवाले पेन (चित्र ५ में ४) तक लीवर (चित्र ५ में ५) तथा लिंक (चित्र ५ में ६ और ७) द्वारा पहुँचाई जाती है। पेनको चार्टपर लगाने तथा अलग करनेके लिये पीतल की रौड (चित्र ५ में १०)से काम लिया जाता है। यह रौड (चित्र ५ में ११) लीवर द्वारा आगे पीछेको जाती है । दाहिने हाथकी तरफ (चित्र ५ में १२) एक स्क्रू होता है जिसकी सहायतासे पेनको ऊपर-नीचे करके पारेवाले भार मापकसे वायुभार जान कर उसीके अनुसार चार्टपर
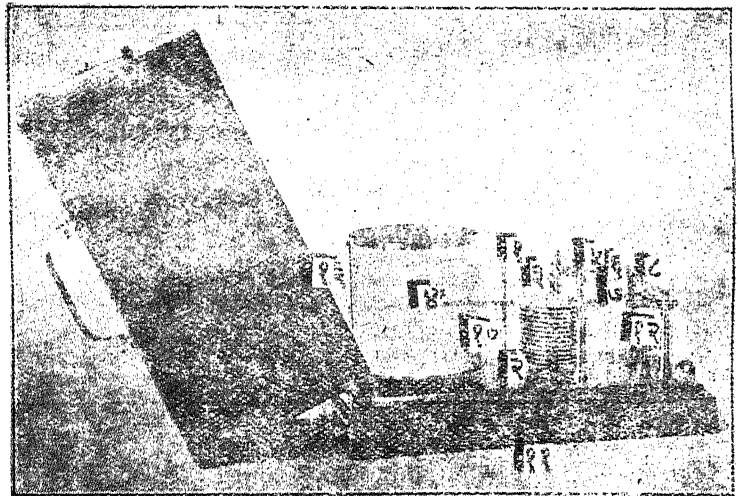
चित्र ५

लगा सकते हैं (चित्र ५ में १३)। एक पीतलका ड्रम होता

(पृष्ठ ७३ पर देखो)

बंदूकनुमा कमान

[ले० डा० गोरखप्रसाद डो० एस-सी०]

इस धनुषके बनानेके लिये कुंदेके वास्ते शीशमकी लकड़ी सबसे अच्छी होगी, परन्तु यदि शीशमके मिलनेमें कुछ कठिनाई हो तो चीड़की लकड़ीसे भी काम चल सकता है। लकड़ी १ १/२ इंच मोटी, ६ इंच चौड़ी और ३ फुटसे ज़रा अधिक लंबी हो। धनुषको अच्छे बाँससे बनाना चाहिये, जो १/८ इञ्च मोटा, १ इञ्च चौड़ा और ३ फुट लम्बा हो। घोड़ा और कमानी बनानेके लिये थोड़ी-सी शीशमकी लकड़ी चाहिये। तीरोंके लिये १ फुट लम्बा बाँस भी चाहिये। थोड़ी सी टीन, कुछ काँटा और ४ फुट ताँत या मजबूत डोरेकी भी आवश्यकता पड़ेगी।

कुंदेकी लकड़ीको पहले दोनों ओरसे रंदा और रंगमार करके खूब चिकनाकर लेना चाहिये। फिर उस पर चित्र १ में दिखलाया गया आकार पूरे पैमाने पर उतारकर लकड़ी काट डालनी चाहिये। इसमें केवल कुंदा ही नहीं है, वह भाग भी है जिसे साधारणतः नली कहते हैं, यद्यपि वहाँ नलीके बदले ठोस लकड़ी है। इस 'नली'की ऊपरी सितह पर एक खाँचा काट दिया जाता

है जिसमें तीर सरकता या चलता है। खाँचा २/८ इञ्च चौड़ा और ३/८ इञ्च ही गहरा भी हो। टीनको मोड़कर लकड़ी पर कुंदेके पास इस लिये जड़ दिया जाता है कि लकड़ी वहाँ फट न जाय। टीन वहाँ जड़ा जाय जहाँ ताँत दाँतीमें से निकलकर छटकता है। लकड़ी पर सबसे
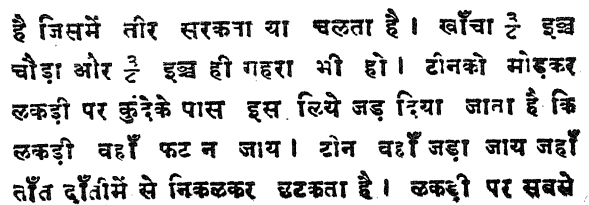
अधिक जोर यहीं पड़ता है।

धनुषके बाँसको फँसानेके लिये सिरेसे ९½ इञ्च हट कर नलीमें एक चौकोर छेद कर दिया जाता है। छेदकी नाप १" × ⅛" हो। घोड़ेके लिये कुंदेके सिरेसे १२ इञ्च हट कर एक छेद किया जाता है। यह करीब ¼" चौड़ा रहे। यह छेद कुछ तिरछी दिशामें किया जाता है जैसा चित्र १ से स्पष्ट है। एक कमानी चित्र २ में दिखलाये गये आकारकी शीशमकी लकड़ीकी बनाई जाती है, और कुँदेपर दो पेंचोंसे जड़ दी जाती है। घोड़ा ½ इंच मोटा बनाया जाता है। इसका आकार चित्र ३ में दिखलाया गया है। कुंदे और नलीकी संधिपर बनाये गये छेदमें इसे पहना दिया जाता है और एक कील जड़ दी जाती है जो धुरीका काम देती है। कील जड़नेके पहले घोड़ेको ऐसी स्थितिमें रख लेना चाहिये कि पीछेकी ओर खींचनेपर कमानी उचित दूरी तक ऊपर उठे। घोड़ेको पीछेकी ओर खीचनेसे कमानी ऊपर उठती है और कमानी ताँतको ऊपर उठा देती है। इस प्रकार जब ताँत दाँतोंसे ऊपर उठ जाता है तो तीरको संचालित करता है।

धनुषके लिये बाँसको रंदा या चाकूसे छीलकर चित्र ४ के आकारका कर देना चाहिये। बीचमें २ इंच तक बाँस अपनी पूरी चौड़ाई अर्थात् एक इंचका रहे और यह गावदुम होकर किनारेपर पहुँचते-पहुँचते ½ इंच ही चौड़ा रह जाय। ताँत (या रस्सी) बाँधनेके लिये सिरोंके पास दाँतियाँ काट दी जाती हैं। बंदूककी नलीमें इस बांसको केवल फँसा भर दिया जाता है, कील या पेंचसे जड़ा नहीं जाता। ऐसा करनेसे पीछे बाँसको अलग निकालकर बंदूक और कमानको रखनेमें सुविधा होती है। यदि छेदमें बाँस कुछ ढीला पड़े तो बाँस पर कपड़ा लपेट कर उसीको छेदमें डालना चाहिये। अब मजबूत ताँत या रस्सी बाँसमें काटी गई दाँतियोंमें इस प्रकार बाँध देनी चाहिये कि जब बाँस प्रायः सीधा रहे तब रस्सी तनी रहे।

तीरोंका आकार चित्र ५ में दिखलाया गया है। इसके विभिन्न भागोंका नाप भी चित्रमें दे दिया गया है। फल (चौड़े भाग) की मोटाई बहुत कम होनी चाहिये। लम्बा भाग गोल होता है। उसका व्यास ³⁄₁₆ इंच रहेगा।

तीर चलानेके लिये ताँतको पीछे खींच कर कुंदे और नलीकी संधिके पास बनी दाँतीमें फँसा दो। (देखो चित्र ६) फिर नलीके खाँचेमें तीर रखदो, बंदूककी तरह निशाना साधो और घोड़ा खींचो।

सरल धनुष

चित्रोंमें एक सरल धनुष बनानेकी रीति भी दिखलाई गई है। इसके लिये ½ इंच व्यासका ठोस बाँस लो और उसके एक सिरेके पास दाँती काट दो, जैसा चित्र ७ में दिखलाया गया है। करीब २½ फुट लंबी मजबूत रस्सी लो और उसे उपरोक्त दाँतीमें बाँध दो। रस्सीके दूसरे सिरेपर गाँठ लगा दो। इस सरल धनुषके लिये प्रायः वैसे ही तीर चाहिये जैसा पहले बतलाये गये धनुषके लिये, अंतर केवल इतना ही रहता है कि तीरमें एक जगह दाँती काट दी जाती है जैसा चित्र ८ में दिखलाया गया है।

तीर चलानेके लिये तीरकी दाँतीमें रस्सीकी गाँठको फँसा दो। फिर दाहने हाथमें बाँसको पकड़ कर बायेंसे तीरको पकड़ो और दाहिने हाथ झटका देकर तीरको ज़ोर से चलाओ। थोड़ेसे अभ्यासके बाद तीर कई सौ फ़ुट तक मारा जा सकता है (बॉय-मिकैनिकसे)।

(पृष्ठ ७१ का शेष)

है जिसके अन्दर घड़ी होती है। उसको एक पीतलकी रौड पर जिसके तनेमें स्क्रू होता है और उसे ड्रमके स्क्रूसे बिलकुल सटा देते हैं, इस तरह जैसे जैसे घड़ी चलती है, वैसे ही वैसे ड्रम घूमता रहता है। इस तरह चार्टको ड्रमपर ठीक समयके अनुसार चढ़ा देते हैं और पेन द्वारा चार्टपर लकीर बनती जाती है। इससे यह जान सकते हैं कि अमुक दिन अमुक समयपर अमुक स्थानमें वायुभारकी क्या हालत थी। इस प्रकारके स्वलेखक यंत्रों द्वारा प्राप्त निरीक्षित फल भविष्यमें अन्वेषण-कार्यके लिये बड़े लाभदायक होंगे।

संसारकी सर्वप्रसिद्ध वाटिका - क्यू

[ले० श्री राधानाथ टण्डन, बी० एस-सी०]

काँचके विशाल घर

इस समय संसारमें सबसे बड़ी वाटिका क्यूकी मानी जाती है। यह स्थान लण्डनसे आधे घंटेके रास्तेकी दूरी पर है। सरेमें टेम्स नदीके एक तटपर यह वाटिका स्थित है। छुट्टियोंके दिनोंमें यहाँकी चहल-पहल देखने योग्य होती है। सहस्रोंकी संख्यामें दर्शकगण यहाँ उपस्थित होते हैं। इस वाटिकामें २८८ एकड़ भूमि है। यहाँ पूरे वर्ष भर मनोहर चित्ताकर्षक पौधे देखनेको मिल सकते हैं। जिस ऋतुमें अन्य स्थानोंके बाग़ सूखे पड़े होंगे, उस ऋतुमें भी यहाँ काँचके बने घरोंके लहलहाते उपवन देखने को मिल जायँगे। काँचके एक विशाल घरमें पाम और साईकाडोंका विस्तृत समूह यहाँ सुरक्षित है। यह अपने ढंगका अद्वितीय है। काँचके हज़ारों टुकड़ोंको लगाकर बनाया गया यह घर इतना बड़ा है कि इसमें खजूरके बड़े बड़े पेड़ भी उग सकते हैं। यहाँ पर एक वृक्ष 'ब्रौनिया' है जो अप्राकृतिक साधनों द्वारा बराबर पूरे वर्ष पुष्पित हुआ करता है। कैक्टी, चूस कर खाने योग्य पदार्थोंके पौधे, व्यापारिक महत्वके अनेक वृक्ष, तरह तरहके फर्न, आर्किड, सामान्य तापक्रममें रहनेवाले पौधे, और भी अनेक प्रकारके लता-पादप इस क्यू-वाटिकाके काँच-घरोंमें सुरक्षित हैं। मांस-भक्षी या कृमि-आहारी पौधे भी यहाँ देखनेको मिलेंगे।

पौधोंकी प्रदर्शिनी

क्यू-वाटिकामें एक कन्सरवेटरी है जिसमें अनेक पौधोंकी प्रदर्शिनी की गई है। कैलसिओलेरिया, बिगोनिया, लिली, सिनेटेरिया, पेलार्गोनियम, आदिके पौधे यहाँ विशेष प्रकारसे देखनेको मिलेंगे।

इस वाटिकामें वैज्ञानिक दृष्टिसे बराबर पौधोंपर कुछ न कुछ प्रयोग होते ही रहते हैं। अनेक वनस्पति-विज्ञान वेत्ता और उपवन-विज्ञान-वेत्ता नये नये ढंगसे अपने प्रयोग यहाँ किया करते हैं।

अपूर्व शोभा

बसन्त ऋतुके प्रथम चरण रखते ही फुलवारियाँ हँस पड़ती हैं। एक सी कुशलपूर्वक कटी हुई हरी घास बड़ी मोहक प्रतीत होती है। नदीके किनारोंपर क्रोकस ऐसे सुन्दर लगते हैं मानों सोना बिछा हो। गौरइयोंके आनेसे पूर्व ही डैफोडिल पौधे अपने चटक और चमकीले रंगको प्रदर्शित करने लगते हैं। बीच, हार्स चेस्टनट, ओक आदि अनेक वृक्षोंकी शोभाका तो कहना ही क्या। यहाँ दर्शकोंकी नित्य प्रति बड़ी भीड़ रहती है, पर फिर भी सब जगह शान्ति मिलेगी। नीली घंटियाँ शान्तिका सन्देशा देती रहती हैं। इस शान्तिमें पक्षियोंके मधुर राग उपवनके महत्वको बढ़ा देते हैं।

क्यू-गार्डनमें ट्यूलिप, हेयासिन्थ, और अन्य सुकुमार फूल ऐसे लगते हैं, मानों देवलोककी अप्सरायें ही पृथ्वी पर उतर आयी हों। एक एक फूलमें सौन्दर्यकी होड़ सी लग जाती है। अज़ेलिये अधिक सुन्दर हैं या रोडोडेण्ड्रोन मैगनोलिया, फार्सीथिया, जापानी चैरी, हाथर्न, लिलाक आदि सब एकसे एक बढ़कर हैं। कुछ का कहना है कि क्यू-वाटिकामें तभी आओ जब लिलाक खिल रहे हों। ऐसे समय की बात ही क्या! गुलाबों की शोभा का तो कहना ही क्या। यहाँ के चट्टानी-बाग़ भी देखने योग्य हैं। झीलोंकी शोभा तो अवर्णनीय है।

क्यू- वाटिकाके प्रति जनताको इतना ध्यान रहता है कि वह इसे गन्दा नहीं करती। कोई भी दर्शक किसी पेड़ पौधे को हानि पहुँचानेकी नहीं सोचता और बग़ीचोंमें जा कर देखिये, कहीं कागज़ों और समाचार पत्रोंके ढेर हैं, कहीं मूँगफली, केलों या नारंगी के छिलके पड़े हैं, पर क्यू-वाटिकामें कहीं ऐसा न पाइयेगा। जिन दिनों बैंकोंकी छुट्टियाँ होती हैं, यहाँ प्रति दिन ५०००० की संख्यामें जनताका आना साधारण सी बात है। सन् १९३१ के एक सोमवारको ९६, ८५९ अर्थात् एक लाखके लगभग जनता ने इस बाग़की सैर की। यह अब तक की सबसे अधिक संख्या है।

क्यू-वाटिकाका ऋण

क्यूकी वाटिकामें दोनों बाते हैं, यह अत्यन्त मनोमोहक भी है और साथ ही साथ ज्ञानवर्धक भी। अनेक उपनिवेशोंमें नये-नये पौधोंको लगानेका प्रोत्साहन क्यू वाटिका ने ही दिया। १७९१ में वेस्टइण्डीज़में ब्रेड-फ्रूटके प्रवेशका श्रेय इस वाटिकाको ही है। अनन्नास, चाय, कोको, कहवा, कोकेन, क्वीनीन, और अनेक प्रकारकी लकड़ियाँ देश देशान्तरोंमें इस वाटिकाके प्रोत्साहनसे ही फैलाई गयीं। भारतवर्षमें सिंकोनाकी विस्तृत खेती भी क्यू वाटिकाकी ऋणी है। लंका और मलाया प्रायद्वीपमें रबड़का प्रवेश भी इसीके कारण हुआ। सन् १८७६ में क्यूसे ही इन पौधोंका प्रथम पार्सल इन स्थानोंको किया गया था। इस प्रकार समस्त संसारपर क्यू-वाटिकाका ऋण है।

इस बागकी प्रधानता

क्यू बाग़ लगभग तीन सौ वर्ष पुराना है। १७ वीं शताब्दीके अन्तिम भागमें क्यू-घर और वाटिका सर हेनरी केपेलके अधिकारमें थी। इन सज्जन ने इस वाटिका में अत्युत्तम फल-वृक्षोंका संग्रह किया था। सेम्युअल मालीनियो नामक एक ज्योतिषी ने इस स्थानको वेधशाला-में परिवर्तित कर दिया और यहाँ एक दूरदर्शक यंत्र लगाया। इस वेध-शालामें डाक्टर ब्रेडलेने महत्वपूर्ण खोजेंकीं। लेडी मालीनियोकी मृत्युपर समस्त जायदाद उस समयके प्रिन्स आव् वेल्स फ्रेडरिकके नाम कर दी गयी। सन् १७५९ में सैक्सगाथाकी राज कुमारी अगस्टा ने (तृतीय जार्जकी मा) ९ एकड़ भूमिमें एक बाग़ लगाना आरम्भ किया। इसके बाद उसके लड़के ने रिच-माण्ड लॉज और क्यू-गृह दोनोंकी जायदादें मिला दीं। ये ही अब क्यू-गार्डनके नामसे प्रसिद्ध हैं। तृतीय जार्जको पौधोंके एकत्रित करनेका विशेष शौक़ था। देश देशान्तरों में उसने लोगोंको भेजकर पौधोंका संकलन कराया। रानी विक्टोरियाके राज्यकालके आरम्भमें इस वाटिकाको कोई प्रोत्साहन न मिला, पर जनताके विरोध करनेपर यह बादको जनताको सौंप दिया गया। इस समय यह कृषि-और मीन-विभागके मंत्रीके अधिकारमें है।

सन् १८४१ में बागका क्षेत्रफल १५ एकड़ था और जबसे यह सर्व साधारणको इस बाग़में आनेकी अनुमति मिली, पहले वर्ष ९१७४ दर्शक यहाँ आये। पर अब तो इसका क्षेत्रफल २८८ एकड़ है। आजकल यहाँ वनस्प-तियोंसे संबन्ध रखनेवाला एक बड़ा पुस्तकालय भी है जिसमें ४०००० से अधिक पुस्तकें हैं।

विषय-सूची

पपाया या पपीता या अरण्ड ख़रबूज़ा

संयुक्त प्रान्तमें पपीतेकी काश्त

इस दरख़्तकी उम्र ७–८ वर्षकी होती है लेकिन ज़ोरदार फल केवल तीन वर्ष तक ही आते हैं। इससे अधिक समय तक पौदोंको न रखना चाहिये। तीन साल तक ५०–१०० बड़े फल प्रति वर्ष आते हैं जो कि १ आनेसे ३ आने प्रति फलके हिसाबसे बिक सकते हैं।

पौदा तयार करना

बीज नरसरीमें कभी बो सकते हैं। सरद जगहोंमें फ़रवरीसे अगस्त तक बीज बोना चाहिये। फ़रवरीका बोया हुआ बीज बरसातके शुरूमें पौद लगाने योग्य हो जाता है। नरसरी किसी ऊँची जगह में होनी चाहिये। ज़मीन-को अच्छी तरहसे खोदकर बारीक और भुरभुरा कर लेना चाहिये। इसमें अच्छी तरहसे सड़ी हुई पत्ती या गोबरकी खाद और कुछ बालू मिलाकर देना चाहिये। बीज १½ इंचसे २ इंचके फ़ासलेपर बोना चाहिये और उनके ऊपर एक चौथाई इंच गहरी पत्तीकी खादकी तह डालकर फ़वारेसे पानी छिड़कना चाहिये। यह याद रहे कि ज़मीन ज़्यादा गीली न होने पावे। बीज बक्सों या गमलोंमें भी बोया जा सकता है। बीजके जमने तक उनपर साया रखना चाहिये। इसके बाद पौदको सबेरे धूप मिलनी चाहिये और दोपहर बाद गरमीसे रक्षा करनी चाहिये। जब पौद तीन पत्तीका हो जावे तब उसको बड़ी नरसरीमें लगाना चाहिये जो कि पत्तीकी खाद व मिट्टी व गोबरकी खादको बराबर हिस्सोंमें मिलाकर नौ इंच गहरी बनाई गई हो और उसमें कुछ बालू भी मिला हो और उनको दोपहर बादकी गर्मीसे रक्षा करनी चाहिये पौदोंमें आपसका फ़ासला १२ इंच होना चाहिये जिसमें पौदोंको गरमीमें बढ़नेका मौक़ा मिले।

उपयुक्त भूमि

पपीता हर प्रकारकी ज़मीनमें जिसमें पानीका निकास अच्छा हो, हो सकता है। निहायत कमज़ोर हुई ज़मीनमें खूब पांस डालनेके बाद इसे लगा सकते हैं।

पपीतेका बाग़ लगाना

व्यापारिक दृष्टिसे पौदे ७ से १० फुटकी दूरीपर लगाने चाहिये। बाग़ीचेमें सड़कोंका होना भी आवश्यक है। सड़कोंकी जगह छोड़ कर क़रीब ५८० पौदे एक एकड़में लगाये जा सकते हैं।

यह बात मान करके कि पपीता केवल तीन साल तक अच्छे फल देते हैं इसके क्षेत्रफलको चार हिस्सोंमें बाँट देना चाहिये। और हर साल एक हिस्सेमें पौदे लगा देने चाहिये, जब पहिले सालके पौदे तीन साल तक फल दे चुकें तो उन्हें निकालकर नये पौदे लगा देने चाहिये। और इसी तरहसे दूसरे सालके पौदोंको ३ साल देनेके बाद काटकर नये-नये पौदे लगाने चाहिये।

देरमें फल देनेवाले पेड़ जैसे नारंगी और आमोंके बीचमें पपीता लगा देने चाहिये। ऐसी दशामें इसको चार साल तक छोड़ सकते हैं।

पौद लगानेके लिये तैयारी

३ फुट लम्बे, ३ फुट चौड़े और ३ फुट गहरे गड्ढे शुरू गरमीमें खोदने चाहिये। बरसातके ज़रा पहले सड़ी हुई पाँस एक हिस्सा, मिट्टीके तीन हिस्सोंके साथ मिलानी चाहिये। हल्की ज़मीनके लिये गोबर और भारी ज़मीनके लिये घोड़ेकी लीदकी पाँस इस्तेमाल करनी चाहिये या मिट्टीको भरकर गड्ढोंकी सिंचाईकर देनी चाहिये ताकि मिट्टी अच्छी तरहसे बैठ जावे। पौदे लगानेके बाद मिट्टी-

का बैठना हानिकारक होता है। भारी ज़मीनोंमें थावलोंके बीचका हिस्सा ३ या ४ इंच ऊंचा होना चाहिये, ताकि जब थावलेमें पानी दिया जावे तो बीचका हिस्सा पानीकी सतहसे ऊंचा रहे।

पौद लगाना

फ़रवरीके बाद पौद लगाई जा सकती है। लेकिन सबसे उपयुक्त समय जुलाईमें बरसात शुरू होनेके दो हफ़्ते बाद होता है जब कि ज़मीन ठण्डी हो जाती है। पौदको नरसरीमें सावधानीसे उठाना चाहिये। जड़ोंके साथ मिट्टी-का काफ़ी बड़ा गोलासा होना चाहिये। गड्ढेके बीचमें गोलेसे बड़ा सूराख़ बनाना चाहिये। पौदेको मिट्टी सहित सीधा रखना चाहिये और इर्द गिर्द अच्छी तरहसे मिट्टी दबाकर पानी दे देना चाहिये। अधिक पानी न देना चाहिये। पौद जब थावलेमें रक्खी जाय तो ख़्याल रहे कि वह बहुत नीचे न पहुँच जाये बल्कि उसकी ऊँचाई इतनी ही रहनी चाहिये कि जितनी कि नरसरीमें थी। इसके बाद किसी ख़ास क़िस्मकी सावधानीकी ज़रूरत नहीं है। आवश्यकतानुसार सिंचाई व निकाई करनी चाहिये। जब ऊपरकी दो इंच मिट्टी सूख जावे तो पानी देना चाहिये और खुरपीसे गुड़ाई करनी चाहिये।

सिंचाईके लिये पानीकी नाली पौदोंकी दो क़तारोंके बीचमें समानान्तर होनी चाहिये, ताकि सब पौदोंको एकसा पानी दिया जा सके।

फूल आनेके पहिले नर व मादा पौदोंकी पहिचान नहीं हो सकती। नर दरख़्तमें फल नहीं लगता इस वास्ते सिवाय मादा दरख़्तोंमें फल क़ायम करनेके इनका और कोई काम नहीं। एक नर दरख़्त २० मादा दरख़्तोंके लिये काफ़ी होता है। इसी हिसाबसे नर दरख़्त रखकर बाक़ी नर दरख़्तोंको काट डालना चाहिये। आम तौरपर देखनेमें यह आता है कि पौदमें नर व मादा दरख़्त निस्फ़ निस्फ़ के औसतमें होते हैं। और अगर नर दरख़्त काट दिये जावें तो आधा खेत ख़ाली रह जाता है इस मुश्किलका हल करनेके लिये पौद लगाते वक्त कुछ पौधे बड़े-बड़े गमलोंमें लगा देना चाहिये जो कि इन नर पौधोंकी जगहमें लगा देना चाहिये लेकिन इन दोबारा लगाये हुये पौधोंमेंसे निस्फ़ नर निकल आयेंगे। बेहतर होगा अगर लगाते समय एक-एक गड्ढेमें तीन-तीन पौधे लगाये जावें और फूल आनेपर नर दरख़्त और कमज़ोर दरख़्तोंको काट कर एक-एक गड्ढेमें सिर्फ़ एक मादा दरख़्त रख लिया जावे। यह तरीक़ा संतोषजनक है। लेकिन फूल आने तक इनकी बढ़वार कम होती है। काफ़ी खाद देकर यह कमी दूर की जा सकती है। यह भी देखा गया है कि पौदमें बड़े और मज़बूत पौधे नर होते हैं, इस वास्ते लगाते समय अगर ऐसे बड़े और मज़बूत पौदे छोड़ दिये जावें और सिर्फ़ कमज़ोर पौदे लगाये जावें तो बाग़में मादा दरख़्त ज़्यादा होंगे और नर कम होंगे। अगर दरख़्तोंको ऊपरसे काट दिया जावे तो बहुत सी शाख़ें निकल आती हैं ऐसा करनेसे फल अधिक आते हैं। जिन जगहोंपर तनेसे शाख़ निकलती है वहाँपर गाँठसी पड़ जाती है। मादा दरख़्तपर तीन या चार मज़बूत शाख़ें छोड़ बाक़ी शाख़ोंको मय गाँठके तनेसे अलहदाकर लेना चाहिये। यह शाख़ें क़लमें लगानेके काममें लायी जा सकती हैं। इन शाख़ोंके सिर्फ़ २—३ चोटीके पत्ते रखकर बाक़ी पत्तोंकी डण्डी छोड़कर काट डालना चाहिये। इस शाख़को नरसरीमें ३—४ इंच गहरा गाड़ना चाहिये और जब तक अच्छी तरहसे जड़ें न पकड़ें सायेमें रखना चाहिये। सिंचाई और गुड़ाईका ज़रा ख्याल रखना चाहिये।

बाज़ दरख़्तोंपर फल बहुत बैठता है और सब फलोंके बढ़ावके लिये जगह नहीं होती। फल छोटे रह जाते हैं और उनकी शक्ल बिगड़ जाती है। इस वास्ते कुछ फलों-को तोड़ देना चाहिये, चूंकि पपीतेमें धीरे-धीरे फल आता है इस वास्ते फ़ालतू फलोंके तोड़नेका काम कई दफ़ा करना पड़ेगा।

मैदानोंमें फल ७—८ माह तक पकते रहते हैं लेकिन ठण्डी जगहोंमें सिर्फ़ तीन चार महीने फ़रवरीसे मई तक ही फल पकते हैं। जाड़ोंमें फल नहीं पकते। पौदेपर लगा हुआ फल सबसे अच्छा होता है। जब फलका एक सिरा पीला होना शुरू हो जावे तब उनको दरख़्तसे उतार लेना चाहिये और भूसे या घासमें दबा देना चाहिये इससे फलमें पूरा जायका हो जावेगा।

चूंकि फल बहुत आसानीसे चोट खा जाता है यहाँ तक कि एक फलको दूसरेके ऊपर रखनेसे नीचेका फल

छुटैला हो जाता है इस वास्ते उनको छूनेमें बड़ी एहतियात बरतनी चाहिये।

देसावर भेजना

चूंकि पके हुये फल बहुत जल्दी चोट खा जाते हैं इस वास्ते जरा कच्चे फल ही तोड़कर पारसल किये जाते हैं क्योंकि कच्चे फल सफ़रमें ख़राब नहीं होते। पारसल बनानेका नीचे बयान किया हुआ तरीका बहुत अच्छा है। एक-एक फलके लिये सन्दूकको खानोंमें तकसीम करना चाहिये। फिर फलको पतले काग़ज़में लपेटना चाहिये तब इसके गिर्द नरम चीज मिस्ल सनईका रेशा लपेटकर बक्सके एक खानेमें रखना चाहिये और नरम चीजसे खानेको अच्छी तरहसे भर देना चाहिये ताकि इसमें फल हरकत न कर सकें। सन्दूक जिस किसी दशामें रक्खा जाये एक फलका बोझा दूसरे पर न आये। फलोंको सुबहके वक्त जब वह ठण्डे हों पारसल करना चाहिये इस तरहसे पके हुये फल भी दूरदराज जगहोंको भेजे जा सकते हैं।

बीज तैयार करना

पपीतेका बीज तैयार करनेके लिये कुछ अच्छे-अच्छे पके हुये फल चुनने चाहिये। अलग करनेके बाद बीजों को कागज़पर फैलाकर किसी ठण्डे कमरेमें सूखनेके लिये डाल देते हैं। उनको हर रोज़ धीरे-धीरे मलना चाहिये और जब वह एक दूसरेसे न चिपकें उनको किसी स्याह रंगकी बोतल या घड़ेमें रखना चाहिये। बीजके चुनावमें कई बातोंका ख़्याल रखना चाहिये। ऐसे फल चुने जावे जिनका ज़ायका बहुत अच्छा हो। फल बड़ा हो और दरख़्त खूब फलता हो। तरक्की बहुत ज़्यादा हो सकती है। अगर बीज ख़ास तौरसे अच्छे पौदोंसे लिये जावें। इस बातका भी ख़्याल रखना चाहिये कि फल अगेता या पछेता पकता हो ताकि ज़्यादा दिनों तक फल मिलते रहें।

इस्तेमाल

पपीतेके तने पत्ते, और सब्ज़ फलके दूधमें ख़मीर होता है जिसको पपेन कहते हैं जोकि मेदाके ख़मीर पेपेनकी तरह बहुत हाजिम होता है। पेटकी बहुतसी बीमारियोंके लिये यह बहुत अच्छा होता है। अगर गोश्त थोड़ी देर इसके पत्तेमें लपेटकर रक्खा जावे तो बहुत गरम हो जाता है। शुरू गरमीमें जिस वक्त और फल बहुत कम होते हैं इसका पका हुआ फल पसन्द किया जाता है। बहुत कच्चे फलकी तरकारी बड़ी अच्छी बनती है। पेपेन तैयार करनेके कामके लिये अभी हिन्दुस्तानमें इसकी काश्तमें उन्नति नहीं हुई।

शत्रु

पके हुये फलको चिड़िया बहुत ख़राब करती हैं। फलोंके इर्द गिर्द टाट लपेट देना चाहिये। जानवरोंमें कई एक नुक़सान करते हैं। बोरेको गिर्द कांटे लपेट देना चाहिये। सेही पौधोंको काट डालती है। इसके लिये बाग़के गिर्द दीवार या तीन फुट जाली जिसके नीचे दो तार कांटेदार हो ज़मीनमें दबाने चाहिये या हर एक दरख़्तके गिर्द कांटेदार झाड़ी डालनी चाहिये। पपीतेको कीड़ा नुक़सान नहीं करता अलबत्ता दो बीमारियाँ इसको नुक़सान करती हैं।

जमीनके पासके तनामय जड़ोंके या ऊपरसे तना सड़ना शुरू हो जाता है। वह जगह नरम हो जाती है बदबू आनी शुरू हो जाती है और छाल आसानीसे उतर जाती है, इस जगहसे पौदा मामूलीसी हवासे टूटकर गिर जाता है। गरम खुश्क जलवायुमें यह बीमारी बहुत कम होती है लेकिन नम जलवायुमें बहुत जल्दी बढ़ जाती है। अगर शुरूमें पता लग जाय तो इस जगहको साफ़ करके और सब ख़राब हिस्सेको निकालकर किसी कीड़े मरनेवाली दवाई जैसे ४% लाईसाल या मामूली कारबोलिक एसिड और पानीसे धो देना चाहिये। यह बीमारी बरसातके मौसिममें और उन जगहोंमें ज़्यादा होती है जहाँ कि पानी भरा रहता है। दूसरी बीमारीमें चोटीके पत्ते सिकुड़ जाते हैं पौदा छोटा और बीमार नजर पड़ता है। पानीके निकासका इन्तज़ाम करना चाहिये। यह बीमारी नम और सायादार जगहमें ज़्यादा होती है इसकी कोई अच्छी दवा नहीं मालूम है। जिस पौदेपर इस बीमारीका असर होता है, वह अगर ज़िन्दा भी रहे तो पैदावार कम देता है। ऐसे पौदोंको निकाल कर जला देना चाहिये अगर किसी जगह यह बीमारी ज़्यादा हो तो वहाँ समझना चाहिये कि पपीतेके लिये वह जगह उपयुक्त नहीं है।

[कृषि विभागका बुलेटिन]

समुद्रकी कहानी

[ले० डा० सत्यप्रकाश डी० एस-सी०]

हमारी इस पृथ्वीपर इतना पानी कहाँसे आया, इस प्रश्नका उत्तर देना बहुत कठिन है। यह बात तो ठीक है कि भाप ही ठंडी होकर पानी बनी होगी, पर यह कैसे हुआ कि भूमिका कुछ भाग थल बन गया और कुछ जल। वे बड़े बड़े खड्ड जिनमें इस समय पानी भरा हुआ है कैसे बने? सूखी ज़मीन कैसे निकली? यह बहुत संभव है कि जहाँ इस समय पानी है वहाँ कभी थल हो। थल और जलका अनुपात इस समय है वह कालान्तरमें स्वयं ऐसा बन गया हो। पर ऐसा भी हो सकता है कि किसी समय समस्त भूमण्डलपर समुद्र ही समुद्र हो, थलका कहीं नाम भी न हो। भूमिपर इतना पानी तो इस समय है ही जिससे समस्त पृष्ठतल ढक जाय। पृष्ठतलमें थोड़ा सा परिवर्तन होनेसे यह सम्भव है कि समस्त थल भाग पानीके नीचे आ जावे।

भूमिके थल भागकी औसत ऊँचाई २२५० फुट है, और समुद्रोंकी औसत गहराई १३८६० फुट, और समुद्र तलका क्षेत्रफल थल पृष्ठकी अपेक्षा २½ गुनासे भी अधिक है। समुद्र तलका क्षेत्र १४४,०००,००० वर्ग मील और और थल पृष्ठका क्षेत्र ५५,०००,००० वर्ग मील है। इससे स्पष्ट है कि समुद्रतटसे ऊपर जितनी भूमि है, उसकी अपेक्षा समुद्र जलकी मात्रा १३ गुनेसे भी अधिक है। इस बातसे हमारी समझमें यह आ जायगा कि यदि भूमिकी आकृति सुडौल अंडेकी सी होती तो इसके समस्त भागपर दो मील गहरा समुद्र होता है।

समुद्रके तलमें थोड़ा सा उठाव या गिराव होनेसे बहुत ही अधिक भौगोलिक परिवर्तन हो सकते हैं। यदि इस समयकी अपेक्षा समुद्र-तल ६००० फुट कम हो जाय अर्थात् यदि पानी ६०० फुट नीचे धसक जाय तो फ्रान्स और इंगलैण्ड एक दूसरेसे संयुक्त हो जायंगे, एशिया और अमरीका बेहरिंग डमरूमध्यपर जुड़ जायंगे, भारतवर्षसे लंका जुड़ जायगी, पेपुआ और टसमानिया अस्ट्रेलियासे मिल जायंगे, एवं सिडिनीसे पेकिंग और पेकिंगसे क्रोयडाइक खुश्की-खुश्की ही जाना संभव हो जायगा। पानीके ६०० मील धसकनेसे १०,०००,००० वर्ग मीलके लगभग नयी सूखी ज़मीन निकल आवेगी।

पर यदि समुद्रका पानी २००० फुट और ऊपर उठ आवे तो भूमिका अधिकांश थल भाग पानीमें विलीन हो जायगा। महाद्वीपोंकी आकृति, रूप और विस्तार इस बातपर निर्भर है कि महा सागरोंकी तलैटियाँ कितनी गहरी हैं और किस प्रकारकी हैं।

पृथ्वीके भौगर्भिक इतिहासमें बड़े-बड़े भौगर्भिक परिवर्तन हुये। जहाँ इस समय हिमालयकी आकाशचुम्बी उत्तुंग चोटियाँ हैं, वहाँ भी एक समय पानी बह रहा था। पृथ्वीके जल और थल भागोंमें अनेक बार विनिमय हुआ। पर बड़े-बड़े महासागरोंके खड्ड कैसे बने, इसके अनेक रहस्यमय कारण हैं। कहा जाता है कि भूमिका एक भाग टूट कर पृथक् हुआ और चन्द्रमा बना, तो जो खड्ड रह गया वही पैसिफिक या प्रशान्त महासागर कहलाया पर यह कल्पना कहाँ तक सत्य है यह कहना कठिन है। संभव है, कुछ खड्ड इस प्रकार अवश्य बने हों, पर उसमें से बहुतसे तो अब तक मुँद भी गये होंगे।

आरंभमें पृथ्वी लचीली और मृदु थी, और तेज़ीसे चक्कर खानेके कारण इस छेद मुँद अवश्य गये होंगे, पर बराबर नाचते रहनेके कारण इसका नाशपातीका सा आकार हो गया होगा। नाशपातीकी गर्दनके निकट समुद्र भाग आकर जमा होगया होगा। नाशपातीकी नोक बृहत् द्वीपके समान निकली हुई दिखाई देती होगी। दूसरी ओरका गोल चौड़ा भाग एक बड़ा महाद्वीप बन गया होगा।

पुराना इतिहास

यह प्रारम्भिक समुद्र तो अब भी पैसिफिक महासागरके रूपमें विद्यमान है, पर उस प्रारम्भिक महाद्वीपके अटलाण्टिक और भूमध्य सागरोंने कई टुकड़े कर दिये हैं। अति प्राचीनकालमें उत्तरी अमरीका, ग्रीनलैण्ड, और उत्तरी यूरोप इन तीनोंसे मिला हुआ एक बड़ा महाद्वीप था और यह महाद्वीप एक थल-भाग द्वारा एक दूसरे प्राचीन महाद्वीपसे संयुक्त था, जिसका नाम गोंडवाना

लैण्ड रक्खा गया है। इस गोंडवानालैण्डमें आजकलके अफ्रीका, दक्षिण अमरीका, अरब, दक्षिण भारत और अस्ट्रेलिया सब संयुक्त और सम्मिलित थे। दक्षिण यूरोप-का अधिकांश भाग एक पुराने टेथिस समुद्रमें डूबा हुआ था। यह टेथिस-सागर न केवल उत्तरी यूरोपको एशियासे पृथक् करता था इसका एक हाथ उत्तरमें यूरोपको एशियासे पृथक करता था और एक हाथ उस स्थानपर फैला हुआ था जहाँ आजकल हिमालयकी श्रेणियाँ हैं। यह हाथ भारत और मलाया प्रायद्वीपोंको (जो गोंडवाना लैण्डके भाग थे शेष एशियासे पृथक् करता था भारत, यूरोप और अफ्रीकासे पृथक् इस प्रकार जो उत्तर-पूर्वी एशिया था, वह एक विशाल द्वीप था जिसका नाम 'अङ्गारा' है। अटलाण्टिक सागर तो एक झीलके समान था जिसे 'लारामी' कहा जाता है। यह पैसिफिक सागरसे स्वेज़स्थल डमरूमध्य स्थानपर जुड़ा हुआ था। भौगर्भिक इतिहासके माध्यमिक कालमें (मैसोज़ोइक युग में) पृथ्वीकी ऐसी अवस्था थी। तबसे अबतक तो बहुत परिवर्तन हो गये हैं। आज कल तो अस्ट्रेलिया और अफ्रीका इण्डियन महासागर द्वारा पृथक् पृथक् हो गये हैं। अफ्रीका और दक्षिण अमरीकाके बीचमें दक्षिणी अटलाण्टिक सागर आगया है। यूरोप और अमरीकाके बीच उत्तरी अटलाण्टिक सागर है। प्राचीन टेथिस सागरमेंसे एशिया माइनर और हिमालय निकल पड़े हैं।

इस समयके सागर

इस समय निस्सन्देह सबसे बड़ा समुद्र पेसिफिक महासागर है। इस अकेलेका क्षेत्रफल ६७,७००,००० वर्ग मील है अर्थात् हमारे समस्त थल भागसे भी अधिक। इसमें बहुतसे द्वीप भी हैं पर फिर भी इसके बहुतसे ऐसे भाग हैं जो निकटस्थ महाद्वीपसे भी २५०० मील दूर हैं। पैसिफिक सागर अटलाण्टिकके अधिक गहरा है। इसका अधिकांश भाग १४००० फुटसे अधिक गहरा है। ५२८० फुटका एक मील होता है, अर्थात् अधिकांश गहराई २'७ मीलकी है। बहुत सी जगह तो गहराई और भी अधिक है। पेरू-तटसे थोड़ी दूरपर २८००० फुट (५'४ मील) गहराई है। जापानके पूर्वी तटसे कुछ दूर समुद्रका एक उतना बड़ा भाग है जो क्षेत्रफलमें न्यूज़ी लैण्डके बराबर होगा। इसे 'टुस्कारोरा-डीप' कहते हैं। यह २८००० फुटसे भी अधिक गहरा है। सबसे अधिक गहराई फिलीपाइनके पूर्वी तटसे कुछ दूरीपर एक जर्मन जहाज़ प्लेनेट ने नापी थी। यह गहराई ३२०८९ फुट अर्थात् ६ मीलके लगभग की निकली। पेसिफिक महा सागरके बेहरिंग डमरूमध्य की गहराई केवल ३०० फुट है। एशिया और फिलीपाइन के बीचका समुद्र, और इसी प्रकार फिलीपाइन और आस्ट्रेलियन द्वीपोंके बीचका समुद्र ६०० फुटसे शायद ही अधिक गहरा हो।

अटलाण्टिक महासागरकी दो भुजायें हैं, एक तो उत्तरी महासागर और एक भूमध्य सागर। अटलाण्टिकका इस प्रकार समस्त क्षेत्रफल ३४,७००,००० वर्ग मील है। यह एक प्रकारसे नदियोंका समुद्र है क्योंकि संसारकी अधि-कांश बड़ी बड़ी नदियाँ इसी महासागरमें गिरती हैं— अमेज़न, मिस्सीसिपी, ओरिनोको, ला-प्लाटा, उरुग्वे, पराना, कांगो, नाइगर, नाइल, सेंट लारेन्स, डेन्यूब, राइन, रोन आदि—। यह उतना तो गहरा नहीं जितना पैसिफिक है, पर तब भी बहुत गहरा है, अधिकांश स्थानों पर गहराई १८००० फुटसे अधिक है। इस महासागरके दो भाग हैं जिनके बीचमें उत्तर-दक्षिण एक जल-शायी प्लेटो—डोलफिन-रिज नामक—है। इस प्लेटोपर १२००० फुट पानी है। अटलाण्टिक महासागर की अधिकतम गहराई पोर्टोरिको से ७० मील उत्तरकी ओर नापी गई है। यह २७९७२ फुट है।

इण्डियन महासागर अटलाण्टिकके आधेसे कुछ अधिक है। इसकी औसत गहराई १५००० फुट है। इसका सबसे अधिक गहरा भाग जावा और उत्तर-पश्चिमी अस्ट्रे-लियाके बीचमें है। यह लगभग १८००० फुट गहरा है।

भूमध्य सागर अटलाण्टिककी ही एक भुजा है जो जिब्राल्टर डमरूमध्यपर जुड़ी हुई है। यह उथला समुद्र है। यह ६०० फुट नीचे धस जाय तो डार्डेनलीज़ और बासफोरस सूखे थल भाग निकल आवें, एड्रियाटिक समुद्र प्रायः लुप्त ही हो जाय, मेजोरका-मेनोरकासे मिल जाय, और मालटा सिसिलीसे। भूमध्य सागरकी अधिकतम गहराई (१३८०० फुट) पूर्वकी ओर है।

कैसपियन सागर यद्यपि झीलके समान है, पर फिर भी यह १८००० फुट गहरा है।

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग।

Only Cover Printed at The Indian Press, Ltd., Allahabad

जून, १९३९ मूल्य ।)

प्रयाग की विज्ञान-परिषद् का
मुख-पत्र जिसमें आयुर्वेद
विज्ञान भी सम्मिलित है

भाग ४९, संख्या ३

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces & Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

विज्ञान

पूर्ण संख्या
२९१

वार्षिक मूल्य ३)

नियम

(१) विज्ञान मासिक पत्र विज्ञान-परिषद्, प्रयाग, का मुख-पत्र है।

(२) विज्ञान-परिषद् एक सार्वजनिक संस्था है जिसकी स्थापना सन् १९१३ में हुई थी। इसका उद्देश्य है कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययन को प्रोत्साहन दिया जाय।

(३) परिषद् के सभी कर्मचारी तथा विज्ञान के सभी सम्पादक और लेखक अवैतनिक हैं। मातृभाषा हिन्द सेवा के नाते ही वे परिश्रम करते हैं।

(४) कोई भी हिन्दी-प्रेमी परिषद् की कौंसिल की स्वीकृति से परिषद् का सभ्य चुना जा सकता है। सभ्यों को ५) वार्षिक चन्दा देना पड़ता है।

(५) सभ्यों को विज्ञान और परिषद् की नव-प्रकाशित पुस्तकें बिना मूल्य मिलती हैं।

नोट—आयुर्वेद-सम्बन्धी बदले के सामयिक पत्रादि, लेख और समालोचनार्थ पुस्तकें 'स्वामी हरिशरणानंद, पंजाब आयुर्वैदिक फ़ार्मेसी, अकाली मार्केट, अमृतसर' के पास भेजे जायँ। शेष सब सामयिक पत्रादि, लेख, पुस्तकें, प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र तथा मनीऑर्डर 'मंत्री, विज्ञान-परिषद्, इलाहाबाद' के पास भेजे जायँ।

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते.
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ४९ | प्रयाग, मेषार्क, संवत् १९९६ विक्रमी | जून, सन् १९३९ | संख्या ३

अलकोहलका प्राणियोंके अवयवों पर प्रभाव

[श्री डा० सन्तप्रसाद टंडन, एम० एस-सी०, डी० फिल०]

अलकोहल नामसे शायद बहुत लोग परिचित न हों, किन्तु शराब, ब्रांडी, बियर आदि नामोंसे कदाचित ही कोई ऐसा हो जो जानकारी न रखता हो। ब्रांडी, बियर आदिमें अलकोहल ही विशेष पदार्थ है और उन विशेष गुणोंका कारण है जिनके अर्थ इन पेय वस्तुओंका उपयोग किया जाता है। पीने वाली शराबोंमें अलकोहलका अंश कानून द्वारा मर्यादित कर दिया गया है और इस मर्यादित सीमासे अधिक अलकोहल होनेपर शराब बाजारमें पीनेके लिये नहीं बिक सकती। ब्रांडीमें ३५से ५० प्रतिशत अलकोहल रहता है। बहुतसी शराब अंगूरके रससे खमीर उठाकर बनाई जाती है और साधारणतः इनमें १३ प्रतिशत तक अलकोहल रहता है। इसको तेज बनानेके लिये भपारेकी क्रिया द्वारा खींचकर तेज करते हैं। बियर शराब जौसे बनाई जाती है और जर्मनीका मुख्य पेय पदार्थ है। मेथिलेटेड स्पिरिटमें जो स्टोव आदि जलानेके लिये बाज़ारमें आती है ९० से ९६ प्रतिशत तक अलकोहल रहता है। इसमें कुछ ऐसे विष-पदार्थ मिला दिये जाते हैं जिससे यह पीनेके योग्य नहीं रह जाती, अन्यथा बहुतसे शराबी तेज़ शराबको पीकर अपने स्वास्थ्यको नष्ट करते।

संसारकी हर एक चीज़के दो अंग होते हैं—एक उपयोगी तथा दूसरा हानिकारक। एक ही पदार्थ किन्हीं दशाओंमें लाभदायक होता है और किन्हीं अन्य दशाओंमें उससे बहुत हानियाँ भी होती हैं। औषध-विज्ञानमें ऐसे बहुतसे उदाहरण मिलेंगे जिनमें एक पदार्थ किसी निश्चित मात्रामें लेनेसे शरीरमें विषका काम करता है और यदि उसी पदार्थको बहुत थोड़ी मात्रामें लिया जाय तो किसी विशेष रोगको दूर करनेमें सहायक होता है। अलकोहल भी ऐसा ही एक पदार्थ है। साधारण जनताको शराब पीनेसे नशे आदिकी जो खराबियाँ होती हैं उनका ही पता है। शरीरके भीतरी अंगोंपर अलकोहलका किन-किन दशाओंमें क्या-क्या प्रभाव पड़ता है, यह बात बहुत कम लोग अच्छी प्रकार जानते होंगे। मैं यहाँ पर इसी बात पर प्रकाश डालनेका प्रयत्न करूँगा। अलकोहलमें

बुराइयोंके साथ साथ बहुत सी अच्छाइयां भी हैं। अंग्रेजी दवाखानोंका तो यह चिरसंगी है। अधिकतर अंग्रेजी पेय दवाइयोंमें अलकोहलका प्रयोग आवश्यक है।

अलकोहल अंगूरके रस या अन्य शर्कराके पदार्थ या खद्योज पदार्थोंसे ईस्ट द्वारा खमीर उठाकर बनाया जाता है। ईस्टमें ज़ाइमेज़ नामक एक एन्ज़ाइम रहता है जिसके ऊपर ही अलकोहल बनानेकी क्रिया निर्भर करती है। रसायन शास्त्रमें अंगूरकी चीनीसे अलकोहल बनानेकी क्रिया निम्न लिखित समीकरण द्वारा प्रदर्शितकी जाती है :—

$$\text{क}_{६}\ \text{उ}_{१२}\ \text{ओ}_{६} = २\ \text{क}_{२}\ \text{उ}_{५}\ \text{ओ उ} + २\ \text{क ओ}_{२}$$

अंगूरकी चीनी अलकोहल कर्बन द्वि-ओषिद

अब भिन्न भिन्न शरीरके अवयवों पर अलकोहलका क्या प्रभाव पड़ता है इसका वर्णन किया जायगा।

चर्मपर प्रभाव

अलकोहलमें दो विशेष गुण हैं—एक तो यह कि यह बहुत जल्द उड़ने वाला पदार्थ है और दूसरा यह कि पानीको बहुत शीघ्र अपनेमें सोख लेता है और प्रोटीनोंको अवक्षेपके रूपमें अलगकर देता है। पहले गुणके कारण यह चर्म पर डालते ही ठंडक उत्पन्न करता है। अलकोहल चर्मस्थानकी गर्मी खींचकर वाष्प बनकर उड़ जाता है और इस प्रकार वह स्थान ठंडा पड़ जाता है। ठंडकसे त्वचा कड़ी पड़ जाती है। अलकोहलको चर्मपर रगड़नेसे खूनकी नलियोंमें फैलाव भी होता है।

मुख तथा आमाशयपर प्रभाव

मुखकी श्लैष्मिक झिल्लीके स्पर्शमें आनेसे अलकोहल प्रतिबिम्बित रूपसे लार-ग्रन्थियोंको प्रभावित करता है और मुखमें अधिक लार पैदा करता है जिससे भोजन अधिक शीघ्रतासे हजम हो जाता है। यह प्रभाव केवल झिल्लीके स्पर्श द्वारा नसोंको उत्तेजित करनेसे होता है। यदि अलकोहलको सीधे खूनमें इंजेक्शनद्वारा पहुँचा दिया जाय तो ऐसा कोई प्रभाव लार-ग्रन्थियों पर नहीं पड़ेगा।

आमाशयमें पहुँचकर अलकोहल पाचक-रसोंको अधिक उत्पन्न करनेमें सहायक होता है। आमाशयकी श्लैष्मिक झिल्लीके संसर्गमें आनेसे ही मुख्यतः यह प्रभाव होता है। यह भी देखा गया है कि छोटे आमाशयमें अलकोहलके शोषित हो जानेके बाद भी थोड़ी देर तक रसोंका अधिक बहाव आमाशयमें होता रहता है।

भोजन द्वारा भी आमाशयमें पाचक रसोंकी वृद्धि होती है, किन्तु इनमें और अलकोहलमें विशेष अन्तर यह है कि जहाँ भोजन इन रसोंमें कर्मशील फर्मेन्टोंकी वृद्धि करता है, अलकोहल ऐसा नहीं करता। उदाहरणार्थ यदि अलकोहल कई दिनोंके फाकेके बाद किसीको दिया जाय जिस समय आमाशयिक सेलें पेपसिन नामक फरमेंटसे रहित रहती हैं तब यद्यपि पाचक रसकी आमाशयमें वृद्धि अवश्य हो जायगी किन्तु इस रसमें पेपसिन नहीं रहेगा और लवणाम्लकी ही मात्रा अधिक रहेगी। इस रससे प्रोटीनोंको हज़म करनेमें सहायता नहीं मिलेगी। लेकिन यदि बहुत थोड़ी मात्रामें अलकोहल भोजनके साथ लिया जाय तो प्रोटीनोंकी पाचन क्रिया यह थोड़ा तेज़कर देता है। आमाशयमें अलकोहलके शोषणकी क्रिया बहुत जल्दी होती है। एक प्रयोगमें एक कुत्तेको ३७ प्रतिशत अलकोहलके २०० घन सेंटीमीटरकी मात्रा पिलाई गई और यह देखा गया कि कुल अलकोहल ३ घंटोंमें आमाशयमें हजम हो गया। अलकोहलके जल्दी खून द्वारा शोषित हो जानेके गुणके कारण ऐसे पदार्थ जो अलकोहलमें पूरी तौरसे घुल जाते हैं यदि अलकोहलके घोलके रूपमें दिये जायँ तो वे अधिक शीघ्र आमाशयमें शोषित हो जाते हैं। औषध-विज्ञानमें अलकोहलके इस गुणका लाभ उठाया जाता है और अधिकतर दवायें अलकोहलके घोलके रूपमें दी जाती हैं जिससे वे जल्दी खूनमें शोषित होकर मिल जाती हैं। अलकोहल द्वारा आमाशयमें पाचक रसके बढ़नेसे उसमें लवणाम्लकी मात्रा अधिक हो जाती है और यह लवणाम्ल लघु-आमाशयकी ऊपरी त्वचाकी सेलोंके प्रो-सेक्रेटीनको सेक्रेटीनमें बदल देता है जो शोषित होकर क्लोमको प्रभावित करते हैं और तब क्लोम-रसका बहाव बढ़ जाता है।

केन्द्रीय नस-संस्थान पर प्रभाव

अलकोहलकी थोड़ी मात्रा भी केन्द्रीय नस संस्थान पर एक विशेष प्रभाव डालती है। यह प्रभाव एक विचित्र

प्रकारकी प्रसन्नता तथा एक ऐसी अवस्था उत्पन्न करता है जिसमें मनुष्यको किसी प्रकारकी हिचकिचाहट नहीं रह जाती और जो भी कार्य वह करता है उसके परिणामोंकी ज़रा भी चिन्ता उसे नहीं होती। मनुष्य अधिक आत्म-विश्वासी हो जाता है तथा उसकी शरमीली आदत भी उस समय जाती रहती है। इसके साथ ही अपनेको नियन्त्रणमें रखनेकी शक्तिमें कमी आ जाती है और भावुकता सम्बन्धी उसके स्वयंके विचारोंकी प्रधानता उस समय स्वभावमें आ जाती है। उदाहरणार्थ हँसोड़ मनुष्य अलकोहलके प्रभावमें ख़ूब जोरसे हँसने लगता है, एक क्रोधी मनुष्य झगड़ा करने लगता है और एक उदास रहने वाला मनुष्य बहुत उदास हो जाता है और अश्रुपात करने लगता है। अलकोहल द्वारा प्रभावित मनुष्यमें नसोंकी चालक शक्तिकी प्रधानता दिखलाई देती हैं और मनुष्यको चाल ढालमें मनोरंजकता आजाती है किन्तु साथ ही स्वाभाविक बड़प्पनका ख्याल जाता रहता है और उसे इस बातका रत्ती भर भी विचार नहीं रह जाता कि उसके कार्यकी लोग कितनी हँसी उड़ा रहे हैं। उसको स्वयं अपने विचारोंमें सूझ दिखाई देने लगती है और वह हर एक विषय पर विश्वासके साथ बोलने लगता है। यद्यपि बाहरी सुनने वाले यह समझते हैं कि वह ऊट पटाँग बक रहा है किन्तु उस मनुष्यको स्वयं अपने ऊपर इतना विश्वास हो जाता है कि उस समय वह यही समझने लगता है कि जो कुछ वह कह रहा है बहुत ठीक है। अलकोहलके इन प्रभावोंके कारण साधारण जनतामें यही विश्वास है कि यह नसोंको उत्तेजित कर शक्ति प्रदान करता है। प्रायः यह देखा भी गया है कि बहुतसे विद्वान् नशेकी दशामें ही अपनेको ऊँची चीज़ लिखनेमें समर्थ पाते हैं। लेकिन वास्तवमें यह सच नहीं हैं, केवल एक मानसिक मूढ़ विश्वासका फल है।

अलकोहलकी अधिक मात्राओंसे पक्षाघातकी सी दशा आजाती है जिसमें सारी चेतन शक्तियाँ लुप्त हो जाती हैं। मुँहसे बोल भारी तथा अटकते हुये निकलते हैं और चाल लड़खड़ाने लगती है। इस दशाके बाद मूर्छाका आक्रमण होता है और फिर गहरी नींद आती है। यदि अलकोहलकी मात्रा बहुत ही अधिक हुई तो इसके बाद चेतनहीन होकर मनुष्यकी मृत्यु हो जाती है। मृत्युका तात्कालिक कारण श्वास-क्रियाके अंगोंका पक्षाघात तथा उनका रुक जाना है।

केन्द्रीय नस समूहोंपर अलकोहलका प्रभाव किस प्रकारसे पड़ता है इस बातको भी थोड़ासा समझनेकी ज़रूरत है। अलकोहल केन्द्रीय नस समूहोंके किन्हीं विशेष अंगोंको उत्तेजित करता है। इस बातकी सत्यता इससे साफ मालूम होती है कि थोड़ी ख़ुराकमें अलकोहल देनेके बाद मानसिक कार्यक्रम समयमें पूरे होने लगते हैं। जैसे कविता करनेमें शब्दोंके चुननेका कार्य जल्दी होने लगता है। जैकोबी ने इस सम्बन्ध के प्रयोग करनेपर यह देखा कि दो वस्तुओंकी तौलोंके बहुत कम अन्तरको थोड़ी अलकोहलकी मात्रा लेनेके बाद मनुष्य अधिक शीघ्र और अधिक शुद्ध मालूम कर लेता है।

इन बातोंके समझानेके लिये जीव विज्ञान वेत्ताओंने दो सिद्धान्तोंको सामने रखा है। पहला सिद्धान्त बिंज़का है। उसका विश्वास है कि अलकोहल पहले केन्द्रीय नस समूहोंकी नस-सेलोंको उत्तेजित करता है और फिर बादमें उन्हें शिथिल कर देता है। दूसरा सिद्धान्त स्मिडबर्गका है। इसके अनुसार अलकोहल केन्द्रीय नसोंको उत्तेजित नहीं करता बल्कि शुरूसे ही उन्हें शिथिल करने लगता है। शिथिल करनेकी क्रिया उन केन्द्रोंसे पहले शुरू होती है जो सबसे बादमें उत्पन्न हुये हैं। अतः ऊँची समझ, मानसिक तोल तथा विचारोंकी गम्भीरता आदि बातें सबसे पहले नष्ट होती हैं। यह शिथिलता एक केन्द्रसे दूसरे केन्द्रमें पहुँचती जाती है और सबसे अंतमें सुषुम्ना-को शिथिल कर देती है। इस सिद्धान्त द्वारा क्षणिक उत्तेजना का कारण यह समझा जाता है कि ऐसे केन्द्र जो विचारोंमें रोक लगा कर उन्हें नियन्त्रित करनेकी शक्ति रखते हैं पहले शिथिल पड़ जाते हैं और तब जो भी विचार मनमें उन केन्द्रोंसे जो अभी तक शिथिल नहीं हुये हैं वे सब बिना संयमके प्रदर्शित हो जाते हैं। इसी नियन्त्रणकी कमीके कारण मनुष्य निर्लज्ज हो जाता है और उसे किसी बातका डर नहीं रह जाता। इस बात की सत्यतामें यह बात कही जाती है कि जब मनुष्यको अधिक अलकोहल दिया जाता है तब उसकी उत्तेजना-

शोक भी नहीं दिखलाई देती। इसका कहना यह है कि अधिक अलकोहलकी मात्रा होनेपर नस समूहोंके सब ही प्रधान केन्द्र बहुत ही शीघ्र शिथिल पड़ जाते हैं जिसमें उत्तेजित अवस्था उत्पन्न करने वाला केन्द्र भी सम्मिलित है। कम अलकोहल होनेपर इस शिथिलीय क्रियाको अंत के केन्द्र तक पहुंचनेमें थोड़ा समय लगता है और इस बीचके समयमें उत्तेजित अवस्था दिखलाई देती है।

ऐश नामक वैज्ञानिकने अलकोहलका प्रभाव मनुष्यकी बोध शक्तिपर अध्ययन किया। एक मनुष्यको एक छोटे छेद द्वारा कुछ अर्थहीन वाक्योंको पढ़नेके लिये बैठाया गया। ये वाक्य एक धीरे धीरे चक्करसे घूमने वाले बेलनपर लिखे हुये थे। ऐश ने इस प्रयोग द्वारा यह मालूम किया कि एक औंस अलकोहलकी मात्रा भी बोध शक्तिमें काफी कमी उत्पन्न कर देता है। राइसने यह देखा कि आंखोंसे लम्बाई नापनेमें अलकोहलके बाद गलतीकी मात्रा बढ़ जाती है। आजकल यह सब पुराने प्रयोग अधिक विश्वसनीय नहीं समझे जाते। रिवर्सने सब पुराने कथनोंकी गहरी जाँचके बाद यह सार निकाला कि अलकोहल २० घन सेंटीमीटर तक कोई विशेष मस्तिष्कीय शिथिलताका कारण नहीं होता। प्रारम्भिक उत्तेजना कुछ ऊँचे नियन्त्रण लाने वाले केन्द्रोंके शिथिल होनेके फलस्वरूप परोक्ष रूपसे आती है या बिंज़के सिद्धान्तानुसार केन्द्रके सीधे उत्तेजित होनेसे, इस विषय पर कोई एक निश्चित निर्णय करना इस समय सम्भव नहीं है, क्योंकि अभी तक ऐसे यन्त्र वैज्ञानिकोंको नहीं मालूम हुये हैं जिनसे इन बातोंपर विशेष प्रकाश डाला जा सके। लेकिन रिवर्सका कहना है कि यह विश्वास करना कि प्रारम्भिक उत्तेजित अवस्थायें शिथिलताकी द्योतक हैं ठीक नहीं है क्योंकि मेढकोंके नस-सेलोंपर अलकोहलका प्रभाव देखनेसे यह मालूम होता है कि नस-सेलें अलकोहल द्वारा उत्तेजित होती हैं। कुछ पौधोंमें भी अलकोहल द्वारा रसोंके बहावमें वृद्धि देखी गई है।

अलकोहल द्वारा उत्पन्नकी गई अन्तिम दशा एक अवश्य पागलपनकी दशा होती है। यह अवयवोंके विध्वंसकी अवस्था होती है। जिस प्रकार विकासमें जीव-अवयव छोटी साधारण दशासे ऊँची दशामें बन कर आते हैं उसी प्रकार विध्वंसकी दशामें ऊंची दशासे नीचेकी दशामें क्रमानुसार अवयव टूटकर नष्ट होते हैं। अधिक अलकोहल पीनेकी हालतमें प्रमाद-अवस्थाकी तरह ही नसोंकी कार्य शक्ति परसे संयमका अंश उठ जाता है और वे ऊँचे नस-केन्द्रों द्वारा आज्ञान्वित नहीं किये जाते। इस प्रकार प्रमाद तथा शराब दोनों ही हालतमें पहले ऊँचे केन्द्र समूह नष्ट होते हैं। बादमें इच्छा-शक्ति क्षीण हो जाती है और मनुष्यमें मूर्छाका प्रादुर्भाव होता है। यह कुल क्रिया विध्वंसके नियमानुसार ही होती है।

खूनकी नलियोंपर प्रभाव

साधारण जनतामें यह विश्वास किया जाता है कि अलकोहल नाड़ियोंकी गति को उत्तेजित करता है। खूनकी दौड़से सम्बन्धित शरीरके सब अवयवोंपर अलकोहलके प्रभावका वर्णन निम्नलिखित शीर्षकोंमें किया जायगा।

नाड़ीकी गति

नाड़ीकी गतिमें तीन कारणोंसे अन्तर आता है। पहला कारण यह है कि किसी प्रकारकी उत्तेजना हृदयकी धड़कनको तेज़ कर देती है। अलकोहलका प्रभाव देखते समय सब प्रकारकी उत्तेजित अवस्थाओंको दूर रखनेका प्रयत्न करना चाहिये नहीं, तो यह पता लगाना कठिन है कि नाड़ीकी गति अलकोहल द्वारा तेज़ हुई या उत्तेजित अवस्थाके कारण। बहुत अधिक मात्रामें अलकोहल देनेसे उत्तेजित अवस्था पैदा होनेकी संभावना रहती है, इस कारण उस मनुष्यको जिसपर प्रयोग किया जा रहा है सब प्रकारके मस्तिष्कमें असन्तोष उत्पन्न करने वाले प्रभावोंसे अलग रखना चाहिये। दूसरा कारण—किसी प्रकारकी त्वचापर चिनक दिलके स्पन्दनको बढ़ा देती है। आमाशयकी दीवालोंपर भी कोई चिनक होनेपर यही असर पड़ता है। तेज़ अलकोहल जलनकी सी चिनक पैदा करता है। इस कारण अलकोहलमें बहुत पानी मिला कर इस प्रकारके प्रयोगमें व्यवहारमें लानी चाहिये। तीसरा कारण—ऐसी चीज़ें जो खूनके दबानेको कम कर देती है हृदयकी गतिको भी तेज़ करती हैं जहाँ तक इस विषयका सम्बन्ध है। अलकोहल साधारण मात्राओं तक खूनके दबावमें किसी प्रकारकी कमी नहीं पैदा करता।

जब ऊपरके तीनों कारणोंकी अनुपस्थितिमें छोटी मात्राओंमें अलकोहल उन लोगोंको दिया जाता है जो इसके आदी नहीं हैं तब उन लोगोंमें नाड़ियोंकी गतिमें थोड़ी तेज़ी आ जाती है। यदि बहुत बड़ी मात्रामें अलकोहल दिया जाय तो इसके विरुद्ध हृदयकी गति धीमी पड़ जाती है। यह प्रभाव मस्तिष्कके नस-तन्तुओंके प्रभावित होनेसे होता है, क्योंकि यह देखा गया है कि यदि वह नस जो हृदयसे मस्तिष्कमें जाती है निकाल दी जाय तो ऐसा कोई प्रभाव नहीं दिखलाई देगा।

हृदय

हृदय पर अलकोहलका थोड़ा उत्तेजनीय प्रभाव पड़ता है। यह बात हृदय पर अलग रूपसे अलकोहलका प्रभाव देखने हीसे मालूम हुई है।

खूनकी नलियें

इन पर अलकोहलका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। ऊपरी त्वचाकी नलियें अवश्य फैल जाती हैं जिसके कारण चेहरा कुछ लाल दिखलाई देने लगता है। लेकिन अन्दरकी नलियोंपर ठीक इसके विरुद्ध प्रभाव पड़ता है। वे अलकोहलकी साधारण मात्राओंसे संकुचित होती हैं। यह प्रभाव कुछ तो केन्द्रीय नसों द्वारा और कुछ परिधि-वर्ती नसों द्वारा होता है। अलकोहलकी बहुत अधिक-मात्रा होनेपर सब ही खूनकी नलियोंपर केवल एक फैलाव-का ही प्रभाव पड़ता है।

खूनका दबाव

अलकोहलके प्रभावसे साधारण अवस्थामें खूनका दबाव थोड़ा बढ़ जाता है। कुछ लोगोंका विश्वास है कि ऐसा नहीं होता किन्तु यह मालूम पड़ता है कि उनके प्रयोगोंमें अलकोहलके साथ मूर्छा पैदा करने वाले पदार्थों-के व्यवहारसे ऐसी गलत धारणा उन लोगोंकी हुई है। दबाव बढ़नेका कारण नलियोंका संकुचित होना है जो केन्द्रीय तथा परिधिवर्ती नसों द्वारा उत्पन्न होता है।

ऊपरकी कुल बातोंके आधार पर कुछ अंशोंमें यह बात ठीक मालूम होती है कि अलकोहल रक्त संचालक यंत्रोंको अवश्य ही थोड़ी उत्तेजना प्रदान करता है। यह उत्तेजना सम्भवतः हृदयमें एक ऐसा पदार्थ पहुँचनेके कारण जो बहुत शीघ्र ओषदीकृत होकर शक्ति उत्पन्न करता है, होती है। प्रयोगों द्वारा यह देखा गया है कि अलकोहल हृदयमें बहुत शीघ्र ओषदीकृत हो जाता है।

शारीरिक तापक्रम

अलकोहल शरीरके तापक्रमको कम करता है। साधा-रण मात्राओंमें—१ से ३ औंस तक—लगभग ½ डिग्री सेंटीग्रेट कमी होती है। यह घटी दो तरहसे हो सकती है। एक तो शारीरिक तापकी अधिक हानिसे और दूसरे शरीरमें कम गर्मी पैदा होनेसे। अलकोहलकी साधारण मात्राओंसे शरीरमें पैदा होने वाली गर्मीमें कोई कमी नहीं होती। अतः अधिक शारीरिक तापके हानिसे ही तापक्रममें कमी होती है। रक्त वाहिनियोंके फैलावसे ताप-का छीजन बहुत होने लगता है। इसी कारण यह देखा गया है कि यदि अलकोहल पीनेके बाद बाहर ठंडकमें जाया जाय तो शरीरको बहुत नुकसान पहुँचता है क्योंकि शरीरमें पहलेसे ही गर्मीकी कुछ कमी होती है जो बाहरी ठंडकसे और इतना गिर जाती है कि शरीरकी सहन-शक्तिसे बाहर हो जाती है। ऐसी दशाओंमें प्रायः मृत्यु होती भी देखी गई है। अतः अलकोहल पीनेके बाद मनुष्यको बाहर न निकलना चाहिये और एक गरम कमरेमें ही अपनेको रखना चाहिये।

पेशियोंपर प्रभाव

कुछ लोगोंका विश्वास है कि अलकोहल पेशियोंकी कार्य-शक्ति क्षणिक समयके लिये बढ़ा देता है। यदि अल-कोहलकी मात्रा बहुत अधिक हो—८० ग्रामसे ऊपर—तो पेशियोंकी शक्तिमें कमी आ जाती है। रिवर्स नामक वैज्ञानिक तथा कुछ अन्य सज्जनोंने अपने प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध किया है कि अलकोहल २० घन सेंटीमीटरकी मात्राओं तक पेशियोंकी कार्य करनेकी शक्तिमें कोई अन्तर नहीं लाता। एक सप्ताह तक बराबर थोड़ी-थोड़ी मात्राओं-में अलकोहल देकर उन्होंने निरीक्षण किया। उनका कहना है कि प्रथम खुराकमें जो क्षणिक शक्ति दिखलाई देती है वह वास्तवमें मानसिक विश्वासका फल है। कुछ दिनों तक रोज़ अलकोहलकी खुराक जारी रखने पर जब इस मानसिक विश्वासका असर जाता रहता है तब अल-

कोहलका कोई असर नहीं मालूम पड़ता। भूखे मनुष्यमें जो शक्ति अलकोहलसे आती है उसका कारण दूसरा है। इस समय अन्य भोजनोंकी अनुपस्थितिमें अलकोहल स्वयं भोजनकी तरह शरीरमें व्यवहृत होता है और ओषदी-कृत होकर शक्ति प्रदान करता है।

श्वास क्रियापर प्रभाव

बिंज़ने निश्चयात्मक रूपसे जोर दिया है कि अलकोहल-का सीधा प्रभाव श्वास केन्द्र पर पड़ता है। उनके अनुसार अलकोहलसे श्वास संस्थान कुछ उत्तेजित होता।

इस सम्बन्धमें विशेषज्ञों द्वारा बहुतसे प्रयोग किये गये हैं। उनसे यह बात स्पष्ट है कि अलकोहलकी छोटी मात्राओंसे ओषजन-शोषणकी मात्रामें ३५ प्रतिशतकी वृद्धि होती है और कर्बन-द्वि-ओषिद की बाहर निकलनेकी मात्रामें ४-५ प्रतिशत बढ़ती होती है। किन्तु यह निश्चय रूपसे नहीं कहा जा सकता कि यह प्रभाव श्वास संस्थानको सीधे उत्तेजित करनेसे होता है। जैकेट बिन्ज़से वहां तक सहमत हैं जहां तक प्रयोगोंके फलोंका संबन्ध है, किन्तु इस प्रभावकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें दोनोंमें मतान्तर है। जैकेटका विश्वास है कि इस वृद्धिका कारण आमाशयकी दीवालपर अलकोहल द्वारा पैदाकी हुई चिनक है। इस कथनकी पुष्टिमें उन्होंने यह दिखलाया है कि सरसोंको पानीमें पीसकर उसके सत्तको देनेसे भी अलकोहलका सा ही प्रभाव श्वास क्रियापर पड़ता है। सरसोंका रस भी एक तेज़ चिनक आमाशयकी दीवालों पर पैदा करता है। उन्होंने यह भी सिद्ध किया है कि थोड़ी मात्रामें पहले मारफ़ीन देनेके बाद अलकोहल या सरसोंका रस पीनेसे श्वास-क्रियापर पहलेका असर नहीं पड़ता। इसका कारण यह है कि मारफ़ीन आमाशयकी दीवालोंकी झिल्लीको सुन्न कर देती है और उसकी उत्तेजना ग्रहण करनेकी शक्ति जाती रहती है। इन प्रयोगोंकी सत्यता यदि मानी जाय तो इसमें कोई सन्देह नहीं रह जाता कि अलकोहल आमा-शयकी दीवालोंको उत्तेजना पहुँचाकर अप्रत्यक्ष रूपसे ही श्वास-क्रियाको प्रभावित करता है, इसका सीधा कोई प्रभाव श्वास-संस्थान पर नहीं पड़ता। जैकेटके इन प्रयोगोंको जन्तुविज्ञानवेत्ता प्रामाणिक नहीं मानते। वे इस बातका विश्वास नहीं करते कि अलकोहलका कार्य सरसोंकी तरह केवल आमाशयकी दीवालोंपर एक चिनक ही पैदा करने तक सीमित रहता है। जैकेटके प्रयोगोंमें मारफ़ीनका व्यवहार भी वे युक्तिसंगत नहीं समझते क्योंकि उनके अनुसार मारफ़ीनका स्वयं ही श्वास क्रियापर एक शिथिलताका प्रभाव पड़ता है।

अलकोहल द्वारा श्वास-केन्द्रके उत्तेजित होनेका अधिक सम्भवनीय कारण यह जान पड़ता है कि यह प्रभाव किसी परोक्ष दिशासे ही आता है। जैसा पहले बतलाया जा चुका है अलकोहल शारीरिक गर्मीका छीजन करनेमें सहायक होता है और इस कमीको पूरा करनेके लिये अधिक गर्मी उत्पन्न करनेकी शरीरको आवश्यकता पड़ती है जिसके लिये ओषजन-शोषणकी क्रिया बढ़ जाती है। इस प्रकार एक परोक्ष कारणसे श्वास-क्रियाकी वृद्धि समझमें आती है।

शारीरिक कार्यों पर प्रभाव

अलकोहलकी साधारण मात्रायें पूर्णरूपसे ओषदीकृत होकर शक्ति प्रदान करती हैं। मूत्रके रास्ते बहुत थोड़ा व्यर्थ जाता है। प्रयोगों द्वारा मालूम हुआ है कि २½ औंस तक मनुष्यको अलकोहल देनेपर केवल २ प्रतिशत-की मात्रा ही मूत्र द्वारा बाहर जाती है बाकी सब शरीरमें इस्तेमाल हो जाती है। अलकोहलके ओषदीकरण होने पर बीचका कोई अन्य पदार्थ बनता हुआ नहीं देखा गया है। अतः यह समझा जाता है कि यह पूर्ण रूपसे ओषदीकरण होकर कर्बन द्वि-ओषिद गैस तथा पानी बनाता है। ओषदीकरणकी क्रिया बहुत धीरे-धीरे होती है क्योंकि यह देखा गया है कि अलकोहल देनेके लगभग २ घंटे बाद तक शरीरमें अलकोहलकी मात्रा करीब-करीब उतनी ही रहती है।

चर्बीके स्थानमें अलकोहलका प्रयोग

यह ऊपर बतलाया जा चुका है कि अलकोहल ओषदीकरण होकर शरीरको शक्ति प्रदान करता है। चर्बी का कार्य भी शरीरको शक्तिप्रदान करना ही है। इस दृष्टिसे अलकोहलको शरीरमें चर्बीके स्थानकी पूर्ति करनी चाहिये। अटवाटर और बेनेडिक्टने इस बातका निर्णय

करनेके लिये बहुतसे प्रयोग किये जो काफी विश्वस्त माने जाते हैं। एक प्रयोगमें एक मनुष्यको एक स्वच्छ हवादार कमरेमें कई दिनों तक रखा गया। इन दिनों जितना शरीरसे ताप बाहर निकला सबका पूरा हिसाब रखा गया। भोजन तथा विष्ठा की भी जाँच प्रतिदिन होती रही। इस प्रकारके प्रयोगोंसे यह मालूम हुआ कि यदि २½ औंस अलकोहल उतनी चर्बीकी जगह जितनी चर्बी इतने अलकोहलके बराबर ही गर्मी उत्पन्न करती है भोजनके साथ दिया जाय तो अलकोहल द्वारा उत्पन्न शक्ति शरीरके उपयोगमें आती है और शरीर लगभग पहले जैसी ही गर्मी बाहर निकालता है। शरीरकी अवस्थामें कोई अन्तर नहीं मालूम पड़ता। अलकोहलका ओषदीकरण पूर्णरूपसे हो जाना है। ओषदीकरणमें गर्मी भी आवश्यकतासे अधिक नहीं पैदा होती। इन कारणोंसे यह शरीरको शक्ति प्रदान करनेमें सहायक होता है और चर्बीके स्थानकी बहुत अंशों तक पूर्ति करता है। इसी लिये प्रायः यह देखा जाता है कि अलकोहल पीने वाले लोग कुछ अधिक मोटे होते हैं, क्योंकि उनमें चर्बी शरीरके व्यवहारमें नहीं आती और बराबर इकट्ठा होती रहती है।

अलकोहल द्वारा प्रोटीनके स्थानकी पूर्ति

एक ऐसे मनुष्यको लीजिये जिसका भोजन इस प्रकारका हो कि शरीरका नोषजन समान रहे अर्थात् उसके भोजन द्वारा शरीरको उतनीही शक्ति मिले जितनी कि उसे प्रतिदिनके कार्योंके लिये आवश्यकता है। इसका मतलब यह होगा कि उसके शरीरका वजन एक सा रहेगा—न तो घटेगा और न बढ़ेगा। ऐसे मनुष्यके भोजन मेंसे यदि कर्बोनेतकी मात्रायें एक दम हटा दी जायँ तो तुरन्त शरीरके नोषजनका छीजन शुरू हो जायगा क्योंकि शरीरके अन्दरकी प्रोटीन शरीरकी आवश्यकताके लिये व्यवहारमें आने लगेगी। अब शरीर घटने लगेगा। इस समय यदि कर्बोनेतके सम-तापकी मात्रामें चर्बी दी जाय तो शरीरकी यह क्षीणता रुक जायगी। अलकोहल यदि प्रोटीनके स्थानकी पूर्ति करनेके उपयुक्त है तो इस मौके पर चर्बीके बजाय अलकोहल देनेसे भी क्षीणता रुक जानी चाहिये। किन्तु वास्तवमें ऐसा नहीं होता। अलकोहल चर्बीकी तरह कर्बोदेतके स्थानमें देनेसे शरीरकी क्षीणता नहीं रुकती, बल्कि ठीक इसके विरुद्ध शरीर पहलेकी अपेक्षा अधिक क्षीण होने लगता है। ऐसा मालूम होता है कि अलकोहल शरीरमें शक्ति प्रदान करनेके साथ ही साथ कुछ ऐसी हानिकारक दशा भी उत्पन्न करता है जिसके कारण शारीरिक प्रोटीनका छीजन अधिक होने लगता है। यह परिणाम प्रयोगकी प्रथम अवस्थाके हैं। अब यदि यही प्रयोग बहुत दिनों तक चलते रहें तो दूसरा ही परिणाम दिखलाई देगा। अब अलकोहलका कोई हानिकारक प्रभाव नहीं पड़ता और प्रोटीनका छीजन भी नहीं होगा। इस दशामें यह शक्ति प्रदान करनेके लिये प्रोटीनके स्थानकी पूर्ति करता है। अतः अधिकतर मनुष्योंमें जिनमें अलकोहल पीनेकी आदत पड़ी हुई है अलकोहलका इसी प्रकारका प्रभाव पड़ेगा।

ऊपरके प्रयोगोंका कुल निष्कर्ष यह निकला कि यदि भोजनमें कर्बोदेत तथा चर्बीके स्थानमें अलकोहल रख दिया जाय तो प्रथम अवस्थामें अलकोहलका कुछ हानि-कारक प्रभाव पड़ेगा और शारीरिक प्रोटीनका थोड़ा छीजन होगा, किन्तु कुछ दिनों बाद शरीरकी सेलें अपनेको उस दशाके उपयुक्त बना लेती हैं और तब शारीरिक प्रोटीनका छीजन बंद हो जाता है और अलकोहल शरीर को उचित शक्ति प्रदान करता है।

ओफर नामक एक जन्तु-विज्ञान-वेत्ताके इस संबंधमें एक प्रयोगका परिणाम, जो उन्होंने एक पूर्ण स्वस्थ मनुष्य पर किया था जिसने पहले अलकोहल कभी नहीं पिया था, नीचे दिया जाता है:—

अवस्था	खुराक	शारीरिक प्रोटीन ग्राममें	परिणाम
१.	केवल भोजन	०·३४४१ छीजन	लगभग नोषजनकी समतुल्य दशा
२.	भोजन + १०० ग्राम अलकोहल	१·१६८९ छीजन	अलकोहलके हानिकारक प्रभावका आरम्भ

३. भोजन + १०० ग्राम ०·२३३५ अलकोहल प्रोटीन-
अलकोहल लाभ का स्थान लेना शुरू करता है।

४. केवल भोजन ०·०११० छीजन

५. भोजन + चर्बी १·५६५४ लाभ

ऊपरके प्रयोगमें दूसरी अवस्थामें प्रोटीनका छीजन अलकोहलके हानिकारक प्रभावके कारण होता है। अगली अवस्थामें पुनः समतुल्य दशा आ जाती है और अलकोहल प्रोटीनका स्थान लेना शुरू करता है।

अन्य कुल लोगोंके प्रयोगोंमें अलकोहलके हानिकारक प्रभावकी दशा नहीं दिखलाई दी। इस कारण उन लोगोंका यह विश्वास है कि अलकोहल हर अवस्थामें कर्बोदेत तथा चर्बीके स्थानकी पूर्तिकर सकता है।

ऊपरके विवेचनसे यह बात भली भाँति समझमें आगई होगी कि अलकोहलका शरीरके भिन्न-भिन्न तन्तुओं पर क्या प्रभाव पड़ता है। इन्हीं बातोंके आधार पर अब हमें इस बातको भी समझ लेना चाहिये कि क्या अलकोहल एक खाद्य पदार्थकी गणनामें रखा जा सकता है। यह बात बतलाई जा चुकी है कि उन लोगोंमें जो अलकोहलके कुछ आदी हैं अलकोहल चर्बी तथा प्रोटीनके स्थानकी पूर्ति कुछ अंशोंमें करता है। साथ ही यह भी सच है कि खद्योज तथा शर्कराकी तुलनामें यह अधिक शक्ति प्रदान करने वाला पदार्थ है। इन कारणोंसे अलकोहलको खाद्य पदार्थोंकी सूचीमें निसंशय रखा जा सकता है। किन्तु अधिक मात्रा में शरीरपर इसका विषैला प्रभाव भी पड़ता है। अतः सारांश यह निकला कि उन मात्राओं तक जब तक यह शरीरको शक्ति प्रदान करता है और उसके उपयोगमें आता है हम इसे खाद्य पदार्थकी गणनामें ले सकते हैं। इन मात्राओंसे अधिक होनेपर जब वह केन्द्रीय नस संस्थानपर विशेष प्रभाव डालकर शरीरमें हानिकारक अवस्था उत्पन्न करता है तब हम इसे विषोंकी गणनामें रखेंगे। यहां यह बात भी ध्यानमें रखने की है कि हर एक खाद्य पदार्थ जब आवश्यकतासे बहुत अधिक मात्रामें खूनमें पहुँच जाता है तब वह भी विषका सा ही प्रभाव पर डालता है। उदाहरणार्थ शर्कराकी बहुत अधिक मात्रा लेनेपर प्रायः चर्बी वाले तन्तुओंका ह्रास होता देखा गया है। अलकोहलकी ०·१ प्रतिशत तककी खूनमें मात्रा शरीरके कार्यमें आ जाती है और इसका कोई हानिकारक प्रभाव नहीं पड़ता। ०·५ प्रतिशत तककी मात्रा होनेपर विषाक्त प्रभाव शुरू हो जाता है और थोड़ी नशेकी अवस्था आ जाती है। और अधिक होने पर अधिक बुरा प्रभाव पड़ता है।

हर एक मनुष्यमें किस मात्रा तक अलकोहल खाद्य पदार्थका काम कर सकता है यह उस मनुष्यकी अपनी ओषदीकरणकी शक्तिपर निर्भर करता है। अलकोहल आमाशयमें बहुत जल्दी शोषित होकर खूनमें मिल जाता है। बीमारीकी उन दशाओंमें जब कि अन्य खाद्य पदार्थ बहुत कठिनतासे खून तक पहुँच पाते हैं अलकोहल अपने शीघ्र शोषित होनेके गुणके कारण तुरन्त ही खूनमें मिल जाता है और आवश्यक शक्ति प्रदान करता है। इसलिये यह बीमारीमें बहुत ही लाभदायक सिद्ध हुआ है।

यह बात देखी गई है कि उन जीवोंमें जो अपने बच्चोंको दूध पिलाते हैं (जैसे गाय, खरगोश, मनुष्य आदि) अलकोहल शरीरके कुछ भागोंमें सदा ही विद्यमान रहता है खरगोशके यकृत मस्तिष्क तथा मांस पेशियोंमें ०·००१७ प्रतिशत तक अलकोहलकी मात्रा देखी गई है। शरीरमें यह अलकोहल कहांसे आता है इस बात पर विद्वानोंमें आपसमें मतभेद है और अभी तक कोई एक निश्चित राय नहीं स्थिरकी जा सकी है। कुछ लोगोंका विश्वास है कि यह ईस्ट या अन्य कीटाणु द्वारा शरीरमें खमीर उठनेसे पैदा होता है। अन्य कुछ दूसरे लोगोंका मत है कि यह अंगूरकी शर्कराके ओषदीकरणके समय बीचमें बनने वाला एक पदार्थ है। पिछला मत अधिक माननीय है।

अलकोहल मूत्र द्वारा एक या दो प्रतिशत तक बाहर निकल जाता है। गुर्देमें अलकोहलको बाहर निकालनेकी कोई विशेष शक्ति नहीं है। खूनमें इसके ओषदीकरणकी क्रिया बहुत ही धीरे होती है, क्योंकि कई घंटों तक खूनमें इसकी मात्रा एकसी रहती है।

अलकोहलका भिन्न-भिन्न शारीरिक संस्थानोंपर क्या प्रभाव पड़ता है यह बात विस्तारसे ऊपर लिखी गई है।

अलकोहल एक ऐसा पदार्थ है कि जहां इसके पीनेकी आदत मनुष्यने शुरूकी वह कुछ ही दिनोंमें एकदम अंतिम सीमा तक पहुँच जाता है। इस लेख द्वारा यह आशा की जाती है कि इसके पढ़नेवाले अलकोहलके वास्तविक प्रभावोंसे परिचित होकर अपनेको इसके हानिकारक प्रभावों-से बचा सकेंगे। साधारण दशामें यदि इससे मनुष्य अपनेको बिल्कुल ही अलग रख सके तो सबसे अच्छा है, क्योंकि एक बार इसका पीना शुरू करने पर इसकी आदत बढ़ती ही जानेकी शंका रहती है। संयमके साथ निर्धारित मात्रामें लेनेसे लाभ भी हो सकता है। बीमारीकी अवस्था-में तो निश्चय ही अन्य दवाओंके संयोगसे इसके द्वारा अतीव लाभ होता है।※

जादूभरी धातु रेडियम

[ले—श्री जगेश्वर दयाल वैश्य, एम० ए०, बी० एस-सी०]

रेडियम लवण साधारण नमकके समान एक सफ़ेद चूर्ण होता है। एक तोला रेडियमका मूल्य एक हज़ार तोला सोनेके लगभग होता है। यह एक साधारण नियम है कि जिस वस्तुकी उपज बहुत कम होती है उसका मूल्य बहुत होता है। अभी तक संसारमें कुछ ही चम्मच भर रेडियम धातुके रूपमें है इसी लिये इतने अधिक मूल्य पर बिकता है।

रेडियम इतनी तीव्र धातु है कि यदि यह एक स्थान पर काफ़ी मात्रामें मोजूद हो तो इसका परिणाम भयानक होगा। यदि सेर या आधा सेर रेडियम एक स्थानपर रक्खा हो तो जो मनुष्य भी उसके पास आयगा वह कुछ ही दिन बाद मर जायगा। उसको छूते समय भी शरीर-में किसी प्रकारकी भी पीड़ा आदि नहीं मालूम होगी, लेकिन १०-१५ दिन बाद खाल उतरनी शुरू हो जायगी, आँखें ज्योतिर्हीन होनी शुरू हो जायंगी और और फिर अन्तमें मृत्यु हो जायगी। इतनी छोटी मात्रामें भी जैसा कि अभी तक विज्ञानवेत्ताओंके पास यह पाया जाता है, यह देखा गया है कि इससे हानि पहुँची है। एक मनुष्यकी वास्कटमें एक छोटी सी काँचकी नली थी, जिसमें ज़रा सा रेडियम था। इस घटनाके तीन सप्ताह बाद जेबके नीचे वाले भागकी खाल लाल होकर गिरने लगी और एक गहरा घाव बन गया। इस घावमें अत्यन्त पीड़ा होती थी और उसके अच्छा होनेमें काफ़ी समय लगा।

रेडियम अन्धेरेमें अग्निके समान चमकता है। यह एक आश्चर्यजनक बात है कि यद्यपि यह सदैव प्रकाश और तापकी तरंगें देता रहता है तो भी इसकी मात्रामें कोई अन्तर प्रतीत नहीं होता। यह एक बड़ी विचित्र बात है—ज़रा सोचिये कि एक कोयलेका टुकड़ा रात दिन लगातार वर्षों तक प्रकाश व तापकी तरंगें देता हुआ जलता रहे और न उसकी मात्रामें कोई विशेष अन्तर पड़े और न वह राख ही बने, बस ऐसा ही हाल रेडियम-का है। एक सेर रेडियम प्रतिघण्टा में इतना ताप देता है कि उस तापसे एक सेर बर्फ पिघल सकेगी। इसी दरसे वह अनन्त दिनों तक ताप देता रहेगा।

एक विज्ञानवेत्ताने रेडियमकी नलियाँ एक पट्टेके डिब्बेमें कुछ समयके लिये रख दीं। बादमें वे रेडियम की नलियाँ उसमें से निकाल लीं गई और वह डिब्बा रद्दी समझकर उसने एक कोनेमें डालदिया। एक रात्रिको उसने देखा कि वह डिब्बा अंधेरेमें चमक रहा है। इसका कारण यह था कि उसने रडियमकी कुछ किरणें शोषण करली थीं।

※ दवाओंमें अलकोहल देनेकी प्रथा पहले तो बहुत थी पर जैसा हमने अपने एक लेख में (विज्ञान, जनवरी १९३६) में दिखाया है, अब दवाओंमें इसका प्रचार बहुत कम हो गया है। इसकी उपस्थितिसे रोगोंके इलाज करनेमें बाधा भी बहुत पड़ती है। —सम्पादक

कुछ घड़ियोंके डायल अंधेरेमें चमकते हैं, जिससे अंधेरेमें भी समय मालूम हो सकता है। ऐसे डायल रेडियम- डायल कहलाते हैं। अभी बतलाया जा चुका है कि रेडियम बहुत महंगी धातु है तो तीन २ चार २ रुपयोंकी घड़ियोंपर रेडियम-डायल का होना किस प्रकार सम्भव है? इसका कारण यह है कि घड़ियोंपर कैलशियम या बेरियम सलफ़ाइड या ज़िंक सलफ़ाइडका प्रयोग किया जाता है। ये पदार्थ भी अंधेरेमें चमकते हैं और इनके कारण डायल चमकता है।

आजकल बहुतसे रोगोंको अच्छा करनेके लिये रेडियमका प्रयोग बढ़ता जा रहा है, विशेष-करके कैन्सर नामक फोड़ेमें। चिकित्सालयोंमें यह बहुत ही थोड़ी मात्रामें लाया जाता है। सुईकी नोकके बराबर काफ़ी है। इसका भी मूल्य हज़ारों रुपया होता है।

विज्ञानवेत्ताओंका विश्वास है कि रेडियमकी मददसे विज्ञानकी बहुतसी गुप्त बातें सुलझ जावेंगी। एक धातु दूसरी धातुमें बदली जासकेगी। इससे भी महत्वकी एक यह बात भी ज्ञात हो जावेगी कि अणुओंमेंसे शक्ति लेकर मनुष्य अपने काममें किस प्रकारले सकता है। जिस दिन यह सम्भव हो जायगा उस दिन संसार सब बदल जायगा। यह मालूम नहीं कि यह दिन हमारे और तुम्हारे जीवनमें ही आवेगा अथवा बादमें।

भारतमें मोटरका व्यवसाय

[ले०—श्री सुरेश शरण अग्रवाल बी० एस-सी०]

मैसूर रियासतके भूतपूर्व दीवान सर विश्वेशरय्या भारतके प्रसिद्ध व्यवसाय-कुशल व्यक्ति हैं। कई वर्ष हुये उड़ीसाकी सरकारने गांधीजीसे अपने प्रान्तकी बाढ़-समस्या सुलझानेको कहा था। गांधीजीने यह कार्य सर विश्वेशरय्याको सौंप दिया। अपनी उच्च सेवाओंके कारण वे नेशनल प्लानिंग कमेटीके जिसके सभापति सर्वोपरि पंडित जवाहरलाल नेहरू हैं, सदस्य चुने गये हैं। गतवर्ष उन्होंने बम्बई सरकारके सामने बम्बईमें एक ओटोमोबाइल फैक्ट्री बनानेकी योजना रक्खी। यह बात अभी रहस्यमय ही है, और इस स्कीमका सार प्रसिद्ध पत्र "सायण्स एण्ड कलचर" के सम्पादकीय लेख एवं एक अन्य लेखमें निकला था।

आधुनिक वैज्ञानिक युगमें मनुष्य बड़ी तेजीसे चलता है। उसने समय और दूरीको बहुत कम कर दिया है। पूर्वकालकी धीरे-धीरे चलनेवाली बैलगाड़ियाँ एवं खच्चर आदि साधन असभ्यसे लगते हैं। अतएव वैज्ञानिक आवागमनके साधनोंकी निरंतर बढ़ती होरही है। रेलगाड़ी इसका एक प्रत्यक्ष उदाहरण है। मनुष्यकी गत अन्तिम विजय वायुयान है। परन्तु रेल राज्य सरकारों द्वारा चलाई जाती है, वायुयान महाधनियों द्वारा। इन दोनों पदार्थोंको एक साधारण व्यक्ति सर्वदा प्रयोग में नहीं ला सकता। इनके बीचकी वस्तु मोटर ही है जिसका दिन प्रतिदिन प्रचार बढ़ रहा है।

अमेरिकामें हरपाँच आदमियोंपर एक मोटर है, अथवा वहां प्रत्येक कुटुम्बमें एक-एक मोटर रहती है। अतएव अमेरिकामें शीघ्र आवागमनके लिये मोटर एक साधारण आवश्यकता है। इसका कारण वहाँ सस्ते मूल्यपर मोटरका तैयार हो जाना है और वहाँ पेट्रोल आदि भी सस्ते मिलते हैं जिससे मोटर रखनेमें असुविधा नहीं होती। जर्मनी तकमें जहाँ कोई भी तेलके कुँये नहीं हैं लगभग प्रत्येक शत मनुष्योंपर एक मोटर है। और भारतमें यह संख्या १४०० पर पहुँच जाती है। इससे यहाँ सब मोटरें विदेशसे आती हैं जिससे कि मूल्य ऊँचा बैठता है और केवल महावेतन या आय प्राप्त करने वाले ही खरीद सकते हैं। तब भी मोटरकार, लारी, बस और टैक्सीका प्रयोग बढ़ रहा है। सन् १९३२-३३ में भारतमें ६, ७०१ कार और ८,८७७ लारियोंका आयात हुआ, यही संख्यायें सन् १९३४-३५ में १४,२४८ और २४,१८७ हो गईं। सर विश्वेशरय्याकी स्पीचसे पता चलता है कि जिन लोगोंकी भारतमें आय ३०) मासिक है उनको भारतके बने मोटर खरीदनेको ललचाया जा

सकता है। तुरन्त ही यह बात उठती है कि यदि फैक्ट्री खुल गई तो शीघ्र ही सबकी आवश्यकता अथवा इच्छा पूरी हो जायेगी और फिर इसके बाद मोटरका स्वदेशमें कोई ग्राहक ही न मिलेगा। परन्तु अमेरिकासे आई हुई नई मोटरोंका रङ्ग रूप बतला सकता है कि वहाँ कितनी अधिक मोटरें बनती होंगी। संयुक्त राज्य अमेरिकामें सन् १९३४ में २,७५३,१११ मोटरें बनी जिनमें २३६,३१३ यानी केवल ८·६% विदेशोंको निर्यात हुईं। कनाडासे भी जिसको अंग्रेजी साम्राज्यका एक अंश होनेके कारण बहुत-सी सुविधायें प्राप्त हैं जो केवल १९३४में ३७·१ प्रतिशत मोटरें विदेशोंको गई थीं जो संसारमें मोटर-निर्यातकी उच्चतम संख्या है।

आवश्यक यह है कि किसी भी भारतीय मोटर कम्पनी द्वारा तैयार की गई मोटरें कम मूल्यकी हों और कम व्यय पर रक्खी भी जा सकें, और बहुत दिनों टिक भी सकें। मोटर बनानेके काममें सर्वदा वैज्ञानिक खोजें होती रहें और परिवर्त्तन किये जायें। इन मोटरोंके बनानेमें भारतीय परिस्थितियोंका विशेष ध्यान रक्खा जाय।

यहाँ हम मोटरका कुछ इतिहास भी दे दें। वैज्ञानिक ओयेस्टेडने पता लगाया कि प्रत्येक चलायान चुम्बकीय क्षेत्रके साथ-साथ वैद्युत् क्षेत्र भी विद्यमान रहता है। फ़ैरेडेने इससे उल्टी बातका पता लगाया कि प्रत्येक चलायमान वैद्युत् क्षेत्रके साथ-साथ चुम्बकीय क्षेत्र भी विद्यमान रहता है। फ़ैरेडेकी यह छोटी-सी खोज कला-कौशल जगत्में क्रान्तिकारी सिद्ध हुई और उसी समय यदि हम कहें विद्युत् युगका आरम्भ हुआ। इसके सहारे विद्युत् साधारण मनुष्यकी वस्तु बनी और डायनेमो (जो यान्त्रिक-सामर्थ्यको विद्युत् सामर्थ्यमें परिवर्तित कर देते हैं) तैयार हुये इनके सहारे बिजली घर घर जाने लगी। डायनेमोका उल्टा मोटर है, उसमें विद्युत्को यान्त्रिक-सामर्थ्यमें बदल देते हैं। यही सिद्धान्त हमारी मोटरोंका है, और अन्य नामके स्थानपर उसे भौतिक शास्त्रके ही नामसे बोलते हैं—मोटर। विद्युत्से प्राप्त यान्त्रिक-सामर्थ्य द्वारा ही मोटर आगे बढ़ता और पलमें आंखोंसे ओझल हो जाता है। मोटर वहीं बनते हैं जहां कोयला, लोहा एवं तेलकी खानें हों? अतएव संसारमें सर्वाधिक मोटर संयुक्त-राज्य अमेरिकामें तैयार होते हैं। वहाँ इस व्यवसायका प्रसिद्ध नगर है डेट्रायट; जहाँ फोर्डके कारखाने हैं। इस व्यवसायसे उनको इतना आर्थिक लाभ हुआ है कि आज वह संसारमें सबसे अधिक धनवान व्यक्ति है।

भारतमें रजिस्टर्ड मोटरोंके देखनेसे यह पता चलता है कि फोर्ड तथा शीवरोलेट मोडेल से २० तथा १५ प्रतिशत यान्त्रिक-सामर्थ्य मिलती है। इसके बाद कम सामर्थ्यवाली मोटर आती हैं, जैसे आस्टिन ७,१० या १२ और हिलमन मिंक्स और बेबी फोर्ड। अतएव, सर विश्वेशरय्याका कहना है कि निम्न प्रकारकी मोटरें तैयार की जायें:—

(१) एक मामूली पावर मैसेञ्जरकारका जैसे फोर्ड बी० एस० शीवरोलेट या प्लाईमाउथ।

(२) एक १½ कैपेसिटी व्यापारिक ट्रक या लौरी। दोनों गाड़ियोंके लिये एक ही इञ्जिनका प्रयोग हो सकता है, यानी एक ६-सिलेंडर इञ्जिन जो लगभग २४ से २८ अश्व-शक्तिका हो और जिसके फ्रेम, रियर ऐक्सिल, ट्रांसमिशन आदिमें उपयुक्त परिवर्तनकर दिये जायें। हम भारतवालोंको तो एक आसानी यह है कि माल सस्ते दामों पर मिल सकता है और हमें सस्ते मज़दूर भी मिल सकते हैं। अतएव अब यह निर्विवाद सिद्ध हो गया कि भारतमें मोटर कलाकी उन्नतिके अच्छे लक्षण हैं।

व्यवसाय, जैसा विदेशी फैक्ट्रियोंमें अनुभव करनेसे पता चलता है कई श्रेणियोंमें लगाना चाहिये:—

(१) एक एक एसेम्बली प्लांट लगाया और तैयार किया जावे जिसमें अधिकांश आयात भाग इत्यादि हों।

(२) कुछ भाग घरमें ही बनाये जायें और दूसरे वर्षमें लगभग ६,००० कार और ट्रक जमा किये जायें।

(३) एक पूरे नापकी फैक्टरीकी तीसरे वर्षमें पूरी तैयारी—कार और ट्रककी संख्या बाजारू मांगके आश्रित है, शायद कुल मिलाकर १२,००० गाड़ियां।

(४) चौथे वर्ष और उसके बादसे मोटरोंकी तैयारी हदसे हद १५,००० गाड़ियां। उपर्युक्त शीर्षकोंके अंतर्गत विशेषज्ञोंकी सम्मतिसे पूरे व्यवसायके लिये निम्नांकित लागत पड़ती है:—

	रुपये (लाख)
प्रथम स्टेज—केवल एसेम्बलीप्लांट	
एसेम्बली प्लांट जहां १०,००० कार और ५,००० ट्रक समा सकें।	१८'००
उसकी इमारत मय जमीन	७'००
द्वितीय स्टेज—मैनुफैक्चरिंग प्लांट (पूरी फैक्ट्री योग्य)	
प्लांट एवं मशीन वास्ते तैयारी मोटर इञ्जिन, क्लच और ट्रांसमिशन	२४'००
,, ,, ,, बाडी	२०'००
,, ,, ,, आगे और पीछे की ऐक्सिल	१०'४०
मशीनरी एवं औजारोंके लिये बढ़ती स्थान	२'७०
कामचालू धन	५०'००
जोड़	१३२'१०

या कहो लगभग १३० लाख रुपया

यद्यपि भारतवर्षमें कुछ थोड़ेसे विदेशी एसेम्बली प्लांट्स हैं, सर्व प्रथम स्टाक और श्रमकी शिक्षाकी आवश्यकता है। इससे भावी मैनुफैक्चरिंग प्लांटमें काम करने वालोंकी खोजका भी कोई कष्ट न होगा। द्वितीय स्टेजमें होशियारी इसीमें है कि आसान हिस्से पहले बनाना शुरू किये जायें और निम्नलिखित क्रमसे

(१) बाडी (२) आगे पीछेकी ऐक्सिल (३) ट्रांसमिशन सिसटम (४) इञ्जिन।

मोटरका व्यवसाय एक टेढ़ी खीर है। यह काम बड़े पैमाने पर चलाया जाना चाहिये। इसमें प्रतिवर्ष कमसे कम २,००० गड़ियोंसे अधिक बनाने पर ही लाभ होगा। यूरोप और अमेरिका जहाँ इस व्यवसायको अरसा गुजरा मोटरके आवश्यक व्यक्तिगत और सहायक भाग अब भी छोटी छोटी फैक्ट्रियों एवं कारखानोंमें तैयार होते हैं। वहां लोग एक या थोड़ेसे ही भागोंपर ध्यान देते हैं और मिलकर कार्य विभाजन और अत्यधिक तैयारीके ही कारण विशेष ज्ञान और उच्च टैकनिकल बुद्धि प्राप्त कर सके हैं। एक केन्द्रीय कारखानेमें कुल मिलाकर ८० प्रतिशत भाग तैयार होते हैं, कहीं ३० से ४० प्रतिशत भी।

नीचे एक बनी मोटरके, भागोंका तखमीनन मूल्य दिया गया है—

भाग	दाम रुपयोंमें	पूरे मोटरका प्रतिशत दाम
एक—केन्द्रीय कारखाने-में बनने वाले		
१. बाडी	४११'५०	३५'२२
२. आगे पीछेकी ऐक्सिल	६४'५०	६'६६
३. क्लच	९'३१	०'६६
४. ट्रांसमिशन गेयर बाक्स	६६'२०	४'६७
५. इञ्जिन	२५६'३६	१८'०८
६. स्टीयरिंग गेयर	१४'१४	१'००
७. ब्रेक—हाई और फुट	३८'६०	२'७४
	६७८'६१	६९'०३
दो—केन्द्रीय या अन्य कारखानों में वोल या विदेशोंसे आयात जैसी सुविधा हो।		
८. चासीस फ्रेम, मडगार्ड, हुड आदि	१०२'६०	७'२३
९. पहिये और टायर	११४'१०	८'०४
१०. पेट्रोल	१४'२५	१'००
११. बिजलीके भाग	७२'३०	५'१०
१२. रैडियेटर	३५'६१	२'५१
१३. औज़ार	१९'४१	१'३७
१४. कमानी	३४'४२	२'४३
१५. बम्पर	१२'८८	०'७७
१६. चलाने वाला शाफ्ट	१०'८५	०'७७
१७. ऐक्ज़हास्ट पाइप और मफलर	४'८८	०'३४
१८. चिकनई	३'४०	०'२७
१९. रंग	१६'१७	१'१४
	४३९'२७	३०'९७
कुल रुपये	१,४१८'१८	१००'००

व्यक्तिगत कारखानों द्वारा जो भाग बनाये जा सकते हैं वे निम्नांकित हैं :—

(१) मोटर (२) ट्रांसमिशन (३) स्टीयरिंग गेयर (४) फ्रेम (५) रोक्सल आगे पीछेकी (६) फैन्डर और गार्ड—हुड (७) प्रकाश—आगे, पीछे, इधर उधर (८) बैट्री (९) स्टार्टर (१०) रनिंग बोर्ड (११) गैस—टंकी (१२) रैडियेटर (१३) शीशा खिड़की एवं फ्रेम (१४) बाड़ी (१५) पहिया, टायर और ब्रेक (१६) तकिये आदि (१७) भोंपू (१८) स्पार्क प्लग (१९) आगे पीछेकी कमानी, वाल्व, तकिये, बम्पर (२०) धक्का-एबसोर्बर (२१) गैस्केट (२२) नली, बोल्ट, नट्स, ब्रासकास्टिंग (२३) मशीन तथा हथियार। उपर्युक्त सूची देत्रुआमें केन्द्रसे जुड़े हुये कारखानोंमें भिन्न भिन्न भाग बननेकी है। देत्रुआमें इस सम्पूर्ण मोटर व्यवसायमें कुल धन ५४० करोड़ रुपया लगा हुआ है। इस सम्पूर्ण अमेरिकामें बहुतसे मोटर-निर्माता कारके भागोंको भद्दे रूपमें कारखानोंसे मोल ले लेते हैं और उनको अपने केन्द्रीय कारखानोंमें गरम करते, सुधारते, जोड़ते और पूरी मोटर बनाते हैं।

हमको भारतवर्षमें आवश्यक होगा संकर-इस्पात, ढलवाँ लोहा आदि छोटे पैमानेपर तैयार करना। कास्टिंग और फोरजिंगके लिये एक बिजलीकी भट्टी, हाइड्रोलिक प्रेस, फोर्जिंग हैमर और १६ इञ्ची ३—ऊँची रोलिंग मिल आवश्यक है। इनमें मूल्य १२ लाखसे अधिक न लगे। प्रारम्भमें १२,००० कार बनाना ही होगा।

काम चलेगा कैसे ? कुछ नवयुवकोंको यहांसे अमेरिका भेजा जा सकता है जहाँ वह काम सीख लें या अमेरिका वालोंको ही यहां निमंत्रित किया जाये। अब तो अमेरिकन कम्पनियाँ अपनी शाखायें विदेशोंमें खोलने लगी हैं। उदाहरणार्थ—इंगलैंडमें देगनहाम और वोक्सहाल वर्क्स, जर्मनीमें ओपल तथा फोर्ड और फ्रांसमें मातफोर्ड। फोर्ड कम्पनी रूसी सरकारको भी मोटर बनानेमें सहायता दे रही है। हाँ, इसमें फोर्डको अपना आर्थिक ध्यान अवश्य है। वे मोटर निर्माण इस शर्त पर सिखा रहे हैं कि रूसमें पाँच वर्षसे अधिक तक दस करोड़ रुपयेसे ऊपरकी लगभग मशीनरी, औजार आदि फोर्डसे खरीदे जायें।

इन सबके अनन्तर हमें जैसा स्वदेशमें प्रत्येक व्यवसायके साथ प्रश्न उठाना पड़ता है, समस्या होती है राजनीतिक और आर्थिक शक्तिकी। उचित तो यह होगा कि इस व्यवसायके लिये २५ प्रतिशत धन यानी १५० लाख रुपया सरकारसे लिया जाये, शेषके लिये सम्पूर्ण देशमें हिस्से बांट दिये जायें। प्रबन्ध कमेटीमें एक बोर्ड आफ डाईरेक्टर्स हो और एक ऐग्जीक्यूटिव कमेटी जो व्यवसायके व्यापारकी ओर ध्यान दें और उसमें चार बोर्ड आफ डाईरेक्टर्सके सदस्य हों और तीन हों फैक्ट्रीके मालिक।

रही राजनीतिक शक्ति। तो उसके लिये फिर सरकार को मदद करनी होगी। सरकारसे सहायता निम्नलिखित बातोंमें प्राप्तकी जायगी —

(१) [illegible] कल जो मोटरोंपर कर है वह प्रत्येक सरकारी (केन्द्रीय) बजटमें बदलती रहती है। इंगलैंड और ब्रिटिश साम्राज्यके भागोंसे मोटर आयात पर चुंगी ३० प्रतिशत है, अन्य पर ३७½। अब जब भारतमें ही फैक्ट्री खुलेगी तो सरकारका यह कर्त्तव्य होगा कि ड्यूटी बढ़ाकर ५० प्रतिशत कर दे।

३७½ प्रतिशतसे कम ड्यूटी तो कभी भी किसी दशामें रखे ही नहीं वरना जो भी फैक्ट्रीको आर्थिक हानि होगी उसकी पूर्ति सरकार करेगी।

(२) सेना, रेल और अन्य सरकारी विभागों और आवश्यकताओंके लिये मोटरें फैक्ट्रीसे ही खरीदी जायें। सरकारको अपनी आवश्यकताओंकी भी उचित सूची पहलेसे देनी होगी।

(३) विदेशोंसे आयात, कच्चा माल और अपूर्ण भाग जो देशमें स्थित एसेम्बली प्लांट मंगाये उनपर उनको चुंगी न देनी पड़े।

(४) व्यवसायकी वृद्धिके अर्थ आरम्भके पाँच वर्षोंमें कच्चा माल और तैयार मोटरके ले जानेके लिये रेलवे किराया कम किया जाये। यहां हम एक उदाहरण दें। सन् ३३ के जर्मनीमें हिटलर उन लोगोंको जो जर्मनीमें

वहाँकी बनी मोटर खरीदते हैं रियायत देता है या उनके ऊपर आय-टैक्समें कुछ प्रतिशत कमीकर दी जाती है। इसका यह परिणाम हुआ कि जहां जर्मनीमें १९३२ में ४१,००० मोटरें बनीं, १९३५ में यह संख्या बहुत कुछ बढ़ गई। विदेशी मोटरोंपर वहां भीषण चुंगी है और एक टैक्स भी देना पड़ता है जो जर्मन मोटरोंपर लगता नहीं है। फलतः अब जर्मनी मोटर बनानेमें तृतीय स्थानपर है, प्रथम संयुक्त राज्य अमेरिका और द्वितीय इंगलैंड है।

क्या ही अच्छा हो कि भारतकी केन्द्रीय सरकार सर विश्वेशरय्याकी इस स्कीमपर ध्यान दें और जो बातें एवं शर्तें उसमें हैं उन्हें सहर्ष शीघ्रतम स्वीकार करे। उससे राष्ट्रमें कितना जीवन आ जायेगा। हाँ पों-पोंकी आवाज़ गूँज उठेगी और संभव है, हवा धूलसे भर जाय। पर जहां सरकार मोटर बनवायेगी वहां नई सड़कें बनवाने अथवा पुरानी ठीक करानेमें कितनी देर लगेगी।

आगमें नंगे पैर चलना

[ले० श्री ब्रजवल्लभ बी० एस-सी०]

यह अभी तक आश्चर्यजनक प्रतीत होता है कि मनुष्य आगमें भी आसानीसे चल सकता है। जब कि बाजीगर लाल अंगारेकी आगमें इधरसे उधर बिना किसी रुकावटके चलते फिरते, दौड़ते देखनेमें आते हैं तो शिक्षित जन भी ऐसा विचार करते हैं कि इनको किसी देवी या देवताकी सिद्धि है या इनके पैरोंके तलुयेंमें कोई जड़ी बूटी ऐसी लगी हुई है जिसपर अग्निका प्रकोप न हो। प्राचीन समयकी पौराणिक कथाओंको हममेंसे बहुतसे पाठकगण अभी तक मिथ्या ही समझते हैं कि सत्यकी अग्नि द्वारा जो परीक्षाकी जाती थी उसका कोई प्रमाण नहीं है। परन्तु नहीं इस नवयुगमें वैज्ञानिक खोजोंसे मालूम हुआ है कि आगमें चलना एक साधारणसा पृथ्वी पर चलना है।

इस आगके चलनेको हम दो श्रेणियोंमें विभाजित करते हैं। प्रथम श्रेणीमें उस आगमें चलना जो कि पत्थरोंके जलानेसे उत्पन्न होती है और दूसरी श्रेणीकी आग काष्ठ अथवा कोयलेके जलानेसे पैदाकी जाती है। प्रथम श्रेणीकी आगपर चलनेका अभ्यास हवाई द्वीप, काक द्वीप, फीजी और पालीनेशियामें होता है। वहांपर पहले घंटों लगातार घुटनोंके बराबर गहरे गड्ढोंमें आग जलाई जाती है। उसके उपरान्त जब पत्थर अंगारेके समान बहुतलाल हो जाते हैं तो एक बाजीगर उठकर अग्निकी पूजा करनेके बाद उसमें कूद जाता है और बार-बार इस ओरसे दूसरी ओर को चलता फिरता है।

दूसरी श्रेणीकी आगपर दक्षिण-पूर्वी अफरीकामें, नेटालके देशमें, जापान द्वीपमें, ट्रिनिडाड आदि स्थानोंमें बाजीगर चलते हैं। पूर्वी भारतवर्षके द्वीपोंमें भी ऐसा पाया जाता है। वहाँपर अधिकतर दो गज चौड़े, चार गज लम्बे, घुटने बराबर गहरे चौकोर गड्ढे पहले बनाये जाते हैं। उनको जंगलकी झाड़ियों और अनेक प्रकारकी और लकड़ीसे भर देनेके बाद अग्नि लगा दी जाती है।

अग्निको अच्छी प्रकारसे प्रज्वलित हो जानेके बाद बाजीगर लोग उसपर दौड़कर अपना तमाशा दिखलाते हैं।

ऐतिहासिक विवरण

प्राचीन समयसे भारतवर्षमें ही नहीं बल्कि बहुतसे विदेशोंमें भी इस प्रथाका प्रचार था। अंग्रेजोंके प्रसिद्ध कवि फ्रेज़र ने अपनी 'गोल्डन बो' नामक पुस्तकमें इसका विवरण दिया है। उसके उपरान्त खोज करनेपर ऐन्ड्र्यू लेनाकी 'धर्म और चमत्कार'की पुस्तकमें भी इस विषयपर दृष्टान्त पढ़नेमें आते हैं। भारतवर्षमें तो यह साधारण और प्राचीन प्रथा है। अनेक स्थानोंमें इस सम्बन्धमें लिखे हुये दृष्टान्त मिलते हैं।

वैज्ञानिक खोज

वायुयानके प्रथम जन्मदाताओंमेंसे अमरीकाके स्मिथ-

स्थोनियन विद्या केन्द्रके प्रोफेसर लैंगलेका नाम प्रसिद्ध है। उन्होंने सबसे प्रथम इस अग्नि भ्रमणको टहिटि द्वीपमें देखा था। उनके सामने उस द्वीपके बाजीगरने सात गज लम्बा, तीन गज चौड़ा और घुटने बराबर गहरा एक चौकोर गड्ढा खोदकर लकड़ी और दो सौ पत्थरोंसे उसको भर दिया। पत्थर ऐसी बैसाल्ट-नामक मिट्टीके थे जिसमेंसे कि पानी चू-चूकर नीचे जा सकता था। इन पत्थरोंमें प्रत्येक का बोझ २०-४० सेर तक था। प्रज्वलित करनेमें जब वह लाल अंगारा हो गये तब एक पुरुष जोकि देखनेमें बहुत बड़ा विद्वान हाथ शक्तिशाली मालूम होता था निकलकर आया। अग्निको जोड़कर उसमें कूद गया और उसमें दौड़ता भागता रहा। प्रोफेसर साहबको आश्चर्य हुआ और एकाएक उनके मस्तिष्कमें अपनी वैज्ञानिक कलाका वहाँपर उपयोग करनेकी सूझी। तमाशा समाप्त होनेपर जब पत्थर ठंडे हो गये उन्होंने उनमेंसे एक दो पत्थर उठाये और उनकी परीक्षा की। वह पत्थर तापके कुचालक थे। अधिक परीक्षा करनेपर उन्होंने मालूम किया कि गड्ढेमेंसे निकाले हुये गरम अंगारे पत्थर देखनेमें ही इतने लाल मालूम होते थे पर वास्तवमें ऐसा न था। पानीमें डालनेपर उन्होंने सिर्फ १३ मिनिट तक पानीको उबलता हुआ रक्खा। प्रोफेसर साहब उन पत्थरोंको अमरीकामें प्रसिद्ध वाशिंगटनके विश्वविद्यालयमें ले गये और वहाँपर पत्थरोंको फिरसे गरम करके उन्होंने मालूम किया कि वह १२००° फारनहाइटपर द्रवके रूपमें परिणत हो जाते हैं।

इनके उपरान्त प्रोफेसर लोवेलने जो कि एक प्रसिद्ध-सौर जगतके विद्वान थे इस विद्याको जापानमें देखा। वहाँके बाजीगरने एक १२ फुट चौड़ा, १८ फुट लम्बा गड्ढा खोदकर कोयलेसे भर दिया। जब कोयले लाल हो गये, तब बाजीगर महाशय अपने स्थानसे उठकर अग्निके किनारे खड़े हुये और एक शक्तिशाली देवताके समान फूक मार कर अपने होठोंको बार-बार चबानेके बाद उसमें कूद पड़े।

भारतवर्षमें चिंगलापनके ज़िलेमें एक बार १८ मनुष्योंने इस खेलमें भाग लिया। इन्होंने एक गड्ढे १६×१२×४ फुट को लकड़ीके कुंदोंसे पाटकर आग लगा दी। और फिर नङ्गे पैरोंसे सिर्फ शरीरमें एक भीगी हुई धोती पहनकर आगमें कूदकर तमाशा दिखलाया। और स्थानोंके बाजीगर अपने कुल शरीरको एक प्रकारके पेड़की पत्तियोंके रससे भिगोकर इस खेलमें भाग लेते हैं।

जेसोबियाहने इसको देखकर नेटाल देशमें ऐसी ही नकलकी। उसके साथ उसके बहुतसे योरूपवासियों ने भी ऐसा ही किया। परन्तु उन सबने भीगे कपड़े पहनकर इस खेलमें भाग लिया। और वे चलनेमें सफल रहे। वास्तवमें ऐसा हुआ कि पानी ही अग्निसे भाप बना और अग्नि शरीरसे न मिली। इस कारणसे अग्निका प्रभाव शरीरपर बिल्कुल न होनेसे वे लोग सफल रहे।

सेनफ्रान्सिस्कोके रिचर्ड मार्टिनकी इसमें खोज

उन्होंने एक तमाशेमें देखा कि कारीगरोंके मुखियाने अपने हाथमें पत्तियोंकी एक लम्बी शाख ली और पत्थरोंको जो गरम हो रहे थे बार-बार उलटा किया। इससे प्रोफेसर साहिबको सन्देह हुआ। उन्होंने परीक्षा करके यह मालूम किया कि पत्थर सब बराबर गरम नहीं होते हैं। बहुतसे पत्थर कम गरम थे और उनपर ही वह मुखिया महाशय अपने पैर रखते हुये चलते थे।

इंगलेण्डकी प्राकृतिक बातोंमें खोज करने वाली कमेटीने इस विषयको अपने हाथमें लिया और इस विद्यासे निपुण बहुतसे बाजीगरोंको परीक्षाकी।

आगमें चलनेके जूते

सबसे प्रथम भारतवर्षके एक विख्यात बाजीगर खुदाबख्शको सूत लिपटाकर परीक्षा ली। जब कि पैरोंके चारों ओर सूत लपेटकर आगमें चला जाता है तब ऐसा देखा गया कि खाल आगसे झुलस गई। कारण यह है कि पैरका तापक्रम सूतके तापक्रमकी अपेक्षा कम रहा और इसलिये पैर जल जानेके स्थानपर झुलस ही गया। इनको देखकर कमेटीके कार्य्यकर्त्ताओंने केलिकोके सूतसे लिपटे हुये लकड़ीके जूते बनवाये और उनको पहनकर वह प्रसन्नतापूर्वक आगमें चल सकते थे।

हेरी प्राइस नामक वैज्ञानिककी खोज

आप अपने पूर्वज वैज्ञानिकोंको इस विषयकी खोजका अध्ययन करके और तदुपरान्त स्वयं भी संबन्धमें काम

करनेके बाद निम्नलिखित परिणामोंपर पहुँचे :—

(१) आग जो काष्ठ या पत्थरको जलानेसे उत्पन्नकी जाती है एकसी नहीं होती। इससे यह लाभ होता है कि निपुण खिलाड़ी उनहीं स्थानोंपर अपना पैर रखता है जहाँपर कि कम आग होती है।

(२) पूर्व वैज्ञानिकोंका यह विचार कि जलकी बूंदें खालपर रह कर लाभ पहुँचाती हैं अशुद्ध था।

(३) बाजीगर लोगोंका यह कथन कि हमारी यह आत्मिक शक्तिका बल है बिल्कुल ही अविश्वसनीय है।

(४) इस कुलका रहस्य यह है कि लकड़ीमें आग बहुत धीरे-धीरे आगे बढ़ती है जिसके कारण लकड़ी जिसका एक सिरा लाल गरम हो रहा है दूसरे सिरेसे हाथके द्वारा पकड़ी जा सकती है। इससे यह सिद्ध होता है कि लकड़ीमें आग बहुत धीरे-धीरे आगेको बढ़ती है। ऐसा होनेसे आगमें पड़े हुये वह लकड़ीके टुकड़े जो कम गरम होते हैं पैरपर कुछ असर नहीं करते।

(५) बाजीगरकी निपुणता यही है कि वह इन कम गरम लकड़ीके टुकड़ों को पहचान कर उन्हीं पर अपना पैर रक्खें।

(६) अन्तिम और मुख्य बात यह है कि अग्नि शरीर-से बहुत ही थोड़े समयके लिये लगती है, इसी कारणसे आगमें दौड़कर चलना धीरे धीरे चलनेकी अपेक्षा आसान है। वैज्ञानिक दृष्टिसे यह जाना गया है कि अग्निका शरीर पर इतना प्रभाव नहीं होता है जितना तापक्रम का। अग्नि देखनेमें ही लाल अंगारेके समान मालूम होती है परन्तु वास्तवमें उसका तापक्रम कम होता है और इस लिये कारीगरके लिये इतनी निपुणताकी आवश्यकता नहीं है जितनी कि हिम्मतकी। एक साधारण पुरुष जिसमें कि आगके कूदनेकी हिम्मत है कुशलतासे आगमें चल सकता है।

क्या हम अपने लिये स्वयं विष बनाते हैं ?

[अनुवादक—श्री राधानाथ टण्डन बी० एस-सी०, एल० टी०]

अपनेको स्वस्थ तथा रोग रहित रखनेकी रीतियों तथा द्वारोंके ज्ञानकी सर्व-साधारण मांग निस्सन्देह हमारी अर्वाचीन कालकी उन्नतिके विशेष आशाजनक चिन्होंमेंसे एक है। यह मांग शीघ्रता सहित बढ़ रही है। वैद्यक ज्ञानका वह आवरण जो इसको किसी समय ढंके हुये गुप्त रक्खे था अब छिन्न-भिन्न कर दिया गया है। हम आशा करते हैं कि ऐसा सदाके लिये हो गया है। जिस प्रकार नागरिक नियमोंकी अज्ञानता उनके उल्लङ्घनमें अक्षम्य है उसी प्रकार स्वास्थ्यके नियमोंकी अज्ञानता भी उतनी ही दण्डनीय है। सभ्य जनताका यह धर्म है कि वह ऐसे ज्ञानको प्राप्त करे जो उसको अपने शारीरिक यंत्रोंको भलीभांति तथा अल्प व्ययमें चलानेके उपयोगी बनावे। मैं इस बातको आवश्यकीय भी समझता हूँ कि लोगोंको वैद्यक सम्बन्धी उन सब नवीन बातोंसे भिज्ञ होना चाहिये जो हमारे स्वास्थ्यकी रक्षासे सम्बन्ध रखते हैं, वरना मनुष्यमात्रको उनके साम्भविक लाभोंका एक भाग भी लाभ होना कठिन है।

अपने इस लेखमें मेरा उपर्युक्त बातोंके कहनेका कारण यही है कि मैं रोगके उत्पादक कारणके एक महत्त्व पूर्ण आधुनिक विचारके सम्बन्धमें लिखने जा रहा हूं अर्थात् (कीटाणुओंका) "केन्द्रिक या फोकल इन्फेकशन"। इन शब्दोंसे आजकल अधिकतर लोग भिज्ञ होंगे यद्यपि अधिकांश इनके आशयको पूर्णरूपसे समझनेमें, अथवा इस बातका ज्ञान करनेमें कि केन्द्रिक इन्फेकशन ही अधि-कांश रक्षायोग्य अस्वस्थताके उत्तरदायी हैं, असमर्थ हों।

अदृश्य बैरी

यह एक साधारण बात है कि हमारे शरीर पर निरन्तर अदृश्य बैरियोंका आक्रमण होता रहता है—हम इनको कीटाणु व अणुवीक्षणीय कहते हैं—हमारा

शरीर निरन्तर उनके विरुद्ध युद्ध करता रहता है। यदि कीटाणु विषैले हुये और शरीरके रक्षक निर्बल, तो कीटाणुओंकी संख्या बढ़ जाती है। और वे एक ऐसे विषका प्रादुर्भाव करते हैं जो शरीरको भिन्न प्रकारसे हानि पहुँचाता है और इससे एक विशेष रोग उत्पन्न हो जाता है। कभी-कभी ये कीटाणु हमारे रक्त-प्रवाह पर सीधे ही आक्रमण करते हैं, जैसा एक सैप्टिक व आगसे जले घावमें हो जाता है और कभी-कभी वे किसी ऐसे तन्तु व शरीरके अङ्ग पर आ बैठते हैं जो अल्प समयके लिये निम्नश्रेणीकी जीवनावस्थामें हों और वहाँ सन्तान-वृद्धि द्वारा फैलकर अपना कुप्रभाव पैदा करते हैं—स्थानीय तथा नियमबद्ध रूपसे। कीटाणुओंके आक्रमणके ऐसे ही वृत्ताकार क्षेत्रके लिये केन्द्रिक इन्फेकशन शब्दोंका व्यवहार किया जाता है। साधारण भाषामें ठीक-ठीक समझानेके लिये इन्फेकशनको हम एक लघु, तथा विषैली फैक्टरी कह सकते हैं जिसके पदार्थ निरन्तर अज्ञानावस्थामें रक्त-प्रवाहको गन्दा करते रहते हैं, और जो शरीरके और अङ्गोंमें रोगका प्रादुर्भाव कर सकते हैं।

केन्द्रिक इन्फेकशनके अधिकांश उदाहरणोंमें जो रोग हो जाता है वह नीची श्रेणीके प्रकारका है, अर्थात् इनमें कीटाणु अधिक विषैले नहीं होते और इसके परिणाममें दृष्टिगोचर चिह्नकी, जैसे दर्द तथा ज्वर—जैसा बहुधा कीटाणुओंके रक्त प्रवेशसे हो जाया करता है—अविद्यमानता रहती है। अधिक दिनों तक मरीज इस हानिकारक कीटाणुकी वेगतासे पूर्णतया अनभिज्ञ रहता है, परन्तु क्रोनिक विषका प्रभाव अवश्य होता है। शरीरके समस्त कोषोंकी जीवन-क्रिया परिणाम-स्वरूप कम होती जाती है और वे आसानीसे और रोग-कीटाणुओंके शिकार बन जाते हैं। चुल्लिका ग्रन्थि जो शरीरके विषके विनाशमें एक महत्वपूर्ण भाग लेती है, स्वयम् प्रभावित हो जाती है और परिणाम-स्वरूप विष और एकत्रित हो जाता है। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि कुपोषण इस भाँतिके कीटाणुसे पैदा हुए रोगको बढ़ानेमें समर्थ है तथा इसके कुपरिणामोंको बढ़ा देता है।

यद्यपि शरीरके किसी भी अङ्गमें कीटाणु प्रवेशकर सकते हैं तथापि अधिकतर साधारण स्थान इनके प्रवेशके ये हैं:—दन्त, जबड़े, मसूड़े, टान्सिल, वायुकोष्ठ अथवा नासिका और कर्णसे सम्बन्ध रखने वाली नसें (मैस्टाएड कोष), उत्पादन इन्द्रियाँ तथा अन्नप्रणाली, एपेंडिक्स सहित। इन अङ्गोंमें से किसीमें रोगका प्रादुर्भाव स्थानीय हानि करनेके अतिरिक्त समस्त तन्तुओंके स्वास्थ्यके लिये स्थाई रूपसे हानिकारक है, और इस कारणसे पैदा हुये रोगोंके खानेमें और रोगोंके अतिरिक्त ऐसे अंग-भंग करने वाले रोग भी हैं, जैसे क्रोनिक, रीवमैटिज़्म (पुराना गठिया रोग), निवरोटिस, अर्नामिया, पेटकी बीमारियाँ, तथा चक्षु-ज्वलनके अन्य रूप।

केन्द्रीय इन्फेकशनके अर्थके इस सैद्धान्तिक विचारसे अब हम दन्त इन्फेकशनके एक विशेषकर साधारण उदाहरणको लेकर एक प्रयोगात्मक विवेचनकी ओर आकृष्ट होते हैं। यह निस्सन्देह केन्द्रिक इन्फेकशनोंका एक नमूना है। दन्त-विनाश तथा पायरिया, जैसा प्रत्येक व्यक्तिको ज्ञात है, विशेषकर सभ्यताके पदार्थ भक्षण स्वयम्भवोंके ही परिणाम-स्वरूप हैं। ऐसा कैसे हो जाता है ? इसीपर विचार करना है। अधिकांश मनुष्य कोमल, मीठा, वा मांडीय पथ्य जिनके ज़र्रे दन्तोंके बेडौल पृष्ठोंपर चिपक जाते हैं, अधिकतासे खानेके आदी हो जाते हैं। यदि दन्त पूर्ण रूपसे स्वच्छ नहीं किये गये, चिपके हुये खाद्य पदार्थके ज़र्रे जम जाते हैं तथा इसके परिणाम स्वरूप हमारे सर्वत्र विद्यमान कीटाणुओंकी वृद्धिके लिये उपयुक्त शयनगृहोंका निर्माण हो जाता है। इनकी क्रियाओंके परिणाम-स्वरूप अम्लोंका प्रादुर्भाव हो जाता है जो दन्तके कठोर इनेमलको खा जाते हैं तथा खोदकर एक गढ़ा कर देते हैं जो अन्तको दन्तके भीतर ही भीतर दन्तके गूदे तक पहुँच जाते हैं।

कीटाणुओंके झुण्डके झुण्ड विनष्ट व केरीअस दंतपर आक्रमण करते हैं और कष्टदायक जलनका प्रादुर्भाव करते हैं जिसको हम 'टूथएक' कहते हैं। नियमानुसार यह कष्ट एक व दो दिन में दब जाता है और कारण कि अधिकांश लोग किसी दंत रोगके डाक्टरके पास जानेसे हिचकते हैं, यह अवस्था भूल सी जाती है जिसका परिणाम स्वास्थ्यके लिये भयानक है। कारण कि कीटाणु दन्तके जड़ों तक शीघ्र पहुँचजाते हैं, और वहाँ सूजन पैदा कर देते हैं जो अन्तको निकटके जबड़ेकी अस्थि तक पहुँच जाती है।

अब ऐसी सूजन गुप्त होते हुए भी साधारणतया कष्टरहित होती है, पर तो भी यह एक स्थानीय इन्फेकशन है। शरीरके अन्दरकी एक विषैली फैक्टरी जो चुपके चुपके स्वास्थ्यको बिगाड़ रही है।

गम सेपसिस व मसूड़ रोग

दन्त विनाशसे निकटतम मिलता हुआ तथा स्थानीय इन्फेकशनके परिणाम-स्वरूप लगभग समरूपसे महत्व रखता हुआ मसूड़ रोग व पायरिया है। खाद्य पदार्थका जमाव बना रहता है तथा अपूर्ण रूपसे उसकी स्वच्छता, विशेषकर यदि यह बातें मुखसे श्वांस लेनेसे सम्बन्ध रक्खें, साधारणतः पायरिया रोगके प्रादुर्भाव कर देनेके लिए पर्याप्त हैं। टारटरका जमाव इसको और बढ़ा देता है, जबकि छुद्र श्रेणीका पोषण इसके लिए बहुधा पहले ही से मानी हुई बात है। सूजन उष्णता, तथा मसूड़ोंके किनारेका चमकीला रूप इस रोगके प्रथम चिन्ह हैं। कुछ समय पश्चात् मसूड़ोंपर अंगुलियोंके दबावसे मसूड़े और दन्तके बीच अल्प रक्त तथा पीला पदार्थ निकल आता है। मसूड़े सिकुड़ जाते हैं, दन्तोंकी जड़े दिखाई पड़ने लगती हैं, और तब कीटाणुका आक्रमण होता है और वे उसके अस्थि साकटोंको खुरेद डालते हैं जिससे वे अन्तको गिर जाते हैं। इसीबीचमें स्वास्थ्यको बड़ी हानि पहुँच सकती है जो दन्तकी हानिसे कहीं अधिक परिणामवाली है। मसूड़ोंमें विष बनता है, तथा लार वह और खाद्य पदार्थोंसे संयोगकर अन्त प्रणालीमें पहुँच जाता है और वहाँ बहुधा ज्वलन तथा फफोलोंका प्रादुर्भाव कर देता है। वे रक्त-प्रवाहमें भी प्रवेश कर जाते हैं जिससे मुख्य इन्द्रियोंका उचितरूपसे कम धीमा पड़ जाता है और जिससे कभी-कभी विशेष रोगका उत्पादन होजाता है।

यहाँ यह बतला देना भी उपयुक्त है कि साधारण स्वास्थ्यपर स्थानीय इन्फेक्शनोंका, शरीरके चाहे जिस स्थान पर वे हों, क्या प्रभाव पड़ता है। इस रोगसे पीड़ित व्यक्ति अपनेको पूर्णरूप से ठीक-ठीक स्वस्थ प्रतीत करते हैं। उनमें शक्ति कम हो जाती है तथा काम व खेल कूदके लिए मन नहीं चाहता। उनको भूख भी कम लगती है और वे विशेषरूप से सुस्त पड़ जाते हैं। वे शक्ति प्रदान करनेवाले पदार्थके खानेका ज्ञान प्रतीत करने लगते हैं तथा इस बातका कि डाक्टरको इस बातकी सूचना भी अवश्य देनी चाहिए। इन चिन्होंके अतिरिक्त यदि और कोई चिन्ह विद्यमान नहीं है तो स्थानीय इन्फेकशनके कष्टग्राही भाग्यवान हैं। तथापि अनेक उदाहरणोंमें सम्भवतः किसी पूर्वसे ही विद्यमान चोट व रोगके कारण विशेष इन्द्रियाँ व तन्तु रोग ग्रसित हो जाते हैं और गठिया रोग जैसे लम्बेगो, कठोर तथा कष्टदायी जोड़ें तथा न्यूराइटिस अनीमिया, गालब्लैडर ज्वलन, पेट व अंतड़ियोंके फफोले तथा आयरीटिस (दन्तुरोग) उसके कष्टदायी परिणाम हो सकते हैं। स्थानीय इन्फेक्शनोंका महत्वपूर्ण भाग न केवल शारीरिक रोगके उत्पादनमें ही है, वरन् मानसिक रोगके अल्प रूपोंमें भी उनका भाग है-एक ऐसी बात तो आश्चर्य योग्य नहीं है यदि हम इस बातका विचार करें कि हमारे मस्तिष्कके कोष उन विषोंके जो हमारे रक्तके साथ भ्रमण कर रहे हैं कितने ज्ञानशील हैं।

अब मैं केन्द्रीय इन्फेकशनके कारणोंके सम्बन्धमें संक्षेपसे वर्णन करूँगा। नासिका कटाहँ रोगके सम्बन्धमें, विशेषकर यदि यह क्रोनिक हो, इन्फेक्शनकी केन्द्रियोंका उत्पादन चेहरेके सहायक वायुकोषोंमें तथा खोपड़ीके आधार पर हो सकता है। इन्फेक्शन नासिका द्वारा वायुकोषोंमें प्रवेश कर जाता है जिससे म्यूकस झिल्लीमें जलन पैदा हो जाती है और जो शनैः-शनैः क्रोनिक रूप धारण करता है और जिसको उखाड़ना कठिन हो जाता है। ठीक इसी प्रकार एक मध्यकर्ण इन्फेक्शन मैस्टाएड वायुकोषों तक फैल सकता है, जिससे कभी-कभी एक तीव्र मैस्टाएड ज्वलनका प्रादुर्भाव हो जाता है, परन्तु जिससे बहुधा एक लघु रूपका ज्वलन पैदा हो जाता है जिसको केन्द्रीय इन्फेक्शन कहना चाहिए। मध्यकर्ण रोग बहुधा रोगग्रसित टान्सिलों तथा एडिनायडोंसे हो जाता है, जो स्वयम् केन्द्रीय इन्फेक्शनके साधारण द्वार हैं। टान्सिलोंके सम्बन्धमें बार-बार सोरथ्रोटोंके होनेसे इस बातका सन्देह होना चाहिये कि यह अंग क्रोनिक रूपसे रोगग्रसित है, यद्यपि वे देखनेमें स्वरूप जान पड़े। क्रिप्टके प्रकारकी बनावटसे टान्सिलोंमें कीटाणु शीघ्र आ बैठते

हैं और दूरकी इन्द्रियोंके लिये इन्फेकशनके द्वारका कार्य करते हैं। मूत्र तथा उत्पादक इन्द्रियाँ कीटाणुओंको अनेक अवकाश प्रदान करती हैं तथा इन अंगोंमें केन्द्रीय इन्फेकशन जैसे प्रमेहके कीटाणुओंका इन्फेकशन-साधारणतया अधिक है। उत्पादन-मूत्र संस्थानके अल्प भागमें प्रमेहके कीटाणुओंके केन्द्रीय इन्फेकशनसे, उदाहरणार्थ एक कठोर रूपकी गठियाका प्रादुर्भाव हो जाता है। अन्तमें अन्य प्रणाली के उस भागका वर्णन करूँगा जो संग्रहणी रोगसे ग्रसित हो जाता है, कारण कि इसमें उस इन्फेकशनके केन्द्रके लिये बृहत रूपसे स्थान है जो हमारे अनेक रोगोंके उत्तर दायी हैं। यहाँ यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि इस प्रकारका केन्द्रीय इन्फेकशन कदाचित् सब इन्फेकशनमें विशेषकर साधारण है।

इलाज और रक्षा

कीटाणुओंके केन्द्रीय इन्फेकशनोंसे कैसे सामना करना चाहिये ? अब इस विषयपर हमको चर्चा करना है। प्रथम जब हम इस बातका स्मरण करते हैं कि अनेक केन्द्रीय इन्फेकशन गुप्त और कष्टहीन होते हैं तब उनकी खोजमें बहुधा कठिनाईका सामना करना पड़ता है। नियमानुसार जब ऐसी अवस्थाका सन्देह हो तब वैद्यक विषयोंके भिन्न विशेषज्ञोंमें भी पूर्णज्ञाताओंसे सम्मति लेनी चाहिये (इस कारण कि एकसे अधिक केन्द्र विद्यमान हो सकते हैं) और यह भी आवश्यकीय है कि इसके चिह्नोंका पता रेडियो लेखसे भी कभी-कभी लगाया जाय।

रोगका कारण ज्ञात हो जानेपर फिर क्या करना चाहिये ? इस प्रश्नका उत्तर वैद्यक इलाजसे रोगित तन्तु व अंगको पूर्ववत् स्वस्थ बनानेकी सम्भावना पर निर्भर है। यदि ऐसा न हो सका और कमसे कम दन्तोंके संबन्धमें ऐसा अधिक हुआ करता है तो ऐसे समय जर्राहीसे कार्य लेना युक्तिसंगत है, और जितना ही शीघ्र यह किया जाय उतना ही उत्तम। उदाहरणार्थ, गठिया रोगके जड़ पकड़ लेने तक प्रतीक्षा करना और तब इस बातकी आशा करना कि केन्द्रीय इन्फेकशनके जड़से दूर हो जानेसे अवस्था चंगी हो जायगी, एक व्यर्थ आशा है। यह तो ऐसा ही हुआ जैसा कि अश्वके भाग जाने पर अस्तबलके कपाटोंको बन्द करना। उस इन्फेकशन केन्द्रके लिये यदि उन वैद्यक उपायोंसे जो साधारण स्वास्थ्यकी वृद्धिके लिये हों शीघ्र वशीभूत न किया जा सके तो शीघ्र जड़से उखाड़ देने वाले अति उत्तम इलाजकी आवश्यकता है। रुग्ण दन्तों को उखाड़ डालना चाहिये। रुग्ण टान्सलोंको दूर कर देना अथवा मैस्टाएड कोषोंकी जर्राही ज्ञान द्वारा खुले छोड़ देना तथा बहा देना चाहिये।

क्या केन्द्रीय इन्फेकशनोंसे बचाव किया जा सकता है ? निस्सन्देह। दन्त केरीरोग तथा मसूड़ सेप्टिक रोगसे उपयुक्त पथ्य तथा स्वास्थ्य-रक्षा-सम्बन्धी शिक्षा द्वारा दूर रखे जा सकते हैं। अपने शरीरको अच्छी तरह रखने, मुँह तथा गलेके सम्बन्धमें स्वास्थ्य-रक्षा-सम्बन्धी नियमों-का सावधानीसे पालन करने तथा मुँह द्वारा श्वांस लेनेके स्वभावको परित्याग करनेसे हम टानसिलोंको स्वस्थ होनेसे बचा सकते हैं, और जितना हम एडिनायडोंकी रक्षाकर सकें उतना ही मध्य कर्ण सम्बन्धी रोग तथा मैस्टायड इनफेक-शनोंको दूर रख सकते हैं। अन्य प्रणालीका केन्द्रीय इन्फेकशन उपयुक्त पथ्य और व्यायामके उपयुक्त व्यवहार द्वारा तथा अतड़ियोंके प्रति दिवसके स्वभावोंका ध्यान रखनेसे दूर किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त समय समयपर डाक्टरों तथा दन्तशास्त्र-ज्ञाताओंसे मिलते रहना चाहिये। समयानुसार वैद्यक परीक्षा करानेसे सब केन्द्रीय इन्फेकशनका समयके पूर्व ही पता लग सकता है तथा अस्वस्थतासे बचाव किया जा सकता है, यदि वैद्यक नियमोंका पालन शीघ्र किया जाय।

कुछ आयुर्वेदिक औषधियाँ

[ले०—श्री इन्द्रसेन आयुर्वेदालंकार, गुरुकुल कांगड़ी]

आयुर्वेदके सेवियोंसे यह बात छिपी हुई नहीं है कि कई औषधियाँ अन्यान्य नामोंसे प्रयुक्त होती हैं। ऐसी दशामें क्या करना चाहिए ? यह प्रश्न होता है। इसी प्रश्नके उत्तर देनेकी दृष्टिसे यह छोटा सा निबन्ध लिखा गया है।

ब्राह्मी बूटी

आयुर्वेदमें ब्राह्मी बूटी बड़े महत्व की चीज़ है। स्मृति, तथा मेधाकी वृद्धि करने वाली और अपस्मार आदि रोगोंको दूर करने वाली है। अनेकों योगोंमें इसका प्रयोग होता है, जैसे ब्राह्मी घृत, ब्राह्मी तैल, सारस्वतारिष्ट, आदि। इस समय जो बूटियाँ ब्राह्मीके नामसे प्रयुक्त होती हैं वे दो हैं। देहरादूनके औषधि-विक्रेता, हिमालय औषधिडिपो, औदीच्यजी, जेईवाला आदि, और हरिद्वारके औषधिविक्रेता, जैसे गुरुकुल कांगड़ी, असवर्ग बेचनेवाला (कनखलका), ऋषिकुल और ऋषिकेष आदिके औषधिविक्रेता सब 'हाइड्रोकोटाइल-एशियाटिका' नामक बूटीको ब्राह्मीके नामसे बेचते हैं। मैंने यह लैटिन नाम इसलिए दिया है कि यह वैज्ञानिक नाम है और इससे एक ही बूटीका ग्रहण होता है। वनस्पति-शास्त्रके वेत्ता इसी नामका प्रयोग करते हैं। हाइड्रोकोटाइल एशियाटिका (ब्राह्मी) के पत्ते वृक्काकार और किनारों पर किंगरीदार होते है। यह वनस्पति वनस्पतिशास्त्रकी दृष्टिसे शतपुष्पादि वर्गकी है, अर्थात् उसी नैसर्गिक वर्ग की है जिसमें शतपुष्पा, गाजर, सोया, धनिया, जीरा, अजमोदा, अजवायन प्रभृति आते हैं।

बंगालमें सब औषधि-विक्रेता एक और ही औषधिको ब्राह्मीके नामसे बेचते हैं, जिसे लैटिनमें हरपेस्टिस-मोनीरा कहा जाता है। हम उत्तरी भारतमें इस नामकी औषधिको जलनीमके नामसे पुकारते हैं। कहनेका तात्पर्य यह है कि उत्तरी भारतकी जलनीम नामक औषधि पूर्व भारतकी ब्राह्मी है। और पूर्वभारत की मण्डूक पर्णी उत्तर-भारतकी ब्राह्मी है। चूँकि बंगालमें हाइड्रोकोटाइल एशियाटिकाको मण्डूकपर्णी कहते हैं, कर्नल चोपड़ाने अपनी पुस्तक 'इण्डिजिनस ड्रग्स ऑफ इण्डियामें बंगाल वाला मत अपनाया है। इसका कारण यह है कि चोपड़ा महोदय बंगालमें रहते हुए अपना कार्य कर रहे हैं। उनकी पुस्तकमें हरपेस्टिस मोनीराको ब्राह्मी लिखा गया है। और हाइड्रोकोटाइल एशियाटिकाको मण्डूकपर्णी। बंगाली भाषामें हाइड्रोकोटाइल एशियाटिका का नाम ठोलकुरी है और हरपेस्टिस मोर्नीराका नाम ब्रिह्मीशाक है।

इस समय यह निश्चय करना तो बड़ा मुश्किल है कि कौन-सी असल ब्राह्मी है। क्योंकि कुछ वैद्य एक औषधिके पक्षपाती हैं तो दूसरे दूसरी औषधिके। और इस बातका निर्णय अगर इतना आसान होता तो अभीतक आयुर्वेद महामण्डलने कर भी दिया होता। सबसे उपयुक्त बात यही है कि औषधि-विक्रेता अपने औषधि खरीदने वालोंको ठीक तौर पर बतावें कि वे क्या बेच रहे हैं। उदाहरणार्थमें बनारसकी किसी फार्मेसीको लिखता हूँ कि मुझे १ सेर ब्राह्मी भेज दीजिए। उस समय उस फार्मेसीको चाहिए कि या तो मुझसे पूछे कि कौन सी ब्राह्मी मुझे चाहिये अर्थात् हाइड्रोकोटाइल एशियाटिका, या हरपेस्टिस मोनीरा। और अगर नहीं भी पूछती है तो कमसे कम जो ब्राह्मी भेजी जाय उसपर लिखा हो कि इन दो मेंसे कौन सी ब्राह्मी भेजी जा रही है। इसी तरह आयुर्वेदके सब औषधि-विक्रेताओंको करना चाहिये। अगर किसी औषधि-विक्रेताको इस विषयमें कुछ पूछताछ करनी हो तो वह मुझसे गुरुकुल कांगड़ीके पतेपर कर सकता है। उत्तरके लिये उसे पोस्टल स्टाम्प साथ भेजना चाहिये।

इसी प्रकार कई आयुर्वेदिक फार्मेसियाँ ब्राह्मी तैल या ब्राह्मीघृत आदि बेचती हैं। या सारस्वतारिष्ट सारस्वत चूर्ण आदि बेचती हैं। उन सब प्रयोगोंमें जिनमें ब्राह्मी पड़ती है यह स्पष्ट लिखा होना चाहिये कि कौनसी औषधि ब्राह्मी नामसे डाली गई है। अगर इन दोनों औषधियोंका सम्मिश्रण डाला गया हो तो ऐसा लिखा होना चाहिये। सारांश यह है कि ब्राह्मी तैल या ब्राह्मी-

घृत आदि प्रयोगोंका इस्तेमाल करने वालेको ठीक-ठीक पता होना चाहिये कि वह कौनसी औषधिका (अर्थात् हाइड्रोकोटाइल एशियाटिकाका या हरपेस्टिस मोनीराका) बना हुआ तैल या घृत इस्तेमाल कर रहा है। इसी प्रकार औषधिका प्रयोग करवाने वाले वैद्यको पता होना चाहिये कि वह अपने रोगीको जिसको ब्राह्मीघृतका सेवन करा रहा है वह कौनसी ब्राह्मीसे तैयार किया गया है।

जब तक वैद्योंका ध्यान इन बातोंकी ओर नहीं जायगा तब तक औषधियोंकी गड़बड़ी दूर नहीं होगी और निश्चय आयुर्वेदकी उन्नतिमें एक बहुत बड़ा रोड़ा अटका रहेगा।

दुरालभा क्या है ?

अब दूसरी औषधि लीजिये

दुरालभा भी दो पौदोंका नाम है। किसी जगह दुरालभा या यवासक एलहागी मौरोरमको कहा जाता है। यह अकसर खेतोंमें लगी हुई मिलती है। इसके फूल गुलाबी लालसे होते हैं। यह औषधि-शिम्बी-वर्ग (लेगुमिनोसी) की है। इसका फूल मटर, चना पलाश, सेम प्रभृति वनस्पतियोंसे सादृश्य रखता है. अर्थात् लेगुमिनोसीमें भी ये पेपिलिओनेसी उपवर्गकी है। इसपर फलियाँ लगती है। इसकी डण्डियाँ काँटोंका रूप धारण करती हैं।

एक दूसरी औषधि है, उसका नाम फेगोनिया एरेबिका है। इसके फूल लाल नहीं होते, बल्कि फीके पीले सफेदसे होते हैं। सारी पंखड़ियाँ एक जैसी होती हैं। इस पर फलियाँ नहीं लगती हैं, परन्तु गोक्षुरकी तरहका फल लगता है। और यह औषधि गोक्षुरादिवर्ग (जाइगोफाइलेसी) की है। औषधि-गुणोंकी दृष्टिसे मेरी सम्मतिमें ये फेगोनिया एरेबिका ही असली दुरालभा है, पर औषधि बेचने वालोंको एलहागी मौरोरम आसानीसे बहुत मात्रामें मिल जाती है, अतः औषधि-संग्रह करने वाले उसे ही इकट्ठा करके दुरालभाके नामसे बेचते हैं। खैर, कुछ भी हो। कहनेका सारांश यही है कि औषधि-विक्रेताओंको औषधि बेचनेके समय औषधिके खरीदने वालेको स्पष्ट कह देना चाहिये कि वे क्या औषधि बेंच रहे हैं। अर्थात् फेगोनिया एरेबिकाको दुरालभाके नामसे बेंच रहे हैं या एलहागी मौरोरमको दुरालभाके नामसे बेच रहे हैं। खरीदने वालोंको भी चाहिये कि स्पष्ट लिखें कि वे क्या खरीदना चाहते हैं। इन दो में से किसको दुरालभाके नामसे खरीदना चाहते हैं। यदि कोई सज्जन इन दोनों प्रकारकी दुरालभाओंके विषयमें विशेषरूपसे पत्र-व्यवहार करके कुछ पता लगाना चाहते हों तो लगा सकते हैं।

पुनर्नवाके विषयमें मतभेद

तीसरी औषधि जिसके सम्बन्धमें मैं यहाँ लिखने लगा हूँ, वह पुनर्नवा है—ट्रायन्थीमा मोनोगीना, और ट्रायन्थीमा और पेण्टाण्ड्रा। ये दोनों औषधियाँ फिकोडी नैसर्गिक वर्गकी है। इन दोनोंका इकट्ठा करना सर्वथा स्वाभाविक है, क्योंकि दोनों बिलकुल एक जैसी ही हैं। पर इनके अलावा एक और औषधि है जिसका नाम बोरेविया-डिफ़्यूजा है। यह नीक्टोगिनी वर्गकी है। वस्तुतः यही असली पुनर्नवा है, क्योंकि मूत्रलादि गुण इसीमें विशेषतः उपस्थित हैं, और पुनर्नवा रिष्टादि प्रयोगोंमें इसीका उपयोग होना चाहिये। पर औषधि एकत्र करने वाले दोनों अर्थात् बोरेविया और ट्रायन्थीमाको एक जगह ही मिला जुलाकर इकट्ठाकर लेते हैं। ट्रायन्थीमा और बोरेविया दोनोंके पत्ते एक जैसे होते हैं। ट्रायन्थीमामें फूल पत्तोंके अक्षोंमें ही निकल आते हैं, पतली पतली दण्डिकाओं पर नहीं निकलते हैं। पर बोरेवियामें फूल पतली दण्डिकाओंपर निकलते हैं और रंगमें लाल होते हैं। दण्डिकायें भी रंगमें लाल होती हैं। यहाँ पर स्मरण रहे कि ट्रायन्थीमामें भी लाल और श्वेत दो प्रकारके फूलों वाले ट्रायन्थीमा पाये जाते हैं। खैर. कुछ भी हो। कहनेका मतलब तो इतना ही है कि औषधि-विक्रेताओंको ठीक-ठीक बताना चाहिये कि वे कौन सी औषधि पुनर्नवाके नामसे बेच रहे हैं या उपर्युक्त सब औषधियोंका मिश्रण बेंच रहे हैं। औषधि खरीदने वालोंको भी औषधियोंका कुछ ज्ञान-विशेष होना चाहिये। उन्हें पता होना चाहिये यह पुनर्नवा दो-तीन बूटियोंका नाम है, और क्या वे सब बूटियोंका मिश्रण चाहते हैं या इनमेंसे किसी एक बूटी विशेषको चाहते हैं।

आधुनिक भौतिक विज्ञानकी एक झलक

[ले० श्री० बी० एन० स्वरूप, एम० एस-सी, लैन्सडौन]

पश्चिमके प्रसिद्ध वैज्ञानिक श्रोडिंगर, हाईसेनबर्ग, डी ब्रागली और डिरेक आदिके पिछले दस-बारह वर्षोंकी खोजोंने भौतिक विज्ञानके इतिहासमें युग-परिवर्त्तनका कार्य किया है। इन महत्वपूर्ण खोजोंके प्रभावसे वैज्ञानिक जगतमें एक नवीन विचार-प्रवाहका प्रादुर्भाव हो गया है, जिसके अन्तर्गत कारण और कार्यका सम्बन्ध-विच्छेद होकर कारण जगतमें केवल 'सम्भावना'का ही साम्राज्य है। निश्चयात्मक ज्ञानके स्थानपर अनिर्णीत अनुमान ही रह जाता है। आइन्सटाइनकी खोजसे ही द्रव्य पदार्थ और शक्तिमें कोई अन्तर नहीं रहता, परन्तु अब कोई-कोई वैज्ञानिक जड़-चैतन्यके भेद-भावको मिटाकर जड़-सृष्टिमें चैतन्य-गुणकी स्थिति माननेपर उतारू हैं। इस नवीन विचार-शैली और द्रव्यके वास्तविक स्वरूपके विषयमें परम्परासे चले आने वाले विचारोंमें घोर प्रतिवाद है। इन नये सिद्धान्तोंकी आधार शिला ऐसे विचार तत्वपर अवलम्बित है जिनसे शिक्षित संसार अभी तक बिल्कुल अनभिज्ञ रहा है और इनकी व्याख्या शब्दों द्वारा पूर्णतया करना नितान्त असम्भव है। जिस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति दूरी तथा समयका ज्ञान अथवा अनेकानेक वस्तुओंकी पहचान इस संसारमें जन्म-धारण करनेके पश्चात् स्वयं कर लेता है इसी प्रकार भौतिक विज्ञानके नये सिद्धांतोंका तत्व-ज्ञान बहुत दिनोंके परिचय प्रयोग तथा अनुभव द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। प्रकृतिके मूल-तत्व सम्बन्धी नियम सांसारिक कार्य-संचालन किसी ऐसी सुगम रीतिसे नहीं करते कि उनकी कार्य प्रणालीका स्पष्ट चित्र मस्तिष्कमें खींचा जा सके, वरन् प्रत्येक प्राकृतिक घटनाकी तहमें इस प्रकार कार्य नियंत्रण करते हैं कि भरसक उद्योग करनेपर भी उनके वास्तविक रूपका ज्ञान नहीं हो सकता।

ब्रह्मांडके सारे पदार्थ परिमाणकी दृष्टिसे तीन भागोंमें विभाजित किये जा सकते हैं। पहले विभागमें ग्रह तारागण आदि हैं, जिनका औसत व्यास १० लाख मीटर या वैज्ञानिक शब्दोंमें $१०^{८}$ सेण्टीमीटर ले सकते हैं; दूसरे विभागमें वे सब पदार्थ हैं जिनको मनुष्य अपनी स्थूल ज्ञानेन्द्रियों द्वारा अनुभव कर सकता है, जैसे साधारण सांसारिक वस्तुयें। इनका औसत परिमाण ३ फुट या १०० सेण्टीमीटर के लगभग ले सकते हैं; तीसरे विभागमें वह अन्तर्जगत है जहाँपर मूल-तत्व-सम्बन्धी परमाणुओंका साम्राज्य है। इनका औसत व्यास $१०^{-८}$ सेण्टीमीटर या एक सेन्टीमीटरके १० करोड़वें भागके बराबर है। मनुष्य अपने स्पर्श, स्वाद देखने तथा सुनने आदिकी शक्तियों द्वारा केवल दूसरे अर्थात्, मानवी जगत्के पदार्थोंका ही ज्ञान भलीभाँतिकर सकता है। और हमारे सारे विचार-तत्व इसी मानवी जगत्के अनुभवोंसे सम्बन्ध रखते हैं। वैज्ञानिक चिरकालसे मानवी जगत्के अनुभवसिद्ध विचार तत्वोंको पहले तथा तीसरे विभागमें लागू करके बुद्धि और तर्क बल द्वारा शक्तिशाली यंत्रोकी सहायतासे ज्ञान प्राप्तिका उद्योग करते रहे हैं। इस उद्योगमें प्रशंसनीय तथा आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त हुई है, यह किसीसे छिपा नहीं है। अभी तक नक्षत्र-जगत्में ग्रह तारागण आदिकी गति तथा उनके व्यवहारोंको अध्ययन करते समय इन विचार-तत्वोंमें किसी परिवर्त्तनकी आवश्यकता नहीं पड़ी और न १९ वीं शताब्दीके अन्त तक परमाणु जगत्में ही किसी लौट बदलकी आवश्यकता जान पड़ती थी। परन्तु २० वीं शताब्दीकी खोजोंसे यह अनिर्वाद हो गया है कि मूल-तत्व सम्बन्धी कार्यक्रमको समझनेके लिये चिरपरिचित विचार-तत्वोंको तिलाञ्जलि देकर नवीन विचारोंको ग्रहण किया जावे।

विश्लेषण द्वारा पता लगता है कि समस्त सृष्टिकी रचना भिन्न-भिन्न प्रकारके अणुओंसे हुई है। तरल पदार्थोंमें यह अणु बड़ी तीव्र गतिसे इधर-उधर भागते फिरते हैं और आपसमें टक्कर खाने या बरतनकी दीवारोंसे टकरानेके कारण ही सीमाबद्ध रह सकते हैं। परन्तु ठोस पदार्थोंमें इन अणुओं की गति बड़ी ही संकुचित है। इन अणुओंका परिमाण बहुत ही छोटा है और अल्प शिक्षित पुरुषोंके लिए उसका अनुमान करना अत्यन्त ही कठिन है। यदि

एक घनइंच स्वर्णके टुकड़े को १० करोड़ बराबर भागोंमें विभक्त करें तो एक भागका परिमाण इन अणुओंके सदृश्य होगा। जब इन अणुओंका आगे विश्लेषण करते हैं तब मालूम होता है कि ये स्वयं दूसरे सूक्ष्म कणोंके सम्मिलन से बने हैं। इन सूक्ष्म कणोंको परमाणुके नामसे पुकारते हैं। अणुओं अथवा परमाणुओंका परिमाण इतना न्यून है कि उनको शक्तिशाली यंत्रोंकी सहायतासे भी देखना नितान्त असम्भव है; परन्तु परोक्ष प्रमाणों द्वारा तथा अनेकानेक युक्तियोंके प्रयोगसे उनकी गति, परिणाम, बोझ और अन्य गुणोंका ज्ञान निश्चय रूपसे प्राप्त हो चुका है। ये साधन इतने विश्वसनीय हैं कि इनके द्वारा पहुँचे हुये परिणामोंमें सन्देहके लिये स्थान नहीं रह जाता। अब सब पृथ्वीपर लगभग ९३ प्रकारके अणु बने हैं या दूसरे शब्दोंमें यह कहा जा सकता है कि सृष्टिकी रचना ९२ तत्वों द्वारा हुई है।

१९ वीं शताब्दीके अन्त तक यही मत दृढ़तासे प्रचलित था, परन्तु २० वीं शताब्दीके आरम्भमें ही लार्ड रदरफोर्ड और बोर इत्यादि वैज्ञानिकोंकी खोजोंसे यह स्पष्ट हो गया है कि परमाणु स्वयं कोई ठोस वस्तु नहीं है, वरन् प्रत्येक परमाणु दूसरे अधिक सूक्ष्म कणोंका संग्रह है। प्रत्येक परमाणु एक सूर्यमंडलके समान है, अर्थात् परमाणु एक कठोर गुठली केन्द्र और ऋणाणुओं द्वारा बना है। यह कठोर गुठली केन्द्र-स्थलपर सूर्यके समान स्थित है और उसके चारों ओर ऋणाणु ग्रहोंकी भाँति अपने अपने अण्डाकार वृत्तोंमें निरन्तर चक्कर लगाते हैं। भिन्न-भिन्न प्रकारके परमाणुओंमें चक्कर लगाने वाले ऋणाणुओंकी संख्या १ से ९२ तक है और गुठलियोंका बोझ भी अलग अलग है। किसी परमाणुका स्थान 'आवर्त्त, संविभागमें गुठली केन्द्र चारों ओर चक्कर लगाने वाले ऋणाणुओंकी संख्यासे ही निश्चित होता है।

जगन्नियंताकी सुन्दर सृष्टिमें केवल वाह्य आकाशमें ही करोड़ों सूर्यका बास नहीं, वरन् प्रत्येक छोटीसे छोटी वस्तुमें भी उसी प्रकारके अरबों सूर्य अपने ग्रह और उपग्रह समेत चमक रहे हैं। इस वैचित्र्यका यहीं अन्त नहीं; वर्तमान खोजोंसे पता लगा है कि अणुओंके मध्यमें स्थित गुठलीमें भी एक सुन्दर जगत् छिपा है। यद्यपि इस गुठलीके विषयमें यथेष्ट ज्ञान प्राप्त नहीं है, परन्तु यह सिद्ध हो चुका है कि यह गुठली भी सूक्ष्म कणों द्वारा ही बनी है। अब तककी खोजसे पता लगता है कि यह मूल तत्व सम्बन्धी कण चार हैं:— ऋणाणु, धनाणु, प्रोटोन, न्यूट्रोन। इन्हीं चारोंके भिन्न-भिन्न संख्यामें मिलनेसे सब प्रकारके परमाणुओंकी गुठलियाँ बनती हैं जिनके चारों ओर ऋणाणु भिन्न-भिन्न संख्यामें चक्कर लगाते हैं, इससे यह परिणाम निकलता है कि सारे ब्रह्मांडकी रचना ९२ अणुओं द्वारा नहीं, वरन् इन चार मूल-तत्व-सम्बन्धी कणों द्वारा हुई है, अर्थात् जिन कणोंका नाम परमाणु रक्खा है वे मूल-तत्व नहीं हैं और एक प्रकारका परमाणु दूसरे परमाणुके रूपमें बदला जा सकता है।

पुराने रसायनिक जिसका सुख-स्वप्न देखा करते थे वह आज पूर्णतया सम्भव है। साधारण धातुको बहुमूल्य धातुमें परिणत किया जा सकता है। ये प्रयोग प्रत्यक्ष रूपमें किये जा चुके हैं। इनसे यह न समझ लेना चाहिये कि पारेको स्वर्ण बनाकर व्यवसाय द्वारा लाभ उठाया जा सकता है। पहले तो यह कार्य अत्यन्त ही कठिन है, केवल अनुभवी वैज्ञानिक ही बहुत ही थोड़ी मात्रामें ऐसा कर सकते हैं, दूसरे, स्वर्ण-मूल्यसे लाखों गुना व्यय इस कार्यमें होगा। यद्यपि व्यवसायिक दृष्टिसे इसका अभी कोई मूल्य नहीं, परन्तु तत्व-ज्ञानकी दृष्टिसे यह खोज बड़ी ही महत्वपूर्ण है।

इन मूल-तत्व-सम्बन्धी कणोंके वास्तविक स्वरूपको जाननेका जब उद्योग करते हैं तब बड़ी ही कौतुहलपूर्ण बातें वैज्ञानिकोंके सन्मुख उपस्थित होती हैं। कुछ प्रयोगों द्वारा यह मूल-तत्व कणोंके रूपमें स्थित हैं, परन्तु दूसरे प्रयोग इस बातके पक्के साक्षी हैं कि यह लहरोंके रूपमें ही विद्यमान है। दृष्टान्तके तौर पर सी० टी० आर० विलसनके प्रयोग इस बातके पुष्ट प्रमाण हैं कि ऋणाणु, प्रोटोन आदिका अस्तित्व कण रूपमें है। इसके विपरीत जी० पी० थोम्पसन, डेविसन गेरमर और डेम्पस्टर आदि वैज्ञानिकोंके प्रयोग सिद्ध करते हैं कि यह मूलतत्व केवल लहरोंके रूपमें हैं, और सारी सृष्टि इन्हीं लहरोंका संगठित संग्रह है। द्वैतवादके बहुतसे उदाहरण हमको अपने जीवनमें मिलते हैं। यदि एक मुद्राको ऊपर उछाकर

फेंके तो मुँह (हेड) या पुच्छ (टेल) कोई भी भाग हमको मिल सकता है। कभी हम मुद्राके मुँहकी ओरसे देखते हैं, कभी पुच्छको ओरसे। दोनों ही रूप मुद्रामें विद्यमान हैं और यह द्वैतवाद केवल हमारे देखनेके ढंग पर निर्भर है और ऐसा प्रयोग भी सम्भव है कि मुद्राके दोनों रूप एक साथ ही देखे जा सकें। परन्तु इस द्वैत वाद जो साधारणतः हमको सांसारिक वस्तुओंमें मिलता है और मूल-तत्वोंके द्वैतवादमें बड़ा भेद है। पहले तो कण और लहरकी परिभाषायें ही एक दूसरेके प्रतिकूल हैं। कण एक सीमाबद्ध संगठित वस्तु है जो एक समय-विशेषमें एक स्थान-विशेषपर ही स्थिर रहता है और समय पाकर कणके आकारमें कोई परिवर्तन नहीं होता और न दो कण एक स्थान पर आनेसे एक दूसरेको किसी दशामें नष्ट ही कर सकते हैं। इसके विपरीत लहर सीमा-बद्ध न रहकर बहुत स्थानमें फैली रहती है और इसका आकार और विस्तार भी समय पाकर परिवर्तित होता रहता है और दो विपरीत लहर एक स्थानपर आकर एक दूसरेको लुप्तप्राय भी कर देती हैं। इससे स्पष्ट है कि एक ही वस्तुमें एक साथ कण तथा लहर दोनोंके रुप विद्यमान नहीं हो सकते। दूसरे, ऐसा प्रयोग करना असम्भव है जिससे मूल तत्वोंमें कण तथा लहर दोनों रूप साथ देखे जा सकें। इसके अनन्तर कुछ प्रयोग और भी अधिक आश्चर्यमें डालने वाले हैं।

बाईं ओरसे आकर एलक्ट्रोन ऋणाणु सीसेकी प्लेटपर गिरते हैं और छिद्र अ ब से निकलकर विलीमाइटके परदेपर गिरते हैं। यह प्रयोग करनेसे परदे पर प्रकाश तथा अन्धकारकी रेखायें दिखलाई पड़ती हैं जो इस बातका प्रमाण है कि वास्तवमें ऋणाणु लहरोंके रूपमें हैं। यदि ऋणाणु लहरोंके रुपमें हैं तो विस्तृत होनेके कारण दोनों छिद्र अ ब में से एक साथ निकलना चाहिये और यदि कण रुपमें हैं तो दोनोंमें से किसी एक छिद्रमें से
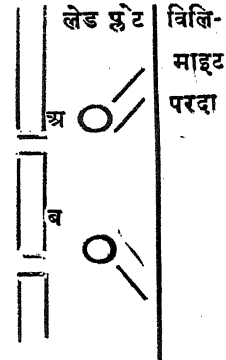
निकलता दीखेगा। ऋणाणुके लहर रुपकी पुष्टिके लिये जब यह देखते हैं तो पता लगता है कि ऋणाणु एक साथ दोनों छिद्रोंमें से नहीं निकलता वरन् केवल एक छिद्रमें होकर निकलता है और इस प्रकारके साथ ही परदे पर पड़ी हुई प्रकाश-अंधकारकी रेखायें भी मिट जाती हैं। परदे पर केवल दो प्रकाश बिन्दु अ, ब छिद्रोंके सन्मुख रह जाते हैं। इससे सिद्ध होता है कि देखनेका उद्योग करते ही ऋणाणु लहर रूपसे कण रूप हो जाता है। न केवल यह ही, वरन् अनिश्चित रीतिसे कभी अ कभी ब छिद्रसे निकलता है। जब ही इस प्रकार देखना समाप्त करते हैं तभी फिर प्रकाश और अंधकारकी रेखायें परदे पर पड़ने लगती हैं अर्थात् ऋणाणु फिर लहर रुपमें हो जाता है। ऊपरके प्रयोगसे यह पता लगता है कि मूल-तत्वोंका व्यवहार एक प्रेतात्माके समान है जो हमको अपने वास्तविक रूपका ज्ञान प्राप्त करनेका उद्योग करते देखकर ऐसा रूप बदलता है जो पहलेके सर्वथा प्रतिकूल है, अर्थात् मूल-तत्व निरन्तर यह यत्न करते हैं कि वैज्ञानिक उनका यथार्थ ज्ञान प्राप्त न कर सकें।

जलावन, भट्ठा और तापमापन

[ले० प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा]

दहनसे ताप उत्पन्न होता है। दहन आक्सीकरण क्रिया है। यह क्रिया इतनी तेज़ होनी चाहिये कि उससे पर्याप्त ताप उत्पन्न होकर तापक्रमकी वृद्धि करे। मिट्टीके बर्तनोंके पकानेमें जो जलावन इस्तेमाल होते हैं उनमें जलने वाली चीज़ें कार्बन, हाइड्रोजन और गंधक होती हैं और जलानेवाली चीज़ आक्सीजन। इस कारण जलावनों के जलानेमें पर्याप्त वायुका होना ज़रूरी है।

जब कार्बन पूर्णरूपसे जलता है तब वह कार्बन डायक्साइड बनता है। वायुकी कमीमें कार्बन मनाक्साइड बनता है। हाइड्रोजन जलकर पानी बनता है और गंधक सल्फर डायक्साइड। इन सब चीज़ोंके जलनेमें ताप उत्पन्न होता है। बर्तनोंके पकानेमें जो जलावन इस्तेमाल होते हैं वे लकड़ी, कोयले, गैस और तेल हैं। अब बिजलीका भी इस्तेमाल होना शुरू होगया है। लकड़ी का इस्तेमाल अधिक नहीं होता। यद्यपि लकड़ीसे अधिक स्वच्छ आग प्राप्त होती हैं पर ऊँचे तापक्रमके लिये लकड़ी मँहगी पड़ती है। कोयला ही आमतौरसे बर्तनोंके पकानेमें प्रयुक्त होता है। कोयला साधारणतया तीन प्रकार का होता है।

अंथ्रेसाइट कोयलेमें कार्बनकी मात्रा सबसे अधिक रहती है, पर यह छोटी ज्वालामें जलता है। मध्यम ताप-क्रम के लिये अंथ्रेसाइट इस्तेमाल होता है। बिटुमिनी कोयलेमें वाष्पशील अवयवोंकी मात्रा अधिक रहती है। यह ऊँचे तापक्रम और बड़ी ज्वालाओंके लिये इस्तेमाल होता है। लिगनाइट, पीट और ब्राउन कोयलेमें जलकी मात्रा अधिक रहती है। सामान्य तापक्रम वाले भट्ठोंमें ये इस्तेमाल होते हैं। जर्मनी इत्यादि देशोंमें ब्राउन कोयलेको तारकोल व पिचके साथ मिलाकर "ब्रिकेट" तैयारकर भट्ठोंमें इस्तेमाल करते हैं। अच्छे कोयलेमें निम्नलिखित गुण होने चाहिये।

१—कोयला लंबी ज्वालाके साथ जले और उससे ऊँचा तापजनक मूल्य प्राप्त हो।

२—कोयलेमें राख की मात्रा कम हो।

३—राखमें सख्त गोले न बनें।

४—कोयलेमें गंधककी मात्रा जहाँ तक हो सके कम हो।

आजकल कोयलेके स्थानमें गैसोंका प्रयोग उत्तरोत्तर बढ़ रहा है। गैसें कोयलेसे तैयार होती हैं। कहीं-कहीं गैसें अलग तैयार हो भट्ठोंमें आती हैं और कहीं-कहीं भट्ठोंके मुख पर ही तैयार होती हैं। यदि गैसें बाहर तैयार हों तो इससे अवश्य ही बहुत कुछ ताप नष्ट हो जाता है पर इससे कुछ लाभ भी होते हैं।

जलावनोंके जलानेमें जो क्रियाएँ होती हैं उन्हें हम चार मण्डलोंमें विभाजित करते हैं। राख, दहन, विघटन और स्रवण। दहन मण्डलमें तापोज्ज्वल कार्बन वायुके द्वारा जलकर कार्बन डायक्साइड बनता है। इस दहनसे ताप उत्पन्न होता है। यह ताप कोयलेके तापक्रमको बढ़ाता है। इससे कोयलेके वाष्पशील अवयव कोयला-गैसके रूपमें निकलते हैं। जब यह गैस तप्त कोक होकर जाती है तब कार्बन डायक्साइड कार्बन मनाक्साइडमें परिणत हो जाता है, विशेषतः जब वायुका आधिक्य नहीं है। इस परिवर्तनमें तापका शोषण होता है, इससे कोयलेका तापक्रम कम हो जाता है। इस निम्न तापक्रम पर कार्बन मनाक्साइड विच्छेदित हो कार्बन डायक्साइड और कार्बन बनता है। यह कार्बन फिर आक्सीजनके साथ संयुक्त नहीं होता, पर धुएँके रूपमें निकलता है या भट्ठोंकी दीवालोंपर कार्बनके रूपमें निःक्षिप्त होता है। कार्बनका यह निःक्षेप अधिकसे अधिक ५००° श० तक होता है। १०००° श० पर यह बिलकुल नहीं होता। राखके गड्ढेमें जल रहनेसे जब जले हुये गोले उसमें गिरते हैं तब जल भाफ बनकर उठता है और दहकते कार्बनके साथ मिलकर कार्बन मनाक्साइड और हाइड्रोजन-जलगैस-बनता है। इस क्रियामें तापका शोषण होता है। इससे तापक्रम कुछ कम हो जाता है। यह जलगैस कक्षमें जाकर ताप उत्पन्न करता है।

कोयलेको गैसोंमें परिणत करनेके लिये कुछ आक्सीजन व वायु की ज़रूरत पड़ती है। जो वायु चूल्हेके छड़से

प्रविष्ट करती है उसे "प्राथमिक वायु" कहते हैं। यह कार्बनको कार्बन मनाक्साइडमें आक्सीकृत करनेमें प्रयुक्त होता है। जब बायलेर्की गैसें भट्ठियोंमें जलती हैं तब उन्हें पूर्णरूपसे आक्सीकृत करनेके लिये और आक्सीजन व वायुकी ज़रूरत होती है। इस वायुको "गौण वायु" कहते हैं। यह वायु भट्ठियोंमें प्रविष्ट होनेके पहले गरम कर ली जाती है।

अशुद्ध खनिज तैल भी यदि सस्ता हो तो भट्ठियोंमें गरम करनेमें प्रयुक्त हो सकता है। दबावमें तैलको लाकर भट्ठियोंमें वायु व जल-वाष्प मिलाकर बरनरोंमें जलाते हैं। भारतमें खनिज तैल इतना सस्ता नहीं है कि इस काममें प्रयुक्त हो सके। पर तैलके व्यवहारसे कुछ लाभ अवश्य है। तैलसे चीजें अच्छी पकती हैं, बर्तन साफ रहते हैं, और मजदूरीमें कम ख़र्च पड़ता है। तेलके रखनेमें भी कम खर्च पड़ता और कम स्थान लगता है। इससे भट्ठियाँ साफ़ रहती हैं और जल्दी गर्म हो जाती हैं, और समयकी बचत होती है।

भट्ठा, भट्ठी और चूल्हा

मिट्टीके बर्तन विशेष भट्ठियों व चूल्होंमें पकाये जाते हैं। बड़ी भट्ठीको भट्ठा कहते हैं। भट्ठियाँ भिन्न-भिन्न सामानों और तापक्रमोंके लिये भिन्न-भिन्न आकार और प्रकारकी होती है। इन भट्ठियोंमें निम्नलिखित अधिक महत्वकी हैं।

ऊपर खुले हुये भट्ठे

इसे "क्लैम्प" कहते हैं। ये वे भट्ठे हैं जो सामान्य ईंटोंके तैयार करनेमें इस्तेमाल होते हैं। ये कच्ची ईंटोंके बने होते हैं। इनके बनानेमें बहुत कम ख़र्च पड़ता है और आवश्यकतानुसार छोटे व बड़े बन सकते हैं। पर दोष इनमें यह है कि बहुतसी ईंटे ख़राब हो जाती हैं और वर्षा और वातसे इन्हें बचानेका कोई उपाय नहीं होता। इन भट्ठोंको पकी हुई ईंटोंसे दीवाल बनाकर सुधार सकते हैं। जब इन भट्ठोंको ऊपरसे बन्द कर देते हैं तब ये ऊपरसे बन्द भट्ठे हो जाते हैं।

ऊपरसे बन्द भट्ठे

ऊपरसे बन्द भट्ठे तीन प्रकारके होते हैं। एक, वे जिनका बहाव ऊपरकी ओर होता है। दूसरे, वे जिनका बहाव नीचेकी ओर होता है और तीसरे वे जिनका बहाव क्षैतिज होता है। पकने वाले बर्तन भट्ठेके अन्दर रक्खे जाते हैं। और भट्ठेके बगलकी दीवालोंसे वे जलाये जाते
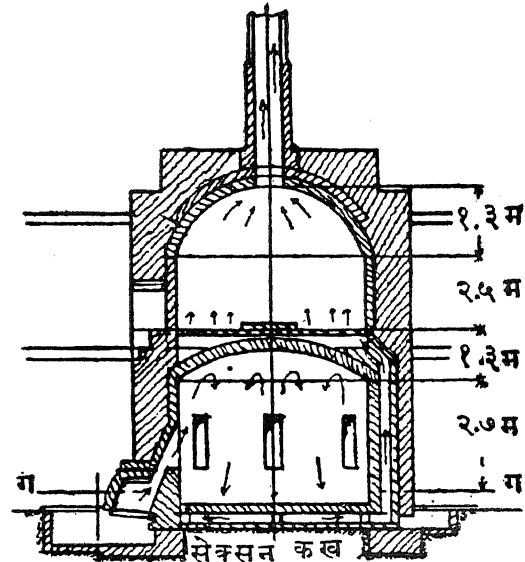
चित्र—१

एक कक्ष वाला भट्ठा

हैं। इनके ऊपरमें छेद होते हैं जिससे धुएँ और जलती हुई गैसें निकलती हैं। चूँकि इनमें गैसें ऊपरकी ओर उठती हैं इस कारण इन्हें ऊपर बहाव वाले भट्ठे कहते हैं। नीचे बहाव वाले भट्ठेमें गैसें नीचेकी ओर बहती हैं और इनमें एक व एकके ऊपर दूसरे, दो कक्ष होते हैं। इनका कक्ष आयताकार व वर्गाकार होता है। इन भट्ठोंमें ताप एक सा वितरित होता है। इस कारण इनमें सामान एकसे पकते हैं। जलावनकी बचत और समय कम लगानेकी दृष्टिसे दो कक्ष वाले भट्ठे अच्छे होते हैं। ऊपरका कक्ष नीचेके कक्षकी तप्त गैसोंसे गरम होता है। ये भट्ठे लुक फेरनेसे पहले बर्तनोंके पकानेमें विशेष रूपसे प्रयुक्त होते हैं।

कैसेल व न्यूकैसेल भट्ठोंमें भट्ठेके एक किनारेपर चूल्हा रहता है और दूसरे किनारेमें चिमनी रहती है। इसमें

ज्वाला क्षैतिज चलकर चिमनीसे निकल जाती है। इस कारण ऐसे भट्ठोंको 'क्षैतिज बहाव भट्टे' कहते हैं। यदि भट्टे बहुत लम्बे नहीं हैं तो तापका वितरण एक सा होता है, नहीं तो लम्बे होनेसे तापका वितरण एकसा नहीं होता और बर्तन ठीक नहीं पकते।

चित्र—२

दो कक्ष वाला भट्ठा
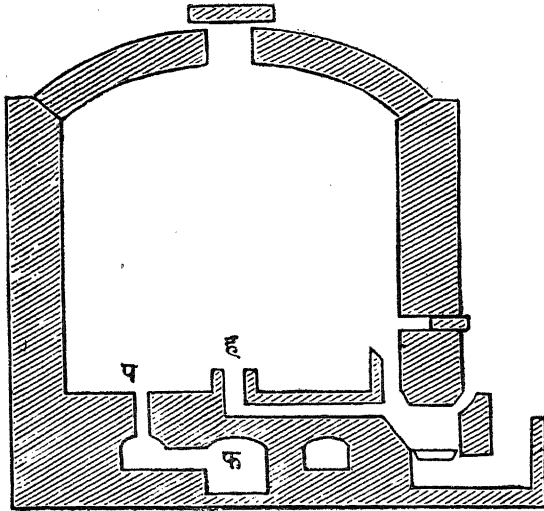
ऊपर जिन भट्ठोंका वर्णन हुआ है वे आवर्त्त भट्टे कहे जाते हैं। कुछ और भट्टे होते हैं जिन्हें अविरत भट्टे कहते हैं। इन भट्ठोंके सिद्धान्त एक ही हैं. पर ये भिन्न-भिन्न प्रकारके होते हैं। ऐसे भट्ठोंमें एक "तौफमान भट्ठा" होता है। इन भट्ठोंमें एक कक्ष होता है। बर्तनोंके रखनेके लिये बारह दरवाज़े होते हैं। इन बारहोंमें नलियाँ होती हैं जो एक प्रमुख नलीसे जुड़ी होती हैं। इन दरवाज़ोंको अलग-अलग बन्द करने और खोलनेका इन्तजाम होता है। इन दरवाज़ोंके बीचके स्थानको कक्ष कहते हैं और ये एक दूसरेसे एक परदेके द्वारा बन्द होते हैं। इन कक्षोंमें से किसी एकमें आग जलाते हैं, इससे बगलके कमरोंके बर्तन काफ़ी गरम हो जाते हैं जिससे उन पर कोयले फेंकनेसे कोयले जल उठते हैं। गरम गैसें एक कमरेसे दूसरे कमरेमें जाती हैं और जब उनका तापक्रम १५०°-२००° श० हो जाता है तब प्रधानना नलीसे होकर चिमनी द्वारा निकल जाती हैं। जो बर्तन बड़े तुनुक होते हैं और जिनको उच्च तापक्रमपर गरम करनेकी ज़रूरत होती है उनके लिये ये भट्टे बड़े उपयोगी हैं। पर इस भट्ठोंमें तापक्रमका नियंत्रण उचित रूपसे नहीं हो सकता। इस कारण "मेराडाइहाम" भट्ठा उत्कृष्ट कोटिके सामानोंके लिये अधिक उपयुक्त होता है। ऐसे भट्ठेमें सारे कक्ष एक किनारे-से दूसरे किनारे तक नलके द्वारा मिले रहते हैं। ये सब कक्ष ज़मीनके नीचे रहते हैं। ऊपरसे जल द्वारा प्रविष्ट करती हैं और केन्द्रकी चिमनीसे गैसोंका बहाव होता है।

सुरंग (टनेल) किस्मके अविरत भट्ठेमें मिट्टीके सामान दुःगालनीय मिट्टीके ठेलोंपर रक्खे जाते हैं और ये ठेले लोहेके रेलोंपर सुरंगके अन्दर चलते हैं। भट्ठेके एक स्थानपर ही सामान गरम होते हैं। ठेलोंके नीचेसे वायु प्रविष्ट करती है और सारे भट्ठेमें बहती रहती है और क्रमसे ठंडे दहन और तप्त मराडलोंमें बहती है। ये भट्ठे कोयले या गैस दोनोंसे गरम किये जा सकते हैं। इस प्रकारके भट्ठेमें निम्नलिखित गुण हैं।

१—जलावनकी बड़ी बचत होती है।

२—भट्ठेका एक भाग ही गरम होता है। इससे विकीरणसे तापका क्षय नहीं होता।

३—सुरंगके कायम रखनेसे कम खर्च पड़ता है।

४—भट्ठोंके कुछ थोड़े भागको ही उच्च कोटिके दुःगालनीय सामानोंसे बनाना पड़ता है।

५—इनके बर्तन अधिक नहीं टूटते।

बर्तनोंपर इनेमल रंग चढ़ाकर पकानेके लिये संवृत्त भट्ठे प्रयुक्त होते हैं। जिन बर्तनोंको जलावन गैसोंके संसर्गसे अलग रखना होता है उन्हें भी इस भट्ठेमें पकाते हैं। इन भट्ठोंके कक्ष दुःगालनीय सामग्रियोंसे बने होते हैं और ये बाहरसे गरम किये जाते हैं। कक्षके अन्दरकी दीवालोंसे विकीरण और चालन द्वारा ताप जाता है। इस कारण यह ज़रूरी है कि कक्षोंकी दीवालें जहाँ तक हो पतली हों और ऐसी चीज़ोंसे बनी हों जो ताप-सुचालक हों। ये भट्ठियाँ ऐसी बनी होती हैं कि गैसें और ज्वालाएँ भट्ठीकी बाहर और अन्दरकी दीवालोंके बीचसे

घूमें और अन्तमें एक सामान्य नलसे होकर चिमनी द्वारा बाहर निकल जाय। ड्रेस्लर किस्मकी अविरत संवृत्त भट्टियाँ आजकल बहुत अधिक बर्तनोंके पकानेमें प्रयुक्त हो रही हैं। इस भट्ठेमें १३००° श० तक तापक्रम प्राप्त हो सकता है और इनमें बर्तनोंको रखनेके लिये सैगरोंकी ज़रूरत नहीं पड़ती।

आजकल बिजलीकी भी भट्टियाँ प्रयुक्त होने लगी हैं। अनेक ऐसी भट्टियाँ बाजारोंमें बिकती हैं। इन भट्टियोंमें निम्नलिखित गुण हैं।

१—इन भट्टियोंमें स्वच्छ आक्सीकरण वातावरण प्राप्त होता है। धुएँ इसमें बिल्कुल नहीं होते।

२—इन भट्टियोंमें तापक्रम एकसा प्राप्त होता है। इस कारण बर्तन एकसे पकते हैं।

३—कम मजदूरी लगती है और पकना सरलतासे नियंत्रित किया जा सकता है।

४—इसके मरम्मतमें कम खर्च पड़ता है।

५—कम समयमें बर्तन पकते हैं।

सबसे बड़ा दोष इसमें यही है कि ये कुछ मँहगी होती हैं और यदि बिजली बड़ी सस्ती न हो तो और भी मँहगी पड़ती हैं।

तापक्रमका मापन

अनेक उपायोंसे भट्टियोंके अन्दरके तापक्रम जाने जा सकते हैं। तापक्रमके जाननेका सबसे सरल तरीका भट्टियोंके अन्दरकी चीज़ों व भट्टियोंके अन्दरकी दीवालोंके रंगसे है, पर इसके लिये बड़ा अनुभव होना चाहिये।

यदि भट्टियोंका रङ्ग सुर्ख़ होना शुरू हो तो तापक्रम ५००° श०
धुंधला सुर्ख़ हो तो " ७००° श०
चेरी सुर्ख़ हो तो " ८००° श०
चमकीला सुर्ख़ हो तो " १०००° श०
चमकीला नारङ्गी हो तो " १२००° श०
चमकीला सफ़ेद हो तो " १३००° श०
अति चमकीला सफ़ेद हो तो " १४००° श०
दहकता सफ़ेद हो तो " १५००° श०

समझना चाहिये। यह रंगत भी देखना चाहिये कि ज्वाला स्वच्छ रहे और उसमें कोई हाइड्रोकार्बन न हो। निरीक्षकको अँधेरे स्थानपर खड़ा होकर देखना चाहिये ताकि सूर्य-प्रकाशकी चमकसे आँखें प्रभावित न हों।

बर्तन पकानेकी भट्टियोंमें अन्य साधनोंसेभी तापक्रम का ज्ञान प्राप्त करते हैं, इन्हें उग्र तापदर्शक (पाइरोस्कोप) और उग्रतापमापक (पाइरोमीटर) कहते हैं।

उग्रतापदर्शक ऐसे साधन हैं जिनसे उनमें जो परिवर्तन होता है उससे तापक्रमका ज्ञान होता है। सन् १८८६ ई० में हरमैन सेगर नामक एक व्यक्तिने कुछ सुण्डाकार पदार्थ बनाये जिन्हें पिरेमिड व 'कोन' कहते हैं। ये कोन किसी विशेष तापक्रम पर भट्टियोंके अन्दर कोमल होकर झुक जाते हैं। ये कई पदार्थोंके मिश्रणसे बने होते हैं। चूँकि ये मिश्रणके बने होते हैं, इनका कोई विशिष्ट क्वथनांक नहीं होता है। इनका कोमल होना भट्ठेके जलानेके समय और भट्ठीके अन्दरके वातावरणपर निर्भर रहता है।

कोन नम्बर	मिट्टीमें झुक जानेका तापक्रम श०	कोन नम्बर	मिट्टीमें झुक जानेका तापक्रम श०
०२२	६००		
०२१	६५०		
०२०	६७०		
०१९	६९०		
०१८	७१०		
०१७	७३०		
०१६	७५०	१२	१३५०
०१५ क	७९०	१३	१३८०
०१४ क	८१५	१४	१४१०
०१३ क	८३५	१५	१४३५
०१२ क	८५५	१६	१४६०
०११ क	८८०	१७	१४८०
०१० क	९००	१८	१५००
०९ क	९२०	१९	१५२०
०८ क	९४०	२०	१५३०
०७ क	९६०	२६	१५८०
०६ क	९८०	२७	१६१०
०५ क	१०००	२८	१६३०
०४ क	१०२०	२९	१६५०

०३ क	१०४०	३०	१६७०
०२ क	१०६०	३१	१९६०
०१ क	१०८०	३२	१७१०
१ क	११००	३३	१७३०
२ क	११२०	३४	१७५०
३ क	११४०	३५	१७७०
४ क	११६०	३६	१७९०
५ क	११८०	३७	१८२५
६ क	१२००	३८	१५१०
७ क	१२३०	३९	१८८०
८	१२५०	४०	१९२०
९	१२८०	४१	१९६०
१०	१३००	४२	२०००
११	१३२०		

भट्ठी जलानेके दो घण्टे बाद ये तापक्रम प्राप्त होते हैं, पर यदि जलानेका समय अधिक लगे तो ये कोन ऊपर लिखित तापक्रमसे नीचे ही कोमल होजाते हैं। लघ्वीकरण वातावरणमें ये कोन बहुत विश्वसनीय नहीं हैं क्योंकि ऐसी दशामें इन कोनों के सुषिर पर कार्बन बैठ जाते हैं और तब ताप अन्दर ठीक तरहसे प्रविष्ट नहीं कर सकता। इसका परिणाम यह होता है कि इनके कोमल होने का तापक्रम बहुत कुछ बढ़ जाता है। इन सेगरोंके अतिरिक्त अन्य प्रकारके उग्रतापदर्शक भी अनेक स्थलों पर प्रयुक्त होते हैं, पर ये सब सेंगर कोनसे अच्छे नहीं होते।

उग्रतापमापक ऐसे साधन हैं जिनसे तप्त पदार्थोंका तापक्रम भापा जासके। इनका प्रयोग भट्ठियोंमें उत्तरोत्तर बढ़ रहा है। कई प्रकारके उग्रतापमापक होते हैं, पर उनमें दो बहुत अधिक महत्वके हैं।

१—ताप-वैद्युत उग्रतापमापक जो १४००° श० तक तापक्रममापनमें प्रयुक्त हो सकता हैं

२—विकीरण उग्रतापमापक। यह८५०° से १६००° श० तक तापक्रममापकमें प्रयुक्त हो सकता है।

सेबेकने देखा कि दो विभिन्न धातुओंके संगम पर विद्युद्वाहक बल होना है और यदि किसी विद्युत् कुंडली में दो संगम हो तो उसमें दो विरुद्ध बल होते हैं। यदि एक संगम उच्चतर तापक्रम पर हो तो उसमें संयुक्त विद्युद्वाहक बल होगा जिससे उस कुंडलीमें विद्युत् प्रवाहित होगी। इस विद्युद्वाहक बलका परिमाण (१) धातुओंकी प्रकृति और (२) दो संगमोंके तापक्रमोंकी विभिन्नता और (३) दो संगमोंके वास्तविक तापक्रम पर निर्भर रहता है। धातुयुग्म जो उग्रतापमापकमें १२००° श० तक तापक्रमके नापनेमें प्रयुक्त होते हैं वे तांबा, निकेल, लोहा, क्रोमियम सदृश हीन-धातुओंकी मिश्र-धातुके बने होते हैं। १४००° श० तक तापक्रममापकके लिये प्लैटिनम और रेडियम-प्लाटिनमकी मिश्र-धातुके बने होते हैं। विद्युद्वाहक बल किसी मिली-वोल्टमापक व विभव-मापक द्वारा भापा जाता है। इन पर ऐसे चिह्न बने होते हैं जिनसे सीधे तापक्रम सूचित होता है।

विकीरस उग्रतापमापकमें जितना ही ऊँचा तापक्रम हो उतना हो वह अधिक यथार्थ होना है। इस विधिमें गरम पदार्थसे निकले सब आवृत्तिके विकीरस किसी दर्पण वा लेंस पर केंद्रित हो ताप-विद्युत् युग्म पर पड़कर मिली-वोल्ट मापकको प्रभावित करते हैं। इन उग्रताप दर्शक व मापकमें अनुलेखक यंत्र लगे रहते हैं जिनसे चौबीसों घण्टेका तापक्रम अंकित होता रहता है।

दुःगालनीय

चीनी मिट्टीके बर्तनोंको भट्ठोमें पकानेके लिये कुछ ऐसे सन्दूकोंकी जरूरत पड़ती है जो आगमें जल्दी गलें नहीं, और जिनमें बर्तनोंको रखकर पका सके। ऐसी चीजोंको दुःगालनीय अर्थात् कठिनतासे पिघलने वाली वस्तुएँ कहते हैं। इनमें रखकर बर्तनोंको पकानेसे भट्ठीकी ज्वालाएँ या जवाला-गैसें सीधे बर्तनोंके संसर्गमें नहीं आती। ये सन्दूकें किसी भी कद और आकारके हो सकते हैं। पर ये साधारणतया गोल या आयताकार होते हैं। इन सन्दूकसी शकलकी वस्तुओं को "सैगर" कहते है।

सैगर अग्निजित् मिट्टीके बनते हैं। उनमें थोड़ा पदार्थ मिला रहता है जिसे "ग्रौग" कहते हैं। ग्रौग टूटे हुये स्वच्छ सैगरके पीसनेसे प्राप्त होता है। यह तीन आकारका होता है। मोटा, मध्यम और महीन। मोटे

ग्रौगके दाने ७ मिलीमीटर व्यासके, मध्यमके ३ मिलीमीटर और महीनके ३ मिलीमीटरसे छोटे व्यासके होते हैं।

मिट्टीमें ग्रौग कितना मिलाना चाहिये, यह मिट्टीकी नम्रता और सैगर की मज़बूतीपर निर्भर रहता है। तापक्रमके घटने-बढ़नेसे सैगरमें जो परिवर्त्तन होते हैं उन्हें सहन करनेमें ग्रौगसे सहायता मिलती है और सैगरमें सिकुड़न कम होती है। यदि ग्रौगकी सामग्री ठीक पकी हुई है तो ग्रौग मिट्टीके साथ मिलकर सैगर बननेमें अधिक सिकुड़ती नहीं। इस कारण सैगरमें ग्रौगका होना जरूरी है। जब सैगर भट्टीमें रक्खा जाता है अथवा जब भट्टी ठंडी होती है तब ग्रौगके कारण ही सैगर तापक्रमके परिवर्त्तन सहन करनेमें समर्थ होता है। इस दृष्टिसे मोटे ग्रौग अच्छे होते हैं पर इसमें वितानक्षमता और महीन होनेका गुण कम हो जाता है। महीन ग्रौगसे अधिक सुषरिता आती है, पर इसका मिश्रण तापक्रमके अकस्मात् परिवर्त्तन को उतना अधिक सहन नहीं कर सकता। इन सब बातोंको देखते हुये अच्छा यही है कि भिन्न-भिन्न आकार के ग्रौगोंको मिलाकर प्रयुक्त करें। ग्रौगोंका संगठन वैसा ही होना चाहिये जैसा मिट्टीका हो, और यदि हो सके तो उसे पहले उच्च तापक्रमपर पका लेना चाहिये।

सैगर बनानेके लिये नम्र मिट्टी और बलुआर मिट्टी दोनोंको इस्तेमाल करना चाहिये। इन दोनोंका अनुपात प्रयोगसे ही निश्चित किया जा सकता है। साधारण तौरसे ग्रौगका अनुपात ५० से ६० प्रतिशत रहता है। सैगर बनानेके लिये निम्नलिखित नुसखा अच्छा है।

नम्र मिट्टी	३० भाग
बलुआर मिट्टी	१७ "
मोटा ग्रौग	२० "
मध्यम ग्रौग	३३ "

छोटे कद्के सैगरोंके बनानेमें महीन ग्रौग काम आता है।

सूखे ग्रौग और अग्निजित् मिट्टीको एक दूसरेके ऊपर तहमें रख पानी बारबार छिड़कते हैं ताकि वे खूब मिल जाँय। यह मिलाना यंत्रोंसे भी हो सकता है, जहाँ जलके फव्वारे छोड़े जाते हैं। इस मिश्रणको फिर गूँथते और दबाते हैं और एक व दो बार पुगमिलमें भी डालकर दबाते हैं। इसे तब ठंडे स्थानमें ढेर बनाकर पुराना होनेके लिये रख छोड़ते हैं। पुराना होनेपर इससे सैगर बनाते हैं।

हाथ से बनाना

जिस आकारका सैगर तैयार करना होता है वैसा हाथसे मिट्टीका लोंदा बनाकर मेजपर महीन ग्रौग छींटकर बनाते हैं।

मशीनसे दबाकर बनाना

इस विधिमें लाभ यह है कि किसी भी आकारके सैगर बना सकते हैं। मिश्रणमें कम पानी देना चाहिये ताकि वह भले प्रकारसे दबाया जा सके। इस विधिमें दोष केवल यही है कि सैगरके पेंदे पार्श्वसे अधिक दब जाते हैं जिससे सैगरके सब अङ्ग एक मजबूतीके नहीं होते। पेंदे पार्श्वसे अधिक मजबूत होते हैं। इस दोषको दूर करनेके लिये केवल उन्हीं सैगरोंको दबाते हैं जो ३ से ४ इंच ऊँचे होते हैं। इससे अधिक ऊँचे सैगर ३ या ४ बारसे अधिक इस्तेमाल करने पर फट जाते हैं। मशीनसे एक आदमी प्रति दिन ३ इंच ऊँचा ३०० से ४०० तक सैगर बना सकता है।

जौलीसे बनाना

इस विधिसे केवल गोलाकार सैगर बनते हैं। मिश्रण पर्याप्त कोमल होना चाहिये ताकि खरदनोंसे काम किया जा सके। इसके लिये साँचे दो अंशोंमें बनाये जाते हैं। इनका घेरा १ से २ इंच मोटा होता है और पेंदा बीचमें उठा हुआ होता है। इससे सैगरका पेंदा मजबूत होता है, ऐसा समझा जाता है। जौली पर वैसा ही काम होता है जैसा बर्तन बनानेमें होता है। केवल साँचे को हर बार महीन पिसी हुई मिट्टीसे धुरिया लेते हैं।

ढालना

कभी-कभी प्लास्टरके साँचोंमें ढालकर सैगर तैयार करते हैं। इस विधिमें अधिक ग्रौग इस्तेमाल करना पड़ता है। इससे यह विधि कुछ मँहगी पड़ती है।

सैगरको लकड़ीके कठरे पर रख प्लास्टर व लोहेके तख्तोंपर सुखाते हैं। इसके लिये भट्टीसे निकले व्यर्थ तापको इस्तेमाल करते हैं। सैगरको जल्दी नहीं सुखाना चाहिये, नहीं तो महीन दरारें फट जाती है। सूखे सैगरो को उन्हीं भट्ठियोंमें पकाते हैं जिनमें बर्तन पकाये जाते हैं। पर सैगरोंको अकेला ही बिना कुछ उनमें रक्खे पकाना ठीक है। कुछ देशोंमें जहाँ भट्ठियोंमें दो मंजिलें होती हैं. नीचेकी मंजिलोंमें बर्तन पकाये जाते हैं और ऊपरकी मंजिलोंमें सैगर अकेला ही व हल्के बर्तनोंको रख कर पकाये जाते हैं। पर इस प्रकार सैगर ठीक पकते नहीं है और वे टेढ़े हो जाते व टूट भी जाते हैं। जिन सैगरोंमें सीस-लुक फेरे हुये सामान रक्खे जाते हैं उनमें अन्दर पहले लुकसे लेप लेते हैं ताकि वे उनमें रक्खे बर्तनोंके लुकको सोख न लें।

सैगरोंको नम जगहों पर नहीं रखना चाहिये अथवा उन्हें ऐसी जगह पर न रखना चाहिये जहाँ वे पानी सोख लें। सैगर के नम होनेसे उनमेंसे भाफ निकल कर बर्तनों पर द्रवीभूत हो सकती है। इस वाष्पके साथ जलावन-गैसोंसे निकली गन्धककी वाष्प भी रह सकती है। तापक्रमके ऊँचा होनेसे यह वाष्प बर्तनोंको नुकसान पहुँचाती है।

सैगरोंके बराबर व्यवहारसे उनमें दरारें फट जाती हैं। ज्योंही दरारें देख पड़े उन्हें सावधानीसे बन्द कर देना चाहिये। ग्रोग और नष्ट लुक व जल-काँच इसके लिये इस्तेमाल हो सकता है। इस मिश्रणमें थोड़ी चीनी मिट्टी देते हैं ताकि वह चिपक सके। अधिक मिट्टीसे मिश्रण सिकुड़कर गिर पड़ता है। जल-काँचसे यदि दरारें बन्द की जाँय तो सैगरको फिर पका लेना चाहिये। सैगर कितने दिनों तक काम दे सकते हैं, यह कठिन है। २५ बार तक ये भट्ठियोंमें चढ़ाये जा सकते है। आम तौरसे वे १५ बारसे अधिक काम नहीं देते। कुछ तो आठ नौ बारमें ही निकम्मे हो जाते हैं।

कारबोरंडमके भी सैगर बनते हैं। पिघले हुये स्फटिक के सैगर भी अच्छे और सस्ते होते हैं। इन्हें मिट्टीके साथ मिलाकर भी प्रयुक्त कर सकते हैं। अग्निजित् मिट्टी के स्थानमें चीनी-मिट्टी व "गेंद्र मिट्टी" भी प्रयुक्त हो सकती है। यदि स्फटिककी मात्रा ५०-६० प्रतिशत हो तो ऐसे सैगर अकस्मात् गरम व ठंढे होने पर टूटते नहीं हैं।

अग्निजित् ईंट

ये ईंटें प्रधानतः अग्निजित् मिट्टीकी बनी होती हैं और ऊँचे तापक्रमको सह सकती हैं पर भिन्न-भिन्न कामों के लिये ये ईंटें भिन्न-भिन्न पदार्थोंसे बनती हैं। ये ईंटें आमतौरसे तीन प्रकारकी होती है।

क्षारीय अग्निजित् ईंटें

ये ईंटें धातुओंके यौगिकोंके योगसे बनती हैं। इनमें मैगनीशिया, डोलोमाइट, जिरकोनिया बौक्साइट और लोहेके खनिज और कुछ क्षारीय धातु-मैल होते हैं। ये ईंटें प्रधानतः लोहे और स्पातकी भट्ठियोंमें प्रयुक्त होती हैं। मैगनीशियाकी ईंटें यद्यपि मँहगी पड़ती हैं पर वे अधिक दिनों तक टिकती हैं। जिरकोनियाकी बनी ईंटें क्षारीय होती हैं और तापक्रमके अकस्मात् परिवर्तनसे टूटती नहीं हैं। ये ईंटें विद्युत-भट्ठियोंके छतों और अन्दरके भागोंमें प्रयुक्त होती हैं। बौक्साइटकी ईंटें भी क्षारीय समझी जाती हैं यद्यपि अनेक दृष्टियोंसे ये उदासीन होती हैं। क्षारीय धातु-मैलोंका इस पर कदाचित् ही कोई असर पड़ता है। यद्यपि चूना इन्हें शीघ्रतासे आक्रान्त करता है। ये ईंटें उन भट्ठियोंमें इस्तेमाल होती हैं जिनमें धातुएँ, धातुओंके आक्साइड व क्षारीय धातु-मैल बहुत उच्च तापक्रम तक गरम किये जाते हैं। लोहेके खनिज, हीमेटाइट और मैगनासाइट भी कभी-कभी भट्ठियोंके अन्दरके भागोंके लिये प्रयुक्त होते हैं। ये मिट्टी अलुमिनाकी अपेक्षा निम्न तापक्रम पर ही पिघल जाते हैं।

उदासीन ईंटें

ये ईंटें ग्रेफाइट, कारबोरंडम और क्रोमाइट इत्यादिसे बनती हैं। कार्बनकी ईंटें ताँबा, सीसा, अलुमिनियम और कभी-कभी इस्पातके तैयार करने की भट्ठियोंमें प्रयुक्त होती हैं। कार्बन पर तापक्रमका कोई असर नहीं पड़ता और यह धातु-मैलोंसे भी जल्दी आक्रान्त नहीं होता।

गरम करनेसे इसके आयतनमें भी कोई परिवर्तन नहीं होता। इन ईंटोंको भट्ठोंमें रखने पर अग्निजित् मिट्टीके सीमेंट व जलकाँचका लेप दे देना ज़रूरी है ताकि भट्ठीके गरम करनेके समय वे वायुसे जल न जाँय। कारबोरंडम की ईंटें बड़ी मजबूत होती हैं पर कुछ दिनोंके उपयोगके बाद सिलिकन कारबाइड बननेके कारण उनको मज़बूती बहुत कुछ घट जाती है। ये ईंटें बड़ी कठोर होती हैं और उच्च तापक्रमका उन पर कोई असर नहीं होता। इनकी ताप-चालकता बड़ी ऊँची होती है। इस कारण ये ईंटें ड्राइजुलर भट्ठेके दहन-कक्षके निर्माणमें प्रयुक्त होती हैं।

क्रोम-लोह खनिज, जिसमें प्राय: ५० प्रतिशत क्रोमियम आक्साइड और २५ प्रतिशत लोहेका आक्साइड रहता है—की ईंटें बड़ी उपयोगी पर मँहगी होती हैं। ये ईंटें इस्पात भट्ठियोंमें तांबा, अण्टीमनी और वङ्ग निर्माणकी भट्ठियोंमें इस्तेमाल होती हैं। इनका पिघलना, क्रोमियम आक्साइडके अनुपात पर निर्भर रहता है। शुद्ध क्रोमियम आक्साइड प्राय: पिघलता नहीं।

आम्लिक ईंटें

आम्लिक ईंटें या तो पूर्णत: सिलिका व रेतसे बनती हैं और उन्हें बाँधनेके लिये थोड़ा चूना व जल-काँच उसमें मिला देते हैं या ऐसी अग्निजित् मिट्टीसे बनती हैं जिनमें सिलिका का अंश बहुत अधिक होता है। जितना ही सिलिका इन ईंटोंमें रहता है उतना ही वे आम्लिक होती हैं। सिलिका और अग्निजित् ईंटोंमें भेद यह है सिलिकाकी ईंटें गरम करने पर फैलती हैं और अग्निजित् ईंटें सिकुड़ती हैं। जहाँ सिकुड़न नहीं होना चाहिये और उच्च ताप-अवरोधकी आवश्यकता हो वहाँ ही सिलिकाकी ईंटें इस्तेमाल होती हैं। अर्ध सिलिकाकी ईंटें यदि ठीक तरह से बने तो वे न फैलती हैं और न सिकुड़ती हैं। आम्लिक ईंटें प्रधानतः कोक निर्माणकी भट्ठियोंमें प्रयुक्त होती हैं। कुम्हारों की भट्ठियाँ प्रधानतः अग्निजित् मिट्टी की ईंटोंसे बनती हैं। ये ईंटें ऐसी होनी चाहिये कि उच्च तापक्रमको सह सकें और भट्ठियोंकी नलियोंकी धूलोंसे आक्रान्त न हों। उन्हें अधिक सिकुड़ना भी नहीं चाहिये नहीं तो भट्ठियाँ टूटकर गिर पड़ेंगी।

अग्निजित् ईंटोंके तैयार करनेकी विधि यह है कि अग्निजित् मिट्टी और टूटी हुई ईंटोंको "एज-रनर-मिल" में डाल कर पीसते हैं। जो छोटे छोटे टुकड़े कलके सछेद्र पेंदेसे निकल आते हैं उन्हे "मिक्सर" मे डालकर जलसे नम्र बनाते हैं। मिक्सरसे उन्हें "पुगमिल" में डालकर मिट्टीको गूँथते हैं। ऐसी तैयार मिट्टीसे मशीन द्वारा ईंटें बना सकते हैं, पर हाथसे बनी ईंटें मशीनसे बनी ईंटोंसे अच्छी होती हैं क्योंकि मशीनकी ईंटें अधिक दबावके कारण सघन हो जाती हैं। हाथसे बनी ईंटोंका रूप और आकार स्वच्छ और ठीक-ठीक होता है, पर हाथोंसे कम ईंटें बन सकती हैं।

ईंटोंको बनाकर गरम गर्चो व गरम कमरोंमें सुखाते हैं। भट्ठोंके नष्ट तापसे सुखानेमें बहुत सस्ता पड़ता है। कुछ कारखानोंमें भट्ठोंके ऊपर ईंटोंको रख कर सुखाते हैं। ये ईंटें ऐसी रक्खी जाती हैं कि वे ठीक तरहसे सूख सकें और उनके बीचसे गरम गैसें एकसा आ जा सकें ताकि उनके वाष्पशील पदार्थ गैस बनकर उड़ जाँय। ईंटें आधे इंचकी दूरीपर कतारोंमें कुछको चिपटा और कुछको किनारोंपर रखते हैं। इन ईंटोंको पकानेके लिये कई प्रकारके भट्ठे इस्तेमाल होते हैं। पर साधारण भट्ठे आयताकार होते हैं। आजकल अवरित भट्ठे भी प्रयुक्त हो रहे हैं।

भट्ठोंमें पकनेके सिद्धान्त

मिट्टीके बर्तन बनानेमें भट्ठोंमें पकानेका कार्य सबसे कठिन, मँहगा और महत्वका होता है। मिट्टीके कच्चे बर्तन तुनुक और मुलायम होते हैं, पानीसे जल्दी गल जाते हैं। पकाने पर ये मजबूत और कठोर हो जाते हैं और तब जल अम्ल व अन्य द्रवोंसे जल्दी आक्रान्त नहीं होते। ये परिवर्तन मिट्टीके विच्छेदनसे होते हैं। मिट्टी आँशिक रूपसे पिघल जाती है और यह पिघली मिट्टी अन्य पदार्थोंको बाँध रखती है। भिन्न-भिन्न तापक्रमपर मिट्टीमें विभिन्न क्रियाएँ होती हैं। इन क्रियाओंके निम्नलिखित क्रम अधिक महत्वके हैं।

(१) धुआँ व भाफ लगनेका क्रम

यह १२०° श० तक होता है। वस्तुत: यह क्रम सुखानेका है। इस क्रममें सूखनेकी कमी यदि कोई है तो

पूरी हो जाती है और जलका जो कुछ अंश रहता है वह निकल जाता है। यह धुआँ लगना यदि ठीक तरहसे न हो तो बर्तन टूट सकते हैं और उनपर अप्रिय वस्तुयें द्रवीभूत व घनीभूत हो सकती हैं। जल-वाष्प यदि जल्दीसे भट्ठेसे बाहर न निकल जाय तो यह सैगर व बर्तनों पर गन्धक-गैसोंके कारण आम्लिक रूपमें द्रवीभूत हो जाता है। इस कारण भट्ठोंमें वायु तेजीसे बहनी चाहिये ताकि भाफ और अन्य वाष्पशील पदार्थ जल्दी ही भट्ठोंसे निकल जायँ। इस क्रममें भट्ठे तेज़ीसे नहीं जलाये जाते और भट्ठोंमें भाफ भरी रहनी चाहिये। इसीसे इस क्रमको धुआँ व भाफ लगना कहते हैं। पोरसीलेनके सामानोंके लिये ५ से ६ घण्टे पर्याप्त हैं। वास्तवमें सामानोंकी प्रकृति पर इस क्रमका समय निर्भर रहता है।

विच्छेदन-क्रम, २००-२५०° शा०

जब तापक्रम २००° शा० पहुँचता है तब जो कुछ वाष्पशील कार्बनिक पदार्थ रहते हैं वे विच्छेदित हो जाते और लोहेके जल-संयोजित आक्साइड जल-वियोजित होना शुरू होते हैं। इस दशामें यदि बर्तनोंमें लोहेके आक्साइड और कार्बनिक पदार्थ अधिक न हों तो भट्ठेके जलानेका काम अधिक तेज़ होना चाहिये। जब भट्ठेका तापक्रम प्राय: ५००° शा० पहुँच जाय व भट्ठा सुर्ख़ होना शुरू हो तब भट्ठेका जलाना मन्द कर देना चाहिये।

निर्जलीकरण-क्रम, ४५०-७००° शा०

इस क्रममें रसायनिक संयुक्त जल बड़ी शीघ्रतासे विच्छेदित होना शुरू होता है और यदि भट्ठेका जलाना मन्द न हो तो बर्तनोंको नुकसान पहुँच सकता है। इस क्रमसे मिट्टी गैसोंको सोख सकती है और उन पर अम्लों की क्रियाएँ भी हो सकती हैं। मिट्टीमें यदि कार्बन अंथ्रेसाइटके रूपमें है तो वह बिना किसी हानिके ही जल्दी जलकर निकल जाती है, पर यदि कार्बन विटुमिनी कार्बनके रूपमें है तो उसमें हाइड्रोकार्बन और कुछ तेल रहते हैं। जिससे स्थानीय दहन शुरू होता है और उससे मिट्टीका आक्सीकरण रुकता है। लिगनाइट कार्बनसे प्रचुर वाष्प निकलता है, पर यह इतना हानिकारक नहीं होता जितना विटुमिनी कार्बनसे निकले पदार्थ होते हैं। इस अवस्थामें यदि भट्ठेसे मिट्टी निकाल ली जाय तो वह भूरेसे काले रंग तक होती है। ऐसी मिट्टी फिर जलसे नम्र नहीं होती, पर इतनी सख्त और मजबूत भी नहीं होती कि टूटे नहीं।

आक्सीकरण-क्रम, ७००-१०००° शा०

जब भट्ठेका तापक्रम ७००° शा० पहुँच जाय तब उसे फिर तेज़ीसे जला सकते हैं, पर यह बर्तनोंकी प्रकृति, कद, घनता और बनावट पर निर्भर रहता है। इस दशामें कार्बन विच्छेदित होना शुरू होता है और फेरस आक्साइड और सल्फाइड फेरिक लवणोंमें विच्छेदित होते हैं। यदि आक्सीकरण ठीक तरहसे नहीं होता तो फेरस आक्साइड मिट्टीके सिलिकाके साथ संयुक्त हो जाता है। यदि तापक्रम पर्याप्त ऊँचा है तो धातु-मैल व स्पंजी बर्तन बनता है। पूर्ण आक्सीकरणके अभावमें बर्तनोंके अन्दर काले धब्बे पड़ जाते हैं। मिट्टीके विच्छेदक क्रिया-फल युक्त सिलिका, अलुमिना और अन्य आक्साइड हैं। चीनी मिट्टीके बर्तन यदि ८००° शा० पर भट्ठेसे निकाल लिये जाँय तो उनका रंग गुलाबी होता है। इसका कारण यह है कि मिट्टीसे लोहेके आक्साइड अलग हो जाते हैं। जैसे-जैसे तापक्रम बढ़ता जाता है, लोहा अलुमिना और सिलिकाके साथ संयुक्त हो रंगहीन होता जाता है। यदि मिट्टीमें कार्बन है, तो जब तक कार्बन दूर न हो जाय यह क्रिया नहीं होती। पकाये हुये बर्तनोंमें जो रंग होता है वह आक्सीकृत लोहेके कारण होता है।

संयोग-क्रम

ऐसा मालूम होता है कि १००° शा० के ठीक नीचे मुक्तसिलिकाका कुछ अंश अलुमिनाके साथ संयुक्त होकर एक यौगिक सिलिकेट बनता है जिसे "सिलिमेनाइट" कहते हैं। इसके बननेमें ताप निकलता है। लोहा और टाइटेनियम वाले द्रावकोंके होनेसे सिलिमेनाइटके बननेमें मदद मिलती है। अधिक समय तक १४००° शा० पर गरम करनेसे अधिक तायदादमें सिलिमेनाइट बनता है।

तापक्रमके और बढ़नेसे अनेक क्रियायें होती हुई मिट्टी सांद्र काँचमें पिघलनी शुरू होती है। यह पिघला हुआ ढेर अन्य अवयवोंको घुला लेता है। इस प्रकार रन्ध्रमय और अगालनीय ढेरमें ऐसा परिवर्तन होता है कि उसके रंध्र बहुत कुछ काँच ऐसे पदार्थसे भर जाते हैं, और यदि पर्याप्त समय तक वे गरम होते रहें तो सम्भव है कि उनके रूप टेढ़े मेढ़े हो जाँय। इस कारण बर्तनोंका कितना काँचीकरण होना चाहिये यह उनकी प्रकृति पर निर्भर रहता है। अग्निजित् ईंटोंको काँचीकरणकी बिलकुल ज़रूरत नहीं होती, पर पोरसीलेन सामानोंको प्रायः पूर्ण रूपसे काँचीकरण होना ज़रूरी है। ईंटें भिन्न-भिन्न स्थानोंमें भिन्न-भिन्न तापक्रमों तक पकाई जाती हैं। अच्छी ईंटोंके लिये १० से १४ सेगरकोनका तापक्रम आवश्यक है।

समालोचना

विश्व परिचय—ले० श्री रवीन्द्र नाथ ठाकुर अनु० श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी। प्रकाशक विश्व भारती ग्रन्थालय, २१० कार्नवालिस स्ट्रीट कलकत्ता, पृ० ११४, सुन्दर सचित्र सजिल्द। मूल्य १)

कवि-सम्राट् रवीन्द्र बाबू कलाकार हैं, पर आपने अपनी इस नवीन पुस्तकमें कला और विज्ञान दोनोंका समन्वय किया है। यह पुस्तक बालकोंके लिये लिखी गई है। कविका कहना है कि "जिन्होंने शिक्षा आरंभकी है, उन्हें शुरूसे ही विज्ञानके भांडारमें नहीं तो उनको आँगन-में प्रवेश करना अत्यावश्यक है। इस स्थानपर विज्ञानका प्रथम परिचय करानेके कार्य्यमें साहित्यकी सहायता स्वीकार कर लेनेमें कोई अगौरवकी बात नहीं।" प्रस्तुतः पुस्तकमें परमाणु-लोक, नक्षत्र-लोक, सौर-जगत, ग्रहलोक और भूलोक, ये ५ अध्याय हैं। लेखकने मनोरञ्जक सरल एवं सरस रूपमें सब विवरण लिखे हैं। अनुवाद भी अच्छा हुआ है। कहीं-कहीं कुछ विदेशी शब्द विशेष खट-कता हैं—उनका प्रयोग अच्छी तरहसे नहीं हुआ—जैसे—'इतनी **विशाल खबर** मिली' (पृ० ६)। फ़ारसी आदिके शब्द बरबस मिलानेका प्रयत्न किया गया है। हिन्दी भाषी और बंगालियोंके उच्चारणमें अन्तर होता है। अतः जिस शब्दको बंगाली पज़िटिव् लिखते हैं, हमें अपने उच्चारणकी दृष्टिसे उसे पाज़िटिव् लिखना चाहिये।

बंगालमें इस पुस्तकके ८-१० महीनेमें ४ संस्करण हो गये। हमें आशा है कि कवि-सम्राट्की इस पुस्तिकासे हिन्दी भाषी भी लाभ उठावेंगे।

—सत्यप्रकाश

लघुग्रह

(ले०—श्री कल्याण वक्ष माथुर एम० एस-सी०)

पूर्वकालमें मनुष्योंके कुछ संख्याओंके विषयमें विचित्र विचार थे। वे समझते थे कि इन संख्याओंकी विचित्रताको प्रत्येक मनुष्य नहीं समझ सकता। इन संख्याओंमें सबसे अधिक प्रसिद्ध सातकी संख्या है। जब गैलीलियोने सन् १६१० ई०में दूरबीनकी खोजकी और उससे बृहस्पतिके ग्रहके साथ चार और उपग्रह देखे तब उनके एक साथी फ्रेनसिसको सीज़ींने जो फ़्लोरेनटाइनके राज्य-ज्योतिषी थे उनकी इस खोजके विरूद्ध इस तरहसे अपने विचार प्रगट किये। उन्होंने कहा कि मनुष्यके सिरमें सात खिड़कियाँ हैं-दो नथने, दो कान, दो आँखें और एक मुँह। इसी प्रकार आकाशमें भी दो अच्छे ग्रह, दो बुरे ग्रह, दो चमकने वाले ग्रह तथा एक शनिका ग्रह है जिसका प्रभाव हमें अभी तक ठीक-ठीक मालूम नहीं है। इससे और प्रकृतिकी ऐसी ही और दूसरी बातोंसे—जैसे कि सात धातु आदि से (जिनको गिनना भी बड़ा कठिन था) यह साफ विदित है कि आकाशमें ग्रह भी सात ही हैं। तदुपरान्त उपग्रह कोरी आँखसे दृष्टिगोचर नहीं होते और इसलिये पृथ्वी पर उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। फलतः वे व्यर्थ हैं और इस लिये वे हैं ही नहीं। इसके अलावा यहूदियोंने, दूसरी पुरानी जातियोंने तथा आधुनिक योरुपके रहने वालोंने सप्ताहको सात दिनोंमें विभाजित किया है, और उनके नामको सात ग्रहोंके नाम पर रखते गये हैं। इसलिये यदि हम अब ग्रहोंकी संख्याको बढ़ादें तो यह सब बातें झूँठी हो जावेंगी।

बोडका नियम

वास्तवमें सन् १७८१ ई० तक तो सिर्फ छः ही ग्रह विदित थे - वे बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, बृहस्पति और शनि हैं। सन् १७८१ ई०में हर्शेलने यूरेनसकी खोजकी और इसके कारण ग्रहोंकी खोज करनेके लिये मनुष्योंमें एक नई जागृति पैदा हो गई। इस जागृतिके कारण सब लोगोंका इस बातमें पूर्ण विश्वास हो गया कि प्रकृतिके नियम बहुत सरल हैं। सन् १७७२ ई०में ज्योतिषी बोडने यह बताया कि ग्रहोंकी दूरी लगभग एक बहुत ही सरल नियमसे बताई जा सकती है। उन्होंने बताया कि हम निम्नलिखित संख्या लेवें।

० १ २ ४ ८ १६ ३२ ६४ १२८ २५६, जिनमें पहली दो संख्याओंके अतिरिक्त प्रत्येक संख्या अपनी पहली वाली संख्याकी दूनी है। अब इन्हें ३ से गुणा करें तो यह ० ३ ६ १२ २४ ४८ ९६ १९२ ३८४ ७६८ हो जाती हैं। यदि अब इनमें ४ जोड़ दें तो हमें निम्नलिखित संख्यायें मिलती हैं—४ ७ १० १६ २८ ५२ १०० १९६ ३८८ ७७२। ये संख्यायें ग्रहोंकी सूर्यसे दूरीके लगभग अनुपाती हैं। यदि हम पृथ्वीकी दूरीको सूर्यसे १० मानें तो ये दूरी निम्नलिखित हैं।

बुध	शुक्र	पृथ्वी	मंगल	बृहस्पति	शनि	यूरेनस	नेपच्यून	प्लूटो
३.९	७.२	१०	१५.२	५२	९५.४	१९१.९	३००	४००

जब बोडने यह नियम बताया था उस समय यूरेनस और नेपच्यूनका पता नहीं चला था। जब सन् १७८१ ई०से सर विलियम हर्शेलने यूरेनसकी खोजकी तब यह मालूम हुआ कि इसकी दूरी सूर्यसे बोडके नियमसे दी हुई दूरीके लगभग ही है। इससे लोगोंको विश्वास हो गया कि बोड के नियममें कुछ सत्यता अवश्य है। केपलरने बताया कि इस नियमके अनुसार मंगल और बृहस्पति के बीचमें २८ की संख्या पर कोई ग्रह नहीं है। टीटसने कहा कि मंगल और बृहस्पति के बीचमें एक ग्रह जरूर रहा होगा। यूरेनसकी खोजके बाद तो यह विश्वास और भी पक्का हो गया और ज्योतिषी सोचने लगे कि यह ग्रह किसी कारणसे टुकड़े टुकड़े होकर छोटे-छोटे ग्रहोंमें विभाजित हो गया है।

सिरिसकी खोज

इस विचारके आधार पर बहुतसे ज्योतिषी नये ग्रहोंकी खोजमें लग गये, यहाँ तक कि बैरन वान ज़ैचकी

अध्यक्षतामें इन ग्रहोंको खोजके लिये २४ ज्योतिषियोंकी एक सभा बनाई गई। प्रथम सफलता इटलीके एक ज्योतिषी पीयाजी को सन् १८०१ ई०के प्रथम दिवस पर हुई जिन्होंने एक सातदीप्तिक्रम वाले तारेको ऐसी जगह देखा जहाँ पहले उन्होंने कुछ नहीं देखा था। यह सर्व विदित है कि तारोंकी जो स्थिर कहे जाते हैं बहुत कम गति होती है। और इसलिये आकाशमें उनके आपेक्षिक स्थानमें बहुत कम परिवर्तन होता हैं। तथा ग्रह तारोंके क्षेत्रमें चलते हैं। इसलिये किसी तारेको कुछ घंटोंके अंतरमें देखनेसे शीघ्र विदित हो जाता है कि वह ग्रह है या तारा। पीयाजीने जो नक्षत्र तलाश किया वह ग्रह निकला और इसकी सूर्यसे दूरी भी बोडके नियमानुसार पृथ्वीकी सूर्यसे दूरीकी २.८ गुनी निकली। परन्तु यह इतना छोटा था कि यह कोरी आँखसे नहीं दिखाई देता था। इसका व्यास सिर्फ ८०० की. मी. तथा इसकी तोल पृथ्वीकी तोलका १/२०००० गुनी ही थी। पियाज़ीने अपने जन्मस्थान सीसीली द्वीपके एक देवताके नामके आधारपर इस ग्रहका नाम सिरिस रक्खा इस ग्रहकी खोजके बाद सब यह सोचने लगे कि ऐसे दूसरे ग्रह और होने चाहिये। बहुतसे छोटे-छोटे ग्रहोंकी इसके बाद बड़ी जल्दी-जल्दी खोज हुई परन्तु यह सब बहुत ही छोटे थे। सन् १८०२ ई० में ओलबर्सने पल्लासकी तथा सन् १८०७ ई०में हार्डिंगने जूनो-की खोजकी। वेस्टा ही जिसकी खोज ओलबर्सनेकी थी एक ऐसा लघुग्रह था जो कि कोरी आँखसे देखा जा सकता था। इसके बाद बहुत समय तक कोई खोज नहीं हुई। सन् १८४५ ई०में हेनेकेने पाँचवाँ लघुग्रह निकाला जिसका नाम एस्ट्राई रक्खा गया। यह सब ग्रह इतने छोटे थे कि इनका खोज निकालना उतना ही कठिन था जितना रेतीले नदीतटसे सोनेके कण। फिर तो ज्योतिषियोंके घोर परिश्रमसे सन् १८९० ई० तक लगभग ३०० ऐसे छोटे ग्रह खोज निकाले गये।

लघुग्रहोंके खोजने की नई विधि

सन् १८९१ ई०में जर्मनीके विख्यात नगर हीडेलबर्ग के निकटकी कोनिग्सटील वेधशालाके ज्योतिषी मैक्सवोल्फ ने इन ग्रहोंके खोजनेकी अत्यन्त सरल विधि निकाली। इन्होंने एक चौड़े कोडके कैमेराको निरक्षवत् लगाया और घंटी यंत्रसे उसे तारेके क्षेत्रके विरुद्ध चलाया तथा उसकी गति खगोलकी गतिके बराबर रक्खी। इससे कैमेराके नाभि तलमें तारे तो सिर्फ बिन्दुसे नज़र आवेंगे तथा ग्रह लम्बी लकीरकी तरह। इससे प्लेटको ठीक तरहसे जाँचने पर हम बहुत जल्दी यह मालूम कर सकते हैं कि जिस स्थान पर कैमेरा संग्रह किया गया है वहाँ फोटो लेनेके समय पर कोई ग्रह था या नहीं। इस नई विधिके कारण ग्रहोंका खोजना इतना सरल हो गया कि सन् १८९१ ई०से हर साल सौ से दो सौ ग्रह तक खोजे जाने लगे। इस विधिमें यह त्रुटि है कि बहुत ही छोटे ग्रह कैमेराकी प्लेट पर अपना निशान नहीं बनाने पाते। इसलिये इसी विधिका दूसरा परिवर्तन किया गया जिसमें कैमेराको ग्रहकी गति के बराबर तथा विरुद्ध गति दी गई। जिससे प्लेट पर ग्रह तो स्थिर हो गये तथा तारे छोटी वक्र रेखायें बनाने लगे। और क्योंकि ग्रहोंकी रोशनी एक ही स्थान पर बहुत समय तक पड़ती रहती है इसलिये बहुत छोटे ग्रह भी इस विधिसे मालूम किये जाने लगे। बहुत सी वेधशालाओं में तो इन ग्रहोंकी खोजपर ही मुख्य काम हो रहा है। जिनमेंसे मैक्स वोल्फकी हीडेलबर्गमें कोनिग्सटूल, रोममें सिरुसिस तथा बैलिजियममें ब्रूसेलसके निकट वीलकी वेधशालायें मुख्य हैं।

लघुग्रहोंके नाम कैसे रक्खे जाते हैं?

अब तक ३०००से ज्यादा लघुग्रहोंका अवलोकन हुआ है। परन्तु इनमेंसे कुछ तो ऐसे हैं जिनका पहले अव-लोकन हो चुका है। इण्टर नेशनल एस्ट्रोनोमिकल यूनियन-ने बर्लिनके रेचेन इन्स्टीटयूटके हाथ यह काम सौंपा है कि वह बतावें कि कोई नया लघुग्रह वास्तवमें नया है या पहलेके मालूम किये हुये ग्रहोंमेंसे एक है। जब उन्हें पूर्ण विश्वास हो जाता है कि वास्तवमें एक नये लघुग्रहकी खोज हुई है तब वे इसके एक नम्बर देते हैं। अब तक कुल २००० नम्बर दिये गये हैं। इस तरहसे सेरेसका नम्बर १ तथा एस्ट्राईका नम्बर ५ है।

इन ग्रहोंके नामकरणमें बड़ी कठिनाई होती है पहले इनके नाम ग्रीस तथा रोमके देवी-देवताओंके नाम

पर दिये जाते थे। परन्तु ऐसे नाम शीघ्र ही समाप्त हो गये। तद्पश्चात् इनके नाम प्रसिद्ध ज्योतिषियों, नगरों, विद्यालयों, मित्रों और यहाँ तक कि पालतू कुत्तों तथा जहाजोंके नाम पर दिये जाने लगे। परन्तु इन्हें रेचेन इन्स्टीटयूटके दिये हुये नम्बरोंसे पुकारना सबसे उत्तम हैं। रेचेन इन्स्टीटयूट इनके सालाना सूचीपत्र छापते हैं और इनमें इनका तोल, दूरी कक्ष, परावर्तकता तथा और सब लक्षण एक जगह एकत्र करके देते हैं।

एरोस

इन लघुग्रहोंकी गहरी जाँचसे कुछ विचित्र बातें मालूम हुई हैं। इनकी मध्यमान दूरी बोडके नियमके अनुसार २·८ गुनी ही है। परन्तु कुछ ऐसे भी लघुग्रह हैं जो बहुत दूर हैं तथा कुछ ऐसे भी हैं जो बहुत निकट हैं। हिडालगो (९४४) जिसको कि सन् १९२० ई०में बोड ने खोजा था, ५·७ गुनी दूरीपर है तथा यह १३·७ सालमें सूर्यका पूरा चक्कर लगाता है। इसका कक्ष क्रान्तिव्रतसे ४०° झुका हुआ है और इसकी विकेन्द्रता ·६५ है। जब यह सूर्यके अत्यन्त निकट होता है तब इसकी दूरी दो एकांक रहती है तथा जब यह सब से ज्यादा दूर चला जाता है तब यह शनिके कक्षसे भी दूर निकल जाता है। इन ग्रहोंमें एरोस (४३३) जिसको सन् १८९८ ई०में बर्लिनके डा० विल ने खोज निकाला था बहुत ही कामका है। यह १$\frac{3}{4}$ सालमें सूर्यका चक्कर लगाता है और इसका कक्ष मंगल और पृथ्वीके बीचमें है। और जब यह पृथ्वीके निकट पहुँचता है तब इसकी दूरी शुक्रकी आधी दूरीसे कुछ ज्यादा है। यह लघुग्रह जिसका व्यास २५ मीलसे ज्यादा नहीं है ब्रह्मांडकी दूरीके एकांक निकालनेके लिये बड़े कामका है। जो लोग ज्योतिषसे परिचित हैं वे जानते हैं कि नक्षत्रोंकी दूरीको बतानेके लिये पृथ्वी और सूर्यकी मध्यमान दूरीको एकांक माना जाता है। गुरुत्वाकर्षणके सिद्धांतसे हम दूसरे नक्षत्रोंकी दूरी इस एकांकमें मालूम कर सकते हैं। दो नक्षत्रोंकी दूरीकी ठीक-ठीक सैण्टीमीटरमें जाननेके लिये हमें यह मालूम करना है कि इस एकांकमें कितने सैण्टीमीटर होते हैं। इसके लिये यदि हम दो नक्षत्रोंको दूरी सैण्टीमीटरमें मालूम कर लें तो हमारा काम चल जायगा। एरोसकी खोजके पहले शुक्र, जब यह सूर्यके मंडल परसे निकलता था इस काममें लाया जाता था। परन्तु शुक्र सूर्यके मंडल परसे बहुत कम निकलता है तथा बहुत समय बाद भी निकलता है। इस लिये एरोस ने इस कामके लिये अब शुक्रकी जगह ले ली है। परन्तु अब आशाकी जाती है कि एरोसकी जगह एक नया लघुग्रह ले लेगा जिसकी खोज सन् १९३६ ई०में हुई है।

अडोनिस्

इस लघुग्रह-अडोनिसकी खोज ब्रूसेलसके निकट वीलकी रायल बेलजियन वेधशालाके अध्यक्ष मि० देलपोर्ट ने १२ फर्वरी सन् १९३६ ई०को की। अडोनिस एक लम्बे दीर्घवृत्तमें चक्कर लगाता है। जब यह सूर्यके निकट होता है तब यह बुधके कक्षाके निकट होता है और जब यह पृथ्वीसे सबसे ज्यादा दूर चला जाता है तब यह मंगल और बृहस्पतिके बीचमें होता है। वास्तवमें यह अपनी खोजके कुछ दिन पहले पृथ्वीके करीब १-२ करोड़ कीलोमीटरकी दूरीसे गुज़रा था। इसका कक्ष क्रान्ति-वृत्तसे १° झुका हुआ है। इसलिये ऐसी आशाकी जाती है कि किसी समय यह पृथ्वीके बहुत निकट पहुँच जायगा। गणनासे यह विदित हुआ है कि सन् १९५५ ई०में अडोनिस पृथ्वीके बहुत निकटसे निकलेगा। तब पृथ्वीपर क्या होगा? उसके विषय में तीन बातोंकी सम्भावना है (१) शायद अडोनिसकी उस समय इतनी ज्यादा गति हो कि पृथ्वीके आकर्षणके कारण यह थोड़ा बहुत डगमगानेके बाद फिरसे अपनेपूर्व कक्षपर चलना शुरू कर देवे। (२) या पृथ्वीके आकर्षणके कारण इसके बहुत निकट आकर इसका एक छोटासा चन्द्रमा बन जावे। (३) तीसरी बात जो ज्योतिषी एच. एन. रसेलने गणनासे निकाली है और जिसकी सम्भावना ५०,००० में एक है बहुत विचित्र है। ऐसा हो सकता है कि जब अडोनिस पृथ्वीके निकट पहुँचे तब इसकी गति बहुत कम हो और इस कारण इस पर पृथ्वीके आकर्षणका इतना ज्यादा प्रभाव हो कि यह उल्कोंकी तरह वायुमंडलमें चमकता हुआ पृथ्वीकी सतहसे ३० किलोमीटर प्रति सैकिंड के वेगसे टकराये। इस दुर्घटनाके परिणामका विचार करके

तो रोंगटे खड़े हो जाते हैं। जब सन् १९०८ ई०में एक बड़ा उल्का जिसकी तौल सिर्फ १०० टन थी साईबेरियामें गिरा था, तब तो तमाम पृथ्वी पर इतनी खलबली मच गई थी और अगर अडोनिस जिसकी तौल दो करोड़ टन है पृथ्वीसे टकराये तो इसका परिणाम क्या होगा, यह लिखना हमारी शक्तिके बाहर है।

लघुग्रहोंकी उत्पत्ति

अडोनिसकी खोजके कारण इन लघुग्रहोंकी उत्पत्तिके विषयमें अनेक नये मत प्रकट हुये हैं। जैसा ऊपर लिख आये हैं पूर्व ज्योतिषियोंका विचार था कि ये मंगल और वृहस्पतिके बीचके लघुग्रहके हज़ारों टुकड़े हैं। परन्तु अब यह विचार बिल्कुल छोड़ दिया गया है। आजकल जो सिद्धान्त इनकी उत्पत्तिके लिये दिया जाता है वह यह है—यह लघुग्रह सूर्यके चारों ओर शनिकी कुंडलीकी तरह कुंडली बनाते हैं। इस कुंडलीमें बहुत छोटे-छोटे टुकड़े हैं जो अपने-अपने कक्षोंमें सूर्यके चारों ओर घूमते हैं। यह टुकड़े कुछ सेण्टीमीटरसे लेकर रेतके कणोंके बराबर है। शनिके परके मनुष्य भी (यदि वहाँ पर मनुष्य रहते हैं तो) सूर्यके चारों ओर ऐसी कुंडलिया देखेंगे जैसी कि हम शनिके चारों ओर देखते हैं। राशिचक्र-प्रकाशसे हमें इन कुंडलियोंके विषयमें कुछ बातें मालूम होती हैं। यह प्रकाश अर्द्ध गर्म स्थानोंमें स्वच्छ चाँदनी रातको बहुत अच्छा दृष्टिगोचर होता है, और इनके देखनेके लिये उत्तरी मिश्र सबसे अच्छी जगह है। यहाँपर सूर्यास्तके पश्चात् आकाशमें क्रान्तिवृतके साथ-साथ एक चमकतासा कोहरा जिसकी तीव्रता आकाश-गंगाके बराबर ही होती है, दिखाई देता है। यह प्रायः सूर्यसे ६०° तक फैला रहता है और कभी-कभी तो यह तमाम आकाशमें क्रान्तिवृत्तके साथ-साथ फैला रहता है और सूर्यके ठीक दूसरी ओर बहुतसे प्रकाश-का समाहरण हो जाता है जिसे "Gagenschin" (Anti-light) कहते हैं। इस प्रकाशका कारण मालूम करनेके लिये ज्योतिषियोंको बहुत समय तक उलझन-में पड़ा रहना पड़ा। राशिचक्र-प्रकाशके वर्ण परसे यह साफ़ मालूम होता है कि यह सूर्यका परावर्तित प्रकाश है। परन्तु इससे यह नहीं मालूम होता कि परावर्त्तन किसी गैससे होता है या रजकणसे। यदि यह गैससे होता है तो परावर्तित प्रकाश आकाशके प्रकाशकी तरह पूर्ण ध्रुवित होगा और यदि वह रज कणोंसे है तो परावर्तित प्रकाश बिलकुल ध्रुवित नहीं होगा। अवलोकनसे मालूम हुआ है कि राशि-चक्र-प्रकाश कुछ-कुछ ध्रुवित है। इससे यह परिणाम निकाला जाता है कि कुंडलियोंमें ठोस कण होते हैं जिनका बुध और पृथ्वीके कक्ष तक पहुँचते-पहुँचते वाष्पीकरण हो जाता है। अतः हम कह सकते हैं कि इन छोटे-छोटे टुकड़ों, रजकणों तथा वाष्पकी कुंडलियोंके कारण ही राशिचक्र-प्रकाश होता है जो कि मंगल और वृहस्पतिके कक्षों तक फैला हुआ है और यह लघु ग्रह इन कुंडलियोंके बड़े टुकड़े हैं।

समुद्रकी कहानी

समुद्रकी तलैटी

यदि समस्त समुद्र सूख जावें, तो उनके नीचेकी तलैटी किस प्रकारकी होगी ? भूमिका एक नया ही चित्र दिखायी देगा। समुद्रकी तलैटीमें कैसी मिट्टी है, इसका ज्ञान आजकल बहुत कुछ हो गया है। पर गत शताब्दीके मध्य तक लोगोंको इसका अधिक पता न था। सन् १८७२-७६ ई०के चैलेञ्जर-जहाज़की जाँच-पड़ताल इस सम्बन्धमें बड़े महत्वकी है। धातुके भारी टुकड़े–लीड–जो सिरेपर खोखले थे समुद्रमें डुबाये गये। लीडके सिरेपर चर्बी लगा दी गई थी जिसकी चिकनाईके कारण समुद्रकी तलैटीकी मिट्टी लीडमें चिपक आयी। बस मिट्टीकी बादको परीक्षा की गयी थी।

समुद्र तलैटीकी मिट्टी तीन भागोंमें बाँटी गयी—

(१) १०० फैदमोंके नीचेकी गहराईकी मिट्टी—इसमें लाल मिट्टी, रेडियो लेरियन पंक (अज) द्वयणुक पंक, ग्लोबिजेरिना पंक टीरोपोड पंक, या मत्स्यपंक, नीला कीचड़, लाल कीचड़, हरा कीचड़, ज्वालामुखिक कीचड़ और मूँगा कीचड़ सम्मिलित हैं।

(२) १०० फैदमसे कम गहरे तलकी मिट्टीमें तरह तरहकी बालू और कुछ कीचड़ होता है।

(३) तटस्थ बालू—जो समुद्रके किनारोंके स्थानोंपर होती है। इनमें पत्थरके कचरे, और बालू होती है।

कीचड़ोंमें क्या होता है ?

तरह तरहके कीचड़ोंका कुछ वृत्तान्त नीचे दिया जाता है—

(१) **नीला कीचड़**—रवेदार चट्टानोंके चूर-चूर होनेसे यह बनता है। इसमें कुछ कार्बनिक अवशेष भी होते हैं और आयरन सल्फ़ाइड भी। इसका नीला रंग आयरन सल्फ़ाइडके कारण होता है। जब लोहा आयरन ऑक्साइडके रूपमें होता है तब रंग भूरा या लाल हो जाता है। इसलिये नीले कीचड़का पृष्ठ-तल बहुधा लाली लिये होता है। नीला कीचड़ अधिकतर नदियों द्वारा समुद्रमें पहुँचता है। अतः इसमें थल-भागके वानस्पतिक और जान्तव पदार्थ भी मिले होते हैं। मछलियोंके शरीरका अवशेष कैलशियम कार्बोनेट भी इसमें पाया जाता है।

(२) **लाल कीचड़**—कीचड़का फेरस ऑक्साइड यदि ओषदीकृत होकर फेरिक—ऑक्साइड हो जाय तो कीचड़का रंग लाल हो जायगा।

(३) **हरा कीचड़**—यह एक प्रकारका नीला कीचड़ ही है। इस कीचड़में एक हरा खनिज मिला रहता है जिसे ग्लौकोनाइट कहते हैं। इसमें लोहे, पोटेशियम, एल्यूमीनियम और सिलीकनके ऑक्साइड होते हैं।

(४) **मूँगा और ज्वालामुखिक कीचड़**—यह कीचड़ मूँगाके अवशेषोंसे या ज्वालामुखिक चट्टानोंके चूरेसे बना होता है।

पंक या ऊज़ क्या है

पंक शब्दका साधारण अर्थ कीचड़ है, पर हमने इस शब्दका प्रयोग एक विशेष अर्थमें किया है। स्थल-भागसे बहाये हुये जो पदार्थ समुद्रमें जम जाते हैं, वे तो कीचड़ कहलाते हैं, पर पंक तो समुद्रमें रहने वाले जल जीवोंके शरीरावशेष हैं। इनमें कैलशियम और सिलीकणके यौगिक होते हैं।

समुद्रतल पर रहनेवाली टीरोपोड और गैस्ट्रोपोड जातिकी शेल-मछलियोंके शरीरके अवशेषोंसे बना पंक टीरोपोड-पंक कहलाता है। उष्ण कटिबन्धीय समुद्रोंकी तलैटियोंमें यह पंक १००० फैदमकी गहराई तक पाया जाता है। इससे नीचेकी गहराईमें यह नहीं मिलता, क्योंकि अधिक गहरे पानीमें जाते जाते यह घुल जाता है। लगलग २,५७,००० वर्गमील-क्षेत्रफलमें टीरोपोड पंक पाया गया है।

फोरे मिनिफेरा वर्गके विशेष कृमि जिन्हें ग्लोबिजेरिना बुलोइडिस कहते हैं, जब नष्ट हो जाते हैं तब उनके अवशेषोंके जमा हो जानेसे ग्लोबिजेरिना पंक बनता है।

२००० फैदमसे नीचे कृमियों और शैलोंके शरीर सब घुल जाते हैं। इसलिये इतनेसे नीचे की गहराईमें पंक नहीं पाये जाते।

सूक्ष्म वनस्पतिक पदार्थोंके सिलीकणीय अवशेषोंसे

जो पंक बनता है उसे द्वयणुक-पंक (डायटोमिक-ऊज़) कहते हैं। यह दक्षिण ध्रुवीय महासागरमें विशेष पाया जाता है। २००० फैदमकी औसत गहराईमें यह मिलता है। १ करोड़ वर्गमील चेत्रफलमें यह फैला हुआ है।

जिस प्रकार सूक्ष्म वनस्पतिक पदार्थोंसे द्वयणुक-पंक प्राप्त होता है, उसी प्रकार सूक्ष्म जान्तव पदार्थोंसे जो पंक मिलता है उसे रेडियो लेरियन-पंक कहते हैं। यह समुद्रके गहरे पानीमें बहुधा मिलता है।

लाल मिट्टी—लाल मिट्टी पंकसे इस बातमें भिन्न है कि इसमें कार्बनिक अंशका सर्वथा अभाव होता है। यह बहुत नीचेकी गहराइयोंमें ही पायी जाती है। ५,१०,००००० वर्गमील के चेत्रफलमें यह पायी गयी है। यह ज्वालामुखिक शिलाओंके चूरेसे बहुधा बनती है। इसमें फेरिक औक्साइड और मैंगनीज़ औक्साइड होता है। लाल मिट्टीमें बहुधा शार्क मछलियोंके दाँत और ह्वेल मछलियोंके कानोंकी हड्डियाँ भी मिली रहती हैं।

समुद्र तलैटीके कीचड़ों, पंकों और मिट्टियोंमें संसारका पुराना इतिहास छिपा पड़ा है।

विषय-सूची

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग।

Only Cover Printed at The Indian Press, Ltd., Allahabad

जुलाई, १९३९

मूल्य ।)

आयुर्वेद विशेषांक

विज्ञान-परिषद् का मुख-पत्र जिसमें आयुर्वेद विज्ञान भी सम्मिलित है

भाग ४९,

संख्या ४

डाक्टर बोयर्की एक रोगीका कायरोप्रेक्टिक पद्धतिसे इलाज कर रहे हैं।

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces & Central Provinces for use in Schools and Libraries.

विज्ञान

पूर्ण संख्या २९२ | वार्षिक मूल्य ३)

नियम

(१) विज्ञान मासिक पत्र विज्ञान-परिषद्, प्रयाग, का मुख-पत्र है।

(२) विज्ञान-परिषद् एक सार्वजनिक संस्था है जिसकी स्थापना सन १९१३ ई० में हुई थी। इसका उद्देश्य है कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययन को प्रोत्साहन दिया जाय।

(३) परिषद् के सभी कर्मचारी तथा विज्ञान के सभी सम्पादक और लेखक अवैतनिक हैं। मातृभाषा हिन्दी की सेवा के नाते ही वे परिश्रम करते हैं।

(४) कोई भी हिन्दी-प्रेमी परिषद्की कौंसिल की स्वीकृतिसे परिषद् का सभ्य चुना जा सकता है। सभ्यों को ५) वार्षिक चन्दा देना पड़ता है।

(५) सभ्योंको विज्ञान और परिषद् की नव-प्रकाशित पुस्तकें बिना मूल्य मिलती हैं।

नोट—आयुर्वेद-सम्बन्धी बदले के सामयिक पत्रादि, लेख और समालोचनार्थ पुस्तकें स्वामी हरिशरणानंद, पंजाब आयुर्वैदिक फ़ार्मेसी, अकाली मार्केट, अमृतसर' के पास भेजे जायँ। शेष सब सामयिक पत्रादि, लेख, पुस्तकें, प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र तथा मनीऑर्डर 'मंत्री, विज्ञान-परिषद्, इलाहाबाद' के पास भेजे जायँ।

चित्र २—स्वस्थ सुषुम्नाका एक्स-रे फ़ोटो

चित्र ३—अस्वस्थ सुषुम्नाका एक्स-रे फ़ोटो
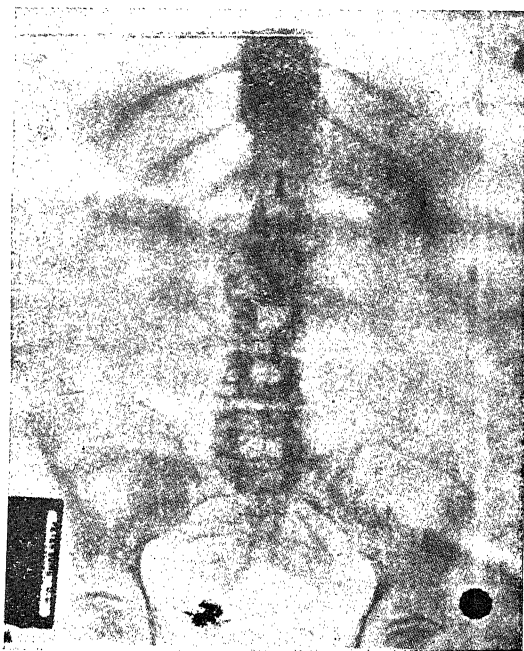
चित्र ४—सन्धियोंकी शोथसे आक्रान्त रोगीकी सुषुम्नाका एक्स-रे फ़ोटो
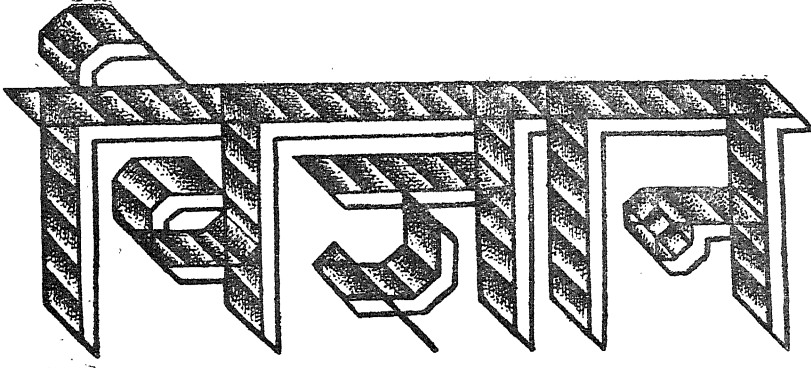
विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्याभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ४९	प्रयाग, मेषार्क, संवत् १९९६ विक्रमी जुलाई, सन् १९३९ ई०	संख्या ४

चेचक तथा टीका

(डा० उमा शंकर प्रसाद, एम० बी. बी एस.)

चेचकसे बचनेके लिए टीका लगवाना चाहिये। बीमारियोंसे बचनेके लिये टीका लगवानेमें सबसे पहला नम्बर चेचकके लिये टीका लगानेका है। मनुष्योंको पहले इस प्रकारकी युक्ति चेचकके ही लिये मालूम हुई और उसके बाद तो बहुतसे रोगोंके बचनेके लिये टीका लगने लगा-जैसे कालरा (महामारी), टाइफाइड (मोतीझरा) डिपथिरिया रोग आदिमें। चेचकके टीके को शरीरमें लगवानेसे शरीरके रक्तमें ऐसी वस्तुयें पैदा हो जाती हैं जो चेचक रोगसे लड़ कर उसे परास्त कर देती हैं अथवा यदि तब भी चेचककी बीमारी होती है तो इस रोगका ज़ोर बहुत कम हो जाता है, जिससे कष्ट तथा हानियाँ थोड़ी ही होती हैं। टीका लगानेके कानूनके पहले चेचक रोगसे मनुष्योंको बहुत कष्ट सहना पड़ता था जो अब इस कानूनके कारण बहुत कम हो गया है। चेचकके लिये टीका लगानेसे बहुत लाभ होता है, फिर भी अन्धविश्वास या अज्ञानताके कारण बहुत लोग इस प्रथाका घोर विरोध करते हैं और छिप कर कानूनसे बचनेकी कोशिश करते हैं। यदि इन लोगोंको टीके द्वारा लाभ ज्ञात हो जाय तो संभवतः वही स्वयं टीका लगवानेके लिये आगे आवेंगे।

एक समय था जब संसार भरमें चेचक रोगका बड़ा आतंक था। लोग इस नामसे घबड़ाते थे और जैसा बहुधा हुआ करता है, ऐसे भीषण शत्रुको माता देवी, या भवानी आदि नाम देकर पूजा करते थे जिससे शायद इस रोगकी कृपा-दृष्टि उनपर हो और वे रोगके उग्र कोपके बलिदान न बनें। टीका प्रथाके पहले तो १०० में शायद ही ४-५ मनुष्य ऐसे बचते थे जिन्हें चेचक नहीं निकलती रही हो। रोगकी भीषणताका अनुमान करनेके लिये शायद यह जानना काफ़ी है कि चौथाईसे ऊपर रोगियोंकी मृत्यु हो जाती थी और जो जीवित बचते थे उनमेंसे बहुतोंके अंग बेकार हो जाते थे। प्रायः लोग अंधे हो जाते थे जिससे उनका भविष्यका जीवन बोझ हो जाता था। हम चेहरेकी कुरूपताका तो विचार ही नहीं करते। अब भी रोगका

बहुत आतंक है। किसी मेले तमाशेमें आदमियोंकी भीड़में आप ध्यान दीजिये तो चेचकके दाग़ वाले मनुष्योंकी अच्छी संख्या आजकल भी आपको देखनेको मिलेगी। सन् १९२७ ई० से १९३७ ई० तकके १० वर्षमें बम्बई शहरमें चेचक रोगसे ९५८९ मनुष्य पीड़ित हुये तथा अजमेर शहरमें (आबादी १,१९५२४) प्रतिवर्ष औसत ६९६ मनुष्योंकी मृत्यु चेचकसे होती है। यहाँ यह भी कह देना ठीक होगा कि अधिकांश लोग चेचककी रिपोर्ट नहीं भेजते हैं। इसलिये ऊपरके अंकसे कहीं अधिक रोगी रहे होंगे। हम जानते हैं कि चेचक ऐसी बीमारी है कि यदि सब लोग सहयोग करें तो यह रोग शीघ्र ही बहुत कम किया जा सकता है। दुनिया भरमें चेचक रोगकी संख्या सबसे अधिक भारतवर्षमें है। यहाँकी जनता अभी इन बातोंमें दिलचस्पी नहीं लेती है अथवा समझती भी नहीं है और न इस ओर ध्यान देनेका समय ही पाती है। समाज-सेवा करने वाले तथा पबलिक हेल्थ अफसरोंका ध्यान इस ओर अब जा रहा है और आशा है कि वे शीघ्र ही जनतामें जातिकी तन्दुरुस्ती बनानेका शौक पैदा करनेमें सफल होगें। रेड क्रॉस सोसाइटी सचमुच इस ओर बहुत मेहनतसे प्रशंसनीय कार्य कर रही है।

टीकाके सम्बन्धमें ऐतिहासिक बातें

भारतवर्षके ग्वाले बहुत पहलेसे जानते थे कि गो-चेचक (काऊ पौक्स) का रस मनुष्यके चमड़ेपर खरोंच कर रगड़नेसे उस व्यक्तिको साधारण चेचक नहीं होती या चेचक होनेपर रोगका ज़ोर हल्का रहता है। परन्तु संसार भरमें आधुनिक टीका प्रथा निकालने तथा फैलानेका श्रेय डाक्टर जेनर महोदयको मिला है। इन्होंने बहुतही बुद्धि-संगत प्रयोगों द्वारा जनताको विश्वास दिला दिया कि गायके चेचक द्वारा मनुष्य चेचक रोगसे मुक्त हो जाता है। विलायतमें भी गाँवके ग्वाले जानते थे कि गायके साथ रह कर काम करने वाले ग्वालोंको चेचक रोग बहुत कम होता है। सडबरी गाँवमें डाक्टर जेनरने जब किसी ग्वालेके मुखसे कहते सुना कि "मुझे चेचक रोग नहीं हो सकता है, क्योंकि गायके चेचककी छूत मेरे शरीरके जख्मपर एक बार हो गयी थी" तो उनके मस्तिष्कमें यह बात जम गई। डोरकेस्टरशायर नामक स्थानके बेनजर्मीन जेक्टी किसानने अपनी पत्नी तथा दोनों लड़कों को सन् १७७४ ई० में टीका लगाया और इन सबको चेचकका रोग नहीं हुआ। सन् १७९१ ई० में होलेस्टीनने भी प्लेट गाँवमें तीन लड़कोंको गायके चेचकके रससे टीका लगाया। परन्तु डाक्टर जेनरने कई प्रयोगों द्वारा यह निश्चय और सिद्ध किया कि जिस व्यक्तिको गायका चेचक रोग होता है उसे मनुष्यके भीषण तथा मृत्यु देने वाले चेचक रोगसे डर नहीं रहता। मनुष्योंमें गायकी चेचक बहुत ही हल्का ज़ोर दिखलाती है इस लिये चेचककी भीषणतासे बचनेके लिये गो-चेचक शरीरमें पैदा करना अनुचित ही नहीं बल्कि बुद्धिमानी भी है। वाटर हाउस महोदय तथा अन्य व्यक्तियों ने डा० जेनरकी बातका प्रयोग किया तथा सफलता पानेपर उनके सिद्धान्तको आगे बढ़ानेका प्रयत्न किया।

डा० जेनर ने अपना अकाट्य प्रयोग १४ मई सन् १७९६ ई० में किया। इन्होंने सारह नेल्म नामक ग्वालिनके हाथ पर गो-चेचकके घावसे रस निकाल कर जेम्स फिप्स नामक ८ वर्षके लड़केके चर्मपर खरोंच कर रगड़ दिया। ग्वालिनके हाथोंमें तो काटा चुभ गया था और उसके एक गायको गो-चेचक हुई थी जिससे छूत लगकर सारह नेल्मको भी हाथ पर गो-चेचकका रोग हो गया था। जेम्स फिप्सको भी रगड़े स्थानपर गो-चेचकका घाव उभर आया। परन्तु रोगका दौरा बहुत ही हल्का था। अब यह सिद्ध करना था कि गो-चेचक रोग हो जानेके कारण इस लड़केको मनुष्य-चेचक रोगकी छूत नहीं होगी। इस उद्देश्यसे डा० जेनरने जुलाई महीनेमें मनुष्य-चेचक पीड़ित व्यक्तिके चेचक घावके रसको उसी लड़केके हाथमें चमड़ा खरोंच कर कई स्थानपर रस रगड़ दिया। परन्तु लड़केको मनुष्य-चेचक रोग नहीं हुआ। हाँ, लड़केके हाथ पर केवल उन्हीं खरोंचके स्थानों पर अवश्य चेचकके टीके लगानेके दाने उभर गये। परन्तु शरीरके अन्य भाग पर चेचक नहीं निकली जैसा साधारणतः चेचक रोगमें होता है। कई माह बाद इसी प्रयोगको पुनः उसी लड़के पर दुहराया गया, पर फिर भी लड़का चेचक रोगसे मुक्त रहा।

ऊपरका प्रयोग सिद्ध करनेके बाद डा० जेनर ने १० ऐसे व्यक्तियोंको चुना जिन्हें पहले गो-चेचक हो चुका

था और इन सब मनुष्योंमें ऊपर बतलाये हुये के अनुसार मनुष्य-चेचक-रस शरीरमें प्रविष्ट किया परन्तु इन दसों व्यक्तियोंको चेचक रोग नहीं हुआ।

इन प्रयोगोंसे डा० जेनरके मनमें पूरा विश्वास हो गया कि टीका लगाना उचित है। वैज्ञानिक दृष्टिसे यह निश्चय हो गया कि गो-चेचक रोग मनुष्योंमें कोई उत्पात नहीं करता है और इसका दौरा बहुत ही हल्का होता है तथा इस दौरेके बाद उस व्यक्तिको मनुष्य-चेचकके भयंकर रोगसे छुटकारा मिल जाता है। जेनर ने अपने इस सिद्धान्तको संसारके सामने लानेके पहले अपना मन कई प्रकारकी उक्तियों द्वारा दृढ़ कर लिया। सन् १७९६ ई० में जेनरने अपनी जाँच पड़तालकी सब रिपोर्ट रॉयल सोसायटीके आगे पेश की। डा० जेनर स्वयं इस सोसाइटीका सदस्य था। परन्तु अंधविश्वासके कारण रायल सोसायटी ने डा० जेनरके जाँच-पड़ताल पर सोचनेकी आवश्यकता न समझ कर सब कागजोंको बिना पढ़े ही वापस कर दिया। बेचारे डाक्टरने हताश हो कर अपनी इस रिपोर्टको छोटी-सी पुस्तकके रूपमें छपवाया जिसका नाम था—"गो-चेचक रोगके कारण तथा परिणामोंके सम्बन्धमें जाँच पड़ताल" यह पुस्तक तो सभी लोगोंके पढ़ने योग्य वस्तु है।

जेनरके इस सत्य आविष्कार ने पास्टयूर नामक विद्वान् डाक्टरका ध्यान आकर्षित किया। और इस सिद्धान्तपर विचार किया और सिद्धान्तके लिये उचित कारण ढूँढ़ा तथा समझानेका प्रयत्न किया।

हावर्ड मेडिकल स्कूलके भौतिक विज्ञानके प्रोफेसर बेनजमिन वाटर हाउस पर भी जेनरके सिद्धान्तका बहुत असर पड़ा और इन्होंने दूसरे देशोंसे गो-चेचकका रस तागेमें लगवा कर मँगवाया। ८ जुलाई सन् १८०० ई० में प्रोफेसर साहब ने अपने ५ वर्षके लड़के, डेनियल आलिवर वाटर हाउस-को उस रससे टीका लगाया। अमेरिकामें टीका लगवाने वाला यही पहला व्यक्ति था। लड़केके बाद दो गुलामोंको भी टीका लगाया गया और कुछ समय बाद इन सबको मनुष्य चेचक-रसका टीका लगाया गया लेकिन मनुष्य-चेचक-रोग इन व्यक्तियोंमें पैदा न हो सका।

बोस्टन शहरमें १६ अगस्त सन् १८०२ ई० में गो-चेचक-रससे १९ लड़कोंको टीका लगाया गया। उसके बाद ९ नवम्बरको इनमेंसे १२ लड़कोंके शरीरमें चेचक-रस प्रवेश किया गया। परन्तु किसी-किसी व्यक्तिमें चेचक रोग नहीं पैदा हुआ। यह देखनेके लिये ऐसे व्यक्तियोंमें जिन्हें गो-चेचक रससे टीका नहीं लगाया गया, यदि चेचक रस न लगाया जाय तो उस व्यक्तिको चेचक रोग हो जायगा। दो मनुष्य चुने गये जिन्हें पहले कभी गो-चेचक रोग या चेचक नहीं हुई थी और चेचक-रस उनके चमड़े पर खरोंच कर रगड़ दिया गया तो दोनों ही व्यक्तियोंको चेचक-रोग उत्पन्न हो गया। इन्हीं दोनों व्यक्तियों-के चेचक घावके रससे पुनः १६ अगस्त वाले १९ लड़कों-को टीका लगाया गया, परन्तु इन्हें चेचक नहीं निकली। इन अचूक सबूतोंसे भली भाँति सिद्ध हो गया कि गो-चेचक द्वारा चेचक रोगसे हम पूरे सुरक्षित होगें।

अमेरिकामें इस रीतिके प्रचारमें टामस जेफरसनका बहुत बड़ा हाथ रहा और सन् १८०६ ई० में डाक्टर जेनरको इन्होंने पत्रमें लिखाः—'भविष्यमें मनुष्य केवल इतिहासमें ही पढ़ पावेंगे कि चेचक नामकी कोई बहुत भयंकर बीमारी थी जिसे आपही ने निर्मूल किया"। हम देखते हैं कि यह भविष्य वाणी अभी तक सत्य नहीं हुई, पर हाँ, यह संभव अवश्य है।

टीका

टीका लगानेका तात्पर्य यह है कि मनुष्यके चर्ममें गो-चेचक रोगके कीटाणु प्रवेश कर दिये जायँ और उद्देश्य यह हो कि चेचक रोगसे वह व्यक्ति सुरक्षित हो जाय। टीका लगानेके रसमें गो-चेचकके कीटाणुओंके सचेष्ट भाग रहते हैं। टीका लगानेसे ही हमें यह न समझ जाना चाहिये कि टीका ठीक लग गया। टीका लगानेपर मनुष्यमें टीका लगानेके स्थानमें तथा समूचे शरीरमें कुछ विशेष लक्षण उत्पन्न होनेपर ही समझना चाहिये कि हाँ, टीका लगानेकी क्रिया उचित रूपमें हो गई। लक्षण दो प्रकारके होते हैं—(१) शुद्ध (आरंभिक) तथा (२) परिवर्तित। शुद्ध रूप तो उन व्यक्तियोंमें पैदा होता है जिन्हें चेचक रोग होनेका डर रहता है और टीकेका परिवर्तित रूप उन व्यक्तियोंमें मिलता है जिन्हें या तो पहले टीका लगाया गया था अथवा जिन्हें चेचक रोग हो चुका है।

प्रायः ८० वर्ष तक टीका लगानेका यही आशय होता था कि चेचकसे बचनेके उद्देश्यसे गो-चेचक रोगके घाव-का रस चर्ममें प्रवेश किया जाय। लेकिन पास्टयूरके समयसे कई अन्य बीमारियोंसे भी बचनेके लिये उक्त विशेष रोग-कीटाणु (मरे हुये या कमजोर बनाये हुये अथवा कीटाणुओंका विष) शरीरमें प्रवेश किये जाते हैं और इन्हें भी टीका ही कहते हैं, परन्तु साधारणतः टीका शब्दसे चेचकके टीकेका ही अभिप्राय होता है।

प्रथम टीकाके रूप

टीका लगानेके तीन दिन तक टीका लगे स्थानपर कोई परिवर्तन नहीं दिखाई पड़ता है। तीसरे दिन उस स्थानपर जहाँ चर्ममें रस प्रवेश किया गया था एक लाल रङ्गका छोटा गोलाकार स्थान दिखाई देता है। यह कुछ कड़ा होता है पर चमड़ेमें बहुत भीतरके भागमें न होकर ऊपर ही प्रतीत होता है। इस रूपके लिये ७२ घंटे लगते हैं। पाँचवे दिन यह दाना कुछ उभर आता है और उसमें जल भरने लगता है। सातवें दिन जल पूरा भर जाता है। इसका रूप गोल होता है तथा मुँह कुछ अन्दर खिंचा रहता है। अन्दर पारदर्शक रस भरा रहता है जो कई छोटे-छोटे घरोंमें बँटा रहता है। इस गोल दानेके चारों ओरका चमड़ा कुछ दूर तक हल्के लाल रंगका रहता है। रससे तने हुये चमड़ेमें सफेद चमक रहती है। जेनर ने इसी रूपका वर्णन इस प्रकार किया था कि देखनेसे मालूम होता है कि गुलाबकी लाल पंखड़ी पर मानों सफेद पानीकी बूँद या मोती पड़ा है। आठवें दिन यह दाना कुछ और बढ़ जाता है और वह भाग भी जो भीतर घुसा था अब तन जाता है। अब चमड़े पर चारों ओर सुर्खी दूर तक बढ़ जाती है तथा रस भी गाढ़ा होकर मटमैला होने लगता है। नवें दिन इस दानेमें पुनः कुछ गड्ढा पड़ने लगता है क्योंकि रस सूख कर कम होने लगता है। दसवें दिन तक रस बिल्कुल मवाद-की भाँति गाढ़ा हो जाता है तथा दाना आकारमें कुछ और बड़ा हो जाता है लेकिन गोलाई और अन्दरकी सिकुड़न अब भी रहती है। चारों ओर चमड़ेकी गुलाबी सीमा और भी विस्तृत हो जाती है। १२ दिन तक दाना इसी प्रकार आकारमें बढ़ता रहता है और बारहवें दिनके बाद दाना शीघ्र सूखने लगता है। चमड़ेकी लाली कम होने लगती है तथा सूजन भी कम हो जाती है। अंतमें कड़ी भूरी खुट्टी बच जाती है जिसे नोचना नहीं चाहिये। यह खुट्टी प्रायः २० दिनमें स्वयं ही गिर जाती है जिसके बाद उस स्थान पर पहले तो लाल रंगका चिह्न रहता है जो कुछ काल बाद हल्के सफेद और पुनः काले रंगका शेष रह जाता है जिसे हम टीकेके चिह्न रूपमें देखते हैं।

हम देखेंगे कि टीकाके रूपमें ४ मुख्य रूपान्तर होते हैं जिसमें प्रत्येकके लिये करीब ३ दिनका समय लगता है। (१) आकार बननेका समय (२) पानी भरा दाना बननेका समय (३) गाढ़ा रस बननेका समय, और (४) दानाको पूर्ण विकसित रूप धारण करनेका समय।

सभी टीका बँधे समयपर ऊपरके बतलाये हुये रूपोंमें परिवर्तित होते हैं। हाँ, थोड़ा-थोड़ा भेद होता रहता है। चेचकसे बचनेके लिये केवल विशेष लक्षणों तथा रूपों-में अंतर रहे तो समझना चाहिये कि टीका लगानेकी क्रिया-का फल नहीं हुआ और चेचकसे बचनेके लिये पुनः टीका लगवाना आवश्यक है।

लक्षण

लक्षणोंमें भिन्नता होती है। आलस्य, भूख न लगना, कभी मचली होना या वमन, सिर दर्द, पीठ और कमर में दर्द, बदन टूटना, तथा हल्के ज्वरके लक्षण सातवें दिन प्रगट होते हैं और शीघ्र ही समाप्त हो जाते हैं। ज्वर तापक्रम १०२°फ तक दाना पकनेपर हो सकता है। ज्वरकी अधिकता तथा दानाके आकारमें कोई सम्बन्ध नहीं होता है। काँखकी गिल्टियाँ बढ़ जाती हैं और कुछ पीड़ा भी उसमें होती है।

परिवर्तित टीका

शुद्ध टीका लगानेके बाद फिर कभी टीका लगाया जाय तो ऊपरके बताये हुये रूप नहीं दिखाई पड़ेंगे, बल्कि कुछ अंतर मिलेगा। इस रूपको हम परिवर्तित रूप गौण-टीका कहेंगे। परिवर्तित टीकाके रूपांतरमें समय भी कम होता है। परिवर्तित टीकेके रूपान्तरका विशेष उपयोग

होता है। परिवर्तित टीका लगानेसे टीका उठनेमें तीन विशेष रूपान्तर पाये जाते हैं :—

(१) तात्कालिक
(२) शीघ्र गामी
(३) प्राथमिक

तात्कालिक उभार

इस दशामें टीका दानेके रूपमें २४ घंटेसे और भी शीघ्र उभर आता है और इस दानेमें केवल जल ही रहता है। मवादकी दशा तक यह नहीं पहुँचता है। जिन व्यक्तियोंके शरीर तथा रक्तमें चेचक रोगसे लड़नेकी शक्ति रहती है उन्हीं व्यक्तियों में इस प्रकारका रूपान्तर मिलता है। २४ घंटेमें दाना उभरकर २-३ दिन तक कुछ बढ़ता है, लेकिन तीसरे दिन मुरझाने लगता है और २-३ सप्ताह बाद साफ हो जाता है। कमज़ोर चेचक-रसके प्रयोगसे कभी-कभी शुद्ध टीकाके उभारका रूप भी बदलकर बहुत हल्का हो जाता है परन्तु हमें इस हालत को तात्कालिक उभारसे भूल नहीं कर देनी चाहिये, क्योंकि हम जानते हैं कि पहली अवस्थामें उभारके लिये २४ घंटे नहीं, बल्कि ३ दिन लगता है तथा दानामें रस पक कर मटमैले मवादके रूपमें हो जाता है।

शीघ्रगामी

इस दशामें रूपान्तर सब पहले ही की भाँति होता है परन्तु समय सब रूपोंमें बहुत कम लगता है। उभारमें ३६ घंटे लगते हैं और पकनेमें बहुत कम समय प्रायः ८ दिन लगता है जो शीघ्र ही समाप्त हो जाता है। इस रूपका आशय यह है कि उस व्यक्तिके शरीरमें चेचक रोकनेकी अधूरी शक्ति पहलेसे ही विद्यमान थी।

प्राथमिक

दुबारा टीका लगानेके बाद दानेके उभाड़ आदि रूपों के लक्षण ठीक वैसे ही हो सकते हैं जैसे पहले शुद्ध टीका के रूपमें होते हैं। इससे यह ज्ञात होता है कि उक्त व्यक्तिके शरीरसे गो-चेचकके रसका सब असर नष्ट हो गया था। इस दशामें पहलेकी भाँति उभारके लिये ३ दिन लगे हैं; दाना पकनेमें पूरे १२ दिन लगते हैं।

परिवर्तित टीका-उभारके रूपान्तर यह सिद्ध करते हैं कि शरीरमें रोगसे बचनेकी कुछ शक्ति मौजूद है। इन रूपान्तरोंसे यह भी पता लगता है कि पहलेके टीके सफलतापूर्वक लगे थे तभी तो कुछ शक्ति बच गई। जिन व्यक्तियोंको चेचकका रोग होता है उनमें भी टीका लगाने पर ऐसे ही रूपान्तर मिलते हैं क्योंकि रोगसे चंगे होने पर शरीरमें प्राकृतिक रूपसे इस रोगसे बचनेकी शक्ति आ जाती है।

पहले टीका लगाने और पुनः टीका लगानेके समयके अंतरके अनुसार ही रूपान्तर होता है। प्रत्येक व्यक्तिकी शारीरिक शक्ति भी अपना असर डालती है। यदि अंतर ५ वर्षसे भी कम हो तो संभवतः टीकेका उभार तत्कालिक रूपका होगा। ५ से २० वर्ष तकमें शीघ्रगामी उभारका रूप होगा तथा इससे भी अधिक समयके बाद टीकाका प्रारम्भिक रूप होगा। कुछ व्यक्तियोंमें विशेष फर्क हो जाता है अन्यथा अधिकांश व्यक्तियोंमे ऊपरकी सब बातें लागू होती हैं।

टीका-क्रियाकी विधि

इस क्रियामें गो-चेचक रस चर्ममें प्रवेश किया जाता है। चर्म तथा मांसके बीचके स्थानमें प्रवेश कभी न कराना चाहिये। इस बातकी बड़ी सावधानी रखनी चाहिये कि अस्वच्छतासे अन्य कीटाणु प्रवेश न कर जायँ। इस क्रिया-को ऐसे मनुष्यको कभी भी करनेकी अनुमति नहीं देनी चाहिये जो इस क्रियासे अपरिचित हो।

कीटाणु रसको चर्ममें प्रवेश करनेकी कई रीतियाँ हैं जिनमें खरोंचकी रीति सर्वोत्तम है।

डा० जेनर छेद या पतले घावकी रीति काममें लाते थे। इसके बाद दूसरी रीति निकली जिसमें चमड़ेपर छाला बनाया जाता था और तब छालेके घाव पर रस रगड़ दिया जाता था। फिर चाकूसे रेखाके रूपमें काटनेकी की प्रथा आई। इन रेखाओंकी संख्या बढ़ानी पड़ी और तब क्रास (+) रूपसे घाव करनेकी प्रथा निकली पर अंत में खरबोटनेकी प्रथा काममें आने लगी।

छिद्र करनेकी रीतिमें सूईकी नोकपर चेचक-रस लगा कर सूईकी नोक चर्ममें चुभायी जाती है। सिद्धांतरूप-

में यह रीति तो आदर्श है, परन्तु इसके प्रयोगमें एक बुरी त्रुटि यह है कि एक छेदसे डर रहता है कि उभार नहीं होता, क्योंकि ६-७ छिद्र करनेपर भी कितनी बार उभाड़ नहीं होता था। इसीलिये कई पतले घावकी रीति चल पड़ी।

कई घाव या गोदनेकी रीति

चमड़ेको पहले धो पोंछकर तैयार कर लेनेके बाद रसकी एक बूँद चमड़ेपर रख दी जाती है और तब एक नोकदार कीटाणु सहित सूईकी नोक रसमें चमड़ेके समानान्तरमें रखकर चमड़ेपर ऊपरसे नीचे दबाकर खींची जाती है और पुनः सुई चमड़ेपरसे उठाकर ऊपरसे पुनः नीचे कई बार दबा कर खींचते हैं। क्षेत्रफलका आकार ½″ से बड़ा न होना चाहिये। इस रीतिमें एक बुराई है कि क्रिया सीखनेके लिये कुछ समय लगता है।

चर्मकी तहके बीच रस प्रवेश करनेकी रीति :—

इस रीतिमें रस चर्मकी तहमें प्रवेश किया जाता है प्रायः ४० भागमें १ भागकी घोलसे १ घ० श० म रस पतली सूई द्वारा चर्मकी ऊपरी तहमें प्रवेश किया जाता है। इस रीतिमें बड़ा अवगुण यह है कि विशेष औज़ारकी आवश्यकता पड़ती है तथा क्रिया भी टेढ़ी है।

छीलनेकी रीति

इस रीतिमें चमड़े पर पास-पास कई रेखांकिक घाव बनाये जाते हैं और इस स्थान पर रसको रगड़ दिया जाता है। इसमें भी यह अवगुण हैं कि चर्म बड़े आकार-में छिल जाता है और उसमेंसे सिरम निकलकर शीघ्र सूख कर काले रंगकी कड़ी खुट्टीके रूपमें परिवर्तित हो जाता है जिससे रस कड़ी खुट्टीके भीतरसे टीकेका दाना अच्छी प्रकार उभड़ने नहीं पाता है। खुट्टीके किनारों पर चारों ओर दाना उभर आता है, परन्तु बीचके भागमें छिला हुआ चमड़ा रह जाता है। इससे डर रहता है कि इस बीच के छिले भागमें अन्य कीटाणु आ कर अन्य रोग न फैला दें। खुट्टीके नीचेके भागमें भी टिटेनस रोगके कीटाणुओंके पनपने योग्य बहुत अच्छा वातावरण बना रहता है जिससे इस रोगका डर रहता है। साथ ही बादमें छिले स्थानों पर बहुत भद्दे तथा बड़े निशान बन जाते हैं। इन्हीं कारणोंसे इस रीतिका प्रयोग कई देशोंमें वर्जित है।

खरबोटना

यह रीति साधारणतः बढ़िया समझी जाती है। खरबोटनेकी क्रिया द्वारा रेखाके रूप असंख्य छेद बहुत पास-पास हो जाते हैं। इस क्रियाको सुई या अन्य किसी तेज धारके औज़ारसे किया जा सकता है। ध्यान रहे कि खरबोटनेमें चर्मकी इतनी गहराई तक नहीं पहुँच जाना चाहिये कि रक्त निकल आवे परन्तु यदि २-४ बूंद, रक्त छलछला आवें तो कोई हानि नहीं है। इस रीतिमें कई गुण हैं। क्रिया सरल है, तथा टीका बहुत बढ़िया उठता है और बादका निशान भी हल्का हो होता है।

क्रियाकी रीति

चमड़ेको साबुन और साफ़ पानीसे धोकर धुली तौलियासे सुखा देना चाहिये। तब उस स्थान पर एसिटोन या एलकोहल लगा कर थोड़े समय तक रुकना चाहिये जिससे यह उड़ जाय। कीटाणु-नाशक औषधियों-को उस स्थानपर नहीं लगाना चाहिये अन्यथा बादमें रस लगाने पर कीटाणु-नाशक औषधिके कारण रसकी शक्ति मर जायगी और टीकामें सफलता न होगी। एसिटोन सस्ता है, जल्द उड़ जाता है, तथा चर्मका मैल भी खूब साफ करता है। इससे एसीटोनको ही काममें लाना चाहिये।

गो-चेचकका रस शीशेकी पतली नलियोंमें बन्द आता है। इस नलीको बहुत साफ़ हाथोंसे साफ डाक्टरी रुईमें लपेटकर रस निकालनेके लिये तोड़ना चाहिये। रसकी एक बूँद ऊपरकी विधिसे साफ किये स्थानपर चमड़ेपर गिरा देना चाहिये। कीटाणु-रहित सुईसे ½″ लम्बी एक रेखा इसी रसकी बूँदमें चमड़े पर खींचनी चाहिये। यदि इच्छा हो तो रसको अब सुईके बगलमें इसी स्थान पर रगड़ दिया जाय पर इसकी आवश्यकता नहीं होती है। रस सूख जाने पर हाथको ढक देना चाहिये जिससे मक्खियाँ न बैठें और न रगड़ ही लगे।

टीका लगानेका सर्वोत्तम भाग

बाईं भुजामें बाहरकी ओर उस स्थानपर जहाँ डेल्टॉयड माँसपेशी भुजाकी हड्डीमें चिपकती है टीका लगानेसे टीका लगाने और लगवाने वाले दोनों व्यक्तियोंको बहुत सुविधा होती है। डा० जेनर इसी स्थानपर टीका लगाया करते थे। इस भागपर पसीना नहीं होता है तथा बिना कठिनाईके सूखा तथा स्वच्छ रक्खा जा सकता है। टीका लगानेके बाद उभार देखनेके लिये बड़ी आसानी पड़ती है, क्योंकि यह कोई टेढ़ा स्थान नहीं है कि कपड़ा इत्यादि हटानेमें कष्ट हो। यहाँका चमड़ा भी टीकाके लिये उपयुक्त है क्योंकि आसानीसे ताना जा सकता है। यह ध्यान रहे कि शरीरके सब भागपर टीका लगने पर उभर सकता है। नेत्रोंके कोओं भी छिल जानेपर रस लगनेसे टीका उभर आयेगा।

कभी-कभी हाथके बदले टीका लगानेके लिये पैर चुना जाता है जिससे निशान बननेके कारण हाथकी खूबसूरती न चली जाय। यह क्रिया स्त्रियों ही में मुख्यतर होती है। परन्तु ध्यान रखना चाहिये कि छिद्र या खरबोटनेकी रीति द्वारा थोड़े ही रसके प्रयोग करने पर हाथ पर भद्दे निशान नहीं पैदा होते हैं। फिर यह निशान तो स्वच्छताका वैज्ञानिक क्रिया द्वारा निशान है जिसे धारण करनेवाला उदार विचारका पक्षपाती ज्ञात होता है। साथही पैरमें पसीना अधिक होता है तथा पैरोंमें सड़ककी गन्दी गर्द लगनेका, चोट-चपेटका तथा रक्तके अधिक रुकनेकी अधिक संभावना सदा रहती है। फिर भी यदि पैर ही टीकाके लिये चुनना पड़े तो जाँघमें टीका न लगाना चाहिये बल्कि पिंडलीके बाहरके भागपर फिबुल नामक हड्डीके सिरके पास टीका लगाना चाहिये।

टीका कब लगाना चाहिये ?

टीका लगानेके लिये बच्चेका प्रथम वर्ष सबसे बढ़िया है लेकिन गर्मीकी ऋतु यथासंभव बचाना अच्छा है। बच्चा पैदा होते ही इसे टीका लगानेमें कोई हानि नहीं है लेकिन इस अवसरपर टीका कम उभरता है। लेकिन ६ माह बाद टीका भली-भाँति उभरता है। ६ माह की अवस्थामें टीका लगानेसे बच्चेके दाँत निकलने का समय भी नहीं पड़ता है और कष्ट या ज्वर भी बहुत साधारण होता है। विकृत होने का डर भी नहीं रहता है। अंतिम कारण ही काफ़ी है कि माता-पिता अपने बच्चोंको छोटी अवस्थामें टीका लगवा लें।

सफल टीका लगवानेके भी कुछ समय बाद शरीरसे चेचकसे बचनेकी शक्ति धीरे-धीरे विलीन हो जाती है। इसीलिये सर्वदा चेचकसे सुरक्षित रहनेके लिये यह आवश्यक है कि पुनः टीका लगवाया जाय। रोसैनो तथा डियरिंग महोदयों ने सिद्ध कर दिया है कि एक बार के टीकासे २० वर्ष तक सुरक्षित रह सकते हैं। दूसरी बार पुनः कब टीका लगवाना चाहिये इस विषयपर कुछ मतभेद है। दूसरा टीका स्कूल जानेको अवस्था (प्रायः ८ वर्ष) में लगवाना चाहिये। इसके बाद जब कभी चेचक रोगके सम्पर्कमें आनेकी आवश्यकता पड़े तो पुनः टीका लगवाना चाहिये। उन देशोंमें जहाँ टीका लगवाना कानून है और प्रायः सभीको टीका लगवाना पड़ता है, उन लोगोंमें अनुभवसे यह पता चलता है कि चेचकसे सुरक्षित रहने लिये दो बार टीका लगवाना काफी है।

सभी व्यक्तियोंको जो चेचकके सम्पर्कमें किसी प्रकार आवें यह आवश्यक है कि उसी समय टीका लगवायें। यदि टीका पहले लग चुका हो तो पुनः टीका लगवाना चाहिये कि तात्कालिक उभार हो जाय। हाँ, यदि पहले चेचक रोगसे स्वयं रोगी बन चुके हों तो इसकी आवश्यकता नहीं है।

सावधानियाँ

रसकी नलीको ठंडे स्थानमें रखना आवश्यक है। टीका लगानेके बाद सूर्यकी धूप टीका लगे भाग पर पड़ने नहीं देनी चाहिये, अन्यथा सूर्य-किरणोंमें कीटाणु नाशक शक्ति होती है और रसकी शक्ति नाश हो जानेसे टीका उभर नहीं सकेगा। टीका लगे भागको स्वच्छ, सूखा तथा ठंडा रखना चाहिये। नहाना या नित्यका धंधा छोड़नेकी आवश्यकता नहीं है, परन्तु ध्यान रखना चाहिये कि पसीने या स्नान-जलसे खुट्टी गीली होकर मुलायम न हो जाय। हाथसे निष्प्रयोजन काम नहीं लेना चाहिये, नहीं तो उस स्थानमें रक्तका संचार अधिक होगा। टीकाके उभरे दानों

तथा छालोंको छूना या छेड़छाड़ नहीं करना चाहिये, न तो उन्हें फोड़ना ही चाहिये। कपड़ेसे या अन्य किसी प्रकारकी रगड़से या छिलनेसे बचाना चाहिये। छालोंपर मलहम या अन्य औषधि आदि भी न लगानी चाहिये।

जब तक कि दाने फूटे नहीं, किसी प्रकारकी पट्टीकी आवश्यकता नहीं रहती है। डाक्टरी गॉज़के पट्टी बाँधने वाले कपड़ेकी कई तह बना कर चमड़ेपर बाँधनेके बदले कपड़ेके बाँहमें भीतरकी ओर सिलाई कर देनेसे गन्दा होने के पहले ही बार बार बदलते रहनेसे कोई विशेष हानि नहीं पहुँचती है। बाँधनेके लिये बाज़ारमें कई प्रकारकी गद्दियाँ और शील्ड बिकती हैं, लेकिन इनके प्रयोगसे हानिके सिवा कोई लाभ नहीं है क्योंकि इन गद्दियोंके बाँधनेसे अन्दरका पसीना सूख नहीं पाता और चर्मकी गरमी भी बढ़ जाती है जिससे दाने शीघ्रही मुलायम होकर फूट जाते हैं। स्वाभाविक चमड़ेकी तह ही सबसे बढ़िया बचावका उपाय है। बादमें खुट्टी बहुत बढ़िया बचाव करती है। यदि दाने फूट जायँ या खुट्टी उखर जाय या घावपर दूसरे कीटाणुओं-का आक्रमण हो जाय जिससे घाव पक जाय तो घावका उपचार उसी प्रकार करना चाहिये जैसे साधारणतः अन्य घावोंका उपचार करते हैं।

आगेके लिये सरक्षित रहना

इस टीके द्वारा चेचक तथा गो-चेचक रोगसे मनुष्य सुरक्षित हो जाता है। चेचकसे सुरक्षित रहनेकी शक्ति शरीरमें टीका लगानेसे आठवें दिन आ जाती है। लेयट महाशयका विचार है कि नवें दिन तथा बर्क हार्जका मत है कि ११ वें दिन यह शक्ति आ जाती है।

चेचक रोगके बाद कोई पुनः चेचक रोगसे मुक्त नहीं हो जाता है। कितने व्यक्तियोंको तीन-तीन बार चेचक निकल चुकी है। हाँ, ऐसी घटनायें बहुत ही बिरली हैं। सच तो यह है कि टीका लगानेके सात वर्षके अन्दर चेचक निकलनी ही बहुत बिरली बात है।

कुछ लोगोंका कहना है कि यदि दूसरी बार टीका लगानेपर उभार सामान्य रूपका होता है तो यह स्पष्ट है कि वह व्यक्ति चेचकका रोगी हो सकता है। यह बहुधा सच होता है। लेकिन यह कहना कि टीका किसी व्यक्तिमें न उठनेका आशय यह हो कि उक्त व्यक्ति चेचकसे सुरक्षित था, सर्वदा ग़लत है। ऐसी धारणासे बहुत हानि होनेका अंदेशा है, क्योंकि हम जानते हैं कि टीका न उभरनेके बहुतसे कारण होते हैं जैसे, टीका लगानेकी क्रियाका उचित रीतिसे न करना। कभी-कभी तो मनुष्यों में ३-४ बार टीका नहीं उभरता है और फिर टीका लगाने पर सफलता मिलती है और टीकेका सामान्य उभार रूप दिखलाई देता है।

टीकाके परिवर्तित रूपान्तरकी दशामें यह समझना चाहिये कि शरीरमें चेचकसे सुरक्षित रहनेकी शक्ति है। इस भाँति यदि बहुत शक्तिशाली रससे टीका लगाया गया है और तात्कालिक उभार का रूप होता हो तो अवश्यही शरीरमें सुरक्षित रहनेकी शक्ति बहुत अधिक मात्रामें है, पर यदि शीघ्रगामी रूप हो तब सुरक्षित रहनेकी थोड़ी ही शक्तिका होना समझना चाहिये। शरीरमें पैदाइशी या प्राकृतिक रूपमें चेचकसे सुरक्षित रहनेकी शक्तिका होना अभी तक निश्चय रूपसे नहीं पाया गया है। सभी व्यक्तियोंको चेचक रोग होनेका डर रहता है।

टीका लगानेसे शरीरमें क्या अंतर हो जाता है कि चेचकसे बचनेकी शक्ति आ जाती है, इस सम्बन्धमें अभी पूरे हालका पता नहीं है। यह निश्चय है रक्तमें ही कुछ अंतर पड़ जाता है।

गो-चेचक तथा इसका वीरस

गो-चेचक विशेष बीमारी है जिसके लक्षण सभी रोगियोंमें एकही प्रकारके होते हैं। कीटाणु तो शरीरके बहुत अंगोंमें मिलता है। दाना उसी स्थान पर उभरते हैं जहाँ टीका लगता है। ज्वर आदि शरीरिक कष्टके लक्षण हल्के होते हैं। गो-चेचक रोग साधारण रोग है क्योंकि इस रोग-से मृत्यु या रोगके बाद दुखदाई फल नहीं होता है।

गो-चेचक क्या चेचकका रूपान्तर है?

गो-चेचक और चेचक-रोग एकही बीमारीके पृथक् रूप हैं अथवा दोनों बिल्कुल पृथक् दो रोग हैं इस विषय पर बहुत विचार किया गया। जेनरका मत था कि गो-चेचक केवल चेचक-रोगका रूपान्तर है। इंगलैण्ड, जर्मनी तथा अन्य देशोंमें प्रयोगों द्वारा यह दिखलाया गया कि

चेचक रोगके रसको गायके शरीरमें बार-बार टीका लगा कर चेचक रोगके रसकी शक्ति बहुत कमजोर कर देनेके बाद इस रससे चेचकका रोग नहीं होता बल्कि गो-चेचक रोग होता है। इसलिये गो-चेचक और चेचक रोग एकही कारणसे हैं। चेचक-रसको ऊपरकी विधिसे यदि एक बार कमजोर करके गो-चेचकमें परिणत किया जाता है तो पुनः इस गो-चेचकको शक्तिशाली बनाकर चेचक रोगमें परिणत नहीं किया जा सकता है। चेचकसे गो-चेचक बनानेमें २१ बार सफलता मिली है।

चेचक-रस

चेचक-रस कई शक्तियोंका बनाया जाता है। चर्ममें टीका लगा कर रस निकालनेके साथही स्नायुओं तथा अंडकोषसे भी रस बनाया जाता है। साथ ही. रसको कुछ विशेष घोल (इनमें अनेक भाँतिकी वस्तुयें पड़ी रहती हैं जिनसे भोजन तथा शक्ति मिलती है जैसे आलू, मांस ग्लिसरिन, पित्त-रस आदि) तथा अंडेसे भी बनाया जाता है। रसायन शालामें कुछ रीतियोंसे बहुत ही शक्तिशाली रस बनाया जाता है।

चेचक रसको जानवरोंके चर्म पर गो-चेचकके दानोंसे निकाला जाता है और इसी रसमें चेचक-रोग उत्पन्न करनेवाली विशेष वस्तु होती है। साधारणतः चेचक रस बछड़ोंके शरीरसे बनाया जाता है। लेकिन अन्य चौपायों जैसे खरगोश, भैंस, ऊँटसे तथा मनुष्यके शरीरसे भी रस बनाया जा सकता है।

चेचक-रस बनानेके लिये पहले जानवरोंमें गाय-चेचकका टीका लगाना पड़ता है जिससे चमड़े पर दाने उभर सकें। इस पहले टीकेको लगानेमें जिस रसकी आवश्यकता पड़ती है उसे हम बीज रस या तो (१) गाय-चेचकसे जो आपही कभी-कभी गायोंको हो जाता है, बना सकते हैं, या (२) चेचक रोगके रसको कई बार गायके चर्ममें प्रवेश करके चेचक रसको कमज़ोर बनाकर तैयार कर सकते हैं अथवा (३) मनुष्यके टीकाके रसको ही निकाल कर। तीनों ही प्रकारके रसोंसे ठीक टीका उभरता है और रक्षाको उचित शक्ति मिलती है।

मनुष्यके टीकासे रस निकाल कर पुनः इसी रससे दूसरे मनुष्योंको टीका लगानेकी प्रथा अब उठ गई, क्योंकि इस प्रथामें बुराइयाँ थीं, जैसे उपदंश रोग फैल सकता है। साथ ही इस भाँति रस बहुत ही थोड़ा मिल सकता है और महामारियोंके समयमें जब बहुत लोगोंको टीका लगानेकी आवश्यकता पड़ती है तब इतने थोड़े रससे काम नहीं चल सकता है।

मवेशियोंसे रस बनानेकी प्रथा डा० जेनरके समयसे ही है। सन् १८९१ ई० में कोपमैन ने इस रसको स्वच्छ बनानेकी रीति निकाली। तबसे यही प्रथा काममें आती है। इस रीतिमें सबसे बड़ा गुण यह है कि जितने अधिक रसकी आवश्यकता पड़े सब तैयार किया जा सकता है। मनुष्य की बीमारियाँ जैसे सिफलिस आदि रोगोंकी छूत फैलनेका कुछ डर नहीं रहता है, तथा रसकी ग्लिसरीन और कालबौलिक ऐसिड् द्वारा स्वच्छ भी किया जाता है। टीका लगानेके लिये टीकासे उभरे दानेका रस निकाल लिया जाता है या पूरे दानेको ही चमड़ेके साथ लेकर घोट लिया जाता है। चेचकके कीटाणु चमड़े पर ऊपरकी सतहमें बहुत अधिक मात्रामें रहते हैं। इसलिये उभड़े दानेसे चमड़ेके साथ घोंटी वस्तुके प्रयोगसे अधिक शक्तिशाली वस्तु बनती है और टीकाके लिये इसीको अधिक काममें लाते हैं।

टीका लगानेके लिये रस तैयार करना

टीका लगानेका रस बनानेके लिये बछड़े ही चुने जाते हैं क्योंकि बछड़ोंको संभालना आसान है तथा इनका चमड़ा बहुत कड़ा नहीं होता है जिससे दाने बड़े-बड़े उभरते हैं। बछड़ोंको दूध पिलाकर रखना बढ़िया है क्योंकि घास-भूसा खिलानेमें, घास-भूसाके कीटाणुओंसे बछड़ेको बचाना मुश्किल है। बछड़ेको पहले एक सप्ताह तक अलग कोठरीमें रख कर देखा जाता है कि उसे किसी प्रकारका रोग जैसे क्षय, तथा अन्य विशेष रोग तो नहीं है। बछड़ेको भलीभाँति साफकर लिया जाता है फिर पेटके पिछले भागका बाल उस्तरेसे साफकर दिया जाता है। उस्तरेसे साफ करनेके पहले चमड़ेको ५% कार्बोलिक लोशनसे धोकर साफ पानीसे धोया जाता है और अंत में कीटाणु-रहित पानीसे धोया जाता है। कीटाणु-रहित साफ कपड़ेसे इस गीले भागको पोंछकर सुखाया जाता

है। यदि कोई कीटाणु-नाशक औषधि चमड़े पर लगी रह जाय तो टीका उभर नहीं सकता है। कीटाणु-रहित चाकूसे बछड़ेके साफ किये हुये पेटके चमड़े पर कई समानान्तर हल्के चीरे प्रायः चौथाई दूरी पर लगाये जाते हैं। चाकूको नश्तर लगाते समय चेचक रसमें कई बार डुबो लिया जाता है जिससे नश्तर लगानेके साथ ही रस भी घावमें लग जाय। थोड़ा रस नश्तर पर ऊपरसे भी तुरंत लगा दिया जाता है जिससे नश्तरके जख़्ममें सूजन आनेसे उसका मुँह न बन्द हो जाय। नश्तर बहुत हल्का होता है इसलिये बछड़ों को कुछ कष्ट नहीं होता है। रस लगानेके बाद पेटमें स्वच्छ कीटाणु-रहित चादर लपेट देते हैं और बछड़ेको कटघरेमें बन्दकर दिया जाता है। यहाँ बछड़ेके शरीरका ताप कई बार नित्य देखा जाता है। कटघरेमें मक्खियों, कीड़ों-मकोड़ों, गर्द आदिसे बचनेका पूरा प्रबन्ध रहता है।

रस इकट्ठा करना

टीका लगानेके १२० घंटे बाद, बछड़ेको टेबुल पर बांध दिया जाता है और उभरे हिस्सेको बहुत सावधानी से साबुन तथा कुनकुने पानीसे धोया जाता है, फिर छने हुये पानीसे और अंतमें कीटाणु-रहित स्वच्छ जलसे धोया जाता है और कीटाणु-रहित साफ़ कपड़ेसे पानी पोंछा जाता है। टीका उभरे भागके चमड़ेको तान कर चमड़ेके साथ ही रसको कीटाणु-रहित विशेष चम्मचके आकारके यंत्रसे उखाड़ कर ले लिया जाता है। इस कार्य्यमें ५ दिनसे अधिक विलंब करना अच्छा नहीं है, क्योंकि देर करनेसे उभारमें अन्य कीटाणुओंके पैदा होनेका डर रहता है।

प्रत्येक नश्तरकी रेखासे बारी बारी उभरा चमड़ा तथा रस निकाल कर पृथक्-पृथक् कीटाणु रहित तौली शीशियोंमें रख लिया जाता है। इस क्रियामें चमड़े परसे रक्त नहीं निकलना चाहिये। बछड़ेके चमड़े पर बोरिक एसिडकी बुकनी छिड़क दी जाती है।

शीशियोंसे अब सब रस तथा चमड़ा निकाल कर बहुत देर तक भापमें रक्खा जाता है जिससे कीटाणु-रहित हो जाता है। इसके बाद इन्हें मशीनमें डालकर पीसा जाता है और चटनीके समान बनाया जाता है।

५०% ग्लिसरीनके पानीमें घोल बनाकर कीटाणु-रहित करके ३-४ भाग इसका तथा एक भाग पिसे हुये रसका मिश्रित करके मशीनसे दुबारा पीसा जाता है जिससे सब एकमें भली भाँति मिल जाता है। अब रस तैयार एमलशनकी एक बूँदको विशेष दवामें लगा कर देखा जाता है कि इसमें कोई कीटाणु तो नहीं रह गये हैं।

मशीनसे एमलशनको छोटे-छोटे कीटाणु-रहित शीशेकी नलियोंमें पूरा भर दिया जाता है कि हवा रहनेका स्थान न बचे और कीटाणु-रहित कागसे बन्द करके पिघले मोमसे मोहर करके ठंडे अँधेरे बक्समें बन्दकर दिया जाता है या बर्फ़की पेटीमें रख दिया जाता है। प्रत्येक नली पर बछड़ेका नम्बर तथा तिथि लिख दी जाती है।

१ माह तक रखनेके बाद कीटाणु-रहित होनेकी जाँच कर लेनेके बाद कीटाणु-रहित शीशेकी पतली नलियोंमें भरकर तुरन्त नलियोंका मुँह बन्दकर दिया जाता है।

कुछ साधारण बातें

कच्चे रसके, जिसमें कीटाणु मिलते हैं, प्रयोगसे ज्वर, सूजन तथा मवाद हो जाता है। ८ माहसे पुराने रसके प्रयोगसे टीका उभर नहीं पाता जिससे सफलता नहीं मिलती है।

अँधेरेमें रखनेसे रस बहुत दिनों तक नहीं बिगड़ता है। बंगालमें जाड़ेके दिनोंमें बर्फ़की पेटियोंसे बाहर निकालने पर रस १० से १४ दिन तक कामके लायक रहता है परन्तु गर्मीमें तो ४ ही ५ दिनमें ख़राब हो जाता है।

सब क्रियाओंमें स्वच्छताका बहुत ध्यान रखना चाहिये।

रस किसी कीटाणु-नाशक वस्तुके हल्की घोलसे या गरम हो जानेसे शीघ्र नाश हो जाता है। इसलिये टीका लगानेके औजारको आँचमें डालकर कीटाणु-रहित बनानेके बाद अच्छी तरह ठंडाकर लेना चाहिये और टीका लगाने के स्थान पर चमड़ेके भी अंतमें सादे स्वच्छ कीटाणु-रहित जलसे धोकर स्वच्छ कीटाणु-रहित कपड़ेसे सुखा लेना चाहिये।

टीका लगाने वालोंको आदेश

(१) केवल तन्दुरुस्त व्यक्तियोंको ही टीका लगाओ। अपरस, ज्वर, दस्त, तथा चर्म रोगसे रोगी बच्चोंको टीका न लगाओ।

(२) जिस घरमें एरिसिपबका कोई रोगी हो उस घरके किसी व्यक्तिको टीका न लगाओ।

(३) शरीरपर टीका लगानेके लिए चीरा लगानेके नम्बर तथा सुरक्षित होनेकी न्यूनता या अधिकतामें बहुत सम्बन्ध है। इसलिये प्रत्येक व्यक्तिके कमसे कम चार चीरे लगाना आवश्यक है। इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि चीरे इतने पास पास न हो जिससे टीका उभरने पर सब दाने एकमें मिल जाय। टीका लगानेपर रसके चमड़ेपर सूख जानेके बाद कुछ देरमें उस भागको स्वच्छ चमड़ेसे ढक देना चाहिये। एलकोहलमें पिकरिन एसिड घोल कर घावपर लगानेसे दर्द सूजन आदि तथा पकनेका डर बहुत कम हो जाता है और चेचक उभरनेमें भी कोई रुकावट नहीं पड़ती है।

(४) टीका उभरनेपर रससे भरे दानोंकी बड़ी देख भाल रखनी चाहिये जिससे वे रगड़ लग कर फूट न जायँ। खुट्टीको कभी स्वंय न उचाड़नी चाहिये कुछ समय बाद वे स्वंय ही सूख कर निकल जायेंगी। साधारणतः पट्टी बाँधनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती है।

(५) प्राथमिक टीका तभी समझना चाहिये जब उभाड़ आदर्श हो।

(६) प्रारम्भिक टीकाको ६ से ८ दिनके भीतर उभार जाँचना चाहिये। दुबारा टीका लगानेपर २४-से ४८ घंटेके भीतर जाँच करनी चाहिये। देर करनेसे दोनों हालतोंमें उभार मिट जानेका डर रहेगा जिससे "असफल" टीका समझा जायगा।

(७) जहाँ कई व्यक्तियोंको टीका लगाना हो उस हालत-में दो चाकू खरोंच लगानेके लिये रक्खो। काममें लाया हुआ चाकू उबलते पानीमें कीटाणु-रहित बनानेके लिये रक्खो तबसे दूसरे चाकूको काममें लाओ।

(८) जब किसी व्यक्तिको चेचक निकले तो उसी समय उस घरके सभी व्यक्तियोंको तथा मुहल्लों और पड़ोसके भी सभी व्यक्तियोंको टीका लगाना चाहिये।

चेचक निकलने पर चेचक रोकनेके उपाय

(१) प्रयत्न करके चेचकके छूतके स्थानका पता लगाना चाहिये और छूत फैलनेसे रोकनेकी कोशिश करनी चाहिये।

(२) चेचक निकलनेकी खबर पाने पर रोगी दो सप्ताह पहले जिन स्थानोंपर गया हो उनका पता लगाना चाहिये, और जितने व्यक्ति रोगीके सम्बन्धमें चेचक निकलने पर आये हैं उन सबको टीका या दुबारा टीका लगाना चाहिये।

(३) चेचक रोकनेमें मजदूरों तथा अपढ़ लोगोंसे सबसे अधिक हानि होती है क्योंकि यह सब नासमझीके कारण चारों ओर दूर-दूर तक घूमते फिरते हैं और इस-प्रकार छूतको भी कई स्थानोंपर चारों ओर फैलाते हैं।

(४) जिन स्थानों पर विशेष "छूत"के अस्पताल हो वहाँ फौरन अनुरोध करके रोगीको अस्पतालमें भेजना चाहिये। ऐसे विशेष अस्पतालके न होनेसे रोगीको मकानमें ही अलग कोठरीमें बिल्कुल पृथक् कर देना चाहिये।

(५) जो व्यक्ति रोगीके स्पर्शमें रह चुके हों उन्हें दो सप्ताह तक दृष्टिमें रखना चाहिये कि उनमेंसे तो किसी व्यक्तिको चेचक नहीं निकल आती है।

(६) पड़ोस भरमें पुनः सब व्यक्तियोंको टीका लगाना चाहिये।

टीका लगानेसे डर

टीका लगवानेसे जितना अधिक लाभ है उसका ध्यान रखते हुये टीकामें जो खतरा है वह नहींके बराबर है। हम जानते हैं कि दाढ़ी तथा मूँछ उस्तरेसे बनवाते समय कितनी ही बार कुछ घाव हो जाते हैं। सच पूछा जाय तो इस घावसे भी बड़ी-बड़ी भयंकर बीमारियाँ हो सकती हैं जिससे मृत्यु भी हो जायगी। परन्तु लोग नित्य ही दाढ़ी, मूँछे कटाते ही रहते हैं। बच्चे खेलनेमें कितनी ही चोटें पा जाते हैं। नित्यके जीवनमें मनुष्यको जीवनका डर लगा ही रहता है। इन सबको ध्यानमें रखकर तथा टीकासे जो लाभ हैं और टीका न लगानेसे जो हानियाँ हैं, उनको देखकर टीका लगवाना ही चाहिये।

टीकाकी क्रियामें कोई डर नहीं रह जाता है। स्वच्छताका पूरा ध्यान रखना आवश्यक है। टीकेमें मवाद पड़ जाना, टिटेनस रोग हो जाना, मस्तिकमें सूजन पैदा हो जाना, संभव है; परन्तु उचित ध्यान रखने पर यह सब बीमारियाँ बिरले ही देखनेमें आती हैं।

अब पाठकोंके मनोरंजनके लिये कुछ सारिणी दी जा रही हैं। भारतवर्षके सबसे बड़े शहर बम्बईके हेल्थ मेडिकल आफिसरके सन् १९३७ ई० की रिपोर्टमें कुछ दिलचस्प बातें हैं। बम्बईमें स्वच्छता तथा बीमारियोंके रोकनेके प्रबन्धकी उत्तमतासे सभी सहमत होंगे। ऐसे स्थानपर भी चेचकका प्रकोप होता है जिससे प्रतिवर्ष बहुत-व्यक्तियोंकी मृत्यु होती है। भारतवर्षके गाँवोंकी तुलना बम्बई शहरसे कभी कोई न करेगा। गाँवोंकी हालतका अनुभव शायद आपको न हो। अस्पताल और सफाई आदि-का प्रबन्ध तो गाँवोंमें नहींके बराबर होता है। गाँवोंके रहने वाले दरिद्र किसानोंकों स्वच्छताका ज्ञान भी नहीं है और न इसकी पूर्तिके साधन ही हैं। इसलिये बम्बई के सारणियोंको पढ़कर गाँवोंकी सच्ची हालत पर विचार करना भी मुश्किल है।

बम्बईमें सन् १९३१ ई० की गणनाके अनुसार जन संख्या ११,६१,३८३ है। वहाँकी सन् १९३७ ई० में मृत्यु आदिकी तायदाद इस प्रकार है :—

जन-संख्या (१९३१)	११,३१,३८३
जीवित पैदाइश	३५,४५५
मृत्यु	३०,७६८
प्लेगसे मृत्यु	नहीं
चेचकसे मृत्यु	६८८
हैजासे मृत्यु	४
क्षय रोगसे मृत्यु	२,०३७

अंकोंको देखनेसे ज्ञात होगा कि प्लेग तथा हैज़ा जिनके नामसे जनता सबसे अधिक डरती है, मृत्यु नहींके बराबर है, लेकिन चेचकसे ६८८ मृत्यु हुई। क्षय-रोग-की समस्या तो आजकल बहुत जटिल है।

सन् १९३७ ई० में चेचककी रिपोर्टसे १,१९७ व्यक्ति रोगी हुये और सन् १९३६ ई० में १,४११ व्यक्ति। यहाँ यह बतलाना उचित होगा कि प्रायः जनता चेचक रोगको छिपानेकी कोशिश करती है क्योंकि म्युनिसिपल कानूनके अनुसार सफाई आदिका प्रबन्ध रहता है जिससे जनता ही को लाभ होगा, परन्तु लोग नासमझीसे इन सब चीज़ोंसे दूर भागते हैं। इसलिये रिपोर्टके रजिस्टरमें बहुत ही कम चेचक रोग लिखे जाते हैं। सच्चा नम्बर तो कई गुना होगा। हेल्थ आफिसर साहब लिखते हैं :—"चेचक रोगीके सम्पर्कमें आये ; सब व्यक्तियोंको तथा अन्य पड़ो-सियोंको टीका लगवानेके लिये बहुत प्रबन्ध तथा उपाय किया गया, परन्तु उपायोंसे बीमारी फैलनेसे रोकनेमें बहुत कम सफलता मिली, क्योंकि जनता टीका लगवानेमें बहुत अड़चन डालती थी।"

टीका लगानेके महकमका प्रयत्न इसीसे समझा जा सकता है कि सन् १९३७ ई० में प्राथमिक टीका ३५,१५१ लगाया गया। दुबारा टीकाकी संख्या ६१,९५७ थी।

इसी वर्ष एक सालसे कम अवस्थाके बच्चोंमें १६५ को टीका नहीं लगा था (६२ की उम्र ६ माह से कम थी) और १२ बच्चोंको छूत लग जानेके बाद टीका लगाया गया था। ३ बच्चोंके सम्बन्धमें कुछ पता नहीं कि टीका लगा था या नहीं। यह मानी हुई बात है टीका लगाने पर ही चेचकके छूतसे पूरी तरह सुरक्षित रहना संभव है। एकबार टीका लगानेसे ७ साल तक सुरक्षित रहते हैं। इसलिये ७ वर्षकी अवधिके समाप्त होनेके पहले ही पुनः टीका लगवा लेना आवश्यक है।

चेचक रोग द्वारा अन्य रोग इस प्रकारकी संख्यामें पाये गये :—

आँखमें फूली	३९		
आँखमें दुखनी	७२	निमोनिया	६
कानके भीतर सूजन	१५		
फोड़े	८१	खूनमें विष	४०
गुर्देमें सूजन	६		
खासा	२०		

बम्बई शहरमें चेचक रोगकी गणना :—

वर्ष	टीका लगा		टीका नहीं लगा	
	रोग	मृत्यु %	रोग	मृत्यु %
१९२७	३५४	३	३७२	३९
१९२८	२७९	८	२४३	४१
१९२९	५६९	५	४८४	४१
१९३०	५९२	७	७०३	४३
१९३१	२२	९	७	५७
१९३२	१९५	२	१०७	५३
११३३	१,१७३	६	९४४	५३
१९३४	८६	६	७७	४५
१९३५	५०१	४	४२०	४०
१९३६	३७३	३	३३८	३६
१९३७	३७३	४	२७८	४०

इस सारिणीको देखनेसे स्पष्ट हो जायगा कि टीका लगे व्यक्तियोंमें चेचक रोगसे केवल लगभग ५% मृत्यु हुई और उन व्यक्तियोंमें जिन्हें पहले टीका कभी नहीं लगा था मृत्यु संख्या ४४% से भी अधिक हुई। टीकासे लाभ होनेका इससे अधिक प्रत्यक्ष प्रमाण और क्या होगा? टीका लगे व्यक्तियोंमें भी यदि ७ वर्ष के अन्दर पुनः दुबारा टीका लगा होता तो मृत्यु संख्या ५% से भी कम होती।

बम्बईमें टीका लगानेका कानून सन् १८०२ ई० से शुरू हुआ। इसके पहले लोग चेचक रोगके रससे ही टीका लगाते थे। बछड़ेसे रस बनानेकी रीति बम्बईमें सन् १८२७ ई० में चला और सन् १९२४ ई० में बेलगाँवसे बने रस खरीद कर टीका लगाया जाने लगा।

हृदय पर प्रभाव डालनेवाला औषधियें—डिजीटैलिस

[ले० डा० सन्त प्रसाद टंडन; एम० एस-सी०, डी० फिल०]

ऐसी दवायें जिनका हृदय पर प्रभाव पड़ता है बहुत उपयोगी सिद्ध हुई हैं। जिस समय किसी कारणसे हृदय बैठता हुआ मालूम पड़ता है उस समय इन दवाओंके देनेसे तुरन्त लाभ होता है। हृदयकी धड़कन रुक जानेसे बहुत ही मृत्युयें हुआ करती हैं। उन सभी दशाओंमें यदि इस प्रकारकी दवायें ठीक समयपर दी जा सकें तो मृत्यु प्रायः रुक जाती है। ऐसी दवाओंमें डिजीटैलिसका मुख्य स्थान है। इसका प्रभाव हृदयकी धड़कन पर किस प्रकार पड़ता है, इस बातको भली भाँति समझने के लिये हृदयकी कार्य-प्रणालीकी जानकारी आवश्यक है।

हृदयका मुख्य कार्य शुद्ध खूनको शरीरके भिन्न-भिन्न भागोंमें पहुँचाना है। यह क्रिया हृदयके निश्चित संकुचन और विस्तार द्वारा होती है और हृदयसे खून एक शक्तिके साथ खून-नलियोंमें दौड़ लगाता है। हृदयकी प्रति धड़कन की आवाज़ प्रति संकुचनकी क्रियाको निर्देश करती है। इस क्रियासे एक संकुचन – लहर हृदयसे उठती है और हृदयके भिन्न-भिन्न भागोंमें होती हुई खूनकी नलियोंमें बढ़ जाती है। नाड़ी-स्पन्दन भी इसी संकुचन-लहरको बतलाता है। स्तन-धारी जन्तुओंमें यह संकुचन-लहर हृदयके ऊपरी दाहिने भागमें उत्पन्न होती है। यहाँसे यह हृदयके अन्य भागोंमें विशेष तन्तुओं द्वारा पहुँचती है और हृदयकी मांस-पेशियों तक जाती है। इन तन्तुओंपर, जो हृदयके पुट्ठोंसे सम्बन्ध रखते है, प्रभाव पड़नेपर हृदय को गतिमें अन्तर आ जाता है। जो दवा इन तन्तुओं द्वारा संकुचन-लहर-संचारणमें कमी पैदा करती है वह हृदयकी चालको भी धीमी कर देती है। प्रायः ऐसा भी प्रभाव इन दवाओंसे पड़ता है कि हर एक पुट्ठेके तन्तु एक साथ संकुचित होने लगते हैं जिसका हृदयपर बुरा प्रभाव पड़ता है।

हृदयपर प्रभाव

हृदयके स्पन्दनपर दवाओंका दो प्रकारका प्रभाव

पड़ता है। स्पन्दनकी गतिमें या तो अन्तर आ सकता है या गति वही रहते हुये संकुचनकी क्रियामें दृढ़ता आ सकती है।

पहली दशामें हृदयकी धड़कन वेगल नसके किसी भागके उत्तेजित होनेसे कम हो जाती है। यह बात केन्द्रीय नस संस्थानके सुषुम्नाको स्ट्रिक्निन या एकोनिटिन (धतूरा) खिलाकर या क्लोरोफार्म सुँघा कर उत्तेजना पहुँचानेसे होती है। पाँचवी और दसवीं नसों द्वारा प्रतिबिम्बित प्रभाव डालनेसे भी यही दशा उपस्थित हो जाती है। इसी कारण अमोनिया तथा अम्लोंके वाष्पोंको साँसमें खीचनेसे हृदयकी गति धीमी पड़ जाती है, क्योंकि इनके द्वारा नासिकामें विद्यमान ५ वीं नस और फेफड़ेमें विद्यमान १० वीं नसके अन्तिम सिरे उत्तेजित होते हैं। चर्मपर जलने आदिका कोई तेज़ प्रभाव पड़नेपर भी सुषुम्ना पर उत्तेजना होती है। मस्तिष्ककी उत्तेजित सुवअस्थामें भी सुषुम्ना पर यही प्रभाव पड़ता है? खूनके दबावका भी सुषुम्ना पर प्रभाव पड़ता है। इसी कारण यह देखा गया है कि जो वस्तुयें खूनके दबावको बढ़ा देती हैं वे सुषुम्नाको भी उत्तेजित करती हैं और इस प्रकार परोक्ष रूपसे हृदयकी गति धीमी करनेका कारण होती हैं। हृदयसे सम्बंधित माँस-पेशियोंको उत्तेजित करनेवाली वस्तुयें भी हृदयकी धड़कन कम कर देती हैं। डिजीटैलिसका थोड़ा प्रभाव इन मांस-पेशियोंपर भी पड़ता है; क्योंकि यह देखा गया है सुषुम्नासे सम्बन्धित वेगल नसको हटा देनेपर भी डिजीटैलिस द्वारा हृदयकी गति धीमी पड़ जाती है।

हृदयके स्पन्दनमें वृद्धि ऊपर बतलाई हुई अवस्थाओंके ठीक विरुद्धकी दशा उत्पन्न करनेसे हो सकती है—अर्थात् उन केन्द्रोंको उत्तेजित करनेसे जो हृदयकी गतिको तेज करनेके कारण होते हैं। ऐसे केन्द्रको उत्तेजित करनेसे हृदयकी प्रति सेकेंड की चालमें वृद्धि तथा दृढ़ता दोनों ही प्रकारके प्रभाव एक साथ ही होते हैं। इस प्रकारकी दवाओंमें एड्रीनेलिनका विशेष स्थान है। यह खूनमें पहुँचनेपर हृदयकी धड़कनमें दृढ़ता तथा तेजी दोनों पैदा करता है।

हृदयकी चालमें एक अन्य प्रकारसे भी तेज़ी लाई जा सकती है। उन प्रभावोंको जो हृदयकी गति धीमी करनेमें सहायक होते हैं, यदि रोक दिया जाय तो हृदयकी धड़कन स्वयं बढ़ जायगी। सुषुम्नाकी उत्तेजित अवस्था हृदयकी चाल धीमी करती है। यदि किसी उपायसे सुषुम्नाको शिथिल कर दिया जाय तो हृदयकी चाल बढ़ जायगी। ऐसी चीज़ें जो मूर्छा उत्पन्न करती हैं— जैसे क्लोरोफार्म तथा क्लोरल, आदि सुषुम्नामें शिथिलता लाती हैं।

ऊपरी त्वचाको किसी साधारण रूपसे उत्तेजित करने पर भी हृदयकी गति तेज होती देखी गई है। अलसीकी साधारण पुलटिससे त्वचामें जो उत्तेजना होती है उससे हृदयका स्पन्दन अवश्य थोड़ा बढ़ जाता है।

खूनके दबावको कम करनेवाली चीज़ें भी हृदय-स्पन्दन को तेज करनेमें सहायक होती हैं। नोषितके कुछ यौगिकों द्वारा हृदय-स्पन्दनमें जो तेज़ी आती है उसका मुख्य कारण यही है।

निकोटिन, कुनीन तथा ल्लोबेलीनकी अधिक मात्रामें वेगस नसको नस-सेलोंको पूर्णरूपसे शिथिल कर देती हैं। अतः इन चीज़ोंसे भी हृदयकी गति तेज़ हो जाती है। नसोंकी शिथिलता चाहे केन्द्रीय हो चाहे नस-सेलों द्वारा हो और चाहे नस-शिराओं द्वारा हो, सबका अन्तिम प्रभाव एक ही होता है—अर्थात् नाड़ीकी गतिमें तेज़ी आ जाती है। एक और भी उपाय है जिससे हृदयको उत्तेजित किया जा सकता है। वे दवायें जो हृदयसे सम्बन्धित माँस-पेशियोंको उत्तेजित करती हैं, वे हृदयके स्पन्दनको भी बढ़ा देती हैं। कुछ ऐसी भी दवायें हैं जो साधारण मात्राओंमें तो हृदयकी गति धीमी कर देती हैं। किन्तु यदि इनकी मात्रायें बढ़ा दी जाती हैं तो ये हृदयकी माँसपेशियोंको उत्तेजित कर हृदयके स्पन्दनको बढ़ा देती हैं। जैसे जैसे इनकी मात्रायें बढ़ाई जाती हैं हृदय-स्पन्दनमें तेजी आती जाती है और अन्तमें स्पन्दनकी क्रिया सीमासे बहुत बाहर हो जानेके कारण मृत्यु हो जाती है।

कुछ ऐसी भी चीज़ें हैं जो संकुचनकी दृढ़ताको बढ़ाती हैं। बेरियम तथा विरैट्रीन हृदयकी माँसपेशियोंको उत्तेजित कर संकुचनकी क्रियामें दृढ़ता लाती है। इन दवाओं

द्वारा हृदयकी संकुचन अवस्था लम्बी, अधिक मजबूत तथा पूर्ण होती है।

हृदयकी पुष्टिकारक औषधियें किस प्रकार अपना कार्य करती हैं, यह बात एक उदाहरण द्वारा अच्छी प्रकार समझ में आ जायगी। हृदयकी एक ऐसी बीमारीकी अवस्था लीजिये जिसमें बायाँ क्षेपक कोष्ठके ऊपरका कपाट खराब हो गया हो। ऐसी अवस्थामें जब बायाँ क्षेपक-कोष्ठ संकुचित होगा तो ऊपरका कपाट खराब होनेके कारण कुछ खून बायीं आरिकिलमें चला जायगा और हृदयकी दायीं ओर एक विरुद्ध दिशामें दबाव उत्पन्न होगा जिसके फलस्वरूप हृदयकी शिराओंमें खून अधिक भर जायगा। हृदयसे खून बाहर ले जानेवाली धमनियोमें खून कम जाने लगेगा और इस दशामें हृदयको उचित भोजन मिलनेमें भी कमी आ जायगी। परिणाम यह होगा कि माँसपेशियाँ क्षीण होने लगेंगी और हृदय फैलने लगेगा। इस प्रकारका हृदय यद्यपि तेज़ीसे स्पन्दित होगा किन्तु इससे कोई लाभ नहीं होगा, क्योंकि हृदयकी क्रिया उचित रूपसे पूरी नहीं होगी। क्षेपक-कोष्ठ इतना अधिक शिथिल हो जायगा कि पूरी तौरसे खूनको बाहर नहीं भेज सकेगा और इस कमीको पूरी करनेके प्रयत्नमें जल्दी-जल्दी संकुचित होने लगेगा। इस दशामें यदि हृदयको उत्तेजित करनेवाली कोई औषधि जैसे डिजीटैलिस दी जाय तो संकुचनमें अधिक दृढ़ता और हृदयकी माँसपेशियोंमें अधिक मज़बूती आ जायगी और अब हृदय अपने खूनको पूर्ण रूपसे बाहर भेज सकेगा। हृदयके संकुचन-समयमें भी वृद्धि हो जायगी जिससे हृदयके स्पन्दनकी चाल पहलेकी अपेक्षा कुछ कम रहेगी किन्तु साथ ही धमनियोंमें खून जानेकी मात्रा बढ़ जायगी। संक्षेपमें दो तरहके लाभ होंगे—एक तो हृदयके ऊपर कार्यका बोझ कुछ कम होगा जिससे उसे थोड़ा आराम करनेका मौका मिलेगा और दूसरे, हृदयका कार्य निरर्थक न होकर लाभदायक होने लगेगा, हर एक बीमारीमें अवयवोंको आराम करनेकी आवश्यकता पड़ती है। जैसा ऊपर बतलाया गया है डिजीटैलिस हृदयकी इसी माँगको पूरा करता है।

डिजीटैलिस

डिजीटैलिसके पेड़की पत्तियोंमें से यह पदार्थ निकाला जाता है। कई ग्लूकोसाइड इसमेंसे निकलते हैं जिनमें डिजीटाक्सिन सबसे अधिक ज़हरीला और हृदयके ऊपर विशेष प्रभाव डालने वाला होता है। अन्य वर्तमान रहनेवाले ग्लूकोसाइडमें डिजीटैलिसका भी प्रभाव डिजीटाक्सिनकी ही तरह होता है, किन्तु कुछ हल्का रहता है

इन पदार्थोंको शुद्ध रूपसे अलग करना बड़ा कठिन है, क्योंकि ये बहुत जल्दी नष्ट हो जाते हैं। अलकोहलमें डिजीटैलिसका जो घोल बनाया जाता है उसमें ये सब ग्लूकोसाइड टैनिक अम्लके यौगिकके रूपमें वर्तमान रहते हैं। इस रूपमें इनका प्रभाव शुद्ध ग्लूकोसाइडके प्रभावसे भिन्न रहता है। दवाके व्यवहारमें लानेके लिये यद्यपि शुद्ध रूपसे इन पदार्थोंको अलग नहीं किया जा सकता किन्तु फिर भी ऐसा पदार्थ बनाया जाता है जिसमें अन्य ग्लूकोसाइडके रहते हुये भी डिजीटाक्सिनकी मात्रा काफ़ी होती है।

डिजीटैलिस दवामें दो रूपोंमें व्यवहारमें आती है। एक काढ़ेके रूपमें और दूसरा अलकोहलके घोल के रूपमें घुलते हैं। डिजीटाक्सिन और डिजीटैलिस पानीमें नहीं घुलते, किन्तु अलकोहलमें अन्य ग्लूकोसाइड जिनका प्रभाव हृदयपर इन दोनोंकी अपेक्षा बहुत कम पड़ता है पानीमें घुल जाते हैं। काढ़ेमें डिजीटाक्सिन तथा डिजीटैलिसकी थोड़ी मात्रायें कलोरोंके रूपमें वर्तमान रहती हैं। बहुत दिनों तक रखनेपर ये दोनों नष्ट होकर रालकी तरहके पदार्थ बनाते हैं जो बहुत ज़हरीले होते हैं। अतः अधिक दिनोंका बना हुआ काढ़ा व्यवहारमें नहीं लाना चाहिये।

त्वचा तथा अन्दरकी झिल्लियोंपर डिजीटैलिसका प्रभाव

त्वचापर यह बहुत चुनचुनाहट पैदा करनेवाला पदार्थ है। अन्दरकी झिल्लियोंमें यह सूजन तथा दर्द उत्पन्न करता है और ज्ञान तन्तुओंमें पक्षाघातकी सी दशा पैदा करता है। सूजन तथा जलन आदि डिजीटाक्सिनके कारण होती है। डिजीटैलिसका इस प्रकारका कोई तेज़ प्रभाव नहीं पड़ता।

अतड़ियोंमें डिजीटैलिस धीरे-धीरे शोषित होता है। साधारण दशाओंमें पाचन-नलीके रसोंका इसपर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता, किन्तु हृदयकी बीमारीमें जब अशुद्ध रस अधिक इकट्ठा होने लगता है तब इसका शोषण देरसे होता है और अवकाशमें पाचन-संस्थानमें डिजीटैलिस थोड़ा नष्ट अवश्य हो जाता है।

हृदयपर प्रभाव

डिजीटैलिसका मुख्य प्रभाव खूनकी नलियों तथा हृदयसे सम्बन्ध रखता है। हृदयपर इसका प्रभाव सीधी दिशासे न पड़ कर परोक्षरूपसे पड़ता है। औषधि विज्ञान द्वारा निर्धारित मात्राओंसे हृदयके स्पन्दनकी चालें धीमी पड़ जाती हैं। यह प्रभाव सुषुम्नाके उत्तेजित होनेसे होता है, क्योंकि वे नल नसके हटा देनेपर भी इसमें कोई अन्तर नहीं आता। हृदयकी माँसपेशियाँ भी डिजीटैलिस द्वारा थोड़ा प्रभावित होती हैं जिसके कारण भी हृदयका स्पन्दन कुछ कम पड़ जाता है, किन्तु यह प्रभाव बहुत हल्का होता है।

हृदयके स्पन्दनको धीमा करनेके साथ-साथ एक अन्य प्रभाव जो हृदयपर पड़ता है वह हृदयकी संकोचन-शक्तिको कम कर देता है और विस्तार-कालको बढ़ा देता है। स्वयं इस प्रभाव द्वारा हृदयसे खून बाहर जानेकी मात्रा तथा खूनका दबाव कम हो जाना चाहिए। लेकिन डिजीटैलिसका प्रभाव माँसपेशियों पर पड़ता है। उसके द्वारा संकोचन-काल बढ़ना तथा विस्तार-काल घटना चाहिये। इस प्रभावके कारण भी हृदयसे खून बाहर जानेकी मात्रामें कमी होनेकी ही संभावना होनी चाहिये किन्तु डिजीटैलिसके इन दो विरुद्ध प्रभावोंके एक साथ पड़नेके कारण जो सम्मिलित प्रभाव होता है उसमें संकोचन तथा विस्तारकी क्रियायें अधिक पूर्णतासे होती हैं और प्रति स्पन्दनके साथ अधिक खून हृदयसे बाहर जाता है। स्पन्दनकी चाल अवश्य कम रहती है। अतः डिजीटैलिससे दो लाभ एक ही साथ होते हैं—पहला यह कि हृदयका स्पन्दन धीमा हो जाता है और दूसरा यह कि हृदयका कार्य अधिक पूर्णता है।

डिजीटैलिसकी मात्राओंके अन्तरसे हृदयपर इसका तीन प्रकारका प्रभाव पड़ता है। इन तीनों अवस्थाओंका विस्तारसे वर्णन किया जायगा।

पहली अवस्था

औषधि-विज्ञान द्वारा निर्धारित मात्रा देनेपर हृदय-स्पन्दनमें साधारण कमी हो जाती है तथा हृदयमें खून भरने तथा बाहर निकालनेकी क्रियायें अधिक पूर्णतासे होती हैं। कार्डियोमीटर द्वारा हृदयके आयतनके उतार-चढ़ावकी माप करनेसे यह बात मालूम हो जाती है।

डिजीटैलिस विशेषकर उन बीमारियोंमें लाभदायक सिद्ध हुआ है जिनमें हृदयका मित्रल पर्दा खराब हो जाता है और हृदयमें खूनका विरुद्ध दबाव होनेसे अशुद्ध खून फुफ्फुस, यकृत तथा गुर्देमें जमा हो जाता है। इस रोगमें हृदय-स्पन्दन बहुत तेज़ होने लगता है। डिजीटैलिस ऐसे समय इस प्रकार प्रभाव डालता है। प्रथम यह हृदयका विस्तार-काल बढ़ाकर हृदयको आराम करनेका समय देता है। दूसरे यह हृदयकी माँस-पेशियों को प्रभावित कर अधिक शक्तिशाली संकोचन पैदा करता है जिससे अधिक खून बाहर जाता है। इस क्रियासे खून द्वारा अधिक भोजन भिन्न-भिन्न भागोंको मिलता है और वे पुष्ट होकर अपना अपना कार्य अधिक अच्छाईसे करनेमें समर्थ होते हैं। इस प्रकार डिजीटैलिस द्वारा जिस हृदयकी क्रिया पहले अनियमित रूपसे होती थी अब नियमित रूपसे होने लगती है।

दूसरी अवस्था

साधारण मात्राओंसे अधिक होनेपर डिजीटैलिस सुषुम्नामें बहुत अधिक उत्तेजित अवस्था उत्पन्न करता है। जिसके कारण हृदय पर एक तेज़ प्रभाव पड़ता है। इस प्रभावसे हृदय माँस-पेशियोंका प्रभाव दब जाता है और हृदयका विस्तार-काल बढ़ने लगते है और संकोचन क्रिया में धीरे-धीरे शिथिलता आने लगती है। ऐट्रोपीनका इञ्जेक्शन देनेसे यह प्रभाव रोका जा सकता है, क्योंकि ऐट्रोपीन वेगल नसकी अन्तिम शिराओंको ज्ञानरहित कर देता है और तब वह नस सुषुम्नाके प्रभावको हृदय तक पहुँचानेमें असमर्थ हो जाती है। हृदय उस समय केवल माँस-पेशियों द्वारा ही चलित होता है।

तीसरी अवस्था

डिजीटैलिसकी अत्यधिक मात्रा होनेपर हृदयकी हर एक मांस-पेशी एक दूसरेके सहयोगसे कार्य न कर अलग-अलग कार्य करने लगती हैं जिसका परिणाम यह होता है कि हृदय बहुत ही अनियमित रूपसे कार्य करने लगता है और अन्तमें एकदम रुक जाता है।

खूनकी नलियोंपर डिजीटैलिसका प्रभाव

खूनकी नलियोंको डिजीटैलिस कुछ संकुचित कर देता है जिससे खूनका बहाव थोड़ा कम हो जाता है। यह प्रभाव भी केन्द्रीय नस-संस्थानकी उत्तेजनासे सम्बन्ध रखता है।

हृदय तथा खूनकी नलियोंपर डिजीटैलिसका प्रभाव पड़नेसे खूनके दबावमें क्या अन्तर आता है यह जानना आवश्यक है। प्रथम अवस्थामें जब औषधि विज्ञान द्वारा निर्धारित मात्रामें डिजीटैलिस दिया जाता है तब खून का दबाव थोड़ा बढ़ जाता है। इस दबावके बढ़नेका कारण नलियोंका संकुचन तथा हृदय द्वारा खूनका बहाव बाहर अधिक होना है हृदय अधिक खूनको धमनियोंमें भेजता है। जहाँ यह थोड़ा विरुद्ध दबावका अनुभव करता है। परिणाम यह होता है कि हृदयसे खून ले जाने वाली नलियाँ खूनसे भर जाती हैं और हृदयमें खून पहुँचाने वाली नलियाँ जल्दी खाली हो जाती हैं। हृदयसे खून अधिक आनेके कारण धमनियोंकी एक ओर तो विस्तारकी प्रवृत्ति होने लगती है और दूसरी ओर डिजीटैलिसके प्रभावके कारण उनमें संकोचनकी प्रवृत्ति होती है। इन विरुद्ध प्रयत्नोंकी समतुल्य दशा होने पर नलियोंमें थोड़ा संकोचन रह जाता है। परिणाम यह होता है कि अधिक खूनके इन संकुचित नलियोंमें बहनेसे खूनका दबाव पहलेकी अपेक्षा अधिक हो जाता है।

दूसरी अवस्थामें जब कि डिजीटैलिसकी मात्रा कुछ अधिक होनेसे हृदयसे खून बाहर कम जाने लगता है तब खूनका दबाव कुछ गिर जाता है। तीसरी अवस्थामें डिजीटैलिसकी मात्रा बहुत अधिक होनेसे हृदयका कार्य अनियमित हो जाता है जिसके कारण खूनका दबाव गिरने लगता है और अन्तमें बिल्कुल नहीं रह जाता। उस समय मृत्यु हो जाती है।

अधिक मात्रामें होनेपर डिजीटैलिस अन्य मांस-पेशियोंपर भी प्रभाव डालता है। आमाशयकी मांस-पेशियोंके उत्तेजित होनेसे आमाशयमें अधिक गतिका संचार होता है और पेचिस आदिकी शिकायत हो जाती है। औरतकी बच्चेदानी पर भी आवश्यकतासे अधिक हिलोड़ होने लगती है जिससे प्रायः गर्भपात हो जाते हैं। मांसपेशियों पर इस प्रकारके प्रभाव केवल डिजीटैलिसकी अधिक मात्रा होने पर ही होते हैं; साधारण मात्राओंसे इसका डर नहीं रहता।

डिजीटैलिस मूत्र कम आनेकी दशामें भी लाभ करता है। इसके प्रभावसे खूनका दौड़ नलियोंमें अधिक होने लगता है और गुर्देमें शुद्ध खूनका बहाव पूरी तौरसे होने लगता है। जिसके फलस्वरूप गुर्दा तेज़ीसे काम करने लगता है और अधिक मूत्र बाहर निकालनेमें समर्थ होता है।

मनुष्य कृत मोती

[ले०—श्री ब्रजवल्लभ बी० एस-सी०]

विज्ञान (जनवरी १९३९) के पाठकों को यह पढ़ कर आश्चर्य हुआ होगा कि विज्ञान द्वारा मनुष्य हीरे बना सकता है। अब और भी अधिक प्रसन्नताका अवसर है जब कि इस दृष्टान्तको पढ़ कर मोती बनानेकी रीति मालूम हो जायगी। जापान देशमें इसको एक औद्योगिक मात्रामें बनाया जा रहा है। परन्तु इसके साथ यह भी मान लिया गया है कि ये मोती प्राकृतिक मोतीसे अपने अन्दरकी बनावटमें और सब एकसी बनावट न होनेसे अन्तर रखते हैं। इन सब मोतियोंमें परीक्षा करनेके बाद यह मालूम हुआ है कि सबमें मदर आव् पर्ल बीड या न्यूक्लियस (केन्द्र) अधिकतामें होता है।

जापानमें बनानेकी विधि

सबसे प्रथम जीवित सीप ऑयस्टरमेंसे बारीक झिर्री अलगकी जाती है। इस झिर्रीको जन्तु-शास्त्रमें मेण्टल पेरनचिमा कहते हैं और जो मोतीके अन्दर केन्द्रके चारों ओर थैलेके रूपमें होती है। केन्द्र स्वच्छ और ताजे पानीसे भरा हुआ होता है। इसको मांसके बने हुये थैले में लगा देनेके उपरान्त थैलेका मुँह एक डोरेसे बाँधा जाता है। अब यह सब एक दूसरे सीपकी थैलीमें रक्खे जाते हैं। इसको रखनेके लिये पहलेसे ही एक बारीक अच्छे औज़ारसे एक छेद इस दूसरी सीपीमें बनाया जाता है। इसे रखते समय मुँहका बँधा हुआ डोरा खींच कर बाहर अलग कर दिया जाता है और जो जख्म सीपमें डोरा बाँधनेसे पड़ जाता है उसमें औषधि लगा दी जाती है। सीप अलग करके फिर समुद्रमें डाल दी जाती है और बनाई हुई वस्तुको नेकर (मदर ऑव् पर्ल) से ढक दिया जाता है। ढकनेमें उसका विचार रक्खा जाता है कि तहें इतनी अधिकतामें रहें कि बना हुआ मोती बिल्कुल गोल बने। फिर कलोंसे उसे पूर्णतः गोल बनाकर उस पर एक सुन्दर पालिशकी जाती है।

मनुष्य कृत और प्राकृतिक मोतियोंमें अन्तर

प्राकृतिक मोतीके अन्दर परस्पर समानान्तर वृत खिंचे रहते हैं और ये वृत हाथके बने हुये मोतीके बाहरी भागमें होते हैं।

केन्द्र कैलशियम कारबोनेट और प्रोटीन जैसी एक चिपकती हुई वस्तुसे मिलकर बना होता है। प्राकृतिक मोतीमें रोञ्जन किरणोंसे परीक्षा करने पर मालूम हुआ है कि उसमें नेकरिक वस्तु बारीक तहों में जमा रहती है और इस मनुष्य कृत मोतीमें यह वस्तु दूर दूर तहोंमें होती है।

दोनों प्रकारके मोतियोंकी पहचान

पाठकोंको ऐसा विचार न करना चाहिये कि यह मोती सीपसे ही बनाया जाता है, इसलिये प्राकृतिक और यह मोती एक रूपके और एक ही वस्तु हैं। बहुत निपुणता और विद्वत्ताके साथ परीक्षा करने पर इन दोनोंमें बहुत अन्तर मालूम किया गया है। निम्नलिखित परीक्षाओंसे असली और नकली मोतीकी पहचानकी जा सकती है।

प्रथम परीक्षा आसान है। रौञ्जन किरणें प्राकृतिक मोतीमेंसे दूसरी ओरको नहीं जा सकतीं, परन्तु इस मोतीमेंसे बाहरको आ सकती हैं। इस कारण नक़ली मोतीका रौञ्जन किरण-चित्र बनाया जा सकता है, परन्तु प्राकृतिक मोतीका नहीं।

द्वितीय परीक्षा मिथीलीन ब्ल्यू नामक रंगसे होती है। एक सुईके द्वारा थोड़ासा यह रंग मोतीके अन्दर भरा जाता है। असली मोतीमें तो यह उसी स्थान पर रह जाता है, परन्तु नक़ली मोतीमें यह उस स्थान पर न रह कर समस्त भागमें फैल जाता है। ख़ुर्दबीनसे देखने पर परीक्षा का परिणाम ठीक तौर पर मालूम हो जाता है।

इन मोतियोंकी संख्या

१९३१ शताब्दीसे पहिले ३ लाख मोती वार्षिक बनाये जाते थे। और उस वर्षमें यह संख्या दुगुनी हो गई।

जापानमें यह व्यवसाय बहुत उन्नति पर है और इसी कारणसे यह विश्वसनीय प्रतीत होता है कि अब यह संख्या करोड़ों और अरबों पर पहुँच गई होगी। वहाँ पर इसकी उन्नतिका यह भी कारण है कि औरतें इसमें अच्छा और सस्ता काम करनेके लिये अधिक संख्यामें मिलती हैं।

अब दक्षिणी सागरके द्वीपोंमें भी यह व्यवसाय उन्नति कर रहा है।

फूली हुई ग्रन्थियाँ–पाइल्स तथा अपेण्डिसाइटिस रोग

(ले०—श्री राधानाथ टण्डन, बी-एस० सी०, एल० टी०)

हर एक जानता है कि हमारे समस्त शरीरमें रक्तवाहिनियाँ विद्यमान हैं तथा उन्हींके द्वारा गर्म रक्तका प्रवाह समस्त अङ्गोंको पहुँचता रहता है, परन्तु साधारण मनुष्य एक दूसरे प्रकारके वाहिनियोंके संस्थानसे जिनको लसीका या लिम्फ वाहिनियाँ कहते हैं और जिनमें एक स्वस्थ तरल पदार्थ वाहिनियों द्वारा समस्त शरीरमें पहुँचता रहता है, अनभिज्ञ हैं। यदि आप एक विषैली अँगुलीका निरीक्षण करें तो आपको अङ्गोंके सामने वाले भाग पर लाल रेखायें टहनियों तक जाती हुई दृष्टिगोचर होंगी। ये लाल रेखायें ज्वलित लिम्फ वाहिनियाँ ही हैं। साधारणतः वे दृष्टिगोचर नहीं होतीं। वे केवल तभी दिखाई पड़ती हैं जब वे लाल हो जायँ अथवा ज्वलनसे फूल उठें।

ज्वलित ग्रन्थियाँ

इन्हीं लिम्फ वाहिनियोंकी सीधमें लघु गोलाकार ग्रन्थियाँ विद्यमान हैं जिनको लिम्फ ग्रन्थियाँ कहते हैं। वे भी स्वस्थ अवस्थामें स्पर्श द्वारा बहुत कम ज्ञात की जा सकती हैं, परन्तु वे बहुधा ज्वलित होकर गोलाकार सूजनके रूपमें दृष्टिगोचर होने लगती हैं। ये ग्रन्थियाँ विशेष भागोंमें पाई जाती हैं। ग्रीवाके पार्श्व भागमें, ग्राएनमें, बगलके नीचे, तथा लघु ग्रन्थियाँ टेहुनी और घुटनेके पीछे। शायद आपको ज्ञात होगा कि शरीरमें दो प्रकारके रक्तकण विद्यमान हैं, एक श्वेत तथा एक अरुण। अरुण रक्तकणोंका कार्य फुफ्फसोंसे ओषजन वायुको लेकर शरीरके समस्त भागोंको पहुँचाना है। श्वेत वास्तवमें रक्षार्थीका कार्य करते हैं—वे उन हानिकारक सूक्ष्मजीवियोंसे युद्ध करते हैं जो रोग उत्पन्न किया करते हैं।

जीवाणु-प्रवेशके बाधक रक्षार्थीगण

यह लिम्फ ग्रन्थियाँ जिनका हम ऊपर वर्णन कर चुके हैं वास्तवमें श्वेत रक्तकणोंके समूह हैं। ये जीवाणु प्रवेशके समय रक्षार्थीका कार्य करते हैं। ये रोग वाले जीवाणुओंके आक्रमणमें बाधा डाल देते हैं। ये सूक्ष्म-जीवियों पर टूट पड़ते हैं तथा उनसे युद्ध करते हैं। इस युद्धमें ग्रन्थियाँ फूल उठती हैं। अस्तु, शरीरके किसी स्थान पर इन ग्रन्थियोंके फूल उठनेसे स्पष्ट हो जाता है कि शरीर पर आक्रमण करनेका प्रयत्न हो रहा है। यह युद्ध जैसा कि क्षयी रोगमें देखा जाता है, बहुत दिनों तक तथा धीमी चालसे चलता रहता है। यदि पैरका अंगूठा सोमवारको विषैला हो, तो जंघामें व्रण बृहस्पतिको बने।

जीवाणु-प्रवेशके द्वार

अच्छा, अब आप उस रोगीकी ओर ध्यान दें जिसकी ग्रीवामें ग्रन्थियाँ फूल आई हैं। यहाँ आपको शरीरके सूक्ष्म रचना-शास्त्रके ज्ञानका मूल्य ज्ञात पड़ेगा। हम डाक्टर लोगोंको विद्यार्थीकी अवस्थामें बता दिया जाता है कि लसीका या लिम्फ वाहिनियाँ इन इन भागोंमें होती हैं तथा यह भी सीखना पड़ता है कि ग्रीवाकी लिम्फ वाहिनियाँ सिरकी ओरसे, हलकसे, टान्सिलोंसे, जबड़े और दन्तोंसे तथा चर्मसे आती हैं। अस्तु, डाक्टर ग्रीवामें निकली हुई ग्रंथियोंके रोगका अध्ययन करते हुये इन्हीं समस्त स्थानोंमें जीवाणु प्रवेशके द्वारका खोज लगाता है।

जीवाणु ग्रन्थिमें विद्यमान हैं, परन्तु वे वहाँ पहुँचे कैसे? ग्रीवामें ग्रन्थियोंके निकलनेका प्रथम बड़ा कारण चर्मका गन्दापन है। गन्दापन दूर करो और ग्रन्थियाँ भी स्वस्थ हो जायँगी। सिर व चेहरेके एक ओरका घाव जीवाणुओंको प्रवेश करनेका अवकाश प्रदान कर सकता है। उपयुक्त चिकित्सा ऐसे घावकी यह होगी कि उसे पूर्णरूपसे स्वच्छ किया जाय और तब कोई न्यूनतम क्रियाशील लोशन उसमें लगा दिया जाय।

रोगकी किस्में

अच्छा, अब मान लो, हमको एक ऐसे जीवाणु प्रवेश-के रोगसे काम पड़ा है जिसमें सूक्ष्मजीवी शीघ्र ज्वलन

पैदाकर दें। परिणाम यह होता है कि ग्रन्थि फूल जाती है। फिर यह और अधिक फूल जाती है और वेदना प्रतीत होने लगती है। तत्पश्चात् यह लाल हो जाती है और ग्रंथिके ऊपरका चर्म कस जाता है और चमकने लगता है। इसके भी पश्चात् यह व्रणमें परिवर्तित होकर अन्तमें फूट जाती है और भीतरका मवाद निकल आता है। यदि घाव वाला स्थान कई सप्ताह तक खुला रहे। तो अभागे रोगीको इससे बड़ा कष्ट हो। फिर एक दूसरे प्रकारके रोगका विचार करो। जीवाणुक्षयीरोगके जीवाणु हों।

युद्ध

जैसा तुमको ज्ञात है, जीवाणु अपने सदृश और अनेक जीवाणुओंकी वृद्धि करते हैं। यदि उनका समूह एक बार भी ग्रंथिमें प्रवेश कर जाय तो वहाँ वे शीघ्र सन्तान उत्पत्ति करते हैं अब रोगके जीवाणुओं तथा शरीरकी शक्तिमें एक युद्ध छिड़ जाता है जिसमें श्वेत कर्णोंका ही मुख्य भाग है। यदि ऐसा है तो अब हमको इस बातकी ओर ध्यान देना है कि यदि हमको फूली हुई ग्रंथियोंपर विजय प्राप्त करना है तो हमको अपने स्वास्थ्य तथा शक्तिको उच्चतम श्रेणीपर स्थिर रखना पड़ेगा। बच्चेको और अधिक दूध दो, सोनेके समय खिड़की खुली रक्खो. शीतकालमें मछलीका तेल पिलाओ और स्कूल जाना भी बन्द करा दो, ताकि उसका सब समय खुली वायुमें व्यतीत हो। ग्रंथियों पर किसी दवाके लगाने का विशेष लाभ नहीं है। समस्त शरीरको शक्तिवान बनानेकी आवश्यकता है।

चीड़फाड़का प्रश्न

निम्न दो बातोंमेंसे कोई एक बात हो। शरीरकी शक्ति विजयी हो और ग्रंथियाँ जीवाणुओंकी मृत्युसे स्वयम् मृत्युको प्राप्त हों तब तो सब ठीक ही है, अथवा ग्रंथियोंकी और अधिक वृद्धि हो तथा माता-पिताके अनेक प्रयत्न करने पर भी जीवाणुओंकी ही विजय प्राप्त हो। ऐसी अवस्थामें चीड़-फाड़के प्रश्नपर उद्विग्न भावसे विचार करनेकी आवश्यकता है। पर स्मरण रहे, मैं प्रथम ही चीड़फाड़का प्रश्न नहीं उठाता। पहले आप अन्य विधियों से काम ले लीजिये। जब सब निष्फल हों, तो मेरी सलाह मानिये और ग्रंथियोंको चीड़फाड़ द्वारा पृथक्कर अग्निमें भस्मकर दीजिये। बच्चेकी ग्रीवामें बसे रहनेकी अपेक्षा उत्तम है कि वे अग्निवास करें। ग्रीवाकी फूली हुई ग्रंथियोंके प्रत्येक उदाहरणका पृथक्‌रूपसे अध्ययन करना चाहिए। इस लेखमें हमने विशेषकर बच्चोंके ही सम्बन्धमें लिखा है, परन्तु अधिक आयुके मनुष्योंकी ग्रीवाओंमें भी ऐसी फूली हुई ग्रंथियाँ पाई जाती है, और तब ये सामान्यत: किसी निकटवर्ती अङ्गोंमें किसी क्लिष्ट रोगके होनेकी वर्तमानता सूचित करती हैं।

पाइल्स या बवासीर

इस प्रकारके रोगकी चिकित्सा सामान्यत: पेचिसकी चिकित्सा समझनी चाहिये और जैसा कि हम सहस्रों बार पहले बता चुके हैं चिकित्साकी अपेक्षा रोगसे अपनेको दूर रखना उत्तम है। कोई बच्चा पाइल्स रोग लिये हुये नहीं पैदा होता। यह हमारी असावधानी, रोगसे उदासीनता, तथा दवाइयों और जुलाबोंकी निरर्थक इच्छाओंका परिणाम है। हमारे रक्त लौटाने वाली रक्त-वाहिनियोंका फूल जाना ही पाइल्स रोग है। ये वे रक्तवाहिनियाँ हैं जिनमें रक्तका संचार हो रहा है। इस रक्तका संचार किस ओर हो रहा है? जिगरकी ओर। इस बातसे यह परिणाम निकलता है कि जिगरके रक्त से ठसाठस भर जानेसे ही पाइल्स रोगमें रक्त लौटाने वाली रक्त वाहिनियाँ भी ठसाठस भर जाती हैं। एक स्वस्थ व्यक्तिमें प्रति दिनकी स्वाभाविक क्रियासे यह रोग नहीं होने पाता; परन्तु अधिक दिनोंके कब्जके पश्चात् उदरकी तीव्र स्वच्छतासे जिससे फिर कब्ज न हो जाय; पाइल्स रोग और बढ़ जाता है। हम लोग आदतों के जन्तु हैं। यदि किसी मनुष्य ने वर्षों तक तीव्र जुलाब लिया, तो उसको उसके परित्यागमें बड़ी कठिनाई पड़ती है। पेचिशकी स्वाभाविक चिकित्सासे यह रोग नहीं होने पावेगा और यदि यह रोग कई वर्षोंमें अधिक बढ़ न गया तो अच्छा कर देगा। तुमको ज्ञात है कि रक्तआंतोंके निम्न भागोंसे जिगर की ओर प्रवाहित करता है, अस्तु तुम अब इस बातको भी समझ सकते हो कि

अजीर्ण तथा जिगरकी चिकित्सासे ही पाइल्स रोग बहुधा अच्छा हो जाता है।

भोजन तथा व्यायाम

इस विषयमें भोजन और व्यायामका परस्पर सम्बन्ध बड़े महत्वका है। यदि तुम थोड़ा ही व्यायाम करो तब तो तुमको भोजनकी मात्रा थोड़ी ही लेनी पड़ेगी। भोजन जो हमारे शरीरकी अग्निको निरन्तर उत्तेजित रखता है ईंधनका कार्य करता है। यदि अधिक अग्निकी आवश्यकता हो तो ईंधन भी अधिक चाहिए। यदि एक तरुण अवस्थाके मनुष्यको समस्त दिन खुली वायुमें कठिन शारीरिक कार्य करना पड़ा, तो उसको भोजनकी अधिक मात्राकी आवश्यकता पड़ेगी। परन्तु उस मनुष्यको जो इतना मोटा है कि उसको आवश्यकतासे अधिक चलनेकी इच्छा नहीं होती, विशेष न्यूनमात्रामें भोजन करना चाहिये। यदि वह उस मात्रासे जितना कि उसके शरीरके लिये आवश्यकीय है अधिक खाता है तो वह अधिक मात्रा उसके जिगरमें जाकर एकत्रित होगी और इससे रक्तके स्वतन्त्र प्रवाहमें बाधा पड़ेगी तथा इसका परिणाम यह होगा कि पाइल्स रोग हो जायगा। सम्भवतः वह यह समझेगा कि अत्यधिक मात्राका प्रभाव किसी पेटेण्ट मलहमके उपयोगसे कट जायगा, पर यह भूल है।

चिकित्सा

(१) जैसा सदा करते आये हो उससे १० मिनट और पूर्व उठो और कुछ साधारण व्यायामोंको करो। अपने पार्श्व भागोंको हाथोंसे भली प्रकार दबा कर ऊपर नीचे तथा पार्श्वमें झुको यह क्रिया जिगरके लिये दाब तथा मालिशका काम करती है।

(२) खाली पेट एक बड़ा ग्लास जल पिओ। इससे घुल कर साफ़ हो जायगा।

(३) अपना नाश्ता बहुत धीरे-धीरे करो तथा चर्बीदार पदार्थोंसे दूर रहो।

(४) आदतें सदा एक प्रकारकी होनी चाहिये। मनुष्यको समयका प्रबोध रुचिकर है।

(५) भोजनकी मात्रा एक तिहाई कम कर दो। दिनमें एक ही बार खाओ।

(६) दन्तोंकी ओर ध्यान दो।

(७) मद्यसे दूर रहो।

(८) भोज्य पदार्थोंमें ताज़े फल तथा भाजियोंका व्यवहार अधिक करो।

चित्तवृत्ति

हम इस बातको निश्चय रूपसे नहीं बता सकते कि शोक-वृत्तिसे पेचिशका प्रादुर्भाव हो जाता है अथवा पेचिशसे शोक वृत्ति उत्पन्न होती। सम्भवतः दोनों हीमें कुछ सत्य है। अपनेको सदा प्रसन्न चित बनाए रखनेका प्रयत्न करते रहो, कारणकि इससे चिकित्सामें आश्चर्यजनक सहायता प्राप्त होती है। हँसना शरीरके डायफ्राम तथा उदरके समस्त मांशपेशियोंके लिये, जिनका कि जिगर तथा आंतोंके कार्यमें एक महत्वपूर्ण भाग है, एक अति उत्तम व्यायाम है।

अपेण्डिसाइटिस रोग

अब हम अपेण्डिसाइटिस रोग क्या है इस बातको समझनेका प्रयत्न करेंगे। कुछ मनुष्योंका इसपर विश्वास नहीं है। उनकी धारणा है कि यह एक केवल काल्पनिक रोग है। जिसका कि अविष्कार डाक्टरोंकी एक गुप्त संस्थाने ही किया है। खेद इस सरल रीतिसे ऐसे विषयको उड़ा देनेसे काम नहीं चलेगा। जर्राहीखानोंकी दाइयोंसे जिन्होंने सैकड़ोंबार अपेण्डिक्समें चीरा लगानेपर गन्धमय मवादोंको निकलते हुये प्रत्यक्ष देखा है पूछो कि आया व अपेण्डिसाइटिस रोगकी वर्तमानता पर विश्वास करती हैं। चिकित्साग्रही अजायबघरके अध्यक्षसे भी जिसको रोगित अपेण्डिक्सोंके नमूने विद्यार्थियोंकी शिक्षाके लिये तैयार करना पड़ता है इसी प्रश्नको करो।

स्मरण रहे कि अपेण्डिक्स आंतोंका ही एक भाग है। अस्तु आंतोंके कटआर रोगसे हमारा अभिप्रायः उसी अपेण्डिक्सके कटआर रोगसे है। यदि आंत कटआर जैसा कोई रोग नहीं है तो अपेण्डिसाइटिसको छू मन्तर समझो। दूसरी बात यहाँ यह समझनेकी है कि अपेण्डिक्स एक थैली है। एक अन्धी गली। आपने देखा होगा कि जब तक एक स्वच्छ जल प्रवाहित रहता है मीठा होता है। यदि प्रवाहित जल किसी पीछेके ठहराऊ जलमें आपड़े, तो फर्मेण्टेशन आरम्भ हो जाता है। बुलबुले उठने लगते हैं चर्बी एकत्रित हो जाती है तथा अन्तमें दुर्गन्धका

प्रादुर्भाव हो जाता है। यही बात हमारे वर्तमान विषयके विवादमें भी लागू हो सकती है। जब तक हम पेचिशसे दूर हैं तथा आंतोंके पदार्थोंका हिलना डुलना क़ायम है, हमारा स्वास्थ्य ठीक है, परन्तु जब इनका ठहराव हुआ तभी फर्मेण्टेशन क्रिया ज्वलन तथा कटआर रोगका प्रादुर्भाव हुआ और कारण कि अपेण्डिक्स जैसी अन्ध नलिकामें ऐसा होना और अङ्गोंकी अपेक्षा सम्भव है, अपेण्डिक्समें बहुधा ज्वलनके वर्तमानका कारण स्पष्ट है।

रोगके प्रकार और कारण

अपेण्डिसाइटिस रोगके कई प्रकार है। पूर्णतयाकोमल प्रकार वह है जिसमें अल्प समयके लिये वेदना उठ कर कुछ घण्टोंमें हवा हो जाय। इसका अति बुरा रूप जो भाग्यसे बहुत कम होता है वह है जिसमें ३६ घण्टोंमें मृत्यु हो जाती है। कुछ लोगों पर इस रोगका आक्रमण वर्षमें दो या तीन बार होता है। ऐसे लोगोंके लिये यह सम्मति है कि वे ऐसे दुखदाई अङ्गको निकलवा कर किसी चिकित्सागृहके अजायबघरमें रखा दें कारण कि इससे बड़ा खतरा है। स्मरण रहे कि जो कुछ भी हम खाते हैं अपेडिक्ससे होकर जाता है। आपने उस आन्त्रज्वरके छूतवाले रोगके सम्बन्धमें पढ़ा ही होगा जिसने घाटीमें बसे हुए समस्त ग्रामको उजाड़ डाला, केवल इसी कारण कि वह जल-प्रवाह जिससे उनको पीनेका जल मिलता था एक आन्त्रज्वरके रोगीके शरीरसे निकले हुए उगालसे ऊपरकी धारामें ही दूषित हो गया था। मुँहसे रोगित दन्तोंके स्रावसे भी यह अङ्ग प्रभावित हो सकता है। मुँहमें वर्तमान जीवाणुओं तथा रोग ग्रसित अपेण्डिक्ससे लिए गए जीवाणुओंके निरीक्षणसे दोनों एक ही प्रकारके पाये गये। अस्तु, मुँहको स्वच्छ व निर्गन्ध रखना इस रोगसे बचना है।

आंत और अपेण्डिक्स

आंत होज़पाइपके प्रकारकी एक कई फुट लम्बी नलिका है। होज़पाइपसे यह इस बातमें अन्तर रखती है कि इसके समस्त प्रलम्बमें इसका व्यास एकसा नहीं है। अन्तके निकट यह बढ़ती जाती है तथा उस स्थानमें जहाँ छोटी और बड़ी आंतें मिलती हैं एक अन्ध उभार शाखारूपमें विद्यमान है। होज़पाइपसे इसकी उपमा इसी स्थानपर नष्ट हो जाती है। यदि आंतोंमें भरे हुये पदार्थोंके दौड़ानका मार्ग अन्त तक सीधा होता, तो हमारे वर्तमान वैद्यक तथा जर्राही चिकित्सामें इतनी जटिलता देखनेमें न आती। यह अन्ध थैली बड़ी बाधक है। एक अन्ध गलीमें पहुँचकर जिस प्रकार मनुष्योंको फिर अपने मार्गपर आनेके लिये लौटना पड़ता है ठीक उसी प्रकार भोजन पदार्थ भी इसमें आता और लौटता रहता है। खरगोश जैसे सागपात खाने वाले जन्तुओंमें यह अन्ध थैली बहुत बड़ी होती है, परन्तु मनुष्यमें बहुत छोटी। अपेण्डिक्स जो बहुधा ज्वलित हो उठता है, अन्ध थैलीका अन्तिम भाग है। भोज्य पदार्थके अणु, कीटाणु तथा अनेक प्रकारकी कीटें इसमें प्रवेश कर जाती हैं जहाँसे फिर निकलना असम्भव हो जाता है। आरम्भमें इनसे अल्पमात्र कटआर रोगका प्रादुभाव होता है। फिर यह कष्टदाई ज्वलनमें परिवर्तित होकर अन्तमें व्रण हो जाता है, और जब जान बचानेके लिए चीड़फाड़की आवश्यकता पड़ती है। स्वस्थ अपेण्डिक्ससे हमको कोई कष्ट नहीं होता।

डेञ्जर सिगनल

आंतोंका कटआर रोग एक प्रकारका डेञ्जर सिगनल है अर्थात् जो हमको आने वाले विकट रोगसे सावधान करता है। अस्तु, अपने आन्तरिक भागोंको स्वच्छकर अपेण्डिसाइटिसको उखाड़ दो। निश्चय मानो, तुम अपनी त्रुटियोंसे आप पकड़ जाओगे। यदि तुम्हारे दन्त अस्वच्छ रहते हैं तथा तुम्हारा भोजन रुग्ण दन्तोंसे निकले हुये स्रावोंसे मिश्रित हो जाता है तो निश्चय मानो व्रणका अवश्य प्रादुर्भाव हो जायगा। यदि तुम कई दिन तक पेचिश रोगसे ग्रसित रहो और अपने भोज्य पदार्थोंको मैले जलकी बावलीकी भाँति स्थिर हो जाने दोगे तो तुम कष्टको स्वयम् बुला रहे हो। यद्यपि तुम पेचिशको किसी तीव्र जुलाबसे दूर भी कर दो, तथापि इस क्रियासे तुम अपने आन्तरिक भागोंको हानि पहुँचाओगे जिससे वे और बिगड़ जायेंगे।

(अनूदित)

त्रिदोष-वादपर आंशिक विवेचन

[श्री स्वा० हरिशरणानन्द जी वैद्य]

हमारे पास डा० प्रसादीलाल जी झा एल० एम० एस० ने त्रिदोष विषयक एक छोटा सा लेख भेजा है। आपकी इच्छा है इसे विज्ञानमें प्रकाशित कर इसकी युक्ति-युक्तता पर विचार किया जाय। हम आपके अंग्रेजी लेखको अविकल देकर उस पर कुछ विचार करेंगे।

DOSHAS AND DHOSHA THEORY OF HEALTH AND DISEASE AND

AYURVEDIC YUKTIYUKTA THERAPEUTICS

Only briefest references to these are given here to illustrate the Scientific nature of Ayurved.

Ayurvedic Sushruta deals with the 4–dosh Theory.

All forms of martter of the body of a living organism are not composed only of the doshas, but also of other essential constituents as Dhatoos and Malas (protoplasms and tissue wastes)

Doshas are positive substantial entities of the living organisms and distributed throughout their Dhatoos (as tissue cell-enzymes or endo-enzymes) and excreted as Malbhootdhatoos (tissue disintegration products at the end of Dhatupak (tissuemetabolism) lof different Protoplasmic systems, and excreted into the gastro-intestinal tract (as Ecto-enzymes) or out of the body through numerous excretory organs and passages.

Doshas are essential for all life processes of an organism, from the time of conception to brith, and after birth till death. They, in normal quantitative states, are the causes of Sam-doshkriya, Sam agnikriya and Sam-dhatumalkriya and in abnormal or pathological quantitative (deficiency or excess i e. decreased or increased) states are agents of Visham-dosh and agnikriya, and Vishamdhatumalk kriya. That is of normal or abnormal intracellular Enzyme-reactions, Endocrine reactions and Protoplasmic synthetical or assimilatory and disintegrating or dissimilatory reactions and in this way associated with simultaneous generations of the metabolites in normal or abnormal (deficient or excessive) quantities.

The scientiffc difference between "Dhatu-samyam or Physiological quantitative states of the Tissues (i. e. Cell Physiolology) and Dhatu-vaishamyam (i e. Cell Pathology) of Ayurved is only one of quantity-a truth recognised by the leading Pathologists of to-day.

Compare the above Theory of Ayurved with the following reference from Green's Pathology.

"In pathology we have to deal not with new tissue-cells and functions, but simply with disturbances of those which normally exist......... In other words pathological proeesses differ only quantitatively from allied physiolygical processes.

Note. Dosh and Agnikriya and Dhatumala-kriy are in the light of modern scientific developments only fermentative or enzyme reactions of intra-cellular nature.

Conclusion:—

Ayurvedic Therapeutics called "Dhatusamya-kriya" or Restoration of the abnormal (increased or decreased) protoplasmic enzyme contents primarily and thus also the rest of the life-processes to their normal states, is rightly named Yukti-yukta or Rational.

December, 1938. Prasadi Lal Jha, L. M. S.
Cawnpore.

भावार्थ

दोष और दोष-सिद्धांतका स्वास्थ्य तथा रोगसे सम्बन्ध और

उसका आयुर्वैदिक युक्ति-युक्ति विवेचन

त्रिदोष-सिद्धांतका वैज्ञानिक सम्बन्ध सिद्ध करनेके लिये हम संक्षेपमें यहाँ उसका उल्लेख करेंगे।

सुश्रुत जी चार दोष-सिद्धांत मानते हैं।

तत्वोंसे निर्मित समस्त सजीव शरीरके अंगोंका संगठन करनेमें केवल तीन दोष ही नहीं होते, प्रत्युत इसके साथ अत्यावश्यक आदि घटक जीवाद्यम रसका भाग (धातु) और तन्तु क्षयांश (मल) भी है।

दोष चेतन अंगीय आवश्यक उपादानके धनात्मक भाग होते हैं जो उनके समस्त धातुओंमें विभक्त हुये हैं। (तन्तु कोषोंके वाह्य और आन्तरीय उत्प्रेरकोंकी तरह) और मलमूत्र धातु भिन्न-भिन्न जीवाद्यम रचनाके अनन्तर शेषांश या क्षयांश (धातु परिपाकके अनन्तर जो तन्तुओं के भाग वियुक्त होकर प्रादुर्भूत हो जाते हैं उनकी मल भूत धातु संज्ञा है) की तरह अन्तप्रणालीसे या शरीरके वाह्य अन्य मल निस्सारक योगोंके द्वारा वहिष्कृत कर दिये जाते हैं।

जन्मसे लेकर मृत्यु पर्यन्त तक शरीरको सजीव स्थिति में बनाये रखनेके लिये दोषोंकी विद्यमानता अत्यावश्यक है। उस सजीव शरीरमें तन्मात्रिक या आणविक स्थिति साम्यदोष क्रिया, साम्य-अग्नि-क्रिया, साम्यधातु-मल-क्रियाके कारण है। और सजीव शरीरकी असाधारण तन्मात्रिक या आणविक स्थिति अथवा यों कहो रोगावस्थामें विषम दोष, विषम अग्नि, विषम मल क्रियाके कारण है। इस प्रकारके साधारण या असाधारण स्थित्यन्तर में कोषीय उत्प्रेरणी क्रिया प्रणाली विहीन ग्रन्थों रसकी क्रिया (असूर्यंता Harmons) जीवाद्यमकी निगूढ़ रचना या घटक सात्म्यीकरण और असात्म्यीकरण क्रिया (क्षयांशत्याग क्रिया) में इसी प्रकार साधारण या असाधारण तन्मात्रिक या आणविक अवस्थायें युगपत् मूल उपादान व घटकसे संयुक्त रचनामें सहयोग प्रदान करती हैं।

आयुर्वेदके धातु साम्य और धातु वैषम्यमें केवल यत्किंचित् ही वैज्ञानिक अन्तर है जिसकी सत्यताको आधुनिक बड़े-बड़े निदान-शास्त्रियोंने भी माना है। हम आयुर्वेदके उपर्युक्त दो सिद्धांतोंको ग्रीन साहबके दिये निम्न प्रमाणके साथ तुलना करते हैं "निदान शास्त्रमें हमें तन्तुकोषों और उनकी क्रियाओंका वर्णन नहीं करना है, प्रत्युत केवल साधारणतया तन्तु कोषोंमें जो विकार उत्पन्न होते हैं उनका उल्लेख करना है.........दूसरे शब्दोंमें इस तरहकी रुग्णावस्था, स्वास्थ्यावस्था या भौतिकीय अवस्थासे यत्किंचित् ही अन्तर रखती है।"

दोष, अग्नि-क्रिया और धातु-मल-क्रिया यह सब आधुनिक समुन्नत विज्ञानकी परिभाषामें केवल अभ्यन्तरीय सजीवकोषोंकी सन्धानकारी अथवा उत्प्रेरक क्रियायें हैं।

उपसंहार— आयुर्वैदिक युक्ति युक्त चिकित्सा जिसको धातुसाम्य क्रिया कहते हैं वह आरम्भिक साधारण जीवाद्यमकी उत्प्रेरकीय साम्यरूप स्थिति है। यही शेष जीवन संबन्धी क्रियाओंका साम्य बनाये रखना भी कहलाता है। यही सत्यता युक्ति युक्त व पूर्ण है।

डा० प्रसादीलाल जी झा।

हमारे माननीय डा० साहब ने इस छोटेसे लेखमें त्रिदोष सिद्धांतका वैज्ञानिक संबन्ध सिद्ध करनेकी चेष्टाकी है, किन्तु यह जभी संभव था जब आप प्रथम त्रिदोषका स्वरूप बतलाते। आपने न तो त्रिदोषकी स्थिति बतलाई, न कारणभूत रूप। आप इतना ही कहकर रह गये कि "सुश्रुत जी चार दोष मानते हैं" मानना एक बात है उसके अस्तित्वको सिद्ध करना दूसरी बात है।

जब तक त्रिदोषका शरीरमें स्थान, स्थितिका संबन्ध न सिद्ध किया जाय तब तक उसके किस रूपसे शरीरके किस पदार्थका वैज्ञानिक सम्बन्ध बनेगा? तुलना तभी की जा सकती है जब एक चीज़ हमारे सामने किसी एक रूपमें स्थिर हो तभी दूसरेकी मानी या जानी हुई चीज़से उसकी तुलना हो सकती है।

यदि डाक्टर साहब ने त्रिदोषकी उत्पत्ति, स्थिति व शरीरमें उसके स्थान व उसके स्वरूप आदिका निर्देश नहीं किया तो हम चरकके द्वारा प्रतिपादित उस अंशको

रखकर फिर डाक्टर जीकी आगे दी हुई पंक्तियोंकी तुलना करेंगे।

आयुर्वेदके समस्त कर्त्ता शरीरको पंचभूतात्मक मानते हैं। यथा—

खादयः चेतना षष्टी धातवः पुरुषः स्मृतः। चरक।

आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी यह पञ्चमहाभूत तथा छठी चेतनाके समुदायका नाम पुरुष या सजीव शरीर है।

शरीर किन-किन तत्वोंसे बना है? इसका प्रमाण चरक जी स्वयम् इस प्रकार देते हैं—

यत्र यद्विशेषतः स्थूलं स्थिरं मूर्त्तिमद् गुरू खरकठिन मंगम् नखास्थि दन्त, मांस चर्म वर्चः केशश्मश्रुः लोम कण्डरादि तत्पार्थिवो गन्धो घ्राणं च। चरक।

जो स्थूल स्थिर, मूर्त्तिमान्, भारी, खर कठिन अंग हैं यथा—नख, हड्डी, दाँत, मांस, चर्म, मल, केश, दाढ़ी लोम कण्डरा आदि यह सब पार्थिव तत्वसे बनते हैं और—यद्द्रव सरमन्द स्निग्ध गुरु पिच्छल, रसरुधिरवसा कफ पित्त मूत्र स्वेदादि यदाप्यंरसौ रसनञ्च। चरक।

जो द्रव, पतले, मन्द, चिकने भारी, ल्हेसदार अंग हैं यथा—रस, रक्त, चर्बी, कफ, पित्त, मूत्र, और स्वेदादि वह जल तत्वसे बनते हैं।

और—यत्पित्त मूष्मोया याचभाः शरीरे तत्सर्वमाग्नेयं रूपं दर्शञ्च। चरक।

शरीरमें जो पित्त, गरमी और तेज उत्पन्न होता है तथा रूपज्ञान व दर्शन आदि होते हैं वह सब अग्नि तत्वसे आते हैं।

और—यदुच्छ्वास प्रश्वासोन्मेषनिमेषा कुञ्चन प्रसारण गमन प्रेरण धारणादि तद्वापवींय स्पर्शः स्पर्शनञ्च। चरक।

जो शरीरमें श्वास प्रश्वास गति आँख खोलना मींचना अंगोंका फैलाना, सिकोड़ना, चलना, फिरना, प्रेरणा, धारण करना आदि तथा स्पर्श, स्पर्शन यह सब वायु तत्वसे उत्पन्न होते हैं।

और—यद्विविक्तं यदुच्यते महन्ति चाणूनि श्रोतांसि तदन्तरिक्षं शब्दः श्रोत्रञ्च। चरक।

जो शरीरमें अवकाश भाग या छोटे बड़े छिद्र या पोल है तथा शब्द व कर्ण यह सब आकाश तत्वसे उत्पन्न होते हैं।

इन पाँच तत्वोंसे जो शरीर बनता है इन तत्वोंका रूपान्तर तीन भागोंमें दिया गया है। यथा—दोष धातु मलं मूलं हि शरीरम्।

दोषधातु और मल यह शरीरके ही मूल भूत हैं। इनमेंसे हम तीनोंका भिन्न भिन्न स्वरूप जो शास्त्र कहता है देते हैं। दोष तीन हैं बात, पित्त और कफ। वायुका स्वरूप—रौक्ष्यं लाघवं वैशद्यं शैत्यङ्ग तिरमूर्त्तं त्वञ्चेति वायोरात्म रूपणि। चरक।

वायु-रूक्ष लघु, विशद, शीतल अमूर्त्त रूपवाला है।

पित्तका स्वरूप—औष्ण्यं तैक्ष्ण्यं लाघव मतिस्नोहो वर्णश्च शुक्लारुणवर्जो गन्धश्च विस्रो रसौच कटुकाम्लो पित्तस्यात्मरूपाणि। चरक।

पित्त—उष्ण, तीक्ष्ण, लघु, चिकना श्वेततायुक्त अरुण वर्णके बिना अन्यवर्ण वाला मांसगन्धी कटु और अम्ल रूपवाला है।

श्लेष्मका स्वरूप—स्नेह शैत्य शौकल्य गौरव माधुर्य मन्द्यानि श्लेष्मण आत्म रूपाणि। चरक।

श्लेष्म चिकना शीतल सफेद भारी मीठा मन्द रूपवाला है। उपर्युक्त दोषोंका जो स्वरूप दिया गया है। इन्हींको तत्वके गुण रूपमें भी किसी अन्य स्थानपर बतलाया गया है। यथा—मृदुता, लघुता, सूक्ष्मता, श्लक्ष्णता और शब्द यह आकाशके गुण हैं। उष्णता, तीक्ष्णता, लघुता, रुक्षता विशदता और रूप यह अग्निके गुण है। लघुता, शीतलता, रुक्षता, खरता, विशदता, उज्ज्वलता, सूक्ष्मता, स्पर्श यह वायुके गुण हैं। द्रवता, स्निग्धता, शीतलता, मृदुता, पिच्छलता, मन्दत्व, सरत्व और रस यह जलके गुण है। भारीपन, कठिनता, खरता, मन्दता, स्थिरता, प्रगाढ़ता, स्थूलता और गन्ध यह पृथ्वीके गुण हैं।

यदि पाठक इन तत्वोंके गुण और दोषोंके स्वरूपको मिलावेंगे तो उन्हें ज्ञात हो जायगा कि उक्त तत्वोंकी बहुत कुछ सारुप्यता व साधर्यता इनमें बतायी व दिखायी गई है। यहाँ पर पंचभूत और उनके प्रति रूप दोषोंके शास्त्रीय विवेचनसे यह स्पष्ट हो रहा है कि न तो पंचभूत

ही ऐसे सूक्ष्म सत्तात्यक हैं जो इन्द्रिय अगोचर हों और न त्रिदोषके स्वरूपसे ही उनकी अगोचरता ज्ञात होती है। वायुको अवश्य अमूर्त्त माना है जिसका अर्थ यह नहीं कि वह अगोचर है। प्रत्युत स्पर्शसे उसका ज्ञान होता है ऐसा माना गया है। पित्त जिसको वर्ण युक्त मांसगन्धी कटुस्वादी व अम्लस्वादी कहा है इसी प्रकार श्लेष्मको चिकना, भारी श्वेत, मीठा स्वाद बतलाया है। ये ऐसे ही स्थूल पदार्थ हैं जैसे धातु व मल। इसकी सत्यता निम्न प्रयोगसे प्रकट होती है। यथा—

पित्तं पंगु कफः पंगु पंगवो मल धातवः।
वायुना यत्रनीयन्ते तत्र गच्छन्ति मेघवत्॥ वाग्भट।

पित्त, कफ, धातु और मल यह सारे पंगु हैं। अर्थात् ये शरीरमें स्वतः, एक स्थानसे दूसरे स्थान तक नहीं जा सकते। वायु इन्हें शरीरमें इस तरह भ्रमण कराता है जैसे अन्तरिक्षमें वायु मेघोंको।

इनकी स्थूलताका प्रमाण एक स्थानपर चरक जी ने अंजलियोंसे नाप कर बताया है। यथा—अष्टौ शोणितस्य सप्त पुरीषस्य षट् श्लेष्माणः पंच पित्तस्य चत्वारो मूत्रस्य। चरक।

अर्थ—शरीरमें रक्त ८ अंजलि, मल, अंजलि, श्लेष्म ६ अंजलि, पित्त ५ अंजलि और मूत्र ४ अंजलि होता है। इस तरह इन तीनों दोषोंके शरीरमें पाँच-पाँच निवासके स्थान भी बतलाये हैं। जिसको विस्तारसे बतलाने की कोई आवश्यकता नहीं दिखाई देती क्योंकि उनके स्थान निर्विवाद निश्चित किये गये हैं। और समस्त आयुर्वेदज्ञ मतैक्यसे मानते हैं। अब धातुओंकी ओर आइये। शरीरमें रस, रक्त, मांस, अस्थि, मज्जा, और शुक्र यह सात ही धातुयें मानी गई हैं, जो सारीकी सारी ही स्थूल दिखाई देने वाली चीजें हैं।

अब रही मलकी बात—मलके सम्बन्धमें चरक जी कहते हैं।

तथाहार प्रसादाख्यो रसः किट्टं च मलाख्यमभिनिर्वर्तते। चरक।

जब आमाशयमें वह आहार पचता है तब उसके प्रसाद से रस आदि धातुयें बनती है तथा अवशेष जो बचता है उसे किट्ट रूप मल कहते हैं। इस मलसे भी शरीरकी कई चीजें उत्पन्न होती हैं। यथा—

किट्टात् मूत्र स्वेद पुरीष बात पित्त श्लेष्माणः कर्णाक्षि नासिकास्य लोमकूप प्रजनन मलकेश श्मश्रु लोमादया श्चावयवाः। चरक।

उस किट्टसे मूत्र पसीना, विष्ठा, बात, पित्त, कफ, कान, नाक, आँख, मुख, रोमकूप, व उपस्थ मुण्ड त्वचान्तर मैल आदि उत्पन्न होते हैं। इससे भिन्न सिर, बदन, दाढ़ी, मूँछके बाल व रोम, नख भी इसी किट्टभूत धातुसे बनते हैं। यहाँ पर बातका संकेत अपान वायु व डकार वायुकी ओर हैं और पित्तका वमनमें निकलने वाले पित्तकी ओर है तथा श्लेष्मका मुख-नाकसे प्रायः बहनेवाले श्लेष्मकी ओर है। किन्तु मलभूत वातपित्त और कफसे भिन्न जिन्हें दोष रूप वात पित्त और श्लेष्म कहा है वह शरीरमें भिन्न माने। किन्तु हैं शरीरके जिन-जिन स्थानोंपर उनका उल्लेख आया है वह वहाँ पर आज तक किसी प्रयोगवादीको नहीं मिलते। किसी न किसी तरह जाने जा सकते हैं। जिस तरहके स्थूल रूपधारी तीन चार तत्व है इसी तरहके स्थूल रूपधारी दोष भी बताये गये हैं तथा वैसी ही स्थूल रूपधारी धातु तथा उनके मल हैं। दोषकी ऐसी सूक्ष्म-सत्ता नहीं जिसे देखा या समझा न जा सके। किन्तु जिस वायुसे शरीरमें गति व नियन्त्रण श्वास प्रश्वास आदि कार्य कहे गये हैं वह जिन-जिन स्थानोंमें बतलाया गया है, नहीं पाया जाता। न वह कार्य ही उसके द्वारा होते दिखलाई देते हैं। यहाँ बात, पित्त और श्लेष्मके संबन्धमें है।

गर्भमे भी जब शरीर रचनाका आरम्भ होता है वहाँ भी शास्त्र ने दोषका कोई शरीरमें मूल स्थान न बतला कर सीधे तत्वोंको ही बतलाया है। यथा—

गर्भस्तु खल्वन्तरिक्ष वाटवाग्नि तोय भूमि विकारं चेतनाधिष्ठान भूतः। चरक।

गर्भ चेतनाके अधिष्ठानभूत पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाशका विकार है। और जिस वीर्यसे गर्भाधान माना है उसको भी वायु, अग्नि, जल और पृथ्वीके गुणोंसे युक्त बतलाया है। वीर्यमें भी दोषके लिये कोई स्थान नहीं बताया गया। जब दोष धातु और मल शरीरके मूल

पदार्थ हैं तब इनका रूप तत्वोंकी स्थितिमें न देकर दोषों-की स्थितिमें ही देना चाहिये था। जभी इनके शरीरके मूल पदार्थ होनेकी सार्थकता सिद्ध हो सकती थी।

उक्त प्रयोगोंके आधारपर कोई भी व्यक्ति निश्चित रूपसे यह नहीं कह सकता कि शरीरमें अमुक-अमुक दोषोंका स्वरूप पाया जाता है और वह जन्मसे मरणपर्यन्त अमुक-अमुक स्थानपर रहते हैं। दूसरी बात शरीर-रचना की आती है। शास्त्रकार शरीर रचनाको पंचभूतोंसे मान कर उसकी उत्पत्तिको रजवीर्य और चेतनाके संयोगसे मानता है। शास्त्रोंका मत है कि पंचभूत तथा उनसे उत्पन्न रज-वीर्य जड़ वस्तु हैं इनमें चेतना बाहरसे आती है। यथा—शुक्र शोणित जीव संयोगेतु खलु कुक्षिगते गर्भ संज्ञा। चरक शुक्र शोणित और जीवके संयोगका नाम गर्भ है। यहाँ पर जीवका प्रवेश माता पिताके रजवीर्यसे अलहदा माना है। फिर इस गर्भकी वृद्धि कैसे होती है? आयुर्वेद यहाँ पर जीवकोष सिद्धान्तका प्रतिपादन नहीं करता। प्रत्युत कहता है कि जीव ही सब शुक्र शोणितके साथ गर्भमें प्रवेश करता है तो सबसे पूर्व वह इनके संयोगसे आकाशको रचता है, फिर क्रमसे वायु अग्नि आदिकी रचना कर गर्भ-वृद्धि करता है। जिसकी संज्ञा खेटभूत चरक जी ने बतलाई है।

अब आइये! डाक्टर साहब जी के दिये वैज्ञानिक विचारोंको ऊपरके शास्त्रीय विचारोंसे मिलावें और देखें कि यह कहाँ तक मेल खाता है।

डाक्टर साहब जी कहते हैं "तत्वोंसे निर्मित समस्त सजीव शरीरके अंगोंका संगठन करनेमें केवल तीन दोष ही नहीं होते, प्रत्युत इसके साथ अत्यावश्यक आदि घटक जीवाद्यम रसका भाग (धातु) और तन्तु क्षयांश (मल) भी है।"

यहाँ पर तत्वोंसे निर्मित शरीरको मैटर शब्दसे बताया है। यह वैज्ञानिक मैटर पंच तत्वोंका पारिभाषिक नहीं प्रत्युत मौलिक तत्वोंके लिये आया है।

जिन तत्वोंसे इस समय शरीरकी रचना पाई गई है वह सब जलवायु और पृथ्वीके यौगिक रूपसे भिन्न हैं। अग्नि, जल, वायु और पार्थिव द्रव्योंकी दशा विशेषमें उपस्थितिसे आदि जीवकोषकी रचना वैज्ञानिक पद्धतिसे सिद्ध होती है, किन्तु वहाँ दोषोंका कोई स्थान नहीं पाया जाता। फिर डाक्टर जी ने दोषोंका होना वहाँ पर स्वतः सिद्ध किस आधार पर मान लिया? दोष तत्व नहीं, न तत्वोद्भूत ऐसे कोई यौगिक ही सिद्ध होते हैं जिन्हें आदि घटकके यौगिक मान लिया जाय। प्रत्युत दोष तो आयुर्वेद पक्षसे धातु और मलोंके मध्यकी चीज अथवा यों कहिये कि उनके ही रूपसे प्रतीत होता है कि वह धातुओंसे या शरीरायवोंसे प्रादुर्भूत चीज़ है। इनसे सजीव शरीरके अंगोंका संगठन किस आधार पर किस तरह मान लिया जाय, इस बातको सर्व प्रथम डाक्टर जीको बताना चाहिये था।

यहाँ पर प्रथम तो आयुर्वेदीय पंचभूतात्मक तत्वोंसे वैज्ञानिक मौलिक तत्वोंकी कोई तुलना नहीं होती। पंच भूतात्मक तत्व इस समयकी वैज्ञानिक परिभाषासे मौलिक तत्व नहीं प्रत्युत यौगिक सिद्ध होते हैं। इस तरह आपकी यह पहिली युक्ति-युक्त नहीं बैठती। रही शरीर संगठनके लिये दोषोंकी—इसकी तुलनामें आपने लिखा है कि "दोष चेतन अंगीय आवश्यक उपादानके धनात्मक भाग होते हैं जो उनके समस्त धातुओंमें विभक्त हुये होते हैं (तन्तु कोषोंके बाह्य व अन्तरीय उत्प्रेरकोंकी तरह)" आधुनिक वैज्ञानिक परिभाषामें धनात्मक भाग वह होता है जिसके आधार पर वस्तुका अस्तित्व हो। यहाँ धनात्मक भाग उपादानके साथ उनके संगठन जो मूलकारण माने जाते हैं वह कई एक माने जाते हैं यथा कई सजीव तन्मात्रायें लवण, क्षार, अम्ल, प्रकाश ज्योति, ताप आदि। जिनकी विद्यमानता योगवहन व उत्प्रेरणका काम देती है। इस सत्ताको आयुर्वेदीय दोष किन प्रमाणोंके आधार पर डाक्टर साहब जीने माल लिया है? इसका समाधान आपने नहीं किया। वास्तवमें इन उत्प्रेरकों व योगवाहक पदार्थोंकी तुलना दोषोंके साथ नहीं घटती। क्योंकि आधुनिक विचार-धाराके अनुसार कोई भी योगवाही व उत्प्रेरक पदार्थ शरीरके मूल पदार्थोंमें परिगणित नहीं किये जाते। उन्हें तो किसी भी वैज्ञानिक ने आदि घटकोंमें—जिनसे जीवाद्यम बनता है—कोई उपादान कारण नहीं कहा—प्रत्युत, सब निमित्त कारणमें इनको रखते हैं। इसलिये दोषोंके साथ उस उपादान कारणके धनात्मक भागका

कोई मेल न बैठनेसे इसे भी युक्ति-युक्त नहीं कहा जा सकता।

दोष अग्निक्रिया व धातुमल क्रियाका आपने और अधिक स्पष्टीकरण इस तरह किया है। "दोष अग्निक्रिया और धातुमल-क्रिया यह सब आधुनिक समुन्नत विज्ञान-की परिभाषामें केवल अभ्यन्तरीय सजीव कोषोंकी संधान कारी अथवा उत्प्रेरक क्रियायें हैं।"

इन पंक्तियोंसे तो बिलकुल स्पष्ट हो जाता है कि उत्प्रेरक व योगवाही निमित्त कारण व साधारण कारणों-को आप दोष मानते हैं। अच्छा आपकी विचार-धाराके अनुसार इन्हें दोष मान भी लिया जाय तो इनके कोपसे रोग किस तरह उत्पन्न होते हैं। इसका सिद्ध करना अत्यन्त ही कठिन हो जायगा।

वह कहता है किसी जीवाद्यममें २३० अंशुमानके पराकासनी प्रकाशमें पदर्थोंका सात्म्यीकरण अच्छी तरह चल रहा हो। यदि किसी वाह्य कारणसे उस परकासनी का अंशुमान घट या बढ़ जाय या अभाव हो जाय तो सात्म्यीकरण बन्द हो जाता या बिगड़ जाता है। इसीतरह अप्रेरक वा योगवाही पदार्थोंकी न्यूनाधिकता व अभावसे जीवकोषोंमें जीवन-व्यापार रुक जाता या बिगड़ जाता है अर्थात् उनके भीतर विषम स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इन नैमित्तिक कारणोंका परिस्थिति, अन्तरसे घटने-बढ़ने व अभावको दोषकोप नहीं कहा जा सकता। दोषकोपकी आयुर्वैदिक व्याख्यासे इसका मेल नहीं बैठता। दोषोंका विचार मानवी शरीर रचनाके साथ शास्त्र खिलता है। आदि कोषोंकी जीवाद्यम रचनाके साथ कहीं उल्लेख नहीं मिलता। पहिली बात तो यह है कि हमारे यहाँ जीवकोषी रचनाका सिद्धान्त ही नहीं है। ऐसी दशामें इतनी बारी-कियोंमें किस आधार पर जाया जाय?

हाँ, यदि डाक्टर जी दोषकी इस कठिन गुत्थीको किसी प्रकारसे सुलझा सकें तो धातुमलों पर आपकी दी हुई विवेचनाकी सच्चाईका कुछ मूल्य हो सकता है। क्योंकि जिस तरह दोषोंका जीवकोष सिद्धान्तके उत्प्रेरक व योगवाही निमित्त कारणोंका कोई मेल नहीं बैठता, इसी तरह आपके वर्णित जीवाद्यम रसेक भाग (धातु) से आयुर्वेदीय रस (आहारसे बना प्रसाद भूत रस) व रक्त आदि सात धातुओंकी कोई संगति नहीं बैठती। जब जीवकोष सिद्धान्त ही हमारे यहाँ नहीं हैं तो उसके जीवन मूल रससे प्रसाद भूत रसका किस तरह साम्य बैठता है। यह प्रसाद भूतरस शरीरमें अन्न प्रणालीसे चल कर लसिकामें जाता है। वहाँ से शिरामें और शिरासे धमनियोंमें जाकर रक्तमें मिल जाता है, फिर कहीं वह रस तन्तुजीवोंके उपयोगमें आता है। उस समय उस रसमें अन्न प्रणालीसे वहाँ तक पहुँचते पहुँचते उस पर अनेक सन्धानकारी क्रियाओंका क्रम चलता रहता है तथा जब वह तन्तुकोषोंमें प्रवेश करता है तब उसका वह प्रसाद भूत रस जैसा रूप नहीं होता, प्रत्युत उसकी गठनमें तन्तुकोषों तक पहुँचते पहुँचते बहुत अन्तर हो जाता है। फिर वह रस भाग जब तक तन्तुकोषों द्वारा सात्म्यीकृत न हो। आपके कथनके अनुसार "अत्यावश्यक आदि घटक जीवाद्यम रसका भाग" नहीं होता तो ऐसी स्थितिमें आयुर्वेदीय प्रसाद भूतरस धातु और आदि घटक जीवाद्यम रसैके धातु भागके कैसे समरूपता बनती है? यह तो डाक्टर साहबजी बतलावें और साथमें यह भी स्पष्ट करें कि आयुर्वेदीय धातुओंकी कुल सात संख्या जो दी है क्या शरीरमें सात ही धातु विज्ञान सिद्ध करता है? जीवकोषोंमें तो रक्त भी नहीं मिलता, अन्योंका तो कहना दूरकी बात है। इसलिये सातोंका युक्तियुक्त सम्बन्ध प्रथम विज्ञानके साथ सिद्ध करें। आंशिक रूपको लेकर भागनेसे आयुर्वेद सिद्धान्तोंकी कोई युक्तियुक्त तुलना नहीं कही जासकती। और डाक्टर साहब जी को मलके सम्बन्धमें यह भी स्मरण रखना चाहिये कि आयुर्वेद उस मल भूत धातुके शरीरके बाल नख और वात, पित्त कफकी उत्पत्ति मानता है इसका वैज्ञानिक युक्तियुक्त विवेचन भी आपको देना चाहिये।

मुझे अच्छी तरह ज्ञात है कि डाक्टर साहब जी आयुर्वेदके अनन्य भक्तोंमें से हैं और आप अनेक वर्षोंसे इस बातकी छानबीनमें लगे हैं कि आयुर्वेद सिद्धान्तोंको वैज्ञानिक विधानसे सिद्ध किया जाय। जिसका यह निचोड़ आपने बहुत बड़े समयके बाद प्रकाशित किया। हम आपके इस प्रयत्नका हृदयसे सराहना करते हैं। यदि डाक्टर साहब आयुर्वेदके सिद्धान्तोंमें बिना कुछ परिवर्त्तन किये (घटाये बढ़ाये बिना ही) उक्त मेरे द्वारा रखे आक्षेपोंका शास्त्रसम्मत व विज्ञानसम्मत समाधान कर डालेंगे तो आप आयुर्वेद-जगत्का महान् उपकार करेंगे।

व्याधि निवारणकी नवीन विद्या-कायरोप्रैक्टिक

[लेखक – श्री डा० पी० जौयकी डी० सी० और श्रीयुत रामेशवेदी आयुर्वेदालङ्कार]

एक अमेरिकन चिकित्सक डा० डो० डी० पामरने सन् १८९५ ई०में एक नवीन खोजकी जो मानवीय शरीरमें रोगके कारणके रहस्यका उद्घाटन करती थी। इस रहस्योद्घाटनका किस्सा मनोरञ्जक है। किसी दुर्घटनाके शिकार होनेसे एक मनुष्यकी श्रवणशक्ति पूर्णतया नष्ट हो गई थी। वह डा० पामरसे परामर्श लेने आया। रोगी अन्य अनेक डाक्टरों का इलाज करवा चुका था, पर लाभ कुछ नहीं था। डा० पामर ने सोचा-मालूम होता है कि बधिरताका वास्तविक कारण सर्वथा उपेक्षित रहा है, और इसलिए उसने रोगी को एक दम नये दृष्टि-विन्दुसे अध्ययन करना और परीक्षा करना आरम्भ किया। उसकी विवेक-बुद्धिने तर्क किया क्योंकि शारीरिक परीक्षाएँ कानके किन्हीं तन्तुओं का नाश सूचित नहीं करतीं, और साथ ही दुर्घटनाके थोड़े समय पीछे बहरापन हो गया है तो इसका कारण निश्चय ही कोई ऐसा विकार है जो इसकी दृष्टिसे बच कर कहीं दूर रह गया है।

सतत प्रयत्न और थका देने वाली परीक्षाओंके बाद आख़िर उसने रोगी की रीढ़में कुछ अनियमितता या गड़बड़ी पाई। उसने सुषुम्नाको अपनी साधारण अवस्थामें नहीं पाया। उसने अनुभव किया कि शरीर-रचना-विज्ञानके अनुसार कानको जो वातनाड़ियाँ जाती हैं उनका सुषुम्ना नाड़ीसे उसी स्थान पर संयोग होता है जिस स्थान पर अनियमितता है।

डा० पामर की देर तक यह धारणा रही कि सुषुम्ना काण्ड और वात-संस्थानकी परीक्षा पर अपेक्षाकृत कहीं अधिक ध्यान दिया जाना चाहिये जितना कि मेडिकल साइन्सने दिया है। कशेरुका काण्ड (वर्टिब्रल कौलम) की रचना, इसके स्वतन्त्रतासे गतिशील खण्ड, उनके बीचमें विभक्त होते हुए नाज़ुक वातनाड़ी तन्तु; रोगीकी सुषुम्नाके अवयवोंमें उसने विकृति देखकर सोचा कि ऐसी क्या बात है जो इन सबको आपसमें एक श्रृंखलामें संयुक्त करती है। क्या यह सम्भव हो सकता है कि दुर्घटनासे सुषुम्नामें कोई जरा सा स्थिति-भ्रंश हो गया हो? और इनमेंसे एक कशेरुका थोड़े ज़ोरसे यदि अपने साधारण स्थानपर लाया जा सकता हो तो उसका उस स्थानके सुषुम्ना नाड़ीके तन्तुओं पर दबाव हट सकेगा? ऐसे अनेक प्रश्न डाक्टरके मनमें उठे।

चित्र १—मनवीय सुषुम्ना

स्थिति भ्रष्ट कशेरुकाको ठीक करनेका उपाय निकालते हुये उसने इन प्रश्नोंका उत्तर ढूँढ निकाला। जब बार-बार प्रयत्न और फिर-फिर परीक्षायें करनेके बाद रोगीकी श्रवण शक्ति धीरे धीरे साधारण अवस्था तक पहुँच गई, डाक्टर पामर ने अनुभव किया कि वह एक महान् खोज की ड्योढ़ी पर है। उसने तर्क किया कि यदि कानको जाने

वाली वातनाड़ियों पर पड़ते हुये दबाव ने इस मनुष्यकी श्रवण-शक्तिको नष्ट कर दिया था तो अन्य वातनाड़ियों पर दबावसे मानव शरीरमें अवश्य अन्य उपद्रव पैदा होने चाहिए। इस विचारसे वह प्रयोगशालामें सब प्रकार-के रोगियोंपर विस्तृत अन्वेषण-कार्य करता रहा और अन्तमें अपनी प्रयोगशालामें प्राप्त विस्तृत परिणामोंसे उसने कायरोप्रैक्टिकके सिद्धान्तों को समुन्नत करते हुए रोग निवारणकी इस पद्धतिको जन्म दिया।

कायरोप्रैक्टिक शाब्दिक अर्थ है—हाथकी विद्या। इसमें रोगके निवारणार्थ केवल हाथकी सहायता ली जाती है और किसी प्रकारका औषधोपचार नहीं किया जाता।

कायरोप्रैक्टिक सिद्धांत इस सर्व सम्मत तथ्य पर आश्रित है कि स्वास्थ्य और शरीरके अवयवोंमें पूर्ण सहयोग हो मानव शरीरके सब भागोंमें मस्तिष्कसे हर समय जाने वाले जीवन शक्ति, जो सब मानसिक और शारीरिक क्रियाओंकी कारण भूत शक्ति है, मस्तिष्कमें पैदा होती है और वहाँसे यह वात-संस्थानमें होकर प्रत्येक अंग, तन्तु और कोष्ठ (सेल)में बहती है। विस्तृत वैज्ञानिक अन्वेषण बताता है कि यह प्रेरक शक्ति बहुत अंशों-में विद्युत-शक्तिके सदृश है। परन्तु इसकी ठीक-ठीक प्रकृति चाहे जो हो, यह निर्विवाद सत्य है कि स्वाभाविक स्वास्थ्य और शरीरमें पूर्ण सहयोग बनाये रखनेके लिए हर समय अबाध बहनेके लिए इसे स्वतन्त्र होना चाहिए। मस्तिष्क और शरीरको एक दूसरेसे संयुक्त करने वाला वात-संस्थान है जो एक अत्यधिक समुन्नत और पेचीदा विद्युत्-संस्थानसे भिन्न नहीं है। इस जीवनी शक्तिके उत्पादक लाखों कोष्ठ (सेल्स) मस्तिष्कमें है और इन सूक्ष्म मस्तिष्क कोष्ठोंमेंसे प्रत्येकके साथ बारीक वातनाड़ी-तन्तु (नर्व फाइबर) लगा होता है। ये लाखों वातनाड़ी तन्तु मिलकर सुषुम्नानाड़ी बनाते हैं जो मस्तिष्कके आधारसे प्रारम्भ होती है और कपालके आधारमें विद्यमान एक छिद्र फ़ौरेनम मैगनमसे निकलकर नीचे सुषुम्ना काण्ड की नाड़ी-गुहा (न्यूरल कैनाल) में चली जाती है।

सुषुम्ना काण्ड हड्डियोंसे बनी हुई एक लचकदार रचना है। इसको प्रचलित भाषामें रीढ़की हड्डीके नामसे जानते हैं। इसमें स्वतन्त्रतासे गतिशील चौबीस खण्ड होते हैं जिन्हें कशेरुका कहते हैं। इसके अतिरिक्त सैक्रम और कौक्सिक्स (पुच्छास्थि) दो हड्डियाँ और होती हैं। सुषुम्ना काण्ड शरीरके ऊर्ध्व भागका सारा भार सँभालता है। इसका सछिद्र मध्य भाग सुषुम्ना नाड़ीके लिए पथका काम करता है और उसके रक्षक आवरकका काम करता है।
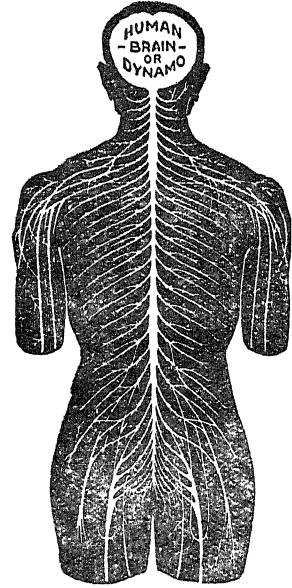
चित्र ५

यह चित्र वात-संस्थानके सामान्य विस्तारको प्रदर्शित करता है। ध्यान दीजिये कि किस प्रकार सुषुम्ना-नाड़ीसे वातनाड़ियाँ निकलकर शाखा-प्रशाखामें विभक्त होती हुई अत्यधिक सूक्ष्म हो जाती हैं।

एक दूसरेसे जुड़ते हुये प्रत्येक दो गतिशील कशेरु-काओंके बीचमें दोनों पार्श्वमें एक-एक छिद्र होता है जिसमेंसे वातनाड़ी-तन्तु निकलते हैं। इस प्रकार सुषुम्ना-नाड़ीसे शाखाओंमें फटनेके बाद ये सब सुषुम्ना वात-नाड़ियों (स्पाइनल नर्व्स) के इकत्तीस जोड़े बनते हैं। ये वातनाड़ियाँ शरीरके विभिन्न क्षेत्रोंको जाती हैं। इन वातनाड़ियोंकी इतनी अधिक शाखा-प्रशाखाएँ हो जाती हैं कि शरीरका प्रत्येक तन्तु कोष्ठ (टिशू सेल) वातनाड़ी

तन्तुओं द्वारा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपमें मस्तिष्कसे सम्बन्धित हो जाता है। वात-संस्थानका यह अतुलनीय जटिल शाखोद्भेद मस्तिष्क (या केन्द्र) को शरीरके सब भागोंसे सम्बंधित रखता है जिससे पोषण, मरम्मत तथा प्रत्येक मांसपेशी, अंग और कोष्ठका आपसमें सहयोग हर समय बना रहता है।

इसलिए यह सुगमतासे समझा जा सकता है कि सहयोग स्थापित करने और नियंत्रित करने वाले इस आश्चर्यजनक और बहुत सूक्ष्म समतुलित सिस्टममें हलके से हलका अवरोध कितनी गड़बड़ी पैदाकर सकता है। और वास्तवमें ठीक यही होता है। जब सुषुम्ना काण्डकी एक या अधिक हड्डियाँ किसी वाह्य शक्तिसे चोट खानेपर या मुक्का लगने, गिरने, जोरका दबाव पड़ने, लगातार अशुद्ध स्थितिमें सुषुम्ना काण्डके रहने, अतिशय कार्य या अनुचित जोर पड़नेके कारण अपने स्थानसे बलात् च्युत हो जाती हैं।

स्थान च्युत कशेरुका उस स्थानसे निकलती हुई वातनाड़ियों पर दबाव डालता है जिससे वातनाड़ी की गतिकी धारामें बाधा आ जाती है। जिसका मतलब होता है—स्वास्थ्य और जीवनी शक्तिसे शरीरको वञ्चित रखना और परिणामतः शरीरमें रोगके प्रवेशको आज्ञा देना।

स्पष्ट है, जब ऐसी बाधा उपस्थित होती है तो युक्ति-संगत उपाय यही होना चाहिए कि बाधाको दूरकर दिया जाय और उसके लिए हमें उस रुकावटके स्थान सुषुम्ना-की देख-भाल करनी चाहिए, न कि हम परिणाम या बाधाके कारण उत्पन्न लक्षणोंका इलाज करने लगें।

कायरोपैक्टिक पद्धतिका आधार यह जीवनका आधार भूत सिद्धांत है। कायरोप्रैक्टिक चिकित्सक वैज्ञानिक यंत्रों और एक्स-रे की सहायतासे सुषुम्नाका विश्लेषण करके निश्चय करता है कि किस स्थानपर और किस कारण अस्थिमयी रचना दबाब पैदाकर रही है और वातनाड़ीकी शक्तिके रास्तेमें बाधा पहुँचा रही है। यह निश्चय करके वह स्थिति-भ्रष्ट कशेरुकाको अपने हाथसे ठीक करके उपयुक्त स्थानपर पहुँचा देता है जिससे पुनः शरीरको अपने साधारण कार्योंको करने और स्वास्थ्य प्राप्त करनेके लिये वह अन्तः-शक्तिके प्रवाहको अनवच्छिन्न कर देता है।

भारतकी दशाका अध्ययन करनेसे स्पष्ट मालूम होता है कि देशकी स्वास्थ्य संबन्धी आवश्यकतायें कितनी बढ़ी हुई हैं। रोग और असमय मृत्यु बहुत अधिक हो रही है। अनेकों रोग जिनसे हम अच्छी तरह परिचित हो गये हैं, हर साल वृद्धिपर हैं। दवायें, सीरम्स, वैक्सीन्स और इन्जेक्शन्स महज़ फ़िजूल है क्योंकि ये शरीरकी स्वभाविक अच्छा होनेकी प्रक्रियामें ही केवल दख़ल नहीं देते, परन्तु ये शरीरके अवयवों और तन्तुओंको बहुत हानि पहुँचाते हैं। हमें अपने शरीरके लिये इन सबकी ज़रूरत नहीं है। हमें यह रास्ता ढूँढना चाहिये जो हमें प्रकृतिके अधिक नज़दीक ले जाय। कायरोप्रैक्टिक-पद्धति हमारे शरीरमें कोई विजातीय वाह्य पदार्थ नहीं डालती। वह हमारे अन्दर विद्यमान जीवनी शक्तिके प्रवाहको फिरसे अनवरत संचालित कर देती है।

लगभग पैंतालिस सालके समयमें यह विद्या इतनी शीघ्रतासे बढ़ गई है कि संसारमें प्रचलित औषधि-रहित पद्धितियोंमें इसने अग्रगण्य स्थान प्राप्तकर लिया है। केवल युनाइटेड स्टेट्समें ही इस पद्धतिके पचीस हज़ारसे अधिक चिकित्सक हैं जो समस्त देशके विभिन्न कायरोप्रैक्टिक कौलेजोंसे शिक्षा समाप्त करके सफलता-पूर्वक चिकित्सा कर रहे हैं। वहाँ कई कायरोप्रैक्टिक सनेटोरियम हैं जो क्षय, अपस्मार, उन्माद और अन्य मानसिक तथा वातिक रोगोंका विशेष रूपसे इलाज करते हैं।

कायरोप्रैक्टिकसे संसारमें लाखों रोगी अच्छे हो रहे हैं। यह समझ लेना चाहिये कि इसको तीव्र या पुरातन क्रिया संबन्धी या अंगों सम्बन्धी और वातिक आदि सब प्रकृति और क़िस्मोंकी बीमारियाँ अच्छीकी जाती हैं। कायरोप्रैक्टिकका क्षेत्र सीमित नहीं है। जो बीमार हैं और दुःख भोग रहे हैं, जो बिना किसी सफल परिणामोंके चिकित्साके अन्य तरीकोंको आज़मा चुके हैं और जो पुनः स्वास्थ्य-लाभ प्राप्त करनेके लिये वस्तुतः उत्सुक हैं, उन्हें हमें विश्वास है चिकित्साकी इस नवीन पद्धतिसे अवश्य लाभ होगा।

चित्र ३—अस्वस्थ सुषुम्नाका एक्स-रे फ़ोटो—

सोलह वर्षीय युवतीकी सुषुम्नाका यह एक्स-रे चित्र है जिसका शारीरिक और मानसिक विकास भलीभाँति नहीं हुआ था। शैशव कालसे यह अपने सिर और गरदन को सँभाल कर सीधा रखनेमें कठिनाई अनुभव करती है। सदा कमज़ोर और बहुत नाजुक रही जिससे डिप्थीरिया, कुक्कुर खाँसी, खसरा आदि बच्चोंके रोगोंका प्राय: शिकार बनी रही। मालूम होता है जन्मके समय सुषुम्नामें आघात पहुँच गया था। एक्स-रे दिखाता है कि असाधारण स्थितिमें विद्यमान कशेरूकाएँ सुषुम्ना वात नाड़ियों पर अवरोध पैदा कर रहे हैं जिससे जीवनी शक्तिके प्रवाहमें रुकावट हो गई और परिणामतः यह कन्या शारीरिक दृष्टि-से निर्बल और मानसिक दृष्टिसे पिछड़ी रही। कायरोप्रैक्टिक की दो मासकी चिकित्सासे इसकी शारीरिक अवस्थामें बहुत उन्नति हुई और मानसिक दृष्टिसे यह अधिक तेज़ मालूम होने लगी। इसके चेहरे पर रौनक आ गई और देखनेमें वह बुद्धू नहीं मालूम होती थी। अब यह अपने जीवनकी समस्यापर अधिक दिलचस्पी लेने लगी है।

चित्र ४—सन्धियोंकी शोथसे आक्रान्त रोगीकी सुषुम्नाका एक्स-रे फ़ोटो—

फोटोको ध्यानसे देखने पर मालूम होता है कि दूसरे और तीसरे लम्बर वर्टिब्रामें छोटे-छोटे अस्थिमय उभार पैदा हो गये हैं। और कशेरूकाओंके मध्यस्थ कार्टिलेज पतले हो गये हैं सुषुम्नाकी गति इससे सीमित होगई थी। रोगी स्वेच्छा-पूर्वक कमरको घुमा नहीं सकता था। शरीर की अन्य सन्धियोंमें भी शोथ, रक्ताधिक्य, लालिमा, ऊष्मा आदि लक्षण थे। रोगीको तीव्र वेदना थी। वह झुकने और चलनेमें असमर्थ था। बिना किसी औषधोप-चारके, कायरोप्रैक्टिक चिकित्सासे थोड़े समयमें ही वेदना, शोथ आदि लक्षण धीरे-धीरे लुप्त हो गये और रोगी चंगा हो गया।

चित्र ६—डाक्टर बौयकी एक रोगीका कायरोप्रैक्टिक पद्धतिसे इलाजकर रहे हैं।

आसवारिष्टों पर प्रतिबन्ध

(ले० स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य)

कांग्रेसी प्रान्तिक सरकारोंके द्वारा मद्यनिषेध योजनाका कार्य-क्रम जबसे आरम्भ हुआ है तबसे उन प्रान्तोंके स्वास्थ्य-विभागाधिकारियोंने नशीली चीज़ोंको रखने, बनाने व बेचनेसे सम्बन्ध रखने वाले एक्साइज़ एक्टमें बहुत कुछ संशोधन व परिवर्त्तन किये हैं और मादकता-निषेध-योजनाके लिये जो-जो आवश्यक व सहायक बातें हैं उनमें बढ़ाई हैं। इसी क्रममें कुछ आयुर्वैदिक औषधियोंको सम्मिलित कर लिया गया है जिनका उपयोग नशाके अर्थ नहीं होता था, किन्तु उन औषधियोंमें मदकारी अंशका कुछ न कुछ भाग अवश्य पाया जाता है। प्रतीत होता है कि मदकारी अंशका पाया जाना ही इस भ्रमका मूल कारण हुआ और वह औषधियाँ भी निषेध भागमें सम्मिलित करली गईं।

हम उपर्युक्त कथनकी पुष्टिमें युक्त प्रान्तके व बम्बई प्रान्तके एक्साइज़ मेनुअलके उद्धरण देकर इस पर कुछ विचार करना चाहते हैं।

यू० पी० के एक्साइज मेनुअल न० १ में रूल नम्बर ६१७ में निम्नलिखित पंक्तियाँ है कलक्टर इन नियमोंके लिये अपने जिलेके वैद्य-हकीमों को चिकित्सा करने के लिये स्वीकृति दे सकता है। एक सूची उन स्वीकृत वैद्योंकी कलक्टरके कार्यालयमें रक्खी जायगी। और कलक्टरकी इच्छा पर निर्भर होगा कि किसी देशी चिकित्सकको इन नियमोंसे विरुद्ध चलने या किसी अन्य अपराधमें सजा पाने पर उसका नाम रजिस्टरसे खारिज कर सकता है। उपर्युक्त नियमोंके अनुसार तो बिना रजिस्टर्ड हुये या यों कहो कि कलक्टरकी स्वीकृतिके बिना कोई वैद्य उसके जिलेमें चिकित्साका पेशा नहीं कर सकता।

किन्तु अब देखिये, औषधि बनानेके उदार नियम रूल नं० ६१९। एक स्वीकृत वैद्य या हकीम सन्धानकारी औषधि बना सकता है जिसमें मद्य विद्यमान हो, किन्तु उसे परिश्रुत न किया गया हो। इस प्रकार जो सन्धान-सिद्ध औषधि हो उसका नमूना रसायनी परीक्षकके पास कलक्टर के मार्फत भेजा जाना चाहिये (परीक्षाके लिये कि इसमें कितना मद्य-भाग है) और इसका प्रमाण-पत्र लेना होगा। और प्रमाण-पत्रमें यह साथ उल्लेख कराना होगा कि यह औषधि है।

रूल नं० ६३८-जिस औषधिमें कुछ भी मद्यभाग हो उसको जाँचने वाले रसायनी परीक्षककी समस्त परीक्षाओंका व्यय उसे देना होगा। तथा वह जो नमूने भेजे उसके मूल्य-प्राप्तिका उसे अधिकार न होगा।

रूल नं० ६३९—बेंचनेके अर्थ जो उक्त नियमोंके अनुसार ऐसी मद्ययुक्त औषधि जिसमें २० प्रतिशतसे न्यून मद्यका भाग होगा कोई एक्साइज ड्यूटी नहीं ली जायगी।

मैनुअल नं० २ (एपेण्डिक्स डी) आम रियायत जो वैद्यों-हकीमोंको दी गई है औषधिके काम करने वालों को—जो हकीम व वैद्यके नामसे मशहूर हैं—दफा १७ और २१ युक्त-प्रान्तीय एक्साइज एक्टकी बाधाओंसे मुक्त हैं। किन्तु निम्नलिखित शर्तों पर—

शर्त १—यह रियायत केवल बनाने और बेंचने तक लागू है—शुद्ध दवाके रूपमें चाहे जिसमें भाँग व मद्यका २० प्रतिशत भाग तक हो। किन्तु आसव अरिष्ट (दवा) बिना परिश्रुत तैयार किया गया हो तो—

२—प्रत्येक वैद्य व हकीमको आवश्यक है कि ऐसी औषधियोंके निर्माणसे प्रथम एक प्रार्थनापत्र द्वारा कलक्टर साहबको सूचित करे कि वह ऐसी औषधि प्रस्तुत करनेका प्रबन्ध कर रहा है और बतावे कि—

३—ऐसी औषधि जो प्रस्तुत होगी वह शुद्ध औषधि के रूपमें ही व्यवहृत होगी।

४—आसव अरिष्टमें मद्यकी मात्रा २० प्रतिशतसे अधिक न होगी। मैनुअल नं० २ एपेण्डिक्स ई नं० ३ पुरानी मैनुअल संशोधन युक्त।

नं० ११—आसव अरिष्ट जो देशी वैद्योंके द्वारा प्रस्तुत किये गये हों वह उपर्युक्त नियमोंके अनुसार ही बनाये जा सकेंगे बशर्ते उसमें २० प्रतिशतसे कमही मद्यभाग हो, और वह परिश्रुत न किये गये हों। जिस तरह युक्त-प्रान्तमें आसव अरिष्ट-निर्माण पर कानूनी बाधा खड़ी की गई है इसी प्रकार बम्बईकी कांग्रेस सरकार ने कानूनी बाधा लगा दी है। बम्बई सरकारकी बाधा तो युक्त-प्रान्तीय सरकारकी कानूनी बाधासे भी अधिक कठोर है। वहाँ निम्नलिखित एक्साइज एक्टमें संशोधन किया गया है।

१—कोई देशी वैद्य बिना जिला-कलक्टरको सूचना दिये आसव अरिष्ट नहीं प्रस्तुत कर सकेगा।

२—आसव अरिष्ट रखने व बेंचनेके लिये लाइसेन्स लेना होगा।

३—आसव अरिष्ट पर भी मेडीकेटिड वाइनकी ड्यूटी देनी होगी।

४—जिसको वैद्य या डाक्टर नुसखेमें लिखकर आसव अरिष्ट देगा वही व्यक्ति आसव अरिष्ट खरीद सकेगा।

५—एक समयमें एक बोतलसे अधिक कोई नहीं खरीद सकेगा।

६—कोई व्यक्ति सवा बोतलसे अधिक आसव अरिष्ट अपने पास नहीं रख सकेगा।

७—लाइसेन्स फीस २५) अदा करनी होगी।

८—और आसव अरिष्ट पर २॥) प्रति गैलन ड्यूटी देनी होगी।

९—आसवके तैयार होने पर उसकी जाँच करानी होगी।

१०—तैयार आसवका हिसाब एक्साइज आफिसर को ठीक-ठीक दिखाना होगा तथा उसके बेंचनेके हिसाब का रजिस्टर रखना होगा। इत्यादि।

इसी तरहके नियम मद्रास गवर्नमेंटोंने बनाये हैं तथा बिहारकी गवर्नमेंट ऐसे ही नियम बनाने जा रही है।

उक्त प्रान्तिक गवर्नमेंटोंके के इस प्रकार कोठर व्यवहारको देखकर कोई भी ऐसा वैद्य न होगा जो इसे पढ़ कर क्षुब्ध न होगा।

कांग्रेसी सरकारसे पूर्वकी अंगरेज सरकारका जब तक प्रान्तमें बोलबाला था तब तक वह जो कुछ कानून बनाती थी वह जनताके हित-साधनार्थ कोई कानून नहीं बनाती थी। जितने भी जनतासे सम्बन्ध रखने वाले कानून बनते व पास होते थे सबके सब गौरांग महाप्रभुओंके हितका ख्याल रखकर बनाये व प्रचलित किये जाते थे। किन्तु उस समय यदि कोई कानून जनताकी दृष्टिमें विशेष हानिकर दिखाई देते थे|तथा जनता उनके विरुद्ध आन्दोलन उठाती थी तो ऐसे समय उक्त सरकार जनताका मुँह पोंछनेके लिये एकाएक पास न कर कभी लोकमत जाननेके लिये उनको प्रचारित करती थी, या उसे किसी विशेष उपसमिति (सिलेक्ट कमेटी) आदि के सिपुर्दकर वह कुछ लोकलाज रखती थी। किन्तु हम देखते हैं कि जबसे प्रान्तोंकी बागडोर कांग्रेस-जनोंने संभाली है जो जनमतकी ही एक तरहसे सरकार है, यह सरकार जनताकी भलाई व हितकामनाको दृष्टिमें रखकर जो कानून जनतासे सम्बन्ध रखने वाले हैं, बनते हैं। इनको बनाते समय इस बातका भी ख़्याल रखना चाहिये कि इस कानूनसे सबको लाभ पहुँचे। यदि उनके बनाये कानून सबको लाभ न पहुँचा सकें तो उनसे हानि किसी समुदायको न पहुँचे, यह उन्हें विचारना चाहिये।

भारतवर्षकी अधिक जनता शराब, भाँग, अफीम, तम्बाकू, आदि नशाकारक वस्तुओंका सेवन कर अत्यन्त हानिकर दुर्व्यसनोंमें पड़ रहे हैं, जिससे धन, अरोग्यता सुख सब ही मिटते जा रहे हैं। इस बुराईसे जनताको बचानेके लिये प्रान्तीय सरकारोंने जो मद्य-निषेध-योजना बनाकर उसको कानूनका रूप दिया, उनकी इस कामके लिये जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। यह योजना थोड़े ही दिनोंमें देशको नवजीवन प्रदान करेगी,|ऐसी पूर्ण आशा है।

किन्तु इस मद्य-निषेध-योजनाकी धुनमें उन कांग्रेसी जनों द्वारा इसको कानूनका रूप देते समय उसमें कुछ ऐसी बातें सम्मिलित कर ली गई हैं जो एक विशेष समुदायको हानि पहुँचाने वाली सिद्ध हो रही है।

मद्य-निषेध-योजनाके विचारसे प्रान्तिक कांग्रेसी सरकारोंने एक्साइज एक्टमें कुछ संशोधन बढ़ाये हैं। मालूम होता है, उन संशोधनोंको रखने वाले सज्जनोंको कुछ एक बातोंकी स्थितिका ठीक ज्ञान नहीं हो सका। जभी यह अप्रिय बातें कानूनके रूपमें बिना लोकमत लिये मद्य-निषेध-योजनाको जल्दी लागू करनेकी इच्छासे पास कर डाली गई। जब उस विशेष समुदायको इसका पता लगा और उन्होंने आन्दोलन उठाया तब वह अपनी कही बातके। औचित्यको सिद्ध करनेके लिये अनेक ऐसी बातें गढ़ ली जो सत्य नहीं। हम यहाँपर कांग्रेसी सरकारोंका ध्यान आसवारिष्टोंकी ओर दिलाना चाहते हैं।

उन्होंने आसवारिष्टोंको मद्य-निषेध-योजनामें सम्मिलित करके इनपर बिना विचारे प्रतिबन्ध लगाकर वैद्योंके प्रति अन्याय ही नहीं किया, प्रत्युत उस आयुर्वेदके प्रति भी महान् अन्याय किया जिसने कभी स्वप्नमें भी मादकता के लिये आसवारिष्टोंका निर्माण व सेवनका आदेश नहीं दिया था।

जो चीज़ न कभी मादकताके लिये बनायी जाती हो, और न उसका उपयोग कोई वैद्य मादकताके लिये करता हो उस पर प्रतिबन्ध लगाना उस विवर्द्धनशील आयुर्वेदकी गतिका अवरोध करना है, जिसकी उन्नतिके वह स्वयम् इच्छुक हैं।

क्या आसवरिष्ट नशेके लिये पिये जाते हैं ?

काँग्रेसी सरकारोंको आसवारिष्टपर प्रतिबन्ध लगाने से पूर्व किसी भी वैद्यसे यह अवश्य पूँछना या लोकमत जानना चाहिये था कि क्या यह आसव नशेके लिये पिये जाते हैं? और नहीं, तो उन्हें महकमा पुलीसके ही कागजातों द्वारा पता लगा लेना था कि कभी शराबवत् नशेका कोई केस आसवका भी आया है? यदि दस-बीस वर्ष की फाइलोंमें दो-चार केस ऐसे भी उन्हें मिल जाते तो इनका इसपर प्रतिबन्ध लगाना न्याय-संगत था। परन्तु, इन दोनों शहादतोंसे इसकी पुष्टि न हो सकी, तो फिर उसपर प्रतिबन्ध लगाकर उन्होंने सरासर वैद्योंके साथ अन्याय किया और आयुर्वेदका अहित साधन किया है।

बम्बईके व अहमदाबादके वैद्योंका एक डेपूटेशन उक्त प्रतिबन्धपर विचार-परिवर्तनके लिये जब बम्बई-स्वास्थ्य

विभागके मन्त्री जीसे मिला था तब उन्होंने एक-दो जेलोंके हवाले देकर बतलाया था कि जो कैदी शराबके आदी हैं उन्हें जब जेलमें शराब नहीं मिली तब वे द्राक्षासवको दवाके नामसे मँगाकर पीते पाये गये। किन्तु, जब आपसे पूँछा गया कि क्या आपने उन कैदियोंसे यह भी दरयाफ़्त किया कि तुमको इस आसवसे शराबवत् नशेकी पूर्ति होती है? तो नकारात्मक उत्तर मिला। यहाँ तो यह कहावत् उन कैदियोंपर चरितार्थ होती है कि "डूबतेको तिनकेका सहारा" शराब न मिली तो एक झस (हवश) पूर्णकी।

वास्तवमें मन्त्री जीके इस तर्कमें कोई सार नहीं। फिर मन्त्री जीने कहा "और देखो! बम्बई प्रान्तमें द्राक्षासवका खूब विज्ञापन किया जाता है। लाखों बोतलोंकी बिक्री इस बातको सिद्ध करती है कि द्राक्षासवका उपयोग जनता रोगके लिये नहीं स्वादके लिये—वह भी साधारण स्वादके लिये नहीं—नशेके स्वादके लिये पीती है। और इसकी जितनी शहादत चाहो मिल सकती है।" जब उनसे पूछा गया कि द्राक्षासवके सिवाय क्या किसी अन्य आसव आरिष्टका इस प्रकारके विज्ञापन तथा उनका आम जनता में उपयोग बता सकते हैं? तो आप कहने लगे प्रमाणके लिये एक ही काफी है। दूसरे हमने आपके बनाये १०० के लगभग भिन्न-भिन्न आसव अरिष्टोंके सेम्पल मँगाकर उनकी जाँचकी है। सबोंमें अलकोहल (मद्य) पाया जाता है। बहुतोंमें तो १० प्रतिशतसे लेकर २० प्रतिशत है। द्राक्षासवमें भी इतना ही है फिर इन सबोंपर प्रतिबन्ध क्यों न लगाया जाय?

वास्तवमें आपका यह तर्क वस्तु-स्थितिसे रहित सत्य और न्यायानुमोदित नहीं कहा जा सकता।

न्याय तो यह था कि समस्त आसवारिष्टोंको न सही, दस-पाँच आसवको ही लेकर यह जाँच करानी चाहिये थी कि आ या अन्य आसव भी द्राक्षासववत् पिये जा सकते हैं?। और क्या इनके भी विज्ञापन उसी रूप-रेखाके होते हैं? जैसा द्राक्षासवके। यदि उक्त दोनों बातोंका उत्तर उन्हें हाँ में मिलता तो उनका पक्ष न्याय युक्त सत्यपर अवलम्बित माना जा सकता था। और जब इसके विरुद्ध प्रमाण मिलते तब उन्हें एक द्राक्षासवको छोड़कर किसीपर भी प्रतिबन्ध नहीं लगाना चाहिये था। सरकार किसी भी बुराईको रोकना चाहे तो उसके रोकनेके लिये अनेक साधन हो सकते हैं। द्राक्षासव यदि उनके प्रान्तमें साधारण पेय बन रहा था तो वह अन्य कानूनके द्वारा इसके विज्ञापन व विक्रीकी रोक-थाम कर सकते थे। अधिक-से-अधिक द्राक्षासवपर प्रतिबन्ध लगा सकते थे। किन्तु यह कितना अंधेर है कि बिना जाँच-पड़तालके ही-केवल द्राक्षासवका अत्यधिक प्रचार देखकर तथा १५-२० प्रतिशत मद्यका भाग उसमें देख कर उन्होंने यह निर्णय कर लिया कि समस्त आसव अरिष्टोंपर प्रतिबन्ध लगा दिया जाय। आपका यह कार्य न्यायानुमोदित नहीं हुआ। इससे आयुर्वेद-चिकित्साको महान् क्षति पहुँचाई गई है। आयुर्वेदमें आसवारिष्टोंका वही स्थान है जो स्थान एलोपैथीमें टिंकचरोंका। प्रत्येक टिंकचरमें १०-१५ प्रतिशत मद्य होता हैं। किन्तु, क्या मंत्री जी बतला सकेंगे कि किसी ने टिंकचरोंको मद्यके स्थानपर पीकर नशेकी पूर्तिको है? यदि नहीं, तो बिलकुल यही बात आसवारिष्टोंके सम्बन्धमें सिद्धकी जा सकती है। द्राक्षासवको छोड़कर बाकी आसवारिष्टोंमें वनस्पतियों व काष्टौषधियोंका इतना अधिक भाग होता है कि यदि कोई व्यक्ति नशेके लिये उन्हें मात्रासे अधिक पान कर ले तो ऐसी स्थितिमें उसे नशा तो नहीं आता पर औषधियोंकी मात्रा उसके पेटमें अधिक चली जानेसे वह बीमार अवश्य हो जाता है। कई व्यक्ति अधिक टिंकचर की मात्रा पीकर मरते पाये गये हैं। वही हाल अधिक मात्रामें आसवके पीनेसे होते देखा जाता है। हम प्रत्येक कांग्रेसी सरकारोंसे प्रार्थना करते हैं कि वे फिर अपने इन इक्साइज एक्टके संशोधनपर विचार करें। और महात्मा गाँधी जीके बताये सत्यके मार्गको ग्रहणकर शान्त और निष्पक्ष होकर मेरे कथनकी सच्चाईकी शहादत लें। और जो बात सत्य हो और सबके लिये हितकर हो वह करें। हम उनसे किसी रियायतके इच्छुक नहीं।

———

विद्युत-जन्तु

[ले०—श्री रामदास विद्यार्थी, बी० एस्-सी० (आनर्स), एम्० एस्-सी०, एल० टी०,]

आज कल बिजलीका उपयोग लगभग प्रत्येक काममें होता है। बिजलीके द्वारा ट्राम-गाड़ियाँ कारखानोंमें मशीन, इंजिन और मकानोंमें पंखे चलते हैं। समुद्री तार, तारवाणी, बेतारका तार, सिनेमा आदि आविष्कारोंमें भी बिजलीका प्रयोग होता है और भविष्यमें बिजलीके द्वारा और भी अद्भुत आविष्कारोंके होनेकी आशा है। जब कि आदमी पानी और झरनोंसे बिजली पैदाकर उसे असंख्य मनुष्योपयोगी कामोंमें लाते हैं, कुछ जन्तु ऐसे हैं जिनके शरीरके ही कुछ अंगोंमें बिजली पैदा होती है। इसके द्वारा ये केवल अपनी रक्षा ही नहीं करते, बल्कि उन जन्तुओंको जो कि उनके भोजन हैं बिजलीका तेज धक्का मार सन्न कर देनेके बाद सरलता-पूर्वक निगल जाते हैं।

उल्लूकी सूरतके बंदर ब्रेज़ीलमें अमेज़न नदीके किनारे सघन जंगलोंमें पाये जाते हैं। यह सदैव रातके समय अँधेरेमें चिड़ियोंके अण्डोंकी खोजमें निकलते हैं। जिस समय इनके झुण्डके झुण्ड पेड़ोंपर चलते हैं उनके घने और काले बाल डालियों और पत्तोंसे रगड़ खाते हैं। इस रगड़के कारण घर्षण-विद्युत् पैदा होती है जिसकी वजहसे अँधेरेमें बराबर चिनगारी निकलती है और इतना प्रकाश हो जाता है कि ये बंदर सरलता-पूर्वक अण्डे ढूँढ निकालते हैं।

कुछ मछलियाँ ऐसी मिलती हैं जिनके शरीरके कुछ अंगोंकी तुलना बैटरीसे की जा सकती है। विद्युत्-ईल (एलेक्ट्रिक-ईल) और रे (एलेक्ट्रिक-रे) इनमें सबसे मशहूर हैं। विद्युत्-ईल मछली उत्तरी और दक्षिणी अमेरिकाकी नदियोंमें मिलती हैं। ये ८—१० फुट तक लम्बी और १० इञ्च तक चौड़ी होती हैं। इनका रंग सलेटी और आँखें बहुत ही छोटी होती हैं। केवल पूँछकी लंबाई जो कि बैटरीका काम करती है, ६-८ फुट तक होती है। खोजके बाद पता चला है कि पूँछकी माँस-पेशियोंके असंख्य कोष्ठोंमें बिजली पैदा होती है। इन कोष्ठोंकी तुलना गालवैनिक सैल्ससे की जा सकती है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि २०० वोल्ट तक ताकतकी बिजली केवल एक मछलीकी पूँछमें पैदा होती है। वैज्ञानिकोंका ख्याल है कि अगर १०,००० विद्युत्-ईल एक साथ रक्खी जायँ तो एक बिजलीकी रेलगाड़ी आसानी-से ८-१० मिनट तक चल सकेगी। इसके बाद २४ घंटे आराम और भर पेट भोजन करनेके बाद ही इनकी पूँछकी मांसपेशियोंके असंख्य कोष्ठोंमें बिजलीका संचार होगा और तब फिर गाड़ी आगे बढ़ सकेगी।

सुविख्यात वैज्ञानिक हैमबोल्टके कथनानुसार ब्रेज़ील के निवासी इन ईल मछलियोंको बड़े स्वादसे खाते हैं। इनका पकड़ना कुछ आसान काम नहीं है। इनको पकड़नेके लिये यहाँके निवासी झुण्डके झुण्ड घोड़े नदियों और तालाबोंके अन्दरसे ले जाते हैं। ये मछलियाँ अपने शरीरको धनुषाकार बना घोड़ोंके बदनको अपने सर और पूँछसे एक ही साथ छू लेती हैं तो कुंडली या (सर्किट) पूरा होनेके कारण बिजलीका इतना तेज़ धक्का लगता है कि मज़बूतसे मज़बूत घोड़े भी इन धक्कोंको खा तिलतिला कर अकसर पानीमें डूब कर मर जाते हैं। लेकिन प्रायः ईल मछली केवल अपनी पूँछ हीसे हमला करती है जिसके कारण कमजोर बिजलीके धक्कोंका घोड़ोंपर कोई विशेष असर नहीं होता। बराबर हमला करनेसे इनकी पूँछकी बिजली खतम हो जाती है और तब ये बेचारी किनारे
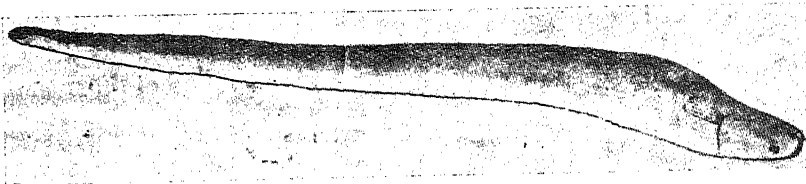
चित्र १—एलेक्ट्रिक-ईल

आ लगती हैं और लोग इन्हें बिना किसी खतरेके पकड़ लेते हैं।

विद्युत्-रे भूमध्य और हिन्द महासागर में मिलती है। इनके शरीरका अगला भाग चपटा और गोलाकार होता है। पूँछ लम्बी होती है। इनका मटीला या बदामी रंग समुद्रकी तहसे जहाँ इनका वासस्थान है, बिल्कुल मिलता-जुलता है। वर्णकी यह समानता इनके लिये दो प्रकारसे हितकारी होती है। प्रथम तो इसके द्वारा इनके शत्रु आसानी से इन्हें देख नहीं पाते जिसकी वजह से रे-मछलियाँ अपनी प्राण-रक्षा अन्य हिंसक जन्तुओं से कर सकती हैं। दूसरे इनका यह रक्षार्थ वर्ण-साम्य इनको भोजनकी प्राप्तिमें भी बहुत सहायक होता है। दूरसे न देख पड़नेके कारण यह निर्बल और निस्सहाय जन्तुओंको अपने सरकी बिजलीसे सन्न कर देती है और फिर ज़िन्दा ही निगल जाती है। दो वृक्काकार बैटरी इनके सरमें मस्तिष्कके दोनों तरफ होती हैं। बिजली इसी भागकी मांस-पेशियोंके कोष्ठोंमें पैदा होती है। १०० पौंड तक वज़नकी रे-मछलीमें १००-१५० वोल्ट तक ताकतकी बिजली पैदा होती है। रोमन्स लोग इन मछलियोंके द्वारा गठियासे पीड़ित लोगों का इलाज भी करते थे।
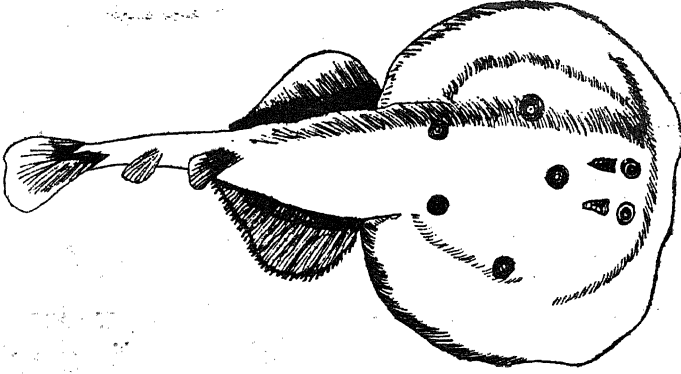
चित्र २—एलेक्ट्रिक-रे

अमेरिका के आसपासके समुद्रों में कुछ विद्युत्-मछलियाँ मिलती हैं जो कि 'स्टार गेजर' के नामसे मशहूर हैं। बिजली इनके नेत्र की चालनी मांस-पेशियोंमें पैदा होती है। जब कभी समुद्रके छोटे-मोटे जन्तु इनकी कुछ उठी हुई आँखोंको छू लेते हैं तो उनको फौरन मौतके घाट उतरना पड़ता है।

चित्र ३—एलेक्ट्रिक-रे

नाइल नदीमें कैट-फिश (Nile cat-fish) मिलती हैं। इनका पूरा शरीर विद्युत्-मय रहता है। बिजली उनके शरीरके किसी विशेष अंगमें न पैदा होकर त्वचाकी ग्रन्थियोंमें पैदा होती है। उनके शरीरके किसी भी अंगको छूनेसे तेज धक्का पहुँचता है। अरब देशमें एक मछली मिलती है जिसे यहाँके निवासी राड (Raad) कहते हैं। इसके भोजन-प्राप्तिका एक अनोखा तरीका है। यह दूसरी मछलियोंको छू तैरकर आगे बढ़ जाती है। बिजलीके धक्केको खाते ही बेचारी मछलीके मुँह में जो कुछ अधकचरा खाना होता है बाहर निकल आता है और उसे राड फौरन हड़प
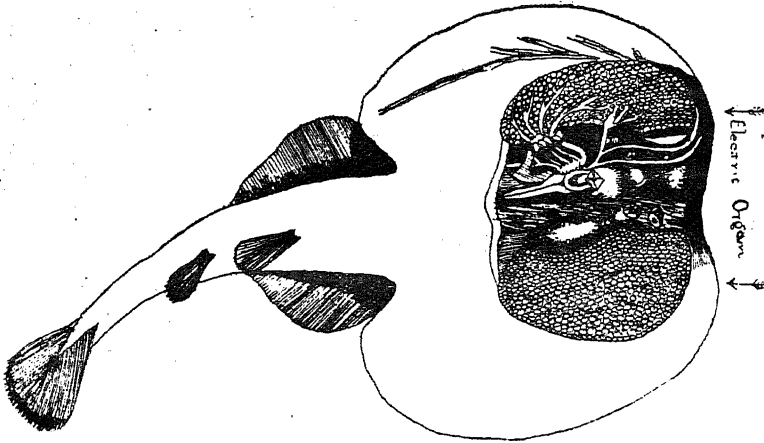
कर जाती है।

लोगोंका ख्याल था कि जन्तु-विद्युत् मामूली बिजलीसे

चित्र ४—स्टार-जंगेर

भिन्न है। फैरेडेके कई एक प्रयोग करने के बाद यह स्पष्ट हुआ कि इन दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है। अब तो

चित्र ५—नाइल कैट फ़िश

वैज्ञानिकों ने यह भी सिद्ध कर दिया है कि हर एक जन्तुके शरीरमें बिजली पैदा होती है। आदमीके हृदयकी प्रत्येक धड़कनके साथ बिजली पैदा होती है और जो चाहे सो इस बिजलीका बहाव कारडीयोग्राफ यंत्र (Cardio graph) के द्वारा देख भी सकता है।

पुस्तक प्राप्ति व समालोचना

काश्यपसंहिता अथवा **वृद्ध जीवकीय तन्त्रम्** :—प्रणेता—महर्षि मारीच कश्यप जिसको वृद्धि जीवकने संक्षेपमें संग्रह किया। और उनके वंशज पं० वात्स्येन जीने इसका प्रति संस्कार किया।

सम्पादक—नैपाल राजगुरू श्री हेमराज शर्मा, राजकीय पुस्तकालय, ढोकाटोला, नैपाल।

पुस्तक—प्राप्ति-स्थान—वैद्य यादव जी त्रिविक्रम जी आचार्य लक्ष्मी-निवास बिल्डिङ्ग, कालवा देवी. बम्बई। रायल डिमायी आठ पेजी, पृष्ठ संख्या ७००, मूल्य ५)

काश्यप संहिता उन आयुर्वेदके आदि और प्राचीन ग्रंथोंमें से है जिसको अप्राप्य या लुप्त माना जाता था। इसकी एक प्रति ताड़पत्रकी नैपाल-राजगुरू पं० हेमराज जी शर्मा को पं० हरप्रसाद जी शास्त्रीसे जब प्राप्त हुई तब आपने अत्यन्त परिश्रम करके इसके सम्पादनका कार्य स्वयम् किया। और २३३ पृष्ठका संस्कृतमें अत्यन्त विद्वतापूर्ण उपोद्घात लिखकर आयुर्वेदकी प्राचीनतासे लेकर उपर्युक्त ग्रंथके सम्बन्धमें अनेक महत्वपूर्ण आलोचनात्मक व विवेचनात्मक टीका-टिप्पणी करते हुये आयुर्वेदके गहन रहस्योंका उद्घाटन किया है। आपने जितने परिश्रम व अध्यवसायसे इस पुस्तकका उपोद्घात लिखा है उसके लिये आपको जितना धन्यवाद किया जाय थोड़ा है।

एक तो अलभ्य पुस्तकका प्रकाशनके लिये देना, फिर उस पुस्तककी स्थितिपर सूक्ष्मतासे विवेचन करना, आप जैसे योग्य पुरुषसे सम्भव था।

इस अलभ्य ग्रंथके सम्बन्धमें इतना बतला देना उचित है कि यह संहिता कौमार-भृत्य विषयपर लिखी गई है।

ज्ञात होता है, प्राचीनकालमें आयुर्वेदके एक अंगपर विस्तृत ग्रंथ थे। यह ग्रन्थ भी उन मूल ग्रंथोंमेंसे एक है और सर्व प्राचीन है। इसमें स्त्रीके गर्भकालसे लेकर बालकके जन्म लेनेके पश्चात् कुमारावस्था प्राप्त होने तक समस्त बाल-रोगकी व्याख्या व उपचारका क्रम बताया है। आजसे ४-५ हजार वर्ष पूर्वके बाल-रोगोंकी चिकित्साका क्रम कैसा था, उस प्राचीन समयकी स्थितिपर इस ग्रंथके पढ़नेसे अच्छा प्रकाश पड़ता है। इस ग्रन्थमें अनेक विषय ऐसे हैं जो चरक-सुश्रुतमें नहीं मिलते। एक ही त्रुटि है कि जिन ताड़-पत्रोंपर उक्त ग्रंथ लिखा मिला है अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण व भग्न स्थितिमें मिला। आरम्भ और अन्तका तो कुछ भाग नष्ट ही हो चुका था तथा जहाँ-तहाँ और भी अनेक स्थानोंमें अक्षर-पंक्तिके नष्ट हो जानेसे उनको विन्दु-संकेतोंसे यथा-स्थान सूचितकर छोड़ दिया गया है। यह स्वभावतः रही त्रुटि है जिसे कोई दूर नहीं कर सकता।

आज तक जितनी अधिक सेवा प्राचीन ग्रंथोंको प्रकाशित कर यादव जी त्रिविक्रम जी आचार्य ने की है हम सब आयुर्वेदज्ञ उनके सदा ऋणी रहेंगे। ऐसे अलभ्य व अमूल्य ग्रंथका संशोधन व प्रकाशन भी आपके परिश्रम का परिणाम है। हम आशा करते हैं आयुर्वेद-विद्वानों द्वारा इस पुस्तकका भी अन्य ऋषि-प्रणीत ग्रंथोंवत् समादर होगा।

हमें पं० क्षेत्रपाल जी शर्मा, अध्यक्ष, सुख संचारक कंपनी, मथुरा द्वारा कई पुस्तकें प्राप्त हुई हैं, जिनमेंसे कुछ की समालोचना यहाँ दी जाती है। शेष पुस्तकोंकी समालोचना आगामी अंक में दी जावेगी।

१—**चिकित्सा-सिन्धु**—प्रकाशक सुख संचारक, कंपनी, मथुरा, पृष्ठ १८०, मूल्य ॥) इसमें एलौपैथी हैमोपैथी वैद्यक और यूनानी रीतिसे रोगोंके निदान व उनकी चिकित्साका अच्छा संग्रह है। चिकित्सा भी एलोपैथी होमियो वैद्यक यूनानी सब दी है।

२—**बुढ़ापा रोकनेका उपाय**—ले० डा० महेन्द्र लाल गर्ग, प्रकाशक वही सुख संचारक कंपनी, मथुरा, पृष्ठ ८०, जिसमें २४ के ऊपर व्यायाम करनेके भिन्न-भिन्न चित्र सम्मिलित है। मूल्य १)

मनुष्य व्यायाम द्वारा बुढ़ापेको किस तरह रोक सकता है, इसमें इस बातको बहुत अच्छी तरह बतलाया गया है। व्यायामसे सचमुच मनुष्यका शरीर हृष्ट-पुष्ट व स्वस्थ हो जाता है, इसमें कोई संशय नहीं।

परीक्षित प्रयोग—मूल लेखक डाक्टर जी० टी० वर्डवुड प्रकाशक—क्षेत्रपाल शर्मा सुखसंचारक कम्पनी, मथुरा, पृ० १५५, मूल्य १)

इस पुस्तकमें डाक्टर साहब ने समस्त देशी आयुर्वैदिक काष्ट औषधियों तथा अन्य फिटकरी, सुहागा, नौसादर आदि चीजोंका स्वयं अनुभव-जन्य उपयोग बतलाया है। इसमें आपने १५६ चीजोंपर अनुभव लिखे हैं। पुस्तक गाँवमें रहने वाली जनताके लिये अत्यन्त उपयोगी है। इसमें छोटी-छोटी और एक-एक चीजें—सोंठ, मिर्च, अजवायन आदि चीजोंको किस तरह बीमारियोंके समय देकर लाभ उठाया जा सकता है। अच्छा अनुभव-जन्य वर्णन है।

३—**डाक्टरी नुसखे**—संग्रहकर्त्ता पं० हीरालाल जी गर्ग, प्रकाशक वही कम्पनी, पृष्ठ संख्या ३७५, मूल्य १), इसमें हर एक बीमारियों पर एलोपैथीके अच्छे-अच्छे प्रचलित नुसखोंका संग्रह किया गया है। पुस्तक अंगरेजी न जानने वाले किन्तु डाक्टर बनने वालोंके कामकी है।

४—**वेदना-हीन प्रसव**—अनुवादक डा० महेन्द्र लाल गर्ग, प्रकाशक वही कंपनी, पृष्ठ संख्या १२०, मूल्य ।।।), विलायत में वेदना-विहीन प्रसव करानेके लिये किस-किस विधिको काममें लाया जाता है, तथा किस स्थितिमें वेदना-रहित स्त्री प्रसूत कराई जा सकती है, इसका इसमें उल्लेख किया है।

५—**गर्भाधान विधि**—प्रकाशक वही, मूल्य =), विषय नामसे स्पष्ट है। मूल्य =)

६—**विषोपचार पद्धति**—प्रकाशक वही, मूल्य ।=) इसमें विषोंकी चिकित्सा दी है।

७—**विच्छू-विष-चिकित्सा**—प्रकाशक वही, मूल्य =)।।, इसमें बिच्छू काटेका इलाज है।

८—**दन्त रक्षा**—प्रकाशक वही, मूल्य ।), विषय पुस्तकके नामसे स्पष्ट है।

मोहन गीता—रचयिता—पं० मोहनलाल जी मिश्र,

प्रकाशक के० एल० मिश्र एण्ड सन्स, मथुरा, पृष्ठ संख्या ८६, सजिल्द मूल्य १।)।

यह मोहन गीता श्री मद्भगवद्गीताका पद्यात्मक हिन्दी अनुवाद है। अनुवाद भी उत्तम दोहा-चौपाइयोंमें तुलसी-रामायणके ढंग पर किया गया है। फिर विशेषता इसमें यह है कि गीताके मूल श्लोकोंके शब्दानुवादको कवि ने दोहा-चौपाइयोंमें बड़े अच्छे ढंगसे निबाहा है। इससे भी अधिक विशेषता इस बातकी है कि भाषा इतनी परिमार्जित व सरल है जिस तरह तुलसी रामायणकी। गीतापर छन्दोबद्ध भाषामें अनुवाद तो कई हुये हैं किन्तु, जो सफलता कवि ने प्राप्त की है, अन्योंको मिलना भारी परिश्रम-साध्य काम है। यदि कहीं इस मोहन गीता के साथ मूल श्लोक रख दिये जाते तथा नीचे पद्य देकर उसके नीचे सरल शब्दार्थ दे दिया जाता तो मूल श्लोक और भाषा-पद्योंकी साम्यताका आनन्द उन लोगोंको भी मिलता जो गीताके अध्यवसायी नहीं हैं। इस पुस्तकको लोक-प्रिय बनानेके लिये मेरी सम्मतिमें इसका मूल्य बहुत कम कर देना चाहिये। मूल्य १।) रु० बहुत अधिक है।

मुद्रण-प्रवेश—अर्थात् कम्पोजकला, मूल लेखक शंकर रामचन्द्र दीन बी० ए०, अनुवादक गोपी वल्लभ उपाध्याय। प्रकाशक—लोक संग्रह छापाखाना, ६२४ सदा शिवपेठ, पूना २। पृष्ठ संख्या २३०, मूल्य सजिल्द २) रु०।

इस पुस्तकके मूल लेखक २० वर्ष तक कम्पोजीटरी विषय-ज्ञान रखकर पुनः अपने कम्पोज-कलामें उन्नति करते हुये लोक-संग्रह प्रेसके मालिक बने। आपने कम्पोज कलाके सम्बन्धमें तथा प्रेससे सम्बन्ध रखने वाली समस्त आरम्भिक बातोंका जो अनुभव-जन्य वर्णन दिया है इतना स्पष्ट और समझमें आने वाला है कि इस पुस्तककी सहायतासे नये प्रेस लगाने व कम्पोजिंग सीखनेमें पूरी-पूरी सहायता मिल सकती है। मेरे देखनेमें अपने विषयकी यह पहिली ही पुस्तक आयी है। विषयको स्पष्ट करनेके लिये अनेक चित्रोंसे सुसज्जित छपाई सफाई सब उत्तम है।

यूनानी शब्द-कोष—लेखक-पं० विश्वेश्वरदयालु जी वैद्यराज, हरीहर औषधालय, बरालोकपुर, इटावा। पृष्ठ संख्या ५४, मूल्य ।=)

इस पुस्तकमें अर्बी, फारसी यूनानी चिकित्साके शब्दोंको देकर उनका हिन्दी अर्थ दिया गया है। यूनानी चिकित्साके ग्रन्थोंको हिन्दीमें पढ़ते समय उन शब्दोंके अर्थोंको समझनेमें इस पुस्तकसे अच्छी सहायता मिल सकती है।

विशूचिका—लेखक रामच्युत वामन सहस्र बुद्धे प्रकाशक—यशवन्त फार्मेसी, दर्यापुर, अमरावती, मूल्य १) यह पुस्तक महाराष्ट्री भाषामें कालरा या हैजापर लिखी गई है। कालरा या हैज़ाका कारण व निदानका विस्तारसे वर्णन देकर उस पर चिकित्सा क्या-क्या होनी चाहिये, विस्तारसे दी हुई है। पुस्तक मराठी भाषा-भाषियोंके लिये उपयोगी है।

वैद्यक पारिजात—भाग प्रथम—ले० गोपाल कुवेर जी टक्कर, प्रकाशक सिन्ध आयुर्वैदिक फार्मेसी, नानक बाड़ा, कराँची। मूल्य ।।)

पुस्तक गुजराती भाषामें है। इसमें आधुनिक ढंगसे अनुभूत नुसखोंका संग्रह बड़ा अच्छा किया हुआ है। पुस्तक गुजराती भाषाभाषियोंके मतलबकी है।

—हरिशरणानन्द

विषय-सूची

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग।

इस सूचीसे पूर्वके नियम व सूचीपत्र रद्द किये गये।

विज्ञानके जुलाई १९३९ के अंकका क्रोड़पत्र

ट्रेड मार्क

जगत् प्रसिद्ध और अखिल भारतीय वैद्य-सम्मेलन द्वारा सम्मानित

म्युनिसिपल कमेटी, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड तथा अन्य धर्मार्थ औषधालयोंके लिये

पंजाब आयुर्वैदिक फार्मेसी

का

षण्मासिक सूची-पत्र

आसव-विज्ञान, क्षार-विज्ञान, मन्थरज्वरकी अनुभूत-चिकित्सा, त्रिदोष-मीमांसा, सृष्टि-रचना-शास्त्र, व्याधिमूलविज्ञान कूपीपक्वरस-निर्माण-विज्ञान, रोगविज्ञान, चिकित्सा विज्ञान, औषध-परीक्षा-विज्ञान आदि ग्रन्थोंके लेखक

और आयुर्वेद-विज्ञानके सम्पादक, अमृतसरकी पञ्जाब आयुर्वैदिक फार्मेसीके संस्थापक तथा संचालक, तथा प्रयागकी विज्ञान परिषद्के आजीवन फैलो तथा कौंसिलर

स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य

अध्यक्ष:—पंजाब आयुर्वैदिक फार्मेसी; अकाली मार्केट अमृतसर

६२ वीं आवृत्ति ५०००] [१ जुलाई १९३९

आर्डर देते समय व्यापारिक नियम ज़रूर पढ़ लेने चाहियें।

(२) पार्सल यहाँ से अच्छी तरह पैकिंग करके भेजे जाते हैं। पोस्ट मैनों व रेलवे कर्मचारियोंकी लापरवाहीसे पार्सलके टूट जानेपर फार्मेसी उसकी जिम्मेवार नहीं।

यदि टूटा पार्सल ग्राहक छुड़ाते समय समस्त पार्सलका माल पोस्टमास्टर या स्टेशनमास्टरके सामने खोलकर नष्ट हुई वस्तुओंका साक्षी-पत्र हमें भेज देंगे तो उन्हें वह माल हम बिना मूल्य भेज देंगे। या उस मालकी कीमत ग्राहक लेना चाहेगा तो वह भेज देंगे।

(३) हमारे यहाँका तोल (मान) निम्नलिखित हैः—अंगरेज़ी ८ दुअन्नी (१॥ मासे) का १ तोला, ८० तोलाका १ सेर, ४० सेरका १ मन (औंस और पौण्ड अंगरेज़ी तौल) हैं।

(४) ग्राहकोंको पोस्ट पार्सलके साथ २) तथा रेल पार्सलके आर्डरके साथ ५) रु० पेशगी अवश्य भेजना चाहिये। बिना पेशगी आये माल नहीं भेजा जाता।

(५) जो व्यक्ति हमारे स्थायी ग्राहक बने रहना चाहते हैं उन्हें पेशगी भेजनेके झंझटसे बचनेके लिये हमारे कार्यालयमें ५) रु० पेशगी जमा करा देना चाहिये। ऐसे ग्राहक स्थायी ग्राहक समझे जायँगे उन्हें स्थायी ग्राहक नम्बर दे दिया जायगा। उनको पेशगी भेजनेकी फिर कभी जरूरत नहीं होगी। स्थायी ग्राहक श्रेणीसे हटने पर ५) वापिस कर दिये जायँगे।

(६) प्रत्येक पार्सलपर एक आना ≤) लाला लाजपतराय धर्मार्थ औषधालयके लिये काटा जाता है।

(७) प्रत्येक प्रकारके झगड़ोंका फैसला अमृतसरके न्यायालयमें ही किया जायगा।

(८) पत्रोत्तरके लिये जवाबी कार्ड आना चाहिये।

(९) आर्डर, रजिस्ट्री, बीमा व मनीआर्डर आदि निम्नलिखित पते पर आने चाहियें।

जनरल मैनेजर

पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी, अकाली मार्केट, अमृतसर।

ग्रन्थ संकेत

जिन-जिन ग्रन्थोंके योग तय्यार किये गये हैं उनके संकेतयुत नाम—

संकेत	ग्रन्थ	संकेत	ग्रन्थ
यू० वि०	यूनानी विधि	र० सा० सं० (रसेन्द्र)	रसेन्द्रसार संग्रह
आ० प्र०	आयुर्वेद प्रकाश	भै० र०	भैषज्यरत्नावली
भा० प्र०	भावप्रकाश	वै० सा०	वैद्यकसारसंग्रह
र० रा० सु०	रसराज सुन्दर	र० चं०	रसचण्डांशु
वै० मृ०	वैद्यामृत	च० द०	चक्रदत्त
र० का०	रसकामधेनु	र० चि०	रसचिन्तामणि
फा० वि०	फार्मेसी विधि	यो० चि०	योगचिन्तामणि
वृ० यो० त०	वृहद्योग तरंगिणी	नि० र०	निघण्टु-रत्नाकर
र० र० स०	रसरत्न-समुच्चय	र० यो० सा०	रसयोग-सागर
शा० ध०	शार्ङ्गधर	र० सा०	रसायनसार
यो० र०	योगरत्नाकर	च०	चरक
यो० त०	योगतरंगिणी	वै० जी०	वैद्यजीवन
सि० भै० मणि	सिद्ध भैषज्य मणिमाला	अनो० त०	अनोपान तरंगिणी
रसा० सं०	रसायन संग्रह		
र० प्र०	रसप्रदीप	वै० चि०	वैद्यचिन्तामणि
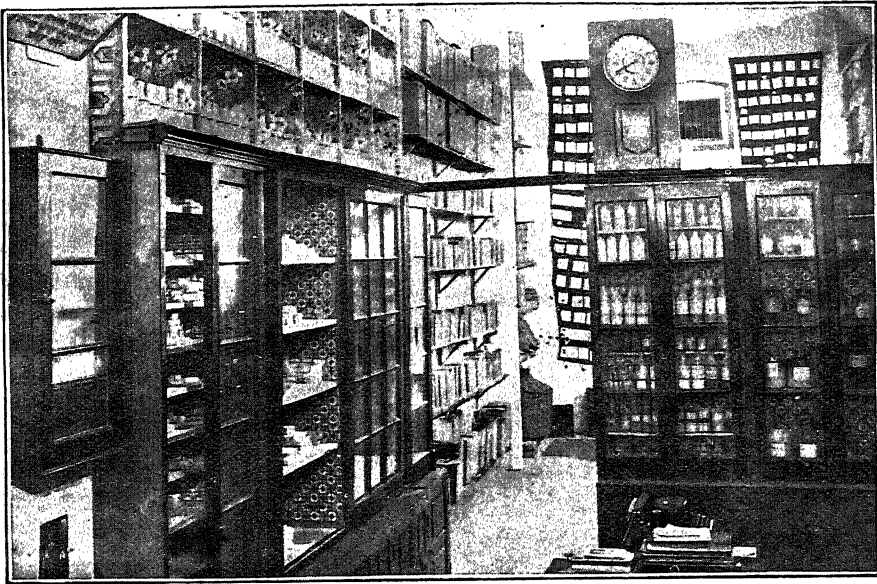
पी० ए० वी० फार्मेसी का पक्व औषध विभाग
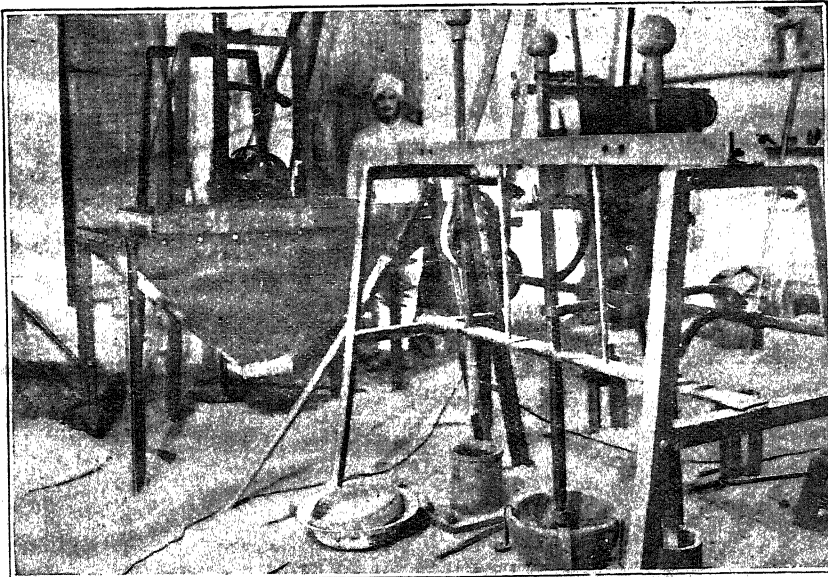
छाननेकी मैशीन चट्टू कूटनेके
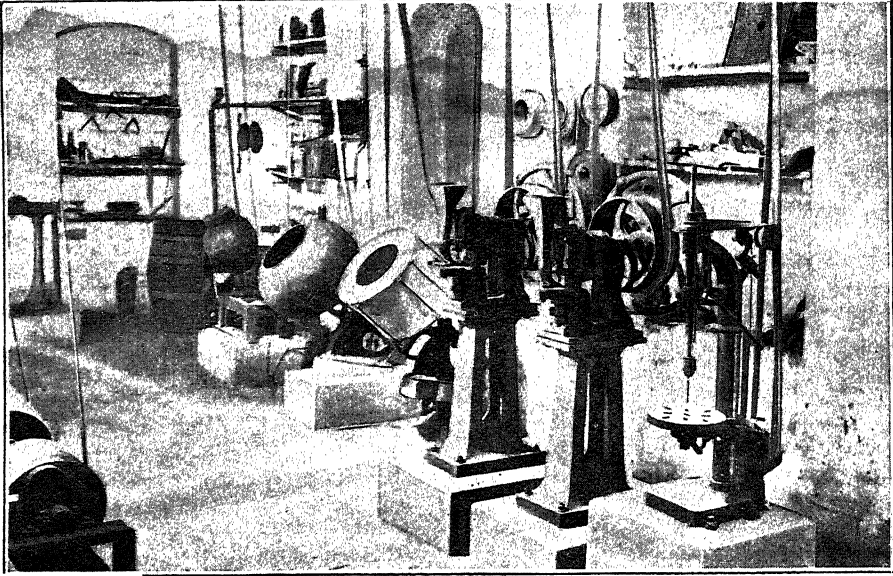
पालिश—कोटिंग, शूगर कोटिंग और टिकिया बनाने की मैशीनें
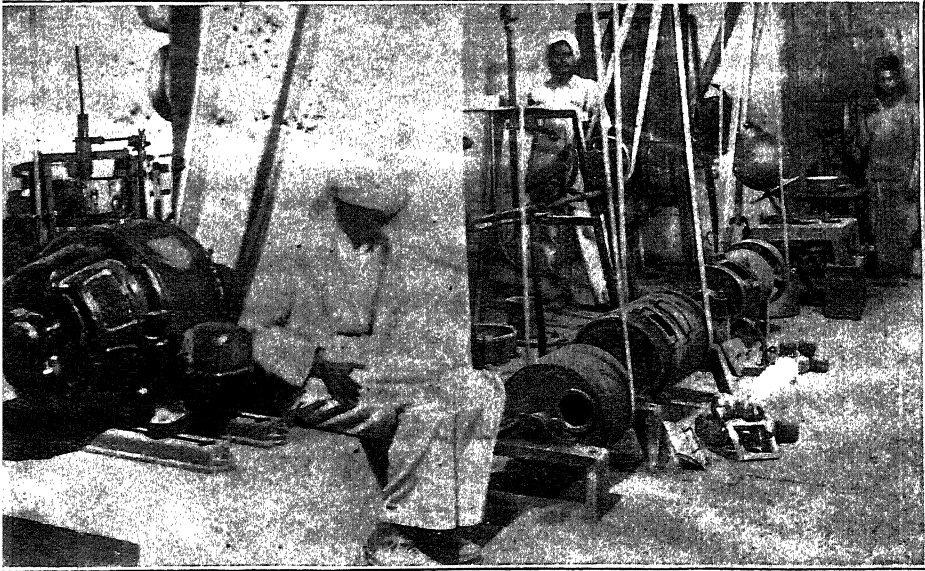
कूटने, पीसने की मैशीनें

चूर्ण टिकियाँ, गोलियाँ बनवाईकी दर

यवकूट चूर्ण कुटाईका भाव २।।) रु० मन होगा। इससे भिन्न प्रत्येक औषधका चूर्ण दो प्रकारका होता है। एक कुछ मोटा ८० नम्बरकी चलनीसे छना हुआ; दूसरा १०० नम्बरकी चलनीसे छना अत्यन्त बारीक मैदा जैसा। चूर्ण कुटाईकी दर ≡), ।), ।≈), ।।), १) सेर तक है। १) सेर उन औषधोंकी कुटाई है जो अत्यन्त कठोर लकड़ी जैसे पदार्थ हैं यथा दरियाई नारियल, चित्रकमूल, निर्मली, विधारामूल आदि।

टिकिया बनवाई के भाव	प्रतिसेर
½ रत्तीकी टिकिया	३)
½ रत्तीकी टिकिया	२।।)
२ रत्तीकी टिकिया	२)
३ रत्तीसे ८ रत्तीकी टिकिया	१।।)
१।। माशेसे २-३ माशाकी टिकिया	१)

गोली बनवाई और गोलीपर पालिशकराई			प्रतिसेर
१ सरसों जैसी गोली पालिश युक्त			४)
१ मूँगके बराबर	,,	,,	३)
१ रत्तीकी	,,	,,	२।।)
२ रत्तीकी	,,	,,	२)
४ ,,	,,	,,	१।।)
८ ,,	,,	,,	।।।)
१।। माशेकी	,,	,,	।।।)
२ ,,	,,	,,	।।)

टिकिया वा गोलीपर खाँड भी चढ़ाई जाती है तथा चाँदी, सोनेके वर्क भी कोट किये जाते हैं जिसका भाव निम्न है—खाँड चढ़ाई ३) सेर। खाँड चढ़ाने के लिये ५ सेर दवा हो।

चाँदीके वर्क १ रत्तीकी गोलीपर चढ़वाई ८) रु० हज़ार गोली। सोनेके वर्क चढ़ाई १ रत्तीकी गोली २०) रु० हज़ार गोलीका।

नोट—चाँदी और सोनेके वर्कोंका १ रत्तीसे १½ रत्ती तककी गोलियोंके कोटिंगका यह भाव है। इससे भिन्न साइजकी हो तो गोली भेजकर भाव तय कर लेना चाहिये।

नोट—चूर्ण कराई, टिकिया व गोली बनवाई आदिके लिये १ सेरसे कम सामान न होना चाहिये। इनके लिये आर्डरके साथ चौथाई मूल्य पेशगी आना चाहिये। विशेष विवरणके लिये जवाबी लिफाफा या कार्ड भेजकर पूछ सकते हैं।

पता—

जनरल मैनेजर-पञ्जाब आयुर्वैदिक फार्मेसी

६०-६१ अकाली मार्केट, अमृतसर

पी० ए० वी० फार्मेसी अमृतसर

द्वारा निर्मित

भस्में और उनके भाव

भस्में	२० तो०	१० तो०	५ तो०
अकीक (यू० वि०)	६॥)	३॥)	२)
वज्राभ्रक (आ० प्र०) २१ पुटी	८)	४॥)	२॥)
अभ्रक श्वेत (र० सु०)	२)	१।)	।॥)
कान्तलोह भस्म (र० सु०)	६॥)	३॥)	२)
कांस्य भस्म (आ० प्र०)	२)	१।)	।॥)
कपर्दिका (आ० प्र०)	१॥)	।॥=)	॥)
कसीस भस्म	१॥)	।॥=)	॥)
कुक्कुटाण्डत्वक् (वै० मृ०)	५)	२।॥)	१॥)
खर्पर भस्म (यो० र०)	८)	४॥)	२॥)
ज़हरमोहरा भस्म (यू० वि०)	१)	॥=)	।=)
ताम्र सोमनाथी (र० सु०)	१०)	५॥)	३)
ताम्र कूपीपक्व (र० सु०)	१०)	५॥)	३)
तुत्थ भस्म (र० सु०)	१॥)	॥।=)	॥)
त्रिवंग (आ० प्रा०) १२ पु०	८)	४॥)	२॥)
नागपीत (वृ० यो०)	२)	१।)	॥।)
नागश्याम (र० का०)	३॥)	२)	१।)
नीलाञ्जन (फा० वि०)	३)	१।॥)	१)
प्रवाल अग्निपुटी (आ० प्र०)	१॥)	॥।=)	॥)
प्रवाल चन्द्रपुटी (फा० वि०)	१॥)	॥।=)	॥)
प्रवाल सूर्यपुटी (फा० वि०)	१॥)	॥।=)	॥)
पीतल भस्म (आ० प्र०)	२)	१।)	।॥)
बंग हरितालेन (आ० प्र०)	६॥)	३॥)	२)
बंगश्वेत (र० सु०)	३)	१॥।)	१)
बेर पत्थर भस्म (यू० वि०)	२)	१।)	।॥)
मण्डूर भस्म (र० र० स०)	१॥)	॥।=)	॥)
मृगश्रृङ्ग भस्म (शा० ध०)	१॥)	।॥=)	॥)
यशद भस्म (यो० र०)	१॥।)	१)	॥=)
रौप्यमाक्षिक भस्म (र० का०)	३।)	१॥।)	१)
लौह हिंगुल योगेन (आ० प्र०)	६॥)	३॥)	२)
लौह स्वयमग्नि (र० सु०)	५)	२॥।)	१॥)
लौह वनस्पति (फा० वि०)	३॥)	२)	१।)
शंख नाभी (र० क०)	१)	॥=)	।=)
संगयशव (यू० वि०)	३)	१॥।)	१)
सीप (मोती) (र० सु०)	१॥)	।॥=)	॥)
सीपभस्म (र० सु०)	॥।)	।≡)	
संगजराहत (आ० प्र०)	।≡)	।)	
स्वर्णमाक्षिक (र० सु०)	३।)	१।॥)	१)
सौवीरांजन (फा० वि०)	१॥)	॥।=)	॥)
हरताल गोदन्ती (आ० प्र०)	॥।)	।≡)	।)

रस, रसायन, गुटिका, गुग्गुल और पर्पटी

	भाव २० तो०	१० तो०	५ तो०
अग्निसून रस (रसायन संग्रह) ग्रहण्याम्	३)	१॥।)	१)
अग्निमुख रस (र० यो० सा० ७०) अग्निमान्द्य	४)	२।)	१।)
अग्नि रस (र० र० स०) कासे उरक्षतादौ	२)	१।)	॥।)
अग्नितुण्डी रस (भै० र०) उदररोगे	३)	१॥।)	१)
अग्निकुमार वृहत् (रसेन्द्र) अजीर्णरोगे	४)	२।)	१।)
अजीर्णकंटक (रसेन्द्र) अजीर्णरोगे	४)	२।)	१।)
अतिविषादि गुटी (र० चं०) आमवाते	४॥)	२॥)	१॥)
अपचिविनाशी रस (फा०) अपचिरोगे	६)	३॥)	२)
अभ्रकंचुकी (वै० सा०) बहुरोगे	४)	२।)	१।)
अर्शघ्नी वटी (फा० वि०) अर्शरोगे	२)	१।)	।॥)
अर्शकुठार (रसायन संग्रह) अर्शरोगे	४)	२।)	१।)
अश्विनी कुमार (अनु त०) सर्वरोगे	८)	४॥)	२॥)
आनन्द भैरव (रसेन्द्र) ज्वरातिसारे	३)	१॥।)	१)
आनन्दभैरव (भै० र०) कासे श्वासे	४)	२।)	१।)
आमवातारि वटी (र० चं०) आमवाते	२)	१।)	।॥)
आरोग्यवर्धनी (र० चं०) कुष्ठाधिकारे	३)	१।॥)	१)
इच्छाभेदी (रसेन्द्र) उदररोगे	३)	१॥।)	१)
उपदंश कुठार (र० चं०) उपदंशरोगे	८)	४॥)	२॥)

माल मंगवानेसे पहले चौथाई दाम पेशगी अवश्य भेजें।

रस, गुटिका	भाव २० तो०	१० तो०	५ तो०
उन्माद हर रस (र० सा०) उन्मादे अपस्मारे	१०)	५॥)	३)
एलादि वटी (च० द०) कासाधिकारे	॥।)	।≤)	।)
कनकसुन्दर (रसेन्द्र) अतिसारे	३)	१॥।)	१)
कफकेतु (यो० र०) कफाधिकारे	३)	१॥।)	१)
कफचिन्तामणि (र० चं०) कफाधिकारे	४)	२।)	१।)
कफकुठार (र० चं०) श्लेष्मरोगे	३)	१॥।)	१)
क्रव्यादि रस बृ० (र० सु०) अजीर्ण रोगे	८)	४॥)	२॥)
कांचनार गुग्गुल (शा० ध०) कण्ठमाला	१)	॥=)	।=)
कांकायण गुटिका (यो०र०) अर्शरोगे	३)	१॥।)	१)
‥र रस (भै० र०) ज्वरातिसारे	८)	४॥)	२॥)
चन‥मदुधा (र० सं०) अम्लपित्ते	३)	१॥।)	१)
कासहर (फा० वि०) कासरोगे	२)	१।)	।॥)
कालकूट रस (वै० चि०) सन्निपातज्वरे	८)	४॥)	२॥)
कालारि रस (यो०चि०) मिश्राधिकारे	१०)	५॥)	३)
किशोर गुग्गुल (भै० र०) वातरक्ते	२)	१।)	।॥)
कृमिकुठार (नि० र०) कृमिरोगे	१०)	५॥)	३)
कृमिमुद्गर (र० सा) कृमिरोगे	३)	१॥।)	१)
कृमिधूलि जलप्लव रस (रसेन्द्र) कृमिरोगे	६)	३॥)	२)
खदिरादि वटी बृहत् (भै० र०) मुखरोगे	३)	१॥।)	१)
गगनादि लोह (र० सं०) सोमरोगे	८)	४॥)	२॥)
गर्भपाल रस (र० चं०) गर्भिणीरोगे	८)	४॥)	२॥)
गर्भविनोद रस (रसेन्द्र) गर्भिणीरोगे	४)	२।)	१।)
गर्भ चिन्तामणि (भै० र०) सूतिकारोगे	१०)	५॥)	३)
गङ्गाधर रस (र० र० सु०) अतिसारे	८)	४॥)	२॥)
गन्धक वटी (र० सु०) जठररोगे	२)	१।)	।॥)
गन्धक रसायन (रसेन्द्र) रसायने	६)	३॥)	२)
गन्धर्व रस (र० स०) कम्पवाते	६)	३॥)	२)
गुल्मकालानल (भै० र०) गुल्मे	६)	३॥)	२)
गुल्मनाशन रस (र० चं०) गुल्मे	६)	३॥)	२)
गुल्मारि रस (र० का०) गुल्माधिकारे	८)	४॥)	२॥)
ग्रहणी कपाट (र० चं०) ग्रहण्याम्	१०)	५॥)	३)
गोक्षुरादि गुग्गुल (यो० र०) प्रमेहे	२)	१।)	।॥)
चन्दनादि लोह (भै० र०) जीर्णज्वरे	६)	३॥)	२)
चन्द्रप्रभा (शा० ध०) प्रमेहाधिकारे	३)	१॥।)	१)

रस, गुटी	२० तो०	१० तो०	५ तो०
चन्द्रकला (भ० र०) प्रमेहाधिकारे	१०)	५॥)	३)
चन्द्रामृत रस (र० सा० सं०) कासे	३)	१॥।)	१)
ज्वरघ्नी वटी (र० र० स०) ज्वरे	२)	१।)	।॥)
जलोदरारि रस (बृ० यो० तं०) जलोदरे	१०)	५॥)	३)
ज्वर मुरारि (भै० र०) सन्निपाते	३)	१॥।)	१)
ज्वरार्यभ्रम् (भै० र०) जीर्णज्वरे	४)	२।)	१।)
ज्वरांकुश स्वर्णक्षीरी वाला (शा० ध०)	४॥)	२॥)	१॥)
ताम्र पर्पटी (रसे०) ग्रहण्या		५॥)	३)
त्वक् रोगान्तक वटी (फा० वि०) त्वक्रोगे	६)	३॥)	२)
त्रयोदशांग गुग्गुल (भै०र०) वातव्याधौ	३)	१॥।)	१)
त्रिभुवन कीर्ति (र० चं०) ज्वरे	४)	२।)	१।)
त्रिपुरभैरव (र० चि०) नवज्वरे	४)	२।)	१।)
दावानल वटी (फा०वि०) सन्निपाते	६)	३॥)	२)
दुर्जरजलजेता (र० चं०) अजीर्णाधिकारे	६)	३॥)	२)
दुग्धवटी (भै० र०) नं० २ ग्रहण्याम्	३)	१॥।)	१)
धात्री लोह (र० चि०) कामला शूले	८)	४॥)	२॥)
नवायसलौह (र० रा० सु०) पांडुरोगे	४॥)	२॥)	१॥)
नारायण ज्वरांकुश (र० च०) ज्वराधिकारे	४।)	२॥)	१॥)
नाराचरस (र० चं०) उदररोगे	४)	२।)	१।)
नित्यानन्द (र० चं०) रसायने	८)	४॥)	२॥)
नित्योदित रस (रसेन्द्र०) अर्शरोगे	४॥)	२॥)	१॥)
नृपतिवल्लभ रस (र० रा० सु०) ग्रहण्यां	६)	३॥)	२)
पञ्चामृत रस (भै० र०) नासारोगे	३)	१॥।)	१)
पञ्चवक्र रस (र० यो० सा० १८ सन्निपाताधिकारे	३)	१॥।)	१)
प्रमदानन्द रस (रस० सं०) रसायनाधिकारे	६)	३॥)	२)
प्रदरान्तक रस (रसेन्द्र) प्रदरे	८)	४॥)	२॥)
प्रदरान्तक लोह (र० यो० सा०) प्रदरे	६)	३॥)	२)
प्रदरारि वटी (फा० वि०) प्रदरे	४॥)	२॥)	१॥)
प्रदररिपु (र० सा० सं०) प्रदरे	८)	४॥)	२॥)
प्रतापलंकेश्वर (बृ यो०) सूतिकारोगे	४॥)	२॥)	१॥)
प्राणदागुटिका (भै०र०) अर्शरोगे	३)	१॥।)	१)
प्लीहारि रस (भै० र०) प्लीहारोगे	४॥)	२॥)	१॥)

रस, गुटी	२० तो०	१० तो०	५ तो०
पुनर्नवा गुग्गुल (भै० र०) शोथाधिकारे	२)	१।)	॥)
पुनर्नवादि मण्डूर (भै० र०) पाण्डुरोगे	४)	२।)	१।)
बालार्क (वै० सा० सं०) अरुच्याधिकारे	४॥)	२॥)	१॥)
बोल पर्पटी (र० स०) रक्तपित्ते		५॥)	३)
बोलबद्ध रस (र० यो० सा० ३८४) अर्शाधिकारे	४॥)	२॥)	१॥)
बाल रस (र० चं०) बालरोगे	६)	३॥)	२)
मण्डूर वटी (भै० र०) पाण्डुरोगे	६)	३॥)	२)
मृत्युंजय (भै० र०) सन्निपाते	३)	१॥।)	१)
मृत्युंजय लोह (र० सं०) उदराधिकारे	१०)	५॥)	३)
मृतप्राणदायी रस (र०यो०सा० ५१) ज्वरे	४)	२।)	१।)
मरिचादि वटी (शा० ध०) कासरोगे	१)	॥=)	।=)
महाज्वरांकुश (भै० र०) ज्वराधिकारे	४॥)	२॥)	१॥)
महाशंख वटी (भै० र०) अग्निमांद्ये	३)	१॥।)	१)
महायोगराज गुग्गुल १। लक्ष चोट का (शा० ध०) वातव्याध्यौ	१०)	५॥)	३)
रजः प्रवर्तनी (भै० र०) रज प्रवाहक	६)	३॥)	२)
रसचन्द्रिका वटी (रसेन्द्र) शिरःशूले	६)	३॥)	२)
रससिन्दूर द्विगुण (र० का०) सर्वरोगे	६)	३॥)	२)
रामबाण रस (भै० र०) अजीर्णाधिकारे	३)	१॥।)	१)
रस पर्पटी हिंगुलोत्थ (र० सु०) ज्वरे		४॥)	२॥)
लवंगादि वटी (वै० जी०) कास रोगे	३)	१॥।)	१)
बृ० लक्ष्मीविलास नारदीय (र०र०सु०)	१०)	५॥)	३)
लक्ष्मीनारायण रस (र० चं०) वातरोगे	१०)	५॥)	३)
लशुनादि वटी (शा० ध०) वातरोगे	१)	॥=)	।=)
लीलावतीवटी (र० सु०) जीर्णज्वरे	४॥)	२॥)	१॥)
लोकनाथ रस बृहत् (शा० ध०) क्षये	४)	२।)	१।)
लोकनाथ रस लघु (शा० ध०)	२)	१।)	॥।)
लोह पर्पटी (र० सं०) सर्वरोगे		५॥)	३)
वात गजांकुश (रसेन्द्र) वाताधिकारे	१०)	५॥)	३)
वात विध्वन्स रस (र० चं०) वातव्याधि	१०)	५॥)	३)
विश्वतापहरण (र०यो०सा० ५१७)	६)	३॥)	२)
विषमुष्टि वटी (फा० वि०) आमवाते	४॥)	२॥)	१॥)
व्योषादि वटी (यो० चं०) कासे	१)	॥=)	।=)
श्वास कुठार बृ० (र० रा० सु०) श्वासे	४)	२।)	१।)

रस, गुटी	२० तो०	१० तो०	५ तो०
श्वास कुठार लघु (र० सु०) श्वासेकासे	२)	१।)	॥।)
श्वासारि लोह (भै०र०) श्वासे	६)	३॥)	२)
शिरःशूल वज्रारिरस (र.यो.सा.) शिरः शूले	३)	१॥।)	१)
शूरण मोदक (बृ०) (शा०ध०) अर्शरोगे	१।)	॥।)	।≡)
शूल वज्रणीवटी (र० चं०) शूलाधिकारे	६)	३॥)	२)
शूल गजकेसरीवटी (फा०वि०) आमवाते	४॥)	२॥)	१॥)
श्रृंगाराभ्र रस (र० सा० सं०) कासे	१०)	५॥)	३)
श्लेष्म श्वासारिवटी (फा०वि०) तरश्वासे	६)	३॥)	२)
सर्व ज्वर हर लौह (रसेन्द्र) ज्वराधिकारे	६)	३॥)	२)
समीर पन्नगतरूस्थ (फा०वि०) वातरोगे	१३)	७)	
स्वर्णवंग नं० १ (र०रा०सु०) प्रमेहरोगे	१०)	५॥)	
सिद्ध प्राणेश्वर (रसेन्द्र) ज्वरातिसारे	६)	३॥)	[illegible]
सिरचक्रविनाशी वटी (फा०वि०) शिरः भ्रमे	६)	३॥)	२)
सिंहनाद गुग्गुल (यो० चि०) वातरक्ते	२)	१।)	॥।)
सुख विरेचनी (फा० वि०) सुख विरेचने	३)	१॥।)	१)
सुधानिधि (यो० र० सा०) रक्तपित्ते	६)	३॥)	२)
सूतिका विनोद (भै० र०) सूतिका रोगे	४॥)	२॥)	१॥)
सौभाग्य वटी (भै० र०) कासज्वरे	४)	२।)	१।)
संजीवनी वटी (शा० ध०) अजीर्णे	१॥।)	१)	॥)
हिंगुलेश्वर (र० चं०) वातज्वरे	४)	२।)	१।)
हिंगुलोत्थ रस पर्पटी (र० सु०) ज्वरे		४॥)	२॥)
हुताशन रस (र०यो०सा०) श्लेष्मरोगे	३)	१॥।)	१)

मूल्यवान् भस्म, रस, पर्पटी और धातु सत्व

मूल्यवान रस, भस्म	५ तो०	२॥ तो०	१ तो०
वज्राभ्रक भस्म (आ० प्र०) ६० पुटी	५)	२॥।)	१।)
अभ्रक सत्व उत्तम (र० हृ०)			८)
अमीररस (सि० भै० म०) उपदंशरोगे	८)	४।)	२)
अगस्ति सूतराज (बृ० यो०) ग्रहण्याधिकारे	४)	२।)	१)
अष्टमूर्त्ति रस (र० चं०) ज्वराधिकारे		२२॥)	१०)
उपदंशहर (फा० वि०) उपदंशरोगे	८)	४।)	२)
उदयादित्य (शा० ध०) श्वित्रकुष्ठे	१६)	८॥)	४)
एकांगवीर (र० रा० सु०) वातरोगे	९॥)	५।)	२॥)
कामदुधा मोतीयुक्त (रसा०सं०) अम्लपित्ते	१६)	८॥)	४)
बृ० कस्तूरीभैरव (भै० र०) ज्वराधिकारे		२०)	९)

मूल्यवान रस, भस्म	५ तो०	२॥ तो०	१ तो०
कस्तूरीभैरव लघु (भै० र०) ज्वराधिकारे		१६)	७)
कस्तूरी भूषण (भै० र०) सर्वरोगे		१३)	६)
कस्तूर्यादि स्तम्भन (टो० न०) स्तम्भने		११)	५)
कुमारकल्याण (भै० र०) बालरोगे		३५)	१५)
कर्पूरादि रस (र० रा० सु०) प्रमेहाधिकारे	४)	२)	१)
कृष्णमाणिक्य („) कुष्ठरोगे	९॥)	५।)	२॥)
केशरादि वटी (फा० वि०) जीर्णप्रतिश्याये	४)	२।)	१)
कांचनाभ्र (भै० र०) क्षयाधिकारे	१०)	५॥)	२)
गोरोचन वटी (दाक्षिणात्य योग) बालरोगे	१२)	६॥)	३)
गोमेद भस्म (र० का०) मस्तिष्करोगे			१२)
चन्द्रशेखर (र० र० स०) रक्तपित्ताधिकारे		९॥)	४)
चतुर्मुख रस (र० सं०) वातव्याध्याधिकारे		१८)	८)
श्री जयमंगल रस (भै० र०) ज्वराधिकारे		१६)	७)
जातीफलादि ग्रहणीकपाट (रसेन्द्र) ग्रहणीरोगे	८)	४॥)	२)
जीर्ण ज्वरारिरस (फा० वि०) क्षयज्वरे	४)	२।)	१)
जौहर (सत्व) दारचिकना उपदंशरोगे			१।)
जौहर „ रसकपूर „			१।)
जौहर त्रिविष „			१।)
जौहर संखिया शक्तिवर्द्धने, उपदंशरोगे			१)
जौहर हरतालपत्राख्य कुष्ठरोगे			१॥)
ताम्रेश्वराभ्र (भै० र०) हिक्काधिकारे	८)	४॥)	२)
ताप्यादि लोह (रसेन्द्र) रसायने	८)	४।)	२)
तालसिन्दूर (र० सा०) कुष्ठाधिकारे	५)	२॥।)	१।)
ताम्रसिन्दूर („ „) श्वासाधिकारे	५)	२॥।	१।)
त्रिविक्रम रस (रसेन्द्र) अश्मर्याधिकारे	४)	२।)	१)
त्रैलोक्य चिन्तामणि (बृ० यो० तं०) क्षयाधिकारे	८)	४॥)	२)
तीक्ष्णलोह भस्म (फा० वि०) शक्तिवर्द्धने	८)	४॥)	२)
दुग्धवटी (भै० र०) अहिफेन युक्त	५)	२॥।)	१।)
नागभस्म (आ० प्र०) ५० पुटी प्रमेहे	५)	२॥।)	१।)
नागसिन्दूर (र० सा०) प्रमेहरोगे	४)	२।)	१)
नागरस कस्तूरीयुक्त (र० चं०) श्वासे		११)	५)
नीलशेखर (फा० वि०) श्वासे, फुफ्फुसरोगे	८)	४॥)	२)
नीलमभस्म (र० का०) उन्मादे			२०)
प्रवालपञ्चामृत (यो० र०) गुल्माधिकारे		१६)	७)

	५ तो०	२½ तो०	१ तो०
पुटपक्वविषम ज्वरांतकलोह (भै० र०) जीर्णज्वरे		१८)	८)
पूर्ण चन्द्ररस बृ० (रसेन्द्र) रसायनाधिकारे		११)	५)
पंचामृत पर्पटी (रसेन्द्र) ग्रहण्याम्	५)	२॥।)	१।)
पारदभस्म श्वेत (फ० वि०) उपदंशे		६॥)	३)
पन्नाभस्म (यू० वि०) मस्तिष्क रोगे			१२)
पुखराजभस्म (र० का०) हृद्रोगे, मस्तिष्क रोगे			१६)
पुष्प धन्वा रस (भै० र०) रसायने	८)	४॥)	२)
फिरोजाभस्म (यू० वि०) हृद्रोगे			६)
फौलादभस्म अपूर्व (फा० वि०) शक्तिवर्द्धने			१५)
बालशोषान्तक वटी (फा० वि०) शोषरोगे	४)	२।)	१)
भल्लातक वटी (फा० वि०) आमवाते	४)	२।)	१)
मल्लसिन्दूर (र० सा०) सर्वरोगे	५)	२॥)	१।)
मन्मथाभ्ररस (र० स०) वाजीकरणे	४)	२।)	१)
मनःशिला सत्व			८)
मृगनाभ्यादि वटी (कस्तूरी वटी) क्लीवत्वरोगे		८।)	४)
मृगाङ्कस्वर्णसंयुक्त (शा० ध०) क्षयरोगे			४५)
माणिक्यभस्म (यू० वि०) हृदयरोगे			८)
मुक्ताभस्म (र० का०) शक्तिवर्द्धने			३४)
मुक्ताभस्म चन्द्रपुटी (यू० वि०) शक्तिवर्धने			३०)
रक्तपित्तकुलकण्डन रस (र० सु०) रक्तपित्ते		६॥)	३)
रजतभस्म (चांदी भस्म) पारदयोगेन लाल	१६)	८॥)	३॥।)
रजतभस्म (चांदीभस्म) हरितालेन श्याम	१२॥)	६॥)	३)
रजतभस्म (चांदीभस्म) वनस्पतियोगेन श्वेत	१८)	९)	४)
रजतसिन्दूर (र० सा० सं०) रसायने	९)	५)	२॥)
रसकपूर (र० का०) उपदंशरोगे	५)	२॥।)	१।)
रसमाणिक्य (र० रा० सु०) कुष्ठाधिकारे	५॥)	३)	१॥)
रससिन्दूर चतुर्गुणगन्धकजीर्ण (र० ह०)	४)	२।)	१)
रससिन्दूर षट्गुण गन्धकजीर्ण (र० ह०)	५॥)	३)	१॥)
रसपर्पटी विशुद्ध रसेन (र० रा० सु०)	५)	२॥।)	१।)
राजावर्त्त भस्म (बृ० यो०) उन्मादरोगे	९)	५)	२॥)
राजमृगाङ्क (शा० धं०) क्षयरोगे			२४)
राजचण्डेश्वर (र० चं०) सर्वरोगे	४)	२।)	१)
वंगसिन्दूर (र० सा०) शक्तिवर्द्धने	५)	२॥।)	१।)
वंगेश्वर बृहत् (भै० र०) प्रमेहाधिकारे		१६)	७)
वसन्तकुसुमाकर (शा० ध०) सर्वरोगे		२८)	१२)

मूल्यवान रस, भस्म	५ तो०	२॥ तो०	१ तो०
व्याधिहरण रसायन (रसेन्द्र) रसायने	८)	४॥)	२)
विजयपर्पटी (भै० र०) ग्रहण्याधिकारे		१६)	७)
विषमज्वरांतक लोह (भै० र०) जीर्णज्वरे		८॥)	४)
वैक्रान्तभस्म (र० सा०) मस्तिष्करोगे	४)	२।)	१)
शीतांकुशरस (र० प्र०) चातुर्थिक ज्वरे	५॥)	३)	१।)
शीतारिरस (र० चं०) ज्वराधिकारे	४)	२।)	१)
शिला चन्द्रोदय (र० सा०) रक्तविकारे			१०)
शूलगजकेशरी ताम्र (शा० धं०) शूलरोगे	४)	२।)	१)
समीरगजकेसरी रस (रसेन्द्र) वातव्याधौ	५)	२।।)	१।)
समीरपन्नग ऊर्ध्व (र० चं०) वातरोगे	५)	२।।)	१।)
सर्वांग सुन्दर (र० चं०) शूलाधिकार		९॥)	४)
स्मृतिसागर (यो० र०) अपस्मारे	५)	२।।)	१।)
स्वच्छन्दभैरव (र० रा० सु०) ज्वराधिकारे	५)	२।।)	१।)
स्वर्ण चन्द्रोदय षट्गुणगन्धकजीर्ण		२०)	९)
स्वर्ण पर्पटी (र० रा० सु०) क्षयाधिकारे		१६)	७)
स्वर्णभस्म (शा० धं०) रसायने		५॥) माशा	६०)
स्वर्ण वसन्त मालती (खर्पर युक्त) क्षयरोगे	३५)	१८)	८)
स्वर्णवंग नं० १ का (र० रा० सु०) प्रमेहरोगे	५)	२।।)	१।)
सिद्ध मकरध्वज (पिष्ट) स्वर्णभस्म युक्त			३०)
सूतशेखर (यो० र०) अम्लपित्ताधिकारे		५)	२॥)
सुरमा नयनामृत (शा० धं०) ज्योतिवर्द्धने	४)	२।)	१)
सुरमा ज्योतिवर्द्धक (फा० वि०) ज्योतिवर्द्धने	४)	२।)	१)
संखिया (सोमल) भस्म (फा० वि०) शक्तिवर्द्धने		६॥)	३)
हरताल पत्राख्यभस्म (फा० वि०) जीर्णज्वरे		६॥)	३)
हरताल सत्व (फा० वि) कुष्टे			८)
हिंगुलभस्म (फा० वि०) क्लीवत्वरोगे		६॥)	३)
हीरा (वज्र) भस्म (आ० प्र०) सर्वरोगे	२०) प्रति रत्ती		
हेमगर्भ पोटली रस (यो० र०) कासे, क्षये			१०) तो०

शास्त्रीय प्रचलित चूर्ण

	१ सेर	४० तो०	१० तो०
अजमोदादि चूर्ण (शा० ध०) वातरोगे	२॥)	१।=)	।।।)
अग्निमुख (वं० से०) अजीर्णाधिकारे	४॥)	२।=)	१।)
अपचिविनाशी चूर्ण, कंठमालारोगे	८)	४।)	२॥)

	१ सेर	४० तो०	२० तो०
अविपत्तिकर (वं० से०) अम्लपित्ते	२॥)	१।=)	।।।)
अष्टांगलवण (च०) मदात्यये अग्निमान्द्ये	५)	२।।)	१॥)
अश्वगन्धादि (शा० ध०) वाजीकरणे	३)	१।।)	१)
कामदेव चूर्ण (यो० र०) क्लीवत्वे	५)	२।।)	१॥)
गोक्षुरादि चूर्ण (वा० भ०) वाजीकरणे	२)	१=)	॥=)
चातुर्थिक ज्वरहर चूर्ण (चातुर्थिकज्वरे)	२०)	११)	६)
चोपचिन्यादि चूर्ण (यो० र०) रक्तविकारे	२॥)	१।=)	।।।)
चन्दनादि चूर्ण (यो० त०) प्रदरे, रक्तपित्ते	३)	१।।)	१)
तालीसादि चूर्ण (शा० ध०) ज्वर, कासे	३)	१।।)	१)
दाड़िमाष्टक चूर्ण (शा० ध०) अरुच्ये	२॥)	१।=)	[illegible]
नारसिंह चूर्ण (च० द०) क्लीवत्वे	५)	२।।)	१॥)
नारायण चूर्ण (शा० ध०) उदरविकारे	२॥)	१।=)	।।।)
प्रदरान्तक चूर्ण (फा० वि०) प्रदररोगे	३)	१।।)	१)
पुष्यानुग चूर्ण केसर युक्त (भै० र०) प्रदरे	८)	४।)	२॥)
बृ० गंगाधर (शा० ध०) अतिसारे	२)	१=)	॥=)
बृ० लवंगादि (शा० ध०) ज्वर, कासे	४)	२।)	१।)
बृ० सुदर्शन (शा० ध०) ज्वराधिकारे	२)	१=)	॥=)
महाखाण्डव (शा० ध०) अजीर्ण रोगे	३)	१।।)	१)
मधुयष्ट्यादि चूर्ण (हा० सं०) क्षतजकासे	३)	१।।)	१)
लवणभास्कर चूर्ण (शा० ध०) अग्निमांद्ये	२)	१=)	॥=)
लाई चूर्ण "नायिका चूर्ण" भै० र० अतिसारे	२)	१=)	॥=)
शिवाक्षार पाचन चूर्ण (फा० वि०) पाचने	३)	१।।)	१)
सारस्वत चूर्ण (भै० र०) मस्तिष्क रोगे	४)	२।)	१।)
स्वादिष्ट विरेचन चूर्ण मृदुरेचने	३)	१।।)	१)
संजीवनी चूर्ण (फा० वि०) क्लीवत्वे	८)	४।)	२॥)
सितोपलादि (शा० ध०) कास, क्षये	५)	२।।)	१॥)
हिंग्वाष्टक चूर्ण (शा० ध०) उदर रोगे	२)	१=)	॥=)
हिंग्वादि चूर्ण (शा० ध०) ,,	३)	१।।)	१)

नोट—हर एक चूर्ण की मात्रा अनुसार टिकिया (Tablets) भी मिल सकेंगी भाव १।) सेर ज्यादा लगेगा। चूर्णों की टिकिया आध सेर से कम न भेजी जायेंगी।

आर्डर देने से पूर्व व्यापारिक नियम पढ़ लेने चाहियें।

लेप और मर्हम

	४० तोला	५ तो०
अर्शांघ्र मर्हम, बवासीर वास्ते	६)	१)
काली मर्हम, व्रण शोधनार्थ	१।।)	।)
दशांग लेप, विसर्प रोगे	३)	।–)
नीली मर्हम, व्रण रोपक	१॥)	।)
पीली मर्हम, व्रण रोपक	१॥)	।)
पारदादि मर्हम, जन्तुघ्न कीटाणु नाशक	२)	।=)
श्वेतकुष्ठ लेप, श्वित्रकुष्ठे	५)	॥।)
सिध्महर लेप, सिध्मरोगे	५)	॥।)

अरिष्ट

नाम वस्तु	१० पौण्ड	५ पौण्ड	२ पौण्ड
अमृतारिष्ट (आ० वे० सं०) ज्वरे	५॥)	३।)	१॥)
अशोकारिष्ट (आ० वे० सं) प्रदरे	७)	४)	१॥।)
अश्वगन्धारिष्ट (वं० से०) प्रमेहे	१०)	६)	२॥)
अर्जुनारिष्ट (भै० र०) हृद्रोगे	८)	४॥)	२)
अभयारिष्ट (भै० र०) अर्शरोगे	८)	४॥)	२)
कुटजारिष्ट (भै० र०) अतिसारे	१०)	६)	२॥)
खदिरारिष्ट (भै० र०) कुष्टरोगे	८)	४॥)	२)
जीर कार्यरिष्ट	८)	४॥)	२)
दन्त्यरिष्ट	८)	४॥)	२)
दशमूलारिष्ट (शा० ध०) बहुरोगे	८)	४॥)	२)
दशमूलारिष्ट (कस्तूरीयुक्त) ,,	१५)	८)	३॥)
द्राक्षारिष्ट (शा० ध०) क्षये	५॥)	३।)	१॥)
रोहितकारिष्ट (भै० र०) प्लीहारोगे	७)	४)	१॥।)
सारस्वतारिष्ट (भै० र०) मानसिकरोगे	१५)	८)	३॥)
सारिवाद्यारिष्ट (भै० र०) कुष्ठे, रक्त विकारे	८)	४॥)	२)

आसव

	१० पौंड	५ पौंड	१ पौंड
उशीरासव (शा० ध०) रक्तपित्ते	७)	४)	१॥।)
कनकासव (भै० र०) श्वासरोगे	७)	४)	१॥।)
कुमार्यासव (शा० ध०) उदररोगे	१०)	६)	२॥)
चविकासव	८)	४॥)	२)
चंदनासव (शा० ध०) प्रमेहे	५॥)	३।)	१॥)
द्राक्षासव (शा० ध०) अर्शोदरे	५॥)	३।)	१॥)
पुनर्नवासव (शा० ध०) शोथे	७)	४)	१॥।)
पिप्पल्यासव (शा० ध०) अर्श, गुल्मे	८)	४॥)	२)
लोहासव (शा० ध०) पाण्डुरोगे	७)	४)	१॥।)
लोध्रासव (शा० ध०) पाण्डु, अर्श	७)	४)	१॥।)
शंखद्राव (र० का०) गुल्मे	१० तोले ३)	५ तोला	१॥।)

मृतसञ्जीवनी सुरासाधित आसव

नाम वस्तु	१ औंस	४ ड्राम
अरविन्दासव (आ० वे० स०) बालरोगे	२॥)	१॥)
अहिफेनासव (भै० र०) अतिसारे	१॥)	१)
कर्पूरासव (भै० र०) विसूचिका रोगे	१।)	॥।)
मृगमदासव (भै० र०) सन्निपाते	१५)	१०)

क्वाथ

	१ सेर	२० तोला
गोक्षुरादि क्वाथ (शा० ध०) मूत्रकृच्छ्रे	१।)	।=)
दशमूल क्वाथ प्रसूतारोगे	।–)	–)॥
देवदार्व्यादि क्वाथ (शा० ध०) ज्वरकासे	१।)	।=)
प्रसूति क्वाथ प्रसूतारोगे	२)	॥=)
लघुमंजिष्टादि क्वाथ ,, रक्तरोगे	१।)	।=)
महामंजिष्टादि ,, ,, कुष्टे	२)	॥=)
लघु रास्नादि क्वाथ ,, वातरोगे	१।)	॥)
महारास्नादि ,, ,, ,,	२)	॥=)

प्रसिद्ध अवलेह पाक

	५ सेर	२½ सेर	१ सेर
कुटजावलेह (शा० ध०) अतिसारे	९)	५)	२॥)
कूष्माण्डावलेह (शा० ध०) रक्तपित्ते	९)	५)	२॥)
कंटकार्यावलेह (वं० से०) कासे	९)	५)	२॥)
च्यवनप्राशावलेह (च०) रसायने (नूतन)	१४)	७॥)	३॥)
च्यवनप्राशावलेह (च०) (गत वर्षका)	७)	४)	२)
पेठा पाक (यो० चि०) रक्तपित्ते	९)	५)	२॥)
भार्गी गुड़ (भै० र०) हिक्का, श्वासे	९)	५)	२॥)
मदनानन्दमोदक (र०रा०सु०)वाजीकरणे	१४)	७॥)	३॥)
मूसलीपाक (यो० चि०) क्लीवत्वे	१४)	७॥)	३॥)
वासावलेह (भै० र०) क्षय कासे	९)	५)	२॥)
व्याघ्री हरीतकी (भै० र०) जीर्णप्रतिश्याये	७)	४)	२)
सौभाग्यशुंठी पाक (यो० चि०) प्रसुतिरोगे	९)	५)	२॥)
सुपारीपाक (यो० चि०) प्रदररोगे	९)	५)	२॥)
हरिद्राखण्ड (भै० र०) शीतपित्ते	९)	५)	२॥)
हरीतकी खण्ड (भै० र०) शूले	९)	५)	२॥)

प्रसिद्ध साधित घृत तैल

	१ पौण्ड	८ औंस
उपघृत (वैज़लीन)	।=)	।)
जात्यादि घृत (चक्रदत्त) व्रणशोथे	२॥)	१।।)
पंचतिक्तादि घृत (शा० ध०) विषमज्वरे	४)	२।)
फल घृत (चक्रदत्त) योनिरोगे	४)	२।)
ब्राह्मी घृत (चक्रदत्त) रसायने	३॥)	२)
महात्रिफलादि घृत (चक्रदत्त) नेत्ररोगे	४)	२।)
अर्क तैल (शा० ध०) कुष्टे	१।=)	।।।)
आमला तैल (शिररोगे)	१।=)	।।।)
इरिमेदादि तैल (शा० ध०) मुखरोगे	२।)	१।)
कासीसादि तैल (शा० ध०) अर्शरोगे	४)	२।)
केशराज तैल (केशवर्द्धने)	१।॥)	१)
चन्दनादि तैल (भै० र०) जीर्णज्वरे	४)	२।)
दशमूल तैल (भै० र०) वातरोगे	१।॥)	१)
प्रसारणी तैल (भै० र०) वातरोगे	३॥)	२)
ब्राह्मी तैल (फा० वि०) बुद्धिवर्द्धनार्थे	२।)	१।)
भृंगराज तैल (भै० र०) क्षुद्ररोगे	२।)	१।)
महानारायण तैल (शा० ध०) वातरोगे	४)	२।)
मरिचादि तैल (चक्रदत्त) कुष्टे	२।)	१।)
महामाष तैल (भै० र०) वातरोगे	४)	२।)
महालाक्षादि तैल (शा० ध०) जीर्णज्वरे	२।)	१।)
विषगर्भ तैल (यो० र०) वातरोगे	२।)	१।)
शुष्कमूलाद्य तैल (धन्वतरी) कर्णश्रावपर	१।॥)	१)
षटबिन्दु तैल (चक्रदत्त) शिररोगे	२।)	१।)
क्षार तैल (शा० ध०) कर्णशूले	३)	१।।।)

अञ्जन तथा नेत्रवर्ती

	१० तो०	५ तो०
उन्माद भञ्जनी वर्ती (र० स० सं०) अपस्मारे	४॥)	२॥)
चन्द्रोदयावर्ती (शा० ध०) नेत्ररोगे	१।॥)	१)
चन्द्रप्रभावर्ती (यो० र०) ,,	२।)	१।)
नागार्जुन वर्ती (भै० र०) ,,	४॥)	२॥)
मुक्तादि महाञ्जन (यो० र०) ,,	४॥)	२॥)
नयनामृत सुरमा (शा० ध०) ,,	७॥)	४)
सुरमा ज्योतिवर्धक (फा० वि०),,	७॥)	४)
ब्राह्मी सुरमा ,, ,,	=) छोटा पैकट,	।) बड़ा पैकट

फार्मेसी द्वारा प्रस्तुत शुद्ध वस्तुएँ

शुद्ध वस्तु नाम	१ सेर	२० तो०	५ तोला
कज्जली शुद्ध पारद से	१२)	३।)	१)
कपर्दिका शुद्ध	३)	।।।=)	।)
कांस्य चूर्ण शुद्ध	२।।)	।।।)	≡)॥
कान्त लोह शुद्ध	३)	॥।=)	।)
कुचला शुद्ध	१॥)	।।)	=)॥
कुचला चूर्ण शुद्ध	६)	१।।।)	।।)
खर्पर शुद्ध	२४)	६॥)	२)
गन्धक आमलासार शुद्ध	१।।)	।।)	=)॥
गुग्गुल शुद्ध	२)	।।=)	≡)
जमालगोटा शुद्ध	६)	१।।।)	।।)
ताम्र चूर्ण शुद्ध	३)	॥।=)	।)
तुत्थ शुद्ध	१)	।-)	-)॥
दालचिकना शुद्ध	१२)	३।)	१)
धतूर बीज श्याम शुद्ध	१)	।-)	-)॥
नाग शुद्ध	१।।)	॥)	=)॥
पारद अष्ट संस्कार पूर्ण शुद्ध	३६)	१०)	३)
पारद हिंगुलोत्थ शुद्ध	१६)	४॥)	१।)
प्रवाल शाखा शुद्ध	३)	।।।=)	।)
पीतल बुरादा शुद्ध	१।।)	॥)	=)॥
फिटकिरी शुद्ध (खील)	१)	।-)	-)॥
भल्लातक शुद्ध	१)	।-)	-)॥
मण्डूर शुद्ध	२)	।।=)	≡)
मैनसिल शुद्ध	४)	१।)	।=)
यशद शुद्ध	२)	।।=)	≡)
रसकपूर शुद्ध	१६)	४॥)	१।)
रसौंत शुद्ध	२)	॥=)	≡)
राजावर्त शुद्ध			५)
रौप्यमाक्षिक शुद्ध	३)	।।।=)	।)
लोहचूर्ण (मुण्ड लोह) शुद्ध	२)	॥=)	≡)
लोहचूर्ण रेती का शुद्ध	४)	१।)	।=)
वंग शुद्ध	६)	१।।।)	।≡)
वज्राभ्रक (धान्याभ्रक) शुद्ध	४)	१।)	।=)
शंख टुकड़े शुद्ध	१)	।-)	-)॥
शंख नाभी शुद्ध	१)	।-)	-)॥

आर्डर देने से पूर्व व्यापारिक नियम पढ़ लेने चाहियें ।

संख्या	नाम औषध	वज़न	मूल्य			संख्या	नाम औषध	वज़न	मूल्य		
			रु०	आ०	पा०				रु०	आ०	पा०

नोट—

भवदीय

अनुग्रहाभिलाषी

नाम..............................

मुकाम..............................

पोस्ट..............................

रेलवे स्टेशन..............................

जिला..............................

नोट—रेलवे स्टेशन व पोस्टके स्पेलिंग अंग्रेजीमें होने चाहिये, साथ ही रेलवे स्टेशन किस लाइन (G. I. P., N. W. R., E. I. R.,) पर है, जरूर लिखें।

	१ सेर	२० तो०	५ तो०
शिंगरफ शुद्ध	१२)	३।)	१)
श्रृंगिक (मीठातेलिया काला) शुद्ध	३)	॥=)	≡)
सुहागा शुद्ध (खील)	१)	।-)	-)॥
सीप मोती शुद्ध	४)	१)	=)
संखिया शुद्ध	४)	१)	।=)
स्वर्णमाक्षिक शुद्ध	५)	१॥)	।=)
हरतालवर्की शुद्ध	२०)	५॥)	१॥)
जौहर नौसादर (स्वर्ण वंगवाला)			॥) तोला

क्षार तथा लवण

	१ सेर	२० तो०	५ तो०
अर्क क्षार	६)	१॥।)	॥)
अपामार्ग क्षार	६)	१॥।)	॥)
इन्द्रायण क्षार	१२)	३॥)	१)
इमली क्षार	१२)	३॥)	१)
कटेली (कण्टकारी) क्षार	६)	१॥।)	॥)
कदली क्षार	६)	१॥।)	॥)
गोक्षुर क्षार	८)	२॥)	॥।)
गौमूत्र क्षार	५)	१॥)	।≡)
चना क्षार (ओस जल का)	१२)	३॥)	१)
चना क्षार (भस्मसे बना)	६)	१॥।)	॥)
तिल क्षार	६)	१॥।)	॥)
पलाश क्षार	१२)	३॥)	१)
पुनर्नवा क्षार	१०)	२॥।)	॥।)
मूली क्षार	६)	१॥।)	॥)
यव क्षार	६)	१॥।)	॥)
वज्र क्षार	१०)	२॥।)	॥।)
बांसा क्षार	६)	१॥।)	॥)
स्नुही क्षार	८)	२॥)	॥।)
सत्यनाशी क्षार	१०)	२॥।)	॥।)
सज्जी क्षार	॥)	≡)	-)
अर्क लवण	४)	१)	।=)
अष्टांग लवण	६)	१॥)	।≡)
नारिकेल लवण	८)	२॥)	॥)

सत्व और घनसत्व

	१ सेर	५ तो०
अजवायन सत्व (विलायती)	१२)	॥।=)
अमलतास घनसत्व	२)	≡)
अशोक घनसत्व	८)	॥=)
अनन्त मूल घनसत्व	८)	॥=)
अश्वगन्धा घनसत्व	८)	।=)
अपामार्ग घनसत्व	८)	॥=)
अपराजिता घनसत्व	८)	॥=)
अर्जुन घनसत्व	८)	॥=)
इमली सत्त	१)	।)
उन्नाव सत्व लाल	३)	।-)
उदुम्बर (गूलर) घनसत्व	८)	॥=)
कर्कटश्रृंगी घनसत्व	८)	॥=)
कण्टकारी घनसत्व	८)	॥=)
कालमेघ घनसत्व	८)	॥=)
कुठ घनसत्व	८)	॥=)
कुटकी घनसत्व	८)	॥=)
कुटज घनसत्व	८)	॥=)
गिलोय सत्व	५)	।=)
गोक्षुर घनसत्व	८)	॥=)
चिरायता घनसत्व	८)	॥=)
चोक घनसत्व	८)	।=)
चोपचीनी घनसत्व	८)	॥=)
जामुन त्वक् घनसत्व	८)	॥=)
दन्तीमूल घनसत्व	८)	॥=)
त्रिवृत्ता घनसत्व	८)	॥=)
त्रिफला सत्त	५)	।=)
नींबू सत्व (विलायती)	२)	≡)
निम्बत्वक् घनसत्व	८)	॥=)
पित्त पापड़ा घनसत्व	८)	॥=)
विदारीकन्द घनसत्व	८)	॥=)
वच घनसत्व	८)	॥=)
पान सत्व	८)	॥=)
पुदीनासत्व (पिपरमेण्ट) विलायती	१॥) पौंड	१॥=)
बिरोज़ा सत्व	॥।) सेर	-)

	१ सेर	५ तो०
ब्राह्मी सत्त	८)	॥=)
मंजीठ घनसत्व	८)	॥=)
मुलहठी सत्व (विलायती)	४)	।-)
रास्ना घनसत्व	८)	॥=)
रसौत घनसत्व	३)	≡)
लोबान सत्व (विलायती)	१२)	१)
लोध्र घनसत्व	८)	॥=)
वांसा घनसत्व	८)	॥=)
बिल्व त्वक् घनसत्व	८)	॥=)
शिलाजीत सत्त (अल्मोड़ा)	१६)	१।)
सप्तपर्ण घनसत्व	८)	॥=)
सोंठ सत्व	८)	॥=)
हरीतकी घनसत्व	५)	।=)

योगोपयोगी बूटियों के चूर्ण

	१ सेर	१० तो०
असगन्ध चूर्ण	१)	≡)
अजमोद „	१)	≡)
अतीस श्वेत „	८)	१।)
आमला „	॥।)	=)
इन्द्रायण मूल चूर्ण	१)	≡)
कचूर „	॥।)	=)
कुटकी „	१॥)	।)
कुष्ट „	१०)	१॥)
कौंच मूल चूर्ण	४)	॥)
कौंच बीज चूर्ण	॥।)	=)
गोक्षुर लघु „	॥।)	=)
गोक्षुर वृहत् „	१॥)	।)
चतुर्जातक „	४)	॥=)
चव्य „	२)	।-)
चन्दन श्वेत चूर्ण	४)	॥=)
चोपचीनी „	२)	।-)
चित्रक छाल चूर्ण	३)	॥)
जायफल „	३)	॥)
जावित्री „	७)	१)
ज़ीरा श्वेत चूर्ण	१॥)	।)

	१ सेर	१० तो०
ज़ीरा कृष्ण „	३)	॥)
तालीसपत्र „	१॥)	।)
त्रिफला चूर्ण „	१)	≡)
त्रिकटू „	१॥)	।)
दन्ती मूल „	२)	।-)
धवल बरुआ „	७)	१)
नीम छाल „	१)	≡)
पाठामूल „	२)	।-)
पिप्पलीमूल „	५)	॥।)
पिप्पली „	३)	।-)
पुष्करमूल „	८)	१।)
बिदारीकन्द „	१)	≡)
बंशलोचन „	१२)	१॥।)
बहेड़ा „	॥।)	=)
मूसली कृष्ण „	१।)	≡)
मूसली श्वेत „	७)	१)
मरिच „	१)	≡)
मुस्तक „	१)	≡)
मुलहठी „	१॥)	।)
मंजिष्ठा „	२॥)	।=)
रेवन्द चीनी चूर्ण	१)	≡)
लवंग „	२॥)	।=)
लोध्र „	१)	≡)
विधारामूल „	२)	।-)
विडंग „	१)	≡)
शतावरी „	२)	।-)
शंख पुष्पी „	१)	≡)
सोंठ „	२)	।-)
सुरवारी हरड़ चूर्ण	५)	॥।)
शु० मीठा तेलिया चूर्ण	५)	॥।)
शु० संखिया „	६)	॥।=)
हरड़ काबली „	१॥)	।)

नोट—इन चूर्णों का आर्डर देते समय पेशगी अवश्य भेजें, और अन्य वनस्पतियों के चूर्ण भी ऑर्डर आने पर भेजे जा सकेंगे। यह चूर्ण ८० नं० की छलनी से छनाये जाते हैं।

प्रवाही सत्व-सार (LIQUID EXTRACTS)

इस नवीन प्रकरणको देखकर वैद्यसमुदायको प्रसन्नता होगी, कि हमने तरलसार (प्रवाही काढ़े) बनाकर काथ-चिकित्साको सुगम कर दिया है। प्रसिद्ध शास्त्रोक्त काथों तथा कई पृथक् २ द्रव्योंके काढ़े विशुद्ध हली वा मद्यसार (Rectified Spirit) आदि द्वारा सुरक्षित (Preserved) कर दिए हैं, ताकि काथादि के निर्म्माणका कष्ट वैद्यों एवं जनताको न हो। तरल सारोंको आसवारिष्टोंका एक प्रकार समझना चाहिए। पाश्चात्य चकित्सा शैलीमें इनका बहुत प्रयोग हो रहा है। यह चिरस्थाई होते हैं। एक वर्ष तक नहीं बिगड़ते। इनकी अल्प मात्रा और रुचिकरता रोगियोंको काथोंकी घृणा और क्लेशसे बचाती है। तरल सारोंमें द्रव्योंका सत्व सम्पूर्ण आ जाता है।

औषध नाम मुख्य गुण	१ पौण्ड	८ औंस
अपामार्ग–कफ़, मूत्ररोग, जलोदर, सूजन, उदररोग	१॥)	॥।≈)
अतिविषा–बच्चोंके ज्वर, वमन, शूल, कृमि, अजीर्ण	४)	२॥)
अनंतमूल–उपदंश, रक्तविकार, त्वकदोष, गर्मी, मूत्ररोग	१।)	।॥)
अर्जुन–हृदयरोग, क्षय, जीर्णज्वर, उरः क्षत, अस्थिभंग	१।)	॥।)
अर्कमूल–रक्तविकार, कुष्ट, वातरक्त, उपदंश, उदर रोग, कफ वमन	१॥)	॥।≈)
अश्वगंधा–धातुक्षीणता, कृशता, क्षय, निर्बलता	१॥)	॥।≈)
अशोक–प्रदर, गर्भाशयके रोग, ऋतुदोष, निर्बलता, अत्यार्तव	१।)	॥।)
अंकोल–रक्त विकार, वातरोग, चूहेका विष और इसके उपद्रवके लिए	१॥)	॥।≈)
अपराजिता–(विष्णुकान्ता) उदरोग, जलोदर, यकृत, प्लीहा	१॥)	॥।≈)
आरग्वध–(अमलतास) कब्ज़, बच्चोंकी कब्ज, पित्तका स्राव करनेके लिए	१।)	॥।)
इन्द्रवारुणी (इन्द्रायण)–कब्ज, उदररोग, कृमि, कामला, यकृत, पित्त निकालनेके लिए	१॥)	॥।≈)
उलट कम्बल–कष्टार्त्तव, ऋतुदोष, मासिकधर्मकी खराबीमें	६)	३।)
कर्कटश्रृंङ्गी–बच्चोंकी खाँसी, ज्वर, बालरोग (डिब्बा) क्षय की खाँसी	१॥)	॥।≈)
कण्टकारी–कफरोग, जीर्णज्वर, कफज्वर, श्वास, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह	१॥)	॥।≈)
कम्पिल्लक–कृमिरोग, कृमिरोगसे उत्पन्न हुई व्याधियें	१॥)	॥।≈)
कांचनार–कंठमाला, गलगंड, जीर्णज्वर, रक्तविकार	१।)	॥।)
कालमेघ–सबतरहके बुखार और, बुखारसे हुई निर्बलता	१॥)	॥।≈)
कुष्ठ–(उपलेट) उन्माद, अपस्मार, पक्षाघात, वात व्याधि, दमा, कृमि	६)	३।)
कुटज–मरोड़, ज्वरातिसार, अतिसार, प्रदर, कृमि, रक्तस्राव, विषमज्वर	१।)	॥।)
कुटकी–विषमज्वर, उदररोग, बच्चोंके ज्वर	१।)	॥।)
खादिरत्वक–त्वकदोष,व्रण,कुष्ट,रक्तदोष,गुल्म,कृमिरोग	१।)	॥।)
गम्भारी त्वक्–ज्वर, मन्दाग्नि, कास, जलमयशोथ	१॥)	॥।≈)
गुडूची–(गिलोय) ज्वर, विषमज्वर, रक्त, और त्वक दोष, प्रमेह	१॥)	॥।≈)
गोक्षुर–(गोखरु) वीर्यस्राव, वीर्यविकार, मूत्ररोग, प्रमेह, अश्मरी, प्रदर	१।)	॥।)
गोरखमुंडी–रक्तविकार, कृमिविकार, वीर्यविकार	१।)	॥।)
चित्रकमूल–अजीर्ण, अफारा, मंदाग्नि, आम विकार, अतिसार, अर्श	१॥)	॥।≈)
चिरायता कटु–(किराततिक्ता) सब तरहके बुखार, और बुखारसे हुई निर्बलता, जीर्णज्वर	१॥)	॥।≈)

औषध नाम मुख्य गुण	१ पौंड	८ औंस
चोपचीनी–उपदंश, गरमी, त्वकदोष, रक्तदोष, पौष्टिक है	१॥)	॥।=)
जम्बुत्वक–अतिसार, मरोड़, रक्तस्राव, मूत्ररोग	१॥)	॥।=)
तुलसी–खाँसी, कफ, ज्वर, शूल, अजीर्ण, वायु, तंद्रा	१।)	॥।)
दशमूल–प्रसूतावस्था में, यकृत वृद्धि, ज्वरमें	१।)	॥।)
दारुहरिद्रा–यकृत, कमला, ज्वर, ज्वरातिसार	१।)	॥।)
धमासा–मूत्रकृच्छ्, प्रमेह पित्तज्वर, तृषा, वमन	१॥)	॥।=)
निसोत–कब्ज, अफारा, जलोदर, यकृत, पित्तविकृति	१॥)	॥।=)
निम्ब त्वक्–सब तरहके ज्वर, रक्तविकार, त्वक्‌दोष, कृमि, उपदंश	१।)	॥।)
निम्ब पत्र– " " "	१।)	॥।)
पर्पट–(पित्तपापड़ा) सब तरहके ज्वर और पित्त ज्वरमें उपयोगी है	१।)	॥।)
पटोल–विषमज्वर, कब्ज, कृमिरोग, यकृत, उदररोग, कामला, जीर्णज्वर	१॥)	॥।=)
पाठा–(कालीपाढ़) ज्वर, मूत्रकृच्छ्, विषमज्वर, अतिसार, यकृत, रक्तदोष	१।)	॥।)
प्रसारणी–वातव्याधि, संधिवात, पक्षाघात, रींगनवाय, लकवा	१।)	॥।)
पुनर्नवा–(सांठी) कामला, यकृत, सूजन, उदररोग, कब्ज, त्वक्‌दोष	१॥)	॥।=)
बहुफली–वीर्यविकार, मूत्रविकार, निर्बलता, जीर्णप्रमेह	१॥)	॥।=)
बिल्व–मरोड़, अतिसार, अर्श, रक्तपित्त, आमविकार, मंदाग्नि	१।)	॥।)
ब्राह्मी–मस्तिष्कके रोग, उन्माद, अपस्मार, वातव्याधि, त्वक्‌दोष	१।)	॥।)
ब्रह्मदण्डी–विस्मृति, हृदनिर्बलता रक्त, विकार	१॥)	॥।=)
भृङ्गराज–पित्तरोग, यकृत, खाँसी, पीनस	१।)	॥।)
भारङ्गी–कफ, ज्वर, खाँसी, दमा	१।)	॥।)
मुस्तक–सब तरहके ज्वर, खाँसी, फेफड़ेका जीर्ण शोथ, मूत्रकृच्छ्	१।)	॥।)
महामञ्जिष्ठादि काथ–रक्त शोधक त्वक् दोष शामक	१॥)	॥।=)
मंजिष्ठा–रक्तविकार, उपदंश, कुष्ठ, रक्तपित्त, प्रमेह, अनार्तव, प्रदर	१॥)	॥।=)
रास्ना–वातव्याधि, मज्जातंतुके रोग, पक्षाघात, लकवा, उरुस्तंभ	१।)	॥।)
रोहितक–रक्तविकार, रक्तका जमजाना, यकृत, जीर्णज्वर, निर्बलता	१।)	॥।)
लोध्र–अतिसार, मरोड़, रक्तस्राव, अत्यार्तव	१।)	॥।)
वच–ज्ञान तंतुके रोग और उनके उपद्रव, अपस्मार, कृमि, ऋतुदोष	१॥)	॥।=)
वरुण–मूत्रकृच्छ्, मूत्राघात, अश्म री, मूत्ररोग, गर्भाशयके रोग	१॥)	॥।=)
वांसा–(अडूसा) कफ, खाँसी, श्वास, उरःक्षत, रक्तस्राव, क्षय	१॥)	॥।=)
वृद्धदारु–(विधारामूल) वीर्यविकार, वातव्याधि, खाँसी, दमा, संधिवात, ज्ञानतंतुकी निर्बलता	१॥)	॥।=)
विदारीकन्द–वीर्यविकार, धातुक्षीणता, कृशता, प्रमेह, प्रदर, वीर्यस्राव	१॥)	॥।=)
शतावरी–ज्ञानतंतु और वीर्य रोग, वातव्याधि, वीर्यस्राव, प्रदर, प्रमेह	१॥)	॥।=)
शरपुँखा–प्रमेह, मूत्रकृच्छ्, निर्बलता, उपदंश,	१।)	॥।)
शंख पुष्पी–(शंखाहुली)—ज्ञानतंतु की निर्बलता, अपस्मार, उन्माद	१॥)	॥।=)
शिग्रुमूल–(सुहांजना) यकृत, प्लीहा, जलोदर, उदर रोग, अफारा	१॥)	॥।=)
सेम्बल–प्रमेह, प्रदर, रक्तस्राव, अतिसार, वीर्यविकार	१॥)	॥।=)
सप्तपर्ण–(सतौना) यकृत, प्लीहा, जलोदर, उदर रोग, वायु रोग	१॥)	॥।=)

इनके अतिरिक्त बहुतसी चीज़ोंके प्रवाही सत्व तैयार रहते हैं और आर्डर आनेपर बनाकर भी भेजे जाते हैं।

आर्डर देने से पूर्व व्यापारिक नियम पढ़ लेने चाहियें।

प्रवाही सारोंकी मात्रा (Dose)

एकसे तीन वर्ष तकके बच्चेको	१० बूंद	सुबह	और शाम पानी के साथ
तीनसे नौ „ „ „	२० बूंद	„	„
नौसे सोलह „ „ „	३० बूंद	„	„
सोलहसे उपरान्त वालेको	४० बूंद	„	„

नोट—सब तरल सार उक्त परिमाणोंके बन्द पैकिङ्गमें मिलेंगे। शीशी आदिके लिये कुछ न देना पड़ेगा। शीशियोंके कार्क सावधानीसे बन्द रखें।

गुलक़न्द—मुरब्बा

नाम वस्तु	१ मन	१ सेर
मुरब्बा अद्रक	१५)	॥)
मुरब्बा आम	१६)	।≡)
मुरब्बा आँवला बरेली नं० १, २,	१६), १२)	॥), ।=)
मुरब्बा आँवला बनारसी नं० १, २,	३०), २४)	॥।=), ॥=)
मुरब्बा आँवला नं० ३	२०)	॥–)
मुरब्बा आँवला नं० ४	१५)	।≡)
गुलक़न्द नक़ली फूल	१२)	।=)
गुलक़न्द असली फूल	१५)	॥)
मुरब्बा गुलबनफशा	१८)	॥)
मुरब्बा गाजर	१३)	।=)
मुरब्बा निम्बू	३०)	॥।=)
मुरब्बा बिल्व	१६)	॥)
मुरब्बा सन्तरा (नारंगी)	२०)	॥=)
मुरब्बा सेब	१६)	॥)
मुरब्बा हरड़ नं० १	३५)	॥।=)
मुरब्बा हरड़ नं० २	२०)	।=)
मुरब्बा हरड़ नं० ३	१६)	।≡)
मुरब्बा हरड़ नं० ४	१०)	।–)

नोटः—यह माल ग्राहककी ज़िम्मेवारी पर ही भेजा जावेगा और इसके लिए आधा मूल्य पेशगी आना आवश्यक है। ५ सेर मुरब्बा लेने पर मनका भाव लगेगा।

थोक लाइसेन्स विषोपविष

निम्नलिखित विष मँगाते समय लाइसेन्सदार अपने नम्बर और वैद्य, पूरा-पूरा पता डिवीज़नके साथ दें तथा डाक्टर व वैद्य महोदय पत्र में यह शब्द अवश्य लिखें कि "हम व्यवहार के लिये मँगाते हैं," तभी माल भेजा जायगा।

नाम विषोपविष	१ सेर	५ तोले
संखिया खनिज	५)	॥)
संखिया श्वेत	१=)	=)
संखिया श्वेत दूधिया	४)	।–)
संखिया पीला	२)	≡)
संखिया काला	८)	॥=)
संखिया लाल	२॥)	।)
संखिया भूरा	८)	॥=)
संखिया हल्का हरा	८)	॥=)
हरताल वर्की चूरा	५)	।=)
हरताल वर्की छोटे पत्र की	१०)	॥।)
हरताल वर्की बड़े पत्र की	१५)	१=)
मीठा तेलिया (काला) शु० वत्सनाभ	२)	≡)
रसकपूर	१०)	॥।)
रसकपूर पपड़ीका	१६)	१।)
दालचिकना	८)	॥=)
शृंगिकश्वेत अशुद्ध वत्सनाभ	१॥)	≡)
शृंगिक पीला	३)	।)
धतूर बीज श्याम	।–)	)॥
धतूर बीज सफेद	॥।)	–)
कुचला	।–)	)॥

नोट—विषों के भाव बहुत ही कम कर दिये गये हैं।

यूनानी हकीमोंको खुशखबरी

पञ्जाब आयुर्वैदिक फार्मेसी अभी तक केवल आयुर्वैदिक औषधियाँ ही तय्यार करती थी। बहुतसे वैद्य व हकीम जो यूनानी चिकित्सा भी करते हैं उनके कभी २ यूनानी नुसखोंके भी आर्डर आ जाते थे। कुछ दिनोंसे यूनानी दवाईयोंकी माँग भी बढ़ रही है। इसीलिए एक अच्छे यूनानी नुसखे बनानेवाले हकीमको मुलाज़िम रखकर उसकी ज़ेर निगरानी यूनानी दवासाज़ीका काम भी आरम्भ कर दिया गया है। यह तो किसी व्यक्तिसे छिपा नहीं कि हमारे कारखानेमें हर एक यूनानी जड़ी बूटी तय्यार मिलती है। हमने अब नये तरीकेसे यूनानी दवाइयाँ तय्यार करके बहुत सस्ती कीमत पर हकीमों वैद्योंतक पहुँचानेका निश्चय कर लिया है। आशा है वैद्योंकी तरह यूनानी हकीम भी हमारी इस योजनासे काफी लाभ उठावेंगे।

कुछ एक प्रसिद्ध यूनानी नुस्खे

नाम दवाई	गुण	प्रति सेर	प्रति छ०
इतरीफल ज़मानी	कब्ज़ कुशा है, पुराने सिर दर्दमें मुफ़ीद है।	१॥)	≠)
इतरीफल कशनीज़	ज्योतिवर्द्धक है, दिमाग़ को ताक़त देता है।	।॥)	-)
इतरीफल सग़ीर	बुद्धिवर्द्धक है, दिमाग़ को ताक़त देता है।	।॥)	-)
इतरीफल कबीर	दिमाग़को और आमाशयको ताकत देता है।	१॥)	≠)
इतरीफल फौलादी	बवासीर व नेत्र रोगोंमें हितकर है आधे शिरकी पीड़ाको दूर करता है।	५)	।≠)
अयारज फीकरा	दिमाग व मेदाको शुद्ध करता, बलग़मको दूर करता है।	१२)	॥।-)
बरशाशा	ज़ुकाम नज़लामें मुफ़ीद है।	१०)	।॥)
तर्याक़ नज़ला	पुराने ज़ुकामको तथा खाँसीको बन्द करता है।	१।)	≠)
जवारिश जालीनूस	आमाशयको ताक़त देता है तथा पेटकी हवाको ख़ारिज करता है।	३)	।)
जवारिश ज़रऊनीअम्बरी बनुसख़ा कलाँ	प्रमेह मधुमेहको दूर करता, वायु तथा बलग़मकी बीमारियोंमें मुफीद है।	२०)	१॥)
जवारिश कमूनी	आमाशयकी ग्रन्थियोंको ताक़त देता है।	१॥)	≠)
जवारिश मस्तगी बनुसख़ा कलाँ	भूख बढ़ाता है	३)	।)
जौहर मुनक्का	पित्तकी बीमारियों तथा आतशक् गठियामें लाभदायक है।	५) तो०	॥) माशा
जवाहर मोहरा	दिल दिमाग़को ताकत देता है।	२०) तोला	२) माशा
हुब्बे मस्कीन नवाज़	कब्जको दूर करती है। बलग़मी बुखारको दूर करती है।	२) छ०	॥) तो०
हुब्बे इज़राक़ी	स्नायुओंको शक्ति देती है और बलग़मी बीमारियोंको दूर करती है।	१) छ०	।) तो०
हुब्बे निशात	स्वप्नदोषको दूर करती है तथा स्तम्भक है। नशीली चीज़ कोई नहीं है।	॥) दर्जन	

आर्डर देने से पूर्व व्यापारिक नियम पढ़ लेने चाहियें।

नाम दवाई गुण	प्रति सेर	प्रति छ०
हुब्बे जालीनूस—निर्बलताको दूर करती है और शक्तिवर्धक है।	२) छ०	॥) तो०
हुब्बे जदवार—स्वप्नदोष, प्रमेहको दूर करती है और उल्लासप्रद है।	३) छ०	॥।) तो०
हुब्बे सुरफ़ा खास—खाँसी जुकाम नज़लाको मुफीद है	१) छ०	॥) तो०
हुब्बे अम्बर मोमयाई—जवानीकी निर्बलता तथा वीर्य्यक्षीणताको दूर करती है।	॥) प्रति दर्जन	
हुब्बे मर्वारीदी—प्रदर तथा प्रमेहमें मुफीद है	॥≈) ,,	
ख़मीरा गाओज़बान अम्बरी जवाहर वाला—बुद्धिवर्धक है, दिमागी काम करनेवालोंके लिये मुफीद है।	२) छ०	॥) तो०
खमीरा मर्वारीद—मन्थर ज्वर और शीतला मातामें मुफीद है।	१) छ०	।)
खमीरा गाओज़बान सादा—दिलकी धड़कनको रोकता है	१) सेर	-)॥ छ०
ख़मीरा आबरेशम सादा—दिल, दिमाग़ तथा नेत्रोंकी ज्योतिको बल प्रदान करता है।	२) ,,	≈) ,,
दवाई डिप्टी साहिब (दवाई जरियान खास) प्रमेहमें लाभदायक है।	५) छ०	१।) तो०
दवाई कढ़ाईवाली (दवाई सुज़ाक) नए पुराने सुज़ाक तथा कुरहको भरती है	१) ,,	।) ,,
दवाई स्याह मुसहिल—पित्तको व बाई और बल्गम को दस्तके रास्ते निकालती है।	५) ,,	१।) ,,
दवा उलमस्क सादा—बीमारीके बादकी कमज़ोरीको दूर करती है	।) ,,	-) ,,
दवा उलमस्क जौहरवाली—बिमारीके बादकी कमजोरीको दूर करती है	१) छ०	।) ,,
सिरका अंगूरी बाज़ारी—काली, सफेद बोतल।	फी बोतल	।-)
सिरका अंगूरी असली— ,, ,,	प्रति बोतल	॥)
सिरका जामुन असली— ,, ,,	,,	॥)
रोग़न बिलसां—ज़खमको भरता है पेशाबकी जलनको दूर करता है।	१) छ०	।) तो०
रोग़न बादाम तलख़—कानके दर्द तथा बहरेपनको दूर करता है।	॥≈) छ०	≈) तो०
रोग़न लबूब सभय्या—दिमागकी खुशकी दूर करता है, नींद लाता हैं।	८) से०	॥-) छ०
तिला सुर्ख—अप्राकृतिक दोषोंको दूर करता है।	४) छ०	१) तो०
तिला दालचीनी मुशकवाला—नपुंसकताकी प्रत्येक अवस्थामें लाभदायक है।	७) छ०	१॥) तो०
अर्क़ हरा भरा—राजयक्ष्मामें लाभदायक है।	॥) बोतल	
अर्क़ चोपचीनी नुस्खा खास—उत्तम रक्तशोधक है	१) बोतल	
अर्क़ अजीब—आमाशयके रोगोंको दूर करता है।	१।) छ०	।≈) तो०
अर्क़ सूज़ाक—नए तथा पुराने सुज़ाकमें अत्यन्त लाभदायक है।	१॥) नौ खुराक	
कुशता मर्जान जवाहरवाला—नज़ला, जुकाम, खाँसी तथा दिमागी कमज़ोरीमें मुफीद है।		८) तो०
लबूबे कबीर—रक्त और माँसवर्धक है।	१०) सेर	॥।) छ०
लबूबे इसरार—वीर्य्यकी निर्बलताको दूर करके स्तम्भन शक्ति बढ़ाता है।	१०) सेर	॥।) छ०
लऊक बादाम—सिरकी खुश्कीको दर करती है तथा दिमागको ताकत देती है।	३) सेर	।) छ०
माजूने जालीनूस लोलवी—अप्राकृतिक व्यभिचारजन्य नपुंसकताको दूर करता है। क्षुधावर्धक है।	१) छ०	।) तो०
माजूने फलासफा—मूत्रकृच्छ्र तथा कमर दर्दमें मुफ़ीद है	२) सेर	≈) छ०
माजूने नुशाह आज़वाली—वन्ध्यत्वको दूर करता है	१०) ,,	॥।) ,,
माजूने नुकरा—दिलको ताकत देता है।	३) ,,	॥।) ,,

नाम दवाई	गुण	कीमत	
माजूने मोमयाई	शक्तिवर्धक है।	५) छ०	१।) तो०
मर्हम माजू	बवासीरमें मुफ़ीद है।	।।।) ,,	≡) ,,
मुफर्रा हाज़म	उल्लासप्रद है।	१०) सेर	।।।) छ०
मुफर्रा दिलकुशा	मतिभ्रमको दूर करता है।	१।।) छ०	।≈) तो०
मुफर्रा कबीर	दिमागी शिकायतको दूर करता है।	१) ,,	।) ,,
मुफरा याकूती मोतदिल	हृदयकी गतिको ठीक करता है।	२।।) ,,	।।≈) ,,

नोट—उपरोक्त नुस्खोंके अतिरिक्त ग्राहक महानुभाव जो भी और नुस्खा बनवाना चाहें वह तय्यार करवाकर भेजा जा सकता है। ऐसी हालतमें आर्डरके साथ पेशगी आना भी जरूरी है। एक पावसे कम नुस्खा तैयार नहीं हो सकता।

विनीत—**जनरल मैनेजर**

वर्क़ (पत्र) सोना-चाँदी

वर्क़ स्वर्ण	१ दफ़्तरी	१२० पत्र	५ रत्ती	२।।)
वर्क़ स्वर्ण	१ दफ़्तरी	,,	१ माशा	४।।।)
वर्क़ स्वर्ण	१ दफ़्तरी	,,	१। माशा	५।।।≡)
वर्क़ स्वर्ण	१ दफ़्तरी	,,	२। माशा	९।)
वर्क़ स्वर्ण	१ दफ़्तरी	,,	३ माशा	१६)
वर्क़ स्वर्ण	१ दफ़्तरी	,,	६ माशा	२१।।।)
वर्क़ चाँदी	१ दफ़्तरी	,,	३ माशा	।।≈)
वर्क़ चादी	१ दफ़्तरी	,,	।। माशा	।।।)
वर्क़ चाँदी	१ दफ़्तरी	,,	५।। माशा	।।।≈)
वर्क़ चाँदी	१ दफ़्तरी	,,	७ माशा	१≈)
वर्क़ चाँदी	१ दफ़्तरी	,,	९।। माशा	१।।)
वर्क़ चाँदी	१ दफ़्तरी	,,	१ तोला	१।।।)
वर्क़ चाँदी चूरा साफ नं० १			१ तोला	१।।)
वर्क़ सोने का चरा			१ तोला	४४)

परिश्रुत अर्क, रूह तथा शर्बत (Syrups)

(अर्क, रूह, शर्बत ग्राहक की जिम्मेवारी पर भेजे जायँगे)

	५ सेर	१ सेर
दशमूलार्क	३)	।।।)
महामंजिष्ठादि अर्क	४)	१)
महारास्नादि अर्क	३)	।।।)
रूह केवड़ा		२), १।।)
रूह गुलाब		२), १।।)
अर्क गुलाब	२।।), १।)	।।≈), ।–)
अर्क केवड़ा	२।।), १।)	।।≈), ।–)
अर्क बेदमुश्क	५), ३)	१।), ।।।)
अर्क सौंफ	।।।)	≡)
रक्तशोधक अर्क	४)	१)
अर्क कासनी	।।।)	≡)
अर्क मकोय	।।।)	≡)
शर्बत बनफशा	४)	१)
शर्बत ब्राह्मी	३)	।।।)
शर्बत बांसा	२।।)	।।≈)
शर्बत चन्दन (सन्दल)	३)	।।।)
शर्बत लोह (शर्बत फौलाद)	४)	१)
घृतकुमारी स्वरस		।।)

वानस्पतिक रोगन और प्राणिज तेल

(रोगन और तेल ग्राहक की जिम्मेवारी पर भेजे जायँगे)

	१ सेर	२ औंस
तेल अजवायन (विलायती)	४)	।–)
तेल अलसी	।।)	
तेल इलायची (कपूर जापानी)	१।।।)	≈)
तेल इलायची विलायती असली	२०)	१।≈)
रोगन कद्दू, पेठा	२।।।)	≡)

आर्डर देने से पूर्व व्यापारिक नियम पढ़ लेने चाहियें।

औषध-निर्म्माण रस-शाला (भट्टियाँ)

आसवारिष्ट संग्रहालय
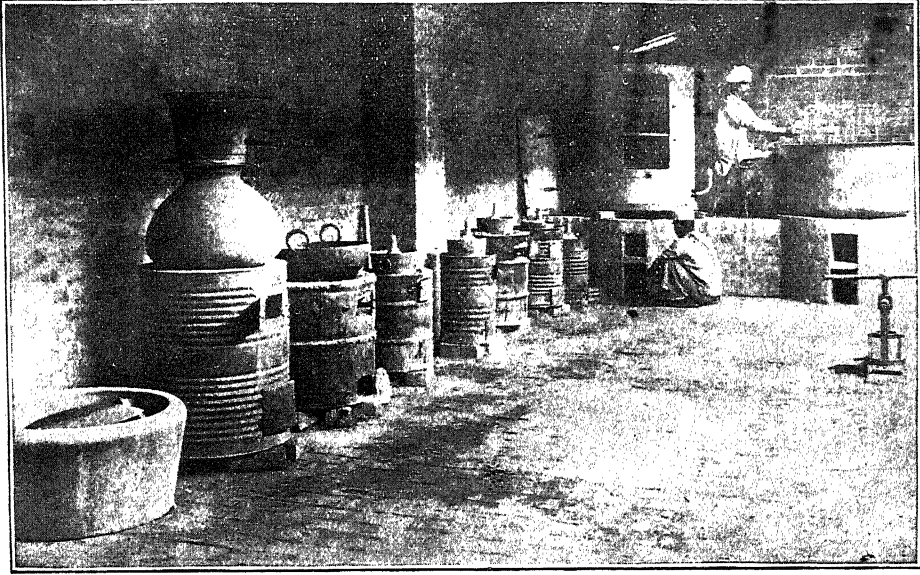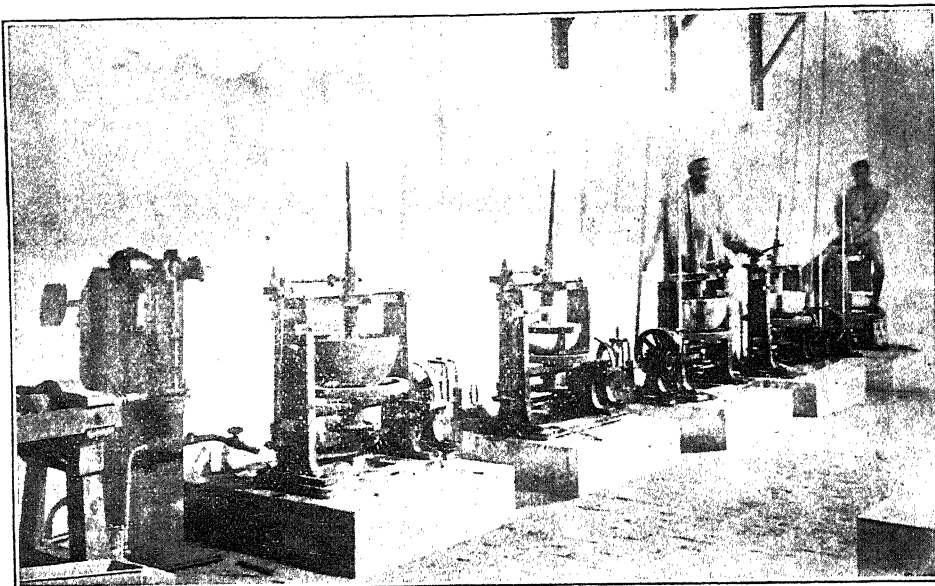
आसव परिश्रावक यन्त्र और रस भावनाप्रद यन्त्र (खरल)

किश्तीनुमा खरल

	१ सेर	२ औंस
तेल कुष्ठ	४)	।=)
कास्ट्रायल (विलायती) ५॥) गैलन	१॥)	=)
कास्ट्रायल (आगरा) ४॥) गैलन	१।)	-)॥
कास्ट्रायल (कलकत्ता) २॥) „	॥।)	-)
खसखस रोगन	१।)	-)॥
रोगन बीरबहूटी		२॥)
गुलरोगन	१)	-)॥
रोगन तरबूज	२)	=)॥
तेल चावल मोगरा (विलायती	६)	।≡)
तेल ज़ैतून (विलायती)	४)	।-)
तेल जमालगोटा असली (विलायती)	१५)	१।)
तेल जायफल (विलायती)	१०)	१॥)
तेल तुबरक	६)	।≡)
तेल तारपीन	१॥)	=)
तेल दालचीनी (विलायती)	५)	।=)
नारियल त्वक् तेल	८)	॥=)
तेल नारियल (गिरी का)	॥=)	
तेल नीम	१)	=)
तेल पिप्परमेण्ट (पोदीना)	१६)	१।)
तेल बन्दाल बीज	२०)	१।=)
तेल बाबूना	१)	-)॥
तेल बावची	१०)	१।=)
तेल साँडे का (चर्बी)		३॥।)
रोगन बादाम मीठा	६॥)	।≡)
तेल भिलावा	१०)	॥।)
तेल महुआ	॥=)	
तेल मालकंगनी	५॥)	।=)
तेल (आइल) यूक्लिप्टस	३॥)	।)
तेल लौंग	१२)	१)
वाताद् त्वक् तेल	८)	॥=)
तेल बिरोजा (विलायती)	४॥)	।-)
तेल सौंफ	७)	॥)
तेल सन्दल (चन्दन) असली	३०)	२।)
तेल शीतलचीनी (सर्दचीनी)	३६)	२॥)
तेल धतूरा	४) छटाँक	१) तोला

प्राणिज व खनिज द्रव्य

	१ मन	१ सेर	१ तोले
अम्बर असहब नं० १ (अग्निजार)			१८)
अम्बर असहब नं० २ „			१५)
अभ्रक वज्र बड़े कणका श्याम	४०)	१।)	
अभ्रक वज्र बड़े कणका श्याम (चूर्ण)	२०)	॥=)	
अभ्रक वज्र छोटे कणका श्याम	३०)	॥।=)	
अभ्रक वज्र छोटे कणका भूरा	२०)	॥=)	
अभ्रक काला उत्तम पत्र	२०)	॥=)	
अभ्रक उत्तम श्वेत	११)	।=)	
अकीक पत्थर नं०१			॥)
अकीक पत्थर नं० २		२५)	।=)
अकीक पत्थर नं० ३		१५)	।)
अकीक पत्थर नं० ४		८)	=)
अकीक खरड		१॥)	
कसीस लाल		१-)	
कसीस हरा	६)	=)॥	
कस्तूरी (खुतन) दानेदार			२६)
कस्तूरी नैपाली उत्तम			१८)
कस्तूरी काश्मीरी			१५)
कछुआ खोपड़ी		॥)	
कांत लोह नं० १ (अमेरिका)			॥)

	१ मन	१ सेर	१ तोला
कान्त लोह नं० २ (ग्वालियर)		२)	
कांस्य बुरादा		१॥)	
केंचुवे धुले हुए साफ		४)	-)
केंचुए बिना धुले		२)	
कौड़ी पीली छोटी	३७)	१)	
कौड़ी पीली मोटी		३)	
खपर असली		१६)	।)
गंधक डंडा	९)	।)	
गन्धक आंवलासार ९८॥।= गुत्थी	५)		
गन्धक आंवलासार (खुला)		॥।)	
गिले अरमनी		।=)	
गिले मखतूम		॥=)	
गोरोचन नक़ली			१)
गोरोचन असली नं० १			१२)
गोमेद			६)
गेरू साधारण	२॥)	-)॥	
ज़हरमोहरा नं० १	२८)	॥।)	
ज़हरमोहरा नं० २	१०)	।=)	
ज़हरमोहरा खताई नं० १			१)
ज़हरमोहरा खताई नं० २		२५)	।=)
जङ्गार		२॥)	
जस्त फूला हुआ आँखमें डालनेका		॥।)	
जस्त मीठा पटड़ीका		॥)	
झुंद बिदस्तर			२॥)
जोंक		५)	-)॥
झा चूहा (जङ्गली कांटेवाला चूहा)			॥)
ताम्र बुरादा		१।)	
नख		९)	=)
नाग (सिक्का)		।≡)	
निमक काला (सौंचर)	७)	≡)	
निमक बिड़ (कॉंच)	७)	।)	
निमक बिड़ असली		॥)	
निमक गूमा (पांगा)	५)	=)॥	
निमक समुद्र (साँभर)	६)	≡)	
निमक खारी (नालीदार)	५॥)	=)॥	

	१ मन	१ सेर	१ तोले
निमक सैन्धव	३)	-)॥	
नीलाथोथा	१०)	॥=)	
नीलम			१२)
नीलम खरड़			१)
नौसादर देशी		॥।)	
नौसादर डंडा (विलायती)		॥=)	
नौसादर टिकिया	१८)	॥)	
पन्ना			४)
पन्ना खरड़			१)
प्रवाल शाखा		२)	
प्रवाल मूल	१६)	।≡)	
पत्थर का दिल (कल्बुल हिज़र)			२)
पारद		८॥)	=)
पाह गुजराती		१)	
पीतल चूर्ण बुरादा		॥।)	
पुखराज			३)
फादज़हरहैवानी			।॥)
फिटकरी लाल	६)	≡)	
फिटकरी श्वेत	६)	≡)	
फिरंग दाना			२)
फिरोजा			२)
बंग (ईंटकी)		३॥।)	-)
बराह (सूअर) का पित्ता			१)
बराह (सूअर) की चर्बी		५)	-)॥
बकरेका पित्ता सूखा			१)
बिच्छू (सूखे)			।) नग
बीरबहूटी		४)	-)॥
बन्दरकी इन्द्री			४)
बारासिंगा (मृगशृङ्ग)	१५)	।≡)	
बेर पत्थर		१=)	
बेर पत्थर चूरा		॥=)	
मुर्दासंग	१६)	।≡)	
मण्डूर पुराना	७)	।)	
मैनसिल नं० १		१॥।=)	
मनसिल नं० १ चूर्ण		१)	

दाम बाज़ार भाव अनुसार घट बढ़ सकते हैं।

	१ मन	१ सेर	१ तोला
मैनसिल नं० ३		१।=)	
माणिक्य "चूनी" नं० १			४)
माणिक्य "चूनी" नं० २			३॥)
माणिक्य "चूनी" नं० ३			१॥)
माणिक्य खरड़			।=)
मत्स्यपित्त शुष्क			४)
माएशुतर आबी असली			।॥)
मोती बसरई नं० १			२४)
मोती बसरई नं० २			२०)
मोती आस्ट्रेलिया नं० १			२०)
मोती आस्ट्रेलिया नं० २			१६)
मोती बेडौल बड़ा दाना			४)
मोती चावला छोटा दाना			१२)
मोती बिंधा हुआ			१०)
मोमदेशी साफ		१॥)	
मोरका पञ्जा १ पैरका पूरा			२) नग
मधुश्वेत (शहद)	२५)	।॥)	
मधुलाल (शहद)	२०)	॥=)	
राजावर्त्त नं० १			।=)
राजावर्त्त नं० २		१८)	।)
रीछ (भालू) की इन्द्री			३)
रीछ (भालू) का पित्ता			२)
रीछकी चर्बी		३)	-)
रूपामक्खी चतुष्कोण		१।)	
रूपामक्खी (गोलदाना)	२०)	॥=)	
रेगमाही		५॥)	-)॥
लोहचूर्ण मुंड	१०)	।-)	
लोहचूर्ण रेतीका		१)	
लाख पीपल	२५)	॥≡)	
लाख बेरी	२५)	॥≡)	
वैक्रान्त श्वेत नं० १		३)	
वैक्रान्त श्वेत नं० २		१)	
वैक्रान्त लाल		८)	=)
शिलाजीत पत्थर	१६)	।≡)	
शिलाजीत सत्त (सूर्यतापी) अल्मोड़ा		१६)	१।) छ०

	१ मन	१ सेर	१ तोला
शिलाजीत सूर्य्यतापी		१२)	१) छ०
शिलाजीत अग्नितापी		८)	=) तोला
शंखनाभि	१५)	।≡)	
शंख टुकड़े	१२)	।=)	
शंख कीट			॥)
शोरा कल्मी	८)	।)	
शेरकी इन्द्री			४)
शेरकी चर्बी		१६)	।)
शेरके नख छोटे १) प्रतिजोड़ा, बड़े २) प्रतिजोड़ा			
संग जहारत	२॥)	-)॥	
संग सरमाही		१०)	=)॥
संगयशब नं० १—२		३), २)	
संगदानामुर्ग		८)	=)
संग्रासक		२)	
संसार (नक्र, मगरमच्छ) का पित्ता			४)
सज्जी लोटा	५)	=)	
सज्जी काली	४)	=)	
सफेदा काशगरी	१०)	।-)	
समुद्रफेन		॥)	
सरतान		२)	
सिन्दूर		।॥)	
सिंगरफ रूमी (डली)		८॥)	=)
सीप मोती असली		३)	
सीप मोती बाज़ारी	५५)	१॥=)	
सुरमा श्वेत	३)	=)	
सुरमा काला	१८)	।॥)	
सुरमा अस्फहानी (घृष्टतुगैरिकाच्छाये)		५)	-)॥
सुहागा	१६)	।≡)	
सेलखड़ी	२॥)	-)॥	
सोनामक्खी असली चमकदार (अमेरिका) पत्थर रहित		८)	=)
सोनामक्खी नं० २ बाजारी		।॥)	
सोनागेरू	८)	।)	
हरताल गोदन्ती	८)	।)	
हरताल पीली		१)	
हाथी दाँतका बुरादा		२)	

आयुर्वैदिक तथा यूनानी वनस्पतियाँ

	१ मन	१ सेर	१ छटाँक
अकरकरा (असली)		२)	≡)
अकाकिया		३॥)	।)
अखरोट छाल		।≡)	
अखरोट फल नं० १–२	१५), ८)	।≡), ।)	
अखरोट गिरी		॥=)	
अगर भूरा (टुकड़े)	१७)	॥)	
अगर बुरादा	२२)	॥=)	
अजमोद	८)	।)	
अजवायन देशी	८)	।)	
अजवायन खुरासानी		॥=)	
अजवायन दाना	८)	।)	
अंकोल बीज	१८)	॥)	
अंकोल छाल	१४)	।=)	
अंजबार	७)	≡)	
अंजरूत (गोश्त खोरा)		१।=)	=)
अंजीर		।=)	
अतीस (श्वेत) कड़ु		८)	॥=)
अतीस काली		६)	॥)
अतीस मीठी		१॥)	=)
अतीस आग		३)	।)
अतिबला पंचाङ्ग (कंघी)	१०)	।-)	
अतिबला बीज (कंघी बीज)	३०)	॥।=)	
अघोपुष्पी	१२)	।=)	
अनन्तमूल (बंगाल)	२०)	॥≡)	
अनन्तमूल (देशी)	१०)	।-)	
अनारदाना	१२)	।-)	
अनीसून	११)	।-)	
अपराजिता (विष्णुक्रान्ता)		२)	=)॥
अपामार्ग पंचाङ्ग	१०)	।-)	
अपामार्ग बीज		१)	-)।
अफ़तीमून (विलायती)		१।)	-)॥
अफसनतीन	१०)	।-)	
अम्लवेद गुच्छी (चूका)	२२)	॥=)	-)

	१ मन	१ सेर	५ तोले
अमलतास गूदा	६)	≡)	
अमलतास फली	४)	=)	
अमर बेल	१०)	।-)	
अस्थिसंघारी		२)	≡)
अर्क मूल		।-)	
अर्क पुष्प	१५)	॥)	
अर्क दुग्ध		२)	≡)
अर्जुन त्वक्	९)	।)	
अरणी मूल	७॥)	।)	
अरणी छाल	१२)	।=)	
अलसी		≡)	
अशोक त्वक् (बंगाल)	१५)	।≡)	
असगंध नागौरी	१८)	॥)	
आँवले सूखे	५)	=)॥	
आम की गुठली	८)	।)	
आम्बा हल्दी	१२)	।=)	
आबनूस बुरादा		१)	-)॥
आबरेशम नं० १–२		२।।।), २)	≡), =)॥
आलू बुखारा	१६)	।≡)	
इंगुदी		॥)	
इन्द्रयव मीठे		।।।)	
इन्द्रयव कड़वे		॥)	
इन्द्रायणमूल	१५)	।≡)	
इन्द्रायणफल	१२)	।=)	
इमली फल	४॥)	=)	
इमली छाल		॥)	
इलायची छोटी नं० १		५)	।≡
इलायची „ „ २		४)	।-
इलायची बड़ी (डोडा)		१)	-)।
इलायची दाना		१।।।)	=
इश्कपेचा (कालादाना)	८)	।)	
इरिमेद छाल	१०)	।-)	
ईसबगोल	१२॥)	।=)	
ईसबगोल भूसी नं० १–२		१॥=), १।)	
ईश्वरमूल		३)	।)

दाम बाज़ार भाव अनुसार घट बढ़ सकते हैं ।

	१ मन	१ सेर	५ तोले
उटंगनबीज		१)	-)॥
उन्नाव		१)	-)॥
उशबामगरबी असली		३)	।)
उशाक (गोन्द)		१)	-)॥
उलट कम्बल		५)	।=)
उस्तेखद्दूस		१)	-)॥
ऊद बिलसाँ		१।)	=)
ऊद सलीब			१॥)
ऊँट कटेरा	१०)	।-)	
एरण्ड मूल	१०)	।-)	
एरण्ड बीज	१०)	।-)	
एलबालुक फल		१)	-)।
एलुवा (मुसब्बर) पीला असली		१॥)	=)
ऋषभक (बहमन श्वेत)	१५)	॥)	
ऋषभक बाजारी		५)	।=)
ऋद्धि (चिड़ियाकन्द)	२८)	।॥)	-)
ककौटी कन्द		।॥)	
कचूर	१०)	।-)	
कंकोलदाना	१७)	॥)	
कंटकारी फल बृहत्	२०)	॥-)	
कंटकारी फल लघु	१५)	।≡)	
कंटकारी लघु पंचाङ्ग	७)	≡)	
कंटकारी बृहद् पंचाङ्ग	७॥)	।)	
कंकुष्ठ (उशारारेवन्द)		३।॥)	।-)
कत्था		१॥)	=)
कदम्बत्वक्	१५)	।≡)	
कदली कन्द		॥)	
कपित्थ फल	१२॥)	।=)	
कपूर देशी		४॥)	।-)
कपूर भीमसेनी असली			५)
कपूर भीमसेनी बाज़ारी		४) पौंड	॥=)
कपूर कचरी	९)	।) सेर	
कम्पिल (छना)		१।॥)	=)
कमरकस (पलाश गोन्द)	२५)	।॥)	
कमलगट्टे	१३)	।=)	

	१ मन	१ सेर	५ तोले
कमल फूल		१)	-)।
कमल केसर		४)	।-)
कमल मूल शुष्क		२)	≡)
कचनार छाल	७॥)	।)	
कचनार फूल		१)	-)
करंज बीज	१५)	।≡)	
करंज पंचांग	१५)	।≡)	
करफस	२७)	।॥)	
कनेर मूल (श्वेत)		।॥)	-)
कलौंजी	१२)	।=)	
कसौंदी बीज		।॥)	
कलिहारी (लांगली) मूल		४)	।-)
कश्मीरी पत्ता	८)	।)	
कहरवाशमई		४।॥)	।-)
कंचनफल		५)	।=)
काकजङ्घा पंचांग	१०)	।-)	
काकनासा पंचांग	१०)	।-)	
काकनासा फल (काकनज)		१)	=)
काकोली (श्याममूसली)	१८)	॥)	
काकोली (बंगाल)		८)	॥=)
काकड़ासिंगी		।॥=)	
कामराज		५)	।=)
कायफल	८)	।)	
कालीज़ीरी	१२)	।=)	
कालमेघ		१॥)	=)
कासनी (बीज)	१०)	।-)	
काहीमूल (कास)	१६)	॥)	
काहू	१८)	॥)	
किसमिस हरी मोटी	१६)	।≡)	
कुटकी (कौड़)	२०)	॥-)	
कुठ मीठी	१३)	।=)	
कुठ उत्तम नं० १		३)	।-)
कुठ उत्तम नं० २		२)	≡)
कुठ चर्ण मोटा अच्छा		१)	=)
कुटज (कूड़ा) छाल	८)	।)	

<table>
<tr><th></th><th>१ मन</th><th>१ सेर</th><th>५ तोले</th></tr>
<tr><td>कुकुन्ध्रक (कुकुरौंधा)</td><td>१०)</td><td>|-)</td><td></td></tr>
<tr><td>कुलंजन (पानकी जड़)</td><td>१२)</td><td>|≡)</td><td></td></tr>
<tr><td>कुशामूल</td><td>१६)</td><td>||)</td><td></td></tr>
<tr><td>कुसुम्म बीज</td><td>९)</td><td>|)</td><td></td></tr>
<tr><td>कुल्फा (खुरफा)</td><td></td><td>||≡)</td><td></td></tr>
<tr><td>कुलथी</td><td>९)</td><td>|)</td><td></td></tr>
<tr><td>केसर मोंगरा काश्मीरी असली</td><td></td><td>२||) तोला</td><td></td></tr>
<tr><td>केसर लच्छा (गुच्छी)</td><td></td><td>१||) तोला</td><td></td></tr>
<tr><td>केसर हिन्द देवी छाप</td><td></td><td>२||) तोला</td><td></td></tr>
<tr><td>कौंच जड़</td><td></td><td>१) सेर</td><td>=)</td></tr>
<tr><td>कौंच बीज</td><td>११)</td><td>|-)</td><td></td></tr>
<tr><td>खशखाश (पोस्तदाना)</td><td>१४)</td><td>|=)</td><td></td></tr>
<tr><td>खत्मी</td><td></td><td>||)</td><td></td></tr>
<tr><td>खव्वाजी</td><td></td><td>|-)</td><td></td></tr>
<tr><td>खस (बम्बई)</td><td>१३)</td><td>|=)</td><td></td></tr>
<tr><td>खदिर छाल</td><td>१०)</td><td>|-)</td><td></td></tr>
<tr><td>खूबकलां (पीली)</td><td>७||)</td><td>≡)||</td><td></td></tr>
<tr><td>खूबकलां (लाल)</td><td>१३)</td><td>|=)</td><td></td></tr>
<tr><td>गगन धूल</td><td></td><td></td><td>१|)</td></tr>
<tr><td>गंगेरन छाल</td><td>३५)</td><td>१)</td><td></td></tr>
<tr><td>गजपीपल (ताड़फूल)</td><td>१३)</td><td>|=)</td><td></td></tr>
<tr><td>गन्ध प्रसारणी</td><td>१२)</td><td>|=)</td><td></td></tr>
<tr><td>गन्धाबिरोज़ा गीला</td><td>१०)</td><td>|-)</td><td></td></tr>
<tr><td>गम्भारीत्वक्</td><td>७||)</td><td>|)</td><td></td></tr>
<tr><td>गलगण्डविनाशी पत्र</td><td></td><td>३)</td><td>|)</td></tr>
<tr><td>गावज़बाँ</td><td>१८)</td><td>||)</td><td></td></tr>
<tr><td>गारीकून</td><td></td><td></td><td>१||)</td></tr>
<tr><td>गिलोय सूखी</td><td>६)</td><td>≡)</td><td></td></tr>
<tr><td>गुंजा लाल</td><td>९)</td><td>|)</td><td></td></tr>
<tr><td>गुंजा श्वेत</td><td></td><td>१)</td><td>=)</td></tr>
<tr><td>गुंजा मूल</td><td></td><td>४)</td><td>|-)</td></tr>
<tr><td>गुग्गुल महिषाक्ष</td><td>३५)</td><td>१)</td><td></td></tr>
<tr><td>गुड़मार बूटी</td><td>२०)</td><td>||-)</td><td></td></tr>
<tr><td>गुड़हल फूल</td><td></td><td>१||)</td><td>=)</td></tr>
<tr><td>गुलाब केसर (जरूरद)</td><td></td><td>२)</td><td>≡)</td></tr>
</table>

<table>
<tr><th></th><th>१ मन</th><th>१ सेर</th></tr>
<tr><td>गुल खैरा</td><td></td><td>|-)</td></tr>
<tr><td>गुल गाफिस</td><td></td><td>१|)</td></tr>
<tr><td>गुलगावज़बाँ (असली)</td><td></td><td>१||)</td></tr>
<tr><td>गुलनार</td><td></td><td>१|)</td></tr>
<tr><td>गुल पिस्ता</td><td></td><td>१|)</td></tr>
<tr><td>गुल बाबूना</td><td></td><td>||=)</td></tr>
<tr><td>गुलबनफशा नं० १-२</td><td></td><td>३), २||)</td></tr>
<tr><td>गुल सुर्ख पेशावरी</td><td>१८)</td><td>||)</td></tr>
<tr><td>गुल सुर्ख देशी (पंखड़ी)</td><td>३५)</td><td>१)</td></tr>
<tr><td>गुल सुपारी (मोचरस नकली)</td><td>२२)</td><td>||=)</td></tr>
<tr><td>गुलसेवती</td><td></td><td>१||)</td></tr>
<tr><td>गूलर (उदुम्बर) छाल</td><td></td><td>|=)</td></tr>
<tr><td>गूलर फल</td><td></td><td>|=)</td></tr>
<tr><td>गोंद कतीरा</td><td></td><td>१||)</td></tr>
<tr><td>गोंद छुहारा</td><td></td><td>३)</td></tr>
<tr><td>गोंद कुन्दरू</td><td></td><td>|||)</td></tr>
<tr><td>गोंद भीमरी</td><td></td><td>१|)</td></tr>
<tr><td>गोंद बबूल</td><td></td><td>||≡)</td></tr>
<tr><td>गोरखमुण्डी</td><td>७)</td><td>≡)</td></tr>
<tr><td>गोरख पान</td><td>१५)</td><td>||)</td></tr>
<tr><td>गोखरू पंचांग</td><td>६)</td><td>≡)</td></tr>
<tr><td>गोखरू फल लघु</td><td>९)</td><td>|)</td></tr>
<tr><td>गोखरू फल वृहद्</td><td>२८)</td><td>|||)</td></tr>
<tr><td>गौरीसर (सलारा)</td><td>१२)</td><td>|=)</td></tr>
<tr><td>गन्नाजड़ (इक्षुमूल)</td><td>१५)</td><td>||)</td></tr>
<tr><td>चन्द्रसूर (हालों)</td><td>१०)</td><td>|-)</td></tr>
<tr><td>चक्रमर्द बीज (पनवाड़ बीज)</td><td>६)</td><td>≡)</td></tr>
<tr><td>चन्दनकाष्ठ श्वेत</td><td></td><td>१||)</td></tr>
<tr><td>चन्दन बूरा श्वेत</td><td></td><td>१|||)</td></tr>
<tr><td>चन्दनकाष्ठ लाल</td><td></td><td>||)</td></tr>
<tr><td>चन्दन बूरालाल</td><td></td><td>||=)</td></tr>
<tr><td>चव्य (कृष्ण मिर्चमूल)</td><td></td><td>९)</td></tr>
<tr><td>चव्य (पिप्पलीमूल)</td><td>१२)</td><td>|≡)</td></tr>
<tr><td>चाकसू</td><td></td><td>|||)</td></tr>
<tr><td>चावल मोगरा बीज</td><td></td><td>१|)</td></tr>
</table>

दाम बाज़ार भाव अनुसार घट बढ़ सकते हैं ।

	१ मन	१ सेर	५ तोले
चित्रकमूल	९)	।)	
चित्रकमूलत्वक्	३०)	।॥=)	-)
चित्रक पंचांग	७)	≡)	
चिरायता मीठा	१५)	।≡)	
चिरायता कडुआ		॥)	
चिलगोज़ा	२८)	।॥-)	
चिरौंजी		१।॥)	=)
चोकमूल पंजाब	१०)	।-)	
चोक (सत्यानाशीमूल)	१२)	।=)	
चोपचीनी		१॥)	
चोरक (ग्रन्थिपर्णी-भटेउर)		२)	=)॥
चोंगेरी	१६)	॥)	
छरीला (शिलापुष्प)	८)	।)	
छुहारा		।)	
जलनिम्ब	१६)	॥)	
जलपिप्पली	१६)	॥)	
जलापा		१॥)	=)
जवांसापंचांग	८)	।)	
जराबन्दमदहरंज्		॥)	
जरिश्क मीठा		॥=)	
जरिश्क खट्टा		॥)	
जामुन गुठली	९)	।)	
जामुन छाल	९)	।)	
जायफल		१।॥=)	=)
जाविञ्री		४।)	।-)
जियापोता	१६)	॥)	
जीरा श्वेत		॥)	
जीरा काला असली नं० १		२॥)	≡)
जीवक (सालब मिश्री)		६)	।≡)
जीवन्ती (बंगाल)		।॥-)	-)
जूफा			≡)
जैपालबीज (जमालगोटा)	२०)	॥-)	
जूब्म हयात	१०)	।-)	
तज	१४)	।=)	
तगर (सुगन्धबालामूल)	१२)	।=)	

	१ मन	१ सेर	५ तोले
तालमखाना		।॥)	
तालीसपत्र बाज़ारी	८)	।)	
तालीसपत्र असली	१८)	॥)	
तिन्तड़ीक (समाक्दाना)	१२)	।=)	
तुगाक्षीर		१)	
तुख्म कसूस	१८)	॥)	
तुख्म कद्दू	१४)	।=)	
तुख्म कलौंचा	१८)	॥)	
तुख्म खीरा	२२)	॥=)	
तुख्म खिरनी		२॥)	≡)
तुख्म गंदनाँ	१६)	।≡)	
तुख्म गाजर		॥)	
तुख्म तरबूज	८)	।)	
तुख्म बालंगाँ	२०)	॥-)	
तुख्म मूली		।=)	
तुख्म रेहाँ	१४)	।=)	
तुख्म शलग़म		॥)	
तुरंजबीन असली		१।॥)	=)
तेजपत्र		।)	
तेजबलबीज (कबाबा)	१४)	।=)	
तेजबलत्वक्	१६)	॥)	
तोदरी लाल	१८)	॥-)	
तोदरी श्वेत	३२)	।॥=)	
तोदरी पीली	३५)	।॥≡)	
दंतीमूल	१४)	।=)	
दरुनज अकरबी		१।॥)	=)
दरियाई नारियल		१॥=)	=)
दशमूल चूर्ण (क्वाथ)	१०)	।-)	
दशमूल बिना कुटा	७)	।)	
दालचीनी		।॥=)	
दारुहल्दी (लकड़ी)	७)	।)	
दारुहल्दी बुरादा		।॥)	
दुग्धी (हज़ार दानी) लघु	१५)	॥)	
दुग्धी (हज़ार दानी) बृहत्	१५)	॥)	
देवदारु	८)	।)	

	१ मन	१ सेर	५ तोले
देवदालीफल (बन्दाल डोडा)		१॥)	=)
द्रोण पुष्पी	१०)	।-)	
दमडलखबीन असली		७)	॥)
धतूर पंचांग	१२)	।=)	
धनियाँ	१०)	-।)	
धमासा	१०)	।-)	
धवल बरुआ (चान्दबरुआ, छोटा चान्द)		३)	।)
धातकी (धावेके) फूल	८)	।)	
धानमूल	१६)	॥)	
धूप सामग्री (हवनकी)		।॥)	
धूपबत्ती		।॥)	
धूपजड़ी (लकड़ी)	१०)	।-)	
नकछिकनी	१२)	।=)	
नगन्द बावरी		।॥)	
नड़ामूल		॥)	
नागरमोथा	८)	।)	
नागकेशर असली नं० १-२		८), ५)	॥=), ।=)
नागकेसर (बाज़ारी) दाना	२२)	॥=)	
नागबला	१२)	।=)	
नागबला बीज		॥)	
नासपाल	५)	=)॥	
निम्बत्वक्	१२)	।=)	
निम्बोली	९)	।)	
निम्बफूल		॥)	
निर्गुण्डी (सम्भालू) पंचांग	६)	≡)	
निर्गुण्डी बीज	१२)	।=)	
निर्मली बीज	१८)	॥)	
निर्विसी (ज़दवार)		४)	।-)
निसोत (त्रिवृत्ता) नं० १-२		२॥), २)	≡), =)॥
नीलकण्ठी		१)	
नीलोफ़र फूल (पत्ती)	२२)	॥=)	
नेत्रबाला		।)	
पटोलपत्र	१२)	।=)	
पतंग चूर्ण		।॥)	
पद्मकाष्ठ	५)	≡)	

	१ मन	१ सेर
पपीता		२)
परबयोशाँ (हन्सराज)	१०)	।-)
पलाश पुष्प	४)	=)
पलाश पापड़ा (खगे)	७)	≡)
प्रसारणी	१२)	।=)
पाटलात्वक्	७॥)	।)
पाटला फली	१२)	।=)
पाठा पंचांग	१२)	।=)
पाठामूल (पहाड़ मूल)		।॥)
पानड़ी	२८)	।॥)
पाषाण भेद	८)	।)
प्याज जंगली		।)
पिण्डली (बच्चोंके न्यूमोनिया वास्ते)		१) तोला
पिप्पली लघु		३) सेर
पिप्पली बृहद्	२८)	।॥)
पिप्पली मूल नं० १-२		२॥), १॥)
पित्तपापड़ा (शाहतरा)	४)	=)
पीपल जटा		२)
पिया रांगा		२।)
पिया बाँसा	१६)	॥)
प्रियंगू फल (गोंदनी)	१८)	॥)
प्रियंगू फल (बंगाल)		५)
प्रियंगू (पञ्जाब) असली		२)
पिस्ता नं० १-२		२॥), २)
पुनर्णवा श्वेत मूल	३०)	।॥=)
पुनर्णवा रक्तमूल	१८)	॥-)
पुदीना सूखा देशी	७)	।)
पुदीना जंगली	५)	≡)
पंचतृण मूल		॥)
पुष्कर मूल		४)
पृश्निपर्णी लम्बे पत्र	३०)	।॥=)
पृश्निपर्णी बड़े पत्र	९)	।)
फरफीऊन विलायती		१॥)
फालसा छाल	१०)	।-)
फिन्दक	९॥)	।-)

दाम बाज़ार भाव अनुसार घट बढ़ सकते हैं ।

	१ मन	१ सेर	५ तोले
वन तम्बाकू	१२)	।=)	
वट जटा	१२)	।=)	
बकायन फल	७॥)	।)	
वर्ग सदाब		।-)	
वच तीक्ष्ण	७)	≡)	
वच मधुर		२)	=)॥
वन तुलसी	१०)	।-)	
बला पंचांग	१०)	।-)	
बबूल त्वक्	८)	।)	
बबूल फली	७॥)	।)	
बबूल फूल		॥)	
बहमन सफेद	१८)	॥)	
बहमन लाल		१॥)	
बहुगुणी	१५)	॥)	
बहुफली	१४)	।=)	
बहेड़ा फल	३)	=)	
बहेड़ा छाल (वक्कल)	७)	≡)	
बालछड़ (जटामाँसी)	३०)	।।।=)	
बाराहीकंद	१०)	।-)	
बादरंजबूया	१८)	॥)	
बादावरद	२०)	॥-)	
बादयान खताई		१।)	
बारतंग	१७)	॥)	
बादाम कागज़ी नं० १-२	१।=),	१-)	
बादाम पेशावरी		।।।-)	
बादाम काठा		॥=)	
बाकला	१२)	।=)	
बावची	९)	।)	
बाँसा मूल	११)	।=)	
बाँसा मूलत्वक्	२०)	॥-)	
बाँसा पुष्प		॥)	
बाँसा पत्र (पंचांग)	३॥)	=)	
बिजया (भाँग) बीज	२३)	॥=)	
बिहीदाना न० १		२)	≡)
बिस्फायज	२५)	।।।)	

	१ मन	१ सेर	५ तोले
बिदारी कन्द	१०)	।-)	
बिधारा मूल	११)	।-)	
बिधारा बीज		२)	≡)
बीजाबोल (मुरमकी)		३)	।)
बिडंगगिरी असली		॥)	
बिल्वत्वक्	७॥)	।)	
बिल्व फल	६)	≡)	
बिच्छू बूटी	७॥)	।)	
बिजयसार छाल	२१)	॥=)	
बीजबन्द काले	१८)	॥)	
बीजबन्द लाल	१०)	।-)	
ब्रह्मी	१५)	।≡)	
ब्रह्मदण्डी	७॥)	।)	
वरुणत्वक्	१०)	।=)	
वंशलोचन (तबाशीर) नं० १-२-३	९),७),५),।।=),।।),।=)		
बूरा अरमनी		१।।।)	=)
बेख कासनी	९)	।-)	
बेख बादयान	७)	≡)॥	
बेख भिण्डी		।)	
बेख बाबूना	१२)	।=)	
बेख सोसन		१)	
भल्लातक (भिलावा)	५)	≡)	
भारंगी	१३)	।=)	
भांगरा पंचांग	७॥)	।)	
भू आँवला	८)	।-)	
भूतकेशी	१२)	।=)	
भोजपत्र	१०)	।-)	
मछेछी (मत्स्याक्षी)	७॥)	।)	
बिरोजा सूखा	१२)	।=)	
मकोयदाना	२२)	॥=)	
मकोयपंचांग	९)	।-)	
मखाना		१=)	-)॥
मग़ज कद्दू		।।।=)	-)
मग़ज खरबूजा		।।।=)	-)
मग़ज खीरा		१)	-)॥

	१ मन	१ सेर	५ तोले
मग़ज तरबूज		॥≡)	
मग़ज बादाम		१॥।=)	=)
मस्तगी रूमी असली		४)	।–)
मरोड़ फली	७)	।)	
मदन फल		≡)	
मयूर शिखा	१।।।)		=)
ममीरी मूल		७)	॥)
मंजीठ	२१)	॥=)	
महाबला (सहदेवी)	१२॥)	।=)	
महुआ फूल	१०)	।–)	
महुआ छाल	१०)	।–)	
माजूफल		१।)	=)
मालकंगनी	१०)	।–)	
माषपर्णी	१२॥)	।=)	
मांई	८)	।)	
मिर्च श्वेत		१।)	–)॥
मिर्च काली	१९)	॥)	
मुचुकुन्द पुष्प	२०)	॥=)	
मुनक्का काला (असली)	१५)	।≡)	
मुनक्का लाल	१४)	।=)	
मुद्गपर्णी	१६)	।≡)	
मुलहठी	१२)	।–)	
मुलहठी चूर्ण		॥)	
मक्कतरामसी	२१)	॥=)	
मूसली श्वेत नं० १–२		४), ३)	।–) ।)
मूसली श्वेत पुरानी		॥)	
मूसली श्याम	१८)	।।–)	
मूर्वा	२०)	॥=)	
मेढ़ासिंगी	१६)	॥)	
मेथीबीज	५)	≡)	
मेथी पत्ते		॥=)	
मेदा (शाकाकल छोटी)		॥=)	
महामेदा (शाकाकल बड़ी)		१)	
मेंहदीपत्र	१०)	।–)	
मेंहदी पिसी हुई	१३)	।=)	

	१ मन	१ सेर	५ तोला
मैदा लकड़ी छाल	५)	≡)॥	
मोचरस असली (गोन्द सिम्बल)	२२)	॥=)	
मोचरस बाज़ारी (गोन्द सुहांजना)	१८)	॥)	
मौलश्रीत्वक्	२०)	॥=)	
मौलश्री फूल		१)	–)॥
मौलश्री फल		॥)	
यवत्तिक्ता (हिरनखुरी)		॥)	
रतनजोत	७)	।)	
रसांजन (रसौत)		।॥=)	
रामपत्री (नकली जावित्री)		।॥=)	
रास्ना पत्र असली	१०)	।–)	
रास्ना मूल बंगाली	१५)	।≡)	
राल	२०)	॥–)	
राई	१२)	।–)	
रीठा	४)	=)	
रेणुका बीज गोल		२)	=)॥
रेवन्द चीनी	१२)	।=)	
रेवन्द खताई नं० १–२	८॥), ४॥)	॥=), ।=)	
रेशा खत्मी	१८)	॥)	
रोहिशतृण मूल	१५)	॥)	
रुद्रवन्ती		२)	=)॥
रूब्बुलसूस (सत मुलहटी)		३।)	≡)॥
रोहितक छाल	१२)	।=)	
लता कस्तूरी		२)	।=)
लाजवन्ती (पंचांग)	९)	।)	
लाजवन्ती बीज	१०)	।=)	
लवंग (लौंग)		१।।।)	=)
लाँगुली मूल		४)	।–)
लोध्र पठानी	८)	।)	
लोबान कौड़िया		१॥)	=)
शकर तग़याल		१।=)	–)।।।
शंख पुष्पी	११)	।–)	
शरपुंखा	७)	।)	
शाल-पर्णी	७।)	।)	
शिलारस		२)	≡)

दाम बाज़ार भाव अनुसार घट बढ़ सकते हैं ।

	१ मन	१ सेर	५ तोले
शिव लिंगीबीज		३)	।)
शीरखिस्त देसी		१२)	॥।=)
शीरखिस्त (विलायती)		५)	।=)
श्योनाक छाल	७॥)	।)	
श्योनाक बीज		॥।)	
सपिस्तान (लसूड़ियाँ)	९)	।)	
सतावर	१८)	॥)	
सातला	१२)	।=)	
सकमूनिया (ऊँटनी मार्का)		३।) पौण्ड	।≡)
समुद्रशोष	२१)	॥=) सेर	
सत्यानाशी बीज		॥)	
सत्यानाशी पंचांग	१०)	।-)	
समुद्रफल	१०)	।-)	
सप्तरंगी	३५)	१)	-)।
सप्तपर्णत्वक्	२५)	॥।)	-)
सनाय	१५)	।≡)	
सरकंडामूल		॥)	
सरसों		।-)	
सहोड़ा छाल		।=)	
सालब मिश्री नं० १-२		६), ५)	।≡), ।=)
सालब पंजा (वृद्धि) नं० १-२		६॥), ५॥)	।≡) ।=)
सालब लहसुनी		१)	
सालब (गण्डा)		२)	≡)
सिंघाड़ा	८)	।)	
सिरसछाल	१०)	।-)	
सिरस बीज	११)	।=)	
सिरस बीज काले		१॥)	=)
सिम्बल मूसली बाजारी	१२)	।=)	
सिम्बल मूसली असली		१)	-)॥
सिम्बल फूल		॥)	
सीतल चीनी (सर्दचीनी)		१।)	-)॥
सुपारी काठी		॥)	
सुपारी दक्षिणी		१।)	-)॥
सुगन्ध बाला	७॥)	।)	
सुन्दरस		॥।)	

	१ मन	१ सेर	५ तोला
सुरंजांशीरीं (मीठी)		१।)	-)॥
सुरंजांतलख (कड़वी)		॥।)	
सोंठ देसी		॥)	
सोंठ पूर्वी (बम्बई)		॥)	
सोमवल्ली (इफ़्रेडावलगैरस)		१॥)	=)
सोया	८)	।)	
सौंफ	१०)	।-)	
सौभांजन छाल	७॥)	।)	
सौभांजन बीज		१)	
स्थौणेयक		२)	=)॥
स्वेत कनेर पुष्प		२)	=)॥
स्वेत कनेर मूल		॥।)	-)
हब्बुलास	१५)	।≡)	
हब्बे जुलम		॥=)	
हरमल		≡)	
हल्दी देसी	१६)	।≡)	
हाऊबेर	९)	।-)	
हाल्यून		१॥)	=)
हाथी सुण्डी	७॥)	।)	
हिरन तूतिया जड़ी (ममीरा भेद)		१) तोला	
हिंगुपत्री	१५)	॥) सेर	
हींग अंगुरी नं० १-२		८), ६)	॥=), ।≡)
हींग तालाब		३॥)	।)
हींग बाज़ारी		१॥)	=)
हींग हीरा		५)	।=)
हुब्बविलसाँ		१।-)	-)॥
हुलहुल बीज		१॥)	=)
क्षीर काकोली (बंगाल)		३)	।)
क्षीर बिदारी		॥।)	
त्रायमाण		१॥)	=)

हरीतकी भेद

	१ सेर
हरड़ जीवन्ती नं० १, ५ अंगुल लम्बी	२०)
हरड़ जीवन्ती नं० २, ४ अंगुल लम्बी	७)
हरड़ अभया (लघुबीजा)	२॥)

	१ मन	१ सेर
हरड़ विजया		५)
हरड़ रोहिणी		॥)
हरड़ अमृता (कावली)		१॥)
हरड साधारण नं० १	१२)	=)
हरड़ साधारण नं० २	८)	।)
हरड़ साधारण नं० ३	४)	=)
हरड़ जंग (काली हरड़)	९)	।-)

	तोल भरी या तोलाका	प्रतिनग मू०
हरीतकी अभया	२॥) भर	७)

	तोल भरी या तोलाका		प्रतिनग मू०
हरीतकी अभया	२।=)	„	५)
हरीतकी अभया	२।-)	„	४)
हरीतकी अभया	२।)	„	३॥)
हरीतकी अभया	२≡)	„	३)
हरीतकी अभया	२=)	„	२॥।)
हरीतकी अभया	२-)	„	२॥)
हरीतकी अभया	२)	„	२)
हरीतकी अभया	१ तो० ११ मा० भरकी		१॥)
हरीतकी अभया	१ तो० १० मा० भरकी		१)

दाम बाज़ार भाव अनुसार घट बढ़ सकते हैं।

दी पंजाब आयुर्वैदिक फार्मेसी

अमृतसर

द्वारा

आविष्कृत

गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया

द्वारा

रजिस्टर्ड
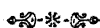
हज़ारों बारकी परीक्षित औषधियाँ

आविष्कर्ता:—

स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य

दी पंजाब आयुर्वैदिक फार्मेसी

द्वारा आविष्कृत

हज़ारों बारकी परीक्षित औषधियाँ

अनेमीन

(पांडु, कामला, हलीमककी बेनज़ीर औषध)

योग—मण्डूर, चित्रक, कुटकी, त्रिकुटा त्रिफलादि ।

लाभ—विषमज्वरके पश्चात् यकृत प्लीहा बढ़ जानेपर यह दवा लाभ करती है। शरीरमें रक्तकी कमीको दूर करती है। एक सप्ताहके सेवनसे ही इसका चमत्कारपूर्ण प्रभाव दिखाई देता है। कितनी भी निर्बलता क्यों न हो एक सप्ताहमें जाती रहती है।

सेवन—दही, तक्र वा दूधसे सेवन करावें।

रक्त-कमी, शोथ, जलोदर आदि रोगोंमें रामबाण है। १४ खुराकका पैकट १)

अलसोरीन

(मुँहके छालोंको अजीब दवा)

योग—तबाशीर, इलायची, खुम्बीका आटा (गगनधूल), पृश्निपर्णीके बीज इत्यादि।

लाभ—उदर-विकार, गर्मी, उपदंशविकार आदि किसी भी कठिनसे कठिन कारणसे मुँहमें छाले पड़ते हों और ज़ख्म बने रहते हों, यह उन ज़ख्मोंको भरनेमें बेनज़ीर वस्तु है। मुँहमें छिड़कते ही ठंडक मिलती है, और दर्द शीघ्र ही जाता रहता है। एक पैकट १)

अमीरी जुलाब

नाजुक और अमीर मिज़ाज आदमी या निर्बल स्त्रियों व गर्भणियोंके लिये यह जुलाब माजूनकी शकलकी दवा बड़ी स्वादिष्ट है। बच्चेसे लेकर बड़ों तकको जिनका मृदुकोष्ठ हो बड़ी मुफीद है इसके खानेसे न तो जी मचलाता है न पेटमें दर्द, जलन व मरोड़ ही होता है। इतना बेनजीर जुलाबका माजून है कि रात्रीको सोते समय १–१॥ माशा पानीसे या दूधसे खा लो सुबहको १–२ दस्त खुलकर आ जाते हैं रोगीको ज़रा भी न तो कमजोरी होती है, न कष्ट। जुलाब लेना हो तो सुबहको गरम दूध या गरम जलसे २-३ माशेके लगभग दवा खालें। तीन चार दस्त खुलकर आ जाते हैं। न ज़रा घबराहट होती है, न गर्मी मालूम देती है।

२॥ तोले दवाकी डिब्बीका मूल्य १)

नोट—कठिन कोठे वालेके लिये यह दवा काम नहीं देती।

अनिद्रान्तक वटी

यह नींद लानेकी औषध अनेक वर्षोंके प्रयोगके पश्चात् अनुभवमें आई है। जिन रोगियोंको खूनका दबाव बढ़ जानेके कारण नींद नहीं आती या कोई मानसिक रोगके कारण जैसे उन्माद, मालीखोलिया, चिन्ता या अन्य कोई ऐसे विकार जिनका प्रभाव दिमाग पर बना रहता है और उससे दिमाग सदा विक्षुब्ध रहता है, नींद नहीं आती, ऐसी हालतमें हमारी यह हज़ारों रोगियोंपर आजमाई टिकियाँ दो चार दिनके खिलानेसे ही रोगी आरामकी नींद सोने लगता है। कई बार तो देखा गया है कि निद्रा आनेपर खूनका दबाव (ब्लड प्रेशर) ठीक हो जाता है। उन्माद या मालीखोलियाकी हालत जाती रहती है और रोगी सदाके लिये आराम हासिल कर लेता है। १०० उन्माद रोगियोंमें से ५० को तो यह पूरा २ लाभ पहुँचाती है।

प्रत्येक वैद्यको इसकी एक बार परीक्षा लेनी चाहिये। २॥) तोला वटीका मूल्य १।) रु० । ५ तोलाका २) है। मात्रा १ से २ गोली तक पानी या दूधसे दें।

आस्थमीन

यह दवा बलगमी दमा पर अच्छा काम देती है कुछ दिन सेवन करते रहने पर दमा जाता रहता है। एक सप्ताह सेवन कर एक सप्ताह दवा खाना छोड़ देना चाहिये।

सेवन-विधि—१ टिकिया सुबह शाम पानीके साथ सेवन करें। मूल्य १)

एस. टुथ पाऊडर

(सर्वश्रेष्ठ सुगन्धित मंजन)

लाभ—दाँतोंका दर्द, दाँतोंमें पानी लगना, मसूढ़ोंमें वरम हो जाना और दाँतोंका कमज़ोर होकर हिलने लगना, मुँहसे दुर्गन्ध आना इत्यादि जितनी भी दातों व मसूढ़ोंकी बीमारियाँ हैं सबको दूर करके दाँतोंको मजबूत व चमकीला बना देता है।

सेवन-विधि—ब्रुश या दन्तधावनके साथ मंजन को दाँतोंपर खूब मलना चाहिये और पानीसे कुल्ला कर डालना चाहिये। मूल्य ।≈) प्रति पैकट,

एलोप्सीन

कभी-कभी एकाएक सिरके या दाढ़ी मूँछके बाल गिरने लग जाते हैं और दुवन्नी-चवन्नीके बराबर जगह बिल्कुल साफ़ हो जाती है। इस रोगको बालचर या बालखोरा कहते हैं। इसके लिये हमारी यह औषधि अत्यन्त लाभदायक है। दो-तीन बारके लगानेपर नये बाल उत्पन्न हो जाते हैं।

सेवन-विधि—जहाँ से बाल उड़ गये हो उस जगहको रगड़कर उसपर दवाई खूब मल दें। इसी तरह दिनमें एक बार करें। मूल्य १)

एट्रोफील

(मसान रोगकी अद्भुत दवा)

यह दवा बच्चोंको सूखा रोग (मसान) में अत्यन्त फायदा करती है। जिन बच्चोंको मोतीझरा बुखारके पश्चात् या बुखार बने रहनेकी हालतमें सूखाकी बीमारी लग जाती है और बच्चा सूखता चला जाता है, जिसे लोग मसान या परछायाँ भी कहते हैं, उस बीमारीमें यह दवा अत्यन्त लाभ करती है। कुछ दिन सेवन करनेसे सूखापन दूर होकर बच्चा खूब मोटा ताज़ा हो जाता है।

प्रयोग—१ गोली सुबह और एक गोली शामको पानीसे सेवन करावें। खानेके लिये दूध, फल रोटी बन्द कर दें। मूल्य १)

एस. डिस्पेप्सोल

योग—लवण, त्रिकुटा, हींग, जीरा, सत्व अजवायन, सत्व पुदीना, सत्वनिम्बू आदिका सम्मिश्रित सर्व श्रेष्ठ स्वादिष्ट चूर्ण।

लाभ—बदहज़मी, खट्टे डकार, वमन, मतली, अतिसार, उदर पीड़ा आदिको दूर करता है।

स्वादिष्ट इतना है कि छोटे बच्चे भी बड़े प्रेमसे खा लेते हैं।

सेवन-विधि—आवश्यकताके समय थोड़ा चूर्ण ज़बानपर रखकर चाटना चाहिये।

एक पावका पैकेट मूल्य १)

एस. वेजीटेबोल

(विष्टब्धहर और रेचक)

योग—हिंगुल, गन्धक, चोकसत्व, त्रिवृत्ता, त्रिकुटादि।

लाभ—रात्रिको सोते समय १ से २ गोली तक यदि खाई जाय तो सुबह एक पाखाना साफ़ आता है और

पञ्जाब आयुर्वैदिक फार्मेसीकी

नव्य विधानकी गजपुट भट्टियाँ

नव्य विधानकी कूपी पक्व भट्टियाँ
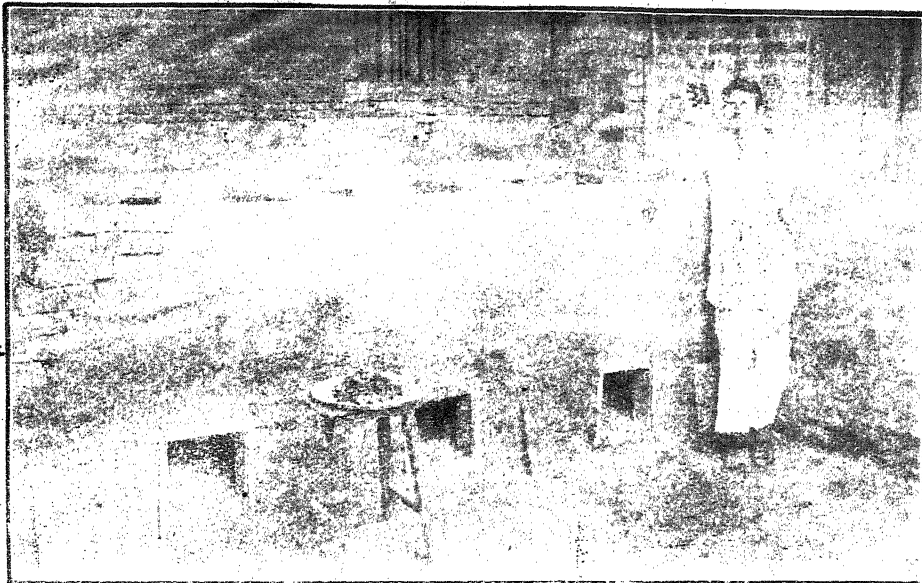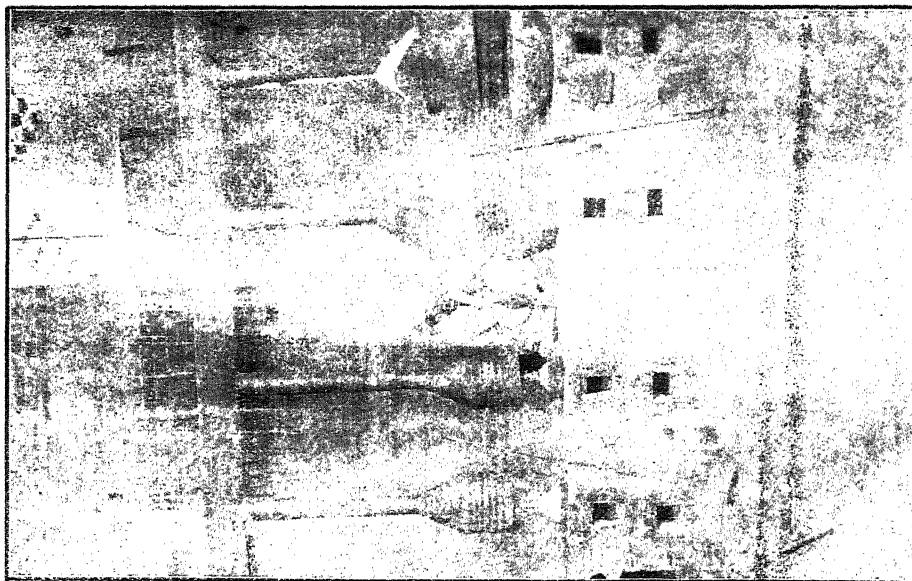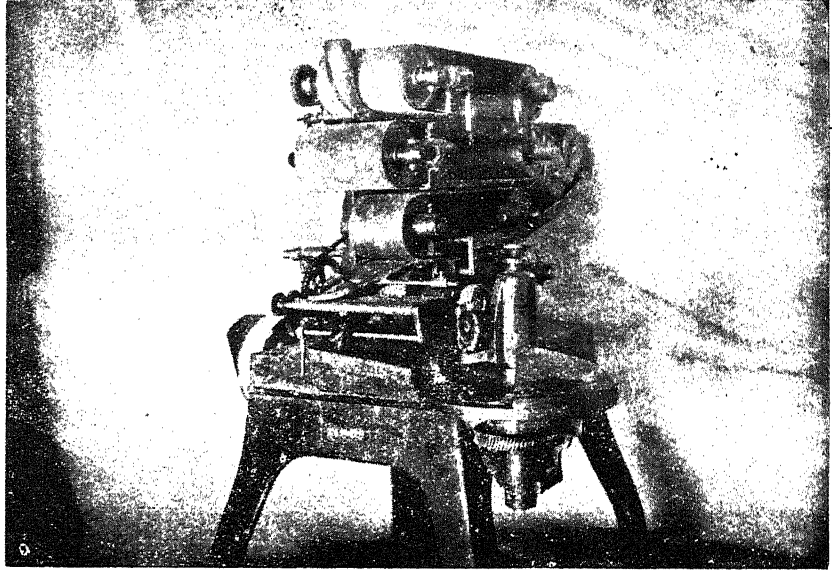
गोलियाँ बनाने वाली मैशीन (अमेरिकन)
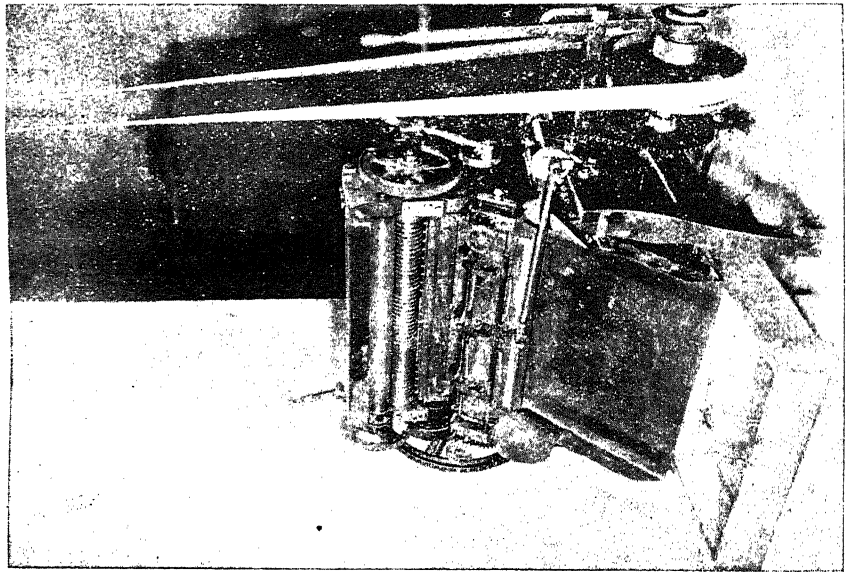
गोलियाँ बनाने वाली दूसरी मैशीन (जर्मन)

दिनमें तीनसे चार गोलीतक खाई जांय तो चार-पाँच बार जुलाब आकर उदर साफ हो जाता है। इसके सेवनसे मरोड़ दाहादिका कष्ट नहीं होता।

सेवन विधि—१, २ गोलीवाला केपसूल रात्रिको गर्म दूधसे और जुलाबके लिये दिनमें ३, ४ गोलीवाला केपसूल पानीसे दें।

पथ्य—घृतयुक्त खिचड़ी।

८० गोली कैपसूलमें बन्द हैं, मूल्य १) प्रति पैकेट।

एस. पायोरीन

योग—चूना, हरताल, सज्जी, पारद, सिरका, क्रियाओट इत्यादि।

लाभ—यह धारणा अब छोड़ दो कि पायोरिया दाँत निकलवाकर ही जा सकता है। दाँतको यदि स्थिर रखकर लाभ उठाना चाहते हो तो एकबार इस मञ्जनका अवश्य प्रयोग करो। इस मञ्जनके प्रयोगसे एक तो गला हुआ माँस ठीक होकर पुनः भरने लगता है, दूसरे हिलते हुए दाँत फिर मजबूत हो जाते हैं।

सेवन-विधि—ब्रूश या दातौनसे मञ्जनको वहाँ पर अच्छी तरह मलो जहाँ से पाक निकलती हो। बादमें गर्म जलसे कुल्ला कर डालो इस प्रकार दोनों समय करो। मूल्य १) प्रति पैकेट

एस. बालघूटी

प्रायः देखा जाता है कि छोटे २ बच्चों को पेट की खराबी जल्दी हो जाती है। जहां पेटमें नुक्स हुआ कि बच्चोंको पेट दर्द, अतिसार, ज्वर आदिके उपद्रव दिखाई देने लगते हैं। इसके लिये यह बाल घुटी बड़ी ही लाभदायी है। इसकी २ रत्तीकी मात्रा जलमें घोलकर पिलादेनेसे एक दो दस्त खुलकर आ जाते हैं और यदि १ रत्तीके भीतर दिया जाय तो मलका पाचन हो जाता है जिससे आते हुवे दस्त बन्द हो जाते हैं। और ज्वर आदि उपद्रव सब जाते रहते हैं। इस घूँटीको यदि सप्ताह में एकबार बालकों को देते रहें तो किसी किस्मकी बीमारीके होनेका अन्देशा नहीं रहता। २॥ तोला पैकट का मूल्य ॥)

नवीन शोध, नवीन आविष्कार

ओज़ीना

(नये जुकाम, पीनसकी तत्काल फलप्रद औषध)

योग-मगज चार, मगज बादाम, गुलगावज़बाँ, गुलबनफशा, संगयस्ब भस्म, अकीक भस्म आदि।

यह औषध माजून (पाक) के रूपमें तैयार की गयी है। खानेमें बड़ी स्वादिष्ट है।

गुण—जिन व्यक्तियोंको महीनेमें कई बार जुकाम हो जाता हो जुकामके कारण दिमाग कमज़ोर हो गया हो, लिखने-पढ़नेका काम दिमागी थकावटसे न कर सकते हों, शिरमें दर्द रहता हो, याददाश्त (स्मृतिशक्ति) अत्यन्त निर्बल हो चुकी हो, जुकाम बिगड़कर पीनस बन गया हो और शारीरिक प्रकृति बिगड़कर अत्यन्त निर्बल हो रही हो, साधारण लाल मिर्च, खटाईसे चट जुकाम हो जाता हो, कोई औषध शरीरके अनुकूल न बैठती हो। ऐसी दशाओंमें ओज़ीना चमत्कारपूर्ण लाभ दिखाता है।

सेवन—५-६ माशे दवा पानीसे खावें। सर्वसाधारण-के लाभार्थ १० तोला माजूनका मू० बन्द पैकेट १) है।

औपथलमीन

यह दवा आँखकी नीचे लिखी बीमारियोंमें अत्यन्त फ़ायदेमन्द है—

आँख आना या आँख दुखना, आँखकी पुरानी लाली, आँखके गोलकोंका दर्द, रोहे या कुकरे, धुन्ध, जाला, आँखसे पानी जाना, आँखमें ज्यादा कीचड़ या मैल आना इत्यादि। आँखके आनेपर या अभिष्यन्द होनेपर फौरन लाभ दिखाती है।

सेवन-विधि—बहुत थोड़ी दवा को शलाका (सुरमा लगानेकी सलाई) पर लगाकर आँखमें लगावें। सुबह शाम दोनों समय आँखोंमें डालना चाहिये।

मूल्य १) प्रति पैकट

कटारीन

दमाकी बीमारी पुरानी खाँसी, या किसी और फेफड़ेकी बीमारियोंके कारण जब श्लेष्मा अत्यधिक निकलती हो, सुबहके समय सेरों बलग़म खारिज होती हो और बलगमकी अधिकतासे रोगी अधिक कमज़ोर हो चुका हो तो कटारीनके सेवनसे अत्यन्त फायदा होता है। पहले ही दिन बलग़म घटकर बहुत कम हो जाती है। बलग़म घटनेपर रोगीको बहुत आराम मिलने लगता है।

सेवन १ बूंद खाँड़में डालकर मिला लें उसकी दो खुराक बनाकर पानीसे लें।

योग—आर्सनिक, सल्फर मिश्रित वानस्पतिक तेल है।

पथ्य—खटाई, तेल, कब्ज़कारी वस्तुओंसे बचें।

मूल्य १) प्रति पकेट

कर्ण दुःख हर तेल

लाभ—कानके दर्द और कान बहने पर। यह तेल कानके दर्दको फौरन बन्द करता है। कानमें अक्सर सूजन या फोड़ा फुन्सी हो जाती है, उस समय कानमें टीस या जोरोंकी दर्द उठती है, उस समय इस तेलको गरम करके डालनेपर दर्द या टीस बन्द हो जाती है। इससे भिन्न इसमें सबसे बड़ी खूबी यह है कि कानसे पानीवत् पाक या राद बहता हो, कानके भीतर जख्म हो रहा हो तो इसके कुछ दिन कानमें डालते रहनेसे कानका बहना बिलकुल बन्द हो जाता है। इस तेलसे हमने दस २ सालके पुराने रोगी कर्णपाक व कर्ण कराडूके राज़ी किये हैं।

१ तोलाकी शीशीके ||), २|| तोला का १)

कफसोल

राजयक्ष्माकी खाँसीको त्यागकर बाकी प्रत्येक खाँसीमें इसके सेवनसे अवश्य लाभ होता है। श्लेष्मज श्वाँस, दौरेके श्वाँसको भी रोकता है। इसके सेवनसे पुरानीसे पुरानी खाँसी जाती रहती है।

सेवन-विधि—उष्ण प्रकृतिवालोंको किसी शीतल शर्बतसे और शीत प्रकृतिवालेको शहदसे दें। मात्रा ½ से १ रत्तीतक। एक पैकेटका मूल्य १)

कायाकल्पवटी

लाभ—यह वटी पुरानी रक्तकी बीमारियोंमें चमत्कारिक लाभ दिखाती है। जिन आदमियोंको अस्थि व्रण हो रहे हों, बड़े गम्भीर व्रण निकलते रहते हों, नासूर हो गया हो, जिनके ज़ख्म जल्दी न भरते हों, शरीरपर रक्त विकारके भयंकर चिह्न दाद, खाज कुष्ट या और कोई चकत्ते आदि बने रहते हों। वह इन गोलियोंको एक दो मास नित्य ब्यवहार कर लें। रोग समूल जाता रहेगा।

मात्रा १—२ गोली दोनों समय महामंजिष्ठादि अर्कसे दें।

परहेज—खटाई, तेल, लाल मिर्च, अचारसे करें। अवश्य लाभ होगा। स वटीके दो चार दिन सेवन करनेके उपरान्त औषध प्रभावसे एक दो दस्त नित्य आने आरम्भ होते हैं और जबतक ठीक न हो जाय अपने आप आते रहते हैं पश्चात् औषध खाते रहनेपर भी फिर दस्त नहीं आते। यह दवा दो चार दिनमें कोई फायदा नहीं दिखाती। दो चार दिन बाद तो औषधसे रोगपर प्रतिक्रिया ही आरम्भ होती है। कमसे कम इसे १ मास सेवन करना चाहिये।

५० गोलीका पैकेट १।), १०० गोलीका मू० २)

कामलान्तक बटी

कई व्यक्तियोंको ज्वरके मध्य या ज्वरके पश्चात् कामलारोग हो जाता है। अर्थात् एकदम बदन पीला, आँख पीली, नाखुन पीले पड़ जाते हैं, पेशाब भी पीला आने लगता है। इसको इसी कारणसे जनता पीलिया रोग भी कहती है। इस रोगके लिये हमारी यह औषध रामबाण सिद्ध हुई है। २-४ टिक्की पानीसे या दूधसे ६-७ दिनके सेवन करते ही रोग बिना कष्टके जाता रहता है। पुरानेसे पुराने रोगमें भी हमारी यह बटी अद्भुत लाभ दिखाती है। ४० गोलीका मूल्य १), १०० गोलीका २)

कार्बेकोलीन

(मरहम कार्बेकल)

जिन आदमियोंको मधुमेह रोग होता है। प्रायः उन्हीं आदमियोंके शर्करा पॉइज़नके प्रभावसे शरीरमें भयंकर व्रण निकलने लगते हैं। इन्हीं फोड़ोंका नाम शराविका, कच्छपिका, अदीठव्रण आदि नाम हैं। यह मरहम इन व्रणोंको राजी करनेमें अद्भुत शक्ति रखती है। कई डाक्टर जिन मरीजोंके सम्बन्धमें कहते थे कि यह बिना शल्य क्रियाके ठीक होनेका नहीं, उन्हीं डाक्टरोंके हाथों यह मरहम लगवा कर उन्हें इसका चमत्कार दिखाया। इस दवाको रजिस्टर्ड कराए करीब १५ वर्ष हो गये। स्वयं हम पन्द्रह वर्षसे उपयोग कर रहे हैं किन्तु इसमें एक ऐसी चीज पड़ती थी जो बड़े परिश्रमसे २-४ तोला वर्षमें मिल सकती थी इस वर्ष बड़े प्रयत्नसे अधिक मात्रामें प्राप्त हुई।

यह मरहम अन्य प्रकारके जहरीले फोड़ोंमें भी अत्यन्त लाभदायी है जो प्रसरण शील भयंकर उपद्रववाले, दाहकारी जिनसे मांस, त्वचा गलती चली जाती हो ऐसी स्थितिमें अमृततुल्य शान्ति देती है।

मूल्य—२॥ तोलेके पैकटका २॥)

प्रयोग—कपड़े पर चुपड़कर व्रण पर लगाओ।

क्वारटीन

चौथे दिन चढ़नेवाला मलेरिया-बुखार, जिसको चौथा बुखार या चौथय्या बुखार कहते हैं, चाहे पुराना हो या नया यह दवा हर एकको शर्तिया फायदा करती है। तेइय्या बुखारको तो एक दिनमें ही लाभ होता है।

सेवनविधि—५ से ८ रत्ती दवाको जलके साथ दिनमें दो दफा सुबह व शाम जब ज्वर न हो या ज्वरके दो घंटे पूर्व, एक सप्ताह तक सेवन करावें।

पथ्य—एक सप्ताहतक दूध-रोटी, दूध-चावल मीठा मिलाकर दें। मूल्य १) प्रति पकेट।

क्लो आज़मीन

बहुतसे आदमियोंकी छाती या पीठपर हलके श्वेत या मटमैले दाग उत्पन्न हो जाते हैं और उनसे कभी-कभी भूसी भी उतरती रहती है कभी-कभी गर्मीसे चिंगारियाँ सी भी उठती हैं, कई इस व्याधिको सेहुँआ, कई छींप कहते हैं। इसके लिये यह दवा बहुत ही आश्चर्यजनक लाभ दिखाती है। इस रोगका सफेद कोढ़ या श्वित्रकुष्ठसे कोई सम्बन्ध नहीं।

सेवन-विधि—छः माशा दवाको ५ तोला दहीमें मिलाकर दागोंपर खूब मलना चाहिये। जब दवा मलते-मलते सूख जाय तो पश्चात् साबुन लगाकर स्नान कर लेना चाहिये। मूल्य १) प्रति पैकेट

खोराञ्जन

(पड़वालका अद्भुत सुरमा)

योग—सुरमा अस्फहानी, सौवीराँजन, अंजरूत, सुहागा, मनःशिलादि।

लाभ—जिन व्यक्तियोंकी पलकें सुर्ख और मोटी होकर उनमें फुँसी निकला करती हैं तथा आँखोंमें बाल चुभते रहते हैं, जिनको पड़वाल या पक्ष्मकोप भी कहते हैं; इस अंजनके लगानेसे उक्त रोग समूल जाता

रहता है तथा पलक पतली हो जानेपर पड़वालोंका आँखोंमें पड़ना या चुभना बन्द हो जाता है ।

६ माशेकी शीशीका पैकेट, मूल्य १)

गनरोल

(सुज़ाक, मूत्रकृच्छ्रकी रामबाण दवा)

योग—सन्दल तेल, सत्वबिरोज़ा, लोबान, रेशाखत्मी, सर्द चीनी आदिका विशेष सम्मेलन ।

लाभ—यह योग इतना अद्भुत है कि तीव्रसे तीव्र और जीर्णसे जीर्ण सूज़ाकमें भी अवश्य लाभ करता है । इसकी पहली मात्रासे लाभ दिखाई देता है । कृच्छ्रता तो दवा खानेके तीन घँटे बाद बन्द हो जाती है और ज़ख्म दो तीन दिनमें भर जाता है ।

सेवन-विधि—१-२ केपसूल शर्बत सन्दलके साथ या दूधमें पानी डालकर उसके साथ दोनों समय लेवें ।

२४ कैपसूलका १ पैकेट, मूल्य १।।)

छू मन्त्र

सिर दर्द, दाँत दर्द, दाढ़ दर्द, और इनके अतिरिक्त कहीं भी कोई दर्द है जरा सी दवा लगाते ही दर्द छू मन्त्र हो जाता है । एक मू० प्रति शीशी ।)
१ दर्जन २।।)

डायरीन

बच्चोंको या वृद्धोंको पेटकी खराबीसे या बदहज़मीसे या बच्चोंके दाँत निकलनेके कारण या किसी और अज्ञात कारणसे एकदम दस्त शुरू हो जाते हैं तो ऐसी अवस्थामें इस औषधके प्रयोगसे एक बार अवश्य ही दस्त बन्द हो जाते हैं । पश्चात् विशेष कारणको देखकर चिकित्सा-क्रम जारी कर सकते हैं । यह औषध तो जनरल तौरपर हर एक प्रकारके दस्त बन्द करनेमें काम आनेवाली अचूक वस्तु है ।

मूल्य प्रति पैकेट ८० गोली १)

डाई सेन्ट्रोल

(पेचिश मरोड़की अचूक दवा)

योग—हरीतकी, भाँग, पोस्तडोडा, सौंफ, सुंठी, बनबकरी आदि ।

लाभ—यह औषध ९९ प्रतिशत व्यक्तियोंको पेचिशमें अवश्य ही लाभ करती है । कैसाही मरोड़ हो; आँव और खून जाता हो गुदभ्रंश या काँच निकलती हो, दिन में तीन चार मात्रा खाते ही आराम हो जाता है । पुरानेसे पुराने पेचिश वाले भी इसके सेवनसे निराश नहीं हुए ।

सेवन-विधि—पहिले हलका जुलाब देवें । नई पेचिसमें तीव्र जुलाब दें पश्चात् तक्रके साथ ५-६ माशे दवाई सेवन करें । पथ्य—दही चावल (भात) दें । एक पैकेट मूल्य १)

डायसेन्ट्री पिल्स्

यह औषधि पेचिशके लिये अत्यन्त लाभदायी है । नई बीमारीमें सेवनसे पहले हलका-सा जुलाब ज़रूर दें । जुलाब हो जानेके तीन चार घण्टे बाद दही, जल या तक्रके साथ इसको सेवन करें । दिनमें दो दफा—सुबह शाम दें । इसकी मात्रा बहुत ही कम है । आधी रत्ती।

पथ्य—पेचिशकी दशामें दहीसे वा छाछ से ½ रत्तीके बराबर दें । पथ्य—दही चावल । मूल्य १)

डिलेरीन

मन्थर ज्वर, फुफ्फुस प्रदाह, प्रसूत ज्वर, इन्फ्लूऐंजा आदिके होने पर जब अधिक ज्वर होकर मनुष्यको सरसाम या सन्निपात हो जाता है और रोगी अधिक बकवास करता है, नींद नहीं आती, हाथ पैर मारता है या बेहोश पड़ा रहता है, ऐसी हालतमें हमारी यह औषध दो-दो घण्टे बाद खिलानेसे रोगीकी सान्निपातिक अवस्था जाती रहती है ।

खुराक—१ गोली अद्रक रस या शहदसे दें। ऐसे बीमारको खुराकके लिये कोई दूध वगैरह गिज़ा तब तक नहीं देनी चाहिये जब तक होश-हवास दुरुस्त न हो जांय। १४ खुराकका मूल्य १)

डिफनेस्सीन ऑइल

जिन व्यक्तियोंको अधिक कुनैन, जमाल गोटा (जैपाल बीज) संखिया वगैरह अत्यन्त गर्म खुश्क चीजें खानेसे कानोंमें खुश्की पहुँचकर बहरापन हो जाता है और कानमें ज्यादा पपड़ीदार सूखा मैल बना रहता है, या कानमें सूखा दर्द रहता है। कानकी झिल्ली नरम पड़ जाती है और तिनका तकका स्पर्श भी असह्य होता है, उनके लिये यह तेल अत्यन्त लाभदायी है।

सेवनविधि—रात्रिको सोते समय शीशीको हिलाकर इस तेलकी चार बूँद कानमें डालकर सो जायें, तेल कानमें ही पड़ा रहे। दूसरे दिन दूसरे कानमें छोड़ें। इस तरह कुछ दिन करनेपर एक तो कानमें झिल्ली या मैलका बनना बंद हो जाता है, दूसरे सुनाई देने लगता है। कुछ दिन के सेवनसे कान खुल जाते हैं।

½ औंसके पैकटका मू० १)

नज़लोल

(नज़लेकी अपूर्व औषध)

योग—जायफल, जावित्री, लौंग, कुचला आदि।

लाभ—नज़ला चाहे हलकमें गिरता हो या नाकके रास्तेसे बहता हो चाहे सर्दीसे या गर्मीसे हो नज़लोल प्रत्येक प्रकृतिके व्यक्तिको अवश्य ही लाभ दिखाता है और नये जुकामको तो पहली ही मात्रामें लाभ करता है, हरएक प्रकृतिके व्यक्ति इसे भिन्न-भिन्न अनुपानसे सेवन कर सकते हैं। सबको मुफीद पड़ता है।

सेवन-विधि—एक गोली सुबहको और १ गोली शामको जलसे या शर्बतसे दें।

८० गोलीका पैकेट १)

दद्रु संहार

यह दवा सचमुच दादपर लगानेसे दादको जड़से मिटा देती है। और सबसे बड़ी खूबी तो यह है कि लगती जरा नहीं। बिना तकलीफके दादका समूल नष्ट हो जाना साधारण बात है।

सेवन-विधि—दादके स्थानको खुजलाकर उसपर थोड़ी सी दवा मलें।

१ औंस मलहमकी डिब्बीका मू० १)

न्यूमोनिओल

(बच्चों व बूढ़ोंके लिये न्यूमोनियाकी दवा)

न्यूमोनियाकी प्रत्येक अवस्थामें इसका सेवन डेढ़-डेढ़ घण्टेके बाद किसी वैद्य व डाक्टरकी देखरेखमें कराते रहनेसे फुफ्फुस व त्रांको नालीपर पड़ा हुआ न्यूमोनियाका प्रभाव दब जाता है और रोगी मियाद पूरी होनेतक अच्छा हो जाता है।

सेवन-विधि—बढ़ी हुई बीमारीमें घंटा-घंटा बाद शहद अथवा अद्रक रससे सेवन करावे। १४ गोलीका मू० १)

न्यूरेलजीन

(सूर्यावर्त, शंखककी सूची वेधी अद्भुत औषध)

योग—पेटेण्ट होनेसे बतलाया नहीं जा सकता।

लाभ—आयुर्वेदमें सर्व प्रथम सूचीवेधन द्वारा सिर दर्दको लाभ पहुँचाने वाली अद्भुत औषध। एकबारके सूची वेधन करनेपर दर्द इस तरह जाता है जिस तरह मन्त्र द्वारा भूत।

सेवन-विधि—मामूली सूईको शुद्ध करके उसकी नोकपर दवा लगाकर १०, १५ दफा दर्दके मूल स्थान पर चुभो दें और पुनः दवाके स्थानको खूब अच्छी तरह पोंछ डालें। बस दर्द छूमंतर समझें। एक शीशी ५०-६० बीमारोंके लिये काममें लाइये। मूल्य १)

पुन्सोलीन (तिला)

योग—संखिया, केशर, बीरबहूटी, अकरकरा, कनेरछाल आदि।

लाभ—ध्वजभंग या नामर्दी चाहे प्रकृति विपरीत मैथुनसे हुई हो या मानसिक विकारसे अथवा अति मैथुनसे हुई हो, एकबार तो यह अपना फल अवश्य दिखाता है और नष्ट हुई शक्तिको पुनः नवजीवन देता है। आगे मनुष्यका भाग्य।

सेवन-विधि—रात्रिको सोते समय दो बूंद तेलको इन्द्रीके ऊपर लगाकर मालिश करें। जब तेल सूख जाय तो पानका पत्र बाँध दें। दवा इन्द्रीके निचले भागमें न लगने पावे, इस बातका सदा ध्यान रखें।

एक सप्ताहके सेवन योग्य पैकेटका मूल्य १)

पुन्सोल

(नामर्दीकी अचूक दवा)

योग—चन्द्रोदय, वंग, केसर आदिका विशेष योग।

लाभ—जिन व्यक्तियोंका इच्छानुसार समयपर चैतन्योदय नहीं होता, या मैथुनके समय शिथिलता आ जाती है। यह विकार चाहे हस्तमैथुनजन्य हो, या क्षीण वीर्यके कारण अथवा मानसिक हो, सबमें लाभ करता है।

सेवन-विधि—दूधसे एक गोली सुबह एक गोली शामको नित्य सेवन करावें। १४ खुराकका मू० १)

प्रोराईगोन

[खाज, खुजलीकी दवा]

लाभ—यह औषध प्रत्येक प्रकारकी गीली सूखी खारिश (खुजली) में अत्यन्त लाभप्रद है। यहाँ तक कि इसके सेवनसे आठ-आठ दस-दस वर्षकी खारिश जड़से चली जाती है।

सेवन-विधि—इसमें तेल सरसों १० तोला मिलाकर खाजपर मालिश करनेसे तथा साबुन लगा कर पश्चात् स्नान करनेसे एक सप्ताहमें रोग जड़से चला जाता है। १ पैकेटका मूल्य १)

प्लोरीन

[पार्श्वशूल या दर्द पसलीकी दवा]

लाभ—सर्दी लगकर या न्यूमोनियाके आरम्भमें जो श्वासके साथ पसलीमें दर्द उठता है और दर्दसे श्वास नहीं लिया जाता उस समय इसकी एक मात्रा देते ही दर्द जाता रहता है। यह जोड़ोंके दर्द, बदनके दर्द, पेटके दर्दमें भी अपना चमत्कार दिखाती है।

सेवन-विधि—१ से २ गोलीतक दर्दके समय गर्म पानीसे देवें। एक बारमें दर्द बंद न हो तो १ घण्टे बाद पुनः दें। १ औंसका पैकेट १)

फीवर पिल्स

बुखार जब आरम्भ में चढ़ता है तो उसी दिन यह पता नहीं लग जाता कि यह साधारण बुखार है या विशेष। तीन-चार दिन बुखारके हो जानेपर फिर कहीं चिकित्सक बुखारके कारणको मुश्किलसे जान पाता है। यह बड़े-बड़े वैद्योंके अनुभवकी बात है। पर, जब तक बुखारका ठीक-ठीक पता न लगे क्या दवा दी जाय ? चिकित्सकके लिये यह एक जटिल प्रश्न रहता है। हमने हजारों रोगियोंपर उक्त दवाको आरंभिक ज्वरावस्थामें देकर इसका खूब अनुभव किया है। यह हर एक प्रकारके साधारण ज्वरको तो दो दिनमें अवश्य उतार देता है। जिनका बुखार दूर नहीं होता उनको वह दवा देनेसे यह अपने प्रभावसे ज्वरके रूपको भी प्रकट कर देती है और तीसरे या चौथे दिन चिह्न बिलकुल स्पष्ट हो जाते हैं। जो निश्चित ज्वरोंमें पाये जाते हैं।

सेवन-विधि—२-४ गोली पानीसे दोनों समय सेवन करें। १०० गोलीका मूल्य १)

बच्चोंकी ताकतके लिये

एस. बाल शर्बत

यह शर्बत बच्चोंकी प्रत्येक निर्बलतामें अत्यन्त लाभदायक है, जो बच्चे बचपनसे दुबले-पतले होते

हैं इसके इस्तेमालसे थोड़े ही समयमें मोटे ताज़े हो जाते हैं। बीमारीसे उठे हुए बच्चोंके लिए यह शर्बत अमृततुल्य है। अत्यन्त रक्तवर्द्धक तथा शक्तिवर्धक है। स्वादिष्ट इतना है कि बच्चे बड़े चावसे पी लेते हैं। मूल्य—प्रत्येक ४ औंसकी शीशीका १)

महामंजिष्ठादि अर्क

यह अर्क हमने हजारों रोगियोंपर आजमाया है। छोटे २ बच्चोंको वर्षाकालमें आकर जब हाथों, पैरों पर छोटी २ फुन्सियाँ या फोड़े निकलने लगते हैं और उनसे बच्चोंको बड़ा कष्ट होता है। कई बच्चोंको सफेद पानीवाली फुन्सियाँ निकलती व फूटती ही रहती हैं। जहाँ फुन्सी निकलती है वहाँ छाला जैसी सूरत बन जाती है। बड़े आदमियोंको भी उपदंश, आतशक आदिके कारण रक्तका विकार हो जाता है। कईयोंको फोड़ा, फुन्सी दाद खाज खारिश आदि रक्तखराबी व त्वचाकी बीमारी बनी रहती है उनको भी यह अर्क बहुत फायदा करता है। इस अर्क को बच्चे बड़े चावसे पी लेते हैं। जब इस अर्कमें शहद पड़ जाता है तो बच्चोंके लिये यह शर्बतसा बन जाता है। जिसे बच्चोंको पिलानेमें तकलीफ नहीं होती वह आप ही पी लेते हैं।

मात्रा—बच्चोंके लिये ६ माशे से १ तोला तक। बड़ोंको २ से ४ तोला तक शहद डालकर दोनों समय देवें।

मूल्य एक पौण्ड ॥=)

मेमो

[तालुकंटक, काक गिरनेकी दवा]

योग-तबाशीर, इलायची, जहरमोहरा, संगयशव, अकीक, कमलगट्टा इत्यादि।

लाभ—जब बच्चोंका तालु लटक जाता है तो प्रायः हरे, पीले दस्त लग जाते हैं और अधिक दिन तक बने रहें तो दस्तोंमें आँव व रक्त आदि आने लगता है। बच्चा दिन-रात सिर मार-मारकर रोता रहता है। ऐसे रोगमें इस दवासे उक्त तालू भागको दो-चार बार उठानेपर या दवा खिलानेपर अवश्य ही लाभ होता है।

सेवन-विधि—शर्बत बनफ़शा या शहदमें मिलाकर चटावें।

मात्रा—एक माशा। मूल्य एक पैकेट १)

मेहोरीन

[प्रमेह, धातुक्षीणता, जरियानकी दवा]

लाभ—पेशाबके साथ मिलकर आनेवाली या पेशाबके पीछे आनेवाली धातुको रोकनेमें यह दवा बेनज़ीर वस्तु है, इससे भिन्न पेशाबमें शक्कर आनेको भी रोकती है तथा बहुमूत्रमें बड़ा ही लाभ करती है। बड़ी ही बल-वर्द्धक है।

सेवन विधि—दूध या पानीसे एक-एक गोली दोनों समय सेवन करावें। १४ गोलीका मूल्य १)

रेनीन

कई व्यक्तियोंके जीर्ण प्रतिश्याय (नजला) के बने रहनेपर नाकके रास्ते बन्द हो जाते हैं। कइयोंके नाकके भीतरकी झिल्ली फूल जाती है जिससे उन्हें श्वास लेना कठिन होता है। कई व्यक्तियोंको नाकके रास्तेमें रसौली या मस्से हो जाते हैं और वह बड़ा तकलीफ देते हैं। हमारे इस घृतके कुछ दिन सूँघनेसे नाककी झिल्ली अपनी जगहपर आ जाती है, फूला हुआ भाग छट जाता है और मस्से या रसौली गलकर निकल जाती है।

प्रयोग—दवाकी दो-तीन बूँद अँगुलीपर लगा कर सूँघें।

सावधानी—सूँघनेके पश्चात् लेटना नहीं चाहिये, न लेटकर सूँघना चाहिये। कीमत १)

रिनालकोलीन

[पथरी निकालनेवाली अद्भुत दवा]

योग—बेर पत्थरका विशेष योग।

लाभ—पथरी उत्पन्न होनेके कारण दर्द गुर्दा वृक्कशूलकी अमोघ औषध है। १ मात्रा देते ही दस मिनटमें वृक्कशूल बन्द हो जाता है और मूत्र इतना अधिक आता है कि सारी पथरी घुलकर बाहर आ जाती है, हजारों बारकी आज़मायी हुई औषध है।

सेवन-विधि—५-६ माशे दवाई दूधमें पानी मिला कर उसके साथ दिनमें दो बार सेवन करावें। बड़ी पथरीमें कुछ दिन सेवन करावें। १ पैकेटका मूल्य १)

रोमेटीन

[गठिया, आमवात, नुकरसको तत्काल लाभ करने वाली दवा]

लाभ—सन्धिवात, चलितवात, नुकरस, गठिया आदि व्याधियें चाहे उपदंशजनित हों या स्वतन्त्र, नयी हों या पुरानी, सबमें अवश्य लाभ पहुँचाता है।

सेवन-विधि—२ से ४ गोली तक गर्म जलसे। एक पैकट १०० गोलीका ४), ५० गोलीका मूल्य २)

ल्यूकोरीन टेबलेट

[प्रदर, सीलान-रहेमकी अचूक औषधि]

योग—त्रिवंग, अशोक सत्व, सुपारीके फूल, दोखी हीरा इत्यादि।

लाभ—स्त्रियोंकोसफेद गुलाबी रंगबिरंगा कई प्रकारका जो द्रव योनि मार्गसे जाने लगता है जिसके कारण कमरमें दर्द, भूखकी कमी व निर्बलतादि बढ़ती जाती है इस दवाके सेवनसे सब रफा हो जाती है।

सेवन-विधि—चावलोंके धोवन या मुलतानी मिट्टीके निखरे जलसे एक-एक टिकिया दें।

१४ टिकियोंका पैकेट १)

ल्यूकोरीन वर्तिका

[प्रदर-विनाशी-वर्ति]

यह वर्तिका इतनी फलप्रद है कि रात्रिको एक वर्ती रखनेपर अगले दिन ही इसका चमत्कारपूर्ण फल दिखायी देता है। अनेक बार केवल वर्त्तीके प्रयोगसे ही प्रदरकी शिकायत जाती रहती है।

सेवन-विधि—रातको सोते समय १ वर्ती जलमें डुबाकर योनि मार्गमें रखकर सो जाँय। दवा आप ही घुलकर निकल जाती है। १४ बत्तीका मूल्य १)

वर्टीगोन

जिन शख्सोंको किसी दिमाग़ी क़मज़ोरी, आँखकी कमज़ोरी, पेटकी बीमारी या आम कमज़ोरीके कारण उठते-बैठते चक्कर आते हों, सिरमें धक्के लगते हों, घुमेर पड़ता हो, आँखोंके आगे अन्धेरा आ जाता हो, ऐसोंको यह दवा अत्यन्त फायदा करती है। पुराने सिरदर्दमें भी इससे फायदा होता है।

सेवन-विधि—पानीके साथ १ गोली, दिनमें दो बार सुबह-शाम सेवन करें।

२१ गोलीका पैकेट मूल्य १)

विषमोल

(कुनैन सम लाभकारी मलेरियाकी दवा)

योग—हरताल, संखिया, शंख, चूना, सीप, इत्यादि विशेष वस्तुएँ।

लाभ—सर्दीसे लगकर चढ़नेवाले बुखारोंमें तो यह दवा रामबाण है, और कुनैनसे निम्न बातोंमें विशेष है। एक तो कड़वी नहीं दूसरे चढ़े बुखारमें दीजिये, तीसरे गर्मी खुश्की नहीं करती, चौथे शर्बत, खटाई आदिके साथ दीजिये, पाँचवें लम्बे चौड़े परहेज़की जरूरत नहीं।

सेवन-विधि—१ टिकिया शर्बत नींबू "सिकंजबीन" के साथ प्रभातको और १ टिकिया शामको दें।

८० टिकीका पैकेट १)

व्रणोद्धूलन

छोटे २ बच्चोंको वर्षाकालमें प्रायः फोड़े, फुन्सियां निकलती रहती है और कई २ महीना बच्चे विचारे इन फोड़े फुन्सियोंसे तकलीफ उठाते रहते हैं। अक्सर अनेक तरहकी मरहम, लेप इनके लिये बनते हैं किन्तु, उनके माता पिताओंको लगाने, चिपकाने वगैरहमें बड़ी झंझट और तकलीफ उठानी पड़ती है। फिर भी जैसा फायदा चाहिये वैसा नहीं मिलता। हम काफी अर्सेसे इस बातकी खोजमें थे कि कोई ऐसा योग बने जिसके लगानेमें दिक्कत न हो तथा लाभ भी चमत्कारी हो। कई वर्षों तक अपने दातव्य औषधालयमें प्रयोग करते २ अन्तमें इतना अच्छा धूड़ा (पावडर) का आविष्कार हो सका कि जिसके लगाते ही जलन, दर्द पाक पानी सब दूर हो जाते हैं। और रोते हुवे बच्चोंको अपूर्व शान्ति मिलती है। यह धूड़ा या उद्धूलन स्फोट (छाले) फैलनेवाली फुन्सियां, खारशके जख्म व इसकी लागसे बननेवाली जहरीली फुन्सियां सबमें आश्चर्य जनक लाभ होता है।

प्रयोग—लगानेकी विधि भी बड़ी आसान है। फोड़ा, फुन्सीके स्थानको खूब अच्छी तहर किसी अच्छे साबुनसे धो डालो और उन्हें खुश्क करके उनपर घी, तेल कोई स्नेह चुपड़ दो बस उस चुपड़े हुवे व्रण या फुन्सी पर यह धूड़ा छिड़क दो। यह जम जायगा और राजी कर देगा। मू० ५ तो० १)

शाही नस्य

(नसवार)

योग—केसर, कपूर, काश्मीरी पत्र, वच, कायफल इत्यादि।

लाभ—सिर दर्द, जुकाम, नजला, नाकमें छिछड़ा पड़ना और उससे नकसीर जाना आदि कष्टमें इसका सेवन कराइये और चमत्कारपूर्ण लाभ देखिये।

सेवन-विधि—इस नस्यको जरूरतके समयपर सूँघना चाहिये। १ शीशीका मू.।) १२ शीशीका मू. २।)

शाही सुरमा

योग—कपूर भीमसेनी, ममीरी, सुरमा, पारा, सीसा इत्यादि।

लाभ—नेत्र ज्योतिका कम हो जाना, चश्मा लगानेकी आदत पड़ना, नेत्रकी खारिश, पानी जाना व मैल आना आदि कष्ट इसके सेवनसे दूर होकर अद्भुत लाभ होता है।

सेवन-विधि—दोनों समय सलाईसे डाला जाता है।

छोटी शीशी =) बड़ी शीशी।), छोटी १२ शीशी १=) बड़ी १२ शीशी २।)।

सिफलोल

(उपदंश—आतशककी दवा)

लाभ—बिना मुँह आये ही यह दवा सिफलिसको जड़से उड़ा देती है और पुरानेसे पुराने सिफलिसके फिसादको दो सप्ताहमें दूर कर देती है। यहाँ तक कि छोटे-मोटे फोड़े, हड्डियोंके फोड़े तक मिट जाते हैं।

सेवन-विधि—चूरमा हलवा आदि कुछ खुराक खाकर उसके ऊपर फिर इस दवाके बन्द शीशीको कैपसूलको पानीके साथ या दूधके साथ निगल जाना चाहिये। दवा निकालकर न खावें, इससे दस्त आते हैं। १४ कैपसूलका पैकेट १)

स्क्रोफ़ोलीन

यह दवा कण्ठमालमें अच्छा लाभ करती है जो अभीतक फूटी न हो, नई निकली हों। पेटकी कण्ठमालामें भी लाभदाई है। यदि गिलटियाँ दो चार महीनेकी हों तो बहुत जल्द फायदा होता है और दो चार सालकी हों तो दवाको कुछ दिन खिलाते रहनेसे गाँठ अपने आप बैठ जाती है।

परहेज—खटाई, तेल व भारी भोजन नहीं करना चाहिये।

मात्रा—डेढ़ माशा दवा पानीसे या अर्क कासनीसे या तक्रसे लें। दोनों समय सुबह, शाम। मूल्य १)

सुरमा ज्योतिवर्द्धक

(नेत्र ज्योति बढ़ानेवाला सुरमा)

जिन व्यक्तियोंकी नेत्र ज्योति किसी भी कारणसे कम हो रही है वह एक बार इसका प्रयोग अवश्य ही करके देखें, रतौन्धीमें तो चमत्कारपूर्ण लाभ करता है।

सेवन-विधि—सलाई दोनों समय आँखमें डालें।

१) प्रति तोला।

स्प्लीनीन

विषम ज्वर अथवा अन्य ज्वरोंसे प्लीहा प्राय: बढ़ जाया करती है और प्लीहावृद्धिके कारण पेट बढ़ जाया करता है। खाना हज़म नहीं होता। हल्का-सा ज्वर बना रहता है। हमारी यह औषध दस्त लाकर प्लीहाको छाँटती जाती है और एक सप्ताहके प्रयोगसे बिल्कुल ठीक कर देती है। ज्वर जाता रहता है, भूख खूब लगने लगती है। नया रुधिर काफी बनने लगता है। दो तीन सप्ताहमें रोगी बिलकुल स्वस्थ हो जाता है।

सेवन-विधि—इस शीशोकी औषधि किसी बड़ी बोतलमें डाल दें और १० छटाँक पानी मिलाकर खूब अच्छी तरह मिला दें और दोपहरके भोजनके दो घण्टे बाद एक औंस पीवें। मूल्य १)

स्वप्नोल

(स्वप्नदोषकी औषधि)

लाभ—अधिक स्त्री चिन्तन, कुत्सित विचार-धारणासे उत्तेजना आकर स्वप्नावस्थामें या अज्ञातावस्थामें रात्रिको वीर्य्यपात होना और सप्ताहमें कई-कई बार होना इत्यादि विकारको बन्द कर देता है, वीर्य्यको गाढ़ा करता है; अँग-शैथिल्यको दूर करता है, स्तम्भन शक्ति व पौरुष बढ़ाता है।

सेवन-विधि—रात्रिको १ से २ गोलीतक दूधसे सेवन करें। २८ गोलीका पकेट मूल्य १)

हिमसोल

(गर्मी, बुखार, घबराहटको दूर करनेवाली दवा)

योग—नाग, तवाशीर, इलायची, कमलगट्टा, चन्दन, मिश्री आदिका विशेष योग।

लाभ—बुखारकी अधिकता, घबराहट, अधिक गर्मी, धूप, लू लगना, चक्कर, प्यास आदि कष्टमें इसका सेवन कराइये और अमृततुल्य लाभ देखिये। इसकी समताकी औषध आपको किसी भी चिकित्सामें दिखाई नहीं देगी। यह प्लेग तकके बढ़ते हुए बुखारको रोक देती है।

सेवन-विधि—गर्मी घबराहटके समय शर्बतसे अथवा शीतल जलसे दिनमेंतीन-चार बार सेवन करावें।

कीमत एक पैकेट १)

हुपीन

(बच्चोंकी काली खाँसीकी एकमात्र दवा)

लाभ—काली खाँसी या कुत्ता खाँसी ऐसी बुरी बीमारी है, कि इसकी चिकित्सा कठिन समझी जाती है, पर नहीं, आपको इस दवाके सेवनसे ज्ञात हो जायगा कि काली खाँसीकी चिकित्सा कोई कठिन नहीं। एक सप्ताहके सेवनसे अवश्य लाभ होता है।

सेवन-विधि—आधी रत्तीसे १ रत्ती औषध शहदसे दोनों समय सेवन करावें। मूल्य एक पैकेट १)

हेडीक्योरिन

(सिरदर्दकी चमत्कारिक दवा)

योग—रसचन्द्रिका वटीमें कुछ क्षार नौसादर आदिका संमिश्रण है।

लाभ—सर्दीसे, गर्मीसे, कब्जसे और बुखारके समय होनेवाले दर्दमें इसे दीजिये और १५-२० मिनटमें इसका अद्भुत लाभ देखिये। इसको कितना ही सेवन करें हृदय और रक्तपर बुरा प्रभाव नहीं होता।

पुरानेसे पुराने सिर दर्दमें या दौरेसे होनेवाले दर्दमें भी यह अपना पूर्ण लाभ दिखाता है।

सेवन-विधि—१ टिकी गर्म दूध या जलसे दर्दके समय दें। ४० टिकियोंका पैकेट मूल्य ।।)

आयुर्वेद-विज्ञान-ग्रन्थमाला

द्वारा

प्रकाशित पुस्तकें

आसव-विज्ञान

दूसरा संस्करण

यह किसीसे छिपा नहीं कि आयुर्वेदका एक चमत्कार-पूर्ण अंग आसवारिष्टका निर्माणक्रम हमारे पास कितने अपूर्ण रूपमें रह गया है। सौबार बनाइये कठिनतासे दो-चार बार खराब होनेसे बचता है। इसका मुख्य कारण है हमारी प्राचीन रीतिका लुप्त हो जाना। इसी लुप्तप्राय: विधिको स्वामीजीने बड़े परिश्रमसे पुनः प्राप्त किया है और उसीको आधुनिक विज्ञानसे परिमार्जित कर उक्त पुस्तकमें सरल सुस्पष्ट रूपमें अंकित किया है जिसका विस्तार निम्न है—

[१] आसवकी प्राचीनता और उसका ज्ञान, [२] आसवका व्यवहार और उसकी मादकताका अनुभव, [३] नाडीयन्त्रका आविष्कार और उसके भिन्न-भिन्न सचित्र रूप, [४] आसव सुराकी ऐक्यता और उसके प्रमाण, [५] आयुर्वेदमें आसवका स्थान, [६] आसव बनानेका प्राचीन क्रम व भेद, [७] बने बिगड़े आसवकी परीक्षा, [८] आसव बिगड़नेका कारण और उसका विकृत रूप, [९] आसव और चुक्र अम्लादिमें भेद, [१०] आसव बनानेका कारण, [११] आसवमें परिवर्तन और किण्व कीटाणु, [१२] आसवोत्पादक वस्तुएँ और उनका परिमाण, [१३] उत्ताप ऋतु परिवर्तनादिसे आसवका बनना, बिगड़ना, [१४] भिन्न-भिन्न ऋतुओंमें आसवका बनना, [१५] बने बिगड़े आसवकी परीक्षा, [१६] आसवको सुरक्षित रखनेका अनुभूत उपाय, [१७] आसव बनानेका अधिकार व राज्य नियम [१८] आसवका शुद्ध रूप और उसका वैज्ञानिक विश्लेषण, [१९] आसवके मौलिक पदार्थ व उनका गुण इत्यादि बातोंका खूब अनुभवजन्य वर्णन है। मूल्य सजिल्दका १) डा. व्यय अलग

क्षार निर्माण विज्ञान

द्वितीय संस्करण

यह सब लोग जानते हैं कि आयुर्वैदिक चिकित्सा-पद्धतिमें भिन्न-भिन्न वानस्पत्योद्भूत क्षारोंका काफी प्रयोग होता है। किन्तु हम देखते हैं कि वैद्योंद्वारा बनाये हुये क्षार प्रायः मैले, धूसर वर्ण, और देखनेमें चित्ताकर्षक नहीं होते।

स्वामीजीने बड़े परिश्रमसे क्षार निर्माण-विधिका अनुभव किया है उसको वैद्योंके लाभार्थ क्रमबद्ध कर दिया है। उसमें निम्नलिखित विषयोंका समावेश है।

१. आयुर्वैदिक-चिकित्सा-पद्धतिमें क्षारोंकी उपयोगिता। २. वनस्पतियोंके मौलिक तत्व व क्षारोद्भव धातुएँ। ३. भिन्न-भिन्न क्षारोंका रासायनिकरूप। ४. भिन्न-भिन्न वनस्पतियोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारके क्षारजन्य धातुओंकी मात्रा। ५. भिन्न-भिन्न वनस्पति भस्मसे क्षार निकालनेकी विधि। ६. क्षारोंकी विशुद्ध स्वच्छ बनाकर उसको कणरूपमें लाना। ७. भिन्न क्षारोंके गुण और वज्रक्षार आदिके बनानेका क्रम तथा क्षारोंका उपयोग इत्यादि विषयोंका खूब खुलासा वर्णन है। मूल्य प्रति पुस्तक ।) डाक व्यय भिन्न।

मन्थर ज्वरकी अनुभूत चिकित्सा

(आयुर्वैदिक चिकित्सापद्धतिमें क्रांति उत्पन्न करनेवाली प्रथम पुस्तक)

पन्द्रह वर्षके परिश्रमके पश्चात् श्रीस्वामी हरिशरणानन्द-जी वैद्यने आयुर्वेदान्तर्गत एक सरल चिकित्सा पद्धतिको ढूँढ निकाला है जिसके अनुसार संचारी तथा असंचारी व्याधियोंकी चिकित्सा सफलतापूर्वक की जा सकती है। इसी पद्धितिको समक्ष रखकर आपने व्याधि-मूल-विज्ञान, व्याधि-विज्ञान और चिकित्सा-विज्ञान नामक तीन वृहद् ग्रन्थ लिखे हैं।

पुस्तक और रोगोंपर लिखी जाती परन्तु स्वामीजीने
र ज्वरके बढ़ते हुए प्रकोपको देखकर सर्व प्रथम इसी
पर लेखनी उठाना उचित समझा।

यह रोग कोई भयंकर रोग नहीं है परन्तु माता-पिताकी
ानता और अन्ध विश्वासके कारण ऐसा भयंकर हो
ा है कि रोगी प्रायः अकालमें ही काल-कवलित हो जाते
और चिकित्सकोंके बनाये कुछ नहीं बनता।

स्वामीजी अबतक हजारों रोगियोंका उक्त पुस्तकमें
ित पद्धतिके अनुसार इलाज करके सफलता प्राप्त कर
े हैं।

लेख ऐसा सरल और सुन्दर है कि बिलकुल आसानीसे
मझमें आ जाता है।

पुस्तका साईज २०, ३० का १।१६ है और यह १७५
में समाप्त हुई है। मूल्य १) डाक व्यय अलग

त्रिदोष-मीमांसा

आयुर्वेदके मूलस्तम्भ त्रिदोष-सिद्धान्तपर जो आक्षेप
ामीजीकी ओरसे रक्खे गये हैं, इस समय तक किसी भी
ायुर्वेदज्ञने उनके समाधान करनेका कष्ट नहीं उठाया।
तकमें जो प्रमाण दिये जाते हैं वे इतने अकाट्य हैं कि उनपर
ोंने विचार करके चुप्पी साध ली है। इस पुस्तकमें
दोषवादको छोड़ देनेपर आयुर्वेदका चिकित्साक्रम किस
ार चल सकता है इसपर भी स्वामीजीने काफी प्रकाश
लकर जो सिद्धान्त निश्चित किये हैं विचारणीय हैं। मू० १)

ा गया! छप गया!! छप गया!!!

औषध गुण धर्म विज्ञान

अथवा

औषधि गुण परिचय तथा सेवनविधि

संशोधित तथा परिवर्धित

द्वितीय संस्करण

औषधियोंके अनुपान तथा रोगव्यवस्थाको जाननेके
ये इससे अमूल्य सहायता मिलेगी। इस बार स्वामीजी
ाराजने औषधियोंके सम्बन्धमें जो कुछ अनुभव प्राप्त
ये थे, उन सबका भली प्रकारसे विवेचन एवं संकलन
ा पुस्तकमें किया गया है।
१७५ पृष्ठकी पुस्तकका मूल्य ।) मात्र, डाकखर्च =)

औषध प्रवास पेटिकायें

(Medicine Boxes)

अबतक कार्यालय एक ही प्रकारकी प्रवास पेटिकायें प्रस्तुत करता रहा किन्तु वैद्य समाजमें उनकी बढ़ती हुई माँग देखकर कई प्रकारकी बढ़िया डिजाइनवाली पेटियाँ बनवाई गयी हैं। पाठकोंकी जानकारीके लिये पेटियोंके भिन्न-भिन्न नाम विस्तृत वर्णन तथा कीमतें नीचे दी जाती हैं।

नं० १ प्रवास-पेटिका
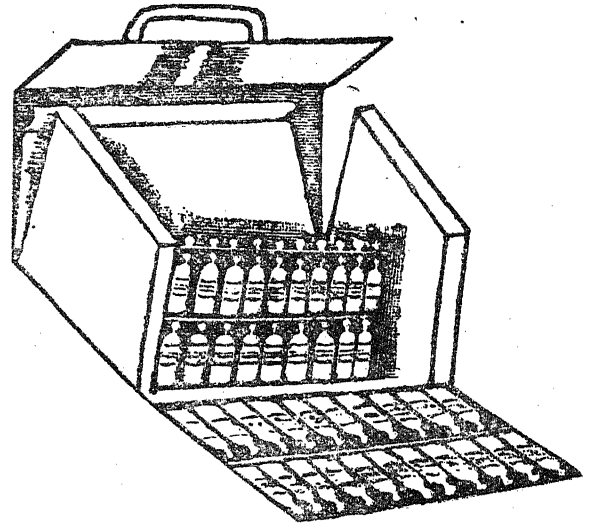
आयल क्लौथ वाली शीशीयुक्त प्रवास-पेटिकाका मूल्य ५॥)

इसमें होमियोपैथीकी २ ड्रामवाली ६ दर्जन शीशियाँ होती हैं।

प्रवास-पेटिका नमूना नं० २

बहुसंख्यक वैद्योंके हमें पत्र प्राप्त हुये हैं जिनमें प्रार्थना की गई है कि प्रवास-पेटिकाके दो नमूने होने चाहियें, अर्थात् बड़ी शीशियाँ भी आ सकें। इस वास्ते अब हमने प्रवास-पेटिका नमूना नं० २ भी तैयार कराया है। इसमें होमियोपैथीकी २ ड्रामवाली २४ शीशी, ४ ड्रामवाली १८ शीशी तथा १ औंसकी लम्बी गोल ९ शीशी होती हैं। इसका साइज $9\frac{1}{2} \times 6\frac{1}{2} \times 4\frac{1}{2}$।

आयल क्लौथ वाली शीशी युक्तका मूल्य ५॥)

दी पंजाब आयुर्वैदिक फार्मेसी, अकाली मार्केट, अमृतसर

नोट—प्रवास पेटिका नं० १ तथा नं० २ काले या ब्राउन चमड़ेकी भी मिल सकेंगी। इनमें पेटीके ऊपरके भाग पर ही चमड़ा लगा होगा। अन्दर कपड़ा होगा। इसका मूल्य काले चमड़ेका १) तथा ब्राउन चमड़ेका २) ज्यादा लगा करेगा।

औषध पाकेट बक्स

यह बक्स बटुएके समान है, बक्स सुन्दर और छोटा होनेसे जेबमें आ सकता है। प्रत्येक मनुष्यको यह बक्स अवश्य रखना चाहिये। इसमें २ ड्राम होमियोपैथीकी १८ शीशियाँ आ सकती हैं। अगर आप वैद्य हैं और दूर रोगीको देखने जाना है, बड़ा बक्स नहीं लेजा सकते तो इसे अरामसे जेबमें डालकर ले जाइये। शीशी युक्त १॥)

औषध पाकेट बक्स नं० २—इसमें १ ड्रामकी १२ होमियोपैथी शीशी आ सकती हैं। मू० शीशी युक्त १)

भिषगाभरण पेटिका—यह पेटी देवदारकी बनी और बढ़िया पालिशसे अलंकृत है। इसे देखते ही तबियत फड़क उठती है। साइज १३×८×६ इंच।

भिषगाभरण पेटिका
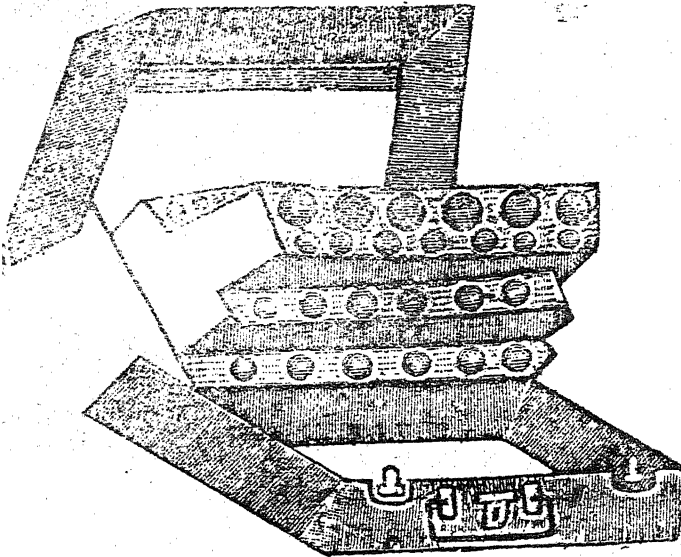
इसमें शीशियोंकी बड़ी सुन्दर व्यवस्था है। यह वैद्यकी सजी सजाई लेबोरेटरी है। पेटी खड़ा हो या पड़ी, शीशियाँ सीधी रहेंगी। १ औंसकी आसवकी १६ शीशियोंके लिये स्थान बने हुए हैं। २ औंसकी ६ गोल शीशियाँ चूर्णके लिये सजाई जा सकती हैं। इसके अतिरिक्त तेल, भस्म इत्यादिके लिये तीस शीशियोंके लिये व्यवस्था है। मूल्य शीशी युक्तका ७)

सिद्धौषधिमंजूषा नमूना १—यह पेटी ७ इञ्च चौड़ी १०½ इञ्च लम्बी और ४ इञ्च ऊँची है। इसमें दो
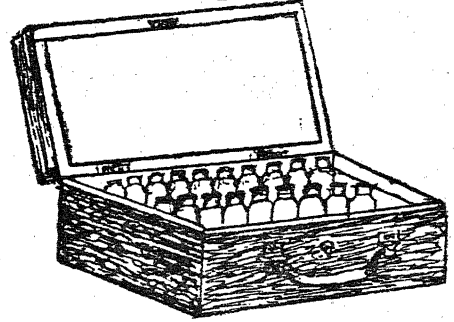
ड्रामकी होमियोपैथीकी ७७ शीशियोंको तरतीबवार रखनेके लिये अत्युत्तम प्रबन्ध है। बक्स बढ़िया देवदारसे बनाया गया है। बढ़िया हैंडल ताला इत्यादिसे इसकी शोभा और बढ़ गई है। तिसपर भी दाम सिर्फ—बगैर शीशी २।) शीशी युक्त ३॥)

नमूना नं. २—यह आकार, प्रकार तथा बनावटमें पहली पेटीसे मिलती जुलती है। इसमें आधा औंसवाली चालीस शीशियोंके लिये समुचित प्रबन्ध है। मूल्य शीशी युक्त ३) शीशी युक्त ३॥)

नमूना नं. ३—यह पेटी नमूना नं. २ से आकार प्रकारमें मिलती जुलती है। पर शीशियोंकी व्यवस्थामें फर्क है। इसमें आध औंसवाली लम्बी २० शीशी तथा १ औंसवाली मैन्थल पेचदार ढकनकी ६ शीशी आती हैं। मूल्य शीशी युक्त ३) शीशी रहित २)

भैषज्यमणि मंजूषा—बढ़िया देवदारकी बनी, चमचमाती पीतलकी कमानियोंसे कमनीय, हैण्डलसे सजी यह पेटिका देखते ही बनती है।

साइज़ ९ इंच चौड़ी, १४ इंच लम्बी, ५ इंच ऊँची है।

इसमें दो ट्रे हैं जिसमें प्रत्येकमें १ तोलेकी २० गोल शीशियाँ तरतीबवार सजाई जाती हैं। एक ट्रे हटाने पर दूसरी ट्रे दिखाई देगी। एक पार्श्वमें रूई वगैरहके लिये
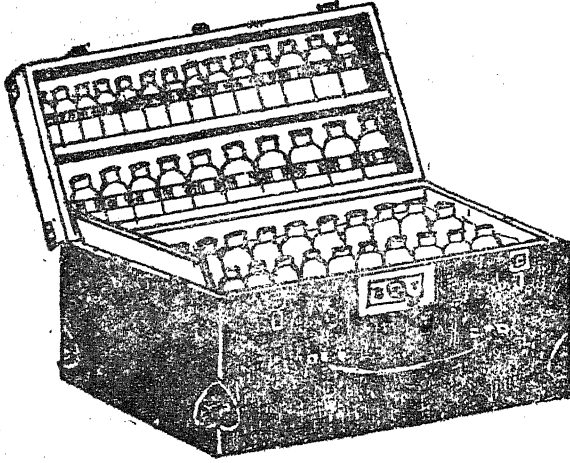
खाना बना हुआ है। ऊपरके ढकनेमें एक औंसकी १० तथा ½ औंसकी १२ लम्बी शीशियोंके लिये व्यवस्था है।

मूल्य शीशी युक्त ६।।)

नया डिज़ाइन नया नमूना

टेबल मेडिसिन बक्स—(मेज़ी औषध पेटी) नं० १—इस प्रकारकी पेटी अभी तक किसीने नहीं बनाई। इसके बनानेका श्रेय पञ्जाब आयुर्वैदिक फार्मेसीको ही है। यह पेटी शिखराकार है। इसके चारों ओर शीशियाँ सजाई जाती हैं। इसका साइज १४×९।।×८ इञ्च है। इसकी सुन्दरता देखते ही बन पड़ती है। ऐसे सुन्दर और इतने सस्ते डिजाइन आपको अन्यत्र नहीं मिल सकते।

इसमें २० शीशी चपटी १ औंसको, और १६ शीशी २ औंसकी लम्बी गोल तथा ५ शीशी रखनेका स्थान है।

बगैर शीशीका मूल्य	५)
शीशी सहित मूल्य	६।।)

टेबल मेडिन बक्स—(मेज़ी औषध पेटी) नं० २—यह पेटी भी मेज़पर रखनेकी है, इसकी साइज १४½×९½×८½ इञ्च और आकार टाइपराइटरके समान है। इसमें शीशीयाँ सीढ़ीयोंके तुल्य चढ़ावमें गेलरीकी तरह रखी जाती हैं। मेज़पर इसकी शोभा बहुत उत्तम लगती है। ऐसी पेटी हर एक वैद्य या डाक्टरको अपनी मेज़की शोभा बढ़ानेके लिये ज़रूरत रखनी चाहिये।

इसमें ४ औंसकी ७ शीशी, २ औंसकी ८ शीशी, १ औंसकी १४ शीशी और ½ औंसकी ९ शीशी रखनेका स्थान है।
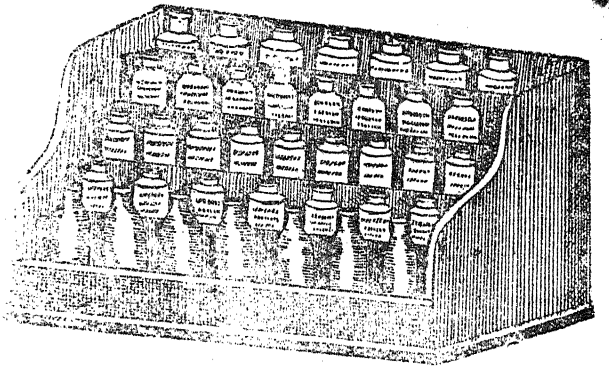
टेबल मेडिसिन बक्स नं० २

बगैर शीशाके मूल्य	५)
शीशी सहित ,,	६।।)

नोट—उपर्युक्त सब प्रकारकी पेटियोंके लिये आधा मूल्य पेशगी आना जरूरी है। यदि इनपर नाम आदि लिखवाना हो तो ग्राहकके लिखनेपर नाम भी लिखवा कर भेजा जा सकता है। पर नाम लिखाईकी कीमत पेटीकी कीमतसे जुदा होगी।

दोरंगे अक्षरोंकी लिखाई एक आना प्रति अक्षर होगी। एक रंगकी)। प्रति अक्षर

२—जो व्यक्ति दर्जनोंकी तादादमें हमसे इकट्ठी पेटियाँ लेना चाहें वे पत्रव्यवहार करें।

दी पंजाब आयुर्वैदिक फार्मेसी, अकाली मार्केट, अमृतसर

चिकित्सा सम्बन्धी उपकरण

वैद्योंमें चिकित्सा सम्बन्धी उपकरणोंके प्रचारको बढ़ता देखकर हमने विदेशोंसे थोक माल मंगवाना शुरू कर दिया है। उपकरणोंके ऑर्डरके साथ आधी कीमत पेशगी आनी चाहिये।
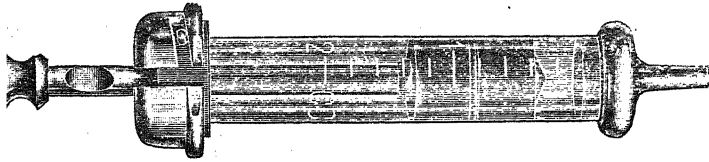
सूचीकाभरण पिचकारी (Record Injection Syringe)
टीका लगाने, सुई द्वारा त्वचाके भीतर दवा पहुँचानेकी पिचकारी। दो c. c. की० ३), ५ c. c. की ४)
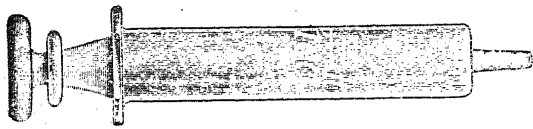
ग्लाससिरिंज (All Glass Syringe) २ c. c. १), ५ c. c. २)

शरीरताप-मापक (Thermometer)
ज़ीलका १।), साधारण १), ॥)
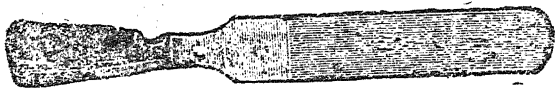
दवाइयाँ मिलानेकी छुरी (Spatula) बढ़िया ।॥) साधारण ॥=)

प्रोब (शलाका) मरहम पट्टी वास्ते कीमत ।)
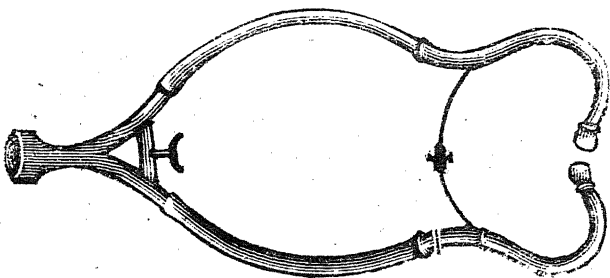
फुस्फुस-परीक्षायन्त्र (Stethoscope)
साधारण ३), मध्यम ७), उत्तम १२)
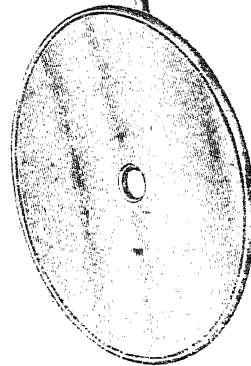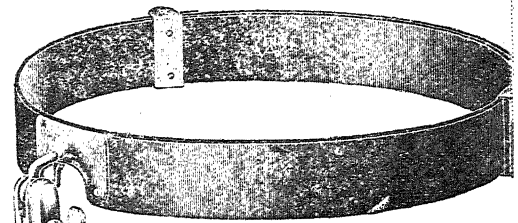
Head Mirror (हेड मिरर)
शीशेको मस्तिष्क पर बाँध कर इसकी सहायता से गला नाक कान भली प्रकार देखे जा सकते हैं। कीमत ६)
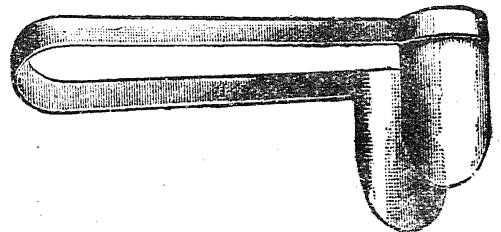
Nasal Speculam (नाक देखनेका यन्त्र)
इस यन्त्रकी सहायतासे नाकके अन्दरकी शोथ या अस्थिविकार आदि देख सकते हैं।
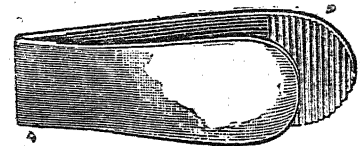
Tongue depressor (जीभा दबानेका यन्त्र)
इस यन्त्रसे जिह्वाको दबा कर गलशोथ टौन्सिल वगैरह देखते हैं। कीमत १)
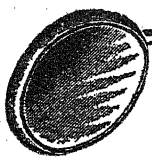
MOUTH MIRROR (**गलेके अन्दरके भागको देखनेका शीशा**)

इस यन्त्रकी सहायतासे गलेके अन्दरके जख्म या शोथको देख सकते हैं। कीमत २)

AUROSCOPE (**कान देखनेका यन्त्र**)

इस यन्त्रमें तीन नाली पृथक् लगी होती हैं। जो कि छोटे बड़े कानके हिसाबसे काममें लाते हैं। कीमत ६।।।)

BREAST PUMP (**दूध निकालनेका यन्त्र**)

स्तनों पर व्रण वगैरह होनेसे बच्चोंको दूध नहीं दिया जाता ऐसी हालतमें दूधकी मात्रा ज्यादा हो जाती है जो कि कष्ट देती है। इस यन्त्रकी रबड़को दबा कर हवा निकाल कर पम्पको स्तन पर लगा देते हैं। स्तनोंमें से स्वयं दूध इस पम्पमें आ जाता है।

कीमत १)
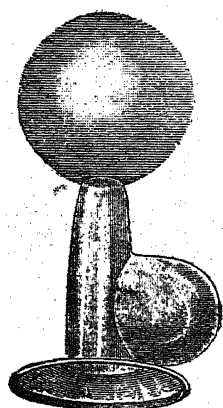
HOTWATER BOTTLES

(**गरम पानीकी रबड़की बोतल**)

न्यूमोनिया या अन्य छातीके दर्द वगैरहमें तथा अन्य शोथ युक्त अंगोंमें या जोड़ोंकी दर्दमें सेक देनेसे बड़ा आराम देता है।

कीमत १।।), बढ़िया ४।।)
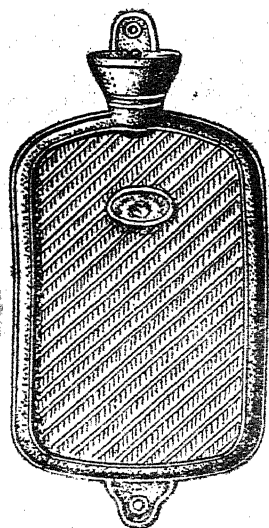
ICE CAP (**बर्फ की टोपी**)

तीव्र ज्वरोंमें ज्वरके ताप क्रमको कम करनेके लिये इस टोपीमें बर्फ डालकर सिर पर रखते हैं। कीमत १)

UNIVERSAL TOOTH FORCEP.

दांत उखाड़नेका यन्त्र

इस जम्बूरसे कोई भी दांत बड़ी आसानीसे उखाड़ा जा सकता है। कीमत २)

GONORRHOEA SYRINGE.

गनोरिया पिचकारी

सूजाकमें मूत्रेन्द्रियको अन्दरसे धोनेके लिये या उत्तर बस्तिके लिये इस पिचकारीको वर्ता जाता है।

कीमत ।।) चार आना

GLYCERINE SYRINGE.

ग्लिसरीन पिचकारी
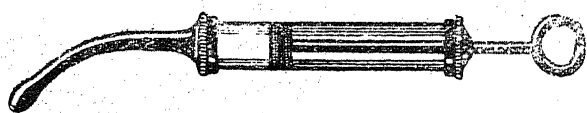
छोटे बच्चों या अत्यन्त कमजोर बीमारोंको इस पिचकारीसे ग्लिसरीनका एनीमा दिया जाता है।

कीमत १ औंस ।।।) दो औंस १)

पाकेट सर्जिकल केस

वैद्योंमें सर्जरीका प्रचार बढ़ता हुआ देखकर हमने वैद्योंकी सुविधाके लिये बहुत ही सुन्दर पौकेट सर्जिकल केस अर्थात् जेबी ड्रैसिंग केस खास तौर पर तैयार कराये

हैं। प्रत्येक केसमें सर्जरीके लिये आवश्यक १० औजार रहते हैं। मूल्य फी केस ११), पोस्टेज पृथक्।

EAR SYRINGE (कान धोनेकी पिचकारी)

२ औंस १।।।)
४ औंस २)

EYE DROPPER.

ड्रापर—आँखमें औषध डालनेके लिए। ≡) दर्जन

MEASURING GLASS.

औषध नापनेका ग्लास
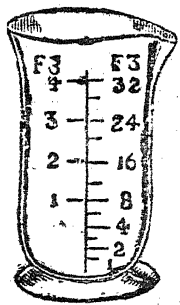
१औं० ≈), २औं० ≡)
४ औं० ।≈)
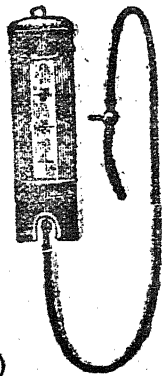
IRRIGATOR.

पिचकारी

बस्ति यंत्र रबड़की नाली टूटी सहित

अनैमलका १।।)
कांचका २।।)

औषध तोलनेका अंग्रेजी कांटा

मय बांटके १।।।)
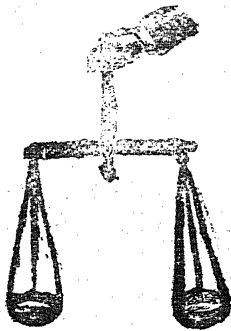
MAGNIFYING GLASS.

मोतीझरा या मन्थर ज्वरमें दाने देखनेका शीशा कीमत ।।।)
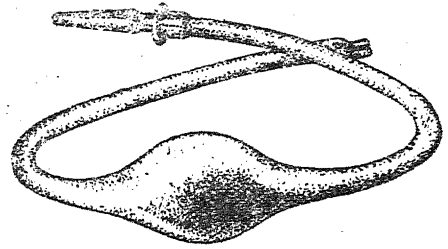
ENEMA SYRINGE (एनीमा पिचकारी)

कीमत १।।)

लोह पत्थर व शीशा के उत्तम खरल।

खरल शीशा (काँच)

मूल्य नं० १ ।।।) नं० २ १।।)

खरल चीनी (गोल)
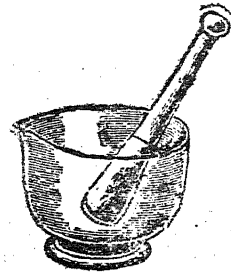
लोहेके गोल खरल

१ फुट व्यास गहराई ६ इंच, मू० ७)

किस्तीनुमा लोह खरल

यह खरल लम्बे तथा चिकने साफ हैं। इनके साइज इस प्रकार हैं।

नं० १.	१ फुट लम्बे ७½ इंच चौड़े	५)
नं० २.	९½ इंच × ६ इंच	४)
न० ३.	८½ इंच × ४½ इंच	३)

अब तक हम लोहे के खरल ही बनवाते थे, परन्तु वैद्य समुदाय की माँग को देखकर असली टोली पत्थर के खरल भी बड़े परिश्रम से बनवाये हैं—वर्णन इस प्रकार हैं—

षट् कोण खरल
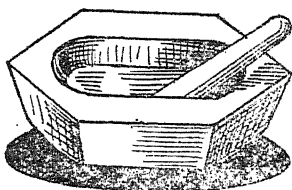
लम्बाई		और		गहराई	कीमत
९½	×	६¼	×	२¾ इंच	१४)
१०	×	६¼	×	२¾ ,,	१५)
१०¾	×	६¾	×	३ ,,	१६)
१२	×	७¾	×	३¼ ,,	१८)
१२½	×	८	×	३ ,,	१९)
१३	×	८½	×	३¼ ,,	१९॥)
१३	×	९¼	×	३½ ,,	२०)
१३	×	१०	×	४ ,,	२१)
१३¾	×	८¾	×	३ ,,	२१)
१४	×	९	×	३½ ,,	२२)

अष्ट कोण खरल
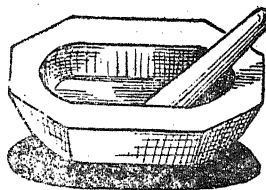
लम्बाई	चौड़ाई	गहराई	कीमत
१२ ×	८ ×	३ इंच	१८)
१५ ×	१० ×	४ ,,	२२)
१७ ×	१०½ ×	४½ ,,	३४)
१७½ ×	११½ ×	५ ,,	३५)

भार तोलनेकी मशीन

इस मशीन द्वारा अपना या रोगीका भार आसानीसे तोला जा सकता है। कीमत २५)
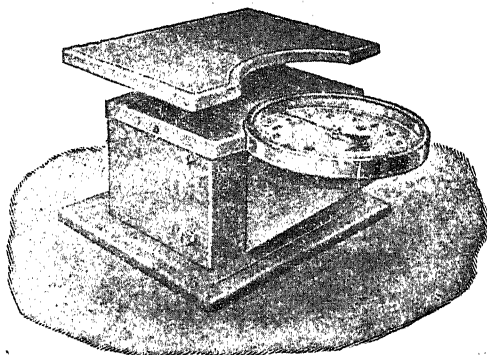
खाली शीशियाँ

कलमी शीशीका वजन	प्रति दर्जनका भाव	प्रति गुर्सका भाव
३ माशा	=)	१।)
६ माशा	=)॥	१॥)
१ तोला	≡)	१॥।)
२॥ ,,	।)	२॥)
५ ,,	।–)	३।)

शीशियाँ मैन्थल पेचदार ढक्कनवाली

६ माशा	≡)	२)
१ तोला	।)	२॥)
२॥ ,,	।≡)	४॥)
५ ,,	॥–)	६)
१० ,,	१।)	१२)

टैबलट शीशियाँ

६ माशा	॥)	५॥)
१। तोला	॥)	६)
१ औंस	॥-)	६।)
२ „	॥≡)	७॥)

कार्क

३ माशा ≡), १ तोला ≡)॥, १ औंस ।)
२ औंस ।)॥, ४ औंस ।-), ८ औंस ।-)॥
१६ औं० ।≡), बोतल ।=) गुर्स

बढ़िया लकड़ीकी डिब्बियाँ मर्हमवाली

१ औंस लम्बी गोल	दर्जन	।)	गुर्स	२॥)
½ औंस ¼ औंस	„	≡)	„	२)

नोट—चिकित्सामें काम आनेवाली डाक्टरी औषधियाँ व अन्य यन्त्र भी किफायतसे मिल सकते हैं। उपरोक्त चौथाई कीमत पेशगी आनी चाहिये।

ब्रांच मैनेजरोंकी आवश्यकता

हमारी फार्मेसी आयुर्वेदिक और यूनानी दवाइयाँ तैय्यार करती है। इसका काम यू० पी०, सी० पी०, बम्बई, बिहार, मद्रास आदि में फैला हुआ है। अधिकतर सारा व्यापार वैद्यों, हकीमों, डाक्टरों और पन्सारियोंसे ही है। जो व्यक्ति आयुर्वेदके अच्छे ज्ञाता तथा इङ्गलिश, उर्दू जानते हों और नकद जमानत जमा करा सकते हों प्रार्थना-पत्र भेजें। किसी कालिज या विद्यालयके प्रमाणपत्र हो तो प्रार्थना-पत्रके साथ उसकी नकल आनी चाहिये। वेतन ब्रांचकी दुकानका किराया फर्नीचर आदि सब फार्मेसीकी ओरसे दिया जायगा। फार्मेसीके कार्यक्रमको समझनेके लिये सूचीपत्र देखें।

जो व्यक्ति नकद जमानत नहीं दे सकते पत्र-व्यवहार न करें। पत्रोत्तरके लिये जवाबी कार्ड या लिफाफा भेजें।

जनरल मैनेजर

विक्रयार्थ कुछ अच्छी मशीनें

जबसे हमने मशीनें लगाई हैं तबसे अनेक वैद्योंके पत्र इस अभिप्रायके आ रहे हैं कि आप स्वल्प मूल्यकी पीसने-की, गोली बनानेकी, टिकिया बनानेकी ऐसी मशीनें तय्यार करावें जो छोटे २ वैद्य उनसे लाभ उठा सकें। वैद्योंकी भारी माँग देखकर हमने कुछ ऐसी पूर्ण सफल मशीनें तय्यार कराई हैं जिनसे हरएक वैद्य आसानीसे दवा पीस कर गोली व टिकिया बना सकता है। यही मशीनें यदि विलायती ली जाँय तो इनकी जो कीमतें हमने दी हैं तिगुनीसे ज्यादा बनती हैं। हमने उन विलायती मशीनों परसे ही यह मशीनें तय्यार कराई हैं। आशा है इनसे अनेक वैद्य काफी लाभ उठा सकेंगे। उनका विवरण और मूल्य नीचे दिया जाता है।

पीसनेकी मशीन
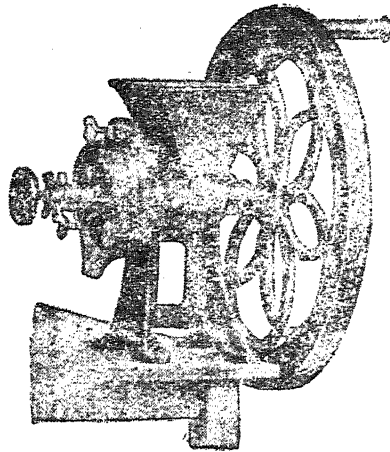
इस मशीनमें त्रिफला, त्रिकुटा, चित्रक छाल, वाय-विडंग, अतीस, कुठ निमक आदि जो औषध डाल दें उन्हें यह प्रथम तोड़ डालती है। फिर साथ ही यब कूट बनाकर आगे उन्हें पीस कर बारीक बना देती है। इससे सब चीजें ८० नं० की चलनीमें छनी जितनी बारीक हो जाती हैं। किन्तु इसमें चित्रक मूल, मुलहटी, चिरायता जैसी रेशेदार चीजें नहीं पिस सकतीं। यह स्मरण रखना चाहिये। हाँ, यह रेशेदार चीजें कूटकर इसमें डाली जाँय तब पिस जाया करती हैं। विलायतीकी कीमत १५०) रु० है और देसीकी ७५) रु० हमने इसकी कीमत लागत मात्र ३५) रु० रक्खी है।

टिकिया बनानेकी मशीन
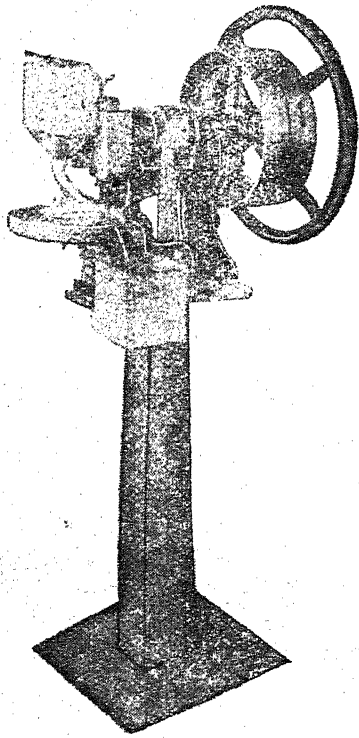
यह मशीन बिजली की ताकतसे चलनेवाली थी किन्तु इसमें कुछ ऐसी विशेषता कर दी गई है कि इसे हाथसे चलाकर १—१॥ माशे तककी टिकिया बनाई जा सकती है। १ माशेकी टिकिया १० घंटेमें २५-३० सेर तक बना देती है। और ½ आधी रत्तीकी टिकिया ८ घंटेमें ४ सेर के लगभग निकाल देती है। इसे मशीनके साथ ½ आधी रत्तीसे लेकर १ माशे तककी टिकिया बनानेके भिन्न भिन्न ८ डाई पंच साथमें भेजे जाते हैं। इस मशीनसे बहुत अच्छी चमकदार टिकिया बनती हैं। विलायती मशीनकी कीमत ७००) रु० है। हम उसे २५०) रुपयेमें दे रहे हैं।

गोलियाँ बनानेकी रोलर मशीन

इसका ब्लाक समय पर तय्यार न हो सकनेसे नहीं दिया गया।

इस मशीनसे २ रत्तीकी एक साइजकी बत्ती बनती है। बत्तियाँ बनाने की मशीन भी साथमें है। एक तरफ एक मशीनसे बत्तियाँ तय्यार करते जाइये और दूसरी ओर उन बत्तियोंको मशीन पर रखकर मशीन घुमाते रहिये। एक साइजकी बत्तियाँ कटकर गिरती चली जायँगी। यही विलायती मशीन ४५०) रु० की है। हम पूरा सेट १५०) रु० में देते हैं। यह मशीन एक ही साइजकी गोली बना सकती है। एक मशीन हर साइजकी गोली नहीं बना सकती।

हाथसे गोली बनानेकी साधारण मशीन

यह गोलियाँ बनानेकी मशीन वैद्योंके आग्रहपर विलायती मशीनके मुकाबलेकी बहुत बढ़ियाँ पीतलकी बनवाई है। २ रत्तीकी साइज तककी बहुत बढ़ियाँ गोली इससे बनती है। इसपर संगमरमरकी खूबसूरत टाईल लगी हुई है जिसपर बेलकर उसी साइजकी बत्तियाँ बन जाती हैं। जब बत्ती बन जाय तो काटने और गोल करने के लिये मशीनपर डालकर हाथसे रगड़ दीजिये अपने आप बढ़ियाँ गोल गोलियाँ निकल आवेंगी।
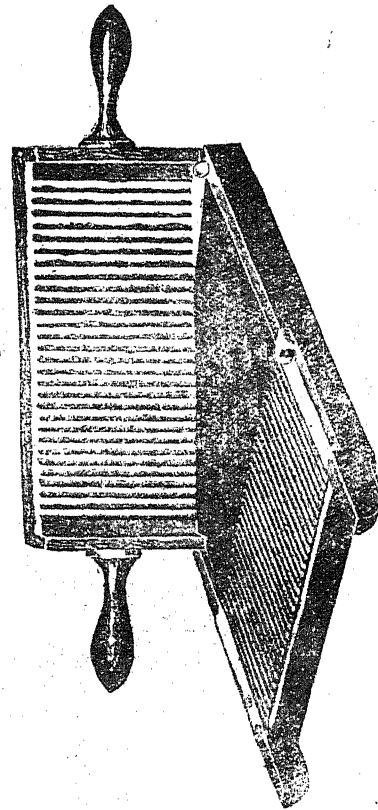
प्रति मशीनका मू० १५) रुपया।

बादाम रोगनकी मशीन

बादाम रोगन निकलनेकी हमने जो मशीनें पहिले बनवाई थीं उसमें एक बार ऽ॥ सेरसे ऊपर गिरी पड़ती थी उसकी कीमत भी अधिक होनेके कारण बहुत कम वैद्योंने लीं। छोटी मशीनकी मांग अधिक होनेके कारण हमने छोटे साइजकी मशीन ऐशी तय्यार कराई है जिसमें ऽ।-ऽ॥। तक बादाम गिरी डालकर उसका आसानीसे रोगन निकाला जा सके। इसकी कीमत लागत मात्र २०) रु० है।

रस निचोड़नेकी मशीन

हरी वनस्पतियोंके रस व औषधियोंके क्वाथोंके रस हाथसे नहीं निचोड़ते, बहुतसा हिस्सा उसका रह जाता है और लुगदीके साथ चला जाता है। इसी कष्टका अनुभव करके यह मशीन तय्यार कराई है। इसमें आध सेर रस वाली चीज़ डाल कर दबावें तो उस दवा पर इतना प्रेस (दबाव) पड़ता है कि उसका सारा रस निकल जाता है। औषधका सूखा फुजला ही बच जाता है।

इस मशीनका रस निचोड़ने वाला भाग गन मेंटल (पीतल भेद) का बना हुआ है। मूल्य इसका ४०) रु० है।

नोट—१. मशीनें मंगाते समय आधा रुपया आर्डरके साथ पेशगी आना चाहिये।

२. इन मशीनोंके सम्बन्धमें पूछनेके लिये जवाबी कार्ड या लिफाफा आना चाहिये।

दस हजार नुसखे

भारतवर्षका जन-समाज दीन-हीन क्यों हो रहा है? जनतामें गरीबी और बेकारी क्यों बढ़ती जा रही है? इन प्रश्नोंका उत्तर मिलता है, हमारे यहां कला-कौशलका अभाव और अच्छी अनुभूत बातोंको छिपानेकी प्रथा, नुसखोंको न बतानेका रिवाज है। अब, पाश्चात्य जन-समाज क्यों उन्नति करता जा रहा है? वहां कला-कौशल बड़ी तेजीसे क्यों बढ़ रहा है? जनतामें सुख, समृद्धि क्यों आ रही है? उत्तर—वहां आविष्कृत बातोंको सैद्धान्तिक रूपमें प्रचार किया जाता है। एक विशेषज्ञ दूसरे विशेषज्ञसे सहयोग करता है, उनमें संगठित होकर काम करनेकी शक्ति है।

क्या यह सब बातें हम अपनेमें उत्पन्न नहीं कर सकते? क्या आज तकके कला-कौशल और हुनर तक हम नहीं पहुँच सकते? क्या इस समय तकके अनुभूत नुसखोंको हम नहीं जान सकते? अवश्य!—"उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी" उद्योगी पुरुष सब कुछ प्राप्त कर सकता है। इस बातकी ओर विज्ञान परिषद् प्रयाग आगे आया। उसके सुयोग्य वैज्ञानिक प्रोफेसरोंने परस्पर सहयोग देकर यह निश्चित किया कि एक ऐसा वृहद् ग्रन्थ तय्यार किया जाय जिसमें मंजन, इत्र, तेल, फेस-क्रीम, साबुन, रोशनाई, लेई, सरेस, रंग, वार्निश, एनामेल, क़लई, सीमेंट, सेलुलायड, अचार, मुरब्बा, शरबत, गृहस्थी, धुलाई, फ़ोटोग्राफ़ी आदि छोटे २ कला-कौशल सम्बन्धी घरेलू धन्धे भी गुप्त व प्रकट रूपमें चल रहे हैं उनके रहस्य प्रकट किये जायँ और उनके नुसखे व बनानेकी सही २ तरकीबें बताई जांय। स्वास्थ सम्बन्धी अनेक रहस्यपूर्ण बातें तथा अनेक रोगों पर शतशोनुभूत योग ऐसे बताये जांय जिनको कौड़ियोंकी लागतमें बनाया जा सके, तथा उनसे साधारणसे साधारण ग्रामीण जनता भी लाभ उठा सके। हर्षका विषय है कि वर्षोंके निरन्तर परिश्रमके परिणाम स्वरूप उक्त पुस्तकका प्रथम भाग प्रकाशित हो गया है जिसकी एक एक बात, जनताको असीम लाभ पहुँचाने वाली हैं जिनके पढ़ने और व्यवहारमें लानेसे शारीरिक व आर्थिक दोनों ही सुख मिल सकते हैं। जिसने इसे एक बार देखा वह प्रसन्नतासे फूला न समाया। अनमोल चीज है।

प्रथम भागका मूल्य लागत मात्र २॥) है।

पता—मंत्री, विज्ञान परिषद्, प्रयाग।

मुद्रक—ना० रा० सोमण, श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस, जतनबर, बनारस सिटी ।

विज्ञान Reg. No. A. 708
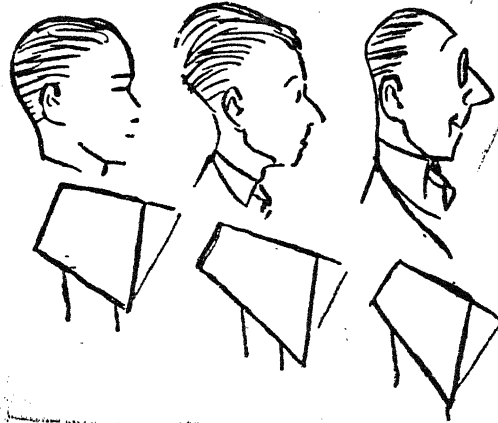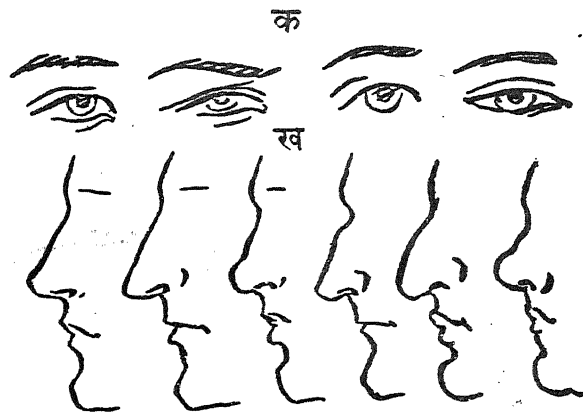
छप गया !! छप गया !! छप गया !!

आसव-विज्ञान (दूसरा संस्करण)

स्वामी हरिशरणानन्द जी कृत

यह किसी से छिपा नहीं है कि यह उनकी सर्वप्रथम मौलिक कृति है और इस पुस्तक के प्रकाशित होने पर आसवारिष्ट-सम्बन्धी विषय को लेकर काफ़ी विवाद होता रहा। विरोधी पक्ष ने इस पर लेख ही नहीं लिखे प्रत्युत पुस्तकें तक प्रकाशित कीं। उस समय तक स्वामी जी चुप रहे। जब आसव-विज्ञानके दूसरे संस्करण का अवसर आया तो स्वामी जी ने उनकी योग्यता वैज्ञानिकता, तथा क्रियात्मक अनुभव का परिचय देना उचित समझा।

दूसरे संस्करण की विशेषतायें

इस संस्करण में स्वामी जी ने उन समस्त आक्षेपों का मुँहतोड़ उत्तर दिया है जो सम्पादकों, अध्यापकों, आयुर्वेदाचार्यों और आयुर्वेदालंकारों ने समय-समय पर किये थे। एक तो पुस्तक इसी उद्देश्य की पूर्ति में काफ़ी बढ़ गई है।

दूसरे, इस संस्करण के समस्त आसवरिष्टों का स्वामी जी ने अकरादि-क्रम से संग्रह कर दिया है। इस एक पुस्तक के पास होने पर आसवरिष्ट के लिये किसी अन्य ग्रन्थ को उठा कर देखने की आवश्यकता नहीं रहती।

तीसरे, स्वामी जी ने समस्त मानों का संशोधन कर के आसवों के निर्माण में प्रचलित मान को रक्खा है जिससे तुला-प्रसृति का झगड़ा जाता रहा।

चौथे, इसमें आपने अपने निजी अनुभव से आसवरिष्टों के गुण तथा लक्षण और रोगानुसार आसवरिष्टों के गुण-धर्म बतलाये हैं तथा किस-किस रोग पर कौन-सा आसव देने पर कैसे उपयोगी सिद्ध हुआ है इसकी विशद व्याख्या की है।

"आसव विज्ञान पढ़ा। यथा नाम तथा गुण की कहावत चरितार्थ हुई। इस विषय का प्राच्य प्रतीच्य सब विज्ञान आपने एकत्र कर वैद्यक समाज की बड़ी सेवा की है। आपकी संजीवनी लेखनी से चमत्कृत भाषा में अभी अनेक ग्रन्थरत्न प्रकाशित होंगे ऐसी आशा है।

आशा है, विज्ञान प्रेमी इसका पूर्ण उपयोग कर नष्ट होते हुए आसवरिष्टों की प्रक्रिया का सुधार करेंगे।"—(ह०) **कविराज प्रतापसिंह,** अध्यक्ष, आयुर्वेद विभाग, हिन्दू-युनिवर्सिटी, बनारस।

पुस्तक बढ़कर २५० पृष्ठ की हो गया है। फिर भी मूल्य सजिल्द का वही १) रक्खा है।

प्रकाशक—आयुर्वेद-विज्ञान ग्रन्थमाला ऑफ़िस, अमृतसर

विक्रेता—पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी, अमृतसर और

विज्ञान-परिषद्, इलाहाबाद

अगस्त, १९३९ मूल्य ।)

प्रयाग की विज्ञान-परिषद् का
मुख-पत्र जिसमें आयुर्वेद
विज्ञान भी सम्मिलित है

भाग ४९, संख्या ५

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces & Central Provinces, for use in Schools and Libraries.
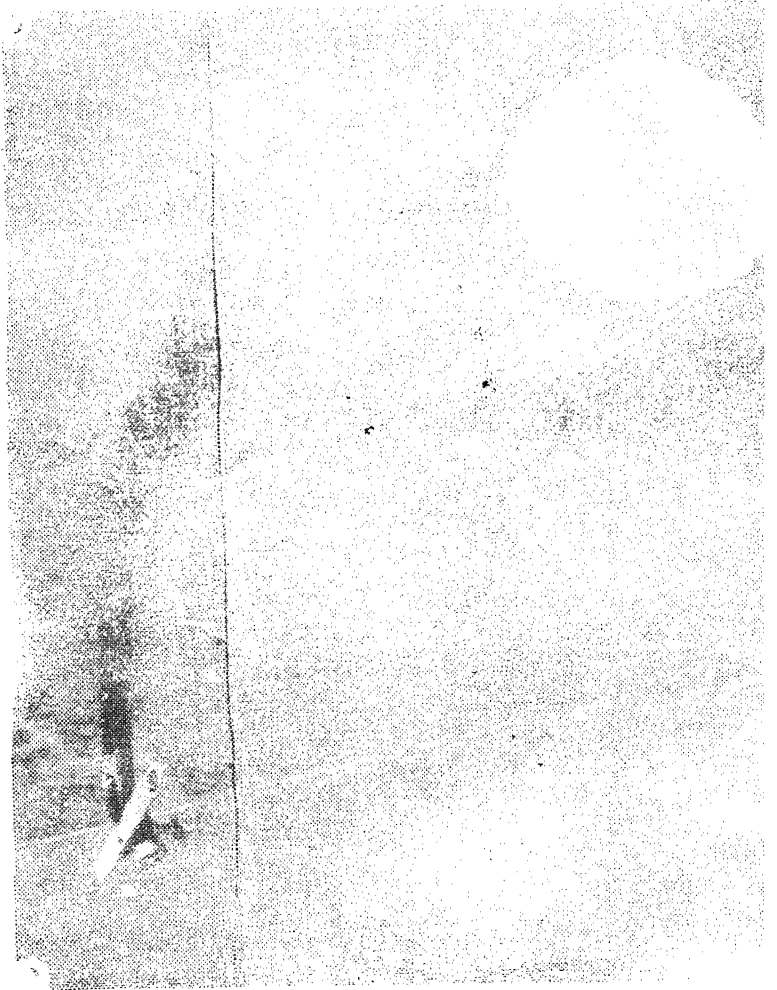
विज्ञान

पूर्ण संख्या २९३ | वार्षिक मूल्य ३)

नियम

(१) विज्ञान मासिक पत्र विज्ञान-परिषद्, प्रयाग, का मुख-पत्र है।

(२) विज्ञान-परिषद् एक सार्वजनिक संस्था है जिसकी स्थापना सन् १९१३ में हुई थी। इसका उद्देश्य है कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययन को प्रोत्साहन दिया जाय।

(३) परिषद् के सभी कर्मचारी तथा विज्ञान के सभी सम्पादक और लेखक अवैतनिक हैं। मातृभाषा हिन्दी की सेवा के नाते ही वे परिश्रम करते हैं।

(४) कोई भी हिन्दी-प्रेमी परिषद् की कौंसिल की स्वीकृति से परिषद् का सभ्य चुना जा सकता है। सभ्यों को ५) वार्षिक चन्दा देना पड़ता है।

(५) सभ्यों को विज्ञान और परिषद् की नव-प्रकाशित पुस्तकें बिना मूल्य मिलती हैं।

नोट—आयुर्वेद-सम्बन्धी बदले के सामयिक पत्रादि, लेख और समालोचनार्थ पुस्तकें 'स्वामी हरिशरणानंद, पंजाब आयुर्वेदिक फ़ार्मेसी, अकाली मार्केट, अमृतसर' के पास भेजे जायँ। शेष सब सामयिक पत्रादि, लेख, पुस्तकें, प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र तथा मनीऑर्डर 'मंत्री, विज्ञान-परिषद्, इलाहाबाद' के पास भेजे जायँ।

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते.
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्याभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ४९	प्रयाग, सिंह, संवत् १९९६ विक्रमी	अगस्त, सन् १९३९ ई०	संख्या ५

पोरसीलेन

[ले० प्रो०—फूलदेव सहाय वर्मा]

सफ़ेद मिट्टीके उन बर्तनोंको 'पोरसीलेन' कहते हैं जिनमें जल प्रविष्ट नहीं कर सकता और जो पर्याप्त पतला होनेपर पारभासक होते हैं। जलका प्रविष्ट न होना इन्हें टेराकोटासे और पारभासकता इन्हें पत्थरके बर्तनोंसे विभेद करता है। अच्छा पोरसीलेन पर्याप्त पतला होने पर ही पारभासक होता है, और मोटा होनेसे उसकी पारभासकता नष्ट हो जाती है। पोरसीलेन तीन प्रकारके होते हैं। (१) कठोर पोरसीलेन (२) कोमल पोरसीलेन और (३) बोना चीनी व इङ्गलिश पोरसीलेन।

कठोर पोरसीलेन पहले-पहल चीन देशमें बना था और वहाँसे ही यूरोप आया। इसपर लुक चढ़ा होता है जो १३००-१६००° श० के बीच तापक्रम पर काँच सा बन जाता है। कोमल पोरसीलेन कठोर पोरसीलेनसे भिन्न होता है। काँच सा फ्रिटका बना होता है। ये निम्न तापक्रमपर पकाये जाते हैं और उनपर कोमल लुक फेरा होता है। ऐसा पोरसीलेन पहले-पहल चीनी पोरसीलेन की नकल करनेकी चेष्टामें फ्रांसमें बना था।

बोना चीनी व इङ्गलिश पोरसीलेन इङ्गलैण्डमें बना था। यह बहुत निम्न तापक्रम पर ही पकाया जाता है। इसपर चित्रकारी सरलतासे हो जाती है। इसके 'बौड़ी' अधिक उच्च तापक्रम पर पकाये जाते हैं और लुक निम्न तापक्रमपर पकाया जाता है। इसकी विशेषता यह है कि इसमें जली हुई हड्डी व अस्थिभस्म रहता है।

पोरसीलेन सामान पहले निम्न तापक्रम पर पकाये जाते हैं। ऐसे पके हुये और बिना लुक फेरे हुये सामानों को 'बिस्कुट' कहते हैं। इन बिस्कुटों पर फिर लुक फेरे जाते हैं और तब पकाये जाते हैं। पोरसीलेन लुकके संगठन बिस्कुटके संगठनके समान ही होते हैं। पोरसीलेनके समान सफेद केओलीनके बने होते हैं। केओलीनके साथ फेलस्पार और स्फटिक मिला होता है पोरसीलेनमें प्रायः सफेद मिट्टी (केओलीन) ५० भाग

फेलस्पार २५ भाग
स्फटिक २५ भाग रहता है।

साधारण पोरसीलेन चार प्रकारके होते हैं। एक पोरसीलेनमें मिट्टीका अंश बहुत अधिक और फेलस्पार और स्फटिकका अंश कम होता है। इन्हें पिघलानेके लिये पर्याप्त कैलसियम कार्बोनेट डालते हैं। सेवर पोरसीलेन ऐसा पोरसीलेन है जिसमें सफेद मिट्टी ६६ भाग, स्फटिक १२ भाग फेलस्पार १५ भाग और कैलसियम कार्बोनेट ७ भाग रहता है।

दूसरा पोरसीलेन वह होता है जिसमें फेलस्पारका अंश अधिक और कैलसियम कार्बोनेटका कम होता है। कार्लस्वाड पोरसीलेन ऐसा पोरसीलेन है इसमें सफेद मिट्टी ५१·८ भाग, स्फटिक २४·५ भाग, फेलस्पार २१·८ भाग, कैलसियम कार्बोनेट १·६ भाग रहता है। तीसरे प्रकार का पोरसीलेन वह होता है जिसमें मिट्टीका अंश कम, पर फेलस्पारका अंश बहुत अधिक होता है। ऐसा पोरसीलेन जापानी पोरसीलेन है जिसमें मिट्टी ३१ भाग, स्फटिक ४१ भाग और फेलस्पार ३३ भाग रहता है। चौथे प्रकारका पोरसीलेन वह है जिसमें मिट्टीका अंश बहुत अधिक, स्फटिकका अंश सामान्य और कुछ फेलस्पारके स्थानमें कैलसियम कार्बोनेट रहता है। ऐसा पोरसीलेन बर्लिन व बेलजियम पोरसीलेन है। बर्लिन पोरसीलेनमें मिट्टी ५३ भाग, स्फटिक २० भाग, फेलस्पार और चूना २७ भाग रहता है। बेलजियम पोरसीलेनमें मिट्टी ५८ भाग, स्फटिक २६ भाग और फेलस्पार और चूना १६ भाग रहता है।

कोमल पोरसीलेन प्रधानतः सौन्दर्यके सामानोंके लिये प्रयुक्त होता है। ऐसे पोरसीलेनमें मिट्टी २५, स्फटिक ४५ और फेलस्पार ३० भाग रहता है। कोमल पोरसीलेनसे सौंदर्यके सामान बड़े अच्छे बनते हैं। अपेक्षाकृत निम्न तापक्रमपर यह तैयार होता है।

पोरसीलेन तैयार करनेकी विधि यह है। केओलीनके सिवाय अन्य कच्चे सामानोंको चकमक पत्थरके गोलेके साथ बड़े बड़े बेलनोंमें रख कर खूब महीन पीसते हैं। प्रायः ४० घण्टेमें यह पीसना समाप्त होता है। इन्हें फिर चलनीमें छानकर प्रबल क्षुब्धक लगी हुई बड़ी टंकीमें ले जाते हैं। वहाँ उसमें केओलीन मिलाकर कई घंटे तक पूर्णरूपसे मिलाते हैं। इसे फिर इस टंकीमें डालकर वैद्युत् चुम्बकमें लेजाकर फिर फिल्टर प्रेसमें कड़े होनेके लिये छानते हैं। फिल्टर प्रेस एक ऐसा यंत्र है जिसमें मिट्टीसे पानी निकलकर मिट्टी कड़ी हो जाती है। पहले काठके प्रेस इस्तेमाल होते थे; पर अब लोहेके प्रेस इस्तेमाल होते हैं। इन प्रेसोंमें अनेक पट्ट होते हैं। दो पट्टोंके बीच खाली स्थान होता है। इनमें रुईके मजबूत गाढ़े कपड़े रक्खे रहते हैं। प्रधानतासे मिट्टीकी लेई प्रविष्ट करती है। पानी छनकर नीचे गिरता है और मिट्टी दो पट्टोंके बीच में चपातीके रूपमें रह जाती है। छन्नेके कपड़ेको समय-समय पर सावधानीसे धोते हैं, नहीं तो उसके छेद बन्द हो जाते हैं। इस प्रेससे निकलने पर चपाती कोमल लेई के रूपमें रहता है। इसे तब गूँधनेकी मशीनमें डालकर घूमती हुई चक्कियोंमें पूर्णरूपसे दबाते हैं ताकि वायुके बुलबुले उससे निकल जायँ। यह गूँधना प्रायः ४५ मिनटों में समाप्त होता है। इससे मिट्टी बहुत अधिक नम्र हो जाती है। ऐसी मिट्टीसे तब सामानोंको बनाते है। भिन्न-भिन्न प्रकारके पोरसीलेनके सामान कैसे बनते हैं इसका वर्णन इस छोटी सी पुस्तकमें नहीं हो सकता, क्योंकि भिन्न-भिन्न सामानोंके लिये भिन्न-भिन्न विधियाँ प्रयुक्त होती है। इस मिट्टीसे फिर साँचोंको भर कर हाथसे दबाते हैं। इसे फिर गैलीपर चढ़ाते हैं। साँचोंमें फिर सूखनेके लिये छोड़ देते हैं। भारतमें वायुका तापक्रम बर्तनोंके सुखानेके लिये पर्याप्त है। ठंडे देशोंमें कृत्रिम तापकी आवश्यकता होती है। साधारणतया ४ से ७ दिनोंमें खोखले सामान सूख जाते हैं। ठोस सामानोंके लिये १० से १५ दिन लग सकता है। बर्तन सूखा है व नहीं, इसकी जाँच छूनेसे होती है। सूखा हुआ बर्तन छूनेसे ठंडा नहीं मालूम होता है।

कठोर पोरसीलेनमें जो लुक प्रयुक्त होते हैं वे चूनेका अलकलीके अलुमिनों-सिलिकेट होते हैं। चूने वाले लुक अधिक पारदर्शक होते हैं। वे पोरसीलेनमें अधिक प्रविष्ट भी कर जाते हैं। एक अच्छे लुकका नुसख़ा यह है।

केओलीन ७ भाग
डोलोमाइट ८ ”

स्फटिक-रेत ४३ ”
फेलस्पार ४२ ”

इसमें प्रायः २० से ३० प्रतिशत टूटे और जले हुये पोरसीलेन मिलाये जा सकते हैं। यह लुक १३ से १४ कोन पर परिपक्व होता है। इन्हें प्रायः १०० घंटे तक पानीके साथ मिलाकर खूब महीन पीसते हैं। इन्हें फिर वैद्युत्-चुम्बकमें ले जाकर कुछ घंटोंके लिये वहाँ छोड़ देते है। यदि रंगीन लुक प्रयुक्त करना है तो ऐसा रंग चुनते हैं जो उच्च तापक्रमको सहन कर सके। साधारणतया इसके लिये आस्मानी, हरा, बादामी, काला और गुलाबी रंग प्रयुक्त हो सकता है। लुकके साथ प्रायः ८ प्रतिशत भाग पीत युरेनियन आक्साइडके मिलानेसे सुन्दर काला रंग प्राप्त होता है।

बर्तनोंपर हाथसे ही लुक फेरा जाता है। लुक फेरने से पहले बर्तनोंको घुलोंसे २ व ३बार वायु-मण्डलके दबाव की वायुसे साफ करते हैं। यदि धूल साफ न कर ली जाय तो लुक पर छेद बन जाते हैं। जिन भागों पर लुक नहीं फेरना होता उन पर पिघला हुआ मोम व चर्बी डाल देते हैं। छोटे-छोटे सूराखोंको रबड़की ठेपीसे बन्द कर लेते हैं। ऐसा न करनेसे लुक प्रविष्ट कर छेदोंको बन्द कर सकता है। छोटे-छोटे सामानोंके लिये पतले लुक और बड़े-बड़े सामानोंके लिये गाढ़े लुक इस्तेमाल होते हैं।

बर्तनोंपर लुक चढ़ सके, इसके लिये जरूरी है कि पोरसीलेनके सामानोंको पहले निम्न तापक्रमपर पका लें। इससे उनके जल निकल जाते हैं। यह पकाना साधारणतया भट्ठीकी दूसरी मंजिल पर भट्ठोंके नष्ट तापसे होता है। मामूली तौरसे बर्तनोंको लुकमें डूबाकर उन पर लुक फेरते हैं, पर कुछ विशेष दशाओंमें बर्तनों पर छिड़क कर भी लुक फेरते हैं। पर ऐसा छिड़का हुआ लुक पर्याप्त मोटा नहीं होता। इस कारण यह विधि केवल सौन्दर्यके सामानोंके लिये ही प्रयुक्त होती है। लुक का द्रव न बहुत पतला और न बहुत गाढ़ा होना चाहिये। गाढ़ा होनेसे लुकमें दरारें फटनेकी सम्भावना रहती है।

ऐसे लुक फेरे हुये सामानोंको बड़ी सावधानीसे सैंगरमें ऐसे रखते हैं कि वे सैगरकी दीवालोंसे व एक दूसरेसे सटे न हो। जर्मनीमें एक विशेष स्तम्भ पर जिसे ''बुमसेन'' कहते हैं, सामानोंको रखते हैं। जिन सामानोंसे पोरसीलेन बने होते हैं उन्हींसे बुमसेन भी बनता है। भिन्न-भिन्न प्रकार के सामानों को रखनेके लिये भिन्न-भिन्न उपाय प्रयुक्त होते हैं। भट्ठेके किस भागमें कौन सामान रखना चाहिये इसमें बड़ी सावधानी की जरूरत होती है ताकि उन सामानों के पकानेमें सहूलियत हो।

पोरसीलेनके सामानों को दो कक्ष वाले नीचेके बहाव वाले भट्ठेमें पकाना अच्छा होता है। पकानेके साधारणतया तीन प्रधान क्रम होते हैं। पहले क्रममें तापक्रम प्रायः ६००° श० तक पहुँचता है। इसमें प्रायः ५ से ६ घंटा लगता है। इस क्रममें शोषित जल निकल जाता है। दूसरे क्रम में तापक्रम ६००° से ११००° श० व उस तापक्रम पर पहुँच जाता है। जब लुक पिघलना शुरू होता है इसमें प्रायः १० से १२ घंटा लगता है। इस क्रमसे भट्ठीको धीरे धीरे जलाते हैं। इसमें रासायनिक संयुक्तजल निकलता है और इसके निकलनेमें समय लगता है। तीसरे क्रममें भट्ठी तेज़ जलती है। फेलस्पार इसमें पिघलना शुरू होता है और वह काँच सा द्रव बनता है। जैसे-जैसे तापक्रम बढ़ता है वैसे-वैसे वह अधिकाधिक कोमल होता जाता है। ठंडे होने पर यह मणिमीय सिलबिमेनाइट बनता है। इस क्रममें तापक्रम प्रायः १४००° श० पर पहुँचता है। इसमें शुरूसे समय प्रायः २२ घंटा लगता है। इसके बाद भट्ठेको धीरे धीरे ठंडा करना चाहिये। जलावन बन्दकर देनेसे कमसे कम १० घंटेके बाद भट्ठेका दरवाजा खोलना चाहिये। दूसरे क्रमके अन्त तक भट्ठेका वातावरण आक्सीकारक रहना चाहिये ताकि बर्तनोंका कार्बन जलकर निकल जाय। उसके बाद वातावरण लघ्वीकरण रहना चाहिये ताकि फेरिक लोहा पीत रंग न उत्पन्न कर सके।

बर्तनोंके पकानेपर निम्न दोष हो सकते हैं।

१—लुक-तल पर बहुत महीन छेद बन सकते हैं।
२—बड़े-बड़े चकत्ते बर्तन-तल पर पड़ सकते हैं।
३—लुक पर काले धब्बे पड़ सकते हैं।
४—बर्तन टेढ़े-मेढ़े हो सकते हैं।
५—गाँठों पर चिटक हो सकते हैं।

६—बालू व लोहे के धब्बे पड़ सकते हैं।

७—बर्तनों पर चिटक हो सकते हैं।

अनुभवसे ही इन दोषों के दूर करने के उपाय मालूम किये जा सकते हैं।

पत्थरके सामान

पत्थरके सामान अपारदर्शक होते हैं। जल और अन्य द्रव उनमें प्रविष्ट नहीं कर सकते। ये अधिकांश रंगीन मिट्टीके बने होते हैं, पर अब कुछ सफ़ेद मिट्टीके भी बनने लगे। रंगीन पत्थरके सामानोंपर लुक नहीं फेरा जाता अथवा केवल नमकका लुक फेरा जाता है।

उच्च कोटिके पत्थरके सामानों और पोरसीलेनके बीच विभेद करना असम्भव नहीं तो बहुत कठिन ज़रूर है। उच्च कोटिके पत्थरसे पतले सामानोंमें कुछ पारभासकता अवश्य होती है, पर मोटे पोरसीलेनमें पारभासकता बिलकुल नहीं होती। मिट्टीके सामानोंसे भी पत्थरके सामानोंका विभेद करना कठिन है कोई जलके प्रविष्ट न करनेसे विभेद नहीं कर सकते। लुक फेरनेसे पहले पत्थर के सानोंसे भी जल प्रविष्ट कर सकता है। साधारणतया हम उन सामानोंको पत्थरका सामान कहते हैं जो अपारदर्शक होते और हैं जिनमें सुषिरता व द्रवके प्रविष्ट करनेका गुण प्रायः नहीं होता।

पत्थरके सामान साधारणतः दो विभागोंमें विभक्त किये जा सकते हैं। उच्च कोटिके पत्थरके सामान, स्वास्थ्य-संबन्धी चीज़े, घरेलू बर्तन और अम्लावरोधक बर्तन हैं। ये संशोधित मिट्टीसे तैयार होते हैं। निम्न कोटिके पत्थर के सामान बिना शोधी हुई मिट्टीसे तैयार होते हैं। ऐसे सामान मोरीके नल, पानीके नल और भिन्न-भिन्न कामोंके लिये टाइल है।

स्वास्थ्यके सामान पहले हीन कोटिकी अग्निजित् मिट्टीके बनते थे और उनके रंगको ढकनेके लिये सफ़ेद आच्छादनसे आच्छादित कर देते थे; पर अब वे प्रायः ऐसी ही सामग्रियोंसे बनते हैं जिनसे पोरसीलेन बनते हैं। ऐसे स्वास्थ्यके सामानोंके तैयार करनेमें जो सामग्री प्रयुक्त होती है, वह भिन्न-भिन्न स्थानोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारकी होती है। पर उन सब सामग्रियोंका उद्देश्य यही होता है कि ऐसी चीज़े बने जो प्रायः १३५०° श० पर सघन ढेरमें परिणत हो जायँ। उन पर ऐसा लुक फेरा जाता है। जो उन्हें काममें लानेके समय फटे नहीं, साधारणतया ऐसे सामानों में

मिट्टी	४० से ५५ भाग
स्फटिक	४२ से ५५ भाग
फेल्सपार	३ से १५ "

रहता है। उनके पकानेका तापक्रम ५ से १० कोन होता है।

इङ्गलैगडमें बने सामानोंके संगठन निम्नलिखित होते हैं।

	१	२	३
नम्र मिट्टी	४३	३०	१८
केओलीन	२४	२२	४३
जला हुआ स्फटिक	२३	३६	२४
कौर्निश पत्थर	१०	१२	१५

जर्मनीमें बने सामानोंके संगठन निम्नलिखित होते हैं।

	१	२	३
नम्र मिट्टी	३६	२५	३०
केओलीन	३०	३१	४०
जला हुआ स्फटिक	२०	३९	१४
फेल्सपार	४	५	१४

इसके लिये लुकका निम्न लिखित नुसखा अच्छा है।

फेल्सपार	१६७·० भाग
बालू	१११·० "
संगमरमर	५०·० "
केओलीन	२५·८ "
विदेराइट	१९·७ "
मैगनीसाइट	८·४ "

पत्थरोंके सामान वैसे ही बनते हैं जैसे पोरसीलेनके। पर मोटे होनेके कारण उन्हें बहुत धीरे-धीरे सुखाते हैं ताकि उनमें दरारें न फट जायँ।

जर्मनीमें जो मिट्टी अम्लावरोधक-बर्तनोंके लिये प्रयुक्त होती है उसका संगठन निम्न लिखित होता है। यह मिट्टी बड़ी नम्र होती है और उसके साथ कुछ और

सिलिका	७०·१५ भाग
अलुमिना	२१·४३ "
फेरिक आक्साइड	०·७७ "
मैगनीसियम आक्साइड	०·३६ "
अलकली	२·६२ "
गरम करनेसे कमी	४·६२ "

उपचारकी जरूरत नहीं होती। इन सब सामानोंसे पत्थरके बर्तन वैसे ही बनाये जाते हैं जैसे अन्य सामान बनाये जाते हैं। मिट्टीको सामान्य रीतिसे तैयार कर कुम्हारके चाक पर बर्तनोंको गढ़ते हैं। यदि कोई भाग अधिक पेचीदा हो तो उन्हें अलग बना कर उसमें जोड़ते हैं। यदि उनके आकारमें विशेष यथार्थताकी ज़रूरत हो तो अर्ध सूखी अवस्थामें उन्हें खराद पर चढ़ाकर यथार्थ आकारका बनाते हैं। अम्लावरोधक बर्तनोंमें हाथसे ही प्लास्टरके साँचेमें ढालते हैं। साधारणतया ऐसे साँचोंके दो भाग होते हैं। प्रत्येक भागमें मिट्टीके लोंदे रखकर हाथ से पीटकर साँचेके आकारमें बनाते हैं। साँचेके दो भागों-को तब एक साथ बाँधकर मुलायम मिट्टीसे उन्हें जोड़ देते हैं। कुछ सामानके लिये तब साँचेको रख छोड़ते हैं और तब उसे साँचेसे निकालकर इधर-उधरकी मिट्टीको निकाल कर बर्तनों में यदि कोई दोष हो तो उसे दूर कर लेते हैं।

बर्तनोंको फिर धीरे-धीरे सुखाते हैं। जल्दी सुखाना ठीक नहीं होता। इन बर्तनोंको फिर सामान्य नोचेके बहावके भट्टेमें नमकका लुक फेर कर पकाते हैं। भट्टोंमें बर्तनोंको ऐसे रखते हैं ताकि चूल्हेसे नमक भाप निकल कर बर्तनके प्रत्येक भागपर पहुँच सके। नमकके स्थानमें पिघलने वाला लुक भी प्रयुक्त होता है। पर नमक के लुक सस्ते और अधिक प्रभावोत्पादक होते है। सीसका लुक इनपर नहीं फेरना चाहिये, क्योंकि यह उनपर चिपकता नहीं और अम्लों से आक्रान्त भी होता है।

मोरीके नल गालनीय मिट्टीमें बालू और ग्रोग मिलाकर बनाये जाते हैं, अथवा हीन कोटिकी अग्निजित् मिट्टी से बनाये जाते हैं। इसके लिये मिट्टीको धोने व संशोधित करनेकी ज़रूरत नहीं पड़ती। गड्ढेसे निकालकर सीधे इस्तेमाल करते हैं। दो भाग मिट्टीको तीन भाग महीन ग्रोग और बालूके साथ मिलाकर पीसते और पानी डालकर 'मिक्सर' में मिलाते हैं। इसे फिर ठंडे स्थानपर परिपक्व होनेके लिये कुछ दिनों तक छोड़ देते हैं। तब उसे 'युगमिल' में डालकर इस्तेमाल करते हैं। मोरीके नल एक विशेष नल-प्रेसमें बनते हैं। प्रेसमें ऊर्ध्वाधार दबाये जाते हैं ताकि उनका आकार टेढ़ा मेढ़ा न हो जाय। जब नल पर्याप्त कठोर होजाता है तब चलती चर्की पर ही उसके दूषित भागको हाथों से हटा लेते हैं। उसके तलको कुछ खुरेद भी लेते हैं ताकि गारा और सीमेंट उसपर चढ़ सके। इसे तब सुखानेके लिये भट्टोंके छतपर छोड़ देते है। ५ दिनोंमें यह सूख जाता है। सूखने पर इन्हें नीचे बहाव के भट्ठेमें पकाते हैं।

ऐसे सामानों पर किस तापक्रम पर लुक फेरना चाहिये इसका ठीक-ठीक पता अभी नहीं लगा है। पर साधारण-तया इसे ५ कोनकी तापक्रम पर्याप्त है। नमक से लुक फेरनेके समय ३ से २४ हैं। नमककी मात्रा समयपर निर्भर करती है। नमककी क्रिया न केवल सामानों पर ही होती है, पर भट्ठेकी दीवालों पर भी होती है। इस कारण ऐसे भट्ठेके लिये अलुमिनाकी ईंटें जिनमें सिलिका न हो अच्छी होती हैं।

पत्थरके सामानोंके पकानेके ५ क्रम हैं। पहला क्रम सबसे कठिन और अधिक महत्वका है। यह क्रम प्रारम्भसे उस समय तक रहता है जब तक शोषित जल पूर्णरूपसे निकल न जाय। इस क्रममें तापक्रम १५०° श० तक पहुँचता है। बर्तनों की प्रकृतिके अनुसार २४से ८६ घण्टा तक इस क्रममें लगता है। इस क्रममें यदि पानी जल्दी सूख जाय तो अनेक दोष, पपड़ी फटना, दाना निकल आना, मुँह पर फटना, इत्यादि इसमें आ जाते हैं।

दूसरा क्रम पानी निकल जाने से आक्सीकरण क्रिया तक रहता है। इस क्रममें तापक्रम १५०° से ४५०° श० तक पहुँचता है। इस क्रममें प्रायः २० से ३० घण्टे लगते हैं। तीसरा क्रम आक्सीकरण क्रियाका है। यह क्रम बड़े महत्वका है। यदि आक्सीकरण पूरा न हो तो नल अच्छे नहीं होते। उनके अन्दरका भाग स्पंजी और टेढ़ा हो जाता है। यह क्रम प्रायः ८० से ६० घण्टे तक रहता है। इस क्रममें तापक्रम प्रायः ८००° श० तक पहुँचता है। चौथे क्रममें सामानोंका कांचोकरण होता है। इसमें

प्रायः ३६ घण्टा लगता है। तापक्रम ७००° से ११५०° श० होता है। इस क्रमका समय बहुत कुछ कोयलेकी प्रकृति, भट्ठेके बहाव और मिट्टीकी प्रकृति इत्यादि पर निर्भर करता है।

पाँचवाँ क्रम नमक चढ़ाने व नमक से लुक फेरनेका है। कांचीकरण प्रारम्भ होने के बाद जब सामान कुछ कठोर हो जाय तब उसपर नमक चढ़ाना चाहिये। इसके लिये चूल्हेको विशेष रूपसे तैयार करनेकी ज़रूरत होती है। चूल्हेके सूराखोंको बिलकुल साफ़ कर लेना चाहिये और तब आगमें कोयला डालकर उसे बिलकुल सुलगा देना चाहिये। जब आग बिलकुल तेज़ हो जाय तब उसपर थोड़ा-थोड़ा नमक डालना चाहिये। अधिक नमकसे आगकी तेज़ी कम हो जाती है और नमक जलता नहीं है। १० मिनटके बाद फिर दुबारा नमक डालते है। उसके बाद कुछ और कोयला डालने व चूल्हे के दरवाजेको बन्द कर देते हैं। फिर तीसरी बार नमक डालकर जलाते हैं। बीच बीच में नलको निकाल कर देखते हैं कि कितना नमक चढ़ा है। प्रायः ६ बार नमकके डालनेसे पर्याप्त लुक चढ़ जाता है। पर कुछ सामानोंके लिये इससे अधिक बार नमक डालने की ज़रूरत होती है। कितना नमक इस्तेमाल होना चाहिये यह मिट्टीकी प्रकृति और भट्ठेकी बनावटपर निर्भर करता है। पर साधारण रूपसे प्रति टन नलमें प्रायः २० पौंड नमक और २५२ पौंड अच्छा कोयला लगता है। नमक लगाने में साधारणतया ६ घण्टा लगता है। किसी-किसी दशामें २५ घण्टा तक लग सकता है।

पत्थर के टाइल।

पत्थरके टाइल सफ़ेद होते हैं और रंगीन भी। सफ़ेद टाइल पत्थर और चकमक मिली हुई सफ़ेद मिट्टीसे बनते है। अन्य टाइल दुःगालनीय चीज़ोंसे मिली हुई मिट्टीसे बनते हैं। इन सामानोंको पहले 'एजरनर' मिलमें पीसते हैं और तब उनमें पानी और आवश्यक रंग डालकर 'मिक्सर' में मिलाते हैं। तब उन्हे युगमिलमें रखकर उनसे टाइल तैयार करते हैं। यदि शुष्क विधिसे टाइल तैयार करना होता है तो उन्हें पीसकर २५ नं० की चलनीमें छान लेते हैं। पीसनेके पहले प्रायः ५ से ६ प्रति शत जल डाल लेते हैं, नहीं तो पीसनेपर जल मिलाना कठिन होता है। इस चूर्णको फिर टाइलके साँचेमें रखकर दबाते हैं। एक बार दबानेसे ठीक दबता नहीं है। कुछ देर के बाद दूसरी बार अधिक बलसे दबाते हैं। इसके लिए अनेक प्रकारके प्रेस-स्पिंडल प्रेस, फ्रिक्शन स्पिंडल प्रेस और हाइड्रौलीक प्रेस काममें आते हैं। बड़े-बड़े कारखानोंके लिए हाइड्रौलीकि प्रेस और छोटे-छोटे कारखानोंके लिये 'फ्रिक्शन स्पिंडल प्रेस' अच्छा होता है। जर्मनीके मेसर्स डोर्स्ट ने एक प्रेस पेटेंट कराया है जिसमें घण्टेमें ६०० से ७०० तक प्रथम कोटिके टाइल केवल एक आदमीकी सहायतासे बन सकते हैं। इसमें बिजलीसे गरम करनेका प्रबन्ध है ताकि ठप्पोंमें मिट्टी सटे नहीं।

इस प्रेसका चित्र यहाँ दिया हुआ है।

ऐसे टाइलोंको सुखानेकी जरूरत नहीं होती। ऐसे ही इन्हें भट्ठेमें पकाते हैं, पर पानी सूखनेके क्रममें अधिक समय प्रायः १०० घण्टा लगता है। ऐसे टाइलोंको पूर्ण रूपसे पकानेमें प्रायः २२० से २३० घण्टा लगता है।

मिट्टी के बर्तन

मिट्टीके बर्तन उन बर्तनोंको कहते हैं जो सरंध्र होते हैं और जिनपर लुक फिरा होता है। यह सफ़ेद व रंगीन मिट्टीके बनते हैं। जो सफेद मिट्टीके बनते हैं वे उत्कृष्ट कोटिके मिट्टीके बर्तन कहे जाते हैं और जो रंगीन मिट्टीके बनते हैं वे सामान्य मिट्टीके बर्तन कहे जाते हैं। इंगलैंड में सफेद मिट्टीके बर्तन अच्छे, सस्ते और घरेलू कामोंके लिये उपयुक्त होते हैं। ऐसे बर्तन वहाँ चीनी मिट्टी, बौल मिट्टी, फ़्लिंट और कौर्निश पत्थरके बनते हैं। चीनी मिट्टीसे उनमें सफेदी आती है। बौल मिट्टीसे आवश्यक नम्रता आती है। इससे बर्तन शीघ्र बनते और सस्ते होते हैं। जले हुये फ़्लिंट से कठोरता और कुछ सफेदी भी आती है। कौर्निश पत्थर द्रावकका काम करता है।

उपर्युक्त पदार्थोंको अलग-अलग पीसकर फिर पानी डालकर पतली लेई सा बनाते हैं। इन लेइयोंको फिर टंकीमें रखकर मिलाते हैं। निम्नलिखित सामानोंसे मिट्टीके अच्छे बर्तन बन सकते हैं।

मिट्टी	५०	५०	५०	५३	५५
फ़्लिंट	३०	३२	३०	३४	३०
पत्थर	२०	—	—	—	—
फेलस्पार	—	१८	—	१०	१०
पेगमेटाइट	—	—	२०	—	—
सफेद खली	—	—	—	३	५

"जैस्पर" बर्तनमें बेरियम सल्फेट रहता है। निम्नलिखित इसका नुसखा है।

चीनी मिट्टी	८	पौंड
बौल मिट्टी	७½	,,
फ़्लिंट	३	,,
बेरियम सल्फेट	$\frac{1}{18}$	,,
कोबाल्ट आक्साइड	८	औंस

इनसे बर्तन बनानेके लिये इन्हें पहले पीसते फिर पानी डालकर खूब मिलाते हैं, और तब छानकर वैद्युत्-चुम्बक में ले जाकर लोहेके टुकड़ोंको अलग कर लेते हैं। तब उसे 'फिल्टर प्रेस' में डालकर टिकिया बनाते हैं। फिर फिल्टर प्रेस से युगमिल में ले जाकर उससे चक्की परब जौलीपर बर्तन जनाते हैं।

यदि इससे टाइल बनाना होता है तो फ़िल्टर प्रेससे निकाल कर टिकियेको भट्ठेके नष्ट तापसे सुखा लेते हैं। इन सूखी टिकिओंको फिर 'एजरनर' मिल में पीसकर २० से ४० नम्बर की चलनीमें छानकर टाइलके लिए तैयार रखते हैं। इसमें जलकी मात्रा ६ से ९ प्रति शत होनी चाहिये। इससे टाइल वैसे ही तैयार करते हैं जैसा गत अध्याय में वर्णन किया गया है।

इन सामानोंको तैयार कर उन्हें साँचोंमें ही सूखनेके लिये उच्छोषकों (dress) में रखते हैं। इन्हें जलवाष्पसे ३०-४० श० तापक्रम तक गरमकर सुखाते हैं। कभी-कभी बर्तन सूखने पर फट जाते हैं। फटनेके निम्नलिखित कारण हो सकते हैं।

१—बर्तनोंके संगठनके दोषसे। यदि बर्तन ऐसे सामानोंसे बने हैं जिनमें बाँध रखनेकी शक्ति कम है तो सूखनेपर मिट्टीके सिकुड़नेके कारण उनपर तनाव होनेसे वे फट जाते हैं। नम्र मिट्टीमें अधिक पानीके होनेसे भी वे सूखने पर फट सकते हैं। यदि युगमिलमें मिट्टी ठीक तरहसे मिलाई न गयी हो तो विभिन्न भागोंके असम सिकुड़नसे बर्तन फट जाते हैं।

२—बर्तनके बनानेकी खराबीसे।

३—बर्तनके सुखानेकी खराबीसे।

जब बर्तन सूख जाते हैं तब उन्हें बालू कागजसे पौलिश कर लेते हैं। पौलिशकर लेने पर उन्हें दोबारा पकाते हैं। पहली बार ११००° से १२००° तक पकाते हैं, दूसरी बार १०००° से ११०० श० तक पकाते हैं। पकानेके लिये इन्हें सैगरोंमें रखते हैं। इन सैगरोंको एक कतारमें भट्ठेमें रखते हैं। मामूली भट्ठेमें ५ से ६ कतार अंटती हैं। उत्कृष्ट कोटिके मिट्टीके बर्तनोंके लिये नीचे बहावके भट्ठे हैं। जब बर्तन पक जाते हैं तब भट्ठे से निकालकर अच्छे बर्तनोंको छाँट लेते हैं। १० से १५ प्रति सैकड़े बर्तन इसमें खराब हो जाते हैं। निम्नलिखित कारणोंसे इनमें खराबियाँ होती हैं।

१—बनानेके समय यदि मिट्टियोंमें वायुके बुलबुले रह जाते हैं, तो पकानेके समय वे फूट निकलते हैं। पकाने से पहले बर्तनोंके पोलिश करने व घुमानेसे ये बुलबुले निकल जाते हैं।

२—यदि सैगरोंमें बर्तन ठीक तरहसे न रखे जायँ व जरूरतसे ज्यादा आँच लग गई हो तो बर्तन टेढ़े हो जाते हैं।

३—यदि बालूमें जिनपर रखकर सैगरोंमें ये पकाये जाते हैं, लोहेके टुकड़े हों तो बर्तनोंपर धब्बे पड़ जाते हैं।

४—यदि बर्तन ठीक तरहसे रक्खे न हों व भट्ठा जल्दीसे गरम हो जाय व पकानेके समय अधिक ठंडी वायु भट्ठेमें प्रविष्ट करे व भट्ठे जल्दीसे ठंडे हो जायँ तो बर्तन फट जाते हैं।

५—बर्तनोंका रंग बादामी हो जाता है।

६—बर्तनों पर मैल जम जाता है।

टाइलोंके प्रेससे सीधे भट्ठेमें रखते हैं। पहले भट्ठे का जलाना बहुत धीरे-धीरे होता है। १३० से १४० घंटोंमें ये बिलकुल पक जाते हैं। भट्ठेका तापक्रम अन्त ११००° श० तक पहुँच जाता है। भट्ठेके ठंडा होनेमें प्रायः एक हफ़्ता लगता है। जल्दी ठंडा करनेसे उनके चिटक जानेका डर रहता है।

मिट्टीके बर्तनों पर बहुधा चित्रकारी करते हैं। इसके लिये आस्मानी व हरा रंग प्रयुक्त करते हैं, क्योंकि ये रंग उच्च तापक्रम पर नष्ट नहीं होते हैं।

आस्मानी रंगका नुसखा

कोबाल्ट आक्साइड	६० भाग
फ़्लिंट	२० ”
फेलस्पार	१० ”
चीनी मिट्टी	१० ”

हरा रंगका नुसखा

क्रोम आक्साइड	३२ भाग
कोबाल्ट आक्साइड	८ ”
अलुमिना	२५ ”
केलस्पार	१५ ”
फ़्लिंट	१८ ”
सफेदी	२ ”

इनको मिलाकर ११००° श० पर जलाने और ऐसा महीन पीसनेसे जिसमें ये २०० छेदवाली चलनीमें छन-जाय, ये रंग बनते हैं। इस्तेमाल करनेसे पहले इन्हें खूब घोलते हैं। यह रंग बर्तनोंपर चिपक जाय, इसके लिये यह आवश्यक है कि इन रंगोंको छापनेके तेलमें खूब मिला लिया जाय। इसके लिये छापनेका तेल इस प्रकार बनता है।

उत्कृष्ट अलसीका तेल	½ पिंट
गोंद मस्तगी	½ औंस
गोंद अम्बर	½ ”
सफेदा	½ ”

इन चीजोंको धीरे-धीरे उबालते हैं ताकि वे राब ऐसी गाढ़ी हो जायँ। इस तेलको वायुसे अलग रखते हैं। जितने दिन इन्हें रक्खें उतने ही अच्छे होते हैं।

रंगोंको इस तेलके साथ मिलाकर तप्त पट्ट पर गरम कर पतला बना लेते हैं। तब इसे एक चिपटे चाकूसे ताँबेके चित्र खोदे पट्टपर फैला देते हैं। उस चाकूसे ही आवश्यकतासे अधिक तेलको हटा लेते हैं। फिर पट्टके तेल को मोटे गद्दे से साफ़ कर लेते हैं ताकि खुदे हुये चित्रोंमें ही रंग रहे, पट्टपर नहीं। फिर एक महीन "टिशु कागज़" को लेकर कोमल साबुनके इमलशनसे ब्रुशसे पोंछ डालते हैं। फिर कागज़के साबुन वाले तलको चित्र वाले पट्ट पर सावधानीसे रखकर पट्टको ऊनी कपड़ेसे मढ़े हुए बेलन से दबाते हैं। फिर पट्टको गरम करते हैं और कागज़को निकाल लेते हैं। अब इस कागज़ पर चित्र उठ जाता है। इस चित्रवाले कागज़के बर्तनोंपर रख कर ऊनी कपड़ेके टुकड़ोंसे दबाकर फिर एक सख़्त ब्रुशसे दबाकर कुछ देरके लिये छोड़ देते है ताकि कागज़का रंग बर्तन पर शोषित हो जाय। तब बर्तन को पानीकी टंकीमें डुबाकर तब तक रखते हैं जब तक कागज़ बर्तनसे अलग होना शुरू न हो जाय। फिर स्पंजसे कागज़को धीरे-धीरे हटा लेते हैं। अब बर्तनोंको सुखाकर लुकमें डुबाते हैं। बड़े बड़े कारखानों में रोलर मशीन कागजको छापते हैं। इस मशीनमें दो या तीन रंग एक साथ छापे जा सकते हैं।

इन बर्तनोंपर जो लुक फेरे जाते है वे अलकली व सीसवाले लुक होते हैं। ये ऐसे होते हैं कि निम्न तापक्रम पर ही परिपक्व हो जाते हैं। चूना व मैगनीशियाके साथ मिले हुये अलकलीके लुक इसके लिये अच्छे होते है। कुछ पीलापन लिए हुये स्वच्छ पारदर्शक लुक

सफ़ेदा	६७.३ भाग
फ़्लिंट	३२.६ ,,
चीनी मिट्टी	११.१ ,,

मिलनेसे प्राप्त होता है। यदि लुकको अपारदर्शक बनाना है तो उसमें कुछ जिंक आक्साइड और सफ़ेद खली मिला लेते है। मिट्टीके बर्तनों पर जो सीस वाले लुक प्रयुक्त होते हैं वे दो विभिन्न फ्रिटों—सोहागा फ्रिट और सीस फ्रिट—के मिलानेसे बनते हैं। सोहागा फ्रिटमें

सोहागा	१३३.७ भाग
फ़्लिंट	८१.६ ,,
फेलस्पार	५५.६ ,,
खफ़ेद खली	५५.० ,,
चीनी मिट्टी	४३-८ ,,

सीस फ्रिटमें

लालसीस	३०-२ भाग
फ़्लिंट	११-० ,,
फेलस्पार	५-६ ,, रहता है।

बिना सीस वाला लुक इस प्रकार प्राप्त होता है।

सफ़ेद खर्ली ६·८ भाग, सोडियम कार्बोनेट (अनार्द्र) ६·२ भाग, सोडियम शोरा ४·५ भाग, चीनी मिट्टी १५·७ भाग, फ्लिंट ३७·२ भाग, और बोरिक अम्ल २३·७ भाग। कभी-कभी इसमें थोड़ा गोंद भी मिलाते हैं, ताकि सूखने पर वह टाइल से चिपका रहे।

एक बार पकाने पर फिर बर्तनों पर चित्र उतारकर फिर लुक में डुबाते हैं। तब उसे सुखाकर सैंगरों में बड़ी सावधानी से रखकर फिर दुबारा पकाते हैं।

उत्कृष्ट कोटिके मिट्टीके बर्तनोंको यदि पेंट करना होता है तो हाथोंसे पेंट करते हैं। कभी-कभी एक बार पका लेने पर ही पेंट करते हैं और कभी-कभी दुबारा पका लेने पर भी पेंट करते हैं। पेंट करने के लिये विशेष प्रकारके रंग प्रयुक्त करते हैं।

टेराकोटा

सामान्य मिट्टीकी चीज़ोंको जिनपर लुक फेरा हुआ नहीं होता, टेराकोटा कहते हैं। टेराकोटाके अन्दर सामान्य ईंटें, खपड़े (टाइल) और लाल मिट्टीके सामान्य बर्तन हैं।

ईंट और खपड़ोंके लिये मिट्टी ऐसी होनी चाहिये कि उनके कुछ अवयव अपेक्षाकृत निम्न तापक्रमपर पिघलें और अन्य अवयवों पर ताप का कोई विशेष असर न हो। इस दूसरे प्रकार के अवयव ही उनके आकार को कायम रखते हैं। ईंटोंके लिए मिट्टी नम्र होनी चाहिये। ऐसी मिट्टीमें चट्टानों व स्फटिकके चूर्ण व रेतका होना आवश्यक है।

सामान्य मिट्टी पिघलने वाली होती है और चट्टान व स्फटिकके चूर्ण व रेत कठिनता से पिघलने वाले होते हैं। इससे इनके मिश्रण से जो ईंटें बनती हैं वे अच्छी होती हैं। ईंटों और खपड़ोंको भट्ठियोंमें पकानेका उद्देश्य यही होता है कि उनपर जल और वायुका जहाँ तक हो कम प्रभाव पड़े। इस कामके लिये सुखाने व पकानेपर मिट्टी में सिकुड़नेका गुण भी बहुत कम होना चाहिये। इस सिकुड़नेके गुणको कम करने के लिये मिट्टीको तैयार करते हैं। इससे सूखनेपर सिकुड़न कम होती है पर पकानेपर जो सिकुड़न होती है वह इससे कम नहीं की जा सकती है।

पकाने पर रंगका चढ़ना

मिट्टीमें जो चीज़ें रंग पैदा करती हैं वे प्रधानतः लोहे और मैंगनीज़के आक्साइड और चूना और मैगनीशियाके कार्बोनेट हैं। वेनेडियम व टाइटेनियम सदृश कुछ दुर्लभ-धातुओंके लवण भी रंग प्रदान करते हैं। ये रंग कुछ तो मिट्टीकी भौतिक अवस्थाके कारण और कुछ उनके रासायनिक संगठन और बनावटके कारण आते हैं। मिट्टीमें मैंगनीज़ डायक्साइड बहुत अल्प मात्रामें रहता है। इसकी कोई स्वतंत्र क्रिया नहीं होती। यह केवल लोहेके आक्साइडके रंगको कुछ परिवर्तित कर देता है। चूना, मैगनीशिया और अलुमिनाका अपना कोई रंग नहीं होता, पर ये लोहेके रंगको बहुत कुछ सुधार करते हैं। यदि मिट्टीमें लोहेकी मात्रा बहुत कम है और अलुमिनाकी बहुत अधिक तो उच्च तापक्रमपर पकाने से मिट्टीका रंग पीला व पीलापन लिये हुए बादामी रंगका होता है। यदि अलुमिनाकी मात्रा बहुत कम और लोहेकी बहुत अधिक हो तो रंग पीलापन लिये हुये बादामीसे लेकर सुर्ख़ लिये हुये बादामी होता है। यदि मिट्टीमें लोहेके आक्साइडकी मात्रा ५ प्रतिशत है तो ऐसी मिट्टीके बर्तन सुर्ख़ रंगके होते हैं। अधिक लोहेसे रंग और तेज़ हो जाता है। चूना और मैगनीशियासे लोहेका रंग उड़ जाता है। यदि लोहे के आक्साइडसे चूनेकी मात्रा दुगुनी है तो लोहेका लाल रंग बिलकुल लुप्त हो जाता और उसके स्थानमें पीलापन लिये हुए रंग चढ़ जाता है।

भट्ठीके अन्दरके वातावरणका भी रंगपर असर पड़ता है। यदि अन्दर की वायु लघ्वीकारक है तो फेरिक लोहा फेरस लोहे व धातुक लोहेमें परिणत हो बर्तनका रंग भूरा व काला बना देता है। यदि अन्दरकी वायु आक्सीकारक है तो फेरस लोहा पीले व सुर्ख़ आक्साइडमें परिणत हो जाता है। जलावनके गंधकका भी रंगपर बहुत कुछ असर पड़ता है। पकानेके तापक्रमका भी बर्तनके रंगोंपर प्रभाव पड़ता है। लोहेके आक्साइडका रंग तापक्रमकी सतत वृद्धिसे धुँधला होता जाता है। पर यदि मिट्टीमें चूनेका अंश थोड़ा है तो तापक्रमकी वृद्धिसे रंग हलका होता है।

ईंट।

मकान बनानेके लिये ईंटोंका व्यवहार बहुत पुराने

ज़मानेसे होता चला आता है। भिन्न-भिन्न देशों और भिन्न-भिन्न समयोंमें ईंटें भिन्न-भिन्न आकारोंकी बनती थीं। भारतकी प्राचीन ईंटें छोटी-छोटी होती थीं। मिश्र और यूनानकी ईंटें बड़ी-बड़ी होती थीं। पर आजकल प्रायः एक ही आकारकी ईंटें बनानेकी चेष्टाएँ हो रही हैं। ये ईंटें प्रायः ९ इंच लम्बी, साढ़े चार इंच चौड़ी और ३ इंच मोटी होती हैं। इससे अधिक मोटी ईंटें जल्दी सूखती नहीं।

ईंटें बनानेकी प्राचीन विधि हाथोंसे साचोंमें ढालनेकी है। आजकल भी प्रायः यही विधि बहुत अधिक अंशमें इस्तेमाल होती है। जो मिट्टी ईंटोंके बनानेमें प्रयुक्त होती है, उसे तैयार करनेमें कोई विशेष आवश्यकता नहीं होती। सूखी मिट्टीमें केवल पानी डालकर उसे गूँधते हैं ताकि वह पर्याप्त नम्र हो जाय। ईंटोंकी ढलाई लकड़ीके साँचोंमें होती है। साँचेको पहले बलुआ लेते हैं, फिर मिट्टीके लोंदे-को काटकर बालूमें लपेट कर साँचेमें रख अधिक मिट्टीको काठमें लगे तारसे काट लेते हैं। फिर ईंटोंको साँचोंसे निकाल कर सुखानेके लिये छोड़ देते हैं। जब ईंटें सूख जाती हैं तब उन्हें भट्ठोंमें रखकर पकाते हैं। हाथसे बनानेकी यह विधि अवश्य ही बड़ी सरल और थोड़ी ईंटोंके लिये सस्ती है।

मशीनोंसे भी ईंटोंकी ढलाई होती है। इनमें एक विधि तारसे ईंटोंके काटनेकी विधि है। इस विधिमें यंत्रोंसे ("मिक्सर" नामक मशीनसे) मिट्टीको नम्र बनाते हैं। फिर इस मिट्टीको "युगमिल" में डालते हैं। इस युगमिल में एक नल लगा हुआ होता है। इस नलका आकार और मोटाई ईंटकी-सी होती है। इस युगमिलसे बाहर निकलती हुई मिट्टी एक तारसे इतने बड़े टुकड़ोंमें काट ली जाती है जिनमें प्रत्येक टुकड़ेसे छः ईंटें बन सकें। इन टुकड़ोंको फिर एक दूसरे तारसे ईंटोंके आकारमें काट कर तख़्ते पर रखकर सुखानेके लिये रख छोड़ते हैं। यदि ईंटोंको सूखी व अधसूखी विधिसे तैयार करना होता है तब एक प्रबल प्रेस" का काम पड़ता है। इस विधिमें मिट्टी चूर्ण रूपमें रहती है, पर उसमें जलका पर्याप्त अंश रहना चाहिये, ताकि दबाने पर वह सट कर टिकिया बन जाय। इस कामके लिये अनेक प्रकारके अनेक प्रेस साथ-साथ प्रयुक्त होते हैं, क्योंकि प्रेससे दबाने पर वह कितना ही प्रबल क्यों न हो पर्याप्त कठोर ईंटें नहीं बन सकतीं। कई प्रेसोंसे दबाने पर अन्दरकी वायु भी ठीक तरहसे निकल जाती है। यदि मिट्टी अधसूखी हुई है अर्थात् कठिनतासे नम्र है तो कम प्रबल प्रेससे ही ईंटें जल्दी बन सकती हैं। इस विधिसे ईंटें बनानेमें लाभ यह है कि पकानेके पहले ईंटोंको सुखाना नहीं पड़ता और मिट्टीको तैयार करनेकी ज़रूरत नहीं होती।

सुखाना

आम तौरसे ईंटोंके सुखानेमें काफ़ी समय लगता है। हाथसे बनी ईंटोंमें २० से २५ प्रतिशत पानी रहता है। अन्य तरीक़ोंसे तैयार ईंटोंमें पानीका अंश ५से १५ प्रति-शत रहता है। जहाँ हाथसे ईंटें बनती हैं वे खुली हवामें सुखाई जाती हैं। साँचोंसे निकालकर रेत छिड़क कर ज़मीन पर सुखाई जाती हैं। जब वे पर्याप्त सख्त हो जाती हैं तब ढेरमें रख दी जाती हैं और कुछ और सूखने को छोड़ दी जाती हैं। जब वर्षाका डर हो तो चटाई इत्यादिसे ढक दी जाती है। भारत ऐसे देशमें जहाँ धूप काफ़ी तेज़ होती है, हवामें ही सुखाना सस्ता पड़ता है, पर जहाँ धूप तेज़ नहीं होती वहाँ कृत्रिम रीतिसे ही ईंटों को सुखाना पड़ता है। इन्हें सुखानेके लिये भट्ठोंके नष्ट ताप प्रयुक्त करते हैं। यह ताप विशेष घरोंमें व छप्परोंमें ले जाया जाता है। यदि उसमें पंखे चलनेका प्रबन्ध हो तो ईंटें जल्दी सूखती हैं।

खपड़ा (टाइल)

मकानोंकी छतोंको ढकनेके लिये खपड़ोंका व्यवहार बहुत प्राचीन कालसे होता चला आया है। पाश्चात्य देशों में जो खपड़े प्रयुक्त होते हैं वे रोमन छापके होते हैं। कुछ संशोधित रूपसे यही खपड़े भारतमें भी प्राचीन काल से होते चले आये हैं। ऐसा मालूम होता है कि भारतसे यूनानियों ने सीखा। यूनानियोंसे रोम वालों ने सीखा। रोम वालोंसे अन्य यूरोपीय जातियों ने सीखा। जो खपड़े अंग्रेजोंके द्वारा इंगलैण्ड और भारतमें भी प्रयुक्त होते हैं वे चिपटे १० से १५ इञ्च लम्बे और ५ से १० इञ्च चौड़े होते हैं। अटकानेके लिये उनमें एक व दो काँटे

लगे रहते हैं, ताकि वे छतोंसे फिसल न जायँ। फ्रांस और अन्य यूरोपीय देशोंमें जो खपड़े प्रयुक्त होते हैं उन्हें 'मारसेल्ज़' टाइल कहते हैं। उनमें मेड़ी और नाली ऐसी बनी होती हैं कि वे उनसे एक दूसरेको पकड़ रखती हैं।

भारतमें जो देशी खपड़े प्रयुक्त होते हैं वे दो प्रकारके होते हैं। एक चिपटे होते हैं और दूसरे अर्धगोलाकार। ये खपड़े वहाँ ही बनते हैं जहाँ उपयुक्त मिट्टी पर्याप्त मात्रामें पाई जाती है। ये खपड़े दो तरीकोंसे बनाये जाते हैं। एक नम्र विधिसे और दूसरी अर्ध शुष्क विधिसे। इसके लिये मिट्टी वैसी ही तैयार की जाती है जैसी ईटोंके निर्माण में। नम्र मिट्टी लकड़ी व धातुके साँचोंमें डालकर हाथसे दबाई जाती है, अथवा ईटोंमें प्रयुक्त होनेवाली मशीनोंसे बनाई जाती है। अर्ध शुष्क मिट्टीके लिये ढालवाँ लोहेके साँचे प्रयुक्त होते हैं, क्योंकि इन्हें अधिक दबानेकी ज़रूरत होती है। साँचोंमें मिट्टी सट न जाय, इससे साँचोंको तेलिया लेते हैं। अर्धशुष्क विधिसे तैयार खपड़े अच्छे नहीं होते।

भारतमें जो देशी खपड़े बनते हैं वे आमतौरसे नम्र मिट्टीसे ही बनते हैं। चपटे खपड़े हाथसे दबाकर साँचोंमें बनते हैं। हाथसे ही मिट्टीके लोंदे बनाये जाते हैं। साँचोंको बालूसे बलुआ लेते हैं। गोलाकार खपड़े चाकपर बनते हैं। खोखले बेलनाकार बना कर तारसे दो भागोंमें काट दिये जाते है। दोनों भाग एक ओर गावदुम होते हैं ताकि वे एक दूसरेपर ठीक-ठीक बैठ जायँ और छत चुए नहीं। ये खपड़े हलके होते है। इससे वे बहुत मज़बूत नहीं होते।

ये खपड़े भट्ठों (आँवे) में पकाये जाते है। कुछ आर्द्रावस्थामें ही ये भट्ठोंमें रक्खे जाते हैं। बहुत सूख जानेपर भट्ठोंमें रखनेपर अधिक टूटते हैं। भट्ठोंको बहुत धीरे-धीरे गरम करना चाहिये और बहुत धीरे-धीरे ठंडा भी करना चाहिये। जिस मिट्टीमें लोहेके आक्साइडका अंश अधिक रहता है उससे काले व आस्मानी रंगके खपड़े बनते हैं। ये सामान्य रीतिसे ही पकाये जाते हैं, पर आखिरमें चूल्हेके मुँहपर काफी कोयला डाला जाता है और वायुका प्रवेश कम कर दिया जाता है, ताकि भट्ठेके अन्दर प्रबल लघ्वीकरण वातावरण बना रहे। इससे लोहेके आक्साइड लघ्वीकृत हो सिलिकाके साथ संयुक्त हो काला वा आस्मानी रंग बनता है।

सामान्य बर्तन

हाँड़ी, घड़े, मरतबान, गुलदस्ते इत्यादि पकाने और द्रव रखनेके और अन्य घरेलू बर्तन सामान्य मिट्टीके बर्तन हैं। ये सस्ते, हलके और सरंध्र होते हैं। ये सामान्य मिट्टीसे बनते हैं। यह मिट्टी बहुत नम्र और समावयव होनी चाहिये। ऐसी मिट्टीके बनाने के तरीक़े भी बड़े सरल हैं। मिट्टीमें पानी देकर पैरोंसे कुचलते हैं और परिपक्व होनेके लिये कुछ दिनों तक छोड़ देते हैं। ये बर्तन सामान्य चाक पर बनाये जाते हैं। कुम्हार इन चाकोंको कुछ समय चलाता और कुछ समय चाक पर बर्तन गढ़ता है। यदि उन्नत चाक प्रयुक्त हो तो बहुत कुछ उन्नत हो सकता है। उतने ही समयमें अधिक बर्तन बन सकते हैं। कुम्हारोंके द्वारा बर्तन पकानेके ढंग भी बड़े भद्दे हैं। इन भट्ठोंका तापक्रम पर्याप्त ऊँचा नहीं होता। इससे बर्तन बहुत टूटते भी हैं। थोड़ेसे संशोधनसे उनके आँवेंसे उच्चकोटिके बर्तन बनाये जा सकते हैं।

——

आलू

[ले० श्री महेन्द्र नाथ अष्ठाना]

जितनी भी तरकारियाँ हमारे देशमें खायी जाती हैं उनमें आलू का स्थान सबसे ऊँचा है। केवल भारतवर्षमें ही नहीं, बल्कि और देशोंमें भी आलू खाया जाता है। यह बहुत स्वादिष्ट वस्तु है। इसका प्रयोग भिन्न-भिन्न रूपमें किया जाता है। हमारे देशमें इसका मुख्य प्रयोग तरकारीके रूपमें है। इसके अतिरिक्त कचालू, टिकिया, कचौड़ी, पापड़, रायता, लच्छे, तथा अनार भी बनाये जाते हैं। आलू का प्रयोग अन्य तरकारियोंके साथ भी होता है। इनमें मटर, टमाटर, बैंगन, गोभी, कुम्हड़ा, कटहल, और सेम इत्यादि मुख्य हैं।

आलू को अंग्रेज़ीमें 'पोटैटो' कहते हैं। यह शब्द स्पेनिश भाषासे लिया गया है। स्पेनिश भाषामें इसे 'पटाटा' या 'बटाटा' कहते हैं। दक्षिणमें इसे बटाटा कहते हैं। कहा जाता है कि भारतवर्षमें लगभग ३०० वर्ष पहले पुर्तगाल-वासी आलू लाये। उसके पहले भारतवर्ष में अन्य प्रकारके आलूके सदृश कन्द-मूल व्यवहारमें लाये जाते थे।

आलू के तीन पर्त

यदि एक आलू काट कर देखा जाय तो उसमें तीन पर्त दिखाई पड़ेगी। इनमें (१) बाहरी छिलका, (२) तन्तुमय भाग, और (३) गूदेदार भाग हैं। आलूमें यह तीनों भाग निम्न अनुपातमें होते हैं:—

(१) बाहरी छिलका	२½	प्रतिशत
(२) तन्तु-मय भाग	८½	"
(३) गूदेदार भाग	८६	"

इन भागोंका रासायनिक-संगठन (प्रतिशत) निम्न सारिणीमें दिया जाता है:—

आलू का संगठन

	जल	प्रोटीन	संपूर्ण नाइट्रोनज	चर्बी	शर्करा मय पदार्थ	खनिज पदार्थ
बाहरी छिलका	८०·१	०·२५	०·४३	०·८१	४.६	१·८
तन्तु-मय भाग	८३ ५	०·२४	०·३६	०·१	२३.३	१·२
गूदा	८१·१	०·१८	०·३२	०·१	१६.०	०·८
समूचा आलू	८१·३	०·१९	०·३२	०·१	१५.७	०·८

इस सारिणीसे प्रकट होता है कि तन्तु-मय भाग में गूदेदार भाग की अपेक्षा खनिज पदर्थ तथा प्रोटीन अधिक रहते हैं। यदि इस भाग को छिलकेके साथ छील दिया जाय तो इस प्रकारके मूल्यवान अंश निकल जायेंगे

यदि आलूका गूदा निचोड़ा जाय तो उसके गूदेके दो भाग होजायेंगे। एक तो ठोस भाग और दूसरा रस है। ठोस भागमें मुख्यतः निशास्ता होता है, और इसमें नाइट्रोजनका केवल २५ प्रतिशत भाग होता है। रसमें जल होता है जिसमें नाइट्रोजन यौगिक तथा लवण घुले होते हैं। इसमें समूचे आलूका ८५ प्रतिशत नाईट्रोजन होता है।

आलूमें प्रोटीन

नाइट्रोजनका सम्पूर्ण भाग प्रोटीनके रूपमें नहीं है। सम्पूर्ण नाइट्रोजनका केवल ४९ प्रतिशत प्रोटीनके रूपमें होता है। शेष भाग अन्य नाइट्रोजनिक पदार्थोंमें होता है, जैसे ऐस्पेरेजीन। यह समझना ठीक नहीं है कि आलूमें जितना नाइट्रोजन होता है, वह सभी शरीर-निर्माणके काममें आता है।

आलूकी निशास्ता

आलू निशास्ताकी अधिकताके कारण बहुत उपयोगी होता है, और इससे बहुतसी चीज़ें बनाई जाती हैं, जैसे डेक्स्ट्रिन, और 'ब्रिटिश अरारोट'। आलूमें निशास्ता-कण कुछ बड़े होते हैं। यदि आलू पकाया न जाय तो यह कण ठीकसे पेटमें पचते नहीं है। आलूके जल्दी खट्टे हो जानेके कारण बीमारीमें आलू नहीं खाना चाहिये, जैसे पेटकी बीमारीमें।

आलूमें पोटाश

आलूके मुख्य खनिज अंश पोटाशके लवण हैं। मुख्यतः आलूके द्वारा हमको यह लवण प्राप्त होते हैं। पोटाशका एक अंश साईट्रिक एसिडसे मिला होता है अन्य कन्दोंकी तरह पके हुए

आलूका संगठन उसके पकानेके ढंगके अनुसार बदल जाता है, और फलस्वरूप उसकी उपयोगिता भी बदल जाती है। इसमें सबसे अधिक भय नाइट्रोजनिक पदार्थ

तथा खनिज लवणोंके नष्ट होजानेका है। जल तथा निशास्ताकी संख्यामें बहुत कम परिवर्तन होता है। निम्नलिखित विश्लेषणोंमें इन बातों का वर्णन किया है :—

आलूके पकानेमें भिन्न-भिन्न अंशोका नष्ट होना

	सूखा अंश	नाइट्रोजन			कार्बो-हाई-डेट	राख
		प्रोटीन	अन्य	योग		
	प्रति शत	प्रति शत	प्रति शत	प्रति शत	प्रति शत	प्रति शत
उबालनेके पहले छिलका उतारने पर	३·६	३·८	१५·४	६·२	२·७	१७·२
उबालनेके बाद छिलका उतारने पर	०·३	०·५	१·१	०·८	०·२	१·६

छिलकों सहित आलू उबालो

ऊपरके विश्लेषणोंसे प्रकट है कि आलूको छिलकेके साथ उबालना या पकाना चाहिये, क्योंकि इससे आलूके उपयोगी पदार्थ बहुत कम संख्यामें नष्ट होते हैं। परन्तु यदि आलू रसेदार बनाना हो तो वह छील कर भी बनाया जा सकता है। इसका कारण यह है कि आलूके उपयोगी पदार्थ रसेमें आ जायँगे। परन्तु रसा खा लेनेसे वह पदार्थ व्यर्थ नहीं होंगे।

कच्चे तथा पकाये आलूका संगठन नीचे दिया जाता है:—

कच्चे तथा पकाये आलूका संगठन

आलूका रूप	त्यक्त	जल	प्रोटीन	चर्बी	कार्बोहाईडेट	राख	प्रति पौंड ताप
	प्रतिशत	प्रतिशत	प्रतिशत	प्रतिशत	प्रतिशत	प्रतिशत	कलाँरी
बाज़ार का आलू	२०.०	६२·६	१·८	०·१	१३·८	०·८	३१०
खानेके योग्य भाग	—	७८·३	२·२	०·१	१८·०	१·०	३७५
उबाला आलू	—	७५·५	२·५	० १	२०·३	१·०	४४०
तरकारी बनाया	—	७५·१	२·६	३·०	१७·८	१·२	५८५
घीमें तले वरक़	—	२·२	६·८	३९·८	४६·७	४·५	२६७५
सुखाये हुए आलू	—	७·१	८·५	०·४	८०·९	३·१	१६८०
आलूके पापड़	—	३५·३	९·२	१·३	५२·६	१·१	१२१५

आलुओंकी पाचनता

मुँह और पेटमें आलूके पचनेकी शक्ति उसके रूप पर निर्भर है। कचौड़ीके आलू समूचे आलूकी अपेक्षा अधिक पचते हैं, और लस-रहित आलू लसदार आलूकी अपेक्षा अधिक पचते हैं।

यदि दो मध्यम आकारके आलू (तौल ५½ औंस) साधारण रीतिसे पका कर खाये जायँ तो वह लगभग २ या २½ घंटे तक पेटमें रहेंगे। यदि इसी तौलकी रोटी खाई जाय तो वह अधिक समय तक पेटमें रहेगी।

अँतड़ियोंमें आलू बहुत अच्छी तरह सोख लिये जाते हैं। इसका कारण यह है कि आलूमें निशास्ताकी अधिकता और सैल्यूलोज़की न्यूनता होती है। यदि एक दिनमें

२½ पौंड आलू खाया जाय तो निशास्ताका ९०½ प्रतिशत और नाइट्रोजनका ७० प्रतिशत खूनमें पहुँच जाता है।

आलूका भोजन

आलू मनुष्यका सम्पूर्ण भोजन होने के योग्य नहीं है। वह बहुत भारी होता है, और उसमें निशास्ताके अनुपातमें प्रोटीन बहुत कम होता है। हमारे देशमें उपवासोंको छोड़ कर शेष समयोंमें आलू तरकारीकी ही तरह खाये जाते हैं, न कि मुख्य भोजनके रूपमें, जैसे रोटी या भात।
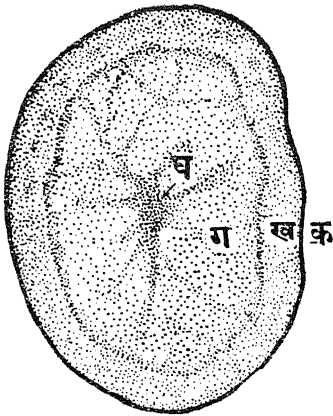
रूबनर का कहता है कि ६½ पौंड आलू शरीरमें ३००३ कलोरी शक्ति उत्पन्न करता है और शरीरके प्रोटीन की रक्षा करता है। इसका कारण आलूमें अत्यधिक कार्बोहाईड्रेटका होना हो सकता है। हिण्डेडेका कहना है कि आलूके द्वारा प्रोटीन भी बहुत अच्छी तरह और सस्तेमें प्राप्त हो सकती है।

यह कथन पेरीरा द्वारा वर्णन किये हुये एक प्रयोग से अच्छी तरह सिद्ध होता है। सन् १८४० ई० में ग्लासगोके एक बन्दीगृहमें केवल आलूके भोजनसे कुछ प्रयोग किये गये थे। दस बन्दी, युवक और बालक, ६ पौंड प्रतिदिनके भोजन पर रखे गये। प्रयोगकी अवधि समाप्त होने पर देखा गया कि अधिकतर बन्दियोंके वज़नमें वृद्धि हुई थी। वे सब आलूसे सन्तुष्ट थे और साधारण भोजन पर रहना नहीं चाहते थे। इन बन्दियोंको केवल हल्का काम करना होता था और उनके शरीरमें नाइट्रोजन पर छान-बीन नहीं की गई थी।

यदि यह स्वीकार कर लिया जाय कि ६ पौंड आलू प्रतिदिन शरीरकी सब आवश्यकताओंके लिये काफ़ी होंगे, तब भी यह देखना चाहिये कि यह मात्रा बहुत भारी होती है—लगभग साधारण मिले हुए भोजनकी दुगुनी भारी। इसके लगातार व्यवहार करनेसे पेट तथा आँतों पर व्यर्थमें बोझ पड़ता है, जिससे पेट बढ़नेकी बीमारी हो सकती है। आयरलैण्डके किसानोंका बड़ा पेट इसी का फल है।

आलूकी उपयोगिता स्थिर करनेमें इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि नाइट्रोजनका अधिकतर अंश प्रोटीनसे भिन्न रूपमें होता है। इन भिन्न-भिन्न रूपोंमें ऐस्पेरेजीन एक मुख्य रूप है। ऐस्पेरेजीन स्वयं तो उपयोगी नहीं होता, परन्तु आँतोंमें वह प्रोटीनको सड़ने नहीं देता है।

विदीप्त जन्तु

(श्री रामदास विद्यार्थी, बी० एस्-सी० (आनर्स), एम्० एस्-सी०, एल० टी०,)

प्रकृतिमें कुछ ऐसे जन्तु मिलते हैं जिनके शरीरके कुछ अंगोंसे सदैव प्रकाश निकला करता है। सामुद्रिक जीवोंके लगभग प्रत्येक समूह और समुदायमें विदीप्त जन्तु पाये जाते हैं। नभचर जीवोंमें जुगुनूको तो प्रायः सभी ने देखा होगा। इनका और दूसरे सामुद्रिक जन्तुओंका वृतान्त अत्यन्त रोचक है।

उन विदीप्त जन्तुओंके शरीर पर जो अगाध जलमें एक मीलकी गहराईपर रहते हैं पानीका बहुत अधिक दबाव होता है। एक मीलकी गहराई पर एक वर्ग फुट पर १३७ टन अथवा ३८-३६ मनका बोझ होता है। इस आधार पर हम आसानीसे अनुमान कर सकते हैं कि विदीप्त मछलियों, केकड़ों, घोंघों तथा अन्य जन्तुओंके शरीरके ऊपर कितना

पानीका दबाव होता होगा। जलके इतने बड़े बोझसे तो इन प्राणियोंका शरीर पिचनी हो जाना चाहिये, किन्तु प्रकृति ने इनको अगाध जलके जीवनके लिये पूर्णतया तैयार कर दिया है। उदाहरणके तौर पर मछलियोंकी अधिकांश हड्डियाँ जोड़ पर कोमलास्थि विशिष्ट (Carti Laginus) होती हैं और कोई काई ढीले बन्धनोंसे बंधी होती हैं। अतः पानीका दबाव पड़नेसे वे लचक खा जाती हैं, टूटती नहीं। इतनी गहराई में रहने के लिये इनकी शरीर-रचना इतनी पूर्ण होती है कि यदि वे समुद्रकी सतह पर लाई जावें तो फौरन उनका शरीर फट जाय। समुद्रके इस घोर अंधकारमय प्रदेश इन्हीं जन्तुओंके विदीप्त अंग थोड़ा बहुत प्रकाशित करते हैं।

विदीप्त अंगोंसे इन जन्तुओंको क्या-क्या लाभ हैं, इस विषय पर विज्ञान-वेत्ताओंमें बड़ा मतभेद है। कुछ वैज्ञानिकोंका मत है कि प्रकृति ने कुछ जीव जन्तुओको विदीप्त अंग प्रदान करनेमें इनके हितपर विशेष दृष्टि रक्खी है। ये अंग इन जन्तुओंको अनेक अद्भुत तरीकोंसे सहायता देते हैं। इनके द्वारा कुछ जन्तु निर्बल और निस्सहाय मछलियोंको अपनी तरफ बहका कर आकर्षित कर लेते हैं और फिर उन्हें हड़प कर जाते हैं। इस तरह इनको भोजनकी प्राप्तिमें बड़ी सहायता मिलती हैं। कुछ जातियों और उपजातियोंके विदीप्त-अंग भिन्न-भिन्न रंग और आकारके होनेके कारण "विज्ञापन" का भी काम देते हैं। इन्हींको सहायतासे ये अपनी जाति और उपजातिके जीवोंको दूर ही से पहचान लेते हैं और आकर अपने अपने समूहमें मिल जाते है। विज्ञापनकी यह विभिन्नता मादाको अपने उपजातिके नरकी खोजमें भी पूरी सहायता पहुँचती है। तीसरा उपयोग यह है कि इन अंगोंके द्वारा विदीप्त जन्तु अपने क्रूर और बलवान शत्रुओंको डरा कर भगा देते हैं। किसी किसी में ये अंग 'टार्च' का भी काम करते हैं और अपना या इस स्थानके दूसरे जीवोंके मार्गको प्रकाशित कर भोजनकी खोज-बीन बहुत कुछ आसान कर देते हैं। प्रकाश पैदा करने वाले अंगोंकी रचना बड़ी ही आश्चर्य जनक है। इन विदीप्त अंगोंके तन्तु लेन्स (Lens) और परावर्तकका काम करते हैं और सफेद सुनहरा, लाल, नीला और हरा प्रकाश पैदा करके उसे प्रायः आवश्यकतानुसार मनचाही दिशामें फेंक सकते हैं। लोगों का यह अनुमान है कि इन अंगोंकी दमक (Phosphorescence) का स्फुरस (Phosphorus) से कुछ विशेष सम्बन्ध है, किन्तु वास्तवमें ऐसा नहीं है। आधुनिक रसायनाचार्यो ने स्पष्ट कर दिया है कि पानी और ओषजनकी उपस्थितिमें 'लूसिफरेज' (Luci ferase) पर 'लूसीफरिन' (Luciferin) की जो प्रक्रिया होती है, उसीसे यह तापरहित प्रकाश उत्पन्न होता है। अतएव इस प्रकाशको वैज्ञानिक दृष्टिसे दमक (Phosphorescenee) न कह कर दीप्ति (Luminiscence) ही कहना उचित और ठीक है।
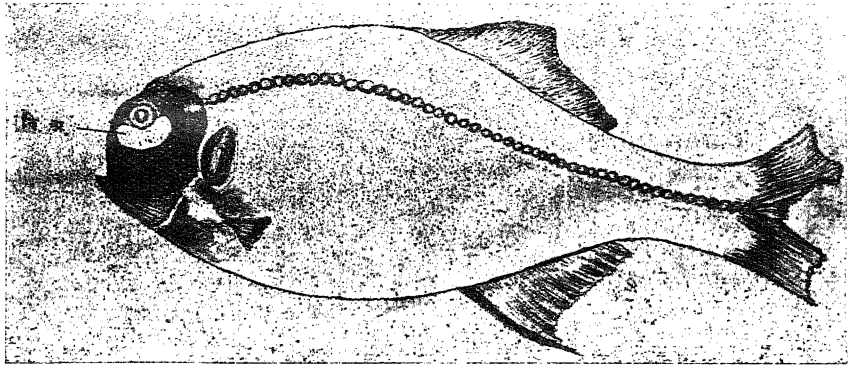
चित्र नं०—१

उपरोक्त पङ्क्तियोंमें लेखक ने इन जन्तुओंका एक सामूहिक विवरण देनेका प्रयास किया है। निम्नलिखित पंक्तियोंमें इन असंख्य प्राणियोंमें से कुछ जो विशेष महत्व पूर्ण और रोचक हैं उन्हींका संक्षिप्त विवरण दिया जाता है।

समुद्रके अगाध जल स्टोमिया (Stomias) और पैकी स्टोमिया (Packystomias) मछलियोंके शरीर-

के दोनों तरफ विदीप्त अंगोंकी दो कतारें होती हैं। इनको देखनेसे ऐसा मालूम होता है कि मानों इनकी काली त्वचामें बिजलीके छोटे-छोटे असरक बल्ब जड़े हों। बांड़ा टापुओं (Banda Isladas) के आस-पासके छिछले पानीमें फोटोब्लिफेरान (Photoblepheron) मछलियाँ मिलती है। इनके प्रत्येक नेत्रके नीचे एक विदीप्त अंग होता है जो कि इनके नेत्रसे प्रायः तुगना बड़ा होता है इनकी सहायतासे ये शक्तिके समय भी छोटी-छोटो मछलियों और घोंघोंको पकड़ कर अपनी क्षुधा शान्ति करती हैं। लेकिन दिनमें जब इस प्रकारकी आवश्यकता नहीं रहती वे प्राय: अपनी काली त्वचाको इनके ऊपर खींच इन्हे ढक लेती हैं। (प्लेट न० १)। सबसे अधिक आश्चर्यजनक विदीप्त अंग "मछुआ मत्सत्य" (Angler-fish, Lasiognathus) का होता है। ये करीब १२०० फीटकी गहराई पर मिलती हैं। इनकी सूरत बड़ी भयानक होती है। विशेष कर मुंह खोलने पर इनकी आकृति और ज़्यादा डरावनी मालूम पड़ती है। सर पर एक लम्बी शुंड
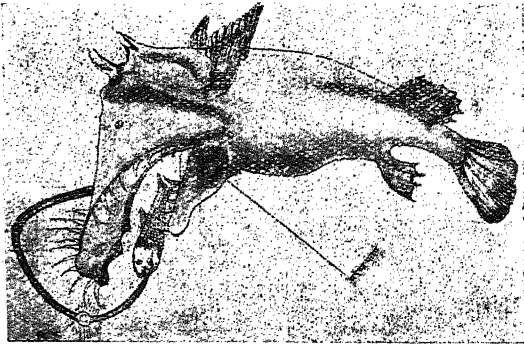
चित्र नं०—२

होती है जो कि मछुओंकी मछली पकड़ने वाली बंसीका काम देती है। इस बंशीके मध्यममें विदीप्त अंग और दूसरे सिरे पर एक कटिया (Hook) होती है। छोटी छोटी मछलियाँ और दूसरे जन्तु इस प्रकाश को देखकर आकर्षित होते हैं और कटियामें फँस जाते हैं। फँसते ही मछली एक जोरका झटका मार अपने शिकार को मुँहमें रख लेती है।

एक दूसरा मछुआ-मत्स्य (Melanocetus) भी समुद्रकी अथाह गहराईमें मिलता है। इसे 'सामुद्रिक दानव' (Sea devil) कहना बिलकुल ठीक है, क्यों कि इसकी सूरत बड़ी ही भयानक होती है। इसके दाँत बड़े ही खौफनाक और नुकीले होते है। इसके विदीप्त अंगसे छोटी-छोटी मछलियाँ आकर्षित हो इसके मुँहकी विशाल गुफामें घुस जाती हैं। वास्तवमें ये "मौतके मुंह" में घुसती हैं।

'साधुके कड़े' (Hermit Carb) की कहानी बड़ी मनोरंजक है। यह केकड़ा संखके अन्दर रहता है और संखके ऊपर उसका परम हितकारी मित्र 'सी-एनीमोन' (Sea-anemone) अपना डेरा डालता है। ये केवल केकड़ेकी रक्षा ही नहीं करता वरन् अपने विदीप्त अंगोंके प्रकाशसे इसके रास्तेको भी सदैव
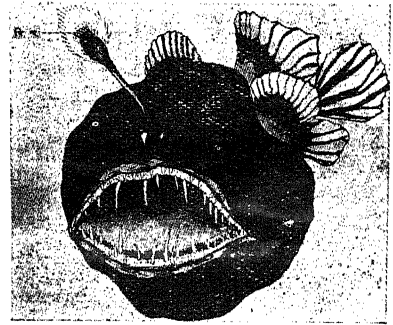
चित्र नं०—३

प्रकाशित करता रहता है। इस सेवाके बदलेमें उसे अपनी क्षुधा शान्ति करनेके लिये साधु केकड़ेकी जूंठन मिल जाती है [प्लेट 4] इस प्रकारके पारस्परिक-लाभ जनक-सहयोग (Commensalism) के दृष्टान्त जन्तु-जगतमें बहुतेरे हैं।

एक केकड़ा ऐसा मिलता है जिसके स्पृश्य-शुंड (Feelers) के निचले भागमें दो ग्रन्थियाँ होती हैं जिनमेंसे आवश्यकताके समय एक रासायनिक-द्रव निकलकर आसपासके पानीमें घुल जाता है। पानीमें घुलते ही कुछ ऐसी प्रक्रिया होती है कि यह पानी सुन्दर नीले प्रकाश से दमकने लगता है। प्लेट नं० ५

"कंघी-फारी" जन्तु (Stenophora) प्रायः बहुत छोटे और गोलाकार शरीरके होते हैं। ये बड़ी तेजी

के साथ पानीमें तैरते हैं। गर्मीके दिनोंमें जब यह लाखों-की सख्यामें समुद्रकी सतह पर आजाते हैं तब इनके

चित्र नं०—४

विदीप्त अंगोंके तेज़ प्रकाशसे लहरें जगमगाने लगती हैं। इस समुदायका सबसे सुन्दर जन्तु "मदन मेखला"

चित्र नं०—५

(Venus girdle) है। ये भूमध्य और एटलांटिक महासागरमें मिलते हैं। दूसरे 'टीनोफरा' की तरह इनका शरीर गोलमटोल नहीं होता। ये पेटीकी शक्लके हल्के लाल और नीले रंगके होते हैं। इनकी लम्बाई तीन फीट और चौड़ाई दो इंचकी होती है। रात्रिके अंधकारमें इनका पार-दर्शक विदीप्त शरीर नीले प्रकाशके दमकने लगता है।

इसकी सुन्दरता को देखकर हमें यह मानना पड़ता है कि भावुक वैज्ञानिकों ने इस जन्तुका नाम "मदन-मेखला" (Venus girdle) उपयुक्त चुना है।

घोंघा-वंशमें "स्क्यड" (Squids) नामके जन्तु जापानके आसपास पाये जाते हैं। जाड़ेके दिनोंमें यह समुद्रकी अथाह गहराईमें चले जाते हैं। लेकिन गर्मीके दिनोंमें कुछ ऊपर आजाते हैं। विदीप्त अंग प्रायः इनके शरीरके हर एक भागमें होते हैं। इन्हें हम वास्तवमें 'जीवित-टार्च' कह सकते हैं।

गर्मीके दिनोंमें समुद्रकी सतह पर अनेक प्रकारके छोटे-छोटे जन्तु मिलते हैं। इनमें प्रायः एक कोष्टक जन्तु और कुछ घोंघा और केकड़ाके लार्वा होते हैं। ये करीब-करीब सभी विदीप्त होते हैं। ग्रीष्म ऋतुमें रात्रिके समय जब कभी समुद्र शान्त रहता है तब यहाँका दृश्य देखने योग्य रहता है। जो लहरें किनारेको चट्टानोंसे टकरा-टकरा बिखर जाती हैं, जलमें असंख्य विदीप्त जन्तुओंके मौजूद होनेके कारण नीली लपकोंके समान मालूम पड़ती हैं। नाविक लोग जब रातको मछलीके शिकारके लिये निकलते हैं तब उन्हें एक अनोखा अनुभव होता है। नाव खेते समय जब डांड पानीकी सतहसे ऊपर उठते हैं तब वह इन सूक्ष्म जन्तुओंके नीले प्रकाशसे जगमगाने लगते हैं। उष्ण कटिबन्धमें इन विदीप्त जन्तुओंका प्रकाश और भी ज्यादा तेज़ रहता है। इन्हीं असंख्य 'जीवित ज्योति' (Living light) के प्रकाशके कारण समुद्रका शान्त वक्षस्थल रातके घोर अन्धकारमें दूधिया चद्दरकी तरह सुन्दर प्रतीत होता है। इस प्रकाशको पैदा करनेमें एक कोष्टक जन्तु नाक्टी ल्यूका (Nocti luca) का विशेष हाथ रहता है। ये प्रायः $\frac{1}{२५}$ इंच चौड़े होते हैं। इनके शरीरकी रचना
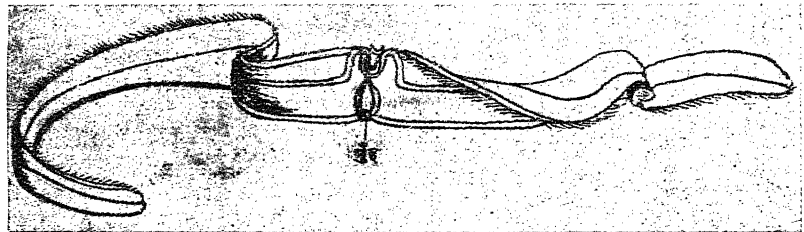
चित्र नं०—६

केवल अनुवीक्षण यंत्रके ही द्वारा ही देखी जी सकती है। है। इनके मुँहके पास एक सेलांकुर होता है जिसकी सहायतासे ये सूक्ष्म जीवाणु पानीमें तैरते हैं। इनका पूरा शरीर विदीप्त नहीं होता, वरन् शरीरके कुछ अपारदर्शक हिस्सोंसे प्रकाश पैदा होता है। इनके शरीरसे इतना तेज़ प्रकाश निकलता है कि अगर एक छोटी सी कांचकी नलीमें कुछ नाकटोल्यूका इकट्ठीकी जाय तो हम आसानी से एक फुट पर रक्खी हुई हाथकी घड़ीमें समय देख सकते हैं। वास्तवमें यही सामुद्रिक "जीवित ज्योति" हैं।

नभचर प्रदीप्त जन्तुओंमें ज्वलन्त टिड्डियाँ (Fivefly Beetle) और जुगुनू (Glow-worm) सबसे ज्यादा विख्यात हैं। आर्द्र जलवायुमें झाड़ियोंके आसपास जुगुनू (Laui pyris noctiluca) प्लेट नं० ८ दिखलाई पड़ते हैं पर विहीन मादा परदार नरसे कहीं ज्यादा प्रकाश पैदा करती हैं। इनके अण्डे 'लार्वी' और प्यूपे सभीमें 'दीप्त' होते हैं। मादामें दो विदीप्त अंग उदरकी आखिरी तीन कुण्डलियोंके निचली तरफ होते हैं। लैंगले और वैरी ने यह सिद्ध कर दिया है कि मोमबत्तीकी अपेक्षा ४०० भाग सामर्थ्य खर्च करके जुगुनू प्रकाश उत्पन्न करता है। इन अंगोंके द्वारा मादा नरका ध्यान
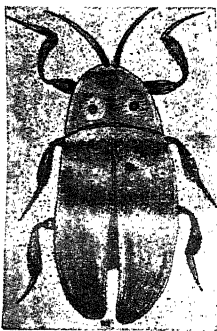
चित्र नं०—८

अपनी ओर आकर्षित करती है। ऐसा देखा गया है कि मादा जुगुनी घासकी फुनगी पर जा बैठती है और बड़ी नज़ाकतके साथ नाच नाच कर अपने प्रेमीके पास प्रेमसंकेत भेजती है। दक्षिणी अमेरिकाकी ज्वलन्त टिड्डियाँ (Pyrophorus nocti lucus) जुगुनूसे कहीं ज़्यादा बड़ी होती हैं। इनके सीनेके दोनों तरफ गोलाकार विदीप्त अंग होते हैं और एक उदरके निचले भागमें भी
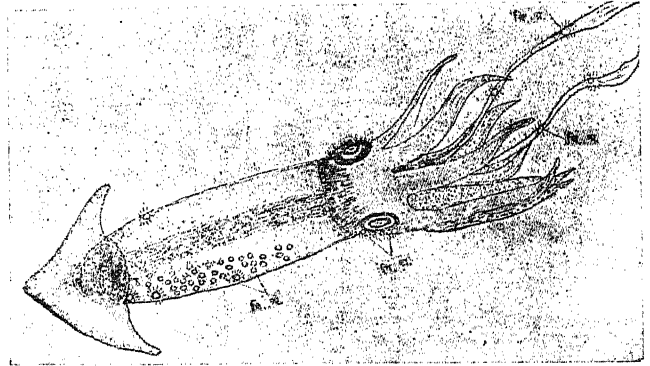
चित्र नं० ७

होता है। इनमें जुगुनूके विदीप्त अंगोंसे कहीं ज़्यादा लाल और हरे रंगका प्रकाश निकलता है। ब्रेज़ीलके जंगली लोग इन्हें लालटेनकी जगह भी इस्तेमाल करते हैं।

कुछ 'बैक्टीरिया' (Bacteria) भी विदीप्त होते हैं। कुछ बगुले और उल्लुओंके सीनेसे कभी कभी प्रकाश निकलते देखा गया है। यह प्रकाश वास्तवमें इन्हीं निर्दोष लेक्ष्म जीवाणुकी उपस्थितिके कारण होता है। विदीप्त जन्तुओंके शीतल प्रकाशका उपयोग अनेक मनुष्योपयोगी कामोंमें भी हुआ है, और सम्भव है कि निकट भविष्यमें और ज़्यादा हो। हरे और लाल रंगके प्रकाशकी टिड्डियोंको तो अमेरिकाकी स्त्रियाँ अपने बालोंमें लगा श्रृंगार करती हैं। बांदा टापूके आदिम निवासी फोटो ब्लिफिरान मछलीके विदीप्त अंगोंके छोटे २ टुकड़े कटियामें लगा मछलीका शिकार करते हैं। विदीप्त सूक्ष्म जीवाणु का शीतल प्रकाश बारूद खानोंमें इस्तेमाल किया जाता है इनके तापहीन प्रकाशके प्रयोगसे आग लगनेका कुछ भी डर नहीं रहता। इसमें कुछ भी आश्चर्य न होगा यदि भविष्यमें विज्ञान-वेत्ता इन जन्तुओंके शीतल प्रकाशके रसायनको भली भाँति समझनेके बाद प्रयोगशालामें रसायनिक शीतल प्रकाश पैदा करनेमें सफलता प्राप्ति करें।

जीवाणु और आसव अरिष्ट

[ले०—श्रीयुत रामेश वेदी आयुर्वेदालङ्कार]

नवीन खोजें हमें बताती हैं कि प्रकृतिमें जहाँ सर्वत्र मनुष्यके शत्रु विविध जीवाणु विद्यमान हैं, वहाँ ऐसे जीवों की कमी नहीं है जो उनको ही अपना शिकार बनाते हैं। बैक्टीरियो-फ़ेज क्या हैं ? ये भी तो एक प्रकारके जीव हैं जो जीवाणुओं पर पलते हैं। प्रकृतिमें ये विभिन्न स्थानों पर मिलते हैं। हरिद्वारमें जब हैज़ा फैलता है तो देखा गया है कि उस समय हैज़ेसे आक्रान्त अनेक रोगी वमन से या दूसरे तरीकेसे गंगाजलको हैज़ेके जीवाणुओंसे भरपूर कर देते हैं। गंगा-जलमें उस समय असंख्य विशूचिका उत्पादक जीवाणु रहते हैं। पर आश्चर्यकी बात है कि थोड़ा ही नीचे से पानी लिया जाय और परीक्षा की जाय तो उसमें ये जीवाणु अनुपस्थित होते हैं। इतना ही नहीं, आप उस पानीको परीक्षा नलीमें लीजिये जिसमें हैज़ेके जीवाणुओंकी भरमार है। थोड़ी देरके लिए परीक्षा नलीको ऐसे ही पड़ा रहना दीजिये और फिर अणुवीक्षण यन्त्र (माइक्रोस्कोप) में देखिये, कोई जीवाणु नहीं है। यह क्यों ? इसलिए कि गंगा जलमें कुछ ऐसे जीव हैं जिन्होंने जीवाणुओंको अपना भोजन बना लिया है और अब उनका अस्तित्व भी नहीं रहा।

गंगा और कई नदियोंके जलोंमें अनेक प्रकारके जीव पाये जाते हैं जो रोगोत्पादक जीवाणुओंपर पलते हैं। ये इतने सूक्ष्म होते हैं कि सूक्ष्मदर्शक (माइक्रोस्कोप) से दीखते नहीं। इन जीवोंको बैक्टीरियोफ़ेज कहते हैं। हम इन्हें जीवाणुओंके जीवाणु कह सकते हैं।

हुगलीमें विभिन्न स्थानोंके जलोंके नमूने लेकर परीक्षा की गई और मालूम हुआ कि किसी स्थान पर एक प्रकार के जीवाणुओंके जीवाणु थे तो दूसरे स्थानके जलमें दूसरी प्रकारके। चिकित्साकी प्राचीन भारतीय पद्धतिमें देरसे उपयोग की जाने वाली विभिन्न पक्षियोंकी विष्ठामें अनेक विधिके जीवाणुओंके जीवाणु (बैक्टीरियोफ़ेज) होते हैं। निस्सन्देह पक्षी-मलोंकी चिकित्सा सम्बन्धी उपयोगिता सत्य है। इसके अलावा हमारे शरीरमें भी ये बैक्टीरियो-फ़ेज होते हैं। जब प्रवाहिका होती है तो आक्रान्त व्यक्ति के मलमें प्रवाहिका जनक रोगाणुओंके साथ-साथ उनके भक्षक जीव भी होते हैं। इन्हें प्रयोग शालामें पाल लिया जाता है और फिर रोगी को खिलाया जाता है। शरीरमें जाकर ये आंतोंमें विद्यमान प्रवाहिका उत्पादक जीवाणुओंको खाना प्रारम्भ करते हैं। धीरे-धीरे जब रोगोत्पादक जीवाणु सब खाये जा चुकते हैं तब वे लक्षण भी लुप्त हो जाते हैं जो उन जीवाणुओंकी क्रियाके कारण उत्पन्न हुए थे। रोगोत्पादक जीवाणुके नष्ट हो जानेसे रोगी भी रोग-मुक्त हो जाता है।

ज्यों-ज्यों हमारा ज्ञान विकसित हो रहा है हम रोज़ इस प्रकारके नये-नये जीव ढूँढ निकाल रहे हैं जो रोगोत्पादक जीवाणुओंके भक्षक हैं। हमें इससे चिकित्सा में बहुत सहायता मिली है। प्रवाहिका टारफ़ौयड (आन्त्रज्वर) विशूचिका आदि रोगोंको उत्पन्न करनेवाले जीवाणुओंके नाशक जीव ढूँढ लिये गये हैं, और उन्हें पाल कर रोगियोंको खिलाया जा रहा है। यह नहीं कहा जा सकता कि इस सम्बन्धमें हमारा ज्ञान पूर्णता तक पहुँच गया है। हमारा अधिक गहरा प्रकृति-निरीक्षण हमें और अधिक उपयोगी जीव प्रदान कर सकता है।

जीवाणुओं और बैक्टीरियोफ़ेजके सम्बन्धमें इतना कह कर अब मैं आसव अरिष्टोंके साथ इनके सम्बन्धमें कहूँगा।

आसव या अरिष्ट बनानेके लिये जब हम औषधि बड़े पात्रमें बन्द करके रख देते हैं तो उसमें होने वाली फ़र्मेण्टेशन (उत्सेचन) की प्रक्रिया या रासायनिक परिवर्तनको हम इस तरह वर्णन कर सकते हैं—

फ़र्मेण्टेशन उत्पन्न करने वाले कुछ जीव होते हैं जो हमारी ही तरह एक विशेष तापमान पर जीवित रहते हैं और वंश-वृद्धि करते हैं। जिस समय हम औषधिको पात्रमें डालते हैं तो ये जीव उसमें बीज रूपमें विद्यमान होते हैं। अंग्रेज़ीमें इन्हें सिस्ट (Cyst) कहते हैं। यह इन जीवोंकी प्रसुप्तावस्था कही जा सकती है। जिस तरह मेंढक या दूसरे ज़मीनके कीड़े सर्दियोंमें प्रतिकूल

अवस्था होनेसे कुछ मासके लिये विश्रामकी अवस्था-में चले जाते हैं और अनुकूल वातावरण में फिर बाहर निकल पड़ते हैं। इसी तरह ये जीव प्रतिकूल परिस्थितिमें अपनेमें कुछ परिवर्तन करके एक प्रकारके दुर्भेद्य आवरणमें सिमट कर सो रहते हैं। पात्रको गरम स्थानपर रखनेका अर्थ होता है—उन जीवोंको जीवन-धारण करने और वंश-वृद्धि करनेके लिये उपयुक्त तापमानका माध्यम प्रदान करना। चारों ओरको ज़मीन या भूसेकी गर्मी दो तीन दिनमें अन्दरके द्रव द्रव्य तक पहुँच जाती है और तब प्रसुप्त जीव अपने लिए अनुकूल माध्यम पा कर आवरणसे बाहर निकल आते हैं। अन्दरके पदार्थ इनके लिए प्रचुर भोजनका काम करते हैं। ये उन्हें खाते हैं और वंश-वृद्धि करते हैं। इनकी वृद्धिके साथ-साथ फ़र्मेण्टेशन-की प्रक्रिया बढ़ती जाती है। इन जीवोंकी द्रव्यके साथ क्रियाके परिमाणको हम फ़र्मेण्टेशन या उत्सेचनकी प्रक्रिया कहते हैं। जब ये खूब बढ़ जाते हैं तथा सारे द्रव्यको खा डालते हैं और रासायनिक परिवर्तन एक विशेष सीमा तक पहुँच जाता हैं तो समझा जाता है कि आसव या अरिष्ट तैयार हो गया है। सर्दीको ये जीव पसन्द नहीं करते, इसलिये सरदियोंमें ठण्डे स्थान पर औषधिपात्रको रखनेसे अनुकूल माध्यम न पाकर ये प्रसुप्त ही रहेंगे, जिससे द्रव्यमें रासायनिक परिवर्तन नहीं हो पाता और यदि थोड़े बहुत जीव अपने रक्षक आवरणोंसे बाहर आ भी जाँय तो वे इतने थोड़े होते हैं कि रासायनिक परिवर्तन बहुत धीरे-धीरे होता है। शीतकालमें आसव अरिष्ट निर्माणमें प्रायः असफलताकी प्राप्ति या अधिक देरी लग जाना और बहुत अच्छे परिणाम प्राप्त न होनेका यही कारण है।

अब प्रश्न यह उठता है कि ये जीव क्या हैं? और इनके स्वभाव आदिके विषयमें भी स्वाभाविक जिज्ञासा होती है। इस विषयके नवीन और सर्वथा अछूते होनेसे इनके सम्बन्धमें कुछ भी ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता। फिर भी हमारा अनुमान है कि सामान्तया इन जीवोंको तीनमें वर्गीकरण किया जा सकता है—

१—प्रोटोज़ुआ,

२—बैक्टीरिया, और

३ फ़ंगाई।

इन तीनोंके सम्बन्धमें आधुनिक वैज्ञानिक निस्सन्देह कुछ जानता है। लेकिन, आसव अरिष्टोंके निर्माताके रूपमें सम्भवतः उसने इन्हें बहुत बारीकीसे नहीं देखा। प्रत्येक आसवमें डाले जाने वाले द्रव्य विभिन्न और विभिन्न प्रकृतिके होते हैं। इसलिए किसी आसवमें प्रोटोज़ुआ, बैक्टीरिया और फ़ंगाईको कोई एक या दो अथवा अधिक क़िस्में हो सकती हैं जो उसमें होने वाले रासायनिक परिवर्तनके लिये ज़िम्मेवार हों। आवश्यकता इस बातकी है कि हम ठीक-ठीक पता लगाएँ कि अमुक आसवमें किस क़िस्मके प्रोटोज़ुआ, बैक्टीरिया या फ़ंगाई हैं। आसव अरिष्टोंके अनेक नमूनोंका अन्वेषण करनेसे पता लगाया जा सकता है कि अमुक आसव प्रोटोज़ुआ, बैक्टीरिया या फ़ंगाई हैं। अब इनको आसवसे पृथक् करके विभिन्न माध्यमों पर पाला जाय और इनकी प्रकृतिके सम्बन्धमें विस्तृत ज्ञान प्राप्त कर लिया जाय जैसे—किस तापमान पर जीवित रहते हैं, किस गतिसे ये वृद्धि करते हैं, कैसी परिस्थतियाँ इनके अनुकूल और प्रतिकूल हैं, आदि।

इसका लाभ यह होगा कि इनको विभिन्न माध्यमों-में पाल कर इनकी कोलोनियाँ (उपनिवेश) पहले से ही हमारी प्रयोगशालामें हर समय विद्यमान रहेंगे और आसव निर्माणमें आवश्यक जीव उतनी ही मात्रामें डाल दिये जा सकेंगे जितनी कि उस आसवके लिये ज़रूरत होगी। जीवके स्वभावका ज्ञान होनेसे आसवको ऊष्मा भी नियत तापमान तक पहुँचाई जा सकेगी। बीच-बीचमें कुछ काल बाद आसवका निरीक्षण किया जाता रहेगा। उस निरीक्षणमें कुछ रासायनिक—जैसे आम्लीयताका मान, मद्यसारकी प्रतिशतकता आदि—और कुछ जीवों सम्बन्धी-यथा प्रति घन सेण्टीमीटरमें जीवोंकी संख्याका परिणाम—परिवर्तनोंको देखते हुए ठीक उस अवस्थामें पहुँच कर आसवोंको निकाल लिया जायगा जब कि वाञ्छित या स्टैण्डर्ड मानका द्रव्य तैयार हो जायगा।

पाठक समझ गये होंगे कि आसव अरिष्टोंकी रचना में जीवाणु कितने सहायक होते हैं। आसव अरिष्टों में जहाँ अनेक प्रकारके प्रोटोज़ुआ, बैक्टीरिया और फंगाई

स्वभावतः ही होते हैं वहाँ सम्भवतः और न जाने कितने प्रकारके जीवाणु विद्यमान हों। और, यदि उसमें वैक्टीरियोफ़ेज भी हों तो हम उनका वर्गीकरण करके उनके स्वभाव आदिका अध्ययन कर सकते हैं और उन्हें विभिन्न रोगोंमें दे सकते हैं। इससे हम आश्चर्यजनक सफल परिणाम प्राप्त कर सकते हैं। हमारी विस्तृत परीक्षा और खोजने हमें यदि बताया कि अमुक आसवमें अमुक वैक्टीरियोंफ़ेज है तो हम उस आसवको उस रोगमें विना किसी संकोचके निश्चित परिणाम-प्राप्तिके लिए दे सकते हैं। मुझे विश्वास है कि तब आसवोंकी चिकित्सा सम्बन्धी उपयोगिता कहीं बढ़ जायगी और हम इन्हें एक सर्वथा नवीन दृष्टि कोणसे देखेंगे, उस दृष्टि-विन्दुसे भिन्न जिससे कि अब तक हम इन्हें देखते आ रहे हैं। मुझे पूर्ण विश्वास है आसव अरिष्टोंका इस नवीन दृष्टिसे अध्ययन आयुर्वेदके इतिहास में एक नवीन अध्यायकी वृद्धि करेगा जो आयुर्वेदके महत्वपूर्ण पदार्थ आसव अरिष्टोंके गौरवको और भी बढ़ा देगा।

तापमापक यंत्र

[ले० श्री० बाबूराम जी पालीवाल]

वायुमंडल-वैज्ञानिक-वालों में वायु-भार के बाद वायु तापक्रमका स्थान आता है। इस लेखमें उन यंत्रोंका विवरण दिया जाता है जो वायु-तापक्रम नापनेके काम में लाये जाते हैं।

आम तौरसे जिस यंत्रका व्यवहार तापक्रम नापनेके काममें आता है उसे तापमापक अथवा थर्मामीटर कहते हैं। यह एक काँचकी नलीमें पारा भर कर बनाया जाता है। इस यंत्रका पैमाना कई प्रकार का होता है जिसके अनुसार इसके पृथक्-पृथक् नाम हैं। भारतवर्षके वायुमंडल-निरीक्षणालयोंमें जिस प्रकारके थर्मामीटरोंका व्यवहार किया जाता है उसे फारनहीट थर्मामीटर कहते हैं। इस यंत्रकी निर्माण-विधि विज्ञानके साधारण विद्यार्थी तक जानते हैं। अतः इसकी निर्माण-विधिको यहाँ लिखने की आवश्यकता नहीं। थर्मामीटरका आविष्कार गेलीलियो ने सन् १६०७ ई० में किया था।

वायुमंडलका वास्तविक तापक्रम वह तापक्रम है जो थर्मामीटर वायु संसर्ग से पासकी दूसरी चीज़ोंसे बिन प्रभावित हुये प्राप्त कर सके। यह आसानीसे देखा जा सकता है कि खुली हुई हवामें रक्खा हुआ थर्मामीटर वायुका ठीक-ठीक तापक्रम प्रकट नहीं करता। थर्मामीटर उस तापक्रमको प्रगट करता है जो उसके बल्बका तापक्रम होता है और यह तापक्रम वायुके तापक्रमसे कभी-कभी बहुत भिन्न होता है। इसलिये वायु-मंडल-विज्ञानमें नीचे लिखी हुई तीन विधियोंमें से एक वायुका वास्तविक तापक्रम जाननेके काममें लाई जाती है।

छायामें थर्मामीटर रखकर तापक्रम जाननेकी विधि

यह विधि वायुमंडल-निरीक्षणालयोंमें अधिकतर काममें लाई जाती है। यद्यपि भिन्न-भिन्न प्रदेशोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारसे छायाकी जाती है, परन्तु सबका छायाका सिद्धान्त एक ही है। भारतवर्षमें कहीं कहीं फ़ूसकी झोपड़ियाँ छाया करनेके लिये काममें लाई जाती हैं, परन्तु अधिकतर इस कामके लिये स्टीवेन्सन स्क्रीनका प्रयोग किया जाता है। इसका आविष्कार थोमस स्टीवेन्सन ने सन् १८६६ ई० में किया था। स्टीवेन्सनस्क्रीनका एक चित्र यहाँ दिया जाता है। (चित्र १) यह लकड़ीका बना हुआ एक आयताकार बक्स सा होता है, जिसकी छत दुहरी होती है और बगल भी झिलमिलीदार (लूवर्ड) दुहरी होती है। नीचेकी छत समथल होती है जिसमें कई सूराख़ होते हैं और ऊपरकी छतमें सूराख़ नहीं होते। यह आगेकी तरफ

कुछ ऊँची उठी हुई और पीछेकी तरफ ढालू होती है। दुहरी छतका कारण थर्मामीटरको सूर्यकी किरणोंसे बचाना

चित्र नं० १—स्टीवेन्सन स्क्रीन

होता है। ऊपरी छत सूर्यके तापको जज्ब कर लेती है और इसीलिये इसे सफेदेसे पोत दिया जाता है। यह सफेद रंग सूर्यकी किरणोंको परावर्तित कर देता है। दोनों छतोंके बीच हवा बहती रहनेके कारण नीचेकी छत गर्म नहीं होती। झिलमिली बगलोंमें होकर हवा बिना किसी रुकावटके भीतर आती जाती रहती है। नीचेका हिस्सा तीन तख्तोंका बना होता है, जिसमें बीच वाला तख्ता आस पास वाले तख्तोंके सिरोंको ऊपरसे ढके रहता है। इस प्रकार नीचेका हिस्सा पृथ्वीके विकीरणको थर्मामीटर तक पहुँचानेसे रोकता है, और हवा भी बिना किसी रुकावटके नीचेसे आती जाती रहती है। ओस-बिन्दु अथवा पानी जो कुछ भी स्टीवेन्सन स्क्रीनके अन्दर पड़ जाय तो वह भी नीचे बह जाता है। यह स्क्रीन खुले मैदानमें पृथ्वी
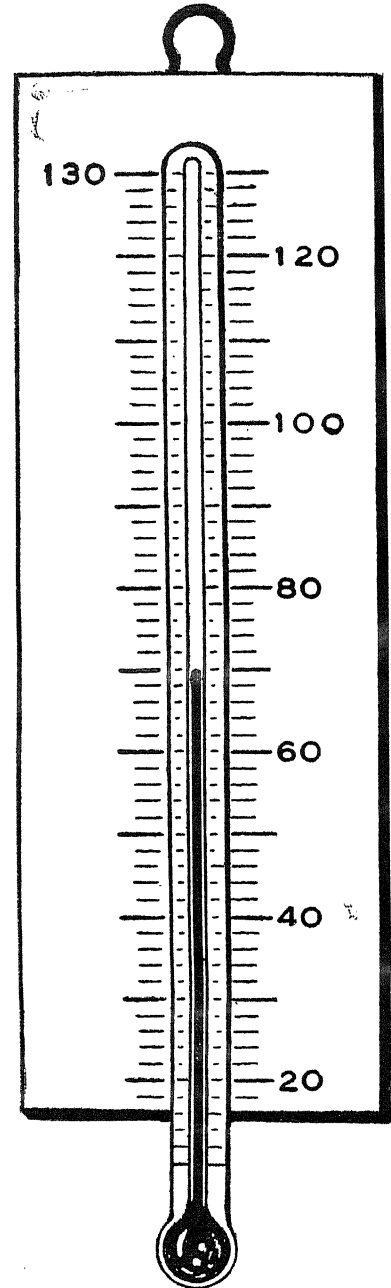
चित्र नं० २—ड्राइबल्ब थर्मामीटर

से ४ फुट ऊँची गाड़ दी जाती है। भारतवर्षके वायुमंडल

निरीक्षणालयोंमें आम तौर पर इस स्टीवेन्सन स्क्रीनके अन्दर चार थर्मामीटर टाँग दिये जाते हैं। (१) ड्राई
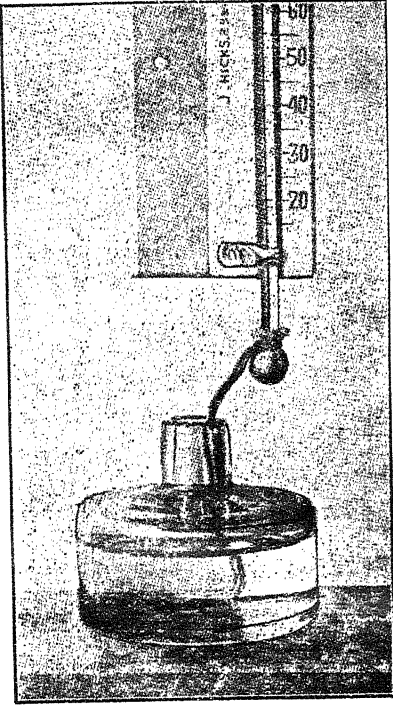
चित्र नं० ३—वेट-बल्ब थर्मामीटर

बल्ब थर्मामीटर (२) वेट बल्ब थर्मामीटर (३) मेक्सीमम थर्मामीटर और (४) मिनीमम थर्मामीटर। स्टीवेन्सन स्क्रीनकी खिड़की बन्द करके उसमें ताला लगा दिया जाता है। प्रत्येक दिन वायु-मंडलके तापक्रमका निरीक्षण करनेके लिये उसे निर्दिष्ट समय पर खोला जाता है। पहले ड्राईबल्ब थर्मामीटर फिर वेटबल्ब थर्मामीटर, तदुपरान्त मेक्सीमम थर्मामीटर और अन्तमें मिनीमम थर्मामीटर पढ़ लिया जाता है। ड्राईबल्ब थर्मामीटर (चित्र २) तो साधारण फारनहीट थर्मामीटर होता है, इसे एक लकड़ीके फ्रेममें जड़कर स्टीवेंसन स्क्रीनमें टाँग देते हैं। यह वायुका तापक्रम बताता है। वेटबल्ब थर्मामीटर (चित्र ३) साधारण ड्राईबल्ब थर्मामीटरके बल्बमें चित्र ३ में दिखाये गये अनुसार भीगे हुये मलमलके टुकड़ेको सूतके भीगे हुये धागेसे बाँध देते हैं, और धागेको पानी भरी हुई बोतलमें डाल देते हैं जिससे बल्बके ऊपर लपेटी हुई मलमल सदैव भीगी रहे। इस प्रकार भीगे हुये बल्बसे जो तापक्रम प्रकट होता है वेटबल्ब तापक्रम कहते हैं। ड्राई बल्ब तापक्रम और वेटबल्ब तापक्रम दोनोंके अनुपातसे गणित द्वारा यह निकाला जा सकता है कि वायुमें क्लेदता कितनी है, मेक्सीमम थर्मामीटर (चित्र ४) में पारा तापक्रमके बढ़नेसे बढ़ता जाता है, परन्तु फिर तापक्रम कम होनेसे नीचे नहीं उतर सकता। इस प्रकार इस थर्मामीटरसे यह ज्ञात हो जाता है कि दिन में सबसे अधिक तापक्रम कितना हुआ। प्रति दिन सुबह चित्र ४ में दिखाई हुई विधिके अनुसार हाथसे झटका देकर पारा नीचे उतारा जा सकता है और उसे स्टीवेंसन स्क्रीनमें लटका दिया जाता है। मिनीमम थर्मामीटर चित्र ५ में पारेके बजाय स्पिरिटका प्रयोग किया जाता है। थर्मामीटर भी नलीके भीतर एक डंबेल आकारकी एक चीज होती है जिसे इनडेक्स कहते हैं। जब तापक्रम गिरता है तो स्पिरिट सुकड़ती है और इंडेक्ससे बल्बकी तरफ खींच ले जाती है। परन्तु जब तापक्रम बढ़ता है तो स्पिरिट फैल कर आगे बढ़ जाती है और यह
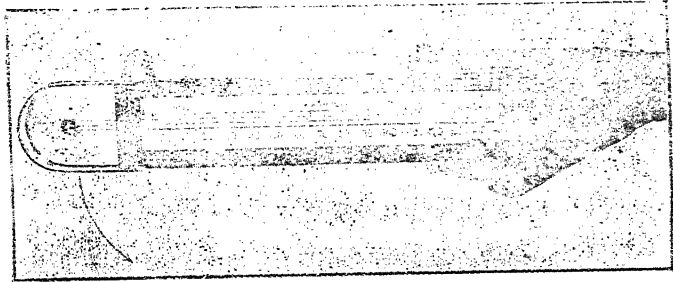
चित्र नं० ४—मेक्सीमम थर्मामीटर

इंडेक्स नहीं रह जाता है। इस प्रकार इंडेक्सको बल्बके दूसरी तरफसे अन्तिम भागपर पढ़कर किसी दिनका न्यूनतम तापक्रम मालूम किया जाता है। प्रत्येक दिन मेक्सीममके समान ही हाथसे जरा थोड़ासा झटका

देकर चित्र नं० ५ के अनुसार इंडेक्सको स्पिरिटके अन्तिम सिरेसे मिला देते हैं और थर्मामीटरको लटका देते हैं।

इसके पश्चात् यह जाँच करनेके लिये कि मेक्सीमम और मिनीमम थर्मामीटर झटका देकर ठीक लटका दिये गये हैं अथवा नहीं, ड्राईबल्ब मेक्सीमम और मिनीमम थर्मामीटरोंको पृथक्-पृथक् पढ़ लेते हैं। अब इन तीनों का तापक्रम लगभग समान होना चाहिये।

थर्मामीटर घुमाकर तापक्रम जाननेकी विधि

(२) (स्लिंग थर्मामीटर विधि) इसका आविष्कार एरागो ने सन् १८३० ई० में किया था। इसमें पहले की गई छाया वाली विधिकी अपेक्षा यह लाभ है कि यह यंत्र कहीं भी ले जाया जा सकता है। इसमें दो थर्मामीटर एक धातुके आयताकार फ्रेममें लगे हुये होते हैं और जो घुमाये जा सकते हैं। इस प्रकार घुमानेसे वायु अधिक मात्रामें थर्मामीटरके बल्बसे के संसर्गसे और तापपरिचालन विधि द्वारा अधिक गर्मी छोड़ती है। इस यंत्रका सिद्धान्त ताप-परिचालनके ऊपर निर्भर है। थर्मामीटर के घूमनेसे अधिक वायु थर्मामीटरके बल्बसे टकराती है और इस प्रकार विकीरणके अनुसाह बढ़े हुये तापक्रमका असर नहींके बराबर हो जाता है। इससे वायुका तापक्रम $\frac{1}{3}$ से मीटर तक सही जाना जा सकता है।

(३) भीतर हवा खींचकर तापक्रम जाननेकी विधि —

एस्पिरेशन थर्मामीटर (चित्र न० ७) या आसमान-साइक्रोमीटर वायुका वास्तविक तापक्रम जाननेका सबसे अच्छा यंत्र है। इसका आविष्कार बर्लिनके आसमान साहब ने सन् १८८७ ई० में किया था। यह आसानीसे कहीं भी ले जाया जा सकता है और इससे वायुका वास्तविक तापक्रम ०.१° फारनहीट तक हर हालतमें सही जाना जा सकता है। इस प्रकारका यंत्र चित्र नं० ७ में दिखाया जाता है। इसमें (र१ और र२) पारेके बने हुये दो थर्मामीटर फ्रेममें जड़े होते हैं और बल्ब
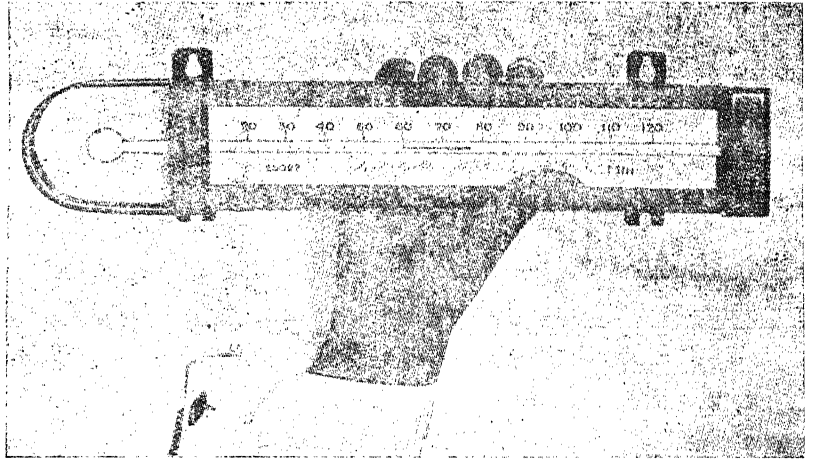
चित्र नं० ५—मिनीमम थर्मामीटर

दो जाकिट (ज१ और ज२) में लगे होते हैं। इसमें (फ) एक पंखा लगा होता है जो चाबी भर कर चलाया जाता है। जब पंखा चलता है तब बड़ी तेजीसे हवाको अपनी ओर खींचता है। इस प्रकार हवाकी एक धारा बल्बके पास होती हुई जाती है जैसा कि तीर द्वारा दिखाया गया है। इस प्रकार थर्मामीटरके बल्बपर सिवाय हवाके तापक्रमके और किसी दूसरे प्रकारके तापक्रमका प्रभाव नहीं रहने पाता और वायुका वास्तविक तापक्रम प्रकट होता है। फ्रेम सफेद वार्निशकी हुई सिलवर का बना होता है और लगभग समस्त Isolation को वापस फेंक देता है और थर्मामीटर भी सिलिवरके फ्रेम (स १ स २) द्वारा सूर्यकी किरणोंसे बचे रहते हैं। इसपर भी जिकेटको हाथी-दांतके छल्ले द्वारा इस धातुसे पृथक् कर दिया जाता है जिससे थोड़ी बहुत भी गर्मी बल्ब तक न पहुँचे। इस प्रकार यह यंत्र बिलकुल विश्वस्नीय होता है। दो थर्मामीटरोंमें से एक के बल्बको पानीसे भिगोकर वेटबल्ब और दूसरेको ऐसा ही रख कर ड्राईबल्ब तापक्रम मालूम किया जा सकता है।

वायु-भारकी भाँति वायु-तापक्रम जाननेके लिये भी

स्वलेखक यंत्रोंका व्यवहार किया जाता है। उस स्वलेखक यंत्रको जो वायु तापक्रमको लगातार एक चार्ट
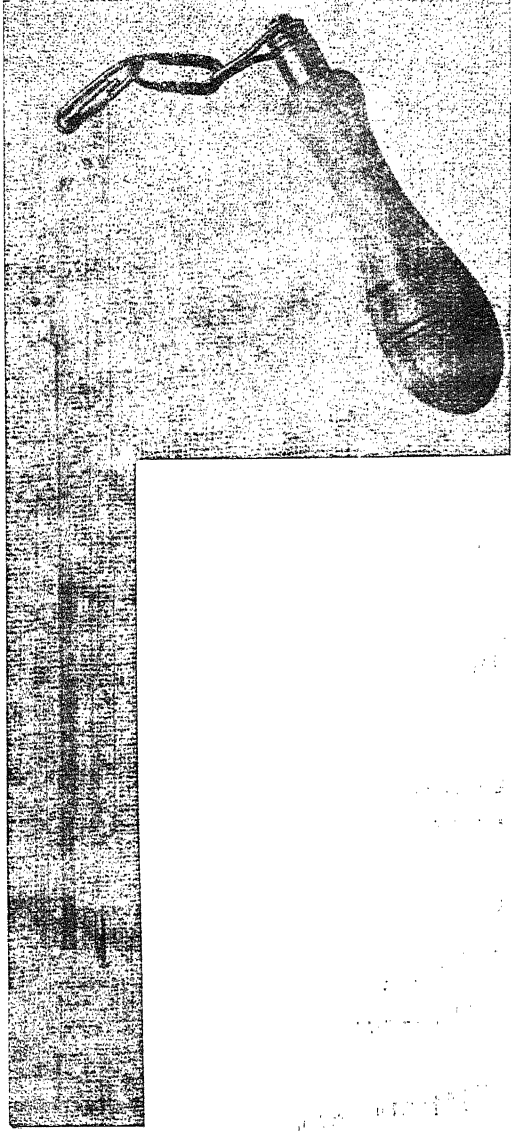
चित्र नं० ६—स्लिंग थर्मामीटर

पर लिखता जाता है, थर्मोग्राफ़ कहते हैं। इस कामके लिये कई प्रकारकी बनावटके यंत्र काममें लाये जाते हैं। भारतवर्षमें इस कामके लिये आमतौर पर दो प्रकारके यंत्र काममें लाये जाते हैं, (१) बोर्डोन-ट्यूब-टाइप (२) बाइमेटेलिक टाइप। थर्मोग्राफ थर्मामीटर वाली स्टीवेंसन स्क्रीनके पास ही दूसरी स्टीवेन्सन स्क्रीनके भीतर रख कर काममें लाये जाते हैं।
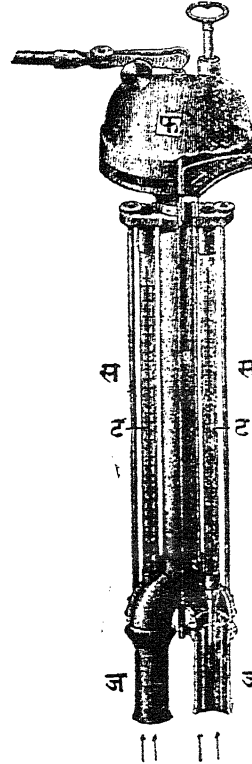
चित्र नं० ७—आसमान-साइक्रोमीटर

(१) बोर्डोन ट्यूब-टाइप थर्मोग्राफ :—इस प्रकारके थर्मोग्राफका चित्र (चित्र न० ८) दिया जाता है। इसमें बोर्डोनट्यूब (ब) दीर्घवृत्तिक घेरेका होता है जो दो इञ्चके अर्ध व्यासके चापके रूपमें मुड़ा होता है। इस पर चाँदीकी क़लई की हुई होती है। ट्यूबका ऊपरी सिरा बहुत मज़बूतीके साथ फ्रेम 'अ' में जड़ा होता है। और उसमें तात्कालिक तापक्रमके अनुसार यंत्रके कलम को ऊँचा नीचा करनेकी व्यवस्था होती है। और दूसरा सिरा एक शीशेके ट्यूब 'ल' से जुड़ा होता है और जो लीवर द्वारा लिखने वाले कलमको ऊपर नीचे करता है। बोर्डन-ट्यूबमें एलकोहोलकी तरहका न जमने वाला तरल

पदार्थ, जिसका कि तापक्रम बहुत ही कम हो, यानी इतना कम कि जितनेसे कम यंत्रसे तापक्रम जाननेकी आशा न की जा सकती हो; भर देते हैं। तापक्रम के बढ़नेसे एलकोहोल बढ़ता है जिससे ट्यूब कड़ा होता जाता है और शीशे वाले ट्यूबको नीचेकी तरफ करता जाता है। इस गतिको लीवर द्वारा कई गुणी बढ़ा लिया जाता है और इससे कलम ऊँचा उठता है। तापक्रम जब कम होता है तब बोर्डोन-ट्यूबकी लचकके कारण टेढ़ापन बढ़ जाता है जिससे शीशे वाले ट्यूब और लीवर द्वारा यह गति कलमको नीचा कर देती है। कलममें स्याही भर दी जाती है और यह कलम एक चार्ट पर लकीर करती जाती है जो एक पीतलके ड्रम 'ड' के ऊपर चढ़ा होता है। ड्रमके अन्दर घड़ी होती है उसके द्वारा २४ घंटेमें पूरा घूम जाता है। इस यंत्रकी घड़ीका भी प्रबन्ध बेरोग्राफ ही की तरहका होता है।
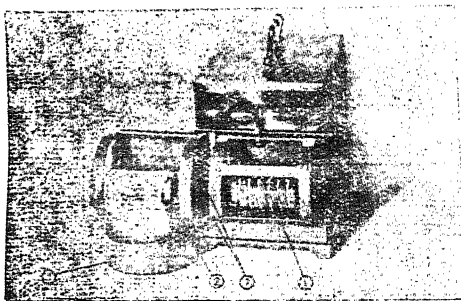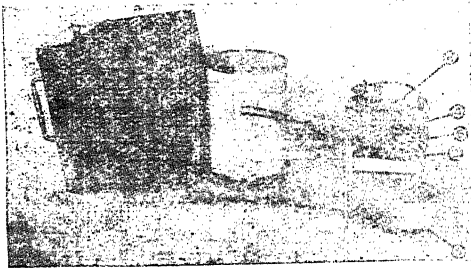
चित्र नं० ९, १०—बाइमेटेलिक थर्मोग्राफ

बाइ-मैटलिक-थर्मोग्राफ—इस प्रकारके थर्मोग्राफके दो चित्र दिये जाते हैं [चित्र नं० ९ (१) चित्र ९ (२)]। बाइमेटेलिक थर्मोग्राफ दो धातुओंकी पत्तियोंको जिनका एक ही तापक्रमपर असमान बढ़ना हो एक दूसरेके ऊपर रख करके बिजली द्वारा एक ही करके उसे कुंडलाकार करके बनाया जाता है।

यह दो धातुयें अधिकतर इनवार और पीतल होती हैं जिसमें इनवारको ऊपर और पीतलका नीचे रखते हैं। कुंडलाकारको अलगसे एक समतल धुरीके ऊपर मोड़ा गया है और यंत्रके ढक्कनके बाहर रक्खा गया है। कुंडलाकारका एक सिरा ब्रोकिट (३) में जड़ा रहता है और दूसरा सिरा धुरी द्वारा कलमके लीवर (४) से। क्योंकि इनवारका प्रसार-गुणक पीतलकी अपेक्षा नहींके बराबर है। इस कारण द्विधातुक मुड़ी हुई पत्तीकी मोड़ तापक्रमके बढ़ने और घटनेसे बढ़ती घटती है और क्योंकि कलमका लीवर द्वारा सम्बन्ध इस पत्तीसे है ही इससे यह घटने बढ़नेकी गति कलमके सिरेपर पहुँच जाती है जो ड्रमपर लपेटे हुये चार्ट पर ऊपर नीचेको होता और प्रति समयका तापक्रम लिखता जाता है। ड्रमको घुमाने का तो नहीं घड़ी वाला प्रबन्ध सब स्वलेखक यंत्रोंमें एकसा ही है। एक दूसरे कुण्डलाकार (२) को जो कि बिलकुल पहिलेके समान है एक पतले मलमलके टुकड़ेसे लपेट देते हैं और उसे हर समय पानीसे भीगा रखते हैं। इसको हमेशा भीगा रखनेके लिये मलमलका एक सिरा पानीकी एक छोटी-सी टंकी (५) में डाल देते हैं और टंकीको स्रवित जल या वर्षा-जलसे भरा रखते हैं तो इसका कलम वेट-बल्ब-तापक्रम लिखता जाता है। इस प्रकार इस यंत्रसे किसी भी समयका ड्राईबल्ब तापक्रम, वेटबल्ब तापक्रम और किसी भी दिनका मेक्सीमम और मिनीमम तापक्रम जाना जा सकता है। और साथ ही साथ मेक्सीमम और मिनीमम तापक्रमका समय भी जाना जा सकता है। इस यंत्रको स्टीवेन्सन स्क्रीनमें रख देते हैं और प्रति दिन उनके बताये हुये तापक्रमका मिलान साधारण थर्मामीटरोंके तापक्रमसे करते हैं। यदि अन्तर अधिक होता है तो पेंच (१) को घुमाकर कलमको ऊँचा नीचा कर लेते हैं और यदि कलम बहुत ही ऊँचा नीचा करना हो तो पेंच (७) को खोलकर पेनको इच्छानुसार ऊँचा नीचा करके फिर उसे कस देते हैं।

उपवास

[ले० श्री पुरुषोत्तम देव मुलतानी]

मनुष्य शरीर परमेश्वरकी सर्वोत्कृष्ट रचनाओंमें से है। यह एक बड़ी रासायनिक प्रयोग-शाला है जिसमें कि निरन्तर ऐसे ऐसे अद्भुत परिवर्तन होते रहते हैं कि जिनको देखकर अनायास ही यह ख्याल होता है कि इस शरीरके बनानेवाली मनुष्यसे उत्कृष्ट ही कोई शक्ति हो सकती है। इस शरीरकी वृद्धि तथा ह्रासके नियम मनुष्योंके बनाये हुए नियमोंके बिलकुल प्रतिकूल हैं। जब मनुष्यको किसी चीज की वृद्धि करनी होती है तो वह उसके साथ और नई चीजको जोड़ता है जिससे कि उसमें वृद्धि हो जाय। जैसे कि एक चमड़ेके बेगको बड़ा करने के लिए उसमें टाँके लगाकर नया चमड़ा जोड़ना पड़ता है या उसी चमड़ेको खींच कर बड़ा करना पड़ता है। किन्तु मनुष्यके शरीरमें वृद्धिके नियम इसके सर्वथा प्रतिकूल हैं।

प्रत्येक प्राणीका शरीर छोटे छोटे सेलों से बना है। ये सेल शरीरकी आन्तरिक क्रियाओंसे हर समय टूटते रहते हैं और उनके स्थानमें नये नये सेल बनकर आते रहते हैं। इस प्रकारसे शरीरकी वृद्धि होती रहती है। इस टूटने तथा बननेकी प्रक्रियाको धातुविपाक (Metabolism) कहते हैं। टूटनेकी प्रक्रिया या धातु ह्रास (Katabolism) का आरंभ शरीरमें किसी प्रकारकी सक्रियताका होना होता है। जैसे यदि हम व्यायाम करें तो उस समय हमारे सेल अधिक मात्रामें टूटते हैं। नये सेलोंके बनने का कारण शरीरके अंगोंकी वह शक्ति होती है जो कि हमको प्रकृतिके द्वारा जन्मसे ही मिली होती है। टूटे हुए सेल शरीरमें शल्य पदार्थ (Foreign Body) का काम करते हैं और इसीलिये शरीरके अंग शीघ्रसे शीघ्र इन शल्य पदार्थोंको निकालनेके लिए यत्न करते हैं। ये शल्य पदार्थ त्वचासे स्वेदके रूपमें, कानसे कर्णमैलके रूपमें, आँखसे कीचड़के रूपमें, नाकसे 'नाक'के रूपमें तथा अन्य अंगोंसे उनके मैलोंके रूपमें निकलते रहते हैं। इनके अतिरिक्त यकृत, वृक्क तथा प्लीहामें से भी हर समय यह मलरूप विष निकलता रहता है जो हमारे खूनके साथ मिलकर उसके रंगको काला कर देता है और रक्तसे यह दूषित अंश फेफड़ोंमें जाकर ओषजन से मिलकर बाहर निकलता रहता है। उसके साथ साथ ही हमारे अंग भोजन द्वारा प्राप्त रसको नये सेलोंमें परिवर्तित करनेकी प्रक्रियामें हर समय लगे रहते हैं जिससे कि उन टूटे हुए सेलोंके स्थानपर नये सेल आते रहते हैं।

ये दोनों प्रक्रियायें उसी समय तक ठीक होती हैं जब तक कि शरीरको बीच बीचमें विश्रामका अवकाश भी मिलता रहे। यदि कोई मनुष्य सारे दिन व्यायाम ही करता रहे तो कुछ ही घंटोंमें उसका शरीर विश्राम न मिलनेसे मृतवत् हो जायगा। इसी प्रकार यदि शरीरके अंगोंको विश्राम न मिले तो वे भी आपने कार्यको करनेमें असमर्थ हो जाते हैं। अर्थात् यह विश्राम शरीरके लिए उतना ही आवश्यक है जितनी आवश्यक सक्रियताकी है। इस विश्रामको देनेके लिए प्रकृति ने स्वभावतः ही हमारे अन्दर निद्राकी प्रवृत्ति बनाई है। यदि कोई मनुष्य निद्रा न ले तो वह बहुत दिनों तक अपने शरीरको कायम नहीं रख सकता है। दूसरे शब्दोंमें यदि मनुष्य विश्राम न करे तो धीरे धीरे उसका शरीर विनाशकी तरफ ही चलता चला जायगा। हृदय जोकि हमको निरन्तर गति करता हुआ प्रतीत होता है वह भी प्रत्येक संकोच और प्रसारके बीचमें कुछ सेकंडके लिये जरूर ही विश्रामकी अवस्थामें रहता है।

शरीरमें होने वाली इस बनने और बिगड़नेकी प्रक्रियाका आधार ही उपवासके सिद्धांतका आधार है। यदि कोई मनुष्य बहुत अधिक व्यायाम करे और इसके परिणाम-स्वरूप उत्पन्न हुए टूटे हुये सेलोंको मल निस्सारक अंग उतना शीघ्र बाहर न निकाल सकें जितनी जल्दी पैदा हो रहे हैं तो उनके अन्दर रुके रहनेसे बहुत भयंकर परिणाम पैदा हो सकते हैं। यदि मनुष्य बहुत ही जल्दी जल्दी व्यायाम कर रहा हो तो उसका श्वास तेज तथा उथला हो जाता है, नाड़ी तीव्र हो जाती है तथा छातीमें एक सिकोड़ सी प्रतीत होती है। इसका कारण यही होता है कि "रक्त संचारमें

गये हुए दूषित पदार्थ की मात्रा फेफड़ों से निकलने वाले मलकी अपेक्षा बहुत अधिक हो जाती है अर्थात् रक्तमें विषोंकी मात्रा निरन्तर बढ़ती जाती है" (डा० मेकेंज़ी)। किन्तु अब यदि व्यायाम करने वाला थोड़ी देरके लिए विश्राम करे तो उसका शरीर फिर अपनी सामान्य अवस्थामें आजाता है। इसका कारण यही होता है कि उस समय टूटने की प्रक्रिया घट जाती है और मल-निस्सारक अंग अपना काम पूरी तरह से करते रहते हैं जिससे कि उनपर अधिक कार्य-भार न आ जानेसे वे अपने कामको शीघ्र ही समाप्त कर लेते हैं। यही प्रकृतिका नियम खानपानके विषयमें भी समझना चाहिये। हम अपने आमाशयके अन्दर अपनी जिह्वाशक्तिमें संयम न होने के कारण तथा सभ्यताके तकाज़ोंसे बाधित होकर भूख न होने पर भी कुछ न कुछ भोजन कर लेना आवश्यक समझते हैं। और इसी क्रियाके निरन्तर दोहरानेका यह परिणाम होता है कि पाचन-क्रियासे उत्पन्न विषोंको मल निस्सारक अंग उतना शीघ्र नहीं निकाल सकते जितना शीघ्र वे उत्पन्न होते हैं। इस कारण शरीरमें विष रुकते जाते हैं और रसमें उनका संचार होता रहता है जिससे कि अनेक प्रकारके रोग शरीरमें उत्पन्न होते जाते हैं—क्षुधानाश, अजीर्ण, गुरुता, मलबंध आदि बीमारियां उत्पन्न हो जाती हैं। इस समय यदि मनुष्य प्रकृतिके बताये हुए रास्ते पर चले अर्थात् अंगोंको कुछ कालके लिए विश्राम दे तो उसका शरीर सहजमें ही स्वस्थ अवस्थामें आ सकता है। शरीरके निस्सारक अंग इस विश्रामकी अवस्थामें नये कार्यके न आनेसे अच्छी प्रकारके पुराने रुके हुए मलोंको निकालते हैं और इस प्रकार उन विषोंसे उत्पन्न बीमारी भी अपने आप अच्छी हो जाती है। डा० टामस मोरिन ने "फिज़िकलकलचर" में इसके लिये अपना उदाहरण पेश करते हुए लिखा है कि "मैं जीर्ण उदर रोगसे आक्रान्त था, सब दवाइयोंसे निराश होकर जब कि मैंने अपनी मृत्युको निश्चित जान लिया तो उपवास प्रारम्भ किया।" वह बिलकुल स्वस्थ हो गये और उसके बाद ३६ साल तक जीते रहे। इससे यह सिद्ध है कि शरीरके अवयव ठीक ठीक प्रकार से विश्राम मिल जानेसे बिना किसी अन्य बाह्यसाधनके भी अपनी बीमारियोंको हटा लेते हैं।

बीमारियोंको हटानेकी इस प्राकृतिक शक्तिके साथ साथ परमेश्वरने हमें एक और भी स्वाभाविक शक्ति दी है। जिस प्रकार किसी सभ्य समाजमें एक मनुष्य पर आपत्ति आनेपर अन्य मनुष्य उसकी सहायता करते हैं उसी प्रकार शरीरमें भी किसी अंग पर अधिक कार्य-भार आजाता है तो अन्य अंग उसकी सहायता करते हैं। और इसके साथही यदि वह मनुष्य अन्य अंगोंको और कार्योंकी तरफसे हटाकर उसी कार्यकी तरफ लगाये तो उसका वह रोग शीघ्र ही अच्छा हो जाता है। अर्थात् मनुष्यके शरीरमें इस प्रकारकी शक्ति है कि यदि उस पर किसी भी प्रकारका बाह्य प्रभाव न डाला जाय और उससे नियमित ही कार्य लिया जाय तो यह रोगोंको उत्पन्न नहीं होने देगा। इसीसे उपवासके आधार भूत सिद्धान्तोंकी उत्पत्ति होती है। वे सिद्धान्त निम्न हैं—

१—यदि शरीर पर किन्हीं बाह्य शक्तियोंका प्रभाव न किया जाय तो वह स्वनियामक (Self-regulative) तथा स्वचिकित्स्य होता है।

२—तीव्र बीमारियोंकी अवस्थामें शरीरके लिये यह स्वाभाविक तथा अच्छा है कि किसी प्रकारका भोजन न लिया जाय।

३—स्थानिक बीमारी (local diseases) एक विशेष अवस्था होती है जिसमें कि शरीरका कोई अंग विशेष उत्पन्न हुये विषोंको अपने मार्ग द्वारा नहीं निकाल सकता है और जब शरीर इस प्रकार के विषोंसे युक्त हो जावे तो उस समय किसी भी प्रकारका भोजन लेना हानिकारक होता है।

लक्षण

'लंघन' शब्दका अर्थ भोजनको त्याग देना है। 'लंघन' और और उपवास शब्द पर्यायवाची होनेके कारण उपवासका भी यही अर्थ लिखा जाता है इसलिये बर्नार्ड मेकफेडनने भी उपवासका निम्न लक्षण किया है "To fast is totally to abstain from food, either liquid or solid." इसी प्रकार

चार्ल्स एननडेल ने भी उपवासका निम्न लक्षण किया है "A witholding from the usual quantity of food"। किन्तु चरक भगवान ने लंघन तथा उपवास शब्दमें भेद भाव करके लंघनका निम्न लक्षण किया है। 'यत्किंचिल्लाघवकरं देहे तल्लंघनम् स्मृतम्' (सूत्र स्थान २२ अध्याय) और लंघनका यह विस्तृत अर्थ करके उपवासको लंघनका एक हिस्सा माना है। इसके साथ व्यायाम आदिको भी लंघनमें ही सम्मिलित कर दिया है (२२। ११)। इसी प्रकार वाग्भट्टने भी चरकके ही लक्षणको दुहराया है। इसलिये लंघनका यह विस्तृत अर्थ न लेकर 'भोजन को त्याग देना ही लेना चाहिये।

उपवासकी प्राचीनता तथा धर्मके साथ सम्बन्ध

दुनियामें इस समय तक ऋग्वेद सबसे पुरानी किताब मानी गई है। उसमें ब्रह्मचारीसे गुरुकुलमें दाखिल करते समय तीन दिनका उपवास करानेका विधान है। इसी प्रकार वैदिक कालमें जितने भी व्रत धारण किये जाते थे उनसे पहिले १ दिन या अधिक दिनोंका उपवास जरूर करवाया जाता था। इसका सिद्धान्त यह था कि उपवाससे शरीरकी शुद्धि होती है और बिना शरीर शुद्ध हुये मानसिक शुद्धि नहीं हो सकती।

इसके पश्चात् मध्य कालमें आकर तो उपवासकी प्रवृत्ति बहुत ही अधिक बढ़ गई थी। प्रत्येक हिन्दूको एक महीनेके अन्दर २,३,४ दिन तो उपवास जरूर ही करना पड़ता था। उन दिनों लोगों ने उपवासका इतना अधिक महत्व समझा कि इसका सम्बन्ध धर्मके साथ कर दिया गया। स्मृतियोंमें प्रायः पापोंके प्रायश्चितके लिये छोटे या बड़े उपवासोंका ही विधान किया गया है। इसी प्रकार मध्यकालके बने हुये चिकित्सा ग्रंथोंमें भी उपवासका बहुत अधिक वर्णन है। चरक सूत्र स्थानका २२ वाँ अध्याय, तथा वाग्भट्ट सूत्र स्थानका १४ वाँ अध्याय इसी उपवासकी उपयोगिता पर लिखे गये हैं तथा चिकित्सा स्थानमें भी भिन्न-भिन्न रोगोंकी निवृत्तिके लिये उपवास का विधान किया गया है। सुश्रुत 'अम्लोपहरणीय अध्याय' में शल्यसे पूर्व लंघनका विधान करते हैं जो कि आज कल भी उसी रूपमें प्रचलित है। इसी प्रकार मध्यकालीन अन्य चिकित्सकों ने भी इसकी उपयोगिताको स्पष्ट रूपसे माना है।

यूरोपमें सबसे प्रथम ईसासे १५०० वर्ष पूर्व ल्यूगी कोरनारो ने अपनी उम्रके बढ़ानेके लिये उपवास किया। उसके बाद यूरोपका प्रसिद्ध डाक्टर फ्रायल नन्स योषापस्मारके लिये सदा उपवासका प्रयोग किया करता था। इसी प्रकार अरबका मशहूर चिकित्सक एविसीना अपने सब बीमारोंको उपवासके द्वारा ही ठीक किया करता था और रातको वह अपने बीमारोंके चारों तरफ चक्कर काटा करता था कि कहीं कोई बीमार कुछ खा न ले।

आज कल तो पाश्चात्य तथा पौरस्त्य सभी डाक्टर चिकित्सामें उपवासका कुछ न कुछ प्रयोग करने लगे हैं। अमेरिकाका मशहूर डाक्टर बर्नार्ड मेकफेडन ४० सालसे अपने बीमारोंको उपवासके द्वारा ठीक करता आ रहा है और उसने लोगोंके सामने इसकी महत्ता को बहुत विस्तृत कर दिया है। डा० एडवर्ड डेवे अब तक सैकड़ों मरीजोंको उपवासके द्वारा ठीक कर चुके हैं। इसी प्रकार डा० एलबर्ट हिलर आदि अनेक डाक्टरोंके नाम पेश किये जा सकते हैं।

इसके साथ ही उपवासको धार्मिक महत्व भी इतना अधिक दिया गया है कि स्वाभाविक तौर पर ही इसका बहुत अधिक प्रचार सामान्य जनतामें हो गया है। हिन्दुओं के सभी धार्मिक ग्रंथोंमें इसकी महत्ताको स्वीकृत किया गया है। वेदोंसे लेकर सूत्रों तक सभी धर्मग्रंथोंमें इसको महत्व दिया गया है। स्मृतियोंमें तो चान्द्रायण, आदि अनेक उपवास सम्बन्धी व्रतों तथा एकादशी, चतुर्दशी, शिवरात्री आदि उपवास करनेका विधान बड़े स्पष्ट रूपमें है। बाइबिल में अनेक जगह उपवास करनेका विधान है। रोमन कैथोलिक चर्च ने उपवासमें विश्वास प्रगट किया है और बहुतसे लोगोंको इसके लिये प्रेरणा की है और इसीलिए कैलेण्डर छपवाते समय त्योहारोंके साथ-साथ उपवासके दिनोंको भी छपवाते हैं। तथा जान काल्विन और जान वेज्ली जो कि मशहूर ईसाई उपदेशक हुये हैं; वे उपवासके महत्वको आम लोगों तथा

उपदेशकोंके लिये स्वीकृत करते हैं। मुसलमानोंके तो प्रायः सभी त्योहार उपवासके लिये होते हैं और रमजानके महीनेमें तो उन्हें ३० दिन तक उपवास करनेकी आज्ञा है। जैनियोंके धर्मग्रंथ "महावीरचरितम्"में छोटे उपवासोंके साथ-साथ ही बहुकालव्यापी उपवासोंका स्पष्ट विधान है। बौद्ध-धर्मके प्रवर्त्तक बुद्ध भगवान् ने स्वयं कई महीनों तक उपवासके द्वारा अपने शरीरको शुद्ध करके धर्मका रहस्य पाया था। और इसीलिये 'धम्मपद' में जगह-जगह वे अपने भुक्षुओंको उपवासके लिये प्रेरित करते हैं। इस प्रकार प्रायः सभी धर्मोंमें उपवासकी महत्ताको माना गया है।

अधिक भोजनसे हानियां तथा उपवासकी आवश्यकता

आम लोगोंकी यह धारणा है कि यदि मनुष्य भोजन नहीं करेगा तो उसका शरीर धीरे-धीरे क्षीण होकर उसकी मृत्यु हो जायगी और इस विश्वासको दृढ़ करनेमें चिकित्सक लोग भी बहुत सहायता देते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि जब कोई मनुष्य बीमार होता है तो वह शरीरके क्षीण हो जानेके भयसे अपने भोजनको पूर्ववत् जारी रखता है और उसकी पाचकाग्नि कमजोर होनेके कारण उसको भोजन हजम करनेके लिये दवाइयोंकी सहायता लेनी पड़ती है। बिना दवाइयोंके वह अपने भोजनको हजम नहीं कर सकता है। इस प्रकार दवाइयों पर निर्भर रहनेके कारण उसकी स्वाभाविक पाचकाग्नि बिलकुल नष्ट हो जाती है। इस अवस्थाके आनेके बाद वह कितना ही अच्छा भोजन क्यों न करे वह उसके शरीर में पचता नहीं है और बिना पचे ही आंतोंके द्वारा निकल जाता है। इससे मनुष्यकी वृद्धि रुक जाती है और सब कुछ खाने पीने पर भी उसका शरीर क्षीण ही होता जाता है। इसका कारण यह होता है कि अपचित अपक्व भोजन हमारे शरीरमें जज़्ब नहीं होता है। और उसके जज़्ब न होनेके कारण शरीरकी वृद्धि भी नहीं होती है। अर्थात् भोजनका शरीरमें पहुँच जाना ही आवश्यक नहीं है किन्तु उसके साथ उसका शरीरमें जज़्ब होना भी जरूरी है।

किन्तु कुछ लोग शरीरमें भोजनकी ही प्रधानता मानते हैं। डा० लाऊसन अपने एक लेख में कहता है कि 'यदि कोई मनुष्य आधे पेट भोजन करे तो उसका भार निरन्तर ही घटता जायगा'। किन्तु यह बात ठीक नहीं है। आधा पेट भोजन करना मनुष्यके लिये पर्याप्त होता है। प्रायः यह देखा गया है कि जो मनुष्य अधिक भोजन करते हैं। उनका भार कुछ दिनके लिये बढ़ता तो ज़रूर है किन्तु कुछ समय बाद उनकी अग्नि मन्द होकर उनकी खुराक अपने आप कम हो जाती है और उस समय भर पेट खाते रहने पर भी उनका भार बढ़ता नहीं है किन्तु धीरे-धीरे घटना ही प्रारम्भ हो जाता है।

मनुष्योंकी इसी गलत धारणाका यह परिणाम है कि आज कल सभ्य समाजसे लेकर गरीब मनुष्यों तकमें भी खानेका रोग हो गया है। खानेके रोगका यह अभिप्राय है कि मनुष्यको चाहे भूख हो या न हो जब उसका खाने का समय होता है या उसकी भोजनकी घंटी बजती है वह आपने पेटकी आज्ञा बिना लिये ही खानेके लिये तैयार हो जाता है। सभ्य समाजमें तो यह रोग इतने अधिक भयंकर रूपमें फैला हुआ है कि यदि वे दिनमें ४-५ बार भोजन नहीं कर लेते हैं तो उन्हें सन्तोष ही नहीं होता है। इस प्रकार निरन्तर खानेका यह परिणाम होता है कि उनकी पाचकाग्निके निर्बल हो जानेसे बिना पचा हुआ भोजन जब आंतोंमेंसे गुज़रता है तो उनमें से विषद्रव्य निकल-निकल कर निरन्तर रक्तमें जाते रहते हैं और इससे रक्त दूषित हो जाता है। यह दूषित हुआ रक्त शरीरके भिन्न-भिन्न भागोंमें संचार करता है और उससे भिन्न भिन्न अंगोंमें बीमारियां हो जाती हैं निरन्तर अधिक भोजन खानेसे जो दुष्प्रभाव सबसे पहिले हमको नज़र आता है वह मलबन्ध होता है। मलबन्ध आजकलकी सभ्यताका एक दुःशाप है जिससे लगभग ६०% मनुष्य ग्रस्त रहते हैं। इस लिये एक डाक्टर ने कहा है 'Civilisation and Constipation both go together'। मलबन्ध होनेके बाद अन्य रोगोंके पैदा होनेमें देर नहीं लगती है। मलके अन्दर रुके रहनेके कारण वह सड़ता रहता है और उससे अतिसार,

प्रवाहिका आदि रोग उत्पन्न होते हैं। आमाशय पर ज्यादा कार्य होनेसे यकृत (Liver) को भी ज्यादा कार्य करना पड़ता है और धीरे-धीरे उसकी शक्ति कम होने लगती है । इससे पित्त रस कम निकलता है जिसके परिणामस्वरूप अजीर्ण, अम्लपित्त आदि बीमारियां हो जाती हैं तथा इसके साथ ही यकृत वृद्धि और उसका आरोध हो जाता है। आन्त्र-रसके रक्तके साथ शरीरके अन्य अंगोंमें जानेसे आमवात, गठिया, आदि बीमारियां भी हो जाती हैं। भिन्न-भिन्न प्रकारके ज्वरोंका आदि मूल इस पाचकाग्निका खराब होना ही होता है। इसीलिए चक्रपाणि ने लिखा है कि—"आमाशयस्थो हत्वाग्निं सामो मार्गान् पिधापयन् । विदधाति ज्वरं दोषः" इस प्रकार यह स्पष्ट है कि पाचकाग्नि के दूषित हो जानेसे कितनी बीमारियां पैदा हो जाती हैं। और इतनी अधिक बीमारियां भोजनसे उत्पन्न होनेके कारण ही डाक्टर डेवे एक जगह लिखते हैं—"It might safely be affirmed that immeasurable more people die as a result of overfeeding than are carried of by famine." इसी प्रकार डा० सिडनी ब्रेड अपनी "Comprehensive Guide" में लिखते हैं 'The majority persons live on about half of what they eat.' इसी प्रकार "Newyork Herald" अमेरिकाके विषयमें लिखता है "१९३२ का साल स्वास्थ्यकी दृष्टिसे उत्तम साल रहा। इस वर्ष बेकारीके कारण करोड़ों अमेरिकनोंको या तो भूखा रहना या बहुत ही साधारण भोजन करना पड़ा"। इन तीन सम्मतियोंसे यह स्पष्ट है कि (i) अधिक भोजन खानेसे अधिक बीमारियां पैदा होती है और उससे मृत्यु संख्या बढ़ती है। (ii) मनुष्य साधारणतया जितना खाते हैं उससे आधा भी खायें तो वे बिलकुल स्वस्थ रह सकते हैं। (iii) ज्यादा खानेकी अपेक्षा न खाना ज्यादा अच्छा है। क्योंकि इससे स्वास्थ्य पर कम बुरा प्रभाव पड़ता है।

इन शारीरिक बीमारियोंके साथ ही मनुष्यके मस्तिष्क पर भी इस अधिक खानेका बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। मस्तिष्कका पोषण करने वाला रक्त जिस समय दूषित हो जाता है उस समय शरीरकी सारी शक्तियां रक्तमें से इस दूषित अंशको निकालनेमें लग जाती हैं। इसका परिणाम यह होता है कि मनुष्यकी मानसिक वृद्धियां रुक जाती हैं और मनुष्य कूढ़मग़ज़ हो जाता है। शक्ति, उत्साह, धैर्य्य, सहनशीलता आदि गुणोंका भी नाश होता है तथा सिर दर्द, चक्कर आना आदि लक्षण सिरमें हर समय बने रहते हैं। इस प्रकार अधिक-भोजन से निम्न चार प्रभाव हमारे शरीर पर होते हैं—

(i) अधिक भोजनसे रक्तदूषित तथा विषयुक्त हो जाता है, जिससे कि मनुष्यके शरीरमें रोगोंके लिए ग्राहक प्रवृत (Susceptibility) हो जाती है?

(ii) शरीरमें पहिलेसे ही जो नया या पुराना रोग होता है उसकी वृद्धि हो जाती है?

(iii) हमारे स्नायु-संस्थान पर बहुत जोर पड़ता है और उसकी सारी शक्ति विषको बाहर निकालनेमें लग जाती है।

(iv) अनपच भोजनसे जो विष हमारे शरीर तथा मस्तिष्क में जाता है उससे मनुष्यकी शारीरिक तथा मानसिक शक्तियोंका शीघ्र ही ह्रास होने लगता है।

समयासमय

आमतौर पर लोगोंको नित्य प्रति नये नये स्वादिष्ट भोजनोंके खाने पर भी यह शिकायत बनी रहती है कि उन्हें भोजनमें स्वाद नहीं आता। बड़ेसे बड़े होटलों में चले जाइये और वहाँ स्वादुसे स्वादु भोजनोंके खाने वालोंको भी आप यही कहते पायेंगे। इसका कारण यह है कि मनुष्यकी वास्तविक भूखका तो नाश चुका होता है किन्तु वह अपनी आदतके कारण निरन्तर खाता ही रहता है। इसलिए प्रकृति ने मनुष्यको सूचित करनेके लिए यह बड़ा संकेत बनाया है। जिस समय भी कोई मनुष्य यह अनुभव करे कि उसको साधारण भोजनमें स्वाद नहीं आरहा है और उसको भूखको उत्तेजित करने के लिये स्वादु भोजनोंकी आवश्यकता पड़ रही है तो उसको समझ लेना चाहिए कि उसको वास्तविक भूख नहीं है। और यह वास्तविक भूखका न रहना ही प्रकृतिकी

तरफसे उपवास करनेका संकेत है। इसलिए ऐसी अवस्था के आते ही उपवास कर देना चाहिये और तब तक उसे जारी रखना चाहिए जब तक कि उसकी वास्तविक भूख लौट न आये।

कई बार प्रकृति प्रदत्त इस संकेतको देख कर भी मनुष्य प्रकृति द्वारा बताये हुए सरल रास्तेका अनुकरण न करके डाक्टरोंकी शरण लेता है और डाक्टरों द्वारा प्राप्त औषधरूप विषको वह कुछ दिनों तक अपने अन्दर डालता रहता है और उनके द्वारा अपने शरीरके कार्यको चलाता है। किन्तु इन औषधियोंसे मनुष्यका शरीर और कमजोर होता जाता है और वह बहुत सी बीमारियोंका आश्रय बन जाता है। ऐसी अवस्थामें जब कि उसका शरीर दवाइयोंके द्वारा भी उत्तेजित नहीं होता, उसको अपनी गलतियोंका स्मरण आता है। यदि इस समय भी वह प्रकृतिके मार्ग पर लौट आये अर्थात् अपने पाचक अंगोंको कुछ कालके लिये विश्राम दे तो प्रकृति उसके पिछले पापोंको भूलकर माताकी तरह उसको अपनी गोदमें आश्रय देगी और उपवासरूप अपने मातृ-मय हाथसे धीरे-धीरे उसकी सारी बीमारीको हर लेती है। अर्थात् जब तक मनुष्यके अन्दर शक्ति शेष है तब तक भी यदि उपवास कर दिया जाय तो अवश्य फायदा हो जाता है।

किन्तु इसके साथ ही इस बातको भी ध्यानमें रखना चाहिये कि उपवास अपने आप कोई नई शक्ति देने वाली क्रिया नहीं है किन्तु उसके द्वारा शरीरमें स्थित विष बाहर निकलते हैं जिससे शरीर अपने कार्यको ठीक प्रकार करने लगता है। इसलिए उपवासका प्रयोग किसी बीमारी या अस्वस्थताके प्रतीत होने पर ही करना चाहिए। किन्तु जिन मनुष्योंकी पाचकाग्नि ठीक प्रकार काम करती हो, यकृत ठीक प्रकार कार्य करता हो तथा फेफड़े आदि स्वस्थ और मजबूत हों उन लोगोंको उपवास नहीं करना चाहिये। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसी बीमारियां भी मानी गई हैं जिनमें उपवासका प्रयोग करनेसे लाभके बदले हानि ही होती है। इसके विषयमें मेकफेडन लिखता है "The only cases where we do not advocate fasts are of tuberculosis and catarrhal complaints where the vitality is too low to risk the loss of any serious amount of tissue." इसी प्रकार चरक भगवान ज्वरके प्रारम्भ में लंघनका निर्देश करते हुए कहते हैं कि जिन ज्वरोंमें शरीरका काम काफी हो चुका हो जैसे वातिक, तथा क्रोध, शोक आदिसे उत्पन्न ज्वरोंमें उपवासका प्रयोग नहीं करना चाहिए, अर्थात् जिस समय शरीर क्षयकी अवस्था में जारहा हो उस समय उपवास नहीं कराना चाहिये।

शरीर पर प्रभाव (साधारण)

१—**भोजन-प्रणाली संस्थान**—जिस प्रकार अत्यधिक भोजनका सबसे प्रथम दुष्प्रभाव आमाशय पर दिखाई पड़ता है उसी प्रकार उपवासका भी प्रभाव सबसे प्रथम आमाशय पर दिखाई पड़ता है। उपवास करनेके दूसरे या तीसरे दिन बड़ी जोरकी भूख प्रतीत होती है जिसका कारण यह होता है कि हमारी खानेकी आदत हमको उस समय सताती है। और इससे बड़ी बेचैनी प्रतीत होती है। जब यह आन्तरिक भूख सताना बन्द कर देती है तो शरीरसे विषोंका निकलना प्रारम्भ होता है और यह अवस्था विषोंकी मात्राके अनुसार ३ या ४ दिन तक होती है; कभी-कभी १५ दिन तक भी देखी जाती है। विषोंके निकलनेके कारण जिह्वा मैली, श्वास-दुर्गन्धयुक्त तथा उसकी भूख बिलकुल नष्ट हो जाती है। शरीरकी स्वोपचार शक्ति इस समयमें कार्य कर रही होती है। विषोंके कम होनेके कारण इस समय ही रोग भी घटते हैं। विषोंके नष्ट होजानेके बाद पेट हलका प्रतीत होने लगता है और वास्तविक भूख फिर प्रतीत होने लगती है। जिह्वा साफ़ हो जाती है। शरीर हलका प्रतीत होने लगता है यद्यपि उसके अन्दर शारीरिक तथा मानसिक काम करनेकी शक्ति कम होती है।

आंतों पर भी देखने लायक प्रभाव होता है। मलके अन्दर सड़नेसे आमवात, अतिसार, प्रवाहिका आदि बीमारियां उत्पन्न हो गई थीं उनमें परिवर्तन होने लगता

है। आंतोंमें नया अन्त्र-रस न आनेके कारण उसके सेलों को काम कम करना पड़ता है जिससे कि उनकी लुप्त हुई शक्ति जागृत हो जाती है। आँतें मलका पाक करके धीरे-धीरे निकालने लगती हैं तथा आंतोंमें उत्पन्न हुई हवा शोषित हो जाती है, और आंतोंमें मलको ढकेलनेकी शक्ति कम होनेके कारण कुछ दिनों बाद वह अपने आप नहीं निकल सकता है और उसको एनीमाके द्वारा निकालना पड़ता है। जिस समय सारा मल निकल जाता है उसके बाद शरीरके स्नायुका नाश होने लगता है और शरीरका भार बहुत अधिक घट जाता है।

१. मल त्याग—पहिले,मलकी मात्रा तथा उसकी नियामकता पर प्रभाव होता है। आंतोंमें बहुत दिन तक मलके रुके रहनेसे मल कठोर हो जाता और उसके निकलनेमें कठिनता होती है। कई बार इसके निकलनेसे बहुत दर्द तथा रक्त-स्राव भी हो जाता है। इसलिए एनीमाका प्रयोग अवश्य करना चाहिये। यदि उपवाससे पहिले दिन साधारण भोजन किया गया हो तो प्रथम दिन और दिनों के सामान ही मल आता है। किन्तु २-३ दिन बाद यह रुक जाता है और यदि न निकाला जाय तो खराब परिणाम पैदा कर सकता है।

२. रुधिर-संस्थान—तापमान—भोजन शरीरमें पचकर तापमानको पैदा करता है। जिस प्रकार इंजनमें कोयले की जरूरत होती है उसी प्रकार शरीर रूपी इंजनको ठीक-ठीक संचलित रखनेके लिये ईंधनकी जरूरत होती है, यह भोजन ही हमारे शरीरमें ईंधनका काम करता है और शरीरके तापमानको स्थिर रखता है। इसलिये जब हम भोजन नहीं करते तो हमारा तापमान कम हो जाना चाहिये क्योंकि तापका आधार भोजन ही अनुपस्थित होता है किन्तु डा० बेनेडिक्ट बहुत अन्वेषणोंके बाद इसके बिलकुल विपरीत परिणाम पर पहुँचे हैं कि "उपवास शुरू करनेके ४ दिन बाद तक भी शरीरके तापमानमें कोई अन्तर नहीं आता है और उसके बाद भी तापमान कभी-कभी उपवासकी वृद्धिके साथ बढ़ता जाता है।" इस प्रकार प्रकृति के नियमोंके विरुद्ध इस प्रक्रिया का होना बड़े ही आश्चर्यकी बात है। इसलिये मैकफेडन कहता है—

"How such facts could be if we derived our bodily heat from the food consumed as is usually taught is a mystery".

नाड़ी—भिन्न-भिन्न प्रकारके परिवर्तन देखे जाते हैं इसीलिये चिकित्सक लोग अभी तक ठीक परिणाम पर नहीं पहुँच पाये हैं। कुछ अवस्थाओंमें यह साधारण रहती है किन्तु कुछ अवस्थाओंमें इसकी गति मन्द हो जाती है। लगभग ६४ प्रतिशत आदमियोंमें नाड़ी साधारण देखी गई है। और ३५ ५ प्रतिशत में कम देखी गई है तथा किसी-किसीमें बढ़ी हुई भी देखी जाती है।

रक्त—उपवासके समय रक्तमें बहुत भिन्न-भिन्न परिवर्तन देखे गये हैं। डा० मूलर तथा सिनेटर ने परीक्षा करके देखा है कि रक्तमें रक्ताणुओंकी संख्या बढ़ जाती है। किन्तु इससे भी आगे बढ़ कर डा० टौसिज्क ने उपवासके समय होने वाले रक्तमें निम्न परिवर्तन बताये हैं—

१—कुछ समय तक रक्ताणुओंकी संख्या घटनेके बाद बढ़नी शुरू होजाती है।

२—उपवासकी वृद्धिके साथ-साथ श्वेताणुओंकी संख्या कम होती जाती है।

३—एक न्यूक्लियस वाले श्वेताणुओंकी संख्या घट जाती है।

४—इओसिनोफिलेस तथा पोलीन्यूक्लियरकी संख्या बढ़ जाती है।

इन प्रभावोंके अतिरिक्त आँतोंमेंसे जो अन्त्ररस रक्तमें चला गया था वह भी धीरे-धीरे पाकको प्राप्त मलके द्वारा निकलने लगता है। इसीलिये इस अन्त्ररससे उत्पन्न आमवात आदि बीमारियां अच्छी हो जाती हैं। श्री एमबोज् टेलर ने ६० वर्षकी आयुमें आमवातके लिये उपवास किया और वे पूर्ण स्वस्थ हो गये। तथा आंतोंमें मलके होनेसे रक्तका दबाव बढ़ जाया करता है पर वह इस समय आंतोंके साफ़ होनेसे घटने लगता है और इस प्रकार हृदयकी अतिवृद्धि कम हो जाती है, तथा हृदय पर जो चर्बी उत्पन्न हो गई थी वह ईंधन बनकर जल जाती है और इस प्रकार हृदयके फेल होनेका डर कम हो जाता है।

३. यकृत—अधिक भोजन खानेसे साधारणतया यकृतकी वृद्धि या आरोध हो जाता है। इन दोनों अवस्थाओंका यह कारण होता है कि यकृतको ज्यादा कार्य करना पड़ता है। उपवासके समय यकृतके सेल अधिक मात्रामें उत्तेजित होते हैं जिससे कि पित्त अधिक निकलती है। आंतोंमें स्थित मलका ठीक परिपाक होने लगता है। मलका रंग मटियाला पीला सा हो जाता है और उसका आरोध दूर हो जाता है। हेमिल्टन-ब्रूक ने यकृत-आरोधके लिये उपवास किया और ३० दिनोंमें वे पूर्ण स्वस्थ हो गये। पित्तके अधिक निकलनेके कारण ही अजीर्ण, मलबन्ध, अतिसार आदि बीमारियोंको उपवासके द्वारा हटाया जा सकता है।

४. मूत्र-संस्थान—आमाशयमें उत्पन्न हुए विषद्रव्य रक्त द्वारा शरीरमें फैलकर फिर वृक्कों द्वारा बाहर निकलते हैं। इनमेंसे सबसे मुख्य यूरिया होता है। यदि यह शरीरसे बाहर न निकले तो बहुत भयंकर लक्षण पैदा हो जाते हैं। डा० एलेकज़ेण्डर हेग आदि तो सिर्फ इसकी निकलनेकी मात्रासे ही शरीरकी वृद्धि तथा ह्रासका अनुपात लगाते हैं। जिस समय रक्तमें यूरियाकी मात्रा अधिक हो जाती है तो वृक्कको कुछ आराम मिलता है क्योंकि नये विषद्रव्य पैदा होकर शरीरमें नहीं आते होते हैं। वृक्क यूरिया को अधिक मात्रामें शरीरसे निकालने लगते हैं जब तक कि उसकी अनुचित मात्रा नहीं निकल जाती है। इसके बाद धीरे-धीरे यूरियाकी मात्रा कम होने लगती है और इससे मालूम पड़ता है कि अब शरीरकी शक्ति क्षीण होने लग गई है। किन्तु इस क्षीणताकी अवस्थाके आनेसे पहिले कई बार स्फूर्ति प्रतीत होती है और कुछ समयके लिए यूरिया की मात्रा ज्यादा निकलती है। इसके कारणके विषयमें डा० हेग लिखते हैं—"I believe that the body has begun to feed on its own tissue."

अर्थात् शरीरमें पाचक रस इस समय स्नायुओंके नाशमें लग जाते हैं और उत्पन्न यूरिया मूत्र मार्ग द्वारा निकलने लगता है।

५. मूत्र—यदि उपवासके दिनोंमें पानीका प्रयोग न किया जाय तो मूत्रकी मात्रा साधारणतया घट जाती है। यदि पानीका प्रयोग किया जाय तो मूत्रकी मात्रा साधारण के समान या उससे कुछ ही कम होती है। किन्तु प्रथम दिन साधारण अवस्था के समान ही मात्रा होती है। मूत्रकी प्रति-क्रिया आम्लिक होती है। घनत्व १०१५ से १०२५ तक होता है। मूत्रमें ठोस पदार्थोंकी मात्रा ४० ग्राम प्रति दिनसे अधिक नहीं होती।

६. त्वचा—शरीरमें त्वचाके मुख्य तीन काम हैं। शरीरकी रक्षा करना, संवेदनाओं को पहुँचाना तथा विषोंको बाहर निकालना। फेफड़ोंके द्वारा जितना विष शरीरसे बाहर निकलता है उसके समान ही त्वचासे भी विष बाहर निकलता है। जब अत्यधिक भोजन करनेसे त्वचाके नीचे चर्बी की मात्रा बहुत इकट्ठी हो जाती है तो त्वचाके पसीना निकालने वाले छिद्र बन्द हो जाते हैं और पसीनेके द्वारा यूरिया आदि विष बाहर नहीं निकलने पाते हैं। उपवास करनेसे त्वचाके नीचे स्थित श्रम-बिन्दु-ग्रन्थियाँ अपने कार्यको फिरसे शुरू करती हैं और उनसे पसीना निकलना फिर प्रारम्भ हो जाता है, जिससे कि यूरिया बहुत अधिक मात्रामें बाहर निकलती है और त्वचासे दुर्गन्ध बहुत अधिक आती है। संचित चर्बी शरीरमें इंधन का काम करती है जिससे कि पसीना-नलिकायें खुल जाती हैं। पसीना खूब आनेसे त्वचा नरम तथा चिकनी प्रतीत होने लगती है, और इस प्रकार पसीनेके अन्दर रुकनेसे उत्पन्न होने वाली बीमारियोंसे मनुष्य बच जाता है।

७. स्नायु-संस्थान—सबसे मुख्य केन्द्र शरीरमें स्नायु-संस्थान है। इसमें किसी भी प्रकारका दोष हो जानेसे सारे शरीरमें कुछ न कुछ विकार उत्पन्न हो जाता है। इसीको आयुर्वेदमें वातके नामसे सम्बोधित किया गया है और माना गया है कि वातके दूषित होनेसे ही सब बीमारियोंकी उत्पत्ति होती है (वागभट्ट १६।८५ सूत्रस्थान)। इसका पोषण रक्तके द्वारा होता है इसलिये रक्तके दूषित हो जाने पर सबसे बुरा प्रभाव मनुष्यकी मानसिक शक्तियोंका ह्रास होना होता है। मनुष्य मानसिक कामों पढ़ने आदिमें अपने मनको नहीं लगा सकता है। उसमें धैर्य्य, तेज आदि गुण नष्ट होने लगते हैं। यह पहिले ही दिखाया जा चुका है कि उपवास करनेसे

मनुष्यका रक्त शुद्ध होता है जिससे कि मस्तिष्क परसे विषोंका प्रभाव हट जाता है और उसकी मानसिक शक्तियोंकी वृद्धि होती है। इसलिये स्नायु संस्थानसे उत्पन्न बीमारियां भी उपवास द्वारा अच्छी हो जाती हैं। कैलिफोर्नियाकी श्रीमती ई० एच० फरीर ने लकवाके लिये उपवास किया और स्वस्थ हो गईं। इसी प्रकार एडोल्फ क्राइस बर्नर्ड ने न्यूरार्थानिया (वातिकदोष) के लिये उपवास किया और स्वस्थ हो गया। अर्थात् ज्यों-ज्यों मनुष्यके अन्दरसे विष निकलते जाते हैं त्यों-त्यों उसका मस्तिष्क स्वस्थ होता जाता है।

८. भार (Weight)—यदि कोई स्वस्थ आदमी उपवास करे तो उसके भारमें १,२ दिन तक कोई विशेष अन्तर नहीं आता है किन्तु यदि कोई मोटा मनुष्य उपवास करे तो २-३ दिन बाद उसके वज़नमें ५ पौंड की कमी आ जाती है। और इसके बाद प्रति दिन १ पौंड उसका भार कम होता जाता है। यदि साधारण बीमारीमें उपवास किया गया हो तो प्रतिदिन १ पौंड वजन कम होता है।

९. श्वास संस्थान—इसमें भिन्न-भिन्न प्रकारके परिवर्त्तन देखे जाते हैं, इसी लिये अभी तक कोई स्थिर परिणाम नहीं माना गया है किन्तु जो परिवर्त्तन देखे जाते हैं उनमें बहुत कम अन्तर होता है। इसीलिये अभी तक यह कहना मुश्किल है कि श्वास प्रश्वासकी गतिमें क्या परिवर्त्तन होते हैं।

श्वास—पहिले २-३ दिन श्वास बहुत ही दुर्गन्धयुक्त हो जाता है। जिससे मालूम पड़ता है कि इस समय शरीरसे विष बहुत अधिक मात्रामें निकल रहे हैं। किन्तु ५-६ दिन बाद श्वास-दुर्गन्ध रहित हो जाता है और इससे मालूम पड़ता है कि शरीर स्वस्थ हो गया है।

असाधारण प्रभाव तथा उपचार

शरीर पर उपवास का क्या प्रभाव पड़ता है यह देखा जा चुका है किन्तु कई बार ठीक ठीक उपवास करते रहने पर भी कई भयंकर लक्षण देखे जाते हैं जिनसे घबराकर डाक्टर या रोगी उपवासको तोड़ देते हैं और इस प्रकार बीचमें ही उपवासको खतम करनेसे उनकी तकलीफ और भी बढ़ जाती है।

१. मूर्च्छा (Fainting)—इसका कारण सिरमें पूर्णतया रक्तका न जाना होता है। इसको हटानेके लिये बीमारको सीधा लिटा कर उसकी टाँगोंको कुछ ऊँचा कर देना चाहिये। यदि ऐसी जगह बैठा हो कि उसको लिटाया न जा सकता हो तो उसके सिरको घुटनोंमें झुका देना चाहिये जिससे सिरमें रक्त ज्यादा जा सके। खड़ा कभी भी नहीं करना चाहिये नहीं तो मृत्यु हो जाती है।

२. चक्कर आना (Dizziness)—इसका कारण तथा चिकित्सा मूर्च्छाके सामान ही है। किन्तु इसके विपरीत कई बार यह रक्त की अधिकतासे सिरमें आ जाने से भी हो जाती है। ऐसी हालतमें सिरको ऊँचा रखना चाहिये। विश्राम दें तथा खुली हवा आने दें।

३. मूत्ररोध (Retension of urine)—यदि उपवासके दिनोंमें पानी तो काफी पिलाया जाय किन्तु मूत्राशय को खाली न किया जाय तो प्रायः मूत्ररोध हो जाता है। ठंडा सिट्ज़ बाथ या गरम और ठण्डे स्प्रे पेटके निचले हिस्से पर करनेसे भी प्रायः लाभ होता है।

४. अतिसार—बहुत कम उत्पन्न होता है किन्तु कभी-कभी पाया जाता है। साधारण अवस्थाके अतिसार के समान ही चिकित्सा करनी चाहिये।

५. सिर दर्द (Headaches)—प्रायः उपवासके शुरूके दिनोंमें होता है। और कुछ समय बाद अपने आप ही हट जाता है।

६. हृदयमें दर्द - यह आमाशयमें मैलके उत्पन्न हो जाने तथा अन्य आमाशय सम्बन्धी बीमारियोंसे उत्पन्न होता है।

७. नाड़ीका मन्द होना (Abnormally slow pulse.)—कई बार यह अवस्था हो जाती है किन्तु खतरनाक नहीं है। गरम स्नान करने तथा कुछ व्यायाम करनेसे ठीक हो जाती है। मालिशसे भी फायदा होता है।

८. **नाड़ीका तेज होना** (Abnormally rapid-pulse)--लम्बे उपवास करते समय यह अवस्था हो जाती है और बहुत खतरनाक लक्षण होता है। इसको हटानेके लिये शीघ्र ही उपचार करना चाहिये। डा० किल्लोग ऐसी अवस्थामें ठण्डे स्नानके लिये लिखते हैं किन्तु कुछ लोगोंका कहना है कि इससे हृदय उत्तेजित होता है इसलिये इसे नहीं करना चाहिये। डा० कैरिंगटन ऐसी अवस्थामें गरम स्नानके लिये लिखते हैं। पानी बहुत गरम न हो किन्तु शरीरके तापमानके बराबर हो। पेट पर ठण्डी गद्दी रखें परन्तु बहुत ठण्डी न हों। सिरको ठण्डा रक्खें तथा पावोंको गरम रखना चाहिये। शुद्ध वायु खूब दें।

९. **वमन**—यह सबसे खतरनाक लक्षण है। जितना गरम पानी रोगी पी सके देना चाहिये, जिससे कि आमाशयमेंसे उत्तेजक पदार्थ निकल जावे। यदि इससे फायदा न हो तो गरम तथा ठण्डे स्नान करवायें। थोड़ी ग्लिसरीन पानीमें मिलाकर पिला देनी चाहिये। इससे बहुत फायदा होता है।

साधारण उपचार

साधारणतया स्वस्थ आदमीको उपवासके समान किसी भी विशेष उपचारकी जरूरत नहीं होती है परन्तु यदि मनुष्यका शरीर कमजोर हो या किसी पुरानी बीमारी से ग्रस्त हो तो उपवासके समान प्राकृतिक उपचारोंका सहारा लेना ही पड़ता है। इनमेंसे सबसे मुख्य एनीमा है। उपवास कालमें क्योंकि आंतोंमें मलका पाक उसी प्रकार होता रहता है किन्तु आंतोंके क्षीण हो जानेसे उनमें मलको निकालनेकी शक्ति नहीं होती है जिससे कि मल अन्दर ही रुका रहता है और बुरे लक्षण पैदा कर सकता है, इसी लिये प्रतिदिन एक बार सायंकालके समय एनीमा तो जरूर ले लेना चाहिए। इसी प्रकार त्वचासे भी मलोंके निकलते रहनेके कारण तथा पसीनेके आनेके कारण उसकी सफाईकी अधिक जरूरत होती है, नहीं तो उपवासका फायदा कम होता है।

इसलिए प्रतिदिन प्रातःकाल ठण्डे जल और यदि मनुष्य कमजोर हो तो गरम जलसे स्नान करना चाहिए। इसके साथ-साथ ही विषोंको अच्छी प्रकार बाहर निकालनेके लिए तथा शरीरमें रक्तका संचार अच्छी प्रकार होते रहनेके लिए पानी भी खूब मात्रामें पीना चाहिए। नहीं तो कई बार दुर्लक्षण पैदा हो जाते हैं। प्राकृतिक उपचारोंके अतिरिक्त दवाई आदिका प्रयोग कभी नहीं करना चाहिए।

समाप्ति

उपवास समाप्त कराते समय मुख्यतः दो बातोंका स्मरण रखना चाहिये—१ उपवासका पूर्ण हो जाना, २, उपवासके बाद भोजन प्रारम्भ करना।

१—**उपवासकी पूर्णताका हो जाना**—इसकी अवस्थाको जानना मुश्किल नहीं होता है। मुख्य लक्षण निम्न हैं—

(क) तापमान—जो कि पहिले नार्मलसे कम या नार्मलसे ऊपर था वह नार्मल हो जाता और स्थिर हो जाता है।

(ख) जिह्वा—जिस पर पहिले मैल जमी रहती थी अब बिलकुल शान्त हो जाती है।

(ग) नाड़ी—जो कि उपवासके समय मन्द या तेज होती है अब अपनी ठीक अवस्थामें आ जाती है।

(घ) श्वास—जो कि पहिले दुर्गन्धित था अब दुर्गन्ध-रहित तथा मीठा हो जाता है।

(ङ) त्वचा—रूक्षके स्थान पर अब नरम तथा चिकनी हो जाती है।

(च) भूख—वास्तविक भूख प्रतीत होने लगती है।

इन सब लक्षणोंका एक साथ ही हो जाना जरूरी नहीं होता है। कई बार जिह्वा मैली रहती है किन्तु अन्य लक्षण पूर्ण हो जाते हैं, कई बार नाड़ी बन्द तथा अन्य लक्षण पूर्ण हो जाते हैं। ऐसी अवस्थामें वास्तविक भूख का पैदा होना ही मुख्य लक्षण है। यदि अन्य सब लक्षण उपस्थित हों किन्तु वास्तविक भूख न उत्पन्न हुई हो तो उपवासको नहीं तोड़ना चाहिए। इसकी पहिचान यह होती है कि गलेमें एक प्रकारकी भूखकी संवेदना प्रतीत होती है, वहां स्राव ज्यादा निकलता है और मनुष्य को किसी विशेष चीजके खानेकी इच्छा न होकर यह प्रतीत होता है कि सूखी रोटीसे भी उसकी क्षुधाकी निवृत्ति हो सकती है।

२. उपवासके बाद भोजन प्रारम्भ करना— इसके विषयमें अभी तक डाक्टरोंमें काफी मतभेद है। डा० डेवे का कहना है कि उपवासके बाद रोगीको जिस चीज़की इच्छा हो उसे वह देना चाहिये। किन्तु अन्य डाक्टरोंका ख्याल है कि उसे उपवासके बाद कुछ दिनों तक द्रव भोजन पर ही रखना चाहिए। साधारण भोजन निम्न हैं—

प्रथम दिन—१ गिलास नारंगीका रस धीरे-धीरे सिप करते हुये मुखमें थोड़ी देर ठहराकर पीना चाहिए। एकदम पीनेसे कई बार तीव्र पेट-दर्द आदि लक्षण हो जाते हैं। इस प्रकार दिनमें ३-४ बार देना चाहिये। यदि नारंगीका रस न लेना हो तो उसे अंगूर या सेवका रस भी दे सकते हैं। ये रस बहुत ठण्डे न हों तथा उनमें खाण्ड भी बहुत कम होनी चाहिए।

द्वितीय दिन—इस दिन अधिक भोजन कर लेनेकी बहुत अधिक सम्भावना होती है इसलिए रोगीको खूब अच्छी तरह इसकी हानियोंको समझा देना चाहिए। दूसरे दिन ऐसे फल दें जिनमें रसकी मात्रा ज्यादा हो जैसे संतरा, अंगूर या अनारका रसतथा सेव भी इस अवस्थाके लिये अच्छी चीज है। खजूर, केले तथा अंजीरका इस अवस्था में प्रयोग नहीं करना चाहिये। एक समयमें दो प्रकारके फलोंसे अधिक न खायें। एक प्रकारके ही फलोंका खाना ज्यादा अच्छा होता है।

तृतीय दिन—इस दिन भी रोगीकी बहुत देखभाल रखनी चाहिए। भोजन थोड़ा हो और बहुत चीजें मिला कर नहीं खानी चाहिए। इस दिन १ गिलास दूध तथा ½ डबल रोटीका १ दिनमें प्रयोग कर सकते हैं। यदि मनुष्य काफी स्वस्थ हो तो हलकी रोटी तथा मक्खन का भी प्रयोग कर सकते हैं।

इस प्रकार भोजनको धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिये। भोजनमें मात्राका ख्याल रखना सबसे जरूरी बात है। एक हलके भोजनकी बहुत अधिक मात्रा लेनेसे भी वह उतना ही हानिकारक हो सकता है जितना कि कोई भी हो सकता है। इसके अतिरिक्त अन्य भी एक क्रम है जो आजकल बहुत प्रयुक्त होता है। उसके चार हिस्से किये जाते हैं—रस, दूध + पानी, दूध, हलका भोजन, इन चारोंको क्रमशः तीन तीन दिन तक देना चाहिए। इस प्रकार १० वें दिन उसको हल्का भोजन दिया जा सकता है। दूध बहुत गरम नहीं होना चाहिये तथा एक दम नहीं पीना चाहिये किन्तु रसके समान ही सिप करके पीना चाहिए।

इस प्रकार संयम-पूर्वक उपवासको तोड़नेसे मनुष्य अपने रोगोंको नष्ट करके फिरसे नया जीवन प्राप्त करता है। उसका शरीर हलका प्रतीत होने लगता है तथा उसकी मानसिक उन्नति बहुत अधिक होती है। चेहरे पर एक विशेष प्रकारकी कान्ति आ जाती है।

श्री स्वामी लच्छीरामजीका देहावसान

१० जुलाईको १० बजे भारतके अग्रणीय विद्वान् वैद्य श्रीयुत स्वामी लच्छीरामजी आयुर्वेद-मार्त्तण्ड का जयपुरमें देहावसान हो गया।

इसकी सूचना जिस समय सारे देशोंमें फैली देशके कोने-कोनेमें वैद्योंने शोक मनाया।

आपका संक्षिप्त परिचय

आप दादू पन्थी साधू थे। आप आयुर्वेदके गण्य-मान्य विद्वानोंमेंसे एक थे। आपने आयुर्वेदकी शिक्षाके लिये दस हजार रुपये निज व्ययसे श्री दादू आयुर्वेद महा विद्यालय स्थापन किया था जहाँ पर आप स्वयम् पढ़ाते थे। आपने अपने जीवनमें हजारों योग्य वैद्य तैयार किये, जो अनेक स्थानों पर अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त कर रहे हैं। इससे भिन्न अभी थोड़े दिन हुये आपने आयुर्वेदोन्नतिके लिये १ लाख रुपया नगद तथा एक लाखकी सम्पत्ति दान की थी, जिसका प्रबन्ध एक ट्रस्टके हाथमें है। इससे भिन्न २५००) रु० देकर आपने धन्वन्तरी औषधालय नामका जौहरी बाजार जयपुरमें एक दातव्य औषधालय खोला था जिसमें हजारों गरीब अमीर रोगी बड़ा लाभ उठाते थे। आपको आयुर्वेदसे इतना प्रगाढ़ प्रेम था कि आपने अपने निजी स्थानमें आयुर्वेद सम्बन्धी अनुसन्धान के लिये एक विशुद्ध आयुर्वेद औषधालय व प्रयोगशाला भी बना रक्खी थी। आप अत्यन्त सरल व जीवन इतना सादा था कि–आप जयपुर, बीकानेर, कोटा, बूँदी, पन्ना आदि स्टेटोंके महाराजाओंके विशेष राज्य चिकित्सक होते हुये भी—मामूलीसे मामूली रोगीसे उसी तरह प्रेमसे मिलते वा बातें करते थे जैसे बड़ोंसे। आप प्रतिवर्ष सम्मेलनों पर पधारा करते थे। किन्तु आप बहुत कम ही बोला करते थे। आपने अपने जीवनमें जितनी अधिक ठोस आयुर्वेदकी सेवा की है उसकी तुलना कठिन है। आप अब भी अपने पीछे कई लाखकी सम्पत्ति छोड़ गये हैं, जिसके उत्तराधिकारी स्वामी जयरामदास जी हुये हैं जो एक योग्य और अनुभवी चिकित्सक हैं। आपके निधनसे आयुर्वेदको महान ठेस लगी है। आपके स्थानकी पूर्तिका होना कठिन ही नहीं असम्भव है।

—स्वामी हरिशरणानन्द

समालोचना व पुस्तक परिचय

१—बिक्री बढ़ानेके उपाय—पृष्ठ संख्या १३८। १८ × २२ / ८ साइज। मूल्य ॥), यह पुस्तक बहुत अच्छे ढंगसे लिखी गई है, और व्यापारियोंके अथवा नये कारोबारियों के बड़े कामकी है। इसमें ४३ बड़ी बड़ी कम्पनियोंके मैनेजरों ने बिक्री बढ़ानेके उपायोंपर प्रकाश डाला है, उसीका यह निचोड़ है।

२—बिक्री बढ़ानेके १२६ उपाय—यह व्यवसाय बढ़ानेके सम्बन्धकी जानकारी प्राप्त कराने वाली आपकी दूसरी पुस्तक है। इसमें ५४ बड़ी-बड़ी कम्पनियोंके मैनेजरोंके अनुभव दिये हैं। यह उससे भी अच्छी है। मूल्य १)

३—सफलताके सिद्धान्त—संग्रह-कर्त्ता महेन्द्र लाल गर्ग। प्रकाशक वही। मूल्य ।) मनुष्यके जीवनमें सफलता कैसे मिल सकती है इसके सम्बन्धमें उन सफलताओंके मूल मन्त्रोंको साररूपमें चुन-चुन कर एकत्र कर दिया गया है।

४—व्यापार प्रकाश—ले० पं० रमाकान्त त्रिपाठी 'प्रकाश'। प्रकाशक सुख संचारक कंपनी मथुरा, मूल्य ॥); यह पुस्तक संकलित है किन्तु अनुभवी व्यवसायीकी लिखी हुई नहीं है। हाँ अनुभवीकी लिखी हुई है जिससे मालूम होता है कि अनेक पुस्तकोंको देख कर इसका संकलन किया गया है।

५—मोमबत्ती बनाना—४० पृष्ठकी, पुस्तक मूल्य =) प्रकाशक वही सुख संचारक कंपनी। इसमें मोमबत्ती बनाने की विधि बतलाई गई है।

६—रत्नोंकी खान—प्रकाशक सुख संचारक कंपनी, मथुरा, मूल्य ।) आना। इसमें अलमिनियम नामक धातुके योगसे जो नकली रत्न विलायतमें बनते हैं, वह कैसे बनते हैं यह बतलाया गया है।

७—रबर और दियासलाई—प्रकाशक वही कंपनी, मूल्य ।) पृष्ठ ४६, इस आधी पुस्तकमें कच्चो रबरसे अनेक चीजें बनानेकी तरकीब बतलायी है। और आधी पुस्तकमें दियासलाई बनानेकी विधि बतलाई है। यह पुस्तक अच्छी जानकारीपूर्ण प्रतीत होती है।

८—तिलकी ओट पहाड़—प्रकाशक वही कंपनी। ३८ पृष्ठकी पुस्तकका मूल्य ।)। इसमें थोड़ी पूंजीसे मनुष्य किस तरह छोटी-छोटी चीजें बनाकर बड़ा व्यापारी बन सकता है, इसको बतलाया है। इसमें बिजलीकी बैटरी बनाना, टेलीफोनकी घंटी बनाना, बिजलीकी अंगूठी बनना वगैरह-वगैरह अनेक छोटे-छोटे नुसखे दिए हैं।

९—अत्तारी शिक्षा—प्रकाशक यही, ९० पृष्ठकी पुस्तक मूल्य ।) इसमें शर्बत, अर्क, चटनी, मुरब्बा जवारश, रूह वगैरह बनाने जानेकी तरकीबें बतलाई गई हैं।

रसतन्त्रसार व सिद्ध प्रयोग संग्रह—लेखक व संग्रहकर्त्ता ठाकुर नाथूसिंह जी वर्मा।

प्रकाशक—कृष्ण गोपाल आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषधालय, कालेडा-बोगला, पोष्ट केकड़ी, अजमेर।

साइज रायल पृष्ट ८०० मूल्य साधारण ४), सजिल्द ४॥) रु० आवृत्ति दूसरी।

आधुनिक युगमें वैद्योंकी लिखी प्रायः ऐसी ही पुस्तकें होती है जिनमें इधर उधरका संग्रह मात्र होता है। सारी पुस्तक पढ़ जायं तो जो बात हजारों बारकी पढ़ी होती है वही उसमें मिलती है, कोई विशेषता नजर नहीं आती। किन्तु ठाकुर साहबका यह ग्रंथ कुछ अंशोंमें इसका अपवाद है।

ठाकुर साहब ने इस ग्रंथमें १९ प्रकरण दिये हैं, जिनमें प्रत्येक शास्त्रीय विवेचनके सिवाय आपने बहुतसी बातें ऐसी दी हैं जो अन्य ग्रन्थोंमें नहीं मिलतीं।

वास्तवमें यह ग्रन्थ आपका लिखा नहीं प्रत्युत इसके लेखक श्री स्वामी कृष्णानन्द जी नामक एक परिव्राजक हैं। स्वामी जी देशाटन करते हुये चिकित्साका कार्य करते रहते हैं और भ्रमणकालमें आप अनेकों अनुभवी व्यक्तियोंसे मिले हैं तथा आपको कूपी पक रस, भस्मोंके निर्माण कलाका विशेष अनुभव दीखता है। इससे भिन्न आपके पास अनेक फकीरी चुटकुले (योग) हैं ऐसा ज्ञात है। जिन बातोंको आप जानते हैं आपने उन्हें शास्त्रीय पद्धतिके अनुसार इस ग्रन्थका संकलन किया है और समस्त अनुभूत बातें इस पुस्तकमें अंकित कर दी

हैं। इस ग्रंथकी पाण्डुलिपि आपने अपने शिष्य ठाकुर नाथूसिंह जी वर्मा को दी है। जो आपके नाम से प्रकाशित हुई है।

यह ग्रंथ अनेकों ज्ञातव्य बातोंसे भरा है तथा इसमें अनेकों चुटकुले ऐसे अच्छे मुझे जंचे हैं जिनकी सफलतामें बहुत कम सन्देह होता है।

नवसिखे, अनुभूत योगोंकी तलाशमें फिरने वाले वैद्योंको इसे खरीद कर इससे अवश्य लाभ उठाना चाहिये।

मन्थर ज्वर विवेचना—लेखक व प्रकाशक यदुनन्दन प्रसाद त्रिपाठी भिषक् शास्त्री। पुरविया टोला इटावा। $\frac{२० \times ३०}{७६}$ साइज़ पृष्ठ संख्या १०० मूल्य ॥)

मन्थर ज्वर पर सर्व प्रथम मेरे द्वारा पुस्तक प्रकाशित हुई, इसके पश्चात् यह तीसरी पुस्तक देखनेमें आई है।

हम सबों ने तो जो कुछ लिखा था हिन्दी भाषामें लिखा था। किन्तु आपने इस पुस्तकमें एक विशेषता यह उत्पन्न कर दी है कि जितनी भी आधुनिक व प्राचीन उच्च मन्थर ज्वर सम्बन्धी सिद्धान्त थे सबोंको संक्षेपमें श्लोक बद्ध कर दिया है और साथमें उसकी भाषा टीका भी करदी है।

इस समय तक हम सबोंको जो इस रोगके सम्बन्ध में अनुभव था वह बातें अनुभूत लेकर तथा अपना निजी अनुभव मिलाकर पुस्तकको उपादेय बना दिया है। पुस्तक हर एक वैद्यके लाभकी है।

वैद्यक पारिजात—भाग दूसरा। लेखक—श्री वैद्य गोपाल कुंवर जी ठक्कर। प्रकाशक सिन्ध आयुर्वैदिक फार्मेसी नानक वाड़ा, किराची मूल्य ॥)

यह पुस्तक गुजराती भाषामें है। इस पुस्तकमें केवल उन योगोंका अकारादिनुक्रमसे संग्रह है जो प्रायः बम्बई सिन्ध प्रान्तके वैद्य जानते व स्वयम् बनाते रहते हैं। अनेक योग ऐसे भी हैं जिनका किसी ग्रंथमें उल्लेख नहीं। पुस्तक कागज छपाई आदिमें भी अच्छी है।

दर्शन समुचय—लेखक महामहोपाध्याय श्री रामचन्द्र मल्लिक व्याकरण-काव्य-सांख्यतीर्थ। प्रकाशक श्री चिन्ता मणि षट्तीर्थ ३७ कार्नवालिस स्ट्रीट कलकत्ता, $\frac{२० \times ३०}{१५}$ साइज। पृष्ठ ७५ मूल्य १)। यह पुस्तक संस्कृत भाषामें है पुस्तकके विषयका बोध उसके नामसे ही हो रहा है।

इस पुस्तिकाके लेखक श्री गोबिन्द सुन्दरी आयुर्वेद महाविद्यालयके अध्यक्ष हैं, और आप आयुर्वेदके अच्छे पंडित हैं। किन्तु इस युगमें संसार किधर जा रहा है? संसारमें क्या कुछ हो रहा है? कलकत्ता जैसे समृद्धशाली शहरमें रहते हुये भी आपको संसारका कुछ पता नहीं।

आज जिस चीजकी अनुपादेयताका प्रमाण जगत् दे रहा है, जिन बातोंसे लोक-सिद्धि नहीं, भला तर्कोंसे परलोक सिद्धि होगी यह कौन बुद्धिमान् मान सकता है। जिस युगमें लोगोंको काम नहीं करना पड़ता था सुखपूर्वक जीवन निर्वाह होता था, खाली बैठे तर्कनाकी घुड़ दौड़ मचाया करते थे, उन्हीं दिनो संसारकी ऐसी बातोंमें भले ही रुचि हो। इस समय संसारको ऐसी पुस्तकसे कोई लाभ नहीं। क्या ही अच्छा होता। आप आयुर्वेदके ज्ञाता होकर आयुर्वेद विषयक कोई ऐसा ग्रन्थ लिख जाते जो आपके जीवनका अनुभय मात्र होता। और नहीं तो उससे वैद्य संसारका कल्याण तो होता। इस ग्रन्थसे मेरी मति के अनुसार उस पंडित मण्डलीका मनोविनोद अवश्य हो सकता है जो खाली बैठ कर समय नष्ट करते रहते हैं।

—स्वामी हरिशरणानन्द

विषय-सूची

मुद्रक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग।

Only Cover Printed at The Indian Press, Ltd., Allahabad

सितंबर, १९३९ मूल्य ।)

भाग ४९, प्रयाग की विज्ञान-परिषद् का मुख-पत्र जिसमें आयुर्वेद विज्ञान भी सम्मिलित है संख्या [illegible]

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces & Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

विज्ञान

पूर्ण संख्या
२९४

वार्षिक मूल्य ३)

नियम

(१) विज्ञान मासिक पत्र विज्ञान-परिषद्, प्रयाग, का मुख-पत्र है।

(२) विज्ञान-परिषद् एक सार्वजनिक संस्था है जिसकी स्थापना सन् १९१३ में हुई थी। इसका उद्देश्य है भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययन को प्रोत्साहन दिया जाय।

(३) परिषद् के सभी कर्मचारी तथा विज्ञान के सभी सम्पादक और लेखक अवैतनिक हैं। मातृभाषा हिन्दी सेवा के नाते ही वे परिश्रम करते हैं।

(४) कोई भी हिन्दी-प्रेमी परिषद् की कौंसिल की स्वीकृति से परिषद् का सभ्य चुना जा सकता है। सभ्यों को वार्षिक चन्दा देना पड़ता है।

(५) सभ्यों को विज्ञान और परिषद् की नव-प्रकाशित पुस्तकें बिना मूल्य मिलती हैं।

नोट—आयुर्वेद-सम्बन्धी बदले के सामयिक पत्रादि, लेख और समालोचनार्थ पुस्तकें 'स्वामी हरिशरणान पंजाब आयुर्वैदिक फ़ार्मेसी, अकाली मार्केट, अमृतसर' के पास भेजे जायँ। शेष सब सामयिक पत्रा लेख, पुस्तकें, प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र तथा मनीऑर्डर 'मंत्री, विज्ञान-परिषद्, इलाहाबाद' के प भेजे जायँ।
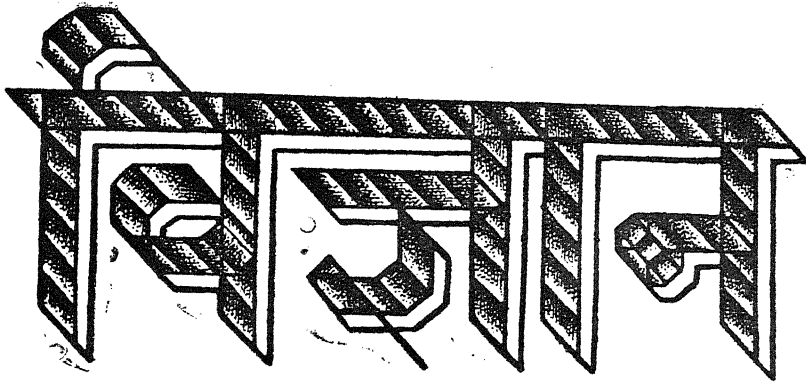
विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते.
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्याभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ४९	प्रयाग, सिंह, संवत् १९९६ विक्रमी	सितम्बर, सन् १९३९ ई०	संख्या ६

गति सिद्धान्त

[ले० श्री प्रेम बहादुर, एम० एस० सी०, बी० टी०, इन्सपेक्टर स्कूल्स, कोटा]

वैज्ञानिक जगत्के गति सिद्धान्तका विशेष महत्व है। यह सिद्धान्त प्रत्येक पदार्थकी तहमें काम कर रहा है। हम इसी रोचक सिद्धान्तके बारेमें कुछ विचार प्रकट करेंगे, परन्तु सर्व प्रथम पदार्थोंके साधारण गुणों व उनके व्यवहारका वर्णन करना आवश्यक है।

तीन अवस्थायें

प्रत्येक पदार्थकी तीन अवस्थायें हैं। वे ये हैंः— ठोस, तरल और वायव्य। पत्थर, लकड़ी, ईंट, नमकके ढेले, पानीका बर्फ़ और क़ागज़ आदि ठोस अवस्थामें हैं। पानी, पिघला हुआ घी, तेल और पारा (जो एक धातु माना जाता है) तरल अवस्थामें हैं। संक्षेपमें जितने भी जमे हुये कड़े पदार्थ हैं वे सब ठोस माने जाते हैं और जितने भी बहने वाले पदार्थ हैं वे तरल कहे जाते हैं। वायव्य पदार्थों के उदाहरण हमारे काममें प्रतिक्षण आनेवाली हवा, भाप और धुँआ है। कोई भी पदार्थ इन तीनों अवस्थाओंमें से किसी एकको परिस्थितिके अनुकूल धारण कर सकता है और मूलतः पदार्थमें कोई (आन्तरिक) परिवर्तन नहीं आता। ये तीन अवस्थायें पदार्थके बाहरी रूप हैं जिन्हें वह कभी न कभी ले लेता है, जैसे एक मनुष्य कभी एक प्रकारके वस्त्र धारण कर लेता है और कभी दूसरे प्रकारके; अथवा यों कहिये कि एक मनुष्य समय-समय पर भिन्न उपाधियाँ धारण करके भिन्न-भिन्न नामोंसे पुकारा जाता है, जैसे वही मनुष्य विद्यार्थी, अध्यापक, प्रोफ़ेसर आदि कहला सकता है। परन्तु वस्तुतः मनुष्य वही है। यही सम्बन्ध इन अवस्थाओं तथा पदार्थों में है। इसके समझनेके लिये हम पहले पानीका उदाहरण लेंगे। पानी एक तरल पदार्थ है जैसा ऊपर कहा जा चुका है। अगर उसे हम गरम करें तो यह भाफमें परिणत हो जाता है जो पानी का वायव्य रूप है। भाफ भी ठंडे होने पर तरल रूप में आ जाती है। अगर पानीको और भी ठंडा करते जायँ

तो बहुत ठंडा होने पर वह जम कर ठोस हो जायगा जिसे हम बर्फ़के नामसे पुकारते हैं। और यही पानीका ठोस रूप है। इन तीनों रूपोंमें पानीका गुण एक सा मौजूद रहता है। इसी प्रकार हम घीके तीनों रूपोंसे परिचित हैं।

बहुतसे पदार्थ ऐसे देखनेमें आते हैं जिनके हमें तीनों रूप साधारणत: नहीं मिलते हैं। परन्तु इससे यह नहीं समझ लेना चाहिये कि वे केवल एक या दो रूपमें ही रह सकते हैं। अनुकूल साधनों और परिस्थितियोंमें उनके तीनों रूप देखे जा सकते हैं। लोहा कारखानोंमें मिलता है; सोना, और चाँदीके तरल रूपसे हम सब परिचित हैं; पत्थरका तरल रूप ज्वालामुखियोंके उद्गारके समय लावाके रूपमें पाया जाता है।

घुलनशीलता

उपर्युक्त तीनों अवस्थाओंके अतिरिक्त पदार्थोंमें अन्य भी कई गुण हैं। अक्सर देखनेमें आता है कि एक पदार्थ दूसरेमें घुल जाता है। पानीसे भरे बर्तनमें अगर हम कुछ शक्कर या नमक डाल दें और उस बर्तनको हिला दें तो शीघ्र ही वह शक्कर या नमक पानीमें ग़ायब हो जायगा। तब वह (पानी) उसका घोल कहलाता है। परन्तु शक्करका नमक एक अवधि तक ही उस पानीमें घुल सकता है उससे आगे नहीं। अगर एक बार निश्चित परिमाणका पानी लिया और उसमें थोड़ा नमक (व शक्कर) डाला जाय तो वह उस पानीमें बिलकुल ग़ायब हो जायगा। अगर बादको कुछ और डाला जाय तो वह भी उसमें लुप्त हो जायगा। इसी प्रकार अगर हम थोड़ा-थोड़ा नमक उस पानीमें डालते जावें तो वह भी उसीमें लुप्त होता जायगा; परन्तु आगे चलकर एक ऐसी अवस्था आवेगी जब डाला हुआ नमक सर्वांशमें वैसाका वैसा ही उसमें तली पर पड़ा हुआ रह जायगा। ऐसे घोल पूर्ण-घोलके नामसे पुकारे जाते हैं। कुछ पदार्थ ऐसे होते हैं जो पानीमें न घुल कर किसी और तरल पदार्थमें घुल जाते हैं। चमड़ी पानीमें बिलकुल नहीं घुलती परन्तु मिथीलेटेड स्प्रिटमें खूब घुल जाती है। घोलके विषयमें एक जानने योग्य बात यह है कि तरल पदार्थोंमें ठोसोंके चूर्ण ही घुलनशील होते हैं।

इसके अतिरिक्त कुछ तरल भी ऐसे होते हैं जो दूसरे तरलोंमें घुल कर एकमेक हो जाते हैं। इसके उदाहरण मद्य व पानीका मिलना तथा ग्लीसरीन व पानीका मिलना है। ऐसे तरल भी पाये जाते हैं जो दूसरे तरलोंमें एकमेक नहीं होते, अगर वे भिन्न-भिन्न रंगोके हों तो यह भी आसानीसे उन्हें मिलाने पर देखा जा सकता है कि भारी तरल नीचे रहता है और हलका ऊपर। इस तरह के उदाहरण पानी और तेलका मिलना है जिसमें तेल पानीके ऊपर रह जाता है और हलकेपनको प्रकट करता है।

हम ऊपर यह प्रकट कर चुके हैं कि एक (ठोस) चूर्ण और एक तरल आपसमें मिलते हैं और दो तरल भी आपसमें मिल जाते हैं। परन्तु यह भी देखनेमें आया है कि अगर दो उपयुक्त ठोस आपसमें एक दूसरेके पास चिपका कर रख दिये जावें तो एक ठोसमें दूसरेका अंश कुछ समयमें चला जाता है। ऐसा होनेमें अक्सर कई वर्ष लग जाते हैं। रोबर्ट्‌स और ऑस्टिन नामी वैज्ञानिकोंका कहना है कि उन्होंने सोना और सीसेको सतह से सतह चिपका कर रक्खा और चार सालके बाद यह मालूम किया कि सीसेकी सतहमें सात मिलीमीटरकी गहराई तक सोनेका अंश पहुँच गया है।

ग्रैहमका नियम

इसीसे मिलती जुलती एक और प्राकृतिक घटना है। वह यह है कि अगर हम एक काँचके गिलासमें पानी भर कर उसमें नीलोथेथे (कॉपर सलफेट) की छोटी सी ढेली डाल दें और उसे चुपचाप रक्खा रहने दें तो वह ढेली धीरे-धीरे उस पानीमें घुलेगी। यह नीले रंगके अति धीरे-धीरे ऊपर उठनेसे प्रकट होगा। यह क्रिया पृथ्वीके गुरुत्वके विरुद्ध रहती है। ठोसके टुकड़ेको इस प्रकार पानीमें पूरी तरह मिलनेके लिये कई दिन अथवा महीने—यहाँ तक कि साल तक लग जाते हैं। जब कि चूर्ण की अवस्थामें हिलाने पर वह ठोस कुछ मिनटों हीमें घुल जाता है। यह क्रिया कॉपर सलफेटके अतिरिक्त किसी भी घुलनशील पदार्थसे देखी जा सकती है।

इसी प्रकार दो वायव्य पदार्थोंको दो बर्तनों (Jars) में लिया जावे और एक जारको दूसरे जार पर उलट कर

रख दिया जावे तो धीरे-धीरे कुछ समयमें दोनों वायव्य एकमेक हो जाते हैं। ग्रैहम नामी वैज्ञानिक ने इन वायव्य पदार्थों के तथा उपर्युक्त ठोसके ढेलेके पानीमें घुलनेकी चाल और मिलनेकी चालके बारेमें अपने नामपर एक नियमको खोज निकाला है कि यह चाल मिलनेवाले पदार्थों के घनत्वके विपरीत समानुपातमें है।

बॉयल ने वायव्य पदार्थोंके अध्ययनसे यह परिणाम ढूँढ निकाला है कि किसी भी एक तापक्रमपर उस वायव्य-का घनफल और उस परके दबावका गुणनफल स्थिर रहता है। इसीको दूसरे शब्दोंमें यों कहा जा सकता है कि किसी वायव्यका दबाव बिना तापक्रमके बदले ही अगर दूना कर दिया जावे तो घनफल आधा ही रह जायगा। अर्थात् बिना तापक्रम बदले ही उसका दबाव अगर बढ़ा दिये जावे तो घनफल कम हो जाता है और अगर दबाव कम कर दिया जावे तो घनफल बढ़ जाता है।

चार्ल्स ने भी वायव्यके अध्ययनसे एक बात ढूँढ़ निकाली है। वह यह है कि अगर किसी वायव्यका दबाव स्थिर रक्खा जावे और तापक्रम बदला जावे तो तापक्रम बढ़ानेसे घनफल बढ़ेगा और तापक्रम कम करनेसे घनफल घटेगा। यह घटाव व बढ़ाव $\frac{1}{273}$ फी अंश फी घन इंच या घन सैंटीमीटर होता है।

पदार्थोंके सूक्ष्म कण

हमने संक्षेपमें ऊपर पदार्थों के गुणोंका वर्णन किया है। इन सब गुणोंकी व्याख्या दार्शनिकों व वैज्ञानिकों ने इस प्रकारकी है कि प्रत्येक प्रदार्थ अति सूक्ष्म कणोंका बना हुआ है। वे कण इतने सूक्ष्म हैं कि आँखोंसे तो क्या, बढ़ियासे बढ़िया अणुवीक्षण यन्त्रसे भी नहीं देखे जा सकते हैं। इन कणोंकी विद्यमानताका प्रमाण इस प्रकार है कि अगर कोई भी पदार्थ कणोंका बना होनेके बजाय समूचा ही एक होता तो हम उसके टुकड़े करनेमें कदापि भी समर्थ नहीं होते। अगर हम एक कागज़ लें और उसको फाड़ कर दो टुकड़े कर दें तो इस प्रकारसे हम उस कागज़के टुकड़े तभी कर सके जबकि उसमें वे टुकड़े मौजूद थे; अर्थात् वह कागज़ उन दो टुकड़ोंका बना हुआ था। इसी कारण हम उसके इस प्रकारसे टुकड़े कर सके। अगर उस समूचे कागज़में वे टुकड़े न होते तो हम उसके टुकड़े कदापि नहीं कर सकते थे।

अतः हर एक पदार्थ बहुत छोटे-छोटे टुकड़ों या कणोंका (या अणुओंका) बना हुआ है। हम प्रत्येक पदार्थको देखते हैं, छूते हैं, और व्यवहारमें लाते हैं। दूसरे शब्दोंमें इसीको हम इस प्रकार प्रकट करते हैं कि उन पदार्थों का अस्तित्व है। वे सचमुच ही मौजूद हैं। हम प्रत्येक पदार्थको तौल-नाप सकते हैं; एक दूसरेसे ले और दे सकते हैं और संचित करके रख सकते हैं। ये सब बातें पदार्थके अस्तित्वके प्रमाण हैं। जब यह सिद्ध हो गया कि प्रत्येक पदार्थका अस्तित्व है तो कोई भी पदार्थ अपरिमित अवस्था तक कणोंमें नहीं बाँटा जा सकता। किसी भी पदार्थको कणोंमें बाँटनेका कार्य हमें किसी एक अवस्था पर एक दम ही बन्द कर देना पड़ेगा और उससे आगे हम उन कणोंके भाग न कर सकेंगे। ऐसे कणोंको हम अणुके नामसे पुकारते हैं। इन्हीं अणुओंके होनेसे हम पदार्थको परिचित रूपमें देखते हैं।

अगर हम यह मानें कि हम किसी भी पदार्थको अपरिमित सीमा तक बाँट सकते हैं और यहाँ तक कि कुछ भी न रहे तो युक्तिसंगत न होगा। हम एक पदार्थ को लेवें और हम उसे लगातार छोटेसे छोटे कणोंमें बाँटते चले जायँ अर्थात् अपरिमित रूपसे बाँटते ही जाँय तो हम एक ऐसी सीमा पर पहुँचेंगे जब कि उससे आगे केवल एक ही बार बाँटने पर कुछ भी नहीं रहेगा। इसी प्रकार इस अवस्थासे हम उलटे चलें तो हमें बाध्य रूपसे मानना पड़ेगा कि कुछ नहींसे अणु या कण बनें और फिर उनके समूहसे पदार्थ परिचित रूपमें आया। इसका अभिप्राय यह होगा कि कुछ नहींसे कुछ बन गया अर्थात् अभावसे भाव हुआ। फिर यह भी नियम नहीं रहेगा कि विशेष पदार्थके लिये विशेष ही उत्पादक कारण हो, क्योंकि किसीसे कोई भी पदार्थ बन सकेगा। अर्थात् यह ज़रूरी नहीं होगा कि घी दूध या दहीसे ही निकाला जा सके, प्रत्युत किसी भी चीज़से लकड़ी, आटे या पत्थरसे निकाला जा सकेगा; परन्तु व्यवहारमें ऐसा नहीं होता। अतः हम माननेके लिये विवश होते हैं कि प्रत्येक पदार्थका अस्तित्व है और उसके अणुओंका भी अस्तित्व है, भले ही हम किसी

भी प्रकार उनको देख न सकें। प्रत्येक पदार्थके अणु अलग-अलग ही हैं। वैज्ञानिकों ने इन अणुओंकी तौल और आकारकी नाप तक अपने सूक्ष्म और कोमल यन्त्रों द्वारा करली है।

अणुओंकी गति

परन्तु ये कण स्थिर नहीं है; ये चारों ओर लगातार गति करते रहते हैं। पदार्थको गरम करनेसे यह गति बढ़ती जाती है और ठंडा करने पर कम हो जाती है। यह साधारण अवस्थाओंमें ठोस पदार्थोंमें बहुत ही कम और तरलोंमें अधिक तथा वायव्योंमें अत्यधिक होती है। अतः तीनों अवस्थाओंमें अन्तर केवल गति-भेदका ही होता है। कणोंकी गति जब निश्चित सीमा पर पहुँच जाती है तब पदार्थ अपनी अवस्थाको पलट देता है। ठोसों के कण निश्चित सीमाके भीतर ही गति करते रहते हैं; यही कारण है कि उनका आकार और परिमाण एक प्रकारसे स्थिर ही रहता है। यह सीमा तरलोंमें कुछ बढ़ जाती है जिससे कणोंको गति करनेमें बहुत सुविधा रहती है। इसी कारण तरलोंका आकार उसी बर्तनके अनुसार हो जाता है। वायव्योंमें यह गति सीमा अत्यधिक बढ़ जाती है और कणोंको गति करनेमें बहुत ही आजादी रहती है। इसीलिये न केवल अपने आकार हीको बल्कि अपने घनफलको भी शीघ्र ही उसी बर्तनके अनुसार कर लेते हैं जिसमें उन्हें रक्खा जाता है। वायव्योंका घनफल उनपर डाले हुये दबावके अनुसार आसानीसे ही घट और बढ़ भी सकता है। पिछले पृष्ठोंमें एक पदार्थका दूसरेमें मिलने-घुलने आदिका जो वर्णन किया है वह सब कणोंकी गति पर ही अवलम्बित है।

अणुओंकी गति

एक वायव्य पदार्थमें कण चारों दिशाओंमें गति करते रहते हैं। इनकी गति सदा सीधी रेखामें ही होती रहती है। ये अपनी गतिमें एक दूसरेसे तथा उस बर्तनकी दीवारोंसे भी टकराते हैं जिसमें कि वायव्य रक्खा गया है। इन्हीं टक्करोंके कारण वायव्यका दबाव होता है। वैज्ञानिकों ने इन्ही बातोंके आधार पर क्रिया करके गणितके नियमको ढूँढ निकाला है। वह नियम यह है :—

$$द = \frac{स \times म \times ग^2}{३ घ}$$

जिसमें द = दबाव, स = कणोंकी संख्या, म = प्रत्येक कणका भार, क्योंकि प्रत्येक समान है, ग चाल फी सैकंड घ = घनफल है।

उपर्युक्त गणितके नियममें पूर्व वर्णित वायव्योंके सभी नियमोंका समावेश हो जाता है। अतः यह पूर्णतः सिद्ध हो जाता है कि प्रत्येक पदार्थका प्रत्येक कण लगातार गति करता रहता है। इसीके अनुसार साधारणतया (अर्थात् तापक्रम दबाव पर) हवाका प्रत्येक कण १७ मील फी मिनटकी चालसे गति करता हुआ पाया गया है।

अब प्रश्न यह है कि अणुओंमें यह गति कहाँसे आई? क्या यह गति अणुओं और परमाणुओंमें स्वाभाविक है अर्थात् उनकी निजकी है या किसी अन्य ने उनमें यह गति ला दी है, अर्थात् क्या यह गति अणुओंमें नैमित्तिक है? अब हम इस प्रश्नका विवेचन करेंगे।

संसारमें हमें तीन बातें दृष्टिगोचर होती हैं। वह पदार्थोंका बनना, बिगड़ना और स्थिर रहना। इन्हींको हम प्रकृतिके तीन गुण सत्व, रज और तमके नामसे पुकार सकते हैं। 'स्थिर रहनेको' हम सत्व और 'बनने' को रज और 'बिगड़ने' को हम तम कह सकते हैं। परमाणुओंकी गति स्वाभाविक है, अथवा नैमित्तिक—इस प्रश्नका उत्तर हमें इन्हीं तीन गुणोंके विचारसे देना होगा।

अगर गति स्वाभाविक हो तो उससे दो विपरीत बातें बनना और बिगड़ना कणोंमें नहीं आ सकेंगी, क्योंकि जिस वस्तुका जैसा स्वभाव है वह पलट नहीं सकता है। यह पिछले पृष्ठोंमें प्रकट कर चुके हैं कि पदार्थोंका बनना कणोंके मेलसे होता है। कणोंमें प्रत्येक समान है। इसलिये सब कणोंकी गतिकी चाल भी एक सी है। यह गति किसी भी दिशामें हो, समानताके कारण कणोंका मिलना असम्भव है। क्योंकि गति सबकी समान ही है इससे अगर सब कण एक दिशामें भी गति करेंगे तब भी उनके बीचकी दूरी जो मिलनेके लिये आवश्यक है कदापि भी कम नहीं हो सकती है। अगर गति एक दूसरे-

से विपरीत दिशामें हो तो भी परमाणुओंका मेल नहीं हो सकेगा।

परमाणुओंकी इस गतिमें अगर यह माना जावे कि अन्तर होनेसे परमाणु एक दूसरेसे मिलकर भिन्न-भिन्न पदार्थोंको उत्पन्न करेंगे तो यह बात भी माननीय नहीं हो सकती है क्योंकि न्यूटनके गतिके नियमोंके अनुसार इस स्वाभाविक गतिमें किसी बाहरी शक्ति बिना कोई परिवर्तन नहीं आ सकता है। अतः गतिमें अन्तर लाने के लिये किसी बाहरी शक्तिकी आवश्यकता अवश्य पड़ेगी।

अगर हम यह माने कि परमाणु अपने गुरुत्वके कारण एक दूसरेसे मिल जावेंगे और उनके मिलनेसे कई प्रकार के पदार्थ उत्पन्न होवेंगे तो इसमें भी एक संशय उत्पन्न होता है। यह हो सकता है कि गुरुत्वके कारण सब परिमाणु एक ही दिशामें आनेकी कोशिश करेंगे, परन्तु उनमें गति स्वाभाविक है और स्वाभाविक होनेसे उनकी वह गति लगातार जारी रहती है तो उनके एक दिशा में आनेपर भी वह गति जारी रहेगी और ऐसा होनेसे वे उसी दिशामें स्थिर न रह सकेंगे। इसलिये किसी भी पदार्थमें स्थिरता न आ सकेगी। पदार्थोंकी यह स्थिरता बहुत ही आवश्यक चीज़ है, क्योंकि सृष्टिमें अगर पदार्थोंमें इस प्रकारकी अस्थिरता होती तो हम किसीको एक क्षणके बाद दूसरेमें नहीं पहचान सकते थे।

हमने परमाणुओंमें गतिका होना पाया तथा उस गतिके कारणका विवेचन करते समय दो बातें पाईं कि वह गति स्वाभाविक है अथवा नैमित्तिक है? गतिको स्वाभाविक मानते हुये हम इस परिणाम पर आये कि वह स्वाभाविक नहीं, क्योंकि ऐसा होनेसे सृष्टिका बनना, बिगड़ना और स्थिर रहना नहीं हो सकता है। सृष्टिकी रचना अगर कणोंकी गति स्वाभाविक हो तो नहीं हो सकती है। इसके बाद हमारे पास केवल एक ही बात स्वीकार करनेके लिये रह जाती है और वह यह है कि कणोंकी गति नैमित्तिक है अर्थात् दूसरेकी दी हुई है।

उड़ानका संसार

[ले० राधानाथ टण्डन, बी० एस-सी०, एल० टी०]

शब्दकी गति उड़ानकी गतिको क्यों सीमित करती है? एक वायुयान किस वेग गतिसे उड़ सकता है? इस मनोरञ्जक प्रश्न पर मिस्टर एच० ई० विम्परिस ने फिर दूसरे दिन वाद-विवाद किया। आप जो कुछ भी कहते हैं, शाही वायुयानिक संस्थाके भूतपूर्व सभापतिकी हैसियतसे कहते हैं। वह अन्य लोगोंसे इस बातमें सहमत है कि उड़ानके गतिकी उच्चतम सीमा लगभग ७५० मील प्रति घण्टाके नीचे ही है। ऐसे विश्वासके कारणोंका विशेष स्पष्ट वर्णन मैंने अभी तक नहीं सुना।

उनका कथन है कि उड़ानकी गतिको सीमा-बद्ध करने वाली न इञ्जिनोंकी शक्ति है और न वायुयानका रूप ही। विशेष महत्वका प्रश्न इसमें यह है:—बढ़ते हुये वायुयानके मार्गसे वायु कितनी वेगतासे हट सकती है? यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका विज्ञान तुरन्त उत्तर दे सकता है। वायुके धक्का खाने पर उसके हटने की वेग गति वही है जो शब्दकी, अर्थात् ७५० मील प्रति घण्टा। शब्दकी गतिको बढ़ानेका कोई ऐसा उपाय नहीं जो आदमी कर सके, चाहे जितनी पूर्णताके साथ वह अपने वायुयानोंको प्रवाहित करे अथवा चाहे जितने शक्तिवान इञ्जिनोंका वह निर्माण करे।

उड़ानकी सीमा क्या ६०० मील फी घण्टा है?

आते हुए वायुयानको मार्ग प्रदान करनेके लिए ७५० मील फी घण्टाकी चाल तक तो वायु प्राकृतिक रूपसे स्वयम् हट जाती है। इस चालके ऊपर तो वायु निकट आने वाली वस्तुसे पूर्वसे सचेतितकी ही नहीं जा सकती।

---

*न्यूटनका गति नियम नं० २:—कोई कण या पदार्थ तब तक लगातार स्थिर रहता है या लगातार गति करता रहता है जब तक कि उसपर किसी बाहरी शक्तिका प्रभाव न पड़े।

जैसा कि मिस्टर विम्परिसका कथन है "इससे तो इतने धक्के और टक्करें लगेंगी जितने कि एक अप्रकाशयुक्त मोटरगाड़ी को अन्धकारमय रात्रिमें अधिक मनुष्योंकी भीड़में से होकर चलनेमें।"

निस्सन्देह, एक ऐसे शक्तिवान इञ्जिनकी कल्पना सम्भव है जो एक वायुयानको ऐसे संघर्षणका सामना करने वाली वायु द्वारा ले जाया जाय। परन्तु मि० विम्परिसके हिसाबसे ऐसे इञ्जिनको लगभग २००० अश्वबलकी शक्ति वायुयानके प्रति टनमें बढ़ानी पड़ेगी। कारण कि कि ऐसा इञ्जिन स्वयम् भारमें एक टनके लगभग होगा तो वायुयानके तथा चलाने वालेके भारके लिए तो कुछ भी शेष नहीं रहेगा। अस्तु यह कल्पना निरर्थक ही है। किसी प्रकारका बाणरूपी यान (रौकट प्लेन) ही केवल एक सम्भव द्वार जान पड़ता है जिससे हम शब्द द्वारा लगाई गयी गति-सीमा पर विजय प्राप्त कर सकते हैं।

मि० विम्परिसका विचार है कि मनुष्यके उड़ानकी गति ६०० मील प्रति घण्टा तक सीमित रहेगी। इस अंकके निकट वेगसे वेग वाला फौजी वायुयान आजकल शीघ्रतासे पहुँच रहा है।

वायु-मंडलके टोसिबस्टैस्फयटकी रिपोर्ट

पाने वाले अटलैण्टिक कार्यके लिए वायु तथा मौसम की रिपोर्ट पर दस सहस्र पौण्डके अतिरिक्त अन्वेषणपर कई मास व्यतीत कर दिये गये। फ्रांस वालों ने दक्षिणी अटलैण्टिकको वर्तमान कालमें ही एक मौसम बताने वाला जलयान भेजा है जिसका निरीक्षण शाही वायुयान पदाधिकारियों ने बड़े रुचिके साथ किया। यह जलयान वात करने वाले गुब्बारोंसे जो एक विशेष प्रकारके बीय द्वारा छोड़े जाते हैं सुसज्जित है।

प्रत्येक उदजनसे भरे हुये गुब्बारेके साथ एक वायु-भारमापक तथा एक तापमापक है जो एक लघु रेडियो प्रसारक (ट्रान्समिटर) से जुड़े हुये हैं। जैसे-जैसे यह ऊपर उठता जाता है तापमापक तथा वायुभार-मापककी रीडिंगोंको यह आपसे आप भेजता जाता है। यह जलयान द्वारा ले लिये जाते हैं और फिर सागर पार करने वाले पाइलेट भेज दिये जाते हैं। गुब्बारेका यह आपसे आप सूचना देनेका कार्य डेढ़ घण्टे तक चलता रहता है, जिस समय तक यह ६०,००० फ़ीट ऊपर पहुँच जाता है। इसकी लाभदायकताकी यही सीमा है। इसका रेडिओ बन्द हो जाता है और यह शून्यमें विलीन हो जाता है तथा इससे हम पूर्णतया हाथ धो बैठते हैं। सहस्रों मील दूरी पर फिर यह चाहे जिसके हाथ लगे, चाहे कोई बीचक्रम्बर इसको पावे अथवा कोई स्कूली बालक।

ऊपरी मौसमकी खोजमें

उत्तरीय अटलैण्टिक महासागर पर अब तक अंग्रेज मिटीयोरोलाजिस्ट गुब्बारोंका व्यवहार करते आये हैं और वह भी केवल आवश्यकीय सामग्रियोंके साथ। इसी बीच शाही वायुयानिक शक्ति उन आवश्यक बातोंके एक-त्रीकरणमें लगी हुई है जिनसे मौसमके अन्वेषणमें सहायता मिले। यह कार्य यंत्र ले जाने वाले गुब्बारोंसे नहीं, वरन वायुयान चलाने वालोंकी उत्कृष्ट खोजसे किया जा रहा है। मिडिल हाल तथा सफोकमें शाही-वायुयानिक-शक्तिके मिटीरियोलाजिकल उड़ानके मनुष्यों का प्रति दिन २५,०० फीट ऊपर चढ़ कर मौसमके अन्वेषणका पता देनेका नियम बँधा है।

इस कामके लिये ग्लास्टर गान्टलेट फाइटर्स जैसे वायुयानोंका व्यवहार किया जाता है। युद्ध सामग्रियोंके स्थानमें मौसम-निरीक्षण करने वाली सामग्रियाँ साथ रखी जाती हैं। विरोधी ऋतुके होते हुये भी शीतकाल में हिमाङ्कके ८० शतांश नीचे तापक्रम रहता है। ऐसा बहुत कम होता है कि यह उड़ाकू निम्न वायु मंडल तक जानेमें चूक जाय। १९३६ के नवम्बर माससे लेकर अब अटूट संख्या उड़ानकी १५०० है।

(एक अंग्रेज लेखकके आधार पर)

क्लोरोफ़ॉर्म

[लेखक—श्री० जगेश्वर दयाल वैश्य एम० ए०, बी० एस-सी०]

बहुत प्राचीन कालसे डॉक्टर लोग इस बातकी खोज में थे कि कोई ऐसी वस्तु अथवा रीति निकाली जाय कि मनुष्य चीर-फाड़के समय दर्दका अनुभव न करे। ग्रीक भ्रमणकार हैरोडोटस ने लिखा है कि सिथियन लोग एक जड़से उत्पन्न की हुई भापको बेहोशी पैदा करनेके लिये काममें लाते थे। चीनी लोग भी ऐसा ही करते थे। रोगके एक प्राकृतिक निरीक्षक पिलीनीने लिखा है कि मैंड्रागोरा नामक पौधा इस काममें लाया जाता था। अफीमके बेहोशी लाने वाले गुणको भी मनुष्य कितनी ही शताब्दियोंसे जानते हैं। लेकिन किसी ऐसी वस्तुकी जिससे कि पूर्ण बेहोशी हो सके और दर्दका बिलकुल भी ज्ञान न हो, बहुत आवश्यकता थी।

हँसानेवाली गैस

१९ वीं शताब्दीके आरम्भके दो प्रसिद्ध विज्ञान-वेत्ताओंने जिनका नाम सर हम्फ़रे डैवी और माईकिल फैराडे था, यह दिखलाया कि नाट्रस ऑक्साइड और ईथरके सूँघनेसे बेहोशी होती है। लेकिन काफ़ी समय तक ये व्यवहारमें नहीं लायी गई। बोस्टनके एक अमेरिकन दंतसाज़ ने सबसे पहिले नाट्रस ऑक्साइडका प्रयोग दाँत उखाड़नेमें किया। इस प्रयोगके बाद मरीज़का मुख ऐसा मालूम होता था कि वह हँस रहा है, इस लिये वह हँसानेवाली गैस कहलाने लगी।

क्लोरोफ़ॉर्म

हँसानेवाली गैससे भी समस्या हल न हुई। सन् १८४७ ई० से पहिले किसीको इस बातका लेशमात्र भी ध्यान न था कि क्लोरोफ़ॉर्म, जो कि केवल पीनेकी औषधियों में ही दिया जाता था, इस कामके लिये सर्वश्रेष्ठ साबित होगा। मार्च सन् १८४७ ई० में एक फ्रांसीसी विज्ञान-वेत्ताने फ्रांसके विज्ञान परिषद्‌में एक लेख पड़ा जिसमें इसका वर्णन था कि छोटे छोटे जानवरों पर क्लोरोफ़ॉर्मकी भापका क्या प्रभाव होता है। किसी भी डॉक्टर अथवा विज्ञान-वेत्ता ने इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। लेकिन उस वर्ष के अन्तिम मासमें एडिनबराके एक डॉक्टर जिनका नाम जेम्स सिम्पसन था, डाक्टरों और विज्ञान-वेत्ताओंको क्लोरोफ़ार्मका महत्व दर्शा दिया।

जेम्स सिम्पसन

जेम्स सिम्पसनके पिता एक गाँवमें डबल रोटी बनानेका काम करते थे। उनके सात पुत्र थे जिनमें जेम्स सिम्पसन सबसे छोटा था। चार वर्षकी अवस्थासे वह गाँवके स्कूलमें भेजा गया। वह बहुत ही कुशाग्र बुद्धिका था और पढ़नेकी ओर बहुत ध्यान देता था। इसलिये उसके पिता और बड़े भाइयों ने इस बातका निश्चय किया कि वे सब रूखी-सूखी रोटीमें ही गुज़र कर लेंगे लेकिन जेम्सको एडिनबरा-विश्वविद्यालयमें उच्च शिक्षाके लिये अवश्य भेजा जाय। सन् १८२५ ई० में वह विश्व-विद्यालयमें दाखिल हुआ। सन् १८३२ में उसने एम० डी० की उपाधि प्राप्त कर ली। इसके बाद वह छः वर्ष तक और अध्ययन करता रहा। अब वह एडिनबराके प्रसिद्ध डॉक्टरोंमें हो गया।

सन् १८४६ ई० में जेम्स सिम्पसन ने सुना कि विलियम मोर्टन और चार्ल्स जैकसन नामक दो अमरीका निवासियों ने ईथरसे बेहोशी पैदा करनेकी कोशिशकी है। बस, अब क्या था? जेम्स सिम्पसन भी इसी धुनमें लग गया कि बेहोशीका इससे अच्छा तरीका निकाला जाय।

४ नवम्बर सन् १८४७ ई० को सिम्पसन तथा उनके दो सहायकोंने क्लोरोफ़ॉर्म सूँघ कर उसकी परीक्षा करनी चाही। तीनों फ़ौरन बेहोश हो कर कुर्सियों परसे लुढ़ककर नीचे फ़र्श पर आ पड़े। उन दिनों शराब पीने की रिवाज़ बहुत ज्यादा था और शराब पीते-पीते बेसुध हो जाना साधारण सी बात समझी जाती थी। इसलिये जब डॉक्टर साहबका नौकर कमरेमें आया तब उसको कुछ आश्चर्य नहीं हुआ। वह तीनोंके गले और छातीके बटन खोलकर चला गया। कुछ समय बाद जब सिम्पसन

की आँख खुली तो उनको अपनी सफलता पर अत्यन्त हर्ष हुआ। १५ दिन बाद सिम्पसन ने एडिनबराके डॉक्टरोंके सामने क्लोरोफ़ार्मके प्रयोग दिखलाये।

धर्मान्ध लोगों ने कुछ दिन तक बहुत शोर-गुल किया कि इसका प्रयोग धर्म-विरुद्ध है। लेकिन साधारण जनता ने इसको आरम्भसे ही ईश्वरीय देन समझ कर अपनाना आरम्भ कर दिया था।

सिम्पसनको पुरस्कार-स्वरूप बैरन बना दिया गया। कुछ दिनों बाद वह रायल फ़िज़ीशियन हो गया और अन्तमें ऑक्सफ़ोर्ड यूनीवर्सिटी ने डॉक्टर आफ़ सिविल लॉ की उपाधि प्रदान की।

संसार जेम्स सिम्पसनका नाम कभी नहीं भूलेगा।

ब्रह्मांड और पृथ्वी

[ले० श्री रामस्वरूप चतुर्वेदी]

पिछले पचीस वर्षोंमें इस विषय पर बड़े रोचक तर्क हुये हैं कि पृथ्वीकी उत्पत्ति किससे, कैसे व कब हुई? आगे चलकर वनस्पति-शास्त्र-विशेषज्ञों ने प्रकृतिके चरण चिन्होंको देखते-देखते धरा-निर्माण, प्राणी-प्रादुर्भाव, वनस्पतिका उगना तथा मानव विकास जैसे गहन विषयों का क्रमवद्ध इतिहास अंकित किया। दूसरे शब्दोंमें इस प्रकार भी कहा जा सकता है। कि मनुष्य ने अपने विकाशका ठीक-ठीक इतिहास जाननेके लिये प्रकृतिके इतिहास जाननेके लिये प्रकृतिके कोने-कोनेको छान डाला। आइये हम लोग भी देखें कि 'हम' वर्तमान अवस्था तक कैसे पहुँचे, हमारे प्रकट होनेके पूर्व प्रकृति कितना चल चुकी थी, कौन कौन सी सुविधायें एकत्रित कर चुकी थी, आदि?

पृथ्वीका जन्म

अपना अथवा प्राणी-विकास समझनेके पूर्व यदि 'धरा-निर्माण-क्रम' समझ लिया जाय तो विषय सरलता से स्पष्ट हो जायगा। यह तो प्रायः जानते होंगे कि पृथ्वीका जन्म सूर्यसे हुआ किन्तु यह सोचनेका कष्ट बहुत कम पाठकों ने उठाया होगा कि सूर्यका जन्म किससे हुआ और कैसे हुआ। टेलिसकोपसे देखने पर सुदूर अन्तरिक्षमें विकाशकाय, विस्तृत प्रकाशपुञ्ज दृष्टिगत होते हैं। इन प्रकाश-मेघों को nebulae अर्थात् नीहारिका कहते हैं। नीहारिका, जलते कुहरेकी भाँति अथवा प्रकाशकी चमकती हुई चादरके समान होती है। इसका मध्यस्थल अत्यन्त घना व शेष भागकी अपेक्षा अधिक ठोस होता है। यह प्रकाश-मेघ शान्त और गति-शून्य नहीं होता, अपितु अनवरत गतिसे चक्कर लगाता, आगे दौड़ता, फैलता और सिकुड़ता रहता है। इसी फैलने व सिकुड़नेकी क्रियासे प्रेरित होकर अगणित अग्नि स्फुलिङ्ग नीहरिकासे निकल कर शून्यमें चारों ओर बिखरने लगते हैं। हमारा सूर्य भी इसी प्रकारकी क्रियासे प्रभावित होकर उत्पन्न हुआ था। सूर्य अपनी माँ का इकलौता पुत्र तथा उसके २० या ३० अरब तेजस्वी सहोदर और भी थे। प्रसिद्ध वैज्ञानिक सर जेम्सके कथानुसार इन सब भास्करोंका जन्म आजसे प्रायः ५०,००,००,००,००० (५० खर्ब) और ८०,००,००,००,००० (८० खर्ब) वर्ष पूर्वके बीच हुआ था। सूर्यकी दिनचर्या भी उत्पन्न होते ही वही रही जो उसकी माँ की थी—धाँय धाँय जलना, अपनी धुरी पर घूमना, सिकुड़ना और फैलना। इन क्रियाओंके फलस्वरूप सूर्यसे भी उसी भाँति कई ग्रहोंकी उत्पत्ति हुई जिस भाँति वह स्वयं उत्पन्न हुआ था। हमारी आधारभूता पृथ्वी भी उनमेंसे एक थी। इन ग्रहोंने आगे चलकर उपग्रहोंको उसी प्राचीन क्रमसे जन्म दिया। अन्य ग्रहोंके तीन तीन या आठ आठ उपग्रह हैं पर हमारी पृथ्वीका केवल एक ही उपग्रह है, चन्द्रमा। उपर्युक्त महाशयके कथनानुसार पृथ्वीको अपने पिता सूर्यसे अलग हुये कोई २०,००,००,००,००० (दो अरब) वर्ष हो गये होंगे।

समयकी सीमा

कठिनतासे एक शताब्दी जी सकने वाले हम लोग

पृथ्वी और सूर्यकी लम्बी-लम्बी अवस्थाओंकी कल्पना नहीं कर सकते। उनका अनुमान लगानेके लिये एक रूपकसे काम लेना होगा। यदि सूर्यकी आज तककी आयु एक ही पृष्ट पर अंकित करनेके लिये १०,००,००,००,००,००० (दस खर्ब) वर्षोंको आधे इञ्चकी रेखा द्वारा प्रकट करें तो पृथ्वीकी सम्पूर्ण आयु इतनी छोटी होगी कि विन्दुमात्र भी न निकलेगी। यदि इस दस खर्ब वर्षोंको पचास इञ्च द्वारा प्रकट करें तो पृथ्वीकी आज तककी आयु इञ्चका आठवाँ भाग होगी। यदि इस पैमानेको फिर सौ से गुणा करे अर्थात् सूर्यके दस खर्ब वर्षोंको ५ हजार इञ्च और पृथ्वीकी पूर्णायु १२ इञ्च माने तो पृथ्वी पर प्राणी प्रादुर्भाव दो इञ्च व मानव अस्तित्व इञ्चका सातवाँ या आठवाँ भाग होगा।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि यदि मानव-प्राणीकी पूर्णायु एक मिनट है तो पृथ्वीकी पूर्णायु सौ मिनट, तथा सूर्यकी पूर्णायु तीन माह होगी। यह तो हुआ अपने पितामह सूर्यकी अद्यावधि आयुका परिमाण—पर यह कहना अत्यन्त कठिन है कि सूर्यको जन्म देने वाली नीहारिका कितने वर्षोंसे वर्तमान है। यहाँ तक तो एक नीहारिकाके परिवारकी शाखा प्रशाखाओंकी अवधि अंकित की गई। इसी प्रकार न जाने कितनी नीहारिकायें असीम अन्तरिक्षमें धधक रही हैं। यह सब कबसे धधकती चली आरही हैं, नहीं कहा जा सकता। सच तो यह है कि समयकी गणना पृथ्वी-ग्रह तक ही सीमित है, ऊपर उठते ही इसका अभाव प्रारम्भ हो जाता है। पृथ्वीपर जितने समय तक सूर्य प्रकाशित रहता है उतने समयको दिन तथा जितने समय सूर्य अदृष्ट रहता है और अन्धकार ही अन्धकार रहता है उतने समयको रात कहते हैं। किन्तु जिन नक्षत्रोंमें सदा प्रकाश ही प्रकाश रहता है, वहाँ दिन व रातकी कल्पनाकी ही नहीं जा सकती, वहाँ तो सदैव दिन ही रहता है। यह क्या कम आश्चर्यकी बात है कि सूर्य लोकमें उत्पत्ति कालसे लेकर आज तक रात नहीं हुई। जहाँ एक दिनका ही अन्त नहीं वहाँ सप्ताह, माह, वर्ष युग, मन्वन्तर आदिकी कल्पनाका प्रश्न ही नहीं उठता। आधादिन, दोपहर प्रातःकाल सायंकाल घंटा मिनट आदिके लिये भी स्थान नहीं। जहाँ सदैव प्रकाश ही प्रकाश रहता है, जो अपने प्रकाशसे प्रकाशित रहते हैं वहाँ 'समय' कही जाने वाली कोई वस्तु ही नहीं। यही कहा जा सकता है कि समय असीम हैं।

स्थान अन्तरहित है

जिस प्रकार समयकी सीमा नहीं उसी प्रकार अनन्त ब्रह्माण्डके विस्तारकी सीमा नहीं। मीलोंमें दूरी नापना असम्भव है। अतः वर्षोंमें नापते हैं। प्रकाशकी गति इतनी तीव्र है कि एक सेकण्डमें पृथ्वीके सात चक्कर लगा सकता है—जब कि एक चक्कर पचीस हजार मीलका है। सूर्यसे पृथ्वी तक प्रकाश आनेमें आठ मिनट लगते हैं। पास से पास वाले नक्षत्रके प्रकाशको पृथ्वी तक आनेमें पचासों वर्ष लग जाते हैं। कोई-कोई नक्षत्र तो इतने दूर है। कि सैकड़ों व हज़ारों वर्ष लग जाते हैं। माउण्ट विल्सन प्रयोगशालामें ह्यूमेसन साहब ने खोज करने पर इतनी दूर चमकने वाली नीहारिकाका पता लगाया है कि जिसकी दूरी १५,०,०००, ००० प्रकाश-वर्ष होगी। प्रकाश द्वारा एक वर्षमें जितनी दूरी तय की जाती है, उसे एक प्रकाश वर्षकी दूरी कहते हैं।

विश्व-विस्तारकी कल्पना एक और रीतिसेकी जा सकती है। यदि पृथ्वी को ऐसा गेंद माने जिसका व्यास एक इंच हो तो सूर्य इतना बड़ा चक्र होगा जिसका व्यास या (धुरी) नौ फीट व पृथ्वीसे दूरी ३१३ गज होगी। इसी मापसे चन्द्रमा को पृथ्वीसे दूरी २½ फीट मंगलकी १७५ फीट बृहस्पतिकी एक मील, शनिकी दो, यूरेनसकी चार और नैपच्यूनकी दूरी छ मील होगी। इसके आगे सैकड़ों मील तक शून्य ही शून्य व खोखलापन मिलेगा। गणित द्वारा देखा गया है कि उपर्युक्त पैमानेसे नापने पर निकटतम नक्षत्रकी दूरी ४०,००० मील है। सुदूर नक्षत्र, गृह अथवा प्रकाश-पुञ्ज कितनी दूर हैं, नहीं कहा जा सकता है।

आकार महान्

इन नक्षत्रोंका आकार इतना विशाल है कि छोटेसे छोटे नक्षत्रसे अपने सूर्य जैसे सैकड़ों टुकड़े काटे जा सकते हैं। जब कि सूर्य पृथ्वीसे आकारमें तेरह लाख गुना बड़ा

है। दूरी पर टिमटिमाने वाले महा सूर्य दूर होनेके कारण छोटे दीखते हैं, पर वे इतने महान हैं कि जिसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता है।

प्रकाश-पिण्डोंकी गणना

सारे ब्रह्मांडमें इस प्रकारके महा सूर्य कितने होंगे? उसका उत्तर निकालनेके लिये बड़े-बड़े तर्क हुये हैं। एक साहब ने तो अपना सारा जीवन नक्षत्र-गणना में ही लगा दिया पर अन्तमें हार मान बैठे और कहा 'सम्भव है दिखाई पड़ सकने वाले नक्षत्रोंकी गिनती कर लूँ, पर फिर भी अगणित नक्षत्र बच ही रहेंगे जो यहाँसे नहीं दिखते' अतः सम्पूर्ण ब्रह्मांडके सब नक्षत्रोंकी गणना नहीं हो सकती। विज्ञान जगत्में ख्यात नामी विद्वान् सर जेम्स जीन्स ने "Man and the Universe" (मनुष्य और विश्व) पर बोलते हुये कहा था कि "महा शून्यके अनन्त विस्तारमें उतने ही नक्षत्र हैं जितने पृथ्वीके समस्त महासागरोंके किनारे बिखरे रहने वाले बालु कण। हमारा सूर्य भी उनमेंसे एक कण है और यह पृथ्वी उस कणका टूटा हुआ एक कणांश है।

अब सोचिये इस विश्वका विस्तार कितना महान् है जिसमें अगणित प्रकाश वर्षोंकी दूरी तक असंख्य महा सूर्य फैले हुए हैं। यहाँ फिर वही कहना पड़ेगा जो समयके लिये कहा था। Space अर्थात् जगह या स्थान कही जानेवाली कोई वस्तुही नहीं है।

ब्रह्मांड गतिशील है

आश्चर्य तो तब होता है जब हम देखते हैं कि इतने प्रकाश-पुंज जबसे उत्पन्न हुये, आज तक अबाध गतिसे घूमते हुये आ रहें हैं। विश्वके कोने-कोनेमें गति, क्रान्ति, चहल-पहल है। कोई नक्षत्र ऐसा नहीं जो गति-हीन हो। सब नक्षत्रोंके साथ एक ही नियम लागू है, उत्पन्न होने वाला प्रकाश-पिण्ड अपने पिताका चक्कर लगाता है। सब उपग्रह अपने उत्पादक ग्रहका भ्रमण करते हैं, सब ग्रह अपने जनक नक्षत्रकी प्रदक्षिणा करते हैं और सब नक्षत्र अपनी उत्पादयित्री नीहारिकाको बीचमें रखकर परिक्रमा करते हैं। चन्द्रमा (अब अपनी धुरी पर नहीं घूमता परन्तु प्रारम्भसे जब कि उसमें आकर्षण शक्ति प्रबल थी अपनी धुरी पर घूमता हुआ पृथ्वीके चारों ओर घूमता है। पृथ्वी चन्द्रमाको साथ लिये अपनी धुरी पर सूर्यके चारों ओर घूमती है। इसी प्रकार मंगल, शनि आदि भी अपने-अपने उपग्रहोंको साथ लिये पिता-सूर्य की प्रदक्षिणा करते हैं। सूर्य, अपने गतिमान पुत्र-पौत्रों को साथ लेकर अपनी धुरी पर घूमते हुए अपनी जननी नीहारिकाके केन्द्रस्थल पर घूमता है। यह हुई एक नीहारिकाकी प्रणाली है, इसी प्रकार कई प्राणालियाँ हैं। उन सबमें गति वर्तमान है। आकर्षण-शक्तिके रूपमें मणिगणवत् पिरोये हुये प्रकाश-पिण्ड अपनी-अपनी क्रियामें व्यस्त हैं।

भिन्न गतियाँ

सबकी चाल एकसी नहीं है। एक ज्योतिषका नियम है कि जो ग्रह या नक्षत्र जितना बड़ा होगा उसकी चाल उतनी ही अधिक तेज होगी। व्यक्तिगत रूपसे निकटतम नक्षत्रकी गतिका औसत ६ मीलसे लेकर २० मील प्रति सेकंड है। मि० स्लाफरमें नक्षत्रोंकी सामूहिक गतिका पता लगाया तो पाया कि लगभग ५२ नीहारिकायें ऐसी हैं जिनकी गति ४८० मीलसे लेकर १०८० मील प्रति सेकंड है। दिन प्रतिदिन अधिक शक्ति वाले दूर दर्शक यन्त्र बनते जारहे हैं। दूरातिदूर झिलमिलाने वाले 'दुग्ध मार्ग' या नक्षत्र-प्रवाह ढूँढे जा रहे हैं। कुछ दिन हुये ह्यूमेसन साहब ने सुदूर एकान्तमें टिमटिमाने वाली नीहारिकाकी खोजकी थी। अभी तक देखी गई सब नीहारिकायें अधिक गति वाली थीं। उनका कहना है कि इसकी चाल १५०० मील प्रति सेकण्ड है।

ब्रह्माण्डमें प्राणी-अस्तित्व

यह कितनी अनोखी बात है कि इतने बड़े विश्वमें, जहाँ दीर्घकायी असंख्य पिण्ड हैं, पृथ्वीको छोड़कर कहीं भी हवा, जल, मही, वनस्पति, पशु, पक्षी, और मानव नहीं पाये जाते। इन अगणित तेजस्वी लोकोंमें पृथ्वी ही सौभाग्यशाली ग्रह है जहाँ प्राणी या जीवनका अस्तित्व पाया जाता है। चन्द्रमा कुछ वर्षों पूर्व जीवित

उपग्रह था। आकारमें छोटा होनेके कारण पृथ्वीसे पहले ही आकर्षण-शक्ति खो बैठा। जैसे-जैसे आकर्षण-शक्ति कम होती गई वायु-मण्डल विलुप्त होता गया, जल घटता गया। एक समय आया कि वायु और जलका नाम मात्र न रह गया, साथ ही साथ वायु और जलपर निर्भर रहने वाले जीव भी लुप्त होते गये। अन्य ग्रह तथा नक्षत्र इतने उष्ण रहा करते हैं कि वहाँ जल, मिट्टी, वनस्पति आदि उगही नहीं सकते, टिकनेकी कौन कहे।

हाँ, पृथ्वीका प्रतिद्वन्दी यदि कोई है तो केवल एक ग्रह है—मंगल। ज्योतिषियोंका मत है कि यहाँसे मंगल ग्रहमें दृष्टिगोचर होने वाली नहरें या कृषि-प्रणालियाँ प्रमाणित करती हैं कि मंगलमें चतुर किसान वर्तमान हैं। कुछ इसका खण्डन करते हैं। बड़ी प्रसन्नताकी बात है कि मंगल ग्रह निकट भविष्यमें पृथ्वीके समीप आनेकी कृपा कर रहा है। एच० जी० वेलसके कथनानुसार इनका अन्तर १४,१०,००,००० मीलका है। पिछले १५ वर्षोंमें इसकी दूरी ६,४०,००,००० मील रह गई थी। पर अब इसी वर्ष (सन् १९३९) की जुलाईमें जब यह पृथ्वीसे अति समीप आ जायगा केवल ३६०००,००० मील दूर रह जायगा। संसार भरके नक्षत्र-विद्यार्थी विशेषकर मंगलग्रहके विद्यार्थी इन तीन महीनों—जुलाई, अगस्त, सितम्बरमें मंगलका अध्ययन करेंगे, फोटो लेंगे और निर्णय निकालेंगे। तब सब वादविवाद समाप्त हो जायेंगे। मंगलका वातावरण मेघाच्छन्न नहीं रहता, अपितु निर्मल व स्वच्छ है। अतः उसका धरातल स्पष्ट दीख जायगा। वर्षोंका सन्देह मिट जायगा। अवलोकन अध्ययन, व फोटोग्राफीका कार्य डाक्टर वाटरफील्डको सौंपा गया है। विज्ञान के पाठक समय आने पर इसका सविस्तृत वर्णन पढ़ेंगे।

पर यदि मंगल ग्रहमें भी प्राणी-अस्तित्व प्रमाणित न हो सका—ईश्वर न करे ऐसा हो, तो केवल पृथ्वी ही ऐसा ग्रह शेष रह जाता है, जहाँ, वायुमण्डल, जल, वनस्पति, दुग्ध-पशु, और मनुष्य जैसी कौतूहलकारी वस्तुयें पाई जाती है। क्या यह कम आश्चर्यकी बात है कि अखिल ब्रह्माण्डमें केवल हमारा ही घर (पृथ्वी) एक ऐसा स्थान है जहाँ जीवन अस्तित्व पाया जाता है।

किन्तु खेद है कि पृथ्वीमें भी प्राणी विस्तार सीमित तथा अल्प है। विस्तृत ब्रह्माण्डमें पृथ्वीसे केवल पाँच मीलकी ऊँचाई तक ही प्राणी अस्तित्व सम्भव है। बैलून पर बैठकर मनुष्य सात मील तक अवश्य पहुँच चुका है पर बहुत हानि उठाकर। पृथ्वी पर पाया जाने वाला कोई पक्षी पाँच मीलकी ऊँचाई पर साँस नहीं ले सकता। छोटे-छोटे कीड़े-मकोड़े जो कि हवाई जहाज़ पर रखकर ले जाये गये, चार मीलसे पहले ही अचेत हो गये। चतुष्पदोंकी दुनिया तो इससे भी पूर्व समाप्त हो जाती है। यह तो हुआ पृथ्वीके बाहरका हाल, अब पृथ्वीके भीतरकी ओर मुड़िये। पृथ्वीका पूर्ण व्यास ८,००० मील है, इसमेंसे प्रारम्भके तीन मील तक मेढ़क, सर्प, केचुआ आदिको मिट्टीमें दबे रहने पर भी हवा व प्रकाश खींच लेनेकी शक्ति रहती है, आगे नहीं। गहरेसे गहरे समुद्रमें पाँच मील तक सूर्य प्रकाश पहुँच सकता है। यहीं तक बड़ी मछली, मगर, घड़ियाल, केकड़ा, कच्छप, आदि भोजन, वायु, और प्रकाश पा सकते हैं। इससे आगे जहाँ पर सदा अंधकार व शीत रहता है, कोई जन्तु नहीं जी सकता।

विश्वका आकार देखते हुये प्राणी-विस्तार नहींके समान है, पर जो कुछ है अद्वितीय है, अद्भुत है और आश्चर्यमें डाल देने वाला है। अगले लेखमें हम देखेंगे कि धधकती हुई पृथ्वी कैसे शीतल हुई, जल, वायु-मण्डल, मिट्टी, वनस्पति और प्राणीका विकास किस क्रमसे हुआ।

———

प्रकृति-विज्ञान

(ले० श्री करुणा शङ्कर पाण्ड्या, नागपुर)

प्रकृति-दर्शन वर्तमान वैज्ञानिक शिक्षाकी प्रथम अनुभूति है। भूगर्भ और नभोमण्डलकी रचनामें मनुष्य की जिज्ञासा पूर्वकालसे व्यस्त रही है। प्रकृति और पुरुष-के मूल विभागोंको लेकर जड़, चेतन और तत्वका निर्माण, शक्ति-साधनाके साथ दर्शनका 'एकमेवम्' मौलिक विषय रहा है। भारतवर्षमें कलाका आयोजन भी वैज्ञानिक प्रदर्शनकी विभूति है, ऐसी मेरी धारणा है। नवीन आविष्कारों, अन्वेषणों और खोजोंने प्रकृतिके सच्चे रूपका दर्शन कराया है। प्रकृतिका ज्ञान-अवलोकन ज्ञान-इन्द्रियोंके विवेक एवं निष्कर्ष पर अवलम्बित है। प्रयोगशीलता एक आवश्यक गति कहनी चाहिये।

संसारके विभिन्न प्रगति-शील साहित्यमें वैज्ञानिक विषयोंकी चर्चा एक आवश्यक माँग बन गई है। परन्तु, हमें इस बातका दुःख है कि भारतवर्षकी भाषाओंमें इसको अब भी महत्व नहीं दिया गया। वैशेषिक विषयों ' ओर हमारी अभिरुचि ही नहीं है। शिक्षाके माध्यम, राष्ट्र-भाषा एवं सम्बन्ध-लिपिके निश्चयके विचारके पहिले ही हमें अपनी भाषामें ऐसे भण्डारको घोषित करना होगा। ऐसे विषयोंके वर्णनमें नवीनताके साथ शब्द-रचना ध्येय और विस्तारकी उपयोगिता पर ध्यान देना होगा। प्रवेश-प्रारम्भको छोड़कर हम उसके हमारेसे सम्बन्ध रहने वाले विभागोंके दर्शनमें ध्यान देंगे। प्रकृति-भू और नभोमण्डलके जड़ और जीवित साधनोंसे बनी है। शक्ति उन सबके ऊपर अपनी छत्र-छाया डालती है। शक्तिका कारण, उसके प्रकार, आवश्यकता, उपयोग और संचयका नाम भौतिक-ज्ञान (Physics) है। गुरुत्व-आकर्षणसे लेकर यान्त्रिक और जलके नैसर्गिक, तेज दवाव इत्यादिके साथ आगे चलकर आवाज, ताप, प्रकाश, वस्तु-आकर्षक एवं विद्युत-रूप बनते हैं। इनका चक्र दूसरेमें परिवर्तित होकर नवीन यन्त्रोंमें उपयोग होना और हमारे प्रतिदिनके जीवनमें दिखलाई पड़ना इसके ज्ञान की आवश्यकता बतलाता है। प्राकृतिक साधनों, सिद्धान्तों और व्यक्त संदेशोंका संकेत गणितके अंक सिद्ध करते हैं। परिणामों, प्रमाणों और प्रकट-प्रेरणाओंका निष्कर्ष गणित ने सिद्ध कर दिखाया है। नभोमण्डलके सूर्य्य, नक्षत्र और ग्रह अपनी असंख्य सृष्टिका निर्देश करते हैं। ज्योतिष-शास्त्र का नक्षत्र-ज्ञान और उनकी गतियोंसे जो सम्बन्ध है वह इसीकी प्रतिक्रिया है।

भूमण्डलमें सर्वप्रथम वस्तु-विज्ञानका उल्लेख आवश्यकीय है जिसे हमने रसायन-शास्त्रका नाम दिया है। भू-जगतके अन्तर-अवयवके रूप, परिवर्तनके साथ पदार्थोंके भेद, तत्वोंका वर्गीकरण, व्यवसाय एवं उद्योगमें उनकी उपयोगिता आदि इस ज्ञानके अन्तर्गत हैं। भोजन-पदार्थ, वस्तु-विनिमय, अस्तित्व आकार, रचना और उनका विश्लेषण इत्यादि नवीनतासे आश्चर्यमें हमें डाल देता है। भूगर्भमें समयका ज्ञान, पुरातन अविशेष आदि शिक्षाको परिपक्व करता है। सफलताका उद्देश्य, सत्यका आह्वान, सबूतोंकी कसौटी एवं निष्पक्ष-विचार वैज्ञानिक-ज्ञानमें आवश्यक हैं। वस्तुओंकी दशा और अन्तिम परिमाणु रूप 'शून्य' चेतनताकी सृष्टि करते हैं। यहाँ हम धर्म, विज्ञान और कलाको सीमा पर पहुँचते हैं। यहीं चेतनता का आविर्भाव होता है और हम प्राणी-जगतकी सीमा में आते हैं।

प्राणीशास्त्र, सुप्रसिद्ध डारविनके विकासवाद, जीवन-संघर्ष, प्राकृतिक-चुनाव और प्रतिक्रियाके मूल-सिद्धान्तों पर अवलम्बित है। वृक्ष और जीवोंके भिन्न-भिन्न होनेका परस्पर अस्तित्व एक ही जगत है दोनोंका स्थितिके अनुसार रूप ग्रहण करना उनके जीवन-कालमें अनुरूपों का अभिव्यक्त होना तथा बाढ़, चाल, अनुभव एवं उत्पत्तिका व्यापक होकर अपने अलग अलग अन्तर कार्य उसी एक 'कोष' की दृढ़तासे करना अवश्य ही अनुयमताका द्योतक है। परम्परा गत अवयवोंमें 'स्त्री, और पुरुष' नामक दो विभिन्न रूपोंका आविर्भाव और उनके इस जीवन-काल में श्रेष्ठता एवं पूर्णता-विकाश के साथ होते रहना भी अत्यन्त चित्ताकर्षक है। कीटाणुओंसे कीट-काई और अवलम्बित पौधोंका जन्म-पत्रक और फिर फल वाले

वृक्षोंमें किस तरह अपना विकाश पाता है। हरित-पत्रोंसे आच्छादित इन वृक्षोंके आन्तर कार्य भी अत्यन्त ही रोचक हैं।

वनस्पतिको छोड़कर थोड़ी छाया जीव-विज्ञानकी भी लीजिये। इनके वर्गीकरणमें रीढ़ और बिना रीढ़के जीवोंका विभाग फिर एक कोषमयसे लेकर जीव-जन्तु आदि किस तरह युक्त जीवोंमें एवं कृमि गणोंमें आते हैं। मत्स्य, तीर वाले, सरीसृप, खग आदि सस्तन प्राणी विविध प्रकारोंसे अपनी उत्पत्ति आते हैं। कोष-ज्ञान और उनसे अंगोंका निर्माण हमें बाद, उत्पत्ति आदिका ज्ञान देता है। मनुष्य के शरीर विज्ञानका ध्यान हमें विकासका ध्यान हमें विकाश-वादको सहर्ष स्वीकार करनेमें बन्दरोंके साथ अपनी वंश-परंपरा का ध्यान दिलाता है।

अवश्य ही यह प्रकृति-दर्शनका प्रारम्भिक विवेचन है और इसमें हमें एक शान्ति रूप मानवताका ज्ञान होता है जिससे आधारोंकी आभा हमारे सामने आकर हमें उत्साह देती है। हम मनुष्य हैं, जरूर-उन्नत हैं, परन्तु इस सृष्टिकी तुलनामें हमारा स्थान केवल अविशेष किंचित विन्दु-मात्र है।

नकली मूँगा या प्रवाल कैसे बनावें

(ले०—श्री स्वामी सुदर्शनाचार्य शास्त्री ज्योतिर्वित्, प्रबन्धकर्त्ता—श्री रामानुज आयुर्वेदिक प्रयोगशाला, मुख्याधिष्ठाता—ज्यौतिष महाकार्यालय, अमरोहा, यू० पी०)

भारतीय जनसमाज रत्नोंके नामसे अत्यधिक परिचित है। यद्यपि रत्न शब्द हाथी, घोड़ा, स्त्री आदिमें भी तत्तद् गुण विशेषके उत्कर्षसे व्यवहृत होता है, जैसे गजरत्न, अश्वरत्न स्त्रीरत्न आदि। किन्तु अधिकांशतः रत्न शब्द हीरे आदि पाषाण रत्नोंमें सुप्रतिष्ठित होनेसे सुसंगत प्रतीत होता है।

रत्नोंकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें कई मतभेद हैं। कोई महानुभाव पौराणिक आख्यायिकाके आधार पर वल नामक दैत्यसे रत्नोंकी उत्पत्ति मानते हैं। किसी पुराणवेत्ता महोदयके मतमें दधीचि मुनिकी अस्थि (हड्डी) से रत्न उत्पन्न हुये हैं। भूगर्भ-तत्ववेत्ता कोई सज्जन यह स्वीकार करते हैं कि पृथ्वीके स्वभावसे ही सब रत्नोंमें विचित्रताका जन्म हुआ है।

वक्तव्य यह है कि रत्न हैं निस्संदेह महत्वकी वस्तु। वेदमें भी रत्न-धारणका उल्लेख मिलता है। प्राचीनकालमें रत्न-धारण करनेकी प्रथाका बाहुल्य था। रत्न, धारण करनेके अतिरिक्त भक्षणमें भी प्रयुक्त होते थे।

कर्मकाण्डके आचार्य कर्मकाण्डके विधानके अनुकूल प्रत्येक शुभकार्यमें यथाविधि कलश स्थापितकर उसमें रत्न प्रक्षेप किया करते हैं।

संसारमें जिस प्रकार नौग्रह प्रसिद्ध हैं वैसे ही रत्न भी नौ प्रकारके विख्यात हैं।

१—माणिक्य, २—मोती, ३—प्रवाल, ४—पन्ना, ५—पुखराज, ६—हीरा, ७—नीलम, ८—गोमेद, ९—लहसुनिया।

इन नौ रत्नोंमें प्रवाल भी एक रत्न है। इसीका हमें यहाँ विज्ञान दिखलाना है।

प्रवालकी उत्पत्ति :—

प्राचीन भारतीय वैज्ञानिकोंका यह मन्तव्य है कि प्रवालकी बेल होती है और वह समुद्रमें उत्पन्न होती है। प्रातःकालके समय निकलते हुये सूर्यकी जैसी लालिमा होती है वैसी ही लालिमा इस बेलकी होती है। यदि यह बेल कसौटी पर घिसी जाय तो यह अपनी कान्ति और रंगतको कदापि न छोड़ेगी।

उत्तम जातिके प्रवालके लक्षण :—

१—पकी कंदूरीके फलके सदृश लाल। २—गोल। ३—सीधे। ४—मोटे। ५—लम्बे। ६—व्रणरहित। ७—चिकने।

उपर्युक्त सात लक्षणोंसे युक्त प्रवाल उत्तम होते हैं।

निकृष्ट जातिके प्रवालके लक्षण :—

१—पीतलके वर्ण सदृश। २—जलके सदृश वर्ण। ३—सूक्ष्म। ४—टेढ़े। ५—व्रणयुक्त। ६—रूक्ष। ७—काले। ८—तौलमें हलके। ९—सफेद।

इन नौ लक्षणोंसे युक्त प्रवाल निकृष्ट तथा कार्यके अयोग्य होते हैं।

प्रवालके संस्कृतनामः—

मूँगेके संस्कृतमें प्रवाल और विद्रुम ये दो नाम अति प्रसिद्ध हैं किन्तु इनके अतिरिक्त और भी नौ नाम ग्रन्थान्तरोंमें उपलब्ध होते हैं। वे निम्नलिखित हैं—

१—भौमरत्न। २—रत्नांग। ३—रक्ताकार। ४—रक्तांग। रक्तकंद। ६—रक्तकंदल। ७—लतामणि। ८—अंगारकमणि। ९—अंभोधिपल्लव।

प्रवालके अनेक भाषाओंमें नाम :—

हिन्दी मूँगा

बंगला—पला, मुँगा

मराठी—पोवलें

गुजराती—परवालो

कर्णाटक—अवलेहवत

तैलङ्गी- प्रवालकं, पागडालु

फारसी—मिरजान्

अरबी—बसद

अंग्रेजी—कोरल् Red coral

लैटिन—कोरेलियंरुब्रम् Coralium Ruvrum

प्रवालके गुण :—

वीर्य वृद्धौ तथापुष्टौ यष्येच्छा वर्त्ततेपरा।

विद्रुमं शोधितंतेन सेवनीयं गुण प्रदम्॥

जिन्हें वीर्य बढ़ानेकी और शरीर पुष्ट करनेकी उत्कृट इच्छा है उन्हें गुणदायक विशुद्ध प्रवालका सेवन करना चाहिये।

प्रवाल कुछ अम्लत्व लिये मधुर स्वाद वाला है। कफ पित्तकी पीड़ाका नाशक, दीपन, रुचिकारक, पुष्टि-दायक वीर्यवर्द्धक और कान्ति-जनक है। इसके यथा-विधि सेवनसे खाँसी श्वास, क्षय, प्रमेह, पाण्डु, उन्माद, रक्तपित्त आदि रोग दूर होते हैं।

प्रवालकी वेलके गुण—

प्रवालकी हरी वेलको घोटकर पीनेसे कामकी वृद्धि और शरीरकी पुष्टि होती है। एवं इसके निरन्तर सेवन से वीर्यका स्तंभन होता है।

प्रवाल भस्मके गुण

खाँसी, क्षयरोग, और स्वप्न दोषमें विशेष लाभ पहुँचाती है।

प्रवाल भस्मका विधान —

मूँगेकी साफ साफ शाखें लेकर उन्हें पहले गोदुग्धमें औटाना। जब दूध गाढ़ा हो चले तब उन्हें निकाल कर शीतल और स्वच्छ जलसे धोकर साफ वस्त्रसे पोंछना। फिर मूँगेकी शाखोंके वज़नसे चौगुनी कीकड़के पत्तोंकी लुगदी या घीक्वारका गूदा लेकर शाखोंके नीचे और ऊपर रख संपुट तथा कपड़ मिट्टी कर फूँकनी चाहिये। ऐसा करने से भस्म तैयार हो जाती है।

इसकी पूरी मात्रा २ रत्तीसे ४ रत्ती तक है। दिनमें दो बार मधु या मक्खनसे सेवन करनी चाहिये।

प्रवाल धारण करनेका गुण :—

ज्योतिषशास्त्रमें प्रवालके सम्बन्धमें वर्णन है कि यह मंगलका रत्न या मणि है। प्रवालक एक नाम अंगारक-मणि है। ज्योतिषमें अंगारक नाम मंगलका है, अतएव यह मंगलकी मणि होनेसे अंगारक मणि है। जिसे मंगल ग्रह अनिष्टकारी हो उसे मंगलकी प्रसन्नताके लिये प्रवाल धारण करना चाहिये। प्रवाल—धारणसे मंगल ग्रहका अशुभ प्रभाव कम होने लगता है।

कृत्रिम प्रवाल बनानेका प्रकार :—

मनुष्य-निर्मित प्रवाल कृत्रिम प्रवाल कहलाता है। पाठकोंके मनोरंजनार्थ प्रवाल बनानेकी अनुभूत प्रक्रिया लिखते हैं।

प्रवाल बनानेमें दो वस्तुयें काममें आती हैं। १—शंखका चूरा। २—शिंगरफ। बाज़ारू शंखका चूरा उत्तम नहीं मिलता। अतएव कभी-कभी बाज़ारू शंखका चूरा काममें लानेसे मूँगेमें कलौंस आ जाती है। शंखका चूरा न लेकर शंखके अच्छे और साफ टुकड़े लेने चाहिये। शंखके टुकड़ों पर लगे मैल को दूर करनेके लिये उन्हें अग्निमें तपा कर नीबूके रसमें डुबो देना फिर निकालकर स्वच्छ जलसे धोकर साफ़ कपड़ेसे पोंछ लेना चाहिये। उन

साफ टुकड़ों को किसी साफ़खरल या हावन दस्तेमें कूट कर चून कर लेना। यह चूरा और पिसा हुआ रुमियाशिंग रफ़ खरलमें डाल थोड़ा-थोड़ा भेड़का दूध डाल कर घोटना। जब घुटते घुटते मोमसा हो जावे तो साँचेसे या हाथसे मूँगे जैसे मनके बना कर उन्हें लोहेके साफ तार मे पिरो कर और दृढ़ संपुट करके भेड़की मसींगनोंकी अग्नि देकर पकाना। इस विधानसे उत्तम मूँगे बन जाते हैं। जितना जो इसमें अभ्यास करेगा उससे उतने उत्तम और स्फुट मूँगे बनेंगे।※

नोट :—मूँगे दो किस्मके होते हैं। एक कुछ फ़ीके लाल रंगके और दूसरे गहरे सुर्ख़ रंगके। ये सब शिंगरफ के ही न्यूनाधिक योगसे बन जाते हैं।

कारखाने में कैसा इंजन लगावें ?

अर्थात्

उचित प्रकार की चालक शक्ति का चुनाव।

लेखक—श्री ओंकारनाथ शर्मा

(लेखककी "औद्योगिक प्रबन्ध" नामक अप्रकाशित पुस्तकका चौथा अध्याय। सर्वाधिकार रक्षित)

प्रत्येक कारखानेको स्थापित करनेका उद्देश्य यही होता है कि उसमें कोई न कोई मनुष्योपयोगी सामान अधिक मात्रा और सस्ते दामोंमें तैयारकर बाजारमें बिक्रीके लिये रक्खा जाय। कारीगरोंके हाथसे काम करनेकी एक एक हद होती है। इसके आगे उन्हें हथकलोंका उपयोग करना होता है। हम नित्य प्रति देखते हैं कि हथकलों द्वारा उत्पादन भी आजकलकी माँगको पूरा नहीं कर सकता जब तक कि किसी प्रकारके इञ्जन वगैरहके बलका सहारा न लिया जावे। अतः किस दशामें किस प्रकारके और कितने बड़े चालक यंत्र (इञ्जन) का उपयोग करना लाभदायक होगा, यह समस्या सभी कारखानोंके स्थापकोंके सामने आया करती है। इसलिये इस अध्यायमें हम इस विषय पर विचार करेंगे।

यंत्रोंको शक्ति पहुँचानेके दो तरीके हुआ करते हैं, एक तो अपनी शक्ति पर अर्थात् पावर हाउस बनाकर और दूसरा किसी अन्य पावर हाउससे बिजली आदिकी शक्ति लेकर। इसलिये पहला विचारणीय प्रश्न यह है कि कब तो निजी पावर हाउस बनाना चाहिये और कब दूसरे पावर हाउससे बिजली लेनी चाहिये।

यदि हमारा कारखाना छोटा हो और उसके आसपास उसी शहर अथवा प्रान्तमें कोई अच्छा सा विद्युत शक्ति-गृह मौजूद हो जो हमारी आवश्यकताके अनुसार सस्ते भावपर यथेष्ट मात्रामें शक्ति देता रहे, तो हमें निजका स्वयंचालक यंत्र (Prime mover) लगानेके लिये चिंता करनेकी जरूरत नहीं।

किसी बड़े शक्ति-गृहसे शक्ति लेनेमें निम्नलिखित लाभ होते हैं।

१—अपना निज इञ्जन लगानेमें जितना धन व्यय होता है और जितना स्थान रुकता है, उससे बहुत ही कम धनके व्यय और स्थानमें काम चल जाता है।

२—मोटरों (बिजलीकी) की सम्हालके लिये किसी विशेष प्रबन्ध और निरीक्षकोंकी आवश्यकता नहीं। इनका चलाना, बंद करना और सम्हालना इतना सरल है कि एक साधारण योग्यता वाला मनुष्य भी थोड़ी सी शिक्षामें ही इस कामको सफलतापूर्वक बिना खतरेके कर सकता है।

३—बिजलीकी मोटरोंका कार्य भरोसेके योग्य होता

※इस विधिकी सत्यताका उत्तरदायित्व सर्वथा लेखक पर है

—सत्यप्रकाश

है, क्योंकि बड़े शक्ति-गृहोंमें सर्वोत्तम यंत्रों द्वारा योग्य और अनुभवी कार्य-कर्त्ताओंकी देख-रेखमें काम होता है।

अपना स्वयंचालक यत्र कब लगाना चाहिये।

यदि निम्नलिखित कारणोंमें से कोई कारण उपस्थित हो जाय तो निजका स्वयंचालक यंत्र लगानेका विचार करना चाहिये।

(१) यदि कोई बड़ा शक्तिगृह आसपासमें न हो और यदि हो तो उचित भाव पर शक्ति न देता हो।

(२) यदि कारखानेका काम ही ऐसा हो जिसमें शक्ति-उत्पादनके अलावा भी दूसरे कामोंमें गरमी आदि की आवश्यकता पड़े। लगभग सारे ताप-इञ्जनोंमें से इतना ताप व्यर्थ जाया करता है कि यदि चाहें और आवश्यकता हो तो उसका बहुत अच्छा उपयोग किया जा सकता है।

(३) यदि कारखानेका काम ही ऐसा हो कि जिससे उत्पादित पदार्थों (Bye products) के रूप में सस्ता इंधन तयार हो जाय जो कि गैस-जनकों (Gas generator) या बायलरोंमें काम दे सके।

स्वयं चालकोंके प्रकार

किसी कारणवश यदि निजका स्वयं चालक लगाना ही आवश्यक जान पड़े तो फिर यह निश्चय करना चाहिये कि निम्नलिखित प्रकारके स्वयं चालकोंमें से किस प्रकारका उत्तम रहेगा।

१—वाष्प इंजन और बायलर

२—तेल इंजन

३—गैस इंजन

४—जल शक्ति

यहाँ अब प्रत्येक प्रकारके स्वयं चालक यंत्रके गुण और अवगुणों पर तुलनात्मक दृष्टिसे विचार करेंगे।

१—वाष्प इंजन और बायलर

(क)—आडा मिल इंजन—यदि किसी बढ़िया प्रकारके आधुनिक आडे मिल इंजनका, योग्य सहायक साज सामान (Accessories) सहित उपयोग किया जाय, जिसमें कारलिस अथवा ड्राप वाल्व लगा हो तो उससे २००० रोधक अश्वबल (B. H. P.) तक शक्ति उत्तमतासे मिल सकती है। इस प्रकारका इंजन बहुत टिकाऊ और भरोसेके योग्य होता है।

पाँच-पाँच सौ अश्वबल तकके एक, दो अथवा तीन आडे इंजन तक यदि किसी छोटे कारखानेमें लगा दिये जावे तो एक बड़ा इंजन लगानेके मुकाबिलेमें थोड़े खर्चेसे काम निकल सकता है।

(ख) तेज चलने वाले खड़े इंजन—इस प्रकारके इंजन, आडे इंजनोंके मुकाबिलेमें थोड़ी जगह घेरते हैं, लेकिन उनके लिये मकानकी छत अधिक ऊँची होनी चाहिये। तेज चाल होनेके कारण इनकी कार्य-क्षमता (Efficiency) आडे इंजनोंकी अपेक्षा कुछ अधिक होती है।

(ग) रेल इञ्जन नुमा उठाऊ इंजन—इस प्रकार के इंजनोंमें इंजन, बायलर और उसका सारा साज सामान एक ही जगह लगा हुआ होता है। इसलिये दूसरी तरहके इंजनोंके मुकाबिलेमें यह सारा यंत्र ठोस और मजबूत होता है और सबसे थोड़ी जगह घेरता है। इसके लगानेके लिये मामूली नींवकी ही आवश्यकता होती है। इसका बायलर बड़ी आसानीसे साफ हो सकता है और उसका निरीक्षण भी सरल है। इस इंजन के चलाने और देख-रेखका खर्चा भी थोड़ा ही होता है, लेकिन इसकी मरम्मतमें अवश्य ही कठिनाई पड़ती है, फिर भी सब बातोंको सोचते हुए ३५० रो० अ० ब० तककी शक्ति उत्पन्न करनेके लिए इस प्रकारके इंजन अलहदा बायलर वाले इंजनोंसे बहुत अच्छे होते हैं, और भरोसेके योग्य कार्य करते हैं। कई कारखानोंमें, अधिक शक्ति प्राप्त करनेके लिये, इस प्रकारके कई इंजन लगाये गये हैं, जिन्होंने सफलता-पूर्वक काम किया है।

वाष्प इंजनोंके लिये बायलरका चुनाव

जब यह निश्चय हो जाय कि कारखानेके यंत्रोंको चलानेके लिये अमुक प्रकारका वाष्प इंजन ही लगाना पड़ेगा तब दूसरा प्रश्न यह उपस्थित होता है कि उस इंजन या इंजनोंके साथमें किस प्रकारका और कितना बड़ा बायलर लगाया जावे जो कि थोड़े खर्चेमें और आसानीसे उस एक या अधिक इंजनोंको पर्याप्त

मात्रामें वाष्प देता रहे। विशेष प्रकारकी परिस्थितियोंमें कैसा और कितना बड़ा बायलर लगाया जाय, उसका निश्चय बड़ी दूरदर्शिता और सब बातोंकी पूरी छान बीनके साथ करना चाहिये।

बायलरोंको जातियाँ—

बायलरोंकी दो मुख्य जातियाँ होती हैं:—

(१) ढोलनुमा अग्नि नालिका (Drum shaped firetube)

(२) जल नालिका (Water tubes)

पहिली जातिमें कई प्रकारके बायलर आते हैं जिनमें से निम्नलिखित प्रकारके बायलरोंका सबसे अधिक प्रचार है।

(क) सादे और अनेक नालियों वाले खडे बायलर (Simple or multitubular vertical Boiler)

(ख) लंकाशायर बायलर (Lancashire Boiler)

(ग) ड्रायबक जहाजी बायलर (Dryback Marine Boiler)

(घ) 'गैलोवे" बायलर (Galloway Boiler)

(ङ) रेल इंजननुमा बायलर (Loco type Boiler)

दूसरो जातिके बायलरोंमें निम्नलिखित प्रकारके बायलर मुख्य हैं।

(क) सीधी नली वाले, जिनमें "बैबकाक और विल-कोक्स" बायलर सर्वोत्तम है।

(ख) टेढ़ी नली वाले, जिनमें "स्टर्लिंग" बायलर सर्वोत्तम है।

(ग) जहाजी जल नालिका बायलर।

बायलर-सम्बन्धी विचारणीय बातें:—

उपयुक्त बायलरका चुनाव करते समय निम्नलिखित प्रश्नों पर विचार करना चाहिये :—

१—जिस इंजन अथवा यंत्रको वाष्प दी जावे उसकी वाष्प-ग्रहण-सामर्थ्य क्या है?

२—बायलरके उपयोगमें आने वाला इंधन और जल किस प्रकारका है?

३—इंजन अथवा यंत्र पर किस प्रकार का भार रहेगा?

४—बायलरके लिये कितनी जगह रोकी जा सकती है?

५—जिस स्थान पर कारखाना बनाया जा रहा है वहाँ भारी होनेके कारण बायलरको पहुँचानेमें दिक्कत तो नहीं होगी?

६—जो बायलर हम लगाना चाहते हैं, उसकी बनावट सरल और मजबूत है या नहीं?

७—बायलरको चलानेके लिये योग्य कार्य-कर्त्ता मिल सकते हैं या नहीं।

८—क्या बायलरको चलानेका खर्चा और उसकी कार्यक्षमता उसकी लागतको देखते हुये उचित है?

बायलरकी सामर्थ्य (Efficiency)

बायलरकी सामर्थ्यका अनुमान उसके तप्त धरातल (Heating surface) और उसकी वाष्पोत्पादक शक्ति (Steaming capacity) द्वारा होता है और इनकी पर्याप्ति जिससे इंजनको उचित अश्व-बल नियमित रूपसे मिलता रहे निम्नलिखित बातों पर निर्भर रहती है :—

(१) इंजनकी जाति

(२) बायलरकी जाति

(३) ईंधनका प्रकार

(४) उचित मात्रामें हवाकी प्राप्ति

(१)—इंजनकी जाति:—प्रति प्रदर्शित अश्वबल (Indicated Horse power) पर इंजन प्रति घंटा कितनी वाष्प खर्च करेगा, यह बात विचारणीय है। इस वाष्पके खर्चेसे बायलरमें पानीके ख़र्चेसे बहुत निकट सम्बन्ध रहता है, इसलिये अंगरेजी भाषामें इसे "वाटर

रेट" भी कहते हैं। यह इञ्जनोंकी बनावट और परिस्थितियोंके अनुसार हुआ करती है। सिलिंडरोंमें वाष्पके जमाव (Condensation), उसमें रहने वाली खाली जगह (Clearance), तापके परावर्त्तन (Radiation) और जोड़ोंके साँस देनेके कारण (Blowing of joints) भी उसमें काफी असर पड़ा करता है। यहाँ पर इञ्जन-निर्माण करनेवालोंके सूची पत्रोंसे संकलित कर एक सारणी दी जाती है जिससे पाठकोंको कुछ अनुमान हो जावेगा।

इञ्जनोंकी जाति		एक घंटेमें एक प्रदर्शित अश्वबल पर वाष्पका खर्चा पौंडोंमें	
		साधारण Non-conducting	गाढ़ी करण Condensing
सरल (Simple)	तेज़चाल वाले	३२	२४
	मध्यम चालवाले	३०	२३
	कारलिस	२८	२२
युग्म (Compound)	तेजचाल वाले	२६	२०
	मध्यम चालवाले	२५	१९
	कारलिस	२४	१८

जो पाठक इंजीनियर नहीं हैं उनके लाभार्थ यहाँ बताना आवश्यक है कि किसी इंजनका प्रदर्शित अश्वबल और वाष्पका खर्चा किस प्रकारसे मालूम किया जाता है।

अश्वबलके लिये सूत्र इस प्रकार है।

$$\text{प्रदर्शित अश्वबल} = \frac{\text{द. स. ल. क्ष.}}{३३०००}$$

जिसमें द=सिलिंडरमें बाष्पका औसत दबाव पौंडोंमें प्रतिवर्ग इञ्च।

स = एक मिनटमें पिस्टनके स्ट्रोकों की संख्या

ल = स्ट्रोकोंकी लम्बाई फुटोंमें।

क्ष = पिस्टनका क्षेत्रफल वर्ग इञ्चोंमें।

यहाँ पर यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि बायलर के चालू दबाव से सिलिंडरका औसत क्रियात्मक दबाव बहुत कम होता है, यही तो केवल इंडीकेटर डायग्राम अर्थात् प्रदर्शक चित्रों द्वारा ही मालूम किया जा सकता है, लेकिन उसकी अनुपस्थिति में सैद्धान्तिक दबाव से भी अंदाजा लगाया जा सकता है जिसका सूत्र निम्न प्रकार है—सैद्धान्तिक दबाव औसत $= \text{द}\frac{१ + \text{लघु न} + \text{प्र}}{\text{प्र}}$ —दा जिसमें द = सिलिंडरमें वाष्पका सबसे अधिक सही दबाव (Absolute pressure) जो कि वायलरके दबावसे ३ से ५ पौंड तक अकसर कम होता है। सही दबाव से यहाँ तात्पर्य है घड़ीके द्वारा प्रदर्शित दबावसे १५ पौंड अधिक।

दा = सही पिछला दबाव (Absolute back pressure) प्रति वर्ग इञ्च पौंडोंमें। गाढीकरण इञ्जनी (Condensing Engines) में यह लगभग १७ पौंड प्रति वर्ग इञ्च हुआ करता है।

प्र = वाष्पका प्रसार, उदाहरणके लिये मान लीजिये यदि वाष्पकी काट अर्थात् कट आफ (Cut off) ५०% पर हो तो प्रसार $\frac{५०}{१००} = \frac{१}{२}$ हुआ।

लघुन = नेपीरियन लघुरिक्थ।

उपरोक्त सूत्रकी सहायतासे प्रत्येक सिलिंडरका सैद्धान्तिक औसत क्रियात्मक दबाव मालूम कर उसको नीचे वाली सारणीमें दिये हुये गुणकों (Factors) से गुणा करने पर ठीक दबाव मालूम हो जावेगा, जिसका उपयोग अश्वबलके सूत्रमें करना होता है। इस प्रकार से सारे सिलिंडरोंके प्रदर्शित अश्वबलोंका जोड़ कुल इञ्जनका प्रदर्शित अश्वबल होगा।

प्रदर्शक चित्र गुणक

इंजनोंकी जाति	चित्र गुणक		
	सरल	युग्म	त्रियुग्म
१—चौरस स्लाइड वाल्व वाला बिना जैकेट	·७०	·६०	—
२—कारलिस और ड्राम वाल्व वाला जैकेट सहित	—	·८०से·९०	
३—जहाज़ी जैकेट वाला, व्यापारिक	—	.७०	·६६
४—जहाजी, नेवल, जैकेट वाला	—	—	.६३
५—तेजचाल बिना जैकेट और छोटे स्ट्रोकवाला	—	— ·६०से·८०	.६० .७०

किसी भी प्रकारके इंजनमें वाष्पका खर्चा निम्न-लिखित द्वारा मालूम किया जा सकता।

नियमः—वर्ग इञ्चोंमें इंजनके सिलिंडरके क्षेत्रफल को पिस्टनकी चाल प्रति मिनट इञ्चोंसे गुणा करो और फिर इस गुणनफलको कट आफके भिन्नके अंशसे गुणा करो और इसके गुणनफलको १७२८ से भाग दो और उस भागफलको कट-आफके भिन्नके हरसे फिर भाग दो, इस प्रकार से जो उत्तर प्राप्त होगा वह इंजन द्वारा वाष्पका खर्चा प्रति मिनट घनफुटोंमें होगा।

विविध प्रकारके वाष्प इंजनोंमें शक्ति उत्पन्न करनेके लिये प्रति सहस्र वाट घंटा वाष्पकी खपतका अनुमान उनके (Per Killow watt hour) निर्माण-कर्त्ताओं के मतानुसार निम्न प्रकार है।

बिना गाढ़ीकरण यंत्र वाले एक सिलिंडरके इंजनोंमें
३० से ४० पौंड

,, ,, दो सिलंडरके युग्म इंजनोंमें २५ से २७ पौंड

गाढ़ीकरण वाले ,, ,, ,, ,, ,, १८ से २० पौंड

,, ,, तीन ,, ,, ,, १२ से २० पौंड

बड़े यंखा इंजनमें (Turbine) ,, ११ से १३ पौंड

(२)—बायलरोंकी जातिः—बायलरोंकी वाष्पोत्पादन शक्ति उनकी बनावट और उनके तप्त धरातल पर निर्भर किया करती है।

ढोलनुमा बायलरों में तप्त धरातलका प्रति वर्गफुट $4\frac{1}{2}$ से $8\frac{1}{2}$ पौंड तक जल को वाष्पमें परिणत कर सकता है।

रेल इंजननुमा बायलरमें तप्तधरातलका प्रतिवर्ग फुट, एक घंटेमें ७ से १२ पौंड तक और कभी-कभी उससे भी अधिक जलको वाष्पमें परिणत कर सकता है।

जल नालिका बायलरोंमें तप्त धरातलका प्रति वर्गफुट एक घंटेमें ४ से $8\frac{1}{2}$ पौंड तक जल वाष्पमें परिणत कर सकता है।

रेल इंजननुमा और जल नालिका बायलरोंसे यदि दबाकर काम लिया जावे तो वे २४ पौंड जल और कभी-कभी अधिकको भी प्रति वर्ग फुट तप्त धरातलके हिसाब से वाष्पमें परिणत कर देते हैं। अनुभव द्वारा यह भी मालूम हुआ है कि दबाकर काम लेनेसे बायलरकी कार्यक्षमता कम हो जाती है। इसलिये इंजनकी आवश्य-कतासे डेढ़ी वाष्पोत्पादन शक्तिके बायलर हमेशा लगाने चाहिये।

भिन्न-भिन्न प्रकारके बायलरोंकी वाष्पोत्पादन शक्ति का मुकाबिला करनेके लिये देखा जाता है कि अमुक बायलर एक नियत समयमें २१२° फ० तापक्रमके कितने जलकी वाष्प उतने ही तापक्रम पर बना सकता है।

उदाहरणके लिये मान लीजिये, कि बायलर की वाष्पका दबाव २०० पौंड प्रति वर्ग इञ्च है और उसके फीड वाटर अर्थात् घुसने वाले पानीका तापक्रम १००° फ० है तो वाष्प-सारणीसे मालूम होगा कि इस प्रकारका एक पौंड जल ११३८ ब्रि० ता० इ० वाष्प बननेके लिये लेता है। ९७० से भाग देने पर १·१७३ संख्या मिलती है जो कि समान वाष्पीकरण का गुणक (Factor of equivalent evaporation) है। यदि इस बायलरके पानी और कोयलेके खर्चेका हिसाब लगाने पर यह मालूम हो कि इसमें प्रत्येक पौंड कोयला ८ पौंड जलकी वाष्प २०० पौंड प्रति वर्ग इञ्च पर बनाता है, तो

२१२° फ० पर समान वाष्पीकरण = ८ × १·१७३ = ९·३८४ = इस प्रकार से प्रत्येक बायलरके समान वाष्पीकरण अंक मालूम कर के उनका मिलान किया जा सकता है।

(३) ईंधन का प्रकार:—उपरोक्त प्रकारसे बायलरकी वाष्पोपादन शक्तिका हिसाब लगाकर, और वाष्पकी आवश्यकताका निश्चय कर हमें यह भी निश्चय करना चाहिये किस प्रकारका ईंधन हम काममें लावेंगे, उसके योग्य हमारे भावी बायलरकी भट्टी भी है या नहीं।

देशी कोयला जो हमें प्राप्त हो सकता है उसका तापमान (Calorific value) ११८०० ब्रि० ता० इ० के लगभग होता है, और विलायती कोयलेका औसत तापमान १४००० ब्रि० ता० इ० होता है। इसलिये भारतवर्षमें इङ्गलैंड आदि देशोंकी अपेक्षा बड़ा बायलर लगाना चाहिये। अधिक कोयला जलानेके लिये अंगीठीका क्षेत्रफल भी अधिक होगा। इसलिये भट्टी की अंगीठीका क्षेत्रफल जाननेके लिये निम्नलिखित सूत्र काममें लाना चाहिये।

$$अ = \frac{ज}{क.व}$$

जिसमें अ = अंगीठीका क्षेत्रफल वर्ग फुटोंमें।

ज = २१२° फ० के तापक्रम जलका एक घंटेका खर्चा पौंडोंमें, क = उपरोक्त वाष्प बनानेके लिये प्रति घंटा, अंगीठीके प्रति वर्गफुट कोयलेका खर्चा पौंडोंमें।

व = जल, पौंडोंमें जिसकी वाष्प एक पौंड कोयलेसे बनाई जा सकती है।

उदाहरण—एक बायलर ८००० पौंड जलकी वाष्प एक घंटेमें बनाता है। वाष्पका तापक्रम २१२° फ० होता है, जिसमें अंगीठीके प्रतिवर्ग फुट २४·४ पौंड कोयला, एक घंटेमें जल जाता है। यदि एक पौंड कोयला १०·१ पौंड जलको वाष्प २१२° फ० पर बना सकता है तो अंगीठीका क्षेत्रफल क्या होना चाहिये?

उपरोक्त सूत्र का उपयोग करने पर $अ = \frac{८०००}{२४·४ \times १०१}$ = ३२·५ वर्गफुटके लगभग। पाठकोंकी जानकारीके लिये यहाँपर कुछ विलायती बायलरोंको नाप और उनकी अंगीठी का क्षेत्रफल दिया जाता है।

बायलरकी जाति	व्यास फुटोंमें	लम्बाई या ऊँचाई फुटोंमें	अंगीठीका क्षेत्रफल वर्ग फुटोंमें
भीतरसे आग दिये जानेवाले:—			
कारनिश	४ से ६	११से२८	६.५से२१·५
लंकाशायर	६ से ९	१९से३०	१८ से ४५
गैलोवे	६ से ९	१६से३०	१९.५से४३
वार्कशायर	६ से ९	१७से२४	१४ से ३९
कोचरन खड़ा	३ से ८ ५	६.७५से१७	४·७५ से ४१
आड़ीनली वाला खड़ा	२ से ६	४·५से १४	१ ७५से२२·५
अनेक नालियों वाले खड़े	२ से ६	४ ५से १४	८·७५से२००
ढोलनुमा जहाजी	६ से १८	७.५से१७.५	५ से१००❀
रेल इञ्जन नुमा	—	—	
बाहरसे आग दिये जाने वाले:—			
ढोलनुमा अनेक नलियों वाले	३ से ६	८ से १५	—
जल नालिका बायलर	—	—	२०से ४५०

नोट:—❀यदि कोयला झोंकनेकी कल लगी हो तो।

उपरोक्त सारणीमें विलायती कोयलेके हिसाबसे अंगीठीका क्षेत्रफल दिया है। भारतवर्षमें अनुभवसे मालूम हुआ है कि ढोलनुमा बायलरोंकी भट्टीकी अंगीठियोंमें प्रतिवर्ग फुट १५ से २० पौंड तक देशी कोयला घंटे भरमें जल जाता है। जल नालिका बायलरोंकी अंगीठी में इसका खर्च २२ से २५ पौंड तक प्रति घंटा प्रतिवर्ग फुट होता है।

लंकाशायरों में प्रति पौंड देशी कोयलेसे १० पौंड जलकी वाष्प और जल नालिका बायलरोंमें ८ पौंड वाष्प

२१२° फ० तापक्रमके जलके उसी तापक्रम पर तैयार हो सकती है।

डाइबक जहाजी बायलरोंके साथ यदि समृद्ध यंत्र (Economiser) लगा हुआ हो तो उनकी कार्य क्षमता भी जल नालिका बायलरोंके बराबर हो सकती है।

उचित मात्रामें हवा प्राप्ति :—भिन्न-भिन्न प्रकारके ईंधनको भली-भांति जला कर, उससे पूरा लाभ उठानेके लिये हवा की भिन्न-भिन्न मात्रामें आवश्यकता को पूरी करनेके साधन भी कई है। एक तो ऊँची चिमनी लगा कर भट्टी में पहुँचाई जाती है जिसे प्रकृतिक हवा

(Chimney or natural draught) कहते हैं। इस तरीकेमें, चिमनीमें रहने वाली हवा गरम होनेके कारण हल्की होती है, और भट्टीके बाहरसे आने वाली वायु-मंडलकी हवा ठंडी होनेके कारण भारी होती है। इन दोनोंके घनत्वमें अन्तर होनेके कारण भट्टीसे चिमनीकी तरफ हवाकी धारा प्रवाहित होती है जिसका दवाव इञ्चोंमें पानीकी ऊँचाईसे नापा जाता है। यह दबाव अकसर ½″ से ¾″ पानीकी ऊँचाईके बराबर होता है।

दूसरा तरीका किसी पंखे अथवा वाष्पकी धाराके भट्टीमें बलपूर्वक हवा देना है। यह तरीका यांत्रिक हवा (Forced draught) कहलाता है।

तीसरा तरीका चिमनीके अन्दर अर्थात् बायलरके पीछेसे पंखे द्वारा हवाको खींचनेका है। यह तरीका प्रवाहित हवा (Induced Draught) कहलाता है।

अतः बायलरका चुनाव करते समय हवाके तरीकों पर भी विचार करना होना है. और जो तरीका वहाँ लाभप्रद प्रतीत हो, उसीके अनुसार उसी की बनावटका बायलर लगाना होता है।

खेतीके सम्बन्धमें आदेश

(क) खरीफ़की फसलोंको क़तारोंमें बोना

जून—(१) मूँगफलीके बीच फ़ासला १॥ फीटसे २ फीट तक और हर क़तारमें पौधोंके बीच फ़ासला ९ इंचका होना चाहिये।

(२) ज्वार वास्ते दाना—क़तारोंके बीच फ़सला २॥ फीटका होना चाहिये।

(३) मक्का :—क़तारोंके बीच फासला २॥ फीट होना चाहिये।

(४) कपास :—क़तारोंके बीच फ़ासला २॥ फीटका होना चाहिये।

ऊपर लिखी हुई फ़सलोंको वर्षाके आरम्भमें बो देना चाहिये। दूसरे तरीकोंकी अपेक्षा क़तारोंमें बोनेसे विशेष लाभ होता है। फ़सलोंके बीच गुड़ाई करनेका "अकोला हो" यह एक बहुत सस्ता और लाभदायक यंत्र है। अपने स्थानीय इंस्पेक्टर कृषि-विभागसे कहिये कि वह इस यंत्र को आपके यहाँ चला कर दिखलावें और साथ-साथ आप उनसे ऊपर लिखी हुई फ़सलोंके उन्नत बीजकी क़िस्में भी मालूम कीजिये। वे आपकी सहायताके लिये नियत हैं आप उनसे लाभ उठाइये। भूमिकी उपजाऊ-शक्ति बढ़ानेका एक ढंग यह भी है कि सनईकी फ़सलको खेतमें जोत दिया जाय। इसको ३० सेरसे ४० सेर तक प्रति एकड़के हिसाबसे वर्षाके आरम्भमें बो देना चाहिये।

जुलाई :—अरहर क़तारोंमें ६ फीटकी दूरी पर बोना चाहिये और हर कतारमें पौधोंके बीच १॥ फीटका फ़ासला होना चाहिये और अरहरकी हर दो कतारोंके बीच दो क़तार ज्वारको बो देना चाहिये। यदि अरहर की क़तार चार फीटके फ़ासले पर बोई जाय तो केवल एक क़तार ज्वार बीचमें बोना चाहिये।

धान कुआरी—यदि जून मासमें बेहन नहीं डाली गई हो तो अब छिटकवाँ तरीकेसे बोना चाहिये।

बाजरा - इस मासके दूसरे पाखमें ॥ फीटके फ़ासले पर क़तारोंमें बोना चाहिये।

अगस्त :—फ़सलें जो कि क़तारोंमें बोई गई हों उन्हें बैलसे चलाने वाले गुड़ाईके यंत्रोंसे गुड़ाई करना

चाहिये। इस मासके पहले सप्ताहके अन्तमें सनईकी फ़सल को खादके लिये खेतमें जोत देना चाहिये।

सितम्बर—मक्का जो दानेके लिये बोई गई हो उसको काट लेना चाहिये।

अक्टूबर—कपासकी बिनवाई आरम्भ हो जानी चाहिये और मूँगफली खोद लेना चाहिये ताकि खेत गेहूँके लिये तय्यार हो सके।

नवम्बर—ज्वार वा बाजरेकी कटाई समाप्त हो जाना चाहिये। अब कोई खरीफकी फसलोंमें नहीं रह जाता। सिवाय इसके कि—

अप्रैल—अप्रैलमें अरहरकी फसलको काट लेना चाहिये। शीघ्र पकने वाली अरहरकी किस्म दिसम्बरमें काटी जाती है। गो यह खरीफकी और दूसरी फसलोंके साथ बोई जाती है।

(ख) धानकी खेती

मई—यदि सिंचाईके लिये पानी मिल सके तो सनई हरी खादके लिये बो देना चाहिये।

जून—यदि संभव हो तो सिंचाई करके धानकी बेहन बो देना चाहिये और जहाँ सिंचाईके जरिये न हों तो वहाँ वर्षा आरम्भ होते ही बो देना चाहिये। इसके पहले खेत-की मिट्टी हल द्वारा खूब बारीक और भुरभुरी कर लेना आवश्यक है और यदि संभव हो तो बनी हुई गोबर वा कूड़ा-करकट की पाँस १५० मन प्रति एकड़के हिसाबसे मिला देना चाहिये।

जुलाई—आरम्भ मासमें सनई जोत डालना चाहिये और जड़हन लगानेके दो दिन पहले खेतमें जुताई करके लेव उठाना चाहिये। यदि सनई हरी खादके लिये न बोई गई हो तो सड़ी हुई गोबर या कूड़ा करकटकी खाद १०० मन प्रति एकड़के हिसाबसे मासके आरम्भमें लेव उठाते समय खेतमें मिला देना चाहिये या थोड़ी मात्रामें दस हिस्से रेंडीकी खली और एक हिस्सा अमोनियम सल्फेट जड़हन लगानेसे पहले खेतमें डाल देना चाहिये। यदि जड़हन ऐसे खेतोंमें लगाई जाय जिनमें ऐसी फसिलें ली गई हों जिनमें अधिक खाद दी गई हो (जैसे गन्ना व आलू) तो बहुत खादको आवश्यकता नहीं है। इस मास के पहले पाखमें जब बेहन चार या पाँच सप्ताहकी होगई हो तो खेतमें खूब लेव उठा कर लगा देना चाहिये। दो-दो पौधे एक साथ ६ इंचके फसले पर लगाना चाहिये। जड़हन लगाते समय खेतमें २॥ इंचसे अधिक पानी न होना चाहिये।

सितम्बर व अक्टूबर—धानकी जल्दी पकनेवाली किस्में सितम्बरके अन्तमें या अक्टूबर के आरम्भमें काटनेके लायक हो जाती हैं।

नवम्बर—धानकी देरमें पकने वाली किस्में आरम्भ मास या मध्यमें तैयार हो जाती हैं।

(ग) गन्नेकी खेती

अप्रैल—यदि सस्ती सिंचाई संभव हो या वर्षा हो गई हो तो रबीकी फसलके पश्चात् परती छोड़े हुए खेत को मिट्टी पलटने वाले हलसे जोत देना चाहिये।

मई, जून—खेतको ग्रीष्म ऋतुमें जोत कर खुला छोड़ देना चाहिये और वर्षाके आरम्भमें हरी खादके लिये सनई बो देना चाहिये।

जुलाई, अगस्त—यदि खेत परतो छोड़ा गया हो तो जब-जब वर्षामें समय मिले, जुताई करते रहना चाहिये। फसलका अच्छा होना इन्हीं दिनोंकी जुताई पर निर्भर है और यदि सनई हरी खादके लिये बोई गई है तो अगस्त मासके मध्यमें या जब फसल अनुमान चार फीट ऊँची और फूलनेके लगभग हो गई हो तो उसको जोत देना चाहिये।

सितम्बर जैसा ऊपर लिखा गया है जुताइयाँ बराबर करते रहना चाहिये, सिवाय इसके कि इस मासके अन्त में खेतको खुला न छोड़ना चाहिये। और मिट्टी पलटने वाले हलोंका प्रयोग बन्द कर देना चाहिये। और सनई की जोताईके ६ सप्ताह पीछे अच्छे प्रकारसे जुताइयाँ आरम्भ कर देना चाहिये।

अक्टूबर—रबीकी फसलोंकी बुआई समाप्त हो जाने-के बाद गन्नेके खेतोंमें नालियाँ बनाना आरम्भ कर देना चाहिये। नालियाँ ३॥ फीटसे ४ फीट तकके फ़ासले पर होना चाहिये। ६ इञ्च गहरी मिट्टी खोद कर दो नालियों के बीच खाली जगह पर रख देना चाहिये।

नवम्बर—दस मासके अन्त तक नालियाँ पूरी तैयार हो जाना चाहिये। इस कार्यमें विलम्ब न होना चाहिये।

दिसम्बर—नालियों में ९ इञ्च गहरी गुड़ाई कर देना चाहिये और खाद डालना चाहिये।

जनवरी, फरवरी—नालियोंकी गुड़ाई समय-समय करते रहना चाहिये। इन तैयारकी हुई नालियोंमें गन्ना बो देना चाहिये। यदि नालियाँ इस समय तक न बनी हों तो अब नालियाँ बनानेका समय नहीं है समतल पर (बजाय दिहाती तरीकेसे एक फुटसे दो फुटके फासले पर गन्ना बोनेके, लाईनसे ३ फीटके फ़ासलेसे, अगर ज़मीन ज्यादह उपजाऊ नहीं है, या ३॥ फीटके फ़ासले पर, अगर ज़मीन उपजाऊ है) तो रस्सीसे निशान लगा कर समतल ज़मीन पर बो देना चाहिये। यदि गन्नेके बीजमें कोई बीमारी पाई जाय तो समीप वाले इन्स्पेक्टर कृषि-विभागके द्वारा नया गन्ना मँगवाना चाहिये। बीज पहले अच्छे प्रकारसे जाँच लेना चाहिये कि इसमें लाल धारियाँ या और किसी किस्मकी लाली इसके तने या जड़में कीड़ा लग जानेके सबबसे तो नहीं है। इस प्रकारकी बीमारी लगे हुए गन्नेको कदापि न बोना चाहिये, और गन्नेका केवल ऊपरी ⅔ भाग बोना चाहिये। यदि खेतमें कोई खाद न डाली गई हो तो गोबरकी खूब सड़ी हुई खाद १० से १५ गाड़ी प्रति एकड़के हिसाबसे डालना चाहिये और जोताई करके मिट्टीमें मिला देना चाहिये। गन्नेके टुकड़े लम्बानमें सिरेसे सिरा मिला कर बोना चाहिये। ऐसे समय पर १०—१२ मन कृषि-विभागकी बनाई खाद अर्थात् १० हिस्से रेंडोकी खली और एक भाग अमोनियम सलफेट) और डाल देना अधिक आवश्यक होगा। यदि जहाँ सनई की भी खाद दी गई हो, वहाँ इसकी आधी मात्रा काफी होगी।

बोनेके १५ दिन पहले सिंचाई कर देनी चाहिये। ताकि बीज जमनेके लिये काफी नमी रहे। यदि नमीकी कमी हो तो समतल पर बोये हुए गन्ने पर जब तक अँखुये न फूटें सप्ताहमें दो बार पाटा (हैंगा) चलाना चाहिये और यदि हैंगे के पश्चात् लीवर हैरो (कांटा) भी चलाया जावे तो बीज जल्दी उग आवेगा। और नमी अधिक बनी रहेगी। यह कार्य सुबह ८ बजेके लगभग समाप्त कर देना चाहिये।

मार्च इस मासके मध्य तक बुआई समाप्त हो जानी चाहिये इससे अधिक विलम्ब न होना चाहिये, पहली सिंचाई स्थानीय समय अनुसार ४ से ६ सप्ताह बोनेके बाद जब पौधे ६ इञ्च से १ फुट ऊँचे हो जावें, करना चाहिये। जब फ़सल उग आवे और पौधे छोटे हों तब प्रति सप्ताह एक बार, दोपहरके बाद कतारोंके बीचमें अकोलाहो या देसी हल चला कर हैंगा दे देना चाहिये।

अप्रैल—जब पत्तियाँ दोपहरके बाद मुरझाई हुई मालूम होने लगें तब दूसरी सिंचाई करना चाहिये। और इसके बाद समतल ज़मीन पर अकोलाहो से, और नालियोंमें कुदालसे गुड़ाई करना चाहिये। हैंगेका प्रयोग अब बन्द कर देना चाहिये।

गन्नेके अँखुओंमें यदि कोई बीमारी पाई जाय या उसमें किसी प्रकारका कीड़ा लग जावे तो ऐसे पौधोंको उखाड़ कर जला देना चाहिये।

मई—दो सिंचाई होना चाहिये। पहली, दूसरे सप्ताह में और दूसरी अन्तिम सप्ताहमें, और प्रति सिंचाईके बाद उपरोक्त लिखित तरीकेसे गुड़ाई करना चाहिये।

जून—कतारोंके बीच निलाई और कुदाई करना चाहिये।

जुलाई—गन्ने पर मिट्टी चढ़ाना चाहिये।

अगस्त—पौधोंको आपसमें बाँध देना चाहिये ताकि वह गिर न सकें।

सितम्बर कोई काम इस फ़सलमें नहीं होता है सिवाय इसके यदि वर्षा जल्दी बन्द हो गई हो तो सिंचाई करनी पड़ती है।

दिसम्बरसे फ़रवरी—गुड़ बनाना :—उन्नतिशील भट्टी देसी भट्ठीकी जगह प्रयोग करना चाहिये। इसमें ईंधन कम लगता है। जो ईंधन बचे उसको कम्पोस्टकी पाँस बनानेमें प्रयोग कर सकते हैं। अपने स्थानीय इन्स्पेक्टर कृषि-विभागसे कहिये वह आपके यहाँ इस प्रकारकी भट्टी तैयार करावें।

सुलतान कोल्हू देसी कोल्हूसे १० से १५ प्रतिशत अधिक रस निकालता है।

(घ) रबीकी फसलें

अप्रैल, मई—गेहूँ:—यदि सस्ती सिंचाई सम्भव हो गई हो तो खेतको मिट्टी पलटने वाले हलसे जोत देना चाहिये।

जून—सनई हरी खादके लिये बो देना चाहिये।

जुलाई, अगस्त—सनईको हरी खादके लिये प्रथम सप्ताह अगस्तमें जोत देना चाहिये।

सितम्बर—रबीकी फ़सलोंके वास्ते खेतोंमें आवश्यकतानुसार खाद डालना चाहिये। एक या दो जुताई मिट्टी पलटने वाले हलसे करनेके बाद इस प्रकारके हलों का प्रयोग बन्द कर देना चाहिये और देसी हल और पाटेका प्रयोग करना चाहिये।

अक्टूबर—अपने स्थानीय इंस्पेक्टर कृषि-विभाग द्वारा रबीकी उन्नितशील शुद्ध बीज मँगवाना चाहिये। चना व जई व अलसी बोना आरम्भ कर देना चाहिये। गेहूँको अन्तिम सप्ताहमें बोना आरम्भ कर देना चाहिये।

नवम्बर—गेहूँकी पहली सिंचाई इस मासके अंतिम में करना चाहिये और यदि आवश्यकता हो तो रबीकी दूसरी फसलोंकी भी सिंचाई करना चाहिये।

जनवरी—गेहूँकी फ़सलकी दूसरी सिंचाई यदि आवश्यकता हो, करना चाहिये।

मार्च या अप्रैल:—मँड़ाईके देसी तरीक़ेके जिसमें देर लगती है गेहूँकी भारी फ़सलको खलियानमें वर्षा से ख़राब न होने देना चाहिये अपने स्थानीय इंस्पेक्टर कृषि-विभागसे कहिये कि आपको "औलपाद थ्रेशर" चला कर दिखावें उसकी क़ीमत सस्ती है और इससे काम बहुत शीघ्र होता है इस माँडनके यंत्रमें बजाय ४-५ जोड़ी बैलके केवल एक जोड़ी बैलकी ज़रूरत होती है। दूसरी जोड़ियाँ दूसरे ज़रूरी कामोंमें इस्तेमालकी जा सकती है।

(ङ) कम्पोस्ट खाद बनाना

जनवरी—कम्पोस्ट बनानेके लिये निम्नलिखित कूंड़ा-करकट संग्रह करना चाहिये:—

(१) गन्नेकी सूखी पत्तियाँ, (२) वृक्षोंकी पत्तियाँ, (३) कपास, अरहर या दूसरे क़िस्मकी फ़सलोंके डंठल (४) पुराने छप्परका फूस, (५) खर पतवार जो उग रहा हो (विशेषकर वर्षा ऋतुमें), (६) किसी क़िस्मका कूड़ा करकट जो आस-पास मिल सके।

इन सबको जमा करके कड़ी चीजोंको गाड़ीकी लीखों में जहाँ गाड़ी चलती है या पशुओंके नीचे डाल देना चाहिये ताकि वह गाड़ी तथा जानवरोंके चलनेके टूट जावें और जब टूट जावें तो उनको जहाँ कम्पोस्ट बनाने का और कूड़ा करकट जमा किया हुआ है। रख देना चाहिये।

जहाँ नहरसे सिंचाई होती हो वहाँ नहरके पानीसे लाभ उठानेके लिये यह तरीक़ा प्रयोगमें लाना चाहिये।

तरीक़ा:—फ़ार्मका हर प्रकारका मिला हुआ कूड़ा करकट उस जगह पर जहाँ आमतौरसे पशु बाँधे जाते हैं बिछा देना चाहिये प्रति दिन या एक दो दिन बाद हटा देना चाहिये। (यदि गोबर जलानेके लिये आवश्यक हो तो ३/४ भाग इस समय पर बचाया जा सकता है। शेष १/४ भाग गोबर कम्पोस्ट बनाने के लिये काफ़ी होगा)। इस गोबरको और कूड़ा करकटके साथ २ फीट गहरे गढ़े या नालीमें डाल देना चाहिये। गड्ढे या नालीकी लम्बाई और चौड़ाई जितना कूड़ा करकट मिल सके और जितने पशु हों उन पर निर्भर होती। साधारण तरीक़े पर एक जोड़ी या बैलके लिये ४२ वर्ग फीट काफ़ी होगी। गहराई हर हालतमें ३ फीट रहेगी। गढ़ा या नाली किनारेसे ६ इंच ऊँची तक भरना चाहिये।

पहला भराव नालींके सिरेसे १० फ़ीट जगह छोड़ कर शुरू करना चाहिये और वह जगह बादकी पलटनेके लिये ख़ाली रखना चाहिये।

तरीका प्रयोगमें लानेका निम्नलिखित है

फ़रवरी:—पहला वा दूसरा पानी—शुरूमें जब नहर खुले और बादमें जब नहर बन्द होनेको हो।

पहली बार पलटना—शीघ्र इसके बाद।

मार्च:—तीसरा और चौथा पानी:—लगातार २ दिन आरम्भमें जब नहर खुले।

दूसरी बार पलटना—दूसरे दिन।

अप्रैल :—पाँचवाँ और छठवाँ पानी—आरम्भमें जब नहर खुले और बादमें जब नहर बन्द होनेको हो।

तीसरी बार पलटना—जब नहर बन्द हो जावे तब अन्तिम बार पलटना चाहिये।

(नोट)—एक टोकरी पेशाबकी मिट्टी (यदि सम्भव न हो तो सादी मिट्टी) टोकरी राख और एक टोकरी पुराना गोबर पहली बार पलटनेके पहले मिला देना चाहिये।

मई, जून :- यह प्रयोग सूखे मौसममें जारी रहेगा।

वर्षा ऋतुकी कम्पोस्ट

जुलाईसे सितम्बर तक—प्रयोग और कूड़ा—करकट इसके लिये बिलकुल वैसे ही हैं जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, सिवाय इसके कि गढ़े या नालीकी बजाय एक ढेर ८ फीट चौड़ा और ३ फीट ऊँचा पर्याप्त लम्बाईका ऐसी जगह पर जहाँ पानी न ठहरता हो बना देना चाहिये। यह आवश्यक नहीं है कि कूड़ा-करकट आदि इस मौसममें पशुओंके नीचे बिछाया जाय, परन्तु कई प्रकारके कूड़ेका मिश्रण आवश्यक है। यह अति आवश्यक है कि कुल कूड़ा करकट पेशाबकी मिट्टी व राख व गोबरका घोल या और कोई चीज़ें जो मिल सकती हैं तह लगा कर ढेरमें रक्खा जाय ताकि वर्षामें पलटते समय यह हर चीज आपसमें अच्छे प्रकारके मिल जाय। यह ढेर जूनमें बनाया जाता है।

जुलाई—जब वर्षाका पानी ६ इंचसे लेकर ९ इंच तक ढेरमें चला जाय तब जैलीसे इसका पलट देना चाहिये। इसका अभिप्राय यह है कि कुल ढेरमें पानी मिल जाय।

अगस्त—दूसरी पलटाई पहली पलटाईसे लगभग एक मासके बाद अब करना चाहिये।

सितम्बर—तीसरी पलटाई दूसरी पलटाईके एक मास पीछे करनी चाहिये। जहाँ सिंचाई न मिल सके वहाँ यह तरीका पहले तरीकेकी अपेक्षा सुगमतासे प्रयोग में लिया जा सकता है।

अक्टूबरसे जून तक—सूखे मौसमकी कम्पोस्ट नहरी ज़िलोंमें जैसा कि ऊपर वर्णन किया गया है जारी रखना चाहिये।

(च) पेशाबकी मिट्टी

१—फ़रवरीसे १५ जून तक—जहाँ बैल बाँधे जाते हों वहाँ ६ इंच भुरभुरी मिट्टीकी तह बिछा देना चाहिये और हर रोज़ इसको बराबर कर देना चाहिये। और जहाँ पेशाब पड़ा हो उस पर थोड़ीसी सूखी मिट्टी इसको सोखनेके लिये डाल देना चाहिये। सप्ताहमें एक बार कुल मिट्टीको गोड़ डालना चाहिये, ताकि पेशाबसे भीगी हुई पिछले पैरोंके नीचेकी मिट्टी अगले पैरोंके नीचे और अगले पैरोंके नीचेकी सूखी मिट्टी पिछले पैरोंके नीचे आ जाय। और सूखी मिट्टीमें भी पेशाब सोख जाय। १५ अप्रैलको कुल ६ इंच मिट्टी वहाँसे हटा कर गन्नेके खेतोंमें कतारों के बीच डाल देना चाहिये। और फिर दूसरी मिट्टी बैलोंके नीचे डालना चाहिये १५ जूनको फिर यह मिट्टी खेतमें डाल देना चाहिये। इस प्रकार १५ जून तक २॥ गाड़ी पेशाब की मिट्टी प्रति जोड़ी बैलके हिसाबसे तैयार हो जायगी।

वनस्पति-जीवन-क्रिया, उनमें औषधि तथा विष

[ले०—कविराज हरस्वरूप शर्मा, एच० ऑनर्स, आयुर्वेदाचार्य धन्वन्तरि, ऊँझा फार्मेसी, अहमदाबाद]

हरी वनस्पतिकी क्रियामें माध्यमिक स्वरूप इसकी सूर्य प्रकाशकी आन्तरिक शक्तिको ग्रहण करनेकी और विभिन्न जटिल पदार्थोंको बनानेकी जो यथावत पदार्थ-मयता अथवा प्रोटोप्लाज्म प्राप्त करते चले आते हैं, स्वभाविक सरलता और शक्ति है। वनस्पति का हरित रञ्जक पदार्थ अथवा क्लोरोफिल कई आवश्यक प्रकाशके अवयवोंको जो इस पर चमकते हैं, पकड़ लेता है और इस प्रकार प्राप्तकी हुई आन्तरिक शक्तिकी सहायतासे

प्रोटोप्लाज्म जल और कारबन द्विओषितअम्लको शर्करामें परिणत करता है। कारबन द्विओषित अम्ल वायु मण्डल के कोषसे लिया जाता है; यहाँ यह सर्वदा लभ्य है, यह जलमें मिश्रित रहता है, उसीके साथ वनस्पतिमें प्रविष्ट होता है। शर्करा परिणमन सर्वप्रथम चरण है। आजकल अपक्व पदार्थ मुख्यतया मिट्टीमें से फोसफेट्स, यूरेट्स, नाइट्रेट्स आदिके स्वरूपमें अधिक प्रयुक्त किये जाते हैं। इन पदार्थों और शर्करासे वनस्पति विचित्र नाइट्रोजनस (nitrogenous) जीन्तविक वस्तु बनातीं हैं जिन्हें प्रोटीन कहते हैं। इन सबमें कारबन, हाइड्रोजन, ओषीजन और नाइट्रोजन होते हैं, कितनो हीमें गंधक और फासफोरस और बहुत थोड़ोंमें लौह होते हैं। ये प्रोटीन वनस्पतिको बनाने वाले कोषोंके बड़े भाग की पूर्ति करते हैं, अथवा उनके बड़े भागकी बनावटमें विशेष भाग लेते हैं। ये प्रतनक अभी तक शुद्ध स्वरूप में प्राप्त नहीं हुए हैं और यहाँ तक कि साधारणसे साधारण प्रतनककी रचना गूढ़ होती है। ये जीवन तत्व से घनिष्ठतया सम्बन्धित होते हैं। यह सम्भव है कि इस पदार्थकी बनावट, जो जीवनका शारीरिक आधार है, प्रतनक रचनाकी बहुत ही विचित्र परिवर्तन श्रृङ्खलाकी उच्छल भावस्था है। किसी भी प्रकार क्यों न बना हो, यह निश्चित है कि जीवन तत्वकी रचना सूर्यकी आन्तरिक शक्तिके उन अपक पदार्थों पर, जो वायु और पृथ्वीसे लिये हों, खर्च होनेसे पूर्ण हुई है; और बनने पर जीवन-तत्वके अणुओंमें सूर्य रश्मि शक्तिकी एक बड़ी तादाद जमा हो जाती है। सम्यकावस्थामें यह शक्ति मुक्त होती है। इस अवस्थामें कार्य वृद्धि, चपलता तथा अन्य प्रदर्शनियोंका स्वरूप धारण करता है जिनकी पूर्ति के लिये शक्तिके व्ययकी आवश्यकता पड़ती है। वह सम्पूर्ण क्रिया जिसके द्वारा यह शक्ति मुक्त होती है श्वास-प्रश्वास कहलाती है, और यह क्रिया जैसे जन्तुओं में होती है वैसे ही वनस्पतिमें भी होती है। एक या दो विशेष अपवादोंके अतिरिक्त ऑक्सीजन क्रियाको सम्यक पूर्तिके लिये आवश्यक है, और शक्तिकी मुक्तिका सहयोग विच्छिन्न जीवन-तत्व परिमाणु या विच्छिन्न द्रव्य, जो चाहे प्रतनक हो या अन्य देते हैं। ये विच्छिन्न जीवन तत्व परिमाणु इत्यादि साधारण आवश्यक भागोंमें वनस्पति द्वारा बनते हैं। इस क्रियामें ऐसा मालूम पड़ता है जैसे कि ओषीजन ने गनपाउडर (gun powder) में हो वे सलाईका काम किया हो। सब दो वनस्पति द्रव्य उस स्वभावमें जो इस विच्छेदन क्रिया से बनता है। समान नहीं होते, यद्यपि यह सत्य है कि इन सबमें परिणामतः कारबनद्विओषित अम्ल बनता है। जिन मार्गोंके द्वारा ये पृथ्वीमें पहुँचते हैं वे बहुत ही भिन्न होते हैं। यह एक विचित्र ध्यानाकर्षक वस्तु है कि जिन वनस्पतियोंकी रचना सादृश्यके कारण एक ही कोटि या वंशमें स्थान दिया है, वे कभी कभी परिणाम द्रव्य भी समान ही बनाते हैं, जिससे यह अनुमान किया जाता है कि उनकी क्रिया और रचना दोनोंमें संबंध है।

वास्तवमें हमें अपने आधुनिक ज्ञानकी इस अवस्थामें सब रासायनिक और शारीरिक परिवर्तनोंका जो परिणाम द्रव्यके बनने और सब क्रिया बंद होने तक मध्यमें पड़ते हैं, वर्णन करना सम्भव प्रतीत नहीं होता, हमसे मात्र साधारण मार्ग चिन्हित कर सकते हैं और स्थायी बनने वाले द्रव्योंका जो परिणामतः प्राप्त होते हैं तथा जिनमें और कोई परिवर्तन नहीं होता, अधिक ध्यान पूर्वक् अध्ययन कर सकते हैं। इस प्रकार बनने वाले द्रव्योंकी संख्या बहुत बड़ी है, क्योंकि जैसा ऊपर कह चुका हूँ, प्रत्येक द्रव्यके विश्लेषणका मार्ग जुदा-जुदा है—हम उनको (विश्लेषित द्रव्योंको) चार श्रेणियोंमें विभक्त कर सकते हैं—

किट्ट-द्रव्य :—ये वनस्पतिके भविष्यके किसी काममें नहीं आते और ये इस प्रकार भरे जाते हैं कि रास्ता ही साफ कर देते हैं। यदि ये अयका कोई भाग निर्माण करें तो वे सर्वप्रथम हानि हीन द्रव्योंमें परिणत हो जाते है।

२, प्रसाद-द्रव्य :—ये भविष्यमें वनस्पतिके खाद्य रूपमें प्रयुक्त होते हैं।

३- वनस्पतिके विशेष कामका परिणाम द्रव्य :—

इनमें और आगे परिवर्तन नहीं होते, परन्तु इनकी उपस्थितिसे वनस्पतिको लाभ बहुत होता है।

४, पाचन परिणयनके माध्यमिक पदार्थ :—

हमारे कामके लिये किट्ट तथा अन्य परिणाम द्रव्य विशेष ध्यानाकर्षक नहीं हैं।

वनस्पति किट्ट द्रव्योंमें अगणित क्रिस्तलाइन पदार्थ और बहुत थोड़े तरल, लावणीय, नाइट्रोजनसे पदार्थ बनते हैं जिनको क्षारीय द्रव्य है। इन क्षारीय द्रव्योंमें सर्वप्रथम मोरफीन निकाला गया था, उसके बाद स्ट्रिकनीन ब्रूसीन क्विनीन आदि निकाले गये।

आज इन परीक्षित क्षार द्रव्योंकी संख्या बहुत बड़ी है, और केमिस्ट इनमेंसे कुछ कृत्रिम द्रव्योंकी पूर्तिके लिये बहुत ही अभिमान धराते हैं। क्षारीय द्रव्य प्रकृतिमें विचारणीय विभिन्न हैं: वे सबके सब ही विषैले हैं, परन्तु विषोंकी क्षुद्रमात्रा अवस्था विशेषमें औषधि बन जाती है। इसलिये कुछ वनस्पति जिनमें क्षारीय द्रव्य होते हैं।

परन्तु उनका कहीं प्रयोग नहीं किया जाता, मात्र विषधर ही होते हैं। भेद मात्र अंशका है, प्रकारका नहीं। अन्य वनस्पतियोंमें क्षारी द्रव्य होते हैं जो चाहे विषैले हों, परन्तु थोड़े प्रमाणमें सुखद उत्तेजना करते हैं। ऐसे क्षारीय द्रव्य उदाहरणार्थ कोको वनस्पतिका थियोब्रोमाइन और चापवनस्पतिका थाइन हैं।

वनस्पतिके प्रयोग-शास्त्रकी दृष्टिसे कह ध्यान रखना चाहिये कि क्षारीय द्रव्य किट्ट द्रव्य हैं और वनस्पतिके किसी कामके भी नहीं रहते, इनका बनना बंद नहीं किया जा सकता और ये वनस्पतिकी मुख्य क्रियाओंके अन्तर्गत होनेवाले द्रव्य कहे जाते हैं।

कुछ वनस्पति सुगंधि द्रव्योंकी उत्पत्तिके लिये बहुमूल्य हैं। ये सुगंधि द्रव्य भी वनस्पतियोंका मुख्य क्रिया अनन्र्तगत होनेवाले द्रव्य हैं। इस प्रकार जब शर्करा-द्रव्य क्षोभकों द्वारा विभक्तित हो जाते हैं तो शर्करा बन जाती है। शर्करा-उत्पादन मुख्य क्रिया है, क्योंकि वनस्पति इसे खाद्य स्वरूपमें प्रयोग करती हैं। अन्य पदार्थ भी बनते हैं, प्रत्येक शर्करा द्रव्य एक या अन्य दो द्रव्यों को बनाता है, इन्हीं द्रव्योंमें बहुत से सुगंधित द्रव्य होते हैं, जिनकी उपस्थितिसे वह वनस्पिति जिसमें लभ्य हैं विष अथवा औषधकी कोटि में गिने जाते हैं। इस प्रकार प्रूसिक् एसिड अमिग्डेलिन शर्करा द्रव्यके विभाजन से बनता है; टैनिक एसिड टैनिन शर्करा द्रव्यके विभाजनसे बनता है। समक्रिया अन्तर्गत-जन्म द्रव्योंका यथा बेनजाइक (एसिड सिनेमिक एसिड, गैलिक एसिड और सैलिसिलिक एसिड भी इसी प्रकार निकाण होता है।

पुनः जलनशील रेज़िन वे द्रव्य हैं जो सर्वदा वनस्पतियोंमें और उनके सभी भागोंमें लभ्य हैं। वे अर्द्धघन-वनस्पति-स्राव हैं, जो या तो तरल दुग्ध जैसे या तैलस-जलनशील रसरूपमें मिलते हैं। जब ये द्रव्य इथीरियल तैल और सुगंधि अम्लोंसे मिश्रित होते हैं तब ये जलनशील गोंद कहलाते हैं। ये सब किट्ट द्रव्य हैं, चाहे ये समयानुसार कई वनस्पतियों को कीटाणुओंके आक्रमणसे बचाते हैं।

द्रव्योंकी एक दूसरी श्रेणी जो परिणाम द्रव्यके रूपमें आते हैं, इथीरियल तैल हैं, जो थोड़े या अधिक प्रमाणमें कुसुमित वनस्पतिोंके सभी भागोंमें उपस्थित होते हैं। वनस्पतियोंकी सुगंधि उड़नशील तैलोंके कारण होती है जो वे धारण किये होते हैं, और जो मच्छड़ोंको फूलों पर आकर्षित करके बुलानेमें बड़े उपयोगी होते हैं। तजका तेल (oil of cinnamon) और तीखे बादामोंका तेल (oil of bitter almonds) परिणाम द्रव्यकी श्रेणी के दो उदाहरण हैं। लौंगका तेल (oil of Cloves) और कपूरका तेल (oil of Camphor) दूसरे दो उदाहरण हैं।

संकलित पदार्थोंमें उन तैलों और वसाओंकी भी गणना करनी चाहिये जो व्यापारमें काम आते हैं। ये सब विभिन्न वनस्पतिके बीजों और फलोंसे आते हैं, इनके इन अंगोंमें होनेका कारण स्पष्टतया उस क्रिया द्वारा संयुक्त रहता है जो ये जीवयुक्त भ्रूणको खाद्य पहुँचानेमें करते हैं। अलसी वनस्पतिमें इनके बीजका संकणित खाद्य पदार्थ मुख्यतया तैल है। यह पदार्थ मैदाका स्थान ले लेता है। साधारणतया अधिकतर वनस्पतियोंमें यह मैदा ही संकलित खाद्य द्रव्य होता है। यही नियम व्यवहारमें आने वाले दूसरे बीजोंके लिये भी लागू पड़ता है; उदाहरणार्थ सरसों, बिलोना आदि।

अन्तमें वनस्पति-जीवनकी क्रियाके दर्शनका वर्णन हमारे लिये आवश्यकीय ज्ञानकी वस्तु है। क्योंकि जैसा कि ऊपर देख आये हैं वनस्पतिकी क्रियायें बहुत ही विचित्र और विविध होती हैं। ये क्रियायें पूर्ण नियमित भी नहीं होती और इसीलिये किसी भी वनस्पतिमें सक्रिय नियम का प्रमाण, जिसके लिये वनस्पति एकत्रितकी जाती है, विचारणीय विभिन्नतायें प्रदर्शित कर सकता है। इस विभिन्नतामें कितने ही प्रकार भाग ले सकते हैं—यथा मिट्टी, जलवायु, स्थानकी ऊँचाई और औषधि—वनस्पतियोंके बोनेमें इस प्रकारकी विभिन्नताओंकी सम्भावनायें ध्यानमें रखनी चाहिये। प्रारम्भमें ही यह कहना कि विभिन्नता या परिवर्तन किस दशामें असंम्भव है। यह मात्र अनुभवोंसे ही प्राप्त किया जा सकता है। इस ज्ञान की चाह जो देश औषधि-वनस्पतियोंको पैदा करनेके इच्छुक हों अथवा अन्य वनस्पति-अङ्गाङ्ग भिन्न देशवासियों के सम्मुख व्यापारिक प्रतिस्पर्द्धामें प्रवेश करनेकी इच्छा थराते हों उनको दिनोंदिन बढ़ती चली जाती है और यह ठीक भी है क्योंकि मुख्यता मानव जीवनका धारक स्तम्भ वनस्पति-संसार ही है।

हमें वनस्पतिकी उपस्थिति और उनकी उपादेयता का ज्ञान आवश्यक है; इसके साथ-साथ वनस्पति-जीवनमें होने वाले परिवर्तनोंका ज्ञान भी परमावश्यक है।

श्वास संस्थान सम्बन्धी अंगों की रोग-परीक्षा कैसे करें?*

[ले० श्री पुरुषोतम देव मुलतानी]

श्वास-संस्थान अंगोंकी परीक्षा करनेसे पूर्व उनके बहिश्चित्रणसे परिचित होना आवश्यक है। इन अंगोंमें सबसे मुख्य अंग फुफ्फुस है। इसके बहिश्चित्रणका काम होनेसे अन्य अंगोंके निरीक्षणमें भी पर्याप्त सहायता मिलती है। इसलिये सबसे पूर्व हम फुफ्फुसका बहिश्चित्रण करके तथा सामान्य निर्देश देकर उसके बाद श्वास-संस्थान सम्बन्धी भिन्न-भिन्न अंगोंकी परीक्षाओंका वर्णन करेंगे।

फुफ्फुसका बहिश्चित्रण—फुफ्फुसका ऊपरका शिखर अक्षकास्थिके अन्दरके भागसे १ या १½" ऊपर और ग्रीवाके पीछेके ७ वें ग्रैवेय कशेरूका कण्टक प्रवर्धनके पीछे होता है। इस स्थानसे एक तिरछीसी रेखा आगेकी ओर दूसरी पर्शुकाके अगले सिरे तक बढ़ा दें तो यह रेखा फुफ्फुसकी अगली सीमाको सूचित करती है। छठी पर्शुकाके अगले सिरेसे इस रेखाको पीछेकी ओर ले जायें जिससे कि स्तन रेखामें यह छठी पर्शुकापर, कक्षके अगले भागसे गिरती रेखा में ७वीं पर्शुका पर, कक्षके मध्यसे गिरती रेखामें ८ वीं पर्शुका पर, स्कन्धास्थिके निचले कोणसे गिरती रेखामें १० वीं पसली पर और पृष्ठ-वंशके समीप यह रेखा १० वीं पर्शुकामध्य या ११ पर्शुका पर रहे तो यह फुफ्फुसकी निचली सीमाको सूचित करती है। यह तो दायें फुफ्फुसका बहिश्चित्रण है।

बाएँमें इससे कुछ भेद होता है। फुफ्फुसकी अगली सीमा ४ थी पर्शुकाके अगले सिरे तक आकर सहसा कुछ बाईं ओरको मुड़ जाती है। उरोऽस्थि और स्तन रेखाके मध्यमें यह रेखा छठी पर्शुका तक उतरती है। और छठी पर्शुकासे दायें फुफ्फुसकी निचली सीमाकी तरह ही यह बांई ओरको मुड़ जाती है। परन्तु बाईं ओर यकृतके न होने से यह अपेक्षया ½" के लगभग नीचे रहता है। ये निचली सीमाएँ नीचेकी ओरको उन्नतोदर होती हैं और अन्तःश्वास लेने पर अपक्षेया २" या ३" नीचे हो जाती हैं। साधारण हलका श्वास लेने पर १" से अधिक नीचे नहीं होती। वाम फुफ्फुसको अगली सीमामें जो थोड़ासा अवकाश है उसके कारण हृदयका कुछ भाग नग्नसा हो जाता है।

फुफ्फुसके खण्डोंका चित्रण करनेके लिये पीठ पर दूसरे पृष्ठ कशेरुकाके कण्टकसे एक रेखा आगे वहाँ तक,

---

* लेखककी 'रोगविनिश्चय' नामका पुस्तकका एक अध्याय।

जहाँ स्तन रेखा छठी पर्शुका पर गिरती है, खींची जाये तो यह फुफ्फुसकी बड़ी दराड़ जिसके ऊपर फुफ्फुसके उपरले दो खण्ड तथा नीचे निचला खण्ड होता है) सूचित करती है। यदि फिर इस खींची हुई रेखाके उस स्थानमें कि जहाँ यह कक्ष मध्य रेखा को काटती है। एक रेखा चौथी पर्शुकाके अगले सिरे तक खींची जाये तो यह फुफ्फुस का मध्यम खण्ड होता है। इस प्रकार यह पता लगता है कि यदि फुफ्फुसके निचले खण्ड या फुफ्फुसके निचले शिखरकी परोक्षा करनी हो तो पीठ पर परीक्षा करनी चाहिये। फुफ्फुसके ऊपरकी ओर मध्यम खण्डकी परीक्षा करनी हो तो आगेकी ओर यकृत्के ऊपरके प्रदेशमें परीक्षा करनी चाहिये।

फुफ्फुसावरणकी निचली सीमा फुफ्फुससे पर्याप्त नीचे होती है। स्तन-रेखामें यह फुफ्फुससे २″ नीचे कक्षमध्यरेखामें लगभग ४″ नीचे और स्कन्धास्थिके निचले सिरेसे गिरती रेखा यह १½″ नीचे होती है। वाम फुफ्फुस की अगली सीमा यद्यपि कुछ मध्य रेखासे पीछे हट जाती है, किन्तु दक्षिणमें यह मध्यरेखाके साथ-साथ होती है।

वक्षस्के ऊपरके कुछ चिन्होंमें छातीकी पसलियाँ और पृष्ठवंशके कशेरुकाओंके गिरनेमें पर्याप्त सहायता मिलती है। उदाहरणत: --

(१ उरोऽस्थिके ऊपरले भागमें जो उभारसा दीखता है उनके दोनों ओर द्वितीय पर्शुकाएँ हैं और यह उभार पृष्ठ वंश (Vertebral column) के ५ वें पृष्ठ कशेरुका (Thoracic vertebrae) के ठीक सामने होता है।

(२) तीसरी पर्शुकाओंके अगले सिरोंके ठीक पीछे चतुर्थ तथा पंचम कशेरुकाओंके मध्य भागके आगे श्वास प्रणाली दो भागोंमें होती है।

(३) दोनों बाहुयें लटकती हों तो स्कन्धास्थिके अंदरके कोण द्वितीय पर्शुकाओंके ऊपर होते हैं तथा इन कोणोंके ठीक सामने प्रथम और द्वितीय पृष्ठ कशेरुकाके मध्यका भाग होता है।

(४) स्कन्धास्थिके अधः कोण ७ वें पर्शुका मध्य (Inter costal space)में या ८वीं पर्शुकाको छूता होता है। तथा इसके समतल पर ८वाँ पृष्ठ कशेरुका होता है। ग्रीवाके पीछे जो एक स्पष्ट कण्टक उभरा हुआ दिखाई देता है यह ७ वें ग्रीवा कशेरुका का कण्टक है।

(५) वामसूचक चतुर्थ पर्शुकाके अगले सिरेके समतल पर होता है।

दृष्टि-परीक्षा (Inspection)

रोगीके कपड़े उतरवाकर स्टूलपर सीधा बिठाकर सामने पीछे दोनों पार्श्वों और उसके सिरके पीछेसे उसकी छातीका ठीक निरीक्षण करे। पहले पहल उसकी छातीका आकार कैसा है यह देखें। सामान्यतः स्वस्थ पुरुषका वक्ष अण्डाकार होता है। अर्थात् एक पार्श्वसे दूसरे पार्श्व तकका व्यास आगे पीछेके व्याससे बड़ा होता है। इन दोनोंका अनुपात ५: ७ (प्रायः) होता है। परन्तु बालककी छाती लगभग गोल या वृत्ताकार सी होती है। यदि आगे पीछेका व्यास बहुत कम हो तो उसे चपटी छाती (Flat chest) कहते हैं। यह क्षयरोगकी सूचक है। यदि छाती आगे पीछेकी दिशामें भी अधिक फैली हुई हो और इस प्रकार एक कुप्पे या ढोलके सदृश प्रतीत होती हो तो यह फुफ्फुसके अन्दर अत्यधिक भरी हुई वायुकी सूचक है। यदि एक पार्श्वसे दूसरे पार्श्वका व्यास कम हो तो यह भी फुफ्फुसकी क्षीणताका सूचक है। यदि उरोऽस्थि आगेकी ओर बढ़ी हुई हो और उरोऽस्थिके दोनों ओर ऊपरसे नीचेकी दिशामें एक हलकी सी खाई दिखाई पड़ती हो तो यह समझना चाहिये कि पर्शुका अस्थि और अगले सिरेकी तरुणास्थि (Cartilages) का संधि प्रदेश निर्बल होनेके कारण कुछ अन्दर धंस गया है। यदि किसी छोटी आयुके बालक ो चिरकाल तक खांसी रही हो अर्थात् उसके फुफ्फुसमें भली प्रकार वायु न पहुँच सकती हो तो पर्शुकाओंका यह निर्बलतम भाग अन्दर दबा हुआ ही रह जाता है और उभरने नहीं पाता, जिससे उरोऽस्थिके दोनों ओर खाईसी दिखाई पड़ती है। ऐसी छातीको सिहुग्रा-ग्रसित (Rachitic chest) कहते हैं। छोटे बालकों और शिशुओंकी उरोऽस्थिके दोनों ओर पर्शुकाओंके इन्हीं प्रदेशोंपर गाँठें सीधी दीखने लगती हैं जो कि अस्थि शोष अथवा अस्थियोंकी ठीक वृद्धि न होनेका सूचक है। ऐसे

बालकका ब्रह्मरन्ध छिद्र भी बन्द नहीं हुआ होता और जांघोंकी हड्डियाँ भी कुछ मुड़ी हुई दिखाई देती हैं। यदि छातीका कोई प्रदेश अनुचित तौरसे दबा हुआ हो यथा अक्षकास्थिके ऊपर और नीचे गढ़े हों या दो एक पर्शुकाएँ अन्दरको दबी हुई दिखाई दें तो ये फुफ्फुसकी क्षीणता को सूचित करती हैं। यदि छातीका कोई भाग अनुचित तौर पर उभरा हुआ हो तो मानों फुफ्फुसावरणमें द्रव भरा हुआ समझना चाहिये या उधरका फुफ्फुस अधिक फूला हुआ समझना चाहिये।

प्रगति (Rate)

छातीका सामान्य आकार देखनेके बाद श्वासकी प्रति मिनट गति देखें। साधारणतः श्वासकी गति प्रतिमिनट १८ हुआ करती है और प्रति मिनिट नाड़ीकी गतिके साथ इसका १:४ अनुपात होता है। श्वास ज्वरमें यह अनुपात घट कर १:२ रह जाया करता है अर्थात् श्वास-ज्वरमें श्वास अधिक होता है। व्यायाम और ज्वरके समय या शरीरमें किसी प्रकारके जीवाणु प्रसारकर गये हों तो श्वास तीव्र होता है। ज्वरमें प्रति डिगरीके पीछे ३ वार श्वास बढ़ जाता है। अर्थात् ९८° पर लगभग श्वासकी संख्या ७० के लगभग होती है। ज्वर १०० डिगरी हो तो श्वास २२ और नाड़ी जो प्रति डिगरी १० बढ़ा करती है, बढ़ कर ९० हो जाती है। ज्वर १०३ डिग्री हो तो श्वास ३१ और नाड़ी १२० हो जाती है।

श्वासका प्रकार (Nature)

सामान्यतः पहले व्यक्ति अन्तःश्वास लेता है और उसके बाद बहिःश्वास और फिर कुछ विश्रामकालके बाद वही क्रम शुरू हो जाता है। अन्तः श्वास और बहिःश्वासमें देखनेसे अनुपात ५:६ है। अतः बहिःश्वासमें अन्तःश्वासकी अपेक्षा कुछ समय अधिक लगता है। किन्तु यह स्मरण रहे कि श्रवण यंत्रसे सुनते समय श्वास प्रश्वास बहुत छोटा सुनाई देता है। श्वासकी इस नियमित गतिमें कोई अन्तर तो नहीं आया यह नोट करें। यदि रोगी छोटे-छोटे श्वास लेता हो उसे पार्श्वशूल रोग (Pleurisy) का संदेह करना चाहिये। श्वास लेते समय कण्ठमें ऊँची आवाज़ हो तो कण्ठमें किसी प्रकारकी रुकावट या अवरोध का अनुमान करें। प्रायः बालकोंके कण्ठमें उद्वर्त या अकड़ाव उत्पन्न हो जाती है जिससे ऐसी ध्वनि उत्पन्न होती है। यदि बालक सोते समय घुर्राटेकी आवाज़के साथ श्वास ले तो उसकी नासिकाके पीछेकी ग्रंथियां (Adenoids) या गल-शुंडिकाएँ (tonsils) फूली हुई हैं ऐसा अनुमान करें। रोगी गम्भीर मूर्छामें पड़ा हुआ हो तो भी श्वासके साथ घुर्राटोंकी आवाज़ उत्पन्न होने लगती है। अन्तः श्वास और बहिःश्वासके अनुपातमें भेद हो गया हो तो उसे भी देखें। यदि अन्तःश्वास अधिक लम्बा हो तो कण्ठपर श्वास-नालियोंमें किसी प्रकारका अवरोध हो गया है ऐसा समझें। कण्ठमें उद्वर्त या छोटी नालियों (Bronchioles) में उद्वर्त हो जैसा कि छोटी आयुके बालकोंमें प्रायः पाया जाता है तो अन्तःश्वास अधिक लम्बा हो जाता है। ऐसी दशामें अन्तःश्वास लेने पर भी फूलनेकी जगह छाती अन्दरको धंस जाती है। विशेषतः उरोऽस्थिके निचले सिरेके दोनों ओरकी पर्शुकायें प्रत्येक अन्तः श्वासके बाद कुछ अन्दरकी ओर दब जाती हैं। यदि बहिःश्वास अधिक लम्बा हो जाये तो यह श्वास-नालियाँ और फुफ्फुसके स्वाभाविक लचकीलेपनकी कमी का द्योतक है अर्थात् श्वासनालियां भली प्रकार वायुको बाहर नहीं फेंक सकतीं। फुफ्फुसके अन्दर जब अधिक वायु भरी रहती हो तो यह लक्षण उत्पन्न हो जाता है और श्वास रोग (Asthma) में भी यह लक्षण पाया जाता है।

छातीका विस्तार

श्वास लेने पर छातीके फूल जानेको छातीका विस्तार कहते हैं। ५½ फुट लंबे मनुष्यकी छातीका विस्तार सामान्यतः ३४″ या ३५″ होता है। होता है। गहरा श्वास लें तो यह १½″ या २″ बढ़ जाता है। इतना न बढ़े तो यह फुफ्फुसके रोगका सूचक है। दोनों ओरके फुफ्फुस एकसा फूलते हैं या नहीं, तथा छातीका कोई ऐसा प्रदेश तो नहीं जो कि श्वास

लेनेपर फूलता न हो इसकी भली प्रकार जाँच करे। क्षय रोगके कारण प्रायः किसी ओरका निचला शिखर या शिखरके पासका निचला भाग अच्छी तरह नहीं फूला करता और श्वास ज्वरमें फुफ्फुसका निचला खण्ड जो कि रोगग्रस्त होता है श्वास लेने पर भी नहीं हिलता। दोनों ओर के छातीके अन्दर प्रदेशोंका माप लेकर यह जान सकते हैं कि कौन सा फुफ्फुस कम फूलता है। अक्षकास्थि (Clavicle) के ऊपर और नीचे दोनों ओरके प्रदेशोंको मध्य रेखासे पीछे मध्य-रेखा तक नापें और इसी प्रकार चुच्चुक प्रदेश पर भी दोनों ओरकी छातियोंका माप लेकर भी देखें कि किधरकी छाती कम फूलती है। कम फूलने वाली छाती क्षय रोगका सूचक है। यदि एक ओरके फुफ्फुसावरण (Pleura) में द्रव भरा हुआ हो तो उधरकी माप अपेक्षया कम होती है।

सामान्यतः पुरुषोंमें श्वास लेते समय पेट अधिक और छाती कम हिलती है। श्वास लेते समय वक्षोदर मध्य पेशी (Diaphragm) के नीचेको खिसक जानेसे पेट फूलता है। यदि श्वासके समय पेट हिलना बन्द हो जाय और केवल छाती ही हिले तो कोष्ठदर्यावरण कोश (Peritoneum) में किसी प्रकारके तीव्र शोथका अनुमान करे। यदि केवल पेट ही हिले और छाती हिलती हुई प्रतीत न हो तो छातीकी दीवार में या फुफ्फुसावरण (Pleura) में शोथका अनुमान करें। श्वास ज्वरग्रस्त फुफ्फुसका निचला भाग भी श्वास प्रश्वासके साथ भली प्रकार नहीं हिला करता है।

स्पर्शन परीक्षा

हथेलीको छातीके ऊपर रखकर छातीके फैलाव तथा छातीके अन्दर होने वाले कम्पनको अनुभव करे तो इसे छाती स्पर्शन परीक्षा कहते हैं। पहले छातीका विस्तार देखनेके लिए अपने दोनों हाथोंको रोगीकी छातीका विस्तार देखनेके लिये अपने दोनों हाथोंको रोगीकी छातीके सामनेकी ओर इस प्रकार रक्खे कि दोनों हाथोंकी मध्यमाङ्गुलियाँ मध्यरेखामें अक्षकास्थियों के अन्दरके सिरों पर टिकी हुई हों तो इसमें फुफ्फुसके दोनों शिखरोंका विस्तार होता है या नहीं यह पता लगता है। हथेलियाँ टिकाकर रोगीको गहरा श्वास लेनेको कहे। दोनों ओरके शिखर समान रूपसे फैलते हों तो हथेलियाँ को यह विस्तार अनुभव होता है। फिर कक्षके नीचे दोनों पार्श्वों पर हथेलियाँ रखकर पार्श्वोंके विस्तार देखे, दोनोंफुफ्फुसोंके विस्तारकी की तुलना करनेके लिये दोनों हाथ दोनों पार्श्वों पर टिकाकर दोनों अंगूठोंको मध्य रेखामें मिलाकर रखे, फिर रोगीको गहरा श्वास लेनेको कहे, अंगुलियोंको न हिलने दे, केवल अंगूठेको ही हिलने दें तो जिधरका अंगूठा मध्यरेखासे थोड़ा हटे. उधरके फुफ्फुसमें उचित प्रसार नहीं होता, ऐसा समझें। फुफ्फुसके शिखरोंका विस्तार मापनेके लिये दोनों हाथोंके अंगूठे ग्रीवाके पीछे रीढ़की हड्डीपर टिकाकर दोनों हथेलियोंको कन्धोंके ऊपरसे आगे अक्षकास्थियों की ओर टिका दें। रोगीको गहरा श्वास लेने पर यदि अंगुलियोंको न हिलने देकर केवल अंगूठेको ही हिलने दें तो जिधरका अंगूठा कम हिले उधरके फुफ्फुसके शिखरमें विस्तारकी कमीका अनुमान करें।

वाचिक ध्वनि

छातीपर हथेली रखकर रोगीको कोई शब्द बोलनेको कहे यदि १,२,३ ऐसा कहता रहे तो हमारे हाथको एक कम्पन सा अनुभव होता है जिसे हम वाचिक कम्पन (Vocal fremitus) या वाचिक ध्वनि कहते हैं। पहले दोनों पार्श्वों पर हथेलियाँ रखकर फिर छातीके पिछले उपरले भाग पर, फिर छातीके निचले भागों पर हथेलियाँ रख कर इस कम्पनका अनुभव करे। साधारणतः ऊँची पतली आवाज वाली स्त्रियों और बच्चोंकी छाती पर कोई कम्पन अनुभव नहीं होता किन्तु युवक और तरुण मनुष्योंकी छाती पर यह कम्पन स्पष्ट अनुभव होता है। यह वाचिक कम्पन बढ़ा हुआ हो तो श्वास-ज्वर या क्षयरोग की प्रारम्भिक अवस्थामें फुफ्फुसके किसी भागके ठोस हो जानेका सूचक है। इसके विपरीत यदि यह वाचिक कम्पन घटा हुआ हो तो फुफ्फुसावरणकोश (Pleura) में द्रव और वायुकी उपस्थितिको सूचित करता है। बालकों-की खांसीमें जब उनकी श्वासनालियाँ (Bronchi)

सूजी हुई हों, उनमें श्लेष्मद्रव भरा हुआ हो तो इस श्लेष्म द्रवमें से वायुके गुजरनेसे उत्पन्न हुई ध्वनियोंका कम्पन भी हाथसे अनुभव हो सकता है।

छाती पर हाथ रखकर यदि रोगीको किसी प्रकारका दर्द हो तो उसका भी अनुभव किया जा सकता है। पर्शुकाओं के साथ-साथ आने वाली सौषुम्नीय नाड़ियों (Spinal nerves) में कई बार तीव्र शूल होने लगता है। विशेषत: जहाँ जहाँ इन नाड़ियोंमें से त्वचाकी नाड़ियाँ निकलती हैं वहाँ यह शूल हुआ करता है अर्थात् आगे उरोऽस्थिके समीप, पीछे रीढ़की हड्डीके समीप और बीचमें कक्षामध्यरेखा (mid auxillary line) के ऊपर तीन जगह ही त्वचामें आने वाली नाड़ियोंके ऊपर दबानेसे दर्द होता है। पर्शुकाओंके बीचमें स्थित प्रदेशों (Intercostal spaces) की मांसपेशियोंमें दर्द हो तो पर्शुकाओंके बीचके प्रदेश पर भींजने या दबानेसे दर्द होता है। पर्शुकाओंके ऊपर दबानेसे दर्द हो तो फुफ्फुसावरण में शोथ का अनुमान करना चाहिये। यदि किसी पर्शुकामध्यमें उभार हो और उसमें दबानेसे मृदुता सी अनुभव हो तो फुफ्फुसावरणके उस प्रदेश में पूय भरी हुई समझे। पर्शुकाओं में या पर्शुकामध्यमें किसी जगह विद्रधि हो जाये तो एक उभार सा प्रतीत होता है। गलेमें नासिकाग्रन्थियाँ फूली हुई हों तो उनका स्पर्शन द्वारा अनुभव होता है।

छाती पर हथेली रखकर दबानेसे छातीकी कठोरता और मृदुता का भी अनुभव करते हैं। क्षयरोगके कारण फुफ्फुस कठोर हो गया हो या फुफ्फुसावरण मोटा पड़ गया हो या फुफ्फुसमें अधिक वायु भरी रहती हो तो स्पर्शन से यह कठोरता अनुभव हो सकती है।

टकोर परीक्षा (Percussion)

स्वस्थ व्यक्तिकी छाती पर टकोरनेसे एक विशेष ध्वनि होती है, जो यकृत् जैसे कठोर अंगकी अपेक्षा ऊँची होती है किन्तु पेट या आँतों जैसे खोखले आशयोंके ऊपरकी टकोरसे नीचे होती है। स्वस्थ पुरुषोंकी छाती पर बार-बार टकोर कर इस ध्वनिका अनुभव किया जा सकता है। रोगी को लिटाकर या बिठाकर आगे और ऊपरसे शुरूकर क्रमशः नीचे पीछे ऊपर कन्धे तक टकोरते जायें। आमने सामने दोनों फुफ्फुसोंके ऊपर टकोरकर दोनोंकी परस्पर तुलना करनेसे फुफ्फुसोंकी अवस्थाका अधिक पता लगता है। छातीके अगले प्रदेशपर हल्की-हल्की टकोर देना चाहिये। अक्षकास्थिके मध्यभागके 1½" ऊपर फुफ्फुसके शिखर प्रदेश पर टकोरनेसे फुफ्फुसके शिखरकी टकोर कुछ मध्यम सी सुनाई देती है। अक्षकास्थि से नीचेकी टकोर फुफ्फुसके बड़े होते जानेसे ऊँची होती जाती है और नीचे पूर्व पर्शुकामध्य तक अर्थात् यकृत्के ऊपरके किनारे तक टकोर ऊँची ही रहती है। यकृत्के ऊपरके किनारे पर फुफ्फुसका निचला भाग कुछ पतला होता है अतः यहाँ कुछ हल्की टकोर देनी चाहिये। बांई ओर अक्षकास्थिसे कुछ नीचे आकर हृदयप्रदेश आरम्भ हो जाता है, जिस पर कि टकोरका वर्णन पिछले लेखमें किया जा चुका है। फुफ्फुसकी निचली सीमा छठी पर्शुकासे आरम्भ होकर कक्षामध्य रेखा-९ वीं पर्शुका तक होती है। इस सीमासे नीचे आमाशय प्रदेश आरम्भ हो जाता है। अत: इस सीमासे नीचेकी टकोरका शब्द ऊपर होता है, परन्तु इसी प्रदेशके बाईं ओर प्लीहा और दाईं ओर यकृत्की टकोरका शब्द अतिमन्द होता है। बाँए फुफ्फुसकी निचली सीमाके नीचेसे पर्शुकाओंके निचले किनारे तक बाईं ओर प्लीहा और दाईं ओर सीमित इस प्रदेशको ट्रौबे प्रदेश (Traube's area) कहते हैं। जब कभी बाँएँ फुफ्फुसावरणमें द्रव या पूय भर जाती है, तब इस प्रदेश की टकोरका शब्द भी याद हो जाता है। इसी प्रकार यदि यकृत् और प्लीहा बढ़ जाये तो भी मध्य प्रदेश में संकुचित हो जाता है।

कक्ष प्रदेशमें टकोरते समय रोगीकी दोनों बाहुओं को ऊपर सिरपर टिकाकर ऊपरसे नीचे ७वीं पर्शुका तक हल्की-हल्की टकोर देते जायें। फिर पीठ पर टकोरनेके लिये रोगीकी दोनों बाहुओंकी ओर फैला हो पीठ पर मांसपेशियोंकी बड़ी तह रहती है। अत: फुफ्फुसपर टकोरनेके लिये बलपूर्वक टकोरना आवश्यक है। नीचे १० वीं पर्शुकामें आरम्भ करके ऊपरकी ओर टकोरें। नीचेकी

टकोरकी ध्वनि कुछ ऊंची होती है। ऊपर दोनों स्कन्धास्थियोंके बीचके प्रदेशमें पहुँचकर टकोरकी ध्वनि मध्यम हो जाती है।

यदि फुफ्फुसका कोई भाग कुछ ठोस सा हो जाये अर्थात् उभरे वायु-कोष्ठोंमें वायुके स्थान पर श्लेक द्रव भर जाये जैसा कि श्वास। ज्वरमें होता है तो उन प्रदेशपर की हुई टकोर ध्वनि मन्द हो जाती है। उरः क्षयरोगके आरम्भमें फुफ्फुसके शिखरके समीपके भागोंमें वायु कोष्ठों के क्षीण हो जानेमें और इस प्रकार वायुके स्रावमें फुफ्फुस परकी टकोर ध्वनि मन्द हो जाती है। ७ वें ग्रीवा कशेरुका कण्टक (7th thoracic vertebhral spine) से स्कन्धास्थि (Scapula) के अन्दरके कोष तक खींची रेखासे मध्यमें प्रायः टकोर ध्वनि मन्द हो जाती है। यदि फुफ्फुसका कठोर भाग दीवार से कुछ दूर हो तो बल पूर्वक टकोरे ही से उसका पता लग सकता है। फुफ्फुसा वरणमें द्रव भर जाय तो उस पर की हुई टकोरकी ध्वनि ही मन्द होती है। इसके विपरीत यदि फुफ्फुसमें अधिक वायु भरी हुई हो जैसा कि श्वास रोग (Asthma) में होता है, या फुफ्फुसावरण कोश (Pleura) में वायु भर जाय तो टकोर ध्वनि ऊंची होती है।

उरोस्थि (Sternum) पर हल्की टकोर देनेमें यदि Pectoralis major muscle शीघ्र संकुचित हो जाय तो यह लक्षण भी क्षय-जन्म-निर्बलता का सूचक है।

श्रवण परीक्षा -:छाती पर श्रवण भागको रखकर श्वासप्रश्वास में होने वाली ध्वनियोंको सुना जाय तो सामान्यतया दो प्रकारकी ध्वनियाँ सुनाई देती हैं।

(१) फुफ्फुस घोष (Vesicular breathing) कक्षके नीचेके सारे प्रदेश, दोनों स्कन्धास्थियों के बीचके प्रदेश पर सुना जाय तो वास्तविक फुफ्फुस (Vesicular breathing) सुनाई देता है। फुफ्फुस घोष उस ध्वनिको कहते हैं जो कि फुफ्फुसके वायु-कोष्ठोंमें श्वास-प्रश्वासके कारण हर समय उत्पन्न होती रहती है। निरन्तर एक हल्की फूत्कार सा सुनाई देती है। बहिःश्वासके समय अपेक्षया कुछ कम स्पष्ट सुनाई देती है। बहिःश्वासके और अन्तःश्वासके बीचमें कोई विराम नहीं होता। अतः यह फुफ्फुस घोष निरन्तर सुनाई देता है। दाएँ फुफ्फुसके शिखर पर बाएँकी अपेक्षा कुछ अधिक सुनाई देता है।

यदि किसी एक फुफ्फुसके शिखर पर दूसरेके शिखरकी अपेक्षा यह अधिक कठोर सा सुनाई पड़े तो यह उस फुफ्फुसके शिखरमें क्षयरोग-जन्य खरताके उत्पन्न होनेका सूचक है। इस शिखरके कुछ कुछ ठोस हो जानेके कारण फुफ्फुस घोष कुछ ऊँचा सुनाई देता है। बालकोंमें यह स्वभावतः ऊँचा हो जाता है।

फुफ्फुस घोष मन्द हो तो यह फुफ्फुसके अन्दर वायुके आने जानेसे उत्पन्न होने वाली गतिकी न्यूनताका सूचक है। अर्थात् जब फुफ्फुसमें अधिक वायु भरी रहती हो, जो भली प्रकार बाहिर न निकलती हो तो यह घोष मन्द हो जाता है। छातीकी दीवार मोटी हो, फुफ्फुसावरण कोशमें वायु भरी होने कारण फुफ्फुस दीवारसे परे हट गए हों तो भी घोष मन्द सुनाई देता है।

छातीके ऊपरके भाग पर विशेषतः सामनेके भाग पर श्रवणयन्त्र (Stethescope) रख कर सुनें तो बड़ी श्वासगलियोंमें श्वास प्रश्वासके आने जानेके कारण उत्पन्न होने वाली श्वासनाली-ध्वनि स्पष्टतः सुनाई देती है। इसमें पहले अन्तःश्वासकी ऊँची फूतकार सुनाई देती है फिर थोड़ा विराम और फिर बहिःश्वासकी फूत्कार लगभग एक सी लम्बी और ऊँचाईमें भी समान होती है। यदि फुफ्फुसका कोई भाग ठोस हो जाए जैसे कि श्वासरोग (Asthma) में फुफ्फुसका निचला खण्ड ठोस हो जाता है या क्षयरोगके फुफ्फुसके शिखर (Apex) का कोई भाग न्यूनाधिक ठोस सा होजाए तो इन ठोस भागोंके समीपकी किसी छोटी श्वासनालीमें उत्पन्न होने वाला श्वास-प्रणाली घोष (Bronchial breathing) हमारे कानोंमें अधिक स्पष्ट आने लगता है। यदि फुफ्फुसके किसी भागमें एक खोखली गुहासी बन जाए जैसा कि उरःक्षयरोगकी प्रवृत अवस्थामें फुफ्फुसके एक भागके खाए जाने पर होता है तो इस गुहाके समीप त्वचाके ऊपर श्रवणयन्त्र रख कर सुननेसे भी श्वासप्रणाली

घोष सुनाई देने लगता है। परन्तु इसमें भेद यही होता है कि यह घोष एक खाली बोतलमें फूँक मारनेके सदृश हुआ करता है। अतः इसे वटिका-ध्वनि या (Amphoric sound) कहते हैं। गुहाके पास एक छोटी श्वास-नालीके गुहाके अन्दर खुलनेसे यह घोष उत्पन्न हो जाता है। जब यदि श्वासकी फूत्कार अंतःश्वासकी फूत्कारसे अधिक लम्बी सुनाई दे तो यही समझना चाहिये कि श्वास नालियोंमें अधिक वायु भरे होनेके कारण उसकी दीवालें अधिक तनी हुई हैं और उनका लचकीलापन कम हो गया है, जिसमें वह शीघ्रतासे श्वास वायुको बाहर नहीं फेंक सकती। अतः श्वासरोगीमें यही लक्षण पाया जाता है।

रोग सूचक ध्वनियाँ

(Adventitious Sounds)

यदि बड़ी श्वास प्रणालियाँ अन्दरकी ओरसे कुछ सूजी हुई हों, जैसा कि कास रोगमें होता है और नालियोंका मार्ग कुछ संकुचित हो गया हो तो इनमेंसे वायु गुजरते हुए मध्यम सीटियों जैसी ध्वनि उत्पन्न होती है। छोटी श्वास नालियाँ जो कि बहुत अधिक होती हैं सूजी हुई हों तो फुफ्फुसके भिन्न-भिन्न प्रदेशों पर सुननेसे ऊँची सीटियों जैसी ध्वनियां सुनाई देती हैं। बड़ी श्वास नालियों (Bronchi) की ध्वनिको Sonorous और छोटी श्वासनालियों (Bronchioles) की ध्वनिको Sibilant कहते हैं। छोटी श्वास-नालियोंमें होनेवाली मध्मय सीटियों जैसी ध्वनि अन्तः श्वासके आरम्भ दे स्पष्ट सुनाई ेती है।

यदि ऊपरकी बड़ी-बड़ी श्वासनालियोंमें या छोटी छोटी श्वासनालियोंमें श्लेटाभद्रव भरा हुआ हो तो इस श्लेटाभद्रवमें से वायु गुज़रते हुए बुलबुलोंके करनेकी सी बुद बुद ध्वनियाँ (Bubble Sounds) सुनाई देती हैं। फुफ्फुसके वायु कोष्ठोंमें श्लेटाभद्रव भरा हुआ हो तो भी फुफ्फसके निकलें प्रदेशोंपर ये बुद बुद ध्वनियां सुनाई देती हैं। यदि बड़ी श्वासनालियों में यह श्लेटा-भद्रव भरा हुआ हो जैसा कि श्लेष्म पुकादे जन्म कासमें होता है। तो अन्तःश्वास तथा वहिःश्वास दोनोंके साथ ये बुद बुद ध्वनियाँ सुनाई देती हैं और ये बड़ी स्पष्ट होती है। यदि केवल छोटी-छोटी श्वासनालियोंमें ही श्लेष्मद्रव भरा हो जैसा कि कासज्वरमें होता है तो अन्तःश्वासके अन्तिम भाग में बुद बुद ध्वनियां सुनाई देता हैं। ये बड़ी श्वासनालियोंकी बुद बुद ध्वनि-से ऊँची होती है।

जब केवल फुफ्फुसमें ही शोथ आरम्भ हो, जैसे कि श्वास ज्वर (Pneumonia) में फुफ्फुसका निकला खण्ड सूख जाता है तब फुफ्फुस के इस भागको वायु-कोष्ठोंमें हल्की-हल्की कफ़ प्रकोप जन्य शोथ होती है। वायुके इस भागमें प्रविष्ट होते समय वायुकोष्ठोंकी श्लेष्यद्रव द्वारा परस्पर चिपकी हुई दीवारें जब परस्पर दूर होती है जैसे गोंदसे चिपचिपी और जुड़ी हुई दो अंगुलियोंको पृथक् करते हुए आवाज़ होती है वैसी ही चिर-चिर ध्वनि फुफ्फुसके इस भागमें होती है। इसे Friction sounds कहते हैं फुफ्फुसके शिखर से समीपस्थ भागमें उरःक्षपराग के कारण चिपचिपा श्लेटायद्रव उत्पन्न हुआ हो तो फुफ्फुसके शिखर पर भी यह हल्की चिर-चिर ध्वनि सुनाई देती है। रोगीको थोड़ा खाँसनेके बाद गहरा श्वास लेते हुए ये चिर्-चिर् ध्वनियाँ अधिक स्पष्ट सुनाई देती हैं।

जब फुफ्फुसावरण कोशके किसी भागमें कफ़ प्रकोप जन्य शोथ हो और हलका सा कफ़स्राव उत्पन्न हो गया Plevra की दोनों तहें चिपकी हुई हों तो अन्तः श्वास-के अन्त दे और वहिःश्वासके आरम्भमें जब ये दोनों तहें एक दूसरेसे पृथक् होने लगती हैं तो भी चिर्-चिर् ध्वनि होती है। यह चिर्-चिर् ध्वनि फुफ्फुसकी गहरी न होकर छातीके ऊपर पृष्ट परसे या श्रवणयन्त्रके ठीक नीचेसे आती हुई प्रतीत होती है। कक्ष प्रदेशके निचले भाग पर तथा स्कन्धास्थिके अधःकाटेके समीप अधिक सुनाई दिया करती हैं तथा शूपार्श्वशल रोग (Pleurisy) की सूचक है।

वाचिक ध्वनि (Vocal resonance)--:

रोगीको १, २, ३ ऐसा निरन्तर बोलनेको कहें और उसकी छाती पर श्रावणयन्त्र द्वारा सुनें तो एक गूँज सी

सुनाई देती है जिसे वाचिक ध्वनि कहते हैं। छातीके दोनों ओरके भिन्न-भिन्न प्रदेशों पर सुनते हुए इस ध्वनि की जाँच करें। साधारणतः छातीके पृष्ठ पर से उत्पन्न होती हुई यह ध्वनि प्रतीत होती है। यदि यह हमारे कानमें उत्पन्न होती हुई प्रतीत हो और अधिक स्पष्ट सुनाई देती है। और रोगी शनैः जो शब्द बोलता हो वह भी हमें स्पष्ट सुनाई देता हो तो वाचिक ध्वनि बढ़ी हुई है। फुफ्फुसका कोई भाग क्षयरोग या श्वास ज्वर के कारण ठोस हो गया हो तो वहाँ सुननेसे वाचिक ध्वनि बढ़ी हुई प्रतीत होती है। यदि फुफ्फुसमें क्षयरोगके कारण कोई गुहा उत्पन्न हो गई हो और उसमें कोई श्वासनाली खुलती हो और वह गुहा छातीकी पृष्ठसे बहुत दूर न हो तो उस पर सुननेसे भी यह ध्वनि बहुत बढ़ी हुई सुनाई देती है।

इसके विपरीत यदि छातीकी दीवार और फुफ्फुसके बीचमें कहीं द्रव भर जाय अर्थात् फुफ्फुसावरण कोश (Pleura) में द्रव या वायु भर जाय तो वाचिक ध्वनि मध्यम पड़ जाती है या नष्ट हो जाती है।

फुफ्फुसरोग सूचक लक्षण

१ कास – कासफुफ्फुसरोगोंको प्रायः सूचक लक्षण है। श्वास मार्गमें कहीं भी क्षोभ हो तो इस क्षोभका अवश्यम्भावी परिणाम कास है। यदि गुणक कास (सूखी खाँसी) उठती हो तो गलेमें शोथ (Laryngitis) का अनुमान करें। यदि रोगी बालक हो और रात्रिके समय ही उसे अधिक शुष्क कास उठती हो तो उसके गलेमें गलायुग्रन्थि (Tonsils) सूजी हुई समझें। यदि हल्की खाँसी उठती हो, खाँसीकी आवाज़ फटी हुई या बैठी हुई हो, रोगीका स्वर भी बैठ गया हो तो कण्ठमें शोथका अनुमान करें। बिना किसी प्रकारके कफ़स्रावके बार-बार कष्टप्रद शुष्क कास उठती हो तो बड़ी श्वासनालियोंमें शोथ (Bronchitis) का अनुमान करें। श्वासनालियोंमें शोथ उत्पन्न हो जानेसे सीटी जैसा शब्द भी सुनाई देता है। यदि कुछ कालसे सदा खाँसी उठती हो, बलगम अधिक भागमें निकले तो जीर्ण कास (Chronic bronchitis) का निश्चय करें। यदि किसी निर्बल कृश व्यक्तिको प्रातःकाल सूखी खाँसी उठती हो और दिनमें भी कभी-कभी हल्की इकहरी आवाज़के साथ सूखी खाँसी उठती हो तो भी उसी रोगका सन्देह करें। चिरस्थायी कास रोग, उरः क्षयरोग (Palmonary-tuberculosis) का प्रायःलक्षण कहना चाहिये। यदि रोगीको सहसा उथली खाँसी उत्पन्न हो जाए, बोलने, गहरी साँस लेने, करवट बदलनेमें यह उथली कास शीघ्र उत्पन्न होने लगे, कुछ बलपूर्वक खाँसनेसे एक पार्श्वमें दर्द होता हो तो पार्श्व-शूलका अनुमान करें। श्वास ज्वरके आरम्भमें पार्श्व शूलभी हुआ करता है और उसके कारण ऐसी उथली खाँसी भी हुआ करती है।

२- कफ़स्राव – फुफ्फुस रोगोंका यह विशेष लक्षण है। यदि बिना खाँसीके केवल खंगारनेसे ही कफ़स्राव हो तो नाकके पिछले भाग, गले या कण्ठसे कफ़ आता है, ऐसा समझें। गले और कण्ठमें आने वाली कफमें यह भेद होता है कि उसमें वायु नहीं होती। अतः वह फागदार नहीं होती। कण्ठसे आया हुआ कफस्राव छोटी-छोटी कठोर सी टिकियोंके मिलनेसे बना होता है या सागूदाने सदृश दानों से मिल कर बना होता है। श्वासनालियोंसे अगर कफ़स्राव में फाग होती है। तीव्र कास Acute Bronchiti में निकला हुआ कफ़स्राव थोड़ा पतला और फागसे मिला होता है। किन्तु चिरस्थायी कासमें कफ़ स्रावके साथ शादी मिली होती है। श्वास ज्वरका कफ़ कड़ा चिपचिपा, कठिनतासे बहुत खाँसनेके बाद निकलने वाला और कई बार कुछ २ लालिमायुक्तता भी होता है। क्षयरोगके आरम्भमें खांसीके साथ कोई कफ नहीं आता है, फिर बादमें पतला और थोड़ा सा कफ प्रातःकाल आता है।

३. छातीकी शूल —छातीकी पर्शुका मध्यमें शोथ हो, पर्शुकाओंके बीचकी नाड़ियों (Inter costal nerves) में शूल हो तो गहरा श्वास लेनेपर दर्द प्रतीत होता है। हृदय शूल रोग (Pectoris angiua) में भी हृदय-प्रदेश पर तीव्र शूल होती है। चिरस्थायी प्रमेह रोगमें छातीकी अस्थियोंके जोड़ोंमें मन्द शूल हो जाया करती है।

४. श्वासका छिन्द (Dyspnoea) यह भी फुफ्फुस रोग-सूचक-लक्षण है। ऊर्ध्व गल ग्रन्थियाँ फूली हुई हों जैसा कि शिशुओं में होता है तो श्वासके साथ घुर्राटेकी सी ध्वनि होती है। Ehiglothis में उद्वर्त (Spasms) हो तो कण्ठके बन्द हो जानेसे बालकों के रात्रिमें श्वासावरोध हो जाता है और अन्तः तथा वहिःश्वासके साथ एक विशेष ध्वनि उत्पन्न होने लगती है। युवकों और बड़ी आयु वालोंमें फुफ्फुस और श्वास-नालियोंमें अधिक वायु भर जानेसे चिरस्थायी कास और श्वास ज्वरमें श्वास लेनेसे कठिनाई प्रतीत होती है जिससे रात्रिमें रोगीको लेटनेकी जगह बैठकर श्वास लेना पड़ता है।

५. रक्त निष्ठीवन—फुफ्फुससे आनेवाले रक्तमें पेट से आने रक्तके समान कालिमा न होकर लालिमा और फाग होती है। वह थूक या बलगमके साथ मिला हुआ आता है। ऐसे रोगीमें प्रायः उरःक्षयरोग के भाव लक्षण भी मिलते हैं। थोड़ा थोड़ा रक्त कई दिनों तक निकलता रहता है। इस प्रकार रक्तनिष्ठीवन उरःक्षयरोगके आपत्ति लक्षण है। प्रायः ७०% रोगियोंको उरःक्षयमें रक्तनिष्ठीवन होता है। क्षयरोगमें उतर कर हृदयरोग वामकपाटी रोग में भी कभी-कभी रक्तनिष्ठीवन हो जाता है।

बकायन

लेखक—श्रीयुत रामेश बेदी, आयुर्वेदालङ्कार

नाम

संस्कृत—उत्पत्ति बोधक नाम, महानिम्ब) ऊँचे स्थान पर होने वाला नीम), गिरिनिम्ब, पर्वत निम्ब, पार्व्वत, गिरिकः (पहाड़में होने वाला निम्ब सदृश छोटा वृक्ष), हिमद्रुम (पहाड़ पर बहुत ठण्डे स्थानों तक मिलने वाला वृक्ष) । परिचय ज्ञापक नाम: निम्बक (छोटा नीम), रमणः, रामणः रम्यकः सुन्दर नयना भिराम छोटा वृक्ष); पवनेष्ट (पवन-प्रिय वृक्ष, गर्मियों में इसके नीचे ठण्डी हवा बहती है); हिमद्रुम (फूलोंके सफ़ेद गुच्छोंके खिलने पर वृक्ष बर्फसे ढका हुआसा प्रतीत होता है), मदोद्रेक (फूलोंमेंसे मादक सुगन्ध आती है), शुकमालक (जिस वृक्षपर तोतोंकी पंक्तियाँ बैठी रहती हैं), शाकशाल (शाखाओंमेंसे निर्यास निकलती हैं), शुक्लशाल (सफ़ेद या धूसर वर्ण गोंद पैदा करने वाला); निम्ब पत्र (नीमके समान पत्ते होते हैं), खरच्छद (पत्ते जल्दी टूट जाने वाले होते हैं, लचक नहीं होती); पंक्तिपत्र, श्रेणीपत्र (क्रमसे श्रेणीबद्ध पत्ते होते हैं), रोमक (पत्ते, छोटी पतली शाखाएँ और फूल पर छोटे छोटे रोम कूप सदृश कूप होते हैं), काकाण्ड (फल कौएके अण्डे जैसे आकारके होते हैं), या अक्षिपीलुक (अक्षिगोलककी तरह जिसके फल हैं), मालक (फलों की मालाएँ बनाई जाती हैं)।

गुण प्रकाशक नाम: महातिक्त (बहुत कड़वी छाल वाला); विषमुष्टिक (विषैले फल वाला), केश मुष्टिक (बालोंको धोनेके लिये लाभकारी फल)।

हिन्दी—बकातन, बकायन।

बंगाली—घोड़ा निम्म, महानिम्म।

गुजराती—बकान लीवड़ो।

मराठी—बकाणि निंब।

लैटिन—मेलिका एजेडेरैच, लिन।

नैसर्गिक वर्ग—लिलिएसी।

संस्कृतमें नीमके कुछ पर्याय महापूर्वक बकायनके पर्याय लिखे गये हैं; जैसे महानिम्ब, महारिष्ट, महापित्रु मन्द। महान् शब्द यहाँ बकायनके गुणोंकी महानताकी ओर संकेत करता हुआ नहीं समझना चाहिये परन्तु महान्-ऊँचे-स्थान पर इसकी प्राप्तिके कारण और नीमके सादृश्यके कारण सम्भवतः संस्कृत लेखकोने इसके उपरोक्त महापूर्वक नामोंका निर्माण किया है। निम्बक और महानिम्ब दोनों विपरीत अर्थवाचक पर्याय मालूम देते हैं, परन्तु इस शैलीसे अर्थ करने पर यह विपरीत नहीं

रहती। फिर भी निघण्टुकारों द्वारा दिये गये नामोंमें कहीं-कहीं स्खलन प्रतीत होता है। कैयदेव इसका एक नाम क्षीर:[1] और दूसरा आरम्यकः लिखता है जहाँ इसके ठीक विपरीत राजनिघण्टु अक्षीरः[2] और रम्यकः नामकरण करता है।

भेद

राज निघण्टु ने महानिम्बके एकभेद कैडर्यका उल्लेख किया है। वह निम्ब, महानिम्ब और कैडर्य तीनोंको पृथक्-पृथक् द्रव्य लिखता है (राजनिघण्टु, प्रभद्रादिवर्ग, श्लोक ६-१४)। परन्तु मालूम होता है पिछले दोनों द्रव्योंमें वह स्पष्ट भेद नहीं जानता था। कैटर्य शब्द चरक-सुश्रुतमें चार-पाँच स्थान पर नजर आता है। श्रीकण्ठ, उल्हण, अरुणदत्त आदि टोकाकारों ने कैडर्यका अर्थ पर्वत-निम्ब किया है। पर्वत निम्ब शब्द चरकमें नहीं आया। श्रीकण्ठके उल्लेखसे मालूम होता है कि उस समय यह शब्द बकायनके लिये ही प्रयुक्त होता था। वह लिखता है—महापिचुमन्द नीम जैसे बड़े पत्तों वाला वृक्ष होता है जो लोकमें बकायनके नामसे प्रसिद्ध है। गाँवोंके आसपास मिलने वाले नीमकी तरह यह वृक्ष पहाड़ोंमें अधिक मिलता है इसलिये पर्वत-निम्न कहते हैं (अ० ५, ४५)।

इससे मालूम होता है कि कैटर्य, महानिम्ब या पर्वत निम्ब वस्तुतः भिन्न वृक्ष नहीं हैं जैसा कि राज निघण्टुका विचार है।

प्राप्ति-स्थान

निम्न हिमालय और शिवालिक मार्गोंमें यह देशीय समझा जाता है। हिमालयमें ६,००० फीटकी ऊँचाई तक और इससे भी अधिक यद्यपि यह आमतौर पर प्राकृतिक रूपमें मिल जाता है पर इसके भारतके मूल निवासी होनेमें सन्देह किया जाता है। सुन्दर फूलों और उत्तम पथवृक्ष होनेके कारण यह भारत और ब्रह्माके विभिन्न भागोंमें बहुधा बोया जाता है और यहाँ यह देशीय बना लिया गया है। नैपालकी तराईमें गाँवोंके पास लगाया जाता है। यहाँ जंगलके गाँवोंके आसपास प्रकटरूपमें प्रायः जंगली है। पंजाबमें यह नीमका स्थान ले लेता है। पञ्जाबमें पूर्वमें कम, मध्यमें और पश्चिममें बहुतायतसे होता है।

संसारके गरम प्रदेशोंमें छायाके लिये बहुत विस्तृत रूपसे कृषि की जाती है। मलाया प्रायद्वीपमें बगीचोंमें बोया जाता है, परन्तु बहुत कम ऊँचा जाने पर ही फूलने लगता है और अधिक बड़ा नहीं होता। ईरान और चीनमें आम मिलता है बशहर (चीन) में नौ हजार फीट तक उगता है। बिलोचिस्तान, पश्चिम काश्मीर और हजारामें बहुधा स्वयं उगा हुआ मिलता है। अफगानिस्तान, पश्चिमीय एशिया, दक्षिण यूरोप, वेस्ट इण्डीज, दक्षिणीय अमेरिका, आस्ट्रेलिया, चीन और भारतीय द्वीप-समूहोंमें यह आमतौर पर बोया जाता है। संयुक्त राज्यके गरम हिस्सोंमें बोया जाता है।

वर्णन

एक मध्यमाकार लगभग चालीस फीट और प्रायःकर कम ऊँचा वृक्ष है। पत्ते नौ से बारह इञ्च लम्बे, पत्तियाँ तीनसे बारह, अण्डाकृति मालाकार, आधेसे डेढ़ इञ्च लम्बे प्रायःकर गहरी दन्तुर और कभी-कभी खण्डों वाली होती है। तना छोटा सीधा, ६-७ फीट व्यास और अधिक आयुका तना प्रायःकर खोखला होता है। दूरसे देखने पर शाखायें एक बड़े चौड़े मुकुटकी शक्लमें फैलती हुई नजर आती हैं। तनेकी छाल चौथाई इञ्च मोटी, छालका अन्दरका भाग कठोर, भूरा सा लाल, बाहरका भाग हलका और गहरा भूरा और उस पर छोटी छोटी लम्ब अक्षमें उथली दरारें। लकड़ी मुलायम, अन्तः काष्ठ लाल, सुखाई हुई लकड़ीका भार तीस पौंड, और बिना सुखाईका अड़तीससे बयालीस पौंड होता है। सर्दियोंमें मार्चसे अप्रैल तक तीन-चार मास वृक्ष प्राय कर पत्र-विहीन होता है। उसके सुन्दर पुष्प मार्चसे मई तक

१ रोमकोऽरम्यको द्रेके निम्बक विषमुस्टिकः।
कार्मुको मालकः क्षीरः शाकशालाक्षिपीलुकः॥
—कैयदेव, औषधि वर्ग, श्लोक ८०२।

२ महानिम्बो यदोद्रेकः कार्मुकः केशमुस्टिकः।
काकाण्डोऽरम्यकोऽक्षीरो महातिक्तो हिमद्रुमः॥
—राज निघण्टु, प्रभाद्रादि वर्ग, श्लोक ११।

खिलते हैं। फूलोंमें मधु जैसी तेज गन्ध आती है। फल शीतऋतुमें पकते हैं। वृक्ष पर ये पीले गुच्छोंमें फूल खिलनेके मौसम तक रहते हैं और कुछ जुलाई तक पेड़ पर लगे रहते हैं। फल ०'४ से ०.६ इञ्च लम्बा लगभग गोल, पकने पर पीला, पहले चिकना बादमें झुर्रियोंदार- गूदा प्रायः बहुत कम और सूखा हुआ बीज आमतौर पर पाँच, उनके ऊपरका आवरण अस्थिमय- बहुत कठोर होता है।

कृषि

बीजोंको बो कर पानी दिया जाय तो दो या तीन सप्ताहमें अङ्कुर छोड़ देते हैं। प्रत्येक बीजमें से एक या चार अंकुर निकलते हैं। वृद्धिकी पहली मौसममें पौदा आठसे दस इञ्च तक ऊँचा पहुँच जाता है। अब तक बीज पत्र प्रायः बने रहते हैं। उचित हिफ़ाज़तसे दूसरी मौसमके अन्त तक पाँचसे आठ फीट तक ऊँचा हो जाता है। मुख्य प्रबल जड़ (Tap root) अब दो से तीन फीट लम्बी और काफी मोटी होती है। यदि हिफ़ाज़त न की जाय तो प्राकृतिक अवस्थाओंमें वृद्धि कम होती है। दूसरी मौसमके अन्त तक तीन फीट और तीसरी मौसमके अन्त तक लगभग दस फीट तक पहुँच जाता है।

नये पौदोंको प्रारम्भिक अवस्थामें प्रकाशकी अधिक आवश्यकता होती है। सर्दियोंमें से पाले और कुहरेसे मरते हैं, पर नीम जितने नहीं। नीमकी अपेक्षा ये अधिक ठंडा बर्दाश्त कर सकते हैं। उत्तरी भारतमें पौदोंकी वृद्धि नवम्बर-दिसम्बरमें रुक जाती है और नई वृद्धि लगभग फरवरी-मार्चसे प्रारम्भ होती है। दिसम्बर-जनवरी में पत्ते पीले पड़ कर गिर जाते हैं और नये पत्ते मार्चमें निकलते हैं।

छोटे पौदोंको हिरण चर जाते हैं। चूहे नुकसान नही पहुँचाते। बकायन बहुत भंगुर वृक्ष है। कड़े वृक्षोंकी शाखायें प्रायःकर टूटी फूटी होती हैं या मुख्य तना हवा से टूटकर द्विधा विभक्त हुआ होता है। इस प्रकार स्वतः टूटे हुए या काटे हुए वृक्ष अपने तने परकी प्रसुप्त कलिकाओंसे बहुतसे नवीन अङ्कुर पैदा करती हैं। इस वृक्षकी जड़ें कम गहरी होती हैं और पृष्ठके समीप फैली होती हैं। इसलिये वृक्ष तेज हवासे जल्दी ही उखाड़ डाला जाता है। वृक्षका जीवन काल छोटा होता है।

बीजों, कलमों या जड़ोंसे वृक्ष उगाया जा सकता है। सर्दियोंकी समाप्ति पर जब नई वृद्धि प्रारम्भ होती है पौदे उठा-उठाकर नियत स्थान पर लगाने चाहिये। लगाते समय ऊपरसे चार इञ्च तना और नीचेसे सात इञ्च जड़ काट डाली जाय तो वृद्धि अच्छी होती है।

परीक्षाओंसे मालूम हुआ है कि बीज अपनी जीवनी शक्ति एक साल तक कायम रखते हैं। इस बातमें यह नीमसे भिन्न है। एक बार तो यह देखा गया है, इस बातमें यह नीमसे भिन्न है। एक बार तो यह देखा गया है कि एक ही नमूनेके बीजोंमें से एक साल तक रखे गये बीज ताजे बीजोंकी अपेक्षा चार गुना अधिक उगे।

रासायनिक विश्लेषण

एक पीताभ श्वेत रेजिनस पदार्थ इसका क्रियाशील पदार्थ समझा जाता है। यह एल्कोहलमें पूर्णतया परन्तु ठण्डे पानीमें मुश्किलसे घुलनशील है। उबालनेसे यह नष्ट हो जाता है। एक्स्ट्रैक्टकी अधिक मात्रा एट्रोया बेलाडोनासे होने वाले विष प्रभावकी तरह असर करती है और अचेतनाके बाद मृत्यु हो जाती है।

बीजोंसे एक तेल निकलता है जो नीमकी अपेक्षा रसमें एक परिणाममें प्रतिशतक होता है। फलके गूदेमें एक पीताभ और रेजिन सदृश वसामय पदार्थ दो प्रतिशतक होता है। बीजोंमें फलकी दीवार और गूदेका अधिक बड़ा अनुपात होनेसे सम्पूर्ण फलमें ४.६२ प्रतिशतक तैल निकलता है।

गुण

महानिम्बो हिमो रूक्षस्तिक्तो ग्राही कषायकः।
कफपित्तभ्रमच्छर्दि कष्ठहृल्लास रक्तजित् ॥
प्रमेहश्वास गुल्मार्शोमूषिकाविषनाशनः।
—भावप्रकाश, गुडूच्यादिवर्ग, श्लोक ९९-१०१।

महानिम्बो हिमो रूक्षो ग्राही तिक्तः कषायकः।
निहन्ति कफपित्तास्रकुष्ट कोढवमीकृमीन् ॥
—कैयदेव, औषधिवर्ग, श्लोक ८०३।

महानिम्बस्तु शिशिर कषायः कटुतिक्तकः ।
अस्रदाहबलासहनौ विषमज्वरनाशन ॥
—राजनिघण्टु, प्रभद्रादिवर्ग, श्लोक १२ ।

सामान्य उपयोग

कई देशोंमें कौफीके बगीचोंमें छाया-वृक्षके रूपमें बोया जाता है। इसकी मोटी शाखाओंमें तोते खोल बना कर रहते हैं। फलके बीजोंको भारतमें सब जगह मनके की तरह पिरो कर बनाई हुई मालायें गलेमें पहनी जाती हैं, और समझा जाता है कि रोगको नाश करनेके लिये जादूका काम करती हैं।

सुन्दर चिह्नों वाली लकड़ी उपयोगी होती है और अच्छा काम देती है। इस पर पालिश अच्छी होती है और तब यह सुन्दर दिखती है। यह कभी-कभी देवदार की लकड़ीके नामसे बेंची जाती है। फ़र्नीचरके काम लाई जाती है और जहाज़ोंके तख्ते आदि बनानेमें उपयोगी है। इससे सिगार बाक्स बनाये जाते हैं।

एल्कोहल बनानेके व्यापारिक स्रोतके लिये बीजोंको अच्छा समझा जाता है। वास्तवमें सिविल वारमें दक्षिणीय संयुक्त राज्यमें इनसे अल्कोहल खींची भी गई थी। अनुमान किया जाता है कि शुष्क भारका दस प्रतिशतक अल्कोहल प्राप्तकी जा सकती है।

नीमकी तरह बकायनकी छाल भी एक भूरा चिपचिपा गोंद पैदा करती है और बीज एक स्थिर तेल परन्तु इनको विशेष महत्त्व नहीं दिया जाता। फारस और अरब निवासी बकायनको दवाके रूपमें बहुत देरसे इस्तेमाल कर रहे हैं, परन्तु मालूम होता है कि हिन्दुओंने नीमकी अपेक्षा इसे उपेक्षासे देखा है।

प्रभाव

विभिन्न प्राणियों पर इसका विभिन्न प्रकारसे विष प्रभाव होता है। फलोंको खानेसे सूअरोंमें ज़हर चढ़ जाता है। दक्षिण अफ्रीकामें इस प्रकारकी घटनायें होती हुई देखी गई है। मनुष्यके लिये भी फल विषैला है, परन्तु पक्षी इसे मज़ेमें खाते हैं और मालूम होता है कि भेड़ें भी इसे बिना किसी हानिकर प्रभावके खा जाती हैं। छसे आठ फल, कहते हैं, मनुष्य पर विषैला प्रभाव उत्पन्न कर देते हैं। जावामेंपर घातके लिये इसको विष-रूपमें दिया जाता है। पत्ते और विशेषकर फलोंको अधिक मात्रामें लिया जाय तो पहले निद्रा आती है और फिर मृत्यु हो सकती है। अल्प मात्रामें खाना और बाह्य प्रयोग हानिकर नहीं। चीनमें,कहा जाता है,यह यस्य विषका काम करता है। फलोंका एक योग अमेरिकामें कृमि घातक या फ़्ली पाउडरके रूपमें प्रयुक्त होता है।

छाल बहुत कड़वी और अधिक मात्रामें ली जाय तो मादक प्रभाव करती है।

बकायनकी छायामें आने वाले आडूके देशोंमें Aphidis आक्रमण नहीं करते। ताजे फलोंको जलमें उबाल कर बनाया कषाय मधु-मक्खियोंको मार डालता है और केकड़ोंपर भी विषैला असर पड़ता है। चूर्णित पत्तोंका कषाय रेशमके कीड़ोंको मार देता है यह बहुत हल्का प्रभाव करता है। अल्कोहलिक ईथर और पेट्रोलियम में निकाले हुये इसके सत्व मधुमक्खियोंके लिये घातक हैं परन्तु रेशमके कीड़ोंके लिये नहीं।

भारत और चीनमें दातों और खाद्य सामग्रीके भण्डार को सुरक्षित रखनेके लिये इसके पत्तोंको इस्तेमाल किया जाता है और पूर्वमें भी किताबोंको कीड़ेसे बचानेके लिये उनमें ये रक्खे जाते हैं।

चिकित्सोपयोग

नीमकी तरह यह भी चिकित्सोपयोगी वृक्ष है, परन्तु वैद्य इसे औषधि-व्यवहारमें कम उपयोग करते हैं। इसके त्वक् पत्र, फल, तैल आदिके गुण निम्बवत् समझने चाहिये।

कहा जाता है कि यह बुखारोंमें नहीं प्रयुक्त होता, परन्तु राजनिघण्टु इसे विषम ज्वर-नाशक समझता है।क मलायेशियामें यह पौदा काफ़ी काम आता है। जावामें उदर-कृमिहर रूपमें विशेष कर प्रयुक्त होता है। अरब और फारस वाले पत्तोंके रसको उदर-कृमिहर, मूत्रल और आर्तवप्रवर्त्तकके रूपमें अन्तः प्रयोगमें देते हैं। चरक मूत्र कृच्छमें इसके रसमें इलायचीका चूर्ण

क अस्रदाह बलासघ्नो विषम ज्वर नाशनः ॥
—राज निघन्टु, प्रभद्रादि वर्ग, श्लोक १२ ।

और मधु डाल कर पीनेके लिये देता है। ❀संयुक्त राज्य अमेरिका और मैक्सिकोमें मूलत्वक्‌का कषाय गण्डूपद कृमियोंको निकालनेके लिये प्रयुक्त होता है। वल्कल क्वाथ एक तोला दिनमें दो-तीन बार सप्ताह भर देनेसे बच्चोंके पेटके कीड़े निकल जाते है। बादमें हलका विरेचन देना चाहिये।

पत्तों और फूलोंकी पुल्टिस भारतमें वातिक सिर दर्दोंमें काम आती है। सिर पर लगानेसे यह जूओंको मारती है। बीजोंका कल्क आमवातमें और छालका कल्क कुष्ठ, क्षय ग्रन्थि तथा दाने उत्पन्न करनेवाली त्वचाकी बीमारियों में लगाया जाता है। गण्डमालामें कैटर्य तथा अन्य औषधियोंसे सिद्ध तेल मूर्ध विरेचनके लिये हितकर होता है। †चरक ने कण्ठ्य और संज्ञास्थापन दस औषधियों-में कैटर्यका परिगणन किया है।

कृमि-जन्य विषोंको यह दूर करता है ❀विषों में बकायन और शिरीषके स्वरससे आश्च्योतन अञ्जन और नस्य कराया जाता है।†

❀पिबेत्त्रुटिं क्षौद्रयुतां........ कैटर्य रसेन वापि ॥
—चरक, चिकित्सित स्थान, अध्याय २६, श्लोक ५४।

†कैटर्य बिम्बी करवीर सिद्ध तैलं हितं मूर्ध विरेचने।
—सुश्रुत, चिकित्सित स्थान, अध्याय १८, श्लोक २२।

❀............कृमिभूत विषामहः।
—राजनिघण्टु प्रभद्रादि वर्ग, श्लोक १४।

†काकाण्ड शिरीषाभ्यां स्वरसे नाश्च्योतनाञ्जने नस्यम्।
—चरक, चिकित्सित स्थान, अध्याय २३, श्लोक ४८।

कुष्ठमें यह लाभकारी समझा जाता है। ‡इसके लिये इसके तेलको तुवरक तेलमें मिला कर दे सकते हैं फल क्वाथ भी लाभकारी होता है। जावामें पत्तोंका कल्क कण्डूमें प्रयुक्त होता है। पत्तोंके क्वाथसे व्रण और कर्ण आदि धोये जा सकते हैं।

सहायक पुस्तकें

१—फ़्लोरा सिमिलेन्सिस; कौलेट।
२—ए युनिवर्सिटी टेक्स्ट बुक औफ़ बौटनी; कैम्पबेल।
३—फ़ौरेस्ट फ़्लोरा, डी० ब्राण्डीस।
४—सिल्विकल्चर ऑफ़ इण्डियन ट्रीज़; ट्रूप।
५—ए मैनुअल ऑफ़ इण्डियन टिम्बर्स; गैम्बल।
६—टिम्बर एण्ड टिम्बर ट्रीज; लैसलेट।
७—दि कमर्शियल प्रोडक्ट्स ऑफ इण्डिया; सर जौर्ज वाट।
८—ट्रीज, शब्ज़ एण्ड लार्ज क्लाइम्बर्स फ़ाइण्ड इन दि दार्जिलिंग डिस्ट्रिक्ट; गैम्बल।
९—ए डिक्शनरी ऑफ़ दि इकौनोमिक प्रौडक्ट्स ऑफ़ दि मलाया पेनिन्सुला; आई० एच० बुर्किल।
१०—चरक संहिता।
११—सुश्रुत संहिता।
१२—राजनिघण्टु।
१०—कैयदेव निघण्टु।

‡सन्ताप शोष कुष्ठघ्न कृमिभूत विषामहः।
—राजनिघण्टु, प्रभद्रादि वर्ग, श्लोक १४।

विषय-सूची

मुद्रक—विश्वप्रकाश, कला, प्रेस, प्रयाग।

Only Cover Printed at The Indian Press, Ltd., Allahabad.